श्रीश्रीसद्गुरु संग

प्रथम खंड

श्रीश्रीगुरवे नमः

- निवेदन -

भगवान श्रीश्रीविजयकृष्ण गोस्वामी प्रभु से बंगाल के वासी भलीभाँति परिचित हैं। वे ही मेरे परमाराध्य गुरुदेव हैं। उन्होंने बंगला सन् १२४८ की शुभ श्रावण पूर्णिमा रक्षाबंधन के दिन श्रीधाम शांतिपुर में श्रीअद्वैतवंश में, परम भागवत् पण्डित प्रवर श्रीमत् आनन्द किशोर गोस्वामी प्रभु के घर पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया।

बाल्यकाल में उनके जिन स्वाभाविक सद्गुणों और क्रियाकलाप को देखकर उनके रिश्तेदार, कुटुम्बी और शान्तिपुरवासी लोग जिस प्रकार विस्मित होते थे, उनको सर्वसाधारण के श्रुतिगोचर कराना मेरी इस पुस्तक का उद्देश्य नहीं है।

उन्होंने युवावस्था में, सरल विश्वास से ब्राह्मधर्म स्वीकार करके, दूसरों के दुःख से दुखी होकर तत्कालीन दुर्नीति, दुराचार को दूर करने के लिए तथा समयानुकूल धर्म की स्थापना के लिए कई अत्याचार और उत्पीड़न सहकर भी, अदम्य उत्साह से देश का पुनरूत्थान कार्य किया था, उनके जीवन की उन घटनाओं का अनुसंधान करके, उनका प्रचार करना भी इस पुस्तक का अभिप्राय नहीं है।

उन्होंने विशुद्ध धर्ममत से और अनादि, अनन्त सत्यस्वरूप

परमेश्वर के अस्तित्व मात्र के ध्यान से संतुष्ट न होकरप्रत्यक्ष रूप से जीवन में उस परस वस्तु को प्राप्त करने के लिए विभिन्न धर्म सम्प्रदायों की उपासना प्रणाली को ग्रहण कर तपस्या की कठोर साधन-भजन करते हुए अपनी लक्ष्य वस्तु भगवान् को साक्षात् रूप में न पाकर जिस तरह दुर्गम पहाड़ों, जंगलों में भूखे-प्यासे और जागृत रहकर, उन्होंने सद्गुरु को ढूँढने के लिए उन्मत्त की तरह दौड़-धूप किया, उन सबका विवरण, उन्हीं के मुँह से सुनकर मैं आश्चर्य चकित रह गया और उसे लिख कर रखा है।

अन्त में उनकी प्रौढ़ अवस्था में विचित्र रूप से, गया के आकाशगंगा पहाड़ पर अकस्मात् आविर्भूत होकर मानस सरोवर निवासी श्रीश्रीब्रह्मानन्द परमहंसजी, उन्हें शक्ति-संचारपूर्वक दीक्षा देकर पल भर में अन्तर्हित हो गये। उस समय से उन्होंने अपनी चिराकांक्षित वस्तु सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् का साक्षात्कार करके जिस अवस्था में बाकी दिन बिताये प्रायः तेरह-चौदह वर्ष तक उनके साथ रहते हुए उसे प्रत्यक्ष देखकर, मैं समय-समय पर मुग्ध और विस्मित हुआ। हाय, कुछ समय पहले उसी चित्तविमोहन, परम मनोहर रूप का सिर्फ चित्र हम लोगों के सामने छोडकर, बंगला सन् १३०६ के ज्येष्ठ माह में श्रीश्रीनीलाचल में नीलाम्बुधि के तट पर-आश्रित भक्तों के प्राणाराम हमारे स्निग्ध, भास्कर तत्त्व का प्रभाकर अस्त हो गया। घोर कृष्णा द्वादशी के प्रथम पहर में अभागे भक्तों के सिर पर अकस्मात् वज्रपात हुआ। उस भीषण दुर्दिन का हृदयविदारक दृश्य अंकित करके, ही मैंने अपनी डायरी का अन्तिम पृष्ठ सदा के लिए समाप्त कर दिया है।

बचपन से, कोई दस वर्ष की उम्र से मुझे डायरी लिखने का

अभ्यास था। अतएव जिस दिन मैंने ठाकुर का आश्रय लिया, उस दिन से उनके महासमाधि लेने के दिन तक मैंने डायरी लिखी है। ठाकुर के पास सदा एक व्यक्ति के रहने की आवश्यकता पड़ती थी, और यह सेवा मुझे ही प्राप्त थी। सोने और भोजन करने में जितना समय लगता था, उसे छोड़कर लगभग मैं सदा उनके सामने बैठा रहता था। ठाकुर से साधन प्राप्त करने के बाद लगभग तेरह-चौदह वर्ष तक मैं लगातार उनके साथ रहा। उस समय उनकी बातचीत, आचार-विचार, क्रिया-कलाप आदि जिस दिन जैसा देखा सुना है, डायरी की उस तारीख में, अपने सामर्थ्य अनुसार ठीक-ठीक और विस्तृत रूप में मैंने वह सब लिख लिया। खासकर अपने ही जीवन की नाना प्रकार की दुरवस्था और आकस्मिक दुर्दशा के समय ठाकुर का अनुशासन, उपदेश, दया और सहानुभूति के साथ-साथ उनके लौकिक जीवन की अद्भुत घटनाओं का निदर्शन-जिसे उन्होंने समय-समय पर प्रकट किया है, सरलता से और खुले दिल से, मैं जैसा-जैसा पाता था, उसे डायरी लिख लेता था। सदा साथ में रहने के कारण ठाकुर के उस समय के नित्य साथ रहने वाले अपनी श्रद्धेय गुरुभाईयों की उस समय की किसी-किसी घटना के साथ मेरा विशेष संबंध रहा और उन घटनाओं के साथ ठाकुर के आदेश, उपदेश तथा व्यवहार का सम्पर्क विशेष रूप से रहने के कारण उन्हें भी मैंने अपनी डायरी में स्थान दिया है। यदि हम सब अपना सज्जनोचित, शान्त, जितेन्द्रिय, और निष्कलंक जीवन लेकर ही ठाकुर का आश्रय ग्रहण करते, तो फिर उनकी कृपा और महिमा का पूर्णतः परिचय कैसे मिल पाता? और उनका पतितपावन होना भी कैसे प्रस्फुटित होता उत्पीड़न की अधिकता

के प्रकट हुए बिना, दूसरी ओर क्षमा की विशेषता नहीं समझी जा सकती। एक और जिस प्रकार आचार-भ्रष्टता और उद्दण्डता है, दूसरी ओर उसी प्रकार धैर्य और सहनशीलता है। एक ओर हीनता और अधोगति है, दूसरी ओर दया और सहानुभूति है। इसी से, ठाकुर की असाधारण कृपा और अद्भुत जीवन का जरा सा परिचय स्मृति में रखने के लिए उस समय के नित्यसंगी गुरुभाईयों के साधारण व्यवहार को और विशेष रूप से अपने निजी जीवन की भूलों को, जिस दिन वे जैसी हुई, इस डायरी में मैंने लिख रखा है।

कई गुरुभाई जानते हैं कि मुझे डायरी लिखने की आदत है, अतएव सैकड़ों गुरुभाई, जब से ठाकुर का तिरोधान हुआ है, तब से लेकर अब तक, ठाकुर की एक जीवनी लिखने का मुझसे अनुरोध करते आ रहे हैं। किन्तु ठाकुर के साथ कुल तेरह-चौदह वर्ष तक रहकर, उनके जो घटनाएँ मैंने देखी हैं, उनके आधार पर उनका जीवन-चरित्र लिखना अथवा उस विषय में प्रयत्न करना भी बिल्कुल असम्भव जान पड़ता है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि उनकी सम्पूर्ण जीवनी नहीं लिखी जा सकती। भाषा के सहारे जिनको प्रकट करना सम्भव नहीं, ऐसी उनके जीवन के अतीन्द्रिय तत्त्वों के अनुभव की बातों को ध्यान में रखकर मैं यह नहीं कर रहा हूँ। बहुत मामूली योगैश्वर्यज्ञ में प्राप्त शक्तियों की जिन क्रियाओं और फलानुभूति को उनके पांचभौतिक शरीर में सदा होते देखा है तथा देवताओं और सिद्ध महापुरूषों से संबंध रखने वाली साधारणतः विश्वास से अतीत, जिन अलौकिक घटनाओं को मैंने सर्वदा देखा है, उन्हें याद करके भी मैं यह बात नहीं कहता हूँ। मेरी यह स्पष्ट धारणा है कि ठाकुर के जीवन में सर्वसाधारण के विश्वासयोग्य और

समझने लायक ऐसी कितनी ही घटनाएँ अनेक स्थानों में, अनेक अवस्थाओं में, साधारण दृष्टि से छिपी हुई घटित हुई हैं कि अपने नित्यसंगी शिष्यों के सामने भी प्रकट करने का अवसर गोस्वामीजी को नहीं मिला; फिर कभी तो बातचीत के सिलसिले में, कभी, किसी घटना को उन्होंने बाहरी आदमी के भी आगे प्रगट कर दिया है। अतएव, यह सब जान-बूझकर उनकी एक स्थूल जीवनी प्रकाशित करने का उद्यम करना मेरे लिए कितने दु:साहस का काम है, यह सभी समझ लेंगे। इन्हीं कारणों से मेरी यह स्पष्ट धारणा है कि ठाकुर की बातें कितनी ही क्यों न लिखूँ, उसके द्वारा उनका भली भाँति परिचय देना असम्भव है। इससे ठाकुर के शरीर त्यागने के बाद से अब तक मैंने इस विषय में तनिक भी प्रयत्न नहीं किया, क्योंकि उनकी ओर से प्रेरणा प्राप्त हुए बिना उनकी जीवनी को संकलित करने की मेरी हिम्मत नहीं हुई। हाँ भविष्य में उन्होंने प्रेरणा दी एवं सहायता की तो मैं इस विषय में प्रवृत्त हो सकूँगा।

गत १३२० बंगला सन् में, जब मैं हैजे की बीमारी से बिल्कुल मरणासन्न हो गया था, तब मेरे बचने की कोई आशा नहीं थी। मेरी डायरी प्रकाशित न हो पाएगी सोचकर, बहुत लोगों ने अत्यन्त खेद प्रकट किया था। ठाकुर की कृपा से जब मैं स्वस्थ हो गया, तब मेरे श्रद्धेय गुरुभाईयों ने मुझसे फिर सस्नेह अनुरोध किया। मैं उसे टाल नहीं सका।अपनी चौदह वर्ष की विस्तृत डायरी को प्रकाशित करने का मैंने संकल्प किया किन्तु इस काम का एकदम पूरा होना असम्भव था। मैंने देखा कि १२९८बं0 सन् की डायरी बहुत ही जीर्ण कागज पर, पेंसिल से लिखी हुई लुप्तप्राय दशा में है, अतएव क्रम के विरुद्ध होने पर भी, मैंने सब से पहले उसे प्रकाशित कर

दिया था किन्तु दीक्षा के समय से लेकर क्रमवार १२९१-१२९६ तक प्रथम खण्ड १२९७ का द्वितीय खण्ड, ऐसे छप गए हैं। संक्षिप्त करते हुए मैंने इनको प्रकाशित किया है। इस बात के कहने का अर्थ यह है कि महासमाधि लेने के कुछ दिन पहले ठाकुर ने एक दिन मुझसे कहा था-**ब्रह्मचारी, प्रत्यक्ष सत्य भी हर किसी से नहीं कहना चाहिए। अगर कहना ही हो तो आँखों के आगे उसे प्रमाण सहित दिखाना चाहिए नहीं तो श्रीमन्त सौदागर** (इस सौदागर को सिंहल जाते समय मार्ग में, कमलों के वन में, लक्ष्मीजी के दर्शन हुए थे। इसके मुँह से यह बात सुनकर सिंहल देश के राजा ने, इसके बतलाये हुए स्थान में लक्ष्मी को ढुँढवाने में असफल होकर उसे कारागार में डाल दिया। उधर घर पर इसकी गर्भिणी स्त्री के पुत्र हुआ। युवा होने पर वह भी सिंहल जाते समय लक्ष्मीजी के दर्शन करता गया। उसने सचमुच वहाँ के राजा को लक्ष्मीजी के दर्शन करा दिये। फलस्वरूप उसके पिता को छुटकारा मिला और बेटे को सिंहल के आधे राज्य के साथ राजकुमारी भी प्राप्त हुई। पिता अविश्वासी था, इसी से उसे लक्ष्मीजी के दर्शन नहीं करा पाया था।) **की-सी हालत होगी; यह याद रखना।** इसी से मैं सब बातें नहीं लिख सकता; मानो गूँगे का स्वप्न देखना हो।

जिस अवस्था में रहकर, जिस घटना में पड़कर, मैंने ठाकुर का आश्रय ग्रहण किया और उसके बाद लगातार उनके साथ रहने में बाधक जिन श्रृंखलाबद्ध आपत्तियों और झंझटों का मुझे उस समय सामना करना पड़ा, उनको मैं ठाकुर की कृपा ही समझता हूँ। इसलिए अपने जीवन की उस समय की घटना को, बहुत ही संक्षेप में दो-तीन विवरण यहाँ पर लिखे बिना मुझे तृप्ति नहीं हो सकती।

प्रार्थना है कि मेरी इस निर्लज्जता को सभी लोग दया करके क्षमा करेंगे।

मैं कोई छः वर्ष का था, जब एक दिन घर के पास मैदान में अपने हमउम्र मित्रों के साथ तीसरे पहर खेल रहा था। किसी ने मुझे पुकार कहा-अरे, तेरे घर गोस्वामीजी आये हुए हैं, जल्दी जा। यह बात सुनते ही मैंने दौड़कर घर जाकर देखा, कि पूजावाले कमरे के पास, हरसिंगार के पेड़ के नीचे, हमारे रिश्तेदार ब्राह्मसमाजी स्व.नवकान्त चट्टोपाध्याय के साथ बड़े डील-डौल के एक व्यक्ति खड़े हुए हैं। उनके हाथ में मोटी से लाठी है, पैरों में जूता है, और बदन में मोरपंखी रंग का सलूका और कमीज पहने हुए हैं। मैं नंगे बदन दौड़ा-और उनके सामने जाकर खड़ा हुआ, तब वे स्नेहपूर्ण दृष्टि से तनिक मुस्कुराकर मुझसे घनिष्ट परिचित की भाँति बोले- **क्यों खेल रहे थे? अच्छा ! अच्छा ! जाओ, खूब खेलो।** ऐसा कहकर वे नवकान्त बाबू के साथ मैदान की ओर चल दिये जाते-जाते घूमकर एकबार मेरी ओर देखे उनकी वह सूरत और उस स्नेहपूर्ण दृष्टि, मैं अब तक नहीं भूल सका। कोई गोसाई शब्द कहता था, तो मैं उन्हीं गोस्वामीजी को समझता था।

हम लोगों के मुहल्ले में एक बूढ़े ब्राह्मण प्रतिदिन कृत्तिवासी रामायण गान करके पाठ करते थे। सुनने में उनका पढ़ना अच्छा लगता था। मैं रोज भोजन करने के बाद गाँव के दूसरे छोर पर जाकर वहाँ शाम तक बैठा रहता और उनके मुँह से राम-कथा सुना करता था। मुझे रामजी बहुत भले लगते थे। मैं यह सोचकर रोता था कि राम मानो हमारे ही घर के कोई सदस्य हैं, और हमें छोड़कर जंगलों में भटकते फिर रहे हैं। लड़कों के साथ खेलने को बस्ती के

बाहर जंगल में जाने पर मैं चारों ओर ढूँढता फिरता कि वहाँ शायद राम हैं। राम का रंग दूर्वादल की तरह है, इसलिए मैं बड़े आग्रह से दूब की ओर देखा करता था। दूब पर पैर पड़ जाता तो मैं यह समझकर कि, राम को ही पैर लग गया, वहीं पर लोट जाता और राम को नमस्कार करता था। सदा हाथ में तीर कमान लिये रहता था। एक फटी-सी रामायण मिल गई थी, जिसे मैं दिन भर अपने साथ रखता और रात को सिरहाने रखकर सोता था। इस समय मैंने पहले दरजे की पुस्तक, शिशुशिक्षा, भी नहीं पढ़ी थी। इसके बाद पाठशाला और स्कूल में 'बोधोदय' तक पढ़ लेने पर मँझले दादा (श्रीयुक्त वरदाकान्त बन्द्योपाध्याय) मेरी पढ़ाई के लिए ढाका ले गये। मैं इस समय दस वर्ष का था। मँझले दादा ने बड़ी मेहनत से मुझे डायरी लिखना सिखलाया। मैं दिन भर में जितनी बार झूठ बोलता, जिसके साथ लड़ता-झगड़ता, और जो-जो गालियाँ दिया करता था, उन सबको रोजाना ज्यों का त्यों इस डायरी में लिखता था। इसी समय से मुझे डायरी लिखने का अभ्यास हो गया।

मेरे रिश्तेदारों में से कई ब्राह्मसमाजी थे। मेरे सभी बड़े भाई ब्राह्मसमाजी थे। धीरे-धीरे मँझले दादा मुझे प्रत्येक रविवार को ब्राह्मसमाज ले जाने लगे इन लोगों की उपासना-प्रणाली के प्रति मैं थोड़े ही दिनों में बहुत ही आकृष्ट हो गया। प्रति दिन दोनों वक्त, नियम से मैं प्रार्थना करने लगा। प्रार्थना करके मैं जिस दिन रो नहीं पड़ता उस दिन यह समझकर कि, उपासना ठीक नहीं की, दिन भर मन में उद्वेग-सा बना रहता। कपट और असत्य व्यवहार को बड़ा भारी अपराध जानकर मैंने निश्चय किया कि सर्वसमक्ष

जनेऊ उतार दूँगा और ब्राह्मधर्म की दीक्षा ले लूँगा। मेरे घरवालों और रिश्तेदारों में मेरे इस निर्णय की बदौलत बड़ी हलचल मच गई। इन्हीं दिनों ढाका-ब्राह्मसमाज में गोस्वामीजी आचार्य (पुरोहित) पद पर थे। असांप्रदायिक रीति से की गई उनकी हृदयस्पर्शी प्रार्थना और उपासना में तथा प्रतिदिन के संकीर्तन में उनके महाभाव में हिन्दू, मुस्लिम एवं ईसाई संप्रदायों के भी धर्मार्थी लोग आकृष्ट होकर ब्राह्म समाज आने लगे। ब्राह्म समाज में अच्छी खासी भीड़ होने लगी और हर रविवार को महोत्सव होने लगा। सजीव धर्म के जाग्रत् भाव में, बिना किसी सम्प्रदाय और जाति-पाँति के भेदभाव के सभी लोग विभोर होने लगे। मैंने अपने जीवन में ऐसा कभी नहीं देखा।

बंगला सन् १२९३ के आश्विन महीने में शारदीय उत्सव के समय दीक्षा लेने की इच्छा से अधीर होकर मैं उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा। इस समय मैंने जो डायरी लिखी थी, इस बार वही छापी जा रही है। इति।

ठाकुरबाड़ी, पुरी। श्रीकुलदानन्द ब्रह्मचारी

प्रथम खंड

विषय

अवतरणिका

ज्येष्ठ १२९४

दरभंगा में गोस्वामीजी का प्राणसंशय बचने में सन्देह।

आकाशमार्ग से ब्रह्मचारीजी का दरभंगा जाना।

गोस्वामी का दरभंगा आदि स्थानों में ठहरना।

व्याधि मुक्ति का अद्भुत विवरण।

आषाढ़ १२९४

धर्म और नीति के सम्बन्ध में उपदेश।

श्रावण १२९४

त्राटक साधन की रीति।

व्याख्यान देने में गोस्वामीजी की असम्मति।

साधु की अवज्ञा का दण्ड।

गुप्त रूप से प्राणायाम करने और उच्छिष्ट के पालन का उद्देश्य।

कुम्भक।

ढाका में जन्माष्टमी का जुलूस।

अद्भुत फकीर।

ब्राह्मसमाज में शास्त्रीय व्याख्या और हरिसंकीर्तन ब्राह्मगणों का आन्दोलन।

गोस्वामीजी का प्रतिदिन का आचरण और साधन की 'बैठक'।

गोस्वामीजी के शिष्यों की बातें।

विलुप्त मन्त्र की शक्ति के उद्धार का उपाय बतलाना।

शक्ति हरण।

अग्रहायन १२९४

वार्षिक उत्सव में महासंकीर्तन भावावेश की बातें।

कुछ अद्भुत घटनाओं का सूत्र।

मेरी असाध्य बीमारी।

अयोध्या जाने का विचार और गोस्वामीजी की आज्ञा।

पौष १२९४

स्वप्न-अद्वैतभाव-गोस्वामीजी की कृपा।

प्रार्थना की व्यर्थता बोध।

इष्ट-नाम की उत्पत्ति का अनुभव।

भावुकता में गोस्वामीजी का अनुशासन।

माघ १२९४

अनुगत का विरुद्धाचरण।
माघोत्सव की उपासना।
निर्विचार ब्राह्मदीक्षा देने का प्रतिवाद।
साधना के अनुभव में उत्साह देना-भक्तमाली की इच्छा-पूर्ति।
ईछापुरा गाँव में गोस्वामीजी और लाल। महोत्सव में मल्लवेश में नृत्य।
व्याकुलता।
चन्द्रगहण।

फाल्गुन १२९४

साधन का संकल्प ।
ज्योति के दर्शन में अचेत हो जाना।
ढाका का ‘टर्नेडो’।
ब्रह्मचारीजी का सत्संग।विचित्र जीवन-कथा, -अज्ञात भूगोल का वृत्तान्त।

ज्येष्ठ १२९४

मेरी दैहिक दुरावस्था और मानसिक दुर्गति।
स्थिर उज्ज्वल ज्योतिर्मण्डल के दर्शन।

श्रावण १२९५

ज्योति का लुप्त हो जाना।

भाद्र १२९५

पतित जनों पर अयाचित दया।
विचित्र स्वप्न मार्गदर्शन।
महापुरुष को पहचानने के उपाय।
धर्म का महास्त्रोत-फिर वही सत्ययुग।
गेंडारिया आश्रम में प्रवेश-गोस्वामीजी के हाथ से -प्रथम ‘हरि की लूट’।
गेंडारिया आश्रम-संचार उत्सव।
दर्शन आदि के सम्बन्ध में उपदेश-विचित्र रीति से चरणामृत मिलना।
प्रारब्ध के क्षय करने का उपाय बतलाना।
नगेन्द्र बाबू का असाम्प्रदायिक उपदेश।
सत्यनिष्ठा का उपदेश।

आश्विन १२९५

मन्त्रशक्ति का प्रमाण।
भोजन के सम्बन्ध में उपदेश –आनुषंगिक बातें।

अग्रहायन १२९५

पौष १२९५

माघ १२९५

फाल्गुन और चैत्र

वैशाख १२९६

अयोध्या पहुँचना। साधुओं का सत्संग।

आषाढ-श्रावण

कलकत्ता में गोस्वामीजी के दर्शन।

साधु-महात्माओं के दर्शन का विवरण।

नागा बाबा।

पतितदास बाबाजी।

गोपालदास बाबाजी।

तुलसीदास बाबा।

अन्धे बाबा।

योगजीवन और शान्तिसुधा के विवाह का उत्सव।

श्रीधर का पागलपन और ठाकुर का दण्ड देना।

धूलटोत्सव।

अग्रहायन १२९६

लाल के योगेश्वर्य पर गुरुभाईयों का मुग्ध होना।

भागलपुर पुनरागमन।

माघ-१२९६

बहुत दिनों बाद डायरी लिखने की प्रवृत्ति।

सत्संग की प्राप्ति। गंगामाहात्म्य और तर्पण में विश्वास।

तन्द्रा के आवेश में चक्रशक्ति का अनुभव।

अपूर्व सूर्यमण्डल के दर्शन।

साधन में असमर्थ होने से कुशलता करना।

त्राटक के साधक में दर्शन का क्रम।

तर्पण में छायारुप-दर्शन कुत्ते का कांड।

भागलपुर में साधु पार्वती बाबू। इष्टदेव को प्रसन्न रखना ही साधन और सदाचार का उद्देश्य है।

कर्म ही धर्म है।

फाल्गुन १२९६

पगले साधु का निष्काम कर्म।

निष्काम कर्म ही धर्म है।

ज्योति के दर्शन।

मेरी वर्तमान मानसिक दशा-कर्म को छोड़ देना ही धर्म है।
दर्शन के विषय में विचार।
अनादर करने से रूप का अन्तर्धान हो जाना।
लाल का प्रभाव और योगैश्वर्यं।
मुझको लाल का उपदेश।
स्वप्न-वाक्यसंयम्।

वैशाख १२९७

स्वप्न-संन्यास की अवस्था के संबंध में उपदेश।

ज्येष्ठ १२९७

पाप पुरुष का आक्रमण।
तुम कौन हो?

द्वितीय खण्ड

आषाढ़, संवत् १२९७

असह्य रोग यातना। जीवन से विरक्ति।
अप्रत्यक्ष रूप से गुरुदेव का आह्वान।
श्रीवृन्दावन-यात्रा।
प्रयाग धाम के प्रभाव का अनुभव।
ज्योतिर्मय श्रीवृन्दावन में उपस्थिति। गुरुदेव की दया।
दण्डाघात।
मेरे लिये उभय-संकट।
श्रीवृन्दावन-वास करने की विधि।
ब्रह्मचारीजी का दुःख और अन्तिम बात।
सद्गुरु की कृपा के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर।
गोपीनाथजी के मन्दिर में महोत्सव। ठाकुर का नृत्य।
श्रीवृन्दावन में माताठाकुरानी का आना। दाऊजी का मंदिर।
ठाकुर की कृपादृष्टि से उत्कट रोग की शान्ति। अनेक बातें।
गोस्वामीजी और माताठाकुरानी का झगड़ा।
माताठाकुरानी का अद्भुत रीति से अन्तर्धान होना।
योगजीवन को गृहस्थ आश्रम करने की आज्ञा।
बानर कृष्णदास।
भक्त बूढे बानर का कार्य।

ठाकुर के भोजन की अत्यन्त दुरवस्था।
दामोदर पर दाऊजी महाराज का शासन।

श्रावण १२९७

कुतु की बात। माताठाकुरानी का लौट आना।
मेरे कौमार्य की इच्छा का प्रकट करना।
ब्रह्मचर्य लेने के सम्बन्ध में चर्चा, ठाकुर की अनुमति।
ठाकुर के साथ महापुरुष के दर्शन।
ब्रह्मचर्य लेने के लिए दिन स्थिर होना।
केलीकदम्ब वृक्ष में राधाकृष्ण का नाम।
मनोहर वनशोभा, हिंसाशून्य वृन्दावन।
ब्राह्मण की विशेषता, सद्गुरु आश्रित जन की गति।
पितृ-ऋण आदि के सम्बन्ध में उपदेश।
बारोदी के मार्ग में श्रीधर के क्रियाकलाप।
ब्रह्मचर्य की दीक्षा।
विचारपूर्वक दान का उपदेश।
आसन का ग्रंथ।
दृष्टि साधन।
श्रीविग्रह के दर्शन का उपदेश।
स्वप्न। गंगा के भँवर में डूबना।
श्रीवृन्दावन की रज।
मथुरा के मार्ग में श्रीधर की करतूत।

भाद्रपद १२९७

स्वप्न। गृहस्थ नहीं होना पड़ेगा।
वृक्षरूपी वैष्णव महापुरुष।
श्रीवृन्दावन में भयंकर मच्छर।
साधन में अनेक प्रकार के अनुभव का क्रम।
लाल के सम्बन्ध में ठाकुर अनुशासन।
साधन के प्रभाव से देहतत्त्व का ज्ञान।
गैरिक क्या है?
नित्य नये तत्त्व का प्रकाश, परतत्त्व।
अभिनव तिलक। श्री अद्वैत प्रभु द्वारा संस्कार।

तृतीय खंड

दुर्दशाग्रस्त परशुराम के प्रति माधव की कृपा।
स्वप्न, प्रारब्ध एवं विशुद्ध सात्त्विक देह के विषय में प्रश्नोत्तर।
धार्मिक सर्वदा विनयी होता है।
आसन व होम के विषय में प्रश्नोत्तर।

ज्येष्ठ

महाप्रभु का धर्म एवं आधुनिक वैष्णव धर्म में स्त्रियों का संसर्ग।
सती के रक्षक स्वयं भगवान।
होम की उपयोगिता एवं प्रार्थना में पश्चात्ताप।
कर्म किस प्रकार समाप्त होते हैं?
जीवन्मुक्त के कर्म प्रारब्ध क्षय संबंधी उपदेश।

गुरु ही भगवान हैं।

साधक जीवन में शुष्कता की आवश्यकता।
असमय शास्त्रपाठ एवं साधुसंग से हानि।
गेण्डारिया आश्रम में नित्य संकीर्तन और भावावेश।
साधन क्या है? साधक एवं सिद्ध के कर्त्तव्य क्या है? धर्म की प्राप्ति हुई या नहीं कैसे समझे?
भाव की विभिन्नता में सामंजस्य का उपदेश।
दुर्गाचरण बाबू पर फकीर का अत्याचार। पूर्ण क्षमा के स्थान पर भगवान का दण्ड।
बैशाख व ज्येष्ठ माह में आश्रम की अवस्था।
ठाकुर के दैनिक क्रिया कलाप।

आषाढ़

परमहंस गौर शिरोमणिजी का दृष्टान्त, -दोष में भी गुणों के दर्शन।
साधक जीवन की दुर्दशा, असारता का बोध ही निर्भरता का हेतु है।
आन्तरिक प्रेम का परिणाम शुभ, दो दृष्टान्त।
प्रकृति में आसक्ति की छाप।
साधक अवस्था में इन्द्रिय चंचलता।
गुरुदक्षिणा, गुरु संग और गुरु की अधीनता संबंधी प्रश्न।
विधिमार्ग एवं चंचलता विषयक उपदेश।
आसन की मर्यादा।
जीवन मुक्त की बातें, मृत्यु एवं अपमृत्यु।
रुद्राक्ष धारण का आदेश, ब्रह्मचर्य के लिए उत्कण्ठा।

ब्रह्मचर्य का प्रथम वर्ष व्यतीत।

श्रावण

द्वितीय वर्ष ब्रह्मचर्य का उपदेश।

क्रोध से स्वप्नदोष।

ठाकुर का जीवन वृत्तान्त लिखने का उत्साह एवं बाधा।

ठाकुर के ब्रह्मचर्य और संन्यास की बातें।

श्रीईश्वरचन्द्र विद्यासागर के स्वर्गारोहण का दृश्य।

रुद्राक्षधारण, नीलकण्ठवेश।

साधन में दैहिक उपसर्ग।

स्वप्नदोष का हेतु एवं प्रतिकार के लिए उपदेश।

उर्ध्वरेता-होने की साधन प्रणाली।

भाद्र

श्रीधर का वर्षा में भावावेश और कलह।

समाधि मंदिर आरंभ, गेण्डारिया की बातें।

गुरुमर्यादा उल्लंघन से सिद्ध पुरुष का पुनरागमन।

स्वप्न में लाल के साथ प्रतियोगिता।

माँ काली के अपमान से उत्पात-पूजा से शांति।

गुरुभक्ति की पराकाष्ठा।

श्रीधर का उपहास एवं शिक्षा प्रदान।

श्रीधर की व्यवस्था और प्रकृति।

गुरु के प्रति अवज्ञा देखकर श्रीधर का माथा गरम।

श्रीधर का जठरानल में आहुति।

आश्विन

माताठाकुरानी का समाधि मंदिर।

मंदिर प्रतिष्ठा की प्रणाली।

माता ठाकुरानी की समाधि प्रतिष्ठा।

शक्तिपूजा एवं भगवान की नरलीला।

ब्रह्मज्ञान एवं अवतार तत्त्व।

भगवान की नरलीला।

संशय संबंधी उपदेश।

श्रद्धान्न व उच्छिष्ट से हानियाँ।

पौष

भोर कीर्तन शिष्यों के चरणों में लोटना।
पाप का मूल किससे जाता है? धर्म क्या है।
महाप्रभु का प्राचीन चित्रपट।
अद्भुत संकीर्तन-जा रहा हूँ।
ठाकुर के विषय में नगेन्द्र बाबू की बातें।
ठाकुर की ढाका यात्रा, गुरुभाईयों की अवस्था।
पद्मा की जलवायु, शाह साहब का परिहास।
श्री योगजीवन गोस्वामी की पत्नी बसंतकुमारी का देहत्याग।

माघ

योगजीवन की स्त्री का श्राद्ध, पारलौकिक अवस्था प्रश्नोत्तर।
आश्रम में अशांति।
ठाकुर के दैनिक कार्य।
ठाकुर के हँस देने पर झगड़ा शांत।
श्रीधर का वैराग्य, भीषण उत्पात, ठाकुर का उपदेश।
स्वप्न में फकीर दर्शन।
गुरुभ्राताओं पर अश्रद्धा, ठाकुर के उपदेश।
अभिमान में दुर्दशा, ठाकुर का अनुशासन।
प्रसाद का गुण एवं उस पर अविश्वास।

फाल्गुन

गेण्डारिया के सिद्ध फकीरों की आश्चर्यजनक बातें।
रमना के बूढे शिव की कृपा। ठाकुर के पूर्वजन्म की स्मृति की बातें।
आदेशपालन में असमर्थता, ठाकुर की सहानुभूति एवं उपदेश।
साधु के प्रति अनादर एवं उत्पीड़न से संकट।
स्वप्न-कर्म का उपदेश।
स्वप्न-प्रलय का दृश्य।
स्वप्न-ठाकुर के देह त्याग करने का उद्यम।
कृपणता में अनुशासन। कमरा किसके नाम वसीयत करोगे?
मेरी संकीर्णता, ठाकुर के उपदेश, भिक्षा की व्यवस्था।
प्रथम भिक्षा ठाकुर के हाथों, यह क्या चमत्कार है !

चैत्र

सेवाभक्ति से विग्रह जाग्रत होते हैं।

चतुर्थ खंड

माताजी पर विरक्ति। ठाकुर का उनके प्रसाद पाने के लिए आदेश।
सद्गुरु आश्रय ग्रहण ही संपूर्ण निरापद।
अहिंसा, सत्य, इन्द्रिय निग्रह ही साधन है।
चन्द्रग्रहण संकीर्तन-भाव में कपटता, ठाकुर का डाँटना।
नदी में तूफान-दैव से रक्षा।
घर में उपस्थिति-माँ का आशीर्वाद।
घृत ग्रहण कर ठाकुर की कृपा।
धर्म ग्रन्थ पाठ की प्रणाली।
तुम्हारा काम तुम करो, हिंसा अनिवार्य।
आग्रह पूर्वक अतिथि सेवा करने पर ठाकुर की कृपा वृष्टि।
महासंकीर्तन में प्रेमानन्दजी की शक्ति प्रार्थना-भाव का स्रोत-मेरी शुष्कता। जीवात्मा अनंत उन्नतिशील। पाप-पुण्य संस्कार मात्र। साधन से संस्कार मुक्ति।
अरे नहीं ! ठीक हो गया है।
संकीर्तन में भारतीजी की बाह्य चेतना प्राप्ति।
आकाशवृत्ति संरक्षण के लिए ठाकुर का आदेश। गुरुभाईयों की अभद्र आलोचना, ठाकुर का सबके साथ भोजन करना।
भोजन दर्शन से देवी-देवताओं का आनंद।
हमारा लक्ष्य।
साधन का मेरा प्रयास एवं असफलता।
जिह्वा की लालसा से असह्य यंत्रणा।
गुरुवाक्य पर विचार बुद्धि।
गायत्री माहात्म्य। ठाकुर का जीवन संकट-आसन ही निरापद।
ठाकुर के वैषम्य भाव की कल्पना से पण्डित महाशय का आश्रम त्याग।
साधन करो। गुरुपर निर्भरता अभी बहुत दूर है। ठाकुर के देहत्याग के बाद कैसे चलूँगा -नाना प्रश्न तथा उपदेश।
ब्रह्मचर्य सफल हुआ कब समझूँगा? तीर्थ की प्रयोजनीयता कब तक? ठाकुर के अंतर्धान के बाद कैसे चलने पर उनके दर्शन मिलेंगे?
मेरे पाप से ठाकुर की पीठ पर बेंत की मार।
शिष्य को अभयदान। तुम्हारे बदले मैं भोगूँगा।
आंधी-वर्षा में भी आसन पर स्थिर।
ठाकुर के भजनस्थान के आमवृक्ष से मधुक्षरण।

कुस्वप्न-उसका कारण।
ठाकुर के श्रीअंग से पद्मगंध और मधुक्षरण।
स्वप्न दोष के कारण-उपदेश।
आत्मदर्शन, छायादर्शन, ज्योतिदर्शन।
अवस्था लाभ या ठाकुर की सेवा भोगना एक ही बात।
स्वप्न में गुरु रूप में आदेश भी असत्य हो सकते हैं।
बर्रे का काटना। हिंसाजनित अपराध खंडन।
दो हिंसा की स्मृति। किसी के मन में कष्ट देना भी हिंसा है।
आड़ में रहकर ठाकुर की कृपा प्रत्यक्ष अनुभूति, दैनिक पापस्खलनार्थ पंचसूना का उपदेश।
ठाकुर की दिनचर्या। संकट टलना। कुतु द्वारा आरती संकीर्तन।
साधन की अवस्था-प्रत्यक्ष अनुभूति। स्वयं की उन्नति न देखना भी अकृतज्ञता।
ठाकुर की जटा उखाड़ने का प्रयास, न्यास माँगने पर नस देना, अद्भुत कांड-चतुर्विंशति तत्त्वों का न्यास करने का आदेश।
नमस्कार करने की विधि व निषेध।
स्वप्न-संसार शिशु को दूर फेंक देना होगा।
महापुरुषों का कल्पनातीत दारुण भोग।
तृतीय वर्ष चार वर्षों के लिए ब्रह्मचर्य दान, छः वर्षों में ही पूर्ण होगा।
माता ठाकुरानी का झूलन, चण्डी पाठ से पूजा।
आम के वृक्ष की शिकायत-शरीर में कीला ठोक दिया है।
भोजनारंभ के पूर्व ठाकुर का श्रीहस्त-मुझे एक ग्रास दो।
अपनी आयु का स्पष्ट दर्शन।
ठाकुर की जटा देखना-प्राणधारण के लिए जीव हिंसा अनिवार्य।
हुक्का तोड़ना-तम्बाखू त्याग। ठाकुर का तम्बाखू सेवन।
पूर्व जन्म में निष्फल ब्रह्मचर्य-ठाकुर का सारभूत् उपदेश-साधन भजन जागरूक रहने के लिए है। कृपा ही सार है।
न्यास की उपकारिता, अनुभूति परमानंद।
मनसा पूजा। इष्ट मंत्र से ही तैतीस करोड़ देवी-देवताओं की पूजा होती है।
ठाकुर की दम्भोक्ति-जनेऊ नहीं है? सूक्ष्म देह में महापुरुष का कार्य।
ठाकुर के मुख से छोटे दादा की बात, पिता का चरित्र, तांत्रिक साधना बड़ी ही कठिन है।

हठकारिता से रोगवृद्धि - दुग्धपान की व्यवस्था।
जूठी बटलोही किसने माँजी?
संकल्पमात्र से वस्तु लाभ-अविश्वासी मन।
विग्रह बिहारीलालजी को प्रसाद के लिए कहना।
हाँ! तुम्हारी लीला भी नित्य है। तपस्या का उपदेश। श्याम-भाषा।
विवाह का प्रलोभन। सावधान, प्रार्थना करने पर ही वह स्वीकृत हो जायेगा।
दादा के पास जाने की अचानक अस्थिरता-ठाकुर का आदेश।
गुरु का यह देह अनित्य है। छाया से ही काया पायी जा सकती है।
ठाकुर के सभी आदेश कल्याणकारी। कुरेदकर प्रश्न करने पर विपत्ति।
भीषण पद्मानदी। मार्ग में ठाकुर कृपा।
अति अद्भुत् अनुभूति। नाम का आकर्षण।
विरह में भी अविच्छिन्न संग।
पुरुषाकार पर भरोसा। कृपा के दान की अवज्ञा करने का परिणाम।
श्रद्धा का भिक्षान्न अमृत। खिचड़ी में नारियल के टुकड़े।
प्रेत का आर्तनाद। फकीर का वाहन। अद्भुत वृक्ष। साहब के द्वारा प्रतिष्ठित कालीमूर्ति।
कुसमय में यात्रा से दुर्भाग। पग-पग पर ठाकुर की दया, परवर्ती आदेश ही बलवान।
दादा के पाँच पैसे घूस लेने का स्वप्न सत्य, प्रायश्चित।
महात्मा गोविन्ददास के विस्मयकारी कार्य, दूसरे का उत्कट भोग ग्रहण करना।
अप्राकृतिक आरती की सुगंध।
भिक्षा करने की दादा की अनुमति।
सद्ब्राह्मण के हाथों प्रथम भिक्षा।
भिक्षा में ताड़ना व आदर।
पर्यटन काल में साधन में तन्मयता।
ऊपरी शक्ति का अनुभव-प्रेत का उपद्रव।
बस्ती त्याग, अयोध्या में हा राम! उदासीन भाव।
काशी में पण्डे का उपद्रव। ठाकुर का शासन पूर्ण वाक्य स्मरण होना। ताराकान्त दादा का घर।
पूर्णानंद स्वामी। केदारेश्वर दर्शन। साधु का आदेश चले जाइये भागलपुर।
दानापुर में मेरी गिरफ्तारी का आयोजन।
पुनः वही प्रेत का आर्तनाद। प्रत्यक्ष कर भी विश्वास उत्पन्न नहीं होता।
यथार्थ दयापूर्ण सेवा। पाठ बन्द कर ठाकुर का पंखा झलना।

नाम का अर्थ रूप। नाम में अति उज्जवल कृष्ण ज्योति।
जह्नुमुनि का आश्रम। फकीर दर्शन।
मनोरमा की अद्भुत गुरुनिष्ठा।
आभिचारिक क्रिया के संकट उद्धार के लिए शांति हवन का संकल्प।
सर्व विपदा की शांति हवन। अपराधी का। हृदय काँपना।
हवन का अचूक फल-अपराधी की अद्भुत् मृत्यु।
ठाकुर के पास उपस्थिति।
आत्मरक्षा का प्रयास-इस मृत्यु में तुम्हारा अपराध क्या? इंगित से स्पष्ट बात समझाना।
ठाकुर के सिर पर सर्प का फन। विषधर का अमृतदान। सर्प को दादी माँ की फटकार।
कोई गुरुनिष्ठा नष्ट करे तो प्रतिविधान करना कर्तव्य है।
श्रीधर की गुरुनिष्ठा। उसका अमानुषिक काण्ड, ब्रह्मचारी को ताड़ना-कुत्ते का वमन भक्षण।
ब्रह्मदैत्य का माला चुराना। आंगन में माला मिलना बड़ा ही आश्चर्य।
स्वप्न-ठाकुर की गोद में नीला कौआ। शक्ति संचार की अवस्था। पाद स्पर्श से देह अमृतमय।
दादी माँ की सेवा।
नानी माँ व दादी माँ में अपूर्व झगड़ा, पुन: प्यार भी।
नीलकंठ वेश की मर्यादा।
विविध चक्रदर्शन, उनमें त्रिभंगाकृति ज्योतिर्मय शालग्राम पूजा का आदेश।
तापने के लिए धूनी नहीं होती। धूनी निर्वाण। धूनी साधन बड़ा ही उत्कृष्ट-चिमटा, कमण्डल, त्रिशूल धारण का अधिकार।
स्वप्न-ठाकुर की कटी हुई जटा लेकर रुदन।
ग्वालिन का मठा देना। आकांक्षा पूर्ण होने लगे तो ही सर्वनाश है।
मानस पूजा-ठाकुर की सहानुभूति। ठाकुर का खेल, उपदेश, अर्थ में अनर्थ: यीशु तथा कृष्ण एक ही हैं।
सेवाभिमान से नरक भोग।
ठाकुर सदाशिव-सर्वांग में भस्म। धूनी की विभूति का अद्भुत् गुण-सूक्ष्मरूप दर्शन के उपाय।
गुरुसेवा की बाधा। गुरुभाईयों से झगड़ा।
शालग्राम के लिए चिन्ता।
ठाकुर की पूजा। पाना चाहते हो-या देना चाहते हो।

भोग के पहले प्रसाद। मँझले दादा के संबंध में ठाकुर की बातें।
अयाचित दान-कचौड़ी अदरक चने।
स्वप्न में शालग्राम और गोपाल पूजा।
मनोमुखी होकर चलने का फल। गुरुसंग का प्रभाव।
वीर्यधारण का उपाय तथा उपकारिता। उर्ध्वरेता होने का उपाय तथा फल। नास्ति प्राणायामात बलम्।
धर्म के आकार में मनोमुखी कुबुद्धि तथा उसका परिणाम।
धर्मबुद्धि से अधर्म में क्यों पड़ता हूँ? अब क्या उपाय है?
नाबालिग गुरुभ्राता नरेन्द्र के प्रश्नों का ठाकुर द्वारा प्रत्युत्तर।
माता का निर्वसन होकर नृत्य। गोसाईंजी का आनंद।
श्रद्धा व गुरुकरण के विषय में प्रश्न। धर्म की बाधा।
शराबी के आनंद में ठाकुर का आनंद।
भक्ति कैसे होती है ? ज्ञान द्वारा क्या भगवान को प्राप्त कर सकते हैं?
माताजी के पोथी का श्रोता मैं।
धर्म की आड़ में विपरीत बुद्धि। स्वप्न दुर्दशा।
स्वप्न में आदेश।
व्रत सम्पूर्ण। माँ के प्रति ठाकुर की कृपा।
रामायण श्रवण में विविध संचारी भाव।
बहुओं का गेण्डारिया जाना तथा दीक्षा। ठाकुर के उपदेश।
शालग्राम तथा धातु निर्मित मूर्ति। महापुरूषों का विचरण काल, उनकी कृपा प्राप्ति का उपाय।
दीक्षा ग्रहण के पूर्व कर्तव्य।
ठाकुर का आदेश समझ पाना कठिन। इस विषय में नाना प्रश्नोत्तर।
नृत्यगोपाल गोस्वामी द्वारा ठाकुर की परीक्षा।
ठाकुर का पत्र-दूर रहना ही सार है।
भावुकता में ठाकुर की डाँट।
भगवान में चित्तसमर्पण, अचला भक्ति कैसे होती है।
धर्मलाभ का सहज उपा-नित्य कृत्य की व्यवस्था।
कुअभ्यास से विषफल।
ठाकुर के आदेश अनुरूप कार्य क्यों नहीं होता? वे ही गढ़ते वे ही तोड़ते हैं।
गुरु में एक निष्ठा दुर्लभ।

तीन वर्ष में ब्रह्मचर्य के विशेष-विशेष नियमावली।
गुरु शिष्य देवासुर संग्राम। मंत्रमूलम्। गुरोर्वाक्यम्।
ध्यान मूलं गुरोर्मूर्ति-श्री गुरु के ध्यान को कल्पना नहीं कहा जाता।
दृष्टिसाधन, पंचभूत ज्योति सारुप्य, नामसाधन।
ऐसा दिन नहीं रहेगा।
श्रीधर के साथ झगड़ा, भागवत् पर स्याही का दाग। पर्वत पर जाने का आदेश।
स्वामी हरीमोहन पर कटाक्ष करने से ठाकुर का असंतोष तथा डाँटना।
स्याही के दाग में चण्डी पर्वत दीखना। विस्मयकर चित्र ईश्वरीय विधान।
पर्वत पर जाने की माता की अनुमति तथा आशीर्वाद।
मदनोत्सव में महाविष्णुजी का संकीर्तन ठाकुर का आनंद। दीक्षा।
महाविष्णुबाबू से कलह। संध्या करने का ठाकुर का आदेश।
अभय कवच लाभ। ठाकुर का आशीर्वाद, भय नहीं है।
ग्वालंद में सिपाही का पीछा करना। कुली डिपो में बन्द रहना। ठाकुर की अद्भुत् व्यवस्था।
तारकनाथ दर्शन। विपत्ति। आश्चर्यजनक रूप से गया पहुँचना।
गया में रहने की सुव्यवस्था।
गया आकाशगंगा पर्वत। रघुवरदास बाबा। शेष चक्र संग्रह।
निःसंबल मनोरंजन बाबू। फल्गु में स्नान।
सूक्ष्मतत्त्व अतीन्द्रिय।
बुद्ध गया दर्शन।
साधु के कोप से भूत का उपद्रव।
ब्रजमोहन की अलौकिक दीक्षा।
बस्ती यात्रा। दादा का अपूर्व दीनभाव।
बस्ती में स्वास्थ्य लाभ।
शालग्राम पूजा व त्रिसंध्या आरंभ।
प्राचीन के प्रति आदर।
श्वास–प्रश्वास में साधन तत्त्व।

पंचम खण्ड

सूचीपत्र बस्ती त्याग,नीरव अयोध्या में रामनाम।
हनुमानगढ़ी दर्शन में ठाकुर की स्मृति।
वैदान्तिक पर शोक-संचार।

विचार बुद्धि से निर्जला एकादशी भंग एवं पश्चात्ताप।
उबलती दाल गिरने से जलन, प्रार्थना से निवृत्ति।
लोभ का फल,असत्य परिग्रह से अशांति।
मंत्र शक्ति।
भीषण शुष्कता में ठाकुर की कृपावृष्टि, शालग्राम में नीली ज्योति।
छायारूप दर्शन से खेद, आतंक एवं प्रार्थना, दर्शन मत दो।
लोकसेवा से साधना में स्फूर्ति।
वर्षा के आरंभ में विषमय गंगा: स्नान से विपत्ति।
विक्षिप्त, उद्वेगपूर्ण मन, दूसरों की कल्याण कामना से चित्तस्थिर, गायत्री जप से अष्टदलपद्म स्थित केन्द्र में नीली ज्योति के दर्शन।
ज्योतिदर्शन के प्रयत्न में विफलता, वर्षा के आरंभ में तीन माह के लिए आहार संग्रह।
मणिपुर चक्र में ध्यान का फल, क्रोध से नाम, ध्यान लुप्त।
वे ही कर्ता हैं, सब कुछ उनकी ही इच्छा से जुट रहा है।
स्त्री जाति का संग-निसंग दोनों में समान बोध ही निरापद है।
नाम की उत्पत्ति का स्थल-नाभिचक्र।
त्रिसंध्या किस प्रकार करूँ?
चित्त की एकाग्रता से श्वास-प्रश्वास की गति का अनुभव।
नाम व नामी एक।
शालग्राम के श्रीअंग में अद्भुत स्वेद बिंदु।
स्वामी शिवानंद एवं सुलक्षण युक्त शालग्राम।
अद्भुत स्वप्न, ठाकुर का चरणामृतपान।
रूद्राक्ष में शालग्राम के दर्शन।
सुलक्षण युक्त शालग्राम की प्राप्ति।
दूसरों की प्रशंसा सुनने पर अभिमान को ठेस।
वास्तुसर्प देखकर आतंक।
मुझे उर्ध्वरेता करने के लिए सिद्धपुरुष का आग्रह।
ठाकुर की जटा: चण्डी का रूप, सर्वदेवमय गुरु।
तृतीय वर्ष ब्रह्मचर्य की समाप्ति: कंठ शालग्राम।
कंठ शालग्राम का अभिषेक एवं पूजा।
ठाकुर के पास जाने के लिए पत्र, मेरा विचार।
ठाकुर के नाम व ध्यान में नित्य-नूतन अवस्था।

महामाया का शासन, पुनः ठाकुर के आदेश का पत्र, विचित्र समस्या, आसन उठा लेने पर मन उचाट।

ऋषिकेश यात्रा, ब्रह्मकुंड में स्नान, भीमगढ़ व सप्तस्रोत दर्शन, तपस्वी साधु।

बिल्वकेश्वर पर्वत पर बिल्वकेश्वर महादेव।

हरिद्वार त्याग: गंगा के निकट आशीर्वाद प्रार्थना, ज्वालापुर की यात्रा।

भजन के प्रतिकूल सहारनपुर, ज्वाला यंत्रणा का कारण निर्णय।

स्वप्न में ठाकुर का अप्राकृतिक प्रसाद।

बस्ती यात्रा।

कलकत्ते में अभय बाबू के घर ठाकुर का संवाद।

ठाकुर का दर्शन, साथ रहने की अनुमति।

परलोक के संबंध में बातें: गीता व भागवत् का धर्म।

भक्ति प्रीति नहीं है, भक्ति गोपनीया है।

ताड़ना से नहीं प्रेम से संशोधन। अतिथि के अवैध मांग पूर्ण करना उचित है या नहीं।

कलकत्ते में भिक्षा की असुविधा, ठाकुर के भंडार से ही भिक्षा लेने का आदेश।

योगजीवन द्वारा दादी माँ का श्राद्ध: ठाकुर के द्वारा तीन अंजलि जलदान।

श्राद्ध में मुकुंद का कीर्तन: कीर्तन से शक्ति संचार।

दादी माँ की मृत्यु से कई तत्त्व प्रकट: जीवात्मा को भूख, तृष्णा का भोग, श्राद्ध में ब्राह्मण भोजन की व्यवस्था क्यों?

परमहंसदेव के उत्सव में निमंत्रण।

सत्यदासी की अलौकिक अवस्था एवं दीक्षा।

मोहिनी बाबू की दीक्षा की अनुभूति।

ज्ञान बाबू की दीक्षा।

सदाशिव के रूप में ठाकुर का दर्शन, अनंत भंडार।

श्रीमद्रामकृष्ण परमहंसदेव की बातें।

एँडेदह व सप्तग्राम में अस्वाभाविक रूप से मंदिर का द्वार उद्घाटन।

ठाकुर को रामकृष्ण देव के शिष्य कहकर प्रचारित करने पर, एक शिष्य को ठाकुर की डाँट।

मेरे शालग्राम के बारे में ठाकुर की बातें: शालग्राम की पूजा।

निर्जला एकादशी का नियम व फल।

मुक्ति ,परलोक, श्राद्ध, तर्पण एवं रुग्णावस्था में अलौकिक दर्शनादि के विषय में प्रश्नोत्तर।

गुरुब्रह्म का अर्थ क्या है: हमारे गुरु कौन हैं?
नाम साधन से क्या अवस्था आती है? अद्वैतवाद क्या है?
पंचकोष भेद के लक्षण।
अतिनिद्रा में ठाकुर का अनुशासन।
दिवानिद्रा से अहित: योगतंद्रा के लक्षण।
तपस्या एवं पुरुषार्थ।
चंदन घिसना व उपासना।
यथार्थ दान एवं दान का पात्र।
अविश्वास व ध्यान में जलन।
योग क्या है? योग के अवश्य पालनीय उपदेश।
नाम करके फल क्यों नहीं मिलता: शुष्कता। में कर्तव्य।
गुणातीत होने पर भी ताप रहता है।
अब कुलगुरु प्रदत्त साधन करें या नहीं।
प्रार्थना में ठाकुर की सहानुभूति।
ब्राह्म समाज त्याग का कारण: महाप्रभु का धर्म आधुनिक या पुरातन।
गेरुआ ग्रहण करने पर किसी गुरुभग्नि को निषेध एवं उपदेश।
वीर्यधारण के बिना योगसाधन नहीं होता: उर्ध्वरेताओं की भिन्न भिन्न अवस्था।
ठाकुर के गेण्डरिया आश्रम त्याग का पूर्वाभास: रहस्य पूर्ण आसन त्याग: महाशंख माला।
तांत्रिक साधना की उपादेयता।
शास्त्र समझना कठिन है।
भजनानन्द संभोग से अभिमान का विकट आक्रमण: अविश्वास की आग में सब भस्मीभूत ठाकुर के अयाचित प्रसाद से शांति।
प्रेत का आक्रोश, शुभ कार्य में विध्न: पिण्डदान की व्यवस्था।
नरक है या नहीं? परलोक में पितृपुरुषों का कार्य: वासना रूप जन्म।
स्त्री पुरुषों के मिलने-जुलने पर अनुशासन।
पाप, एवं परित्राण के उपाय।
भोग से भोग क्षय: दैहिक, आत्मिक संबंध: स्त्री जाति के प्रति सम्मान।
कल्पनातीत सहानुभूति-यह क्या कोई मनुष्य कर सकता है?
ठाकुर की प्रार्थना तुम ही सब हो।
साधन का क्रम एवं उसकी उपादेयता।

का उत्तर।
बिना अग्नि के अन्नपूर्णा द्वारा पकाया अन्न।
महापुरुष साजाल के दर्शन: ठाकुर की कृपा से स्वादिष्ट खिचड़ी।
ठाकुर की कृपा से कुसुम का आहार त्याग, कुसुम के हाथों भोजन से अद्भुत् अवस्था।
गुरुभ्राता ब्रजमोहन।
ठाकुर का योगैश्वर्य।
वानरीपाड़ा में अवस्थान।
प्रयाग पहुँच कर विपत्ति में गोसाईंजी की पुकार।
कुंभ मेले का स्थान दर्शन।
बेनीमाधव तथा अन्य विग्रह दर्शन: ठाकुर का दान।
ठाकुर का विभिन्न देवालय दर्शन।
नंगाबाबा: गुरुभ्राताओं के कारनामें।
आश्रम में कार्य विभाजन: ठाकुर की भिक्षा एवं दान। ठाकुर की आकाशवृत्ति।
कुभंमेले की यात्रा। राह में माधोदास बाबाजी का आश्रम दर्शन। परमहंसजी का आविर्भाव, ठाकुर की अभ्यर्थना। संकीर्तन में महाभाव का तूफान।
कुभंमेले की अपूर्व श्रृंखला।
व्रज विदेही काठिया बाबा के दर्शन। महाप्रभु व नित्यानंद प्रभु की मूर्ति प्रतिष्ठा।
त्रिवेणी संगम में मकर स्नान, साधुओं की शोभायात्रा। अपूर्व दृश्य।
प्रयाग में कुंभ मेले की उत्पत्ति।
छोटे काठिया बाबा के दर्शन।
काशी के तैलंग स्वामी। विद्याभिमानी संन्यासी को फटकारना।
नानकशाही अड्डों पर साधु दर्शन।
संन्यासियों के अड्डों पर साधु दर्शन। देवदासियों के नृत्य का तात्पर्य।
साधुओं के सदाव्रत की अपूर्व श्रृंखला।
ठाकुर को कुंभ मेले से हटाने का षड़यंत्र। समवेत् सभा में महात्माओं, महापुरूषों का ठाकुर के विषय में विचार प्रकट।
दयालदासजी की छावनी में निमंत्रण। संकीर्तन में भावावेश।
स्वामी दयाल दास की असाधारण दया।
ये ही तुम्हारे विलासी साधु हैं। गुरु-शिष्य की अवस्था। असामान्य शक्ति शाली शाह साहब।
साधु भीखनदास: भगवान के दान प्रवाह का स्पर्श कर कृतार्थ होना। महापुरुष गंभीर

॥ श्रीश्रीगुरुदेवाय नमः॥

श्रीश्रीसद्गुरुसंग

(प्रथम खण्ड)

विषय-प्रवेश

सनातन युग में श्रीमन्नारायण ने जिस परम दुर्लभ योगधर्म का प्रवर्तन किया था, देवर्षि, ब्रह्मर्षियों के चिर आदरणीय इसी योगधर्म की दीक्षा, मानस सरोवर निवासी परमहंस ब्रह्मानन्दजी से गोस्वामीजी ने प्राप्त की। दीक्षा प्राप्ति के बाद गोस्वामीजी निर्जन जंगल, पहाड़ों में रहकर कुछ समय तक कठोर साधन-भजन करते रहे। कोलाहलपूर्ण जनाकीर्ण स्थलों में आने का उनका विचार ही न था। किन्तु उनके गुरुदेव ने एक दिन अकस्मात् प्रकट होकर, कुछ विशेष कार्यों के सम्पादन के लिए उन्हें अपनी जन्मभूमि को लौट जाने की आज्ञा दी। इस पर गोस्वामीजी ने कहा-**तो क्या अब भी प्रचार आदि करने का भार मुझे ही सौंपकर, आप दुनिया में फँसाये रखना चाहते हैं? यदि आप स्वयं इन कामों को करते तो अधिक अच्छा होता।** परमहंसजी ने कहा-यह हमारा काम नहीं है; यह तो तुम्हारे ही हाथों होगा। एक तो तुम आचार्य वंश की सन्तान हो, दूसरे तुम स्वयं आचार्य हो, लोग तुम्हारे उपदेश को जिस प्रकार श्रद्धा के साथ मानेंगे, उस प्रकार हमारी बातों पर विश्वास नहीं करेंगे। जगत् को, देश को, शिक्षा देने का अधिकार तुम्हीं को है-हमें नहीं। तुम पहले जिस प्रकार घर-गृहस्थी में रहते थे, उसी प्रकार रहने लगो। घर-गृहस्थी में रहने पर भी तुम्हारे साधन-भजन में किसी प्रकार की बाधा नहीं आएगी।

गुरु की आज्ञा मानकर गोस्वामीजी कलकत्ते लौट आये। उन्हें एकान्त में प्राणायाम करके योग-साधन करते, बिना सोचे-समझे गुरु की आज्ञा का पालन करते, निर्जन स्थान में विशेष व्यक्ति को शक्तिसंचार पूर्वक दीक्षा देते और विभिन्न संप्रदायों के धर्मार्थियों को सहज भाव से श्रद्धापूर्वक अपने-अपने धर्म का पालन करने के लिए उत्साहित करते देखकर, ब्राह्मसमाजियों में अच्छी खासी हलचल मच गई और इसी बात की चर्चा होने लगी। यदि उस समय के प्रचलित ब्राह्मसमाज के सांप्रदायिक मतों का प्रचार न करके, उसके बदले सार्वभौम, सत्य सिद्धांतों का प्रचार किया जाय तो इसमें ब्राह्मसमाजवाले आपत्ति करेंगे; उन्हें दुःख होगा। यह जानकर गोस्वामीजी ने गत १० चैत्र १२९२ बंगला सन् को कलकत्ता साधारण-ब्राह्म-समाज के प्रचारक-पद से इस्तीफा दे दिया। किन्तु तुरन्त ही ढाका 'पूर्व बंग बाह्मसमाज' के सदस्यों ने उन्हें आचार्य-पद के लिए चुन लिया और बहुत जल्द ढाका पहुँचने के लिए उनसे आग्रह एवं अनुरोध किया। कुछ समय से गोस्वामीजी ढाका आ गये हैं और ब्राह्मसमाज के प्रचारक के निवास में रहकर नियमित रूप से उपासना आदि करने लगे हैं।

आजकल गोस्वामीजी के आ जाने से ब्राह्मसमाज में नित्य एक न एक उत्सव सा लगा रहता है। प्रतिदिन तीसरे पहर, प्रचारक के ठहरने के स्थान में अच्छी भीड़ रहती है। अनेक श्रेणियों के बाउल वैष्णव और तांत्रिक साधकों में हिल-मिलकर गोस्वामीजी जो बातचीत करते हैं, वह कुछ समझ में नहीं आता; और जो आता भी है, तो अच्छा नहीं लगता। गोस्वामीजी जैसे नीतिज्ञ, सत्यनिष्ठ, आदर्श साधु को राधाकृष्ण-विषयक, स्त्री-पुरुष के प्रणय गीत

सुनकर आँसू बहाते और रोते-रोते अधीर होकर मूर्च्छित होते देख, मैं तो बिल्कुल दंग रह जाता हूँ। कुछ दिन पहले अपने घर के आसपास, घाट-बाट मैदान में किसान जैसे नीचे दरजे के आदमियों से इस ढँग के गीत सुनकर, मैं उन लोगों को लाठी दिखाकर खदेड़ चुका हूँ। हाय ! हाय ! नीति के आदर्श-स्थान ब्राह्मसमाज के आचार्य गोस्वामीजी का यह कैसा भाव है। देख-सुनकर मन ही मन बहुत क्लेश पा रहा हूँ।

ढाका ब्राह्मसमाज में गोस्वामीजी।

आजकल पूर्वी बंगाल में सर्वत्र गोस्वामीजी की ही चर्चा है। क्या हिन्दू समाज, क्या ब्राह्मसमाज और क्या देशी ईसाई, सब के यहाँ गोस्वामीजी के ही गुणों का ही कीर्तन हुआ करता है। सभ्य घरानों में, दफ्तरों के बाबुओं में और स्कूल, कॉलेजों के छात्रों में, अब सिर्फ गोस्वामीजी के असाधारण समत्व भाव, अद्भुत भावावेश और अपूर्व सम्प्रदायहीन धर्मानुशीलन की ही चर्चा होती है। हिन्दू समाज के मुखिया प्रसिद्ध ब्राह्मण लोग, अपने धर्म-कर्म में लगे हुए आचार-विचार को श्रेष्ठ मानने वाले संस्कृत पाठशालाओं के पण्डित लोग, कुछ दिन पहले 'ब्राह्म' शब्द सुनने मात्र से ही अवज्ञा के साथ 'राधाकृष्ण माधव' और 'राम राम' कहने लगते थे, अब देखता हूँ कि उनमें भी कई अपनी जेब का पैसा खर्च करके विक्रमपुर और पारज्वार जैसे दूर-दूर के स्थानों से प्रत्येक रविवार को गोस्वामीजी की उपासना में सम्मिलित होने के लिए ब्राह्म मन्दिर आते हैं। उपासना के समाज में मुसलमान और ईसाई भी चुपचाप बैठे दीख पड़ते हैं। ब्राह्मसमाजियों की प्रसन्नता का भला क्या कहना है? वे कहते हैं कि जो लोग ब्राह्मसमाज में कुछ तथ्य नहीं मानते, वे एक

बार गोस्वामीजी को क्यों नहीं देखते ? ऐसा एक व्यक्ति तो हिन्दू समाज या किसी अन्य समाज में दिखा दें। लोग एक बार आकर देख लें और समझ लें कि ब्राह्मधर्म क्या चीज है और ब्रह्मसमाज में कैसे व्यक्ति बन जाते हैं। हिन्दू कहते हैं-'गोस्वामीजी अब ब्राह्म नहीं रहे। यथार्थ वस्तु मिल जाने पर जानबूझकर उन्होंने ब्राह्म धर्म को छोड़ दिया है; सिर मुँडाकर और गेरुवे कपड़े पहनकर वे हिन्दू हो गये हैं। वे अब साकार उपासना करते हैं; राधा-कृष्ण और काली भगवती का नाम सुनते ही रोने लगते हैं। हरिसंकीर्तन और गौर कीर्तन में तो गोस्वामीजी को सुध-बुध ही नहीं रहती। भला यह ब्राह्म का लक्षण हो सकता है ? ब्राह्म लोग क्या हरि-हरि कहकर नाचते हैं ? या उन लोगों में कभी ऐसे महाभाव का आविर्भाव होता है ? जो हो, मैं देखता हूँ कि सभी सम्प्रदायों के धर्मार्थी लोग गोस्वामीजी की ओर आकृष्ट हो रहे हैं और उनका सत्संग चाहते हैं। ब्राह्मसमाज में प्रतिदिन खूब भीड़ रहती है। रविवार को तो समाज मंदिर में स्थान ही नहीं मिलता। दिन डूबने से पहले ही लोग टोलियों में आकर बैठ जाते हैं, जिससे जगह नहीं बचती। भीतर-बाहर हर तरफ लोग बैठे दिखाई पड़ते हैं।' वेदी का कार्य जब तक पूरा नहीं हो जाता, तब तक कोई उठने का नाम नहीं लेता। असाम्प्रदायिक तरीके से गोस्वामीजी जो उद्बोधन, प्रार्थना, उपासना और उपदेश आदि देते हैं, उससे सभी मोहित हो जाते हैं। वेदी पर बैठकर गोस्वामीजी के कार्य आरम्भ करते ही सभी के हृदय में एक अद्भुत भाव की तरंग उमड़ने लगती है, सभी लोग रोने लगते हैं। थोड़ी ही देर में ऐसी दशा हो जाती है, बहुतेरे तो अचेत होकर गिर पड़ते हैं। कोई भूमि पर लोटकर व्याकुल होकर रोया

करते हैं। धन्य है ब्राह्मसमाज।

गोस्वामीजी के ब्राह्मसमाज-विरोधी कार्यों का प्रतिवाद।

ब्राह्मसमाज के अन्तर्गत छात्र समाज के कुछ हमउम्र छात्रों को साथ लेकर मैं ब्राह्मसमाज के अधिकारी श्रीरजनीकांत घोष, श्रीनवकांत चट्टोपाध्याय आदि के पास गया और उनके आगे गोस्वामीजी की चर्चा छेड़ी। मैंने पूछा कि जिस कमरे में गोस्वामीजी का आसन है, उसकी दीवारों में चारों ओर राधाकृष्ण, गौर-निताई, महादेव-पार्वती और नन्द यशोदा के चित्र क्यों लगे हुए हैं? वे बाउल, वैष्णव आदि कुसंस्कारी व्यक्तियों को, धर्म के नाम पर शरीर के विकृत भावों को उद्दीप्त करने वाले प्रेम-संगीत आदि गाने के लिए क्यों उत्साहित करते हैं? इस पर कई दिन तक अच्छी खासी चर्चा होती रही। अन्त में उन लोगों ने कहा-'प्रचारक निवास में आजकल गोस्वामीजी ही रहते हैं। अतएव हमें देखने की जरूरत नहीं। अपने घर में कौन क्या करता है और क्या नहीं करता, हमें देखने की जरूरत नहीं। अगर घर में एक पंचांग हो तो उसमें भी राधाकृष्ण, काली माई आदि के चित्र रहते हैं। भला इसमें दोष ही क्या है ? बाउल और वैष्णव आदि भीख माँगने आकर न जाने क्या-क्या गा जाते हैं, तो क्या इससे किसी को उनका मुँह बंद रखने का अधिकार है? इन कामों को भी उसी ढंग से लो। अब तक गोस्वामीजी जिस धारा से चल रहे हैं, उसे ब्राह्मसमाज सहन कर सकता है। हाँ, अगर और बात बढ़ेगी तो देखा जाएगा।'

अधिकारियों का किया हुआ यह निर्णय सुनकर मन में बड़ा दुःख हुआ। उन्हीं में से किसी पर कटाक्ष करके मैंने कहा-'अश्लील, टप्पा, पाँचाली और कवि-गान आदि का संग्रह करके प्रेम-संगीत

नाम रखकर देश-परदेश में घर-घर उसका प्रचार करना जिन ब्राह्मसमाजियों की समझ में दोष नहीं है, और जो लोग असत्यमूलक कुछ कल्पना या मिथ्या घटनाओं के थोथे चित्रण को कहानी और उपन्यास के आकार में, प्रचार करके मनुष्य को असत्य से हटाकर, सत्य के आलोक में ले जाना चाहते हैं, वे यदि गोस्वामीजी के कार्य का प्रतिवाद करें तो कहाँ टिक पाएँगे ? मेरी बात सुनकर कुछ लोग उत्तेजित हो उठे। मेरे नजदीकी रिश्तेदार और मेरे ही गाँव के रहनेवाले श्रीनवकांत चट्टोपाध्याय ने कहा-तुम जातिभेद को दोषनीय तो मानते हो, लेकिन उसी के चिह्न स्वरूप जनेऊ क्यों पहनते हो ? हिन्दू समाज से संबंध बनाये रखकर, क्या तुम मूर्त्तिपूजा को सहारा नहीं देते ?'

ब्राह्मधर्म की दीक्षा लेने के लिए व्याकुलता।

उन्होंने ठीक ही बात कही है, ऐसा समझकर मैं झेंपता हुआ, दुखी मन से अपने निवास स्थान लौट आया। मैं सदा मन में उसी बात की चर्चा करने लगा। अपने मन की दुर्बलता और कपटतापूर्ण आचरण के लिए मैं कुछ समय तक, बहुत ही दुखी रहता था। अब नवकान्त बाबू की उस बात से मेरे भीतर की आग और भी भड़क उठी। मैंने अपने मित्रों से कह दिया कि अगले अगहन महीने में वार्षिक उत्सव के समय पर, मैं जनेऊ उतार डालूँगा और स्पष्ट रूप से ब्राह्मधर्म की दीक्षा ले लूँगा। यह खबर चारों ओर फैल गई। ब्राह्मसमाजी मित्र लोग मुझे खूब उत्साहित करने लगे; किन्तु चारों ओर रिश्तेदारों और हितैषियों में बेहद हलचल मच गई। मेरे विरुद्ध जितना ही आन्दोलन होने लगा, मेरे नाते-रिश्तेवाले मुझे अत्याचार और उत्पीड़न का जितना ही डर दिखाने लगे, मेरा उत्साह और

निर्भयता उतनी ही बढ़ने लगी। मैं गत ४-५ महीने से उपासना के समय नित्य दोनों समय हृदय की ज्वाला के मारे रो-रोकर प्रार्थना करता आया हूँ-'प्रभो! जनेऊ पहनकर इस असत्य के पर्दे में कब तक अपने को छिपाये रखें ? कपटतापूर्ण आचरण से तुम मेरा उद्धार करो। तुम्हीं वह यथार्थ मार्ग दिखला दो, जिससे मैं तुम्हें प्राप्त कर सकूँ। दया करके मुझे शक्ति दो, जिससे मैं निष्कपट होकर सत्य मार्ग पर चल सकूँ।

20 भाद्र बं0सन् १293

अपूर्व स्वप्न ... गोस्वामीजी का बुलाना।

अन्यान्य दिनों की तरह उपासना के अन्त में आज भी उक्त प्रकार से प्रार्थना करके मैं बिस्तर पर जा लेटा। रात को पिछले पहर (साढ़े तीन बजे) एक अद्भुत स्वप्न देखकर, मैं एकाएक जाग पड़ा। स्वप्न यह है,-देखा कि मैं ब्राह्मसमाज-मंदिर के दरवाजे पर हूँ। बाग में, हरसिंगार के नीचे, खडे हुए गोस्वामीजी स्नेहपूर्वक मुस्कुरा रहे हैं और हाथ के इशारे से बुलाकर मुझसे कह रहे हैं-**अरे, जल्दी इधर चले आओ। तुम जो वस्तु चाहते हो, वही मैं तुमको दूँगा।**

गोस्वामीजी की कृपापूर्ण दृष्टि और प्रेमपूर्वक बुलाने से मैं आनन्द विह्वल हो उठा और भगवान् को प्राप्त करने की इच्छा से रोते हुए मैं उनके चरणों पर लोटने लगा। बस इसी समय आँख खुल गई। जाग उठने पर भी गोस्वामीजी की उस सौम्य, शान्त, स्निग्ध, करूण, पवित्र मूर्ति को मानो थोड़ी देर तक आँखों के आगे देखता रहा। कानों में मानो उनकी बात को मैं बारंबार सुनने लगा। स्वप्न मन के संस्कार का ही विकार अथवा कल्पना का फल है, बहुत पुरानी इस निश्चित धारणा का मुझे स्मरण ही न रहा। जाग

जाने पर भी मैं किसी तरह रोना न रोक पाया। बारंबार ऐसा मालूम होने लगा कि गोस्वामीजी बगीचे में मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं थोड़ी देर तक बिछौने पर लेटकर रोता रहा। मैंने प्रार्थना की 'प्रभो, मैं तुम्हारे संबंध में अन्धा हैं जिस यथार्थ मार्ग पर चलने से तुम्हारी प्राप्ति हो, उस पर तुम्हीं दया करके मुझे ले चलो। प्रार्थना के साथ ही साथ मेरी बेचैनी और भी बढ़ गई। तभी मैं रात के पिछले पहर ब्राह्मसमाज मंदिर की ओर दौड़कर गया। वहाँ दरवाजा बन्द रहने पर भी दीवार लाँघकर बाग में पहुँचा और निर्दिष्ट स्थान की ओर आगे बढ़ा।

कुछ दूर जाने पर देखा कि ब्राह्मसमाज मंदिर के पूर्व ओर दीवार के पास, उसी हरसिंगार के नीचे-जैसा स्वप्न में देखा था ठीक वैसे ही-सिर मुँडाये, गेरूए कपडे पहने पवित्रमूर्ति गोस्वामीजी दण्ड लिये, खड़ाऊँ पहने, प्रफुल्ल दृष्टि से मेरी ओर ताक रहे हैं। ज्यों ही में उनके समीप पहुँचा त्यों ही उन्होंने मुझे हरसिंगार का फूल दिखलाकर कहा-**देखो कितने सुन्दर हैं! मानो दूध के ऊपर लाई बिखरी हो।**

आज तक मैंने माथा झुकाकर कभी गोस्वामीजी के पैर नहीं छुए थे; इसे मैं घोर कुसंस्कार और असभ्यता समझता आया हूँ; सिर्फ हाथ उठाकर अथवा सिर हिलाकर ही मैं उनका सम्मान किया करता था; किन्तु आज न जाने क्यों उस विषय का मुझे ध्यान न रहा। मैं रोते-रोते जाकर उनके चरणों में लोट गया। मैंने कहा-आप मुझ पर दया कीजिए।

गोस्वामीजी ने कहा-**बहुत पहले आ जाना चाहिए था। अब तो समय निकल गया। अब कुछ दिन तक प्रतीक्षा करो।**

मैं-मेरी इच्छा तो अभी साधन ले लेने की है।

गोस्वामीजी-**यह तो बड़े आनन्द की बात है। यही तो समय है। इसी समय तो यह सब करना चाहिए। यदि अभी से नियमानुसार साधन-मार्ग पर चलोगे तो इसका सुफल अनन्त काल तक भोग सकोगे। 'फिर कर लेंगे' इस भरोसे रहना ठीक नहीं, फिर न जाने कितने विघ्नों का सामना करना पड़े। अब तो हम शीघ्र ही पश्चिम की ओर जाने वाले हैं। हम वहाँ की यात्रा कर आवें; और तुम भी स्कूल की छुट्टी में घर जाओगे। वहाँ से लौटकर आना, फिर साधन मिलेगा। साधन लेने पर, इस साल कम से कम पन्द्रह दिन तुम्हारा मेरे पास रहना आवश्यक होगा। अभी इसमें असुविधा है।**

मैं-घर जाकर मैं किस नियम का पालन करूँगा?

गोस्वामीजी-**नियम क्या? जिस तरह रहते हो, उसी तरह रहना। खूब पवित्रता से रहना। मन में किसी प्रकार के बुरे विचार न आने देना-उससे बड़ी हानि होती है। मन सदा पवित्र और प्रफुल्ल रखना। चित्त प्रफुल्ल नहीं रहे तो फिर धर्म-कर्म कुछ भी नहीं होता। दीन होकर भगवान के चरणों में प्रार्थना करनी चाहिए और प्रार्थना का भाव सदा मन में रखना चाहिए। क्या लिखते-पढ़ते समय, क्या बातचीत करते समय और क्या राह चलते, हमेशा पाँच-सात मिनट के बीच तनिक भी मौका पाकर भले दो-एक मिनट हो, भगवान् का स्मरण करना चाहिए। 'वे सर्वदा साथ ही साथ हैं, मुझे बहुत प्यार करते हैं, हर क्षण मुझ पर न जाने कितने प्रकार से दया करते हैं'-यह सब याद करके बारंबार उनको नमस्कार करना चाहिए। इस प्रकार हर एक काम**

में उनका स्मरण करते रहने से, थोडे समय में ही वे कृपा करते हैं। इस समय लिखने-पढ़ने में विशेष रूप से मन लगाना चाहिए। लिखने-पढ़ने में लापरवाही करने से अन्त में सभी ओर से अनिष्ट होता है। अभी तो इन्हीं बातों को याद रखकर चलने की चेष्टा करो; इससे तुम्हें लाभ मिलेगा।'

साधन प्राप्ति की तीव्र इच्छा।

कुछ दिन के बाद ही दुर्गापूजा के कारण हमारा स्कूल बन्द हो गया। १६ आश्विन, शुक्रवार को दोपहर को भोजन करके, प्रसिद्ध 'मीरेर बेग' के मल्लाहों की नाव किराये से लेकर, मँझले दादा और छोटे दादा आदि के साथ मैं घर को रवाना हुआ। तालतला की नहर से कुछ दूर जाकर मल्लाह लोग रास्ता भटक गये। रात को साढ़े नौ बजे तक हम लोग घर पहुँचे। इस बार की बरसात से पद्मा नदी में बहुत पानी बढ़ गया है। देश में प्रायः सभी के घर पानी में डूबने को है। हमारे मकान पर भी ७-८ इंच पानी चढ़ आया है। एक घर से दूसरे घर में जाने के लिए पहले से ही आँगन में बाँस बिछाकर पुल बना लिया है। मुहल्ले में प्रायः सभी के पास डोंगी नाव थी, इससे परस्पर मिलने-जुलने में कोई खास अड़चन नहीं हुई। प्रतिदिन तीसरे पहर १२-१४ हम उम्र मित्रों के साथ नवकान्त बाबू के यहाँ जाता हूँ। वहाँ पर संकीर्तन और उपासना आदि करके, रात को ९ बजे के लगभग घर आता हूँ। मुझसे प्रेरित होकर दो मित्रों ने ब्राह्मधर्म ग्रहण कर लिया है। किन्तु, जनेऊ न रहने पर भी इस कारण हमारे धर्म समाज में कुछ गड़बड़ी नहीं है। मुहल्ले के बड़े बूढों ने उन्हें जनेऊ पहनने के लिए बहुत समझाया-बुझाया किन्तु कोई फायदा नहीं हुआ। अब वे लोग सारा प्रयत्न छोड़कर कहते हैं-

अरे हमारी, दुर्नीति प्रतीकस्वरूप गले की रस्सी को तो तुमने छोड़ दिया है; परन्तु अपने ब्राह्मसमाज की सभ्यता की सुनीति के चिह्न कुर्ता-कमीज का सदा पहने रहना क्यों छोड़ दिया है ? अगर उन्हें पहने रहो तो भी हम बचें। मैं अभी तक जनेऊ नहीं छोड़ पाया, इसलिए ब्राह्म मित्र लोग बहुत ही दुःखी हैं, इसके लिए वे लोग सदा मेरी शिकायतें करते हैं, समय-समय पर वे मुझे कायर भी कह देते हैं। सभी का अनुमान है कि मैं इस बार छुट्टी के बाद ढाका लौटते ही ब्राह्म समाज में खुल्लमखुल्ला प्रवेश करूँगा। डर के मारे माँ भी घबराई हुई हैं। तुलसीचौरा के सामने एकान्त में बैठकर वे, रो-रोकर, तुलसी को चुपचाप अपने मन का दुःख सुनाती हैं। उनका विश्वास है कि तुलसी की कृपा हो जाय तो मेरा ब्राह्म होना रुक जायेगा। छुट्टी बीत जाने पर ढाका रवाना होते समय मुझसे माँ ने कहा-'धर्म-धर्म करके जनेऊ को न उतार फेंकना।' भगवान् तेरी मनोकामना पूरी करेंगे। मैं प्रतिदिन महादेवजी को बिल्वपत्र चढ़ाते समय यह प्रार्थना किया करती हूँ कि तू जनेऊ पहने रहकर ही धर्म-कर्म करे। अब माँ ने अपने हाथ की तीन अँगुलियाँ अपनी जीभ से छुवाकर उसमें पैरों की धूल लगाकर, मेरे माथे में घिस दी। माँ को प्रणाम करके मैं ढाका के लिए रवाना हो गया।

ढाका पहुँचने पर सुना कि गोस्वामीजी अभी तक नहीं आये हैं; उनके शीघ्र ही लौटने की आशा है। मैं दिन-रात उसके आगमन की इच्छा से बेचैन होकर समय बिताने लगा। जनेऊ त्यागकर ब्राह्मधर्म में दीक्षित होने की मेरी सनक कुछ कम हो गई। मैं रात-दिन सिर्फ यही सोचने लगा कि गोस्वामीजी न जाने मुझे कौन-सा साधन देंगे।

अग्रहायन की शुरूआत में गोस्वामीजी ढाका आ गये। छात्र

समाज में बड़ी धूम मच गई। ब्राह्मसमाजियों में अपार आनन्द है। सभी के चेहरे प्रफुल्लित हैं। गोस्वामीजी के आने से फिर लोग झुण्ड के झुण्ड ब्राह्मसमाज-मंदिर में आने लगे हैं। ब्राह्मसमाज-मंदिर में फिर नित्य उत्सव होने लगा। प्रतिदिन सांध्य कीर्तन में भाव के विचित्र विकास और उमंग से सभी के चित्त गोस्वामीजी की ओर आकृष्ट होने लगे। सुना है कि इस बार गोस्वामीजी काकिनिया आदि स्थानों में जाकर उपासना, व्याख्यान और संकीर्तनोत्सव द्वारा सजीव धर्म का एक अद्भुत स्रोत प्रवाहित कर आये हैं।

अग्रहायन, द्वितीय सप्ताह, बं0 सन् १२९३

साधन प्राप्ति में बाधा-छोटे दादा।

अगले शनिवार छात्रसमाज में वक्तृता देने के लिए गोस्वामीजी से अनुरोध करने कुछ मित्रों के साथ, मैं 'प्रचारक-निवास' गया। देखा कि वक्तृता देने में गोस्वामीजी को अब पहले जैसा उत्साह नहीं है। जो हो, उन्होंने कहा कि शरीर स्वस्थ रहा तो प्रयत्न करेंगे। मेरे मित्र यह उत्तर पाकर चले गये। किन्तु मैं उनके पास ही बैठा रहा। उस समय वहाँ पर केवल श्रीधर घोष और अनाथबन्धु मौलिक बैठे हुए थे। उन्होंने मुझसे कहा-'क्या तुम्हें एकान्त में कुछ पूछना है?' इस पर गोस्वामीजी ने मेरी ओर देखकर कहा-**पूछो, क्या पूछना है ? इन लोगों के सामने पूछने में कुछ शंका मत करो, बेहिचक कहो।**

मैंने कहा-स्कूल बन्द होने से पहले ही मैं एक बार कह चुका हूँ।

गोस्वामीजी-**हाँ, अच्छा वही बात ? साधन लेना चाहते हो ? तो साधन के नियम और प्रणाली सब जानते हो न?**

मैं-जितना प्रकट है, उतना ही जानता हूँ।

गोस्वामीजी-**यह साधन ले लेने पर, जो जिस अवस्था का व्यक्ति है, उसे उसी अवस्था के सब काम करने पड़ते हैं। गृहस्थों का गृहस्थी के कामकाज में लापरवाही करना अनुचित होगा। इसी प्रकार छात्रों को लिखने-पढ़ने में नियम से मन लगाना होगा, नहीं तो अनिष्ट होता है। पहले जाकर अच्छी तरह समझ लो, फिर कल आकर हमसे कहना। और जो कुछ कहना है, सो कल बता दूँगा।**

गोस्वामीजी का उत्तर सुनकर मैं प्रचारक निवास से चला गया। बूढ़ी गंगा के पार जाकर एकान्त स्थान में बैठकर, सोचने लगा-यह क्या हुआ? साधन मिलने से पहले ही गोस्वामी ने मेरे सिर पर मानो लाठी मार दी। दो महीने से प्रतिदिन मन ही मन संकल्प करता रहा हूँ कि एक योग-साधन मिल जाय, फिर लिखने-पढ़ने की झंझट में कौन पड़ता है। किसी निर्जन पर्वत पर जाकर, ऋषि-मुनियों की तरह दिन-रात उपासना करते हुए अपना जीवन बिता दूँगा। किन्त गोस्वामीजी ने आज यह क्या किया। मेरे इतने दिनों के आंतरिक संकल्प को बिल्कुल चूर-चूर कर दिया। रात को कोई साढे नौ बजे तक यह सब सोचते-सोचते मैं बहुत ही उद्विग्न और चंचल हो उठा। दूसरा उपाय न देखकर एकाग्र मन से गोस्वामीजी के चरणों में नमस्कार करके कहा-गोस्वामीजी, मुझ पर दया करो। मैं प्रतिज्ञाबद्ध नहीं हो सकता। नियम से 'मन लगाना' इन बातों से मैं सहमत नहीं हो सकूँगा। मैं बस इतना ही कह सकूँगा कि पढूँगा-लिखूँगा। मुझे निराश मत कर देना। मेरे प्राणों का क्लेश जानकर दया करो-तुम्हारे चरणों में यही प्रार्थना है। मुझे यह विश्वास नहीं है कि गोस्वामीजी मन की बात जान लेते हैं। किन्तु भीतर के आवेग

से उल्लिखित प्रार्थना अपने आप आ गई। मैं उसे रोक न सका।

दूसरे दिन मौका पाकर मैं गोस्वामीजी के पास गया। प्रणाम करके बैठते ही मुझसे उन्होंने कहा-**क्यों ? क्या हुआ ?**

मैंने कहा-जी हाँ। लिखता-पढ़ता रहूँगा।

गोस्वामीजी ने तनिक हँसकर कहा-**अच्छा! तो मुझे एक बात और भी बतानी है, अब मुझे कोई आपत्ति न होगी। सिर्फ तुम्हारे अभिभावक की सम्मति मिलने की देर है। अभिभावक की असहमति पर साधन देने का नियम नहीं है। सौ वर्ष के बूढ़े का भी यदि कोई अभिभावक हो, तो उसकी स्वीकृति लेनी पड़ती है। तुमसे अब कुछ कहना नहीं है, सिर्फ अभिभावक के अनुमति मिलते ही हो जाएगा।**

यह सुनने से तो मानो मेरे सिर पर वज्रपात हुआ। सोचा कि गोस्वामीजी ने तो मुझे और भी संकट में डाल दिया। मैंने उनसे पूछा-अभिभावक की अनुमति मैं किस प्रकार लूँ? मेरे तीनों बड़े भाई अभिभावक हैं।

गोस्वामीजी ने कहा-**हाँ, यहाँ पर तुम्हारे जो दादा हैं, उनकी एक चिट्ठी मिलते ही हम निश्चिन्त एवं सन्तुष्ट होकर तुम्हें साधन दे सकते हैं। बहुत-से लोग ऐसा समझते हैं कि छोटी उम्र के लड़कों को, यह साधन देकर हम बरबाद कर देते हैं। अतएव अनुमति न लेकर साधन दे देने से, उन लोगों का अभिशाप हमें लेना पड़ता है।**

गोस्वामीजी के एक शिष्य वकील श्रीहरिचरण चक्रवर्ती ने इसी समय पूछा-तो क्या इसे साधन मिलेगा?

गोस्वामीजी ने कहा-कल देखा था कि अच्छी व्याकुलता है,

अब अवस्था अच्छी हो गई है।

उन्होंने मुझसे कहा-**तुम घबराना नहीं, साधन तो तुम्हें मिलेगा ही। कुछ दिनों तक धैर्य रखो।**

मैं निश्चित ही जानता था कि बड़े भाईयों से अनुमति नहीं मिलेगी, किन्तु गोस्वामीजी की पिछली दोनों बातों से मुझे कुछ आशा बँधी। शाम को घर जाकर छोटे दादा श्रीशारदाकान्त बंद्योपाध्याय से मैंने अपना अभिप्राय कहा, गोस्वामीजी से दीक्षा लेने के लिए अनुमति पत्र की माँग की। गोस्वामी से साधन लेने की बात सुनते ही वे बहुत ही नाराज हुए; उन्होंने अनुमति देने से साफ इन्कार कर दिया। छोटे दादा की बातें सुनकर और उनकी विचार धारा देखकर मेरा सिर चकरा गया। मैं रजाई ओढ़कर सो गया। रात को लगभग दस बजे मन की यातना मेरे लिए इतनी असह्य हो गई कि मैं रोक रखने में असमर्थ होकर, फूट-फूटकर रोने लगा। छात्रावास (मेस) के छात्र रोना सुनते ही लिखना-पढना छोड़कर मुझे घेरकर, यह जानने के लिए आ पहुँचे कि मुझे क्या हुआ है। छोटे दादा भी आये और मुझे बुलाकर बाहर रास्ते में ले गये। उन्होंने बहुत ही चिढ़कर कहा-'मेरे आगे प्रतिज्ञा करो कि हम लोगों की राय के विरुद्ध कभी कोई काम नहीं करोगे; जब तक लिखने-पढ़ने के लिए कहेंगे, खूब मन लगाकर पढ़ते रहोगे और कभी ऐसा कोई काम न करोगे जिससे हमारे परिवार का अहित हो।' मैंने कहा-'बहुत अच्छा अनुमति पत्र दीजिए, आप जैसा कहेंगे मैं वैसा ही करूँगा।' छोटे दादा ने तनिक रूककर कहा-'अच्छा कल और भी कुछ बातों की लिस्ट बना दूँगा, उसके अनुसार बर्ताव करने की प्रतिज्ञा करने पर, मैं अनुमति दे दूँगा।' जैसे बने, अनुमति तो लेनी

ही पड़ेगी। ऐसा सोचकर मैंने छोटे दादा की बात मान ली।

१३अग्रहायन, द्वितीय सप्ताह बं. सन् १३९३

सवेरे छोटे दादा के पास जाकर अनुमतिपत्र माँगा तो उन्होंने नाराज होकर मुझे धमकाकर कहा-'यह सब कुछ न होगा। योग करने से भयानक रोग हो जाते हैं। दिमाग तो बिल्कुल खराब हो जाता है। बहुत अच्छे व्यक्ति उसके चक्कर में पड़कर, सदा के नए बिल्कुल निकम्मे 'भेड़' बन गये हैं। मैं तो अनुमति दूँगा ही नहीं, साथ ही बड़े भाईयों को पत्र लिखूँगा, जिससे वे भी अनुमति न दें। यह सब कहकर उन्होंने मुझे बहुत गालियाँ दी। छोटे दादा की गालियाँ खाकर क्रोध और क्लेश के मारे मेरी छाती जलने लगी। अब क्या करूँ? दूसरा उपाय न देखकर गोस्वामीजी के पास पहुँचा। उन्हें सारा हाल साफ-साफ कह सुनाया।

गोस्वामीजी ने कहा-**स्वयं अनुमति नहीं देते तो न दें। बड़े भाईयों को तनिक लिख देने में क्या रूकावट है?**

निष्कपट विश्वास की अव्यर्थ शक्ति।

इस समय प्रचारक निवास में बहुत-से आदमी आ गये। इससे फिर कोई बातचीत न हो पाई। आज रविवार है। दिन भर प्रचारक-निवास में गोस्वामीजी के पास भीड़ रहेगी। तीसरे पहर स्कूल-कॉलेज के छात्रों, दफ्तरों के बाबुओं एवं बाउल, वैष्णव, मुसलमान और ईसाई आदि तरह-तरह के कई लोगों के समागम से ब्राह्मसमाज मंदिर के प्रांगण में तिल रखने की भी जगह नहीं रहती। गोस्वामी के उपासना वाले कमरे में कृष्णकान्त पाठक का गीत 'जार जार जेरूप उदय हय मने, समये सेरूपेर देखा मिले कई?' (मन में जिस-जिसका जो रूप प्रकट होता है, समय पर फिर उसके

दर्शन कहाँ मिलते हैं?) अच्छा जम गया। जो लोग कमरे से बाहर थे, वे भी भाव में मस्त होकर गिरने लगे। अब शाम हो चली। नियमित समय पर वेदी के कार्य में कहीं विघ्न न पड़े, इसलिए गीत रुकवा दिया गया। गोस्वामीजी मुँह-हाथ धोकर समाज-मंदिर के कमरे में उपासना करने जा बैठे। कमरे में अथवा कमरे के बाहर जो, जिस अवस्था में था, वह वेदी का कार्य होने तक उसी अवस्था में रहा। गोस्वामीजी की उपासना में एक बार थोड़ी देर के लिए कोई शामिल हो जाय तो फिर उसका उपासना की समाप्ति तक उठने को जी नहीं चाहता था। आज उद्बोधन के समय जो उपदेश दिये गये वे, ऐसा मालूम हुआ कि, मुझे ही दिये जा रहे हैं। सरल विश्वास के साथ सचमुच दीन होकर, कोई भगवान् से प्रार्थना करे तो वे उसकी प्रार्थना अवश्य पूरी करते हैं। इसके दृष्टान्त स्वरूप गोस्वामीजी ने एक घटना का उल्लेख किया। यूरोप के किसी देश में बहुत दिनों तक वर्षा नहीं हुई। सब जगह बरसात के लिए प्रार्थना की गई। उस समय एक शहर में विज्ञापन दिया गया कि सब लोग सम्मिलित होकर एक साथ वर्षा के लिए प्रार्थना करेंगे। निर्दिष्ट दिन, शाम होने से पहले ही, नगरवासी लोग गिरजे में एकत्रित होने लगे। इसी समय एक बालक, हाथ में छाता लिये हुए, उपासना के स्थान पर आया। बच्चे के हाथ में छाता देखकर सभी कहने लगे-अजी, तुम तो बिल्कुल मूर्ख जान पड़ते हो। भला इस समय छाते की क्या जरूरत है? बच्चे ने कहा-‘आज बरसात के लिए प्रार्थना की जायगी। भगवान जब पानी बरसाने लगेंगे, तब क्या करूँगा? छाता न रहने पर घर जाते समय मुझे रास्ते में भींगना पड़ेगा।’ बालक का यह उत्तर सुनकर सभी लोग दंग रह गये। प्रार्थना हो चुकने पर

सचमुच पानी बरसा। तब उस बालक ने सब लोगों से कहा-‘अगर तुम लोगों को भगवान् पर भरोसा होता, तो जरूर छाता लेकर आते। देखो न, तुम लोगों को रूक जाना पड़ा और मैं यह चला।’ इस घटना के आधार पर गोस्वामीजी ने काफी देर तक ‘सरल विश्वास और व्याकुलता के साथ प्रार्थना’ विषय पर उपदेश दिया; इसके बाद उपासना के अन्त में हाथ जोड़कर सभी को नमस्कार करते हुए कहा

तुम लोगों के पैर पकड़कर कहता हूँ कि एक बार माता को पुकारो। शिशु जिस तरह माँ को बुलाता है, उसी तरह व्याकुल होकर, एक बार माँ को बुलाओ। माँ बड़ी दयामय हैं! मुझ जैसे पापी पर भी जब वे दया करती हैं, तब और कोई वंचित नहीं रह जायगा। विश्वास के साथ माँ को बुलाने से अवश्य वे आवेंगी। मैं सुनी-सुनाई बात नहीं कहता, कल्पना की बात भी नहीं करता, सच कहता हूँ, अपने जीवन में देखी हुई बात कहता हूँ। स्वयं प्रत्यक्ष देखकर कहता हूँ, सरल भाव से माँ को पुकारा जाय तो उन्हें पाया जा सकता है। एक बार माँ को बुलाकर देखो तो सही, वे अवश्य दया करेंगी। मेरे सिर पर चरणों की रज डालकर, सब लोग मुझे आशीर्वाद दो। जय माँ! जय माँ! जय माँ! तुम्हीं सत्य हो; तुम्हीं सत्य हो, तुम्हीं सत्य हो।

१५ अग्रहायन, मंगलवार १३१३ बं0सन्

साधन प्राप्ति में बाधा-मँझले दादा।

आज स्कूल से लौटने पर छोटे दादा ने कहा-‘मँझले दादा (श्रीवरदाकान्त बंद्योपाध्याय) ढाका आये हुए हैं; वे एकरामपुर में अपनी ससुराल में ठहरे हैं। कल शाम उन्होंने तुम्हें बुलाया है।’

मँझले दादा शब्द सुनते ही मेरा दिल धड़कने लगा। समझ लिया कि साधन-संबंधी चर्चा छेड़कर, वे अवश्य ही मुझे बुरी तरह धमकावेंगे। रात भर और दूसरे दिन बड़ी घबराहट रही; निर्दिष्ट समय पर मैं वहाँ गया, जहाँ पर वे ठहरे थे। मँझले दादा के पैर छूकर ज्योंही मैं उनके आगे खड़ा हुआ, त्योंही वे आग-बबूला हो गये। बहुत ही तीखी, कर्कश भाषा में जोर-जोर से गालियाँ देते हुए, वे पागल से हो गये। हाथ में चप्पल लेकर मुझे मारने के लिए दो-चार कदम बढ़े भी; भाग्यवश उस समय भाभी के रोकने पर रुक गये। अन्त में मुझसे कहा-'अगर फिर कभी तेरे मुँह से 'योग' शब्द सुना तो जूतियाँ मारकर तेरी पीठ की चमड़ी उधेड़ दूँगा। जितने प्रकार से हमारा अपमान किया जा सकता है, तू कर रहा है; तू मर जाय तो उत्पातों से हम लोगों को शांति मिले'-इत्यादि। कोई आधे घण्टे तक इस तरह की गालियाँ खाकर मैं रोते-रोते वहाँ से चला आया। एक स्त्री के सामने इतना अपमान! क्रोध, अपमान और क्लेश के मारे आत्महत्या करने की इच्छा हुई। तय किया कि एक बार और योगसाधन प्राप्त करने का उद्यम करके देखूँगा; अगर सफलता न मिली तो फिर जो करना होगा, सो कर ही डालूँगा। आज मैंने भगवान् को साक्षी करके प्रतिज्ञा की-यदि तुम्हारी कृपा से इस जीवन में यह साधन प्राप्त हो जाये तो अपनी योगशक्ति का प्रयोग सबसे पहले भीषण विरुद्ध मतवाले मँझले दादा पर करूँगा और फिर छोटे दादा पर। उक्त प्रयोग द्वारा इन्हें गोस्वामीजी के चरणों में झुकाऊँगा। दीक्षा मिलने के बाद सर्वप्रथम मेरे इसी संकल्प से साधन-भजन, तपस्या का आरम्भ होगा।'

निराशा में आश्वासन।

अभिभावकों की सम्मति लेकर दीक्षा लेना तो मेरे लिए दुर्लभ है, यह समझकर गोस्वामीजी पर मुझे बड़ा क्षोभ सा हुआ। निश्चय किया कि और एक बार दीक्षा के लिए कहूँ तो सही; यदि इस बार भी गोस्वामीजी, पहले की तरह, उलझन में डालें या घुमाएँ तो फिर मैं खरी-खोटी सुनाये बिना न रहूँगा। यह इसलिए कि ब्राह्मधर्म में हजारों लोगों को जो उन्होंने दीक्षा दी है, उसके लिए क्या कभी किसी अभिभावक की अनुमति की उन्होंने प्रतीक्षा की? इसके सिवा किसी घर का मुखिया यदि नास्तिक हो, तो क्या उस घर के किसी व्यक्ति को भगवान् के नाम लेने का अधिकार ही न रहेगा? अभिभावक की सम्मति लेने की आवश्यकता सबके लिए है या सिर्फ मेरे लिए ही?

स्कूल से छुट्टी पाकर मैं सीधे गोस्वामीजी के पास पहुँचा। बड़े भाईयों की अनुमति न मिलने की सूचना पाते ही उन्होंने मुझसे पूछा-**तुम्हारे बड़े भाई कहाँ पर हैं?**

मैंने कहा-बड़े दादा (श्रीहरकान्त वन्द्योपाध्याय) अवध के फैजाबाद शहर में असिस्टेंट सर्जन हैं।

गोस्वामीजी-**अच्छा तुम उन्हीं से लिखकर अनुमति माँगो। वे अनुमति दे देंगे। व्यग्र मत हो, सब ठीक हो जाएगा।**

'यदि बड़े दादा भी अनुमति न दें तो क्या होगा?' यह बात कहते ही श्रीहरिचरण चक्रवर्ती आदि गोस्वामीजी के कुछ शिष्यों ने, मेरी उस बात को काटा, हाथ पकड़कर मुझे बाहर ले गए और कहा-'यह क्या करते थे? गोस्वामीजी की बात पर शंका करते हो? ऐसा करना अपराध है। वे जो कहें वही करो, बड़े दादा को चिट्ठी लिख दो। जब गोस्वामी कहते हैं, तब वे जरूर अनुमति दे देंगे।' यह

सुनकर मैं विस्मित हो गया; हँसी भी आई। सोचा-‘हाय भगवन्! ब्राह्मसमाज में ऐसे कुसंस्कारी लोग भी आते हैं। खैर, किसी से बिना कुछ कहे-मैं अपने डेरे पर चला आया; और सारी बातें विस्तारपूर्वक बताकर, मैंने बड़े दादा को अनुमति के लिए पत्र लिख दिया।

मार्गशीर्ष, मध्यभाग

साधन प्राप्ति में बड़े दादा की सम्मति।

पत्र पाते ही बड़े दादा ने मुझे फौरन उत्तर लिखा। यह जानकर कि मैं गोस्वामीजी से योग-साधन प्राप्त करूँगा, उन्होंने संतोष प्रकट करके, मुझे उत्साहित किया और अनुमति दे दी। परन्तु उन्होंने पत्र के अन्त में लिखा है-‘भगवान् को प्राप्त करने के लिए तुम जिस मार्ग का अवलम्बन करने को उतावले हो रहे हो, उसमें मेरी ओर से कोई आपत्ति नहीं है, बल्कि मैं तो संतोषपूर्वक तुम्हें इसके लिए उत्साहित ही करता हूँ। किन्तु हम लोगों की माताजी जीवित हैं, अतएव विषय में मात्र हमसे ही पूछना ठीक नहीं, माताजी की भी अनुमति ले लेना ठीक होगा।’ पत्र पढ़कर मैं तुरन्त गोस्वामीजी के पास पहुँचा। दादा के पत्र का सारांश सुनाने पर, उन्होंने सबके सामने पत्र पढ़कर सुनाने को कहा। उसे सुनकर सब लोगों ने दादा की बहुत प्रशंसा की। गोस्वामीजी ने मुझसे कहा-

यह पत्र तुम्हारे लिए दस्तावेज है, इसे सम्भालकर रखना। अब तो तुम्हारा लगभग सब काम पूरा हो गया है। एक ही काम रह गया है। उसके होते ही काम बन गया समझो। तुम्हारे दादा ने माताजी की आज्ञा प्राप्त करने के लिए लिखा है। सो तुम एक दिन घर जाकर उनसे आज्ञा माँग लो, बस तो सब हो गया।

मैंने कहा-योग की बात सुनकर माँ मुझे कभी अनुमति न देंगी। वे समझेंगी कि में 'धर्म-धर्म' करके घर-संसार छोड़कर चल जाऊँगा।

गोस्वामीजी ने कहा-**माँ से तुम योग आदि की चर्चा न करना; मात्र यही कहना कि 'साधन लेंगे।' तो वे अनुमति दे देंगी।**

गोस्वामीजी की बात सुनकर मैं सोचने लगा-अब किस बहाने से घर जाऊँ। घर जाना चाहूँगा, तो दोनों बड़े भाई जाने का कारण पूछेंगे। तब तो सब बातें खोलकर बतानी होंगी। इस समय घर जाने में मुझे जो कठिनाई है, उसे गोस्वामीजी को बतला देने की इच्छा हुई; किन्तु उस समय बहुत लोगों के आ जाने से मौका नहीं मिला। मैं वापस लौट आया।

ब्राह्मसमाज-मंदिर में वार्षिक उत्सव।

आज वार्षिक उत्सव के उपलक्ष्य में ब्राह्मसमाज मंदिर में स्त्री-पुरुषों की काफी भीड़ इकट्ठी हुई। क्या मंदिर और क्या चारों ओर का आँगन, कहीं किसी को जगह नहीं मिल पा रही है। गोस्वामीजी अपने आसन से आकर उपासना करने के लिए वेदी पर बैठे। शरत्काल की 'दुर्गापूजा' के आगमन का ध्यान आते ही, तमाम देशवासियों में जो एक आनन्द उत्सव और उमंग उत्पन्न होती है, उसका वर्णन करके उन्होंने उपासना के पहले ही सबके हृदय में एक अद्भुत भाव का संचार कर दिया। उपासना करने के लिए बैठकर दो-चार बातें कहते ही, वे भाव में मग्न होकर गिरने लगे।

यह माँ है! हमारी माता आई हैं। हमारी माँ आज अपने कंगाल बच्चों को खिलाने के लिए हाथ में प्रसाद की थाली ले आई हैं। प्रसाद लिये हुए माँ हमें बुला रही हैं। माँ आज मैं अकेला न लूँगा, पहले सबके हाथों में प्रसाद दो, तब मैं प्रसाद पाऊँगा।

यही सब कहकर, मानो साक्षात् भगवती को देखकर, वे गद्गद भाव से हाथ जोड़े हुए, रोदनपूर्ण स्वर में स्तुति करने लगे। गोस्वामीजी की प्रत्येक बात के, प्रत्येक शब्द के साथ-साथ उनका शरीर रोमांचित होने लगा। एक अव्यक्त भाव ने सबको विभोर कर दिया। मंदिर के बाहर, भीतर सब जगह भाव की उमंग से 'हूँ हूँ' शब्द होने लगा। स्त्री-पुरूषों के बीच रोने की ध्वनि होने लगी। डॉक्टर पी. के. राय आदि दो-चार गण्यमान्य ब्राह्मसमाज के पदाधिकारी गड़बड़ को रोकने के लिए 'ठहरिए ठहरिए, चुप रहिए, चुप रहिए,' आदि कहने लगे। पर वहाँ कौन किसकी सुने? मामला बिगड़ता देखकर चन्द्रनाथ राय ने हारमोनियम पर सुर चढ़ाकर गाना शुरू कर दिया। इधर गोस्वामीजी **जय माँ, जय माँ**! कर वेदी से कूद पड़े। जोरों से संकीर्तन होने लगा, गोस्वामीजी नृत्य करने लगे। चारों ओर बालक-बूढ़े-जवान स्थान-स्थान पर बेहोश होकर गिर पड़े। हुंकार, गर्जन, और विचित्र भावोच्छवास की ध्वनि से ब्राह्ममंदिर परिपूर्ण हो गया। क्या स्त्री और क्या पुरुष सभी आज इस महोत्सव में मस्त हो गये। मालूम नहीं, इस तरह कितना समय बीत गया। अन्त में गोस्वामीजी **हरि बोल, हरि बोल, शान्त हो जाओ, शान्त हो जाओ,** कहकर हाथ से सबका माथा छूकर घूमने लगे, उनके हाथ के स्पर्श की देर थी कि जो नाच रहे थे, वे बैठ गये, जो चिल्ला रहे थे, वे चुप हो गये, और जो बेहोश पड़े थे, उन्हें होश आ गया। अपूर्व, अद्भुत दृश्य था! बातों बातों में ब्राह्मसमाज-मंदिर ने फिर शान्त, स्तब्ध और गम्भीर भाव धारण कर लिया। गोस्वामीजी फिर वेदी पर जा बैठे। भाषा से प्रकट न की जा सकने वाली आज की नीरव उपासना के भाव को प्रकट करने का कोई उपाय नहीं

सूझता।’ आगे स्मृति बनी रहे इस लिए इस घटना का बहुत ही जरा आभास मात्र, यहाँ पर लिखकर रखा है। मैंने ब्राह्म मंदिर में ऐसी घटना इससे पहले नहीं देखी।

गोस्वामीजी का उपदेश-प्रार्थना के प्रकार में भिन्नता भेद।

आज वेदी पर बैठकर गोस्वामीजी उपदेश देने लगे-

जीवन में धर्म का दृढतापूर्वक अवलम्बन न किया जाय तो वह कभी नहीं टिकता, अधिक दिन तक स्थायी नहीं रहता। हम लोग परमेश्वर को चार प्रकार की अवस्थाओं में पुकारते हैं। पानी, हवा और भोजन, गर्मी आदि के द्वारा जिस तरह इस देह की रक्षा होती है, पुष्टि होती है, इनमें से किसी एक चीज के न रहने पर जिस तरह देह उसे माँगने लगती है और जब तक वह चीज मिल नहीं जाती, तब तक बेचैनी नहीं हटती, उसी तरह आत्मा कल्याण के लिए, उसकी उन्नति के लिए परमेश्वर को पुकारती है, उनकी उपासना करती है, नहीं करती तो उसे चैन नहीं पड़ता। परमेश्वर से कुछ आशा नहीं है, किसी चीज के लिए प्रार्थना भी नहीं करनी है, मुक्ति भी नहीं चाहिए, भक्ति की भी समझ नहीं है। वे प्राणों के प्राण, जीवन के जीवन हैं, उनको पुकारे बिना नहीं रहा जाता, इसी से इन्हें पुकारते हैं, इस प्रकार स्वभावतः उनको पुकारना बड़ा दुर्लभ है और सर्वोत्कृष्ट भी है।

अभाव बोध से भी हम भगवान् को पुकारते हैं। किसी विषय में अभाव बोध होने पर-उसके पूर्ण न होने पर-उस कमी को हटा देने वाला जब हमें कोई नहीं मिलता, उस कमी के क्लेश को हटाने में जब हमारी विद्या, बुद्धि, उद्योग, सामर्थ्य बिल्कुल बेकार हो जाता है, तब चारों ओर अंधेरा देखकर, हम उन्हीं के

शरणापन्न होते हैं, उन्हीं को पुकारते हैं। इस रूप में भगवान् को पुकारना भी अच्छा है, इससे भी जीवन का बहुत कल्याण होता है। किन्तु किसी चीज की कमी होने पर, संकट पड़ने पर तो उन्हें पुकारा और अभीष्ट चीज मिल जाने पर, उनके साथ कोई सरोकार न रखा, बीमारी का कष्ट के समय पुकारा, उनकी दुहाई दी, आरोग्य लाभ करते ही उन्हें भूल गये, ऐसा होने पर, इस तरह से उनके स्मरण करने पर, जीवन का कोई भी उपकार नहीं होता। काम बन जाने पर भी कृतज्ञता को बनाये रखने में ही भला है, नहीं तो सब वृथा है।

संशय दूर करने के लिए, जिज्ञासु भाव से भी हम भगवान् को याद करते हैं। सुना है कि धर्म नाम की एक बड़ी अद्भुत् वस्तु है, धर्म-कर्म करने से, भगवान् को पुकारने से कोई भी क्लेश नहीं रहते, किसी प्रकार की अशान्ति हृदय तक पहुँच ही नहीं पाती। अच्छा तो एक बार धर्म-कर्म करके, जप-तप करके, भगवान् को याद कर, देख ही लेना चाहिए कि यह कहना कहाँ तक सच है। कहते हैं कि हिन्दू धर्म की अपेक्षा ब्राह्मधर्म भला है। अच्छा, कुछ दिन तक समाज में जाकर देखा जायगा। लोग धर्म-धर्म कहकर बहुत कुछ स्वार्थ त्याग करते हैं, न जाने कितना अपमान, झंझटें और यन्त्रणा सहते हैं। इसके भीतर कुछ आराम की चीज हो भी सकती है। अच्छा, एक बार कोशिश करके देख ही क्यों न लिया जाय कि इसमें कुछ है या नहीं? ऐसे लोग ही आजकल अधिक है। इनकी प्रार्थना और उपासना आदि सन्देह से भरी रहती है। मानो ये भगवान् की जाँच-पड़ताल करने आते हैं। बिना श्रद्धा-भक्ति के ही, सन्दिग्ध मन से, ये लोग भगवान् को

पुकारते भी हों तो इन्हें कोई फल नहीं मिल पाता।

हम लोग देखा-देखी भी, नकल के तौर पर, भगवान् को पुकारा करते हैं। जो लोग धर्मात्मा हैं, उनका लोग कई प्रकार से सम्मान करते हैं; धर्मात्माओं पर लोग एक विश्वास भी रखते हैं। थोड़ा-सा धर्म-कर्म करने से भगवान् के नाम का स्मरण करने से लोगों में यदि प्रतिष्ठा मिलती है तो क्या हानि है? आदर पाने के लिए मनुष्य न जाने क्या-क्या करता है। हम यदि तनिक सा धर्म का अनुकरण ही करके, कीर्तन आदि में दो-चार बार 'हरि बोलो' चिल्लाने और कूद फाँद करने से अथवा उपासना में दो चार-बूँद आँसू ढलका देने से यदि सम्मान प्राप्त कर सके, तो लाभ के सिवा हानि ही क्या है? एक बार करके देखें न?' इस तरह कपटता से धर्म का अनुकरण करना बहुत ही निकृष्ट है। इससे कल्याण तो कुछ होता नहीं, उलटे आत्मा की अधोगति होती है।

साधन प्राप्त करने के लिए माता की आज्ञा।

उत्सव के अन्त में एक दिन, शाम हो जाने के बाद, छोटे दादा ने कहा-'कुछ जरूरी सामान घर पहुँचा आने के लिए मँझले दादा ने कहला भेजा है, वह सब लेकर तुम कल ही घर चले जाना।' मुझ पर भगवान् की कैसी अद्भुत कृपा है। मैं दूसरे ही दिन सवेरे घर के लिए रवाना हो गया। इधर वार्षिक उत्सव भी समाप्त हो गया। सर्वत्र यह बात फैल चुकी थी कि मैं इसी उत्सव में जनेऊ उतारकर, ब्राह्मधर्म की दीक्षा ले लूँगा। श्रीरजनीकान्त घोष, डॉक्टर पी.के. राय और नवकान्त बाबू आदि बहुत लोगों ने मुझे उत्साहित करके कहा था- 'ब्राह्म हो जाने पर यदि भाई लोग तुम्हारे पढ़ने-लिखने का खर्च

देना। बन्द कर देंगे तो हम लोग तुम्हारा सब खर्च उठायेंगे।’ माताजी भी समझती थी कि अब मैं कुछ न कुछ जरूर कर डालूँगा। अकस्मात् बेमौके मुझे घर पहुँचते देखकर माँ विस्मित हुई। मेरे गले में जनेऊ देखने पर उन्हें संतोष हो गया। दूसरे दिन जब माताजी पूजा-पाठ कर चुकी तब, मौका पाकर, मैंने उनके पैरों पर सिर रखकर कहा-‘माँ, मुझे आज्ञा दो, मैं दीक्षा लूँगा।’ यह सुनते ही वे काँप उठी। कहने लगीं-‘तो क्या तू जनेऊ उतारकर ब्राह्म हो जायगा?’ मैंने उत्तर दिया-नहीं माँ, मैं गोस्वामीजी से साधन लूँगा। यदि तुम आशीर्वाद देकर मुझे इसके लिए अनुमति न दोगी, तो वे मुझे साधन नहीं देंगे। यह कहकर मैंने लोटकर उनके चरण पकड़ लिये। अब माता ने मेरे सिर पर हाथ फेरा और आशीर्वाद देते हुए कहा-‘मैं तो कुछ धर्म-कर्म कर नहीं पाई, यदि तुम लोग करो तो मैं क्यों रोऊँ ? तू धर्म-कर्म कर, साधन-भजन कर, इसके लिए मैं खुशी से आज्ञा देती हूँ। मुझे उससे आनन्द ही मिलेगा। मैं इतना ही चाहती हूँ कि मेरे जीते-जी न तो तू लापता हो और न जनेऊ उतार फेंके। गृहस्थी में रहकर ही धर्म-कर्म करता रह। भगवान तेरी मनोवाञ्छा पूरी करेंगे। मैं तुझे यही आशीर्वाद देती हूँ।’

माता की चरणरज माथे से लगाकर मैं ढाका के लिए रवाना हो गया। यथासमय गोस्वामीजी के पास जाकर, मैंने उन्हें सब कुछ कह सुनाया। उन्होंने सन्तोष प्रकट करते हुए कहा-

अच्छा हुआ। तुम बृहस्पतिवार को सुबह नहा-धोकर आ जाना। बस, फिर हो जायगा।

गोस्वामीजी के मुँह से यह उत्तर सुनते ही मैं तुरंत इसलिए डेरे पर चला आया कि अब कहीं कोई नया अडंगा न लगा दें।

मेरी दीक्षा।

मन उद्विग्न रहने के कारण मुझे रात को अच्छी तरह नींद नहीं आई। शेषरात्रि साढे तीन बजे उठकर मैंने बूढ़ी गंगा में जाकर स्नान किया। मैं ब्राह्मसमाज मंदिर प्रचारक निवास जा पहुँचा। मैं सुनने लगा कि गोस्वामीजी मँजीरे बजाकर, प्रभाती कीर्तन कर रहे हैं। **'जय ज्योतिर्मय, जगदाश्रय, जीवगण-जीवन'**-यह गीत गाते-गाते बीच-बीच में भावावेश से उनका कण्ठ रूद्ध होने लगा। मैं थोड़ी देर तक दरवाजे पर बैठा रहा। कीर्तन समाप्त कर गोस्वामीजी बाहर आये; मुझे सामने पाकर मुस्कुराते हुए बोले-

इतने भोर को ही आ गये? चलो अच्छा हुआ। जाओ, समाज-मंदिर में बैठो। जरा दिन निकलने दो? फिर शुभ समय समझकर तुम्हें बुला लूँगा।

मैं समाज-गृह में जा बैठा। कोई घण्टे भर में गोस्वामीजी ने मुझे बुलाया। जैसे ही मैं उनके पास पहुँचा, वैसे ही उन्होंने आसन से उठकर कहा-**'चलो, ऊपर चलें, वहीं काम होगा।'** मैं उनके पीछे-पीछे चला। श्रीअनाथबन्धु मौलिक, श्रीधर घोष और श्यामाकान्त चट्टोपाध्याय भी हमारे साथ आ गये। दो-मंजिले के पूर्व की ओर के कमरे में जाकर देखा कि उसमें दक्षिण-पूर्व के कोने में, दो आसन बिछे हुए हैं। गोस्वामीजी दीवार के सहारे पश्चिम-मुख बैठे और अपने सामने, कोई साढे तीन फुट की दूरी पर, दूसरे आसन पर मुझे बैठने के लिए कहा। गोस्वामीजी की बेटी श्रीमती शान्तिसुधा इसी समय धूपदानी में धूनी ले आई। गोस्वामीजी अग्नि में बार-बार धूप-गुगुल-चन्दन आदि डालकर, हाथ जोड़कर बारंबार नमस्कार

करके, शान्ति से बैठ गये। उनके गालों पर लगातार आँसू ढलकने लगे। अब थोड़ी देर तक गोस्वामीजी की बाह्य चेतना नहीं रहेगी, यह सोचकर मैं व्याकुल-हृदय से, दीन होकर मन ही मन भगवान के चरणों में प्रार्थना करने लगा-'हे ज्ञानस्वरूप, जाग्रत पुरुष, हे सर्वसाक्षी, सर्वव्यापी, दीन जनों के एक मात्र गति, हे परमेश्वर, हे पतितपावन दयामय प्रभु! मैं तुम पर विश्वास करूँ, चाहे न करूँ, तुम यहाँ विद्यमान हो और मेरे भीतर की सारी दशा देख रहे हो। मेरे मन में बहुत दिनों से अपने चरणों को प्राप्त करने की इच्छा वर्धित करके, तुमने मुझे लगातार अस्थिर कर दिया है; तरह-तरह के विघ्नों और विपत्तियों को खड़ा करके तुम्हीं ने उनसे मेरा उद्धार किया है। प्रभो, जैसी आशा वैसा ही फल देना। तुमको प्राप्त करने का एक भी उपाय मुझे मालूम नहीं। प्रभो! तुम घट-घट में पूर्ण रूप से विराजमान हो। आज तुम गोस्वामीजी के भीतर रहकर मुझे दीक्षा दो। अपने श्रीचरणों को प्राप्त करने का मार्ग, तुम्हीं मुझे दिखा दो। मैं इस समय तुम्हारे, शान्तिप्रद, अभय चरणों में अपने को समर्पित करता हूँ। हे सर्वशक्तिमान्, सत्यस्वरूप, पुराणपुरुष! इस समय गोस्वामीजी के मुँह से तुम्हीं मुझे साधन दो। उनके मुँह से तुम्हीं मुझे अपना सबसे अधिक प्रिय नाम बतला दो। इस समय गोस्वामीजी के मुँह से निकले हुए प्रत्यके शब्द को मैं तुम्हारी ही अभ्रान्त वाणी मानकर ग्रहण करूँगा। तुम्हारे श्रीचरणों में अपनी इस प्रार्थना के, मेरी ओर से, तुम्ही एक मात्र मेरे साक्षी हो। यदि आज तुम्हीं स्वयं मुझे दीक्षा न दो तो गोस्वामीजी का मुँह अकस्मात् बन्द हो जाय। और क्या कहूँ, तुम्हीं मुझ पर दया करो।

प्रार्थना के अन्त में नमस्कार करके देखा कि गोस्वामीजी

बारम्बार चौंक रहे हैं, उनको रोमान्च हो रहा है। हाथ जोड़कर गद्गद् स्वर में-**'नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्मै नमो नमः। यो देवः सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थितः'** इत्यादि स्तोत्र का पाठ कर रहे हैं। फिर उन्होंने कई बार गायत्री मन्त्र का उच्चारण किया, महानिर्वाण-तन्त्रोक्त ब्रह्मस्तोत्र का पाठ किया। इसके बाद कई बार **'जय गुरु, जय गुरु, जय गुरु'** कहा और रोते-रोते वे बिल्कुल अचेत से हो गये। थोड़ी देर तक इसी दशा में रहकर उन्होंने इस भाव को रोका और सिर उठाकर धीरे-धीरे मुझसे कहा-

"परमहंसजी (गोस्वामीजी के गुरुदेव मानससरोवरवासी परमहंस श्रीब्रह्मानन्द महाराज) दया करके तुम्हें यह मन्त्र दे रहे हैं-तुम ग्रहण करो। अब मुझे अलौकिक दुर्लभ मन्त्र प्रदान किया और नाम का अर्थ विस्तार से समझा दिया। इसके बाद शास्त्रमत, गुरु परम्परा से प्राप्त, प्राणायाम दिखलाकर कहा-**इस प्रकार करो तो।** जैसा बताया था वैसा में करने लगा। गोसाईजी ने अब जोर-जोर से **'जय गुरु, जय गुरु, जय गुरु'** कहा। भावावेश से उनका गला भर आया, समाधि लग गई। सचेत होने पर कहा-प्रतिदिन, दोनों वक्त, इसी प्रकार करने का प्रयत्न करो।

मुझे साधन के और कुछ भी उपदेश नहीं दिया। मैं मन ही मन नाम जप करता हुआ कमरे से बाहर आया। मुझे मालूम हुआ कि अब तक मुझसे कम उम्र के सिर्फ फणिभूषण घोष (श्रीकुंज घोष के पुत्र) और गोस्वामीजी के बेटे-बेटियों को उनसे दीक्षा मिली है। मुझे खबर मिली कि जिस समय मुझे दीक्षा दी जा रही थी उस समय श्रीश्रीधर घोष ने बड़ी व्याकुलता से, 'मेरे वीर्य-धारण करने में समर्थ होने के संकल्प से, प्रार्थना की थी। सर्वत्र यह बात प्रसिद्ध है

कि गोस्वामीजी, दीक्षा देते समय दीक्षा लेने वाले के भीतर एक अप्रकट शक्ति का संचार कर देते हैं। किन्तु समझ में नहीं आया, कि उन्होंने मुझमें किसी शक्ति का संचार किया हो। अपनी निजी अभिमत संस्कार, और भाव के अनुकूल मन्त्र मिलने से मुझे बहुत आनन्द आया।

बंगला सन् १२9३, 23 पौष तक

साधन की बैठक।

दीक्षा ग्रहण के बाद मैं गोस्वामीजी के पास जल्दी-जल्दी जाने लगा। स्कूल कॉलेज के छात्र और अदालतों तथा दफ्तरों के बाबू लोग प्रतिदिन गोस्वामीजी के पास पहुँचते हैं। प्रचारक-निवास के पूर्व के उत्तर-पूर्व वाले कमरे में गोस्वामीजी का आसन है। दोपहर को अथवा शाम को जब जाता हूँ तभी गोस्वामीजी को, आसन पर या तो सामने की ओर एकटक देखते पाता हूँ या सीधे बिना हिले-डुले बैठे पाता हूँ। श्रीआशानन्द बाउल और श्रीरामकृष्ण परमहंसजी भक्त श्रीकेदार बाबू प्रतिदिन शाम के पूर्व ही गोस्वामीजी के पास आते हैं। गोस्वामीजी के सामने और दाहिनी ओर उन लोगों के बैठने के लिए निर्दिष्ट आसन हैं। गोस्वामीजी ध्यान में डूबे रहने पर भी ये लोग कृष्णकथा बाँचने लगते हैं, कभी राधा-कृष्ण के प्रेमगीत या गौर संगीत, जो हमें अच्छा नहीं लगता गाते हैं; अतएव जरा-सा मौका मिलते ही अर्थात् उन लोगों का गान-तान बन्द होते ही, हम लोग जोर-जोर से ब्राह्म संकीर्तन शुरू कर देते हैं। इस समय बाउल-वैष्णव लोग भी धीरे-धीरे उठकर चले जाते हैं। संध्या तक इसी तरह समय बीतता है। सन्ध्या समय गोस्वामीजी शौचादि के लिए जाते हैं। वहाँ से आकर वे धूप, धूनी जलाकर स्वयं मँजीरा बजाकर

सन्ध्याकीर्तन करते हैं। इस कीर्तन के बाद दरवाजा बन्द कर दिया जाता है। इस समय गोस्वामीजी के कुछ शिष्यों के सिवा प्रचारक-निवास में और किसी को ठहरने नहीं दिया जाता। गोस्वामीजी ने मुझे बीच-बीच में इस बैठक (गुरुभाईयों का समवेत रूप से बैठकर साधन भजन) में सम्मिलित होने को कहा है; इससे मैं भी 'बैठक' में बैठता हूँ। प्राणायाम आरम्भ होने के पहले ही गोस्वामीजी ने मुझे अपने सामने, दो हाथ की दूरी पर बैठने के लिए कहा। सात-आठ बजे प्राणायाम आरम्भ किया जाता है; और लगातार एक घण्टे तक प्राणायाम होने के बाद, एक गीत गाया जाता है। इसके बाद फिर प्राणायाम किया जाता है। इस प्रकार तीन बार प्राणायाम करने में हमें कोई ढाई तीन घण्टे लग जाते हैं। सिर्फ प्राणायाम में मन लगाते ही, गोस्वामीजी मुझसे नाम में चित्त स्थिर करने को कहते हैं। मुझसे यह किसी तरह नहीं बन पाता कि बाहर तो प्राणायाम करता रहूँ और भीतर मन में नाम-स्मरण करूँ। 'बैठक' में गोस्वामीजी के शिष्यों को जो नाना प्रकार के भावों की तरंग आती है, स्वयं गोस्वामीजी अश्रुपूर्ण नेत्रों से गद्गद् होकर **जय बारोदी के ब्रह्मचारीजी! जय राधाकृष्णजी! जय माताजी! जय गुरुदेव! जय गुरुदेव!** कहते-कहते समाधिस्थ हो जाते हैं, यह सब देखना मुझे बहुत अच्छा लगता है। 'बैठक' के समय इन महात्माओं का आविर्भाव होता है, गोस्वामीजी के शिष्यों में से कभी-कभी कोई उन महात्माओं के दर्शन पाकर अचेत हो जाते हैं। किन्तु मुझे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। हाँ, गोस्वामीजी के मुँह से निकले हुए प्रत्येक शब्द को सुनने से मुझे रोमांच जरूर होता है; भीतर एक ऐसी दशा हो जाती है जिसको प्रकट करने की मुझमें शक्ति नहीं।

मुझे प्रबल कौतूहल हुआ करता है कि सचमुच महापुरुषों का आविर्भाव होता है या नहीं। इस समय लगातार कई दिनों तक मुझे 'बैठक' में आते देखकर गोस्वामीजी ने कहा **छात्रावस्था में मन लगाकर लिखना-पढ़ना ही सर्वप्रथम कर्तव्य है। तुम हफ्ते में एक दिन बैठक में आया करो। यही बहुत है।** अब मैं उनकी बात मानकर हफ्ते में एक दिन ही बैठक में जाया करता हूँ।

यह क्या योगशक्ति है?

छोटे दादा के एक मित्र की माँ की मृत्यु हो गई। उन्हें यह बात न बतलाकर घर तक पहुँचाना आवश्यक था। उनको अपने साथ ले जाकर मैं उनके घर पहुँचा। माँ की मृत्यु की खबर सुनते ही वे रोते-रोते अचेत हो गये। घरवालों का रोना-पीटना देखकर मैं बेचैन हो गया। सोचा कि अगर मेरी माता अकस्मात् चली गई तो मैं क्या करूँगा। माँ मृत्युशैय्या पर पड़ी हुई है, ऐसी एक घबराहट से मैं बेचैन हो उठा। बस, उन्हें देखने को मैं घर के लिए चल पड़ा। कोई पाँच कोस पैदल जाकर घर में देखा कि विचित्र बात है मुहल्ले के प्रायः सभी आदमी हमारे घर पर एकत्र हैं, जगह-जगह दो-दो चार-चार आदमी सिर पकड़े बैठे हुए आँसू बहा रहे हैं, मुझे देखते ही उन्होंने कहा-'माँ चल बसने के करीब हैं। अच्छा हुआ कि तुम आ गये। जाओ, एक बार माँ को देख लो। राह चलने की थकान से मैं बहुत ही सुस्त हो गया था, उस पर माँ को हाथ-पैर पटकते देख मैं बिल्कुल हताश होकर रोने लगा। सोचने लगा कि माँ को यदि गोस्वामीजी बचा लें तो ठीक है, नहीं तो और कोई भरोसा नहीं है। मैं गोस्वामीजी को स्मरण करके बडी व्याकुलता से प्रार्थना करने लगा। उनके पास दौड़कर चले जाने की इच्छा हुई। थोड़ी देर में ही

मेरी एक भतीजी को भी कै-दस्त होने लगा। डॉक्टर ने आकर कहा- 'माँ के बचने की तो आशा नहीं है, किन्त भतीजी की अभी आशा है।' उन्होंने हैजे की कुछ दवाओं की एक लिस्ट बना दी; किन्तु देहात में ये दवाइयाँ नहीं मिल पाई। गोस्वामीजी के पास पहुँचने का यह सुअवसर जानकर, दवा लाने के लिए, मैं माँ को छोड़कर तुरंत ढाका के लिए रवाना हो गया। वहाँ पहुँचते ही सीधा ब्राह्म मंदिर में गोस्वामीजी के पास गया। मुझपर नजर पड़ते ही उन्होंने कहा- **क्यों? इस समय तुम यहाँ हो? क्यों घर नहीं गये? ओह-लगता है, तुम घर से ही आये हो?**

मैंने कहा-मैं सीधा घर से ही चला आ रहा हूँ।

गोस्वामीजी-**बतलाओ, कैसी अवस्था है?**

मैंने कहा-माँ को और एक भतीजी को हैजा हो गया है।

गोस्वामीजी-**तो तुम दवा लेने आये हो?**

मैं-जी हाँ।

गोस्वामीजी-**तो अब देर करना ठीक नहीं। भतीजी क्या छोटी है?**

मैंने कहा-सात-आठ वर्ष की होगी।

सुनकर गोस्वामीजी ने **ओह!** कहकर खेद प्रकट किया और आँखें बन्द कर लीं। वे क्लेशसूचक 'उह, कहकर दो-तीन मिनट तक चुपचाप बैठे रहे' मैं इसी समय, माँ के आरोग्यलाभ के लिए,मन में गोस्वामीजी से प्रार्थना करने लगा। उन्होंने आँखे पोंछकर स्नेहपूर्वक मेरी ओर देखकर कहा-

माँ के लिए घबराओ मत। दवा ले जाओ। उससे गाँववालों का भी भला होगा।

दवा लेकर मैं शीघ्र घर के लिए रवाना हो गया। पूरे रास्ते भर केवल गोस्वामीजी की बातों पर ही करता रहा। मैं इस समय घर से बाहर हूँ, यह देखकर इन्होंने आश्चर्य क्यों प्रकट किया? यह पता कैसे लगा कि मैं गाँव से चला आ रहा हूँ? 'बतलाओ कैसी हालत है?'-बिना कुछ कहे यह प्रश्न क्यों करेंगे? लड़की की बात सुनकर उन्होंने जैसा भाव प्रकट किया है, उससे लगता है कि अब वह जीवित नहीं है। 'दवा से गाँव वालों का भला होगा' तो बतलाया; किन्तु लड़की की चर्चा तक न की। तो उन्होंने दूसरे ढंग से यही न कह दिया है कि यह दवा लड़की के काम नहीं आवेगी। माँ के लिए घबराने को मना कर दिया है। तो शायद माताजी बच जायेंगी? देखना होगा कि ये बातें कहाँ तक ठीक उतरती हैं। मैंने फुर्ती से घर पहुँचते ही सुना कि लड़की तो सवेरे ही चल बसी; किन्तु माँ की अवस्था कुछ सुधर रही है।

धीरे-धीरे माँ स्वस्थ हो गई। इस घटना से गोस्वामीजी के संबंध में मेरे चित्त में एक प्रकार की उथल-पुथल होने लगी। सोचा-तो क्या गोस्वामीजी ज्योतिष जानते हैं? यदि उन्हें ज्योतिष का ज्ञान हो तो भी गणना करने में थोड़ा-सा समय तो लगता ही है; परन्तु यहाँ तो ऐसा नहीं हुआ। तब तो जान पड़ता है कि गोस्वामीजी को योगशक्ति प्राप्त हो गई है। योगशक्ति द्वारा चैतन्यमय ईश्वर के साथ युक्त हो जाने पर सारे विश्व ब्रह्माण्ड की सारी घटनाएँ, यहाँ तक-बहुत ही छोटे परमाणु का प्रत्येक तत्त्व भी प्रकट हो जाता है। जान पड़ता है, उसी शक्ति के प्रभाव से गोस्वामीजी को दूसरों के मन की बात मालूम हो जाती है और वे भविष्य भी बतला देते हैं। फिर सोचा-वह सब उपलब्ध करना क्या इतनी सहज बात है?

गोस्वामीजी का इतने थोड़े समय में उक्त अवस्था को प्राप्त कर लेना क्या संभव है? असल में गोस्वामीजी बहुत ही भले आदमी हैं, इसी से स्वाभाविक रूप में सहानुभूतिवश जो बातें उन्होंने कही थी, वे परिस्थिति के अनुकूल ठीक बैठी, इसी से उनके ऊपर मुझे अन्धविश्वास हो रहा है। जो हो, कुछ निर्णय करने में समर्थ न होकर भी इस घटना से मेरे मन में आश्चर्य उत्पन्न हो गया, और अपने आप गोस्वामीजी पर श्रद्धा उमड़ पड़ी। ज्योंही माताजी तनिक स्वस्थ हुई, त्योंही गोस्वामीजी के दर्शन करने के लिए रवाना हुआ।

पौष कृष्ण १४, शनिवार सं. १९४३

माघोत्सव में अपूर्व काण्ड।

माघ के आरम्भ में ही ब्राह्मसमाज में बड़ी धूमधाम होने लगी। माघोत्सव जितना ही समीप आता जाता है, समाज में उतनी ही भीड़ बढ़ती जा रही है। मैमनसिंह, बरीशाल फरीदपुर आदि भिन्न-भिन्न स्थानों से काफी गणमान्य लोग इस उत्सव के लिए आये हैं। गोस्वामीजी की उपासना में सम्मिलित होने के लिए कलकत्ता और उसके समीपवर्ती स्थानों से अनेकों ब्राह्मसमाजी ढाका आये हैं। कंगाल फकीरचन्द फकीर (हरिनाथ मजूमदार और प्रफुल्ल मुखोपाध्याय) के गीतों का प्रचार आजकल बंगाल में सर्वत्र है। सब जगह उन्हीं की चर्चा है। उनके गीतों को सुन, सभी संप्रदाय वाले मस्त हो जाते हैं। कई दिन हुए, वे लोग भी गोस्वामीजी के साथ उत्सव मनाने ढाका ब्राह्मसमाज मंदिर में, गोस्वामीजी के निवास स्थान पर ही टिके हुए हैं।

सवेरे ब्राह्मसमाज जाकर देखा कि प्रचारक निवास में लोगों की खूब भीड़ है। गोस्वामी सामने बैठे हुए कंगाल फकीरचन्द एवं फकीर

बड़ी उमंग के साथ, भाव में मस्त होकर जोर-जोर से गा रहे हैं, भावार्थ है, 'माँ, नहीं हूँ मैं वैसा बेटा। जिसके पास है साधन का बल, वह क्या डरता है माँ तेरे डराने से?' कमरे के भीतर-बाहर सभी चुपचाप एक ही दशा में बैठे हुए हैं, कोई हिलता-डुलता तक नहीं, अकेले गोस्वामीजी अपने आसन पर खड़े हैं। उनकी दृष्टि सामने की ओर स्थिर है, पलकों का गिरना बन्द है, तारों की तरह उज्ज्वल आँखें चमक रही है। मुँह कुछ फूल सा गया है, ओंठ काँप रहे हैं। दोनों गालों पर लगातार आँसू बह रहे हैं। उनका बायाँ हाथ छाती पर है, दाहिना हाथ करमुद्राबद्ध दशा में मस्तक के ऊपर रखा हुआ है। वे बार-बार चौंक उठते हैं, शरीर रोमांच हो रहा है। बीच-बीच में जोर-जोर से **'हरि बोल, हरि बोल'** कहकर ऊपर को कोई डेढ़, दो हाथ तक उछल जाते हैं, फिर स्थिर भाव से पल भर खड़े रहकर, सिर से पाँव तक थरथर काँपने लगते हैं, गिरते देखते ही श्यामाकान्त पण्डितजी संभाल लेते हैं। थोड़ी ही देर में गोस्वामीजी खिलखिलाकर हँस पड़े। उनका ऐसा हँसना भी विचित्र घटना है। जोरों से खिलखिलाने की अद्भुत ध्वनि से कमरा मानो काँपने लगा। लगातार हँसी का वेग बढ़ने लगा। लगातार खिलखिलाने के शब्द से मेरे शरीर में काँटे उभर आए, मैं अवसन्न हो पड़ा। ऐसी हँसी-मैंने जिन्दगी में कभी नहीं सुनी। लगातार सात-आठ मिनट तक गोस्वामीजी इसी तरह हँसते रहे, किन्तु इस दशा में भी उनकी आँखों से आँसू भी बहते रहे, बल्कि और भी अधिक वेग से बहकर उनके वक्षःस्थल को भिगोने लगे। अब अकस्मात् हँसना बन्द हो गया। सतृष्ण दृष्टि से सामने की ओर देखकर वे बारम्बार चौंकने लगे, फिर माथे पर रखे हुए दाहिने हाथ को सामने

की ओर करके तर्जनी अँगुली से दिखाते हुए, गद्गद भाव से, जोर-जोर से कहने लगे।

वह देखो, वह देखो-तुम सब लोग देख लो-वह देखो पगला आया है। वो देखो पगला खड़ा है। पगला जाना चाहता है। (दो चार कदम बढ़ाकर बड़ी जोर से कहा) पकड़ो, पकड़ो, नहीं फिर लौट रहा है। देखो, देखो पगला इसी ओर आ रहा है, वह देखो, वो रहा वो। वाह, कितना बड़ा बैल है! वह देखो कैसा है-वाह, उसके माथे पर एक आँख है, उसकी कैसी ज्योति है! सूर्य की तरह-यह तो सूर्य ही है! वाह यह क्या है? ओफ कितने बड़े सींग है। लो वह देखो नन्दीभृन्गी है। मैंने समझा था, वे कोई नहीं है। पगले के साथ वे लोग तो इसी ओर आ रहे हैं। चौंककर, दो चार कदम पीछे हटकर, सामने की ओर दृष्टि को स्थिर रखे हुए हाथ जोड़े काँपने लगे और नमस्कार करते-करते कहने लगे-**जय माँ! जय माँ! सब लोग देख लो, मेरी माता आई है, धन्य माँ! धन्य माँ! ओहो, न जाने कितने योगी और ऋषि माता के चारों ओर नाच रहे हैं। वह देखो श्रीचैतन्य, वाल्मीकि, नारद और वशिष्ठ आदि; और भी न जाने कितने लोग हैं-मैं उनके नाम नहीं जानता। ओहो, घर के सामने का आँगन भर गया! ये लोग कितना आनन्द कर रहे हैं! हमारी माता को पाकर आनन्द कर रहे हैं! अहा यहाँ तो सभी हैं; मेरे परिचित न जाने कितने लोग हैं। वाह और तमाशा देखो-माँ भी सबके साथ नाच रही है! वह देखो, माँ मुझे बुला रही हैं।** अब वे उछल-उछलकर कूदने लगे। फिर नीचे गिरकर, साष्टांग प्रणाम करके स्थिर होकर बैठ गये। आँखों से लगातार आँसू बहने लगे, रह-रहकर पहले की तरह

खिलखिलाकर हँसने लगे। थोड़ी ही देर में उनको समाधि लग गई। सब लोग अवाक् और स्तम्भित हो गये। ग्यारह बजे तक जब गोस्वामीजी की समाधि टूटते न देखकर, सभी लोग धीरे-धीरे उठकर अपने अपने स्थान को चले गये। मैं भी अपने डेरे को लौट गया।

घर लौट आने के बाद कई घण्टे तक चित्त खूब सरस और प्रफुल्लित बना रहा; फिर धीरे-धीरे मन आंदोलित होने लगा। मन में आया-'गोस्वामीजी यह सब क्या करते हैं? निराकारवादी ब्रह्मज्ञानियों के प्रधान आचार्य होकर, सहज ही ब्राह्ममंदिर में खड़े होकर, पौत्तलिकता का प्रचार कर रहे हैं। नन्दीशृंगी, वाल्मीकि नारद आदि का दर्शन और समय समय पर उनकी स्तुति आदि-यह सब है क्या? शिक्षित भले आदमियों के बीच विशेषतः ब्राह्म लोगों के समाजमंदिर में बैठकर, उन्हीं के सामने यह आलतू-फालतू बकवास करना, क्या स्वाभाविक मस्तिष्क का लक्षण है? यह सब देखकर भी ब्राह्म लोग कुछ कहते क्यों नहीं हैं? मैं बहुत ही उत्तेजित और अधीर होकर नवकान्त बाबू, रजनी बाबू आदि के यहाँ गया और जाते ही मैंने यह चर्चा छेड़ दी। उन लोगों ने कहा-'माघोत्सव हो जाय, फिर इन बातों के संबंध में आन्दोलन छेड़ा जाएगा। इस समय कुछ गड़बड़ न करना ही अच्छा है।'

११ माघ, रविवार बं.सं.१2४3

भोजन के समय भाव-वैचित्र्य-अपूर्व उपासना।

भोजन के बाद लगभग डेढ़ बजे मैं ब्राह्मसमाज मंदिर गया। प्रचारक निवास में जाकर अद्भुत दृश्य देखकर मैं दंग रह गया। गोस्वामीजी के बहुत से योग मतावलम्बी, फकीरचन्द के कुछ

आदमी, और कई ब्राह्मसमाजी बैठे हुए हैं। ये सभी भोजन करने बैठे थे। दाल, भात सब्जियाँ आदि भोजन की सामग्री सबके आगे परोसी रखी है, किन्तु कोई भोजन नहीं कर रहा है। सब के सब भाव में मस्त हुए बैठे हैं। श्रीकुंजलाल नाग अकेले गा रहे हैं और स्वयं मृदंग बजा रहे हैं। उन्हें भी बाहरी चेतना नहीं है। परन्तु बराबर दोनों हाथों की थाप ठीक मृदंग पर पड़ रही है, दृष्टि गोस्वामीजी पर स्थिर है, ऊँचे स्वर से गा रहे हैं और मस्त होकर उछल रहे हैं, मृदंग से आज मानो एक अपूर्व ध्वनि निकल रही है, गीत की तो बात ही क्या। ऐसा मालूम होने लगा कि बहुत से मृदंग एक ही ताल पर बज रहे हैं और बहुत से आदमी एक स्वर से गा रहे हैं। ऐसी विचित्र घटना मैंने कहीं नहीं देखी। जो लोग भोजन करने बैठे थे, उन्हें दो-चार कौर खाते ही सुध-बुध न रही। कोई हाथ का कौर हाथ में लिये बैठा है, कोई पत्तल पर ही गिर पड़ा है, कोई मुँह में भात का कौर लिए हुए ही अचेत हो गया है और कुछ होश में आते ही कोई-कोई उस दाल-भात आदि को मजे से अपने देह में मल रहा है। किसी के लगातार आँसू बह रहे हैं, कोई काँपता हुआ बार-बार चौंक सा पडता है। किसी किसी का तेजी से श्वास-प्रश्वास चल रहा है, और किसी किसी के मुँह से एक अद्भुत सा शब्द निकल रहा है। शिक्षित ब्राह्मसमाजियों का भी इस प्रकार का आचरण एवं असम्भव भाव देखकर यह सब मुझे भूतों का नृत्य जान पड़ा। किसी-किसी को जूठी पत्तल और थाली पर गिरते देखकर, मैंने झटपट थाली और पत्तल को हटा लिया। महाभाव की तरंग और भी बढ़ गई। मृदंग की ध्वनि और गायन की ध्वनि मानो चौगुना बढ़ गये। बगल के कमरे के भीतर स्त्रियाँ भी मस्त हो गईं। उनके रोने-

चिल्लाने, ‘आह, ऊह’ करने और बहुत फुफकारने जैसी अद्भुत ध्वनि उत्पन्न होने लगी। बार-बार प्राणायाम के शब्द से कमरा परिपूर्ण हो गया। आज भीतर-बाहर का अंतर नहीं रह गया-सब एकाकार हो गया। खुली जगह में सबके सामने प्राणायाम की स्वतः श्वासक्रिया चलने लगी। बरामदे में और आँगन में लोगों की भी नाना प्रकार की अवस्थाएँ हो रही हैं। जान तो पड़ता है कि किसी को बाह्य ज्ञान नहीं है। कोई हँसता है, कोई रोता है और कोई विकट रूप से चिल्ला रहा है। कुछ लोग स्तंभित से बैठे हुए हैं। बाहरी चेतना न रहने पर गोस्वामीजी गिर पड़े। कंगाल फकीरचंद वगैरह भी साष्टांग होकर पड़े रहे। कुंज बाबू के भीतर असाधारण शक्ति प्रविष्ट हो गई। वे भाव में मस्त होकर कूदते हुए मृदंग बजाकर गीत गाने लगे जिधर देखो उधर भाव की गंगा बहने लगी। इस समय मृदंग अथवा गाने का शब्द मैं कुछ भी नहीं समझ पा रहा था। एक प्रकार की विचित्र, दिगन्तव्यापी ध्वनि का तूफान सा चलने लगा और रह-रहकर उसके झोंके से मेरा शरीर भी काँपने लगा। भीतर-बाहर अच्छी खासी हलचल मच गई। मुझे भी और किसी ओर देखने का अवसर नहीं मिला। पता नहीं, इस तरह कितना समय बीत गया। कुछ देर में देखा कि दिन ढल गया है और गाना भी बन्द हो गया है। गोस्वामीजी अपने आसन पर बैठे हुए हैं, मतवालों की तरह शरीर ढीला छोड़कर कभी दाहिनी बाईं ओर और कभी सामने की ओर झूम-झूम लुढ़क पड़ते हैं। बीच-बीच में आँखें खोलकर इधर-उधर देख लेते हैं। चारों ओर सन्नाटा है! गोस्वामीजी धीरे-धीरे कहने लगे-**बहुत ही अथाह महासमुद्र के एक चुल्लू भर पानी में आज हम जा पड़े थे। ओह समुद्र की तीव्र तरंगे हैं। एक ही**

धक्के में फिर किनारे पर ला पटका। अहा, जो लोग इस महासमुद्र में एक बार पहुँच जाते हैं। वे तरंग के साथ-साथ न जाने कितना नृत्य करते हैं, कितना आनन्द पाते हैं!-इत्यादि।

संध्या होते ही ब्राह्मसमाज-मंदिर और उसके चारों ओर के बरामदे लोगों से भर गये। गोस्वामीजी ठीक समय पर प्रचारक निवास से निकले और भाव में मग्न होकर झूमते हुए ब्राह्मसमाज मंदिर की वेदी पर जा बैठे। चन्द्रनाथ बाबू ने हारमोनियम बजाकर मीठे स्वर में गीत गाया। उद्बोधन आरम्भ करते ही भावावेश से गोस्वामीजी का गला रुँध आया। चन्द्रनाथ बाबू फिर गाने लगे। प्रार्थना के समय गोस्वामीजी भगवान को बहुत ही दीनतापूर्वक पुकारते हुए रोने लगे। मंदिर के भीतर और बाहर लोग स्तब्ध रहे। ऐसा जान पड़ा कि भगवान के आविर्भाव से उत्पन्न सजीव भाव से समग्र ब्राह्मसमाज मंदिर और उसके चारों ओर परिपूर्ण हो गया। गोस्वामीजी कहने लगे-

माँ, आ गई? तुम्हारे साथ तो कितने लोग हैं। ये बहुत से मुनि, ऋषि और साधु महात्मा तुम्हारे साथ हैं! माँ, ये लोग तुम्हारे चारों ओर बड़े आनन्द से नृत्य कर रहे हैं। यहाँ तो मेरे परिचित भी कई लोग देख रहा हूँ। माँ, मुझे बुलाती क्यों हो? मैं कहीं वहाँ पहुँच सकता हूँ? तुम दया करके मुझे हाथ पकड़कर ले जाओगी? मुझमें तो जाने की शक्ति ही नहीं है और मैं जाऊँ कहाँ? वहाँ? ऐसा नहीं हो सकता? क्यों माँ, मुझे क्या धोखा दे रही हो? मुझमें सामर्थ्य ही कहाँ कि वहाँ जा सकूँ, उस स्थान पर बैठ सकूँ? माँ, वहाँ पर मुझे बैठने दोगी, यह बार-बार क्यों कह रही हो? मैं तो बड़ा पापी हूँ। माँ, उन ऋषि-मुनियों के

सामने मैं कैसे बैठूँ?-इस प्रकार थोड़ी देर तक कहकर गोस्वामीजी अचेत हो गये। अब लगातार गायन होने लगा, लेकिन गोस्वामीजी की चेतना नहीं लौटी। अब समाज का कार्य बन्द हुआ, एक-एक करके सब लोग चले गये। वेदी पर गोस्वामीजी एक ही तरह से अचेत अवस्था में बैठे रहे। पता नहीं, उनकी यह दशा रात को कितनी देर तक रही।

१२ माघ सोमवार

इस बार माघोत्सव में अद्भुत दृश्य देख रहा हूँ। इतनी अधिक संख्या में लोग आते हैं कि समाज के प्रांगण में उनको बैठने को जगह ही नहीं मिलती। सभी श्रेणियों के धर्मार्थियों को गोस्वामीजी की ओर आकर्षित होते देखकर, हम लोग समझते हैं कि ब्राह्मसमाज की ही शोभा बढ़ रही है। दस लोगों से बातचीत, चर्चा करते समय भी हम लोग गोसाईजी पर गर्व अनुभव करते हैं कि ब्राह्मसमाज में गोस्वामीजी जैसे पुरुष हैं। गोस्वामीजी आजकल किस धर्म का आचरण कर रहे हैं। और वे साकार मत के पक्ष में हैं या निराकार, कुछ समय तक कुछ समझ नहीं आता। खुली सभा में खड़े होकर यदि वे अपना धर्ममत स्पष्टतः बता दें, तो मन का खटका दूर हो जाय। इसी उद्देश्य से हम लोगों ने 'साकार और निराकार उपासना' पर व्याख्यान देने का उनसे अनुरोध किया। किन्तु वे इस विषय पर व्याख्यान देने को वे राजी नहीं हुए। 'पौत्तलिकता और ब्रह्मज्ञान के संबंध में कुछ कहने को भी वे तैयार नहीं हुए। अन्त में जब उनसे 'ब्रह्मोपासना' के संबंध में अपनी राय प्रकट करने को कहा गया तब उन्होंने 'ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मवादी' विषय पर व्याख्यान देना स्वीकार किया। हम लोगों ने भी शहर में

सर्वत्र इसका विज्ञापन दे दिया। आज ही शाम को उनका व्याख्यान होगा।

अव्यक्त वक्तृता।

अपराह्ण ही समाज में जाकर देखा कि मंदिर और बरामदे में तिल रखने की भी जगह नहीं है। चारों ओर जगह भी भर गयी है। बहुत से लोग इस भीड़भाड़ के मारे समाज से इसलिए लौटे जा रहे हैं कि व्याख्यान सुनने मिलेगा ही नहीं। रोमन कैथोलिक गिरजे के सुप्रसिद्ध पादरी वर्नार्ड साहब भी आये और एक कोने में चुपचाप बैठे हैं। संध्या होने के थोड़ी देर बाद गोस्वामीजी व्याख्यान के स्थान पर आ खड़े हुए। सबको हाथ जोड़कर अभिवादन करके इस प्रकार कहने लगे-**प्राचीन समय में वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, सनक, सनातन आदि ब्रह्मर्षियों ने जिस ब्रह्म की उपासना की थी, जिस ब्रह्म की महिमा का वर्णन करने में शास्त्र-पुराण, वेद-पुराण और उपनिषद आदि पार न पाकर 'अव्यक्त अनिर्वचनीय' कहकर ही मौन हो गए हैं, उसी महत् ब्रह्म के बारे में मुझ, तुच्छ से भी तुच्छ, अज्ञानी के मुँह से सुनने के लिए आप पधारे हैं।'** इत्यादि कहकर वे बच्चे की तरह रो पड़े। बारम्बार चेष्टा करने पर भी, वक्तृता देते ही रोने के वेग को रोकना जब उनके वश में न रहा, तब वे बैठ गये। पाँच-छ: मिनिट के बाद फिर बोलना आरम्भ किया। इस बार भी महर्षियों के ध्यानगम्य, परात्पर परब्रह्म के विषय में दो-चार बातें कहते ही उन्हें रोना आ गया। एक एक बार कहने की कोशिश करते, किन्तु बार-बार रुक जाने लगे, अन्त में भाव के अदम्य आवेग को न रोक सकने पर, मुँह में कपड़ा ढँककर वे बैठ गये। इस अवस्था में थोड़ा समय बीतने पर वे, बैठे-बैठे ही रोते हुए

हाथ जोड़कर सबसे कहने लगे-**आज आप लोग मुझे आशीर्वाद दीजिए। आप सभी लोग दया करके मेरे सिर पर पदाघात करके मेरे अहंकार को चूर्ण कर दीजिए। मैं बड़ा अभिमानी हूँ-मैं भला उनका वर्णन करूँगा। मैं जानता ही क्या हैं? मैं तो राख या धूल हूँ।** इस प्रकार कहकर उस अनादि, अनन्त, एकमात्र अद्बितीय पुराण पुरुष की स्तुति के कुछ श्लोक पढ़ते ही भावावेश से उनका गला भर आया। अस्फुट भाषा में, भावमग्न अवस्था में सिर्फ 'त्वं हि, त्वं हि' कहते-कहते उनकी समाधि लग गई।

जनपूर्ण ब्रह्मसमाज बिल्कुल शांत था। गोस्वामीजी के 'त्वं हि, त्वं हि' कहते ही न जाने क्या हो गया। सभी लोग गोस्वामीजी की ओर बड़ी उमंग से ताकते हुए अवाक् हो गये। इसी तरह ५-७ मिनट बीत गये। अब चन्द्रनाथ बाबू हारमोनियम बजाकर गाने लगे। गोस्वामीजी को चेतना नहीं लौटी। धीरे-धीरे सभी लोग उठकर खड़े हो गये। लोगों के झुण्ड के झुण्ड, समाज मंदिर के अहाते में, जगह-जगह पर एकत्र होकर बात-चीत करने लगे। व्याख्यान सुनने से जो उपकार होता है, उसकी अपेक्षा अधिक लाभ मुझे आज गोस्वामीजी की दशा देखने से हुआ। धन्य है ब्राह्मसमाज।

20 माघ मंगलवार

आसन को नमस्कार करने का कुसंस्कार।

गोस्वामीजी मैमनसिंह घूमकर ढाका लौट आये हैं। उनके दर्शन हेतु में प्रचारक-निवास में पहुँचा; वे शौचादि के लिए गये थे। मैं उसी कमरे में बैठ गया। थोड़ी देर में श्रद्धेय श्रीमनोरंजन गुह ठाकुरता भी आ गये। उन्होंने गोस्वामीजी के खाली आसन के सामने जाकर, माथा टेककर, नमस्कार किया। उन्हें आज इस खाली आसन को

नमस्कार करते देख, मैं नाराज हो गया। मुझसे रहा न गया। मैंने पूछा-'आप तो कट्टर ब्राह्म हैं?' वहाँ पर नमस्कार किसलिए किया? उन्होंने उत्तर दिया-'आनुष्ठानिक ब्राह्म हूँ, तो क्या गोस्वामीजी को नमस्कार भी न करूँ?'

मैंने कहा-वहाँ गोस्वामीजी हैं कहाँ? वे तो शौचालय में हैं।

मनोरंजन बाबू बोले-जहाँ भी हो, मैंने तो वहाँ पर गोस्वामीजी का स्मरण करके ही माथा झुकाया है। मैं नहीं समझता कि इसमें कुछ दोष होता है।

मैंने कहा-'ब्राह्मसमाज में बैठकर आप यह बात कहने का साहस करते हैं? तो फिर हिन्दुओं को अन्धविश्वासी, कुसंस्कारी, क्यों कहते हैं?' इन्हीं बातों पर अब मेरी मनोरंजन बाबू से बहस छिड़ गई।

इसी बीच गोस्वामीजी शौचादि से निवृत्त होकर बगल वाले कमरे में जलपान कर रहे थे। हम लोगों का एक दूसरे की बात काटना सुनकर उन्होंने अपनी सास (श्रीमुक्तकेशी देवी हमारी नानी माँ) से कहा-**'इन लोगों को आप बतला दें कि अब कोई खाली आसन के सामने नमस्कार न करे। इस काम के लिए फिर आलोचना और अशान्ति होगी।'** अब वहाँ बैठा रहना मुझे अच्छा न लगा। मैं नवकान्त बाबू के घर चला गया। वहाँ पर कई ब्राह्मसमाजी मौजूद थे। मैंने उन लोगों को ये सब झगड़ा कह सुनाया। और भी दस-पाँच बातों का उल्लेख करके मैंने कहा कि प्रचारक निवास में पौत्तलिकता का प्रवेश हो चुका है। उन लोगों ने मुझे ऐसा कहकर सावधान कर दिया कि 'गोस्वामीजी से योगधर्म की दीक्षा ले लेने पर अच्छे-अच्छे लोग भी बिगड़ जाते हैं, उनकी

ऐसी ही दुर्दशा होती है।’

ब्राह्मसमाज में आन्दोलन-गोस्वामीजी का पदत्याग करने का संकल्प।

(माघ महिने के अन्त तक)

अब देखता हूँ कि गोस्वामीजी के क्रियाकलापों और साधन-भजन के संबंध में, सभा-समिति करके, ब्राह्मसमाज में बड़ा आन्दोलन आरम्भ हो गया। ‘गोस्वामीजी जिस तरह चल रहे हैं, उसको देखते हुए अब उनके द्वारा प्रचारक का काम नहीं निभता। निर्जनता-प्रिय गोस्वामीजी की ध्यान-धारणा-समाधि से ब्राह्मसमाज का तनिक भी लाभ नहीं हो रहा है। अब उनके द्वारा समाज की उन्नति होने की आशा नहीं रही। व्यक्तिगत रूप से वे कुछ भी करें, किन्तु जब वे प्रकट रूप से गुरुवाद को मानते हैं, उन्नीसवीं शताब्दी के उच्च शिक्षित समाज के नेता होकर भी, जब वे बिल्कुल अज्ञानी की तरह ‘शास्त्र अभ्रान्त हैं’ यह मत भी प्रचारित कर रहे हैं, तब भला उनके द्वारा इस समाज के श्रीवृद्धि की आशा कहाँ रही? जब असाम्प्रदायिक ढंग से धर्मप्रचार करना है, तब ‘ब्राह्म-धर्म-प्रचारक’ नाम? हिन्दू देवी-देवताओं, हिन्दुओं की आचार पद्धति और हिन्दू प्राचीन कुसंस्कार के विरुद्ध कुछ कहना तो दूर रहा, अब तो वे समय-समय पर उलटे इन्हीं बातों को प्रश्रय देते हैं। इस दशा में गोस्वामीजी की बदौलत ब्राह्मसमाज का भयंकर अहित हो रहा है। ऐसी बातों की चर्चा ब्राह्मसमाजियों के खुली सभाओं में और जिन ब्राह्मसमाचारपत्रों का अधिक प्रचार है, उनमें भी होने लगी है। अब अधिकांश ब्राह्मसमाजियों की यह इच्छा है कि प्रचारक का कार्य गोस्वामीजी न करें।

सुना गया कि गोस्वामीजी अपना अभिप्राय प्रकट कर रहे हैं कि वे प्रचारक के पद से अलग होकर स्वाधीन रूप से, उदासीन रहकर, अपने अवशिष्ट जीवन को एकान्त स्थान में साधन-भजन करने में बितायेंगे। वे शीघ्र ही गया के आकाशगंगा पहाड़ पर चले गये।

फाल्गुन १२९३

बारोदी के ब्रह्मचारी की बातें।

आज रात को साधन बैठक में शामिल होने के विचार से, स्कूल की छुट्टी होते ही मैं प्रचारक-निवास में पहुँचा। मैंने गोस्वामीजी के आसन के पास एक जोड़ी खड़ाऊँ रखी देखी। उस समय गोस्वामीजी आसन पर नहीं थे। खड़ाऊँ खूब बड़ी और पुरानी थी। मैंने उन्हें हाथ में उठाकर पूछा-'यह खड़ाऊँ किसकी हैं?' गोस्वामीजी की सास ने कहा- 'ब्रह्मचारी ने गोसाईंजी को दी है।' मैंने पूछा-ये कौन ब्रह्मचारी हैं? उन्होंने तनिक अचरज से कहा-'तुमने ब्रह्मचारीजी की चर्चा नहीं सुनी? समाधि लगाने पर गोस्वामीजी को मालूम हुआ कि बारोदी नामक स्थान में एक महापुरुष गुप्त रूप से रहते हैं। इसके बाद गोस्वामीजी उनके दर्शन करने गये। ब्रह्मचारीजी की आयु इस समय १५६ वर्ष की है। उन्होंने अपना परिचय देकर कहा है कि वे गोस्वामीजी के पितामह के चाचा लगते हैं। पूर्वजों के चिह्नस्वरूप उन्होंने यह खड़ाऊँ की जोड़ी और एक कम्बल गोस्वामीजी को दिया है।' ब्रह्मचारीजी के बारे में जानने की मुझे बड़ी उत्सुकता हुई। साधन-बैठक में बैठकर रात को शिष्यों के साथ प्राणायाम करते समय गोस्वामीजी अक्सर गद्गद होकर-**'जय ब्रह्मचारी! जय रामकृष्ण परमहंस! जय माताजी! जय**

परमहंसजी! जय गुरुदेव! जय गुरुदेव।' कहते-कहते समाधिस्थ होकर लुढ़कने लगते हैं। उस समय महापुरुषों का आविर्भाव होने से गुरुभाईयों के भीतर अद्भुत भाव की तरंग और अलौकिक अवस्था आदि का विकास देखता हूँ। तो क्या यही ब्रह्मचारीजी उन महापुरुषों में से एक हैं? एक भजनानन्दी गुरुभाई से ब्रह्मचारीजी के संबंध में पूछा तो उन्होंने कहा-कुछ दिन हुए, समाधिस्थ अवस्था में गुरुदेव को पता लगा कि बारोदी में एक महापुरुष हैं। उसी समय ब्रह्मचारीजी ने भी गोस्वामीजी का समाचार जानकर हमारे किसी गुरुभाई से कहा-'क्या गोसाईं एक बार आकर हमें दर्शन न देंगे? वे न आएँगे तो हमें ही जाना पड़ेगा। सुना है कि वे बड़े भले आदमी हैं, उनके साथ हमारा कोई रिश्ता भी हो सकता है।' ऐसा न होता तो उनकी ओर मुझे इतना प्राणों का आकर्षण नहीं होता? शिष्यों के मुँह से यह सुनकर गोस्वामीजी उन ब्रह्मचारीजी के दर्शन करने गये थे। उस समय जो कुछ पता लगा उससे और विस्तारपूर्वक सब जानने को मैं बहुत ही उत्सुक हो उठा।

बारोदी से लौटकर गोस्वामीजी इन गुप्त महापुरुष ब्रह्मचारीजी को सब लोगों में प्रकट करने लगे। ढाका, विक्रमपुर, मैमनसिह, फरीदपुर स्थानों से शिक्षित, भले लोग झुंडों में अब ब्रह्मचारीजी के दर्शन करने बारोदी जाते हैं। थोड़े ही दिनों में पूरे पूर्वी बंगाल में ब्रह्मचारीजी का नाम प्रसिद्ध हो गया है। ब्रह्मचारीजी के सम्बन्ध में जो घटनाएँ मैं सुनता हूँ उन पर मुझे विश्वास नहीं होता। इच्छा है कि यदि कभी उनके दर्शन मिल जाएंगे तो साक्षात् उन्हीं के मुख से उनके जीवन का अद्भुत वृत्तान्त सुनकर 'डायरी' में लिख लूँगा।

१ ज्येष्ठ, रविवार

दरभंगा में गोस्वामीजी को बीमारी। जीवन संकट।

स्कूल की छुट्टी है, इससे घर चला आया हूँ। बहुत दिनों से गोस्वामीजी की कोई खबर नहीं मिली। गुरुभाईयों के पास जाने के लिए मैं बहुत ही बेचैन हो गया। अंततः ढाका चला गया। शंकरटोला के गुरुभाई-डाक्टर प्रसन्नकुमार मजूमदारजी के घर के सामने अपने एक मित्र के घर पर, मैं जाकर रुका। सवेरे मैं खिड़की खोलकर बैठा था कि प्रसन्न बाबू के घर से बहुत लोगों की आवाजें सुनाई पड़ी। राम मजूमदारजी ने मुझे देखकर पूछा-'क्या आपको गोस्वामीजी का कुछ समाचार मालूम है? वे बहुत बीमार हैं।' यह सुनते ही मैं डाक्टर साहब के घर दौड़ा गया। पहुँचकर देखा कि वहाँ अलग-अलग स्थानों में, अनेक झुण्डों में, गुरुभाई-बहन गोस्वामीजी की चर्चा कर रहे हैं, कोई तो रो भी रहे हैं। विस्तृत जानकारी के लिए आतुर होकर मैंने राम बाबू से पूछा तो उन्होंने कहा-'दरभंगा में गोस्वामीजी को डबल निमोनिया हो जाने से दोनों फेफड़े खराब होने लगे हैं। हालत बहुत नाजुक है। गोस्वामीजी के घर के लोग, योगजीवन, कुंज घोष, प्रसन्न बाबू ये सभी कल ही दरभंगा को चले गये हैं। कल सवेरे हम लोगों ने यहाँ से अर्जेंट तार भेजा था, किन्तु अभी तक कुछ खबर नहीं मिली। न जाने क्या हुआ होगा।' गोस्वामीजी की इस अवस्था की बात सुनकर मेरा दिल धड़कने लगा, खूब रोना आया। लौटकर मैंने कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया। सात बजे से लेकर कोई एक बजे तक मैंने लगातार रोते-रोते भगवान् के चरणों में और गोस्वामीजी के गुरु परमहंसजी से उन्हें स्वस्थ कर देने लिए प्रार्थना की। भीतर जलन सी होने लगी। मेरे लिए संसार अँधेरा सा लगने लगा। गोस्वामीजी के अच्छे

हो जाने का संवाद पाने के लिये दिन-रात बड़ी बेचैनी से समय कटने लगा।

आकाशमार्ग से ब्रह्मचारीजी का दरभंगा जाना।

दरभंगा में इस बार जिस तरह गोस्वामीजी स्वस्थ हुए, वह अद्भुत वृत्तान्त है। शुक्रवार सवेरे तार मिला-'गोस्वामीजी की हालत खराब है। डबल निमोनिया होने से दोनों फेफडे सड़ने लगे हैं, बचने की आशा नहीं है।' तार पाते ही उस दिन गोस्वामीजी के घर के सब लोगों के साथ कुछ गुरुभाई दरभंगा को रवाना हो गये। इधर हमारे गुरुभाई श्रद्धेय श्यामाचरण बख्शी, यह बुरी खबर पाते ही, ब्रह्मचारीजी के पास बारोदी जा पहुँचे। उन्होंने ब्रह्मचारीजी के चरणों में गिरकर हाथ जोड़े हुए रोते हुए कहा-'आप दया करके हमारे गुरुदेव को बचाइए। मेरे जीवन का आधा हिस्सा लेकर उनको बच्चा दीजिए।' ब्रह्मचारीजी ने कहा-'यदि वे चले ही गये तो मैं तो हूँ।' गुरुगतप्राण सीधे-साधे बख्शीजी ने कहा-'हम लोग आपको नहीं चाहते, हमको तो गुरुदेव ही चाहिए।' उनकी निष्कपट गुरुभक्ति देखकर ब्रह्मचारीजी थोड़ी देर के लिए ध्यानमग्न हो गये। फिर एक गहरी साँस छोड़कर बोले-वक्त पूरा हो गया। तब तू आया है। अब क्या हो सकता है? मैंने तो उनको कमरे में नहीं देखा। या उनके गुरुजी ने उन्हें बिना ही देह के बने रहने की शक्ति दी है। अच्छा, अब तू जा; अगर मंगलवार तक तार आ जावे तो समझना कि डर नहीं है। चिंता मत करना। मैं वहाँ जा रहा हूँ। ब्रह्मचारीजी ने आसन से उठकर सबको बुलाकर कह दिया-'जितने दिन तक भीतर से दरवाजा न खोलूँ, कोई न तो इस दरवाजे को दस्तक देना और न इसे खोलने की कोशिश करना।' ब्रह्मचारीजी ने कमरे के भीतर

जाकर दरवाजा बन्द कर दिया।

उस दिन ढाका से भी पूर्वोक्त सब लोग दरभंगा जा रहे थे। ग्वालंद के जहाज पर सवार होकर सब लोग उदास बैठे हुए थे, कोई रो रहा था। अकस्मात् योगजीवन ने आकाश की ओर अँगुली दिखाकर कहा-'वह देखो, ब्रह्मचारीजी भी दरभंगा जा रहे हैं।' उन्होंने हाथ हिलाकर मुझसे कहा-'हम भी दरभंगा जा रहे हैं। तुम लोग चिन्ता मत करो, कोई डर नहीं है।' नानी माँ ने भी दरभंगा पहुँचकर देखा था, कि पास के कमरे में बैठे हुए ब्रह्मचारीजी, गोस्वामीजी की ओर देख रहे हैं। मंगलवार तक ढाका के गुरुभाई लोग तारघर की ओर दौड़-धूप करते रहे; खबर मिली कि गोस्वामीजी को आराम हो रहा है, वे अच्छे हो रहे हैं।

गोस्वामीजी का दरभंगा आदि स्थानों में ठहरना।

गत फागुन महीने से लेकर आषाढ़ तक गोस्वामीजी ढाका में नहीं थे। अतएव उनका इस समय का, कुछ भी विवरण मैं डायरी में नहीं लिख पाया। गुरुभ्राता श्रीकुंजबिहारी गुह ठाकुरता और श्रीज्ञानेन्द्रमोहन दत्त ने अपनी डायरियों में गोस्वामीजी की इस समय की अद्भुत घटनाएँ साफ-साफ लिख ली थीं। उनकी डायरियाँ देखकर मैं इस स्थान पर थोड़ा सा आभास लिखे लेता हूँ कि गोस्वामीजी किस समय, कहाँ एवं किस तरह थे। १० फाल्गुन को गोस्वामीजी पश्चिम जाने की इच्छा से कलकत्ते को रवाना हुए। वहाँ एक दिन ठहरकर दूसरे दिन श्यामनगर पहुँचे। वहाँ से नाव में बैठकर चूँचुडा गये, बुधवार को महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर से भेंट की। महर्षि ने गोस्वामीजी को देखकर बहुत ही आनन्द प्रकट करके कहा-'अहा! सभी कहते हैं कि गोस्वामी पागल हो गये हैं, पौत्तलिकों

का सा व्यवहार करते हैं, किन्तु ये पागल नहीं है। मैं तो इन्हें धूप धूनी की सुगन्ध से आवृत उज्ज्वल दुर्गाजी की मूर्ति की तरह देख रहा हूँ।'

इसी समय महर्षि के पास एक चिट्ठी आई। किसी प्रसिद्ध ब्राह्म ने कुछ प्रश्न पूछा था, 'आपने एकान्त स्थान में बहुत समय तक रहकर धर्मसाधन किया है, इससे आपको क्या मिला? और इस संबंध में आप क्या उपदेश देते हैं?' इत्यादि। महर्षि ने अपने भक्त श्रीप्रियनाथ शास्त्रीजी से उत्तर लिखने के लिए कहा-'लिख दो, अब से... गोस्वामीजी जो कुछ कहें वह मेरा ही कहना समझा जाय।'

महर्षि से भेंट करके गोस्वामीजी वर्धमान गये। वहाँ, ब्राह्मसमाज-मंदिर के समीप समाज के सेक्रेटरी के यहाँ रहकर नित्य संकीर्तन में बड़ा आनन्दोत्सव करने लगे। श्रीनगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय आदि प्रसिद्ध ब्राह्मसमाजी लोग कलकत्ता और दूर-दूर के अन्य स्थानों से आ-आकर गोस्वामीजी की उपासना में शामिल होने लगे। उदय-अस्त सभी लोग गोस्वामीजी के साथ धर्मचर्चा में आनन्द लेने लगे। एक दिन गोस्वामीजी एक पलाश का पेड़ देखकर ठिठककर खड़े हो गये। फिर उसके प्रत्येक फूल में भगवती का आविर्भाव देखकर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। और भी एक दिन नरेश के गुलाब-बाग में गये, वहाँ गुलाब के फूलों की शोभा देखते-देखते समाधिस्थ हो गये। वर्धमान में रहते समय उन्होंने श्रीकुंजबिहारी गुह, श्रीदेवेन्द्रनाथ सामन्त आदि को दीक्षा दी, इसके बाद शिष्यों को साथ लेकर वे दरभंगा की ओर चल पड़े।

चैत्र के बीचों-बीच गोस्वामीजी दरभंगा पहुँच गये। कुछ ही दिन के बाद उनकी छाती के निचले हिस्से में एक तरह का दर्द होने

लगा। होमियोपैथी की 'नक्स वोमिका' का सेवन करने से कई दिन तक कुछ अच्छे रहे। किन्तु फिर उस दवा से कुछ लाभ न हुआ। तब समस्तीपुर से विख्यात डाक्टर नगेन्द्र बाबू बुलाये गये। इधर बाँकीपुर के वकील श्रीब्रजेन्दमोहन दास ने अपने शहर से दो सुप्रसिद्ध डॉक्टरों को भेजा। बड़े-बड़े चार डॉक्टरों के साथ गोस्वामीजी के शिष्य डॉक्टर प्रिय बाबू भी थे। किन्तु इन लोगों के इलाज से गोस्वामीजी का दर्द तनिक भी कम नहीं हुआ, बल्कि वह और भी बढ़ने लगा। धीरे-धीरे उठने-बैठने की शक्ति भी न रही। बिस्तर पर लेटे-लेटे ही वे पेशाब आदि करने लगे। रोग बढ़ने के साथ साथ डबल निमोनिया हो गया, इससे गोस्वामीजी के प्राण संकट जानकर सभी लोग निराश हो गये। फिर एक दिन जब गोस्वामीजी मरणासन्न हो गये तब अकस्मात् उनके गुरु मानससरोवर निवासी श्रीपरमहंसजी कुछ महापुरुषों सहित वहाँ सूक्ष्म शरीर से आ पहुँचे। वे अलौकिक-शक्ति द्वारा गोस्वामीजी को स्वस्थ करके चले गये।

अब गोस्वामीजी स्वस्थ होकर ज्येष्ठ १९ बुधवार, अपने घरवालों और शिष्यों के साथ देवघर के लिए रवाना हुए। रास्ते में मुकामाघाट स्टेशन पर गाड़ी बदलनी पड़ती है। इस समय ज्ञान बाबू टिकट लेने को बुकिंग आफिस गये। उन्होंने वापस आकर देखा कि रेल के डिब्बे में बहुत सी लीचियाँ हैं। उन्होंने पूछा-'लीचियाँ कहाँ से आईं?' गोस्वामीजी ने कहा-**'दरभंगा में रहते समय लीची खाने की इच्छा हुई थी, इसी से परमहंसजी देकर गये।'** सभी को बड़ा अचरज हुआ। उनमें से किसी ने नहीं देखा कि कौन, किस समय लीचियाँ दिया, इससे भी बढ़कर अचरज की बात

यह है कि इस तरफ अभी तक लीचियाँ पकी नहीं है-ऐसी खूब पकी लीचियाँ कहाँ मिल गई?

देवघर में पहुँचकर गोस्वामीजी एक स्कूल में ठहरे। कई जगह घूमकर मूर्तियों के दर्शन करके अगले दिन सवेरे आदर्श ब्राह्म श्रीराजनारायण बसु के घर गये। उस दिन भक्तप्रवर बूढे राजनारायण बसु के साथ धर्मचर्चा में इतना आनन्द आया कि दोपहर ढल जाने पर भी किसी को स्नान, आहार या भूख-प्यास की खबर न थी! देवघर से गोस्वामीजी कलकत्ते आये! वहाँ से ज्येष्ठ के अंत में सभी के साथ शान्तिपुर पहुँचे। ३० ज्येष्ठ को गोस्वामीजी ने शिष्यों समेत, शान्तिपुर के समीप, बाबला जाकर श्रीअद्वैतप्रभु के पाट (गद्दी) के दर्शन किये। स्थान बहुत ही एकान्त और रमणीय है, तपस्या करने लायक है। यहाँ पर गोस्वामीजी ने सभी से कहा-**'देवता के स्थान में जाकर मूर्ति अपलक देखते हुए एकाग्र मन से नाम जप किया जाय तो असली देवता के दर्शन हो सकते हैं।'** अद्वैतप्रभु के दर्शन करके गोस्वामीजी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। ३१ ज्येष्ठ को गोस्वामीजी चुवाडाँगा गये। उनके घर के लोग कुमारखाली चले गये। आषाढ़ के आरम्भ में सब लोग साथ ढाका पहुँचे। यहाँ दो-चार दिन विश्राम करके सबको लेकर गोस्वामीजी, ब्रह्मचारीजी के दर्शन करने को बारोदी गये। ब्रह्मचारी ने कहा-'दरभंगा पहुँचकर मैं तुमको कमरे में नहीं देख पाया।' गोस्वामीजी ने कहा-**'गुरुजी ने मुझे देह से बाहर निकाल लिया था।'** बारोदी में कुछ दिन ठहरकर, अब वे ढाका लौट आये हैं और ब्राह्मसमाज के प्रचारक-निवास में पहले की तरह रहते हैं।

रोग मुक्ति का विचित्र विवरण।

गोस्वामीजी ढाका आ गये हैं। शाम लगभग साढ़े पाँच बजे गोस्वामीजी के दर्शन करने मैं समाजमंदिर में गया। मैंने आज ही पहली बार गोस्वामीजी की पत्नी के चरणों में प्रणाम किया। प्रचारक निवास में आज बेहद भीड़ है। गोस्वामीजी को प्रणाम करके मैं बैठ गया। बात करने का मुझे अवसर ही न मिला। गोस्वामीजी का चेहरा देखकर बड़ा कष्ट होने लगा। शरीर बहुत ही कमजोर हो गया है। सिर के बाल झड़ गये हैं। रंग बिल्कुल काला पड़ गया है, देह शीर्ण है। हाथ-पैर तो क्या सिर भी सूख गया है। गोस्वामीजी को देखकर अब अच्छी जान-पहचानवालों को भी भ्रम हो सकता है कि ये वे ही गोसाईं है। स्थिरदृष्टि से शुद्धासन पर एक ही तरह बैठे हुए हैं। साधन के सिवा और कुछ नहीं करते। कोई कुछ पूछता है तो चौंक पड़ते हैं; बहुत संक्षेप में उत्तर देकर फिर अपने भाव में मग्न हो जाते हैं। काफी देर तक बैठकर मैं घर लौट आया।

गोस्वामीजी के स्वस्थ हो जाने का विवरण सुनने के लिए बड़ा कौतुहल हुआ। उनके शिष्यों से जो अद्भुत बातें सुनता हूँ, उन पर मुझे विश्वास नहीं होता। २-४ दिन प्रचारक-निवास में आने-जाने पर पण्डितजी और श्रीधर आदि से गोस्वामीजी के स्वस्थ होने का अद्भुत वृत्तान्त सुना। स्वयं गोस्वामीजी ने भी इस विषय पर जैसा विवरण बतलाया, उससे इन लोगों की बातों में कोई अंतर नहीं। घटना का वर्णन जैसा सुना है, उसे लिखे लेता हूँ।

गोस्वामीजी का रोग जब बहुत ही बढ़ गया, तब उनके नित्य के साथी शिष्य लोग बिल्कुल अधीर हो गये। अनुभवी डॉक्टर लोग सदा यथासाध्य गोस्वामीजी की चिकित्सा करने लगे। प्रतिदिन काफी खर्च होने लगा। इतनी कोशिशों के बावजूद भी गोस्वामीजी

की हालत धीरे-धीरे बिल्कुल खराब हो गई। अब सभी लोग हताश हो गये। इस समय गोस्वामीजी के शिष्यों में से कुछ उनके बिछौने की ओर देखकर चौंक उठे। उन्होंने देखा कि चार सूक्ष्म-देहधारी-कोई मुण्डित मस्तक का, कोई पकी दाढ़ी-मूंछों और जटाओंवाला, कोई साँवला और कोई तेजःपूर्ण, गोरे, मोटे, और ऊँचे डील-डौल वाले प्राचीन महापुरुष गोस्वामीजी के चारों ओर प्रतिक्षण प्रकट होते हैं और तुरन्त ही विलीन हो जाते हैं। शिष्य लोग चर्चा करने लगे कि ये महापुरुष कौन हैं और किस लिए प्रकट होते हैं तथा किसलिए फिर अन्तर्धान हो जाते हैं। कोई तो इस अद्भुत घटना को देखकर विपत्ति की आशंका से बहुत ही भयभीत हो गये। किन्तु उन महापुरुषों में सुपरिचित बारोदी के ब्रह्मचारीजी को देखकर, इसे अपना सौभाग्य समझकर, प्रसन्न और आश्वस्त भी होने लगे। इधर गोस्वामीजी अचेत हो गये, नाड़ी में स्पन्दन नहीं था। डॉक्टर लोग आये। उन्होंने देखकर बाहर जाकर कहा-'अब देर नहीं है, अब सब समाप्त समझो। तब राधाकृष्ण बाबू एकतारा लेकर, बहुत ही व्याकुल होकर एकाग्रचित्त से भगवान् का नाम-गान करने लगे। गोस्वामीजी का शरीर स्थिर, बिल्कुल अचल है। न जाने किस प्रकार, किस शक्ति का संचार होने से वे दो-एक बार सिर हिलाकर, एकाएक चकित हुए और उछल उठे और जोर-जोर से **'हरि बोल'। 'हरि बोल'** कहकर दौड़-दौड़कर उद्दाम नृत्य करने लगे। यह क्या हुआ, यह क्या देख रहा हूँ, यह तो भगवान् की असाधारण कृपा साक्षात् अवतीर्ण हुई है। गुरुगतप्राण गोस्वामीजी के शिष्य, भाव में तन-मन की सुधि भूलकर, 'जय दयालु ठाकुर' 'बोल, हरि बोल' कहकर भगवान् की महिमा का गान करने लगे। संकीर्तन का उच्च

शब्द चारों दिशाओं में गूँजने लगा। इसे गोस्वामीजी की विपत्ति की सूचना समझकर बहुत-से लोग दौड़ते हुए कीर्तन स्थान में आ पहुँचे। वे लोग उस समय अद्भुत भावावेश में गोस्वामीजी को नृत्य करते देखकर और हुंकार-गर्जन के साथ जोर-जोर से 'हरि बोल' कहते सुनकर दंग हो गये। संकीर्तन के स्थान में डॉक्टर लोग भी आये। गोस्वामीजी को उछल-उछलकर 'हरि बोल' कहकर नृत्य देख स्तंभित हो गये। धीरे-धीरे कीर्तन रुका। गोस्वामीजी भी नीचे लोटकर भगवान् को साष्टांग प्रणाम करके धीरे-धीरे उठ बैठे। अब डाक्टरों ने कहा-महाराज, हम लोगों की डॉक्टरी विद्या झूठी है। आज आपके जीवित हो जाने से यह स्पष्ट प्रमाणित हो गया, कि न हम लोग कुछ जानते हैं और न समझते हैं।

इसके बाद गोस्वामीजी एक बार बारोदी के ब्रह्मचारीजी से भेंट करने गये थे। वहाँ भी कई अद्भुत घटनाएँ हुई।

26 आषाढ़ शनिवार।

धर्म और नीति के संबंध में उपदेश।

आजकल सर्वत्र गोस्वामीजी की जिस ढंग से चर्चा होती है, वह हम लोगों को सहन नहीं होती। किसी प्रकार गोस्वामीजी के मुख से प्राचीन हिन्दू धर्म के कुसंस्कार और हिन्दू-समाज की दुर्नीति के विरुद्ध दो-चार बातें सुनवायी जाएं तो हम लोग गोस्वामीजी को अपनी ही तरह ब्राह्मतावलम्बी बताकर लोगों का मुँह बन्द कर सकें। किन्तु वे तो धर्म के संबंध में किसी सम्प्रदाय के विरुद्ध कोई बात नहीं करते, यही बड़ी मुश्किल है। आज 'धर्म और नीति' के संबंध में वक्तृता देने के लिए गोस्वामीजी से अनुरोध किया गया। शरीर बहुत ही अशक्त है, फिर भी वे राजी हो गये। अपराह्न साढे

पाँच बजे वे मंदिर आए और एक साधारण बेंच पर बैठकर इस प्रकार कहने लगे। मैं नोट करने लगा-यथा-

आज का विषय है-'धर्म और नीति'। धर्म से हम क्या समझें? जैसे आग का धर्म जलाना है, जल का धर्म शीतलता है, वैसे ही धर्म भी मनुष्य का स्वभाव है। जो सभ्य-असभ्य, ज्ञानी-अज्ञानी, बालक-वृद्ध आदि सभी प्रकार की अवस्थाओं के लोगों में साधारण रूप से विद्यमान है, वही मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। यह गुण तीन भागों में बाँटा जाता है। ज्ञान, प्रेम और इच्छा। इन तीनों गुणों को बढ़ाना ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है-यही मनुष्य का धर्म है।

धर्म सत्य वस्तु है। जो सत्य सर्वसाधारण के आगे सत्य प्रतीत होता है, जिस सत्य का प्रत्येक जाति और प्रत्येक सम्प्रदाय सत्य मानकर विश्वास करता है, जिस पर व्यक्ति विशेष का भी मतविरोध नहीं है और जो सभी के लिए सत्य है, वही मनुष्य प्रकृति के लिए भोग्य स्वभाव का सत्य है।

जगत् की किसी ने सृष्टि की है, जगत् है, हम भी एक व्यक्ति हैं। इन तीनों का ज्ञान सब मानवों को स्वभाव से होता है। इसको कहीं से सीखना नहीं पड़ता। सच बोलना चाहिए, दूसरे पर अत्याचार करना ठीक नहीं, इत्यादि कुछ विषय भी स्वभाव से ही सत्य हैं। जहाँ मनुष्य है, वहीं ये सब सत्य विद्यमान हैं, सत्य बोध स्वभाव के साथ-साथ है। मन की इन सब सरल बातों को जो जिस परिमाण में समझ सकें, उसी परिमाण में उनके आगे ज्ञान प्रकट होगा। सरल सत्य का अनुसरण करने पर ही धर्म की प्राप्ति होती है। मनुष्य की यथार्थ प्रकृति अथवा सरल

सत्य ही मानव का धर्म है। चित्त संतप्त न हो तो धर्म कभी प्राप्त नहीं होता। सरलतापूर्वक सत्य का पालन करने से ही चित्त को सन्तोष प्राप्त होता है। असत्य कार्य करने और असत्य विचार करने से चित्त में असन्तोष उत्पन्न होता है, संतुष्ट चित्त रहना हो तो सदा सरलतापूर्वक सत्य का अनुसरण करो।

जो सरल सत्य का आचरण करेंगे, वे प्राण की स्वाभाविक वृत्ति की प्रेरणा से ही करेंगे, किसी वस्तु की आशा नहीं रखेंगे, लोगों की ओर, समाज की ओर, किसी के उपकार या अपकार की ओर- यहाँ तक कि अपने भले-बुरे की ओर-वे देखेंगे तक नहीं, केवल मन से अपना कर्तव्य करते जायेंगे। उनका काम दिखावटी नहीं होगा। बिना किसी की ओर देखे, चन्द्र-सूर्य की तरह, अपना काम चुपचाप करते जाएँगे। कोई इस प्रकार का बर्ताव करेगा तो लोग उसके जीवन को देखकर जीवन की दिशा प्राप्त करेगें, धन्य होंगे।

नीति क्या है? जिस सरल सत्य की बात कही गई है-अर्थात् सच बोलना, किसी का अहित न करना, अश्लील और अनिष्टकारी आचरण से बचे रहना, इत्यादि ही साधारण नीति है। ये साधारण नीति सर्वसम्मत है। यह प्राकृतिक और मनुष्य-जाति की स्वाभाविक नीति सबके लिए पालनीय है। इसके सिवा और भी दूसरे प्रकार की नीति है। उसकी देशभेद, कालभेद और स्वभावभेद से कभी तो आवश्यकता होती है और कभी नहीं भी होती। यह नीति सब जगह एक-सी नहीं है। एक देश के लिए कर्तव्य समझकर जिसका अवलम्बन किया जाता है, उसीका दूसरे देश के लिए घोरतर पाप बताकर, त्याग किया

जाता है। कहीं तो लोग माँस-मछली खाने को कर्तव्य बना लेते हैं और कहीं उसे जघन्य पाप बतलाकर विषवत् त्याग देते हैं। किसी स्थान में मलेरिया फैलने पर दूषित जलवायु और स्थान के संशोधन के लिये सबकी स्वास्थ्य-रक्षा के लिए एक नई नीति का अवलम्बन करना आवश्यक हो जाता है, किन्तु मलेरिया के जाते ही फिर उस नीति के अनुसार चलने की आवश्यक नहीं रहती। कालभेद से जिस नीति की आवश्यकता होती है, उसको काल (समय) ही आवश्फ सिद्ध कर देता है। इसके साथ थोड़े से आदमियों का संबंध रहता है। हत्यारों को फाँसी दी जाती है, वर्तमान समय में इस देश की यही नीति है, किन्तु अमेरिका आदि बहुत से स्थानों में इस नीति को बहुत ही बुरी मानकर त्याग दिया गया है। अतएव देशभेद से नीति किसी देश में है और दूसरे देश में नहीं है। कालभेद से जो नीति आज है, कल नहीं रहेगी, और फिर पात्र भेद की नीति हमारे लिए है, तुम्हारे लिए। नहीं। किन्तु जो सहज नीति है, जिसमें देश-काल-पात्र का भेद नहीं होता, वह सदा से, सब जगह एक-सी रहती है। वह आत्मा के कल्याण और उन्नति के लिए सभी के लिए एक-सी है। किन्तु अवस्था-भेद से मनुष्य की साधारण नीति और कर्तव्य में भेद-भाव रहेगा ही।

किसी आम के दस-पाँच फल खाकर, उनकी गुठलियों को दो-पाँच हाथ के अन्तर पर गाड़ा जाय तो सभी पौधे ठीक एक जैसे नहीं होते। फिर एक ही आम के सभी फल सब बातों में, कभी बिल्कुल एक-से नहीं पाये जाते। स्वाद, वजन, और बनावट में उनमें थोड़ा बहुत अन्तर अवश्य रहेगा। बीज की

प्रकृति और शक्ति के अनुसार जलवायु, उत्ताप आदि आकर्षित कर पाती है, अतः ऐसी पृथकता आ ही जाती है। इसी तरह एक ही माता के गर्भ से जन्म पाकर भी, भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के पाँच सगे भाईयों को भिन्न-भिन्न प्रकार से काम करना पड़ता है। मनुष्य शरीर में जिन माँसपेशियों, हड्डियों, शिराओं, नाड़ियों, आँतों, और अवयव आदि का रहना आवश्यक है, वे सबकी देह में एक ही जैसे होते हैं, फिर भी उनकी रुचि, अनुभव और क्रियाएँ सबमें बिल्कुल एक जैसी नहीं पायी जाती। इसी प्रकार कर्तव्य और मूल धर्मनीति यद्यपि सभी की एक है, तथापि उसका आचरण प्रत्येक का अपना अपना अलग ढंग से है। सभी मनुष्यों का कर्तव्य एक-सा नहीं है। सभी मनुष्यों का कर्तव्य एक ही-सा न होने पर भी देशगत, समाजगत और कालगत नीति का तथा जो जिस काम को कर्तव्य मानकर स्वीकार कर ले, उसका प्रतिपालन सब तरह करते जाना, तब तक आवश्यक है, जब तक कि वह स्पष्टतः अनुचित न लगे। जिसे कर्तव्य मान लेंगे, वहीं हमारा धर्म है। मूल धर्मनीति का पालन न करने से जिस प्रकार अनिष्ट होता है, अपराध होता है, उसी प्रकार देशगत, समाजगत, कालगत स्वीकृत कर्तव्यों के विरुद्ध बर्ताव करने से भी पापग्रस्त होना पड़ता है। अतएव जो जिसे कर्तव्य समझकर विश्वास करता है, सरलता से सत्य मानकर स्वीकार करता है, उसका वही धर्म है, उसका पालन उसे अवश्य करना चाहिए।

शरीर बहुत ही शिथिल था, इसलिए गोस्वामीजी और अधिक न बोल सके। उनका व्याख्यान बहुत अच्छा लगा। किन्तु उन्होंने

ऐसा कुछ नहीं कहा जिससे हमारा उद्देश्य सफल होता, इससे जरा दुःख भी हुआ।

त्राटक साधन की रीति।

प्रतिदिन की भाँति आज भी ब्राह्मसमाज गया। श्रीश्यामाकान्त पण्डितजी ने मुझे देखकर कहा-'साधन का एक नया अंग गोस्वामीजी ने हम लोगों को बता दिया है। क्या तुम्हें भी बतलाया है? अगर न बतलाया हो तो अभी जाकर उनसे पूछ लो।'

मैं तुरन्त गोस्वामीजी के पास जा पहुँचा। वहाँ और कोई नहीं था। प्रणाम करके खड़े होते है उन्होंने पूछा-**'कैसे हो? साधन कैसा चल रहा है?'** मैंने प्राणायाम करने को ही प्रधान साधन समझ रखा था। मैंने उत्तर दिया-'घर पर साधन नहीं हुआ। अब किसी तरह हो रहा है।'

गोस्वामीजी ने कहा-**'नाम करते हो न? नाम करने से कैसा लगता है?'** मैंने कहा-'नाम करने से समय-समय पर आनन्द आता है। पहले की अपेक्षा इस समय भगवान् पर निर्भर होकर रहना अच्छा लगता है।' गोस्वामीजी ने कहा-**'ठीक है। तुमने छोटी उम्र में ही साधन लिया है, जीवन में अच्छी उन्नति कर सकोगे। मुझे तो समय बीत जाने पर साधन मिला, बुढ़ापे में अब क्या करूँगा? किस कक्षा में पढ़ते हो? पढ़ाई ठीक चल रही है न?'**

मैंने 'जी हाँ' कहकर ही उनसे पूछा-'क्या आपने साधन में कुछ नया सिखाया है? इसी से पण्डितजी ने आपसे पूछ लेने को कह दिया है। क्या मैं उसे कर सकूँगा?'

गोस्वामीजी ने कहा-**हाँ, तुम भी कर सकते हो।**

ऐसा कहकर उन्होंने आँखें बन्द कर ली। मैंने फिर हिम्मत

जुटाकर कहा-‘मैं तो नियम आदि कुछ भी नहीं जानता।’ गोस्वामीजी ने सिर ऊँचा करके मेरी ओर दृष्टि डालकर कहा- **‘पण्डितजी के पास जाकर उन्हीं से सीख लो।’** अब उन्होंने फिर आँखें बंद कर लीं। अब मैंने तुरन्त पण्डितजी के पास जाकर पूछा। उन्होंने मुझे गोस्वामीजी के आदेशानुसार, योग-क्रिया का ‘त्राटक-साधन’ बतला दिया।

समय पाकर मैंने गोस्वामीजी से इस साधन के करने की रीति के बारे में स्पष्ट रूप से जान लिया। क्रम से यह अभ्यास पंचभूतों पर करना पड़ता है। पहले पृथ्वी पर अभ्यास किया जाता है, उसकी रीति बतला दी। हरे रंग के क्षितिज को सामने रखकर उसके विशिष्ट स्थान पर टकटकी बाँधकर प्रयत्नपूर्वक दृष्टि एकाग्र की जाती है। गुरु के संकेत के अनुसार, भीतर और बाहर निर्दिष्ट लक्ष्य स्थान पर मन को लगाकर, गुरु के दिये हुए मन्त्र का साधन किया जाता है। बारंबार चेष्टा करने से, जब तक आँसू न गिरें, कम से कम एक घण्टे तक एक आसन से स्थिर बैठने का अभ्यास हो जाय, तब साथ ही अन्य भूतों पर भी साधन किया जाता है। सभी भूतों का साधन करते समय दर्शन की विचित्र अवस्था के बारे में गुरु को बतलाया जाय और उनकी आज्ञा के अनुसार उपयोगी क्रम की कुशलता का अवलम्बन करना पड़ता है। संकेत को समझकर मैंने भी ‘अनिमेष साधन’ का आरम्भ कर दिया।

७ श्रावण, शुक्रवार

व्याख्यान देने में गोस्वामीजी की असम्मति।

बहुत समय से मैं ब्राह्मसमाज में बहुत आता-जाता हूँ, ब्राह्म-समाजियों के घर भी मैं आया-जाया करता हूँ, उत्सवों के कामों में

भी दौड़-धूप और उछल-कूद मैं औरों से अधिक करता हूँ, ये सब देख-सुनकर सभी लोग मुझे बड़ा उत्साही ब्राह्म युवक मानते हैं। गोस्वामीजी से मैंने योगधर्म की दीक्षा ली है, इसलिए के अधिकारी लोग मुझसे ही उनके ब्राह्ममत विरोधी क्रिया-कलापों की खबर लेने की चेष्टा करते हैं। मैं भी बहुत सी बातें बताया करता हूँ। आज रजनी बाबू आदि के कहने परकुछ मित्रों के साथ जाकर गोस्वामीजी से कहा--साधारण ब्राह्मसमाजियों का यह अनुरोध है कि आप कल शनिवार की शाम को, 'अभ्रान्त शास्त्र और गुरुवाद' पर भाषण दें।

सुनकर गोस्वामीजी ने कहा-**'मैं इसके विरूद्ध कुछ कह न सकूँगा| मैं जिसे ग्रहण करने योग्य कहूँगा, उसे ब्राह्मसमाज त्याज्य कहेगा। भला भाषण देकर क्या होगा?'** हम लोगों ने ब्राह्मसमाज के अधिकारियों के पास जाकर गोस्वामीजी का उत्तर बतला दिया। इस बात से ब्राह्मसमाज में अच्छी खासी हलचल मच गई। कई लोग कहने लगे कि अब गोस्वामीजी बहुत दिन तक वेदी का काम नहीं कर पाएंगे।

9 श्रावण

साधु की अवज्ञा का दण्ड।

जब से गोस्वामीजी दरभंगा से लौटे हैं, तब से अनेक श्रेणियों के साधक और कई तरह के लोग प्रायः सदा उनके पास आया करते हैं। मणिपुर के भयंकर जंगल में और पुराने 'रमना के घने जंगलों में टूटी-फूटी मस्जिद में, लोगों की भीड़भाड़ से दूर रहने वाले, जो प्राचीन मुसलमान फकीर हैं, वे भी कभी-कभी गोस्वामीजी के यहाँ आते हैं। हिन्दू जटाधारी संन्यासी लोग भी एकान्त में और गुप्त रीति

से आकर, गोस्वामीजी का सत्संग करते हैं। आज अपराह्न समाज मंदिर में जाकर सुना कि बड़ी देर से एक जटाधारी उदासी साधु गोस्वामीजी के पास आये हैं। गोस्वामीजी उनके प्रति बहुत ही श्रद्धावान् हैं। गोस्वामीजी के शिष्यों ने शायद उन्हें प्रचारक निवास में ही गाँजे का प्रबन्ध करते देखा है, और वे अपनी मौज से गाँजे की दम लगा रहे हैं। संन्यासी देखने में तो अच्छे तेजस्वी, भजनानन्दी और सौम्यमूर्ति है। उसको गांजा पीने से रोकने का साहस किसी ने नहीं किया। गोस्वामीजी ने देख-सुनकर भी इस गर्हित कार्य का कोई विरोध नहीं किया। समाजगृह में बैठकर ब्राह्म लोग इसकी चर्चा कर रहे थे।

मैं तो सुनते ही भीतर ही भीतर जल-भुन गया। मैंने सब लोगों से कहा-आप लोग जरा ठहरिये। उस गंजेड़ी को गांजे की दम लगाते देखते ही मैं उससे समाज के अहाते से चले जाने को कहूँगा। अब मैं बड़े दंभ से ज्योंही चलने लगा त्योंही अकस्मात् खाली जगह में सीढ़ी समझकर पैर बढ़ाते ही धम् से नीचे गिर पड़ा। पैर में भारी चोट लगी। करीब एक घण्टे तक उसी जगह बैठे रहकर, दर्द के मारे छटपटाता रहा। तनिक अँधेरा होने पर मेरा एक मित्र मुझे गोद में उठाकर मेरे डेरे पर पहुँचा आया। दो-तीन दिन तक मैं चलने-फिरने लायक न रहा। फिर ब्राह्मसमाज-मंदिर आकर सुना कि 'वे संन्यासी ऊँचे दरजे के महात्मा थे, उनका परिचय अज्ञात् है। जन समूहों के बड़े भाग्य हैं,जो ऐसे सिद्ध पुरुष यहाँ आ जाते हैं।'

एकान्त में प्राणायाम करने और उच्छिष्ट की आपत्ति के उपदेश।

कई गुरुभाई समझते हैं कि साधन की बहुत-सी भीतरी बातें मैंने ब्राह्मसमाजियों को बतला दी है। गोस्वामीजी के साथ मेरे बेहद

तर्क करने और स्पष्टतः 'आलोचना-सभा' में साधन संबंधी प्रश्न आदि करने से ही उन लोगों को मुझ पर ऐसा सन्देह हुआ है। आज गोस्वामीजी ने मुझसे कहा-**'लोगों के सामने प्राणायाम मत किया करो। इन कामों के लिए लोग तुम्हारी हँसी उड़ाएँगे। और ये काम जितने ही गुप्त रूप से किये जाये उतना ही लाभ है।'**

मैंने गोस्वामीजी से पूछा-क्या उच्छिष्ट नहीं खाना चाहिए? भुक्तावशिष्ट या खाने के बाद ही तो जूठा होता है? तो दूसरे के साथ बैठकर एक ही थाल में तो खा सकता हूँ न?

गोस्वामीजी ने कहा-**नहीं वह भी मना है।**

मैंने कहा-हमारे मुहल्ले में मेरा एक मित्र है, भुवन [श्रीभुवन मोहन चट्टोपाध्याय (मिस्टर बी.एम. चैटर्जी, बार-एट-लॉ) बैरिस्टर]। वह ब्राह्म हो गया है। बचपन से ही उसके साथ मेरी घनिष्ठ मित्रता है। मुझे कुछ बीमारी हो जाती है तो बहुत दूर रहने पर भी उसे पता लग जाता है-वह बेचैन हो उठता है। उस पर भी ऐसा कुछ संकट पड़ता है तो मुझे तुरन्त मालूम पड़ जाता है। हम दोनों बचपन से ही साथ-साथ एक थाली में भोजन करते आये हैं। तो क्या अब मैं उसके साथ भी एक थाली में कभी न खा पाऊँगा? गोस्वामीजी ने मुस्कुराकर कहा-**'अच्छा, अच्छा, मात्र उसके साथ खा सकते हो। इससे तुम्हारी कुछ हानि न होगी। तुम दोनों का आपस में जो सद्भाव है, उससे उच्छिष्ट का कुछ दोष तुमको स्पर्श नहीं करेगा।'**

कुम्भक।

कई दिन से गोस्वामीजी बीमार हैं। किसी से उनकी भेंट नहीं हो पाती। श्रीमन्मथनाथ मुखोपाध्याय वेदी का काम किया करते हैं।

आज श्यामकान्त पण्डितजी ने मुझे बुलाकर एकान्त में कहा-'साधन के एक नये अंग को करने की आज्ञा हुई है। गोस्वामीजी ने वह तुम्हें बता देने के कहा सो वह देख लो।' अब उन्होंने एक प्रकार की अद्भुत प्रक्रिया दिखला दी। इसे कुम्भक कहते हैं। प्रतिदिन साधन करते समय आरम्भ में और अन्त में तीन बार यह कुम्भक करना होगा। गाँव के पण्डितों को संध्या-पूजा करते समय नाक दबाकर, बाहर की हवा को खींचकर उसे रोके हुए जिस प्रकार कुम्भक करते देखा है, यह कुम्भक उस प्रकार का नहीं है। हमारे गुरुप्रदत्त प्रणाली से प्राणायाम द्वारा कुशलतापूर्वक प्राणवायु को धीरे-धीरे खींचकर, उसे एकदम मूलाधार में पहुँचाकर स्थापित करना होगा। फिर ऊपर के और नीचे के तमाम इन्द्रिय द्वार बंद करके, श्वास–प्रश्वास और साधारण वायु की अन्तर्गति को बिल्कुल रोक करके, नाम-जप में चित्त को लगाकर, दृढ़ता के साथ उसे यथासाध्य धारण करना होगा। इस प्रक्रिया को करते समय सारी बाहरी स्मृति-देह का संस्कार तक, धीरे-धीरे विलुप्त हो जाता है। उस सम सिर्फ नाम के अस्तित्व का अनुभव होता रहता है। इसका थोड़ा सा आभास मुझे मिला। मैंने सुना है कि इस प्राणायाम के द्वारा कुम्भक करने के विषय में श्रीमद्भगवद्गीता में संक्षेप में कहा गया है। जन साधारण में इसका प्रचार नहीं है। यह सिर्फ गुरुमुखी है, अतएव इसका उल्लेख मैं भी संकेत में ही कर रहा हूँ।

ढाका की जन्माष्टमी की शोभायात्रा।

आज जन्माष्टमी का जुलूस निकलेगा। न जाने कहाँ-कहाँ से लोग आज इस जुलूस को देखने ढाका आये हैं। शहर में आज बेहद भीड़भाड़ है। इस जुलूस के उपलक्ष्य में हर वर्ष स्कूल, कॉलेज और

कचहरियों में छुट्टी रहती है। एक दिन नवाबपुर से और एक दिन इसलामपुर से बड़ी प्रतिस्पर्धापूर्वक यह जुलूस निकलता है। लूट-खसोट, मारपीट और उपद्रव को रोकने के लिए सरकार हर साल इस समय पुलिस का अच्छा खासा प्रबन्ध रखती है।

हर वर्ष की तरह इस वर्ष भी तीन बजे के लगभग यह जुलूस निकला। चौड़े रास्ते से चलकर अण्टाघर के मैदान, बँगला बाजार और पटुवाटुली आदि स्थानों से होता हुआ आज का जुलूस चलने लगा। उमंग भरे नवाबपुरवालों की सम्मिलित चेष्टा और चतुराई से जुलूस आज इतना लम्बा हुआ कि कोई ३ मील रास्ते को मण्डलाकार में घेरकर एक छोर पूरा हुए बिना ही वह खालपार में, आरम्भ स्थान पर आ गया। यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ।

जुलूस में सबके आगे अखाड़ा था जिसमें मल्ल खिलाड़ी लोग देशी बाजे-गाजे के पीछे-पीछे डण्ड, कुश्ती और लाठी आदि से तरह-तरह के करतब दिखा रहे थे। उनके साथ ग्वाले लोग नन्दोत्सव करते जा रहे थे। रंग-बिरंगे ऊँचे-ऊँचे निशान और मूल्यवान सोंटे लिये हुए बहुत-से आदमी उनके पीछे जा रहे थे। उनके पीछे बड़े-बड़े हाथियों की कतारें थी, जिन पर बहुमूल्य सुनहरे, जरीदार कशीदेवाले विचित्र रंग की मखमली चादरें रखी हुई थी। ये मंथर गति से चल रहे थे। इन हाथियों के माथे पर उज्ज्वल बड़ी-बड़ी, सोने-चाँदी की ढालें थी, वे जब बड़े सजधज कर माथे को हिलाते-डुलाते हुए अंग्रेजी बाजे के साथ, ताल से चलने लगे, तब दर्शको का चित्त उमंग से नाच उठा। हाथियों के जुलूस के पीछे वैसे ही विचित्र साज से सजे हुए बहुत से घोड़े निकले। इसके पीछे ढाका के अपूर्व शिल्प निपुणता के आदर्श-

स्वरूप ‘झाँकियाँ’ एक के बाद एक निकलने लगी। इनमें रांगे और अभ्रक की बनी सोने और चाँदी की प्रतिमाएँ झिलमिला रही थीं। अनेक प्रकार के छोटे-बड़े मंदिरों, मठों, नावों ओर महलों में कौतूहल बढानेवाली पुराण संबंधी और अन्य प्रकार की झाँकियाँ दिखने लगीं। कहीं पर कौरवों की सभा में द्रौपदी-चीर-हरण के अत्याचार से भीमसेन का क्षोभ और युधिष्ठिर का मानवातीत धैर्य दिखलाया गया था, और कहीं भगवत्कृपा से असहाय-विपन्न शरणागत द्रौपदी की लाज का बच जाना दिखलाया गया था, कहीं पर पिता की वचन-रक्षा के लिए श्रीरामचन्द्र का वन जाना, और पीछे ही बड़े भाई रामचन्द्र को राजगद्दी पर बिठाने के लिए व्याकुल होकर भरत का रोना और प्रार्थना करना दिखलाया गया था। किसी में जनमेजय का सर्पयज्ञ और उसमें जलती हुई आग की लपटों में, ऋषियों का साँपों की आहुति देना दिखलाया गया था, किसी में नैमिषारण्य में ऋषियों का पुराण सुनना दिखलाया गया था। ऐसे ही बहुत से पौराणिक दृश्य दिखलाते दिखलाते ‘झाँकियाँ’ सिलसिलेवार निकलने लगीं। इनके आगे-पीछे हरिसंकीर्तन, बाउल-वैष्णवों का संगीत, ‘मनसा’ का विसर्जन और चण्डी गान आदि होने लगा। इसमें ‘जुलूस’ का एक जत्था अपने प्रतिपक्षी दूसरे जत्थे के दोष और दुराचार और दुर्व्यवहार के विषयों को चित्रों की सहायता से सर्वसाधारण के सामने प्रकट या प्रचारित करने में भी नहीं हिचकता है। यह सब समाप्त होते ही फिर खूब बड़ी-बड़ी चौकियों का नम्बर आता है। वे लोग जिस कुशलता और जिस विचित्रता से इन चौकियों का निर्माण करते और सजाते हैं, उसका विचार करने से सचमुच विस्मित होना पड़ता है। २०-२५ फुट का

चौकोर लकडी की मचान बनाकर उस पर कोई ४०-५० फुट ऊँचा तिमंजिला-चौमंजिला मंदिर की तरह बनाया जाता है। जुलूस निकलने से दो तीन घण्टे पहले लोग भिन्न-भिन्न स्थानों से बाँसों की सैकड़ों टाटें लाते हैं। उनके बाहरी भाग सुन्दर विचित्र कागजों से मढ़ा रहता है। अचरज की बात यह है कि वे जब मचान पर एक के बाद एक दूसरी बाँधी जाती हैं, तब ठीक-ठीक सटकर बैठ जाती हैं-किसी स्थान का मचान या टाट दो-तीन इन्च भी छोटी बड़ी या बेमेल नहीं होती। इस प्रकार चौकी में कम से ५०-६० या इससे भी अधिक टाटों के संयुक्त हो जाने पर शिल्पकारों की निपुणता की पराकाष्ठास्वरूप नक्काशी, अत्यन्त अपूर्व, दोषहीन, बडे-बडे, मंदिर, मठ, महल, दुर्ग इत्यादि बन जाते और किसी प्राचीन कीर्ति को प्रदर्शित करती है। इस प्रकार की चौकियाँ पाँच-छ: से अधिक नहीं होतीं। जुलूस का काम हो जाने पर प्रायः हर वर्ष फोटो उतारने के लिए ये चौकियाँ किसी किसी चौड़ी सड़क पर अथवा अण्टाघर के मैदान में या नहर-किनारे कई दिन तक रख रहती हैं। दिन डूबने पर बढ़िया रोशनी की जाती है।

रात को, भीड़भाड़ कम हो जाने पर, जन्माष्टमी के जुलूस की बड़ी चौकी देखने के लिए, मैं गोस्वामीजी के साथ गया। गज कच्छप को लिये हुए गरूड़ आकाशमार्ग से उड़कर एक पेड़ की डाल पर बैठने चेष्टा कर रहे हैं। यह दृश्य ऐसे कुशलता से बनाया गया है कि गोस्वामीजी करीब बीस मिनट तक उसकी ओर देखते रहे। कुस्तुनतुनिया का दुर्ग भी बहुत अद्भुत बनाया है। यह सब देखकर गोस्वामीजी ने कहा-**‘ढाका के जन्माष्टमी के जुलूस की तरह ऐसा जुलूस, और ऐसी अद्भुत कारीगरी, इस समय कहीं**

नहीं होती। शान्तिपुर का रास और ढाका का जन्माष्टमी का जुलूस देखने योग्य है, यह देश के गौरव हैं।'

बड़ी चौकी देखकर गोस्वामीजी के साथ मैं समाज-मंदिर लौट गया। आज कुछ अधिक रात को साधन बैठक में सम्मिलित होकर, रात को दस बजे घर पहुँचा।

अद्भुत फकीर।

अपराह्न के समय प्रचारक निवास जाकर देखा कि भीतर बड़ी भीड़ है, गोस्वामीजी के सामने एक फकीर बैठे हुए हैं। फकीर साहब सिर्फ लँगोटी लगाये हुए हैं और एक पुराना सा कम्बल ओढ़े हुए हैं, और कोई वेशभूषा नहीं है। गोस्वामीजी से संकेत में न जाने क्या बातचीत कर रहे हैं। उनकी फकीरी भाषा और भाव को मैं तनिक भी न समझ सका। समाज-मंदिर के आँगन में कुछ लोग बातचीत करने लगे कि यह पहुँचा हुआ फकीर है, बड़ी उन्नत अवस्था है।' सोचा, यह भी बुरा नहीं है! बिना अर्थ के कुछ शब्दों की उलटी-सीधी योजना करने पर, वह भाव की बात हो गई और मुसलमान होकर गुरुतत्त्व की चर्चा छेड़ते ही वे एक महात्मा हो गये। जो भी हो, कौतुहलवश होकर मैं पता लगाने लगा कि फकीर साहब में कुछ खासियत भी है या नहीं। कमरे में मद्धिम सा उजाला था। फकीर साहब ने कई बार मेरी ओर मुँह फेरा। उनकी आँखों की ओर देखते ही मैं आश्चर्य के मारे दंग रह गया। मैंने देखा कि उनकी आँखें मानो चमकीले तारों की तरह चमक रही हैं। मैंने इससे पहले कभी अँधेरे में आँखों की ज्योति का बाहर प्रकट होना नहीं देखा था। भीड़ देखकर फकीर साहब गोस्वामीजी को नमस्कार करके उठकर चल दिये। मैं उनका पीछा करने लगा। फकीर साहब पैदल चलकर

रास्ता पार नहीं कर रहे थे। वे बड़ी फुर्ती से लम्बे-लम्बे कदमों से वक्रगति से कूदते हुए सड़क पर दौड़ते रहे। पटुवाटोली में थोड़ी दूर तक मैंने बड़ी मुश्किल से, उनका पीछा किया, फिर लौट आया। मैं नहीं जान सका कि वे किस ओर से होकर एकाएक कहाँ चले गये।

ब्राह्मसमाज में शास्त्रीय व्याख्या और हरिसंकीर्तन ब्राह्मसमाजियों का आन्दोलन।

गोस्वामीजी आजकल जिस ढंग से वेदी का काम कर रहे हैं, उससे सभी लोग सन्तुष्ट हैं, किन्तु साधारण ब्राह्मसमाज के लोग गोस्वामीजी के इस ढंग के, सम्प्रदाय-विहीन, उपदेशों और व्याख्यानों से नाराज हैं। वे चाहते हैं कि गोस्वामीजी उन्हीं लोगों के ढंग और इच्छानुरूप उपदेश तथा भाषण आदि दें। वेदी पर बैठकर उपदेश देते समय अक्सर गोस्वामीजी शास्त्र की चर्चा करते हैं। वे पुराण की एक-एक कहानी लेकर उसकी आध्यात्मिक व्याख्या करते हैं। सुना है कि इससे पहले इस ढंग की आध्यात्मिक व्याख्या कभी नहीं की गई। इस प्रकार की रूपक-व्याख्या सुनकर कई ब्राह्मभावापन्न व्यक्ति महाभारत और पुराण आदि की ओर धीरे-धीरे आकृष्ट हो रहे हैं। किन्तु मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि ब्राह्मसमाज में शास्त्र-पुराण आदि को प्रचलित करने के लिए गोस्वामीजी की यह पक्की चाल है।

गोस्वामीजी के यहाँ प्रतिदिन शाम को संध्या कीर्तन होता है। शनिवार और रविवार को प्रचारक-निवास के सामने वाले आँगन में देर तक कीर्तन होता रहता है, कभी समाज-मंदिर के सामने के आँगन में भी कीर्तन होता है। इस कीर्तन में बहुत भीड़ एकत्रित होती है। संकीर्तन का शब्द और मृदंग की ध्वनि सुनते ही

गोस्वामीजी को न जाने क्या हो जाता है। खूब ऊँचे-ऊँचे उछलकर **'हरि बोल' 'हरि बोल'** कहते-कहते वे अचेत हो जाते हैं। कभी तो बिल्कुल अचेत होकर गिर पड़ते हैं। साधारणतया गोस्वामीजी की इस मत्तावस्था से बहुतों का 'भाव' जागृत हो जाता है। गोस्वामीजी के कुछ शिष्यों में ही यह मत्त हो जाने का भाव अधिक देखा जाता है। हम लोग भी भाव लाने की चेष्टा करते हैं, किन्तु असली भाव तक हमारी पहुँच ही नहीं हो पाती, निरी 'मेहनत' सार होती है, इसलिए मन में बड़ा दुख होता है।

आज प्रचारक निवास के आँगन में संकीर्तन की बड़ी धूम मची हुई है। ब्राह्मसमाज-मंदिर का प्रांगण आनन्द कोलाहल से परिपूर्ण है। आज बहुतेरे लोग भाव के आवेश में मग्न हैं। असंख्य लोग चारों ओर खड़े होकर संकीर्तन सुन रहे हैं। श्रीधर बाबू मस्त होकर नृत्य करने लगे। उनका नृत्य देखने से ऐसा जान पड़ा मानो कोई पुतला नाच रहा है। बाहरी चेतना न रहने पर भी ऐसी श्रृंखलाबद्ध तरीके से नृत्य करना विशिष्ट शक्ति के प्रभाव बिना नहीं हो सकता। श्रीधर मत्त होकर नृत्य करते-करते जोर-जोर से 'अल्लाहो अकबर' 'अल्लाहो अकबर' कहते हुए दौड़ने लगे। हमारे एक श्रद्धास्पद ब्राह्मसमाजी ने श्रीधर की यह दशा देखकर 'भाई रे' 'भाई रे' कहकर श्रीधर को पकड़ लिया और वे स्वयं उनके साथ नृत्य करने लगे। श्रीधर के नेत्रों की पलकों का गिरना बन्द था। अकस्मात् उछलकर आकाश की ओर अँगुली दिखाते हुए चिल्लाकर कहने लगे-'वह देख काली है, वह देख काली है। श्रीधर से लिपटकर निष्ठावान् ब्राह्म महाशय बड़ा आनन्द कर रहे थे, किन्तु वह काली शब्द सुनते ही श्रीधर को धक्का देकर आलिंगन से हटाकर बोले-'दूर हो साले!

परब्रह्म कह, परब्रह्म कह।' वे 'बोल परब्रह्म, बोल परब्रह्म' कहकर चिल्लाने लगे। 'जय काली! जय काली' कहते-कहते श्रीधर मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

संकीर्तन हो चुकने पर कुछ ब्राह्मसमाजी लोग इस विषय पर काफी देर तक बातचीत करते है। उन्होंने कहा-'गोस्वामीजी ब्राह्मसमाज में हरिनाम चला रहे हैं, उनके शिष्य अब काली, दुर्गा नामों भी चलाने की कोशिश में हैं। यह बड़ा भयानक काम है। इसका विरोध होना चाहिए। वे पक्के निष्ठावान ब्राह्म हैं। भाव के समय काली का नाम सुनने से उनके विवेक को बड़ा धक्का लगा है, इसी से उनके मुँह से 'साले' शब्द निकल पड़ा। इसलिए उन्हें कभी दोष नहीं दिया जा सकता।'

गोस्वामीजी का प्रतिदिन का आचरण और साधन की 'बैठक'।

प्रतिदिन सवेरे सात बजे गोस्वामीजी चाय पीते हैं। इसके बाद आसन पर बैठकर एकटक बडी देर तक आँगन में लगे हरसिंगार की ओर देखते हैं। कुछ देर बाद पाठ करने लगते हैं। कोई ग्यारह बजे तक धर्मग्रन्थों का पाठ होता रहता है।

दोपहर को भोजन करके गेंडारिया के जंगल में 'आनन्द मास्टर' के बाग में जाते हैं। वहाँ पर पूर्व की ओर एक पुराने आम के वृक्ष के नीचे वे तीन घण्टे तक साधन किया करते है।

अपराह्न को समाज-मंदिर में लौट आते हैं। चार बजे के बाद प्रतिदिन प्रचारक-निवास में बहुत लोग आते हैं। केदार बाबू (रामकृष्ण परमहंस देव के भक्त) और आशानन्द बाउल प्रतिदिन आते हैं। गोस्वामीजी के शिष्य और अन्य लोग इसी समय आते हैं। तब विविध धर्म-प्रसंग होने के बाद नित्य संगीत होता है।

शाम को कोई एक घण्टे तक संकीर्तन होता है। इसके बाद कमरा बन्द कर दिया जाता है। उस समय केवल साधन करने वाले ही भीतर रह पाते हैं। रात को लगभग ९-१० बजे तक साधन होता है। सभी लोग मिलकर एक साथ, मात्रा और क्रम को समान रखते हुए, एक ही ढंग से एक घण्टे तक प्राणायाम करते हैं। इसके बाद एक या दो गीत गाये जाते हैं। गीतों के बाद फिर घण्टे भर तक पहले की तरह प्राणायाम किया जाता है। पास के कमरे में बैठी हुई स्त्रियाँ भी एक साथ प्राणायाम करती हैं। बैठक में साधन के समय अलग-अलग आसन का कोई नियम या प्रबन्ध नहीं है। साधन करते समय बहुतों के भीतर पारलौकिक आत्माएँ आ जाती हैं। भाव का आवेश होने से कोई अचेत हो जाता है, कोई जोर से चिल्लाने लगता है और कोई-कोई साधक भयंकर अट्टहास करने लगता है। इस समय अनेक प्रकार के भावों की उमंग आने से कुछ लोगों के भीतर अनेक प्रकार की अवस्था हुआ करती है। गोस्वामीजी धीरे-धीरे इन उद्दाम उच्छवासों के वेग को रोकते हैं, इस साधन बैठक में वे कभी-कभी भावावेश में बहुत सी बातें कहते हैं, देव-देवियों, ऋषि-मुनियों और महात्माओं का प्राकट्य देखकर, स्तुति करने लगते हैं। जो लोग बैठक में बैठते हैं उनमें से बहुतों को किसी न किसी के दर्शन होते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि सभी को एक ही प्रकार के दर्शन हों। कभी किसी व्यक्ति को भिन्न-भिन्न देवी-देवता, भिन्न-भिन्न ज्योति, भिन्न-भिन्न आकृति अथवा प्रत्येक को अलग-अलग तरह से दिखाई पड़ता है। किन्तु मैं तो सिर्फ साँसें चढ़ाता-उतारता रहता हूँ, मुझे किसी के दर्शन नहीं होते। रामकृष्ण परमहंस देव और बारोदी के ब्रह्मचारीजी साधन के समय अक्सर आ जाते हैं।

गोस्वामीजी और भी जिन-महात्माओं के नाम लेते हैं। उनमें से मैं किसी को नहीं जानता। सूक्ष्म शरीर धारण करके आये हुए महापुरुषों के दर्शन सभी को नहीं होते, हाँ हर कोई यह जरूर समझ लेता है कि कुछ अलौकिक घटना हुई है। गोस्वामीजी की अवस्था के संबंध में लोगों से मैं जो बातें सुनता हूँ, उन पर पूर्णतः विश्वास नहीं कर पाता और जिन बातों के देखने-सुनने से सचमुच चमत्कार जान पड़ता है, उन्हें भी लोगों के आगे प्रकट करने का साहस नहीं होता। अतएव सर्वसाधारण को जो प्रतिदिन देख पाते हैं, उसीको याद रखने के लिए आभास मात्र लिखता जाता हूँ।

आजकल गोस्वामीजी के समाधिमग्न होने का कोई निर्दिष्ट समय अथवा नियम नहीं है। किसी भी दिन भोजन करने बैठकर हाथ का ग्रास मुँह में रखते ही वे समाधिस्थ हो जाते हैं, मुँह का अन्न मुँह में ही रह जाता है। डेढ़-दो घण्टा एक ही दशा में बीत जाते हैं। परिचित या अपरिचित आदमी से साधारण बात-चीत करते-करते भी वे अकस्मात् ऐसे ही बेसुध हो जाते हैं। बहुत देर तक कुछ आहट ही नहीं मिलती। वे ही जानें कि भीतर उन्हें क्या हुआ करता है। पाठ करते-करते गला रुँध जाता है, फफक-फफककर रोते-रोते बाहरी चेतना नहीं रहती, यह दशा देर तक बनी रहती है। संकीर्तन के समय भगवान् का नाम सुनते ही उछल पड़ते हैं, नृत्य करते-करते मूर्च्छित होकर गिर पड़ते हैं। शरीर जड की तरह अचल हो जाता है। ऐसी दशा में कोई देर तक सामने बैठे-बैठे जब भगवान् का नाम लेता रहता है, तब उनकी बाह्य चेतना लौटती है।

प्रचारक-निवास में तरह-तरह के लोग आते हैं। वे लोग गोस्वामीजी को सुनाकर अनेक प्रकार की बातचीत और चर्चा

आदि करते हैं। गोस्वामीजी सभी की बातों में 'हाँ हाँ,' करते जाते हैं और अपने ही भाव में मस्त बने रहकर, ढुलक कर गिर पड़ते है, मानो मन सदा दूसरी ओर पड़ा रहता है। जिन गीतों में भगवान् के नाम की गन्ध तक नहीं है, बल्कि जिनसे स्त्री-पुरुष के प्रणय-संबंधी भाव को उत्तेजना मिलती है, ऐसे गीत सुनने से भी गोस्वामीजी भावमग्न हो जाते हैं। प्रेम-संगीत, टप्पा वगैरह को भी वे बड़े आग्रह से सुनते हैं, और उन्हें सुनते हुए भी 'वाह वाह, ओहो' कहते-कहते रोने लगते हैं। राधाकृष्ण अथवा गौर-निताई-संबंधी गाना होते ही गोस्वामीजी का वंशगत भाव जागृत हो पडता है।

ब्राह्मसंगीत की अपेक्षा उल्लिखित गीत सुनने की ओर गोस्वामीजी की रुचि और भाव की स्फूर्ति भी अधिक दिखाई पड़ती है। कृष्णकान्त पाठक के गीतों को गोस्वामीजी बहुत पसन्द करते हैं। आनुष्ठानिक ब्राह्मसमाजी श्रीनवकान्त चट्टोपाध्याय प्रतिदिन अपराह्न एक बार गोस्वामीजी के पास आते हैं। वे खूब अच्छा गा सकते है। गोस्वामीजी की रुचि जानकर वे अक्सर कृष्णकान्त पाठक के गीत गाया करते हैं। अपनी संकलित संगीतमुक्तावली और प्रेम-संगीत से भी वे बीच-बीच में निम्नलिखित गीत गाया गाया करते हैं, यथा-'जले देउ दिओ ना गो सखि, आमि कालो रूपि निरखी।' (पानी में तरंग मत उठाओ सखि, मैं कृष्ण के रूप को देख लूँ।), 'तारे दिये प्राण कुलमान चरण पेलाम ना स्वजनि, आमि हलेम गौरकलंकिनी।' (यद्यपि मैंने उन्हें अपने प्राण और कुल का मान सौंप दिया है, तो भी मुझे उनके चरण प्राप्त नहीं हुए, मुझे नाहक कलंक लगा।)-इत्यादि। इन गीतों की सुनकर गोस्वामीजी भावमग्न हो जाते हैं। गोस्वामीजी को भावमग्न होते

देखकर और लोग भी विमुग्ध हो जाते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि ब्राह्मसमाजी लोग भी यह परखने का अवसर नहीं पाते कि ये गीत आखिर किस भाव के है, इनका विषय क्या है। जो भी हो, इसके बाद शाम को छात्र समाज के हमउम्र लोग सभी मिलकर सुमधुर गायक श्रीरेवतीमोहन के साथ जोर-जोर से कीर्तन करते हैं- 'गाओ रे आनन्दे सब जय ब्रह्म जय।' गोस्वामीजी को वैरागियों का गीत 'जीवेर थाकते चेतन हरि बोलो मन, दिन गेलो दिन गेलो। (हे मन, जब तक जिंदगी है तब तक हरि हरि कहो, समय बीता जा रहा है।) बहुत पसन्द है, अतएव इसे हम प्रायः प्रतिदिन गाया करते हैं। संकीर्तन के समय गोस्वामीजी की ऐसी कुछ दशा हो जाती है, उसे प्रकट करने की मेरे पास भाषा नहीं है। भिन्न-भिन्न समयों पर देखने से मुझे जान पड़ता है कि गोस्वामीजी लगातार दिन-रात मानो एक भाव में डूबे हुए रहते हैं। गोस्वामीजी को यद्यपि मैं बहुत चाहता हूँ, तथापि मैं समझता हूँ कि भक्तिभाव की अधिकता के कारण वे विशुद्ध ब्राह्ममत को छोड़कर बहुत कुछ प्राचीन भ्रान्त मत में जा पहुँचे हैं।

गोस्वामीजी के शिष्यों की बातें।

जिन लोगों ने गोस्वामीजी से योग-साधन प्राप्त कर लिया है, उनके भीतर की अवस्था को समझने का साध्य मुझमें नहीं है। हाँ, मिलजुलकर बात-चीत करने से मुझे जो कुछ मालूम होता है, उससे मैं बहुत ही विस्मित हूँ। कोई दो वर्ष से गोस्वामीजी पात्र विशेष को यह साधन देने लगे हैं; इतने थोड़े समय के भीतर ही साधन प्राप्त करनेवाले व्यक्तियों में कितनों के भीतर अद्भुत भाव, अलौकिक शक्ति और अद्भुत योगैश्वर्य प्रकट होने लगा है। इन लोगों

में संकीर्तन के भाव की एक नये ढंग की उमंग देखता हूँ, जो कि पहले कहीं और किसी में नहीं देखी। साधारण मनुष्य तो इन अवस्थाओं को देखकर विस्मित हो जाते हैं, कोई तो इसे भूत-प्रेतों का कांड समझकर बुद्धि गँवा बैठते हैं। संकीर्तन में इनका आनन्द, उमंग और मस्ती अथवा भावावेश बिल्कुल नये तरीके का होता है। इसके सिवा इनकी स्वाभाविक दशा भी अलग तरह की है। ये लोग सदा साधन में तत्पर, सत्यनिष्ठ, प्रफुल्ल चित्त और विनयी रहते हैं। गोस्वामीजी के शिष्य आपस में जितना अधिक स्नेह रखते हैं, उतना अपने पिता-माता या बाल-बच्चों पर नहीं रखते। दिन में एक बार सभी की परस्पर भेंट होनी ही चाहिए। गोस्वामीजी के शिष्य मान-मर्यादा की परवाह न करके, हमउम्र की तरह, बालक और बूढ़े परस्पर ऐसे मिलते हैं, इतना स्नेह करते हैं कि ऐसी बात मुझे अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलती। यह तो विधाता ही जाने आगे चलकर, यह सद्भाव इन लोगों में कब तक स्थायी रूप से बना रहेगा। किन्तु इस समय इनकी यह दुर्लभ दशा देखकर जान पड़ता है कि इसमें कभी अन्तर नहीं पड़ेगा। धीरे-धीरे अब मेरी भी यह हालत हो गई है कि अनेक प्रकार की अशांति और बेचैनी में भी यदि कोई साधन-प्राप्त व्यक्ति मिल जाता है तो मन शीतल हो जाता है, भीतर का सारा दुःख हट जाता है। इन लोगों के दर्शनमात्र से ही चित्त सरसता एवं सन्तोष के भाव से भरपूर हो उठता है। ऐसा क्यों होता है, नहीं समझ पाता।

इतने थोड़े समय के भीतर ही गोसाईजी के किसी साधननिष्ठ शिष्य के भीतर अलौकिक शक्ति और अद्भुत योगैश्वर्य उत्पन्न हो गया है और किसी-किसी को वह समझने या विश्वास करने तक का

अधिकार नहीं हुआ। किसी को तो अन्नमय, प्राणमय कोष को भेदकर मनोमय कोष में पहुँचने और सूक्ष्म शरीर द्वारा जहाँ-तहाँ विचरण करने की भी शक्ति प्राप्त हो गई है। न केवल पृथ्वी पर ही बल्कि अन्य लोकों में भी ये लोग समय समय पर आया-जाया करते हैं। दूर के किसी अज्ञात् और गोपनीय मामले को जानने के लिए कोई व्यक्ति ज्योंही ध्यान लगाता है, त्योंही चित्रपट की तरह वह घटना उनके आगे प्रकट हो जाती है। किसी आवश्यक, दुर्लभ वस्तु को प्राप्त करने के लिए कोई भगवान से प्रार्थना करके आसन पर ध्यान लगाकर बैठा कि वहीं पर वह वस्तु उसके पास आ ही जाती है। किसी मनुष्य अथवा जीव-जन्तु की सहायता से ऐसा नहीं होता, बल्कि पूर्णतः ध्यान के प्रभाव से अप्राकृत रूप से यह होता है।

इसी बीच गोस्वामीजी के एक शिष्य और बहुत ही घनिष्ठ आत्मीय को इष्टमंत्र की शक्ति की जाँच करने के लिए बड़ा कौतूहल हुआ। इसके लिए वे सूर्यमण्डल के अधिष्ठातृ देवता का आकर्षण करने लगे। इससे उत्पन्न कुछ प्राकृतिक दुर्घटना की सूचना दिखाई पड़ी। यह मालूम होते ही गोस्वामीजी ने उस व्यक्ति को वैसा करने से रोक दिया और उसे बहुत धमकाकर कहा-**भगवान् की इच्छा के बिना भगवत्शक्ति का प्रयोग किया जाय तो उससे सारा ब्रह्माण्ड ध्वस्त हो सकता है। इस संबंध में बहुत ही संयत और सावधान रहना चाहिए।**

किसी की चंचलता और असावधानी के कारण अलौकिक शक्ति का प्रयोग हो जाने से कुछ-कुछ आकस्मिक दुर्निमित्त होने का आरम्भ हो गया था। किसी प्रकार का प्राकृतिक उलट-फेर अथवा

साधारण नियम से बाहर की कोई असम्भव घटना, किसी व्यक्ति की इच्छा शक्ति अथवा साधन के प्रभाव से हो जाती है, इसे आजकल के छोटे लोग गंजेड़ी की गप समझकर हँसी उड़ाएँगे। घटनाओं का विस्तृत वर्णन अपनी डायरी में यहाँ उद्धृत नहीं किया है। सुनता हूँ कि शिष्यों के इस ढंग के हठ और भयंकर धुन का जानकारी पाकर गोस्वामीजी ने उनकी ऐश्वर्य और शक्ति प्रयोग का मार्ग बंद कर दिया है, सच-झूठ भगवान ही जाने।

खोई हुई मन्त्र की शक्ति से उद्धार का उपाय बतलाना।

ढाका नार्मल स्कूल के हेड पण्डितजी, जगन्नाथ स्कूल के एक सोलह-सत्रह साल के साथ लेकर गोस्वामीजी के यहाँ आये। लड़के का दिमाग बुरी तरह गरम हो गया है-वह विक्षिप्त-सा गया है। पण्डितजी उसे इसलिए साथ लाये हैं कि गोस्वामीजी की कृपा से वह ठीक हो जाएगा। छात्र ने अपना ब्यौरा सुनाया-'कुछ दिन हुए कि एक तान्त्रिक संन्यासी ढाका में आये थे। उन्होंने रमना के जंगल के समीप एक पेड़ के नीचे अपना आसन लगाया था। एक दिन घूमते-घूमते वहाँ जाकर उनके दर्शन किये तो मुझे उनके प्रति बड़ी भक्ति उत्पन्न हो गई। संन्यासीजी थोड़े ही दिन में वहाँ से चले जानेवाले थे, इसलिए स्कूल जाना बन्द करके, कई दिनों तक मैंने उनकी खूब सेवा की।'

चलते समय संन्यासीजी ने खूब सन्तुष्ट होकर मुझसे कहा-'तुमने मेरी बहुत सेवा की है, इससे मैं तुम पर बहुत खुश हूँ, इससे मैं तुम्हें एक विद्या दिये जाता हूँ। तुम बिना मतलब के चाहे जहाँ, किसी पर इस शक्ति का प्रयोग न करना।' बस, उन्होंने कान में मुझे एक मन्त्र सुनाकर कहा 'इस मन्त्र को पढ़कर एक चुल्लु पानी

किसी पेड़ या लता पर छिड़कने से वह तुरन्त सूख जाएगा। फिर उसी मंत्र से पुनर्जीवित हो पाएगा।’ मैंने तुरन्त ही मन्त्रशक्ति को आजमाने के लिए ऐसा करके देखा और सच पाया। संन्यासीजी ने इस मन्त्र का प्रयोग चाहे जहाँ करने के लिए मना कर दिया था। इसके बाद एक दिन बंगला बाजार में, रूद्र बाबू के दवाखाने में, ब्राह्मसमाजी मित्रों के साथ मेरा मन्त्रशक्ति पर विवाद हुआ। उन्हें मन्त्रशक्ति पर विश्वास न था, अतएव वे लोग कुसंस्कारी कहकर मुझे चिढ़ाने लगे। तब मैंने जिद में आकर मन्त्रशक्ति दिखाने के लिए एक टब में लगे फूल की लता पर, मन्त्र पढ़कर, पानी छिड़क दिया। तुरन्त ही पेड़ मुरझा गया। फिर तुरन्त ही मन्त्र पढ़कर जल छिड़का तो जी उठा। मित्रों के आश्यर्च का ठिकाना न रहा। अब वे लोग उस मन्त्र को सुनाने की जिद करने लगे। मैंने अस्वीकार किया, किन्तु उन लोगों ने मेरा पीछा न छोड़ा, उन्होंने समझाया कि उक्त मन्त्रशक्ति जब तुमको सिद्ध हो चुकी है, तब वह नष्ट नहीं होगी। उनकी बातों में आकर मैंने मन्त्र का उच्चारण कर दिया। उस दिन से मन्त्र में कुछ असर नहीं रहा। ऐसी अद्भुत शक्ति मुझे मिल गयी थी और अब मैं उसे खो बैठा, इसी चिन्ता और क्लेश के मारे मैं पागल-सा हो गया हूँ। आप कृपा करके ऐसा कर दीजिए जिससे मेरे उस मन्त्र में फिर वही शक्ति आ जाए।

गोस्वामीजी ने उस लड़के की बहुत ही व्याकुलता देखकर पूछा-**‘तुम्हें मंत्र याद है?’**

लडके ने कहा-‘पहले तो याद था, अभी जरा गड़बड़ हो गया है।

गोस्वामीजी-**एक अक्षर तो याद होगा? खैर, तुम्हें अपने गुरु का रूप तो याद है?**

लडके ने कहा-हाँ, याद है। लेकिन साफ-साफ याद नहीं पड़ता।

यह सुनकर गोस्वामीजी ने उसे एक प्रणाली बतलाकर कहा-**अच्छा, तुम जाकर एक रात को एकान्त में बैठकर यही करो। मन्त्र भी याद आ जाएगा और मन्त्रशक्ति भी वापस मिल जायगी।**

खबर मिली कि गोस्वामीजी के उपदेश के अनुसार चलने से लड़के की मनोकामना पूरी हो गई है। उसके दिमाग की बीमारी भी ठीक हो गई है।

शक्ति-हरण।

आज एक शक्तिसम्पन्ना बाउलिनी की बात सुनकर मैं विस्मित रह गया। गोस्वामीजी के यहाँ प्रतिदिन असंख्य लोग आते-जाते रहते थे, इस कारण बाउलिनी पर मेरा ध्यान विशेष रूप से नहीं गया था। बातों ही बातों में गोस्वामीजी ने उसके संबंध में कहा-**मैं तनिक अन्यमनस्क था। एक बाउलिनी ने आकर मुझे नमस्कार किया। उस समय मैंने देखा नहीं। एकाएक बाउलिनी मेरे पैर के अँगूठे को चूसने लगी। तब मुझे होश हुआ। एक भयानक शक्ति ने अकस्मात् मेरे शरीर में प्रवेश करके मुझे अस्थिर कर डाला। मैंने उसे एक ऊपरी शक्ति समझकर गुरुदेव का स्मरण किया, और उनके चरणों में उस शक्ति को तुरन्त अर्पित करके मैं निश्चिन्त हो गया। अब बाउलिनी नीचे गिरकर तड़पने लगी, और चिल्लाकर रो-रोकर कहने लगी-'प्रभो! मेरी वस्तु मुझे लौटा दीजिए। अब मैं कभी वैसा न करूँगी।' मैंने कहा-अब वह नहीं हो सकता, ज्योंही वह मेरे भीतर पहुँची, त्योंही मैंने उसे गुरुदेव को अर्पित कर दिया। जो चीज दे चुका हूँ, उसे वापस नहीं माँग**

सकता। बाउलिनी समाज में दो दिन तक बहुत रोती-पीटती रही, फिर जब उसे मालूम हो गया कि गई वस्तु कदापि वापस नहीं मिलेगी, तब अधमरी सी निस्तेज होकर यहाँ से चली गई।

प्रश्न-ये किस रीति से शक्ति की चोरी करती है? क्या बिना अँगूठा चूसे ही यह काम हो सकता है?

गोस्वामीजी-**अँगूठा चूसने से यह काम आसानी से हो जाता है, इसके सिवा चरण-रज लेकर और देह से लिपटकर भी शक्ति चुरा ली जाती है। कोई दृष्टि जमा करके भी यह काम कर लेता है। अपनी शक्ति और भाव को दूसरे के भीतर पहुँचाकर, फिर अपनी शक्ति को खींचने पर, साथ-साथ दूसरे की शक्ति और सद्भाव आकर्षित होकर आ जाते हैं।**

प्रश्न-इन उत्पातों से बचने के क्या उपाय हैं?

गोस्वामीजी-**अभिमान से बचे रहकर अपने को बहुत ही छोटा समझना चाहिए। ऐसा होने पर दूसरे को लेने के लिए कुछ नहीं मिलता। और अपने इष्टदेव के चरणों में ध्यान लगाये रहने से संपूर्ण निरापद हुआ जा सकता है।**

प्रश्न-मालूम होने पर ही तो इन उपायों से काम लिया जा सकता है। किन्तु अज्ञातवश यदि कोई शक्ति की चोरी इस तरह करे तो, उस दशा में किस तरह रक्षा पाई जा सकती है?

गोस्वामीजी-**योगैश्वर्य प्राप्त हो जाने पर योगी लोग गुरु का दिया हुआ त्रिशूल धारण किये रहते हैं। उससे अपने तेज की रक्षा तो होती ही है, साथ ही दूसरे का कोई असद्भाव साधक के भीतर संचारित नहीं हो सकता।।**

प्रश्न-बड़े-बड़े त्रिशूल लेकर तो गृहत्यागी संन्यासी चल सकते हैं।

साधारण मनुष्य वैसा नहीं कर सकते?

गोस्वामीजी-**३से ४ इंच का छोटा सा, इस्पात का त्रिशूल लिये रहने से भी काम चल जाता है।**

हमारे देश में छोटे-छोटे बच्चों की कमर में, भूत-प्रेतों और चुडैलों की नजर बचाये रखने के लिए, लोहा बाँध देते हैं। माता-पिता आदि बड़ों के अशौच के समय पर भी, अशौच का अन्त न होने तक, ऊपरी उपद्रव से बचाव के लिए लोगों में लोहे को धारण करने की प्रथा है-इस सबको तो हम भयंकर कुसंस्कार ही समझते हैं। पता नहीं कि योगियों के त्रिशूल-धारण की भाँति इन नियमों का भी कुछ न कुछ उद्देश्य है या नहीं।

२२ अग्रहायन १२९४

वार्षिक उत्सव में महासंकीर्तन-भावावेश की वार्ता।

आज वार्षिक उत्सव है। देखता हूँ कि ढाका ब्राह्मसमाज का उत्सव धीरे-धीरे सभी सम्प्रदायों का उत्सव बन गया है। जन साधारण के सिवा, बड़े-बड़े आदमियों, हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों, साधु-संन्यासियों और फकीरों ने आकर आज ब्राह्मसमाज-मंदिर के अहाते को परिपूर्ण कर दिया है। पन्द्रह-बीस आदमियों ने, एक-एक स्थान में कीर्तन आरम्भ कर दिया। सैकड़ों मनुष्य अनेक स्थानों में खड़े होकर या बैठकर कीर्तन सुनने लगे। समाज मंदिर के विशाल प्रांगण के सामने गोस्वामीजी ध्यान लगाये बैठे हुए थे। जगन्नाथ कॉलेज के प्रिंसिपल श्रीकुंजलाल नाग, अध्यापक प्रसन्न बाबू और डॉक्टर प्रसन्न मजूमदार के साथ, मृदंग बजाकर गाने लगे। इन लोगों के इस कीर्तन के आरम्भ से ही भाव तरंग की बाढ़-सी आ गई। स्कूल-कॉलेज के छात्र, कुंज बाबू के

साथ बड़ी उमंग से गोस्वामीजी को घेरकर, घूम-घूमकर जोरों से कीर्तन करने लगे। थोड़ी देर में गोस्वामीजी को बाह्यज्ञान हुआ। वे साष्टांग प्रणाम करके खड़े हो गये। अधखुली आँखों से चारों ओर देखकर वे पल-पल कम्पित होने लगे। इसी समय न जाने कहाँ से एक अपरिचित, परम तेजस्वी संन्यासी कीर्तन के स्थान में तीव्र गति से आ गये। वे संगीत की एक-एक टोली में मिलकर दोनों हाथ उठाये हुए, संकीर्तन में दो-एक बार नृत्य करके अहाते भर में दौड़ने लगे। देखते ही देखते एक अपूर्व महाशक्ति ने संचारित होकर, क्या बालक क्या बूढे, सारे दर्शक मंडली को कंपित कर दिया। **हरिबोल, हरिबोल,** कहते-कहते गोस्वामीजी मूर्च्छित होकर गिर पड़े। संकीर्तन करनेवाली भिन्न-भिन्न टोलियाँ न जाने कब आकर सम्मिलित हो गई। बहुत से मृदंगों और मँजीरों की ध्वनि, संकीर्तन के शब्दों के साथ मिल गयी, झमाझम की आवाज से समाज का प्रांगण काँप उठा। बहुत से दर्शक पेड़ों के नीचे, रास्ते में सीढ़ी के समीप और घास के ऊपर गिरकर हाथ-पैर पटकते हुए अचेत हो गये। न मालूम यह अवस्था कब तक चली। दिन डूबने के थोड़ी देर बाद ब्राह्मसमाज के अधिकारी आकर जोर-जोर से कहने लगे-'अब आप लोग उठिए, उपासना का समय हो गया है। इसी समय गोस्वामीजी ने आँखें खोलीं, चारों ओर की दशा देखकर, वे थोड़ी देर तक चुपचाप रहे। फिर प्रत्येक अचेत व्यक्ति के समीप-जा-जाकर किसी को छूकर, किसी के कान के पास **'हरि बोल' 'हरि बोल'** कहकर सचेत करने लगे। समाज-मंदिर के बरामदे में, सीढ़ियों के समीप, १३-१४ वर्ष के एक लड़के को अचेत पड़ा देखकर, गोस्वामीजी उसकी देह पर हाथ फेरकर बार-बार भगवान्

का नाम लेने लगे। किन्तु उसे किसी तरह चेतना नहीं लौटी। अन्त में गोस्वामीजी उसे अपनी गोद में लेकर जोर-जोर से हरिनाम का उच्चारण करने लगे। बड़ी देर के बाद लड़के ने अव्यक्त क्लेशसूचक करूण स्वर में यंत्रणा प्रकट किया। बीस मिनट बाद धीरे-धीरे, चेतना लौटी। गोस्वामीजी ने कहा-**'लड़का सहस्त्रार में जा पहुँचा था।** मैं नहीं जानता, इसका क्या मतलब है। यह लड़का कुंज बाबू का रिश्तेदार है, मेरा घनिष्ठ मित्र है-नाम वसुधा है।'

सबको स्वस्थ करके गोस्वामीजी वेदी पर जा बैठे। वे आज वेदी पर बैठकर प्रणाली के अनुसार, उपासना नहीं कर सके। नारद, वाल्मीकि, श्रीचैतन्य, राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस आदि का प्राकट्य देखकर वे उन्हीं की स्तुति करने लगे। जो लोग वहाँ मौजूद थे उन सबकी आँखों से आँसू बहने लगे। यद्यपि गोस्वामीजी ने थोड़ा ही कहा-तथापि उनके भाव में सभी मस्त हो गये। अन्त में भावावेश में नीचे लिखी बातें कहने पर गोस्वामीजी का गला रुँध आया। उन्होंने कहा-**वह देखो, माँ आ रही है। आज वे थाली भर के प्रसाद लिये आ रही है। देखो, माँ मुझसे यह बात कहने से मना कर रही है। क्यों माँ, क्यों न बतलाऊँ? रोज छिप-छिपकर मुझे प्रसाद खिलाती हो, आज अपने सभी बेटों को तुम्हें प्रसाद देना होगा। एकमात्र मुझे दोगी तो मैं नहीं खाऊँगा। तुम सभी की तो माँ हो। भला इन लोगों को क्यों नहीं देती? ये तो भूखे रहते हैं। माँ तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है? माँ, आज तुम्हारी चालाकी की बात मैं सबको बता दूँगा। विक्रमपुर की वही 'पातक्षीर' (मिठाई) की बात कह दूँगा, राम बाबू की बात कह दूँगा। यह भी कह दूँगा कि तुमने संकली खोल दी थी। तुम्हारे**

घर की सारी भीतरी बातें प्रकट कर दूँगा। मैं आज बतला दूँगा कि कैसा आचरण करने पर तुम्हारा प्रसाद मिल सकता है। देखिए, आप लोगों से कहता हूँ-आप लोग इन तीन नियमों का पालन करके चलें तो आपको माता का प्रसाद मिलेगा। जब जो कुछ लें, खाएँ-पीएँ, पहले वह माता को निवेदन कर लें, बिना निवेदन की हुई वस्तु कभी न ले। दूसरे की निन्दा, बुराई कभी न करें। देखिए, माँ मेरे मुँह को दबा रही हैं। अब कुछ कहने नहीं देती। माँ ने हाथ से मेरा मुँह दबा दिया है। जय माँ, जय माँ, जय माँ!

अस्फुट स्वर में ये बातें कहते-कहते गोस्वामीजी का गला रुँध गया, बहुत चेष्टा करके भी वे और कुछ न कह सके। चारों ओर क्या हिन्दू और क्या ब्राह्मसमाजी सभी के रोने और भाव-मग्न होने से धूम मच गई। थोड़ी देर में चन्द्रनाथ बाबू गाने लगे। आज गोस्वामीजी वेदी का काम फिर न कर सके। धीरे-धीरे सबके शान्त होने पर सभी लोग अपने-अपने घर चले गये। मैं भी चला गया। पता नहीं कि गोस्वामीजी कितनी देर तक वेदी पर बैठे रहे।

कुछ अद्भुत घटनाओं का सूत्र।

गोस्वामीजी के ढाका आने के बाद इन दो-तीन वर्षों में कुछ अद्भुत घटनाएँ हुई हैं। उनकी चर्चा भी हिन्दुओं में और ब्राह्मसमाज में जहाँ-तहाँ अक्सर होती है। ये बातें सचमुच सत्य हों, तब तो वास्तव में बड़ी विचित्र हैं। गोस्वामीजी के मुँह से सुने बिना उन बातों को मैं ‘डायरी’ में लिखना नहीं चाहता। बातचीत के सिलसिले में अथवा प्रश्न करके मैं जब उन घटनाओं को स्पष्टतः गोस्वामीजी से मालूम कर लूँगा, तब सब ब्यौरेवार ठीक-ठीक लिख लूँगा। यहाँ

तो अभी सिर्फ याद रखने के लिए, सूत्र रूप में, उनका उल्लेख कर रहा हूँ।

१. गोस्वामीजी की दोनों कन्याओं ने जब बड़े कौतूहल और आग्रह से पद्मा देवी के दर्शनों की इच्छा प्रकट की तो गोस्वामीजी की आज्ञानुसार चावल, केले, नैवेद्य, इत्यादि लेकर कन्याओं ने पद्मा नदी के गर्भ में पद्मा की पूजा की और उसी समय अकस्मात् पद्मा देवी का आविर्भाव हुआ।

२. विक्रमपुर के चाँचरतला में, काली के स्थान में अद्भुत रीति से हरिसंकीर्तन हुआ और उसी समय आकाश से ढेर से पुष्पों की वृष्टि हुई।

३. कामाख्या तीर्थ में श्रीभुवनेश्वरी के अद्भुत दर्शन हुए और कामाख्या देवी का रजोनिःसरण (मासिक धर्म) देखा। इसके साथ वहाँ अचलानन्द स्वामी ने विश्वास के प्रभाव से चावल बोकर धान के पौधे उपजाये।

४. गेंडारिया में, आनन्द बाबू के सुनसान बाग में, कठोर साधन किया, दुर्जय परीक्षा दी और भयंकर विभीषिका आदि के दर्शन किए।

५. धर्मप्राप्ति से निराश होकर बूढ़ी गंगा में डूब मरने को तैयार एक व्यक्ति को, अकस्मात् आधी रात में, नदी पर पहुँचकर दीक्षा प्रदान की और उसकी मरने से प्राण रक्षा की।

६. प्रचार करने के लिए जाकर विक्रमपुर के पण्डित-समाज में बहुत ही अद्भुत प्रभाव दिखलाना और हरिसंकीर्तन में महाभाव की उमंग द्वारा जनता को विमुग्ध कर देना।

७. ब्राह्मसमाज में विकट विरुद्ध आन्दोलन के समय प्रश्न के

बहाने मन्मथ बाबू द्वारा 'योग साधन' का प्रणयन और प्रचार करना।

अग्रहायन का शेष१२९४ बं. सन्

मेरी असाध्य व्याधि।

कफाश्रित वायु और पित्तशूल के दर्द के मारे मरणासन्न होकर मैंने स्कूल से नाम कटवा लिया। आयुर्वेदिक चिकित्सा कराने के लिए मैं घर आ गया हूँ। ये दोनों बीमारियाँ मुझे पिता-माता से मिली हैं, ऐसा अनुमान मेरे सगे संबंधी और इष्ट मित्र करते हैं। किन्तु मैं समझता हूँ कि मेरे शरीर पर बहुत अत्याचार करने से ये रोग उत्पन्न हुए हैं। बचपन से ही 'धर्मधर्म' करके मुझे एक अजीब-सी अस्थिरता रही है। पिछले तीन-चार वर्ष से तो इसमें और भी वृद्धि हो गई है। सदा यही सोचता रहता हूँ कि कहाँ जाने से भगवान् मिलेंगे, क्या करने से, किस प्रकार का साधन करने से उनकी प्राप्ति होगी? जितेन्द्रिय होकर, किसी दुर्गम पहाड़ पर रहकर, व्याकुलता से भगवान् को पुकारूँगा, तो वे अवश्य दया करके मुझे दर्शन देंगे-दृढ़ संस्कार के वशवर्ती होकर अपने मन माफिक जीवन गढ़ने जाकर ही, मैं ऐसा पीड़ित हो गया हूँ।

हमारे कुल के गुरु एक विख्यात अध्यापक और प्रसिद्ध तान्त्रिक हैं। उनकी धीर-गम्भीर प्रकृति और मधुर व्यवहार से मैं उन पर बहुत ही आकृष्ट हूँ। एक दिन मैंने यह सोचकर उनके चरण पकड़ लिये कि उनकी व्यवस्था के अनुसार चलने से मैं अपने आशानुरूप अवस्था सहज ही प्राप्त कर लूँगा। बहुत ही कातर होकर मैंने अपने मन की दशा उन्हें बताकर कहा-'आप दया करके मुझे ऐसा उपाय बता दीजिए जिसके करने से मैं काम-विजयी हो जाऊँ। और मुझे भोजन करने की भी आवश्यकता न रहे। मैं पहाड़ पर

जाकर साधन करूँगा।' इस पर शरीर की उत्तेजना को नष्ट करने के लिए पंचनिम्बवटिका और आहार त्यागने के लिए बिल्व-वटिका को यथारीति बनाकर सेवन करने की सलाह उन्होंने मुझे दी। किन्तु यह सब गोस्वामीजी के अज्ञात् ही हो रहा था।

जो हो, न तो स्त्री के चेहरे की ओर देखूँगा और न जीभ के स्वाद के लिए कोई चीज खाऊँगा, यह प्रतिज्ञा करके मैं पिछले दो वर्ष से प्रतिदिन उक्त दोनों औषधियों का सेवन कर रहा हूँ। निम्बवटिका के अद्भुत गुण से मेरा तीव्र काम का भाव बहुत कुछ तेजहीन हो गया है और बिल्ववटी का सेवन करने से भूख बड़ी विचित्रता से घट गई है। धीरे-धीरे चेष्टा करके सिर्फ एक मुट्ठी भर अन्न खाने का निश्चय कर लिया है। इन चेष्टाओं के साथ-साथ एक प्रकार का कुम्भक भी बहुत दिन तक किया था। अब जान पड़ता है कि मुद्दत तक वही निम्ब और बिल्व वाटिका का सेवन करते रहने और भोजन की मात्रा अत्यन्त कम कर देने से ही मुझे यह दुःसह और दुरारोग्य पित्तशूल रोग हो गया है तथा साँस को रोक रखने की अस्वाभाविक उत्कट चेष्टा से यह दारूण कफाश्रित वायु उत्पन्न हो गया है। जो हो, अब बीमार होकर घर आने पर मैंने उक्त दोनों दवाईयाँ छोड़ दी है। वायुरोग की सूचना मिलते ही मैंने साँस रोकने की चेष्टा भी बन्द कर दी है, आनुषंगिक अन्यान्य नियमों का अनुष्ठान आदि भी छूट गया है, भोजन का परिमाण अवश्य पहले की तरह एक मुट्ठी भात निर्दिष्ट है।

घर आकर, देश के विख्यात वैद्यों से रोग का निर्णय करवाकर, औषधि की व्यवस्था ली। ढाका के सुप्रसिद्ध श्रीकाली कविराज वैद्य के आज्ञानुसार, उन्हीं की व्यवस्था के निर्देश से, घर पर दवा

बनवाकर विधिपूर्वक उसका सेवन करता हूँ। किन्तु रत्ती भर उपकार नहीं हो रहा है, बल्कि ऐसा जान पड़ता है कि वायु और दर्द का प्रकोप और भी बढ़ता जा रहा है। कई चिकित्सकों ने एकमत होकर कहा कि रोगी की जो हालत है उसमें स्वस्थ होने की आशा नहीं, हाँ-सोना, लोहा, मोती प्रभृति की भस्म कराकर, अच्छे वैद्य के द्वारा बड़ी सावधानी से घर पर मूल्यवान औषधि बनवाकर उसका सेवन विधिवत् किया जाए तो रोग से सामयिक कुछ आराम मिल सकता है। मैंने भी मन ही मन यह समझ लिया कि इस यातना को भोगने के लिए भगवान् मुझे संसार में बहुत दिनों तक नहीं रखेंगे। अतएव मौत को पास ही समझकर साधन भजन की ओर मेरे मन का झुकाव और अधिक हो गया है। रोग की चिकित्सा तो एक अनावश्यक बाहुल्य जैसा जान पड़ता है। सूर्योदय से लेकर साढ़े नौ बजे तक एक व्यक्ति रोज मेरे बदन में तेल की मालिश करता है और सिर में तेल लगाता है। सवेरे दो बार दवा लेता हूँ। यह समय खूब भगवान् का नाम लेते हुए अच्छी तरह व्यतीत होता है। दोपहर को भोजन करके घर के पश्चिम ओर, गाँव के बच्चों के कब्रिस्तान में, 'छकी के घर' के भयंकर जंगल में जा बैठता हूँ, शाम पाँच बजे तक सुनसान में भगवान् का नाम लेकर बड़ा आनन्द पाता हूँ। किसी दिन किसी कारण यदि मैं एकान्त में बैठकर यह साधन नहीं कर पाता तो मन में बड़ा दुःख होता है।

अयोध्या जाने का विचार और गोस्वामीजी की आज्ञा।

घर आये बहुत दिन हो गये। गोस्वामीजी के दर्शन करने के लिए मन बहुत ही व्याकुल हो रहा है। सुना है, ढाका में गोस्वामीजी के संबंध में बड़ी गड़बड़ी मची हुई है। उन्होंने ब्राह्मधर्म प्रचारक पद,

पदत्याग दिया है। ब्राह्म समाज के प्रचारक-निवास में रहना भी छोड़ दिया है, (लक्ष्मीबाजार, सीकचेवाले घर के आगे) इकरामपुर के कदमतला में किराये का मकान लेकर वे सपरिवार रहते हैं। यह खबर सुनते ही मेरा सिर चकरा गया। ब्राह्मसमाज को छोड़ दिया। साफ-साफ कुछ समझ में न आया क बात क्या है। गोस्वामीजी के दर्शन करने के लिए मैं बेचैन हो उठा।

इधर वैद्य की औषधि लेने पर भी रोग में कुछ अन्तर न पड़ा। वह तो और भी दिन-पर-दिन बढ़ने लगा। इसके सिवा आँखों का भी रोग उत्पन्न हो गया। देखने की शक्ति धीरे-धीरे घटने लगी। अब घरवाले और रिश्तेदार मुझे तुरन्त बड़े दादा के पास अयोध्या भेजने के लिए उतावले हो गये। अयोध्या जाने से पहले मेरी इच्छा बारोदी के ब्रह्मचारीजी के दर्शन करने की हुई। गोस्वामीजी की सम्मति प्राप्त करने के लिए सारा वृत्तान्त श्रद्धेय श्यामाकान्त पण्डितजी को लिख भेजा। पाँच-छः दिन के भीतर ही उत्तर आ गया। गोस्वामीजी ने जैसा-जैसा कहा है ठीक वही पण्डितजी ने लिख भेजा है-

१. अयोध्या जाने से पहले एक बार ढाका आकर भेंट करके जाना।

२. आँखों में तकलीफ है इसलिए दृष्टि साधन करने की आवश्यकता नहीं है।

३. ब्रह्मचारीजी के दर्शन करने जा सकते हो, आपत्ति की कोई बात नहीं।

निवेदक-श्यामाकान्त चट्टोपाध्यायं। इकरामपुर, ढाका।

पौष शुक्ला ५, सं. १२९४

यह पत्र पाते ही मैंने दृष्टि साधन करना छोड़ दिया। प्रतिदिन तीनों समय बड़ी लगन से प्रार्थना करने लगा। नाम भी करता हूँ, किन्तु नाम की अपेक्षा प्रार्थना करने से ही मुझे अधिक आनन्द मिलता है। लाभ भी प्रार्थना से ही अधिक होता जान पड़ता है। सुना है, साधन-मार्ग पर चलने में सब से पहले 'आदौ श्रद्धा' गुरुभक्ति आवश्यक है। गुरु पर भक्ति हुए बिना न तो गुरु पर विश्वास होता है और न ही नाम-जप में रुचि होती है। किन्तु मुझमें गुरुभक्ति की बहुत ही कमी है। साधारण व्यक्ति की अपेक्षा गोस्वामीजी को मैं अधिक श्रद्धा तो करता हूँ, किन्तु उन्हें पूर्णतः भ्रमरहित अथवा कुछ असाधारण-सा नहीं समझ पाता। जिसे मैं जानता या समझता नहीं हैं, ऐसे किसी अलौकिक अथवा अस्वाभाविक गुणों और ऐश्वर्य की गुरु में अकारण कल्पना करना मैं दोष मानता हूँ। गोस्वामीजी को निष्कपट, भला इंसान और धर्मात्मा मानता हूँ, उन्होंने कह दिया कि यह साधन करने से लाभ होगा इसीलिए इच्छा न रहने पर भी नाम और प्राणायाम करता जाता हूँ। बस!

९ पौष १२९४ बं. सन् शुक्रवार

स्वप्न-अद्वैत भाव-गोस्वामीजी की कृपा।

गोस्वामीजी के दिये हुए साधन से मुझे कुछ लाभ नहीं हो रहा है, ऐसा लगता है। जब तक उन पर मुझे निष्ठा अथवा भक्ति नहीं होती, तब तक उनकी बातों पर मुझे अधिक श्रद्धा क्यों होने लगी? लगातार साथ रहकर उनकी असाधारण अवस्थाओं को अपनी आँखों से देखे बिना, उन पर मुझे भक्ति क्यों होगी, यह तो मेरे लिए असम्भव है, अतएव यह साधन लेना मेरे लिए तो विडम्बना मात्र है। इसके लिए मुझे अब प्रतिदिन कष्ट मालूम होता है। मैं एक दिन भी

उद्वेगशून्य नहीं रह पाता।

आज मन के दुःख से व्याकुल होकर मैंने प्रार्थना की-'हे अन्तर्यामी परमेश्वर! तुमसे मेरे भीतर की बात छिपी नहीं है। प्रभो! मैं जरा भी नहीं समझता कि जीवन का कल्याण किस तरह, क्या करने से होता है, क्या करने से वास्तविक धर्म का लाभ होता है, दया करके तुम्हीं बतला दो। मुझे समझा दो कि कौन-सा उपाय करने से नाम में रुचि होगी, तुममें भक्ति होगी। गोस्वामीजी से साधन लिया है। वे यहाँ नहीं हैं, इसलिए दया करके तुम्हीं ऐसी व्यवस्था कर दो जिससे मेरा सचमुच कल्याण हो।' प्रार्थना के अन्त में रात को कोई ११ बजे बिछौने से उतरकर, चिन्ता के मारे हताश होकर, गोस्वामीजी के चरणों के उद्देश्य से मैंने फर्श पर साष्टांग प्रणाम किया और व्याकुल होकर कहा-'गोस्वामीजी, यह जीवन मैंने तुम्हें सौंप दिया है। किन्तु तुम्हारे दिये हुए साधन में मुझे रुचि नहीं हुई, तुम पर भक्ति भी नहीं उत्पन्न हुई। दया करके मेरा उद्धार करो। गुरुदेव, तुम दया न करोगे तो मेरा क्या उपाय होगा?' बहुत ही करूणा से भरकर मैं थोड़ी देर तक इस तरह प्रार्थना करके बिस्तर पर लेट गया।

१० पौष, शनिवार

भोर होते समय स्वप्न देखा। बहुत दिन तक ब्राह्मत से उपासना आदि करते रहने से 'एकमेवाद्वितीयं' वाक्य का भाव और मर्म हृदय में बैठ गया है। तब प्रकृति को ईश्वर से अभिन्न देखने लगा। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, स्थावर, जंगमसहित सारे ब्रह्माण्ड को एक परब्रह्म का ही विकास सोचकर, मैं सर्वत्र सिर झुकाने लगा। इसी समय गोस्वामीजी अकस्मात् सामने आकर

अनेक प्रश्न पूछने लगे। मेरे भीतर अद्वैत भाव का संचार होता देखकर बोले-**'वाह! यह तो बढ़िया साधन करते हो। अगर सब कुछ ईश्वर है तो अपने आपको क्यों अलग रखते हो?'** मैंने कहा, 'इससे मेरा जी नहीं भरता। मैं गुरु-भक्ति और नाम में रुचि चाहता हूँ। आप मुझ पर दया कीजिए।' गोस्वामीजीने कहा-**'अच्छी बात है। तो प्रतिदिन साधन करने से पहले इस नाम का हजार बार जप कर लिया करो।'** ऐसा कहकर वे अन्तर्धान हो गये। इधर मेरी भी नींद खुल गई। मैंने तुरन्त भूमि पर माथा टेककर गोस्वामीजी को नमस्कार किया और उस नाम का हजार बार जप किया। इस घटना से मुझे बहुत ही आश्चर्य हुआ है। बहुत दूर से भी प्रार्थना करने पर गोस्वामीजी उसे जान जाते हैं, इस प्रकार का एक संस्कार मेरे मन में आ गया। स्वयं गोस्वामीजी ही मुझे स्वप्न के द्वारा यह समझा गये हैं। इस विषय में मुझे जरा भी सन्देह नहीं रहा।

प्रार्थना की व्यर्थता का बोध।

जब से स्वप्न देखा है, तब से बतलाया हुआ काम करने के साथ-साथ, मेरी दशा दिन-प्रतिदिन परिवर्तित हो रही है। ब्राह्मधर्म की प्रणाली के अनुरूप उपासना आदि बहुत दिनों से करता आ रहा हूँ। प्रार्थना करने से मुझे बड़ा आनन्द मिलता है। जिस दिन प्रार्थना करते हुए आँसू नहीं बहते, उस दिन यह सोचकर बड़ी बेचैनी रहती है कि मानो आज मैंने प्रार्थना की ही नहीं। प्रतिदिन तीन समय प्रार्थना करने का मेरा नियम है। कारण का तो पता नहीं, किन्तु जिस दिन से स्वप्न देखा है, उस दिन से प्रार्थना में मेरा पहले जैसा भाव नहीं रह गया। गति एकदम बदल गयी। प्रार्थना के भीतर से ही भगवान् मुझे साफ-साफ 'प्रार्थना की असारता'

समझाने लगे। देखता हूँ कि जब जिस भाव को लेकर प्रार्थना करता हूँ तब उसी भाव में डूब जाता हूँ और आनन्द-उच्छवास में विभोर हो जाता हूँ। सोचता हूँ कि यही तो ईश्वर का अनुभव हो रहा है। किन्तु प्रार्थना के बाद उठते ही कुछ देर में न वह भाव टिकता है, न वह आनन्द रहता है और न वह उत्साह ही, मानो सभी बुझ-सा जाता है। बारम्बार ऐसा होने पर सोचा कि 'ऐसा क्यों होता है? यदि सत्यस्वरूप, नित्य आनन्दमय परमेश्वर को प्रार्थना के समय अनुभव करता हूँ, तब वह भाव स्थायी क्यों नहीं होता? उनका इस भाव में यदि एक बार यथार्थ अनुभव हो जाय, तो क्या दूसरा कोई भाव मन में आ सकता है, भाव में परिवर्तन हो सकता है, या आनन्दशून्य अवस्था भीतर आ सकती है?' कई दिन तक इस बात पर ध्यान देता रहा। अन्त में एक दिन प्रार्थना करते-करते ही समझ गया-स्पष्ट बोध हुआ-कि अपने हृदय में विद्यमान भावों को प्रार्थना द्वारा जागृत, जिस आनन्द का अनुभव करता हूँ, उसे ही ईश्वर के प्रकाश से उत्पन्न आनन्द समझ लेता हूँ, वस्तुतः ईश्वर की उपासना नहीं करता, मेरे भीतर के भाव की उपासना करता हूँ।

किसी दिन परमेश्वर में एक सद्गुण का आरोप करके, उन्हें उसी गुण का एकमात्र आधार सोचकर मैं उपासना करता हूँ। भगवान् को सत्यस्वरुप, पवित्रतास्वरूप, मंगलमय, आनन्दमय, परम दयालु आदि कहकर अपनी धारणा और अनुभव के अनुसार चन्द्र, सूर्य, अग्नि, जल, वायु प्रभृति संसार की सारी वस्तुओं में उन्हीं का प्रकाश या गुण देखकर स्तुति करता हूँ। क्रमशः वैसा ध्यान करते-करते एकाग्रता आते ही उल्लिखित भावों में बिल्कुल मग्न हो जाता हूँ। तब 'यही परमेश्वर हैं' समझकर आनन्द और उमंग में मुग्ध हो

जाता हूँ। प्रार्थना द्वारा ही अब साफ-साफ समझ में आ गया है कि वह ईश्वर नहीं है। वाक्य द्वारा, ध्यान द्वारा, एकाग्रता द्वारा वह मेरे ही अन्तर्निहित भावविशेष का स्फुरण है।

ध्यान धारणा से उत्पन्न अथवा एकाग्रता से लब्ध ऐसे किसी भाव-संस्कार वर्जित, सत्यस्वरूप परमेश्वर के सत्य के प्रकाश का ही मैं अभिलाषी हूँ। मैं प्रार्थना करके अपने वाक्य स्वयं ही सुनकर अथवा अपने संस्कार या भाव के अनुरूप ध्यान करके, जो अनिर्वचनीय आराम पाता हूँ, उसे आनन्दजनित मोह के मारे उस समय सत्यस्वरूप आनन्दमय परमेश्वर के प्रकाश के सिवा और कुछ नहीं सोच सकता, यह ठीक है, किन्तु कुछ देर में उस मोह के छूट जाने पर साफ समझ जाता हूँ कि वह मेरे ही भीतर के एक भावोच्छ्वास या एक काल्पनिक सुख का अनुभवमात्र है। ईश्वरीय अनुभव होता तो अवश्य ही स्थायी होता, और उस संबंध में ऐसा कोई सन्देह भी कभी मेरे मन में किसी तरह न उठता। परमेश्वर तो सत्य वस्तु है, उनका जरा-सा भी अनुभव हो जाने पर उसकी विस्मृति या सन्देह आना क्या कभी संभव है? यदि किसी मनुष्य की देह में आग लग जाय तो वह चाहे सोता हो या जागता-कूदकर उठेगा, जल जाने की जलन रहेगी ही, जलन के मिट जाने पर भी कुछ दिनों तक घाव बना रहता है, कम से कम दाग या स्मृति तो जरूर रह जाती है। किन्तु अपने सवेरे के ईश्वरानुभव का जरा भी लेशमात्र शाम को हृदय में ढूँढकर भी नहीं मिल पाता। अतएव स्पष्ट है कि मैं कभी ईश्वर की उपासना नहीं करता, मैं तो कल्पना की, वाक्य की, और भाव की ही उपासना किया करता हूँ। प्रार्थना करने पर आनन्द तो खूब मिलता है, किन्तु वह देर तक स्थायी नहीं

रहता। उसके हटते ही मानो सैकड़ों गुना यन्त्रणा होने लगती है। प्रार्थना से इस प्रकार अस्थायी, असार आनन्द का अनुभव होने से मेरे प्राण छिन्न-भिन्न से हो गये। प्रार्थना से चिढ़-सी हो गई, क्रोध भी आया। निश्चय किया कि अब मैं प्रार्थना नहीं करूँगा-अस्थायी असार आनंद को कभी ईश्वर प्राप्ति से उत्पन्न आनन्द नहीं मानूँगा। मुझमें एक दृढ़ संस्कार उत्पन्न हुआ कि ईश्वर का साक्षात्कार न हो तो उनकी उपासना नहीं हुई समझो।

जिस प्रार्थना का अभ्यास मुझे दीर्घकाल से था, उसे मैंने छोड़ दिया। सोचा-'अब और क्या लेकर रहूँ? लाचार होकर परमेश्वर के नाम का ही जप किया करूँ, अब जो करना हो, भगवान् ही करें।'

कुछ समय हुआ, मैंने प्रार्थना करना बिल्कुल बन्द कर दिया है। गोस्वामीजी ने जो साधन दिया है, उसे ही करता हूँ। दोनों वक्त प्राणायाम करता हूँ, और सदा मन में नाम का स्मरण करने की चेष्टा किया करता हूँ। किन्तु नाम-स्मरण करने का कुछ लाभ मैं नहीं समझता, मुझे उसमें आनन्द भी नहीं मिलता। दिन पर दिन मैं भीषण शुष्कता से अस्थिर हो रहा हूँ।

भगवन्नाम करता हूँ, कभी-कभी इस भाव के घनिष्ठ होने पर मुझे आनन्द मिल जाता है, किन्तु उसे भी स्थायी न होते देख, मैं उसकी भी विशेष चेष्टा नहीं करता।

इष्ट-नाम की उत्पत्ति का अनुभव।

कुछ दिनों से नाम करते-करते ऐसा मन में आता है कि-'यह नाम का जप कौन करता है? यह नाम शरीर में कहाँ से उठता है, और मैं ही कहाँ पर हूँ?' नाम का जप किया करता हूँ और साथ ही प्रतिदिन यह अनुसंधान भी किया करता हूँ। प्रत्येक बार नाम जपने

के साथ तलाश करता हूँ कि यह नाम कहाँ से आ रहा है। ऐसा जान पड़ता है मानो अपार सागर में गिरकर बुलबुले की जड़ को ढूँढ रहा हूँ। नाम मुझे समुद्र के बुलबुले जान पड़ते हैं, बुलबुलों के सहारे बारम्बार गोता लगाता हूँ। किन्तु अगाध समुद्र में गोते लगाते-लगाते कुछ गहराई में पहुँच जाने पर फिर बुलबुले के साथ ही सतह पर उठ आता हूँ। उदर के भीतर अनेकों स्थानों में घूम रहा हूँ, किन्तु कहीं मूल को पाकर ठहरने का स्थान नहीं मिलता। यह अनुसंधान करते समय मेरे चित्त में एक प्रकार की व्यस्तता रहने पर भी बाहरी ज्ञान बहुत कुछ नहीं रहता। सारी इन्द्रियों की शक्ति मानो अन्तर्मुखी हो रही हैं। इन्हीं कुछ दिनों में मुझे धीरे-धीरे तलपेट, नाभिमूल, हृदय, कण्ठ और अन्त में दोनों भौंहों के बीच का नाम उत्पत्ति होने का अनुभव हुआ, किन्तु बिल्कुल स्पष्ट नहीं हुआ।

इस समय गोस्वामीजी के दर्शन करने की मुझे बड़ी इच्छा हो रही है। माघोत्सव भी समीप ही है। गोस्वामीजी के दर्शन करके उनसे ये बातें पूछने के लिए मैंने शीघ्र ही ढाका जाने का निश्चय किया।

भावुकता में गोस्वामीजी का अनुशासन।

कल शाम को ढाका आ गया हूँ। आज सवेरे कुछ ब्राह्ममित्रों के साथ भेंट हुई और भोजन के बाद इकरामपुर कदमतला में गोस्वामीजी के यहाँ पहुँचा। देखा कि रास्ते के समीपवाले कमरे में, उत्तर की ओर मुँह किये, अपने आसन पर गोस्वामीजी चुपचाप बैठे हुए हैं। कमरे मैं बहुत-से लोग हैं, लेकिन सभी चुप हैं। मैं कमरे में एक कोने में जा बैठा।

विक्रमपुर का रहनेवाला, जगन्नाथ स्कूल का एक छात्र,

राधाकृष्ण का चित्रपट लिये हुए, कमरे में बैठे हुए सभी को लाँघकर सीधे गोस्वामीजी की दाहिनी ओर जा बैठा। वह बार-बार गोस्वामीजी के चरणों में लोटने लगा। राधाकृष्ण के चित्र को गोस्वामीजी के मुँह के पास रखकर बारंबार कहने लगा, 'गोस्वामीजी! बतला दीजिए, बतला दीजिए मुझे ये किस तरह मिलेंगे। अहा! कैसी सुन्दर मूर्ति है। मैं और कुछ नहीं चाहता। बतला दीजिए, वे मुझे किस तरह मिलेंगे।' गोस्वामीजी ने उससे कई बार कहा कि **'शांत होओ, स्थिर रहो,'** किन्तु उसकी अस्थिरता को वे किसी तरह न रोक सके। वह छात्र मानो और भी विक्षिप्त-सा हो गया। तब गोस्वामीजी ने धमकाकर कहा-**अच्छा! यहाँ पर चालाकी करते हो! तो और कुछ नहीं चाहते? सोचकर बतलाओ कि अगर नवाब के बाग में सुनसान स्थान में कोई सुन्दरी युवती मिल जाय, तो उसे चाहते हो कि नहीं। चालाकी करते हो?** गोस्वामीजी की बात सुनते ही उस छात्र का सारा भाव लुप्त हो गया। वह थोड़ी देर चुपचाप बैठा रहा, फिर उदास होकर चला गया।

अनुगत का विरूद्धाचरण।

पिछले वर्ष एक दिन समाधि की अवस्था में गोस्वामीजी के मुँह से ये बातें निकल गई थीं-**साधन के भीतर का एक विद्वान, सुशिक्षित युवक ब्राह्मसमाज में उपाचार्य का आसन ग्रहण करेगा। ब्राह्मसमाजियों के साथ मिलजुलकर कई तरह से मुझे नीचा दिखाने की चेष्टा करेगा। अन्त में बुरी तरह संकट में पड़कर ढाका से भाग जाएगा।**

गोस्वामीजी के ब्राह्मसमाज से अलग हो जाने पर बहुत लोगों ने समझ लिया कि उक्त व्यक्ति और कोई नहीं गोस्वामीजी के प्रिय

शिष्य श्रीमन्मथनाथ मुखोपाध्याय हैं। प्रचारक निवास में गोस्वामीजी के रहते समय ही उनके मधुर सत्संग को प्राप्त करने के लिए मन्मथ बाबू ढाका आये और ब्राह्मसमाज मंदिर में पण्डित श्यामाकान्त चट्टोपाध्याय के साथ रहने लगे। उस समय गोस्वामीजी की आज्ञा से कभी तो छात्र-समाज में और कभी ब्राह्मसमाज-मंदिर में उन्होंने व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया। उनके ४-५ व्याख्यानों से ही शहर में धूम मच गई। बहुत लोग कहने लगे कि 'ढाका में केशव बाबू के बाद ऐसा अच्छा वक्ता कोई नहीं आया।' व्याख्यान देने की अद्भुत शक्ति के प्रभाव से, बहुत थोड़े समय में मन्मथ बाबू की शिक्षित समाज में धाक जम गई। गोस्वामीजी के ब्राह्मसमाज से अलग हो जाने पर भी ब्राह्मसमाजियों से मिले-जुले रहकर मन्मथ बाबू अपनी अद्भुत शक्ति, तेजस्विता का प्रयोग गोस्वामीजी के निर्भ्रान्त शास्त्रवाद, निर्भ्रान्त गुरुवाद आदि मत के विरुद्ध खुले तौर पर व्याख्यान देकर, बड़ी तीव्रता से विरोध करने लगे। गोस्वामीजी के ब्राह्मसमाज को छोड़कर चले जाने पर मन्मथ बाबू के उत्साह, उद्योग और चेष्टा से ब्राह्मसमाज की ओर लोगों का आकर्षण बढ़ रहा है। शहर में सब जगह मन्मथ बाबू की जय-जयकार हो रही है। ब्राह्मसमाजियों के यहाँ घर-घर उनका आदर हो रहा है, कोई-कोई बड़ी उम्र के ब्राह्म भी उनकी चरण-रज लेकर भक्ति प्रदर्शन करते हैं।

११ माघ

माघोत्सव की उपासना।

आज माघोत्सव है। हर वर्ष इस माघोत्सव में भगवान् का नाम लेकर न जाने कितना आनन्द किया करता हूँ। सवेरे गोस्वामीजी के

पास न जाकर मैं ब्राह्मसमाज गया। मन्मथ बाबू उपासना कर रहे थे। बड़ी भीड़ थी। मैं लम्बे-चौड़े समाज-गृह के कमरे में चुपचाप एक कोने में जा बैठा। उपासना बहुत अच्छी लगी। मन्मथ बाबू की तेजपूर्ण भाषा से मानो हृदय के सोये हुए भाव जाग उठने लगे। खूब दृढ़ होकर बैठ गया और सोचने लगा कि 'यह तो निरे भाव की उपासना है, वाक्यों का आडम्बर और कल्पना की दौड़ है। इसमें परमेश्वर कहाँ हैं? इस प्रकार के विचारों द्वारा मैं मन को खूब दृढ़ करने लगा। इसी समय मन्मथ बाबू एकाएक जोर से चिल्लाकर कहने लगे-माँ, आनन्दमयी, आज माघोत्सव में तुमने सभी के हृदय को उज्ज्वल कर दिया है किन्तु माता, एक पुत्र अपनी सूनी अँधेरी कुटिया में बैठा देखो क्या सोच रहा है? माँ आनन्दमयी आज उसके अँधेरे कमरे में क्या तुम अपना प्रकाश न पहुँचाओगी? इत्यादि। यह सुनकर मेरे प्राण काँपने लगे; सोचा-'तो मन्मथ बाबू में हृदय के भावों को पहचान लेने की शक्ति है, मेरी शुष्कता का अनुभव करके वे अपनी भावुकता से मुझे अभिभूत करने की चेष्टा करेंगे।' मैं उसी क्षण वहाँ से उठकर अपने घर पर लौट आया।

दोपहर को खा-पीकर इकरामपुर के कदमतला में गोस्वामीजी के निवास स्थान पर पहुँचा। दो मंजिले पर पहुँचकर देखा कि गोस्वामीजी २०-२५ शिष्यों समेत एक बड़े कमरे में स्थिर बैठे हुए हैं, श्रीरजनी बाबू और आनन्द बाबू आदि गणमान्य ब्राह्मगण भी मौजूद हैं।

कोई महीने भर से ऊपर हो गया, मैं भाव की परवाह नहीं करता। यदि ठीक भाव होगा तो स्थायी होगा। थोड़ी देर ठहरकर हट जायगा, इसी डर से मैं भाव की बात नहीं सुनता। न तो भाव के

गीत पसन्द करता हूँ और न भावुकों के पास बैठने को जी चाहता है। मेरा दिल सूखी लकड़ी जैसा हो गया है। मेरा विश्वास है कि गोस्वामीजी भगवान् के साक्षात् दर्शन करके उपासना करते हैं। इसीसे अपनी शुष्कता होते हुए भी दृढ़ता के साथ उनकी उपासना में शामिल हो गया। ब्राह्मसमाज की ही रीति से उन्होंने यहाँ भी उद्बोधन करके प्रार्थना करना आरम्भ किया।

माँ अन्नपूर्णा, आज छोटे-बड़े, कंगाल-फकीर सभी को तुम भरपेट अन्न दे रही हो। देश-विदेश में आज न जाने कितने लोग तुम्हारा प्रसाद पाकर तृप्त हो रहे हैं। हमें भी भरपेट अन्न देती हो। बचपन से इस तिथि को माँ, तुम हमें विशेष रूप से अपना प्रसाद देती आई हो। इस साल भी माँ आज हम पर तुम विशेष रूप से दया करो।

इन वाक्यों को कहने के बाद ही मैंने गोस्वामीजी की अपूर्व दशा देखी। वे रोते-रोते कहने लगे-**हो गया, हो गया, माँ, ओफ! ओफ! ओफ! अब नहीं; अब नहीं माँ, अब नहीं। एक फूटी-कौड़ी माँ, तुम्हारा कंगाल बेटा हूँ, तुम्हारे हाथ से एक फूटी कौड़ी माँगता हूँ। मेरे लिए यही यथेष्ट है। माँ, इतना हजम कर लेने की मुझमें शक्ति ही कहाँ हैं? तुम प्रतिदिन देना माँ, एक फूटी कौड़ी देना। अब नहीं चाहिए, अब रहने दो।** इतना कहते-कहते गला भर आया, वे चुप हो गये। शरीर थर-थर काँपने लगा। आँसुओं की धारा बह चली। वे एक-एक बार रोती आवाज में **जय माँ! जय माँ!** कहने लगे। इस समय, दयामयी के गुण से हो या गोस्वामीजी के शब्दों के प्रभाव से, मेरे शुष्क कठोर प्राण भी अकस्मात् जाने कैसे हो गये। देह बार-बार काँपने लगी, मैं चीखकर रोते हुए जमीन पर लोटने

लगा। किसी ने कंगाल का गीत आरंभ किया-'माँ आमि तोमार पोषा पाखी'। कमरे के भीतर और बाहर रोने की ध्वनि बढ़ने लगी। गुरुभाई लोग कोई घण्टे भर से भी ऊपर भावावेश में मग्न रहने के बाद, स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त हुए।

निर्विचार ब्राह्मदीक्षा देने का प्रतिवाद।

दोपहर के बाद दो-तीन गुरुभाईयों के साथ गोस्वामीजी के पास बैठा था कि श्यामाकान्त पण्डितजी ने आकर कहा-उस दिन जो लड़का चित्रपट लेकर आया था, उसकी आज ब्राह्मधर्म की दीक्षा होगी। यह सुनकर गोस्वामीजी ने बहुत ही आश्चर्य प्रकट करके कहा-**क्या? तो उसी लड़के को ब्राह्मधर्म की दीक्षा दी जाएगी? यह सब क्या है ? कल जिसने राधाकृष्ण का चित्रपट लिये हुए हमारे पास आकर इतना गोलमाल मचाया था और जिसे धमकाकर शान्त करना पड़ा था, वही आज ब्राह्मधर्म में दीक्षित होगा। ऐसे-ऐसे लोगों को दीक्षा देने से ही तो ब्राह्मसमाज की इतनी हानि हो रही है। कल जो राय थी वह आज बदल गई, कौन कह सकता है कि अब कल ही उसकी राय फिर बदल नहीं जाएगी? क्या दल बढ़ाना ही उद्देश्य है? लोग बढ़ाने से ही सब कुछ हो जायगा। तब तो पागलों को भी दीक्षा दी जा सकती है। ओफ कैसा भयानक काम है! शायद उन लोगों को यह सब भीतरी बात मालूम नहीं है। एक बार उन लोगों को बतला देना चाहिए। क्या तुममें से कोई जा सकता है?**

जाने के लिए तुरन्त ही राजी होकर मैंने कहा-'मैं जाऊँगा। बतलाइए, किससे क्या कहना है।' गोस्वामीजी ने कहा-**तुम जाकर एकान्त में मन्मथ से मेरी बात कहना कि कल जो मूर्ति लिए हुए**

घूमता-फिरता था, उसे वे आज ही ब्राह्मसमाज दीक्षित नहीं कर सकते। उस लड़के की निगरानी कम से कम पन्द्रह दिन तो कर लेनी चाहिए। मैं दौड़ा हुआ ब्राह्मसमाज मंदिर पहुँचा। मन्मथ बाबू को निर्जनस्थान में बुलाकर बतलाया कि मुझे गोस्वामीजी ने भेजा है, फिर मैंने उन्हें सारी बात बता दी। मन्मथ बाबू ने कहा- 'मैं यह कुछ भी नहीं जानता। खैर, तुम जाओ। मेरे अज्ञात् ही कोई दीक्षा नहीं ले पावेगा। गोस्वामीजी से जाकर यह कह देना।' मैंने तुरन्त इकरामपुर में आकर गोस्वामीजी को सब कुछ कह सुनाया।

ब्राह्मसमाज-मंदिर से बाहर आकर, इकरामपुर जाते समय मैं अपने एक मित्र श्रीरेवतीमोहन सेन से, अपने साथ गोस्वामीजी के पास चलने के लिए जिद करने लगा। पटुवा-टोली के रास्ते के किनारे रेवती बाबू गोस्वामीजी के साधन-संबंध में मुझसे बहुत सी बातें पूछने लगे। रेवती बाबू गोस्वामीजी से दीक्षा ले लें तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। ये अच्छे गायक हैं-इनका गाना सुनकर गोस्वामीजी को शरीर की सुधि नहीं रहती। दीक्षा ले लेने के लिए मैं रेवती बाबू से बारम्बार कहने लगा। वे कहने लगे 'दीक्षा लेने की मुझे बड़ी इच्छा है, किन्तु अभी और कुछ दिन तक देख लेना चाहता हूँ, फिर मेरे इच्छा करने मात्र से ही क्या वे दीक्षा दे देंगे?' इत्यादि।

१३ माघ बृहस्पतिवार।

साधन के अनुभव में उत्साह देना। भक्त माली की इच्छा-पूर्ति।

मैं सवेरे उठकर गोस्वामीजी के पास गया। उन्हें ध्यान-मग्न देखकर मैं चुपचाप बैठा रहा। अपने घर पर संकीर्तन में गोस्वामीजी को ले जाने के लिए एक सज्जन व्यग्र हो गये। उन्होंने हम लोगों के मना करने की परवाह न की; गोस्वामीजी को उनके आसन से

आवाज देकर उठाने की कोशिश करते ही एकाएक गिर पड़े। वे जो नई धोती पहने थे, वह कई जगह से फट गई। पैर में भी बहुत चोट आई। गोस्वामीजी का ध्यान भंग किये बिना ही वह भला आदमी दुःखी मन से चला गया। थोड़ी देर में गोस्वामीजी सचेत हुए। सबके चले जाने पर मैंने गोस्वामीजी से कहा-कल मैं घर जाऊँगा।

गोस्वामीजी-**तुम्हारे गाँव के तरफ, इच्छापुरा, कल तो हम लोग भी जाएँगे। दोपहर को भोजन के बाद आ जाना, साथ ही चलेंगे। अब तुम कैसे हो? तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा है न? हाँ, तुम अपने दादा के पास जानेवाले थे न? पश्चिम जाने का अच्छा मौका था। कब जाओगे?**

मैं-दादा बहुत जल्द घर आनेवाले हैं। इसीसे नहीं गया।

गोस्वामीजी-**जान पड़ता है, तुम्हारी लिखाई-पढ़ाई बन्द है। रहने भी दो। पहले स्वास्थ्य सुधार लो। लिखने-पढ़ने के लिए उतावले होने की जरूरत नहीं। साधन कैसा हो रहा है। नाम करते हो न?**

मैं-घर जाने के बाद अच्छा संग नहीं मिलता। बुरे विचार और बुरी कल्पनाएँ बीच-बीच में चित्त को बड़ा अस्थिर कर देती है। बीमारी भी पीछा नहीं छोड़ती। मुझे अब कुछ नहीं अच्छा लगता। नाम तो करता हूँ, किन्तु शुष्कता के मारे दिन-दिन लकड़ी जैसा होता जा रहा हूँ। बड़ा कष्ट होता है। बड़ी निराशा होती है।

गोस्वामीजी-**हाँ, सब समझता हूँ, साधन किया करो, सब साफ हो जायगा। थोड़ा-थोड़ा दृष्टि साधन भी किया करो। प्राणायाम करने में कष्ट हो तो मत करना। किन्तु धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा प्राणायाम कर सको तो देखना यह बीमारी नहीं**

रहेगी। इस प्राणायाम का एक बार भली-भाँति अभ्यास हो जाने पर फिर कोई भी रोग नहीं टिक सकता। प्राणायाम के समय थोड़ा-थोड़ा निश्वास को रोककर नाम किया करो। शुष्कता से कुछ हानि नहीं है। नाम करते-करते यह शुष्कता भी हट जाएगी। इसमें निराश होने का कोई कारण नहीं है।

मैं-मैं जिन्हें बहुत अच्छा समझता हूँ, श्रद्धा-भक्ति करता हूँ, ऐसे कुछ लोगों का मैं प्रतिदिन साधन करने से पहले स्मरण कर लिया करता हूँ। ऐसी कल्पना से कुछ हानि तो नहीं होती?

गोस्वामीजी-**यह तो बहुत अच्छी बात है। इससे हानि तो कदापि नहीं होती, बल्कि लाभ ही होता है। अच्छी बात है, वैसा किया करो। हम भी ऐसा करते हैं।**

मैं-साधन के समय नाम कहाँ से आता है, इसका अनुसंधान करने की इच्छा होती है। तलपेट, नाभि और कण्ठ इसी प्रकार अनेक स्थानों के नाम का अनुभव करता हूँ। अब मस्तक की पिछली ओर एक स्थान में धारणा होती है। इस प्रकार खोज करने से जिस-जिस स्थान में अनुभव हो, धारणा किया करूँ?

गोस्वामीजी-**हाँ, हाँ, किया करो। ये धारणाएँ अनेक स्थानों में होगी। (माथे में और तालू में अँगुली से संकेत करके कहा) क्रमशः इन स्थानों में भी होगी। साधन करते-करते ये धारणाएँ अपने आप होती हैं। इनका होना बहुत अच्छा है।**

ऐसी बातचीत होने के बाद गोस्वामीजी ने आँखें बन्द कर लीं। हमलोग चुपचाप बैठे रहे। थोड़ी ही देर में हरिसंकीर्तन की मण्डली कदमतला आ गई। दूर से मृदंग की आवाज सुनते हुए गोस्वामीजी धीरे-धीरे सिर हिला रहे थे। संकीर्तन मंडली के कदमतला आते ही

वे आसन से उछल पड़े और मण्डली के बीच में जाकर नृत्य करने लगे। संकीर्तन दल चलता रहा, साथ ही वे भी नृत्य करते हुए चले। क्रम से हम लोग बनियाटोला के श्रीबिहारी मालाकार के घर पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही गोस्वामीजी बेहोश होकर गिर पड़े। इसके थोड़ी देर बाद कीर्तन भी रुक गया। थोड़ा समय बीतने पर गोस्वामीजी ने सचेत होकर इधर-उधर देखकर कहा-**यह क्या? मैं यहाँ किस तरह आ गया? मैं सोचता रहा कि मैं कदमतला में ही हूँ।**

इस समय सामने राधाकृष्ण की मूर्ति देखकर गोस्वामीजी ने भूमि पर साष्टांग प्रणाम किया। मालाकार ने हाथ जोड़कर गोस्वामीजी से कहा-'प्रभो आज ही हमारे ठाकुरजी की प्रतिष्ठा हुई है। बड़ी आशा थी कि एक बार यहाँ आपका शुभागमन हो, आपके चरणों की रज पड़े। आपसे प्रार्थना करने गया था, किन्तु कहने की हिम्मत नहीं हुई। आप बड़े दयालु हैं, इसीसे मेरी इच्छा को जानकर आपने मुझे कृतार्थ कर दिया। अब वह गोस्वामीजी के चरणों में गिरकर लोटने लगा। इससे पहले मैंने कभी गोस्वामीजी को मूर्ति के आगे नमस्कार करते नहीं देखा। मन में बड़ा दुःख हुआ। सोचा, हाय भगवान, मुझे यह दृश्य क्यों दिखाया।

ईछापुरा गाँव में गोस्वामीजी और लाल। महोत्सव में मल्लवेश में नृत्य।

सवेरे हाथ-मुँह धोकर बैठा हूँ। छोटे दादा ने कहा-'अभी तक बैठा क्यों है? गयना (इस पार से उस पार पहुँचाने वाली नाव) का समय हो गया है। आज घर नहीं जाएगा?' मैंने कहा-आज गोस्वामीजी भी ईच्छापुरा के हरिचरण चक्रवर्ती के यहाँ जाएँगे; मैं उन्हीं के साथ जाने को कह आया हैं। उनके साथ जाने की बात

सुनकर छोटे दादा ने बहुत ही चिढ़कर कहा-'तो गोस्वामीजी के साथ बिना घर नहीं जाया जा सकता? गोस्वामीजी, गोस्वामीजी! केवल गोस्वामीजी, यह नहीं होगा। तू अभी नाव पर बैठकर चला जा।' अब मैं क्या करता? छोटे दादा की बात मानकर चल पड़ा। नाव में सवार होने पर मुझे रोना आ गया। मन ही मन गोस्वामीजी को प्रणाम करके कहा कि छोटे दादा के कहने से, इच्छा न रहने पर भी मैं इस नाव में सवार होकर जा रहा हूँ। आप मेरी प्रतीक्षा मत करना। और मेरे इस अनिच्छाकृत अपराध के लिए मुझे क्षमा कीजिएगा। सारा रास्ता मैंने बड़ी बेचैनी से काटा।

१५ माघ, पूर्णिमा शनिवार

व्याकुलता।

सवेरे उठकर गोस्वामीजी को देखने की व्याकुलता हुई। घर से आधे घण्टे की दूरी पर इच्छापुरा गाँव है। यथासमय हरिचरण चक्रवर्ती वकील के घर जा पहुँचा। बेहद भीड़भाड़ है। चक्रवर्ती के घर आज महोत्सव होगा। नीची श्रेणी के लोग, वैष्णव, बाउल आदि को छोड़ अन्य भले आदमी महाप्रभु का उत्सव अक्सर नहीं करते। हम लोग उक्त उत्सव को नीची जातिवालों का हो-हल्ला समझते हैं। इस उत्सव में बारोदी के ब्रह्मचारीजी भी आवेंगे, कल गोस्वामीजी तो आ ही गये हैं, यह खबर पाकर सम्मानीय समाज के मुख्य लोग भी इस उत्सव में शामिल हो रहे हैं।

गोस्वामीजी के पास जाकर, उन्हें प्रणाम करके, मैं एक ओर जा बैठा। उस समय उस घर में किसी प्रकार लोगों का गोलमाल नहीं था। सिर्फ गोस्वामीजी के कुछ शिष्य मौजूद थे। मैं क्यों गोस्वामीजी के साथ नहीं आ सका, यह उनसे कहते ही उन्होंने कहा-**तुम्हारा**

कल सवेरे नाव में सवार होकर आते समय ही, मुझे यह बात मालूम हो गई थी।

मैं-तो क्या आपको किसी ने सूचना दी थी?

गोस्वामीजी-**नहीं, ऐसी बात नहीं है।**

संक्षेप में उत्तर देकर ही मुझे और कुछ पूछने का अवसर न देकर, बारंबार हरिचरण बाबू को पुकारने लगे। हरिचरण बाबू के आते ही उतावले होकर गोस्वामीजी ने कहा-

घर में मुडी (मुरमुरा) है? दो मुट्ठी ला दीजिए। कलेजे में दर्द जान पड़ता है। पित्त के दर्द में मुरमुरे से आराम पहुँचता है, समय-समय पर खाते ही रोग कम हो जाता है। मेरा शरीर रूग्ण है। सीने में दर्द प्रायः चौबीसों घण्टे तक बना रहता है। आधे घण्टे के रास्ते को मैंने बड़े क्लेश से कोई डेढ़ घण्टे में तय किया है। हरिचरण बाबू मुरमुरा ले आये। दो-एक कौर खाकर, गोस्वामीजी ने बाकी सब मुझसे खाने को मुझसे कहा। वह खाने से मेरा दर्द बहुत कुछ कम हो गया।

मैंने देखा कि गोस्वामीजी के पास मुझसे भी कम उम्र का एक लड़का चुपचाप बैठा हुआ है। वह लड़का देखने में बहुत ही अच्छा लगा। उसका परिचय जानने के लिए श्रीधर बाबू को साथ लेकर मैं कमरे से बाहर गया। पूछने पर श्रीधर बाबू ने कहा-'इसका नाम लालबिहारी बसु है, शांतिपुर में घर है। उम्र में तो बालक ही है, किन्तु है यह जातिस्मर महापुरुष। आठ वर्ष की उम्र में इसने धर्म-धर्म करके घर-द्वार छोड़ दिया था। संन्यासी, फकीर, दरवेश-प्रभृति अनेक सम्प्रदायों के छः सिद्धपुरूषों से क्रमशः दीक्षा लेकर इसने कठोर साधन-भजन किया और बहुत सा योगैश्वर्य प्राप्त किया।

किन्तु कहीं भी यथार्थ तृप्ति न पाकर अब अद्भुत रीति से, दैवी घटना होने से, गोस्वामीजी के पास आ गया है। इनका परिचय और क्या दूँ? सत्संग करने से धीरे-धीरे उनके बारे में सब मालूम हो जाएगा।' श्रीधर की बातें सुनकर मैं चुप रहा।

उधर महोत्सव के बाजे बजने लगे। चक्रवर्तीजी के बाहरवाले मकान के विशाल आँगन में उत्तर की ओर महाप्रभुजी प्रतिष्ठित हैं। गोस्वामीजी के साथ हम सभी वहाँ पर पहुँचे। महाप्रभु को साष्टांग प्रणाम करके गोस्वामीजी खड़े हुए। हाथ जोड़े हुए सतृष्ण दृष्टि से महाप्रभु की ओर देखकर, वे पैर से लेकर सिर तक काँपने लगे। चारों ओर बाउल, वैष्णव गोस्वामीजी का भाव देखकर, बड़ी उमंग के साथ, अनेक टोलियों में जोरों से कीर्तन करने लगे। बहुत-से मृदंगों और मँजीरों की झमाझम आवाज से शरीर में रोमांच होने लगा।

गोस्वामीजी कई बार प्रत्येक ताल पर चुटकी बजाकर हाथ नचाते-नचाते अकस्मात् एकदम उछल पड़े, तुरन्त ही बायें हाथ से लाल को पकड़कर नृत्य करने लगे। अब लाल भाव के आवेश में ऊँचे कूद-कूदकर हाथ छुड़ाकर, एक ओर हट गया। गोस्वामीजी तीव्र दृष्टि से लाल की ओर देखकर मल्लवेश में ताल ठोकने लगे। लाल ने भी गोस्वामीजी की ओर अपलक देखते हुए उद्दाम नृत्य आरम्भ कर दिया। इस समय गोस्वामीजी ने भयंकर हुँकार करते-करते मुट्ठी बाँधकर बाँया हाथ सामने की ओर फैला दिया और बाणयोद्धा की भाँति दाहिने हाथ की तर्जनी को लाल की ओर सन्धान करके वे बार-बार कानों तक आकर्षण करते हुए आगे बढ़ने लगे। कुछ कदम आगे जाकर ही बार बार कूदते हुए, तिरछे होकर

बाँया पैर आगे बढ़ाते हुए बढ़े, जोर से हरिध्वनि करके तेजी से लाल की ओर दौड़ चले, लाल तत्क्षण बायें हाथ को सामने की ओर ढाल के आकार में फैलाकर, डरे हुए और संत्रस्त भाव से पीछे हटने लगा। २५-३० हाथ पीछे हटकर लाल अकस्मात् बड़े जोर से 'जय निताई, जय निताई' बोल उठा, और एकाएक सामने की ओर ऊँची छलाँग लगाकर, दाहिने हाथ को बार-बार कान तक खींचकर, गोस्वामीजी की तरह, उन्हें लक्ष्य करके दौड़ पड़ा। तब गोस्वामीजी मानो लाल के वेग को संभालने में असमर्थ होकर सामने हाथ की ओट करके त्रस्त भाव से तुरन्त पीछे हटने लगे। २५-३० हाथ पीछे हटकर गोस्वामीजी फिर बड़ी जोर से प्रचण्ड हुंकार करके हरि बोल' 'हरि बोल' कहते कहते लाल की ओर लपके। अब लाल फिर पहले की तरह पीछे हटने लगा। इस प्रकार एक पर दूसरा, लगातार, भयंकर हमला करके, अजेय योद्धा के वेष में दौड़धूप करने लगा। असंख्य बाउल-वैष्णवों से घिरे हुए श्रीधर लम्बे-चौड़े आँगन में उच्च कण्ठ से हरिध्वनि करके मण्डलाकार हो नृत्य कर रहे थे। प्रतिष्ठा की गई मूर्ति की ओर एकाएक उछलते हुए जाकर उन्होंने जलती हुई धूपदानी उठा ली, और बोलो-बोलो, की ध्वनि से दिशाओं को कँपाकर वे फिर कूदने लगे। सिर नीचा किये हुए श्रीधर अब गोस्वामीजी के चरणों में दृष्टि जमाये हुए, धूपदानी द्वारा आरती करते हुए उनके पीछे-पीछे लपके। इस समय बड़ी धूम मच गई। असंख्य दर्शक बार-बार जोर जोर से हरिध्वनि करने लगे। चारों ओर लोग बेहोश हो-होकर गिरने लगे। कीर्तन के कोलाहल में मिलकर बहुत से मृदंगों और मँजीरों की ध्वनि ने सबको कम्पित कर दिया। उन्मत्त होकर चिल्लाकर सब लोग गाने लगे-

कि शुनि, कि शुनि, सिंह रव रे नदियाय।

नित्यानन्द बजाय भेरी, 'भों-भों, भों-रव करि';

(हुँकारिया)श्रीअद्वैत बगल बजाय रे। नदियाय;

जगा बोले, माधाभाई, पालाबार आर स्थान नाई,

संसार घेरिलो हरि-नाम रे (नदियाय)।

श्रीचैतन्य महारथी, नित्यानन्द सारथि;

श्रीअद्वैत युद्धे अगुआय रे (नदियाय)।

(नदिया नगरी में यह सिंहनाद क्या सुन रहे हैं। नित्यानन्द भेरी बजाकर भों-भों शब्द कर रहे हैं और श्रीअद्वैताचार्य हुँकार करके बगल बजा रहे हैं। जगाई कहता है कि भाई मधाई भागने की जगह नहीं है, हरि के नाम ने संसार को घेर लिया है। श्रीचैतन्य महारथी हैं, नित्यानन्द सारथि हैं और श्रीअद्वैत युद्ध में आगे बढ़ रहे हैं।)

बहुत देर तक इस प्रकार नाचते रहने के बाद, लाल अकस्मात् गोस्वामीजी के चरणों में गिरकर लोटने लगा। गोस्वामीजी भी जोर से उछलकर और कई बार हरिध्वनि करके संज्ञाहीन होकर गिर पड़े। गोस्वामीजी के पैरों को मैंने और हरिचरण बाबू ने इसलिए कपड़े से ढँक लिया कि और लोग उन्हें छूने न पावें। हम लोग पंखा झलने लगे। श्रीधर भी मूर्च्छित पड़े हुए हैं। धीरे-धीरे संकीर्तन रुक गया।

ठीक समय पर, गोस्वामीजी की आज्ञा के अनुसार, महाप्रभु को भोग लगाया गया। खा-पीकर हम लोग सभी आराम करने लगे।

चन्द्रगहण।

लाल के साथ आज ही प्रथम परिचय हुआ। उसके जीवन की बहुत सी अद्भुत घटनाओं के बारे में सुनकर मैं विस्मित हो गया।

आज के इस उत्सव में बारोदी के ब्रह्मचारीजी के सम्मिलित होने की खबर थी, पर वे नहीं आये। गोस्वामीजी तो कल बारोदी जाएंगे। रात को श्रीधर और लाल दूसरे घर में सोये। चक्रवर्तीजी और मैं दोनों ही गोस्वामीजी के पास रहे। आज चन्द्रग्रहण है।

कुछ अधिक रात होने पर गोस्वामीजी ने कहा-**'आज ग्रहण है। सारी रात जागकर आज बहुत लोग तप-जप करेंगे।'** मैंने पूछा-'किसलिए? आज के दिन जप करने से क्या कुछ विशेष फल प्राप्त होता है?'

गोस्वामीजी-**यह नहीं कह सकते। हाँ, तिथि में गुण तो अवश्य हैं।** तनिक ठहरकर बातचीत के सिलसिले में गोस्वामीजी ने कहा-**सेराजदीघा नदी के उस पार एक आश्रम हो तो बहुत अच्छा हो। शहर के कोलाहल से बचकर समय-समय पर वहाँ आकर एकान्त में रह सकेंगे।**

सबके सो जाने पर गोस्वामीजी ने मुझसे भी सो जाने को कहा। मैं ढाई बजे रात के बाद सो गया। गोस्वामीजी के सामने धूनी जल रही थी; वे सारी रात एक ही भाव में बैठे रहे। इस समय एक बार कहा-**एक पहाड़ पर, एक बार हम सभी को सम्मिलित होना होगा। गुरुजी हम लोगों को, अलग-अलग कार्य सिद्ध करने के लिए, एक-एक दल बनाकर संसार में भेजेंगे।**

नींद की खुमारी में सुनकर भी मैंने इस बात पर कुछ प्रश्न नहीं पूछा।

फाल्गुन महीना

साधन का संकल्प।

गोस्वामीजी के दिये हुए साधन में मेरी आन्तरिक आस्था अब

तक कुछ आशाप्रद नहीं हो पाई है। किन्तु उनके शिष्यों के साथ जितना मिलता-जुलता हूँ, उतना ही उनकी अवस्था देखकर विस्मित होता हूँ। कुसंस्कारसंपन्न हिन्दू-समाज के जिन व्यक्तियों ने यह साधन लिया है, उनकी चाहे जैसी अवस्था हो जाना अथवा उनके कुछ कहने पर मुझे असम्भव नहीं लगता। उसको तो मैं गिनता ही नहीं, किन्तु ब्राह्मभावापन्न, प्रत्यक्षवादी बहुत ही कट्टर लोगों को गोस्वामीजी के इस साधन के लेने से सन्तुष्ट देखता हूँ और अनेक अद्भुत अवस्थाओं का परिचय देते सुनता हूँ-खासकर आजन्म सत्यवादी, निरपेक्ष गोस्वामीजी इस साधन की सफलता के संबंध में जब अपने जीवन की साफ गवाही दे रहे हैं, तब इसमें सन्देह का स्थान नहीं रह जाता? खुद पर सोचकर धिक्कार-सा आता है कि अपने उद्यम में कमी रहने से ही मुझे साधन करने से लाभ नहीं हो रहा है। मैंने प्रतिज्ञा की कि लगन से साधन करके, देह और प्राण को जलाकर अंगार बना दूँगा। स्नान, भोजन और सोने में जितना समय लगता था, उसको छोड़कर भोर से लेकर रात के ११ बजे तक प्रतिदिन लगातार नाम करने लगा। प्राणायाम, कुम्भक और दृष्टि-साधन भी यथारीति चलने लगा। लगभग एक महीने से अधिक हुआ, इसी प्रकार साधन कर रहा हूँ।

ज्योति के दर्शन में अचेत हो जाना।

अन्य दिनों की तरह आज भी बड़े भोर में उठकर मैं अपने आसन पर बैठकर स्थिर होकर नाम कर रहा हूँ, अकस्मात् देखा कि एक अद्भुत ज्योति झिलमिलाकर प्रकट हुई। देखते-देखते वह ज्योति क्रमशः स्पष्ट हो गई है, उसने हजारों बिजली की बत्तियों की तरह अद्भुत प्रकाश की छटा फैलाकर दिशाओं को प्रकाशित कर

दिया। धीर तरंगों से परिपूर्ण स्वच्छ जलाशय में चन्द्र के प्रतिबिम्ब की भाँति अति उज्ज्वल, चंचल ज्योति का अपने ललाट में दर्शन करके मैं आनन्दसे मूर्च्छित-सा हो गया। ५-७ मिनट तक यह ज्योति लगातार उज्ज्वल रहकर स्थिर हो गई। उसका निर्मल, मनोहर सौन्दर्य देखकर मेरा चित्त उस पर बिल्कुल मुग्ध हो गया। मुझे और कुछ भी ज्ञान न रहा। याद नहीं कि इस दशा में मैं नाम करता रहा या नहीं। यह भी स्मरण नहीं कि इस दर्शन के बाद मेरी आच्छन्न अवस्था कितनी देर तक बनी रही।

जागृत होकर उस ज्योति का स्मरण करके अब मैं विक्षिप्त-सा हो गया हूँ। सदा यही सोचता हूँ कि कहाँ जाने पर और क्या करने से मुझे फिर उसके दर्शन मिलेंगे।

मैंने निश्चय किया है कि कल ही गोस्वामीजी के पास जाऊँगा। आज तो सब कुछ मानो मेरे लिए विषादमय, नीरस और क्षोभ पैदा करने वाला लगने लगा। ज्योति की याद एक-सी बनी हुई है।

ढाका पहुँचकर गोस्वामीजी के शिष्यों में से श्रीश्यामाकान्त पण्डित, श्रीधर घोष और श्रीमान् लालबिहारी से भेंट हुई। उनमें से हर एक को अलग-अलग एकान्त में ले जाकर, ज्योति के दर्शन का विवरण कह सुनाया। उन सभी ने इसके दर्शन की यथार्थता को ठीक बतलाया। पण्डितजी ने कहा 'वही तो दोनों भौंहों के बीच वाला दिव्य चक्षु है। उसके प्रकाशित रहने से सारा विश्व दिव्य प्रकाश में मधुमय दिखाई पड़ता है। जिस पर्दे की ओट में परलोक है, वह इसी प्रकाश से स्पष्ट हो जाता है। तब देखोगे कि जीवन और मरण, इहलोक और परलोक सब एक ही वस्तु है। गुरु की कृपा से ही यह अवस्था प्राप्त होती है। उन्हीं की इच्छा से यह स्थायी होती

है।' लाल ने कहा-'यह ज्योति धीरे-धीरे हृदय में पहुँच जाती है और आठों पहर आनन्दरूप में बनी रहती है। इसके लुप्त होने पर निराशा और शुष्कता से जीवन श्मशान-सा बन जाता है; उस समय अनेक प्रकार के प्रलोभन और परीक्षाएँ उपस्थित होती हैं, जलन और दर्द के मारे हृदय शून्य हो जाता है। नाम से ही उक्त ज्योति का प्रकाश होता है। और नाम शून्य होते ही ज्योति अन्तर्धान हो जाती है। श्रीधर ने कहा-'अरे भाई, यही तो असली वस्तु है। इसी को ब्रह्मज्योति कहते हैं। यह अवस्था स्थायी हो जाय तो फिर क्या बात है? वासना और कामना सबका लय हो जाता है, मनुष्य अपनी सत्ता को भूलकर उक्त ज्योति में डूब जाता है। साधन में निष्ठा और आकर्षण बढ़ाने के लिए गुरुदेव समय-समय पर चरम अवस्था के किंचित् आभासस्वरूप इस ज्योति को साधक के आगे प्रकट कर देते हैं, और फिर उसके हटा लेते हैं। वह दशा सिर्फ तुम्हारी ही नहीं हुई है, बल्कि पहले ऐसी कोई न कोई विचित्र अवस्था प्रत्येक व्यक्ति की होती है। न यह प्रयत्न करने से प्राप्त होती है और न साधन करने से, यह अवस्था तो गुरु की कृपा से ही प्राप्त होती है। बिना कृपा के कुछ भी नहीं हो सकता।।'

इन लोगों की बातें सुनने से मुझे आनन्द तो हुआ, किन्तु अधिक देर तक सन्तोष नहीं हुआ। सोचा कि सत्य वस्तु का ज्ञान हो तो हजार आदमी भी एक ही उत्तर देंगे। देखता हूँ कि इनमें से प्रत्येक ने अलग-अलग ढंग से बातें कही हैं। इनकी बातों में यद्यपि कुछ परस्पर विरोधी भाव नहीं है तो भी मुझे ऐसा जान पड़ता है कि शायद इन्होंने 'अटकलें' लगाकर बातें कहीं है। अब मैं दूसरी ओर से अनुसंधान करने के लिए ब्राह्मसमाजी डाक्टर कैलाश बाबू के

पास गया। उन्हें अपनी सारी बातें सुनाकर मैंने पूछा-'उक्त ज्योति के दर्शन आँखों के दोष अथवा दिमाग की खराबी से तो नहीं?' डाक्टर साहब ने कहा-'इसके सिवा और क्या कहूँ? तुम्हें तो 'शार्ट साईट' है ही। आँखों में खराबी हो तो मनुष्य को भरी दोपहरी में जुगनू दिखाई पड़ जाता है। हम लोगों का यह 'परफेक्ट साइंस' डॉक्टरी की किताबों में वैसे बहुत से प्रमाण मौजूद हैं। 'योग' आदि करते करते दिमाग और आँखें खराब हो जाने पर, और भी बहुत कुछ देखोगे।'

डॉक्टर साहब की बातों से मेरे दिल में दर्शन के विषय में खटका-सा लगा। अतएव गोस्वामीजी से और कुछ पूछने को जी न चाहा। किन्तु भीतर ही भीतर उक्त ज्योति के दर्शन के लिए एक आकांक्षा और बेचैनी अपने आप होने लगी।

जो हो, मैं पहले की अपेक्षा और भी अधिक उत्साहपूर्वक साधन करने लगा। सदैव उस ज्योति की स्मृति मेरे मन में रहने लगी। मैं उसको हटा नहीं सका।

२६ चैत्र, शनिवार

ढाका का टॉर्नेडो।

दिन ढलने पर ढाका के पश्चिमी आकाश में नदी के ऊपर काले बादल दिखाई पड़े। नवाब गनी मियाँ साहब के मकान के दक्षिण ओर अकस्मात् ऐसा बवंडर उठा, जिसने की गंगा के जल में हलचल मचा दी। देखते ही देखते नदी से हाथी की सूँड़ के आकार का, पानी का स्तंभ-सा ऊपर को उठा और काले बादल में मिल गया। अब उसमें से आग के असंख्य गोले चारों ओर गिरने लगे। एक साथ २०-२५ इंजिनों के चलने से जैसा शब्द होता है, वैसे ही

भयंकर शब्द से शहर एकदम काँप उठा। अकस्मात् उस शब्द को सुनकर गोस्वामीजी आसन से उठ बैठे और उतावली के साथ घर के दरवाजे पर आ खड़े हुए। वे रूआँसे स्वर में काली और महावीर की स्तुति करने लगे। उन्होंने पश्चिम की ओर नजर उठाकर देखा कि महावीर और महाकाली ने भीषण मूर्ति में प्रकट होकर, गम्भीर गर्जन के साथ-साथ दिशाओं को कम्पित कर रहे हैं, दोनों देवता आग के गोले फेंकते हुए नाचते-नाचते आगे बढ़ रहे हैं। काली की अनुचरियों को सामने जो कुछ मिल जाता है, उसे नष्ट-भ्रष्ट करती हुई, वे भयंकर गति से काली के पीछे-पीछे दौड़ी जा रही है। गोस्वामीजी की आँखे डबडबाई हुई थी, शरीर काँप रहा था, हाथ जोड़कर नमस्कार करते करते वे जोर-जोर से कहने लगे-जय माँ काली! जय माँ काली! दया करो, दयामयी, दया करो माँ। प्रसन्न होओ, माता, प्रसन्न होओ। थोड़ी देर में फिर घबराहट के साथ कहा-जय महावीर! जय महावीर! आग के उन गोलों को मेरी छाती पर फेंको। सबके ऊपर दया करो, सबकी रक्षा करो। इस प्रकार स्तुति करके वे उन्हें मनाने लगे। इधर जो कुछ होना था, २-३ मिनटों में हो गया। उपद्रव शान्त हो गया। किन्तु शहर भर में बड़ा हल्ला मच गया। इन चन्द मिनटों में ढाका और विक्रमपुर में सैकड़ों गाँवों में, जो अस्वाभाविक घटनाएँ घट गई हैं। जो बुद्धि से परे हैं और अचरज उत्पन्न करनेवाली हैं। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि एक अद्भुत अलौकिक शक्ति के प्रभाव से ये अद्भुत घटनाएँ घटी हैं। कुछ घटनाओं का उल्लेख करता हूँ-

१. बूढ़ी गंगा के दाहिने किनारे से एक बुढ़िया को नदी के बायें तट पर, शहर के बीच में, बहुत से ऊँचे-ऊँचे मकानों को लाँघकर,

नार्मल स्कूल के दो-मंजिले में एक कमरे में लाकर पहुँचा दिया है! किन्तु ६५ वर्ष की बुढ़िया के किसी अंग में जरा भी चोट नहीं लगी।

२. 'ढाकाप्रकाश' छापाखाने की एक बड़ी टेबिल को ५-६ मिनट चलने के मार्ग की दूरी पर एक सज्जन के घर में ला दिया है। जिस कमरे में मेज रखी हुई थी, उसमें से केवल एक दरवाजे में होकर सावधानीपूर्वक उसे तिरछा करके निकाले बिना वह सीधी तरह से बाहर नहीं लाई जा सकती थी। टेबिल कोई ढाई मन की थी। उसका कोई हिस्सा टूट-फूटा नहीं है।

३. मुरमुरा भरा एक घड़ा एक मकान के मचान से उठाकर ३-४ मिनट चलने की दूरी पर दूसरे मकान में लाकर रख दिया है। ढक्कन समेत घड़ा जैसा था, बिल्कुल वैसा ही है।

४. एक १५-१६ हाथ लम्बे और ५-६ फुट नीचे गड़े हुए खम्भे को (शायद चड़क-पूजा के) उखाड़कर उसी गड्ढे में उसके दूसरे सिरे के बल, पहले की तरह, गाड़ दिया है।

५. अच्छे मजबूत मकान का कुछ अंश तोड़-फोड़कर, ईंट, पत्थर का नामोनिशान तक न रहने दिया, उड़ा ले गया है। मजे की बात कि उसके पास ही १२-१४ फुट के अन्तर पर लगे अक्षय गुलाब की एक पँखुड़ी तक नहीं गिरी।

६. एक युवती के सारे शरीर में तो कहीं कुछ नहीं हुआ है, सिर्फ उसको दोनों स्तनों को एक बराबर, इस तरह उखाड़ लिया है, जैसे छुरे से काट लिया हो।

७. अँगुली बराबर मोटी और कोई एक हाथ लम्बी बाँस की नुकीली खपच्ची से एक सुपारी के पेड़ को आरपार छेदकर रखा है। कोई बलशाली आदमी भी उसे खींचकर बाहर नहीं निकाल

सकता।

जिन-जिन स्थानों में होकर यह बवंडर निकला है, वे सब जल गये हैं। पक्की दीवारों का-यहाँ तक कि जमीन का रंग तक भी जली हुई मिट्टी की तरह हो गया है। मैदानों की दूब और घास भी झुलस गई है। जवान बलवान् आदमी भी अनेक स्थानों में, इसी आँधी के बीच में पड़कर मर गये हैं, और बहुत से बच्चे, बालक, गर्भवती स्त्री तथा बुड्ढे तक इस आँधी के चक्कर में पड़कर भी साफ बच गये हैं, उन्हें खरोंच तक नहीं आई। समझ में नहीं आता है कि कुछ क्षणों की आँधी से किस प्रकार यह सब उथल-पुथल हो गया। यह मानना ही पड़ता है कि भगवान् की इच्छा से जड़शक्ति से साथ, चैतन्य के मिलने पर उसके द्वारा सर्वथा असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाता है। किन्तु देव-देवी या भूत-प्रेत आदि का तो मैं अस्तित्व ही नहीं मानता, अतएव इन घटनाओं को मैं उनका कोई कार्य नहीं समझ सकता।

ब्रह्मचारीजी का सत्संग, विचित्र जीवन-कथा, अज्ञात् भूगोल का वृत्तान्त।

ढाका जिले के अन्तर्गत बारोदी गाँव में बहुत समय से जो महापुरुष गुप्त रूप से रहते हैं, उन्हें सभी लोग अब बारोदी के ब्रह्मचारी कहते हैं। गोस्वामीजी के मुख से कई बार इन महापुरुष के अद्भुत योगैश्वर्य और असाधारण महत्व की बातें सुनी हैं। गोस्वामीजी ने कहा है-**'बहुत से देशों की यात्रा करने और बहुत से पहाड़ों में घूमने-फिरने पर भी ऐसी उच्च अवस्था के एक भी महापुरुष के दर्शन नहीं हुए। भारत में इस समय इस कोटि का एक भी पुरुष शायद नहीं हैं।'** गोस्वामीजी के कई शिष्य कई बार बारोदी हो आये

हैं। ढाका और विक्रमपुर के अनेक प्रतिष्ठित, शिक्षित लोग ब्रह्मचारीजी की अलौकिक शक्ति का परिचय पाकर अवाक् हो चुके हैं। सारे ढाका व पूर्वी बंगाल में ब्रह्मचारीजी की ही चर्चा है। बातों ही बातों में एक दिन गोस्वामीजी ने मुझसे भी कहा था-**'ब्रह्मचारीजी की पलकें नहीं झपकतीं। पाँच मिनट तक लगातार उनकी आँखों की ओर देखते रहने से मूर्च्छित होकर गिर पड़ोगे। हिमालय और तिब्बत आदि से प्राचीन योगी योग सीखने के लिए रात को इन ब्रह्मचारी के पास आते हैं। इसलिए रात को कोई उस घर में नहीं रह पाता। वे संध्या होते ही घर का दरवाजा बंदकर देते हैं।'**

मैंने पूछा-तो मैं क्या एक बार उनके दर्शन कर आऊँ?

गोस्वामीजी-**हाँ हाँ, जरूर जाना। जाने से लाभ होगा। वहाँ जाकर अपनी ओर से उनसे पूछना मत। चुपचाप जरा दूरी पर बैठे रहना। तुम्हारे लिए जो कुछ आवश्यक होगा, वह वे स्वयं तुम्हें बुलाकर कह देंगे।**

गोस्वामीजी की बातों से मुझे ब्रह्मचारीजी के दर्शन करने की प्रबल इच्छा हुई है। बहुत दिनों के बाद बड़े दादा (श्रीहरकान्त वन्द्योपाध्याय) घर आये हैं, छुट्टी होने से मँझले दादा और छोटे दादा भी घर ही पर हैं। बड़े दादा प्रायः हर वक्त मेरे साथ धर्मसम्बन्धी वार्तालाप किया करते हैं। बातचीत के सिलसिले में मौका पाते ही मैं उनसे गोस्वामीजी के असाधारण धर्मजीवन के बारे में कहता हूँ। गोस्वामीजी की सत्यनिष्ठा, दया और सरलता के उदाहरण सुनकर दादा बहुत ही प्रसन्न होते हैं। उस समय मैं भी गोस्वामीजी से दीक्षा ले लेने का उनसे अनुरोध करता हूँ,

वास्तविक धर्मजीवन को प्राप्त करने के लिए दीक्षा लेना परम आवश्यक है, किन्तु दादा गोस्वामीजी की इस बात को नहीं मानते। बचपन से ही वे केशव बाबू पर विशेष रूप से आकृष्ट हैं। केशव बाबू ने कभी दीक्षा ही नहीं ली, अतएव उनके दृष्टान्त से दादा यही समझ बैठे हैं कि गुरु का आश्रय लिये बिना भी पुरुषार्थ द्वारा धर्मजीवन प्राप्त किया जाता है। मैंने सोचा कि किसी प्रकार दादा को एक बार बारोदी ले जाने से ही काम बन जाएगा। श्रीताराकान्त गंगोपाध्यायजी हमारे ही गाँव के रहनेवाले हैं, दादा के हम उम्र हैं और उनके घनिष्ठ मित्र भी हैं। उनसे सिफारिश कराके मैंने दादा को बारोदी जाने के लिए राजी करा लिया। निश्चय हो गया कि हम लोग बहुत शीघ्र बारोदी जायेंगे।

१ ज्येष्ठ १२९५ बं.सन् रविवार

भोर को, अर्धनिद्रित अवस्था में, मैंने एक विचित्र स्वप्न देखा। आज जागृत अवस्था में भी प्रत्यक्ष सत्य घटना की भाँति, लगातार यह स्वप्न मुझे याद आ रहा है। इस स्वप्न में मुझे ब्रह्मचारीजी के स्पष्ट दर्शन हो गये। मुझे निश्चयपूर्वक जान पड़ता है कि मैंने इस स्वप्न में जिन विचित्र घटनाओं को देखा है उनके साथ मेरे जीवन का विशेष सम्बन्ध है। गोस्वामीजी से उसका तात्पर्य पूछे बिना उसको डायरी में लिखने की इच्छा नहीं है।

सवेरे खा-पीकर बड़े दादा, मँझले दादा, ताराकान्त दादा और मैं, सभी बारोदी के लिए रवाना हुए। दादा बहुत मोटे हैं, ४-५ मिनिट चलने से ही वे हाँफने लगते हैं। तालतला तक डेढ घण्टा रास्ता चलने से उनकी मोटी जाँघों में, रगड़ खाते-खाते, फफोले पड़कर घाव हो गया। पैदल जाकर ही साधु के दर्शन करेंगे, उनकी

इस जिद के कारण ही यह उपद्रव हुआ। तालतला से नाव लेकर चले, तो सन्ध्या होने पर हम लोग बारोदी के बाजार में पहुँचे। सभी जानते हैं कि संध्या होने के बाद ही ब्रह्मचारीजी का दरवाजा बन्द हो जाता है। किन्तु चित्त के आवेग के कारण दादा रात को ही दर्शन के लिए जाने को उतावले हो उठे। सब लोग चले गये, मेरी इच्छा नहीं हुई, इससे मैं नाव पर ही रह गया। थोड़ी देर में उन लोगों ने वापस आकर कहा कि दर्शन हो गये। उन लोगों के पहुँचते ही ब्रह्मचारीजी ने कहा-‘तुम लोगों के लिए ही मैंने इतनी रात तक दरवाजा बन्द नहीं किया है; अब जाकर आराम करो, कल आना।’ बस उन्होंने सबको नाव पर भेजकर दरवाजा बन्द कर लिया।

२ ज्येष्ठ १२९५ बं.सन् सोमवार

सवेरे नहा-धोकर हम लोग ब्रह्मचारीजी के आश्रम में पहुँचे। बरामदे के सामने पहुँचते ही ब्रह्मचारीजी ने आकर दादा का हाथ पकड़ लिया और अपने आसन की दाहिनी ओर ले जाकर बैठा लिया। उन्होंने दादा से कहा-‘तुम तो महापुरुष हो। छद्म वेष में, बाबू बनकर, मेरे पास आये हो।’ दादा ने कहा-‘मैं तो सदा इसी वेष में रहता हूँ।’ काफी देर तक दादा के साथ अनेक प्रकार की बातें होती रहीं। दादा की अवस्था का ब्यौरा सुनकर उन्होंने सन्तोष प्रकट करके कहा-मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारे कर्म प्रायः समाप्त होने को हैं। अभी तुम मेरे दर्शन करने आये हो? दस वर्ष के बाद सैकड़ों आदमी तुम्हारे ही दर्शन करके धन्य होंगे। दादा ने कहा-‘आप बतला दीजिए कि मेरा वास्तविक कल्याण क्या करने से होगा।’ ब्रह्मचारीजी ने कहा-‘तो जाकर गोस्वामीजी से दीक्षा ले लो। उन्हीं के पास सत्य वस्तु है। वे आश्रय दे देंगे तो बहुत शीघ्र कल्याण होगा।’ ब्रह्मचारीजी

ने और भी बहुत-सी बातें कहीं, किन्तु कुछ बातें मुझे पसन्द आई, इसलिए इन्हें यहाँ लिख लिया है। मँझले दादा से भी बहुत बातें की, उनमें यही बात विशेष रूप से कही-'धन कमाओ, और निर्लिप्त रहकर उसे लोगों की सेवा में खर्च करो।' जब सबसे बातचीत कर चुके, तब मुझे बुलाकर कहा-'अरे तू किसलिए आया है? देवता के दर्शन करने आया है?' मैं बरामदे में चुपचाप यह निश्चय किये स्थिर बैठा था कि मैं एक भी बात न कहूँगा। ब्रह्मचारीजी का प्रश्न सुनकर मैंने सिर हिलाकर बतला दिया 'नहीं'। ब्रह्मचारी ने मुझे घूँसा दिखाकर धमकाते हुए कहा-'सिर हिलाता है! खोपड़ी फोड़ दूँगा! मुँह से बोल।' अब ब्रह्मचारीजी ने मुझे अपने आसन के बगल में बैठने को कहा। मैं वहाँ जा बैठा। ब्रह्मचारीजी ने मुझे उपदेश देकर अन्त में कहा-'अरे तू तो प्रतिदिन 'नोट' लिखता है न? (मैं डायरी लिखता हूँ, ब्रह्मचारीजी को यह मालूम हो गया, सोचने से मुझे आश्चर्य हुआ।) उसमें अपने संबंध में मेरी दो बातें लिख रखना- विलासिता छोड़ दे? विद्या नहीं आवेगी।' बतला तो, मेरी इन बातों का मतलब तूने क्या समझा? मैंने कहा-सभी प्रकार का सुख-भोग छोड़ देने के लिए आपने कहा है, ऐसा करने से ही धर्म में मति होगी और वैसा होने से लिखना-पढ़ना छूट जाएगा। ब्रह्मचारीजी ने फिर धमकाकर कहा-'मूर्ख! तो क्या मैंने यही कहा है? क्या तू नहीं जानता है कि विद्या किसे कहते हैं और अविद्या किसे? लिखेगा-पढ़ेगा क्यों नहीं? जाकर लिखने-पढ़ने में खूब मन लगा। लिखेगा-पढ़ेगा तो पास हो जाएगा। विलासिता न करना। पोशाक न पहनना। बस, धोती पहनना और चादर ओढ़ना। जूता पहनने की जरूरत नहीं। मामूली एक जोड़ी चप्पल रखना चाहे तो रख। कमीज वगैरह

मत पहनना। मन में विकार होने पर यहाँ आकर उपदेश ले जाना। हमें चिट्ठी लिखना। धर्म-कर्म सब होगा। घबराना मत, कुछ डर नहीं है। एक दर्द से तू बहुत तकलीफ पा रहा है, क्यों? पास आ-मैं तेरी छाती पर हाथ फेर दूँ,अभी दर्द ठीक हो जाएगा।' मैंने कहा-'मैं इसलिए नहीं आया हूँ कि आप मेरा रोग दूर कर दें। मैं तो आपके दर्शन करने आया हूँ। मैंने स्वप्न में आपको बिल्कुल ऐसा ही देखा था।'

ब्रह्मचारीजी-'तो स्वप्न का विवरण बता? मैंने सब कह सुनाया। सुनकर उन्होंने कहा-स्वप्न को लिख रखना। तेरा रास्ता तो तुझे मैंने स्वप्न में ही दिखला दिया है। बतला तो पहले तूने हमसे बात-चीत क्यों नहीं की?' मैंने कहा-गोस्वामीजी ने मुझसे कह दिया था कि तुम्हारे लिए भविष्य में जो कुछ भी आवश्यक होगा, वह सब वे अपने आप तुझे बुलाकर कह देंगे। उन्होंने आपके कुछ पूछने के लिए मुझे मना किया था, इसी से मैं चुप था। ब्रह्मचारीजी ने इसके बाद कहा-'अच्छा तो अपनी सब बातें तुझे मिल गई न? मैंने 'हाँ' कहा। ब्रह्मचारीजी-'तो जा। स्वप्न को 'नोट' में लिख रखना। दर्द तो तेरे भाग्य का है। हाथ फेर देने से हट जरूर जाता, किन्तु फिर कभी उसे भोगना तो पड़ता ही। दवा आदि कुछ मत खाना, उससे और भी बढ़ जाएगा। भोगफल पूरा होने पर अपने आप चला जायगा। (दादा को दिखलाकर) इन लोगों की दवा से कुछ लाभ न होगा। दर्द जब सहा न जावे तब ताजी मिट्टी मल लेना, उससे कम हो जाएगा। मैं उनको प्रणाम करके बरामदे में आ बैठा। दोपहर का भोजन करके, फिर हम लोग ब्रह्मचारीजी के पास गये। उन्होंने अपने जीवन की बहुत-सी बातें बतलाईं। जितना याद है उन्हें लिखे लेता हूँ।

ब्रह्मचारीजी ने कहा-उनका जन्म शान्तिपुर के विशुद्ध 'अद्वैत-वंश' में हुआ है। गोस्वामीजी के प्रपितामह के वे सगे भाई थे। वे अपने जीवन के संबंध में कहने लगे-'हम चार भाई थे, इसलिए हमारे माँ-बाप ने मुझे, जनेऊ होने के बाद ही, एक षट्चक्रभेदी संन्यासी को सौंप दिया। वे मुझे दीक्षा देकर साधन की शिक्षा देने लगे, और बड़े प्रेमपूर्वक मुझे सदा अपने साथ लेकर तीर्थ-भ्रमण करने लगे। इस प्रकार कई वर्ष बीत गये। युवावस्था आने पर धीरे-धीरे मैं अदम्य 'काम' आदि की उत्तेजना से बेचैन रहने लगा, तब गुरुजी मुझे साथ ले जाकर किसी पहाड़ के समीप एक गाँव में जाकर कुटिया में रहने लगे। भाग्य की बात है, पड़ोस में ही एक विधवा, सुन्दरी युवती रहती थी। गुरुजी भिक्षा माँगकर बढ़िया सामान लाते और निर्दिष्ट समय पर प्रतिदिन रसोई बनाकर मुझे भोजन कराते थे, फिर कुटिया सूनी छोड़कर, वे दिन भर इधर-उधर विचरते रहते थे। मैं बेखटके होकर अनेक प्रकार से उस युवती के साथ मौज करने लगा। इसी प्रकार कोई तीन वर्ष बीत गये। इधर धीरे-धीरे मेरी स्पृहा भी घटने लगी। इसी समय अकस्मात् एक दिन मैंने सोचा कि-यह क्या कर रहा हूँ? तभी मेरे मन में बड़ी ग्लानि होने लगी। मैं किसी दूसरी जगह चलने के लिए गुरुजी से बार-बार अनुरोध करने लगा। कुछ दिनों तक उन्होंने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया। फिर 'आज चलेंगे, कल चलेंगे' कहकर टालने लगे। धीरे-धीरे मेरी भी बेचैनी बढ़ने लगी। जब मैंने स्थान छोड़ देने के लिए गुरुजी से हठ किया, तब उन्होंने बीमारी का बहाना बनाया। भीतर की जलन को सहने में असमर्थ, मैं विक्षिप्त-सा हो गया। एक दिन मैंने गुरुजी से कहा-अब मैं यहाँ एक दिन भी नहीं

ठहरूँगा। गुरुजी ने कहा-'मेरी तबीयत बहुत खराब है। दो दिन और रुके। तब मैं हाथ में मुद्गर लेकर उनकी ओर झपटा। कहा-'कुटिया छोड़कर दिन भर घूम-फिर सकते हो। प्रतिदिन भिक्षा माँगकर रसोई बना सकते और मुझे खिला-पिला सकते हो, उस समय तुम्हारी तबीयत ठीक रहती है और यहाँ से चलने को कहते ही तुम बीमार हो जाते हो। आज तुम्हें भी जिन्दा न रहने दूँगा और खुद भी अपनी जान दे दूँगा।' गुरुजी वहाँ से भाग गये। फिर वापस आकर कहा-'चलो अब ठीक हुआ।'

रास्ता चलते-चलते मैंने गुरुजी से कहा-'इतने दिन तक तो मेरी बात की परवाह ही नहीं की और आज एकदम राजी कैसे हो गये?' गुरुजी ने उत्तर दिया-'अब तक तो बेटा इस तरह तूने कहा भी नहीं था। तुमने भोग को छोड़ दिया था, किन्तु भोग ने तो तुम्हें छोड़ा नहीं था, आज छोड़ा है।'

इसके बाद किसी निर्जन पहाड़ पर ले जाकर पैंतीस वर्ष तक गुरुजी ने मुझे हठयोग का अभ्यास कराया। राजयोग सीखने के लिए उतावले होने पर गुरुजी ने मेरे हठयोग की परीक्षा ली, कहा-'अपने घुटनों के बीच हंडी को दबाये रखकर, उसमें मिष्ठान्न पकाकर मुझे खिलाना होगा। मैंने वैसे ही कर दिया। इसके बाद राजयोग का उपदेश देना आरम्भ किया। इस राजयोग में सफल होने में बहुत समय लगा। इसके बाद गुरुजी अन्तर्धान हो गये।

मैंने पूछा-आप तो एक बार उदयाचल गये थे न?' ब्रह्मचारीजी ने कहा-'कोशिश की थी, किन्तु पहुँच नहीं सका। मेरे साथ तीन व्यक्ति और भी थे-हितलाल मिश्र (तैलंग स्वामी), वेणीमाधव गंगोपाध्याय नाम के एक महात्मा और अब्दुल गफूर नामक एक फकीर।

सूर्यलोक में पहुँचने का संकल्प करके हम लोग पैदल चलने लगे। हिमालय के ऊपर होकर हम लोग क्रमशः उत्तर की ओर जाने लगे। हम लोग सिर्फ फल-मूल खा लेते थे। बर्फ के ऊपर होकर इस प्रकार लगातार बहुत दिनों तक चलते-चलते देह की चमड़ी एक प्रकार से खुरदुरी हो गई। फिर जिस प्रकार साँप की केंचुल होती है, उसी प्रकार हम लोगों के बदन से भी केंचुल-सी निकल गई। अब शरीर का रंग दूध की तरह सफेद हो गया। बर्फ की ठण्ड देह में न लगती थी। जहाँ पर छ: मास का दिन और छ:मास ही रात होती है, वहाँ से हम लोग बहुत आगे बढ़ गये। वहाँ पर यहाँ की तरह न तो दिन-रात होता है और न चन्द्र-सूर्य ही हैं।'

प्रश्न-वैसे स्थान में आप कितने समय तक चलते रहे?

ब्रह्मचारीजी-जहाँ न तो चन्द्र-सूर्य हैं और न दिन-रात ही होता है, वहाँ के समय अथवा वर्ष का हिसाब किस तरह मालूम करूँ? इतना ही कह सकता हूँ कि बहुत समय तक चलना पड़ा था।

प्रश्न-चन्द्र-सूर्य तो थे नहीं, फिर रास्ता किस प्रकार देख पड़ता था?

ब्रह्मचारीजी-उन स्थानों में ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते गये, त्यों-त्यों आँखों का उपादान ही अलग तरह का हो गया। चन्द्र-सूर्य का प्रकाश न रहने पर भी आँखों से सब-कुछ देख सकते थे।

प्रश्न-तो आपलोग क्या उदयाचल पर चढ़े थे?

ब्रह्मचारीजी-हाँ, हम सभी चढ़े थे। वेणीमाधव अधिक दूर तक नहीं चढ़ सके। अब्दुल गफूर बहुत दूर तक चढ़कर लौट आये। यही हाल मेरा हुआ, मालूम नहीं हितलाल मिश्र कितनी दूर तक चढ़े थे। बाद में उन्हें भी उतर आना पड़ा।

प्रश्न-चढ़कर क्यों नहीं जा सके?

ब्रह्मचारीजी-ऊपर की ओर हवा लगातार हल्की होती जाती है। मैं जहाँ पर चढ़ा था, वहाँ की हवा बहुत ही हल्की है, स्थिर है, वहाँ पर हवा की लहरें नहीं है। इसी से श्वास-प्रश्वास नहीं चलता। सुना कि हितलाल मिश्र और थोड़े ऊपर चढ़कर, हवा न मिलने से उतर आये।

प्रश्न-वे महात्मा लोग इस समय कहाँ है?

ब्रह्मचारीजी-अब्दुल गफूर मक्का को चले गये। वे अभी तक जीवित हैं। वेणीमाधव चन्द्रनाथ के पहाड़ पर गये थे। मैं नीचे उतरकर दो बार मक्का और एशिया-यूरोप के बहुत से स्थानों की सैर करके चन्द्रनाथ जाना चाहता था, किन्तु रास्ते में पुलिस ने पकड़ लिया। उसके बाद से यहाँ हूँ।

प्रश्न-आपको पुलिस ने क्यों पकड़ लिया था?

ब्रह्मचारीजी-कामाख्या (गौहाटी) शहर के मैजिस्ट्रेट ने कुछ साधुओं की जटाओं में रूपये और अशर्फियाँ पाकर, चोर समझकर, उन्हें जेल में कैद कर दिया। जटाधारी को पाते ही गिरफ्तार कर लेने का पुलिस को हुक्म दे दिया था। मेरी जटाएँ थीं, इसलिए मुझे भी पकड़ लिया। साहब ने मुझसे बहुत से सवाल किये, मैं जवाब नहीं दे सका। लम्बे समय तक निरी शाक-सब्जी खाते-खाते और बहुत समय तक निराहार रहने से जीभ की दशा ऐसी ही हो गई थी, बातचीत करने की शक्ति नहीं थी, फलतः मैं कुछ बोल न सकता था। मैजिस्ट्रेट साहब की ओर तनिक देखते ही उसमें भक्तिभाव आया और मुझे छोड़ देने का हुक्म दे दिया। मैंने इशारे से बतलाया कि अन्यान्य साधुओं को रिहा न किया जाएगा

तो मैं भी जेल से न जाऊँगा। साहब को दया आ गई। उन्होंने मुझे सन्तुष्ट करने के लिए सभी को रिहा कर दिया। फिर हम सब लोग चन्द्रनाथ के लिए रवाना हुए। यहाँ के एक भले मानुष ने रास्ते में मेरी बहुत सेवा की। वही मुझे रास्ते से घुमाकर बारोदी ले आया है। मैं यहाँ आकर, साधारण मनुष्य की भाँति, पागल-सा बना रहता था, एक दस-बारह साल की लड़की नित्य मेरे खाने को कुछ-कुछ दे जाती थी, मैं उसमें से कुछ भी न खा सकता था। फिर उसी लड़की ने थोड़ा-थोड़ा दूध, उसके बाद मोहनभोग और फिर धीरे-धीरे कुछ कड़ी चीजें खिलाना आरम्भ कर दिया। इसी समय देखा कि मेरे शरीर के रक्त का रंग लाल हो रहा है, जो अब तक घास के रस जैसा रंग था। धीरे-धीरे बातचीत करना भी आया। इसके बाद प्रारब्ध कर्म समाप्त करने के लिए बहुत कुछ लिया है। उनका 'नाश्ता' खाकर मुसलमान किसानों के साथ खेत पर जाकर, खेत की गुड़ाई की है, कंधे पर बाँस रखे हुए सारी रात जाग-जागकर सूअरों को भगाया है। मैंने बहुत-सा समय इसी तरह बिता दिया, किसी को मेरा परिचय नहीं मिला। अन्त में जीवनकृष्ण (गोस्वामीजी को ब्रह्मचारीजी जीवनकृष्ण नाम से पुकारते थे।) ही, महापुरुष के नाम से, मेरी प्रसिद्धि करके सत्यानाश करने का उपाय कर रहा है। अब दिन-रात यहाँ पर भीड़ लगी रहती है। जरा भी स्थिर नहीं हो पाता।

मँझले दादा (श्रीवरदाकान्त बन्योपाध्याय) ने पूछा-'तो मैं क्या किया करूँ?' ब्रह्मचारीजी ने कहा-'पूजा किया करो।' प्रश्न-'किसकी पूजा?' ब्रह्मचारीजी ने अँगुली से एक वृत्त अंकित करके कहा-'इसकी, समझ गये?' मँझले दादा-'नहीं, क्या शालग्राम की?'

ब्रह्मचारीजी-'नहीं, रुपये की, रुपये की। रुपया पैदा करो और भोग करके कर्म की समाप्ति कर दो। मँझले दादा ने इसका उत्तर दिया-'हमने तो पढ़ा है, न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते।' यह सुनकर ब्रह्मचारीजी ने तनिक मुस्कुराकर कहा-'अच्छा, इसको अपनी भाषा में तो कहो।' मँझले दादा-'काम्य वस्तु का उपभोग करने से काम का कभी उपशम नहीं होता, घी डालने से जैसे आग और भी भड़क उठती है, यही हाल इसका होता है।' ब्रह्मचारीजी ने कहा-'मैंने तो भोग करके ही कर्म को समाप्त करने के लिए कहा है। उपभोग करने का तो मैंने नाम ही नहीं लिया। भोग और उपभोग में अन्तर है, जैसे पति और उपपति में। जो स्वेच्छाचार से किया जाता है वह उपभोग है, उससे शान्ति नहीं होती, वह तो विधिपूर्वक भोग से प्राप्ति होती है।' मैंने पूछा-पृथ्वी के सिवा अन्यान्य लोकों में मनुष्य के जानेआने के लिए क्या कोई रास्ता है?

ब्रह्मचारीजी-'बिना रास्ते के उन सब स्थानों में लोग आगे-गये किस प्रकार? वहाँ गये-आये और देखे-सुने बिना उस लोकों के संबंध में इतना स्पष्ट रूप से कहा ही किस तरह? भिन्न-भिन्न समय में बहुत से ऋषि-मुनि एक ही जैसी तो बातें कह गये हैं। कौन-सा लोक कैसा है, कितना लम्बा-चौड़ा है, किस लोक में कितने पहाड़ और नदी-नद हैं, सब बता चुके हैं, और तो क्या बड़े-बड़े महलों तक का वर्णन मौजूद है। उन स्थानों के निवासियों की सूरत-शक्ल, स्वभाव, उनके काम-काज आदि के वर्णन विस्तृत रूप से लिख गये हैं। ब्रह्माण्ड के भीतर सर्वत्र जाने-आने के लिए साफ रास्ता है। बहुत सी मणियाँ जिस प्रकार एक धागे में, माला के

आकार में, पिरोई हुई रहती है, उसी प्रकार भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः,तपः, और सत्य आदि ब्रह्माण्ड के अंतर्गत सभी लोक एक के बाद एक जंजीर में गुँथे हैं। लेकिन प्रत्येक शरीर से सब स्थानों में जाना-आना नहीं हो सकता। स्थान और मार्ग के उपयुक्त देह धारण कर लेना पड़ता है, नहीं तो काम नहीं बनता।' पूछा-यह उपयुक्त देह किस तरह प्राप्त की जाती है?

ब्रह्मचारीजी-योगाभ्यास द्वारा। योग-क्रिया से मनुष्य इच्छानुरूप देह धारण कर सकता है। उन स्थानों में जाने के लिए कहीं तो पानी में घुसने लायक देह आवश्यक होती है, कहीं वायवीय देह आवश्यक होती है और कहीं तैजस देह का प्रयोजन होता है।

प्रश्न-तो क्या उक्त देहों में रक्त, माँस, हड्डी, मज्जा आदि नहीं होती?

ब्रह्मचारीजी-रहता क्यों नहीं? उस देह के प्रधान भूतों के अनुरूप सब कुछ रहता है।

प्रश्न-हम लोग तो इस पृथ्वी के सभी स्थानों में ही नहीं जा सकते।

ब्रह्मचारीजी-पृथ्वी तो दूर की बात है, तू तो भारतवर्ष के सभी स्थानों में नहीं जा सकता। पाश्चात्य भूगोल पढ़कर, उसके संस्कार के अनुसार, पृथ्वी को तुम लोगों ने बहुत छोटा कर डाला है। पृथ्वी तो सप्तद्वीपवती है। उसके एक द्वीप तक का पूरा-पूरा पता तो कोई जानता नहीं। एक-एक द्वीप में सात-सात वर्ष है, उस पर अब तक किसी को विश्वास नहीं होता। जम्बूद्वीप के जो सात वर्ष हैं, उनमें से एक यह भारतवर्ष है। इसी को तुम लोग पृथ्वी कहकर जानते हो। लाल सागर, काला सागर, यवद्वीप, सुवर्णद्वीप, चीन, फारस, अरब

आदि सभी तो प्राचीन भूगोल के अनुसार उस एक भारतवर्ष के अन्तर्गत है। भारत वर्ष के बाद जो किम्पुरूषवर्ष है उसी का तो आज तक किसी को कुछ पता नहीं लगा। वहाँ वालों का मुँह घोड़े जैसा है। वहाँ का विवरण भला कितने आदमी बता सके है ?

मैं-जहाज पर सवार होकर मनुष्य गोल पृथ्वी की तो सैकड़ों बार परिक्रमा कर चुका है। उन लोगों ने तो यह कुछ भी नहीं देखा।

ब्रह्मचारीजी-ओफ! अरे पृथ्वी को गोल कौन कहता है? उन स्थानों में जहाज लेकर कोई जावेगा किस तरह? पूर्व-पश्चिम ही गोल हैं, इसी से चक्कर पूरा हो जाता है। उत्तर-दक्षिण का भला किसी ने पार पाया है? उन दोनों दिशाओं की खबर कोई बतला सकता है?

प्रश्न-तो क्या पृथ्वी गोल नहीं है?

ब्रह्मचारीजी-गोल है क्यों नहीं? पूर्व-पश्चिम में तो गोल हैं, किन्तु उत्तर-पश्चिम में, शंखाकार माला की तरह, एक के बाद एक सात द्वीप हैं। पहले से दूसरा दुगुना है, इसी प्रकार क्रम से बड़े हैं, ऐसे सातों को एक धागे में गुँथने पर जैसा होता है, पृथ्वी बहुत कुछ वैसी ही है। सात द्वीपों के बीच में लवण से घिरा हुआ द्वीप ही जम्बूद्वीप है। उसके आगे प्लक्ष्मद्वीप है। इसके बाद सिलसिलेवार सातों एक-दूसरे से संलग्न हैं। अब मनुष्य इन बातों पर विश्वास किस प्रकार करेगा? देखा तो है ही नहीं। किन्तु जिन्होंने देखा था, उन्होंने द्वीप के अन्तर्गत पहाड़-पहाड़ी, नद-नदी आदि के परिणाम और विस्तार का विवरण साफ-साफ लिखा है।

ब्रह्मचारीजी के स्थान से विदा होते समय दादा से उन्होंने दुबारा कहा कि गोस्वामी से दीक्षा ले लेना। अब दादा भी दीक्षा लेने

के लिए उतावले होकर, शीघ्र ढाका गोस्वामीजी के पास जाने के लिए तैयार हो गये। हम लोग ढाका के लिए रवाना हो गये। किन्तु भगवान् की मर्जी या अभिप्राय समझ न सके। ढाका पहुँचने पर सुना कि २-३ दिन पहले ही गोस्वामीजी तो कलकत्ता गये हैं। दादा की छुट्टी करीब-करीब समाप्त होनेवाली है।

हम लोग घर लौट गये। दादा की छुट्टी का समय बीत गया। वे अपनी नौकरी पर अयोध्याजी चले गये। दीक्षा नहीं हो पाई।

मेरी दैहिक दुरवस्था और मानसिक दुर्गति।

कफाश्रित वायु और पित्तशूल की बीमारी के इलाज के लिए मैं घर पर बहुत दिनों तक रहा। घर पर अच्छे वैद्य को रखकर सोना, चाँदी, मोती आदि को रीति के अनुसार भस्म करके कीमती दवाईयाँ बनवाई गईं। 'बृहत् विद्याधराभ्र', 'बृहत् वातचिन्तामणि', 'धात्रीलौह, नारदीय महालक्ष्मीविलास' और 'त्रैलोक्य-चिन्तामणि' आदि वटिका तथा 'महाचैतसादि घृत' का लगातार बहुत दिनों तक सेवन और उपयोग किया, कुन्ज-प्रसारिणी, शूलगजेन्द्र, त्रिसुतिप्रसारिणी', 'पुष्पराजप्रसारिणी आदि तेलों का भी काफी प्रयोग करके देखा। किन्तु रोग में तनिक भी अन्तर न पड़ा, बल्कि वह तो और बढ़ने लगा। असहनीय रोग की यन्त्रणा बढ़ने के साथ-साथ, चित्त की स्थिरता और प्रफुल्लता भी धीरे-धीरे कम होने लगी और शायद तेजस्कर औषधियों का सेवन करने तथा लगातार तेल आदि की मालिश होते रहने से, इस समय अपने शारीरिक निस्तेज रिपुओं के दुबारा आविर्भाव का मुझे बीच-बीच में अनुभव होने लगा। किन्तु साधन-भजन में कभी-कभी विशेषता मिलती रहने से, उक्त दुरवस्थाओं की मैंने कोई गणना ही नहीं की। सोचा कि

शत्रुओं का दमन कर लेना तो चाहे जिस अवस्था में मेरे वश की बात है। अपने ऊपर इस तरह बेहद विश्वास होने से साधारण विधि-निषेध में भी मैं शिथिलता करने लगा। आगे दो घटनाओं ने क्रम से मुझे बिल्कुल रसातल में डुबा देने का उपक्रम किया। दोनों। घटनाएँ ये हैं-

मेरे मकान के समीप ही छोटी जाति की एक ऐसी वैष्णवी रहती है, जिसका पेशा भीख माँगना है। उसने अर्थ के लोभ में आकर, सोलह साल की एक युवती को अपने घर में लाकर रखा है। किसी मालदार युवक ने उसे अपनी 'रक्षिता' बना लिया है। मुहल्ले में ही इस तरह वेश्या के रहने की खबर पाकर मेरा हृदय जल उठा; मैं तुरन्त एक बलवान सरदार (लठैत) को साथ लेकर, उन्हें उचित सबक सिखाने के लिए तैयार हो गया। मैंने सरदार से कह दिया कि इशारा पाते ही तुम लाठी मार-मारकर उन दोनों के पैर तोड़ देना। अब दिन डूबने के बाद ही मैं उस घर में घुसा। सरदार तनिक ओट में रह गया। मेरे पहुँचते ही, वह वैष्णवी उस युवती को मानो कुछ इशारा करके वहाँ से खिसक गई। मैं उस बाबू की प्रतीक्षा में बाहर बैठ गया। अब उस युवती ने धीरे-धीरे आकर मुझसे दिल्लगी करना आरम्भ कर दिया। यह देखने के लिए कि नौबत कहाँ तक पहुँचती है, मैं उसकी बातचीत में 'हाँ-हूँ' करने लगा। मैंने मन में निश्चय कर लिया कि किसी प्रकार का कुभाव प्रकट करते ही, मैं सरदार को पुकारकर, इसकी ऐसी मरम्मत कर दूँगा कि हड्डी-पसली एक हो जाएगी। वह अनेक प्रकार के हाव-भाव करके अपनी देह की सुन्दरता दिखाने लगी। फिर धीरे-धीरे दो-एक कदम आगे बढ़कर उसने मुझे पकड़ लिया। अब वह मुझे सहज ही खींचकर अपनी

कोठरी की ओर ले चली। उसका स्पर्श होते ही मेरी सारी तेजस्विता, विवेकबुद्धि तक विलुप्त हो गई। मन एकाएक बहुत ही चंचल हो उठा! मानो मैं भेड़-सा बन गया। फिर उसकी कोठरी के दरवाजे तक जाकर मैं गिड़गिड़ाकर, उसकी खुशामद करने लगा कि 'आज तो मुझे जाने दो, मैं कल आ जाऊँगा।' तब कहीं उसने मुझे छोड़ा। मैं छुटकारा पाते ही बेतहाशा दौड़ता हुआ मैदान में कुछ दूर पर पहुँचा तो कि पछाड़ खाकर गिर पड़ा। पैर में बड़ी चोट लगी। मुझे कन्धे पर बैठाकर सरदार घर पहुँचा गया। दूसरे दिन सवेरे मैंने अपनी हम उम्र लोगों को एकत्रित करके तय किया कि रात को उसके घर में आग लगा देंगे। लोगों से वैष्णवी को यह बात मालूम हो गई। वह उसी दिन आकर मेरे पैरों पर गिरकर रोते-रोते बोली-'मुझे सिर्फ तीन दिन की मोहलत दीजिए, मैं इस गाँव में न रहूँगी।' आखिर वह गाँव छोड़कर भी गई।

इस घटना से मेरी मानसिक दशा दूसरे ही प्रकार की हो गई। यद्यपि उन दोनों को मैंने खरी-खोटी बातें कहकर गाँव से खदेड़ दिया, फिर भी उस कुलटा के स्पर्श से मुझे जो सुख मिला था, उसकी याद को मैं एक दिन के लिए भी अपने मन से नहीं हटा सका। इस प्रकार से युवती की देह का स्पर्श जिन्दगी भर मुझे कभी नहीं हुआ था। अब यह स्पर्श-सुख मुझे साधन-भजन से भी मधुर जान पड़ने लगा। उसकी भुजाओं से वेष्टित आलिंगन, मेरे मन में सदा उदित होकर, वर्तमान की भाँति मुझे उत्तेजित करने लगा। मैं साधन-भजन से अन्यमनस्क रहकर सदा वही कल्पना करने लगा। इसके सिवा एक और विषम प्रलोभन उपस्थित हुआ।

घर में हमारे यहाँ एक बिना माँ-बाप की, सयानी, कुलीन,

लड़की रहती है। उसके अभिभावकों की इच्छा थी कि उसे वर्तमान रुचि के अनुसार लिखा-पढ़ा दिया जायगा तो आगे चलकर उसके लिए अच्छा घर-वर मिलने में सुविधा होगी। मैं जब से घर आया हूँ, तब से उन लोगों ने उसे पढ़ाने-लिखाने का काम मुझे सौंपा है। लड़की दिनभर घर का काम-काज बड़ी निपुणता से किया करती थी, फिर भी समय निकालकर बड़ी श्रद्धा और सावधानी से मेरे रोग की सेवा करने लगी। दिन में तो उसे काम-काज से फुरसत न मिलती थी, इसलिए रात को नौ-दस बजे वह मुझसे पढ़ने आने लगी। घरवालों के बेखटके सो जाने पर भी लड़की मेरे सूने कमरे में बिछौने के एक ओर बैठकर, रात को बारह बजे तक लिखती-पढ़ती रहती थी। उसकी सेवा में श्रद्धा, गृहस्थी के काम-काज में चतुरता, लिखने-पढ़ने में उत्साह और चरित्र दृढ़ता देखकर दिन-दिन मैं उसे बहुत अधिक चाहने लगा। उल्लिखित घटना के बाद से मेरी हालत, शिकार जिससे खो गया हो, ऐसे कुत्ते की-सी हो गई। अदम्य उत्तेजना के मारे मैं बेचैन हो गया। इसी समय उस कुमारी के सौन्दर्य पर मेरा शिथिलचित्त, दिन-पर-दिन आकृष्ट होने लगा। मैं भीषण दुरवस्था की आशंका करने लगा किन्तु मोहवश मैंने उसको अपने पास पढ़ने को आने की मनाही नहीं की। अनुकूल परिस्थिति, मेरे अधीर चित्त को धीरे-धीरे और भी लुभाने लगी। उधर लड़की, मेरी मर्यादा की रक्षा किये हुए, मेरे उस भाव का अनादर करके, मुझे सतर्क करने लगी। अन्त में मुझे बिल्कुल उतारू देखकर, एक दिन वह मेरे पैरों पर गिरकर रोते-रोते कहने लगी-'आप मेरी परीक्षा क्यों लेते हैं? इससे मैं बहुत ही डरती हूँ। आप योग-साधन करते हैं, आपका मन किसी हालत में डिग नहीं सकता; मेरी परीक्षा लेना ही

आपका उद्देश्य है। यदि आप मेरी रक्षा न करेंगे तो बतलाइए कि इस दशा में मेरा बचाव किस तरह होगा।’ उसकी साफ-साफ बातें सुनकर मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। एक ओर तो मेरे भीतर अदम्य उत्तेजना है, सामने मेरी मुट्ठी में सुन्दरी युवती मौजूद है, दूसरी ओर बाहर धार्मिकता का ढोंग है, यह कामना कि सब लोग मुझे योग-साधक माने; विशेषतः यह सोच है कि जो मुझे सदाचारी महान् साधु समझकर श्रद्धा करती है, उसी के आगे मैं किस प्रकार अपनी मर्यादा को तोड़ूँ। इस दशा में पड़कर अपने संकल्पित कर्म से बचने के लिए मैं जी-जान से कोशिश करने लगा। किन्तु प्रतिदिन क्या सूने में और क्या औरों के आगे, उसके साथ सम्बन्ध रखने से मेरी इच्छा दिन-पर-दिन बढ़ती गई। अन्त में जब समझ लिया कि मेरे भीतर की आग धीरे-धीरे उसे भी त्रस्त कर रही है, तब दूसरा उपाय न देखकर, मान बचाने के लिए मैं घर छोड़कर ढाका भाग गया। सबने समझा कि बीमारी बहुत कुछ हट गई है। मैं स्कूल में भर्ती हो गया।

अपने भीतर की दुरवस्था को छिपाये रहकर मैं गोस्वामीजी के पास आने-जाने लगा। एक दिन उन्होंने ध्यान की दशा में कहा- **‘समय बड़ा बुरा है। योगावलम्बियों के भीतर जिसके जो छिद्र हैं। सब प्रकट हो जाएंगे।’** यह सुनकर मैं बहुत ही डर गया, बहुत ही सावधानी रखने लगा।

उस समय गोस्वामीजी कुछ दिनों के लिए कलकत्ता चले गये। इसी समय ढाका में उनके शिष्यों की अनेक प्रकार की दुर्दशा हो गई। आपस में लड़ाई-झगड़ा, शत्रुता, हाथापाई-यहाँ तक कि चरित्र-हीनता और गुरुद्रोहिता तक होने लगी। यह सब देख-सुनकर मैं

बड़ी सतर्कतापूर्वक, नई उमंग के साथ, साधन करने लगा।

स्थिर उज्ज्वल ज्योतिर्मण्डल के दर्शन।

कुछ दिनों से समय निर्धारित करके, मैं नियमित रूप से साधन-भजन करता आ रहा हूँ। शेषरात्रि को, निर्दिष्ट समय पर, छत के ऊपर जाकर पूर्व की ओर मुँह करके आसन लगाकर बैठ जाता हूँ। पहले श्रीगुरुदेव को प्रणाम और एकाग्र मन से उनका स्मरण करके स्वप्न में मिले हुए मन्त्र को एक हजार बार जपता हूँ, इसके बाद प्राणायाम और इष्ट नाम का जप रीति के अनुसार घण्टे भर से ऊपर तक किया करता हूँ। ८-१० दिन हुए, एक दिन धीरे-धीरे ललाट को कंपित करती हुई एक अपूर्व ज्योति प्रकाशित हो गई है। इस अपूर्व ज्योति की मनोहर सुन्दरता के एक कण को भी भाषा के द्वारा प्रकट करते नहीं बनता। मालूम नहीं, इसे चन्द्र कहते हैं अथवा सूर्य। ललाट के भीतर अथवा बाहर-नीले आकाश में, बहुत दूरी पर, चन्द्र, सूर्य के आकार की स्निग्ध, बहुत ही उज्ज्वल, श्वेत ज्योति के दर्शन करता हूँ। ज्योतिर्मण्डल के बीच में पतली सी तरंग के आकार की झिलमिलाती हुई ज्योति की छटा देखकर कभी-कभी मुझे कुछ सुधि नहीं रहती, दिशाहीन-सा हो जाता है। लगातार आठों पहर यह ज्योति मानो मेरी आँखों के आगे बनी रहती है यह विचित्रता देखता हूँ। आँखें खोले रहूँ या बन्द किये रहूँ, इस ज्योति के दर्शन एक-से होते हैं। चन्द्रमा की किरण की तरह इस ज्योति की किरण शीतल और शुभ्र है, बिजली के प्रकाश की तरह उज्ज्वल है और उसकी अपेक्षा बहुत ही मनोहर और निर्मल है।

जिस समय पहली बार मुझे इसके दर्शन हुए थे, उस समय मैं बिल्कुल मुग्ध हो गया था। अब लगातार देखते रहने से अभ्यस्त हो

गया हूँ। पहले-पहल यह ज्योति कुछ तरंगमय दिखाई पड़ती थी, अब चन्द्रमा की तरह स्थिर है। बहुत अनुसंधान करने पर भी मैं यह निश्चय नहीं कर पाया कि मुझे इस ज्योति के दर्शन कहाँ पर हो रहे हैं। जब आँखें खुली रखता हूँ, तब देखता हूँ कि बाहर के आकाश में ललाट पर ऊपर की ओर है, और आँखें बंद लेने पर जान पड़ता है कि ललाट के ही भीतर नीले रंग के विस्तीर्ण आकाश के बीचों-बीच है। यह ज्योति एक ही तरह से प्रकाशित बनी रहती है, इस कारण इसका ह्रास या वृद्धि कुछ समझ में नहीं आता। हाँ बाहर काम-काज छोड़कर नाम में और गुरु में चित्त लगाने से, इसके माधुर्य में और भी अधिक अभिभूत हो जाता हूँ। गुरु का स्मरण करने पर ज्योति की अपूर्व छटा अनेक स्तरों में विकीर्ण होकर समय-समय पर मुझे आनन्दसागर में डुबोए रखती है। गोस्वामीजी के रूप का ध्यान करते ही इस ज्योति की सुन्दरता और मनोहारिता उत्तरोत्तर बढ़ती है। इसका कारण नहीं समझ पाता। इस समय यह अवस्था मेरे अधीन और स्वाभाविक लगने लगी।

२९ श्रावण १२९५ बं.सन् रविवार

ज्योति का लुप्त हो जाना।

हाय! हाय!! मेरा सत्यानाश हुए आज दो दिन हो गये। दुर्भाग्यवश अकस्मात् अनजाने एक अपराध हो जाने से अपने अतुलनीय आनन्द की अवस्था को मैं खो बैठा हूँ, अब मैं बिल्कुल अवसन्न हो रहा हूँ। सूखे रेगिस्तान के तुल्य तप्त हृदय में, रह-रहकर उस ज्योति की स्मृति प्रत्यक्ष आग की तरह मेरे प्राणों को जला रही है। जिस अपराध की बदौलत मेरी यह दुर्दशा हुई है, उसे साफ-साफ लिख छोड़ता हूँ।

शूद्र जाति की एक विधवा संकट के समय सदा हम लोगों की सहायक रहती थी। इससे हम लोगों को उससे विशेष रूप से घनिष्ठता हो गई थी। इस समय रक्षक न रहने से, वह बिल्कुल ही असहाय और भरण-पोषण की, भविष्य की चिन्ता से बहुत ही अधीर हो गई है। तरह-तरह की चिन्ताओं से घबराकर उसने मुझे बुला भेजा। उसके संकट का हाल सुनकर मुझे उस पर बड़ी दया आई। तुरन्त उसके पास पहुँचकर मैंने उसे भविष्य के लिए ऐसा कुछ प्रबन्ध बता दिया। शाम को खाली घर में मुझे अकेला पाकर, हाथ पकड़कर, उसने अपने बिछौने पर बिठा दिया। थोड़ी ही देर में मेरी बाँई ओर बैठकर वह अस्वाभाविक ढंग से मुझे प्यार करने लगी। उसके ओंठ काँप रहे थे, चेहरा सुर्ख था और दृष्टि लोलुप तथा अस्थिर थी। उसका सारा बदन दाहिनी और बाईं ओर बराबर झूम रहा था। यह देखते ही मुझे उत्तेजना होने लगी। मैं घबराकर चौंक पड़ा। इसी समय क्या देखा कि जो ज्योति लगातार मेरे आगे निश्चल रूप से प्रकाशित रहती थी, वह अकस्मात् काँप रही है। मैं तुरन्त बिस्तरे से उछलकर खड़ा हो गया। उसके वस्त्र में 'अशुद्धता' के लक्षण देखकर मैंने पूछा-'यह क्या है?' युवती ने बतला दिया, मैं पल भर की देर किये बिना वहाँ से तुरन्त चला आया? मैंने क्षणभर में ही समझ लिया कि मेरा सत्यानाश हो गया; नाममात्र को बिन्दु से पूर्ण चन्द्रमा डूब गया! दो ही तीन मिनट में, लहरें उठते हुए सरोवर में चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब की भाँति चंचल होकर, मेरा निश्चल उज्ज्वल ज्योर्तिमण्डल धीरे-धीरे एकदम लुप्त हो गया। जैसी करनी वैसी भरनी। हाय, हाय, अब मैं क्या करूँ।

४ भाद्र १२९५ बं.सन्।

पतितों पर अयाचित दया।

खबर मिली कि आज गोस्वामीजी ढाका आवेंगे। उनके स्वागत के लिए कुछ गुरुभाईयों के साथ मैं दुलाईगंज स्टेशन पर पहुँचा। पिछले अपराध को याद करके मैं संकोचवश सबके पीछे खड़ा रहा। हर पल यही सोचने लगा कि गोस्वामीजी मुझे देखकर न जाने क्या कहेंगे। इधर एक गुरुभाई भी एक स्त्री के मामले मे फँस जाने से, गुरुभाईयों ने उन्हें बहुत ही अपमानित किया है। सभी ने उनकी बदनामी करके, एक प्रकार से बहिष्कृत-सा कर दिया है। लज्जा और पश्चात्ताप के मारे म्रियमान होकर वे लोगों से मिलना-जुलना त्याग करके, रात-दिन अपने घर में बंद अकेले ही रहते हैं। गोस्वामीजी के दर्शन न कर सकेंगे, इस दुःख से वे घर में बैठे रो रहे हैं।

शाम को गोस्वामीजी दुलाईगंज स्टेशन पर पहुँचे। गाड़ी में बैठे-बैठे ही उन्होंने गुरुभाईयों के साथ मुझे भी देख लिया। प्रतिष्ठित और अच्छे पदों पर स्थित बड़े गुरुभाई लोग गोस्वामीजी की गाड़ी के पास पहुँचे; किन्तु उन्होंने सबसे पहले मुझे बुलाकर कहा-**क्यों कुलदा,आ गये? अच्छा अब तुम लोग घर चलो-मैं फूलबेड़े स्टेशन पर उतर कर आता हूँ।** अब उन्होंने ऐसी सस्नेह-दृष्टि से, मन्द-मन्द मुस्कुराकर, मेरी ओर देखा कि मेरा हृदय शीतल हो गया। अन्य गुरुभाईयों के साथ एक-आध बात कहते ही गाड़ी छूट गई। गोस्वामीजी फूलबेड़े (ढाका) स्टेशन पर जाकर उतरे। हममें से किसी की समझ में न आया कि गोस्वामीजी दुलाईगंज स्टेशन पर न उतरकर, कोई एक घंटे की दूरी पर जाकर, ढाका स्टेशन पर क्यों उतरे।

ढाका-स्टेशन पर उतरकर गोस्वामीजी सीधे हमारे उसी परित्यक्त गुरुभाई के यहाँ पहुँचे, जो पछता रहा था और जिसे गुरुभाईयों ने बदनाम कर रखा था। घर का दरवाजा भीतर से बन्द था। बारबार दस्तक देने पर उस भले आदमी ने आकर ज्योंही दरवाजा खोला, त्योंही गोस्वामीजी ने उसे छाती से लगाकर उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा-**तुम हमारे पास नहीं आओगे, इसलिए हम स्टेशन से उतरकर ही तुम्हें देखने आये हैं।** गुरुभाई रोते-रोते गुरुजी के चरणों पर गिर पड़े। गोस्वामीजी उन्हें धीरज दिलाकर गेंडारिया आश्रम आ गये। सबने बहुत ही निरादर करके जिन्हें दुत्कार दिया था, उन्हीं को ढाका पहुँचने पर सबसे पहले गोस्वामीजी गले से लगा लिया? उनके इस काम से मुझे बड़ा सहारा मिला, मेरा दिल ठण्डा हो गया।

विचित्र स्वप्न-मार्गदर्शन।

मैं आज दोपहर को गोस्वामीजी के पास गया। देखा कि वे आम के पेड़ के नीचे ध्यान लगाये बैठे हैं। दूर से प्रणाम करते ही उन्होंने आँखें खोलकर देखा और मुझसे बैठने के लिए कहा। मैंने धीरे-धीरे सूचित किया कि मैं ब्रह्मचारी के पास गया था, फिर कहा-उनके उपदेश से दादा आपके दर्शन करने यहाँ आये थे, किन्तु उस समय आप ढाका में नहीं थे। जाते समय दादा कह गये हैं-यदि आप पश्चिम की तरफ गए तो कृपा करके एक बार उन्हें दर्शन दें। उनको आपसे बहुत सी बातें करनी है।

गोस्वामीजी-**इस समय स्वास्थ्य बहुत ही खराब है। जरा सुधर जाने पर, एक बार जाने की इच्छा है। उस समय तुम्हारे दादा के साथ भेंट करूँगा।**

गोस्वामीजी ने विस्तृत रूप से जानना चाहा कि ब्रह्मचारीजी से भेंट होने पर क्या क्या बातचीत हुई। दादा और मँझले दादा का सब वृत्तान्त सुनाकर, फिर मैंने अपनी सब बातें शुरू से अन्त तक साफ साफ बतला दी। सुन करके गोस्वामीजी ने कहा-**'विद्या नहीं आवेगी' इत्यादि सब बातें लिख रखने के लिए उन्होंने कहा है, सो लिख लेना। उन लोगों की बातों को समझना बहुत कठिन है। तुमसे जो मैंने कह दिया है, वही किये जाओ। मैं तो हूँ, फिर जो करना होगा, वह मैं ही बता दूँगा, घबराना मत। हाँ, अब सपने का वृत्तान्त सुनाओ।**

मैं अपना स्वप्न-वृत्तान्त सुनाने लगा-'देखा कि दिन डूबने को है, आपने अकस्मात् आकर मुझे आवाज देकर कहा, **समय नहीं है, अब चलो।'** आपके साथ बारोदी के ब्रह्मचारीजी भी थे। श्रीताराकान्त गंगोपाध्याय (ब्रह्मानन्द भारती) भी आ गये। आगे-आगे ब्रह्मचारीजी चले, उनके पीछे आप, आपके पीछे ताराकान्त दादा चले और सबके पीछे मैं चला। यह तो मालूम होने लगा कि आगे-आगे ब्रह्मचारीजी चल रहे हैं, किन्तु वे दिखाई नहीं पड़े। अँधेरे में किसी के साथ चलने से जिस प्रकार उसकी सत्ता का अनुभव होता है, उसी प्रकार अनुभव ब्रह्मचारी के संबंध में भी मुझे हो रहा था। रास्ता चलते-चलते कुछ दूर निकल जाने पर, बड़ी दूरी पर मैंने एक भयंकर जंगल देखा। उसे देखकर डर लगने लगा। किन्तु ज्यों-ज्यों उसके समीप पहुँचने लगा त्यों-त्यों हरे और नीले रंग के घने वृक्ष की शोभा से आनन्द मिलने लगा। वन के बहुत ही समीप पहुँच जाने पर देखा कि वह न केवल वन है, बल्कि एक बड़ा भारी पहाड़ भी है। हम लोगों ने उसके भीतर प्रवेश किया। ब्रह्मचारीजी रास्ता

पकड़े हुए अपनी धुन में आगे बढ़ने लगे; और आप अपने दण्ड से काँटों को हटाकर रास्ता साफ करते हुए चलने लगे। ताराकान्त दादा चौकन्ने होकर इधर-उधर देखते हुए चलने लगे। मैं आपकी ओर दृष्टि रखकर आगे बढ़ने लगा। धीरे-धीरे हम लोग बहुत ऊँचे-नीचे स्थानों में चढ़ते-उतरते हुए, पर्वत की सबसे ऊँची चोटी पर एक समतल स्थान में जा पहुँचे। वहाँ आपने मुझे एक स्थान पर ले जाकर तीन आसन दिखाए। देखा कि तीनों आसनों के चारों ओर बहुत पुराने, दूर तक फैले हुए, बड़े-बड़े पेड़ हैं, स्थान कुछ-कुछ अँधेरा जैसा, पेड़ों की छाया से ढँका हुआ है। तीनों आसन गेरूवे रंग के हैं, लाल पत्थर के बने चौकोर पर पूर्व की ओर बिछे हुए हैं। तीनों आसनों पर १, २, ३, अंक लिखे हुए हैं। ३ नम्बरवाला आसन मुझे दिखाकर आपने कहा यही तुम्हारा आसन है। इस पर बैठो। यहाँ बैठकर कुछ समय तक साधन करना। २ नम्बरवाले आसन पर आप स्वयं बैठ गये। १ नम्बरवाला आसन खाली रहा। थोड़ी देर वहाँ बैठकर मैंने साधन किया। फिर आपने उठकर कहा- मेरे पीछे चलो! अब हम चारों फिर पहले के सिलसिले से चलने लगे। ऊँचे-नीचे स्थानों में बहुत झाड़-झंखार और काँटे थे, इस कारण मेरे पैरों में घाव हो गये; स्थान-स्थान पर ठोकर लगने से दो-तीन बार मैं गिर भी पड़ा। तब आप दुर्गम संकीर्ण मार्ग का संकट मुझे इशारे से बताते हुए, धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे; और बार-बार मुझसे कहने लगे, बड़ी सावधानी से धीरे-धीरे कदम रखकर मेरे पीछे-पीछे चले आओ।' बड़े क्लेश से बहुत दूर चलने पर अन्त में लगा कि हम लोग एक बड़े भारी राज्य के समीप आ गये हैं। देखा कि घने हरे वृक्षों के पत्तों के भीतर होकर सूर्य की किरण की तरह,

उस ज्योतिर्मय राज्य की तेज किरणें आ रही हैं। हम लोग उसी किरण के सहारे आगे चलने लगे। आप बीच-बीच में मेरी ओर मुँह करके देखते हुए, मुझे धीरज दिलाने लगे। इससे मैं यह अनुमान करने लगा कि आगे कुछ उपद्रव है। हम लोग जिस जंगल में थे, उससे उक्त ज्योतिर्मय राज्य में जाने के लिए एक ही द्वार था; वह बहुत ही तंग था। सारा राज्य घनी कंटीली बाड़ी से घिरा हुआ था। हम लोग बड़े उत्साह के साथ उस द्वार की ओर बढ़े; उसके समीप पहुँचकर देखा कि एक भयंकर काला, पतला और लम्बा साँप फुफकार मार रहा है। हम लोगों को देखकर वह बहुत ही तेजी से फन फैलाकर डसने को लपका। ब्रह्मचारीजी के पास आकर वह फन उठाये हुए ठहर गया; तुरन्त ही फिर फन को झुकाकर सों-सों, शब्द करता हुआ वह आपकी ओर दौड़ा। किन्तु आपने उसकी परवाह ही नहीं की। पीछे मेरी ओर देखकर, 'डरना मत, डरना मत' कहकर आप बराबर मुझे ढाढ़स बँधाने लगे। साँप भी आपके पास फन को समेटकर ताराकान्त दादा की ओर चला। उनके हाथ में मोटी सी लाठी थी। वे डर के मारे घबराकर साँप को लाठी से मारने लगे। वह उनके दोनों उनके पैरों में लिपट गया। वे जितना उसे मारने लगे, उतना ही वह उनको कसकर जकड़ने लगा। तब आप चिल्लाकर कहने लगे-'ठहरो, ठहरो, मारो मत, मारो मत। मारकर उसे छुड़ा नहीं पाओगे। उसे मारोगे नहीं, तो वह कभी नहीं काटेगा।' आपकी बात पर भरोसा करके ताराकान्त निश्चिन्त नहीं हो सके। डर और घबराहट के मारे वे बराबर साँप को लाठी मारने लगे। साँप भी उनको मजबूती से जकड़ता गया। इसी समय मैंने देखा कि नंगे बदन ऊँचे-पूरे, गोरे रंग के जटावाले ब्रह्मचारीजी ने बहुत ही तंग

रास्ते से होकर, सफेद (श्वेत उज्ज्वल) ज्योतिर्मय राज्य में प्रवेश किया। आप उस द्वार के बीच में खड़े होकर मेरी प्रतीक्षा करने लगे, आपका आधा शरीर बाड़ी के उस पार ज्योतिर्मय राज्य में था और आधा इस पार था। हाथ हिलाकर अँगुली से इशारा करके आपने मुझसे कहा-बाजू से मेरी तरफ कूदकर आओ, साँप कुछ न कर सकेगा। इशारा पाते ही मैं कूदकर, साँप को लाँघकर, ज्योंही आपके पास पहुँचा त्योंही उसी झटके से मेरी नींद टूट गई।

भोर को यह सपना देखने के बाद फिर मुझे नींद नहीं आई। स्वप्न देखने से पहले मैंने कभी ब्रह्मचारीजी को नहीं देखा था। सपने में उनकी जैसी सूरत-शक्ल देखी थी, वैसे ही रूप और आकार उनका मैंने बारोदी में जाकर देखा।

स्वप्न का ब्यौरा सुनकर गोस्वामीजी ने कहा-**'इस स्वप्न को लिख रखना। स्वप्न कई बार काम आता है। जाओ, अब लिखो-पढ़ो; फिर हम तो हैं, जो कुछ करना होगा, सो हम बता देंगे।'**

मुझे जो कई प्रकार के दर्शन हुए थे, उनके सम्बन्ध में पूछने पर गोस्वामीजी ने कहा-'ये बातें लोगों को नहीं बताना चाहिए। हाँ, हम लोगों का ही साधन करने वाला, श्रद्धावान् व्यक्ति मिले तो उसे बता सकते हो।'

७ भाद्र १२९५ बं. सन् २२ अगस्त, बुधवार।

महापुरुष को पहचानने के उपाय।

सन्ध्या से कुछ पहले गोस्वामीजी पास पहुँचकर मैंने देखा कि कमरे में ढेर से आदमी भरे हुए हैं। अनेक विषयों पर बातचीत हो रही है। अकस्मात् एक ऊँचे से, गोरे रंग के मुसलमान फकीर, गोस्वामीजी के उस आसन-घर में निःसंकोच आकर प्रसन्नता-

पूर्वक गोस्वामीजी के सामने जा बैठे; अनेक प्रकार से सांकेतिक फकीरी भाषा में वे गोस्वामीजी से बातें करने लगे। थोड़ी देर बाद गौरांग, नित्यानन्द और राधाकृष्ण-विषयक कुछ गीत गाकर, उन्होंने कुछ देर तक गुरु का माहात्म्य बतलाया, फिर गोस्वामीजी को प्रणाम करके वे चले गये।

घर से उनके बाहर जाते ही गोस्वामीजी ने हम लोगों से कहा- **देखो तो फकीर साहब किस तरफ जाते हैं।** हम लोगों ने तुरन्त ही बाहर रास्ते के दोनों ओर खोजा, किन्तु कहीं फकीर साहब दिखाई नहीं दिए।

गोस्वामीजी ने कहा-**'तुम लोग व्यक्ति की ओर ध्यान नहीं देते, मनुष्य को पहचानते ही नहीं। ये एक महापुरुष पधारे थे। न जाने कितने मुसलमान रास्ते से निकलते हैं। यहाँ पर इस ढंग से उनमें से क्या कोई आता है? राधाकृष्ण, गौर-निताई और देवी-देवता के विषय में मुसलमानो से बातें की जायँ तो अँगुलियों से कान बन्द कर लेंगे। इन्होंने किस तरह सांप्रदायिक मतभेदों से दूर सभी के उपास्य देवता की भक्ति की! गुरु पर निष्ठा उत्पन्न करने के लिए इस तरह का उपदेश और कौन देगा कि 'गुरु ही सत्य है?' नहीं कहा जा सकता कि कितने महात्मा इस प्रकार का वेष बदल कर इन स्थानों में आते हैं।' अवसर देखकर, मनुष्य को परखकर, ये लोग उपदेश देकर अदृश्य हो जाते हैं। व्यक्ति को पहचानना चाहिए। और व्यक्ति की परख तब होती है, जब अपनी अपेक्षा सभी को बड़ा समझो; अपने को अधम और दूसरों को अधम-उधारण सोचना चाहिए। रास्ते के कुली-मजदूर को भी महात्मा समझकर नमस्कार करना चाहिए। ऐसा करने**

पर तब कहीं जाकर सच्चे महापुरुष से भेंट होती है। न तो यह अनुमान की बात है, न कल्पना है; सच्ची घटना है। कल्पना करने से काम नहीं होने का, सचमुच में अपने आपको ऐसा ही समझना होगा। तभी महापुरुषों की कृपा होती है, जन्म सफल होता है।

११ भाद्र १२९५, रविवार २६ अगस्त, १८८८

धर्म का महास्रोत-फिर वही सत्ययुग।

इकरामपुर के कदमतला में गोस्वामीजी के घर गया। रात को बैठक में सम्मिलित होने के लिए मैं समय की प्रतीक्षा करने लगा। ठीक समय पर सब लोग आ गये और इकट्ठे होकर साधन करने लगे। गोस्वामीजी कितने ही देवी-देवताओं की स्तुति करने लगे। बम् महादेव! बम बम भोला! कहते-कहे उनका गला भर आया। धीरे-धीरे अचेत हो जाने पर, उनकी समाधि लग गई जो देर तक बनी रही। फिर सिर से पैर तक सारा शरीर थर-थर काँपने लगा, थोड़ी देर तक श्वास-प्रश्वास जल्दी-जल्दी चलता रहा। अन्त में वे बिल्कुल स्थिर हो गये। वे गद्गद् स्वर में कहने लगे-

एक महालीला होगी, एक अद्भुत घटना होगी। अधिक देर नहीं है। महात्मा लोग निकल पड़े हैं। गया, काशी, वृन्दावन, अयोध्या आदि स्थानों में एक बड़ी लीला होगी। फिर वही सत्यकाल, प्रायः सत्यकाल ही होगा। प्रत्येक स्थान में ही एक-एक महात्मा हैं। सभी के हाथों में पंखा है। अभी से उन्होंने हवा करना शुरू कर दिया है। धीरे-धीरे जोरों से हवा करेंगे। काशी की हवा अयोध्या और ढाका की हवा कलकत्ते तक पहुँचेगी।

इसी तरह एक स्थान की हवा दूसरे स्थान की हवा में जा

मिलेगी। हवा-हवा के मिल जाने से उसका वेग और भी बढ़ेगा। वह धीरे-धीरे आँधी का आकार धारण करेगी और फिर बहुत बड़े तूफान को उत्पन्न करेगी। वह जाकर समुद्र में पहुँचेगा। समुद्र के पानी में हवा के कारण बड़ी-बड़ी तरंगे उठेंगी। वह गंगा-यमुना सहित सारे देश को बहाकर प्रवाहित करेगा। प्रायः सभी भारतवासियों को प्रवाहित करेगा। न केवल भारतवासी ही, बल्कि बहुत से अंग्रेज भी प्रवाहित होंगे। यह स्रोत, महास्रोत सभी को बहा देगा। कलकत्ता, ढाका तथा और भी दो-तीन स्थानों में अभी से धीरे-धीरे हवा बहने लगी है। महास्रोत है! किसकी शक्ति है कि इस स्रोत में बाधा डाले? देशवालों का अविश्वास और सन्देह बढ़ता हुआ दिखाई पड़ेगा। इससे कोई हानि नहीं होगी, लाभ भी न होगा। जो लोग इस साधन में हैं, सम्पूर्ण निरापद हैं। विश्वास कीजिए चाहे न कीजिए, यह कल्पना नहीं है, अवश्य ही प्रत्यक्ष देख पाएंगे। चाहे इस लोक में रहिए, चाहे परलोक में कोई भी वंचित नहीं होगा। रामकृष्ण परमहंस तथा और भी कुछ महात्मा लोग परलोक से ही सहायता पहुँचावेगे। तनिक भी डर नहीं है | संपूर्ण निर्भय रहिए, सचमुच निर्भय। जो लोग यह साधन प्राप्त कर चुके हैं, वे धन्य हो जाएंगे। नाम में रुचि और गुरु में भक्ति होने से ही सब कुछ हो गया। जिनको यह साधन मिल चुका है, उनको नाम में रुचि और गुरु में भक्ति होगी ही। विश्वास कीजिए, वह अवश्य होगी। इधर ब्रह्मचारीजी लीला कर रहे हैं। उस महाप्रलय का दिन आ गया, डर नहीं है, डर नहीं है।

मैंने रात को सोने से पहले गोस्वामीजी से प्रार्थना की कि रात

को ३ बजे साधन करने के लिए जगा दीजिएगा। ठीक समय पर स्वप्न देखकर जाग पड़ा। स्वप्न यह है ‘एक भयंकर डाकू डंडा, हाथ में लेकर मुझे मारने को दौड़ा आ रहा है। कुछ उपाय न देखकर मैं बहुत ही घबरा गया। इसी समय अकस्मात् गोस्वामीजी ने आकर डाकू को भगा दिया।’ डर और त्रास के मारे मेरी नींद खुल गई। इस साधारण घटना से भी गोस्वामीजी के ऊपर मुझे थोड़ा सा विश्वास हो गया।

भाद्र १२९५ बं. सन् मंगलवार, २८ अगस्त १८८८

गेंडारिया के आश्रम में प्रवेश-गोस्वामीजी के हाथ से प्रथम ‘हरि लूट'।

आज गोस्वामीजी गेंडारिया के नये घर में पधारे हैं। मैंने आश्रम में जाकर देखा कि अच्छा उत्सव हो रहा है। मृदंग, मँजीरे और संकीर्तन की ध्वनि से वह स्थान महाआनन्द का धाम बन गया है। कोई ११ बजे तक हरिसंकीर्तन, गौरसंकीर्तन और नाम-गान हुआ। बहुत से ब्राह्म भी आये थे। किसी-किसी को गौरसंकीर्तन सुनना असह्य हो गया, अतएव वे उठकर चले गये, किन्तु कोई-कोई प्रसिद्ध ब्राह्म अन्त तक उत्सव में बैठे रहे। एक टोकरी में थोड़े-से बताशे लाकर गोस्वामीजी ने उसे अपने सिर पर रख लिया, फिर ‘हरि बोल’ ‘हरि बोल’ कहकर उन्हें चारों ओर बिखेर दिया। खुल्लम-खुल्ला ‘हरि की लूट’ करते गोस्वामीजी को आज ही मैंने पहली बार देखा।

फिर गोस्वामीजी ने पूर्व कमरे में, दक्षिण की ओर को, अपना आसन जमाया। देर तक इस कमरे में भी कीर्तन होता रहा। सुना कि कल गृहसंचार का उत्सव होगा। शाम को मैं अपने घर लौट

आया।

१४ भाद्र १२९५ जन्माष्टमी, बुधवार

गेंडारिया आश्रम-संचार उत्सव।

मैं खूब सवेरे नहा-धोकर गेंडारिया आश्रम को पहुँचा। देखा कि हिन्दू, ब्राह्म, वैष्णव आदि बहुत से सम्प्रदायों के लोगों के एकत्र होने से आश्रम भर गया है। संकीर्तन-महोत्सव में आज बहुत लोग मस्त हो गये। बहुत देर तक उत्सव होता रहा। भीतर और बाहर ३-४ मण्डलियों ने संकीर्तन किया। मुसलमान फकीरों और वैष्णवों के शामिल हो जाने से, उत्सव का आनन्द और बढ़ गया। १२ बजे तक खूब भाव की उमंग बनी रही। फिर गोस्वामीजी अपने हाथ से 'हरि की लूट' बाँटकर, कमरे में अपने आसन पर जा बैठे। इस समय बहुत लोग अपने-अपने घर को चले गये। जो लोग नहीं गये उन्होंने वहीं भोजन किया। मैं गोस्वामीजी के पास बैठा रहा। उन्होंने मुझसे पूछा तुम नहीं खाओगे? मैंने कहा 'प्रसाद' लूँगा। कोई २ बजे गोस्वामीजी मुझे साथ लेकर भंडार-गृह गये। वहाँ हम १०-१२ गुरुभाई गोस्वामीजी के दोनों ओर बैठ गये। गोस्वामीजी ने हम लोगों को प्रसाद दिया। मैंने आज पहली बार गोस्वामीजी का प्रसाद पाया। एक गुरुभाई देर हो जाने से, ठीक समय पर, हम लोगों का साथ नहीं दे सके; जब पहुँचे तब गोस्वामीजी ने जिस बर्तन में भोजन किया था, उसमें से बिना किसी झिझक के स्वयं प्रसाद उठाकर खाने लगे। मैंने गुरु के प्रति ऐसा निःसंकोच भाव न तो कहीं देखा है और न सुना है।

२१ भाद्र १२९५

दर्शन आदि के संबंध में उपदेश। विचित्र रीति से चरणामृत

मिलना।

शाम को कुछ गुरुभाईयों के साथ मैं गेंडारिया-आश्रम पहुँचा। गोस्वामीजी के पास बैठा हुआ था कि इसी समय हरिचरण बाबू, प्रसन्न बाबू और श्यामाचरण बख्शी आदि गुरुभाई आये। गोस्वामीजी देर तक समाधिमग्न थे। इस समय अर्धचेतन अवस्था में अस्पष्ट-स्वर में धीरे-धीरे कहने लगे-**'साधन के समय आप लोग जो कुछ देखें, उसे कल्पना न समझ लें। यह साधन ऐसी ही वस्तु है कि सब अवश्य दिखाई पड़ेगा। पहली अवस्था में ये सब दर्शन चंचल और क्षणिक होते हैं, चित्त की निर्मलता और स्थिरता के साथ-साथ ये सब धीरे-धीरे स्पष्ट और दीर्घकाल तक स्थायी होते देखे जाते हैं। पहले एक तस्वीर की तरह, पट की तरह, पल भर दिखाई दिया करता है, फिर धीरे-धीरे वे साफ मूर्ति के रूप में सजीव दर्शन होते हैं; बातचीत भी सुनी जा सकती है। उनके साथ बातें करके उत्तर भी मिलता है। न केवल सजीव दर्शन ही होते हैं, बल्कि उनका हाथ-पैर हिलाना और संकेत आदि भी देख सकते हैं। इस साधन से सिर्फ हमारे ही देश के देवी-देवताओं के दर्शन नहीं होते, बल्कि अब तक किसी भी देश में मनुष्यों ने भगवान् की जिस-जिस रूप में पूजा की है, फिर चाहे आपको उसका पता हो चाहे न हो-साधन के प्रभाव से धीरे धीरे वे सभी रूप सजीव दिखाई पड़ेंगे। पहले यूनान, रोम और अन्यान्य देशों की, यहाँ तक कि जंगली और पहाड़ी असभ्य जातियों ने भी अब तक भगवान् की पूजा, जिसने जिस रूप में की है और जो इस समय कर रहे हैं, वे सब रूप प्रकाशित हो जाएंगे। मैं ये कल्पना की बातें नहीं कर रहा हूँ, ये**

सब सच है, प्रत्यक्ष देखी हुई हैं। पहले से ही यदि कल्पना समझकर इन्हें तुच्छ समझा जाय, बिल्कुल अवहेलना किया जाय तो सहज मार्ग खो देना पड़ता है। कल्पना समझिए या और कुछ समझिए, यह सब सामने आवेगा। हाँ, यह सब हर-हमेशा नहीं दिखाई पड़ता। इसका कारण यह है कि हमारा चित्त हर समय एक अवस्था में नहीं रहता; चित्त के स्थिर होते ही दर्शन स्पष्ट होते हैं। चित्त स्थिर रखने के लिए श्वास-प्रश्वास के साथ नाम करना चाहिए, पवित्र आचार से रहना चाहिए। नाम में रूचि होने और चित्त निर्मल होने पर एक-एक करके वासना और कामना का त्याग होता जाता है। जिस परिणाम में वासना और कामना का त्याग होगा, उसी परिणाम में दर्शन आदि प्रत्यक्ष होते जायेंगे। उस दर्शन आदि की अवस्था से ही योग का आरम्भ होता है। योग का एक बार आरम्भ हो जाने पर फिर बहुत समय नहीं लगता। धीरे-धीरे सब अद्भुत विषय प्रत्यक्ष होने लगते हैं। जिनकी कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती, उनको प्रत्यक्ष देखकर मनुष्य धन्य हो जाता है।'

अधिक रात बीतने पर आनुष्ठानिक ब्राह्म गुरुभाई श्रीश्यामाचरण बख्शी के साथ घर लौटा। उन्होंने रास्ते में गोस्वामीजी की अलौकिक शक्ति और असाधारण दया की बहुत सी बातें बताते हुए अकस्मात् कहा-'देखिए, मैं तो ब्राह्मसमाजी हूँ। गोस्वामीजी का चरणामृत लेने की मुझे हिम्मत नहीं होती। इसलिए प्रतिदिन रात को सोते समय सिरहाने एक खाली कटोरी रखकर, मन ही मन प्रार्थना करता हूँ कि वे उसमें चरणामृत रख जावें। उनकी दया का क्या कहना है! भोर को उठने पर उस कटोरी में

चरणामृत पाता हूँ। यह बात प्रतिदिन होती है। मेरे सिवा इस घटना के बारे में और किसी को मालूम नहीं।' बक्शीजी सदा से निष्कपट, सत्यवादी और कट्टर ब्राह्मसमाजी है। सोचा-यह क्या है? इनकी भी यह हालत! जो कभी हो नहीं सकता, उसकी भी क्या परख करूँ? बक्शीजी को मुद्दत से जानता हूँ, उन पर मेरी श्रद्धा कम नहीं हुई। सोचा कि मुनियों को भी मति भ्रम हो जाता है। सम्भव है, इसके भीतर और कुछ रहस्य हो।

२४ भाद्र १२९५ शनिवार

प्रारब्ध क्षय करने के उपायों का निर्देशन।

मैं तीसरे पहर गोस्वामीजी के पास गया। एकान्त पाकर मैंने पूछा-'स्वप्न देखा था कि आपने मुझसे एक नाम का जप करने को कहा है।'

गोस्वामीजी-**हाँ, हाँ उस नाम का भी जप किया करो, लाभ होगा।**

आज शनिवार था, इसलिए बहुत लोग आये। प्रारब्ध और पुरुषार्थ के सम्बन्ध में बहुत बातें। हुई गोस्वामीजी ने कहा-**संसार में सभी प्रारब्ध के अधीन हैं। कोई कितनी ही चेष्टा क्यों न करे, प्रारब्ध की गति को कोई रोक न सकेगा। पुरुषार्थ के द्वारा प्रारब्ध पर आधिपत्य जमाना असम्भव है। पुरुषाकार से किसी को सामयिक लाभ हो सकता है सही, किन्तु वह हमेशा के लिए नहीं हो सकता। ब्रह्मचारीजी पुरुषार्थ के प्रभाव से, प्रारब्ध कर्म के परे जाकर साधन की चौथी अवस्था को भी पार कर चुके थे, अन्त में निर्विकल्प समाधि-स्थान में पहुँचकर, फिर वापस लौट आये। फिर वे बहुत समय तक प्रारब्ध हेतु मुसलमानों के साथ**

नाश्ता' खाकर, खेत की निगरानी करके, रात में सूअर भगाते रहे! बिना अवस्था में पड़े ये बातें समझ में नहीं आती। प्रारब्ध के हाथ से छुटकारा पाने के दो उपाय शास्त्र ने बतलाये हैं- विचार और अजपा साधन। जब जो कुछ करो विष्णु भगवान् के प्रीत्यर्थ करो। उठना बैठना, नहाना-धोना आदि सभी काम, कामना त्यागकर अथवा विष्णु भगवान् के प्रीत्यर्थ किये जायँ तो फिर जल्दी प्रारब्ध कर्म समाप्त हो जाते हैं और श्वास-प्रश्वास के साथ नाम करते रहने से यह काम और भी आसानी से हो जाता है।

गोस्वामीजी की बातों का अर्थ मेरी समझ में न आया। प्रयोजन होने से, लाचार होकर, प्रतिदिन जितना काम-काज करता हूँ, उसमें निष्काम भाव किस प्रकार लाऊँ! और यही किस तरह समझें कि मलमूत्र त्याग करना, नहाना, भोजन करना आदि जो बाहरी काम करता हूँ, उन्हें साधन-भजन की तरह भगवत्प्रीत्यर्थ कर रहा हूँ। श्वास-प्रश्वास के साथ तो दस मिनिट तक भी नाम नहीं कर सकता, घबरा जाता हैं। अविच्छिन्न श्वास-प्रश्वास के साथ नाम करूँ तो करूँ कैसे? अब तो जान पड़ता है कि यह साधन लेकर ही मैंने भूल की है।

नगेन्द्र बाबू का असाम्प्रदायिक उपदेश।

गोस्वामीजी आज शिष्यों समेत ब्राह्मसमाज-मंदिर में गये। गोस्वामीजी को देखकर ब्राह्मगण बहुत ही आनन्दित हुए। बड़े उत्साह के साथ संकीर्तन आरंभ हुआ। भाव की तरंगों से धूम मच गई। गोस्वामीजी के कुछ शिष्य बहुत ही मग्न हो गये। उनकी दशा देखकर सभी लोग आश्चर्य के साथ देखते रह गये। भाव में उन्मत्त

होकर श्रीधर 'वह देख, वह देख' कहकर, ऊपर की ओर हाथ उठाये हुए, कूदने लगे। सभी लोग बड़े आग्रह से श्रीधर को देखने लगे। इसी समय ब्राह्मसमाजी श्रीचण्डीचरण कुशारी २-४ छलाँगों में श्रीधर के सामने आये और चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे कि 'वह देख, वह देख क्या?' कहो ब्रह्म जगन्मय, ब्रह्म जगन्मय है।

प्रचारक श्रीनगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्यायजी ने वेदी का कार्य करके उपदेश दिया। उन्होंने तेजःपूर्ण वाक्यों में मर्मस्पर्शी भाषा में बड़े जोरों से कहा-'उपासना चाहे साकार की करो चाहे निराकार की, यही देखना कि अपने इष्टदेव को सच्ची व्याकुलता के साथ पुकार रहे हो या नहीं'-इत्यादि। आज इस ढंग का उपदेश सुनकर ब्राह्मसमाजी लोग बहुत ही चिढ़ गये। बहुतों ने कहा-आज समाज में गोस्वामीजी उपस्थित हैं, तभी नगेन्द्र बाबू के मुँह से इस ढंग के उपदेश निकल रहे हैं।

सत्यनिष्ठा का उपदेश।

तीन दिन से आज लगातार ऐसा लगता था कि बड़े दादा की छोटी कन्या प्रियबाला पानी में डूबकर मर गई है। समय-समय पर उसकी लाश, कल्पना द्वारा, अपने-आप मन में आ जाती थी। आज खबर मिली कि सममुच यह दुर्घटना हुई है। मन में बड़ा कष्ट हुआ। मेरी दूसरी भतीजी सरयू निरी बच्ची है। घटना से दो दिन पहले वैसा ही स्वप्न देखकर वह चिल्ला उठी थी। ऐसा क्यों होता है? इससे मालूम होता है कि प्रारब्ध नामक कुछ हो भी सकता है।

बड़ी मुश्किल में पड़ा। भीतर अदम्य 'काम' की उत्तेजना है और बाहर एक के बाद एक भीषण प्रलोभन है। ऐसी हालत में क्या करूँ? तय किया कि व्यभिचार द्वारा काम के वेग को शान्त करूँगा। अब

व्यवस्था लेने के लिए गोस्वामीजी के पास पहुँचा। मुझे बैठे थोड़ी ही देर हुई थी कि वे बिना कुछ पूछे अपने आप कहने लगे-**उपदेश सुनने से क्या होगा? सिर्फ सुनकर चल देने से कुछ नहीं होता। उसे जीवन में परिणत करना चाहिए। इच्छा करने से ही सभी उपदेशों के अनुसार नहीं चला जा सकता, यह सच है। अच्छा बनने की इच्छा बहुतों को है, उसके लिए वे कोशिश भी करते हैं, किन्तु उनको सफलता नहीं मिलती। यह बिलकुल सच है कि सभी रिपुओं पर सबका एक-सा आधिपत्य नहीं है। किन्तु लोग चाहें तो सत्य अवश्य कह सकते हैं; लेकिन ऐसा भी कौन कहता है? सत्य वचन, सत्य आचरण और सत्य चिन्तन की सबको आवश्यकता है। इन तीनों का अभ्यास हो जाय तो फिर अन्य बहुत से उत्पात नहीं रहते। धर्मार्थियों को पहले इन्हीं तीनों का अभ्यास कर लेना चाहिए। फिर सब सहज हो जाता है। उल्लिखित तीनों बातों का अभ्यास सहज ही हो जाता है। इन तीनों का अभ्यास पहले कर लो तो सब उत्पातों की शान्ति हो जाएगी।**

यह सब सुनकर मैं मानसिक दुःख से घर लौट आया। सोचा था कि गोस्वामीजी योगाचार्य हैं, इन उत्पातों को शान्त कर देने की कितनी ही प्रणालियाँ जानते हैं, एक-आध नुसखा बतला देंगे। किन्तु उन्होंने तो उसी ब्राह्मसमाज की पुरानी नीतिगत बातें दुहरा दीं।

१० आश्विन मंगलवार

मन्त्रशक्ति का प्रमाण।

हम लोगों के मास्टर श्रीशारदाचरण पाल का इकलौता लड़का

आज मृत्यशैय्या पर पड़ा हुआ है। ८-१० मित्रों के साथ मैं उसे देखने गया। वहाँ जाकर बैठते ही एक साधु वेषधारी ब्राह्मण ने अकस्मात् उस स्थान में आकर कहा-'ऊपरी उपद्रव से आपका एक लड़का मर रहा है। आप चाहें तो मैं एक कवच दे सकता हूँ, जिससे लड़का ठीक हो जाएगा। दैवबल से मैं इस कवच को बना दूँगा। आपको कुछ ज्यादा खर्च भी न करना पड़ेगा; एक यज्ञ करने के लिए थोड़ा सा खर्चा होगा।' मास्टर साहब हैं बहुत ही कट्टर ब्राह्म। उन्होंने ठहाका मारकर हँसने के बाद कहा-'कवच वगैरह की जरूरत नहीं है। दैव आदि को मैं नहीं मानता। अरे भाई, यज्ञ क्या है? हाँ, कुछ दवा मालूम हो तो दो। और किसी बात पर मुझे विश्वास नहीं है। हम सभी लोग ब्राह्मभावापन्न हैं, सोचा-'एक खासी करामात दिखानेवाला आ गया है। मैंने पूछा-'महाराज, दैवबल से हम लोगों को कुछ करामात दिखा सकते हो?' साधु-वेषधारी ने कहा-हाँ, हाँ! बच्चे का भारी जीवन संकट देखकर, मैंने कवच देना चाहा था। उसे लेना न लेना आपकी मर्जी। इसमें मेरा कुछ स्वार्थ नहीं है।'

कुछ करामात दिखलाने के लिये मैं साधु के पीछे पड़ गया। कुछ लोग मजाक भी करने लगे। अन्त में ब्राह्मण ने कहा-अच्छा बतलाइए, आप लोग क्या चाहते हैं? हम सभी ने कहा-'दैवबल से खाने के लिए कुछ मिठाई मँगवा दीजिए।' ब्राह्मण ने कहा-'लोटे भर शुद्ध जल दीजिए, और कमरे को साफ करा दीजिए। मन्त्र पढ़कर मैं जब 'आओ आओ' कहूँगा तब उस जल को कमरे में छिड़क दीजिएगा। हम लोगों ने तुरन्त ही कमरे को झाड़-बुहारकर साफ कर दिया; ब्राह्मण को अपने ही यहाँ की धोती पहना दी और कमरे के

बीच में जल से भरा हुआ लोटा रखकर १०-१२ लड़के उस ब्राह्मण के चारों ओर खड़े होकर बड़ी सावधानी से उसके हाथ-मुँह हिलाने-डुलाने के ऊपर कड़ी नजर रखने लगे। कोई ३ या ३॥ बजे का समय होगा। ब्राह्मण देवता पहले तो जनेऊ पकड़कर एकाग्र मन से जप करने लगे; थोड़ी ही देर में वे एकदम खड़े होकर थर-थर काँपने लगे। अब उन्होंने ऊपर की ओर दोनों हाथ उठाकर कई बार इस तरह 'आओ आओ' कहा, मानो किसी को बुला रहा हो। हम लोगों ने तुरन्त ही उस लोटे का पानी कमरे में छिड़क दिया। अब ब्राह्मण ने आकाश की ओर से बहुत बड़ा-कोई दो सेर का-एक मिश्रीका डल्ला झेलकर, हम लोगों के पास फेंक दिया। इतनी चौकस निगरानी करते रहने पर भी हम लोग कुछ भी मालूम न कर सके कि इतना बड़ा मिश्रीका डल्ला कहाँ से, किस तरह आ गया। किन्तु इतने पर भी मास्टर साहब को विश्वास न हुआ। उन्होंने साफ-साफ कह दिया-'यज्ञ-वज्ञ तो कुसंस्कार है! मुझे कवच की जरूरत नहीं।' साधुजी वहाँ से चले गये। इसके घण्टे भर बाद ही वह लड़का मर गया। मास्टर साहब का विवेक बल की अद्भुत है। ऐसे संकट के समय भी उन्होंने अपनी धारणा और मत के विरुद्ध कुसंस्कार को सहारा नहीं दिया। हम लोगों के लिये यह अच्छा उदाहरण है! मैंने घर आकर थोड़ी-सी मिश्री शीशी में भरकर रख ली है। देखूँगा, इसमें कुछ परिवर्तन होता है या नहीं।

१३आश्विन, १२९५ शुक्रवार

भोजन के संबंध में उपदेश-तत्संबंधी बातें।

मैं दोपहर को गोस्वामीजी के पास गया। एकान्त में अवसर पाकर मैंने कहा-'साधन के समय जो-जो दर्शन होते थे, उनमें से

अब कुछ भी नहीं होता।

गोस्वामीजी-**क्यों नहीं होते? क्या किसी प्रकार का अनियम हो गया है?**

उनकी यह बात सुनते ही याद आ गया-'जिस अनियम और उपद्रव की बदौलत दर्शन बन्द हो गये हैं, उसे मैं बखूबी जानता हूँ। उत्तेजना ही तो उसकी जड़ है। आखिर यह उत्तेजना क्यों होती? उसका भेद जानने के लिए डरते-डरते कहा-'अनियम तो बहुत-से होते हैं। समझ में नहीं आता कि दर्शन होना किस अनियम से बन्द हो गया है।'

गोस्वामीजी-**बहुत-से अनियमों से ऐसा हो सकता है। खान-पान में अनियम होने से भी दर्शन होना रूक जाता है।**

मैं-मछली, माँस तो मैं कभी खाता ही नहीं। उच्छिष्ट खाने की भी सम्भावना नहीं है।

गोस्वामीजी-**ऐसा कह देने से क्या होगा? जिस पर किसी की आकांक्षा हो, किसी को लोभ है, ऐसी चीज उसे दिये बिना खा लेने से अनिष्ट होता है। किसी तमोगुणी व्यक्ति के साथ एक आसन पर बैठकर भोजन करने से भी अनिष्ट होता है। यहाँ तक कि एक जगह बैठकर खाने से भी हानि होती है। भोजन की वस्तु पर तमोगुणी की दृष्टि पड़ जाय तो इससे भी नुकसान होता है। इन मामलों में जब तुम्हारी दृष्टि खुल जायगी तब साफ-साफ देखोगे कि वैसे लोगों की नजर पड़ते ही भोजन की वस्तु में कीटाणु पैदा हो जाते हैं। पहले हम स्वयं इन बातों को नहीं समझते थे और न ही मानते थे। किन्तु प्रत्यक्ष देख लेने पर अब अविश्वास किस तरह करें? भोजन की वस्तु को यदि लोग**

छू लें अथवा देख लें तो इससे बड़ी हानि होती है। अब तक कई ब्राह्मण दरवाजा बन्द करके भोजन करते हैं। इसलिए देवता को भोग भी द्वार बन्द करके ही लगाया जाता है। भोजन की सामग्री पर तमोगुणी व्यक्ति की नजर पड़ जाय तो वह वस्तु भोग के लायक नहीं रहती, खराब हो जाती है। इसलिए दरवाजा बन्द करके ही नैवेद्य बनाने की रीति है। भाव-दूषित, स्पर्श-दूर्षित और दृष्टि-दूषित वस्तु खाने से नुकसान होता है। उसका भोग देवता को लगाया जाय तो अपराध होता है। भोजन के दोष से तरह-तरह के उपद्रव भी उत्पन्न हो जाते हैं, उससे सभी रिपु उत्तेजित हो जाते हैं। इसलिए इन विषयों में बहुत सतर्कता बरतनी पड़ती है।

मैं-वस्तु की शुद्धता-अशुद्धता के स्पष्टतः स्वयं न जानकर यदि उसका भोग इष्टदेवता को निवेदन किया जाय तो क्या अपराध नहीं लगता? और इससे इष्टदेवता की कुछ हानि तो न होगी?

गोस्वामीजी-**नहीं, कुछ अपराध नहीं लगता। क्योंकि वही तो रीति है। हाँ वैसा न करने से बचने का कुछ उपाय नहीं है। इष्टदेवता की कुछ हानि नहीं होती। रीति के अनुसार नैवेद्य लगाने से इष्टदेव समझ लेते हैं, सावधान भी हो जाते हैं। उससे किसी का अनिष्ट नहीं होता।**

मैं-इष्टदेवता की कृपा से भोजन की सामग्री शोधित हो जाने पर भी तो दुबारा दूषित हो सकती है। इसलिए मैं प्रत्येक ग्रास का निवेदन करता हूँ। उच्छिष्ट वस्तु का बारंबार निवेदन करने से इष्टदेवता का कुछ अनिष्ट तो नहीं होगा?

गोस्वामीजी-**नहीं कुछ नहीं होता। ऐसा ही करना चाहिए।**

इसीलिए तो भोजन करते समय बहुत-से ब्राह्मण बातचीत नहीं करते, मौन रहते हैं। देश में बहुत से ब्राह्मणों के बीच इस समय भी यह नियम प्रचलित है। पहले ऋषियों ने इन बातों को खूब आवश्यक समझ लिया था। इसीसे हमारे भले के लिए उन्होंने इनको शास्त्रों आदि में लिखा है। बहुत तपस्या करके जिन महासत्य, भ्रम-रहित विषयों का उन्होंने आविष्कार किया था, उसके तत्त्व को बिना समझे-बूझे एकदम कुसंस्कार कहकर उड़ा देना ठीक नहीं है। ऋषियों ने सत्य समझकर जिसको प्रत्यक्ष कर लिया था, उसी को हमारे कल्याण के लिये बता रखा है। कुछ झूठी बातों को लिख जाने में उनका तो कोई स्वार्थ नहीं था। हम लोग वास्तविक धर्म प्राप्त करें, इसीलिए उन्होंने शास्त्रों की रचना की है। जो सत्य समझो, अभी वही किये जाओ। सभी नियमों का पालन तुम इस समय न कर सकोगे; इसलिए जितना बने उतना करते जाओ, इससे बहुत लाभ पाओगे। सभी नियमों का पालन करना सहज होता, तो सभी लोग बड़ी आसानी से सिद्धि प्राप्त कर लेते। भोजन सबसे बढ़कर भजन है। रीति के अनुसार भोजन करने पर सब कुछ सहज हो जाता है और कुछ नहीं करना पड़ता। ऐसा कोई कुछ करता नहीं, कोई जानता तक नहीं। भोजन के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के अनियम होते रहते हैं। इससे बड़ा अनिष्ट होता है। इस समय जो बन पड़े वही करते जाओ। धीरे-धीरे सब बातें मालूम हो जाएगी, करने भी लगोगे।

२४ आश्विन १२९५ मंगलवार

चरणामृत मिलना और उसके विषय में उपदेश।

मेरी बीमारी बहुत बढ़ गई है; स्कूल में भी छुट्टी हो गई। इससे घर जाने को तैयार हो गया। घर के नाम से मेरा हृदय काँप उठा। गोस्वामीजी से दूर रहने पर, मुश्किल पड़ने पर, मेरा बचाव किस प्रकार होगा? यह सोचकर मैं चिंतित हो गया। श्यामाचरण बख्शीजी ने कहा था-'गुरु का चरणामृत लेने से शारीरिक और मानसिक विकार शान्त हो जाते हैं। मैं इसका कुछ अर्थ नहीं समझता, फिर भी बख्शीजी सच्चे इंसान हैं, मुझे उन पर पक्का विश्वास है। इसी से, भविष्य में भीषण उत्पातों से बचने के लिये, चरणामृत प्राप्त करके पास रखने की मुझे प्रवृत्ति हुई। गोस्वामीजी के पास गया तो देखा कि अच्छी भीड़ है, मैंने मन ही मन गोस्वामीजी से प्रार्थना की, कि मुझे एकान्त में चरणामृत देने की कृपा कीजिए। वे थोड़ी देर में लघुशंका के लिए कमरे से बाहर गये। यह मौका पाकर मैं भी बरामदे में जा खड़ा हुआ। गोस्वामीजी ज्योंही समीप आये त्योंही प्रणाम करके मैंने उनका चरणामृत ले लिया। प्रार्थना की, 'गुरु में-सत्य वस्तु में मेरी निष्ठा हो।' और कुछ प्रार्थना न सूझी। चरणामृत देकर गोस्वामीजी ने कहा-**जितना ही गोपनीय रूप से इसका उपयोग करोगे, उतना ही लाभ होगा। इसको किसी के सामने मत लेना, दूसरे किसी को जानने मत देना।**

अग्रहायन द्वितीय सप्ताह १२९५ बं. सन्

बारोदी के ब्रह्मचारीजी का सत्संग, महापुरुष का विचित्र उपदेश और असाधारण आचरण।

घर आकर कुछ दिन बड़े अच्छे बीते। फिर कई ओर से अनेक प्रकार के उत्पात आरंभ होने लगे। एक के बाद एक प्रबल प्रलोभन ने आकर चित्त को बहुत ही विक्षिप्त और लुब्ध कर डाला। सोचा,

अब बचना मुश्किल है, अवश्य ही स्वेच्छाचारी होकर व्यभिचार में प्रवृत्त होना पड़ेगा। मैं प्रतिदिन चरित्र स्खलन की आशंका करने लगा। दिन का कुचित्र रात को कल्पना द्वारा मूर्तिमान् होकर मुझे बेचैन करने लगा। शरीर अब पहले की अपेक्षा और भी निर्जीव हो गया। पढ़ना-लिखना एक प्रकार से छोड़ ही दिया है। परीक्षा में पास होने की आशा छोड़ दी। साधन-भजन की ओर से भी चित्त उदासीन हो गया है। दिन-रात मेरे ललाट पर घने नीले आकाश में लगातार सप्तर्षि मण्डल दिखाई पड़ता था, वह धीरे-धीरे, मेघ में आवृत्त होकर विलुप्त हो गया। मैं दिन-रात हाहाकार करके बिताने लगा। बुरे विचारों का फल हाथों-हाथ मिल जाने पर भी, मैं उनसे पीछा न छुड़ा सका। तब लाचार होकर मैंने अपना सब हाल ब्रह्मचारीजी को लिख भेजा। उन्होंने अपने हाथ से पत्र का उत्तर लिखा-

‘निर्विघ्नो भव।’

मन खराब होने पर यहाँ आकर उपदेश ले जाना। दर्द असह्य होने पर ताजी मिट्टी छाती में मल लेना। इससे दर्द कम हो जायगा। परीक्षा में पास हो जाओगे। कमीज और जूता मत पहनना। ठंड से बचने को साधारण वस्त्र से काम लेना। सारी आपदाएँ दूर हो जाएँगी-कोई भय नहीं है।

आशीर्वादक-ब्रह्मचारी।

पत्र मिलने पर ब्रह्मचारी के दर्शन करने की मुझे प्रबल इच्छा हुई। मुहल्ले के एक नजदीकी रिश्तेदार ब्राह्मण को साथी पाकर, मैं बारोदी को रवाना हुआ। सवेरे से पैदल चलते-चलते कोई तीन बजे ब्रह्मचारीजी के पास पहुँचा। उन्होंने पहले पूछा-‘हमारा पत्र मिला

है?’ मैंने कहा-‘हाँ।’ ब्रह्मचारीजी ने पूछा-‘आज तूने क्या खाया है?’ मैंने कहा-‘कुछ भी नहीं।’ यह सुनते ही उन्होंने ‘भजलेराम’ को बुलाकर कहा-अजी आज जो लड्डू तुमने बनाये हैं, वे सब ले तो आओ।

स्नेहमयी सेविका ने उसी क्षण थाली भर लड्डू, लाकर ब्रह्मचारीजी के आगे रख दिये। उन्होंने मुझसे कहा-‘ये सब खा लो।’ मेरे साथी ब्राह्मण से भी खाने के लिए अनुरोध किया। उन्होंने कहा-इनको आप अपना प्रसाद कर दें तो खा लूँगा।

ब्रह्मचारीजी ने कहा-‘प्रसाद क्या? इच्छा हो तो खाओ?’ मैंने ब्राह्मण से कहा-‘जब वे दे रहे हैं, तब प्रसाद तो हो ही गया। ले लीजिए।’ उनको तनिक टाल-मटोल करते देख, ब्रह्मचारीजी ने मुझसे कहा कि तू ही सब खा ले। रसोईघर में थाली ले जाकर सेविका ने रख दी और मेरे लिए बैठने को आसन दिया। अब वह ब्रह्मचारीजी के कहने के अनुसार, मुझसे सारे लड्डू खा लेने के लिए जिद करने लगी। मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा। मुट्ठी भर भात से मेरा पेट भर जाता है; कोई आधे सेर से भी अधिक लड्डू में किस तरह खाऊँगा? खासकर पित्तशूल के दर्द में तो लड्डू विषतुल्य हैं। जो हो, ब्रह्मचारीजी की आज्ञा समझकर मैंने सारे लड्डू खा लिये। भजलेराम ने कहा-बाबा ने आज दोपहर को बुलाकर मुझसे कहा कि एक लड़का भूखा-प्यासा थका-माँदा आ रहा है। बढ़िया लड्डू कुछ अधिक मात्रा में बनाकर रखो, आते ही उसे खाने को देना।

लड्डू खाकर ब्रह्मचारीजी के पास जा बैठा। उनसे मिलजुल कर देर तक बातचीत होती रही। चौथे पहर साढ़े पाँच बजे ब्रह्मचारीजी के लिए रसोई बनी। भोजन करके उन्होंने मुझसे प्रसाद पाने के

लिये कहा-'अभी-अभी तो मैंने थाली भर लड्डू खाये हैं। इतना अधिक मैंने बहुत दिनों से नहीं खाया है। अब और कुछ कैसे खाऊँगा?' उन्होंने कहा-'जाकर भोजन करने को बैठ तो, अभी भूख लग जाएगी। मैं आज्ञा मानकर भोजन करने को जा बैठा। महात्मा की अद्भुत कृपा है। प्रसाद की विचित्र सुगन्ध से मुझे लोभ हुआ, भूख भी लग आई। रुचि के साथ, नियमित आहार से कोई चौगुना खा गया। रात को ब्रह्मचारीजी के कमरे के पास ही रसोईघर में मेरे सोने का प्रबन्ध किया गया। गहरी रात को एकाएक आँख खुलने पर सुना कि ब्रह्मचारीजी भजन गा रहे हैं-'प्राण गौरांग नित्यानन्द-जीवनकृष्ण, जीवन कृष्ण।' गाते-गाते वे रोने लगे। सवेरे उठकर नित्यक्रिया के बाद मैं ब्रह्मचारीजी के पास जा बैठा। उन्होंने मुझसे कहा-अरे तुझे कुछ कहना-सुनना हो तो इस समय कह।

मैं-'काम' की असह्य पीड़ा से मैं बहुत ही अस्थिर रहता हूँ। क्या उपाय करूँ?

ब्रह्मचारीजी-करेगा क्या, रमण कर। क्या तुझे मिलती नहीं?

मैं-मिलने की क्या कमी है; किन्तु उसमें पाप जो लगता है।

ब्रह्मचारीजी-अच्छा, जा तुझे कुछ पाप नहीं लगेगा। सब पाप मैं ले लूँगा।

मैं-बदनामी होगी।

ब्रह्मचारीजी-कौन बदनाम करेगा? ज्ञानी तो निन्दा करेंगे नहीं-मूर्ख करेंगे सो करें। उनके बदनाम करने से क्या होता है?

मैं-ज्ञानी लोग निन्दा क्यों न करेंगे? उस काम की निन्दा तो सभी करते हैं?

ब्रह्मचारीजी-डेढ़-दो वर्ष के बच्चे को चलना-फिरना दौड़ना

सीखते तूने देखा है न? ८-१० हाथ दौड़कर धड़ाम से गिर पड़ता है, और फिर उठ बैठता है। २५ वर्ष का कोई युवक यदि उस बच्चे को गिरते और उठते देखकर हँसे, दिल्लगी करे, तो उसे क्या कहेंगे? वह साला मूर्ख है न? वह नहीं जानता कि न जाने कितनी बार गिरने और फिर खड़े होने से उसकी टाँगे मजबूत हुई है और अब वह दो कोस दौड़ सकता है। बच्चे के गिरने और खड़े होने से क्या ज्ञानी लोग निन्दा करते हैं? ज्ञानियों को मालूम है कि हजारों बार पछाड़ खाकर गिरने, उठने और सँभलने से ही बल आता है।

मैं-अच्छा, तो मैं आपके उपदेश के अनुसार ही जाकर आचरण भले करूँ, किन्तु उससे पीछा छुड़ाने (निवृत्ति) की बात तो आप नहीं बतलाते?

ब्रह्मचारीजी-मैं तुझसे निवृत्ति की बात क्यों कहूँ? तेरा कर्म ही तुझे निवृत्त कर देगा। तेरी क्या मजाल कि मेरे उत्साह देने से ही तू कुछ कर लेगा। यही जानकर तो मैं तुझसे कहता हूँ। तू जाकर देख ले। अब धर्म-धर्म करके उतावला न हो। कर्म समाप्त किये बिना, कुछ भी क्यों न करो, कुछ होने का नहीं। अब जाकर लिख-पढ़, इस तरह प्रारब्ध को समाप्त कर। इसके बाद धर्म प्राप्त होगा। मैं तो और भी १०० वर्ष तक मौजूद हूँ; सिर्फ तुम्हीं लोगों के लिए हूँ, मुझे कुछ जरूरत नहीं है। अब ब्रह्मचारीजी ने मुझसे चले जाने के लिए कहा। मैंने कहा-अभी तो जाने की मेरी इच्छा नहीं है, कुछ दिन तक आपके पास रहने की इच्छा है। ब्रह्मचारीजी-अच्छी बात है, रह सके तो रह, तेरा कर्म ही तुझे खींचकर ले जाएगा। अब उन्होंने गोस्वामीजी की चर्चा छेड़ी, कहा-'गोस्वामीजी ने देश-प्रदेशों में मुझे महापुरुष नाम से प्रसिद्ध करके मेरा सत्यानाश कर दिया है। २५

वर्ष से मैं यहाँ बड़े आराम से रहता था, अब सुबह से शाम तक रोगियों का चिल्लाना और मामले-मुकदमे की बातें सुनता रहता हूँ। क्या मैं इसी के लिए यहाँ रहता हूँ? साला अन्धा, मूर्ख! छोटे-छोटे बच्चों को योग शिक्षा देता है और 'परमहंसजी परमहंसजी' कहता है। इस प्रकार गोस्वामीजी को बहुत-सी बातें कहकर वे हम लोगों के साधन की निन्दा भी करने लगे। उन बातों को सुनकर मैं रो पड़ा। उसी समय चल देने को तैयार हो गया। ब्रह्मचारीजी की बातों से चिढ़कर, मैं भोजन करने के बाद, बारह बजे के पश्चात् ढाका को चल पड़ा।

ब्रह्मचारीजी के यहाँ जाने की मनाही।

गेंडारिया में आम के पेड़ के नीचे गोस्वामीजी को एकान्त में पाकर मैंने ब्रह्मचारीजी का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सुनकर उन्होंने कहा-

अब तुम लोगों में से जो कोई भी ब्रह्मचारीजी के पास जावेगा, उसी को वे एक-आध बार हिला-डुलाकर देखेंगे। उन्होंने मझसे खेद के साथ कहा-'ऋषि-मुनियों का कलेजे का धन तू गीदड़ों-कुत्तों को लुटा रहा है। मैंने कहा-'मैं तो वही करता हूँ जिसकी आज्ञा परमहंसजी देते हैं। उन्होंने कहा-'अच्छा, मैं एक बार अच्छी तरह देखूँगा।' अब उन्होंने वही काम करना आरम्भ कर दिया है। इसमें तुम लोगों की क्या हानि है? वे मेरी ही परीक्षा कर रहे हैं। उन्होंने कहा था तेरी नसों-आँतों को खींचकर मैं निकाल लूँगा। वे अब वही कर रहे हैं। उनसे जो बने सो करे। हाँ, अब तुम लोग कोई उनके पास जाओगे तो हानि होगी। यह बात सभी को बता देना अच्छा है।

हम सब लोगों को गोस्वामीजी की उक्त सूचना दे दी गई। प्रायः सभी ने इसके बाद ब्रह्मचारीजी के यहाँ आना-जाना बन्द कर दिया। किन्तु जिन लोगों ने उनके यहाँ का आना-जाना नहीं छोड़ा था, वे थोड़े दिनों में प्रारब्धवादी बनकर साधन-भजन छोड़कर बड़ी दुरवस्था में पड़ गए।

२३-२६ अग्रहायन

बड़े दादा को बिना माँगे दीक्षा मिल जाने से मेरा क्षोभ।ठाकुर का सान्त्वना देना।

बड़े दादा के यहाँ से एक पत्र आया। उन्होंने लिखा है-'दीक्षा पाने के लिए मैं बहुत ही उतावला हो रहा था और गोस्वामीजी की कृपा की प्रतीक्षा कर रहा था। इसी बीच एक दिन श्रीरामानन्द स्वामी (रामकुमार विद्यारत्न, ब्राह्म-प्रचारक) अकस्मात् फैजाबाद आये। मुझे पहले से कुछ बताये बिना, वे मुझे गुप्ताघाट घुमाने ले गये। वहाँ पर, मेरी इच्छा न होने पर भी, उन्होंने कान में नाम सुनाया और कहा-मैंने तुमको दीक्षा दे दी। इस नाम का जप किया करो। मैंने इसे दैव की इच्छा समझकर दीक्षा ही मान लिया है; नियमानुसार जप किया करता हूँ। लाभ भी हो रहा है।'

दादा का पत्र पाते ही मेरा तो सिर चकरा गया। प्राण बहुत ही बेचैन होने लगे। मैंने तुरन्त ही गोस्वामीजी के यहाँ जाकर उनके हाथ में वह पत्र दे दिया। उसे पढ़कर वे तनिक मुस्कुराते हुए बोले-**यह तो अच्छा रहा! खैर, हो तो गई! भगवान् न जाने कितनी तरह से लोगों का भला करते हैं।**

मैं-आप पहले से आशा देकर दादा को यदि तनिक सूचित कर देते तो शायद ऐसा न होता।

गोस्वामीजी-**क्यों? यह क्या बुरा हुआ है? ईश्वर की इच्छा से जो होता है, वह क्या कभी बुरा हो सकता है? यह तो अच्छा ही हुआ है।**

मैं-यदि आप उनपर कृपा न करेंगे तो नहीं होगा, मैं अकेला ही आपकी कृपा का भागी नहीं रहना चाहता।

गोस्वामीजी-क्यों? वे अपना काम करें और तुम अपना काम किये जाओ। जिसका जो काम है, वह उसके पास है।

इस पर कुछ न कहकर मैं रोने लगा। बारंबार मन ही मन प्रणाम करके मैं गोस्वामीजी से प्रार्थना करने लगा-'यदि आप कृपा करके दादा को अपने चरणों के निकट नहीं बुलाते हैं तो फिर मुझे भी छोड़ दीजिए। मुझे कुछ आवश्यकता नहीं है। दादा को छोड़कर मुझे मुक्ति पाने की भी इच्छा नहीं हैं। मेरी ओर थोड़ी देर तक ताकते रहकर गोस्वामीजी ने आँखें बन्द कर लीं। थोड़ी देर बाद आवेश की अवस्था में धीरे-धीरे कहने लगे-**एक वैद्य पेड़ की जड़ के साथ कोई वस्तु मिलाकर रोगी को औषधि दिया, रोगी चंगा हो गया। लोग तो दवा में सिर्फ जड़ को ही देखते थे, दूसरी चीज को नहीं देख पाते थे। एक आदमी ने सोचा यह जड़ों का ही गुण है। वस्तु को छोड़कर उन्होंने एक रोगी को उन्हीं जड़ों का सेवन करने को दिया। फलतः रोगी स्वस्थ नहीं हुआ।**

थोड़ी देर में फिर बोले-**एक आदमी ने धान की खेती करने का विचार किया। बहुत ही अच्छी उपजाऊ जमीन पाकर उसने सोचा कि किसान लोग मामूली, खराब जमीन में धान छींट देते हैं, इसी से कैसी बढ़िया धान की फसल होती है। मैं इस बढ़िया जमीन में धान न बोने दूँगा; जैसी बढ़िया मिट्टी है, वैसे ही बढ़िया**

धान के चावल बोऊँगा। उसने भूसी हटाकर साफ चावल बोये। धान बोने से सचमुच बढ़िया फसल होती। चावल बोने से कुछ भी न मिला।

अस्पष्ट रूप से इसी प्रकार और भी बहुत सी बातें कहीं। साफ-साफ समझ में न आने से मैंने उनको यहाँ नहीं लिखा है। इसी समय गोस्वामीजी की आँखों से आँसू गिरने लगे। थोड़ी देर में आँखें पोंछकर सिर उठाया और मेरी ओर ताककर कहा-**तुम्हें दुःखी होने का कोई कारण है। उन्हें तो मेरे पास आना ही पड़ेगा। इस साधन के करने से उन्हें फल न मिलेगा; वे तृप्त भी न होंगे। हाँ, इस समय थोड़ी सी सामयिक शान्ति उन्हें मिल सकती है। अभी वे उसी साधन को करते रहें, उससे अच्छी शिक्षा हो जाएगी, फिर कुछ समय बीतने पर अच्छा फल मिलेगा। तुम भूल कर भी उन्हें निरूत्साहित मत करना। खूब उत्साहित करते हुए पत्र लिखो।**

मैं-दादा को आना पड़ेगा; लेकिन बहुत सा समय बर्बाद हुआ।

गोस्वामीजी-**नहीं वह बर्बाद होना नहीं है। इससे उनकी भलाई ही होगी। और इस घटना से तुम्हें भी बहुत लाभ होगा। वह तुमको जल्दी मालूम पड़ जाएगा। निर्दिष्ट समय के बीतते ही समझ जाओगे, इस घटना से तुम्हारे दादा का भी कितना ही उपकार होगा।**

विद्यारत्नजी ने दादा को दीक्षा देते समय बतला दिया था-‘छः महीने में सिद्ध हो जाओगे।’

२६ अग्रहायन १२९५ बं.सन् १ दिसंबर १८८८

एक महीने में सिद्धि पाने का उपाय बतलाना।

बहुत ही थोड़े समय में सिद्धावस्था प्राप्त कर लेने की एक रीति आज गुरुदेव ने हम लोगों को बताई। अवस्था के अनुसार नियमों की रक्षा करके एक महीने तक निर्दिष्ट रीति से कोई साधन करे तो अवश्य ही उसे सिद्धि प्राप्त होगी। यदि किसी को यह आशंका हो कि सिद्धि प्राप्त होने के पहले ही शरीर छूट जाएगा तो, उसका जी चाहे तो, वह सहज ही एक महीने तक नियमों की रक्षा करके इस रीति से साधन कर सकता है। सिद्धि अवश्य हो जायगी। नियम बहुत कठोर हैं, इसलिए गुरुजी ने करने के लिए किसी से जिद नहीं की; इतना ही कहा कि **जिसका जी चाहे वह इस तरह साधन कर सकता है।** नियम ये हैं-

१. लोक संग का त्याग करें। विशेष रूप से स्त्रियों को देखना, पूछना, छूना, उनके सम्बन्ध में कुछ सुनना और चिन्तन आदि सब तरह से छोड़ दें।

२. एकान्त में बहुत ही शुद्धतापूर्वक दिन को एक ही बार अपने हाथ से बनाकर अरवा चावल का भात खावें।

३. सोये नहीं। बहुत ही अवसाद आने पर, जरूरत हो तो, हाथ का ही तकिया बनाकर जमीन पर लेटे रहें।

इन बाहरी नियमों को पालन करने के साथ-साथ, निर्दिष्ट रीति से मुद्राबन्धन करे और दिन रात सिद्धासन में बैठकर प्राणायाम, तथा रीति के अनुसार कुम्भक में नाम का साधन करना चाहिए।

इस प्रकार नियमों का अवलम्बन करके यदि कोई एक महीने तक साधना करता रहे तो उसे अवश्य सिद्धावस्था प्राप्त हो जायगी। कम से कम तीन दिन भी यदि कोई कर लेगा तो ऐसी

कोई विशिष्ट अवस्था प्राप्त हो जाएगी जो औरों को दुर्लभ होती है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।

मुद्रा दिखलाकर कहा-**इस प्रकार मुद्राबन्द करके आसन में बैठने का अभ्यास हो जाने पर काम-क्रोध आदि रिपु गण निर्बल हो जाते हैं, शरीर साधन के लिए उपयुक्त, सबल और स्वस्थ रहता है।**

गेंडारिया आश्रम में ठाकुर की कुटी।

गेंडारिया के आश्रम का संचार होने के कुछ दिन बाद ही गोस्वामीजी की आसनकुटी बनाई गई। गोस्वामीजी के शिष्य कुंज घोष महाशय ने यह बनवा दी थी। आम के पेड़ के उत्तर-पूर्व कोने में, ८ हाथ की दूरी पर, यह कुटी है।

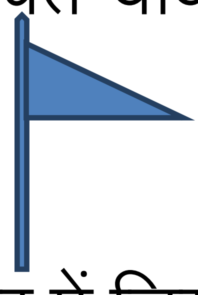
छोटी कुटिया दक्षिण-द्वारी, पूर्व-पश्चिम लम्बी है। इसकी लम्बाई और चौड़ाई ८ हाथ की है। मिट्टी की दीवारें हैं; कुटी पर चारों ओर ढालवाली पैरे की छत है। कुटी के बीचों-बीच दक्षिणी ओर सिर्फ एक ही दरवाजा है और उसके पश्चिमी भाग में, उत्तर और दक्षिण की दीवार में छोटी छोटी दो (१ फुट चौड़ी और डेढ़ फुट लम्बी) खिड़कियाँ आमने-सामने हैं। कुटी के भीतर दो कमरे हैं। दरवाजे के पूर्व ओर सटी हुई उत्तर-दक्षिण लम्बी एक ऊँची दीवार समूचे कमरे को पूर्व-पश्चिम दो भागों में अलग करती है। पूर्व ओर के योग-प्रकोष्ठ में जाने के लिए एक मात्र ४ फुट लम्बा और २ फुट चौड़ा बिना चौखट का तंग रास्ता है, वह भीतर की दीवार के उत्तर ओर है। इस प्रकोष्ठ में ऐन दोपहर के समय भी प्रकाश नहीं पहुँच पाता; अँधेरा बना रहता है। इसी के दक्षिण की ओर दीवार से सटा हुआ गोस्वामीजी का आसन है जिसका मुख उत्तर की ओर है सामने

सिर्फ धूनी है; कमरे में कोई सामान नहीं है।

गोस्वामीजी साधारणतः पश्चिम ओर की कोठरी में ही रहते हैं। पूर्व की ओर की अंधेरी में गोस्वामीजी ने पंचमुण्डी आसन करने का विचार किया था-आसन बनाने की तैयारी भी हुई थी। किन्तु एकाएक उन्होंने अपना इरादा बदल दिया। सुना है, उन्होंने कहा था कि-'पंचमुण्डी आसन बनाकर उस पर एकबार बैठने से फिर उस स्थान को छोड़कर अन्यत्र कहीं आना-जाना नहीं हो सकता, अतएव अब उसकी जरूरत नहीं है। किन्तु पंचमुण्डी आसन के न होने पर भी दिन के किसी निश्चित समय में वे उसी आसन में बैठते थे। गोस्वामीजी के आश्रम-कुटीर के उत्तर की ओर दीवार के बाहरी हिस्से में उन्होंने अपने हाथ से झण्डे का चिन्ह बनाकर उसके ऊपर श्रीश्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभु का नाम लिख दिया है और आसन घर के भीतर उसी दीवार में कुछ उपदेश, चॉक से लिख रखे हैं।

(क) कुटी के उत्तर ओर की दीवार में बाहरी तरफ लिखा है-

ॐ श्रीकृष्णचैतन्याय नमः



(ख) कुटी के भीतर की दीवार में लिखा है

ऐसा दिन नहीं रहेगा।

आत्म प्रशंसा मत करो।

पर निन्दा मत करो।

अहिंसा परमो धर्मः।

सभी जीवों पर दया करो।

शास्त्र और महाजनों पर विश्वास करो।

शास्त्र और महाजन के आचरण से मेल न हो, उसे विषवत् त्याग दो।

नाहंकारात् परो रिपुः।

२ पौष १२९५, रविवार

साधक के लिए प्रतिदिन पालनीय विधि।

आज मेरे साधन-जीवन के तीसरे वर्ष का आरम्भ हुआ। मैं अपराह्न को गेंडारिया आश्रम गया। गोस्वामीजी समाधि-मग्न हैं। देखा कि कुछ गुरुभाई उनके सामने चुपचाप बैठे हुए हैं। थोड़ी देर में गोस्वामीजी को बाह्य चेतना हुई। वे धीरे-धीरे हम लोगों से कहने लगे प्राणायाम का काम तुम लोगों का प्रायः पूरा होने को है। अब साथ कुछ नियमों की रक्षा करते हुए चलने की चेष्टा करना।

१. पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश-इन पंचभूतों में रीति अनुसार दृष्टि साधन करने का अभ्यास करना।

२. शम-अन्तरिन्द्रिय का शमभाव। सदा चित्त की प्रशान्ति की रक्षा किये रहना।

३. दम-इन्द्रियों के विषयों से जो बुरी लतें पड़ जायें, उनसे मन को सदा निवृत्त रखना।

४. तितिक्षा-सभी प्रकार के दुःख की अवस्था में क्षमा, सहनशीलता का अवलम्बन करना।

५. उपरति-मृत्यु और परलोक की चिंता करना। प्रतिदिन सोचना कि देह, सम्पत्ति और गृहस्थी आदि सब अनित्य है,असार है।

६. द्वन्द्वसहिष्णुता-सुख-दुःख और मान-अपमान, निन्दा-

स्तुति सभी विरुद्ध अवस्थाओं में चित्त की अवस्था को अविचलित, एक-सा स्थिर, रखने की चेष्टा करना।

७. स्वाध्याय-ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों का पठन-पाठन करते रहना। महाभारत के मोक्षपर्व और श्रीमद्भगवद्गीता आदि से कम से कम एक-दो श्लोक का प्रतिदिन पाठ करना।

८. साधु संग-प्रतिदिन या तो साधु-महात्मा के दर्शन करना या धर्म विषयक चर्चा करना।

९. दान-जिससे जो बन पड़े, कम से कम सद् वाक्य का भी दान करना।

१०. तपस्या साधन जैसा किया करते हो।

प्रतिदिन इन नियमों की रक्षा करने की चेष्टा करना।

प्रतिदिन इन नियमों का पालन करते हुए चलना तो मुझे अपने लिए बिल्कुल असम्भव जान पड़ता है। मैंने प्रणाम करके गुरुदेव से यह आशीर्वाद माँगा कि प्रतिदिन मैं इन नियमों को कम से कम एक बार स्मरण तो कर ही लिया करूँ। कीर्तन हो चुकने पर आज रात को कोई ९ बजे मैं घर आया।

स्कूल की पढ़ाई छोड़कर पश्चिम को जाने की आज्ञा। ध्यान और आसन का उपदेश।

कुछ दिनों से मेरा दर्द बहुत ही बढ़ता जा रहा है। दिन-रात लगातार दुःसह पीड़ा को मैं अब सहन नहीं कर पा रहा हूँ। शरीर की बुरी हालत देखकर श्रीरामकुमार विद्यारत्न मुझसे पढ़ना-लिखना छोड़-छाड़कर पश्चिम चले जाने के लिए कह रहे हैं। पढ़ने-लिखने का अब मुझे जरा भी उत्साह नहीं है। बहुत दिन तक घर में रहने के बाद फिर कुछ दिन से पढ़ाई शुरू कर दी है। अब अगर

पढ़ाई बन्द किये देता हूँ तो बड़े भाई लोग क्या कहेंगे, सदा यही सोचता हूँ। आज अकस्मात् बड़े दादा का पत्र आ गया। विद्यारत्नजी दादा के गुरु हैं, मालूम नहीं, उन्होंने दादा से मेरे सम्बन्ध में क्या कह दिया, विद्यारत्नजी की बात का उल्लेख करके दादा ने मुझे लिखा है कि पढ़ना-लिखना छोड़कर तुरन्त पश्चिम चले जाओ। मैं अपनी वर्तमान दुरवस्था में भगवान की अद्भुत करुणापूर्ण व्यवस्था देखकर बहत विस्मित हुआ। विद्यारत्नजी से दादा के दीक्षा ले लेने की खबर पाकर मुझे मन में बड़ी चोट लगी थी। गोस्वामीजी ने मुझसे तभी कहा था-'इससे तुम्हें भी बहुत लाभ होगा। यह तुम्हें जल्दी मालूम हो जायगा।' गुरुदेव की वह बात, इस समय बार-बार याद आकर, मेरे संशयपूर्ण अविश्वासी चित्त को भी उनके शान्तिप्रद श्रीचरणों में संलग्न कर रही है। गुरुदेव के चरणों को बारंबार मन ही मन प्रणाम करके मैंने प्रार्थना की-'दयालु ठाकुर कुछ ऐसा करो कि अब मैं हमेशा के लिए लिखाईपढ़ाई की तिलांजलि देकर स्कूल-कारागाह से मुक्त जाऊँ और तुम्हारा सतत् संग प्राप्त कर सकूँ।

दादा का पत्र मिलने पर आधे घंटे में ही मैंने पढ़ाई की पुस्तकों की एकत्र करके कसकर बाँध दिया, घर के रहनेवाले सभी लोग स्कूल-कॉलेज जाने के लिए तैयारी में लगे थे। और मैं पश्चिम जाने की अनुमति माँगने को गेंडारिया गोस्वामीजी के पास चला। रास्ते में मुझे देखकर श्यामाचरण पण्डितजी ने कहा-'इस समय गोस्वामीजी के दर्शन आसानी से न होंगे।' कारण पूछने पर उन्होंने कहा-'आजकल वे दिन-रात ही आसन-घर में बन्द रहते हैं। एक महीने तक पंचमुण्डी आसन पर बैठकर, वे बहुत ही कठोर साधन करेंगे। इस समय बाहरी लोगों को उनके दर्शन बहुत कम मिलेंगे। शिष्यों

को भी निश्चित समय पर ही दर्शन मिलेंगे।' मैंने पूछा-'पंचमुण्डी आसन पर गोस्वामीजी के साधन करने की अब ऐसी क्या जरूरत हो गई?' श्रद्धेय पण्डितजी ने कहा-'वे कहते हैं, ऐसा परमहंसजी की आज्ञा है।' अब गोस्वामीजी प्रायः सर्वदा समाधि में मग्न रहा करते हैं। पंचमुण्डी आसन की सिद्धि हो जाने पर परलोकगत पाँच महात्मा लोग गोस्वामीजी की संकटों, प्राकृतिक दुर्घटनाओं तथा दुर्दैव से देह की रक्षा करते रहेंगे। बख्शी दादा की बात सुनकर मैं दंग रह गया। गोस्वामीजी के यह अद्भुत साधन करने की बात सभी गुरुभाई नहीं जानते। गुरुदेव के जो ३-४ घनिष्ठ शिष्य गेंडारिया में रहते हैं, उन्हीं को यह वृत्तान्त मालूम है। इस सम्बन्ध में साफ-साफ सब बातें जानने का मुझे बड़ा कौतुहल हुआ।

मैं मन ही मन गोस्वामीजी से दर्शन देने की प्रार्थना करके गेंडारिया आश्रम जा पहुँचा। भजनकुटी के पास ५-७ मिनिट तक बैठते ही गोस्वामीजी भीतर से निकले।

उन्होंने मुझे देखकर अपने-आप बुलाकर कहा-**तुम्हारा शरीर तो बहुत ही अवसन्न देख रहा हूँ, अब क्या करने का इरादा है?**

मैं-दादा ने पश्चिम में आने के लिए लिखा है। अब क्या करूँ?

गोस्वामीजी-अच्छा! अभी तो तुम्हें यही करना चाहिए। अब तो परीक्षा का समय है? पर क्या करोगे? स्वास्थ्य खराब रहने पर पढ़ाई करना अच्छा नहीं।

मैं-इस बार परीक्षा न दिया तो फिर कभी इस झमेले में न पडूँगा। इस समय आप जो कहें वही करूँगा।

गोस्वामीजी-**स्कूल में पढ़कर क्या करोगे? तुम भी कैसे हो! शरीर नष्ट हो जाय तो परीक्षा पास करके क्या करोगे? उद्देश्य**

तो विद्या को प्राप्त करना है; बस, वही हो जाना चाहिए। जितने बड़े-बड़े आदमियों का वृत्तान्त सुना जाता है। मिल आदि, उनमें से स्कूली शिक्षा तो बहुतों को नहीं मिली। स्कूल में पढ़े बिना भी विद्या प्राप्त की जा सकती है। यही करो। स्कूल की पढ़ाई तुम्हारे लिए सुविधाजनक की नहीं है। जिनका स्वास्थ्य खराब है, उनका स्कूल में पढ़ना मैं ठीक नहीं समझता। हमारे देश में जिन लड़कों-बच्चों की बीमारी देखी जाती है उनमें से बहुत-से स्कूल में पढ़ते हैं। जल्दी-जल्दी खा-पीकर तुरन्त ही स्कूल को दौड़ते हैं, दिनभर बेहद परिश्रम करते हैं, इसके ऊपर परीक्षा की चिंता दिमाग खराब कर देती है। इन्हीं कारणों से तो इतनी बीमारियाँ हैं, समय से पहले ही बुढ़ापा आ जाता है। तुम अपने दादा के पास चले जाओ। वहाँ पर तुम्हारा शरीर और मन सब कुछ अच्छा रहेगा। उस तरफ बीच-बीच में खूब अच्छे-अच्छे लोगों के दर्शन भी मिलेंगे। यही तुम्हारे लिए अच्छा है। तनिक रूककर फिर कहा-**अपने दादा को इस साधन की कोई भीतरी बात न बतलाना। वह बतलाने की मनाही है। और उन्हें कुछ करने की जरूरत नहीं। हम लोगों का यह साधन प्रचार करने की चीज नहीं है। जिसको आवश्यकता होती है, उसके आगे-समय आते ही-भगवान् स्वयं प्रचार कर देते हैं।** अब गोस्वामीजी ने बहुत ही संक्षेप में बतलाया कि अमुक-अमुक ने बड़ी विचित्र रीति से दीक्षा ली है। अच्छा है कि उन लोगों के मुँह से सुनकर ठीक-ठीक सब वृत्तान्त-समय और सुविधानुसार विस्तृत रूप में लिखूँगा। मैंने पूछा-रामकुमार बाबू कैसे आदमी हैं? क्या वे ब्राह्मसमाज के साधन के सिवा अन्य किसी प्रकार का साधन करते हैं?

गोस्वामीजी-हाँ, वे अन्य प्रकार का साधन करते हैं। किन्तु उनको शक्ति प्राप्त नहीं हुई है। शक्ति पा जाते तो, उसे गोपनीय न रख सकते। वह अवश्य प्रकट हो जाती है।

मैं-उस दिन रामकुमार बाबू कहने लगे, 'तुम लोगों के साधन में कुछ दोष नहीं है, लेकिन एक बात यह है कि बहुत अधिक प्रकट हो गया है। साधन को गुप्त ही रखना चाहिए।' गोस्वामीजी-**यह तो ठीक बात है किन्तु शक्ति गोपनीय नहीं रहती। और सत्य का नाश नहीं होता। सत्य वस्तु को प्रकट करने में किसका डर है? जो सत्य है वह अवश्य प्रकट होगा। जब उन्हें शक्ति प्राप्त होगी, तब देखेंगे कि वह गुप्त नहीं रहती। रामकुमार बाबू को खूब श्रद्धा-भक्ति करना, वे अच्छे आदमी हैं। हमारे इस साधन में सभी की भक्ति करने को कहा गया है। रास्ते के कुली-मजदूर को भी भक्ति करना। पात्र सभी हैं। निर्विचार होकर जो व्यक्ति जितने अधिक लोगों को भक्ति करेगा, उसे उतना ही अधिक लाभ मिलेगा।**

मैंने पूछा-'आपने साधन के जो नये नियम बतलाये हैं, क्या मैं उनका पालन करूँगा?'

'हाँ, हाँ, इस तरह आसन लगाना, और यहाँ दृष्टि को स्थिर करके ध्यान करना।' अब गोस्वामीजी ने आसन लगाकर दिखा दिया और ध्यान का स्थान भी बतला दिया।

मैं-ध्यान क्या है? ध्यान किसे कहते हैं? मैं तो कुछ भी नहीं जानता। किसका ध्यान करूँगा?

गोस्वामीजी-**अच्छा तो आसन लगाये हुए बैठे-बैठे नाम का जप करना, और आँखे बन्द करके दृष्टि को यहाँ स्थिर रखना। फिर अपने-आप सब मालूम हो जाएगा।**

मैंने पूछा-आँखें बन्द रखकर फिर वहाँ दृष्टि को किस प्रकार स्थिर रखूँगा?

गोस्वामीजी-**आँखें बन्द रहेंगी सिर्फ मन को उस स्थान पर स्थिर करना।**

मैं-बिना कुछ पाये, मन सिर्फ एक जगह किस तरह ठहरेगा?

गोस्वामीजी-**अभ्यास करने से ही कुछ समय के बाद अनेक प्रकार की ज्योति और रूप आदि के दर्शन होने लगेंगे। अभी मन को एक स्थान पर स्थिर रखने का प्रयत्न करो। फिर तुम्हारे लिए जो कुछ जरूरत होगी, वह सब मालूम कर सकोगे।।**

मैंने जानना चाहा कि ऐसे आसन में बैठने का अभ्यास हो जाने से क्या लाभ होगा।

गोस्वामीजी ने कहा-**अम्ल, उदरी, सूजन, वात और पित्त आदि रोग इस आसन में बैठने से दूर होते हैं, और भी अनेकों उपयोगिता है। अभ्यास करने पर धीरे-धीरे मालूम हो जाएगा।**

१४ पौष शुक्रवार

गुरु-शिष्य संबंध

एक गुरुशक्ति ही सारे विश्व में व्याप्त है।

बड़े दादा का एक पत्र लेकर मैं आज गोस्वामीजी के पास गया। आश्रम में पहुँचते ही श्रीधर और लाल प्रभृति सभी ने कहा-'गोस्वामीजी बहुत बीमार हैं। ज्वर चढ़ा है। और सिर में दर्द है, इससे प्रायः बेहोश पड़े हुए हैं। आज भेंट नहीं होगी। मैं कुछ कहे-सुने बिना ही बाहर आम के पेड़ के नीचे चुपचाप जा बैठा। मन ही

मन गोस्वामीजी का स्मरण करके, मैं उनसे दर्शन देने के लिए प्रार्थना करने लगा। गोस्वामीजी घर के भीतरवाले कमरे में थे। दरवाजा बन्द था। माता ठाकुरानी श्रीश्रीयोगमाता देवी अकेली उनके पास बैठी थीं। गोस्वामीजी को किसी ने मेरे आने की सूचना नहीं दी। इतने में माता ठाकुरानी ने अकस्मात् दरवाजा खोलकर श्रीधर से कहा-'श्रीधर गोस्वामीजी कहते हैं, 'कुलदा बाहर बैठा प्रतीक्षा कर रहा है, उसे बुला दो।' खबर पाते ही मैं कमरे में गया। गोस्वामीजी बिस्तर से उठकर बैठे। बाँये हाथ से अपना माथा दबाये रहकर, उन्होंने मुझसे पूछा, **'किस काम से आये हो?'**

मैंने उन्हें दादा का पत्र पढ़ सुनाया। असल बात यह लिखी है-'महात्मा नागा बाबा मुझको बहुत चाहते हैं। एक दिन उन्होंने मुझे बुला भेजा। मैंने दूर से ही उनको नमस्कार करके कहा 'बाबा, मुझे बड़ा अविश्वास रहता है। दया करके मुझे विश्वास दीजिए।' नागा बाबा ने अपनी जटाओं को सामने की ओर माथे पर फैला दिया और उन्हीं के भीतर होकर मुझपर बड़ी स्नेह-दृष्टि डालकर कहा-'अच्छा बच्चा, अब हो गया। तुम्हारा विश्वास बन गया, चले जाओ। मैं तुरन्त नमस्कार करके चला आया, उसी दिन से भगवान् का नाम प्राप्त करने के लिये मेरे प्राण सदा विकल रहने लगे। वैसे तो मैं सैकड़ों नाम जानता हूँ, किन्तु सोचा कि उससे कुछ होने का नहीं।' ऐसा लगने लगा कि यदि कोई आकर मुझसे पेड़-पेड़ जपने के लिए कह दे, तो भगवान् के उद्देश्य से उसी का जप करने से मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। इसी समय विद्यारत्नजी ने आकर, बिना मेरे प्रार्थना किये, मुझे नाम प्रदान किया। भगवान् की इच्छा समझकर मैंने नाम ले लिया। अब नाम जप करते करते घर-द्वार, स्त्री-पुत्र यहाँ तक कि

अपने शरीर तक की विस्मृति हो जाती है। यह राज्य छोड़ मैं एक भिन्न राज्य में पहुँच जाता हूँ और आनन्द में डूबकर बेहोश-सा हो जाता हूँ। मालूम नहीं कि यह नाम का ही गुण है अथवा नागा बाबाजी की कृपा का फल है।' इत्यादि। पत्र को सुनकर गोस्वामीजी ने कहा-**अच्छी अवस्था है। सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। पिछली बार तुमने उनको कुछ अच्छी चिट्ठी नहीं लिखी। वह चिट्ठी जैसी लिखने के लिये मैंने तुमसे कहा था, वैसी नहीं लिखी गई। उस समय तुम्हारे मन की जैसी हालत थी, उसके लिहाज से तुम वैसा नहीं लिख सके, यह ठीक है। अब जाकर उन्हें खूब उत्साह देते हुए पत्र लिखो। वे जिस साधन को कर रहे हैं, उसी को करते जायें, उसी से उनका भला होगा। नागा बाबा ऊँचे दरजे के सिद्ध पुरुष हैं। उनकी दृष्टि का फल अवश्य ही मिलेगा। विश्वास की प्राप्ति होने से ही बहुत कुछ मिल गया। विश्वास बहुत दूर तक पहुँचा देता है। अन्त की अवस्था में शक्ति की आवश्यकता होती है। शक्ति की आवश्यकता जान पड़ने पर दूसरे के पास जाना ही पड़ता है, वह अवस्था भी तो सहज नहीं है।**

गोस्वामीजी के सिर का दर्द देखकर मैं उठने को तैयार हुआ। मैं रूआँसा-सा हो गया। मैंने कहा-मेरी भीतरी हालत बहुत बुरी है। अब तक आपके पास था, क्या जाने अब किस अवस्था में कहाँ जाकर रहना पड़ेगा। कोई ठिकाना नहीं कि अब क्या कर डालूँ।

मेरी बात पूरी होने से पहले ही गोस्वामीजी कहने लगे-**तुम तो अभी गर्भस्थ सन्तान हो। तुम्हें किस बात को चिन्ता? माँ को जिस तरह गर्भ के बच्चे की हालत मालूम हो जाती है, उसी**

तरह गुरु भी शिष्य की सारी अवस्था, सारी चेष्टा को सदा-सर्वदा जान लेते हैं। सन्तान जब तक पैदा नहीं हो जाती, तब तक उसमें किसी प्रकार की क्षमता नहीं रहती है। माता जो कुछ खाती-पीती है उसी का थोड़ा-थोड़ा रस, नाड़ी के भीतर होकर, सन्तान की देह में पहुँचता है, सिर्फ उतने से ही गर्भ के बच्चे की पुष्टि होती है। इसी प्रकार गुरु को जो कुछ प्राप्त होता है उसका अंश, आवश्यकता के अनुसार शिष्य को मिलता रहता है। गुरु की उन्नति के साथ-साथ ही शिष्य की भी उन्नति होती जाती है। इसके बाद बच्चे का जन्म हो चुकने पर भी माता ही उसे आहार देती है, सारी आवश्यक वस्तुएँ जुटाकर माता ही उसका लालन-पालन करती है। जब तक वह चलने-फिरने और खाने-पीने योग्य नहीं हो जाता, तब माता उसे आँखों से ओझल नहीं होने देती; सदा अपनी नजर के सामने रखती है। किन्तु शिष्य के सिद्धावस्था प्राप्त कर चुकने पर भी सद्गुरु उसे छोड़ नहीं देते। वे उसे उस समय भी बच्चे की तरह गोद में लिये रहते हैं। गुरु सदैव सब बातों में शिष्य की सुविधा देखते रहते हैं।

तनिक ठहरकर फिर कहा-**संसार में जिन स्त्रियों को सन्तान होती है, उनकी गर्भस्थ सन्तान, अपनी-अपनी माता के गर्भ के रहते समय, माता की खाई हुई चीज का अंश आवश्यकता के अनुसार पाती है। बच्चा पैदा हो जाने पर भी सभी माताएँ बड़ी सावधानी से उसका पालन करती हैं। अब तुम्हारी माँ के पेट से पैदा न हो तो कोई बच्चा नहीं बचेगा, उसे असुविधा होगी। उसका अमंगल होगा-ऐसा समझो तो ठीक न होगा। यदि माता जैसी माता हो तो तुम्हारी माँ से भी बढ़कर स्नेह और सावधानी**

के साथ अपने बच्चे का लालन-पालन कर सकती है। तब तो तुम लोगों से कहीं अच्छे होने की बात है। माँ के सेवा-शुश्रुषा करने से ही तो बच्चे बढ़ते हैं। माता के पेट से पैदा होने पर अच्छी सेवा-सुश्रूषा होती रहे तो बच्चा बहुत अच्छा क्यों न होगा? यह आवश्यक नहीं कि सभी की माता एक ही हो। भगवान् की यह इच्छा है कि भिन्न-भिन्न माताओं के गर्भ से उत्पन्न होकर बच्चे सुख और आराम से रहे। तुम फैजाबाद जाओ, बड़ा लाभ होगा। बीच-बीच में बहुत अच्छे लोगों के दर्शन भी होंगे। सभी को खूब भक्ति श्रद्धा करना। साम्प्रदायिक संकीर्णता मत रखना।'

मैंने पूछा-जब तक गुरु पर दृढ़ निष्ठा न उत्पन्न हो, उससे पहले क्या अन्य साधु का सत्संग करना ठीक है?

गोस्वामीजी-**अन्य क्या? अन्य समझकर उनका सत्संग न करना। एक गुरुशक्ति ही सारे संसार में व्याप्त हो रही है, यह समझकर सभी का सत्संग करने से लाभ ही होगा। रक्ताधार में रक्त रहता है, तो क्या इसी से शरीर के अन्य स्थान में रक्त नहीं जाता है ? रक्त का आधार-मूल स्थान ही रक्ताधार है। वहाँ से संचारित होकर रक्त सारे शरीर में व्याप्त हो रहा है। संकीर्ण भाव कुछ नहीं है। संकीर्ण भाव से बड़ी हानि होती है।**

मैंने पूछा-गुरु में एकनिष्ठता भी क्या संकीर्णभाव नहीं है?

गोस्वामीजी-**नहीं, उसे संकीर्णता नहीं कहते। जो रक्ताधार को भली भाँति जानता है, वह यह भी जानता है कि रक्ताधार का ही रक्त अनेक भागों से होकर सारे शरीर में व्याप्त हो रहा है। वह सर्वत्र एक ही वस्तु को देखता है।**

गोस्वामीजी ने तनिक ठहरकर और भी कहा-**वहाँ जाकर अपना साधन गोपनीय रखना और करना और दादा को खूब उत्साहित करना। अपने-अपने साधन-भजन में निरुत्साहित किसी को नहीं करना चाहिए। निरुत्साहित करने में बड़ा दोष है। कोई किसी मार्ग पर क्यों न चलता हो, उसे उत्साहित करना चाहिए, अपना साधन ग्रहण करने के लिए किसी से अनुरोध मत करना। आवश्यकता होने पर भगवान् ही तुम्हारे दादा को भी इसके भीतर ले आयेंगे।**

मैं-तो क्या सभी साधन ही गोपनीय रूप से किया करूँगा?

गोस्वामीजी-**जहाँ तक हो सके वहाँ तक करना। ये चीजें गुप्त रखने की ही हैं। बड़ी सावधानी से रहना।**

गोस्वामीजी एक हाथ से सिर दबाए रहकर आधे घण्टे से भी अधिक समय तक मुझसे बातचीत करते रहे। जोर का बुखार था, सिर में असहनीय दर्द था, फिर भी उनमें विलक्षण स्थिरता देखकर मैं तो दंग हो गया। डेरे पर आकर निश्चय किया कि जल्द ही घर जाऊँगा।

८ पौष, शनिवार

स्वप्न-साधन पाने के लिए मँझले दादा की आतुरता।

घर आकर तीन दिन ठहरा, एक सपना देखा-मानो मैं मँझले दादा के पास हूँ; उनको देखने से ऐसा मालूम हुआ कि मानो वे भीतरी किसी दुःसह यन्त्रणा के मारे रात-दिन तड़पते रहते हैं। मुझे देखकर उन्होंने कहा-'तू बतला सकता है कि क्या करने से शान्ति मिलती है? मैंने कहा कि 'गोस्वामीजी का आश्रय लेने से शान्ति मिली है। उनके दीक्षा देने पर यन्त्रणाओं की जड़ कट जाती है।'

गोस्वामीजी का आश्रय लेने के लिए आतुर होकर मँझले दादा ने कहा-'वे क्या मुझ जैसे आदमी को साधन देंगे? ' मैंने कहा-'वे बड़े दयालु हैं, प्रार्थना करने पर अवश्य दे देंगे।' इतना कहते ही मेरी नींद टूट गई।

१२ पौष, बुधवार

मुंगेर जाने की आज्ञा।

मैं कल पश्चिम को चला जाऊँगा। गोस्वामीजी से अनुमति लेने को गेंडारिया आश्रम आया हूँ। गोस्वामीजी बीमार हैं। खबर मिली कि वे इस समय कमरे में ध्यानमग्न हैं। मैंने जाकर दरवाजे के बाहर से ज्योंही प्रणाम किया, त्योंही उन्होंने आँखें खोलकर देखा अपने आसन का एक कोना दिखलाकर कहा-**यहाँ बैठो।** मुझे संकोच हुआ, इससे मैं जमीन पर ही बैठ गया, किन्तु उन्हें बार-बार आग्रह करते देखकर आसन के एक छोर पर एक और आसन बिछाकर जा बैठा उन्होंने फिर ध्यान लगा लिया, बात-चीत करने का अवसर नहीं मिला। इस समय बात-चीत करना ठीक न समझकर मैं बाहर आने को तैयार हुआ। प्रणाम करते ही उनका ध्यान टूट गया। मुझसे उन्होंने कहा-**किस दिन जाने का विचार है?**

मैं-आज रात को।

गोस्वामीजी-**तो यहीं आकर क्यों नहीं रहते? यहाँ से दुलाईगंज स्टेशन पास ही है। यहाँ से जाने में सुविधा होगी।**

मैं-सीधा टिकट ले लूँगा। यहाँ से जाने में ऐसा न हो सकेगा।

गोस्वामीजी-**न हो तो यहाँ से नारायणगंज जाकर टिकट ले लेना; काफी समय मिल जायगा। इसमें असुविधा की कौन सी बात है?**

मैं-मैं कभी उस रास्ते गया नहीं हैं, इससे सीधे वहीं तक का टिकट लेकर जाने में सुविधा जान पड़ती है।

गोस्वामीजी-**जब तुम्हें आशंका हो रही है, तब वैसा ही करो। तनिक जल्दी फूलबेड़े स्टेशन पर पहुँचने की कोशिश करना-कहीं गाड़ी न छूट जाय और तुम रह जाओ। कलकत्ता पहुँचकर बहुत दिन न ठहरना; सिर्फ एक दिन विश्राम करना, नहीं तो रास्ते में असुविधा हो सकती है। क्या तुम्हारे मँझले दादा मुंगेर में हैं? मुंगेर बड़ी अच्छी जगह है। अब कुछ समय तक उन्हीं के पास रहना, इस समय वहीं पर लगन के साथ साधन-भजन करना, बस! फिर सब कुछ समझ सकोगे। कुछ भी चिंता मत करना। डर काहे का है?**

इस समय मैंने शीशी भर जल को, गोस्वामीजी के चरण की अँगुली छुआकर, चरणामृत बना लिया। चरणामृत देते-देते गोस्वामीजी की बाह्य चेतना न रही। उन्हें समाधिस्थ देखकर मैं प्रणाम करके चला गया।

खूब सवेरे उठकर मैं फूलबेड़े (ढाका) स्टेशन के लिए रवाना हुआ। नवाबपुर तक पहुँचा था कि गाडी छूट गई; मैं सवार न हो पाया। यदि मैं गोस्वामीजी की बात मान लेता और दुलाईगंज स्टेशन पर सवार होता तो इस मुसीबत का सामना न करना पड़ता।

१४ पौष शुक्रवार

एक मेम का महत्व।

रात के पिछले पहर मैं दुलाईगंज स्टेशन पर जाकर गाड़ी पर सवार हुआ। नारायणगंज से जानेवाले स्टीमर में एक मेम की अद्भुत

दया देखकर मैं दंग हो गया। स्टीमर दिन भर पद्मा नदी में चलकर शाम को ग्वालन्द पहुँचेगा। अकस्मात् रास्ते में एक असहाय, नीच जाति की, बहुत ही दरिद्र बुढिया को बड़े जोर का हैजा हो गया। जहाज के अधिकारियों ने उसे किनारे के मैदान पर छोड़ जाने की सलाह दी। हमारे बंगाली भाई लोग छूत रोग के बीमार को तुरन्त वहाँ से हटा देने के लिए उत्साह देने लगे। इसी समय एक मेम, किसी से कुछ कहे-सुने बिना, बीमार को गोद में उठाकर नीचे चली गई। बुढ़िया के कै और दस्तों से भरे हुए गन्दे कपड़े-लत्तों को फेंककर मेम ने अपने कीमती कपड़े आदि उसे पहनने को दिये। वह अपने हाथ से उस बीमार बुढ़िया की सेवा-सुश्रूषा करने लगी। जहाज के अधिकारियों ने तरह-तरह से समझा-बुझाकर उसे, उसके संकल्प को रोका। मेम की सेवा-सुश्रूषा और दवा-दारू करने से बुढ़िया का रोग धीरे-धीरे बहुत कुछ कम हो गया। जिस अवस्था में देशी भाईयों को सहानुभूति नहीं हुई, ऐसे में अच्छे खानदान की, रईस, खास विलायती मेम की ऐसी असाधारण दया देखकर, मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मेम से बातचीत करने की मुझे बड़ी इच्छा हुई। मैं उसके पास जाकर खड़ा हुआ। रोगिनी की सेवा करते-करते मेम ने मुझे कहा-‘भाई, क्या तुम ईसा मसीह को मुक्तिदाता मानते हो?’ मैंने कहा-‘हाँ, वे महापुरुष हैं, मुक्ति दे सकते हैं। उनके संबंध में मेरा बहुत ही उच्च भाव है।’ मेम ने कहा-‘तुम जिसे उच्च भाव कहते हो, उससे घटिया भाव क्या ईसामसीह पर किसी मनुष्य का हो सकता है? तुम उन्हें महापुरुष कहते हो?’ ईसा मसीह के प्रति मेम की ऐसी प्रगाढ़ निष्ठा देकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। किन्तु फिर भी मैं उसके साथ बहस करने लगा। मेम ने कोई

खास बहस न करके कहा-'भाई, सत्य को समझने के लिए मैं तर्क करने में बहुत सा समय गवाँ चुकी हूँ, कुछ भी समझ में न आया, शान्ति भी न मिली। कभी तर्क से सत्य निरूपण नहीं होता। तर्क करके तो असत्य को भी सत्य समझा दिया जाता है। एकमात्र विश्वास से ही सत्य जाना जाता है। ईसा पर विश्वास करो। उनकी कृपा से उनको जान सकोगे।' मेम की ये बातें मुझे बहुत अच्छी लगी।

१५ पौष शनिवार

सतीश पर गोस्वामीजी की कृपा।

मैं सुबह कलकत्ते जा पहुँचा। श्रीविधुभूषण मजूमदार, ज्ञानेन्द्रमोहन दत्त और सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय से भेंट हुई। ये लोग साधारण ब्राह्मसमाज के कट्टर ब्राह्म थे, गोस्वामीजी से साधन लिये थोड़ा ही समय हुआ है। बातचीत से मालूम हुआ कि थोड़े दिनों के भीतर ही गोस्वामीजी पर उन्हें असाधारण भक्ति हो गई और ये उन्हीं के भरोसे हैं। सतीश बाबू ने अपने व्यक्तिगत जीवन की एक घटना का वृत्तान्त स्वयं सुनाया, जिसे सुनकर मैं विस्मित हो गया। उन्होंने कहा-'भाई, युवावस्था के प्रारम्भ से ही काम आदि रिपुओं की उत्तेजना में पड़कर न जाने क्या-क्या कर चुका हूँ! साधन लेकर सोचा कि अब सारे उत्पातों से छुटकारा मिल गया। किन्तु वास्तव में यह कुछ भी न हुआ, बल्कि वह सब और भी बढ़ने लगी! गोस्वामीजी पर मुझे बेहद नाराजी होने लगी। इसी समय एक दिन साधन करने बैठा था कि अकस्मात् अदम्य उत्तेजना से मैं बेचैन हो गया। तब मैं सोचने लगा कि 'न तो साधन करूँगा और न गोस्वामीजी के पास ही जाऊँगा।' इसी समय दूसरे कमरे से

गोस्वामीजी मुझे बार-बार बुलाने लगे। उनके पास पहुँचते ही उन्होंने मुझसे बड़े स्नेह के साथ कहा-**‘सतीश मेरे सिर में थोड़ा-सा तेल तो लगा दो।’** अपनी दुर्दशा का ख्याल करके, मैं नाराज होकर तनिक तेजी से बोला-‘नहीं, यह मुझसे नहीं होगा।’ गोस्वामीजी ने मुस्कुराकर फिर कहा-**‘क्रोध क्यों करते हो? मेरा तो सिर जला जा रहा है, आओ जरा-सा तेल लगा दो न।’** मैं हथेली में तेल लेकर उनके सिर में लगाने लगा। सिर में तेल लगाने का गोस्वामीजी को कभी अभ्यास नहीं था, फिर भी मुझसे कहने लगे-**लगाते जाओ, लगाते जाओ। सिर ठंडा हो रहा है।** इसी समय मेरी न जाने कैसी अवस्था हुई कि बारबार देह में रोमान्च होने लगा, मैं काँपने लगा। सामने क्या देखता हूँ कि आज तक जितनी स्त्रियों पर मेरा कुभाव हुआ है उनमें से प्रत्येक कामोन्मत्त होकर मेरी ओर आती है और बगल से निकल जाती है। डर और लज्जा के मारे मैं सिमटने लगा। तब गोस्वामीजी कहने लगे-**लगाओ, अच्छी तरह लगाओ; जितना तेल है, सब का सब धीरे-धीरे अच्छी तरह पिला दो।** स्त्रियाँ किस भाव से, किस तरफ से आई और कहाँ चली गई, यह देखने का मुझे अवसर ही न मिला। मानो मुझे एक तरह का नशा-सा हो गया था। सबके चले जाने पर गोस्वामीजी ने कहा-**‘तो सब तेल सिर में पिला दिया? अच्छा अब जाओ।’** जागृत अवस्था में ऐसी अद्भुत स्वप्न की-सी घटना देखकर मैं हक्का-बक्का रह गया। उस समय न तो मेरा ध्यान तेल की ओर था और न गोस्वामीजी के सिर की ओर। गोस्वामीजी की बात सुनकर मैं चौंक पड़ा। तब उनके माथे को देखा तो उसमें एक बूँद भी तेल न था। उसी दिन से मेरा कामभाव बिल्कुल नष्ट हो गया

है। अब तो मैं कल्पना तक नहीं कर सकता कि मुझे कभी वह रिपु सताता था। उस घटना की याद आते ही मैं रो पड़ता हूँ। केवल यही जान पड़ता है कि मेरी यन्त्रणा देखकर, दया करके, गोस्वामीजी ने मेरे सभी कुभावों को अपने सिर पर ग्रहण कर लिया।

१८ पौष

आज्ञा का उल्लंघन करने से संकट।

दो दिन तक कलकत्ते में ठहरने के बाद हावड़ा स्टेशन पर जाकर मुंगेर का टिकट लिया। इसी समय गाड़ी ने सीटी दी। मैं बेतहाशा दौड़ता हुआ गाड़ी के सामने गया। गाड़ी के दरवाजे पहले से ही बन्द हो गये थे। मैं वह देख मूर्ख-सा खड़ा रहा कि अब ट्रेन छूट गई। किन्तु एक भले मानस ने मेरी वह दुर्दशा देखकर चिल्लाकर कहा-'चले आइए, शीघ्र सवार हो जाइए। दरवाजा खोल देते हैं।' मैं चलती हुई गाड़ी में उछलकर शीघ्र सवार हो गया। १२ बजे रात को मुंगेर पहुँचा।

वहाँ इक्केगाड़ी में बैठकर मँझले दादा के मकान के लिए रवाना हुआ। पहुँचने पर मालूम हुआ कि मँझले दादा ने मकान बदल दिया है। शहर में एक घण्टे तक घूमने पर भी जब मँझले दादा के नये मकान का कुछ भी पता मुझे न मिला, तब इक्केवाले ने चिढ़कर मुझे रास्ते में एक जगह जबर्दस्ती उतार दिया। मैंने उसे भाड़े का एक पैसा नहीं दिया। मैं गठरी-पोटरी और बिछौना आदि लिये, बड़े रास्ते के ऊपर, उस अँधेरी रात में कोई आधे घण्टे तक एक जगह बैठा रहा। बाद में स्मरण हुआ कि यदि गुरुदेव की बात मानकर मैं कलकत्ते में एक ही दिन ठहरकर चला आता तो इस झंझट से बच जाता, मँझले दादा उसी मकान में मिल जाते। जो हो, रात के २

बजे विपन्न होकर मैं गुरुदेव का स्मरण करने लगा। उनकी अपार कृपा के गुण से हो या आकस्मिक घटना के कारण हो, इस समय एक व्यक्ति ने आकर मुझसे कहा-‘क्या है बाबू, यहाँ क्यों बैठे हो? कुली चाहिए? मैंने मँझले दादा का नाम बतलाकर और उनका परिचय देकर कहा-‘हमें उनके यहाँ पहुँचा सकोगे?’ मजदूर ने कहा-‘हम बाबू को पहचानते हैं, चलिए।’ इसके बाद मैं उसके पीछे-पीछे चलकर मँझले दादा के घर पहुँचा। मजदूर को पैसे देते समय देखा कि रूपयों की थैली गायब है। छाती के पास लगे कोट के पॉकेट में ८ रूपये थे, उनके ऊपर दो कोट और रहने पर भी थैली किस तरह खो गई, यह समझ में न आया। सोचा कि इक्केवाले को बहुत सताया था, इस कारण गुरुदेव ने ही कृपा करके यह दण्ड दिया है। सारे रास्ते में एक अन्य शक्ति का खेल होता, देखकर गोस्वामीजी के ऊपर मेरा चित्त और अधिक आकृष्ट हो गया। छोटी-छोटी घटनाओं के भीतर से नाना प्रकार की अवस्थाओं में डालकर जिस तरह वे अपने चरणों की ओर इस चित्त को खींच रहे हैं, उसका विचार करके मैं अवाक् रह जाता हूँ।

२० पौष बृहस्पतिवार १२९५

प्रथम स्वप्न-कष्टहारिणी के घाट से संलग्न गुप्त मार्ग का रहस्य।

कल तीसरे पहर मँझले दादा मुझे कष्टहारिणी के घाट पर ले गये थे। आँखों से देखे बिना मैं कल्पना भी न कर सकता था कि गंगाजी पर ऐसा सुन्दर स्थान है। घाट मानो गंगाजी के बीच में ही है। घाट के सामने और दाहिनी-बाँई ओर कलकल शब्द करता हुआ निर्मल जल वेग से बह रहा है। घाट पर बैठने से ऐसा अच्छा लगा कि वहीं पर रात बिता देने की इच्छा हुई। स्नेह के कारण मँझले

दादा ने मुझे वहाँ रात को रहने की अनुमति नहीं दी। रात को ९ बजे के लगभग हम लोग। डेरे पर पहुँचे।

शेषरात्रि को स्वप्न देखा-'दिन डूबने पर कष्टहारिणी के घाट पर गया हूँ, ऊपर से देखा कि घाट के पास बहुत समय का एक पुराना पक्का रास्ता गंगाजी के भीतर होकर मानो कहीं खो गया है। नदी के नीचे होकर रास्ता है; उसके भीतर जाने को बड़ा ही कौतूहल हुआ। मैं धीरे-धीरे उस रास्ते पर आगे बढ़ा। कुछ दूर आगे जाने पर अँधेरे के कारण कुछ भी न देख पाया। वहाँ पर चन्द्र-सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता। अब मैं हाथ में मशाल लेकर आगे बढ़ा। रास्ता बहुत दुर्गम हैं, कीचड़ में मेरे जाँघों तक पैर धँसने लगे। अनेक प्रकार की ध्वनि बहुत ही शोरगुल सुनाई देने लगा। ऐसा जान पड़ा कि सामने कोई भयंकर घटना हो रही है। मालूम हुआ कि विशाल गंगाजी का एक चौथाई रास्ता तय कर आया हूँ। रास्ते के क्लेश और दहशत के मारे मैं बहुत ही अवसन्न-सा हो गया। अब मैं आगे न जा सका। दुखी मन से कष्टाहारिणी के घाट पर जा बैठा। इसी समय बारोदी में ब्रह्मचारीजी दिखाई पड़े। वे उसी रास्ते से जाने। का उद्यम कर रहे थे। उन्होंने मुझे देखकर कहा-'तू यहाँ कहाँ?' ब्रह्मचारीजी ने कहा-'तू कैसे चल सकेगा? इस रास्ते से बहुत दूर तक नहीं जा सकते-यह बन्द है, इसके सिवा डर भी है।' मैंने कहा, 'यह रास्ता क्यों बन्द हो गया है? इसे किसने बन्द कर दिया है।' रास्ता कहाँ गया है, इसका सारा हाल जानने की इच्छा प्रकट करने पर, वे कृपा करके मुझे एक डोंगी पर चढ़ाकर, घाट की सीध में गंगाजी के मध्य स्थान में ले गये। फिर पश्चिमोत्तर कोने में कुछ दूर तक जाकर डोंगी को ठहराकर कहा-कुछ महर्षि और प्रधान योगी

लोग पहाड़ के समीप गंगाजी के नीचे, इस जगह आश्रम बनाकर रहते हैं। आश्रम सुनसान है और दूर तक फैला हुआ है। महापुरुषों के साथ उनके थोड़े से शिष्य हैं। इस आश्रम के साथ वह गंगा किनारे का रास्ता मिला हुआ है। यहाँ से भीतर ही भीतर एक गुप्त मार्ग जाकर उस स्थान में उस रास्ते में जा मिला है। अधिकारियों ने बड़े रास्ते के स्थान-स्थान में कीचड़ का प्रबन्ध करके मार्ग को इसलिए दुर्गम कर दिया है कि कोई उस गुप्त मार्ग होकर आश्रम में न जा पहुँचे। बीच-बीच में भयानक विषैले साँप भी रहते हैं। यही कारण है कि उस बड़े रास्ते में चलकर कोई भी बहुत आगे तक नहीं जा सकता।

मैं-तो आश्रम में जाने के लिए क्या कोई दूसरा मार्ग नहीं है?

ब्रह्मचारीजी-दो रास्ते और भी हैं। यह जानकर तू क्या करेगा? उस रास्ते से जाने लायक अभी तेरा समय नहीं हुआ है। बहुत देरी है।

मैं-दया करके आप मुझे एक रास्ता दिखला दीजिए। मैं इस समय उसके भीतर न जाऊँगा, सिर्फ रास्ता तो मालूम हो जाए।

मेरी बात सुनकर ब्रह्मचारीजी डोंगी से उतर पड़े और गंगाजी के उत्तर पार वाले घाट की विपरीत दिशा में मुझे पहाड़ पर ले चले। कहा-'ये जो बढ़िया-बढ़िया पत्थर देख रहा है, इनके नीचे होकर उनके आश्रम की ओर एक रास्ता है। चल, उस रास्ते से जाने का दरवाजा तुझे दिखला दें।' अब कुछ और आगे जाकर ८-९ फुट लम्बा, आधे हाथ से भी कम चौड़ा, एक फटा हुआ स्थान दिखलाकर उन्होंने कहा-'यह जो पत्थर की चट्टान के भीतर तू दरार सी देख रहा है, यही एक रास्ता है। मैंने उसके भीतर दृष्टि

डालकर देखा कि किसी स्थान में तो बहुत ही अन्धेरा है और किसी-किसी स्थान में दहकते हुए कोयले की तरह आग जल रही है, फिर किसी-किसी स्थान से लगातार धुँआ निकल रहा है। ब्रह्मचारीजी ने कहा-यह रास्ता किसी को सहज में नहीं दिखाई पड़ता। दिन को तो मामूली धुँआ उठता हुआ ही दिखाई पड़ता है। जितनी ही रात अधिक होती है उतनी ही इस चट्टान की दरार अग्निमय हो जाती है। यह आग बहुत दूर से भी लोगों को दिखाई पड़ती है। तेरा जी चाहे तो इस आग में से होता हुआ आश्रम चला जा।

उस आग को देखकर मैंने डरकर कहा-'मैं इसके भीतर न जा सकूँगा। और दूसरा रास्ता बता दीजिए।' मेरी इस बात से बहुत ही चिढ़कर ब्रह्मचारीजी ने कहा-'हाँ। रास्ते की बड़ी खोज ले रहा था। चला जा यहाँ से।' अब वे तुरन्त ही गंगापार जाकर डोंगी पर सवार हो गये। डोंगी चलने लगी। जिस तरफ नाव जाने लगी, उसी तरफ मैं भी किनारे किनारे दौड़ने लगा। ब्रह्मचारीजी ने चिल्लाकर कहा-अब चला जा, चला जा।।

बस यह शब्द सुनते ही मेरी आँख खुल गई। स्वप्न में देखी हुई घटना मानो साफ-साफ आँखों से दिखाई देने लगी। सवेरे उठकर मैंने मँझले दादा से पूछा-कष्ट हारिणी के घाट के पास क्या कोई पुराना गुप्त रास्ता है? उन्होंने कहा-'हाँ, नवाबी जमाने का मार्ग है। वह काफी समय से बिल्कुल बन्द है।' मुझे बड़ा कौतुहल हुआ। रास्ता देखने को तीसरे पहर मँझले दादा के साथ कष्टहारिणी के घाट पर गया। देखकर कुछ देर तक बिल्कुल ही विस्मित हो गया। कष्टहारिणी कि घाट से कोई ५०-६० हाथ दक्षिण ओर यह मार्ग है।

क्रमशः नीचे जाते हुए रास्ता बिल्कुल गंगाजी के भीतर चला गया है। इस समय पानी कम होने के कारण घाट पर से रास्ते के ऊपर से बड़ा भारी द्वार जो गंगाजी के भीतर है, साफ दिखाई पड़ती है; किन्तु कोई नहीं बतला सकता कि यह रास्ता कहाँ तक चला गया है। सुना-कि कुछ समय पहले जिले के मैजिस्ट्रेट 'डियर' साहब ने बहुत खर्च करके इस रास्ते को खुलवाने की कोशिश की थी। किन्तु सारी मेहनत बेकार हुई। अनेक प्रकार का डर और विभीषिका देखकर तथा तरह-तरह के बाजों की आवाज सुनकर मजदूर काम छोड़कर भाग गये। यह समझकर कि उसके भीतर बड़े-बड़े जहरीले साँप है, साहब ने भी अपना असम्भव संकल्प छोड़ दिया। बहुत लोग कहते है कि बेमौके भाग जाने के लिए यह नवाबों का चोर रास्ता था, और कोई-कोई यह भी अटकलें लगाते हैं कि द्वार के भीतर परदे में रहकर बेगमों के निरापद होकर स्वतंत्रतापूर्वक नहाने के लिये किसी नवाब ने एक निराला गुप्त घाट बनवाया था। जो हो, इस सम्बन्ध में कोई भी कुछ निश्चित नहीं बता सका।

२३ पौष रविवार

पीरपहाड़ और सीताकुण्ड।

यह स्वप्न देखने के बाद से मँझले दादा के साथ अक्सर कष्टहारिणी के घाट पर जाता हूँ। शाम हो जाने पर घाट के उस तरफ, गंगा-पार, पहाड़ के ऊपर एक चंचल अग्नि को मैं रोज देखा करता हूँ? आग स्थिर नहीं है, जान पड़ता है मानो ८-१० हाथ जगह में वह फैलती रहती है। इस विषय में शहर के बाबुओं से पूछने पर मालूम हुआ कि यह आग अधिक रात बीतने पर खासकर अँधेरे पक्ष में, साफ-साफ दिखाई पड़ती है। मुद्दत से इसे लोग देखते आ

रहे हैं। कोई नहीं जानता कि यह कहाँ पर, और कैसी आग है। अचम्भे की बात तो है कि स्वप्न में ब्रह्मचारीजी ने उस पहाड़ के जिस स्थान में फटी चट्टान दिखलाई थी, वहीं पर यह आग मुझे दिखाई पड़ती है।

मँझले दादा के साथ मैं एक दिन पीरपहाड़ की सैर करने गया। पीरपहाड़ मुंगेर से बहुत दूर नहीं है। उस पहाड़ के ऊपर जाने पर मुझे एक कब्र मिली। वहाँ पर नमाज पढ़ने को एक फकीर साहब आये हुए थे। उनसे कब्र के बारे में पूछताछ की तो उन्होंने कहा- 'बहुत समय पहले यहाँ पर कोई फकीर रहते थे। धर्म के लिए व्याकुल होकर वे घर-द्वार, बाल-बच्चे और बहुत सी सम्पत्ति छोड़कर यहाँ आये थे। यहाँ काफी समय तक रहकर, कठोर साधन-भजन करके, वे पीर हो गये। मरने पर उनको यहीं दफनाया गया। तभी से, उन्हीं के नाम पर, इस पहाड़ का नाम पीरपहाड़ पड़ गया। पीर साहब अद्भुत शक्तिशाली सिद्ध पुरुष थे।' स्थान देखने से मुझे बहुत अच्छा लगा। कोई घण्टे भर तक मैं पीर साहब की कब्र के बगल में बैठा-बैठा नाम करता रहा। गुरुदेव ने एक बार बातचीत के सिलसिले में इन पीर साहब के प्रभाव के सम्बन्ध में कहा था- **'एक दिन पीरपहाड़ पर घूमने गये थे। अकस्मात् चारों ओर अँधेरा भयंकर आँधी, वर्षा हुई। बड़ी मुश्किल में पड़ गए। चारों ओर नजर फैलाकर देखा कि कहीं सिर छिपाने की भी जगह नहीं है। अब क्या करें? पीर साहब की कब्र के बगल में स्थिर होकर बैठे रहे। फकीर साहब का अद्भुत प्रभाव देखा। चारों ओर वर्षा का पानी बहा ले जा रहा था, किन्तु हमारे शरीर पर एक बूँद भी जल नहीं गिरा।'** पीरपहाड़ का जिक्र मैं पहले ही गुरुदेव से

सुन चुका था। अब प्रत्यक्ष देखकर कृतार्थ हो गया। मैंने फकीर साहब की कब्र की प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया। बहुत ही अच्छा लगा। यहाँ पर भगवान् के नाम करने से मुझे कुछ विशेषता जान पड़ी। एकाग्र मन से गुरुदेव का स्मरण करके मैंने प्रार्थना की-ऐसे ही एकान्त स्थान जंगल पहाड़ में रहकर, साधन-भजन करने का सुअवसर प्राप्त करवा दीजिए।

पीरपहाड़ से सीताकुण्ड बहुत दूर नहीं है। हम लोग वहाँ भी गये। सुना कि सीताजी ने इस कुण्ड में श्राद्ध-तर्पण आदि किया था, इसी से कुण्ड का नाम सीताकुण्ड पड़ गया है। यह कुण्ड कोई १०-१२ फुट लंबा-चौड़ा होगा। गहराई का मुझे पता नहीं। स्थान-स्थान पर जल के नीचे पत्थर दिखाई पड़ते हैं। हरदम पानी खौलता रहता है, भला उसे हाथ से कौन छू सकता है। अतिरिक्त जल की निकासी के लिए एक पक्का नाला है। अगर कोई अकस्मात् कुण्ड में गिर पड़े तो फिर वह जिन्दा नहीं निकल सकता। इसी से वह कुण्ड चारों ओर रेलिंग (बेड़े) से घिरा हुआ है। सीताकुण्ड से कुछ हाथों की दूरी पर रामकुण्ड और भरतकुण्ड भी है। इन कुण्डों का जल ठण्डा है। सीताकुण्ड पर पहुँचते ही मुझे अपने पितरों की अकस्मात् स्मृति आ गई। मानो वे मेरे हाथ से इस कुण्ड का जल पाने की आशा से यहाँ आये हुए हैं, इस तरह के भाव ने मुझे अस्थिर कर दिया। मालूम नहीं यह स्थान का प्रभाव है या और कुछ। श्राद्ध-तर्पण आदि को मैं सदा से कुसंस्कार मानता आया हूँ, किन्तु मैं स्थिर न रह सका। रामकुण्ड और भरतकुण्ड में नहा-धोकर मैंने कुछ दूर पर जाकर, सीताकुण्ड के नाले में जाकर स्नान किया। नहाने से बहुत ही आराम मिला। पितरों का स्मरण करके २-४

अंजलि जल देते ही जोरों से रो पड़ा। अपने भीतर एक अपूर्वशक्ति का मुझे अनुभव होने लगा। युग-युगान्तर से, सरलविश्वासी निष्ठावान् असंख्य लोगों के जिस भाव के प्रभाव से यहाँ का अधः उर्ध्व तथा चारों ओर का स्थान व्याप्त हो रहा है, आज शायद उसी भाव ने मेरे चित्त को ऐसा अभिभूत और मुग्ध कर दिया है। यहाँ पर गुरुदेव की कृपा का विशेष निदर्शन भी मिला।

स्वप्न की सफलता। मुंगेर आना सार्थक। साधन प्राप्ति के लिए मँझले दादा की प्रार्थना और गोस्वामीजी की स्वीकृति।

मुंगेर में मेरे दिन बड़े आराम से बीत रहे हैं। आज मँझले दादा ने मुझसे बातचीत करते हुए कहा-मन में शान्ति किसी तरह नहीं मिल रही है। क्या करने से हृदय को शान्ति मिलती है? मैंने तुरन्त कहा-'गोस्वामीजी का आश्रय लेने से शान्ति मिलती है। वे जो साधन देते हैं, उसको ग्रहण करके रीतिपूर्वक करते रहने पर, भीतर कभी अशान्ति नहीं आती।' मँझले दादा ने कहा-'वे क्या मेरे जैसे आदमी को दीक्षा देंगे? ' मैंने कहा-आप उन्हें पत्र में सब कुछ लिखो। वे अवश्य साधन देने को तैयार हो जायेंगे। मेरी बात मानकर मँझले दादा ने गोस्वामीजी को पत्र लिख भेजा। उत्तर आने में देर नहीं लगी। उन्होंने लिखा है-

श्रद्धास्पदेषु!

आपका पत्र मिला। आप लोगों के भले के लिए प्रार्थना किया करता हूँ। आपकी इच्छा पूरी होगी। जब तक भेंट न हो, बीच-बीच में कुशल-समाचार देते रहिए। कुलदा से आशीर्वाद कहिए।

शुभाकांक्षी-

श्रीविजयकृष्ण गोस्वामीजी

गोस्वामीजी का यह आश्वासन पाकर, कि उनके साथ भेंट होते हो मँझले दादा की आशा पूर्ण हो जायगी, मुझे अपार आनन्द हुआ। पहले मैंने जो सपना देखा था, उसे इस प्रकार अक्षरसः सत्य होते देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। इतने दिनों के बाद मेरी समझ में आया कि गोस्वामीजी ने मुझे फैजाबाद जाने से रोककर मुंगेर क्यों भेजा! अब तो देखता हूँ कि मेरी दीक्षा लेने के बाद से ही जीवन की विशेष घटनाओं की आड़ में रहकर गुरुदेव मानो इच्छाशक्ति द्वारा मेरे सब कामों की उत्तम व्यवस्था कर रहे हैं। घटनाओं के वास्तविक कारण का निर्णय करने में असमर्थ होने से मैं साफ-साफ नहीं समझ पाता कि आश्चर्य के कारण मुझमें यह संस्कार उत्पन्न हो रहा है, अथवा सचमुच इन सब कामों में गुरुदेव का हाथ है। किन्तु चित्त का आकर्षण गुरुदेव की ओर अपने आप बढ़ता जा रहा है।

मुंगेर के जल-वायु के कारण मैं बहुत कुछ स्वस्थ हूँ। रोज सवेरे गंगास्नान करता हूँ; दिन-प्रतिदिन साधन-भजन करने की ओर मानो उत्साह और भी बढ़ता जा रहा है। शेषरात्रि को उठकर प्राणायाम कुम्भक करता हूँ। सुबह उठकर, हाथ-मुँह धोकर आसन पर बैठा जाता हूँ, साढ़े सात बजे तक त्राटक करता हूँ, फिर मँझले दादा के साथ चाय पीता हूँ। इसके बाद ९। बजे तक फिर नाम किया करता हूँ। १०॥ के भीतर हम लोगों का स्नान भोजन सब हो जाता है। इसके बाद आसन पर ४ बजे तक बैठा रहता हूँ। स्कूल की छुट्टी होने पर मँझले दादा के लौट आने पर, उनके साथ बातचीत करते-करते शाम हो जाती है! इसके बाद ९॥ बजे रात तक कोई विशेष काम नहीं होता। भोजन कर चुकने पर, अच्छी नींद

न आते तक साधन किया करता हूँ। बस, यही मेरी दिनचर्या है।

पौष संक्रांति, १२९५

द्वितीय स्वप्न-फूल के पौधे की अस्वाभाविक मृत्यु।

याद नहीं पड़ता कि इन दो वर्षों के बीच मैंने किसी वृक्ष का डाल, पत्ता, फूल या फल कुछ भी तोड़ा हो। जब से मैंने गोस्वामीजी से सुना है कि सजीव वृक्षों में हमारी ही तरह अनुभव-शक्ति है, तब से इस विषय में मेरा भी एक दृढ़ संस्कार हो गया है। किसी वृक्ष के डाल-पत्ते तोड़ते देखकर मुझे अच्छा नहीं लगता, बड़ा कष्ट होता है। यहाँ तक कि स्त्रियाँ जिस स्थान में बैठकर रसोई के लिए तरकारी काटती हैं, वहाँ भी मैं नहीं रह सकता; देखने से मन में कष्ट होता है। बरामदे की छत पर, मेरे कमरे के सामने, मँझले दादा ने कुछ फूलों के पौधे गमलों में लगवा रखे हैं। प्रतिदिन शाम-सवेरे मैं उन पौधों को अपने हाथों से पानी देता हूँ। नौकरानी पानी देना चाहती है; किन्तु इससे मुझे सन्तोष नहीं होता। हम लोगों के पड़ोस के मकान के बरामदे की छत, हम लोगों की छत से सटी हुई है, दोनों मकानों की एक ही छत कह सकते हैं, बीच में मामूली सी १॥ हाथ ऊँची दीवार उठाकर अलग-अलग दो भाग कर दिये हैं। पुलिस इन्सपेक्टर श्रीअधर बाबू इस बगलवाले मकान में रहते हैं। उन्होंने भी अच्छे-अच्छे फूलों के पौधे, हमारी छत की सीध में, लगा रखे हैं। दोनों छतों पर फूलों के पौधों की शोभा देखने से भी बड़ी प्रसन्नता होती है। रात के ३ बजे नाम करते-करते एक दिन मुझे नींद आ गई। देखा-मैं अपने फूलों के पौधों में पानी दे रहा हूँ; अधर बाबू की छत पर के तीन पौधे अकस्मात् हिल उठे और मुझको बुलाकर बड़ी दीनता से कहने लगे-'अजी, एक बार हमारी

तरफ भी देखो। हमारी हालत देखने से क्या तुम्हें कुछ कष्ट नहीं होता? प्यास से हमारी जान निकली जाती है। तुम्हारे हाथ का थोडा-सा पानी चाहते हैं। नहीं मिलेगा तो हम नहीं बचेंगे।' सपना देखकर मैं जाग उठा। मन बहुत ही अस्थिर हो गया। नाम करते-करते सवेरे होने तक का समय बिताया। सवेरे देखा कि वे पौधे बढ़िया लहलहा रहे हैं। सोचा-'उल्टे-सीधे स्वप्न तो अक्सर आते हैं। यह भी शायद वैसा ही जान पड़ता है। जो हो, मन में खटका हो जाने से मैंने अधर बाबू की नौकरानी से पौधों में अच्छी तरह पानी देने के लिए कह दिया। वह ऐसा ही करने लगी। दूसरे के मकान की छत पर जाकर अपने हाथ से पानी देने में मुझे संकोच-सा हुआ। स्वप्न देखने के बाद से, मैं प्रतिदिन उन पौधों को सवेरे उठकर देख आता हूँ। आज चौथा दिन है। सवेरे उठकर देखा, विचित्र मामला है-एक रात में ही वे तीनों लहलहाते हुए पौधे बिल्कुल मुरझा गये हैं! समझ में नहीं आता कि यह कैसी अद्भुत घटना है। मालूम नहीं किसी पारलौकिक आत्मा ने मेरे हाथों का जल पाने की आशा से उन पौधों का आश्रय तो नहीं लिया था। तीनों पौधों की हालत देखकर पछतावे के मारे मेरे हृदय में जलन हो रही है। मैंने तीनों पौधों की जीवनी-शक्ति को उद्देश्य से तीन चुल्लू पानी ऊपर की ओर छिड़क दिया। इससे मेरे दिल की जलन कुछ कम हो गई।

८ माघ १२९५ रविवार

तृतीय स्वप्न-गंगासागर संगम की यात्रा-गुरु निष्ठा का उपदेश।

आज बहुत रात बीते स्वप्न देखा-ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे एक ऐसे बाजार में हूँ, जहाँ बहुत अधिक भीड़-भाड़ है। नदी के उस पार, बाजार के पास, बहुत-सी कई रंगों की छोटी-बड़ी नावें दिखाई पड़ीं।

गोस्वामीजी ने एक बड़े से बजरे पर सवार होकर, सब शिष्यों को उस पर चढ़ा लिया। हम लोगों को गंगासागर जाना है। गोस्वामीजी के पुराने विशिष्ट मित्र, एक महात्मा ने मुझको इशारा करके कहा- तुम हमारी नाव पर आ जाओ। बड़े आराम से पहुँच जाओगे। हम भी तो गंगासागर को ही जा रहे हैं। मैंने उनकी बात नहीं मानी। जल्दी पहुँचने के लिए वे छोटी नदी के सीधे रास्ते से नाव को ले चले। गोस्वामीजी ने विशाल ब्रह्मपुत्र की अनुकूल धारा में बजरे को छोड़ दिया। देखते-देखते हवा भी हम लोगों के लिए सहायक हो गई। पाल खोलकर गोस्वामीजी शान्ति से बैठे रहे। बड़ा भारी बजरा सन-सनाता हुआ चलने लगा। गोस्वामीजी के कहने पर हम सभी लोग एक-एक पतवार लेकर बजरे को खेने लगे। किन्तु बहुत ही तेज चलनेवाले बजरे को पतवार की सहायता से चलाने का अवसर ही नहीं मिला। पतवार के जल को छूते ही बजरा न जाने कैसे खूब तेजी से जाने लगा। तब गोस्वामीजी खूब उत्साह देकर तमाशा देखने लगे। पतवार चलाना आवश्यक न समझकर हम लोगों ने अन्त में उस काम से हाथ खींच लिया! नदी की किनारों की सुन्दरता देखते-देखते, थोड़े ही समय में, हम लोग गंगासागर के समीपवर्ती एक बालू के टीले पर पहुँच गये। वहीं पर नाव लगा दी गई। बालू के टीले पर उतरकर हम सब लोगों ने नहा-धोकर भोजन किया।

इसी समय देखा कि वे महात्माजी भी आ गये हैं। सीधे मार्ग से झटपट पहुँचने के लिये वे जिस नदी की राह होकर रवाना हुए थे, उसमें दुर्भाग्य से, विघ्न घट गया था। उलटे बहाव और विपरीत जोरों की हवा में पड़कर उनकी नाव बड़े संकट में फँस गई थी।

दूसरा उपाय न देख, जी जान से पतवार चलाकर वे पसीने से तर हो गये और हाँफते-हाँफते हमारे बजरे के पास पहुँच पाये। उन्होंने अपनी डोंगी को हमारे बजरे से ही बाँध दिया। अब मैं निश्चिन्त हुआ कहकर, वे मेरे साथ धर्मचर्चा करने लगे। इधर गोस्वामीजी की आज्ञा से हम लोगों का बजरा खोल दिया गया।

मैंने महात्माजी से पूछा-'भगवान् को प्राप्त करने का कौन-सा सहज उपाय है?

उन्होंने कहा-भगवान् के यथार्थ नाम से निरन्तर उनको पुकारते रहने से ही सहज उनकी प्राप्ति हो जाती है।

मैं-तो क्या भगवान् का भी यथार्थ और नकली नाम है?

महात्मा-किसी ने जिस नाम से पुकारते हुए उनके दर्शन कर लिये हैं, उसके मुख से जो नाम मिले, वही भगवान् का यथार्थ नाम है।

मैं-जब तक वस्तु का पता ही न था, तब तक उसका कोई नाम होगा किस तरह? पहले वस्तु है और फिर उसका नाम हैं न?

महात्मा-किसी समय भगवान् की ही कृपा से एक श्रेणी के लोग उत्पन्न हुए थे, जिन्होंने उनकी कृपा से उनको प्राप्त किया था। वे लोग सर्वसाधारण के लिए, भगवान् को प्राप्त करने के जितने उपाय बताए हैं, उन उपायों का ही हम लोगों को सहारा है। आसानी से भगवान् को प्राप्त करने के लिए उन प्रणालियों का अनुसरण करने के सिवा दूसरा उपाय नहीं है।

मैं-बतलाइए, इस समय मेरा क्या कर्तव्य है। गुरु भी मुझे मिल गये हैं; और मुझे रीति भी बतला दी गई है।

महात्मा-तो अब तुम्हें चिन्ता किस बात की है? तुम्हें सद्गुरु का

आश्रय मिल गया है। उनके उपदेश को मानकर चलने से ही सहज में भगवत्प्राप्ति हो जाएगी। तुम्हारे गुरुदेव से कुछ भी छिपा नहीं है।

स्वप्न देखकर मैं जाग पड़ा। कैसा अद्भुत स्वप्न है! महात्मा लोग भी इस प्रकार स्वप्न के द्वारा दया करके, गुरुनिष्ठा का उपदेश देते हैं। पता नहीं निर्विचार हो, गुरु की आज्ञा का पालन करने की मति मेरी कब होगी?

११ माघ बुधवार

कष्टहारिणी और मुंगेर नाम सार्थकता।

मैं प्रायः प्रतिदिन दोपहर को भोजन करके कष्टाहारिणी के घाट पर जाता हूँ। वहाँ शाम तक नाम किया करता हूँ। घाट बड़ा ही मनोहर है। थोड़ी देर बैठने से ही गंगाजी की हवा और स्थान के प्रभाव से देह-मन की सारी जलन मानो एकदम दूर होकर, शांत हो जाती है, बिना ही उपाय किये चित्त अपने आप एकाग्र हो जाता है। मालूम नहीं कि गंगाजी पर ऐसा सुन्दर भजन का स्थान और कहीं है या नहीं। घाट गंगाजी के बीच में हैं। दाहिनी, बायीं तथा सामने तीनों ओर गंगाजी का दृश्य बहुत ही मनोरम है। साधु-संन्यासियों के ठहरने के लिए घाट पर छोटे-छोटे भजनालय बने हुए हैं। इन कुटियों में सदा-साधु-संन्यासी ध्यान में मग्न बैठे हुए मिलते हैं। घाट पर कष्टहारिणीजी प्रतिष्ठित हैं। इन्हीं के नाम से इस घाट का नाम कष्टहारिणी हो गया है। विभिन्न सम्प्रदायों के साधु और उदासी लोग यहाँ पर निर्विवाद रूप से, अपने-अपने आसन पर भजन में मन लगाये हुए बैठे हुए हैं। यहाँ आ जाने से फिर घर जाने की इच्छा नहीं होती। अब तक मैं जितने स्थानों को देख चुका हूँ, उनमें यह स्थान साधन-भजन करने के लिए सबसे बढ़िया जान पड़ता है।

साधु-सज्जनों के भजन के प्रताप से इस स्थान में भगवान् की शक्ति का ऐसा एक अद्भुत प्रभाव जागृत हुआ है कि घाट पर पहुँचते ही सचमुच भीतर का सारा सन्ताप दूर हो जाता है। 'कष्टहारिणी' नाम की सार्थकता का अनुभव होता है। मैंने सुना है कि प्राचीन समय में यहाँ पर 'मंगु' नामक ऋषि का आश्रम था, इसी से बस्ती का नाम भी मुंगेर हो गया है।

१७ माघ १२९५ ब.सन्

चतुर्थ स्वप्न-गुरु की आज्ञा पालन में संकोच।

आज भोर रात्रि को एक सुन्दर स्वप्न देखा। हजारों गुरुभाईयों के साथ गंगास्नान करने के लिए एक पक्के घाट पर आया हूँ। सभी अपनी-अपनी धुन में स्नान कर रहे हैं। मैं घाट की सीढ़ी पर खड़ा रहा। इसी समय देखा कि गुरुदेव एक ओर से द्रुत गति से चले आ रहे हैं। दोनों ओर और सामने की ओर देखकर हमीं लोगों में से किसी-किसी को कूदकर पकड़ते हैं, मैं समझ न सका कि उनको पकड़कर वे क्या कहते हैं या क्या करते हैं। गुरुदेव क्रम से जितने मेरे समीपवर्ती होने लगे, उतना ही मैं डरने लगा कि कहीं मुझे भी न पकड़ लें। अकस्मात् दाहिने, बाँयें और सामने के सभी को पार करके उन्होंने आकर मुझे पकड़ ही लिया और कहा-**'झटपट नंगा हो जा, तेरे सारे बदन पर एक बार हाथ फेर दूँ। तुझे एक दुर्लभ अवस्था प्राप्त हो जायगी।**' ज्योंही गुरुदेव ने यह बात कही त्योंही मैं काँप उठा, इन्द्रिय चंचलता आ गई! एकाएक दुर्दमनीय काम की उत्तेजना से मैं अस्थिर हो गया। तब मैंने गुरुदेव के चरणों में गिरकर कहा-मुझे संभल जाने, स्थिर होने के लिए दो मिनट का समय दीजिए। गोस्वामीजी ने बार-बार लँगोटी खोलने के लिए कहकर भी

जब देखा कि मैं उनका कहना नहीं मान सका, संकोच कर रहा हूँ, तब उन्होंने कहा-**'इस बार नहीं हुआ। तीन दिन बाद मैं फिर आऊँगा।'** बस, वे अन्तर्धान हो गये। तभी मैं भी जाग पड़ा। स्वप्न देखने से मन में अत्यन्त अस्थिरता का अनुभव हुआ।

मुंगेर की विशेषता।

कोई दो महीने मुझे मुंगेर में हो गये। बहुत दिन की बात है कि प्रचारक-अवस्था में गोस्वामीजी कुछ समय तक मुंगेर में ठहरे थे। उनकी प्रिय पुत्री सन्तोषिनी की मृत्यु इसी मुंगेर में हुई थी। सुना है कि उस समय वे शोक के मारे उन्मत्त से हो गये थे। 'शोकोपहार' नामक एक पुस्तक में उन्होंने उस समय की सारी मानसिक अवस्था का वर्णन विस्तृत रूप से किया था। यहीं, मुंगेर में एक महापुरुष से भेंट होने पर गोस्वामीजी के धर्मजीवन में आमूल परिवर्तन की शुरूआत हुई। 'आशावती का उपाख्यान' में भी गोस्वामीजी ने उसका कुछ-कुछ परिचय दिया है। यहाँ का महातीर्थ कष्टहारिणी सचमुच मानो सारे मानसिक कष्टों को गंगाजल में धोकर शान्ति प्रदान करती है। घाट की सुन्दरता तो अतुलनीय है। पीछे की ओर किला तो एक सुन्दर तस्वीर के समान जान पड़ता है।

यहाँ पर दो महीने रहकर साधन-भजन करने से विशेष लाभ मालूम हुआ।

फाल्गुन और चैत्र १२९५

भागलपुर में निवास।

बी.ए. परीक्षा देने के लिए मँझले दादा ने मुंगेर से कलकत्ता हेयर स्कूल में तबादला करवा लिया। मैं भागलपुर चला आया। भागलपुर में इस प्रान्त के स्कूल इंस्पेक्टर अपने बहनोई, श्रीमथुरानाथ

चट्टोपाध्याय के यहाँ ठहरा। भागलपुर भी मुझे पसन्द आया। मथुरा बाबू जिस मकान में रहते हैं वह और भी अच्छा है। यह मकान बर्दवान के महाराजा का है और बहुत विस्तृत जगह में बना हुआ है। खंजरपुर में बिल्कुल गंगा-किनारे है। इसी से मकान का नाम 'पुलिनपुरी' है। पुलिनपुरी के सामने के बरामदे को स्पर्श करती हुई गंगाजी बह रही है। स्थान जैसा सुनसान है वैसा ही आनन्ददायक है। मेरे रहने के लिए बिल्कुल गंगा किनारे कमरा मिला है। कुछ दिन यहाँ रहकर खूब साधन-भजन और समय-समय पर सत्संग करने लगा। कुछ समय के पश्चात् यहाँ भी मेरा स्वास्थ्य खराब हो गया; दर्द भी अत्यन्त बढ़ गया।

वैशाख से पूरे माह १२९६

अयोध्या पहुँचना। साधुओं का सत्संग।

सबकी सलाह से मैं बिना देर किये बैशाख के प्रारम्भ में, फैजाबाद बड़े दादा के पास चला आया। अयोध्या से ५-६ मील की दूरी पर फैजाबाद में बड़े दादा श्रीहरकान्त बन्द्योपाध्याय सरकारी अस्पताल में असिस्टेंट सर्जन हैं। अस्पताल की लम्बी-चौड़ी जमीन में अहाते के भीतर एक ओर, एक सुन्दर दो-मंजिले मकान में दादा रहते हैं। उनके साथ मेरा परम आनन्द से समय बीतने लगा। अस्पताल के काम बाद, सारा समय दादा धर्मचर्चा में ही व्यतीत किया करते हैं। उनके सभी साथी उच्चपदस्थ हैं और अंग्रेजी ढंग से सुशिक्षित है, फिर भी सज्जन निष्ठावान् और धर्मगतप्राण हैं। ये लोग धर्म-चर्चा में बहुत ही आनन्द और हृदय से आग्रह प्रकट करते हैं। बड़े दादा ने लगातार कई दिन तक मेरे रोग का परीक्षण बड़ी बारीकी से किया। दवा-दारू से इस बीमारी का ठीक होना असम्भव

समझकर, उन्होंने सदाचारपूर्वक और स्वाभाविक रहने का परामर्श दिया। दर्द जब कुछ कम रहता है। तब शाम-सवेरे मैं सड़क पर घूम लेता हूँ। अयोध्या और फैजाबाद में साधु-सन्तों की कमी नहीं है। गुरुदेव ने कहा था-छद्म वेश में महापुरुष सब जगह विचरण करते हैं। काशी, वृन्दावन, अयोध्या आदि तीर्थों में वे अधिकांश रहते हैं। उनकी पहचान कठिन है। कभी तो कुली और मजदूर के वेश में भी वे लोग घूमते-फिरते हैं। गुरुदेव की इन बातों को स्मरण रखकर मैं प्रतिदिन दोनों वक्त रास्ते में घूमता हूँ; और अपने दोनों ओर तथा सामने जिनको देखता हूँ, उन सबको मन ही मन प्रणाम करता हूँ। भगवान् की कृपा से धीरे-धीरे इस समय मुझे कुछ महात्माओं के दर्शन मिले। अयाचित रूप से उन्होंने असाधारण कृपा की जिससे अपना अयोध्या आना मैं सार्थक समझता हूँ। साधन-भजन करने की यहाँ खूब इच्छा होती है। मन उदासीन-सा रहता है। देखता हूँ यहाँ के साधु-महात्माओं के सत्संग के प्रभाव से गुरु के प्रति मेरे चित्त का आकर्षण एवं निष्ठा बढ़ रही है।

श्रावण १२९६

कलकत्ता में गोस्वामीजी के दर्शन! साधु महात्माओं के दर्शन का विवरण।

यहाँ पर कुछ महीने तक रहने के बाद गुरुदेव के दर्शनों के लिए मैं बहुत ही व्याकुल हो उठा। इसी समय ऐसी भगवत्कृपा हुई कि किसी पारिवारिक विशेष आवश्यकता से, दादा भी मुझे घर भेजने को तैयार हो गये। मैं घर के लिए रवाना हो गया। कलकत्ता पहुँचने पर सुना कि गोस्वामीजी उसी शहर में है। गुरुदेव के सत्संग के लोभ से मेरी इच्छा हुई कि कुछ दिन कलकत्ता में ही ठहर जाऊँ। मैं

झामापुकुर मुहल्ले में मँझले दादा के यहाँ ठहरा।

आज अपराह्न गोस्वामीजी के दर्शन करने की इच्छा से निकला। सुकिया स्ट्रीट पर एक छोटे दो-मंजिले मकान में वे ठहरे हैं। साथ में श्रीधर, श्यामाकान्त पण्डितजी और गोस्वामीजी का परिवार है।

गोस्वामीजी के पास पहुँचकर देखा कि कमरे में बड़ी भीड़ है; भक्तिभाजन ब्राह्मप्रचारक श्रीशिवनाथ शास्त्री, श्रीनगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय आदि गणमान्य व्यक्ति गोस्वामीजी से धर्म-चर्चा कर रहे हैं। शिवनाथ बाबू ने अपनी एक अवस्था के बारे में कह सुनाया। सुनकर गोस्वामीजी ने कहा-**षट्चक्र-भेदी महात्मा लोग जिस अवस्था में रहते हैं, उसका आनन्द शिवनाथ बाबू उपासना करते समय कभी-कभी सहस्रार में स्थिर होकर लेते हैं। यह बहुत सहज नहीं है।**

मुझे देखकर गोस्वामीजी ने बुलाकर अपने सामने बैठाया और फिर कहा-**क्यों? तुम अयोध्या से चले आये? वहाँ समय-समय पर तुम्हें अच्छे-अच्छे साधु-महात्माओं के दर्शन हुए हैं न?**

मैं-जी हाँ। कुछ महात्माओं के दर्शन हुए थे।

गोस्वामीजी-**उनके सम्बन्ध में जो कुछ तुम्हें मालूम हुआ हो, वह कहो।**

मैं सबके सामने विस्तार के साथ कहने लगा।

नागा बाबा।

मैं कई महीने तक फैजाबाद में रहा। इस अवधि में मुझे ३-४ महात्माओं के दर्शन हुए हैं। अयोध्या जाने से पहले दादा के पत्र द्वारा नागा बाबा के बारे में मालूम होने पर, मैंने आपको बताया था। उस समय आपने कहा था-'ये एक बड़े शक्तिशाली सिद्ध पुरुष हैं।'

फैजाबाद पहुँचने पर मैने पहले उन्हीं के दर्शन किये। वे 'गुप्तारघाट' से डेढ़-दो मील की दूरी पर, सरयू के उस पार, सुनसान विस्तृत मैदान में रहते हैं। मिट्टी का बहुत ऊँचा टीला या मंच बनाकर, उसमें ऊपर चढ़ने को दो-तीन सीढ़ीदार स्तर-सी बना ली है। सबसे ऊँचे स्तर पर समतल धरती जो कोई ५० फुट ऊँची होगी, उसी पर खुली जगह में नागा बाबा का आसन है। वहाँ बहुत दूर तक पेड़-पौधे नहीं है। चारों ओर घास का मैदान है। गुप्तारघाट अथवा कैंटोन्मेंट से उस ओर देखो तो मोटे खम्भे के ऊपर पक्षी की तरह बाबाजी दिखाई पड़ते हैं। उस टीले के प्रायः दोनों ओर सरयू नदी है; अन्य दो दिशाओं में दूर तक खाली विशाल मैदान है। यह मैदान सरयू तट का बलुआ मैदान है। पतली-सी नहर सरयू के एक ओर आकर नागा बाबा के आसन-स्थान को घेरती हुई दूसरी ओर सरयू में ही जा मिली है। उसमें थोड़ा पानी रहता है। मैंने सुना कि एक बार इस नहर की धारा बढ़ जाने से जल इतना बढ़ा कि धीरे-धीरे नागा बाबा के आसनस्थान के समीप आने लगा। तब बाबाजी बारबार कहने लगे-'माई, इधर मत आ। किन्तु जल का बढ़ना न रुका। अब बाबाजी ने कुछ नाराज होकर कहा-'अच्छा! ऐसा है? अच्छा, बन्द हो जाओ।' तभी से नहर बिल्कुल बन्द हो गई है। शहर के सभी आदमी कहते हैं-'बाबाजी सिद्ध पुरुष हैं। उनके कहने से ही नहर की ऐसी हालत हो गई है। फैजाबाद में ठण्ड और गर्मी दोनों ही काफी पड़ती है। पौष और माघ में पक्के कमरे के भीतर भी आग तापनी पड़ती है; फिर गर्मियों में, जेठ-बैशाख में, दिन को ९ बजे के बाद घर से बाहर निकलना मुश्किल है। पाँच मिनट तक धूप में रहते ही ऐसा लगता है कि शरीर जल गया और फफोले पड़ गये। किन्तु

नागा बाबा गर्मी और ठंड में बिना किसी छत के, किस तरह दिन-रात नंगे पड़े रहते हैं, यह सोचकर मैं दंग रह गया। यह जानने की मुझे इच्छा हुई कि उन्होंने बस्ती से इतनी दूरी पर क्यों अपना आसन लगाया। एक दिन बाबाजी से पूछा तो उन्होंने अपने जीवन की बहुत-सी बातें बतलाई। उन्होंने बताया कि वे बहुत दिनों तक तीर्थयात्रा करने के बाद, अन्त में फैजाबाद में गुप्तारघाट पर आये। भीड़-भाड़ से दूर रहने का उनका नियम है, इसी से मैदान में जाकर उन्होंने आसन लगाया। एक दिन गहन रात्रि में सामने धूनी जलाये हुए वे नाम का जप करते-करते ऊँघकर जलती हुई आग पर गिर पड़े। इससे शरीर कई जगह बुरी तरह झुलस गया। बाबाजी ने जल जाने के घावों की जलन से बेचैन होकर, चिल्लाकर बड़ी व्याकुलता से रामजी से कहा-'अरे रामजी, तुम्हारे लिए मैंने इतना किया और तुमने मेरी यह दशा कर दी।' यह कहते ही बाबाजी ने देखा कि आकाशमार्ग से एक भंयकर मूर्ति सों-सों शब्द करता चला आ रहा है। देखते ही देखते वह मूर्ति बाबाजी के सामने आ गई और बाबाजी को जोर से पकड़कर जलती हुई आग में पटककर रगड़ने लगी, आग के बिल्कुल बुझ जाने पर धूनी की भस्म उठाकर बाबाजी के बदन में मल दी। इसके बाद उसी शक्तिशाली आकाशचारी ने कहा-'यहीं रहो आसन कभी मत छोड़ना। तुम्हें कोई उपाधि स्पर्श नहीं कर सकेगी, सिद्ध हो जाओ।' तभी से बाबाजी आसन छोड़कर कहीं नहीं गये। इसके लिए बाबाजी की कड़ी परीक्षाएँ भी हुई।

गोस्वामीजी-**वह कैसी?**

मैं-वे जिस मैदान में रहते हैं, उसके बगल में ही फैजाबाद

कैंटोन्मेंट है। लम्बा-चौड़ा मैदान होने से वहीं पर उत्तर पश्चिम प्रान्त की गोलन्दाज सेना की गोलाबारी हुआ करती है। गोले छोड़ना शुरू होने से पहले मैदान के पासवाले गाँवों को नोटिस दे दी जाती है। तब सभी को दो-चार दिन के लिए स्थान छोड़कर अन्यत्र चले जाना पड़ता है। एक बार गोलाबारी इसी तरह शुरू होने से पहले नोटिस जारी की गई। सब लोग घर-द्वारा छोड़कर दूसरी जगह चले गये, किन्तु नागा बाबा अपने आसन से न हटे। सरकार की ओर से उन्हें वह स्थान छोड़ देने के लिए बार-बार हिदायत दी जाने लगी। बाबाजी ने कहा-'बच्चा लोगो, खेलो। हमारा आसन सिद्ध है, इसको हम छोड़ नहीं सकते। कुछ नहीं होगा। तुम लोग अपना खेल खेलो।' मैंने सुना है कि इसके बाद सरकार की ओर से भय प्रदर्शन करने पर भी बाबाजी अपना आसन नहीं छोड़े। अब हुक्म जारी हुआ कि निर्दिष्ट समय के भीतर यदि बाबाजी वहाँ से न हटें, तो उनकी मौत के लिए सरकार जिम्मेदार न होगी। ठीक समय पर गोलाबारी शुरू हो गई-सारा मैदान अग्निमय हो गया, बाबाजी अपने आसन पर स्थिर भाव से धूनी जलाये हुए बैठे रहे। कर्नल क्रेली थोड़ी-थोड़ी देर बाद दूरबीन के सहारे देखने लगे कि बाबाजी जिन्दा है या नहीं। असंख्य गोले-गोलियाँ चलने लगीं, इधर बाबाजी ने सिर्फ अपना बाँया हाथ ढाल की तरह सामने कर लिया। तमाम गोले बाबाजी के दाहिने, बाँये तथा ऊपर होकर लगातार जाने लगे, किन्तु बाबाजी का बाल भी बाँका न हुआ। यह देखकर कर्नल क्रेली स्तम्भित रह गए। अन्त में गोलाबारी समाप्त हो जाने पर कर्नल ने बाबाजी के पास आकर आदरसहित उन्हें बार-बार सलाम करके कहा-'बाबाजी, आज आपने अलौकिक शक्ति का जो प्रभाव दिखलाया

है, उसे मैं जिन्दगी भर भूल नहीं सकूँगा। गोलाबारी के समय मैंने आपको हर समय एक ही हालत में स्थिर बैठा हुआ देखा है, इससे मैं स्तब्ध हो गया हूँ।' मैंने सुना है कि सरकार की जिस पुस्तक में अलौकिक घटनाएँ लिखी जाती है, उसमें इन घटनाओं को भी साहब ने लिख रखा है।

गोस्वामीजी-**नागा बाबा बड़े शक्तिशाली पुरुष हैं, तोप का गोला भला उनका क्या कर सकता है? आजकल ऐसे शक्तिशाली लोग बहुत कम देखे जाते है।**

मैंने पूछा-उस दिन उस प्रकार नागा बाबा के पास कौन आये थे? कौन आकर उनको सिद्ध बना गये?

गोस्वामीजी-**भक्तराज महावीर पधारे थे। उन्हीं के वरदान से नागा बाबा सिद्ध हुए हैं।**

'महावीर क्यों आये?'

गोस्वामीजी-**राम के नाम से दीर्घश्वास के कारण, फिर रामभक्त महावीर क्या स्थिर बैठे रह सकते हैं? बाबाजी ने तुमसे कुछ कहा?**

मैं-बाबाजी के दर्शन करने को मैं अक्सर जाता था और साधारणतः यही आशीर्वाद माँगता था कि मुझे विश्वास और भक्ति मिले। आशीर्वाद माँगने पर बाबाजी चौंक उठते थे; मेरे सिर पर हाथ फेरकर बड़े स्नेह से कहते थे-अरे तुमने तो भगवान् का आश्रय लिया है। तुम्हारे गुरुजी बड़े दयालु हैं! वही तो मालिक है। वही विश्वास और भक्ति देनेवाले हैं। पूर्ण बन जाओगे। आनन्द करो, आनन्द करो।

पतितदास बाबाजी।

फैजाबाद पहुँचते ही दादा से सुना-एक बहुत ही प्राचीन महापुरुष अयोध्याजी के पथ पर किसी निर्जन कुटी में रहते हैं; किन्तु उनके दर्शन मिलना बहुत कठिन है। पहले कभी-कभी लगातार छः महीने तक वे आहार-निद्रा त्यागकर एक आसन से समाधि लगाये बैठे रहते थे, दूसरी छमाही में, किसी-किसी निर्दिष्ट समय पर, लोगों को उनके दर्शन हो पाते थे। आजकल तीन महीने के अन्तर पर तीन महीने समाधिस्थ रहते हैं। मुझे खबर मिली कि आजकल वे समाधि में नहीं है। अतएव उनके दर्शन के लिए मैं उतावला हो गया। बाबाजी के दर्शन करने को जाने के लिए दादा बार-बार मना करने लगे; क्योंकि बाबाजी के भजनकुटीर का दरवाजा अक्सर बन्द रहता है और जब तक वे स्वयं किसी से भेंट करने की इच्छा न करें, तब तक सब किसी को उनके दर्शन नहीं हो पाते। जो भी हो, मेरा अत्यन्त आग्रह देखकर दादा ने मुझे जाने की सम्मति दे दी। मैं बड़ी उत्सुकता से बाबाजी के दर्शन करने चल पड़ा। फैजाबाद से अयोध्या जाने पर बड़े भारी मैदान के सामने रास्ता दो ओर बँट गया है। एक दाहिने तरफ देवकाली की ओर, और दूसरा बायीं तरफ रानूपाली की ओर। इसी रानूपालीवाले रास्ते के बायीं ओर ही बाबाजी का आश्रम है।

मैंने धीरे-धीरे आश्रम पहुँचकर देखा कि बाबाजी के भजन कुटीर का दरवाजा बन्द है। मैंने बाहर से ही बाबाजी के उद्देश्य से साष्टांग प्रणाम किया। सिर उठाते ही देखा कि उन्होंने दरवाजा खोल दिया है। मुझे बड़े स्नेह से बुलाकर कहा-'आओ बच्चा, आओ, यहाँ बैठो। थोड़ी देर पहले हमें मालूम पड़ा कि तुम यहाँ आओगे, तभी से हम तुम्हारे लिए बैठे हैं।' बाबाजी अपलक मेरी

ओर देखते रहे। थोड़ी देर में चौकन्ने लगे और कहने लगे-'अहा! धन्य हो गया! धन्य हो गया! दुर्लभ सद्गुरु का आश्रय पाया है! धन्य हो गया!' जब बाबाजी की उमंग कुछ कम हुई तब मैंने कहा-'बाबाजी, मेरा भला कैसे होगा?' बाबाजी ने उत्साहपूर्वक मेरे सिर पर हाथ फेरकर कहा-'और क्या बच्चा? सब तो पूरन हो गया। उसी काले का ध्यान करो।' मैं देर तक उनके पास बैठा रहा। वे लगातार रोते रहे, और ठहर-ठहरकर वही एक बात कहने लगे। बाबाजी का शरीर बहुत पुराना है। कोई डेढ़ सौ वर्ष उम्र होगी। लम्बा कद है, गोरा रंग है, चेहरा गुलाब की तरह लाल है, दाढ़ी-मूँछ और केश सब सफेद हैं, हाथों-पैरों के नाखून इतने बढ़े गये हैं कि हुक की तरह मुड़ गये हैं। बात-बात में उनकी आँखों से आँसू टपक पड़ते हैं। देखकर बड़ी। प्रसन्नता हुई।

गोस्वामीजी-**पतितदास बाबाजी तान्त्रिक साधन करके सिद्ध हुए हैं। ये बड़े भारी प्रेमिक हैं। देखो, मनुष्य तान्त्रिक साधन करने पर भी कैसा प्रेमिक होता है! ऐसे महापुरुषों के दर्शन पा जाना सहज नहीं है। रंगमहल में हनुमानगढ़ी में किसी साधु के दर्शन हुए हैं?**

गोपालदास बाबा।

एक दिन अकस्मात् एक साधु ने आकर दादा से कहा-'बाबू साहब, रंगमहल में एक साधु कान के दर्द से बड़ी तकलीफ पा रहे हैं। आपको खबर दी है, अब उनको देखना या न देखना आपकी इच्छा है। उनके पास रूपया-पैसा नहीं हैं। न तो वे आपकी फीस दे सकेंगे और न अयोध्या तक आने जाने का गाड़ी का किराया ही।' यह खबर पाते ही दादा साधु के पास जाने के लिए अस्थिर हो उठे,

तुरन्त ही एक गाड़ी मँगवाकर, वे मुझे साथ लेकर अयोध्या रवाना हो गये। थोड़ी देर में हम लोग उस जगह पर पहुँच गये। हमने रंगमहल में अनेक कमरों में घूम-फिर कर एक अँधेरे कमरे में प्रवेश किया। उस कोठरी के बगल में जमीन के नीचे की एक गुफा से एक बूढे साधु निकलकर आये। उनके कान के भीतर बहत मैल जम गया था। दादा ने जब उसे निकाल दिया, तब दर्द कम हो गया।

बाबाजी को देखने से बड़ा आश्चर्य हुआ। शरीर दुबला-पतला है। ऐसा लगता है मानो हड्डियों के ढाँचे पर सिर्फ चमड़ी है। चमड़ी का रंग अस्वाभाविक सफेद है-बिल्कुल दूध की तरह किन्तु मुख अच्छा पुष्ट, चमकीला और तेजपूर्ण है। सदा मुस्कुराते रहते हैं। मैंने सुना कि बाबाजी की उम्र डेढ़ सौ वर्ष से भी ऊपर है। वे दिन भर में सिर्फ एक बार शेषरात्रि में, शौच आदि के लिए बाहर निकलते हैं। रंगमहल के साधुओं को साल भर में एक बार भी दर्शन नहीं होते। वे हमेशा इसी गुफा में रहते हैं। लौटते समय नमस्कार करके बाबाजी से आशीर्वाद माँगा। बाबाजी ने हाथ जोड़कर, गद्गद होकर, कहा-रामजी बड़े दयालु हैं, बड़े दयालु हैं! उन्हीं का नाम लेकर उन्हीं के स्थान में पड़ा हूँ। अब जो करें रामजी। बच्चा, बड़े भाग्य से रामजी का आश्रय पाया है। अब नाम जपो और आनन्द करो।

तुलसीदास बाबा।

मैं फिर बताने लगा-अयोध्या में सरयू-किनारे एक मंदिर में बाबा तुलसीदासजी रहते हैं। अयोध्या के वर्तमान साधुओं में ये बहुत प्रसिद्ध हैं। दर्शन करने गया तो देखा कि बाबाजी तो नाम जप में मग्न हैं। बहुत-से लोग उनके दर्शन कर रहे हैं, किन्तु बाबाजी का किसी की ओर ध्यान नहीं है। बीच-बीच में मानो तन्द्रा से चौंककर

सबकी ओर स्नेह से देख लेते हैं और फिर मग्न हो जाते हैं। बाबाजी ने दादा को देखकर बड़े आदर से सामने बैठने के लिए इशारा किया, और बड़ी प्रसन्नता से पूछा-'आनन्द है? वे फिर जप करने लगे। बाबाजी माला लेकर जप करते हैं; किन्तु माला के साथ हाथ का ही संबंध था। मन तो मानो कहीं और डूब गया है। बाबाजी तो कभी किसी को कुछ उपदेश नहीं देते। सिर्फ यही कहते हैं 'नाम करो, नाम करो।'

अन्धे बाबाजी।

गोस्वामीजी ने पूछा-**और कहीं किसी को देखा?**

मैं-जेल-दरोगा नन्द बाबू ने मुझे बतलाया कि फैजाबाद के बेगमगंज में एक महात्मा गुप्त रूप से रहते हैं। वे कृपा करके मुझे उक्त साधु के यहाँ ले गये। ये महात्मा बहुत ही वृद्ध हैं। पहले ये किसी राजा के मन्त्री थे। राज्य के संबंध में किसी बड़े अनर्थ की सूचना पाकर ये भाग खड़े हुए। रास्ते में किसी आकस्मिक विपत्ति से इनकी आँखें जाती रहीं। पीछे एक भले मानस की कृपा से ये अयोध्या आये। उन्हीं के आश्रय में रहकर ये बहुत दिनों से साधन-भजन करते आ रहे हैं। मैंने सुना कि ये अगाध पण्डित हैं। बहुत-से शास्त्र, पुराण और दर्शन आदि इनको कण्ठस्थ हैं। बाबाजी ने मुझसे कहा-'कठोर साधन और तीव्र वैराग्य के बिना कुछ भी नहीं होता। पार्थिव आँखें न रहें तो कुछ भी हानि नहीं है। सदाचारपूर्वक रहकर, गुरु का आश्रय लेते हुए, शास्त्र की रीति के अनुसार कोई साधन-भजन करे तो गुरु की कृपा से उसका इहलोक और परलोक दोनों एक हो जाते हैं।' दर्शन-विज्ञान द्वारा बाबाजी इन बातों को प्रमाणित करने लगे।

गोस्वामीजी ने कहा-**अयोध्या में हनुमानगढ़ी बड़ा ही जाग्रत् स्थान है। वहाँ पर प्रायः महापुरुष आया करते हैं। किन्तु वे अपना परिचय स्वयं न दें तो न कोई उनका परिचय नहीं पा सकता है और न पकड़ सकता है। गुप्तारघाट और हनुमानगढ़ी यही दो स्थान अब तक ठीक बने हुए हैं। प्राचीन अयोध्या का और सब सरयू के गर्भ में चला गया।**

गोस्वामीजी से बातचीत करके मैं घर वापस चला आया। कुछ दिन तक कलकत्ता में ठहरकर, मैं इसी प्रकार प्रतिदिन उनका सत्संग करने लगा।

योगजीवन और शान्ति सुधा के विवाह का उत्सव।

पिछले कई महीने से मैं गोस्वामीजी के पास नहीं था। अतएव उस समय के उनके क्रियाकलापों का विवरण मेरी डायरी में नहीं है। कलकत्ता और गेंडारिया में कुछ समय तक रहकर गुरुभाईयों से जो कुछ सुना है उसको संक्षेप में यहाँ लिख लेता हूँ। यदि कभी गोस्वामीजी के मुँह से ये बातें सुनने को मिले तो विस्तार से लिख लूँगा।

गोस्वामीजी ने अपने बेटे श्रीयोगजीवन गोस्वामीजी का विवाह श्रीमती वसन्तकुमारी देवी और उनके बड़े भाई श्रीजगबन्धु मैत्र से अपनी बेटी श्रीमती शांति सुधा देवी का विवाह फाल्गुन की २६ तारीख १२९५ को संपन्न किया है। आधुनिक रीति से सुशिक्षित और अच्छे सम्पन्न, धनी खानदान में बेटे-बेटी का विवाह करना, गोस्वामीजी के लिए कुछ कठिन न था, किन्तु अपने गुरु पहमहंसजी की आज्ञा से उन्होंने घरवालों एवं आत्मीयों के विरोध करते रहने पर भी, यह काम बड़ी प्रसन्नता से कर दिया। जामाता

पहले से ही गोस्वामीजी से दीक्षा ले चुके थे। साधारण ब्राह्मसमाज की रीति के अनुसार ही यह विवाह सम्पन्न हुआ है। ढाका के प्रसिद्ध वकील श्रीईश्वरचन्द्र घोष गोस्वामीजी के भक्त थे। गोस्वामीजी के एक शिष्य को साथ लेकर वे एक दिन आकर कहने लगा-'अब अन्य रीति के अनुसार विवाह क्यों किया जाय? हिन्दुओं की रीति से किये जानेवाले विवाह में ऋषियों का संबंध है, अतएव हिन्दूमत से ही विवाह देना क्या ठीक नहीं?' गोस्वामीजी ने कहा-**'अच्छी बात है'**, किन्तु दो दिन बाद ही उन लोगों को बुलाकर उन्होंने कहा-**मैंने सोचकर देखा है कि हिन्दूमत से इन लोगों का विवाह नहीं सकता। ब्राह्मण का एक भी संस्कार योगजीवन का नहीं हुआ, जगद्बन्धु भी अनेक प्रकार से अनाचार कर चुका है। इनका प्रायश्चित होना बहुत कठिन है, और इसके लिए समय ही कहाँ हैं, तुम लोग कुछ चिन्ता न करो। ब्राह्मपद्धति के अनुसार रजिस्ट्री करके; इनका विवाह करना होगा।**

भक्तिभाजन श्रीनगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय और रजनीकान्त घोष ने क्रम से गोस्वामीजी के बेटे-बेटी के विवाह में पुरोहित का काम किया। विवाह के स्थान में गोस्वामीजी मौजूद थे; गार्हस्थधर्म के संबंध में उन्होंने जो अपूर्व, सारगर्भित और हृदयस्पर्शी उपदेश दिया, उसे सुनने से सभी को लाभ हुआ और सभी विमुग्ध हुए थे। पुत्र को उन्होंने एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए, रहने की आज्ञा दी। गेंडारिया आश्रम में, इसके उपलक्ष्य में, गया के आकाशगंगा पहाड़ के रघुबीर बाबाजी और अन्य कुछ सिद्धपुरुष पधारे थे। विवाह के दूसरे दिन रजिस्ट्री हुई। इस विवाह में साधु-सज्जनों का समागम होने से कई दिन तक आनन्दोत्सव चलता

रहा और उसमें गोस्वामीजी के कई अद्भुत विस्मयकारी योगैश्वर्य अकस्मात् प्रकट हो गये। उनको आगे प्रमाण-सहित लिखने की इच्छा है।

श्रीधर का पागलपन और ठाकुर का अनुशासन।

गेंडारिया-आश्रम रहते समय कुछ दिन तक श्रीधर का पागलपन अत्यन्त बढ़ गया था। उस समय उनके लोकाचार-विरुद्ध, विवेक-शून्य, गर्हित काम से सभी गेंडारियावासी बहुत ही त्रस्त हो गये थे। श्रीधर के उत्पात को बिल्कुल शान्त कर देने के लिए, दिन-रात उद्विग्न रहने वाले कुछ असहिष्णु लोगों ने भयंकर षड्यन्त्र रचा। उन प्रतिहिंसा-परायण व्यक्तियों के दारूण कुचक्र का स्वयं पता पाकर गोस्वामीजी ने उन लोगों को षड्यन्त्र से विरत करने के लिए भक्त श्रीधर को बेहद कठोर दण्ड दिया; और श्रीधर को वहाँ से हटाने के लिए उन्होंने गेंडारियावालों को आज्ञा दी कि न तो कोई श्रीधर का संग करे और न उसे भोजन दे। श्रीधर कभी तो भूखे रहकर और कभी स्नेहमयी माता योगमाया देवी के छुपाकर दिये हुए मुट्ठी-दो मुट्ठी भात खाकर, पेड़ नीचे पड़े रहकर, किसी तरह दिन काटने लगे। उन्होंने किसी तरह गोस्वामीजी का आश्रय नहीं छोड़ा। दण्ड के अतिशय कठोर होने के कारण श्रीधर बच गये। उनकी दुर्दशा देखने से उनके शत्रुओं को भी दया आ गई। उन्हीं लोगों ने अन्त में गोस्वामीजी के पास जाकर इस बार श्रीधर को क्षमा कर देने का अनुरोध किया।

धूलटोत्सव।।

(मेरी असावधानी के कारण निम्नलिखित घटना ठीक स्थान पर सन्निहित नहीं की जा सकी।)

इकरामपुर के डेरे में एक दिन गोस्वामीजी ने बातों ही बातों में कहा-'इस बार धूलटोत्सव होना चाहिए।' गुरुभाईयों में से बहुतों ने धूलट उत्सव का नाम तक नहीं सुना था। श्रीश्रीअद्वैत प्रभु की आविर्भाव-तिथि माघी-सप्तमी को शान्तिपुर में हर वर्ष लगभग एक महीने तक यह उत्सव हुआ करता है। होली के समय जिस तरह गुलाल उड़ाया जाता है, उसी तरह इस उत्सव में संकीर्तन के समय रास्ते की धूल उड़ाई जाती है, इसी से इसका नाम धूलट पड़ गया है।

कई दिनों बाद श्रीकुंजबिहारी घोष के घर गुरुभाईयों का निमन्त्रण था। भोजन के अन्त में श्रीदुर्गाचरण राय ने कहा-'ठाकुर ने जब धूलट की इच्छा प्रकट की है, तब यह उत्सव अवश्य करना चाहिए। खर्च के लिए सब लोग मिल-जुलकर थोड़े रूपये दीजिए।' उसी समय रुपया वसूल करने की चेष्टा होने लगी और गोस्वामीजी को सूचित किया गया कि इस बार धूलट उत्सव किया जायेगा। इसी समय सिलहट से एक अन्धे बाबाजी ढाका पधारे। वे गोस्वामीजी डेरे में ही उतरे और सुमधुर संगीत तथा बाजे की मधुरता से सबको मुग्ध करने लगे। पदावली को गाते समय बाबाजी बड़ी विचित्र रीति से स्वयं मृदंग और मँजीरे बजाते थे। वे एक मँजीरे को चित रख देते और दूसरे को हाथ में लटका लेते, फिर मृदंग के ताल के साथ-साथ हाथ हिलाने के साथ-साथ, एक मँजीरे से दूसरा टकराकर ताल पर बजने लगता था। धूलट उत्सव के कई दिन पहले से ही अन्धे बाबाजी के अपूर्व कीर्तन-गान से आश्रम में सदा आनन्द उमड़ता रहा।

इधर माघी-सप्तमी तिथि आ पहुँची। आठ बजे के लगभग

श्रीकुंजबाबू, विधुबाबू और प्रसन्न मजूमदार आदि कदमतला (कहा जाता है कि श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु के पुत्र श्रीवीरभद्र महाराज ने यहाँ एक कदम के पेड़ तले अपना आसन स्थापित करके कुछ समय तक साधन-भजन किया था। समय पर जब वह पुराना कदम का पेड़ उखड़ गया तब उसी जगह एक दूसरा कदम का पेड़ उग गया। इस प्रकार अब तक वीरभ्रद का आसन -स्थान रक्षित बना हुआ है।) के मकान में गोस्वामीजी को सामने करके गाने लगे

**हरि बोलबो मुखे, जाबो सुखे ब्रजधाम

कलिते तारक ब्रह्म हरिनाम।**-इत्यादि

(मुँह से हरि का नाम लेंगे और आराम से ब्रजधाम को जाएँगे। कलियुग में हरि का नाम ही तारक ब्रह्म हैं।)

गोस्वामीजी रास्ते में गिरकर साष्टांग प्रणाम करने के बाद धूल में लोटने लगे। फिर उठते ही दोनों हाथों से धूल उड़ाकर, 'जय सीतानाथ' 'जय सीतानाथ' कहते-कहते, चारों ओर डालने लगे, शक्तिसंयुक्त धूल का स्पर्श होते ही, पल भर में, सभी के भीतर एक अभूतपूर्व भाव का संचार हो गया। देखते-देखते ही वे लोग भावोन्मत्त अवस्था में हुँकार और गर्जन करते तथा धूल फेंकते हुए, उद्दाम नृत्य करते हुए, गोस्वामीजी के साथ आगे बढ़ने लगे। इसी समय कई और कीर्तन-मण्डलियाँ अकस्मात् आकर संकीर्तन में सम्मिलित हो गईं। अब संकीर्तन के कोलाहल में मृदंगों और मँजीरों' की ध्वनि मिलकर चारों दिशाओं में गूँजने लगी। गोस्वामीजी बहुत उछल-उछलकर नृत्य करते हुए चले किन्तु भावाधिक्य के कारण कुछ पग आगे जाकर, वे गतिरूद्ध होकर गिरने लगे। इस समय उमंग और आनन्द से हलचल-सी मच गई। प्रबल भाव के तूफान ने

लगातार बढ़कर, अपूर्व धूलराशि के स्पर्श से दर्शकों को अभिभूत कर डाला। रास्ते के दोनों ओर स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, कुली-मजदूर, दुकानदार आदि जो जिस हालत में थे, वे उसी अवस्था में मन्त्र-मुग्ध से हो गये। किसी-किसी अटारी पर से स्त्रियों बेसुध होकर संकीर्तन के स्थान में कूदने की चेष्टा करने लगीं, बच्चे भी जगह-जगह पर मूर्च्छित होकर पड़े।

यह महासंकीर्तन इतनी धीमी चाल से आगे बढ़ने लगा कि पाँच-सात मिनट के रास्ते पर बिहारीलालजी के मंदिर में पहुँचने को पूरे तीन घंटे लगे। इस तरह संकीर्तन सुत्रापुर, फरासगंज, बँगलाबाजार, पाटुवाटूली, शाँखारीबाजार और लक्ष्मीबाजार में घूमकर अपराह्न तीन बजे इकरामपुर में वापस आया। तब मकान के दरवाजे पर अन्धे बाबाजी आकर यह गीत गाने लगे-'नगर भ्रमण करे आमार गौर एलो घरे, आमार निताई एलो घरे।' (नगर में भ्रमण करके हमारा गौर घट लौट आया, हमारा निताई लौट आया।)

इस समय फिर से जो भाव उद्दीपित हुआ उसकी नई उमंग में सभी दुबारा उन्मत्त-से हो गये। इस प्रकार बहुत समय बीत गया। धीरे-धीरे संकीर्तन रुकने पर झूमती हुई जनता ने शान्त-भाव धारण किया।

इस विचित्र भावोन्मादकारी धूलटोत्सव के नगरकीर्तन से ढाकावासी लोग बहुत ही मुग्ध हो गये थे। एक अल्पवयस्क बालक के १०-१२ घन्टे तक अचेत रहने से उसके पिता-माता उसके जीवन संकट से आशंकित हो गये। वे लोग गोस्वामीजी के पास आकर, व्याकुल होकर, रोने लगे। तब गोस्वामीजी उनके घर गये और उसको छूते ही वह स्वस्थ हो गया। गोस्वामीजी चले आये।

एक और जगन्नाथ स्कूल का १४-१५ वर्ष का छात्र, धूलटोत्सव के संकीर्तन में, भावावेश में इतना मस्त हो गया कि ६-७ दिन तक रह-रहकर रास्ते-रास्ते में मेरे 'कृष्ण कहाँ हैं' 'मेरे कृष्ण कहाँ है' कहकर रोता हुआ दौड़ता रहा। दिन के अधिकांश समय में उसे बाहरी चेतना नहीं रहती थी। उसका नाम अश्विनीकुमार मित्र है। घर विक्रमपुर में है। उसके घरवाले और स्वजन बहुत दिनों तक उसकी यह हालत देखकर डर गये और गोस्वामीजी के पास आकर दीन भाव से उसके प्रतिकार का उपाय पूछने लगे। गोस्वामीजी ने कहा, **'यह लड़का यदि भक्त वैष्णवों के पास रहता तो इसका बहुत आदर होता। खैर, हुगली जिले के अन्तर्गत एक गाँव में एक भले घर की बहू की हरिकीर्तन में यही हालत हो गई थी। इससे घर के सभी लोग घबरा गये। तब एक ब्राह्मण ने जाकर कहा कि किसी पुजारी ब्राह्मण को निमंत्रण देकर भोजन कराइए और उसका उच्छिष्ट बहू को खिला दीजिए तो उसकी दशा सामान्य हो जायेगी। घर के मालिक ने ऐसा ही किया तो बहू का भावावेश दूर हो गया।'**

मैंने सुना कि अश्विनी के साथ भी ऐसा ही किया गया था, जिससे उसकी स्वाभाविक अवस्था लौट आई थी। इस महासंकीर्तन के प्रधान गायक और वादक श्रीकुंजलाल नाग थे। जिस उमंग के साथ वे छ:घण्टे तक लगातार गाते-बजाते रहे, वह सोचने पर भी बहुत लोगों को आश्चर्य हुआ कि यह काम उन्होंने किस शक्ति के प्रवाह से किया। कुछ दिन पहले इन्हीं कुंजबाबू को एक दिन छाती से लगाकर गोस्वामीजी ने कहा था-**'सनातन गोस्वामीजी का आलिंगन करके महाप्रभु ने जिस सुख का**

अनुभव किया था, वही सुख आज इनके स्पर्श से मुझे मिला है।'

लाल के योगैश्वर्य पर गुरुभाईयों का मुग्ध होना।

शान्तिपुर निवासी बालक साधक लालबिहारी बसु के जातिस्मरत्व और धर्मजीवन में अद्भुत उत्कर्ष प्राप्त कर लेने के साथ-साथ उनकी प्रवीणता और योगैश्वर्य की चर्चा चारों ओर फैल गई है। कई गुरुभाईयों को तो लालबिहारी के प्रभाव में मुग्ध होने के कारण, गोस्वामीजी की ओर भी विशेष ध्यान देने का अवसर नहीं मिल रहा है। गोस्वामीजी साधन-सिद्ध हैं और लाल हैं नित्यसिद्ध- इस ढंग का भाव भी कुछ-एक के मन में उत्पन्न हो गया है। गुरुभाईयों के बीच लाल की असाधारण शक्ति और प्रभाव से किसी-किसी की गुरुनिष्ठा घट जाने और शोचनीय परिणाम होने का सूत्रपात हो गया है।

अग्रहायन प्रथम सप्ताह १२९६

दुबारा भागलपुर आना।

कलकत्ता में कुछ दिन तक ठहरकर मैं घर गया। वहाँ पर मेरा दर्द धीरे-धीरे बढ़ने लगा। अतएव वहाँ पर बहुत देर न रुककर, मैं फिर भागलपुर चला आया।

खंजरपुर की पुलिनपुरी में बिल्कुल गंगा किनारे वह कमरा है, जिसमें कि मैं रहता हूँ। मैंने निश्चय किया कि जब तक आरोग्य लाभ नहीं हो, तब तक यहीं रहूँगा। गोस्वामीजी का साथ छूट जाने से इतने दिनों का डायरी लिखने का उत्साह बिल्कुल ठण्डा पड़ गया। अपने कुत्सित जीवन का चित्र अंकित करने में लाभ ही क्या है, बल्कि जो लोग उसे देखेंगे उनका नुकसान होने की ही आशंका है। यदि मुझे फिर कभी गुरुदेव का दुर्लभ संग प्राप्त हुआ तो जी भरकर

उनकी तीर्थस्वरूप पवित्र लीला को डायरी में लिखकर कृतार्थ हो सकूँगा। आज से मैंने डायरी लिखना बन्द कर दिया।

माघ का प्रथम १२९६ बं. सन्

बहुत दिन बाद डायरी लिखने की प्रवृत्ति।

नियमित रूप से डायरी लिखना बन्द हुए बहुत दिन बीत गए। इस एक वर्ष में कितनी प्रकार की अवस्था आई और चली गई, उसका खयाल करने से सपना-सा जान पड़ता है। गुरुदेव ने और बारोदी के ब्रह्मचारीजी ने डायरी लिखते रहने के लिए मुझे उत्साहित किया था। अब उसका स्मरण करने से कष्ट होता है। मैं नहीं जानता कि अपने पाप-पूर्ण जीवन की घटनाओं को लिखने की मुझे क्या आवश्यकता है। हाँ, ऐसा जान पड़ता है कि अपने जीवन की घटनाओं पर विचार करने से शायद कभी मेरा ही भला होगा। समय-समय पर स्वभाव में विशेष विकार होना और चरित्र की चंचलता देखकर भविष्य में उन्नति की आशा को बिल्कुल त्याग देनी पड़ती है। चारों ओर देखता हूँ कि जिन लोगों का, बहुत ही पवित्र और निःस्वार्थ धर्मात्मा समझे जाने के कारण, किसी समय देशभर में मान था, समय के फेर से, अवस्था के चक्कर में पड़कर, वे कुछ और ही बन गये हैं। उन लोगों के पिछले जीवन की तुलना में मेरा जीवन भला है ही क्या चीज! बिल्कुल तुच्छ समझकर जिन मामूली प्रलोभनों की परवाह एक साधारण आदमी तक नहीं करता, देखता हूँ कि उन्हीं में विधि के चक्र से पड़कर महान तेजस्वी पवित्रात्मा लोग भी चक्कर खा रहे हैं। अतएव मेरा भरोसा ही क्या है? मैं कितना ही भला क्यों न होऊँ, मेरा डिग जाना बहुत ही सहज है; और डिग जाने पर फिर अपनी स्थिति पर पहुँचना बड़ा

कठिन है। मैं बखूबी जानता हूँ कि जब तक मेरे गुरुदेव की सदय पवित्र मूर्ति मेरे हृदय में जागृत रहेगी, उनकी स्नेहदृष्टि मेरी स्मृति में स्पष्ट बनी रहेगी, तब तक मेरा पतन नहीं हो सकता; महात्माओं की बातों पर अविश्वास और गुरुदेव की कृपा के विस्मृत होने पर ही मेरा अधःपतन होगा। अपने को बड़ा समझकर, औरों को तुच्छ समझूँगा, तब मेरी उन्नति होगी भी तो कैसे? कुछ समय से मैं इसी चिन्ता से बहुत ही अस्थिर रहता हूँ। किन्तु ऐसी दुर्गति और अवनति होने पर शायद यह डायरी ही मेरे चेतना का संपादन करने और मुझे सद्गति के मार्ग पर लाने का हेतु बने। मैं अपने जीवन की सच्ची घटनाओं पर तो कभी अविश्वास कर न सकूँगा। इस गन्दे, कीचड़ से भरे, पंकिल जीवन में मेरे दयालु गुरुदेव की स्नेह दृष्टि से समय-समय पर जो मनोहर कमल खिल उठता है, उसे यह डायरी ही किसी दिन मेरी आँखों के सामने ला देगी। बुरे समय में यह डायरी ही गुरुदेव की स्मृति को फिर से ताजा कर देगी, इस निर्णय पर पहुँचकर मैंने फिर डायरी लिखने का संकल्प किया। श्रीश्रीगुरुदेव के चरण-कमलों में मस्तक झुकाकर, बारोदी के ब्रह्मचारीजी की पवित्र मूर्ति का स्मरण करके, अब फिर जीवन की खास-खास घटनाओं को लिखने को तत्पर हुआ।

सत्संग की प्राप्ति। गंगामाहात्म्य और तर्पण में विश्वास।

भागलपुर आ जाने पर भी रोग यंत्रणा में कुछ कमी न आई। ऐसी धारणा हो गई कि अब बहुत दिन तक जीवित रहना मुश्किल है। मेरा संसार में आना व्यर्थ हुआ; जैसी आकांक्षा थी, उस अनुरूप भगवान् का नाम न ले सका। इस प्रकार उद्वेग और चिंता के मारे मैं बहुत अशान्त रहने लगा। अब मैं एक निर्दिष्ट नियम बनाकर उसी के

अनुसार सारा दिन बिताने लगा।

गुरुदेव की कृपा से एक भजनानन्दी सत्संगी भी मुझे सहज ही मिल गये। सुना था कि ढाका कॉलेजियट स्कूल के मास्टर श्रीहरिमोहन चौधरी ने गुरुदेव से संन्यास के कुछ नियमपद्धति ग्रहण की थी। कठोर वैराग्य के सहारे वे सर्वत्यागी उदासी की तरह पैदल ही कई स्थानों पर पर्यटन करके, कुछ समय से भागलपुर आये हुए हैं, पथ में हरिसंकीर्तन करते हुए भाव की तरंग उत्पन्न करके, उन्होंने जनता के हृदय में धर्म का स्रोत प्रवाहित कर दिया है। भागलपुर की हरसिभा के हरिनाम-संकीर्तन में स्वामीजी का अद्भुत भावावेश देखकर सभी विमुग्ध हो गये। स्वामीजी से भागलपुर में कुछ दिन ठहर जाने के लिए सभी लोगों ने अनुरोध किया। एक प्रसिद्ध वकील ने आदरपूर्वक स्वामीजी को अपने घर आमन्त्रित किया। अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति को भगवान् का नाम लेने से महाभाव हो सकता है, वह अचेत हो जाता है, यह भागलपुर के अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों के लिए बहुत ही अद्भुत बात थी। वे लोग स्वामीजी को बड़ी श्रद्धा-भक्ति करने लगे। शहर में प्रसिद्ध हो गया कि स्वामीजी सिद्धपुरुष हैं। गुरुदेव की स्वामीजी को यह कठोर आज्ञा है कि वे एक दिन से अधिक कहीं पर न ठहरें। स्वामीजी का यही नियम था। किन्तु हरिसंकीर्तन के लोभ से मस्त होकर स्वामीजी उस आज्ञा का उल्लंघन कर बैठे। ‘मैं तो संन्यासी हूँ, मेरा विधि-निषेध कैसा?’ इस धारणा से स्वामीजी ने गुरुवाक्य की अवहेलना करके वकील बाबू के यहाँ आसन लगा लिया। एक ओर प्रतिदिन हरिसंकीर्तन में भावावेश की उमंग में जैसे वे सबको विस्मित करने लगे, दूसरी ओर वैसे ही कुसंसर्ग में पड़कर मांस

और उच्छिष्ट आदि के स्पर्श से गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करके भीतर-ही-भीतर दिन-प्रतिदिन मलिन होते गये। इसके बाद एक दिन स्वामीजी, करीब अर्धविक्षिप्त की हालत में, मेरे पास आकर कहने लगे-भाई, मुझे बचाओ। मेरा सत्यानाश हो गया है। संन्यास भाव के साथ-साथ गुरुदेव ने कृपा करके मुझे जो अवस्था दी थी, वह लुप्त हो गई है। हाय, हाय, मैं एक नये राज्य में पहुँच गया था, नित्य मेरे सामने नये-नये दृश्य प्रकट होते थे। दर्शन की दिशा मेरे समक्ष इतनी स्पष्ट हो गई थी कि दिन भर में यदि आधे घण्टे भी दर्शन का कुछ न मिलता तो मैं बेचैन हो जाता था। संकीर्तन में यह दर्शन और भी स्पष्ट हो जाता था; अतएव मैं ढूँढता हुआ, घूमने-फिरने लगा कि कहाँ है संकीर्तन, कहाँ है संकीर्तन! गुरुदेव ने कहा था-**'लगातार नाम करते रहना, इस नाम से ही सब कुछ हो जाएगा।'** किन्तु इष्टनाम की अपेक्षा संकीर्तन की ओर मेरा झुकाव अधिक हो गया। इस संकीर्तन के लोभ से ही गुरु-वाक्य और संन्यास के नियम की अवहेलना करके, मैंने वकील साहब के घर आसन जमा दिया। कीर्तन में नित्य नये-नये दर्शन होंगे, इस लोभ से ही गुरुदेव की एकमात्र आज्ञा का उल्लंघन करने से मैं संकट में पड़ गया हूँ। एक आज्ञा का उल्लंघन करते ही और दस नियमों में शिथिलता आ गई। फिर तो आचार छोड़कर, स्वेच्छाचार करके, क्रम से सब कुछ खो बैठा हूँ। कुछ दिनों के बाद ही मेरा संकीर्तन में होनेवाले भाव और भक्ति भी सूख गए। अब कीर्तन में जाना छोड़ दिया है; मेरा वह भाव नहीं रहा, मुझ पर अब किसी को श्रद्धा भी नहीं रह गई, बल्कि सर्वसाधारण में अब मेरे प्रति उपेक्षा की भावना है। मैं अब वकील साहब के बच्चों का गृहशिक्षक बनकर समय व्यतीत कर रहा हूँ। मेरे

लिये कुछ उपाय करो।

स्वामीजी छात्रावस्था में कॉलेज में मथुरा बाबू के बहुत ही प्रिय छात्र थे। मथुरा बाबू को स्वामी ने जब साफ-साफ अपनी वर्तमान दुरवस्था की बात कह सुनाई, तब उन्होंने दया करके, स्वामीजी को हम लोगों के साथ रखने के लिए, अपने बच्चों का मास्टर नियुक्त कर लिया। २५) मासिक वेतन कर दिया; भोजन आदि की व्यवस्था हम लोगों के साथ ही रही। शाम सवेरे बच्चों को तीन घण्टे पढ़ाकर बचे हुए समय में स्वामीजी नियमित रूप से साधन-भजन करने लगे। हम लोग महीने के अन्त में स्वामी के वेतन के रूपये उनकी स्त्री को भेजने लगे। नियम से चलकर कठोर-साधन भजन द्वारा स्वामीजी ने थोड़े समय में ही अपनी दुरवस्था को सुधार लिया। अब स्वामीजी के संग से मुझे बड़ा आनन्द मिलता है।

मथुरा बाबू के मुंशी श्रीमहाविष्णु यति हम लोगों के ही मकान में रहते हैं। यतिवंश के होने से ही जान पड़ता है, उनकी प्रकृति स्वभाव से ही सात्त्विक है। कायदे से दफ्तर का काम करके, बचे हरा समय में वे सिर्फ धर्मानुष्ठान ही किया करते हैं। त्रिकाल-सन्ध्या आदि ब्राह्मण के नित्य कर्म और गंगास्नान करने तथा अपने हाथ से रसोई बनाकर भोजन करने का अभ्यास, उनका बहुत पुराना है। ‘राधाकृष्ण’ कहते ही उनकी आँखें भर आती हैं। वे प्रायः प्रतिदिन राधाकृष्ण-लीला-विषयक पद बनाया करते हैं। दफ्तर का काम करते समय भी अहैतुक भाव की उमंग में कभी-कभी वश में न रह पाने से गिर पड़ते हैं, तब दफ्तर का काम रुक जाता है। ये महाविष्णु मेरे साथ एक ही कमरे में रहते हैं, अतएव भागलपुर आने पर भगवान् की कृपा से मुझे सत्संगी की कमी न रही।

हमारे मकान के पूर्व ओर सुविस्तृत गंगाजी है-आजकल बालू बढ़कर, धारा कुछ हट गई है। बिल्कुल गंगा-किनारे पर हूँ, हमेशा विशुद्ध वायु का सेवन करता रहता हूँ, किन्तु गंगा स्नान करने नहीं जाता हूँ। बँधा हुआ जल स्थिर रहता है अतएव अधिक निर्मल है- इस युक्ति को मानकर मैं कुएँ के पानी से नहाता हूँ। श्रद्धेय स्वामीजी और महाविष्णु बाबू मुझे पुण्यतोया गंगाजी का बहुत-बहुत माहात्म्य बतलाते हैं। मैं उसे कुसंस्कार कहकर उड़ा देता हूँ। जो हो, उनके आन्तरिक आग्रह और अनुरोध को टालने में असमर्थ होकर, सब लोगों के साथ ही मैंने सूर्योदय से पहले, माघ की ठंड में, गंगास्नान करना आरम्भ कर दिया। कई दिन गंगास्नान करने से ही शरीर अच्छा हल्का और स्फूर्तिमान् मालूम होने लगा, देखा कि सूर्योदय से पहले गंगास्नान कर लेने से शरीर की सारी ग्लानि और सुस्ती हट जाती है। तथा मन भी मानो स्निग्ध हो जाता है; स्नान करते ही हृदय में प्रफुल्लता और प्रवित्रता आ जाती है; भगवान् का नाम भी सरस भाव से अपने-आप होने लगता है। इन सब बातों का अनुभव मुझे साफ-साफ होने लगा। एक दिन गंगास्नान करते-करते अकस्मात् मेरी जाति और वंश के संस्कार ने आकर मुझे विभोर कर लिया। ऐसा जान पड़ा कि इन गंगाजी के जल का स्पर्श करके पितामह आदि पूर्वपुरूषों ने यह सोचकर बहुत ही आनन्द मनाया है कि हमारा उद्धार हो गया! 'प्राचीन समय में योगियों और ऋषियों ने इसी गंगाजल से भगवान् की न जाने कितनी आराधना, उपासना की है! न जाने किस गुण को प्रत्यक्ष देखकर उन्होंने गंगाजी की स्तुति, उन्हें पतितपावनी और मोक्षदायिनी कहकर किया है। परलोक में रहकर यह गंगाजल पाने से अब भी उन्हें न जाने

कितनी प्रसन्नता होगी! मैंने आज उनके नाम से अंजलि भर जल प्रदान किया। यह सोचते ही मुझे रोना आ गया। ऐसा मालूम हुआ कि न जाने कितने योगी, ऋषि और देवी-देवता तथा मेरे पूर्वपुरुषगण आकाश से आज मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं। मैं दोनों हाथों की अंजलि में जल भर-भरकर उन लोगों का स्मरण करके ऊपर की ओर छोड़ने लगा। इससे मुझे बहुत आनन्द मिला। देवी-देवता, ऋषि-मुनि और पूर्वजगण आज मेरे कार्य से सन्तुष्ट हुए-इस कल्पना में सारा दिन बड़े आनन्द और उत्साह से बीता। कल्पना होने पर भी इस आनन्द के लोभ से मैं प्रतिदिन गंगास्नान करते समय उन लोगों को जल प्रदान करने लगा। फिर एक दिन ध्यान आया, जब जल दे ही रहा हूँ, तब रीति के अनुसार ही क्यों न दूँ? शास्त्रोक्त प्रणाली से उन लोगों का नाम ले-लेकर जल देने से तो उन लोगों को और भी अधिक तृप्ति और आनन्द प्राप्त होगा। यह सोचकर मैंने नित्यकर्म की तर्पण-प्रणाली को कण्ठस्थ कर लिया। तभी से मैं प्रतिदिन, रीति अनुसार नियमित तर्पण किया करता हूँ।

माघ माह १२९६

तंद्रा के आवेश में चक्रशक्ति का अनुभव।

रात को भोजन के बाद आज स्वामीजी के साथ एक ही बिस्तर पर लेटकर गुरुदेव की चर्चा करते-करते झपकी लग गई। देखा-स्वामीजी पैर के अँगूठे से मेरे अधःप्रदेश को छूकर कह रहे हैं-'यही मूलाधार है। प्राणायाम द्वारा यहाँ से शक्ति को खींचकर ऊपर की ओर सहस्रार में ले जाओ, समाधि लग जायगी।' उनके कहने के अनुसार मेरे दो-चार बार प्राणायाम करते ही मूलाधार चक्र खींचकर ऊपर की ओर संकुचित हो उठा। तुरन्त ही उस चक्र से एक शक्ति

रीढ़ के भीतर होती हुई सर्-सर् करके ऊपर की ओर चली। उस शक्ति की बेरोक-टोक गति के साथ-साथ मेरी नाड़ियाँ और शिरा, धमनियाँ मानों फटने लगा। भीषण कष्ट होने लगा। अब प्राणायाम को रोकना चाहा तो रोक न सका। एक अदम्य शक्ति मुझे वश में करके बार-बार प्राणायाम का दम चलाने लगी। इस शक्ति ने ऊर्ध्वगामिनी होकर, ऊपर के कई चक्रों के आवरणों को मुक्त कर डाला। ऐसा मालूम हुआ कि मेरी सारी नाड़ी-नसों के साथ-साथ, मेरे भीतर जो कुछ था वह सब छिन्न-भिन्न हो गया। आह-ऊह करने के सिवा मुझमें उस समय और कुछ करने की शक्ति न रही। दर्द से बेचैन होकर मैं धीरे-धीरे करीब-करीब बेहोश हो गया। थोड़ी देर में यह शक्ति पथ न पाकर, चक्कर काटकर, अकस्मात् नीचे उतर आई। इस समय बहुत ही आराम मिला किन्तु इस दशा का अनुभव पल भर ही हुआ। दूसरे ही क्षण में मेरी वही शक्ति और भी प्रबल वेग से सर्-सर् करती हुई ऊपर की ओर दौड़ पड़ी। बार-बार कुछ देर तक इस तरह शक्ति के नीचे उतर जाने और ऊपर चढ़ जाने से मैं बिल्कुल अवसन्न सा हो गया। अकस्मात् एक बार बहुत ही वेग से उठकर, यह शक्ति अपने स्थान में जाकर बिल्कुल विराम ले ली। तब तो मैं मानो परमानन्द-सागर में बिल्कुल डूब गया। इसके बाद और कुछ भी कहने का नहीं है। मालूम नहीं कि यह अवस्था कितनी देर तक बनी रही। फिर उस शक्ति के मूलाधार में लौट आने पर मेरी चेतना लौटी। देखा कि सारा शरीर पसीने से तर होकर बिल्कुल अवसन्न हो गया है। बहुत ही संक्षेप में प्रत्यक्ष अनुभव का क्रममात्र संक्षेप में लिख लिया। इसी समय एकाएक स्वामीजी जागकर कहने लगे-‘भाई,यह कैसा स्वप्न देखा है? गुरुजी मानो

तुम्हारे भीतर कोई प्रक्रिया कर रहे हैं। थोड़ी चेष्टा के बाद खेद करके उन्होंने हाथ की कलाई हिलाते हुए कहा-ओहो, पूरा नहीं हुआ, थोड़ा रह गया।'

अपूर्व सूर्यमण्डल के दर्शन।

अब मैं प्रतिदिन रात के ३ बजे उठकर हाथ-मुँह धोता हूँ और फिर ३॥ बजे से लेकर सवेरे ६ बजे तक नाम का जप, प्राणायाम और कुम्भक किया करता हूँ। नहाने के बाद स्वामीजी और विष्णु बाबू के साथ जलपान करके और चाय पीकर ७ बजे से १० बजे तक बगीचे में एकान्त में बैठकर त्राटक किया करता हूँ। फिर भोजन के बाद गंगा-किनारे के एक सुनसान शिवमंदिर में चला जाता हूँ। यह मकान से कुछ हटकर है। वहाँ १२ से लेकर ५ बजे तक एकान्त में साधन करके समय व्यतीत करता हूँ। अपराह्न को हमारे यहाँ बहुत-से सज्जन आते हैं। उनके साथ शाम तक महाविष्णु बाबू और स्वामीजी धर्मचर्चा तथा संकीर्तन करते हैं। रात को भोजन करने के बाद, जब तक नींद नहीं आती, तब तक हम लोगों के बीच धर्म-प्रसंग होता रहता है। बीच-बीच में हम लोग रात को बगीचे में तमाल के पेड़ के नीचे जाकर बैठते हैं। मध्य रात में जंगल के भीतर सामने धूनी जलाकर नाम करने में मुझे बड़ा आराम मिलता है। दिन-रात मानो हम लोगों के बीच धर्मोत्सव होता रहता है।

पूर्वोक्त स्वप्न की घटना के बाद से साधन-भजन में मेरा उत्साह और भी बढ़ गया। नाम करने में साथ-साथ अलक्षित रूप से गुरुदेव के रूप का मन में आना शुरू हो गया। गुरुदेव ने कहा था-**'कभी कल्पना न करना। नाम करते-करते सत्य वस्तु अपने आप प्रकाशित हो जायगी।'** मैं कभी कल्पना नहीं करता; फिर भी

तनिक स्थिर होकर नाम करते ही, मेरे अज्ञात् ही गुरुदेव का रूप अपने आप हृदय में दिखाई पड़ता है। इससे मुझे इतना आनन्द मिलता है कि कल्पना होने पर भी उसे छोड़ने की शक्ति नहीं है।

इसी बीच एक दिन सवेरे गंगास्नान करके, नाम करते-करते, स्वामीजी के साथ घर आ रहा था और मन गुरुदेव के मनोहर रूप में आविष्ट था कि अकस्मात् माथे में, नीले आकाश में असंख्य वैद्युत तेजोमय, सफेद ज्योति से युक्त, अपूर्व सूर्यमण्डल झिलमिलाता हुआ उदित हुआ। पल भर उसकी ओर देखते ही मैं 'जय गुरु' जय गुरु कहते-कहते शिथिल होकर बालू पर गिर पड़ा। पता नहीं, साधन राज्य में कितना कुछ है। यह सब देखकर मैं विस्मित होता जा रहा हूँ।

साधन में असमर्थ होने से कुशलता करना।

गंगास्नान के गुण से अथवा दर्शन के लोभ से साधन करने में मेरा उत्साह बढ़ गया। गुरुदेव की आज्ञा है कि प्रत्येक श्वास-प्रश्वास के साथ अविराम नाम करना; किन्तु बहुत चेष्टा करने पर भी देखता हूँ कि वह काम मुझसे नहीं सध रहा है। मैं प्रतिदिन जागते ही सोचता हूँ कि श्वास-प्रश्वास के साथ-साथ नाम करूँगा और दृढ़ता के साथ करने भी लग जाता हूँ; किन्तु उसमें थोड़ी देर तक स्थिर होते-होते देखता हूँ कि न जाने कब मन और कहीं चला गया है। बारंबार ऐसी चेष्टा करते-करते हैरान हो जाता हूँ। श्वास-प्रश्वास के साथ-साथ जप करने का अभ्यास किसी तरह नहीं हो रहा है। बहुत चेष्टा करने पर भी जब यह नहीं सधा, तब मैंने सोचा कि एक कुशलता का आश्रय लेकर, गुरुदेव की आज्ञा का पालन करूँगा। दिन-रात में जितनी बार श्वास-प्रश्वास होता है, उतनी ही बार नाम

का जप करने का मैंने संकल्प किया। फिर गुरुदेव यदि कृपा करके प्रत्येक श्वास-प्रश्वास पर उसे बैठा लेंगे तो मेरा प्रत्येक श्वास-प्रश्वास के साथ नाम का जप करना हो जायगा। बस, यह सोचकर मैं २१६०० बार नाम का जप करने लगा। कहीं श्वास-प्रश्वास की संख्या न बढ़ जाय, इसी आशंका से मैंने जप की भी संख्या बढ़ा दी। मैं कोई ३०/३२ हजार जप करने लगा। हाथ और माला से नाम के जप का इतना अभ्यास हो गया कि सोते समय भी अपने आप मेरा हाथ घूम जाता है, यह बात मुझसे दूसरों ने कही है। संख्या पूरी करने में लगे रहने से मुझे दिनभर में इतनी छुट्टी नहीं मिलती कि किसी से बातचीत तक कर सकूँ। बाहर बहुत ही स्थिर रहने पर भी, संख्या पूरी करने की चेष्टा में, भीतर-ही-भीतर मैं बहुत अस्थिर हो जाता हूँ। कई बार तो इसके लिए मेरा सिर तक गरम हो जाता है। गुरुदेव ने कहा था-**'हमारे साधन में श्वास-प्रश्वास ही नाम की जपमाला है।'** जब किसी तरह उसका अभ्यास न कर सका, तब सुविधा हेतु बाहरी माला का सहारा न लूँ तो और क्या करूँ? पता नहीं कि इस युक्ति से साधारण रीति के अनुसार मेरे साधन करने का अनुमोदन गुरुदेव करेंगे या नहीं।

त्राटक के साधन में दर्शन का क्रम।

मैं काफी समय से त्राटक करता आ रहा हूँ। पिछले वर्ष से यह साधन करते हुए अनेक प्रकार के दर्शन होने लगे हैं। अब तक जितने प्रकार के दर्शन हुए हैं उन्हें क्रम के अनुसार यहाँ पर लिखता हूँ-

१. साधन करते समय लक्ष्य स्थान पर ४-५ इंच के, घड़ी की स्प्रिंग की तरह, कई स्तरों के गोल-गोल, बहुत ही चंचल, गहरे

काले रंग के ४-५ चक्र लगातार बायीं ओर से और फिर वही पल भर में दाहिनी ओर से बड़ी तेजी से घूमा करते हैं। कुछ दिन तक मैंने ऐसा दर्शन किया।

२. दृष्टि को स्थिर करते-करते फिर मैंने देखा कि उक्त चक्रों का आयतन घट गया है। फिर वे आपस में विलीन होकर एक ही स्थिर मण्डलाकार में परिणत हो गये हैं और उस मण्डल के बीचोबीच सरसों बराबर छोटे-छोटे असंख्य ज्योतिर्बिन्दु प्रकाशित हो गये। उसके चारों ओर चार सफेद हीरों के टुकड़ों की तरह खण्ड-ज्योति झिलमिलाने लगी। मण्डल के बीच में बहुत बड़ा एवं उज्ज्वल ज्योतिर्बिम्ब लगातार ज्योतिबुद्बुदों का उद्गार करने लगा। कोई ३-४ महीने तक साधन करते समय ऐसे ही दर्शन होते रहे।

३. माघ महीने के पहले से ही ये दर्शन दूसरे प्रकार के हो गये। गहरे काले रंग के छः इंच परिमित मण्डल के बीचोबीच एक सफेद उज्ज्वल तेजपूर्ण गोलवलय प्रकट हो गया। आधे इन्च की बारह शुभ्र ज्योतिमंडित अंगूठियाँ मण्डल के भीतर समान अन्तर पर रहकर उसको घेरे हुए हैं। ये दर्शन कोई तीन महीने तक हुए।

४. उसमें दृष्टि जमाते-जमाते अब उसका दूसरा आकार हो गया है। ज्योंही कुछ सेकेण्ड के लिए दृष्टि तनिक स्थिर होती है और टकटकी बँधती है, त्योंही ५-६ इन्चका, ज्योतिर्मय श्वेत सम-चतुर्भुज यन्त्र, वृत्ताकार मण्डल के बीच में दीख पड़ता है। थोड़ी देर तक उसमें तीव्र दृष्टि जमाने पर, वह एक मटर के बराबर छोटा हो जाता है और बहुत ही घना और उज्ज्वल बना रहता है। जहाँ-तहाँ, चाहे जिस अवस्था में, दिन को और रात को, चाहे जब इस ज्योति के दर्शन दृष्टि को तनिक स्थिर करते ही हो जाते हैं। त्राटक-साधन

के पहले स्तर में, पृथ्वीतत्त्व में ही, अब तक दृष्टि को जमाता आया हूँ। गुरुदेव ने जैसा बतला दिया है उसके अनुसार अब आकाश-तत्त्व में दृष्टि को जमाना आरम्भ किया है।

२० माघ १२९६

तर्पण में छायारूप-दर्शन। कुत्ते की करामात।

बहुत सुबह जब गंगा-स्नान करने जाता हूँ, तब प्रतिदिन रास्ते में मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मानो देवता, ऋषि और पितर मेरे हाथ से गंगाजल पाने के लिए, मेरे साथ ही साथ चल रहे हैं। नहा-धोकर हाथ जोड़े हुए ऊपर को मुँह करके ज्योंही उनका आह्वान करता हूँ त्योंही मुझे रोना आ जाता है। पितृ-तर्पण करते समय प्रत्येक अञ्जलि गंगाजल देने के साथ-साथ उस जल के ऊपर अंगूठे बराबर मानव की धुँधली आकृति की चंचल छाया मुझे दिखाई पड़ती है। देवतर्पण और ऋषितर्पण करते समय ऐसी छाया को, कल्पना करके भी, मैं दृष्टि के सामने नहीं ला पाता। पितृतर्पण के समाप्ति होते ही फिर वह एक पल के लिए भी नहीं रहती। आज देवतर्पण और ऋषितर्पण करके पितृ तर्पण कर रहा था, इसी समय देखा कि ७-८ हाथ के अन्तर पर, गंगापार से एक बड़ा-सा कुत्ता सतृष्ण दृष्टि से मेरी ओर ताक रहा है। कड़ाके की सर्दी में, दिन निकलने से पहले, वह कुत्ता जल में उतरकर धीरे-धीरे मेरी ओर आने लगा! स्वामीजी और महाविष्णु बाबू ने उसे खदेड़ने की चेष्टा की; तब कुत्ते ने दबे गले से, बड़े ही करूण स्वर में ऐसा क्लेशसूचक शब्द किया कि जिसे सुनकर उन लोगों ने फिर उसको नहीं रोका। माघ महीने की बड़े सवेरे की ठण्ड में गंगा में नहाने से मनुष्य ऐंठ जाता है और वह कुत्ता सहज ही गले तक डूबा हुआ,

मेरी दाहिनी ओर जल में कोई एक हाथ के फासले पर आकर खड़ा हो गया। तर्पण का जल गंगा के बहाव में पड़कर जैसे बहकर जाने लगा, वैसे ही कुत्ता मुँह फैलाकर बार बार आग्रह के साथ उसी जल में पंजा मारने लगा। थोड़ी देर तक ऐसा ही करके कुत्ता किनारे पर चढ़ गया। मैं भी तर्पण करके उसी किनारे पर आया; किन्तु बड़ी अद्भुत बात है कि हम तीनों आदमियों ने चारों ओर नजर दौड़ाई, पर लम्बे चौड़े बालू के मैदान में कुत्ता कहीं भी दिखाई नहीं पड़ा। तेजी से दौड़नेवाला घोड़ा भी, इतने थोड़े समय में, इतने लम्बे-चौड़े बालू के मैदान को पार करके, गायब नहीं हो सकता। दिन भर मुझे कुत्ते की याद बनी रही।

भागलपुर में साधु पार्वती बाबू।

इष्टदेव को प्रसन्न रखना ही साधन और सदाचार का उद्देश्य है।

भागलपुर के पंचायती स्थान में श्रीपार्वतीचरण मुखोपाध्याय नाम के एक सदाचारी निष्ठावान् ब्राह्मण रहते हैं। शहर के हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, प्रभृति सभी श्रेणियों के लोग उन्हें परम धार्मिक महात्मा समझकर, उन्हें श्रद्धा-भक्ति करते हैं। स्वामीजी और महाविष्णु बाबू के साथ, मैं उनके दर्शन करने गया। प्राचीन समय में ऋषियों के तपोवन का जैसा वर्णन सुना है, मानो वैसा ही आश्रम पार्वती बाबू का देखा। सुनसान बगीचे में तरह-तरह के फल-फूल लगे हुए हैं, अनेक प्रकार के पेड़ कतारों में श्रृंखलाबद्ध रूप में लगे हुए हैं। वहाँ पहुँचते ही इच्छा हुई कि कहीं पर बैठकर नाम करने लगूँ। वृक्ष-लताओं समेत सारा आश्रम मानो भगवद्भाव से परिपूर्ण हो रहा है। मैंने जनपूर्ण स्थान में ऐसा बढ़िया तपोवन कहीं नहीं देखा। पार्वती बाबू के भजन करने का कुटीर विस्तृत बाग के एक ओर है।

पार्वती बाबू को देखने से ऐसा जान पड़ा मानो एक ऋषि के दर्शन कर रहा हूँ। रक्ताभ गौर रंग के तेजःपुंज शरीर में तेजस्विता और पवित्रता मानो लिपटी हुई है। वे बारहों महीने सूर्योदय से पहले ही गंगास्नान और सन्ध्या तर्पण आदि करके आश्रम आ जाते हैं, फिर शालग्राम और पंचदेव की पूजा करके सप्तशती, गीता, उपनिषद आदि धर्मग्रन्थों का पाठ करके होम किया करते हैं। ग्यारह बजे आसन से उठकर अपना हविष्य बनाते और भोजन करते हैं। इसके बाद घंटे भर विश्राम करके कुटीर के बरामदे में बैठते हैं; और भगवद्भाव में मस्त होकर दिन भर ध्यान-धारणा करते रहते हैं। ४२ वर्ष से आज तक वे इसी नियम से चलते हैं। मैंने सुना कि उनके नियमित कामों में एक दिन का भी व्यवधान नहीं पड़ा। ये षड्दर्शन के अगाध पण्डित हैं, पुराण, उपनिषद आदि ग्रन्थों पर इन्हें अगाध विश्वास है, फिर बाइबिल और कुरान आदि को भी ये बड़ी श्रद्धा से पढ़ा करते हैं। यहाँ का शिक्षित सम्प्रदाय इन्हें 'थियोसॉफिस्ट' कहता है। मैंने उनके आसन के पास 'थियोसॉफी' के संवादपत्रों आदि का ढेर लगा देखा। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि अपने भजनादि में निरत और निष्ठावान् रहते हुए भी ये सभी सम्प्रदायों के धर्मार्थियों को किस प्रकार ऐसी श्रद्धा और भक्ति करते हैं। मैं नहीं समझ पाया कि पार्वती बाबू भक्त हैं अथवा ज्ञानी। भक्ति की चर्चा करते-करते वे रोकर व्याकुल हो जाते हैं। फिर ज्ञान की आलोचना करते समय स्वयं ब्रह्म बन जाते हैं। बड़ी सरलता से, विनीत होकर, जाति-पाँति का विचार छोड़कर सभी को हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं। इनका संग मुझे बहुत अच्छा लगा। मैं हफ्ते में दो बार इनके यहाँ जाने लगा। मुझपर पार्वती बाबू का असाधारण स्नेह हो

गया। वे मुझे उपनिषद का मार्ग समझाने की इच्छा करके बहुत ही संक्षेप में पतंजलि आदि के मत का उपदेश देने लगे।

ऋषि-प्रणीत ग्रन्थ की चर्चा होते रहने से शास्त्र और सदाचार पर मेरी निष्ठा बढ़ने लगी। इसका फल यह हुआ कि मैं प्रत्येक पग पर, प्रत्येक काम को विचारपूर्वक करने लगा। शुद्ध आचरण रखकर नियम-निष्ठापूर्वक आग्रह के साथ साधन-भजन करने का फल, गुरुदेव की कृपा से विचित्र रूप से मैं पाने लगा था, किन्तु कुछ समय के बाद इस दर्शनशास्त्र की व्यष्टि, समष्टि और घट-पट आदि के विचार-वितर्क में मेरा अन्तःकरण धीरे-धीरे शुष्क और सन्देहपूर्ण हो उठा। मैं गुरुदेव की असाधारण कृपा पर भी विचार करने लगा। तब उनके दिये हुए असाधारण साधन राज्य में भूकम्प होने से, महाप्रलय की सूचना मिली। अपनी याददाश्त के लिए इन अवस्थाओं का आभास लिख लेता हूँ। दो-चार पुराण पढ़कर और दर्शनशास्त्र की तनिक सी चर्चा सुनकर मुझे यह सन्देह हुआ कि 'साधन करने की आवश्यकता ही क्या है?' पुराण आदि से यही ज्ञात होता है कि पुरुषार्थ अनुष्ठान करने या प्रारब्ध का भोग लेकर ही सारा संसार चल रहा है। किन्तु पुरुषार्थ के द्वारा ही यदि प्रारब्ध का उद्भव अवश्यम्भावी हो, तब तो उसका फलाफल बड़ा ही अनिश्चित हो जाता है। क्योंकि अच्छे काम का भला और बुरे काम का बुरा फल होने पर, प्रारब्ध का कुछ भी भोग निर्दिष्ट अथवा निश्चित नहीं हो सकता। फिर यदि यही प्रारब्ध ही कर्म प्रवृत्ति अथवा उसके अनुष्ठान का हेतु हो, तब तो पुरुषार्थ सर्वथा अर्थशून्य रह जाता है। फिर पुरुषार्थ के द्वारा भोग की उत्पत्ति होना स्वीकृत न किया जाय तो भोग आया ही कहाँ से? यदि प्रारब्ध ही

सारे कार्यों और भोग आदि का हेतु हो, तो उस प्रारब्ध का अर्थ वास्तव में भगवान् की इच्छा के सिवा और क्या कहूँगा! उन्हीं की इच्छा से प्रारब्ध उत्पन्न हुआ है और कार्य तथा भोग हो रहा है। प्रारब्ध के सिवा जीव की कोई स्वतन्त्र अथवा स्वाधीन इच्छा नहीं है। अतएव जान पड़ता है कि सब कुछ भगवान् की इच्छा से होता है, जीव तो निरा द्रष्टा और भोक्तामात्र है। तब फिर साधन-भजन करने की क्या जरूरत? नियम-निष्ठा और सदाचार से रहने की इतनी अशान्ति और झंझटें ही क्यों सहूँ? गुरुदेव ने तो स्वयं ही कहा था कि मेरी अब तनिक भी स्वाधीनता नहीं है, मैं अब उनका गर्भस्थ बच्चा हूँ। अगर यही है तो जो कुछ मेरे भीतर संचारित किया जा रहा है, उसी को मैं भोग रहा हूँ। गर्भस्थ सन्तान की क्या देह पुष्टि और क्या जीवित रहना, कुछ भी उसके वश की बात नहीं, वह तो साधारण रूप से गर्भधारिणी के स्वास्थ्य और सम्पूर्ण रूप से भगवान् की इच्छा पर अवलम्बित हैं। यह प्रत्यक्ष बात है कि गर्भ में बच्चे के घूमने-फिरने से गर्भधारिणी को कष्ट होता है, नियम, सदाचार, साधन-भजन और गुरु की बात को मानकर चलने से देह तथा मनस्थिर रहता है; अतएव इससे गर्भिणी को आराम मिलता है; और मनमाना व्यवहार करने से, जो चाहे सो कर डालने से, देह तथा मन के चंचल होने के साथ-साथ गर्भधारिणी को तकलीफ सहनी पड़ती है। अतएव देखता हूँ कि नियम और सदाचार से रहने की और साधन-भजन करने की कुछ जरूरत ही नहीं है, इन सबका उद्देश्य तो अपने को शान्त रखकर, आधार-स्वरूपा जननी को भी स्वस्थ रखना है। अनियम से स्वेच्छाचार से चलकर, बेमतलब हाथ-पैर हिलाने-डुलाने से जननी को बहुत कष्ट होगा।

यही भाव मेरे हृदय में उठा, साथ ही साथ यह संस्कार भी जम गया कि मेरे हर एक काम, मेरे प्रत्येक पग रखने तक का अनुभव श्रीगुरुदेव कर रहे हैं। जितना ही नियम और सदाचार से रहूँगा तथा साधन-भजन करूँगा उतना ही वे स्वस्थ रहेंगे और आनन्द पावेंगे। साधनभजन अपनी उन्नति के लिए नहीं है, असल में नियम-निष्ठा और साधन-भजन का उद्देश्य तो गर्भधारिणी जननी को आराम पहुँचाना ही है।

माघ से फाल्गुन

कर्म ही धर्म है।

गुरुदेव की अद्भुत कृपा से जिन कल्पनातीत भावों का संचार मेरे भीतर हो रहा है और जो कृपा मुझे उनमें बड़े उत्साह से नियुक्त कर रही है, गुरुदेव के उसी भाव की अनुगामिनी बनाकर, मैं अपनी भ्रान्त बुद्धि को विचार के द्वारा यही प्रतिपन्न करने की चेष्टा करने लगा कि ज्ञान का अंकुर निकलते-न-निकलते तत्त्व का निरूपण और मीमांसा का प्रयत्न करना, मूर्खता या वाचालता के सिवा और कुछ नहीं है। तथापि जिन इधर-उधर की कल्पनाओं से मैं अपने गुरुदेव की इच्छा के अनुसार बेखटके चलना चाहता हूँ, उनके साथ इस जीवन का विशेष संबंध है, अतएव उन्हें यहाँ पर संक्षेप में लिख लेता हूँ। अब मुझे जान पड़ता है कि कर्म ही सार है, कर्म ही धर्म है, कर्म के किये बिना कुछ होने का नहीं। कर्म के द्वारा ही जीव की वासना भलीभाँति तृप्त होकर, क्षीण हो जायगी और उसीके परिणाम में जीव को स्वरूप की अवस्था प्राप्त हो जाने से मुक्ति मिलती है। अब यह कैसे मालूम होगा कि कैसा कर्म करने से किसकी वासना क्षीण होगी? शास्त्र में ऐसा उपदेश भी तो देखा है

कि कर्म से बन्धन होता है। जबकि शास्त्र के वाक्य में भूल होना सम्भव नहीं, तब उसके साथ मेरे इस सिद्धान्त का मेल कैसे होगा?

वासना के अनुसार कर्म का फल भोगने से ही जब जीव पूर्ण तृप्त होकर स्वरूप को प्राप्त करता है, तब तो उस वासना के अनुरूप कर्म करना ही उसके लिए कल्याणकारी और उसके स्वभाव का धर्म है। वासना के अनुरूप भोग के लिये कोई जीव सत्त्वगुण का आश्रय लेकर अच्छे कर्म द्वारा भोग की समाप्ति में स्वरूपावस्था को प्राप्त कर लेता है। कोई दूसरे ढंग के भोग की कल्पना से उसके अनुसार रज या तम की सहायता से भोग की तृप्ति कर लेने पर, अन्त में मूल अवस्था में पहुँच जाता है। इसका कोई स्थिर नियम नहीं है कि कौन सा जीव, किस तरह, कौन सा कर्म करने से अपनी वासना का क्षय करके मुक्ति के मार्ग पर आगे बढ़ेगा। अच्छे कर्म के द्वारा जिस प्रकार सत्त्वगुण के आश्रय लेने वाले का भला हो रहा है, उसी प्रकार बुरे अथवा असत् कर्म के द्वारा भी रज या तम में फँसे हुए जीव की भी वासना का नाश होकर लाभ ही हो रहा है। संध्या, वन्दना, याग-यज्ञ और तपस्या आदि करके जिस प्रकार एक मनुष्य का परम मंगल हो रहा है, उसी प्रकार शायद इसके बिल्कुल उलटे काम करने से भी अन्य किसी का कल्याण हो सकता है। किसी जीव की मुक्ति के लिए जिस प्रकार केवल सत्कर्म ही आवश्यक है, उसी प्रकार किसी जीव की मुक्ति के लिए असत्कर्म की भी आवश्यकता हो सकती है। गीता का वचन है 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावह:।'

वासनानुसार भोग के लिए जिन गुणों का अवलम्बन करके जीव कार्य करता है, वही तो जीव का स्वधर्म, जीव का व्यक्तिगत धर्म है।

इसी धर्म में प्रवृत्त होकर जीव पूर्ण सफल हुए बिना ही यदि विनष्ट हो जाय तो वह भी कल्याणकर है, क्योंकि वासना की आंशिक तृप्ति हो जाने से, जीव अपने स्वरूप की अवस्था की ओर ही थोड़ा बहुत तो आगे बढ़ा, किन्तु स्वाभाविक गुण प्रवृत्ति के विरुद्ध कार्य करने से, महासात्त्विक होने पर भी, उसके द्वारा जीव का कुछ कल्याण नहीं होता। उससे जीव के वासनानुसार भोग की न तो तृप्ति होती है और न मुक्ति ही। लोग जिसे अधर्म कहते हैं, पाप कहते हैं, अपराध कहते हैं, उसी को करके कोई स्वरूप चैतन्य प्राप्ति के मार्ग पर भी आगे बढ़ सकता है। अपनी प्रकृति के विरुद्ध सद्धर्म के पालन करने में समय व्यतीतकर, पूजा-पाठ, वन्दना और परोपकार आदि करके पर-धर्म करने के फलस्वरूप वह अपनी स्वरूप अवस्था से और भी हटकर, कर्मराशि में आबद्ध हो सकता है। जीव-विशेष के लिए साधारण पाप भी धर्म हो जाता है और साधारण धर्म भी पाप हो जाता है। अतएव पाप-पुण्य का कोई भी संस्कार न रखकर सिर्फ अन्तर्निहित अदम्य वासना के अनुरूप कर्म करे, इसी से क्रमशः वासना की पूर्णतया तृप्ति हो जाने पर, अन्तर्द्वन्द समाप्त हो जायगा एवं, मुक्ति मिल जायगी। बारोदी के ब्रह्मचारीजी जीवनमुक्त महापुरुष के रूप में जाने जाते हैं। उनके गुरुदेव ने वासनानुयायी भोग से छुटकारा करा देने के लिए उन्हें, कुशलतापूर्वक लोकाचार-विरुद्ध काम में नियुक्त कर दिया था। रात-दिन उसमें डूबे रहने पर भी थोड़े ही दिनों में उनकी वह आकांक्षा बिल्कुल दूर हो गई थी। ऐसे-ऐसे बहुत से दृष्टान्त भरे पड़े है। वासना से देह की उत्पत्ति हुई है; और देह है सिर्फ काम करने का यन्त्र। कर्म के लिए ही तो आना हुआ है। कर्म ही धर्म है और इसी कर्म से

मुक्ति होती है।

संस्कार-रहित बुद्धि से ऐसा विचार करके लगातार कर्म करते रहने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। उसके अनुसार मैं खूब कर्म करने लगा। कौन-सा कर्म करने से मेरी वासना को स्फूर्ति प्राप्त होगी, इसको जानने के लिए मैंने अनेक प्रकार के कर्म करने आरम्भ कर दिये। दोपहर के समय दफ्तर में जाकर काम सीखने लगा, अपराह्न में मथुरा बाबू की बड़ी भारी गृहस्थी का सब प्रकार का प्रबन्ध करने में लगा रहता। इससे मुझपर काम-काज का इतना बोझ आ पड़ा कि दिन भर में मुझे जरा सी भी फुरसत न रही। सवेरे और रात को नाम का जप करने की निर्दिष्ट संख्या पूरी करने लगा। लगातार बेहद काम करते रहने से दर्द फिर बढ़ गया। क्रमशः शरीर के बहुत अधिक अवसाद के साथ-साथ काम-काज करने की मेरी इच्छा भी घटने लगी। जिन कामों की मेरी बलबती इच्छा थी, उनमें धीरे-धीरे निस्तेज भाव, ऊब और क्लेश मालूम होने लगा। मैंने दफ्तर जाना छोड़ दिया; संसार के कामों से मैं उदासीन हो गया। ठीक इसी समय एक साधु का निष्काम कर्म करना देखकर, मेरे भीतर कर्म के संबंध में एक भीषण आन्दोलन उपस्थित हुआ।

पगले साधु का निष्काम कर्म।

हम लोगों के मकान के सामने, गंगा-पार, बालू के मैदान में एक आदमी दिन भर पड़ा रहता है। सब लोग उसे 'पगला' कहते हैं। पगला कभी तो गंगा किनारे बैठा रहता है, कभी तपी हुई बालू पर लेटा रहता है और कभी मौज में आकर बालू के मैदान में दौड़ लगाया करता है। वह किसी से बातचीत नहीं करता। रात को गंगा-किनारे के शिवजी के मंदिर में जाकर सोता है। एक दिन देखा कि

पगला कहीं से एक पेड़ की डाल उठा लाया है। गंगाजी से दो-तीन मिनट चलने की दूरी पर, बालू के मैदान में उसे गाड़ दिया है, और गंगाजी से एक बड़ा सा घड़ा भर-भर कर लगातार उसे पानी दे रहा है। सवेरे से शाम तक पागल को इस काम से छुट्टी नहीं है। बीच-बीच में तनिक बैठकर सुस्ता लेता है, और फिर इस तरह कन्धे पर घड़ा रखकर, पानी भरने को बेतहाशा दौड़ता है, मानो कोई उसके लिये तगादा दे रहा हो और गंगाजल भरकर, लाकर डाल की जड़ में उँडेलता है। दिन निकलने से शाम तक तीन दिन तक उसने इसी तरह सख्त मेहनत की। जब पगले ने देखा कि डाल नहीं लगी, सूख गई, तब उनके घड़े को दूर फेंक दिया। वह एक ओर दौड़ता-दौड़ता गायब हो गया। अब वह बालू के मैदान में नहीं दिखाई पड़ता। कोई नहीं बतला सकता कि वह कहाँ चला गया। पगला मेरी ओर बड़ा स्नेह से देखा करता था। वह ऐसा भाव दिखलाता था कि उस कटी हुई डाल की जड़ में पानी देना उसके लिये बडा जरूरी काम था। पगले के कुछ निःस्वार्थ कामों से मुझे इस बात का प्रमाण मिल गया था कि वह बहुत अच्छा साधु है। चावल, चना अथवा मक्का आदि जो कुछ उसे मिल जाता, वह सब पक्षियों के आगे बिखेर देता तरंगों से घोंघों आदि जो कुछ किनारे पर आ जाते उसे ढूँढकर पगला गंगाजी में फेंक देता था। पगले का उपरोक्त कार्य देखकर मेरे चित्त में, कर्म के सम्बन्ध में एक और समस्या उपस्थित हुई।

निष्काम कर्म ही धर्म है।

मालूम हुआ-गुणत्रय की क्रिया के, पँचभूतों के संयोग से, सम्पादित होने का नाम ही कर्म है। भोगाकांक्षा होने से अथवा वासना से संयुक्त होने से यही कर्म सकाम हो जाता है, और भोग-

लालसा से शून्य अथवा वासना-विहीन होने से वही निष्काम होता है। वासना को गुण में मिला करके, गुण द्वारा पंचभूतों से संपादित सकाम कर्म करते हुए जीव का स्वरूप-अवस्था को प्राप्त कर लेना बहुत ही कठिन काम है। सामान्य सुख की चेष्टा में कितनी कठिनाईयाँ झेलनी पड़ती है, थोड़े से भोग के मार्ग में कितने विघ्न होते हैं-यह देखकर जीव भोग की इच्छा को छोड़ दे, तब आसक्ति शून्य होने पर, गुणत्रय द्वारा जो कार्य संपन्न होगा, वही निष्काम कर्म है। इसी निष्काम कर्म के करने से जीव अन्तर्मुखी होकर, स्वरूप अवस्था की ओर उन्नत होता रहेगा।

इस प्रकार एकमात्र निष्काम कर्म को ही मैंने मुक्ति के पाने का सहज उपाय समझ लिया। जिस काम में मेरा किसी प्रकार का स्वार्थ अथवा आसक्ति नहीं है, बल्कि बहुत अरुचि है, उसी को मैं बड़ी लगन के साथ करने लगा। मथुरा बाबू की बड़ी भरी गृहस्थी का कुल भार मैंने सँभाला। उनके, बिना माँ के, छोटे-छोटे बेटे-बेटियों को मैं दोनों वक्त मछली वगैरह अपने हाथ से खिलाने लगा। दोपहर को दफ्तर के काम में महाविष्णु बाबू की सहायता करने लगा। बाग में मालियों के साथ-साथ रहकर उन लोगों के काम-काज की देखरेख करने को तैयार हुआ। अपराह्न प्रतिदिन बहुत से स्कूली लड़कों को 'जिमनास्टिक' सिखाने लगा। कुछ दिनों तक इस प्रकार करते रहने के बाद मेरे मन में बारंबार यह बात आने लगी कि यदि मुझे निष्काम कर्म ही करना है तो फिर इनमें इतना उत्साह क्यों? साफ समझ में आ गया कि उत्साह की जड़ में मेरे भीतर वासना का क्षय करना, कर्म समाप्त करना, मुक्ति के मार्ग को साफ कर लेने का संस्कार है। निष्काम कर्म करने के संकल्प से कुछ भी काम

क्यों न करूँ, वह सकाम हो जाता है। अर्थात् मूलतः निष्काम कर्म का उद्देश्य रखकर निःस्वार्थ भाव से कर्म करने पर भी, कर्म की प्रत्येक चेष्टा में धीरे-धीरे यही संस्कार उठने लगता है कि 'निष्काम कर्म कर रहा हूँ।' अतएव संस्कारहीन हुए बिना निष्काम कर्म करूँ भी तो कैसे? सत्-असत्, भली-बुरी बुद्धि के रहते कभी संस्कार का त्याग नहीं हो पाता। कार्यक्षेत्र में इस विचार-बुद्धि का लोप होगा किस तरह? मन में आता है-बहुत दिन तक सदाचार से रहते-रहते यदि स्वभाव से उसका अभ्यास हो जाय तब तो स्नान, शौच, आहार आदि की तरह, संकल्प-शून्य स्वाभाविक अभ्यस्त क्रिया होकर, थोड़ी बहुत निष्काम हो सकती है।

यह सब सोच-विचारकर मैंने फिर पहले की तरह घड़ी के अनुसार दैनिक कार्य करना आरम्भ कर दिया। उद्देश्य यह है कि इन सब कामों का अभ्यास हो जाए तो ये एक प्रकार से निष्काम होंगे।

ज्योति के दर्शन।

अविचल एकाग्रता के साथ अपलक साधन करते हुए, गुरुदेव की कृपा से, धीरे-धीरे एक-एक अद्भुत दर्शन प्रकट होने लगा। यहाँ पर क्रम से उसे लिखता हूँ-

१. पहले कुछ दिन स्थिर, श्वेत प्रभा से मण्डित, बहुत से खंडों में गहरे नीले रंग की ज्योति क्षण-क्षण में संलग्न और विच्छिन्न होकर, वामावर्त और दक्षिणावर्त के क्रम से, द्रुतगति से मन्द तरंग में प्रतिबिंब की भाँति, चन्द्रबिम्ब की तरह, चंचल दिखाई पड़ने लगी। मोर पँख के केन्द्र पर दूसरा स्तर कुछ-कुछ इस ज्योति के रंग के अनुरूप होता है।

२. क्रमशः बदलकर वह दूसरे तरह का हो गया। वलय के आकार में श्वेत प्रभा से घिरी हुई उज्ज्वल, गहरे नीले रंग की, ज्योति जल्दी-जल्दी चक्कर लगाती और काँपती हुई चंचल दिखाई पड़ने लगी। परिव्याप्त मण्डल ३-४ इंच का दिखने लगा।

३. कुछ दिन के बाद धीरे-धीरे इसमें भी परिवर्तन हो गया। पीलापन लिये हुए श्वेत ज्योतिर्मण्डल में अति उज्ज्वल हरे रंग की ज्योति दिखाई पड़ने लगी। पास में यह ज्योति, नाखून के बराबर छोटे आकार में, उज्ज्वल मणि की तरह स्थिर रूप से प्रकाशित हुई। फिर दूरी के अनुसार बहुत ही बड़े आकार में काँपती हुई दिखाई पड़ने लगी। आँखें खुली रहें चाहे बन्द, हर हालत में, स्थान-अस्थान पर चाहे जहाँ, वह साफ साफ दिखाई पड़ने लगी। भीतर से मोर की पँख के चौथे स्तर के साथ इस रंग की कुछ उपमा दी जा सकती है।

४. इसके बाद क्रम-क्रम से सफेद मण्डल विलुप्त हो गया। अब मटर के बराबर, हरे नीले-रंग की मिली हुई, बहुत ही उज्ज्वल ज्योति, क्या पास और क्या दूर, एक ही आकार में निश्चल दिखाई पड़ने लगी। मिला-जुला रंग होने के कारण मोर पंख के रंग के किसी स्तर के साथ सादृश्य न समझ सका।

५. अब कदाचित् बिजली की तरह चंचल, बड़ी ही अद्भुत दीप्तिवाली गहरे नीले रंग की ज्योति, पल-पल भर में स्निग्ध प्रभा फैलाकर तुरन्त अन्तर्धान हो जाती है। इस ज्योति की तुलना नहीं है। मैं इसका प्रकाश होने पर जैसा आनन्द-मग्न हो जाता हूँ, वैसे ही इसके अन्तर्धान हो जाने पर चित्त हाहाकार करने लगता है।

मेरी वर्तमान मानसिक दशा-कर्म का त्याग ही धर्म है।

मुझे कोई काम अच्छा नहीं लगता। सदा आसन पर बैठे रहने को जी करता है। लोग जिसे सत्कार्य, पुण्यकार्य कहते हैं, वह भी आत्मा के कल्याण के लिए विघ्न-सा जान पड़ता है। प्रवृत्ति के अनुकूल विवेक-बुद्धि मुझे अब सभी कामों से रोक रही है। अब तो ऐसा लगता है कि सभी कर्म, धर्म-विरोधी है। जीवात्मा का स्वरूपावस्था में भगवान् के साथ संलग्न रहना ही धर्म है। चित्कण अथवा जीवात्मा के क्रम-विकास की गति ही कर्म है। अतएव कर्म तो सर्वदा जीव की बहिर्मुख अवस्था है। इसका परिणाम चित्कण की स्वरूपावस्था से स्खलित होकर क्रमशः स्थूल से और भी स्थूल में परिणति है। जहाँ पर जीवात्मा के कर्म की समाप्ति है, वहीं पर उसके विकास की भी निवृत्ति है। अतएव दैहिक स्थूल कर्म से लेकर, क्रम से, सूक्ष्म मानसिक कर्म से भी उदासीन होने पर, जीव की देहात्मबुद्धि की अथवा स्थूलता-प्राप्ति की जड़ का लुप्त होकर सूक्ष्म मानसरूप का भी अवसान होगा। इसके बाद जीव जितना ही सूक्ष्मतर कर्म छोड़कर, निष्क्रिय अथवा स्थिर होता रहेगा, उतना ही वासनावर्जित स्वरूपावस्था की ओर पहुँचेगा। इसलिए सारे कर्मों की जड़ वासना को भी छोड़कर 'आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किचिंपि चिन्तयेत्।' निवृत्ति ही वास्तविक धर्म है, और समस्त कर्म ही जीवात्मा का विकासक्रम होने के कारण धर्मविरोधी है।

गुरुदेव की अद्भुत कृपा है। भीतर ही भीतर ज्ञान की चर्चा करते रहने से कर्म करने के संबंध में मैं बिल्कुल उदासीन हो गया। अब तो मुझे ऐसा लगता है कि काम-काज करना बड़ा भारी अनर्थ है। कुछ दिनों से मैं बाहर का सारा काम-काज करना छोड़ दिया हूँ। जिन आवश्यक कामों के प्रतिदिन करते रहने का अभ्यास है, उन

भोजन और शयन आदि को छोड़कर मैं बाकी समय एकान्त में बैठकर, विधि के अनुसार इष्ट नाम के साधन में बारंबार मन लगाने की चेष्टा करता हूँ। इस प्रकार नाम करने के साथ-साथ गुरुदेव का रूप अपने चित्त में उदित हो रहा है। नाम का स्मरण करते समय ऐसी धारणा प्रबल वेग से हृदय में आ जाती है कि मेरी देह में ही गुरु की देह है और मेरी प्रकृति में गुरु की प्रकृति है। मेरा प्रत्येक अंग-प्रत्यंग, पैर से लेकर चोटी तक सभी अवयव, मानो गुरुदेव का ही कलेवर है, मानो वे मुझे आच्छादन किये हुए इसी देह में मौजूद है। नाम के साथ-साथ ऐसी चिन्तनीय धारणा का उदय चित्त में होता है। मैं साधन करते समय दूर रहकर, अपने भीतर अपने को न पाकर, गुरुदेव के ही दर्शन करता हूँ। इससे मुझे इतना आनन्द आता है, कि उसे भाषा द्वारा प्रकट नहीं कर सकता। नामरूपी सच्चिदानंदस्वरूप गुरुदेव का अपने भीतर तन्मय भाव में ध्यान करते हुए मानो मुझे बाहरी चेतना नहीं रहती, सारा शरीर ढीला पड़ जाता है, लगातार आँसू बहते रहते हैं। गुरुदेव के परम सुन्दर, मनोहर रूप का स्मरण करते ही मेरे भीतर न जाने क्या हो जाता है।

शुष्क ज्ञान की चर्चा में लगे रहने से साधन-राज्य में एक प्रकार से युग प्रलय की अवस्था उत्पन्न हो गई थी। कुछ समय के लिए ज्योति के दर्शन होना बन्द हो गया था। नये उत्साह और नई लगन से फिर जब साधन करने लगा हूँ तब विलुप्तप्राय हरा प्रकाश, श्वेत प्रकाश के साथ मिलकर, प्रकाशित होने लगा। थोड़े ही समय में मिश्रित आलोकद्वय के टुकड़े-टुकड़े ज्योतिःसम्पन्न हो गये। फाल्गुन कृष्णा १ को अपराह्न श्वेत ज्योति के बीच नाखून के बराबर

गहरे काले रंग की एक आकृति मैंने देखी। फाल्गुन कृष्णा २ को भी जब तक नींद नहीं आई, दर्शन होते रहे। फिर धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों सफेद ज्योति घटने लगी, त्यों-त्यों काला रूप भी क्रमशः स्पष्ट होने लगा। काले रूप को देखकर मैंने समझा कि शायद कृष्ण का रूप ही प्रकट होगा, क्योंकि उस आकृति के सिर पर मुझे मुकुट की तरह दिखाई पड़ने लगा। हाथों पैरों और आकृति का गठन देखकर साफ जान पड़ा कि श्रीकृष्ण ही प्रकाशित होंगे। किन्तु अब देखता हूँ कि काली आकृति श्रीकृष्ण की नहीं है। आकृति पहले जिस तरह खड़ी थी, अब देखता हूँ कि वह बैठी हुई है; पहले जो दुबली-पतली थी, अब देखता हूँ कि वह मोटी है। सिर पर मुकुट नहीं, वे तो घने केश है। सूरत-शक्ल और गठन गुरुदेव की ही तरह है। हाँ, बिल्कुल साफ-साफ नहीं धुँधली-सी है। इस रूप को टकटकी बाँधकर देखते हुए और मन को एकाग्र करके मैं तेजी से नाम करने लगा। अब देखता हूँ कि आकृति का रंग क्रमशः गहरा हो रहा है। स्थान-अस्थान सर्वत्र हमेशा, आँखें खुली हों चाहे बंद, यह रूप एक ही तरह का दिखाई पड़ता है। मेरी आँखों में मानो यही सूरत समाई हुई है। नाम करने से रूप की स्फूर्ति होती है। और रूप को देखने से नाम याद आ जाता है, यह अद्भुत योग देख रहा हूँ। इस दर्शन को देखकर ठाकुर रात-दिन मुझे विमल आनन्द में डुबोए हुए हैं। मालूम नहीं, यह सुख मुझे कब तक मिलता रहेगा।

दर्शन के विषय में विचार।

जो स्वभाव संशयी है, उसको प्रत्यक्ष विषय में भी अनेक प्रकार की शंकाएँ होती हैं। मैं जो कुछ साफ-साफ देखता हूँ, उसे भी ठोक-बजाकर देख लेने की इच्छा हुई। दर्शन के क्रम की, उसका

अनुसंधान करने लगा। काले रंग की जो आकृति मेरी आँखों में सदा समाई रहती है, यह क्या है? इसके दर्शन कहाँ होते हैं? और इस दर्शन से मेरी आत्मा का क्या कल्याण होता है? जब असीम आकाश की ओर देखता हूँ तब धुँधली-सी बहुत बड़ी काली छाया नभोमण्डल में व्याप्त दिखाई पड़ती है। थोड़ी देर तक उस ओर दृष्टि को स्थिर करते ही देखते-देखते वह छोटी हो जाती है। फिर बहुत ही छोटी, गहरे काले रंग की मनुष्याकृति में परिणत हो जाती है। और सीमाबद्ध स्थान में दृष्टि को स्थिर करने पर, उसका विस्तार धीरे-धीरे इतना घट जाता है कि नाखून के बराबर रह जाता है। किसी निर्दिष्ट स्थान में दृष्टि जमाने से पहले बहुत ही स्पष्ट ज्योति दिखाई पड़त है। अब पता लगाने पर मैं कुछ भी निश्चय नहीं कर सकता कि रूप के दर्शन बाहर होते हैं अथवा भीतर! क्योंकि आँखें खोले रहने पर जैसा साफ रूप दिखाई पड़ता है, बिल्कुल वैसा ही आँखें बन्द कर लेने पर भी नजर आता है। आँखों के खुली, बन्द रहने पर एक-से ही दर्शन होने के कारण मैं निश्चय नहीं कर सकता कि इसका आश्रय क्या है। लगातार किसी वस्तु अथवा ज्योति के ऊपर रूप का प्रकाश होने से वस्तु अथवा ज्योति को ही रूप का आधार समझता। किन्तु ऐसा नहीं है। एक बार सोचा कि शायद वायु ही रूप का आश्रय है। किन्तु देखता हूँ कि यह बात नहीं है। क्योंकि वायु तो सदा चंचल है, परन्तु आँधी और तूफान में भी रूप ठीक एक-सा रहता है। यही दशा ज्योति के संबंध में है। यद्यपि एक वस्तु के ऊपर ही ज्योति का प्रकाश दिखाई पड़ता है। तथापि उस वस्तु में ज्योति आबद्ध नहीं है। क्योंकि वस्तु के चंचल होने पर भी ज्योति हिलती-डुलती नहीं है। जोर की आँधी में जिस समय वृक्षों

की शाखाएँ हिल-डुलकर काँपती रहती हैं, अथवा नदी में जिस समय प्रबल तंरगे उठती और बहाव तेज हो जाता है, उस समय भी काँपती हुई वृक्षों की डालों और जल में ज्योति एक ही जगह, एक ही अवस्था में निश्चल और स्थिर रूप से मुझे दिखाई पड़ती है। अतएव मैं समझता हूँ कि स्थान या वायु ज्योति और रूप का आधार नहीं है।

आँखों के खुली या बन्द रहने पर एक-से ही दर्शन क्यों होते हैं? बाहर किसी वस्तु के दर्शन होने पर, आँखों की खराबी या संस्कार के कारण, आँखे बंद कर लेने पर भी उस वस्तु का दिखाई पड़ना संभव है। किन्तु वस्तु जिस समय दृश्य का आश्रय लेती है, उस समय, कैसे बतलाऊँ कि बाहर उसके दर्शन होते हैं; बाहर हो चाहे भीतर, इसमें सन्देह नहीं कि मैं उसे देखता हूँ। ये दर्शन इतने घने और स्पष्ट हैं कि पुस्तक नहीं पढ़ पाता, किसी सूक्ष्म वस्तु को साफ-साफ नहीं देख पाता, दृष्टि के स्थिर होते ही वस्तु को ज्योति और रूप ढक लेते हैं। आँखों के खोले और बंद रहने पर भी एक जैसे दर्शन होने के कारण मैं निर्णय नहीं कर सकता कि ये दर्शन कहाँ पर, किस तरह होते हैं। दर्शन मुझे न तो काल्पनिक होते हैं और न किसी संस्कार के फलस्वरूप ही। मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।

अनादर करने से रूप का अन्तर्धान हो जाना।

कुछ समय से मैं दर्शन में ही मुग्ध हो रहा हूँ। मेरी सारी चित्तवृत्ति दर्शन की ओर ही आकृष्ट हो रही है। किन्तु इस दर्शन से क्या मेरी आत्मा का वास्तविक कल्याण हो रहा है, या उसके कारण उन्नति के मार्ग में विघ्न हो रहा है? इस संबंध में भीतर-ही-

भीतर अपने आप तीव्र आन्दोलन उपस्थित हो गया है। देखता हूँ तो व्याकुल हो जाता हूँ। रूप को और भी स्पष्ट दर्शन करने के लिए ही मानो मैं साधन-भजन किया करता हूँ। मेरे भीतर की यह अवस्था कैसे हुई? सच्चिदानन्दस्वरूप, परम आनन्दमय, अनन्त परब्रह्म जिसका लक्ष्य था, वह अब ज्योतिर्मय मनुष्याकृतिरूप की छटा पर मुग्ध हो गया है। अतएव दुर्दशा होने में बाकी ही क्या रह गया? आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ साधनराज्य में ये सब दृश्य यदि निर्दिष्ट ही हों तो इनके प्रति इतना अनुराग अथवा आकर्षण होने का क्या कारण है? जो कोई नियम और प्रणाली के अनुसार साधन-भजन करेगा उसी को ये सब दर्शन होंगे। और यदि गुरुदेव की कृपा से यह मेरी संचारी अवस्था हुई हो, तब तो सिवा देखते रहने के इसके साथ मेरा संबंध ही क्या है, और जिन्होंने दया करके मुझे यह अवस्था दी है, वे कल ही मेरी कुछ त्रुटि देखकर, उसे छीन भी सकते हैं। जो वस्तु मेरी स्वउपार्जित अथवा अपनी नहीं है, उसके प्रति मुझे क्यों ममता आ रही है? इसके सिवा इन द्विभुज, चतुर्भुज अथवा अन्य किसी प्रकार के दर्शनों को तो कभी किसी ने धर्म नहीं बतलाया है। सत्य, सरलता, विनय, पवित्रता, दया और सन्तोष आदि को ही, बिना विरोध के, सभी धर्मशास्त्रों ने धर्म बतलाया है।

मानवात्मा की ये सवृत्तियाँ यदि प्रस्फुटित न हुई हो तो इन अलौकिक चित्रों के देखने से मुझे क्या लाभ होगा? साधन के मार्ग में दो-चार पग चलते ही यदि मैं एक बिन्दु ज्योति के सौन्दर्य में अथवा एक रूप के माधुर्य में आकृष्ट और आबद्ध हो गया, तथा उससे अनन्त उन्नति के मार्ग को अंधकार करके भगवान् को प्राप्त

करने की इच्छा और चेष्टा को तिलांजलि देकर, उसी में सन्तुष्ट हो जाऊँ, तब तो मेरी दुर्दशा का ठिकाना ही न रहा। यह तो निश्चित है कि गुरुदेव के मधुर रूप को स्पष्ट सदा अपनी आँखों के सामने देखूँ तो मैं बड़े आनन्द में रहूँगा, किन्तु इसी से मुझे क्या मिल जायगा? उसे क्या भगवद्दर्शन मानकर मैं तृप्त रह सकता हूँ? तब फिर इस रोगी शरीर से जी-जान से साधन-भजन करके, इतने नियम और संयम में रहकर, क्लेश क्यों सह रहा हूँ? मामूली रेल किराया जमा करके इसी क्षण साक्षात् भगवत्संग प्राप्त कर सकता हूँ। गुरु ही भगवान् है, बिन्दु ही सिन्धु है, इन बातों का अर्थ मैं नहीं समझता। मालूम नहीं, किस अवस्था में रहकर महापुरुषों ने इन बातों को सत्य कहकर साक्षी दिया है। किन्तु मैं अपने अस्तित्व के रहते, प्रत्यक्ष सत्य को न मानकर, कल्पना को प्रतिष्ठित नहीं कर सकता।

हृदय में पूर्वोक्त भाव के आने से दर्शनों के प्रति वैसा ध्यान न देकर मैं नियमित रूप से साधन करने लग गया। कुछ दिनों तक दर्शनों के संबंध में मैं बिल्कुल ही उदासीन रहा। आज साधन करते समय अकस्मात् रूप का स्मरण हुआ। इस बीच रूप कब अन्तर्धान हो गया है, इसका मुझे पता नहीं चल पाया। अब उस मधुर रूप की याद आ जाने से, उसके दर्शनों के लिए मैं अस्थिर हो रहा हूँ, मेरा हृदय जला जा रहा है। हाय, हाय मेरा यह क्या हो गया? आदर न करके मैंने किसका विसर्जन कर दिया? जान पड़ता है, मेरे हृदय के ठाकुर गुरुदेव ही दया करके प्रकट हुए थे, और मेरा अनादर का भाव तथा अवज्ञा देखकर, अब अन्तर्धान हो गये हैं। सुना था, 'इस दर्शन की वस्तुओं को, बच्चों की तरह सदा आँखों ही आँखों में रखना पड़ता है, आदर और सावधानी करनी पड़ती है, नहीं तो ये

ठहरते नहीं है। ठाकुर! इसबार अपनी दग्ध हृदय सन्तान को क्षमा कर दो। साधन के गर्व में गर्वित होकर, मैंने कई बार दंभपूर्वक, तुम्हारी कृपा को प्रलोभन समझकर अवज्ञा की है। हाय, हाय, अब मेरी क्या गति होगी।

इतने दिनों तक दर्शन में चित्त के आविष्ट रहने के कारण साधन के समय नाम बहुत ही रसपूर्ण होकर चलता था। नाम करने के साथ-साथ मैं अनुभव करता था कि एक सारवान् वस्तु को हिला-डुला रहा हूँ। अब इधर कुछ दिनों से मेरी वह अवस्था नहीं है। अब तो बड़ी मुश्किल से नीरस, खाली नाम किया करता हूँ। श्वास-प्रश्वास पर ध्यान देने में २-४ मिनट में ही थक जाता हूँ। मन सदा उद्भ्रान्त रहता है। बिल्कुल शून्य, कुछ भी सहारा न पाने से, त्रास और आतंक के मारे अस्थिर रहता हूँ। हाय, यह मुझे क्या हो गया? मैं इस यन्त्रणा को अब न सह सकूँगा। गुरुदेव, प्राणों के ठाकुर, दया करो।

फाल्गुन द्वितीय सप्ताह १२९६ बं. सन्

लाल का प्रभाव और योगैश्वर्य।

आज सवेरे आसन पर बैठा हुआ नाम कर रहा हूँ, और भीतर की जलन के मारे तड़प रहा हूँ। स्वामीजी (हरिमोहन), लाल के साथ एकाएक मेरे आगे आकर खड़े हो गये। मैं तुरन्त साधन छोड़कर, खड़ा हो गया। लाल को अपने कमरे में ले जाकर, अपने बिछौने के पास उनके लिए आसन बिछा दिया। थोड़े विश्राम के बाद मैंने लाल से पूछा-'लाल, एकाएक तुम अब कहाँ से किस तरह यहाँ आये हो?' लाल ने उत्तर दिया-'श्रीवृन्दावन में गोस्वामीजी के पास था।' एक दिन एकाएक तुम लोगों की चर्चा हुई; और देखने को

मन अस्थिर हो गया। बस, मैं बिना कहे-सुने पैदल ही चला आया हूँ। रास्ते में कानपुर में, मन्मथ बाबू के यहाँ सिर्फ दो दिन ठहरा था। रास्ते में, बीच-बीच में, कोई-कोई मुझे रेल गाड़ी में बैठाकर भी २-४ स्टेशनों तक ले आया है।

मैं-तुम्हारे साथ तो लोटा अथवा दूसरा एक भी कपड़ा तक नहीं है। सिर्फ यही लँगोटी और कम्बल है। इतनी दूर आखिर आये किस तरह? रास्ते में कष्ट नहीं हुआ?

लाल-नहीं जी। कष्ट काहे का? मैं तो बड़े मजे में आया हूँ। जरा भी कष्ट नहीं हुआ। गुरुदेव भला किसी का कष्ट देख सकते है?

मुझे यह सोचकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि नाबालिग लाल किस तरह इतनी दूर श्रीवृन्दावन से यहाँ तक पैदल ही, सिर्फ कौपीन और कम्बल के भरोसे, बिना किसी प्रकार के क्लेश के चले आए।

इधर कई महीनों से हमारे मकान में साधन-भजन का सुन्दर स्त्रोत बह रहा है। भागलपुर के बहुत से गणमान्य लोग प्रतिदिन अपराह्न हमारे यहाँ आते हैं। धर्मार्थियों के सम्मेलन से रोज ही मानो यहाँ उत्सव लगा रहता है। अच्छे गायक महाविष्णु बाबू अपने ही बनाये गीत गाते हैं, जिसको सुनकर सभी मुग्ध हो जाते हैं। लाल ने आकर मानो धर्म के स्त्रोत में भारी तूफान ला दिया। संकीर्तन में लाल का महाभाव, आसन पर बैठे स्थिर समाधि और अद्भुत विकास तथा धर्म-चर्चा में उनका असाधारण पाण्डित्य देखकर सभी अवाक् रह जाते हैं।

एक दिन लाल को साथ लेकर हम लोग श्रद्धेय पार्वती बाबू के यहाँ गये। लाल का परिचय पाकर पार्वती बाबू सन्तुष्ट हुए। उन्होंने धर्म-चर्चा करते हुए लाल के सामने सांख्य, वेदान्त आदिशास्त्र के

मर्म का उपदेश देकर अन्त में 'अहं ब्रह्म' यह मत स्थापित किया। लाल ने चुपचाप सुन लिया, एक भी बात नहीं कही। अब पार्वती बाबू ने उनसे धर्म के संबंध में कुछ कहने का अनुरोध किया। तब लाल साधारण रूप से लौकिक धर्म की दो-चार बातें कहकर, इतने गम्भीर तत्त्व का उपदेश करने लगे कि उनकी एक भी बात मेरी समझ में न आई। देवव्रती, ब्रह्मज्ञानी और भगवत् उपासक महात्मागण एकमात्र गुरु की कृपा से ही परम तत्त्व प्राप्त करते हैं-इस बात को प्रमाणित करने के लिए उन्होंने संस्कृत, पाली, तिब्बती, अरबी और अन्यान्य भाषाओं के विभिन्न धर्मशास्त्रों के वचन धारावाहिक रूप से उद्धृत किया, प्राचीन बौद्ध मत को, सनातन धर्मशास्त्र के साथ मेल करके, स्थापित किया। लाल ने स्पष्टतः समझा दिया कि एकमात्र सद्गुरु के पलक भर दृष्टि दान करने, एक अँगुली का संकेत करने अथवा उनकी क्षण भर की इच्छाशक्ति से ही अनुगत शिष्य के भीतर ब्रह्मज्ञान, तत्त्वज्ञान और भगवद्भक्ति संचारित तथा प्रतिष्ठित होती है। यह सब सुनकर पार्वती बाबू स्तंभित हो गये, फिर स्थिर न रह सकने से लाल के चरणों में साष्टांग गिरकर कहने लगे-'आप मेरा उद्धार करने ही आये हैं। मेरी सीमित संकीर्ण दृष्टि उस सीमा के पास भी नहीं जाती, जहाँ अवस्थित होकर आपने ये परम गुह्य तत्त्व की बातें कही हैं। मेरे ऊपर आप थोड़ी सी दया कीजिए।' इसके बाद से पार्वती बाबू बार-बार लाल से भेंट करने के लिए हमारे यहाँ आने लगे। इससे भागलपुर में लाल का नाम सर्वत्र फैल गया।

१३फाल्गुन को मैं पातंजल दर्शन पढ़ रहा था कि लाल ने पूछा-क्या पढ़ते हो?

मैं-पातंजल दर्शन।

लाल-यह दुर्मति तुम्हारी क्यों हुई? वह सब पढ़ने से क्या होगा? एक लाइन भी न समझ पाओगे; व्यर्थ समय नष्ट होगा। नाम क्यों नहीं करते? गुरु की कृपा से सभी शास्त्र नाम के भीतर होकर प्रकट हो जाएँगे।

मैं-इस युग में किसी बालक से भी यह मत कहना, बिना ही लिखे-पढ़े सिर्फ गुरु की कृपा से गुरु के वरदान से, सरस्वती का वर पुत्र बन जाना सम्भव है।

लाल-यह मेरा कुसंस्कार नहीं है। गुरु की कृपा से सचमुच सब कुछ मालूम हो जाता है। मैं प्रत्यक्ष देखकर कह रहा हूँ-मैंने फिर लाल की बात को काटना आरम्भ कर दिया। तब लाल ने मेरे हाथ से पातंजल दर्शन को छीनकर ग्रन्थ के प्रथम, मध्य और अंतिम पृष्ठों पर कुछ सेकेंड तक दृष्टि डाली फिर वे पुस्तक को थोड़ी देर तक अपने सिर पर रखे रहे, अब उन्होंने तुरन्त ही मुझे पुस्तक लौटाकर कहा-'अच्छा, यह लो। मैंने तो सिर्फ शिक्षा तृतीय भाग तक पढ़ी थी; न तो मुझे अक्षरों का अच्छा ज्ञान है और न मैं ग्रन्थ का ठीक-ठीक उच्चारण ही कर सकता हूँ। अच्छा, अब तुम इस ग्रन्थ के चाहे जिस स्थान से प्रश्न करो, जहाँ जो कुछ लिखा है, वह मैं ठीक-ठीक कह दूँगा।' मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। मैंने ग्रन्थ के अनेक स्थलों से ७-८ प्रश्न किये। ग्रन्थ में टीका-टिप्पणी समेत जिस विषय की जो मीमांसा है, जहाँ पर है, वह लाल के मुँह से अक्षरसः ठीक-ठीक सुनकर मैं विस्मित, स्तम्भित, अवाक् और दंग रह गया। सोचा-यह कैसी असंभव बात है! थोड़ी देर में मैंने लाल से पूछा-'भाई यह अद्भुत शक्ति तुमने किस प्रकार प्राप्त की है?' लाल ने

कहा-‘यह गुरुकृपा है। एक दिन गुरुभाई श्रीसुरेशचन्द्र सिंह (डि. मैजिस्ट्रेट) के साथ, उनके यहाँ, मनोविज्ञान की चर्चा कर रहा था। सुरेश बाबू एकाएक उठकर भीतर चले गये। मैं उनकी बैठक में ही बैठा रहा। टेबिल पर मनोविज्ञान की एक अंग्रेजी पुस्तक रखी हुई थी। मन में आया कि मैंने लिखना-पढ़ना नहीं सीखा है, अगर मैं पढ़ा-लिखा होता तो जान लेता कि इन पुस्तकों में किस विषय पर विचार किया गया है। ऐसा सोचकर, ग्रन्थ को बार-बार नमस्कार करके मैंने सिर पर रख लिया। अब मैं गुरुदेव का स्मरण करने लगा। इसी समय एकाएक माथे में मुझे न जाने कैसा अनुभव होने लगा। ग्रन्थ में जिन विचारों का निर्णय है, वे सब मेरे मस्तिष्क में पहुँच गये। नहीं मालूम, यह क्यों हुआ। उस दिन से जिस विषय को जानने की मुझे इच्छा होती है वह अपने आप मुझे मालूम हो जाती है। इसे गुरुकृपा के सिवा और क्या कहूँ? ऐसी इच्छा करने से तो धर्मजीवन में बहुत हानि होती है। कुछ भी इच्छा किये बिना, चुपचाप गुरुदेव की ओर ताकते रहना ही अच्छा है। किन्तु यह हम कहाँ कर पाते हैं? तुम्हें महाशक्ति युक्त नाम मिल गया है, बस नाम करो। गुरुदेव की कृपा से क्षण मात्र में सारे शास्त्र तुम्हारे भीतर प्रकाशित हो सकते हैं। यह मेरी कल्पना नहीं है, सब सत्य कह रहा हूँ।

मैं पता लगाने लगा कि लाल क्यों गुरुदेव का साथ छोड़कर अकस्मात् पैदल ही भागलपुर चले आये। स्वामीजी ने संन्यास व्रत ग्रहण कर लिया था, विधाता के फेर से, वे संगदोष से आचार-भ्रष्ट होकर अब स्वेच्छानुसार दिन बिता रहे हैं, यह जानकर लाल को बहुत ही क्लेश हो रहा था। इसके प्रतिकार के लिए वे अत्यन्त

उतावले हो उठे। लाल प्रतिदिन स्वामीजी से संन्यास के नियमों का पालन करके गुरुदेव की आज्ञा के अनुसार चलने की जिद करने लगे किन्तु स्वामीजी ने लाल की इन बातों की ओर ध्यान नहीं दिया। तब यह समझकर कि सहज ही काम नहीं होगा, लाल थोड़ा-सा योगैश्वर्य प्रकट करने को बाध्य हुए। फाल्गुन १४ की रात को १० बजे घर के भीतर बैठे हुए हम लोग बातचीत कर रहे थे कि लाल ने पहले की तरह, स्वामीजी से संन्यास के नियमों के अनुसार चलने का अनुरोध किया। ज्योंही उन्होंने इस बात की ओर लापरवाही दिखलाई त्योंही लाल एकदम उछल पड़े और ऊपर की ओर हाथ हिलाकर चिल्लाते हुए कहने लगे-'मत आओ, मत आओ। क्यों आते हो? चले जाओ! चले जाओ।' इसी समय हम लोगों के सामने से बुरी तरह से सनसनाता हुआ न जाने क्या चला गया। हम लोग हक्के-बक्के रह गये। थोड़ी देर में लाल चौंक से पड़े और कहने लगे-'हाय, हाय! यह क्या हुआ? बिल्कुल आत्महत्या! ओफ कैसा भयानक है! यह तो अब सहा नहीं जाता।' अब वे रो पड़े, रोते-रोते फिर कहने लगे-'अब मेरे पास किसलिये आते हो? मेरे पास आने से क्या होगा? गुरुजी के पास जाओ। मेरे द्वारा किसी तरह का कल्याण नहीं होगा। मेरे पास मत आओ, मत आओ। सुनते क्यों नहीं हो? अच्छा तो फिर आओ।' लाल के यह सुनते ही सनसनाता हुआ न जाने क्या आकर कमरे के गंगाजी तरफ खिड़की पर धम से गिर पड़ा। खिड़की के किवाड़ भीतर से बन्द थे, अचम्भे की बात है कि वह अकस्मात् खुल गया और किवाड़ में लगे हुए तीनों शीशे टूटकर चूर-चूर हो गये! हम सभी चौंक पड़े, आश्चर्य से एक-दूसरे की ओर देखने लगे। लाल तनिक ठहरकर चिल्लाकर

कहने लगे-'यह क्या है? यह क्या देख रहा हूँ? जीते-जागते मनुष्य को चिता पर रख दिया! बहुत ही भंयकर है। ओफ कैसी भयानक चिता है, वह देखो, वह देखो।' तब स्वामीजी चिल्लाकर बरामदे में जा पहुँचे। 'हाय, हाय यह-क्या हुआ? यह क्या हुआ?-जीते-जागते आदमी को चिता पर चढ़ा दिया। कई बार ऐसा कहकर रोते-रोते वे बेहोश हो गये। कोई डेड़ घण्टे बाद चेतना लौट आने पर भी वे चिता को याद करके अस्थिर होने लगे। तब लाल बीच-बीच में चौंककर कहने लगे-आज धामराई गाँव उजड़ गया। हायहाय!

अब स्वामीजी ने बिना कुछ कहे-सुने अपना कम्बल लाल को ओढ़ा दिया, उनकी कौपीन खींच लीं, फिर हाथ जोड़कर मुझसे कहा-'भाई बुरा न मानना, जरा पागलपन करता हूँ।' यह कहते ही वे बरामदे से कूदकर नीचे जा पहुँचे और गंगाजी के बालू के मैदान पर से बेतहाशा दौड़ते हुए गायब हो गये। रात को १ बजे का समय था। थोड़ी देर में लाल ने कहा-अब स्वामीजी का अनुसंधान मत करना। वे वृन्दावन की ओर गये हैं। फिर भी मथुरा बाबू ने स्वामीजी को दो दिन तक ढुँढवाया; किन्तु कहीं कुछ पता नहीं लगा।

मेरे बहनोई मथुरा बाबू ने लोगों के मुख से लाल की असाधारण अवस्था और योगैश्वर्य की बहुत सी बातें सुनी थी। लाल को अपने यहाँ पाकर उस संबंध में कुछ प्रत्यक्ष दिखाने के लिये वे लाल के पीछे पड़ गये। लाल उनके अनुरोध को न टाल सके। लाल ने एक दिन मथुरा बाबू को एकान्त में बुला लिया; फिर मेरी मृत बहन को परलोक से बुलाकर बहुत सी अद्भुत और विचित्र गुप्त बातें सुनाई। किसी दुश्चरित्र स्त्री की कुचेष्टा से, अभिचारिक क्रिया किए जाने पर, जिस तरह असमय में मेरी बहन की अस्वाभाविक मृत्यु हुई थी,

उसका कुल विवरण सुनकर मथुरा बाबू स्तम्भित हो गये। लाल ने यह भी स्पष्ट कह दिया कि उस स्त्री के द्वारा और भी इस तरह के भीषण अनर्थ होंगे। मथुरा बाबू के सिवा जिन बातों को इस संसार में और कोई नहीं जानता था, ऐसी कुछ गुप्त बातों को लाल के मुँह से सुनने से उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। लाल ने मथुरा बाबू से हठपूर्वक कहा कि इस मकान से भूत-प्रेतों के अनेक प्रकार के उपद्रवों को दूर करने के लिए प्रतिदिन हरिनाम संकीर्तन और तुलसीसेवा होनी चाहिए तथा साधु-सज्जनों को अपने यहाँ ठहराकर उनके साधन-भजन की अच्छी व्यवस्था कर देना आवश्यक है। उनके उपदेश के अनुसार कार्य करना मथुरा बाबू ने स्वीकार कर लिया।

एक दिन लाल किसी से कुछ कहे-सुने बिना ही अकस्मात् कहीं चले गये। उनके चले जाने से हम सभी लोग दुःखी और विषादग्रस्त हो गये। रात-दिन हम लोगों के यहाँ धर्म की जो अग्नि जलती रहकर, हम लोगों को प्रकाश दिया करती थी, वही अग्नि लाल के चले जाने से बुझ गई, हम लोगों का अन्तःकरण सुस्त और अवसन्न हो गया।

लाल और स्वामीजी के एकाएक चले जाने के बाद मैं बहुत ही बेचैन हो गया। विषाद के कारण मुझे सब कुछ सूना लगने लगा। साधन-भजन करने का उत्साह कुछ समय से बिल्कुल ही ठण्डा पड़ गया है। अब नियमित रूप से मैं साधन नहीं करता। आसन पर बैठने से अस्थिरता घेर लेती है। मैं श्वास-प्रश्वास में नाम नहीं कर पाता, ३-४ मिनिट में ही थक जाता हूँ। ऐसा जान पड़ता है कि मैं अपने साध्य के अतीत कुछ बोझ ढोकर चल रहा हूँ। आसन

छोड़कर उठ जाने की इच्छा होती है। गुरुदेव की दुर्लभ कृपा को मैंने दंभ के कारण अवहेलित कर दिया है, इसकी याद आने से मेरी छाती फटने लगती है। अब अपने इसी अपराध का दण्ड भोगता हूँ; साधन-भजन भला करूँ तो कैसे? रात-दिन ऐसे हाहाकार करके ही समय बीतता है। कई दिन से मेरा पुराना दर्द बहुत ही बढ़ गया है। अब इसको सहन करने की भी मुझमें शक्ति नहीं है। न तो शरीर में ही और न मन में ही ऐसा कुछ रह गया है, जिसके सहारे मुझे जरा भी आराम मिले। निराशा और यन्त्रणा के मारे मृत्यु की कामना करता हूँ। महापुरुषों की आश्वासन-वाणी का स्मरण करके ही आजकल जरा स्थिर हो पाता हूँ। मेरी यह दुर्दशा होगी, यह जानकर ही शायद नागा बाबा ने कहा था-'बच्चा, घबराओ मत। गुरुजी तुम पर बहुत कृपा करेंगे। उन्हीं पर तुम्हारी सच्ची भक्ति हो जायगी।' पतितदास बाबा ने कहा था-'थोड़े दिनों में तुमको गुरुभक्ति प्राप्त हो जायगी, धन्य हो जाओगे।' गुरुदेव ने भी कहा था-'तुमने कम उम्र में साधन ले लिया है; जीवन में बहुत उन्नति कर सकोगे। धन्य हो जाओगे।' इत्यादि। यदि इन महापुरुषों के वचन सत्य हों, यदि आजन्म सत्य-संकल्प, सत्यवादी गुरुदेव की बात भी असत्य न हो, तो फिर मुझे चिन्ता ही किस बात की है? रोग मुझे कितना ही क्लिष्ट और अवसन्न क्यों न करे, मैं स्वेच्छाचार में ही क्यों न डूब जाऊँ, अन्त में कल्याण जरूर होगा।

१७ फाल्गुन १२९६

मुझको लाल का उपदेश।

लाल मुझसे तीन बातें कह गये हैं-१. डायरी लिखना मत छोड़ना। आगे इसकी बड़ी आवश्यकता होगी। २. साधना करना न

छोड़ना, खूब नाम करना, तुम संन्यासी बनोगे। ३. गुरुदेव की कृपा हुए बिना कुछ होने वाला नहीं, गुरु में एकनिष्ठ हो जाओ, उनका संग करने की चेष्टा करो।

मैं तो कुछ दिनों से साधन-भजन करना एक तरह से छोड़ बैठा हूँ। अनावश्यक कामों में दिन-रात बिताया करता हूँ। मैं खूब समझता हूँ कि क्या करने से मेरा भला होगा, फिर भी उसे नहीं कर पाता हूँ। फिजूल काम में, व्यर्थ की गप-शप में दिन का अधिकांश समय बीत जाता है। भीतर जब हाहाकार और जलन होती रहे तो भला बाहर मेरी बातें मधुर कैसे होंगी? मित्र लोगों को भी अब मेरे साथ रहने में क्रोध आता है। मैं बड़ी उलझन में हूँ।

२२ फाल्गुन १२९६

स्वप्न-वाक्यसंयम।

आज रात को मैंने एक स्वप्न देखा। गुरुदेव के साथ रहने के लिये दौड़ रहा हूँ। आँधी और तूफान में बहुत से दुर्गम मार्ग को पार करके मैं गुरुदेव के पास पहुँच गया। देखा कि गुरुदेव मौन धारण किये हुए हैं। स्नेहपूर्ण दृष्टि से जिसकी ओर देखते हैं, वही आनन्द में मग्न हो जाता है। मैं गुरुभाईयों के साथ, हँसी-बातचीत और तर्क-वितर्क करने लगा। गुरुदेव ने मेरी ओर कुछ नाराजी से देखते हुए कहा-'ओफ, बाबा तुम तो बहुत बातें कर सकते हो!' यह बात सुनते ही मेरी नींद टूट गई। मैंने समझ लिया कि गुरुदेव को मेरा बहुत बातचीत करना पसन्द नहीं। मैंने निश्चय कर लिया कि अब व्यर्थ (अनावश्यक) बातें न किया करूँगा।

वैशाख १२९७

स्वप्न-संन्यास की अवस्था के संबंध में उपदेश।

यद्यपि मैं साधन-भजन शून्य और स्वेच्छाचारी एवं दुरवस्था में पड़ा हुआ हूँ, फिर भी गुरुदेव की इस आज्ञा को न भूल सका। बातचीत शुरू करते ही गुरुदेव की दृष्टि और उनकी बातों की याद आ जाती है। बस, फिर मैं कुछ कह नहीं सकता। लाल के चले जाने के बाद से, ४-५ दिन के अन्तराल से स्वप्न देख रहा हूँ-मानो मैं संन्यासी हो गया हूँ। मैंने सोचा था कि अपने संबंध में लाल की भविष्यवाणी सुनने के कारण ही ऐसा हो रहा है, अतएव उसे वैसा महत्त्व भी नहीं दिया। किन्तु अब देखता हूँ-इन स्वप्नों से मेरे भीतर बड़ी हलचल मची हुई है। स्वप्नावस्था में अपने को जैसा कठोर वैराग्यपूर्ण, उद्यमी, भजनानन्दी संन्यासी देखता हूँ, वही मूर्ति सुबह से शाम तक मेरी आँखों के आगे झूलती रहती है, सदा उसी का चिन्तन करना अच्छा लगता है। भीतर लगातार जिसका चिन्तन करते रहने से आराम मिलता है, बाहर वैसा न हो सकने से अच्छा कैसे लगेगा? कुछ समय तक हाथ-पैर समेटे बैठा रहा, किन्तु यह बहुत दिनों तक नहीं रह सका। मन में जलन-सी होने लगी। अतएव स्वप्न में देखी हुई अपनी संन्यास की आकृति-प्रकृति के अनुरूप अवस्था को प्राप्त करने की मुझे प्रबल इच्छा हुई। अब मैंने कठोर साधना करना आरम्भ कर दिया। दिन में मात्र एक ही बार भोजन करने का नियम कर दिया। शैय्या पर सोना छोड़ दिया। सिर्फ एक कम्बल से ही काम लेने लगा। पक्के कमरे में रहना छोड़कर पुलिनपुरी के बड़े भारी बाग में, तमाल के नीचे अपना आसन लगा लिया, कौपीन मात्र पहने धूनी जलाकर तमाल के नीचे ही सारी रात रहने लगा। जान पड़ता है, असाधारण स्थान के प्रभाव से साधन में मेरी इच्छा और कठोरता की व्याकुलता दिन पर दिन

बढ़ने लगी। सुना है, इस तमाल के नीचे तो एक सिद्ध महात्मा का भजन-स्थान था। पेड़ बहुत पुराना और छत्राकार गोल है। घने पत्तों से लदी हुई डालें चारों ओर फैली हुई जमीन तक झुकी हुई है। वृक्ष के नीचे की जगह खूब साफ सुथरी है। उस पेड़ के नीचे १५-२० आदमी आराम से बैठ सकते हैं। पेड़ के नीचे जाने के लिए एक सँकरा सा मार्ग गया है। अन्य किसी ओर से वहाँ जाने को रास्ता नहीं है। यदि कोई पेड़ के नीचे हो तो उसे कोई बाहर से कोई नहीं देख सकता। ऐसा बढ़िया पेड़ मैंने पहले कहीं नहीं देखा था। तमाल के नीचे बैठते ही चंचल मन अपने आप मानो शान्त हो जाता है। गुरुदेव की कृपा से साधन में मुझे जो अपूर्व दर्शन होते थे, उनसे भ्रष्ट हो जाने पर मैं विक्षिप्त सा हो गया था, साधन में अश्रद्धा और नाम में अरुचि उत्पन्न हो गई थी। मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि जीवन में फिर कभी यह साधन कर सकूँगा। किन्तु गुरुदेव ने बारम्बार मुझे स्वप्न में तेजःपुंज भजनानन्दी संन्यासी के रूप को दिखाकर साधन-भजन और तपस्या के प्रति फिर मेरा प्रबल आग्रह उत्पन्न कर दिया। गुरुदेव की विचित्र कुशलता है।

मेरा शरीर दिन पर दिन कमजोर होता जा रहा है। मन की उमंग के साथ तमाल के नीचे रात बिताने और अनियमित जागरण आदि खूब जबर्दस्ती करने से, थोड़े ही समय में जीर्ण-शीर्ण कंकाल की तरह हो गया हूँ। रिश्तेदार और इष्ट-मित्र मुझे बारम्बार सावधान करने लगे, किन्तु मन के अनिवार्य आवेग के कारण मैंने किसी की बात न सुनी। सोचा-जब मैं गुरुदेव की कृपा से वंचित हो गया हूँ, जब दुर्बुद्धि और दाम्भिकता में पड़कर मैं दुर्लभ साधनफल से वंचित हो चुका हूँ, तब अबकी बार स्वयं अन्तिम चेष्टा करके

देखूँगा, यदि सफलता न होगी तो प्राण दे दूँगा।

मैं कोई महीने भर से अधिक समय तक निर्बाध रूप से यथारीति नियम आदि का पालन करता रहा। मेरे भीतर भरोसा उत्पन्न हो गया, रोगमुक्त होने पर अपनी चेष्टा से-साधन के बल पर-सहज ही संन्यास की उपयोगिता को प्राप्त कर लूँगा। इसी समय एक अद्भुत् स्वप्न देखने से मेरा अभिमान चूर्ण हो गया। मैंने समझ लिया कि संन्यास प्राप्त करने की चेष्टा, मेरे लिए निरी विडम्बना मात्र है। मैं विचित्र अवस्था में पड़ गया।

मेरा चचेरा भाई मनमोहन मुझसे नौ दिन बड़ा था। एक ही स्थान में पैदा होकर, हम दोनों का पालन एक ही गृहस्थी में हुआ था। तेरह वर्ष की उम्र में मनमोहन धर्म का अवलंबन लेकर सत्यनिष्ठ, उपासनाशील जीवन बिताता हुआ, अकाल मृत्यु से ही चल बसा। मरने के तीन दिन पहले मैंने स्वप्न देखा कि मनमोहन ने मुझसे कहा-'भाई, मुझे देखना हो तो जल्दी आओ, मैं अब चला।' अचम्भे की बात है कि जैसा स्वप्न में उसने कहा था, वैसा ही हुआ।

बहुत समय के बाद गत रात्रि को स्वप्न देखा-भाई मनमोहन संन्यासी के वेश में मेरे पास आया है। उसे देखकर मैंने खूब उल्लसित होकर कहा-'वाह, तुम संन्यासी हो गये हो? अच्छा! मैं भी संन्यासी होकर तुम्हारे साथ रहूँगा।' संन्यासी भाई ने कहा-वेषमात्र का नाम संन्यास नहीं है; वह तो सहज अवस्था है, जितेन्द्रिय हुए बिना सिद्धि प्राप्त नहीं होती। संन्यास को तुम जितना सहज समझते हो, उतना सहज वह नहीं है।

मैं-कामिनी के साथ रहने पर भी मेरे चित्त में विकार नहीं होता?

संन्यास की उपयुक्तता तो मेरे स्वभाव में ही मौजूद है।

संन्यासी भाई ने कहा-होगी। अच्छा, एक बार धोती तो खोलो।

मैंने तुरन्त धोती खोलकर अलग रख दी। मुझे देखकर संन्यासी भाई ने तनिक मुस्कुराकर कहा-रहने दो, रहने दो; धोती पहन लो। इसी उपयुक्तता को लेकर संन्यासी बनोगे? अब तुम वह संकल्प छोड़ दो। अब तो तुम साधन करो, खूब नाम किया करो। गुरु की कृपा होने से ही सब हो जाएगा। व्यग्र नहीं होना मैं, चला।

मैंने कहा-मैं देखना चाहता हूँ कि संन्यास का लक्षण तुममें कहाँ तक है?

संन्यासी भाई तुरन्त ही नग्न हो गया। मैंने आश्चर्यचकित कहा-'यह क्या है भाई? यह तो बिल्कुल स्त्री की तरह मुझे दिखता है।' संन्यासी भाई ने कहा-नहीं, यह बात नहीं है। काम-भाव के दमन के साथ उपस्थ की चंचलता नष्ट होकर, वह संकुचित व लघुआकृति हो जाती है। उल्टी तरफ यानी ऊपर की ओर मूलसहित खींचता जाता है। इसीलिए अंग की आकृति ऐसी हो जाती है। दिखने में स्त्री चिह्न की भाँति है पर वस्तुतः पुरूषांग का अभाव ही है।' यह तो संन्यासी का एक बाहरी लक्षण है। यह कुछ नहीं। संन्यासी के अन्तःकरण की असाधारण दुर्लभ अवस्था तो गुरु के प्रसाद से ही प्राप्त होती है। बस, अब संन्यासी भाई अन्तर्धान हो गये; मैं भी जाग पड़ा।

स्वप्न देखने से मुझे बड़ा अचम्भा हुआ। संन्यासी का ऐसा लक्षण मैंने पहले कभी नहीं सुना। स्वप्न को स्वप्न समझकर, मैं उसे मिथ्या कहकर, उड़ा नहीं सका। उसकी प्रत्येक बात सत्य होने से मेरे मन पर उसकी छाप पड़ गई। स्वप्न में देखी हुई

अवस्था को प्राप्त करने के लिए मुझमें बड़ा आग्रह हो गया। मैं बहुत कष्ट सहकर साधन करने लगा।

ज्येष्ठ १२९७

पाप पुरुष का आक्रमण।

महात्माओं के मुँह से सुना है कि और स्वयं कई बार देखा है कि तत्परता के साथ साधन, भजन, तपस्या करो तो उसके साथ-साथ, अलक्षित रूप से, साधक के अभिमान का आश्रय लेकर एक भंयकर पिशाच-शक्ति उसके पीछे-पीछे चलती रहती है। साधन की भीतरी व्याकुलता अथवा बाहरी दीनता में थोड़ी-सी कमी होते ही, अथवा नियमनिष्ठा के जरा-सी असावधानी से-जान-बूझकर या अनजाने-थोड़ी-सी ढील देते ही, भयंकर पिशाच बड़ी तेजी से साधक पर आक्रमण करता है और अनेक प्रकार की दुर्दमनीय दुर्मति चित्त में जगाकर, कदाचार तथा व्यभिचार द्वारा साधक को बहुत ही जघन्य, हीन अवस्था में पटक देता है।

थोड़े ही दिनों तक कठोरता के मार्ग पर चलकर थोड़ा-सा साधन करते ही भीतर ही भीतर अभिमान उत्पन्न हो गया-समझता हूँ कि मैंने काम को जीत लिया है। मन में इस भाव का उदय होने से दर्पहारी भगवान् ने मेरे दर्प को चूर-चूर करने के लिए विचित्र उत्पात् पैदा कर दिया। मैंने जन-मानव शून्य बगीचे को उपासना के लिए सब तरह के उत्पातों से बचा हुआ समझा था। इसी से मुझे आशा थी कि जी-जान से साधन करूँगा और पुण्यवृक्ष तमाल के नीचे, सिद्ध महात्मा के भजन-स्थान में संयमपूर्वक साधन करने के बल से मैं शीघ्र ही संकल्पित विषय में सफल होकर निरापद अवस्था को प्राप्त कर लूँगा। किन्तु प्रतिष्ठा और अभिमान के मोह से अन्धा

होकर अब मैं विकट अन्धकूप में जा गिरा हूँ। इस संकट से बचने का मेरे पास कुछ उपाय नहीं है।

भागलपुर अनेक प्रकार की आभिचारिक क्रियाओं के लिए प्रसिद्ध है। नीची जातिवालों में ही इस भयंकर दुष्क्रिया का प्रचलन अधिक है। समय-समय पर 'आभिचारिक क्रिया का प्रयोग न किया जाय तो उसकी शक्ति घट जाती है; इसलिए जो लोग उस काम में निपुण हैं, वे सदा ऐसे आदमी की खोज में रहते हैं, और उपयुक्त यजमान मिल जाने पर उनको आमदनी भी अच्छी हो जाती है। किसी के साथ मामूली कारण से यदि किसी का कुछ विद्वेष हो तो, वे लोग एक दूसरे को नष्ट करने के लिए 'बाण मारने','फूल छोड़ने', 'धूल पढ़ने' आदि की चेष्टा करते हैं। इस उत्कट शक्ति का प्रयोग यदि पात्र-विशेष पर किया जाय तो उसकी जान पर बन आती है।

हमारे बगीचे से लगे हुए उत्तर की ओर एक सज्जन आकर, किराये के मकान में रहते हैं। वे भले स्वभाव के और धर्मात्मा हैं, इसलिए पड़ोसी के नाते उनके साथ हम लोगों की कुछ अधिक घनिष्ठता भी हो गई है। कुछ दिन हुए, उनकी पन्द्रह वर्ष की युवती बेटी इस आभिचारिक क्रिया के किये जाने से संकट में पड़ गई है। उसकी एक सुन्दर सन्तान हुई थी, किन्तु माँ का दूध न मिलने से वह मर गई। युवती और भी अनेकों उत्पातों को भोग रही है। उसका असाधारण रूप-लावण्य ही उसकी इस उत्कट विपत्ति का कारण है। मैं तमाल-तले रात-दिन धूनी जलाये बैठा रहता हूँ, इसलिए मैं अवश्य ही शक्तिशाली महापुरुष हूँ, इस ढंग का कुसंस्कार यहाँ पर बहुतों के मन में हैं। उस युवती के पिता मुझे इसी धारणा से एक दिन अपने घर जबर्दस्ती ले गये कि मेरी सिर्फ थोड़ी सी कृपादृष्टि

से ही उस युवती की सारी ऊपरी बाधा दूर हो जायगी। फिर सुन्दरी कन्या को एकान्त में मेरे पास छोड़कर, आप वहाँ से खिसक गये। उनका अभिप्राय यह था कि उनकी बेटी अपना सारा दुखड़ा मुझे जी खोलकर सुना दे। शोकातुरा भोली-भाली युवती ने बहुत ही आर्त होकर मुझसे कहा-'आप दया करके मेरी रक्षा करें। किसी दुष्ट मनुष्य की कुदृष्टि पड़ने से, प्रसव होने के कुछ दिन पहले से ही, मेरा एक स्तन सूख गया है; दूसरे में भी एक बूँद दूध नहीं हैं। इसी से, दूध न मिलने से, भूख के मारे मेरा बच्चा मर गया। अब उस शोक-विह्वल बाला ने बिना किसी प्रकार के संकोच के, कपड़ा हटाकर मुझे छाती की हालत प्रत्यक्ष दिखला दी। युवती की छाती में बायीं ओर स्तन का नाम-निशान तक नहीं है। देखकर मैं अवाक्-सा रह गया। दूसरा स्तन स्वाभाविक, भरा हुआ और सुगठित है। युवती की धारणा है कि मेरे देख लेने और हाथ से छू देने से कुग्रह की दृष्टि हट जायगी। उसके प्राणों की दुःसह, यातना और हार्दिक आग्रह का मेरे चित्त पर असर पड़ा। मैं बिना किसी प्रकार संकोच के उसके सारे बदन पर हाथ फेरकर, आशीर्वाद देकर चला गया। अब उस सुनसान बगीचे में मेरे दर्शन करने के लिए वह युवती प्रतिदिन आने लगी। मैं उसे दूर से आशीर्वाद देकर अपने काम में लगा रहता हूँ।

थोड़े दिनों के बाद ही देखा कि यदि किसी दिन वह ठीक समय पर नहीं आती है तो मेरा ही मन बेचैन हो जाता है, उसके रूप की स्मृति मेरे चित्त को चंचल कर देती है। तब मैं अपने आसन पर बैठे रहने में असमर्थ होकर, उसी बाग में इधर-उधर टहलने लगता हूँ। और कभी-कभी तो उसे देखने के लिए उन लोगों के घर के पास

जाकर खड़ा रहता हूँ। हाय, मेरी यह कैसी दुर्दशा हुई! मैं कहाँ से कहाँ गिरा? आचरण के संबंध में पहले ही सावधान न होकर, भीतर की दुष्प्रवृत्ति के सूक्ष्म आकर्षण में धीरे-धीरे कदम रखकर, मानो नरक-कुण्ड में आ गया हूँ। मानो मेरा सब-कुछ लुट हो गया है, सत्यानाश गया है। अब मैं अपने को बहुत ही जघन्य समझ रहा हूँ। अब रात-दिन हाय-हाय करता और दीर्घश्वास लिया करता हूँ। साधन-भजन सब छूट गया है।

अब मैंने तमाल के तले रहना छोड़ दिया है, नाम का जप और प्राणायाम भी छोड़ दिया है। सामने गहरा अँधेरा देखकर आतंक से विक्षिप्त-सा हो गया हूँ। गुरुदेव इस समय तुम कहाँ हो?

तुम कौन हो?

जीवन में जो अचिन्तनीय घटनाएँ हो रही हैं, उसका चिंतन करके मैं स्तब्ध हो जाता हूँ। कह नहीं सकता, कल रात को मैंने क्या देखा है। मैंने जिन्दगी में कभी ऐसा दृश्य नहीं देखा। गुरुदेव को सुनाने के लिए घटना को यथासाध्य लिख लेता हूँ।

रात के बारह बज गये। बिस्तर पर पड़ा हूँ; घर के दरवाजे और खिड़की सब खुले हैं। बिस्तर के कोई आधे हिस्से पर चन्द्रमा की उजली किरणों का प्रकाश फैला हुआ है। दर्द की तकलीफ और मन की ज्वाला से मैं तड़प रहा हूँ। मैंने बहुत ही व्याकुल होकर गुरुदेव के चरणों में प्रार्थना की, ‘ठाकुर मुझसे अब तो नहीं सहा जाता, अब तुम दया करो। तुम्हारी उस ममतापूर्ण स्निग्ध दृष्टि को हृदय में रखकर सदा के लिये सारे उत्पातों को शान्त कर दूँगा।’ प्रार्थना के अन्त में गुरुदेव की पवित्र मूर्ति के ध्यान के साथ-साथ मैं इष्ट नाम जप करने लगा। नहीं मालूम कब, अनजाने धीरे-धीरे कामिनी

कल्पना चित्त में हो आई। मैं उसी में अभिभूत बना रहा। पता नहीं कि मैं जाग रहा था या सो रहा था, अकस्मात् अपने पैरों की ओर मैंने कामिनी का कण्ठ स्वर सुना। धीमे गले से, गिड़गिड़ाकर, मुझसे उसने कहा-'क्या सोच रहे हो? यह देखो मैं यह आ गई।' स्वर से बड़ा अपनापन जान पड़ रहा था। किन्तु पहचान न पाने से मैंने पूछा-तुम कौन हो? इस समय यहाँ पर क्यों आई हो?

रमणी ने उत्तर दिया-तुम तो मुझे स्थिर नहीं रहने देते हो-खींच लाये हो। बहुत भोग चुकी अब क्लेश मत दो। तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, अब मुझे मुक्त कर दो।

मैंने विस्मित होकर कहा-मैंने तुम्हें कब बुलाया है? तुम कौन हो? यहाँ क्यों आई हो?

कामिनी ने कहा-तुम्हारे अदम्य कामभाव से मेरी ऊर्ध्वगति रूक गई है, तुम्हारी कल्पना और उत्तेजना के साथ ही मैं तुम्हारी ओर आकृष्ट हो जाती हूँ। जब तक तुममें विकार बना है, तब तक मेरा निस्तार नहीं हो सकता। अब वासना तृप्त कर लो-ठण्डे हो जाओ। मैं भी बचूँ।

मैंने कहा-तुम कौन हो? तुम्हारी बातें तो सुन रहा हूँ, किन्तु तुम्हें देख नहीं पाता हूँ। मैं कामिनी की कल्पना करता हूँ तो इसमें तुम्हारी क्या हानि है? तुम क्यों आकृष्ट होती हो?

अस्पष्ट छाया की तरह थोड़ी सी प्रकाशित होकर, युवती तख्त के पास, मेरे पैंताने की ओर आकर, खड़ी हो गई। फिर बिस्तर पर आधी लेटी हुई की दशा में गिरकर, उसने मेरे पैर पकड़ लिये। उसकी देह का स्पर्श होने से मेरे भीतर में आनन्द की धारा बहने लगी, मैं बारम्बार सिहर उठा।

तब युवती ने मुझसे कहा-छि:! यही तुम्हारी दशा है? काम-भाव, कामिनी कल्पना-तुम इसे छोड़ नहीं सके? अपना सत्यानाश कर लिया! और देखो, इसमें मेरी कितनी दुर्गति होती है। मैं बड़े आनन्द से समाधि में थी। सविकल्प अवस्था को पार करके इतने दिनों में निर्विकल्प समाधि प्राप्त कर लेती। सिर्फ तुम्हारे साथ अभेद-सम्बन्ध रहने से आबद्ध हो गई हूँ। तुम्हारी विषम उत्तेजना का खिंचाव मुझे ऊपर नहीं जाने देता। मैं बिल्कुल लाचार हो गई हैं। अब मेरा छुटकारा कर दो। अपनी आकांक्षा पूरी कर लो।

मैं तुरन्त उठकर बैठ गया-कहा, 'बतलाती क्यों नहीं कि तुम कौन हो?' अब रमणी अकस्मात् तख्त के पास बायीं ओर आकर खड़ी हुई और मधुर भाव से नम्रता के साथ बोली-'एक बार मुझे पकड़ो तो सही!-अभी परिचय मिल जायगा।' मानो मैंने हाथ से उसकी कमर पकड़ ली। रमणी का अलौकिक रूप देखते ही विस्मय के मारे विवश हो गया। मेरा हाथ शिथिल होकर गिर पड़ा। उसकी कमनीय देह केवल नाभि तक ही साफ-साफ मेरे आगे प्रकाशित हुई। मैंने देखा कि नीली द्युति से युक्त सुन्दरी श्यामा प्रायः नग्नावस्था में मेरे सामने खड़ी हुई है। सफेद, स्वल्प महीन वस्त्र से उसकी मोटी-मोटी जाँघों का सन्धिस्थल ढंका है। षोड़शी के नाभि-प्रदेश से लेकर पैरों के अंगूठों तक असंख्य गहरे नीले रंग की विद्युत प्रस्फुटित हो रही है। अद्भुत रूप देखकर चौंककर मैंने उसे पकड़ने को हाथ बढ़ाया। तब रमणी तनिक पीछे हटकर मुझसे बोली-अब रहने दो। अब और नहीं, अब काम-कल्पना मत करो, मुझको मत आकर्षित करो। सोचो तो भला मैं कौन हूँ। लो, अब मैं चली। वह नग्ना, कामिनी अपने श्यामांगों की उज्ज्वल छटा से

दिगन्त को प्रकाशित करके ऊपर की ओर उठी। तब उसके प्रत्येक अंग-प्रत्यंग से नीले रंग की उज्ज्वल छटा स्फुल्लिंग की तरह लगातार निकल-निकल नभोमण्डल को प्रकाशित कर दिया। देखते-देखते ज्योतिर्मयी श्यामा-प्रतिमा अनन्त नीलाकाश में अपने स्वरूप को मिलाकर धीरे-धीरे विलीन हो गई। मैं जोर-जोर से हाहाकार कर उठा, हाय! कहाँ चली गई? कहाँ चली गई?' कहता हुआ बाहर निकल आया।

बाकी रात आकाश की ओर ताकते हुए किस तरह काटी, उसे नहीं लिख सकता।

यह अप्राकृत दृश्य देखने के बाद से मेरे अन्तःकरण में सर्वदा उसी रूप का उदय होने लगा। रात-दिन उसी के ध्यान में निमग्न रहने लगा। मेरे प्राण इस चिन्ता से व्याकुल रहने लगे कि अब फिर किस प्रकार उस अनुपम प्रतिमा के दर्शन मिलेंगे। अब तक जिन अनिष्टकर, दूषणीय कल्पनाओं में रस पाता था, उनमें अब रुचि नहीं है। उनसे तो अब खीझ या चिढ़-सी होने लगी। साधन-भजन करने फिर वह मनमोहिनी अप्राकृत रमणी देखने को मिलेगी, यह सोचने से साधन में मुझे प्रवृत्ति हो गई। किन्तु लोभ में पड़कर साधन करने के लिए उत्साहित होने पर भी, चेष्टा तक करने का अब मुझमें सामर्थ्य नहीं है। दारूण पित्तशूल की वेदना को सहने में असमर्थ होकर मैंने बिल्कुल बिस्तर ही पकड़ लिया है। प्रतिदिन दो-तीन बार कै करता हूँ, मालूम होता है कि कण्ठनली में घाव हो गया है। एक घूँट भर पानी पीने से भी पेट तक जलन होने लगती है। दिन-रात एक दुःसह वेदना के मारे आहार-निद्रा सब छूट गया। चौबीस घण्टे बिस्तर पर पड़ा-पड़ा कराहता रहता और कभी

उठकर बैठ जाता हूँ तथा कभी फिर लेटे रहता हूँ। मानसिक यन्त्रणा कितनी ही तीव्र क्यों न हो, किन्तु कायिक क्लेश की तुलना में कुछ भी नहीं है। अब यह स्पष्ट समझ गया। उत्कट दैहिक यन्त्रणा को शान्त करने के लिए कोई भी अधर्म, अनाचार अथवा अकर्म कर सकता हूँ, मुझे ऐसा लगता है। यह कैसी दशा हो गई?

श्रीश्री गुरुदेवाय नमः।

श्रीश्री सद्गुरु संग

द्वितीय खण्ड

जून-जुलाई, सन् १८९० ई. (बंगला सन् १२९७, आषाढ़)

असह्य रोग-यन्त्रणाः जीवन में वितृष्णा परोक्ष में गुरुदेव का आह्वान।

१४-२० जून, ई. सन् १८९० रात-दिन लगातार पित्तशूल वेदना के असह्य कष्ट से मेरी आत्महत्या करने की इच्छा हुई। क्रमशः यन्त्रणा की तीव्रता के साथ-साथ उस प्रकार का संकल्प मेरे भीतर जोर पकड़ने लगा। सुना है, गुरुदेव इस समय श्रीवृन्दावन में हैं। निश्चय किया-'उनकी पापनाशन मनमोहन मूर्ति चिरकाल के लिए एक बार देखकर, उनकी स्नेहमयी शीतल दृष्टि हृदय में रखकर पवित्र यमुना के जल में इस पाप-जनक देह का विसर्जन करूँगा।' लेकिन इस समय रोगग्रस्त दुर्बल शरीर में चलने-फिरने का भी सामर्थ्य नहीं है, फिर भी श्रीवृन्दावन जाने के लिए बेचैन हो गया। इस समय बिछौने से उठकर चलने-फिरने के लिए भी कोई मुझे उत्साह नहीं देता। फिर श्रीवृन्दावन जाने के लिए खर्चादि माँगूगा भी किससे? इस समय बार-बार विचार आने लगा कि गुरुदेव के दया करने पर असम्भव भी सम्भव हो जाएगा। किसी भी प्रकार से शीघ्र ही मेरे जाने का जुगाड़ हो जाएगा। इस आशा से व्याकुल होकर उनको ही मन की आकांक्षा से अवगत कराने लगा। आश्चर्य है गुरुदेव की दया का! अप्रत्याशित रूप से मेरे श्रीवृन्दावन जाने की व्यवस्था हो गई। जय गुरुदेव! जय गुरुदेव!

श्री मथुर बाबू के ज्येष्ठ पुत्र, श्रीमान् सुरेन्द्र विलायत जाने के उद्देश्य से हैदराबाद में अपने चाचा श्री अघोरनाथ चट्टोपाध्यायजी के पास रहकर पढ़ाई-लिखाई कर रहे थे। किसी कारणवश अपने पिता के पास आना आवश्यक होने से, द्वितीय श्रेणी का आने-जाने का (रिटर्न) टिकट करके इस समय भागलपुर आए हुए हैं। मेरी श्रीवृन्दावन जाने की तीव्र आकांक्षा से अवगत होकर उन्होंने गोपनीय रूप से मुझे टिकट देकर कहा-'अब और मेरा हैदराबाद जाना होगा नहीं। मामा, आप यह टिकट लीजिए। इससे आप इलाहाबाद तक जा सकेंगे।' टिकट पाकर मैं इसे एक प्रकार से गुरुदेव का ही स्नेहयुक्त आह्वान समझकर रो पड़ा। तुरन्त श्रीवृन्दावन जाने के लिए प्रस्तुत हो गया। इस समय मुझे रोकना व्यर्थ समझकर श्री मथुर बाबू ने दस रुपये और महाविष्णु बाबू ने तीन रुपये दिए। मैं दो जोड़ी पुराना वस्त्र, गमछा, एक लोटा एवं डायरी लिखने का सब समान और एक हरिवंश (ग्रन्थ) झोले में बाँधकर तैयार हो गया।

मेरी स्वर्गीया बहिन के शिशु पुत्र-कन्या के पालन-पोषण का भार इतने समय से मेरे ऊपर ही था। आज उन्हें छोड़कर जा रहा हूँ, बड़ा कष्ट होने लगा।

श्रीवृन्दावन-यात्रा

१ जुलाई मंगलवार। उत्साहित मन से सारा दिन बिताकर संध्या के कुछ पहले, गाड़ी का समय जानकर स्टेशन के लिए निकल पड़ा। गुरुदेव का स्मरण करके कदम बढ़ाते ही वही निरुपम काला रूप बहुत समय बाद 'झलमल' करके प्रकाशित हुआ। छः-सात फीट के

अन्तर में, शून्य में स्थित वह ज्योतिर्मय-रूप समान गति से मेरे आगे-आगे चलने लगा। देखकर मेरा मन प्रफुल्लित हो उठा। यथासमय स्टेशन पहुँचा। खुले बदन, कम्बल लेकर भिखारी वेश में फटा झोला हाथ में लेकर गाड़ी के द्वितीय श्रेणी में चढ़कर बैठ गया। पता नहीं क्या समझकर सभी मेरी ओर चकित होकर एकटक देखने लगे। कुछ समय बाद एक व्यक्ति ने आकर टिकट माँगा एवं टिकट देखकर मुझे सलाम करके चला गया। कुछ समय बाद ही गाड़ी छूट गई। थका हुआ था, कुछ क्षण के भीतर मुझे निद्रा ने घेर लिया। इस समय वह काली मूर्ति धीरे-धीरे लुप्त हो गई। रात बड़े आराम से ही बिताई।

प्रयागधाम के प्रभाव की अनुभूति

२ जुलाई, बुधवार। स्थिर बैठकर नाम-जप कर रहा हूँ, गाड़ी प्रयागधाम के पूर्व की ओर कुछ दूरी पर एक विशाल मैदान के मध्य आ पहुँची। मैदान की ओर देखते ही मेरा सारा शरीर सिहर उठा, उदासीनता ने मेरे मन को अवसन्न कर दिया। भीतर से अपने-आप स्पष्ट रूप से 'अगस्त्य' 'अगस्त्य' शब्द उठने लगा। भारद्वाज, वशिष्ठादि महातपस्वी ऋषिगण एक समय इसी स्थान पर थे, इस प्रकार का भाव मन में उदित होने से उन लोगों के लिए शोक होने लगा। यह शोक धीरे-धीरे मुझे इतना अभिभूत कर डाला कि मैं किसी प्रकार भी अपने को रोने से रोक नहीं पाया। खाली गाड़ी में सुविधा पाकर, ऋषियों का नाम लेकर कितना रोया! ऐसा लगा, मानो ऋषिगण इस स्थान पर रहकर मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं। मैं कातरता से उन लोगों के चरणों के उद्देश्य से बारम्बार प्रणाम करके

प्रार्थना करने लगा 'हे आर्य ऋषिगण, आज तुम लोगों ने मुझ पर इस प्रकार क्यों इतनी कृपा की? आज अचानक तुम लोगों की बात मन में आने से तुम लोगों के लिए मेरा मन इस प्रकार क्यों रो पड़ा? मैं तो इस जीवन में कभी तुम लोगों के विषय में एक बार सोचा भी नहीं। कभी तुम लोगों का स्मरण करके मस्तक झुकाया नहीं। लगता है, यह विशाल मैदान तुम लोगों के पुण्य आश्रम से परिपूर्ण था, इसलिए तुम लोगों ने इस स्थान का त्याग नहीं किया। अनन्त स्तर-विशिष्ट जगत् के किसी एक सूक्ष्म स्तर पर इस प्रयाग में अपनी परम आदर की वस्तु साधन के फल की सम्पूर्ण रूप से रक्षा करके, अदृश्य शरीर में अवस्थानपूर्वक लगता है, इस स्थान में ही उसका उपभोग कर रहे हो। तुम लोगों के इस आकांक्षित पुण्य साधन क्षेत्र में आज अनजाने में श्रद्धाशून्य हृदय से प्रवेश करते ही मेरे ऊपर कृपादृष्टि रखकर तुम लोगों ने दया करके मेरे चित्त में अपनी स्मृति उदित कर दी। आज मैं चिरकाल के लिए धन्य हो गया। हे मूर्तिमान् दयारूपी ऋषिगण! दया करके आशीर्वाद दो, जिससे तुम लोगों का अनुगत हो सकूँ, अविचलित मन से तुम लोगों के सनातन निर्मल पथ का अनुसरण कर सकूँ, हृदय के ठाकुर गुरुदेव के श्रीचरणों में एकनिष्ठ होकर अवशिष्ट जीवन बिता दूँ। और कुछ नहीं चाहता। इस शुभ मुहूर्त में तुम लोगों की कृपा से सुमति होने से अपना अविनीत उग्र मस्तक तुम लोगों के चरणरज में लोटाता हूँ-मेरी आकांक्षा पूर्ण करो।' भावुकता हो या कल्पना ही हो, मुझे ऐसा लगा, मानो ऋषियों ने प्रसन्न होकर मुझे आशीर्वाद दिया। मैं भी स्थिर बैठकर नाम-जप करने लगा। कुछ समय बाद ट्रेन प्रयागधाम पहुँची।

तत्पश्चात् गाड़ी से उतरकर स्टेशन से कुछ दूरी पर एक बड़े

वृक्ष के नीचे जा पहुँचा। वहाँ आसन लगाकर मन में नाम-जप करते-करते अद्भुत रूप से मेरे भीतर एक भाव का स्रोत उमड़ पड़ा। मैं सोचने लगा- 'अहा! आज मैं कहाँ हूँ? यह वही प्रयागधाम है। एक समय इस स्थान पर कितना कुछ हुआ था! कितने योगी, कितने ऋषियों ने एक समय इस क्षेत्र में बृहत् कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित रखकर दीर्घकाल-व्यापी याग-यज्ञ का अनुष्ठान किया था। कितने सहस्र-सहस्र ऋषि-मुनि-तपस्वियों ने एक समय इस स्थान पर ध्यान-धारणा-समाधि में विमल आनन्द उपभोग करके युग-युगान्तकाल व्यतीत किया था। तीव्र तपस्या और एकान्त साधन-भजन द्वारा अनादि, अनन्त, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के साथ संयोग हेतु असीम शक्ति प्राप्त करके कितने दीर्घतपस्वी योगी-ऋषि इस पुण्यभूमि में दीर्घकाल अवस्थान किए थे। उन लोगों की असाधारण साधन-शक्ति ने इस स्थान पर संचारित होकर यहाँ के प्रति अणु-परमाणु को जीवन्त शक्तिशाली कर रखा है। इस पवित्र क्षेत्र के संस्पर्श से लगता है, ऋषियों की असाधारण साधन-शक्ति का बीज अलक्षित भाव से जीव के भीतर प्रविष्ट होता है एवं उसी अव्यर्थ शक्ति के अंकुरण से जीव का किसी-न-किसी काल में उद्धार हो जाता है। इसीलिए ऋषियों ने इस भूमि को मुक्तिधाम कहा है। हे देवर्षि-ब्रह्मर्षिगण के अप्राकृत साधन-शक्ति के खण्डित भण्डार तीर्थराज प्रयाग! मैं अनुभव करूँ या न करूँ, तुम्हारे इस आनन्द का विस्तार करने वाले धूलिकण को स्पर्श करके आज मैं धन्य हुआ। तीर्थराज! आशीर्वाद दो, आज तक तुम्हारे सान्निध्य में जो लोग आए हैं, उन सभी की पदधूलि मेरे मस्तक पर पड़े।' इस भाव से अभिभूत होकर, भूमि पर लेटकर प्रयागधाम को साष्टांग प्रणाम

किया। उसी समय भावावेग की एक प्रबल तरंग कुछ क्षण के लिए मेरे भीतर बह गई। मैं स्थिर बैठकर नाम-जप करने लगा।

इसी समय एक प्रयागवासी सज्जन मुझे अपने घर ले गए। वहाँ मैं स्नान करने के बाद कुछ जलपान करके यथासमय स्टेशन आ गया। तृतीय श्रेणी का एक टिकट लेकर वृन्दावन की यात्रा की। गाड़ी में मुझे कोई भी कष्ट नहीं हुआ; बड़े आराम से गया। जय गुरुदेव!

ज्योतिर्मय श्रीवृन्दावन में उपस्थितः गुरुदेव की दया

३ जुलाई, गुरुवार। प्रातःकाल हाथ-मुँह धोकर गाड़ी के एक कोने में बैठा रहा। श्रीश्री गुरुदेव के चरणों का स्मरण कर बारम्बार प्रणाम करके बड़े उत्साह के साथ नाम-जप करने लगा। मथुरा व वृन्दावन के जितना ही समीप पहुँचने लगा, दोनों ओर विस्तृत मैदान व घने वन को देखकर मानो मेरा मन उतना ही मचलने लगा! जिस श्रीकृष्ण को देखने की आकांक्षा से नितान्त शैशवावस्था में अकेला जहाँ-तहाँ निर्जन स्थान में व्याकुल होकर कितना रोता फिरा हूँ जिनका वास-स्थान यह है सुनकर, लोगों के साथ इस स्थान पर आने के लिए कितना अनुरोध किया-आज अपनी बाल्यावस्था की मानस-कल्पना के उसी श्रीवृन्दावन में आ गया, यह सोचते ही मुझे रोना आ गया। इसी समय देखा, दोनों ओर वन और मैदान में अति उज्ज्वल नीली घने कृष्णवर्ण की खण्ड-खण्ड असंख्य ज्योतियाँ बिजली के समान क्षण-क्षण में प्रकाशित होकर स्निग्ध शीतल प्रकाश फैलाकर फिर तुरन्त ही विलुप्त होने लगीं। उस नयनाभिराम

मनमोहन कृष्णवर्ण की तुलना जगत् में कहीं नहीं है। वह इतनी सुन्दर मनमोहन है कि उसको भाषा द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। उस विचित्र ज्योति का बारम्बार दर्शन करने के बाद भी, अन्तर्धान होने पर फिर किसी भी प्रकार से उसको स्मृति में नहीं लाया जा सका। इस अनुपम दिव्य ज्योति का खेल देखते-देखते मैं क्रमशः श्रीवृन्दावन पहुँच गया।

दिन में लगभग १ बजे वृन्दावन-स्टेशन पहुँचा। रास्ते में अनाहार व अनिद्रा से मेरा शरीर बिल्कुल क्लान्त हो गया था, हृदय की वेदना भी खूब बढ़ गई थी। मध्याह्न की प्रखर धूप के उत्ताप से अधिक दूर तक चल न सका; एक-दो मिनट चलकर ही रास्ते के किनारे छाया देखकर बैठ जाता। इसी समय चलती गाड़ी से एक सज्जन ने मुझे पुकारकर कहा- 'महाराज, कहाँ जाएँगे?' मैंने कहा गोपीनाथ के बाग में। यह सुनकर उसने गाड़ी रोककर कहा- 'आइए, आप इस गाड़ी में चढ़िए, मैं भी उसी ओर जाऊँगा।' मैं गाड़ी में बैठ गया। कुछ ही समय बाद हमारी गाड़ी गोपीनाथ के बाग में आकर रुकी। मैं तुरन्त उतर गया। ठीक इसी समय एक ब्रजवासी वृद्ध ब्राह्मण ने मुझसे पूछा- 'क्या बाबू, गोसाँईजी के पास जाओगे? चलो, हम भी वहीं जा रहे हैं। मैं ब्राह्मण के पीछे-पीछे चलने लगा। व्यस्ततावश उनका परिचय लेने की भी बुद्धि नहीं आई। एक गली में कुछ दूर जाने के बाद एक घर दिखाकर ब्राह्मण ने कहा, 'जाओ उस कुंज में गोसाँईजी हैं। यह कहकर ब्राह्मण अन्यत्र चले गए। कुछ कदम चलते ही मैंने देखा, मेरे गुरुदेव कुंज के द्वार पर खड़े हुए हैं। मेरे देखने के पहले उन्होंने मुझे पुकारकर कहा **'क्यों कुलदा आ गए? अच्छा, अच्छा! आओ। झोला लेकर सीधे ऊपर आओ।'**

मैं गुरुदेव के पीछे-पीछे चलकर दोतल्ले में पहुँचा। झोला रखकर उनके श्रीचरणों में गिरकर साष्टांग प्रणाम किया। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरकर कहा-**'शरीर अस्वस्थ है; थोड़ा विश्राम करो। फिर यमुना में स्नान कर आना। हम सब लोगों का भोजन हो गया है। तुम्हारे लिए प्रसाद रखा है।'** यह कहकर गुरुदेव आसन पर स्थिर भाव से बैठे रहे। मैं उनकी देह की दशा देखकर, चकित होकर देखता रह गया। देखा, ठाकुर की अब वह आकृति नहीं रही। विशाल शरीर सूखकर अद्भुत लम्बा दिख रहा है। सुन्दर कान्ति अब अस्थि चर्म रह जाने से अत्यन्त शुष्क हो गई है। जगह-जगह शरीर की त्वचा ढीली होकर झूल गई हैं। सुगोल, सुन्दर मुखमण्डल मांस के अभाव से सिकुड़कर लम्बा हो गया है। पहले का वह उज्ज्वल वर्ण भी अब नहीं रहा; बिल्कुल साँवला हो गया है। मस्तक के लम्बे केश को एक गैरिक वस्त्र द्वारा लपेटकर बाँध रखे हैं। ललाट में ऊर्ध्वपुंड्र तिलक और कण्ठ में तुलसी, पद्मबीज व रूद्राक्ष की माला धारण किए हैं। उनकी देह की दुर्बलता देखकर मुझे बड़ा क्लेश होने लगा, मैं रो पड़ा एवं चकित होकर ठाकुर के नवीन वेश और दुर्बल शरीर की ओर देखता रहा। ठाकुर की देह की ऐसी दुर्दशा और कभी मैंने देखी नहीं। कुछ समय बाद गोसाँईजी ने कुंज के अधिकारी दामोदर पुजारी को बुलाकर कहा-**'इनको यमुना में स्नान करवाकर ले आओ। फिर भोजन जो है, दे देना।'**

मैं 'झोला-झुली' आसन-कम्बलादि पास के कमरे में रखकर स्नान करने गया। ११ रुपये थे; उसे खुले कमरे में अलग-से रखकर जाने में भरोसा नहीं हुआ; अंटी में बाँधकर रख लिया। यमुना के शीतल निर्मल जल में उतरकर स्नान करके बड़ा आराम

मिला। मेरे पास जो रुपये हैं, उसे दामोदर ने देख लिया। वे मेरे कमर की ओर अंटी में रुपये के प्रति लोलुप दृष्टि से देखने लगे। मैंने सोचा, 'यह भी एक अच्छी समस्या हो गई। जितने दिन तक ये कुछ रुपये मेरी पूँजी रहेगी, नाना प्रकार के अभाव बतलाकर ये उतने दिन तक मुझे सताएँगे। अतएव इस विपत्ति से छुटकारा पाना ही अच्छा है। मुझे तो अभी कुछ दिन यहाँ रहना ही होगा; इसलिए ये ११ रुपये इन्हें देकर यदि अपने खाने-पीने का थोड़ा पक्का बन्दोबस्त कर लें, तो अच्छा निश्चिन्त होकर रह सकूँगा।' इस आशय से मैंने अंटी से रुपये निकाल लिये एवं दामोदर के हाथ में देकर प्रणाम करके कहा, 'पुजारीजी, आप ये कुछ रुपये लीजिए। ठाकुर की सेवा में लगा दीजिएगा, फिर जितने दिन तक मैं यहाँ रहूँगा, मुझे एक मुट्ठा प्रसाद दीजिएगा। मेरे पास अब एक भी पैसे नहीं है। रुपये पाकर पुजारीजी बड़े प्रसन्न हुए एवं मेरे माथे पर हाथ फेरते-फेरते कहने लगे, 'अरे, तू तो बड़ा भगत है। सब दे दिया! जितने दिन मन हो, रहो। खूब अच्छा-अच्छा खिलाऊँगा। तेरे ऊपर राधारानी की बहुत कृपा है। मैं थोड़ा हँसा। उसके बाद हम लोग कुंज में आ गए।

दाऊजी के मन्दिर से संलग्न रसोईघर में दामोदर ने मुझे बैठा दिया। फिर एक शाल के पत्ते में सजा हुआ दाल, भात, रोटी मेरे सम्मुख रखकर कहा, 'गोसाँई बाबा ने प्रसाद पाते-पाते इतना सब उठाकर रख दिया था।' सुनकर मेरी आँखों में पानी आ गया। अहा, ठाकुर की इतनी दया! आज ही मैंने यथार्थ प्रसाद पाया। यह प्रसाद मेरे लिए अधिक होने पर भी बड़े आनन्द से रुचिपूर्वक पूरा खा लिया।

दण्डाघात

भोजन के बाद जाकर गोसाँईजी के पास बैठ गया। उन्होंने पूछा-**'तुम्हारे मैया कैसे हैं? उनका वह मित्र देवेन्द्र अभी कहाँ है?'**

मैंने कहा-भैया अच्छे हैं। तब से देवेन्द्र के साथ भैया की भेंट नहीं हुई। आपके द्वारा दण्डाघात न करने से लगता है, भैया को देवेन्द्र मार ही डालता।

गोसाँईजी-**ऊह! क्या भयानक आदमी है! और कुछ दिन रह जाता तो वह बड़ा विपद् ही करता, तुम्हारे भैया का बिल्कुल नाश कर देता। वह जघन्य स्वार्थ साधने के लिए वहाँ था। तुम्हारे भैया इस पृथ्वी के व्यक्ति नहीं हैं; संसार से कोई लगाव रखते नहीं; वे इस युग के नहीं हैं; सत्ययुग के व्यक्ति हैं। देवेन्द्र के साथ तुम्हारे भैया का कोई झगड़ा तो नहीं हुआ?**

मैं-झगड़ा कुछ हुआ नहीं। भैया के पास से आपके चले आने के बाद नागा बाबा और पतितदास बाबा ने भैया को देवेन्द्र का संग त्यागने के लिए कहा था; लेकिन देवेन्द्र के गुण से भैया इतने मुग्ध हो गए थे, उसकी धार्मिकता देखकर इतने भ्रमित हो गए थे कि महात्माओं के आदेश पालन करने की भी भैया की प्रवृत्ति नहीं हुई। देवेन्द्र का वशीकरण विद्या में अच्छा अभ्यास था; उससे ही लगता है, भैया को उसने बिल्कुल अपनी मुट्ठी में कर लिया था। फिर आपने जिस दिन कानपुर से उसके ऊपर दण्डाघात किया, उसी दिन देवेन्द्र को अचानक न जाने क्या हो गया; बिल्कुल निस्तेज और शक्तिहीन हो गया। उसके भीतर क्या हुआ था, वह कोई नहीं

जानता। वह भैया से भी बिना कुछ कहे उसी समय भाग गया। सुना है, वह फैजाबाद से पाँच-छ: कोस दूर, यमुना के किनारे एक ग्राम में ठहरा था। वहाँ उसको असह्य रोग हो गया, अत्यन्त क्लेश पाया। बाद में तो उन्माद होने से कहीं चला गया। अब वह मर गया या बचा है, पता नहीं। कुछ लोगों का कहना है, बचा नहीं। रोग के समय इच्छा होने से तो वह भैया के पास आ सकता था, लेकिन आश्चर्य यह है कि उसकी वैसी इच्छा भी नहीं हुई। धर्म का ढोंग करके उसने हजारों रुपये भैया से ठग लिया। यहाँ तक कि हम लोग तो भैया के जीवन के विषय में भी शंकित हो गए थे।

बहुत समय तक गोसाँईजी ने भैया की बातें कही। कुछ क्षण बाद मैंने नीचे जाकर देखा, दाऊजी के मन्दिर के सम्मुख गुरुभाई लोग बैठकर भैया के विषय में ही बातें कर रहे हैं। वह सब विषय मेरा पहले से जाना हुआ था, अभी पुनः सबके मुख से सुना। गोसाँईजी फैजाबाद से श्रीवृन्दावन जाने के समय कानपुर में श्री मन्मथनाथ मुखोपाध्यायजी के निवास में कुछ दिन रुके थे। एक दिन प्रातः चाय पीने के बाद सब गुरुभाई गोसाँईजी के पास बैठे थे, कुछ गुरुभाइयों को एक भयंकर दृश्य दिखलाई पड़ा। उन्होंने देखा, सर्प द्वारा मेंढक को निगलने की भाँति एक पिशाच ने धीरे-धीरे भैया को पाँव से कमर तक ग्रस लिया, और भी ग्रसने की प्रयास करने लगा। यह दृश्य देखकर वे लोग बेचैन हो गए। स्वामीजी (हरिमोहन) ने तुरन्त गोसाँईजी का पैर पकड़कर व्याकुलता के साथ कहा-'दया करके रक्षा कीजिए। हरकान्त को पिशाच ने ग्रस लिया है।' गोस्वामीजी एक ही अवस्था में स्थिर रहते हुए मन्द-मन्द मुस्कुराए। फिर कहे-**'अच्छा, मेरा दण्ड लाओ तो!'** एक गुरुभाई ने तुरन्त

दण्ड लाकर गोसाँईजी के सम्मुख रख दिया। गोसाँईजी ने दण्ड हाथ में लेकर भूमि पर एक बार थोड़ा आघात करके कहा-**'जा निश्चिन्त हुआ।'** ठीक उसी दिन, उसी समय देवेन्द्र अचानक निर्विष सर्प की भाँति बिल्कुल निर्जीव हो गया। भैया ने लिखा था, उस समय देवेन्द्र के भीतर एक अद्भुत असह्य यन्त्रणा हुई। वह क्लेश का कारण मेरे सामने प्रकट न करके पागल के समान भागकर कहीं चला गया। लगता है, गोस्वामीजी की इच्छा से ही देवेन्द्र की सारी शक्ति नष्ट हो गई थी। इसीलिए वह फिर यहाँ आया नहीं। इत्यादि।

मेरा उभय संकट

गुरुभाइयों ने मुझसे कहा-'भाई, श्रीवृन्दावन आए हो, बड़ी अच्छी बात है। अब कुछ दिन यहाँ रह सको तो अच्छा है। जिनके पास आए हो, जिनके साथ रहना है, वे अब पहले जैसे नहीं हैं; गोसाँईजी अब वैसे नहीं रहे, वे अन्य प्रकार के हो गए हैं। सर्वदा ही बड़ा उग्रभाव धारण किए रहते हैं। कुछ कहो या न कहो, उनके बैठने का और देखने का ढंग देखकर ही हम लोगों का हृदय धड़कने लगता है। दिनभर में एक बार भी उनके पास जा नहीं सकते, पास में बैठ नहीं सकते। यदि कभी हम लोगों में से किसी को पुकारते हैं-पुकार सुनते ही काँप उठते हैं। एक बार आगे-पीछे ताककर, अन्त में धीरे-धीरे सिर खुजलाते-खुजलाते उनके पास पहुँचते हैं। उसके बाद कैसे क्या होता है, समझ नहीं आता, उनके साथ जो भी बातें क्यों न हो, अन्त में भयंकर डाँट खाकर लौटते हैं। किसी की सामान्य थोड़ी-भी त्रुटि देख लें, तो फिर बचाव नहीं

है-भयानक दण्ड देते हैं, कभी-कभी कुंज से निकल जाने को कहते हैं। इसीलिए भय से हम लोग प्रयोजन के अनुसार कुंज में रहकर, सब समय बाहर-बाहर घूमते हैं। भाई, तुम थोड़ा सावधान रहना। गोसाँईजी की उग्र मूर्ति देखकर हम लोग सदैव भयभीत रहते हैं। ऐसा न हो कि धक्का खाकर शीघ्र ही तुमको खिसकना पड़ जाए, इसलिए ये सब बातें बतला दे रहे हैं। मैंने कहा-क्यों? तुम लोग गोसाँईजी का शान्त रूप क्या कभी देखे नहीं? श्रीधर ने कहा-'वह क्यों नहीं देखेंगे? शान्त भाव में जब रहते हैं, तब इतने गम्भीर हो जाते हैं कि पास जाएगा कौन? बड़ी हिचकिचाहट होती है। दोनों ही भावों का आधिक्य है। पहले कभी गोसाँईजी को इस प्रकार से रहते देखा नहीं। इसीलिए कहता हूँ-सावधान!।

गुरुभाइयों की बातें सुनकर बड़ी दुविधा में पड़ गया। मैं वेदना से पीड़ित हूँ, उन लोगों के समान बाहर-बाहर घूमने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है; जाने का साहस करने पर शय्यागत हो पड़ूँगा। अतएव वह मेरे लिए बिल्कुल असम्भव है। सोचा-

न जाने से वध करे राजा, जाने से डसे भुजंग।
रावण के साथ जैसे मारीच कुरंग (हिरण)।

मेरी भी दशा यही हो गई, मैं उभय संकट में पड़ गया। जो भी हो, मैं जाकर गोसाँईजी के आसन के पास बैठ गया। इसी समय दामोदर पुजारी ने आकर हाथ जोड़कर गोसाँईजी को प्रणाम करके कहा-'बाबा, आपका वचन सिद्ध है। आपने सवेरे जैसा कहा, वैसा ही हमको मिल गया। यह बाबू बड़ा भगत है, बड़ा सुपात्र है-हमको ११ रुपया दिया।' गोसाँईजी ने कहा-**'दाऊजी बड़े दयालु हैं! अच्छे-से मन लगाकर उनकी सेवा करो, देखना वे तुम्हारा कोई**

अभाव नहीं रखेंगे। वैसा नहीं करने से ही मुश्किल है।'

सुना है, आज प्रातः दामोदर पुजारी ने गुरुदेव से कहा था- 'बाबा, भण्डार खाली है, आज दाऊजी का भोग किस प्रकार होगा?' गोसाँईजी ने तब कहा था-**'अच्छा थोड़ी प्रतीक्षा करो, विचलित मत हो; आज तुम्हें कुछ मिलेगा।'**

श्रीवृन्दावन वास की विधि

संध्या के कुछ पहले ठाकुर अपने-आप मुझसे कहने लगे- **'श्रीवृन्दावन में आए हो, अच्छा हुआ। यहाँ तो कोई कामकाज है नहीं। अब दिनभर खूब साधन-भजन करो। रात्रि में आहार के बाद तीन-चार घण्टे नींद लो; फिर गहन रात्रि में उठकर नाम-जप करो। गहन रात्रि में साधन-भजन की एक विशेषता सर्वत्र ही अनुभव की जाती है। इस स्थान की तो बात ही छोड़ो। कुछ दिन नियमानुसार बैठने से ही समझ पाओगे, यह स्थान पृथ्वी के अन्य स्थानों के समान नहीं है। इसको अप्राकृत धाम कहते हैं। इस धाम का अद्भुत माहात्म्य समझना हो, तो इस स्थान के लिए जो सब विधि व्यवस्था है, उसका पालन करके चलना होगा। किसी तीर्थ में केवल वास करने से, उस स्थान के पालनीय विशेष-विशेष विधि-निषेध का पालन किए बिना, स्थान का यथार्थ माहात्म्य समझ नहीं आता। इस स्थान में वास करने के लिए (१) हिंसा का त्याग करना होता है, (२) परनिन्दा विषवत् त्याग करनी होती है, (३) वृथा समय नहीं बिताते, (४) अनिवेदित वस्तु कभी नहीं खाते, (५) सर्वदा साधन-भजन में लगे रहना होता है। इन नियमों का पालन करके**

कुछ समय चलने से ही, यह धाम क्या है, धीरे-धीरे उसका अनुभव होगा। दो-पाँच दिन यहाँ रहकर जो लोग चले जाते हैं, वे कैसे इस स्थान का माहात्म्य समझेंगे? गर्भवती स्त्री जिस प्रकार स्वस्थ शरीर में नियम से रहकर दस मास बाद सन्तान प्रसव करती है, इन स्थानों में भी उसी प्रकार दीर्घकाल रहना होता है। अन्ततः एक वर्ष भी नियम के अनुसार रहने से धाम का थोड़ा प्रभाव समझ सकते हैं। मैं तो यह सब कुछ भी नहीं जानता था। परमहंसजी के आदेशानुसार कुछ समय यहाँ वास करने से ही अब दिनो-दिन स्थान का अदभुत माहात्म्य प्रत्यक्ष करके चकित हो रहा हूँ। नियमानुसार खूब साधना करो-विशेष उपकार होगा। इस धाम का प्रभाव बड़ा-ही चमत्कारी है।' मैंने पूछा-गर्भधारण करके स्वस्थ शरीर में रहकर दस मास बाद जिस प्रकार सन्तान प्रसव होता है, तीर्थ के नियम यथारीति प्रतिपालन करके दीर्घकाल तीर्थवास करने से, तीर्थ देवता भी क्या पुत्र-रूप में प्रकाशित होते हैं?

ठाकुर ने कहा-**'पुत्र-रूप की बात नहीं है; अपने रूप में ही वे प्रकाशित होते हैं। गर्भधारण के समान नियम धारण करके तीर्थवास करना चाहिए, तभी तो!'**

ब्रह्मचारीजी का अनुताप और अन्तिम कथा

बारदी के ब्रह्मचारीजी के एकाएक देहत्याग की बात सुनकर बड़ा कष्ट हुआ। गोसाँईजी से पूछा-ब्रह्मचारीजी ने और सौ वर्ष रहने की बात कही थी। इतने शीघ्र उन्होंने देहत्याग क्यों किया? किस रोग से उनकी मृत्यु हुई?

गोसाँईजी-**मृत्यु क्या कभी महापुरुषों की होती है? रोग–वह भी थोड़ा दिखाने के लिए। अपनी इच्छा से ही उन्होंने देहत्याग किया है। कहा कि अब उनके और रहने का कोई प्रयोजन नहीं है। उनके रहने से वरन् लोगों की और भी हानि होगी।**

मैंने कहा-अपनी इच्छा से उन्होंने क्यों देहत्याग किया? देहत्याग के पूर्व क्या आपसे कुछ कहा था?

गोसाँईजी-**हाँ, बहुत-कुछ कहा था। देहत्याग की पूर्व रात्रि में वे यहीं थे। रातभर मेरे साथ उनका झगड़ा हुआ। मुझसे बार-बार जिद करके कहने लगे-'तू जाकर मेरे आसन में बैठ; मैं अब देह में नहीं रहूँगा। मैंने कहा-एक वर्ष यहाँ रहने का संकल्प करके मैंने आसन लगाया है; मेरे लिए यह धाम छोड़कर जाना सम्भव नहीं है। उन्होंने कहा-'तो मैं यह देह छोड़ दें?' मैंने कहा-आपकी जो इच्छा करिए। आपकी देह के लिए मुझे थोड़ा भी मोह नहीं है।**

मैंने गोसाँईजी की बातें सुनकर कहा- आपके साथ किस विषय को लेकर झगड़ा हुआ?

गोसाँईजी-**और कुछ नहीं, तुम लोगों के ही विषय को लेकर। ब्रह्मचारी के पास जाकर उनकी बातचीत सुनने से तुम लोगों में से किसी-किसी का बहुत अनिष्ट हुआ है। इसलिए उनसे कहा कि आपने अद्वैतवाद की शिक्षा देकर किसी-किसी को अदृष्ट-प्रारब्ध कह-कहकर उन लोगों की बुद्धि बिगाड़ दी है। वे साधन-भजन छोड़कर अन्य प्रकार के हो गए हैं। अब उनका संशोधन होना कठिन है। लोगों का इस प्रकार तो उपकार कर रहे हो! उन्होंने कहा-'अरे, जिसका जैसा संस्कार है, वह मेरी बात को**

वैसा ही समझता है। मैं क्या करूँ? सभी लोग मुझे अपने-अपने दृष्टिकोण से देखते हैं, परन्तु मुझको कोई समझा नहीं, पहचाना नहीं। मेरा स्वयं का तो कोई प्रयोजन नहीं है, उनके लिए ही तो हूँ। वे लोग ही जब मुझको पहचाने नहीं, मेरे द्वारा उनका कोई उपकार भी होगा नहीं, तब और रहने से क्या लाभ? मैं देह छोड़ दूँगा। मैंने देखा, वास्तव में उनसे अब किसी का कोई उपकार होगा नहीं। उनकी बातें सच में लोग समझते नहीं; उनका भाव, उनकी भाषा अन्य प्रकार की है। इसलिए उनसे रहने के लिए फिर अनुरोध नहीं किया।

मैं-ब्रह्मचारीजी का भाव ठीक है, हम लोग नहीं समझ सके-बातें भी क्या नहीं समझ सके?

गोसाँईजी-**कहाँ समझे? एक व्यक्ति ने ब्रह्मचारी के पास जाकर कहा, 'महाराज, शास्त्र-विधि के अनुसार स्त्रीसंग करने को कहा था, वह तो मैं कर नहीं पाता। मेरा काम-भाव बहुत अधिक है। अब मैं क्या करूँ? ब्रह्मचारी ने उनसे कहा, 'यदि वैसा नहीं कर सकते, तो क्या करोगे? जाकर वेश्यागमन करो, व्यभिचार करो।' उस व्यक्ति ने मेरे पास आकर कहा-'महाराज, ब्रह्मचारीजी ने मुझसे वेश्यागमन करने को कहा है। महापुरुष के कथानुसार काम करने से तो कभी पाप होगा नहीं!' वैसी बात सुनकर मुझे सन्देह हुआ। 'ब्रह्मचारी क्या कभी ऐसा कह सकते हैं? ब्रह्मचारी की बात का वैसा आशय नहीं है। मेरे ऐसा कहने पर बारम्बार वे सज्जन जिद करके कहने लगे-'महाराज, मैं असत्य नहीं कह रहा हूँ। उन्होंने स्पष्ट कहा है, जाकर वेश्यागमन करो।' ब्रह्मचारी के साथ भेंट होने पर मैंने उनसे**

कहा, आप ये सब क्या कर रहे हैं? आपके उपदेश से लोगों का सर्वनाश ही होगा, धर्म-कर्म सब छोड़ देंगे; स्वेच्छाचार, व्यभिचार से समाज उजड़ जाएगा। 'जाकर वेश्यागमन करो' 'जाकर व्यभिचार करो' 'घूस लो', आपकी ये सब बातें मानकर लोग भयंकर काण्ड ही करेंगे! सुनकर ब्रह्मचारी ने मुझसे कहा, 'अरे, तू क्या कहता है? वे साले लोग मेरे पास आते क्यों हैं? मेरी बात समझते नहीं, मुझसे पूछते क्यों हैं? विधि के अनुसार जो लोग स्त्रीसंग कर नहीं सकते, उन्हीं को कह देता-'जाकर व्यभिचार करो', 'जाकर वेश्यागमन करो' | इसका मतलब क्या अन्य स्त्री का संग करने को कहा है, या बाजार की वेश्या का संग करने को कहा है? शास्त्र-विरुद्ध आचार ही तो व्यभिचार है; शास्त्र-विधि का उल्लंघन करके अपनी स्त्री का संग करना भी वेश्यागमन है। मैंने तो ऐसे व्यभिचार, ऐसे वेश्यागमन की बात कही है। एक बार एक ब्रह्मसमाजी ने ब्रह्मचारी के पास जाकर, ईश्वर साकार है या निराकार, इस सम्बन्ध में चर्चा की। ब्रह्मचारी ने उनकी सब बातें सुनकर कहा, 'ईश्वर के मुँह में मैं हगता हूँ, उसी के मुँह में मैं मूतता हूँ। यह बात सुनकर ब्रह्मसमाजी तो अत्यन्त विरक्त होकर चले गए। दस लोगों के सामने कहने लगे, 'ब्रह्मचारी बड़ा पाखण्डी है, वह नास्तिक है। ईश्वर के मुँह में हगता हूँ, मूतता हूँ, वह इस प्रकार की बातें कहता है।' ब्रह्मचारी से यह बात पूछने पर उन्होंने कहा, 'अरे उन्होंने स्वयं ही खूब उच्च अवस्था की बात कही थी। फिर मेरी वैसी बात सुनकर विरक्त क्यों हुए? उन्होंने कहा, 'ईश्वर सर्वव्यापी हैं। मैंने कहा, उस ईश्वर के मुँह में मैं हगता हूँ मूतता हूँ।

ईश्वर सर्वव्यापी होने से मैं हगूँ कहाँ मूतूँ कहाँ, तुम्हीं कहो न?' ब्रह्मचारी की सब बातें इसी प्रकार की थी। उनकी बातें लोगों को समझ में न आने से बहुत गड़बड़ हुआ है।

मैं-उन्होंने मुझे कितना भरोसा दिया था; रहने से तो वे वह सब करते!

गोसाँईजी-**उसके लिए इतना क्यों सोचते हो? मैं किसलिए हूँ? तुम लोगों से जो कहा है, करते जाओ। तुम लोगों के लिए जो करना है, वह मैं ही करूँगा। उसके लिए अन्य किसी के ऊपर तुम लोगों को भरोसा करना नहीं होगा। तुम लोगों का कुछ भी अभाव नहीं रहेगा। समय पर सभी पूर्ण होगा।**

मैंने पूछा-ब्रह्मचारीजी क्या पुनः जन्म ग्रहण करेंगे?

गोसाँईजी-**हाँ, उनका काम है। वे शीघ्र ही बुद्धदेव की भाँति पूर्ण ज्ञान के साथ जन्म ग्रहण करेंगे।**

गुरुदेव के साथ बहुत समय तक ब्रह्मचारीजी के सम्बन्ध में और भी बातचीत हुई। इससे यही समझा, मानो गोस्वामीजी ने ब्रह्मचारीजी को हटा दिया। एक बार भी यदि ठाकुर उनको इस संसार में रहने के लिए कहते, तो वे इतने शीघ्र देहत्याग कभी नहीं करते।

अन्त में गोसाँईजी ने कहा-**अनेक लोग उनके भाव और भाषा न समझकर भ्रमित हुए हैं। मैंने ब्रह्मचारीजी से कहा था, जिस भाव से, जिस प्रकार की बात कहने से साधारण लोग आपका यथार्थ भाव समझ सकें, उस प्रकार से उन्हें क्यों नहीं कहते? उस पर ब्रह्मचारी ने कहा-'अच्छा! तो अब मैं उनकी भाषा सीखने जाऊँगा? वैसे लोग मेरे पास आते क्यों हैं? मैं तो किसी**

को बुलाकर लाता नहीं।'

सद्गुरु की कृपा के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर

गुरुदेव ने हमारे जीवन की अनन्त उन्नति का समस्त भार ग्रहण किया है एवं उस पथ पर वे स्वयं ही हम लोगों को ले जाएँगे, यह बात उनके मुख से सुनकर बड़ा आश्वस्त हुआ। ब्रह्मचारीजी के ऊपर जो निर्भर हुआ था, उसके लिए मैं वास्तव में लज्जित होने लगा। गोसाँईजी से फिर कुछ न पूछकर मैं मन-ही-मन नाम जपने लगा, लेकिन धीरे-धीरे मेरे मन में फिर एक आन्दोलन उपस्थित हुआ। सोचा, 'समस्त अभाव यदि गोसाँईजी ही पूर्ण कर सकते हैं, तो फिर इतना क्यों भुगत रहा हूँ? जिनकी इतनी दया है, वे क्या कभी अन्य का क्लेश दूर करने में समर्थ होते हुए भी उसे न करके स्थिर रह सकते हैं?' गोसाँईजी से ये सब बातें पूछने के लिए अवसर ढूँढ़ने लगा, इस समय एक बार मेरी ओर देखकर अपने-आप वे कहने लगे, **'खूब साधना करते जाओ। अभी फलाफल की ओर ध्यान मत दो। समय पर फल पाओगे। असमय में तो कुछ होता नहीं। सबका ही एक निर्दिष्ट समय है। देखो, पेड़ में जो फूल होते हैं, फल होते हैं, उसका एक समय है। किसान लोग जो खेती करते हैं, उसका भी एक समय निश्चित है; समय का अतिक्रम करके कोई कुछ करता नहीं। देखे तो हो-किसान बीज बोने के पूर्व कितना कुछ करते हैं? समय पर हल चलाकर खेत से घास-फूस सब जड़ से निकालकर अलग कर देते हैं; फिर बीज बोते हैं। बीज जब अंकुरित होता है, तब पुनः अच्छे-से आसपास की घास आदि निकाल देते हैं। फिर वह सब पौधे**

बढ़ते हैं, फसल भी अच्छी होती है। जो किसान पहले खेत को स्वच्छ नहीं करते, विभिन्न प्रकार के जंगली घास-फूस उगकर उनके खेत की फसल को नष्ट करते हैं। तब घास-फूस निकालते-निकालते किसानों के तो प्राण निकलने लगते हैं, फिर उन सब पौधों में फसल भी अच्छी नहीं होती; किसानों की तो बड़ी दुर्दशा होती ही है, फसल भी काम की नहीं रहती। सभी इसी प्रकार समझना। समय पर ही किसान लोग सब कर लेते हैं; असमय में कुछ करने से वैसा फल नहीं होता। जैसा कहा जाता है, करते जाओ। अभाव कुछ भी नहीं रहेगा-समय पर ही सब कुछ होगा। खूब नाम-जप करो।'

गोसाँईजी की बातें सुनकर मैं सोचने लगा-'तो फिर लोग सद्गुरु का आश्रय क्यों लेते हैं?' मैंने पूछा-समय पर जिसका जो होना है, वह तो होगा ही। उसके लिए प्रयास करें या न करें, गुरु सहायक हो या न हो, स्वाभाविक होगा। ऐसा होने पर फिर सद्गुरु का आश्रय लेने से लाभ क्या हुआ? सद्गुरु कृपा करके किसी भी समय क्या थोड़ी अवस्था खोल नहीं सकते? समय पर ही सब होता है, तो फिर 'कृपा' शब्द का अर्थ क्या है?

गोसाँईजी ने कहा-**'सद्गुरु की कृपा से सब कुछ हो सकता है; फिर गुरु की जब इच्छा हो उसी समय सब कर सकते हैं-यह बात सत्य है; लेकिन उससे क्या लाभ? एक वस्तु का मूल्य न जानने से यदि वह सहज में प्राप्त होती है, तो फिर उसके लिए कोई प्रयत्न नहीं होता। जिस वस्तु के लिए जितना अभाव बोध होता है, प्राप्त होने पर उससे उतना लगाव होता है; जिस वस्तु के अभाव से जितना क्लेश होता है, उस वस्तु की प्राप्ति से**

उतना आनन्द होता है। फिर गुरु द्वारा एकाएक कोई अवस्था प्रदान करने से तो उसकी मर्यादा जानी नहीं जाती! इसलिए साधन-भजन करके, चेष्टा करके जब लोग समझ जाएँ कि एक अवस्था को प्राप्त करना कितना कठिन है, कितना दुर्लभ है, तब गुरु कृपा करके वह अवस्था प्रदान करते हैं। गुरु वस्तु का मूल्य समझाकर वह शिष्य को देते हैं-यही नियम है।

मैंने कहा-वस्तु की मर्यादा न कर पाने से, वस्तु की मर्यादा न जानने से वह मुझे न मिले। जिस वस्तु को पाकर फिर खोना होगा, वह भी मैं नहीं चाहता। मेरे भीतर की सब बुराइयाँ दूर कर दीजिए, ऐसा होने से बच जाऊँगा। सभी जब गुरु कृपा से होगा, तब मेरे कुछ करने के लिए फिर रहा क्या?

गुरुदेव मेरी बात सुनकर कुछ क्षण स्थिर रहे। फिर बड़े स्नेह के साथ मेरी ओर देखकर कहने लगे-**'जो कहा है, वही करते जाओ। श्वास-प्रश्वास में नाम जपने की खूब चेष्टा करो। नाम-साधना के जैसा श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। अपने स्वयं के जीवन में मैंने नाम-साधना का फल पाया है। एक बार उस प्रकार से नाम-साधना करके तो देखो, फल कैसे नहीं मिलता! पहले-पहले नाम-जप करने में बहुत विरक्ति लगती है; किन्तु उस कारण से उसे छोड़ते नहीं। विरक्ति लगती है, तो क्या हुआ? उससे तो कोई हानि नहीं है? खूब नाम-जप करते जाओ। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करने से बहुत लाभ है; श्वास-प्रश्वास में नाम जपने से प्रारब्ध धीरे-धीरे कट जाता है। तब अच्छी-अच्छी अवस्थाएँ भी प्राप्त हुआ करती हैं। प्रारब्ध क्षय का ऐसा उत्तम उपाय और नहीं है।** यह कहकर ठाकुर ने आँखें बन्द कर लीं। मैं धीरे-धीरे नीचे

जाकर दाऊजी के मन्दिर के बरामदे में बैठ गया। कुछ समय बाद दाऊजी की आरती आरम्भ हुई, मुझे अच्छा नहीं लगा। मैं पुनः ऊपर जाकर बैठ गया। वेदना से बड़ा कष्ट होने लगा।

गोपीनाथजी के मन्दिर में महोत्सवः ठाकुर का नृत्य

श्रीवृन्दावन आकर कुंज से अभी तक बाहर नहीं गया। सुना है, आज श्रीगोपीनाथजी के मन्दिर में संकीर्तन-महोत्सव होगा। श्रीवृन्दावन के समस्त वैष्णव-समाज उसी उत्सव में सम्मिलित होंगे। थोड़ा दिन चढ़ने पर गुरुदेव के साथ हम लोग मन्दिर की ओर निकल पड़े। रास्ते में देखा एक विशाल संकीर्तन-मण्डली आ रही है। गोसाँईजी संकीर्तन के उद्देश्य से साष्टांग प्रणाम करके चौड़े रास्ते के बीच में खड़े हो गए। हाथ-जोड़कर सतृष्ण नयनों से कीर्तन की ओर देखते रहे। उनका सारा शरीर थर-थर काँपने लगा। देखते-देखते मृदंग-करताल की ध्वनि से चारों दिशा को कम्पित करते हुए संकीर्तन-मण्डली गोसाँईजी के सम्मुख आ गई। वैष्णवगण गोसाँईजी का दर्शन करके दुगुने उत्साह के साथ कीर्तन करने लगे। वे लोग गोसाँईजी की परिक्रमा करते हुए बड़े उल्लास के साथ उन्मत्त होकर नृत्य करने लगे। गोसाँईजी तब सामने की ओर हाथ उठाते हुए उच्च स्वर में-**'जय शचीनन्दन, जय शचीनन्दन'** कहते-कहते गिर पड़े। संकीर्तन के बड़े-बड़े पृथक् दल एक साथ मिलकर बड़े उत्साह से गोसाँईजी को चारों ओर से घेरकर उच्च स्वर में कीर्तन करने लगे। गोसाँईजी ब्रज-रज में बार-बार लोटकर, धूल से लथपथ होकर इस समय अचानक उठकर खड़े हो गए।

फिर मृदंग-करताल के ताल के साथ दो-चार कदम बढ़कर सीधे उछल पड़े। **‘जय हे! जय हे!’** कहकर दाहिना हाथ ऊपर उछालते हुए उन्होंने उद्दाम नृत्य आरम्भ कर दिया। देखते-देखते वे मल्ल वेश में नृत्य करके उसी भीड़ में, विशाल राजमार्ग पर बिजली की भाँति भाग-दौड़ करने लगे। पता नहीं, किस प्रकार इतनी भीड़ में अबाध गति से गोसाँईजी का वह विशाल शरीर मानो हवा में उड़ने लगा। दायें-बायें, आगे-पीछे, जब जिस दिशा में गोसाँईजी दौड़े, भावावेग का प्रबल तूफान उठने से उसी दिशा में बडा कोलाहल मच गया। गोसाँईजी की बारम्बार ललकार व हरिध्वनि सुनकर सभी मानो दिग्भ्रमित हो गए। जगह-जगह वैष्णवगण भावावेश में अचेत हो गए। इसी समय गोसाँईजी कीर्तन-स्थल पर सर्वत्र दौड़-दौड़कर, जगह-जगह एक-एक बार घबराए हुए की भाँति खड़े होकर, तुरन्त सामने की ओर दोनों हाथ फैलाकर, **‘जय शचीनन्दन, जय शचीनन्दन’** कहते-कहते भूमि पर गिरकर लोटने लगे। ब्रज-रज सारे अंग में मलकर फिर तुरन्त उछल पड़े एवं अत्यधिक उत्साह के साथ हरिध्वनि करके नृत्य करने लगे। भावोन्मत्त श्रीधर खूब उछलते-उछलते अपने कम्बल को उड़ाकर गोसाँईजी के आगे-आगे चलने लगे। उनकी हुंकार और अद्भुत उछल-कूद से वैष्णव बाबाजी लोग भी उन्मत्त हो उठे। उन लोगों के विचित्र भावावेग को सहन न कर पाने से मैं पीछे की ओर हट गया। इसी समय मैंने पीछे देखा, गोसाँईजी के पुत्र श्री योगजीवन दौड़ते हुए आ रहे हैं। योगजीवन ढाका के गेण्डारिया-आश्रम में हैं, यही जानता हूँ, अचानक उनको इस समय कीर्तन-स्थल में उपस्थित देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। संकीर्तन-स्थल में गोसाँईजी को देखकर

योगजीवन उन्मत्त हो उठे। बड़ी दूर से ही ठाकुर को पकड़ने के लिए दोनों हाथ फैलाकर बारम्बार आगे बढ़ने का प्रयास किए, किन्तु मतवाले के समान लड़खड़ाते हुए चलते-चलते पग-पग पर दायें-बायें गिरने लगे। मैंने योगजीवन को पकड़ लिया। इस समय गोसाँईजी एकाएक पीछे मुख फेरकर रुक गए एवं योगजीवन की ओर एक क्षण स्थिर भाव से देखकर उच्च स्वर में हरिध्वनि करने लगे। योगजीवन ऊँघते-ऊँघते क्षणभर गोसाँईजी की ओर देखकर अचेत हो गए।

गोसाँईजी ने संकीर्तन के साथ-साथ गोपीनाथ मन्दिर में प्रवेश किया। भावविह्वल योगजीवन को लेकर कुछ समय बाद मैं भी वहाँ पहुँच गया। मन्दिर के आँगन में जाकर श्रीश्री गोपीनाथजी को साष्टांग प्रणाम करते ही गोसाँईजी समाधिस्थ हो गए। दिन के ३ बजे तक उन्हें बाह्यज्ञान नहीं हुआ। समाधि भंग होने के बाद हम सभी कुंज में आ गए।

माता ठाकुरानी का श्रीवृन्दावन में आगमनः दाऊजी का मन्दिर

श्री योगजीवन गोस्वामी अपनी छोटी बहिन कुतुबुड़ी (श्रीमती प्रेमसखी) और माता श्री योगमाया देवी को लेकर आज श्रीवृन्दावन आए हैं। कुंज में प्रवेश करते ही उन लोगों को देखा। माता ठाकुरानी के आने से हम सभी बड़े आनन्दित हुए। माँ ने भी हम सभी का खूब आदर किया; परन्तु गोसाँईजी ने माता ठाकुरानी के साथ उस प्रकार से कोई बातचीत नहीं की। सामान्य रूप से दो-चार बातें गेण्डारिया की दशा के विषय में पूछकर अपने आसन पर शान्त बैठे

रहे। सुना है, माता ठाकुरानी इस बार गोसाँईजी को बिना सूचना दिए ही यहाँ आई हैं। गोसाँईजी के शरीर की दुरावस्था के सम्बन्ध में माता ठाकुरानी विशेष रूप से अवगत होकर विचलित हो गई थीं। उनकी अनुपस्थिति से गेण्डारिया-आश्रम में बहुत असुविधा होगी, जानते हुए भी उस बात की अवहेलना करके चली आईं। माता ठाकुरानी चकित होकर गोसाँईजी की देह की ओर बहुत समय तक एकटक देखती रहीं।

इस छोटे-से मकान में हम लोगों के रहने की सुव्यवरथा गोसाँईजी ने स्वयं ही कर दी है। नीचे हम लोगों के रहने का स्थान नहीं है। मकान बहुत छोटा है। पूरे मकान में लगभग पाँच-छः कट्ठा जमीन है। इस मकान के पूर्व की ओर मुख्य दरवाजा है। इस दरवाजे से प्रवेश करने से सामने ही १५-२० फीट के अन्तर में पूर्व की ओर द्वार वाला दाऊजी ठाकुर का मन्दिर है। सामने एक बरामदा है। मन्दिर से संलग्न दक्षिण की ओर नीचे मात्र दो कमरे हैं। एक कमरा अपेक्षाकृत थोड़ा बड़ा है, वहीं भोग की रसोई बनती है और प्रसाद पाते हैं। पीछे की ओर दूसरे छोटे कमरे में एक ब्रह्मचारी रहते हैं। इसी कमरे के पास से ऊपर जाने के लिए सीढ़ी है। यह सीढ़ी ऊपर लम्बे बरामदे के पश्चिम की ओर निकलती है। बरामदे से संलग्न दक्षिण दिशा में पास-पास तीन कमरे हैं। सीढ़ी से जाने पर पहले कमरे में ही गोसाँईजी का आसन है। कोई खिड़की न रहने से इस कमरे में दिन के समय भी अन्धकार रहता है। इस कमरे के पूर्व ओर, दरवाजे के ठीक किनारे, उक्त बरामदे में गोसाँईजी का आसन दिनभर बिछा रहता है। इसी आसन पर गोसाँईजी उत्तरमुखी होकर प्रातः से संध्या तक स्थिर भाव से बैठे रहते है।

मकान के उत्तरी भाग में कुछ खुली जमीन पड़े रहने के कारण बरामदे से देखने में कोई रुकावट नहीं है। गोसाँईजी के आसन-गृह के पूर्व की ओर अर्थात् बीचवाले कमरे में हम लोगों के रहने की व्यवस्था हुई है। पूर्व की ओर अन्तिम कमरे में कुतुबुड़ी व योगजीवन को लेकर माता ठाकुरानी रहेंगी। हम लोगों के कमरे में भी वैसा उजाला नहीं आता। अतएव दिन के समय माता ठाकुरानी के कमरे में हम लोग इच्छानुसार रह सकेंगे। उनके कमरे में पूर्व की ओर एक बड़ी खिड़की रहने से कमरा अच्छा उज्ज्वल है। यह कमरा गोसाँईजी के आसन से थोड़ा दूर होने के कारण हम लोगों को बातचीत करने की भी अच्छी सुविधा मिल गई है।

ठाकुर की कृपा-दृष्टि से उत्कट रोग की शान्ति

विविध प्रकार की बातें

६ जुलाई, रविवार। श्रीवृन्दावन में आकर अपने पित्तशूल के रोग में कोई कमी नहीं देख रहा हूँ। रात्रि में नींद न आने तक इस भयंकर कष्टदायक वेदना का विराम नहीं है। संध्या के समय गोसाँईजी के पास कुछ क्षण बैठ भी नहीं पाता, बिछौने पर पड़ा रहता हूँ। जिस दिन से वृन्दावन आया हूँ, उस दिन से इस रोग की यन्त्रणा मानो और भी बढ़ती जा रही है। गोसाँईजी मेरे शरीर की दुर्बलता देखकर, अपने पीने के थोड़े परिमाण के दूध का आधा भाग प्रतिदिन मुझे देते हैं। मैंने पूछा, अपने पीने के थोड़े परिमाण के दूध में से आप आधा मुझे क्यों देते हैं? मुझे दूध की कोई आवश्यकता नहीं है।

गोसाँईजी ने कहा-**'बचपन से ही तुम्हें दूध पीने का अभ्यास**

है। अब नहीं पीने से अस्वस्थ हो सकते हो।' मेरे नहीं चाहने पर भी गोसाँईजी जिद करके प्रतिदिन मुझे दूध देते हैं।

प्रातः यमुना में स्नान करके, गोसाँईजी के पास बैठकर नाम जपने लगा। थोड़ा दिन चढ़ते ही मेरी वेदना भयंकर बढ़ गई। यन्त्रणा से मैं बेचैन हो गया। ऐसा न हो कि गोसाँईजी को पता चल जाए, इस भय से लम्बे समय तक एक-एक बार श्वास रोककर धीरे-धीरे दीर्घ श्वास छोड़ने लगा। गोसाँईजी समाधिस्थ थे। इस समय अचानक वे दो-तीन बार उठने के लिए तत्पर हो गए, जैसे डर गए हैं। फिर स्नेहपूर्वक मेरी ओर डबडबाई आँखों से देखते हुए कहने लगे-**'ओह! तुम इतना कष्ट पा रहे हो! अच्छा, तुम्हें अब भुगतना नहीं पड़ेगा।'** इतना कहकर उन्होंने दो-तीन बार मेरी ओर देखकर पुनः आँखें बन्द कर लीं। गोसाँईजी का मुख इस समय लाल होकर सूज गया। वे पुनः समाधिस्थ हो गए।

मेरी वेदना की बात यहाँ कोई नहीं जानता। गोसाँईजी को यह किस प्रकार पता चल गया एवं **'अब भुगतना नहीं पड़ेगा'**, यह बात भी उन्होंने क्यों कही? यही सब सोचते-सोचते मैं नीचे चला गया।

भोजन के बाद ठाकुर के पास बैठकर नाम-जप कर रहा था, थोड़ा अन्यमनस्क हो गया। इस समय धीरे-धीरे पता नहीं कब मेरी वेदना कम हो गई। कुछ क्षण बाद वेदना बिल्कुल ही नहीं रही, यह देखकर चौंक उठा। सोचने लगा, 'ये अब क्या हुआ? इतने समय से जो असह्य यन्त्रणा अविराम भुगतता आया हूँ, अचानक वह कहाँ गई?' यह असम्भव घटना देखकर कुछ क्षण के लिए मैं स्तब्ध रह गया। सोचा, 'लगता है यह मेरे गुरुदेव की ही कृपा है।' जो हो, वेदना

वास्तव में दूर हो गई या नहीं, स्पष्ट जानने के लिए रात्रि में अधिक रोटी व अरहर की दाल एवं अधिक मिर्च व खट्टा खाया, लेकिन सारी रात मुझे आराम से नींद आई, वेदना का लेशमात्र भी अनुभव नहीं किया।

७ जुलाई, सोमवार। आज प्रातः यमुना में स्नान करके आने के बाद देखा, गुरुदेव अपने आसन पर शान्त भाव से बैठे हुए हैं, किन्तु उनका चेहरा बिल्कुल काला हो गया है। ठाकुर का श्रीमुख देखकर मानो मेरी छाती फट गई। तुरन्त हाथ में रखे वस्त्र फेंककर चीत्कार करते हुए गिर पड़ा। ठाकुर का पैर पकड़कर रोते-रोते कहा, मेरा रोग ले लेने से आप काले हो गए! मेरा रोग मुझे ही दीजिए, उसे मैं भोगूँगा। ठाकुर ने मेरा हाथ छुड़ाकर कहा-**'ये क्या है? ऐसा क्यों कर रहे हो? भोग-टोग वह सब कुछ नहीं है। किसका भोग कौन लेता है!'**

केवल इतना कहकर ठाकुर ने आँखें बन्द कर ली। मुझे फिर कुछ पूछने का अवसर नहीं मिला। बैठे-बैठे रोने लगा। सोचने लगा, 'हाय! ठाकुर मेरे लिए कितनी दुःसह यन्त्रणा को सहन कर रहे हैं! ब्रह्मचारीजी ने मुझसे कहा था, 'यह रोग प्रारब्ध का है, भोगने से ही समाप्त होगा। अभी हाथ फेरकर हटा सकता हूँ। लेकिन ऐसा होने से अन्य जन्म में फिर भुगतना होगा।' हाय! उस समय मैं यदि उनकी बात मान लेता, छाती पर हाथ फेरने देता, तो अभी मेरे ठाकुर की छाती पर यह भयानक भाला नहीं पड़ता।' रोग की यन्त्रणा की अपेक्षा यह क्लेश-बोध मुझे अधिक होने लगा। मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा-ठाकुर, यह आशीर्वाद दो, जिससे जीवन में तुम्हारी यह दया भूलूँ नहीं। मुझे स्वस्थ व शीतल रखने के लिए। इस भयंकर

रोग को लेकर अपनी छाती में आग जला लिए, इस बात को स्मरण में रखकर ही मेरा यह जीवन समाप्त हो।

भोजन के बाद कुछ समय गुरुभाइयों के साथ बातचीत में बीत जाता है। प्रतिदिन ३ बजे ठाकुर के पास हरिवंश का पाठ किया करता हूँ। ठाकुर उसे सुनकर बड़े आनन्दित होते हैं। मैं पाठ के समय ठाकुर को बहुत हैरान करता हूँ। हरिवंश के तथ्य की बातें मुझे कुछ समझ में नहीं आतीं। ठाकुर से आज पूछा-ये सब कथाएँ तो कुछ समझ में नहीं आतीं। वृथा पढ़ने से क्या लाभ?

ठाकुर ने कहा-**अभी केवल पढ़ते जाओ। साधना के द्वारा जब ये सब तत्त्व प्रकाशित होंगे, तब ये सब समझोगे। एक बार पढ़ा हुआ रहे तो अच्छा है।**

मैं-तत्त्व प्रकाशित होने से ही तो सब जान जाऊँगा। तो फिर अभी क्यों पढ़ना?

ठाकुर ने कहा-**'नहीं, पढ़ा रहने से अच्छा है। प्रत्यक्ष होने पर ये सब शास्त्र-पुराणों का लिखा हुआ ही हैं, यह देखकर विश्वास और भी दृढ़ होगा।'**

मैं-यदि २० वर्ष बाद किसी विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, तो फिर उसका प्रमाण किस ग्रन्थ में कहाँ किस अंश में है, वह कैसे स्मरण होगा?

ठाकुर–**एक बार पढ़ा रहने से, प्रत्यक्ष विषय कहाँ पढ़ा गया था, २० वर्ष बाद भी वह स्मरण हो जाता है।**

ठाकुर से बहुत समय तक विविध प्रश्न किया। ठाकुर प्रतिदिन ही संध्या के समय श्रीमद्भागवत का पाठ सुनने श्रीनीलमणि गोस्वामीजी के घर जाते हैं। नीलमणि गोस्वामीजी स्वयं ही उसका

पाठ करते हैं। ठाकुर के साथ हम सब लोग भी जाया करते हैं। ऐसा भागवत-पाठ कदाचित् श्रीवृन्दावन में किसी ने सुना नहीं। एक-एक श्लोक की व्याख्या में नीलमणि गोस्वामीजी एक घण्टा भी लगा देते हैं। ठाकुर ने कहा-**'ग्रन्थ पाठ के समय उनकी व्याख्या में ज्ञान और भक्ति मानो मूर्तिमान् होकर प्रकाशित होते हैं। ऐसी असाम्प्रदायिक व्याख्या आजकल सुनी नहीं जाती।'**

श्रीनीलमणि गोस्वामीजी ठाकुर को 'काका' कहते हैं और उनके प्रति बहुत श्रद्धा रखते हैं।

बातों-बातों में आज एक बार ठाकुर से पूछा, सुना है, हम लोगों के भयंकर मानसिक भोगों को आप ग्रहण करते हैं। प्रारब्ध का तीव्र दैहिक भोग भी क्या आपको भुगतना होता है?

ठाकुर ने कहा-**'अरे बाबा, सभी भुगतना पड़ता है।'**

गोसाँईजी और माता ठाकुरानी का कलह

८ जुलाई, मंगलवार। गोसाँईजी के शरीर की अवस्था बहुत खराब है, यह जानते ही माता ठाकुरानी घबराकर श्रीवृन्दावन आ गईं। गेण्डारिया छोड़कर इस समय माता ठाकुरानी यहाँ न आएँ, इसके लिए ठाकुर ने बार-बार पत्र लिखा था। ठाकुर के मना करने के बाद भी माता ठाकुरानी यहाँ आए बिना रह नहीं सकीं। गोसाँईजी के शरीर की अवस्था से अवगत होकर वे बेचैन हो गईं! किन्तु यहाँ आने के बाद से माता ठाकुरानी मानो डरी-डरी-सी हैं, गोसाँईजी के पास जातीं नहीं, बैठतीं नहीं। ठाकुर भी उन्हें किसी काम से नहीं बुलाते। वे दिनभर अपने कमरे में ही बैठी रहती हैं, हम लोगों के साथ भी पहले के समान बातचीत नहीं करतीं। आज रात्रि में

लगभग ११ बजे माता ठाकुरानी साहस करके गोसाँईजी के आसन के पास जाकर बैठ गई एवं धीरे-धीरे उनको हवा करने लगीं। रात्रि में गोसाँईजी भयंकर गर्मी के कारण आसन-गृह में रह नहीं पाते; दिन के समय जहाँ रहते हैं, उसी बरामदे के आसन पर ही रात बिता देते हैं। मैं भी गरम अँधेरे कमरे में न रह पाने के कारण बरामदे में रहता हूँ। गोसाँईजी के आसन से लगभग पाँच फीट के अन्तर में मेरा बिछौना है। गोसाँईजी ने मुझे वहाँ सोने के लिए कहा है। मैं जितने समय तक जागता रहा, ठाकुर समाधिस्थ ही थे। रात्रि में लगभग ३ बजे मेरी नींद टूटी, तब उसी प्रकार बिछौने में लेटे रहकर गोसाँईजी और माता ठाकूरानी का झगड़ा सुनने लगा। श्रीमती शान्तिसुधा (ठाकुर की बड़ी कन्या) गर्भवती हैं, बूढ़ी नानीजी (गोस्वामीजी की सास) अस्वस्थ हैं; योगजीवन की पत्नी भी बहुत छोटी है, इस अवस्था में उन लोगों को गेण्डारिया में छोड़कर माता ठाकुरानी का आना ठीक नहीं हुआ, गोसाँईजी बार-बार यही बात कहने लगे एवं उनको तुरन्त ढाका लौट जाने के लिए हठपूर्वक कहने लगे। माता ठाकुरानी ने कहा कि गोसाँईजी का शरीर अभी जिस प्रकार अस्वस्थ और दुर्बल हो गया है, उनको इस प्रकार छोड़कर वे इस समय किसी भी परिस्थिति में कहीं नहीं जाएँगी। वे कोई श्रीवृन्दावन की तीर्थ-यात्रा पर नहीं आई हैं, ठाकुर की सेवा करने आई हैं एवं सेवा ही करेंगी। इस प्रकार वाद-विवाद में क्रमशः रात लगभग बीत गई। गोसाँईजी ने तब थोड़े तेज स्वर में माता ठाकुरानी से कहा

'मैंने जो आश्रम ग्रहण किया है, तुम मेरे साथ रहोगी तो उस आश्रम की मर्यादा नहीं रहेगी। तुम्हें श्रीवृन्दावन में रहना है, तो

और कहीं जाकर रहो। इस कुंज में नहीं रह पाओगी। इसमें यदि तुम जिद करती हो, तो मैं कहीं और चला जाऊँगा; उत्तरकुरु चला जाऊँगा।'

गोसाँईजी का अन्तिम कथन सुनकर माता ठाकुरानी ने फिर कुछ नहीं कहा, स्तब्ध होकर बैठी रहीं। इधर सवेरा भी हो गया। मैं शौच के लिए चला गया।

माता ठाकुरानी का अलौकिक रूप से अन्तर्धान

९ जुलाई, बुधवार। प्रातःकाल यथासमय ठाकुर उठकर शौच के लिए गए, हम सब लोग भी नीचे आ गए। योगजीवन, सतीश, श्रीधर आदि एक-एक करके सभी स्नान करने गए। मैं भी मुँह धोकर यमुना जाने के लिए प्रस्तुत हुआ। इसी समय माता ठाकुरानी नीचे आईं। उन्होंने मुझे देखकर कहा-'क्यों कुलदा, यमुना जाओगे नहीं?' मैंने कहा-हाँ जाऊँगा। आप मेरे साथ जाएँगी? माता ठाकुरानी ने कहा-'मैं जाऊँगी। लेकिन, तुम जाओ न! तुम अपना लोटा मुझे दो।' यह कहकर वे मेरे हाथ से लोटा लेकर १२-१५ फीट के अन्तर में कुएँ के किनारे खड़ी हो गईं। फिर कुल्ला करते-करते बार-बार मेरी ओर देखने लगीं। मैं स्नान के लिए जाने से पहले एक बार ठाकुरजी को पाँच-छः सेकेण्ड के लिए प्रणाम करके सिर उठाकर देखा, माता ठाकुरानी नहीं हैं। कुए के किनारे केवल लोटा पड़ा हुआ है। माता ठाकुरानी को न देखकर, मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ; सोचा-'इतनी शीघ्र माँ कहाँ गईं? अभी तो वे यहीं पर खड़ी थीं। कहीं से जाने का रास्ता भी नहीं है। दीवाल से घिरा मकान, चारों ओर कुछ है भी

नहीं। मुख्य दरवाजे से जाएँगीं भी तो मेरे पास से होकर ही जाएँगीं।' मैं लोटा उठाकर यही सब विचार करते-करते यमुना की ओर चला गया। यमुना में स्नान करके कुंज में प्रवेश करते ही योगजीवन ने मुझसे पूछा-'क्यों! तुम माँ को कहाँ छोड़कर आ गए, माँ आईं नहीं।'

मैंने कहा- कहाँ, माँ तो मेरे साथ गईं नहीं। वे क्या अपने कुंज में नहीं हैं? योगजीवन 'नहीं' कहकर विस्मयपूर्वक मेरी ओर देखते रह गए। तब मैंने रात्रि में हुए कलह का विवरण सबको बतलाया। सभी ने अनुमान लगाया कि ठाकुर के प्रति अप्रसन्न होकर सम्भवतः किसी कुंज में चली गईं हैं। कुछ समय तक प्रतीक्षा करके हम लोगों ने देखा, माँ आईं नहीं, तब श्रीधर, सतीश, स्वामीजी, योगजीवन एवं मैं विचलित होकर माता ठाकुरानी को ढूँढ़ने बाहर निकले। प्रातः साढ़े ६ बजे से दिन के १ बजे तक वृन्दावन के कुंज-कुंज में, रास्ते में, मन्दिर में, बागान में और यमुना के किनारे सभी जगह अच्छे-से माता ठाकुरानी को तलाश किया, लेकिन कहीं उनका पता नहीं चला। परिचित सभी लोगों से पूछा गया, लेकिन कोई भी कुछ बतला नहीं पाया। १ बजे तक सारे वृन्दावन में दौड़-धूप करके, थककर हम लोग कुंज में लौटे। नीचे बैठकर सभी परामर्श करने लगे, 'अब क्या किया जाए? योगजीवन और श्रीधर बार-बार मुझसे जिद करके कहने लगे-'भाई, तुम जाकर माँ के विषय में गोसाँईजी से कहो। आज वे इतने गम्भीर हैं कि उनके पास जाने का हम लोगों का बिल्कुल भी साहस नहीं होता। अन्त में कोई उपाय न देखकर मैं धीरे-धीरे जाकर ठाकुर के पास बैठ गया; कुछ क्षण बाद ठाकुर ने आँखें खोलीं। मैंने तुरन्त कहा-माता ठाकुरानी नहीं मिल रही हैं। वे तो अकेली कभी कुंज से कहीं जाती नहीं, लेकिन पता

नहीं आज कहाँ चली गईं? सवेरे से अब तक हम लोग उनकी खोज में सारा वृन्दावन घूमते रहे, कहीं भी नहीं मिलीं। ठाकुर ने बिन्दुमात्र भी व्यग्रता न दिखलाकर, सहज भाव से कहा-**‘कहाँ जाएँगीं? तलाश करके देखो। यमुना के किनारे देखे हो?’**

मैंने कहा-कोई भी स्थान छोड़ा नहीं। रास्ते के लोगों से भी पूछा है। ठाकुर ने क्षणभर चुप रहकर थोड़ा मुस्कुराते हुए कहा-**‘उनको ढूँढ़ने से भी अब मिलेंगीं नहीं। परमहंसजी उनको ले गए।’**

मैंने पूछा-परमहंसजी माताजी को क्यों ले गए?

ठाकुर ने कहा-**“कल जब उनको अन्यत्र रहने के लिए कहा गया, मना कर दीं। बहुत समझाकर कहा, किसी प्रकार भी सहमत नहीं हुईं। तब मैंने परमहंसजी को स्मरण किया। वे तुरन्त आकर मुझसे कहे, ‘इसके लिए व्याकुल क्यों हो रहे हो? चिन्ता की कोई बात नहीं। कल ही मैं उनको अन्यत्र ले जाऊँगा।’ वे उनको ले गए; ढूँढ़ना व्यर्थ है।”**

मैं-तो फिर यहाँ माताजी के आने की क्या सम्भावना नहीं है?

ठाकुर–**उनकी किसी ओर भी अब ममता नहीं है; केवल कुतु के प्रति थोड़ा आकर्षण है। इसी से कुतु के लिए पुनः आ भी सकती हैं। अभी उस विषय में स्पष्ट कुछ कहा नहीं जा सकता। आना, नहीं आना उनकी इच्छा पर है।**

मैं-परमहंसजी किस प्रकार ले गए? उनको तो वहाँ पर देखा नहीं! माताजी मेरे से मात्र १२-१५ फीट के अन्तर में थीं। पाँच-छः सेकेण्ड के लिए केवल एक बार मेरी दृष्टि अन्य ओर थी। मुख फेरकर देखा, माताजी नहीं हैं। परमहंसजी आते तो वे दिखलाई पड़ते!

ठाकुर–**परमहंसजी सूक्ष्म शरीर में आए थे; उनको देखोगे कैसे? वे सूक्ष्म शरीर में ही आकर ले गए!**

मैं-परमहंसजी तो सूक्ष्म शरीर में आए थे, किन्तु माताजी तो सूक्ष्म शरीर में गई नहीं! माताजी के स्थूल शरीर को क्षणभर के भीतर परमहंसजी किस प्रकार अन्यत्र ले गए?

ठाकुर–**वे लोग सब-कुछ कर सकते हैं। योगी लोग केवल इच्छा से इस स्थूल देह को सूक्ष्म में परिवर्तन कर सकते हैं, सूक्ष्म देह को भी स्थूल कर सकते हैं। शरीर के पंचभूत को पंचभूत में मिलाकर, स्थूल को सूक्ष्म करके क्षणभर के भीतर उनको ले गए।**

मैं-परमहंसजी माताजी को कहाँ ले गए? क्या श्रीवृन्दावन में ही उनको सूक्ष्म शरीर में रखे हैं, या और कहीं ले गए?

गोसाँईजी-**श्रीवृन्दावन में अब क्यों रखेंगे? परमहंसजी उनको सीधे मानससरोवर ले गए।**

मैं-मानससरोवर में माताजी क्या सूक्ष्म शरीर में हैं?

गोसाँईजी-**वैसा क्यों? वहाँ जाकर फिर जैसी थीं, वैसी हो गईं।**

मैं-मानससरोवर में परमहंसजी हैं; वहाँ क्या और भी कोई हैं- या परमहंसजी अकेले ही रहते हैं?

ठाकुर-**अन्य भी बहुत हैं! कितने ऋषि-मुनि, कितने देवी-देवता हैं।**

मैं-अब वहाँ रहकर माताजी क्या करेंगीं?

ठाकुर-साधन-**भजन करेंगीं, कितना आनन्द करेंगीं! वहाँ जाने के बाद फिर क्या लौटने की इच्छा होती है?**

मैं-मानससरोवर तो तिब्बत में है। वहाँ देवी-देवता, ऋषि-मुनि रहते हैं?

ठाकुर–**नहीं, नहीं, ये वह मानससरोवर नहीं है। भूगोल में जिस मानससरोवर को पढ़े हो, वह नहीं-वह तो 'मानतलाब' है। मानससरोवर बहुत दूर हिमालय के ऊपर है।**

मैं-हम लोग क्या मानससरोवर जा नहीं सकते?

ठाकुर-**इस शरीर से किस प्रकार जाओगे? मार्ग बड़ा ही दुर्गम है। खूब योगैश्वर्य न होने से वहाँ जा नहीं सकते। लोग जिसको मानससरोवर समझते हैं, वहाँ सहज में ही जा सकते हैं। वह तो मानससरोवर नहीं है! मानससरोवर कैलास जाने के मार्ग पर है।**

मैं-तो माताजी कुतु के लिए फिर आ सकती हैं?

ठाकुर-**वह कह नहीं सकते-इतनी-सी ममता को इच्छा करने से ही वे लोग हटा सकते हैं।**

ठाकुर के साथ बातचीत में बहुत समय बीत गया। संध्या के समय और दिनों की भाँति आज भी ठाकुर के साथ भागवत-पाठ सुनने गया। कुंज लौटने में रात हो गई।

योगजीवन को गृहस्थी में रहने का आदेश

१० जुलाई, गुरुवार। माता ठाकुरानी के अन्तर्धान से सभी के मन में आघात लगा। योगजीवन बड़े अधीर हो गए। अब गेण्डारिया जाएँगे नहीं, गृहस्थी में नहीं रहेंगे-कहने लगे। वे बिल्कुल निर्लिप्त हो जाना चाहते हैं। ठाकुर उन्हें स्नेहपूर्वक अच्छा उपदेश देकर शान्त करने लगे। योगजीवन ने आज बहुत समय तक ठाकुर के साथ तर्क

किया। ठाकुर ने अन्त में कहा, **“अब अधिक दिन तुझे गृहस्थी में रहना नहीं होगा, निश्चित जान ले। शीघ्र ही तेरा सब ठीक हो जाएगा। फिर भी वह न होने तक कुछ समय गृहस्थी में रहना होगा। उतना-सा कर्म समाप्त किए बिना चलेगा नहीं। अभी ढाका जाकर रहो।”** अत्यन्त आग्रह समझकर योगजीवन अन्त में शीघ्र ही पुनः ढाका जाने के लिए सम्मत हो गए।

संध्या के समय जब हम लोग श्रीमद्भागवत सुनने जाते हैं, रास्ते में सब ओर हम लोग केवल माता ठाकुरानी की ही खोज किया करते हैं। माता ठाकुरानी के अन्तर्धान के बाद ठाकुर ने मुझसे कहा-**“कुतु पर सदैव दृष्टि रखना। पाठ सुनने जब जाओगे, कुतु का हाथ पकड़कर ले जाना। पाठ सुनने जब बैठोगे, उसको पास में ही बैठाना। कहीं उसको ले न जाएँ!”**

मैंने पूछा-क्या कुतु को भी ले जा सकते हैं?

ठाकुर–**क्यों नहीं ले जा सकते? बिल्कुल ले जा सकते हैं।**

आश्चर्य यह है कि माता ठाकुरानी के लिए कुतु में थोड़ा भी दुःख का भाव नहीं देख रहा हूँ। कुतु दिनभर ठाकुर के पास बैठी रहती हैं; ठाकुर के साथ बातचीत में, हँसी-मजाक में दिन बिता देतीं; एक बार भी माँ का स्मरण नहीं करतीं, किसी से माँ के सम्बन्ध में कोई बात पूछतीं भी नहीं। इतनी बड़ी एक घटना हो गई, कुतु मानो कुछ जानती ही नहीं। कुतु को लक्ष्य करके ठाकुर से मैंने पूछा-माँ के अभाव में क्या किसी-किसी को कुछ भी कष्ट नहीं होता? ठाकुर ने कहा-**“हाँ, कष्ट सभी को होता है; तो भी किसी-किसी में धैर्य बहुत अधिक होता है।”**

वानर ‘कृष्णदास’

भोर में प्रातःक्रिया सम्पन्न करने के बाद, ठाकुर बरामदे में अपने आसन पर बैठते हैं। इसी समय ‘कृष्णदास’ आकर हाजिर होते हैं। ‘कृष्णदास’ एक छोटा-सा बन्दर है। ठाकुर ने आदरपूर्वक उसका नाम ‘कृष्णदास’ रखा है। ठाकुर रात्रि में भोजन करने के पहले ‘कृष्णदास’ के लिए कम-से-कम एक रोटी रख देते हैं। प्रातःकाल प्रतिदिन ‘कृष्णदास’ आकर उसे खाते हैं। ‘कृष्णदास’ के लिए यहाँ रोक-टोक नहीं है। प्रातःकाल आते ही ‘कृष्णदास’ बाहर से दो-तीन बार चीं-चीं करके आवाज करते हैं। तब ठाकुर अपने हाथ में रखकर उनको खाना देते हैं। दो-चार बार आवाज करने के बाद भी जब ‘कृष्णदास’ को खाना न मिले, तो वे बराबर ठाकुर के आसन-गृह में जाते हैं, जहाँ खाना रखा होता है, वहाँ से खाना लेकर ठाकुर के सामने आकर बैठते हैं, फिर धीरे-धीरे पाँच-सात मिनट में खाना पूरा करके चले जाते हैं, लेकिन यदि किसी आकस्मिक कारण से ‘कृष्णदास’ को आने के बाद भी खाना नहीं मिलता, तो वे ठाकुर का हाथ-पैर पकड़कर खींचा करते हैं-कभी गोद में, तो कभी सीधे ठाकुर के कंधे पर चढ़कर बैठ जाते हैं। उनको जब तक खाना न दे दें, ठाकुर निश्चिन्त होकर आसन पर बैठ नहीं पाते। ‘कृष्णदास’ बहुत शान्त प्रकृति के नहीं हैं, फिर भी ठाकुर के बड़े दुलारे हैं।

भक्त बूढ़े वानर का कार्य

एक और बूढ़ा बन्दर ठाकुर का भक्त है। ये बहुत अनुभवी हैं। जिस दिन से ठाकुर ने यहाँ आसन लगाया है, उस दिन से ही ये

ठाकुर के नित्य संगी हैं। प्रातः चाय पीने के बाद श्रीधर कुछ समय तक श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थ का पाठ करते हैं। फिर दिन के ९ बजे ठाकुर श्रीमद्भागवत का पाठ आरम्भ करते हैं। ठीक उसी समय ये बूढ़े बन्दर आकर ठाकुर के पास ही कटघरे के बाहर बैठते हैं एवं गाल पर हाथ रखकर शान्त भाव से ठाकुर की ओर देखा करते हैं; लगता है, जैसे भागवत सुन रहे हैं। पाठ समाप्त न होने तक वे किसी प्रकार से अपना स्थान छोड़ते नहीं। यदि कोई दुष्ट बन्दर पाठ के समय गड़बड़ करे, तो वे ऐसी दृष्टि से एक बार उसकी ओर देखते हैं कि वह भय से चीं-चीं करके भाग जाता है। पाठ के समय बूढे को कुछ खाने की वस्तु देने से वे किसी प्रकार भी उसे खाते नहीं, रख देते हैं, पाठ समाप्त होने पर धीरे-धीरे उसे खा लेते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि एक दिन के लिए भी बूढे बन्दर का यह भागवत-श्रवण बन्द नहीं होता। दिनभर वे कहीं भी क्यों न रहें, ९ से १० बजे तक वे निर्दिष्ट स्थान छोड़कर कहीं नहीं रहते। वे इस मुहल्ले के बन्दरों के मुखिया हैं। उनका शरीर अच्छा हृष्ट-पुष्ट बलिष्ठ है। देखकर बड़ा आनन्द आता है। बूढे के और भी अद्भुत कार्यों के बारे में सोचकर चकित हो जाता हूँ। पूरे वृन्दावन में घर-घर में बन्दरों का उपद्रव बहुत अधिक है। बूढ़े के कारण ही लगता है, हमारे कुंज में बन्दरों का वैसा उपद्रव नहीं है। एक दिन प्रातः अचानक एक बन्दर आकर हम लोगों का एक लोटा ले गया। शौच के लिए जाने में बड़ी असुविधा होने लगी। बूढे बन्दर कुछ क्षण बाद ही कुंज में आए। ठाकुर ने बूढ़े से कहा-**“बूढ़ा, तुम्हारे दल का एक बन्दर आकर हमारा एक लोटा ले गया, हम लोगों को बड़ी असुविधा हो रही है। लोटा ला दोगे?”** ठाकुर की बात सुनकर वे तुरन्त उछलकर

एक ऊँचे स्थान पर चढ़ गए, वहाँ दोनों पैरों पर खड़े होकर चारों ओर देखने लगे। जो बन्दर हम लोगों का लोटा लेकर भागा था, वह तीन-चार मकान के बाद एक ब्रजवासी के घर की छत पर बैठा था। बूढ़े ने एक बार उसकी ओर इस प्रकार से देखा कि वह लोटा छोड़कर चीं-चीं करते हुए भागकर अदृश्य हो गया। तब बूढ़े ने धीरे-धीरे जाकर लोटा उठा लिया और ठाकुर के पास रखकर वे शान्त भाव से बैठ गए।

वानर की इस प्रकार बुद्धि की इसके पहले मैंने कभी कल्पना भी नहीं की। वानर पालतू नहीं है, फिर भी ऐसा बुद्धिमान और आज्ञाकारी है, यही आश्चर्य है! ठाकुर ने कदाचित् कहा है-**'ये कोई वैष्णव महात्मा हैं, ब्रजवास की आकांक्षा से वानर देह धारण किए हुए हैं।'**

ठाकुर के भोजन की अत्यन्त दुरावस्था

भोर में ठाकुर आसन से उठकर शौच के लिए जाते हैं। श्रीधर जल, कौपीन और बहिर्वासादि लेकर खड़े रहते हैं। मुँह धोने के बाद ठाकुर ऊपर आकर 'कृष्णदास' को खाना देते हैं। फिर जाकर अपने आसन पर बैठते हैं। श्रीधर इसी समय चाय बनाने लगते हैं।

चाय की दुर्दशा देखकर बड़ा कष्ट हुआ। एक पैसे का थोड़ा-सा बासी दूध और थोड़ी-सी चीनी का किसी प्रकार जुगाड़ होता है। अर्थाभाव के कारण अत्यन्त साधारण श्रेणी की चाय सस्ते में थोड़ी-थोड़ी खरीदकर लाई जाती है। ठाकुर ने एक दिन की बनी चाय की पत्ती को न फेंककर, उसे सुखाकर रखने के लिए कहा है। अभाव होने पर उन्हीं पत्तियों को जल में उबालकर ठाकुर को दिया

जाता है। मलेरिया के कारण बहुत समय से ठाकुर को चाय पीने का अभ्यास है। समय पर वह न मिलने से उन्हें असुविधा होती है, लेकिन इस प्रकार की नीरस चाय ठाकुर किस प्रकार पीते हैं, समझ में नहीं आता। चाय के ऐसे अभाव की खबर एक बार कोलकाता पहुँचते ही सैकड़ों गुरुभाई अच्छी उत्कृष्ट चाय आग्रहपूर्वक भेज देंगे, परन्तु ठाकुर की इच्छा के बिना कुछ करना, किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। ठाकुर की अनुमति का भरोसा न करके मैंने भैया को उत्कृष्ट चाय भेजने के लिए लिख दिया।

ठाकुर के चाय पीने के बाद श्रीधर एक अध्याय श्रीचैतन्य-चरितामृत का पाठ करते हैं। उसके बाद, ९ बजे ठाकुर स्वयं श्रीमद्भागवत का पाठ किया करते हैं।

मध्याह्न में किसी-किसी दिन ठाकुर यमुना में स्नान करते हैं। फिर १२ बजे नीचे रसोई में जाकर सभी के साथ प्रसाद ग्रहण करते हैं। ठाकुर का शरीर इतना क्यों सूख गया है, प्रसाद का रूप देखने से ही वह स्पष्ट समझा जा सकता है। ठाकुर जब श्रीवृन्दावन में आए थे, अनेक सम्पन्न भक्तों ने ठाकुर को अच्छे मकान में ले जाकर सेवा करने का यथेष्ट आग्रह किया था, लेकिन दामोदर गरीब है, इसलिए दामोदर की प्रार्थना और 'जिद' से ठाकुर उसके ही कुंज में आ गए। ठाकुर की सेवा के लिए जो कुछ भी हर महीने आता है, ठाकुर उसका एक कौड़ी भी न रखकर दाऊजी ठाकुर के भोग के लिए दामोदर के हाथ में दे देते हैं। दामोदर ने आरम्भ में दो-तीन महीने तक तो दाऊजी का भोग ठीक ही दिया था। फिर ठाकुर के शिष्यों में अनेक धनवान् लोग हैं, यह खबर पाकर उसने बड़ा 'छल-कपट' आरम्भ कर दिया। ठाकुर को आहारादि का बहुत कष्ट

हो रहा है, भक्त शिष्य लोग यह सुनकर निश्चय ही मुट्ठी भर-भरकर रुपये भेजेंगे, यही दामोदर का दृढ़ विश्वास है। इसी कारण अब दाऊजी की सेवा के लिए रुपये मिलने पर दामोदर उससे सर्वप्रथम अपने घर की मासिक प्रयोजनीय सामग्री जमा करता है। फिर जो बचता है, उससे किसी प्रकार दाऊजी की सेवा की व्यवस्था होती है। प्रायः तीन महीने से रोटी, भात और उबला कुम्हड़ा दाऊजी को भोग लग रहा है। नमक और मसाला के बिना केवल जल में उबला कुम्हड़ा पत्थर की मूर्ति दाऊजी के भोग में ही अनन्तकाल चल सकता है, परन्तु रक्त-मांस के शरीर में जो लोग वह प्रसाद पाते हैं, वे लोग फिर कब तक उसमें रुचि और भक्ति रखेंगे?

भरपेट भोजन ठाकुर का एक दिन भी नहीं होता। किसी प्रकार थोड़े-से दूध में एक मुट्ठी भात डालकर उसे ही खाकर ठाकुर उठ जाते हैं। केवल नमक और उबले कुम्हड़े के साथ बेकार सस्ते मोटे आटे की रोटी, दो-एक से अधिक ठाकुर किसी दिन भी खा नहीं पाते। रात्रि भोजन की व्यवस्था और भी भयानक है। मध्याह्न का ही उबला कुम्हड़ा और मोटी रोटी अल्प मात्रा में रात के लिए रख दी जाती है। जिसके पेट में भूख की ज्वाला होती है, केवल वही उस सड़े दुर्गन्ध युक्त कुम्हड़े और कड़कड़ी रोटी को एक गहरी श्वास छोड़कर 'हरे कृष्ण', 'हरे कृष्ण' कहते-कहते गले से नीचे उतारकर चला आता है। अनुनय-विनय करके दामोदर से भोग का थोड़ा अच्छा बन्दोबस्त करने के लिए कहते हैं, तो दामोदर रुपये के लिए 'बंगला मुल्क के गोसाँई के चेलों के पास 'खत' भेजने का उपदेश देता है। वह हम लोग करते नहीं, अतः 'गोसाँई का क्लेश तुम लोगों के प्राण में लगता नहीं कहकर, वह हम लोगों को 'पाखण्डी' कहकर

गाली देता है। हर महीने इतने रुपये पाकर भी दामोदर भोग की अच्छी व्यवस्था क्यों नहीं करता, हम दो-चार लोग मिलकर यह पूछते हैं, तो दामोदर माला फेरते-फेरते तत्त्व की बातें कहता है। कहता है-'अरे, भला भोजन भजनवादी। भगत् का लोभ नहीं चाहि।' हाथ-पैर पकड़कर दामोदर से हम लोग भोजन में थोड़ा परिवर्तन करने के लिए कहते है। तो दामोदर उबला कुम्हड़ा न देकर उसका छिलका उबालकर देता है। 'रुपया-पैसा अपने हाथ में रखकर, हम स्वयं ही ठाकुर के भोग की व्यवस्था करेंगे यह भय दिखाने पर दामोदर बड़ा उत्साह दिखलाते हुए बाजार जाता है; बाजार का छँटा-छँटा सूखा व कीड़ा लगा, लोगों का त्यागा हुआ बैंगन और 'पंचमेल' साग लाकर उसे ही पकाकर देता, फिर 'कैसा खिलाया' 'कैसा खिलाया' कहकर १०-१५ दिन तक उसी की बड़ाई करता। पेट की ज्वाला से सर्वदा हमारे भीतर से 'भागो भागो' की चीख निकलती है। हे भगवान्! और कब तक यह भोगना पड़ेगा! प्रतिदिन भोजन के लिए बैठते ही दामोदर को पीटने की इच्छा होती है, किन्तु एक दिन भी कुछ कहने का अवसर नहीं मिलता। 'दामोदर का यह अत्यधिक अत्याचार अब सहन नहीं होता' ठाकुर से कहने पर उन्होंने मुस्कुराते हुए मधुर स्वर में कहा-**"दाऊजी जागृत देवता हैं। वे सब-कुछ देख रहे हैं। समय पर दाऊजी ही दामोदर को दण्ड देंगे। तुम लोग दामोदर को कुछ मत कहना।"** ठाकुर के अच्छा पल्ले पड़कर देखता हूँ, अब 'बचाओ मधुसूदन' पुकारना होगा।

दामोदर को दाऊजी महाराज का दण्ड

१४ जुलाई, सोमवार। आज प्रातः ठाकुर के चाय पीने के बाद, असमय में दामोदर पुजारी कुंज में आया। मुख फूला हुआ है, किसी के साथ बात नहीं की। वह काँपते-काँपते ठाकुर के सामने जाकर प्रणाम करके रो पड़ा। ठाकुर ने पूछा-**"क्यों दामोदर, क्या हुआ?"**

दामोदर ने अपने पूरे शरीर में, विशेषकर दोनों गालों में प्रहार के चिह्न दिखलाकर कहा-'बाबा, दाऊजी ने हमको बहुत मारा।' दाऊजी महाराज ने क्यों मारा, ठाकुर के यह पूछने पर दामोदर ने कहा-'बाबा, रात्रि के अन्तिम प्रहर में मैंने निद्रित अवस्था में स्वप्न देखा, दाऊजी ने अचानक आकर मुझे दबा दिया। वे दोनों हाथ से मेरे गालों पर भयंकर थप्पड़ मारने लगे। फिर मेरे पूरे शरीर में घूँसे और कुहनी से भयंकर मारते-मारते कहने लगे, 'पाखण्डी, तेरा इतना साहस? अच्छे-से भोग नहीं देता, गोसाँई खा नहीं पाते। उनको खाने का कष्ट देता है! आज तुझे घूँसे से मार डालूँगा।' दाऊजी के भयंकर प्रहार की व्यथा से मैं चीत्कार करते हुए जाग उठा, किन्तु मेरे सारे शरीर की वेदना कम नहीं हुई। यह देखिए, बाबा, मेरे गाल सूजे हुए हैं। इन सब अंगों में मुझे अभी भी क्लेश हो रहा है।

ठाकुर ने दामोदर से कहा-**"दाऊजी महाराज ने तुम्हें दण्ड दिया है-तुम भाग्यवान् हो। भक्तिपूर्वक दाऊजी की सेवा करो। वे तुम्हें कोई अभाव नहीं रखेंगे।"**

हमें दामोदर के गालों की दशा देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। स्वप्न का प्रहार शरीर पर उभर आया-ऐसा पहले कभी नहीं देखा। दाऊजी महाराज का कैसा अनुशासन है, वह विचार-बुद्धि द्वारा कुछ समझ नहीं आता। वह जो भी हो, दामोदर का कठोर दण्ड-

भोग देखकर मन-ही-मन बड़ा खुश हुआ; सोचा-अब से दोनों समय भरपेट भोजन करके श्रीवृन्दावन वास कर सकूँगा।

जुलाई-अगस्त, सन् १८९० ई. (बंगला सन् १२९७, श्रावण)

कुतु की बात: माता ठाकुरानी की वापसी

१६ जुलाई, बुधवार। आज मध्याह्न में अवकाश पाकर ठाकुर से माता ठाकुरानी के सम्बन्ध में पूछा-माताजी को गए इतने दिन हो गए, उनकी तो कोई खोज-खबर अभी तक मिली नहीं। वे क्या अब वास्तव में नहीं आएँगीं?

ठाकुर–**वह कह तो दिया, कुतु के प्रति थोड़ा आकर्षण है। यदि आती हैं, तो कुतु के लिए ही आएँगीं। जो सब महात्मा उन्हें ले गए हैं, वे लोग इच्छामात्र से उस थोड़े-से आकर्षण को भी काट सकते हैं। अतः उनके आने के सम्बन्ध में निश्चियपूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता।**

मैं-महात्मा लोग माँ के आकर्षण को ही तो काटेंगे ना। कुतु तो बच्ची है, उसका तो माँ के प्रति एक स्नेह है।

ठाकुर-**कुतु को क्या माँ के लिए कष्ट हो रहा है?**

मैं-वह कुछ समझ नहीं आता। कुतु की बातचीत, हँसी-मजाक, चलना-फिरना देखकर तो लगता नहीं, वह एक बार भी माँ को स्मरण करती है। माँ यहाँ रहने की आशा से आई थीं। उनके इस प्रकार जाने से सभी को बड़ा दुःख हुआ।

ठाकुर-**उनके इस प्रकार जाने से अच्छा हुआ। ऐसे जाने से कोई हानि नहीं होगी, मंगल होगा। इस बार श्रीवृन्दावन आने से**

उनको कभी वापस ले जाना सम्भव नहीं होगा। अपने स्थान पर ही वे रह जाएँगीं। इसी कारण उनको श्रीवृन्दावन आने के लिए बारम्बार मना किया था।

इसी समय कुतु ने आकर ठाकुर से कहा-'बाबा, माँ पाठ सुनने आती हैं। प्रायः ही माँ को देखती हूँ। आज भी माँ को वहाँ देखी।'

ठाकुर–**वे कहाँ थीं? कैसी लगीं?**

कुतु-क्यों? माँ हम लोगों के पास ही तो बैठी थीं। इस शरीर में नहीं थीं। आज लगता है, माँ अपने कुंज में आएँगीं।

ठाकुर-**हाँ आ सकती हैं।**

मैंने कुतु से पूछा-कुतु, माँ के लिए क्या तुम्हें कष्ट होता है?

कुतु ने कहा-'कष्ट क्यों होगा? माँ को न देख पाने से कष्ट होता। माँ को तो कई बार देखती हूँ। अब देखना, माँ आज आएँगीं।'

मैंने कहा-वह तुम कैसे समझीं?

कुतु ने मेरी बात से थोड़ा विरक्त होकर कहा-'इसमें समझना क्या? सुने नहीं-बाबा ने भी तो कहा है!' एकाएक इस समय कुतु ने ठाकुर से कहा-'बाबा, मुझे ऐसा क्यों होता है? दिन के समय भी जब जागती रहती हैं, तब भी स्वप्न जैसा लगता है।'

ठाकुर-**क्या कहती हो-थोड़ा स्पष्ट कहो न?**

कुतु-सब समय रह-रहकर मुझे लगता है, जो कुछ देखती हूँ, सुनती हूँ, करती हूँ ये सब कुछ नहीं है, मिथ्या है; सभी मानो स्वप्न देख रही हूँ लगता है। ऐसा क्यों होता है?

ठाकुर-**तेरा बड़ा सौभाग्य है, इसीलिए। यथार्थ में ही ये सब-कुछ, कुछ भी नहीं है। सभी मिथ्या है। स्वप्न ही तो है। ये सब स्वप्न है, स्पष्ट जान लेने से ही तो हो गया! और क्या?**

संध्या के थोड़ा पहले, कुतु के साथ ठाकुर की ये सब बातचीत हो रही है, इसी समय एक बूढ़ी आकर नीचे से ही हम लोगों को पुकारते हुए कहने लगीं-‘अरे, कोई है? तुम लोगों की माता-गोसाँई हमारे कुंज में ही हैं। तुम लोगों को खबर देने आई हूँ। मैंने अभी तुरन्त ही देखा, माता-गोसाँई हमारे घर पर बैठी हुई हैं। कब आईं, कहाँ से आईं-कुछ पता नहीं। घर पर उनको देखते ही तुम लोगों के पास दौड़कर आई हूँ।’

ठाकुर ने योगजीवन को बुलाकर कहा-**“योगजीवन, अभी चले जाओ। जाकर ले आओ।”**

हमारे कुंज के दो मकान के बाद ही एक गरीब गृहस्थ के घर में माता ठाकुरानी बैठी थीं। योगजीवन ने जाकर माताजी को ले आया। माताजी के शरीर में कोई विशेष परिवर्तन दिखा नहीं, परिवर्तन में केवल उनके वस्त्र गेरुए दिखे। माता ठाकुरानी ने आकर ठाकुर को प्रणाम किया। ठाकुर भी बड़े सन्तुष्ट भाव से उनके साथ बातचीत करने लगे; परन्तु जो इतने दिन माता ठाकुरानी कहाँ किस प्रकार थीं, उस सम्बन्ध में उन्होंने एक बात भी नहीं पूछी।

रात्रि में, भोजन के बाद ठाकुर के आसन के पास लेटा रहा। ठाकुर रातभर बरामदे में ही रहते हैं। मच्छरों का बड़ा उपद्रव है। माता ठाकुरानी पंखा लेकर पहले की भाँति ठाकुर को हवा करने लगीं। इसी समय योगजीवन, श्रीधर आदि द्वारा माता ठाकुरानी के आकस्मिक अन्तर्धान के विषय में पूछने पर माता ठाकुरानी ने कहा-“परमहंसजी पाँच महापुरुषों को साथ लेकर आए थे। वे नौ-दस फीट लम्बे थे, सभी के सिर पर पगड़ी थी। वे लोग मुझे यमुना में ले गए। कहे-‘यहाँ स्नान करो।’ मैंने स्नान किया। फिर वे लोग मुझे

कहाँ किस प्रकार ले गए-कुछ पता नहीं। कुछ क्षण बाद देखी-पहाड़ पर हूँ। बहुत ही सुन्दर स्थान है। परमहंसजी ने मेरे रक्षक के रूप में उन पाँच महापुरुषों को नियुक्त कर रखा था। वे लोग सर्वदा मेरे पास-पास रहते थे, मैं इच्छानुसार जहाँ-तहाँ घूम सकती थी। वह स्थान ऐसा है कि किसी प्रकार की दुश्चिन्ता या अशान्ति मन में आती नहीं। बड़ा ही आनन्ददायक स्थान है। वे लोग ही फिर मुझे यहाँ लाकर रख गए।"

प्रश्न-आपने क्या आना चाहा था?

माता ठाकुरानी-वहाँ से क्या आने की इच्छा होती है? फिर भी समय-समय पर कुतु की बात मन में आती थी।

मेरे कौमार्य की आकांक्षा का प्रकाश

१७ जुलाई, गुरुवार। मेरी पित्तशूल की वेदना सम्पूर्ण रूप से ठीक हो गई है। इस रोग के ठीक होने से मुझे थोड़ी चिन्ता होने लगी-शरीर स्वस्थ हो गया है, अब सम्भवतः ठाकुर अधिक दिन मुझे अपने साथ नहीं रखेंगे। गाँव जाने से ही भैया लोग मुझे पढ़ाई-लिखाई करने कहेंगे, वह तो मेरे लिए यम-यातना से और भी कष्टदायक है। पढ़ाई-लिखाई न करने से भी नौकरी तो मुझे करनी ही होगी। उस समय फिर मुझे विवाह करने के लिए सब लोग निश्चय ही विवश करेंगे। इन सब उत्पातों से किस उपाय से रक्षा होगी?

हरिवंश पाठ के बाद आज ठाकुर से कहा-कुछ दिनों से मुझे बड़ी दुश्चिन्ता हो रही है, आपसे सब कहने की इच्छा होती है।

ठाकुर ने कहा-**"दुश्चिन्ता किसलिए? खुलकर कहो।"**

उत्साह पाकर मैं मन खोलकर इस प्रकार कहने लगा-मेरा

शरीर स्वस्थ हो गया है, अब मैं क्या करूँ? गाँव जाने से तो भैया लोग स्कूल में भर्ती कर देंगे परन्तु पढ़ाई-लिखाई बहुत समय से छोड़ दी है, पुनः नये सिरे से पढ़ाई-लिखाई करके परीक्षा पास करने की चेष्टा करना, वह मुझे बड़ा ही कष्टदायक लगता है। उस ओर मेरी रुचि बिल्कुल नहीं है। उसके बाद वे लोग यदि नौकरी जुटा दें, उससे भी मुझे अत्यन्त कष्ट होगा। लिखाई-पढ़ाई कुछ की नहीं, नौकरी करनी होगी तो खूब सामान्य आय की नौकरी ही करनी होगी। नौकरी होने से तो फिर सब मुझे विवाह करने के लिए बाध्य करेंगे। विवाह करने से अपने परिवार का अल्प आय में भरण-पोषण मेरे लिए कठिन होगा; क्रमशः परिवार वृद्धि होने से उस समय क्या करूँगा, समझ नहीं आता। उसके बाद नौकरी करने से सब लोग कुछ-न-कुछ मेरे से आशा करेंगे। मेरी अवस्था के विषय में कोई सोचेगा नहीं, फिर आकांक्षा के अनुसार कुछ न मिलने पर सभी विरक्त होंगे। जो लोग मुझे अभी इतना चाहते हैं-यह नौकरी करने के कारण ही उनके मन में मेरे प्रति असद्भाव की सृष्टि होगी। बहुत समय से मैं निरोग अवस्था में रहा नहीं। यद्यपि अभी मेरा शरीर स्वस्थ है, सामान्य अनियम से फिर पीड़ित हो सकता है। मेरे भीतर की अवस्था जिस प्रकार शोचनीय है, फिर उस स्थिति में विवाह करने पर मैं किसी प्रकार से आत्मरक्षा नहीं कर पाऊँगा। संयम की ओर शिथिल होने से ही मैं कहाँ जाकर गिरूँगा, कह नहीं सकता। तब कदाचार व्यभिचार करने में वह पैसा ही मेरा परम सहायक होगा। हाथ में पैसा पाकर स्वाधीन रहने के कारण मैं किस भयंकर नरक में जा गिरूँगा, नहीं जानता। इस कारण नौकरी और विवाह मेरे लिए नरक का द्वार लगता है। इस विपत्ति से आप मेरी

रक्षा कीजिए। उसके सिवा कोई उपाय नहीं है।

ठाकुर ने कहा-**"तुम्हारे शरीर की अवस्था जैसी है, उसमें विवाह करना तो किसी प्रकार से ठीक नहीं है। शरीर अच्छा स्वस्थ होने से तो नौकरी करके भैया लोगों की सेवा कर सकते हो।"** विवाह नहीं करना होगा, ठाकुर की बात से यह जानकर मुझे सान्त्वना मिली। सोचा-'अब नौकरी भी नहीं करनी पड़ेगी, ठाकुर एक बार ऐसा कह दें, तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँ।' मैं फिर धीरे-धीरे कहने लगा-अविवाहित अवस्था में रहकर नौकरी करना मेरे लिए क्या सुरक्षित होगा? मुझे लगता है, साधारण लोगों की अपेक्षा मुझमें दुष्प्रवृत्ति की उत्तेजना बहुत अधिक है। केवल वैसा अवसर न मिलने के कारण अब तक मैं ठीक हूँ, साधन-भजन के नियम बन्धन में आबद्ध रहने से ही मैं रक्षा पा रहा हूँ। इससे थोड़ा 'अलग' होते ही मेरी क्या दशा होगी, कोई ठीक नहीं। नौकरी करने से ही तो रुपया-पैसा लेकर रहना होगा, मति-गति सभी बहिर्मुख हो जाएँगी, साधना की सब सख्त नियम प्रणाली उस समय फिर कुछ रहेगी नहीं, तब प्रलोभन आने पर उससे रक्षा पाने का सामर्थ्य मुझमें नहीं रहेगा। वरन् हाथ में रुपया-पैसा होने से स्वेच्छाचार में चलने का पथ स्वच्छ हो जाएगा। नियमानुसार आप मुझे बाँधकर न रखें, तो मेरी रक्षा का कोई उपाय नहीं है। नौकरी करने से अधिकांश समय ही आपके संग से वंचित रहूँगा। तब भीतर के समस्त कुभाव सिर उठाएँगे। मेरी रक्षा किस प्रकार होगी? इसलिए लगता है, केवल नौकरी से ही मेरा यह जीवन नरक-ग्रस्त हो जाएगा। मैं क्या करूँ, कुछ समझ में ही नहीं आ रहा है। मेरे भविष्य का मंगल-अमंगल किसमें है, आप ही जानते हैं। जिसमें मेरा यथार्थ मंगल होगा, आप

मुझे बता दीजिए। मैं वही करूँगा। फिर भी मेरी इच्छा होती है, मैं चिरकाल अविवाहित रहूँ, साधन-भजन करूँ। ऐसा होने से नौकरी के लिए मुझसे कोई जिद भी नहीं करेगा; क्योंकि हमारे घर में वैसा कोई अभाव है नहीं। आप यदि कहें, तो फिर मैं आजीवन कुँआरा रहूँगा।

ठाकुर ने कहा-**"केवल कहने से ही क्या तुम कुँआरा रह सकोगे? वैसा क्या होता है? तुम एक काम करो, ब्रह्मचर्य व्रत ले लो। कौमार्य ब्रह्मचर्य के ही अन्तर्गत है। फिर ब्रह्मचर्य में और भी बहुत-कुछ नियम हैं, उसका पालन करके चलना होता है। थोड़ा व्रत के बन्धन में रहे बिना केवल ऐसे ही ठीक नहीं रह पाओगे। कुँआरी अवस्था में रहना है तो ब्रह्मचर्य ग्रहण करो। थोड़ा व्रत के बन्धन में पड़ने से ही निरापद है। तीन दिन तुम इस विषय में अच्छे-से चिन्ता करो। व्रत लेने पर ठीक प्रकार से उसका प्रतिपालन करना पड़ता है, नहीं तो अपराध होता है; ये सब अच्छे-से सोच-विचार करके मुझे बताओ, फिर ब्रह्मचर्य दिया जाएगा।"**

ब्रह्मचर्य ग्रहण के सम्बन्ध में आलोचना: ठाकुर की अनुमति

१९ जुलाई, शनिवार। ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करना है या नहीं, ठाकुर ने मुझसे इस विषय में तीन दिन सोच-विचार करके बतलाने के लिए कहा है। यद्यपि वे मुझे यह व्रत देने के लिए इच्छुक हैं, यह उनकी बात से ही स्पष्ट समझ में आ गया; तथापि उनके आदेशानुसार इसके पक्ष और विपक्ष में बहुत सोच-विचार किया; लेकिन कुछ भी

निश्चित नहीं कर पाया। एकान्त में योगजीवन और श्रीधर को अलग-अलग ले जाकर उनसे इस विषय में पूछा। श्रीधर तो सुनकर आनन्द से उछल पड़े, कहने लगे-भाई, तुम्हारी दीक्षा के दिन इसी उद्देश्य से मैंने अन्तःकरण से प्रार्थना की थी। आज भी मुझे उसका स्मरण है। तुम वीर्यधारण करो, अविवाहित अवस्था में रहकर साधन-भजन में ही जीवन बिताओ, यही आकांक्षा है। व्रत का पालन नहीं कर पाने से वे क्या तुम्हारी इच्छा से ही यह व्रत देंगे? गोसाँईजी यदि तुम्हें यह दुर्लभ व्रत दें, तो बिना संशय के इसी क्षण ग्रहण करो।' योगजीवन ने कहा-'तुम तो बड़े सौभाग्यवान् लगते हो! किसी की इच्छा रहने से ही क्या यह व्रत मिल सकता है? गोसाँईजी तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हैं, वे तुम पर विशेष रूप से कृपा करेंगे। संसार की नाना प्रकार की ज्वाला-यन्त्रणा से सहज में रक्षा हो जाएगी। व्रत की रक्षा कर पाओगे या नहीं, वैसा क्यों सोचते हो? महापुरुष कभी अपात्र को यह व्रत देते नहीं पात्र को पहचानकर कृपा करते हैं। वे यदि दया करके तुमको ब्रह्मचर्य देते हैं, तो अभी जाकर ग्रहण करो।

माता ठाकुरानी को इस विषय में बतलाने पर वे अचानक चौंक उठीं, उन्होंने मुझे डाँटते हुए कहा-'ये क्या? ब्रह्मचर्य कैसे लोगे? ऐसी बुद्धि क्यों हुई? शरीर जितने दिन अस्वस्थ रहेगा, विवाह मत करना। ऐसे ही ब्रह्मचर्य पालन करके रहना। शरीर स्वस्थ होने से रीति के अनुसार सब करना। फिर विवाह करने से क्या धर्म होता नहीं? स्वेच्छा से वह सब कठोरता करने की क्या आवश्यकता है? व्रत लेना इतना सहज नहीं है, बहुत कठिन है। फिर यदि व्रत भंग कर डालोगे, तो अपराध होगा नहीं? अनर्थक यह मति क्यों हुई?'

माता ठाकुरानी की बात से मैं बड़े संशय में पड़ गया, मन भी मानो बिल्कुल निस्तेज हो गया। मैं बड़ी समस्या में पड़कर सोचने लगा-'ब्रह्मचर्य-व्रत लेकर यदि उसका यथारीति प्रतिपालन न कर सका, तो व्रत-भंग करने का दोष लगेगा। उसकी अपेक्षा यह कठोर व्रत न लेना ही अच्छा है, किन्तु यह व्रत ग्रहण न करने से विवाह और नौकरी के अनर्थ से छुटकारा पाने का भी तो कोई उपाय नहीं है। इस दुविधा की स्थिति में, मैं क्या करूँ, विचार करने लगा। फिर सोचा, व्रत ग्रहण करने से मैं ठाकुर के विशेष शासन के अधीन रहूँगा, व्रत भंग करने से मेरे दयालु ठाकुर ही मुझे दण्ड देंगे। दण्ड भोगने से भी वह मेरे ठाकुर का कार्य है, सोचकर बहुत शान्ति मिलेगी, विविध दुर्दशा में पड़कर तीव्र भोग की उत्पत्ति होने से भी उसे उनका ही विधान समझूँगा। यदि नरक में भी डुबा, तो ठाकुर के साथ कम-से-कम भाव का एक योग रहेगा, किन्तु विवाह करने से जो अशान्तिपूर्ण घिनौने संसार की सृष्टि होगी एवं नौकरी करने पर पैसे की गर्मी से जो दुर्नीतिपूर्ण नरक कुण्ड में डुबूँगा, उसे सर्वदा अपनी ही करतूत समझूँगा, उसके साथ ठाकुर का किसी प्रकार का सम्बन्ध है-इसे भाव अथवा कल्पना में भी ला नहीं सकूँगा। अतएव अपने ऐहिक और पारलौकिक स्वार्थ एवं सुविधा की ओर देखकर कार्य करने से लगता है, ब्रह्मचर्य ग्रहण करना मेरे लिए लाभदायक है, किन्तु फिर जब सोचता हूँ, अपने इस तुच्छ जीवन के आराम के लिए परम आराध्य ऋषियों का विशुद्ध आश्रम कलुषित होगा, विशेषकर आजन्म सत्यसंकल्प पुण्यमूर्ति गुरुदेव के परम पावन नाम को मैं कलंकित करूँगा, तब व्रत ग्रहण करने की प्रवृत्ति नहीं होती। अपने भाग्य का भोग मैं भोगूँ। शुद्ध स्फटिक जैसे श्रीश्री

गुरुदेव के अमल शुभ्र रूप में बिन्दुमात्र कालिमा मैं किसी प्रकार से लगा नहीं सकता। अतएव अपने इस हीन एवं असार सामर्थ्य पर निर्भर करके मैं कभी ब्रह्मचर्य ग्रहण नहीं करूँगा।

आज मध्याह्न में भोजन के बाद हरिवंश पाठ करने हेतु ठाकुर के पास जाकर बैठा। ठाकुर ने मुझसे पूछा, **'क्यों? तुमने क्या ठीक किया? ब्रह्मचर्य लोगे?'** मैंने कहा, इस सम्बन्ध में मैं कुछ निश्चय नहीं कर पाऊँगा। आप जैसा कहेंगे, वैसा ही करूँगा। दुर्लभ व्रत अनायास ग्रहण करके प्रकृति के दोष से अन्त में उसका पूरा-पूरा पालन न कर पाने से ऋषियों का पवित्र आश्रम मेरे द्वारा कलुषित होगा। मेरे भीतर की सारी अवस्था तो आप जानते हैं, मुझमें कामभाव अत्यन्त अधिक है। वैसा प्रलोभन आने पर अपनी शक्ति से आत्मरक्षा कर पाने का विश्वास नहीं है। इस प्रकार की अवस्था में पवित्र ब्रह्मचर्य माँगने का साहस कैसे करूँ? व्रत ग्रहण करने की मेरी बहुत इच्छा है; पर उसका पालन करने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है। मुझे दुर्बल समझकर यदि आप दया करके अपनी शक्ति से मेरे ब्रह्मचर्य व्रत की सम्पूर्ण रूप से रक्षा करें, तो फिर मैं उसे ग्रहण कर सकता हूँ, अन्यथा मुझे आवश्यकता नहीं है। यह कहकर मैं रो पड़ा। तब ठाकुर कुछ क्षण मेरी ओर स्नेहपूर्वक एकटक देखते रहे; फिर प्रसन्न होकर मुस्कुराते हुए उन्होंने कहा-"अच्छा, वही होगा। कोई अच्छी तिथि देखकर यह व्रत ग्रहण करना। ब्रह्मचर्य ग्रहण न करने तक किसी से कुछ न कहना। अब पढ़ो।"

मैं तब निश्चिन्त होकर हरिवंश पाठ करने लगा। आज मेरे मन में आनन्द की सीमा नहीं रही। सोचा- 'आज ठाकुर ने मेरा सारा भार अपने ऊपर लेकर मुझे पूर्णतः सुरक्षित कर दिया; आज मेरा उद्धार

हो गया। यह व्रत लेने की बात मैं और किसी से नहीं कहूँगा, निश्चय किया, लेकिन माता ठाकुरानी पूछीं, तो क्या कहूँगा; चिन्ता हो गई। वे मेरे इस व्रत लेने के विरोध में हैं। कुतु का विवाह मुझसे कराने की आकांक्षा उनकी बहुत समय से है। किसी-किसी के सामने यह इच्छा व्यक्त भी की हैं। संकेत द्वारा मुझे भी उस बात से अवगत नहीं कराया, ऐसा नहीं है। क्या पता? लगता है, इसी कारण माताजी मेरे ब्रह्मचर्य ग्रहण के पक्ष में नहीं हैं। जिस दिन इच्छा होगी, ठाकुर मुझे ब्रह्मचर्य देंगे, मैं दिन-मुहूर्त कुछ नहीं जानता। जय गुरुदेव! तुम्हारी इच्छा ही पूर्ण हो।

ठाकुर के साथ महापुरुष का दर्शन

२० जुलाई, रविवार। संध्या के समय ठाकुर के साथ हम लोग दर्शन के लिए। बाहर निकले। ठाकुर अन्यान्य दिनों की अपेक्षा आज तेज गति से चलने लगे। माता ठाकुरानी, कुतु, श्रीधर आदि बहुत पीछे रह गए। मैं ठाकुर का कमण्डलु हाथ में लेकर साथ-साथ दौड़ा। ठाकुर सीधे कालीदह की ओर चलने लगे। सुना है, आज कालीदह में बहुत बड़ा मेला है, हजारों की संख्या में लोग वहाँ उपस्थित हैं। रास्ते में भी लोगों की भीड़ कम नहीं है। मेला-स्थल के निकट से होकर चलते-चलते ठाकुर एकाएक रुक गए एवं एक व्यक्ति की ओर एकटक देखने लगे। यह देखकर मैं विशेष रूप से उस व्यक्ति की ओर लक्ष्य रखने लगा। उनकी वेशभूषा कुछ नहीं, कौपीन के ऊपर केवल एक पुराना मलिन बहिर्वास लपेटे हैं; श्याम वर्ण के हैं, आकृति दीर्घ एवं बहुत ही दुर्बल है; शरीर में धूल अथवा ब्रज की रज लगी है (इससे मानो और भी कुरूप दिख रहा है)। शरीर में

माला या तिलक का नामो-निशान नहीं है, माथे पर लम्बे-लम्बे लाल-भूरे रंग की जटा है, देखने में ठीक जैसे रास्ते के मजदूर के समान है; लेकिन आँखों की असाधारण ज्योति देखकर मैं चकित हो गया। ऐसा लगा जैसे उनके पलक झपकने के साथ-साथ उज्ज्वल नक्षत्र चमक रहे हैं।

ठाकुर को देखते ही वे लगभग सौ गज दूर रहकर विशृंखल भाव से नृत्य करते हुए अग्रसर होने लगे एवं समान गति से ठाकुर के पास से होकर चले गए। एक बार भी 'हरे कृष्ण' नहीं कहे। ठाकुर फिर पीछे देखे बिना ही कालीदह की ओर चलने लगे। आश्चर्य यह है कि मैंने तुरन्त पीछे की ओर देखा, वह व्यक्ति दिखाई नहीं दिया।

मेला देखकर हम लोग संध्या के बाद कुंज में आ गए। रात्रि में ठाकुर के पास बैठा हूँ, ठाकुर ने कहा-**"मेले में आज एक महापुरुष का दर्शन हुआ। ऐसे महात्मा लोकालय में प्रायः आते नहीं, पहाड़ों पर ही रहते हैं।"**

मैंने कहा-मैं तो आपके साथ-साथ ही था, महापुरुष को आपने कहाँ देखा? मुझे क्यों नहीं दिखलाया?

ठाकुर-**अविश्वास से भरा संसार है! इतने बड़े महात्मा पर कैसे विश्वास कर पाएँगे? हिमालय के ऊपर ही रहते हैं, ऐसे महापुरुष लोग अधिकतर नीचे नहीं आते। जब आते हैं, तब इसी प्रकार छद्मवेश में तीर्थ आदि घूमकर चले जाते हैं। पहले भी एक बार इन्हीं महात्मा के साथ मेरी भेंट हुई थी। इस बार केवल क्षणभर प्रकाश फैलाकर देखते-देखते अन्तर्धान हो गए। बड़ा आश्चर्य है! वास्तव में महापुरुष हैं!**

मैंने कहा-इतने लोगों के बीच आप एक व्यक्ति की ओर कुछ

समय तक देखते रहे, मैंने देखा था। उनका कोई वेश नहीं था, ठीक साधारण मजदूर की भाँति; वे ही क्या वह महापुरुष थे?

ठाकुर-**होंगे, वही होंगे। उनके दोनों पैर भूमि से एक फुट ऊपर थे, रज पर वे चरण नहीं रखते। पैर की ओर तो कोई देखता ही नहीं! पैर की ओर देखने से कई बार पकड़ में आ जाते हैं।**

मैं-वे तो रुके नहीं, आपके साथ उन्होंने कोई बात भी नहीं की?

ठाकुर-**जो कुछ कहने का था, सभी कहा। वे लोग क्या हम लोगों के समान केवल मुख से ही बातें करते हैं? संकेत से, दृष्टि से, कई प्रकार से वे लोग सारी बातें कहा करते हैं।**

मैं-संकेत द्वारा एवं दृष्टि से भी क्या बातचीत कर सकते हैं?

ठाकुर-**तो क्या नहीं कर सकते? खूब कर सकते हैं। ऐसे कई जीव हैं, जो मुख से कहते नहीं; संकेत व दृष्टि द्वारा ही सब व्यक्त करते हैं।**

ब्रह्मचर्य ग्रहण का दिन निर्धारित

२१ जुलाई, सोमवार। आज मध्याह्न में ठाकुर ने सदाचार के सम्बन्ध में अनेक उपदेश दिया। ब्राह्मणों का आचार, नित्य-कर्म, संध्या-तर्पणादि कितना उपकारी है, वह समझाकर कहा।

बातों-बातों में मैंने पूछा, वैदिक धर्म का अनुष्ठान करने से आजकल क्या कोई ऋषियों के समान हो सकता है? अभी भी क्या वशिष्ठ, याज्ञवल्क्यादि के जैसा ब्राह्मण होना सम्भव है?

ठाकुर ने कहा-**"वैदिक धर्म का अनुष्ठान करना आजकल बहुत कठिन है, सहज नहीं है। यदि कोई उस प्रकार अनुष्ठान**

कर सकते हैं, तो सम्भव क्यों नहीं होगा? समय अधिक लगता है।"

मैं-वैदिक धर्म का अनुष्ठान करके प्राचीन ऋषियों के जैसा ब्राह्मण होने की इच्छा होती है। आप दया करके मुझे वैसा ब्राह्मण बना दें।

ठाकुर-**वही ठीक है। उसके लिए अब वैदिक ब्रह्मचर्य लेना होता है। ब्रह्मचर्य लेकर ठीक उसी नियम के अनुसार चलो, तब ठीक होगा। अच्छा दिन देखकर बताओ, ब्रह्मचर्य दे दूँगा।**

मैं-दिन देखना मैं जानता नहीं।

ठाकुर-**पंचांग लेकर आओ न।**

मैंने एक पंचांग लाकर ठाकुर के हाथ में दे दिया।

ठाकुर ने देखकर कहा-**२७ जुलाई, श्रावण शुक्ल दशमी का दिन अच्छा है। उसी दिन एकान्त में आकर ब्रह्मचर्य ग्रहण करना। मैं ही उस दिन तुमको समय पर बुला लूँगा। अभी किसी से कुछ कहना मत।** हरिवंश पाठ के बाद ठाकुर ने कहा-**"पाठ का एक नियम रहना अच्छा है। समय निश्चित करके नियमानुसार अच्छी-अच्छी पुस्तकों का पाठ करना।"**

मैं-मेरे लिए कौन-कौन-सी पुस्तकों का पाठ करना उपयुक्त है, वह तो मैं जानता नहीं। आप ही मुझे बतला दीजिए।

ठाकुर-**गीता का नियमानुसार प्रतिदिन पाठ करना; महाभारत का शान्तिपर्व और श्रीमद्भागवत पढ़ना।**

केलिकदम्ब वृक्ष में राधाकृष्ण नाम

संध्या के समय हम सभी ठाकुर के साथ घूमने के लिए बाहर

निकले। श्रीमदनमोहनजी का दर्शन करके कालीदह की ओर गए। प्रबोधानन्द सरस्वती की समाधिवेदी का दर्शन करके यमुना के किनारे जा पहुँचे। वहाँ कालीय सरोवर के समीप एक प्राचीन वृक्ष के नीचे हम लोग बैठ गए। ठाकुर ने कहा-**"यह वही केलिकदम्ब का पेड़ है, बहुत प्राचीन है। कहा जाता है कि इसी वृक्ष के ऊपर खड़े होकर श्रीकृष्ण कालीयदमन के समय यमुना में कूद पड़े थे। इस वृक्ष पर अपने-आप 'राधाकृष्ण', 'राम राम', 'राधेश्याम'- ये सब नाम लिखे हुए हैं। तुम लोगों की इच्छा हो तो देख लो।'**

ठाकुर की यह बात सुनकर हम लोग वृक्ष के नीचे जाकर खोज करने लगे। पेड़ के तने में और ऊपर शाखा-प्रशाखा में वह सब नाम स्पष्ट रूप से छाल के शिराओं द्वारा संस्कृत और बंगला अक्षरों में लिखा हुआ है। दो-एक स्थानों पर दो-चार नाम नहीं, समूचे वृक्ष पर ऐसे असंख्य नाम देखकर आश्चर्य होने लगा। मेरा चित्त बहुत ही सन्देहपूर्ण है, सहज में कुछ भी विश्वास नहीं करता। मैंने ठाकुर से पूछा-दुष्ट पण्डे लोग पैसा कमाने के लोभ में ये सब नाम छुरी से काट-काटकर तो नहीं लिख दिए? ठाकुर ने मेरी बात सुनकर कहा-**"तुम जो कहते हो, वह भी ठीक है। पण्डों ने दो-चार स्थानों में छुरी से काटकर वह सब नाम लिखा है; परन्तु वह देखते ही समझ में आ जाता है। स्वाभाविक नाम था तभी तो पण्डों ने वह लिखा है!** यह कहकर ठाकुर उठकर खड़े हो गए एवं वृक्ष के निकट जाकर उन्होंने चार-पाँच नाम दिखलाते हुए कहा-**"यह देखो, ये सब पण्डे लोगों की करतूत है। पैसा कमाने के लोभ से पण्डों ने इन सब स्वाभाविक वस्तु की नकल करके मूल वस्तु के ऊपर लोगों का सन्देह उत्पन्न कर दिया है। यह सब बड़ा अपराध है।**

कितने देवी-देवता, ऋषि-मुनि, वैष्णव महापुरुष श्रीवृन्दावन की रज पाने के लिए वृक्ष-लता के रूप में विद्यमान हैं; उन्हें इस प्रकार क्षत-विक्षत करना बड़ा अपराध है। थोड़ा ध्यान से देखो, स्वाभाविक और नकल समझ पाओगे।"

मैं-यह सब देखकर स्वाभाविक है या नहीं, कैसे समझेंगे? छुरी से अंकित अक्षर भी तो अधिक दिन तक हरे पेड़ में रहने से स्वाभाविक की भाँति ही दिखेगा।

ठाकुर ने थोड़ा हँसकर कहा-"वह ठीक है। अच्छा, एक काम करो, पेड़ की जो सब मोटी-मोटी छाल सूखकर एक ओर से थोड़ा अलग हो गई है, उसके भीतर देखो। वहाँ तो लिखना सम्भव नहीं है।

मैंने तभी उस पुराने वृक्ष की तीन-चार इंच थोड़ी निकली हुई दो छाल को खींचकर निकाला। तब ठाकुर-**'ओह! ओह! क्या किया?'** कहकर सिहर उठे। मैं फिर छाल न निकालकर बड़े ध्यान से उसके भीतर की ओर देखने लगा। 'राधाकृष्ण', 'राम राम' नाम स्पष्ट रूप से वृक्ष की शिरा-शिरा में लिखा देखकर चकित हो गया। पेड़ के ऊपर शाखा-प्रशाखा में, डाल-डाल में, नीचे की ओर भी वह सब नाम स्पष्ट दिखलाई पड़ा। वैसे स्थानों पर किसी प्रकार से कोई नाम लिख नहीं सकता, यह समझ में आ गया। देवी-देवता या महापुरुष वृक्ष रूप में हैं, अथवा वृक्ष का आश्रय लेकर अवस्थान कर रहे हैं, इन सब बातों पर विश्वास करने का मुझमें सामर्थ्य नहीं है, लेकिन यह वृक्ष जो असाधारण है, उस विषय में अब कोई सन्देह नहीं रहा। ठाकुर के साथ सब लोगों ने वृक्ष की परिक्रमा करके साष्टांग प्रणाम किया। मैंने भी प्रणाम किया।

मनोरम वन की शोभाः हिंसारहित वृन्दावन

कालीदह दर्शन करके हम लोगों ने यमुना के किनारे-किनारे जाकर श्रीवृन्दावन के घने वन में प्रवेश किया। वन की स्वाभाविक शोभा देखकर बड़ा आनन्द आया। छोटे-बड़े सभी पेड़ों को अन्य स्थानों के पेड़-पौधों से अलग प्रकार का देखा। ऊँचे-ऊँचे प्राचीन एवं विशाल सभी वृक्ष सर्वत्र ही सिर झुकाए हुए हैं। उनकी शाखा-प्रशाखा चारों ओर फैलकर क्रमशः भूमि से लग गई हैं। देखकर लगता है, मानो श्रीधाम की रज को स्पर्श करने के मनोभाव से सब वृक्ष शाखारूपी बाहु फैलाकर उसे पाने के लिए प्रयास कर रहे हैं। प्राचीन वृक्षों की सब शाखाएँ-प्रशाखाएँ जो भूमि से लगी हुई हैं, वे भी मानो रज के स्पर्श से कामना पूर्ण हो जाने पर स्थिर समाधि लगा रखे हैं। वृक्षों की इस प्रकार अद्भुत शोभा इस जीवन में मैंने और कहीं देखी नहीं। श्रीवृन्दावन के छोटे-बड़े सभी वृक्ष-लताओं की शाखाएँ-प्रशाखाएँ यहाँ तक कि पत्ते आदि भी नीचे झुके हुए हैं। वृक्षों की ऐसी अपूर्व सृष्टि और सौन्दर्य इस स्थान पर ही देखा। जगह-जगह इन झाड़ियों के भीतर में अच्छी-अच्छी परित्यक्त भजन-कुटिया रिक्त अवस्था में पड़ी हुई दिखी। ठाकुर ने कहा-**"एक समय इन सब भजन-कुटियों में कितने ही वैष्णव महात्माओं ने साधन-भजन किया है। ओह! ये सब स्थान अब चोर-डकैतों का अड्डा हो गया है।"**

ऐसी अच्छी-अच्छी भजन-कुटिया सूनी पड़ी हैं, देखकर बड़ा दुःख हुआ। ठाकुर से पूछा-'इन कुटियों में आजकल कोई साधन-भजन नहीं कर सकता? वैष्णव साधु लोग यहाँ क्यों नहीं रहते?'

ठाकुर ने कहा-"**रहेंगे कैसे? इन स्थानों पर रहने के लिए कंगाल होकर रहना पड़ता। मिट्टी का एक करवा और फटी कथरी लेकर ही सुरक्षित रहा जा सकता है, अन्यथा थोड़ा-कुछ भी रहने से चोर-डकैतों के अत्याचार से बचाव कठिन है।**"

हम लोग ठाकुर के पीछे-पीछे वन के भीतर से होकर चलने लगे। दोनों ओर बहुत-से मोर-मोरनी जगह-जगह घूम रहे हैं, खेल रहे हैं, आनन्द से पंख फैलाकर नाच रहे हैं, मैं देखने लगा। हम लोगों से सात-आठ फीट दूर रहकर भी उन्हें बिल्कुल डर नहीं है; भागने का प्रयास नहीं है, स्फूर्ति का भी विराम नहीं। देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वन के हिरण भी मनुष्य को मानो मनुष्य नहीं समझते; वे निर्भीक होकर स्वेच्छानुसार निःसंकोच मनुष्य के शरीर से स्पर्श करते हुए चलते-फिरते हैं। भगवान् के राज्य में यह अपूर्व दृश्य न देखने से कभी विश्वास नहीं करता। ठाकुर से पूछा-'वन के हिरण, मोर, ये लोग इतने निर्भीक क्यों हैं?

ठाकुर ने कहा-"**श्रीवृन्दावन में हिंसा नहीं है, इसलिए इस स्थान के जीव-जन्तु, पशु-पक्षी मनुष्य के पास भी इतने निर्भय हैं।**"

हम लोग श्रीवृन्दावन के घने वन में पशु-पक्षी, वृक्ष-लता के ये सब भाव और असाधारण अवस्था देखकर संध्या के बाद कुंज में लौटे। श्रीवृन्दावन के इन थानों पर पहुँचने के बाद फिर लोकालय में लौटने की इच्छा नहीं होती। लगता है, जीवन-भर इन सब स्थानों में रहने से भी इसकी नित्य-नवीनता कम नहीं होती।

ब्राह्मण का विशेषत्व

सद्गुरु आश्रित लोगों की गति

२२ जुलाई, मंगलवार। भोजन करके हरिवंश पाठ करने के बाद ठाकुर से पूछा-जाति से जो लोग ब्राह्मण हैं, उन लोगों का क्या कोई बड़ा सत्कर्म था?

ठाकुर–**अवश्य था। कुछ विशेषता थी ही।**

मैं-यदि पुनः संसार में आना पड़ता है, तो किस प्रकार चलने से वर्तमान अवस्था से और नीचे नहीं गिरेंगे? ब्राह्मण लोग किस प्रकार चलने से अगले जन्म में भी ब्राह्मण ही होते हैं?

ठाकुर-**ब्रह्मचर्य ग्रहण करके ठीक उसी प्रकार चलो। ब्रह्मचर्य का ठीक नियमानुसार पालन करके चल पाने से फिर कभी निम्न अवस्था में जाना नहीं पड़ेगा। संध्या, गायत्री, नित्यक्रिया आदि का अनुष्ठान करते रहने से ब्राह्मण अगले जन्म में भी ब्राह्मण होता है।**

मैं-हम लोगों की यह साधना जिन्होंने प्राप्त की है, उन लोगों को भी क्या पुनः जन्म लेना होगा?

यह प्रश्न सुनकर माता ठाकुरानी ने प्रसंगवश कहा-'श्यामाकान्त पण्डितजी ने एक दिन देखा था, साधन-प्राप्त सब लोगों को तीन श्रेणी में रखा गया है, पण्डितजी प्रथम श्रेणी में हैं, द्वितीय श्रेणी में अधिक लोग नहीं हैं, तृतीय श्रेणी में ही अधिक लोग हैं। जो प्रथम श्रेणी में हैं, उन्हें अब संसार में पुनः नहीं आना पड़ेगा, यह उनका अन्तिम जन्म है। द्वितीय श्रेणी के लोगों को और एक बार आना होगा, लेकिन जो लोग तृतीय श्रेणी में हैं, उनको और भी दो बार आना पड़ सकता है।

मैं-अच्छा, जो लोग सद्गुरु प्राप्त करके देह त्यागकर पुनः जब जन्म लेंगे, तब वे लोग क्या फिर सद्गुरु की कृपा प्राप्त करेंगे?

ठाकुर-**उसमें कोई संशय नहीं, वे अवश्य ही सद्गुरु की कृपा प्राप्त करेंगे।**

मैं-सद्गुरु कृपा यदि प्राप्त होती है, तो पुनः संसार में आने में क्या आपत्ति है? कठिनाई भी क्या है?

ठाकुर–**बाबा, संसार की माया में बड़ी आशंका है, संसार में बड़ी ज्वाला है।**

मैं-सद्गुरु का आश्रय प्राप्त होने से एक जन्म में ही क्या मुक्त हुआ जा सकता है?

ठाकुर-**बिना सन्देह के गुरु के आदेश का पालन करने से और गुरु के प्रति निष्ठा उत्पन्न होने से एक जन्म में ही मुक्त हो जाते हैं।**

मैं-गुरु आदेश का पालन तो प्रयास करने से बहुत-कुछ हो सकता है; परन्तु निःसन्देह होना तो प्रयास के ऊपर निर्भर नहीं है। मन में अपने-आप जो संशय आता है, उसे किस प्रकार रोकूँगा?

ठाकुर-**गुरु जो करने के लिए कहते हैं, वही करने से हो गया। सन्देह होता है, होने दो; काम ठीक प्रकार कर लेने से ही सब होगा।**

मैं-जो लोग इस बार साधन पाए हैं, यत्नपूर्वक साधना करने से वे लोग क्या फिर संसार में नहीं आएँगे? इस एक जन्म में ही उनका सब हो जाएगा?

ठाकुर-**तीन जन्म के पहले मुक्ति प्राप्त करना अधिकतर देखा नहीं जाता। तीन जन्म प्रायः लगते हैं।**

मैं-तब तो हम सभी को तीन जन्म लेना होगा?

ठाकुर-**लेना होगा और नहीं भी होगा।**

मैं-जो लोग इस बार सद्गुरु कृपा प्राप्त किए हैं, पहले भी क्या उन्हें सद्गुरु का आश्रय मिला था?

ठाकुर-**किसी-किसी को पहले भी सद्गुरु का आश्रय मिला था; फिर अनेक लोगों को इस बार ही मिला है।**

मैं-मुझे क्या पहले भी सद्गुरु का आश्रय मिला था?

ठाकुर ने मस्तक हिलाते हुए संकेत द्वारा मेरे इस प्रश्न का उत्तर दिया। मैंने फिर पूछा, सद्गुरु आश्रय लेने पर जिन लोगों की तीन जन्म में मुक्ति होगी, उन लोगों की मुक्ति न होने तक क्या सद्गुरु को भी संसार में आना होगा? जन्म लेकर सद्गुरु क्या शिष्य के साथ रहते हैं?

ठाकुर-**सद्गुरु साथ ही रहते हैं। जन्म न लेकर भी कितने प्रकार से, कितने उपायों से शिष्य पर कृपा करते हैं। वृक्ष-लता, मनुष्यादि के भीतर से, नाना विषयों के भीतर से सद्गुरु कृपा करते हैं। फिर वे लोग क्या सब समय आते हैं? चार कल्प के बाद नानक इस बार आए थे।**

मैं-तब तो बड़ी कठिनाई है। प्रत्यक्ष रूप से गुरु न मिले, वह तो बड़ा कष्टदायक है।

ठाकुर-**कष्ट तो है ही। तो भी जो गुरुवाक्य के अनुसार चलते हैं, उनको तो फिर कोई कष्ट नहीं है! अपने भाव के अनुसार मनमाना करने से ही भटकना पड़ता है। जब तक गुरुवाक्य के अनुसार नहीं चलते, उन पर निष्ठा उत्पन्न नहीं होती, तब तक बारम्बार जन्म लेना होगा। सद्गुरु के साथ कोई मायिक सम्बन्ध**

तो है नहीं, शिष्य के कल्याण के लिए ही वे संसार में आते हैं; शिष्य का उपकार करना ही उनके आने का उद्देश्य है। अतएव उनके आदेश के अनुसार न चलने से कैसे होगा? ठीक गुरुवाक्य के अनुसार चलना पड़ता है, ऐसा होने से फिर कोई उत्पात नहीं रहता।

मैं-गुरु कई बार शिष्य की विभिन्न प्रकार से परीक्षा भी लिया करते हैं? ऐसा होने से उनका यथार्थ आदेश कैसे समझा जाएगा?

ठाकुर-**जो सद्गुरु हैं, वे कभी भी शिष्य की परीक्षा नहीं लेते। वैसा क्यों करेंगे? जिससे शिष्य का यथार्थ कल्याण होता है, सद्गुरु वही कह देते हैं। फिर भी जो लोग उस वाक्य को अग्राह्य करके अपने मन के अनुसार चलते हैं, गुरु उनको ही विभिन्न परिस्थितियों में गिराकर ठीक कर लेते हैं।**

पितृ-ऋणादि के सम्बन्ध में उपदेश।

विक्रमपुर निवासी श्री सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय एक शिक्षक थे। गृहस्थी की जो कुछ आवश्यकताएँ हैं, उनकी नौकरी द्वारा ही पूर्ण होती थी। कुछ दिन पहले पिता की मृत्यु का संवाद पाकर सतीश तुरन्त वैरागी के समान घर से निकल पड़े। घर पर विधवा माता के कष्ट की ओर एक बार ताके भी नहीं। पैदल यात्रा करके वे श्रीवृन्दावन पहुँचकर अब ठाकुर के साथ रहते हैं। घर जाकर पिता का श्राद्ध एवं शोक से व्याकुल रोगग्रस्त माता की सेवा करने के लिए ठाकुर ने सतीश से कई बार कहा, लेकिन सतीश कहते हैं, ठाकुर के इस आदेश का पालन किसी प्रकार भी नहीं कर पाएँगे और वैराग्य का ही आश्रय लेकर शेष जीवन बिताएँगे। ठाकुर जब

सतीश से घर जाकर पिता का श्राद्ध करने और संसार-धर्म का पालन करने के लिए कहते हैं, तो तुरन्त उनका माथा गरम हो जाता है, उस समय वे ठाकुर के साथ तर्क-वितर्क करके झंझट करने लगते हैं। ठाकुर आज पुनः सतीश को लक्ष्य करके बड़े तेज स्वर में कहने लगे-**'सतीश का जिससे वास्तविक कल्याण होगा, बारम्बार वह कहा; अब नहीं सुनता तो क्या किया जाए? पितृ-ऋण शोध किए बिना उसका कुछ नहीं होगा; घर जाकर मातृ-सेवा न करने से यह जीवन व्यर्थ चला जाएगा। केवल यह जन्म ही क्यों, इस अपराध के कारण कितने जन्म व्यर्थ चले जाएँगे, कोई ठीक नहीं। शुकदेवादि के समान तीव्र वैराग्य होने से किसी प्रकार रुका नहीं जाता, सच है; लेकिन वैसा हुए बिना तो होगा नहीं! यथार्थ वैराग्य उत्पन्न न होने तक प्रणाली के अनुसार चलना पड़ता है। जिसका जो कर्त्तव्य है, उसकी अवहेलना करके पलायन कर पाना सम्भव नहीं है। हरिमोहन को गृहस्थी करने के लिए कई बार कहा, अभी ये लोग समझ नहीं रहे हैं; लेकिन मैं निश्चित रूप से कहता हूँ, अभी ठीक प्रकार से नहीं चलते हैं, तो इसके बाद सूद सहित कौड़ी-कौड़ी चुकानी होगी। बात नहीं सुनते तो फिर क्या किया जाए? बाद में अच्छे-से समझेंगे।'**

ठाकुर कुछ समय तक उन लोगों से इस प्रकार कहकर चुप हो गए। तब मैंने धीरे-धीरे पूछा-देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण से कैसे मुक्त होते हैं?

ठाकुर ने कहा-**"पुत्रोत्पत्ति द्वारा पितृ-ऋण से; याग-यज्ञ, पूजा, तीर्थ-दर्शन द्वारा देव-ऋण से और ऋषि-प्रणीत शास्त्र-**

ग्रन्थ के अध्ययन आदि के द्वारा ऋषि-ऋण से मुक्त हुआ जाता है; अन्य उपाय नहीं है।"

मैं-श्राद्ध-तर्पणादि करने से क्या पितृ-ऋण से मुक्त नहीं हो सकते? सभी को क्या इसके लिए पुत्रोत्पत्ति करनी होगी?

ठाकुर-**केवल तर्पणादि करने से पितृ-ऋण से मुक्त नहीं हुआ जा सकता। ऋण से मुक्त होने का यही एक उपाय है। फिर जो असमर्थ हैं, उनके लिए अलग प्रकार की व्यवस्था है।**

मैं-किस प्रकार का असमर्थ?

ठाकुर-**जैसे कि कोई बहुत अस्वस्थ है; शारीरिक अस्वस्थता के कारण पुत्रोत्पत्ति में असमर्थ है अथवा अन्य किसी विशेष असुविधा या असमर्थता के कारण वह कार्य सम्पन्न नहीं हुआ, ऐसा भी हुआ करता है। बहुतों को विवाह करने के बाद भी पुत्र की प्राप्ति नहीं होती। इन सब कारणों से नि:सन्तान होने पर ऋणी नहीं होना पड़ता।**

भोजन के बाद इस प्रकार प्रश्नोत्तर में हम लोगों का बहुत समय बीत गया। संध्या के समय ठाकुर के साथ हम लोग चीर (वस्त्र-हरण) घाट गए। यमुना की ओर देखते हुए ठाकुर बहुत समय तक घाट पर बैठे रहे। माता ठाकुरानी, कुतु, भारत पण्डितजी (विक्रमपुर निवासी, गुरुनिष्ठ साधन-परायण गुरुभाई, ढाका नार्मल स्कूल के भूतपूर्व शिक्षक), सतीश, मैं और श्रीधर भी स्थिर बैठकर नाम-जप करने लगे। बाद में सतीश के साथ बातों-बातों में मेरा झगड़ा हो गया। श्रीधर भी उसमें सम्मिलित हो गए। संध्या के बाद हम लोग कुंज में आ गए।

बारदी के मार्ग में श्रीधर का काण्ड

२५ जुलाई, शुक्रवार। संध्या के समय सब गुरुभाई दाऊजी के बरामदे में बैठकर बातचीत करने लगे। बारदी के ब्रह्मचारीजी के अद्भुत योगैश्वर्य और दया की बातें होने लगी। श्रीधर की एक बार विपिन बाबू के साथ बारदी जाते समय जो घटना हुई थी, गुरुभाइयों ने उसे सुनने का आग्रह किया। श्रीधर ने जो कहा, उसे सुनकर आश्चर्यचकित हो गया। घटना को श्रीधर के कथनानुसार लिखकर रख लिया-

हमारे गुरुभाई श्रीविपिनबिहारी राय क्षय (टी.बी.) रोग से पीड़ित होकर प्राण के विषय में भयभीत हो गए। ढाका आकर उन्होंने गुरुदेव की सम्मति से श्रीधर आदि कुछ गुरुभाई को साथ लेकर बारदी जाने लगे। श्रीधर उपदेश दिया 'खाली हाथ साधु-दर्शन नहीं करते। तदनुसार ब्रह्मचारीजी के लिए विविध शाक-सब्जी, फल-फूलादि साथ में ले लिए गए। विपिन बाबू ने ब्रह्मचारीजी को अपने हाथ से देने की आकांक्षा से बाजार का सबसे अच्छा चार फजली आम अधिक मूल्य में क्रय करके उसे अच्छे-से बाँधकर रख लिया। श्रीधर साथ में जाएँगे; उनकी मति-गति का भरोसा नहीं; रास्ते में अवसर पाकर कहीं कुछ आम समाप्त न कर दें, सोचकर विपिन बाबू ने श्रीधर आदि के लिए भी अलग से एक टोकरी आम क्रय करके ले लिया। नौका में सामान आदि रखते समय श्रीधर फजली आम को बड़े ध्यान से देखने लगे। यह देखकर विपिन बाबू ने श्रीधर से कहा-'भाई, दुहाई है तुम्हारी! बड़ी आशा से ये चार आम महापुरुष के लिए ले जा रहा हूँ। उसमें हाथ मत देना। तुम लोगों के

लिए एक टोकरी अच्छे आम अलग लिया हूँ। उसे ही खाना।' श्रीधर ने विस्मय प्रकट करते हुए कहा-'तुम क्या कहते हो, हूँ? ऐसी बात तुम मुझसे कहते हो? ब्रह्मचारीजी के लिए आन्तरिक इच्छा से एक वस्तु ले जा रहे हो, उसे मैं खाऊँगा! इस प्रकार नीच कल्पना तुम्हारे मन में आई कैसे? तुम तो बड़े भयंकर लगते हो!' विपिन बाबू ने लज्जित होकर श्रीधर से क्षमा माँगी। कुछ दूर जाने के बाद नौका एक बाजार के पास पहुँची। सभी गुरुभाई वहाँ उतरे। श्रीधर को भी साथ में ले जाने के लिए विपिन बाबू ने दो-तीन बार प्रयास किया, भजन-मग्न श्रीधर ने मौन रहते हुए हाथ हिलाकर समझाया-'तुम लोग जाओ। मैं नहीं जाऊँगा।' नौका से उतरकर विपिन बाबू ने श्रीधर से एक बार फिर कहा-'भाई, आम खाने की इच्छा हो तो टोकरी में अच्छे-अच्छे आम हैं, लेकर खा लेना। श्रीधर गम्भीर रहे। विपिन बाबू चलते-चलते भी बार-बार पीछे की ओर देखते हुए कुछ दूरी पर स्थित बाजार में प्रवेश किए। उनके अदृश्य होने पर श्रीधर व्यग्रतापूर्वक आसन से उठकर चारों ओर चंचल दृष्टि से देखने लगे। इसी समय पाँच-सात वर्ष के चार उलंग बालक एक भिखारिन के साथ नौका के समीप आए। श्रीधर ने आग्रह के साथ उनसे पूछा-'क्या चाहते हो?' दुःखी बालकों ने कहा-'बाबा, कुछ खाने को दोगे?' श्रीधर ने तुरन्त उठकर वही बड़े-बड़े चारों फजली आम निकाल लिया, फिर उसे उन बालकों के हाथ में देकर धमकाते हुए कहा-'जाओ, शीघ्र चले जाओ, नहीं तो आम फिर छीन लूँगा।' श्रीधर की धमकी से डरकर बालकों ने दौड़ लगा दी। तब श्रीधर पुनः आसन पर स्थिर होकर बैठ गए एवं बड़े उत्साह के साथ भावमग्न होकर भजन गाने लगे। संयोगवश, गुरुभाइयों के साथ

विपिन बाबू जिस पथ से आ रहे थे, उसी पथ से वे बालक हाथ में आम लेकर जा रहे थे। बालकों के हाथ में बड़े-बड़े फजली आम देखकर विपिन बाबू आँखें फैल गई। उन्होंने जीभ निकालकर सिर पर हाथ रखते हुए गुरुभाइयों से कहा-'देख लिया! पगले का काम देख लिया!! पगले ने सर्वनाश कर दिया। इतना समझाकर जो मना किया था, पगला वही किया-वही चारों आम दे दिया।' उस समय विपिन बाबू ने फिर आठ आना देकर बालकों से आम पुनः ले लिया, फिर बड़ा क्रोध व्यक्त करते हुए नौका पर पहुँचे। वे श्रीधर को खूब गाली देने लगे। तब श्रीधर और भी उच्च स्वर में गाने लगे। कुछ क्षण बाद श्रीधर ने भजन समाप्त करके, विपिन बाबू के कुछ कहने के पहले ही उनको खूब धमकाते हुए कहा-'क्यों, ये कैसी बात है? भजन के समय गड़बड़ कर रहे थे? तुम्हें अक्ल नहीं है? विपिन बाबू ने धमक खाकर थोड़ा दबने पर भी गुरुभाइयों का बल पाकर कहा-'तुम्हारी तो खूब अक्ल है, तुमने क्या सोचकर मेरे चारों आम दूसरों को दे दिया?' श्रीधर ने कहा-'दे दिया तो क्या हुआ? वापस मिल तो गया? हाथ बदल होने से दोष हो जाता है?' विपिन बाबू ने कहा-'ब्रह्मचारीजी के लिए आम रखा था, तुमने किसके हुक्म से दूसरों को दिया?' श्रीधर ने कहा-'ब्रह्मचारीजी के हुक्म से दिया। जाओ, उनसे पूछ लो? इस प्रकार झगड़े के बाद दोनों ही चुपचाप बैठे रहे। इधर संध्या हो गई। प्रदीप जलाने के लिए बाती नहीं थी। 'बाती बनाने के लिए थोड़ा-सा फटा कपड़ा कहाँ मिलेगा'-सोचकर सभी बेचैन हो गए। श्रीधर के झोले में फटे-पुराने कपड़ों के बहुत-से टुकड़े हैं, सभी जानते हैं। उसे श्रीधर सहज में निकालेंगे नहीं, फटे-पुराने कपड़ों की झोली में सिर रखकर वे शयन

करते हैं। विपिन बाबू ने अन्धकार में अवसर देखकर, गुरुभाइयों के संकेत से, बाती बनाने के लिए श्रीधर के झोले से जैसे ही कपड़े का एक टुकड़ा निकाला, वैसे ही श्रीधर भयंकर चीत्कार करते हुए विपिन बाबू के सामने आ गए एवं कुछ कहे बिना सीधे उनकी जाँघ के बीच में दाँत से काटने लगे। विपिन बाबू 'बाप रे, माँ रे, खून कर दिया रे' कहते हुए चिल्लाने लगे। गुरुभाई लोग भी जब उन्हें खींचतान करके नहीं छुड़ा पाए, तब श्रीधर की पीठ पर लगातार घूँसा मारने लगे। उस पर भी श्रीधर ने परवाह नहीं की। तब वे लोग नौका की पटिया निकालकर श्रीधर की पीठ पर धड़ाधड़ मारने लगे। श्रीधर सिर हिलाते हुए पूरी शक्ति के साथ प्राणपण से काटने लगे। क्षत-विक्षत जाँघ से खून निकलने लगा। तब कोई उपाय न देखकर माझियों ने कहा-'आप सब लोग भी उसको दाँत से काटो, वह छोड़ देगा।' माझियों की बात मानकर दो-तीन लोग श्रीधर की पीठ पर दाँत से काटने लगे। तब श्रीधर काटना छोड़कर अचानक उछल पड़े, 'जय निताई, जय निताई' कहकर दो-एक बार उछलकर, चलती नौका से नदी में कूद पड़े। श्रीधर तैरना नहीं जानते, यह सभी जानते थे। अतः जो जिस अवस्था में थे, तुरन्त नदी में कूद पड़े। गोते लगा-लगाकर सब लोग श्रीधर को खींच-तानकर नौका पर चढ़ाए। इस प्रकार सारी रात उद्वेग में व्यतीत हुई। धीरे-धीरे नौका बारदी के बाजार में पहुँची।

प्रातःकाल सभी फल-मिठाई, सीधा की सामग्री हाथ में लेकर ब्रह्मचारीजी के दर्शन के लिए चल पड़े। श्रीधर के पास कुछ भी नहीं है; ब्रह्मचारीजी के लिए क्या लेकर जाएँगे, यह सोचकर श्रीधर दुःखी मन से चुपचाप बैठे रहे। अचानक नौका से उछलते हुए नीचे

उतरकर नहर से पत्तेवाली घास, करेमु शाक, लता-पत्ता एकत्र करके नहर के किनारे रखने लगे। ढेर हो जाने पर अपने बहिर्वास द्वारा उसे बाँध लिए और केवल लँगोटी पहने हुए ही घास के उस विशाल बोझे को श्रीधर अपने सिर पर उठाकर ब्रह्मचारीजी के आश्रम की ओर सीधे दौड़ पड़े। इधर विपिन बाबू आदि को आश्रम पहुँचने पर ब्रह्मचारीजी के दर्शन नहीं हुए। थोड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ी। यथासमय ब्रह्मचारीजी ने सब लोगों को बुलाया। प्रणाम करके वे लोग जैसे ही बैठे, ब्रह्मचारीजी ने उनसे पूछा-'अरे, वह श्रीधर कहाँ है? तुम लोगों के साथ नहीं आया?' गुरुभाइयों ने कहा-'वह नौका पर ही बैठा है। ब्रह्मचारीजी ने कहा-'वह आया क्यों नहीं? उसको क्या तुम लोगों ने मारा है?' विपिन बाबू ने कहा-'महाराज, उसके कारण बहुत कष्ट हुआ। उसने रास्तेभर बड़ा उपद्रव किया। मेरी जाँघ में काटकर घाव कर दिया। ब्रह्मचारीजी ने आम देखकर कहा-'तुम लोगों को यह आम फिर कहाँ से मिला?' इसी समय सिर पर बोझा लेकर श्रीधर हाँफते-हाँफते आश्रम में आए। श्रीधर को देखते ही ब्रह्मचारीजी आसन से उठकर थोड़ा आगे बढ़े, श्रीधर ने वैसे ही घास का बोझा उनके सामने धम् से पटककर 'इसे खाओ', 'इसे खाओ' कहते हुए उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। ब्रह्मचारीजी एक बार हँसकर बड़ी प्रसन्नतापूर्वक घास की प्रशंसा करने लगे।

श्रीधर का कार्य देखकर सभी हँस पड़े। एकजन ने श्रीधर से पूछा-'ये सब क्या ब्रह्मचारीजी को खाने के लिए दिया है?' श्रीधर ने सिर उठाकर तेज स्वर में कहा-शास्त्र जानते हो? 'गोब्राह्मण हिताय च'। उन्होंने पूछा-'इसका अर्थ क्या हुआ?' श्रीधर ने कहा-'अरे पहले गाय का; फिर बामुन बेटों का; उसके बाद तुम्हारा,

हमारा, जगत् का। 'नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च। जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः।।' इसलिए पहले गाय को जो प्रिय है, वही तो ब्राह्मणों को भी सब लोगों की अपेक्षा प्रिय है।' श्रीधर की बात सुनकर सभी खूब हँसने लगे। विपिन बाबू ने तब अपने रोग का परिचय देकर रोग से मुक्ति के लिए प्रार्थना की। ब्रह्मचारीजी ने कहा-'श्रीधर ने तेरी जाँघ में काटा है न? उससे खून निकला तो?' विपिन बाबू ने कहा-'जी हाँ, बुरी तरह से काट खाया।' ब्रह्मचारीजी ने कहा-उससे ही तेरा रोग दूर हो जाएगा। श्रीधर क्यों काटा, उससे एक बार पूछा नहीं? तब श्रीधर सबके पूछने पर बहुत ही उत्साह के साथ कहने लगे-'अरे भाई, तुम लोग तो सब बाजार चले गए। मैं अचानक कीर्तन की ध्वनि सुनकर चौंक उठा। नौका से उतरकर चारों ओर देखा, संकीर्तनादि कुछ नहीं है। ब्रह्मचारीजी चार ऋषि बालकों को लेकर नौका के निकट पहुँचे। कहने लगे-'अरे, मेरे लिए जो चार आम रखे हैं, उसे लाकर इन लोगों को दे दे।' मैंने तुरन्त चारों आम दे दिया। सच है या झूठ, ब्रह्मचारीजी से पूछ लो। इसी के लिए तो तुम लोगों ने मुझे कितनी गालियाँ दी! तुम लोग की बातों पर कान न देकर मैं नाम-जप करने लगा। देखा, आकाश मार्ग से एक संकीर्तन का दल आ रहा है! ब्रह्मचारीजी ने संकीर्तन दल से आगे आकर कहा-'अरे, उसकी जाँघ में काटकर रक्त निकाल दे, उससे उसका रोग दूर हो जाएगा। मैंने सोचा, अकारण कैसे काटूँ? इस समय विपिन बाबू की ओर देखा, वे मेरे झोले में से एक फटा कपड़ा खींचकर निकाल रहे हैं। तुरन्त मेरा माथा गरम हो गया। नेपाल, कामाख्या, चन्द्रनाथ और पश्चिम के विभिन्न स्थानों में घूम-घूमकर जिन सब महात्मा-महापुरुषों का दर्शन मिला, प्रत्येक का

व्यवहृत बहिर्वास, लंगोटी, आसन आदि का कुछ-न-कुछ अंश संग्रह करके अपने झोले में रखा हूँ, वह सब मेरे हृदय का रक्त है। मैला फटा-पुराना चीथड़ा समझकर विपिन बाबू एक टुकड़ा जब निकाल रहे थे, मैंने तुरन्त उनकी जाँघ में काट खाया। उसके बाद तुम लोग घूँसा मारो या लाठी मारो, रक्त न निकलने तक तो छोड़ूँगा नहीं। रक्त निकलते ही मैं उछल पड़ा। सामने देखा, संकीर्तन का कोलाहल। महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु एवं अद्वैत प्रभु नृत्य कर रहे हैं और गोसाँईजी संकीर्तन के आगे 'हरिबोल, हरिबोल' कहते हुए जा रहे हैं। मैं तुरन्त उस संकीर्तन में कूद पड़ा। फिर देखा डूब रहा हूँ। तब तुम लोगों ने खींच-तानकर मुझे नौका पर चढ़ाया। श्रीधर के मुख से यह कहानी सुनकर उस समय सभी लोग आश्चर्यचकित हो गए। धन्य है श्रीधर!

ब्रह्मचर्य दीक्षा

२७ जुलाई, रविवार, शुक्ल दशमी तिथि। आज ब्रह्मकुण्ड में स्नान का महायोग है। सुना है, हजारों की संख्या में लोग स्नान करने के लिए वहाँ सम्मिलित हुए हैं। हमारे कुंज के भी सब लोग आज वहाँ गए हैं। मैं अन्य दिनों की भाँति प्रातः शौच के बाद यमुना में स्नान करने के लिए जाने लगा, ठाकुर ने मुझे बुलाकर कहा-**"तुम जाकर केशीघाट पर मुण्डन करवाकर ब्रह्मकुण्ड में स्नान करके शीघ्र चले आओ। एक चोटी रखना।"**

मैं गुरुदेव के कहे अनुसार यमुना के किनारे केशीघाट पहुँचा। एक शिखा रखकर पूरा मुण्डन करा लिया। ब्रह्मकुण्ड में जाकर देखा, असंख्य लोगों के समागम से स्थान आज परिपूर्ण है। पानी

भाँग के घोल के जैसा बहुत मटमैला होने पर भी स्नानार्थियों का भक्तिभाव देखकर मेरी भी स्नान करने की प्रबल इच्छा जागी। जल में उतरकर स्नान के बाद तर्पण करके शीघ्र ही कुंज में आ गया। गुरुदेव के श्रीचरणों में प्रणाम करके अपने आसन पर बैठ गया। इसी समय ठाकुर ने मुझको पुकारकर कहा-**"कुलदा मेरे आसन-गृह में आओ। अभी तुमको ब्रह्मचर्य दूँगा। बैठने के लिए एक आसन ले आना।"** मैंने आसन लेकर ठाकुर के कमरे में प्रवेश करके देखा, ठाकुर पहले से ही अपने आसन पर बैठे हैं। मुझसे कहा-**"पूर्व की ओर मुख करके मेरे सामने बैठो।"** मैं कम्बल का आसन बिछाकर ठाकुर के सामने स्थिर बैठ गया। उस समय मुझे रोना आ गया, मैं सिसकने लगा। सोचा, गुरुदेव आज मुझे ऋषि-मुनियों के पवित्र ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा दे रहे हैं। ठाकुर कितने दयालु हैं! ठाकुर कुछ क्षण स्थिर रहकर धीरे-धीरे मुझसे कहने लगे-**'यह नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत १२ वर्ष, तीन वर्ष अथवा एक वर्ष के लिए दिया जाता है। अभी तुम्हें एक वर्ष के लिए ही व्रत दे रहा हूँ। यदि नियमपूर्वक ठीक प्रकार से यह एक वर्ष चल सको, तब फिर से दिया जाएगा। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य में निष्ठा मूल है। निष्ठा खूब होनी चाहिए। अपनी निष्ठा का किसी भी प्रकार से त्याग नहीं करना। जो नियम कह रहा हूँ, निष्ठा के साथ उन सबका पालन करके चलना।**

१- प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में उठकर साधना करना। फिर प्रातःक्रिया समाप्त करके पवित्रता के साथ आसन पर बैठना। गायत्री-जप करना। उसके बाद गीता का कम-से-कम एक अध्याय पाठ करना। स्नान के बाद गायत्री-जप करके तर्पणादि करना।

२- स्वपाक आहार करना अथवा अच्छे ब्राह्मण के द्वारा बना अन्न भी आहार कर सकते हो। आहार में किसी प्रकार का अनाचार न हो। आहार का एक नियम रखना। सीमित आहार करना, बहुत अधिक या कम न हो। जिससे कामभाव उत्तेजित होता है, ऐसी वस्तु नहीं खाना। अधिक तीखा, खट्टा और मीठा त्याग करना। मधु और घी से उत्तेजना बढ़ती है; ये सब वस्तुएँ भी अधिक नहीं खाना। आहार के सम्बन्ध में खूब सावधान रहना। आहार अच्छी शुद्धता के साथ करना।

३- आहार के बाद कुछ क्षण बैठकर विश्राम करना। फिर भागवत, महाभारत, रामायण आदि का कुछ समय पाठ करना। पाठ के बाद निर्जन में बैठकर ध्यान करना। संध्या के समय इच्छा होने पर थोड़ा टहल सकते हो।

४- संध्या के समय गायत्री-जप करना। फिर साधनादि जैसा किया करते हो, करना। खूब भूख लगने पर थोड़ा-कुछ जलपान करना। दोनों समय भात नहीं खाना।

५- अत्यन्त साधारण वस्त्र पहनना। साधारण शैय्या पर सोना। वस्त्र और बिछौना अपना निर्दिष्ट रखना। दिन के समय सोना नहीं। समय-समय पर साधु-संग करना, उनके उपदेश को श्रद्धापूर्वक सुनना। अपनी साधना के प्रति विशेष रूप से निष्ठा रखना।

६- किसी की निन्दा नहीं करना; किसी की निन्दा नहीं सुनना; जिस स्थान पर निन्दा होती है, उस स्थान का विषवत् त्याग कर देना।

७- किसी प्रकार का साम्प्रदायिक भाव नहीं रखना। जो

जिस भाव से साधना करते हैं, उनको उसी भाव की साधना करने के लिए प्रोत्साहित करना।

८- किसी के मन में कष्ट नहीं देना; सभी को सन्तुष्ट रखने का प्रयास करना। जितना तुमसे सम्भव हो, अन्य लोगों की सेवा करना। मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-लतादि की यथासाध्य सेवा करना। स्वयं को अन्य लोगों से छोटा समझना। सभी को सम्मान देना। सभी कार्य विचारपूर्वक करना। प्रत्येक कार्य में सर्वदा विचार करके चलने से कोई विघ्न नहीं होता।

९- सर्वदा सत्य कथन कहना; सत्य व्यवहार करना। असत्य कल्पना को मन में भी नहीं आने देना। बातें कम करना।

१०- युवती स्त्रियों को स्पर्श नहीं करना। देव-दर्शन में, भीड़-भाड़, रास्ते आदि में या अनजाने में स्पर्श होने से वह स्पर्श के अन्तर्गत गण्य नहीं होगा। अत्यन्त गुप्त रूप से अपना काम करते जाना।

११- सर्वदा खूब पवित्रता से रहना। पवित्र स्थान में पवित्र आसन पर बैठना।।

"इन सब नियमों का पालन करके चल सकने पर आगामी वर्ष और भी नियम बतला दिए जाएँगे।"

इन सब नियमों का उपदेश देकर ठाकुर मेरी ओर देखते हुए खूब प्राणायाम करने लगे। मुझे भी साथ-साथ प्राणायाम करने को कहा, मैं भी वह करने लगा। फिर मुझे दुर्लभ ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा दी। इस समय आनन्द से मुझे नृत्य करने की इच्छा हुई। भाव में अभिभूत होकर बहुत समय तक बैठा रहा। फिर ठाकुर ने मुझसे उठने के लिए कहा।

मैं जैसे ही ठाकुर के कमरे से बाहर निकला, तभी सब लोग कुंज में आ गए। मेरे व्रत के विषय में कोई भी कुछ नहीं जान सका।

विचारपूर्वक दान का उपदेश

संध्या के समय हम सब लोग ठाकुर के साथ श्रीश्री गोविन्दजी के दर्शन के लिए बाहर निकले। मन्दिर के निकट एक वृद्ध को देखकर ठाकुर रुक गए। वृद्ध ज्वर से अत्यन्त पीड़ित एवं कंगाल वेश में थे। ठाकुर के सामने आकर संकेत द्वारा अपने मन का भाव व्यक्त करने लगे। हम लोगों को उनका संकेत कुछ भी समझ नहीं आया। इस समय मैंने ठाकुर से पूछा-वृद्ध क्या कह रहा है? ठाकुर ने कहा-**“तुम्हारा ओढ़ा हुआ कम्बल चाहता है।”** मैं-तो दे दूँ? ठाकुर ने कहा-**“तुम्हारी इच्छा हो तो दे सकते हो।”** तब मैं वृद्ध को कम्बल देकर, खुले बदन ठाकुर के पीछे-पीछे चलने लगा। ठाकुर ने मुझसे पूछा-**“तुम्हारे पास ओढ़ने का अन्य कोई कपड़ा नहीं है?”** मैं केवल एक फटी धोती है, दूसरा कुछ नहीं है। प्रातःकाल अपनी गरम ऊनी चादर एक भिखारी को दे दी। सुनकर ठाकुर ने कहा-**“जिस वस्तु के अभाव से अत्यन्त क्लेश होता है, वैसी नितान्त आवश्यक वस्तु छोड़नी नहीं चाहिए। उसके अभाव से कष्ट होने पर यदि एक बार भी दान के लिए अनुताप होता है, तो सब मिट्टी में मिल जाता है। इसलिए सभी कार्य विचारपूर्वक करना चाहिए। ठीक है, भगवान् तुम्हारे लिए जुगाड़ कर रखे हैं।”**

कुंज में आकर ठाकुर ने माता ठाकुरानी से कहा-**“तुम्हारे आसन का कम्बल, बिछाकर सोने हेतु कुलदा को दे दो।”** माता

ठाकुरानी ने तुरन्त मुझे अपना कम्बल लाकर दे दिया। माता ठाकुरानी के बहुत दिनों के साधन-भजन का कम्बल-आसन पाकर अपने को बड़ा भाग्यवान् समझा। मन में बड़ी प्रसन्नता हुई।

आसन का ग्रन्थ

२८ जुलाई, सोमवार। भोर में यथारीति प्रातःक्रिया करने के पश्चात् जाकर यमुना में स्नान और तर्पण किया। कुछ दिनों से ब्रह्मसमाजी मित्र गुरुभाई सतीशचन्द्र भी मेरे साथ तर्पण कर रहे हैं। तर्पण करने से सम्भवतः उनको अपना शरीर हल्का अनुभव होता है, मन में भी वे एक अपूर्व आनन्द का अनुभव करते हैं। उनकी यह बात सुनने के बाद से मेरी भी तर्पण के प्रति श्रद्धा बढ़ गई। स्नान के बाद अपने आसन पर बैठकर मैंने कुछ समय तक साधना की। मेरे लिए प्रतिदिन एक अध्याय गीता-पाठ करने का आदेश हुआ है, परन्तु मेरे पास गीता नहीं है। मैं साहस करके ठाकुर के आसन-गृह में गया और उनकी गीता लेकर आ गया। फिर पाठ करने के बाद पुनः उसे यथास्थान पर रख दिया। ठाकुर ने मुझसे कहा-**"आसन का ग्रन्थ कभी स्थानान्तरित नहीं करते, हानि होती है।"**

मैं-आपने मुझसे गीता-पाठ करने को कहा है, मेरे पास गीता नहीं है।

ठाकुर-**वही गीता तुम नि:संकोच पढ़ो। अन्य कमरे में न ले जाना ही अच्छा है। मेरे आसन-गृह में ही बैठकर पढ़ सकते हो।**

मैं-आसन से ग्रन्थ उठाने से भी तो स्थानान्तरित करना होगा?

ठाकुर-**उससे कोई दोष नहीं होता। आसन-गृह में रहने से ही हो गया।**

दृष्टि-साधना

अपराह्न में कुछ समय दृष्टि-साधना करके ठाकुर के पास जाकर पूछा-बहुत दिनों से क्षिति में दृष्टि-साधना करता आ रहा हूँ। अब अन्य भूत में अभ्यास करूँ? ठाकुर ने कहा-**"नहीं, अभी यही करो। और भी पक्का होने दो। एक का ठीक अभ्यास हो जाने पर ही फिर अन्य का करना अच्छा है। एक बिन्दु पर ही दृष्टि को पूर्णतः स्थिर करना चाहिए।"**

मैं-दृष्टि-साधना से क्या उपकार होता है? ठाकुर ने कहा-**"आँखें स्वच्छ होती हैं; दृष्टि-शक्ति बढ़ती है। बहुत दूर की वस्तु और सूक्ष्म विषय सभी स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। और भी जो-जो होते हैं, दृष्टि-साधना करते-करते ही वह समझोगे।"**

'करते-करते ही वह समझोगे'-ठाकुर के इस प्रकार कहने पर मेरा फिर कोई प्रश्न करने का साहस नहीं हुआ। सोचा, 'इस कथन के द्वारा ही उन्होंने मुझे चुप रहने का संकेत किया है। मैं चुपचाप बैठकर नाम-जप करने लगा।

श्रीविग्रह दर्शन का उपदेश

कुछ समय बाद ठाकुर ने अपने-आप कहा**-"श्रीवृन्दावन में जितने दिन रहोगे, प्रतिदिन मन्दिर जाकर ठाकुरजी का दर्शन करो, उपकार होगा।"** मैंने कहा, ठाकुरजी तो पत्थर की मूर्ति है, वह दर्शन करने से क्या उपकार होगा? आपके साथ तो कितने दिन दर्शन किया ही हूँ। क्या उपकार हुआ, वह तो कुछ समझ ही नहीं आया।

ठाकुर-**जिन स्थानों पर भगवान् के उद्देश्य से हजारों-हजारों**

लोग श्रद्धा-भक्ति अर्पण करते हैं, वहाँ उन सब भावों का एक योग रहता है। उन स्थानों पर जाने से भीतर के सब धार्मिक भाव जागृत हो जाते हैं। यह क्या कम उपकार है? फिर इस श्रीवृन्दावन के सब विग्रह साधारण प्रस्तर-मूर्ति नहीं हैं। 'भक्तमाल' पढ़े हो? एक बार पढ़ो।

मैंने पूछा-क्या श्रीवृन्दावन के सब ठाकुरजी बात करते हैं, हाथ-पैर हिलाते हैं? सभी कहते हैं, यहाँ के सब ठाकुरजी जागृत हैं। किस प्रकार जागृत हैं?

ठाकुर ने कहा-**"जिनके उस प्रकार नेत्र-कर्ण हैं, वे लोग ठाकुरजी का हाथ-पैर हिलाना देखते हैं, वाणी भी सुनते हैं। यह सब कहने से साधारण लोग कैसे विश्वास कर पाएँगे?"**

स्वप्न: गंगा के भँवर में डूबना

२९ जुलाई, मंगलवार। माता ठाकुरानी के आने से ठाकुर के लिए चाय की अब अच्छी व्यवस्था हो गई है। श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव के कृपापात्र श्री राखाल बाबू (ब्रह्मानन्द स्वामी), प्रबोधचन्द्र एवं दक्ष बाबू नित्य चाय पीने हमारे कुंज में आते हैं। श्री रामदास काठिया बाबा के आश्रित श्री अभय बाबू भी प्रतिदिन आया करते हैं। सब लोगों के चाय पी लेने के बाद श्रीधर श्रीचैतन्यचरितामृत का पाठ करते हैं। उसके बाद ठाकुर के आदेशानुसार अभय बाबू 'इमिटेशन ऑफ क्राइस्ट' का भी पाठ और बंगानुवाद करके सब लोगों को सुनाया करते हैं। ठाकुर ने आज इस पुस्तक की बहुत प्रशंसा करके कहा-**'इमिटेशन ऑफ क्राइस्ट' नित्य पाठ के उपयुक्त है। ग्रन्थ को जिन्होंने लिखा है, वे एक महापुरूष हैं।**

सब चले गए, गत रात्रि के एक स्वप्न का वृत्तान्त ठाकुर को बतलाया। स्वप्न यह है-निर्मल, शीतल गंगा के जल में गले तक उतरकर आनन्द से स्नान कर रहा हूँ, किसी ओर भी मेरी दृष्टि नहीं थी। अचानक प्रबल धारा में गिर पड़ा। धारा मुझे बहाकर ले जाने लगी। बहुत अच्छा तैरना जानता हूँ। अतएव उस ओर मैंने ध्यान नहीं दिया। फिर जब देखा, किनारे से बहुत दूर आ गया हूँ, तब किनारे जाने के लिए प्राणपण से चेष्टा करने लगा, लेकिन धारा के प्रतिकूल तैरने से मेरा सर्वांग अवसन्न हो गया। तब बहुत थक जाने के कारण बाध्य होकर हाथ-पैर चलाना छोड़ दिया। कुछ क्षण के बाद देखा, बहुत भयंकर स्थान पर आ गया हूँ। तरंगरहित बहुत विस्तृत मण्डलाकार भँवर ‘सन्-सन्’ शब्द के साथ घूमते-घूमते क्रमशः नीचे की ओर एक अज्ञात केन्द्र के गर्त में गिर रहा है। मैं उस भँवर में जल के साथ-साथ धीरे-धीरे पाताल की ओर जाने लगा। चारों ओर देखने लगा, किनारा कहीं नहीं है। तब सोचा, ‘हाय, यह क्या हुआ? परम पवित्र साक्षात् ब्रह्मरूपिणी-गंगा के बीच था, उन्हीं के भँवर में पड़कर अब रसातल में जा रहा हूँ। इसी समय अचानक मँझले भैया गंगा के किनारे आए एवं मेरे जीवन को संकट में देखकर उन्मत्त के समान हित-अहित का विचार किए बिना तुरन्त गंगा में कूद पड़े एवं शीघ्र तैरते हुए मेरे पास आ गए। फिर बायें हाथ से मुझे पकड़कर अपनी छाती से लगाया और दाहिने हाथ से पूरी शक्ति लगाकर तैरते हुए किनारे पहुँचे। किनारे पहुँचते ही हाँफते-हाँफते मैं जाग उठा।

ठाकुर ने स्वप्न का विवरण सुनकर कहा-**“जो स्वप्न देखोगे, उसे लिखकर रखो। कई बार स्वप्न में भविष्य का आभास**

मिलता है।”

स्वप्न की बात होते-होते मैंने मँझले भैया की बात उठाई। ठाकुर से पूछाक्या मँझले भैया ने दीक्षा ली है?

ठाकुर-**दीक्षा लिए रहने पर भेंट होने से समझ जाओगे।**

मैं-किस प्रकार जानूँगा? वे क्या मुझे बतलाएँगे?

ठाकुर-**उनके न बतलाने पर भी तुम समझ जाओगे। यह शक्ति जिन्हें मिल जाती है, फिर वे क्या अपने पास गुप्त रख सकते हैं?**

मैं-आपकी बातों से ही समझ आता है, उन्हें दीक्षा मिल गई है। फिर स्पष्ट रूप से क्यों नहीं कहते?

ठाकुर ने बच्चों के समान थोड़ा हँसते-हँसते कहा-**“वह कैसे कहूँगा? उन्होंने मुझे मना जो किया है।”**

ठाकुर की यह बात सुनकर सभी खूब हँसने लगे।

श्रीवृन्दावन की रज

श्रीवृन्दावन आकर देख रहा हूँ, गुरुभाइयों में उच्छिष्ठ का विचार नहीं है, साफ-सुथरा रहने की भी किसी की मति नहीं होती। भोजन के बाद सभी जूठा हाथ माटी में मलते हैं, उच्छिष्ट मुख में भी माटी मल लेते हैं। पानी से उनका हाथ धुलाने पर वे मुझे दबाकर पकड़ लेते हैं और बलपूर्वक मेरे हाथ-मुँह में धूल-माटी रगड़कर कहते, ‘अब पवित्र हुआ।’ स्नान करके आते समय भी मेरे स्वच्छ शरीर में कीचड़, धूल-माटी डाल देते। मेरे क्रोध करने पर अथवा विरक्त होने पर रास्ते के दोनों ओर से वैष्णव बाबाजी लोग मुझे शान्त होने का उपदेश देकर कहते-‘क्रोध मत कीजिए! आनन्द

कीजिए। उससे राधारानी की कृपा होती है, कृष्ण-भक्ति प्राप्त होती है।' गुरुभाइयों का उत्साह इससे और भी बढ़ जाया करता है। आज मध्याह्न में हरिवंश पाठ के बाद गुरुभाइयों के इन सब अनाचार, अत्याचार और अशिष्ट व्यवहार के प्रतिकार की प्रत्याशा से ठाकुर से प्रश्न किया, 'श्रीवृन्दावन की माटी का क्या इतना गुण है कि उसको लगाने से उच्छिष्ट भी शुद्ध हो जाता है?'

ठाकुर ने कहा-**"श्रीवृन्दावन की माटी नहीं, रज कहना चाहिए। ब्रज की रज परम पवित्र है। पृथ्वी के अन्य किसी भी स्थान की माटी के साथ इसकी तुलना नहीं होती। उच्छिष्टादि सब इस रज को लगाने से शुद्ध हो जाते हैं; श्रीवृन्दावन में पानी की अपेक्षा रज अधिक पवित्र होती है।"**

मैंने कहा-खा-पीकर उच्छिष्ट हाथ-मुँह में रज लगाने से शुद्ध हो जाएगा? फिर पानी से धोना नहीं पड़ेगा?

ठाकुर ने कहा-**"मैं जब पहले यहाँ आया, भोजन के बाद पानी से ही हाथ-मुँह धोकर आचमन करता था; ब्रजवासियों ने मुझसे कहा, 'बाबा, ब्रज-रज लगाने से और अधिक शुद्ध होता है।' दो दिन जब मुझसे इस प्रकार कहा गया, तो मैंने सोचा, अच्छा, देख क्यों न लूँ? तीसरे दिन मैं जल का उपयोग न करके हाथ-मुँह में रज मलने लगा। ऐसा करने पर मेरे मन में बिल्कुल भी दुविधा नहीं हुई, उच्छिष्ट का कुछ संस्कार न रहा। गंगाजल से धोने पर जैसे पवित्रता का बोध होता है, मुझे वैसा ही बोध हुआ। उसके बाद से मैं यह रज लेकर मल लेता हूँ। स्वच्छता के लिए थोड़ा पानी लेकर हाथ-मुँह धोने से ही हो जाता है। यहाँ ठाकुरजी के भोग का बर्तन तक रज में घिस लेते हैं, उससे ही**

पवित्र हो जाते हैं।"

मैंने पूछा-ब्रज-रज का इतना गुण है? जो उसको शरीर में मलने से सत्त्वगुण बढ़ जाता है? रज में विश्वास न होने से क्या केवल शरीर में लगाने से सत्त्वगुण बढ़ेगा?

ठाकुर ने कहा-**लगाकर देखने से ही समझ सकोगे। विश्वास करो या न करो, वस्तु का गुण जाएगा कहाँ? कुछ दिन पहले एक बंगाली सज्जन श्रीवृन्दावन आए थे। दो-तीन दिन विग्रह आदि का दर्शन करके दाऊजी के मन्दिर पर आए। मैं उस समय मन्दिर के पास बैठा था। बातों-बातों में उन्होंने मुझसे कहा, 'महाराज, गाँव में रहते समय वृन्दावन के माहात्म्य की कितनी बातें सुनी है, लेकिन कहाँ है? कुछ भी तो दिखा नहीं। रज का कितना गुण सुना था, वह भी तो कुछ समझ नहीं पाया! फिर सब स्थान जैसे हैं, इसे भी वैसा ही देख रहा हूँ।' मैंने उनसे कहा, रज की विशेषता अवश्य है। आप एक बार रज में लोटकर देखिए तो। उन्होंने एक बार रज में माथा टिकाकर कहा, 'कहाँ, जैसा है, वैसा ही तो है। मैंने कहा, शरीर का कुर्ता उतारिए, साष्टांग प्रणाम करके रज में एक बार लोटिए, उसके बाद देखिए कोई परिवर्तन होता है या नहीं? वे तभी परीक्षण करने के लिए कुर्ता खोलकर रज में लोटने लगे। दो-तीन बार लोटते ही उन्हें क्या हुआ, वे ही जानें, सिसककर रो पड़े। कहे, 'महाराज, मैं घोर अविश्वासी हैं। लेकिन जीवन में रज का यह गुण कभी भूलूँगा नहीं।'**

ठाकुर बहुत समय तक ऐसे नाना दृष्टान्त देकर रज की असाधारण महिमा की बातें कही। कुछ समय बाद हम सब लोग

विग्रह-दर्शन के लिए बाहर निकले।

मथुरा के पथ पर श्रीधर की कीर्ति

३० जुलाई, बुधवार। अन्य दिनों की भाँति ९ बजे के भीतर आसन का कार्य समाप्त किया। ठाकुर ने मुझे बुलाकर कहा-**"कुछ दिनों से हरिमोहन ज्वर से बड़ा कष्ट पा रहे हैं। तुमको देखना चाहते हैं। मनोमोहन (मथुरा के असिस्टेन्ट सर्जन) के निवास पर हैं। तुम्हारे लिए आज ही वहाँ एक बार जाना उचित है। पीड़ित अवस्था में कोई देखना चाहे, तो जाना चाहिए। तुम अभी सीधे वहाँ जाओ।"**

मैंने कहा-मैं रास्ता नहीं जानता, मनोमोहन बाबू का घर भी नहीं जानता। किसके साथ जाऊँगा? ठाकुर ने श्रीधर को बुलाकर कहा-**"कुलदा को मथुरा में मनोमोहन बाबू के घर ले जाओ। कुलदा मथुरा गया नहीं; अस्पताल भी नहीं जानता है।"**

श्रीधर के साथ जाने लगा। सतीश भी हमारे साथ हरिमोहन को देखने गए। नाना स्थानों से घूमते हुए बहुत कष्ट से दिन के लगभग ११ बजे हम लोग मथुरा पहुँचे। मुझे देखकर स्वामी हरिमोहन को अत्यन्त आराम मिला। कुछ समय वहाँ विश्राम करके श्रीवृन्दावन के लिए निकल पड़े। श्रीधर का माथा गरम हो गया है। रास्तेभर उन्होंने हम लोगों को बहुत भुगताया। मनोमोहन बाबू के घर पर हमें पहुँचाते ही बिना कुछ कहे सीधे श्रीवृन्दावन की ओर भाग गए! हम लोग रास्तादि कुछ भी नहीं जानते। लगभग ३ बजे हम लोग कुंज पहुँचे। आहारादि करके ठाकुर के पास बैठते ही उन्होंने कहा-**"श्रीधर तुम लोगों को ठीक रास्ते से तो ले गए थे? उन्होंने कोई**

गड़बड़ तो नहीं की?”

उत्तर में मैं कहने लगा-कुंज से जाते समय ही श्रीधर हाथ-मुँह मटकाते हुए ‘चल मथुरा चल, इस बार तुम लोगों को मथुरा दिखाऊँगा’ कहते ही लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाकर विपरीत दिशा में चलते हुए सीधे वंशीवट में पहुँच गए। हम लोगों को वहाँ से यमुना के किनारे-किनारे चलकर सीधे राधाबाग ले गए। जंगल में प्रवेश करके श्रीधर ने कहा, ‘सीधा चलो।’ हमने कहा, ‘रास्ता कहाँ है?’ तब श्रीधर तेज गति से चलकर हम लोगों को घुमाने लगे। एक ही स्थान में दो-तीन बार घूम-फिरकर समझ गया, श्रीधर का माथा गरम हो गया है। तब धीरे से पूछा, ‘भाई श्रीधर, मथुरा किस ओर है?’ श्रीधर ने उत्तर दिया, ‘मयूर देखो! हम लोग फिर क्या करते? चुप रह गए। फिर श्रीधर साफ-सुथरे रास्ते से न चलकर रास्ते के दायें, बायें, वन के भीतर से दौड़ने लगे। हम लोग भी उनके पीछे-पीछे बहुत समय तक जंगल में दौड़-भाग करके थक गए। इस प्रकार कष्ट भोगते-भोगते अन्त में हम लोग एक विशाल मैदान के सामने पहुँचे। तब श्रीधर को समीप पाकर फिर पूछा, ‘भाई श्रीधर, मथुरा और कितनी दूर है?’ श्रीधर ने रास्ते में एक विशाल वट वृक्ष दिखलाकर कहा, ‘प्रणाम करो। इस वृक्ष की गोसाँईजी ने खोज की है। वृक्ष को प्रणाम करके हम लोगों ने देखा, पूरे वृक्ष में देवमूर्तियाँ हैं; तने पर स्पष्ट रूप से ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेशादि की मूर्ति अपने-आप बनी हुई हैं। हाथ से बनाए मिट्टी के पुतलों की भाँति इतनी स्पष्ट देवमूर्ति वृक्ष में किस प्रकार उत्पन्न हुई, सोचकर चकित हो गया। मूर्ति आदि को सतीश और मैं ध्यान से देख रहे हैं, अचानक श्रीधर पुनः मैदान के बीच से दौड़ पड़े। हम लोग उसके पीछे-पीछे चलकर एक

बस्ती में पहुँचे। उस बस्ती के विभिन्न गंदे स्थानों से हम लोग को ले जाकर फिर एक विशाल मैदान में ले आए। श्रीधर उस विशाल मैदान के मध्य तक तो खूब धीरे-धीरे चले। फिर मैदान के मध्य स्थल पर पहुँचते ही हम लोगों से कुछ कहे बिना ही लम्बी दौड़ लगा दी। हम भी उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। तब श्रीधर एक बार दायें एक बार बायें एकदम से दौड़ने लगे। हम लोग रास्तादि कुछ जानते नहीं, क्या करें? उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। इतना कष्ट भुगतकर बहुत देर बाद हम लोग उनके साथ यमुना के किनारे पर पहुँचे। तब श्रीधर घास के जंगल के बीच से धीरे-धीरे चलने लगे। कुछ दूर जाकर अचानक 'जलजन्तु रे, जलजन्तु' कहकर उन्होंने घास के ऊपर से दौड़ लगा दी। हम लोग कोई उपाय न देखकर उनके पीछे-पीछे भागे। कुछ दूर जाकर हम लोग एक छोटी नहर के किनारे पहुँचे। तब श्रीधर से पूछे, 'श्रीधर ये कहाँ ले आए?' श्रीधर ने कहा, 'नहर पार करो।' हमने कहा, 'तुम आगे जाओ।' उन्होंने कहा, 'तैरना नहीं जानता। तब सतीश ने धमकाते हुए कहा, 'आओ, इस बार तुम्हें पानी में डुबाएँगे।' श्रीधर ने एक बार आगे-पीछे देखकर सीधे दौड़ लगा दी। हम लोग निरुपाय होकर उनके पीछे-पीछे भागे। श्रीधर एक स्थान पर कुछ हड्डियाँ देखकर वहाँ रुक गए। हड्डियों में छानबीन करते-करते हमारी ओर बार-बार देखने लगे। सतीश ने कहा, 'श्रीधर क्या कर रहे हो? वह तो गाय की हड्डी है! छिः, छिः!' यह बात सुनकर श्रीधर 'रुक साला' कहकर, गाय की विशाल मेरुदण्ड की हड्डी कन्धे में उठाकर सतीश को भगाने के लिए आए। 'पगला साला इस बार खून करेगा रे' कहते हुए सतीश ने दौड़ लगा दी, मैं भी प्राण बचाकर दौड़ने लगा। श्रीधर हम लोगों को

पकड़ने ही वाला है। इस समय दूसरा उपाय न देखकर सतीश के साथ मैं भी नहर में कूद पड़ा। श्रीधर भी उस हड़ी को साथ में लेकर दौड़ते हुए पानी में कूद पड़े। श्रीधर तैरना नहीं जानते, गोता खाते-खाते हड्ड़ी को छोड़ दिए। तब हम लोगों ने ही किसी प्रकार से उनको खींच-तानकर दूसरे किनारे पर उठाया। फिर बड़े कष्ट से हम लोग उनके साथ मथुरा में मनोमोहन बाबू के निवासस्थान पर जा पहुँचे। स्वामी हरिमोहनजी को देखा, वे अब थोड़ा ठीक हैं। स्वस्थ होते ही वे यहाँ आएँगे। श्रीधर ने मनोमोहन बाबू से हम लोग के जलपान के लिए कुछ आने पैसे लेकर कहा-'भाई, तुम लोग थोड़ा बैठो, तुम लोगों के लिए भूने चने लेकर आता हूँ। यह कहकर श्रीधर सीधे स्टेशन चले गए एवं हम लोगों के जलपान के उस पैसे से एक टिकट लेकर श्रीवृन्दावन आ गए। हम लोग उनकी प्रतीक्षा में बहुत समय तक रुककर फिर चले आए।'

ठाकुर श्रीधर के पागलपन की ये सब बातें सुनकर खूब हँसने लगे। उनकी प्रसन्नता देखकर हम लोगों को बड़ा आनन्द आया। धन्य है श्रीधर! तुम्हीं धन्य हो! साधन-भजन की अपेक्षा तुम्हारा यह पागलपन ही श्रेष्ठ है।

मैंने ठाकुर से पूछा-उस वृक्ष को क्या आपने ही सबसे पहले देखा था? उन सब मूर्तियों में सिन्दूरादि का टीका भी तो देखने को मिला।

ठाकुर-**पंचकोसी-परिक्रमा करते समय उस वृक्ष को देखा था। तब तक वृक्ष की ओर किसी का ध्यान नहीं गया था। जो साथ में थे, उन्हें उस वृक्ष में देवी-देवताओं की मूर्ति दिखलाने से उन लोगों ने ही प्रचार कर दिया। अब पण्डे लोग उस वृक्ष को**

दिखाकर यात्रियों से प्रणामी लेते हैं; सिन्दूर भी पण्डों ने ही लगाया है।

मैंने कहा-वृक्ष लेकिन बड़ा ही अद्भुत है! सुना है, वे सब देवी-देवता वास्तव में उस वृक्ष में हैं। अच्छा, देवी-देवता वहाँ उस जंगल में वृक्ष का आश्रय लेकर क्यों रहेंगे?

ठाकुर-**अरे बाबा, कितने ही देवी-देवता ऋषि-मुनि इस श्रीवृन्दावन की रज पाने के लिए लालायित हैं! इस स्थान में रज के प्रत्येक कण में महाविष्णु विद्यमान हैं।**

उसके बाद श्रीवृन्दावन की रज का माहात्म्य ठाकुर के मुख से सुनते-सुनते संध्या हो गई। हम लोग दाऊजी की आरती देखने नीचे आ गए।

स्वप्नः गृहस्थ नहीं होना पड़ेगा

१ अगस्त, शुक्रवार। रात्रि के अन्तिम प्रहर में एक स्वप्न देखकर मन बड़ा विचलित हो गया। अवसर पाकर ठाकुर को स्वप्न का विवरण सुनाया-निर्जन मनोरम एक स्थान में पाँच महापुरुष अपने-अपने आसन पर बैठे हुए धर्म-प्रसंग में लीन हैं; मैं उन लोगों के निकट जा पहुँचा। बारदी के ब्रह्मचारीजी भी उनमें से एक हैं। मैं सभी के चरणोद्देश्य से साष्टांग प्रणाम करके उन लोगों का दर्शन करने लगा। मुझे देखकर सभी महापुरुष एकदम से कह उठे, 'ये क्या? तुम यहाँ पर कैसे आए? क्या चाहिए? तुम्हारा जो कर्म है, वह अभी पूर्ण नहीं हुआ है। संसार के अनेक कर्म तुमको करने होंगे। मैंने कहा, संसार-कर्म यदि मेरे प्रारब्ध में रहता है, तो होएगा; लेकिन प्रारब्ध कर्म तो मेरे ठाकुर की मुट्ठी में है। वे जो कहेंगे, वही तो कर्म है। उसके सिवा

और कर्म क्या है? अच्छा, अपने गुरुदेव से पूछता हूँ, वे मुझे गृहस्थ में जाने कहते हैं या नहीं। यह कहकर उन लागों को प्रणाम करके मैं आपके पास आ गया। महापुरुषों की बातें आपको बतलाकर आपसे पूछा, मुझे क्या कर्म-बन्धन से मुक्त नहीं करेंगे? तो क्या वास्तव में मुझे पुनः वही घर-गृहस्थी करनी होगी? आपने मेरी ओर स्नेहपूर्वक देखकर सिर हिलाते हुए कहा-'नहीं, नहीं, तुमको अब गृहस्थी नहीं करनी पड़ेगी।' ये कुछ बातें सुनकर मैं जाग गया। यह स्वप्न क्या सत्य है?

ठाकुर ने कहा-**"ऐसे स्वप्न मिथ्या नहीं होते। तुम्हें अब संसार-कर्म या घरगृहस्थी नहीं करनी पड़ेगी। स्वप्न को लिखकर रखो। अब से सभी स्वप्नों को लिखकर रखो। और भी कितने स्वप्न देखोगे!"**

वृक्षरूपी वैष्णव महापुरुष

कल श्रीवृन्दावन परिक्रमा मार्ग पर मुख्य मार्ग के किनारे जिस प्राचीन वट वृक्ष का दर्शन करके आए थे, उस वृक्ष के सम्बन्ध में दो-चार बातें उठाने से और भी बातें होने लगीं। श्रीवृन्दावन में वृक्ष के रूप में कितने महापुरुष हैं, कहा नहीं जा सकता। गुरुदेव ने स्वयं जो प्रत्यक्ष किया था, वह कहने लगे-**एक दिन मैं घूमते-घूमते राधाबाग जा पहुँचा। यमुना के किनारे एक निर्जन स्थान देखकर वहाँ एक वृक्ष के नीचे निश्चिन्त होकर बैठ गया। कुछ ही क्षण में 'सर् सर्' ध्वनि मेरे कानों में आने लगी। देखा, सामने में एक वृक्ष काँप रहा है। देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। मैं वृक्ष की ओर देखता रहा। फिर देखा वृक्ष नहीं है, एक बहुत सुन्दर वैष्णव महात्मा**

वहाँ खड़े हुए हैं। उनके द्वादश अंग में यथारीति तिलक, गले में कण्ठी, तुलसी की माला, हाथ में भी जप की तुलसी-माला है। उनके विषय में जानने की इच्छा व्यक्त करने पर उन्होंने मुझे पूरा परिचय दिया, फिर कहा, 'यहाँ मैं वृक्ष के रूप में हूँ।' और भी अनेक बातें कहकर उन्होंने पुनः वृक्ष का रूप धारण कर लिया। मैंने यह बात दो-एक वैष्णवों से कही, वे लोग विश्वास नहीं कर पाए, वरन् उपहास करके गौर शिरोमणिजी के पास जाकर कह दिए। इस विषय में शिरोमणिजी के पूछने पर मैंने उन्हें सब स्पष्ट रूप से बतलाया। वे सुनकर रज में लोटने लगे, रोने लगे; फिर उन्होंने मुझसे कहा, 'प्रभु, ये सब बातें जिस किसी को भी न करें; विश्वास नहीं कर पाएँगे, उपहास करेंगे।'

सुना है, बाद में गौर शिरोमणिजी भी राधाबाग में उसी वृक्षरूपी वैष्णव महात्मा का दर्शन करके आए थे। मैंने ठाकुर से पूछा-महात्मा लोग यहाँ वृक्ष के रूप में क्यों रहते हैं?

ठाकुर ने कहा-**'श्रीवृन्दावन अप्राकृतिक धाम है। अप्राकृतिक लीला यहाँ नित्य हो रही है। वैष्णव महापुरुष निश्चिन्त होकर उसी का दर्शन करने के लिए वृक्षादि के रूप में विद्यमान हैं; ब्रजधाम में वास करके आनन्द से भजन करते हैं और लीला दर्शन करते हैं।'**

मैंने कहा-वृक्षरूप में जो सब महापुरुष वृन्दावन में हैं, फिर उन्हें तो साधारण लोग जानते नहीं! वृक्ष के ऊपर किसी प्रकार का अत्याचार करने से उन महापुरुषों को कोई हानि नहीं होती?

ठाकुर ने कहा-**"इसीलिए ब्रज के वृक्ष-लता को हानि नहीं पहुँचाते। हानि पहुँचाने से उनको बहुत कष्ट होता है। अभी कुछ**

दिन पहले ही तो एक वृक्ष पर अत्याचार करने से भयानक अनिष्ट हो गया।"

क्या हुआ था, यह जानने की इच्छा व्यक्त करने पर ठाकुर कहने लगे-**"यहाँ पास में ही एक कुंज में एक बहुत पुराना नीम का सुन्दर वृक्ष था, कुंज के वैष्णव बाबाजी वृक्ष की खूब सेवा-जतन करते थे। एक दिन वहाँ की एक युवती वैष्णवी ने रजस्वला अवस्था में वृक्ष को पकड़ लिया। रात्रि में बाबाजी ने स्वप्न देखा-एक वैष्णव ब्रह्मचारी ने आकर उनसे कहा, 'तुम्हारे कुंज में इतने समय से बड़े आराम से था, कल तुम लोगों की वैष्णवी ने अशुद्ध काम-कलुषित अवस्था में वृक्ष को कई बार पकड़ा। इससे मेरी अत्यन्त हानि हुई है। इसीलिए मैंने यह स्थान त्याग दिया। बाबाजी ने प्रातः उठकर देखा, वृक्ष सूख गया है। हम लोगों ने भी जाकर देखा, एक रात्रि में ही वह बड़ा वृक्ष बिल्कुल सूख गया।"**

ठाकुर की ये सब बातें सुनकर चकित रह गया। मुंगेर में जो घटना हुई थी, उसी गुलाब के पौधे की बात आज मन में आ गई। ठाकुर को वह बात बतलाने पर उन्होंने कहा-**"वास्तविक रूप से सेवा कर सको, तो वृक्ष की बातचीत भी सुनी जा सकती है।"**

श्रीवृन्दावन के सब वृक्ष वास्तव में अद्भुत हैं। छोटे-बड़े सभी वृक्षों की शाखा-प्रशाखाएँ लता के समान झूलकर भूमि की ओर लटक गई हैं, पत्ते तक डंडी सहित नीचे की ओर मुख किए हुए हैं। ऐसा और कहीं नहीं देखा। निधुवन एवं अन्यान्य प्राचीन कुंज और वन में बड़े-बड़े सब वृक्ष रज में लोटते हुए बढ़ रहे हैं। वृक्ष ऊपर की ओर क्यों नहीं उठते, वह कुछ समझ में नहीं आता। उन वनों में

अत्यन्त प्राचीन अनेक वृक्ष भी लता के समान ही लगते हैं। अद्भुत है ब्रजभूमि! लगता है, भूमि का ही यह गुण है कि मस्तक उठाने नहीं देता। निर्लज्ज स्वभाव के अशिष्ट लोग का भी श्रीवृन्दावन में दीर्घकाल तक वास करने पर रज के प्रभाव से मस्तक झुक जाता है, इस पर फिर अविश्वास करने का मन नहीं होता। अन्यान्य सैकड़ों दोष रहने पर भी ब्रजवासियों का स्वभाव मृदु एवं नम्र देखता हूँ।

श्रीवृन्दावन में अपार मच्छर

श्रीवृन्दावन में दिनभर तो आनन्द रहता है, परन्तु संध्या होते ही आतंक! दिन शेष होते-होते मच्छरों के उत्पात की बात सोचकर ही मैं बेचैन हो जाता हूँ। ऐसे भयंकर मच्छर और कहीं नहीं देखे। रात्रि होते ही झुंड-के-झुंड मच्छर आकर शरीर पर बैठते हैं। निद्रा का तो अवसर ही नहीं मिलता, एक स्थान पर निश्चिन्त होकर थोड़े समय के लिए बैठना भी असम्भव हो जाता है। सारी रात छटपटाते हुए काटता हूँ; सोचता हूँ, कब सबेरा होगा। रात्रि में ठाकुर कमरे में न रहकर अब भी पूर्ववत् बरामदे में बैठा करते हैं। माता ठाकुरानी भी रातभर पंखा हाथ में लेकर ठाकुर को हवा करती हैं। ठाकुर दो-तीन बार माता ठाकुरानी को विश्राम करने के लिए कहते हैं, लेकिन माताजी वह बात सुनती नहीं, शान्त भाव से सबेरे तक मच्छर भगाया करती हैं। हवा करके माता ठाकुरानी ठाकुर की सेवा में ही सारी रात काट देती हैं। उधर कुतु मच्छर के काटने से छटपटाती है। बड़ा कष्ट है। ठाकुर के पास एक मच्छरदानी थी, परन्तु उसका वे उपयोग नहीं कर पाए। श्रीवृन्दावन पहुँचने के कुछ दिन बाद ही

श्री राखाल बाबू (ब्रह्मानन्द स्वामी) ज्वर से शय्यागत हो गए थे। ठाकुर उन्हें देखने गए थे, देखे, राखाल बाबू अन्धेरे कमरे में पड़े हुए हैं। ठाकुर तुरन्त कुंज में आकर अपनी मच्छरदानी, रस्सी और लोहे के चार कील लेकर राखाल बाबू के कमरे में पहुँचे एवं उनके बिछौने के ऊपर उसे चुपचाप लगाकर चले आए। आज बातों-बातों में कुतु ने ठाकुर से कहा, 'बाबा, श्रीवृन्दावन में तो हिंसा नहीं करनी चाहिए, लेकिन रात्रि में मच्छर भगाते समय जो हिंसा हो जाती है?

ठाकुर ने कहा-**"तो तू मच्छर को मार डालती है? दो-चार दिन मच्छर को काटने दे न। फिर देखना, मच्छर के काटने से कष्ट नहीं होगा।"**

कुतु ने कहा-'आपको मच्छर के काटने से कष्ट नहीं होता?'

ठाकुर ने कहा-**"अब और होता नहीं। पहले जब यहाँ आया था, तब खूब हुआ था। एक दिन मच्छर भगाने के लिए हाथ के ऊपर हाथ फेरने गया तो देखा, हाथ मच्छरों से भरा हुआ है! तब फिर क्या करता? भगाने पर तो सैकड़ों मच्छर मर जाएँगे। मैं उस समय हाथ-पैर हिलाए बिना एक ही दशा में रहा। रातभर में मेरा इतना रक्त पी गए कि प्रातः उठने पर मेरा शरीर अशक्त लगने लगा, लेकिन उससे मेरी कोई हानि नहीं हुई, बहुत उपकार ही हुआ। उस समय मुझे प्रतिदिन मलेरिया का ज्वर होता था। मच्छरों ने जिस दिन उस प्रकार काटा, फिर उस दिन से मुझे ज्वर नहीं होता। मच्छरों ने मलेरिया का सारा विष चूस लिया। फिर उस दिन से मच्छरों के काटने से मुझे कष्ट भी नहीं होता। तुम लोग थोड़ा सहन नहीं कर सकते? एक-दो दिन सहन करके देखना तो, कष्ट होता है या नहीं? नहीं तो फिर मच्छर से**

कह तो सकती है कि मुझे काटना मत। ऐसा कहने से ही हो गया।”

कुतु-हाँ! मच्छरों को कहने से क्या वे सुनेंगे?

ठाकुर-**“नहीं सुनेंगे? अच्छा देख, मैं कह देता हूँ, देखना सुनते हैं। या नहीं? ‘मच्छर तुम लोग कुतु को काटना नहीं।’ जा, इसके बाद यदि तेरे को मच्छर काटे तो मुझसे कहना।”**

साधना में विविध अनुभूति का क्रम

२ अगस्त, शनिवार। भोजन के बाद हरिवंश पाठ करके हम सभी गुरुदेव के पास बैठे हैं। गुरुदेव अपने-आप धीरे-धीरे कहने लगे-**“दर्शन का विषय जिस प्रकार क्रमशः थोड़ा-थोड़ा करके धीरे-धीरे स्पष्ट रूप से प्रकाश होता है, श्रवण भी ठीक उसी प्रकार ही हुआ करता है। श्रवण के आरम्भ में एक प्रकार का ‘किच किच्’ शब्द कान के भीतर पहले-पहले सुन पाते हैं। वह शब्द होने पर यदि विरक्त होकर उसे अग्राह्य किया जाए, तब तो अनिष्ट हुआ करता है। नाम-जप करते-करते बड़ी निष्ठापूर्वक उस शब्द को सुनना पड़ता है; निष्ठा रहने से ही धीरे-धीरे सब प्रकार के शब्द सुन सकते हैं। फिर अन्यान्य शब्द के जैसा यह शब्द नहीं है, इसमें कुछ विशेषता रहेगी ही। वह आरम्भ से ही पता चल जाता है। निष्ठापूर्वक स्थिर चित्त से वह सब शब्द सुनने से धीरे-धीरे बातें भी सुन सकते हैं। तब बातचीत की जा सकती है, पूछने पर उत्तर मिलता है; किन्तु बातचीत न होने तक पूरा-पूरा विश्वास होता नहीं। विश्वास की दृढ़ता के साथ-साथ बात करनेवाले के अंगादि का स्पर्श भी क्रमशः स्पष्ट रूप से हुआ करता है। यह**

स्पर्श पंचभौतिक स्पर्श नहीं है। यह अन्य प्रकार का स्पर्श है। ये सब जब होते हैं, तभी ठीक समझ सकते हैं; नियमानुसार साधना करते जाने से ये सब अवस्थाएँ सभी की होंगी। इच्छा करने से भी होंगी, नहीं करने से भी होंगी। ठीक समय होने पर ही होंगी।" इस प्रकार और भी कई बातें कहकर ठाकुर चुप हो गए। वे बातें मेरी कुछ भी समझ में नहीं आई। ठाकुर से मैंने पूछा- ये सब दर्शन, स्पर्शन, श्रवणादि के लिए एवं अनेक प्रकार के अलौकिक ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए क्या अन्य प्रकार की कोई साधना करनी होती है?

ठाकुर इस प्रश्न के उत्तर में **'इस नाम में ही सब है'** कहकर कुछ क्षण चुप रहे, फिर अपने-आप ही पुनः कहने लगे-**"एकमात्र श्वास-प्रश्वास में नाम-जप का अभ्यस्त होने से ही सब होता है। शरीर से मैं पृथक् हूँ। इसका स्पष्ट ज्ञान न होने से वह सब अवस्था होती नहीं। 'शरीर से मैं पृथक् हूँ' समझने के लिए श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना पड़ता है। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना बहुत सहज नहीं है; तीन-चार लाख नाम का जप करो या तीन-चार करोड़ नाम का जप करो, श्वास-प्रश्वास में लक्ष्य रखकर नाम-जप करने जैसा फल किसी प्रकार भी नहीं होता। इसकी उपयोगिता ही अन्य प्रकार की है। स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास में एक बार ठीक से नाम गुँथ जाने से आत्मदर्शन होता है। 'शरीर से आत्मा पृथक् है' जानकर थोड़ा स्थिर हो सकने से ही उस आत्मा में नाना प्रकार की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। तब वह आत्मा अनेक अलौकिक कार्य सहज में कर सकती है।"**

ठाकुर की बात से मेरे बड़े भारी भ्रम का संशोधन हुआ। २१६०० (इक्कीस हजार छ: सौ) नाम गिनकर प्रतिदिन जप करना भी कुछ क्षण श्वास-प्रश्वास में नाम-जप के प्रयास के तुल्य नहीं है। अतएव भीतर-ही-भीतर लज्जित होकर मैंने फिर अपनी उस संख्या जप की बात नहीं बतलाई।

मैंने पूछा-आत्मा की इस प्रकार क्षमता उत्पन्न हो जाने पर किसी प्रकार के अलौकिक कार्य करने से क्या कुछ अनिष्ट होता है?

ठाकुर ने कहा-“**बहुतों को देखा गया है कि उस प्रकार थोड़ा योगैश्वर्य मिलते-मिलते ही उसका प्रयोग करके वे बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट हो गए हैं। उस ऐश्वर्य के द्वारा अनेक प्रकार के सम्पद् वृद्धि, रोगारोग्य एवं इच्छानुसार और भी अनेक अलौकिक कार्य करने की क्षमता हो जाती है, सत्य है; लेकिन धर्म-प्राप्ति के पथ में वह भयंकर विघ्न और प्रलोभन है। उन सब ऐश्वर्य के प्राप्त होते ही शक्ति का प्रयोग नहीं करते। तभी धीरे-धीरे विभिन्न आश्चर्यजनक अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं। और शक्ति प्रयोग करने से थोड़े समय के भीतर ही उसका सर्वनाश हो जाता है; धर्म-कर्म तो चूल्हे में जाता है, वह शक्ति भी नष्ट हो जाती है; परन्तु वह ऐसा प्रलोभन है कि थोड़ा-कुछ मिलते ही शक्ति प्रयोग करने की इच्छा होती है। इस विषय में बहुत सावधान रहना पड़ता है।**”

लाल के सम्बन्ध में ठाकुर का अनुशासन

बातों-बातों में माता ठाकुरानी ने इस समय लाल की बात उठाकर कहा, ‘लाल के भीतर बहुत-सी अद्भुत शक्तियाँ देखी है।

उन्होंने बहुतों के अतीत जीवन के ऐसे सब गोपनीय विषय उन लोगों को कहा है, जिसे उन लोगों के सिवा संसार में और कोई भी नहीं जानता। बहुतों के भविष्य की बातें भी स्पष्ट कह देते हैं। साधारण बातों में भी लाल की ऐसी एक शक्ति है कि जो उसे सुनता है, मुग्ध हो जाता है। योगजीवन कमरे में बैठकर पढ़ाई-लिखाई करता था और लाल गेण्डारिया के जंगल से एक प्रकार की ध्वनि निकालते; उस ध्वनि की ऐसी आकर्षण शक्ति थी कि योगजीवन उसे सुनकर फिर घर पर रह नहीं पाता था। पढ़ना छोड़कर वह लाल के पास तुरन्त दौड़ पड़ता था। इन सब कारणों से ही योगजीवन परीक्षा पास न कर सका। माता ठाकुरानी ने लाल के योगैश्वर्य के सम्बन्ध में और भी कई बातें कही। तब इस क्रम में मैंने भी भागलपुर में लाल के योगैश्वर्य प्रकट करने की बात कही। ठाकुर ने सारी बातें ध्यान से सुनकर कहा-**“बार-बार लाल को ये सब करने के लिए मना किया, किसी प्रकार से बात सुनता नहीं। इसके बाद धक्का खाकर सीखेगा।”**

मैंने यह बात सुनकर थोड़ा चकित होकर कहा, क्यों? कितने लोगों के जीवन का भार आपने ही तो लाल के ऊपर दिया है; लाल के मुँह से सुना है, उन लोगों का ही कल्याण करने के लिए वह यथासाध्य प्रयत्न करता है।

ठाकुर ने कहा-**“यह क्या? तुम क्या कह रहे हो? स्पष्ट रूप से कहो। लाल ने तुमसे क्या कहा था, ठीक वही कहो।”**

इस प्रकार ठाकुर से उस विषय में कहने का आदेश पाकर मैंने कहा-लाल ने मुझसे पहले भी एक बार कहा था, इस बार भागलपुर में भी कहा, ‘गोसाँईजी वृद्ध हो गए हैं। इतने लोगों का बोझा वे अब

कितना वहन करेंगे? इसलिए हम तीन लोगों के ऊपर सभी का भार बाँट दिए हैं, कुछ लोगों का तो श्यामाकान्त पण्डित के ऊपर, कुछ का बिहारी नाम के पश्चिम के एक संन्यासी गुरुभाई के ऊपर और कुछ मेरे ऊपर।' मैंने पूछा-'मैं किसके भाग में हूँ?' लाल ने उत्तर दिया-'तुम मेरे भाग में हो।' ठाकुर ने सब बातें सुनकर कहा-**"अच्छा, तो इतना बढ़ गया? बहुत अधिक उछल-कूद करने लगा है। महापुरुषों की कृपा से साधारण एक सरसों का बिन्दु पाते ही अभिमान से आसमान पर उड़ने लगा है। शीघ्र ही उस कण को उठा लेने पर वह स्वयं क्या है, अच्छे-से समझेगा। ठहरो, घबराओ मत।"**

यह कहकर ठाकुर आसन बैठे-बैठे ही एक बार थोड़ा दायें-बायें हिले, तभी मुझे लगा, 'आज प्रलय होगा, लाल का सर्वनाश हो गया, अब छुटकारा नहीं है।'

साधना के प्रभाव से देहतत्त्व का ज्ञान

कुछ समय बाद बातों-बातों में ठाकुर से पूछा-देहतत्त्व का ज्ञान प्राप्त न रहने से कहाँ क्या रोग है, क्यों है, यह कैसे पता चलता है? फिर रोग से मुक्त होना किस प्रकार सम्भव है?

ठाकुर ने कहा-**"इस शरीर से आत्मा जो अलग है, इसका अच्छे-से ज्ञान होने पर स्थूल शरीर का कहाँ पर क्या है, सभी ठीक-ठीक दिखलाई पड़ेगा। तब शरीर के ऊपर और भीतर सभी जगह के चमड़े, मांस, हड्डी-मज्जा, नस-नाड़ी, शिरा-धमनी जो कुछ है, वह सब स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है। तब शरीर के किस स्थान पर किस वस्तु का अभाव है, कहाँ**

किसकी अधिकता है, वह भी पता चल जाता है; पृथ्वी की किस वस्तु के साथ देह का क्या सम्बन्ध है, वह भी स्पष्ट समझा जा सकता है।”

गेरुआ क्या है?

सतीश ने बातों-बातों में प्रश्न किया-‘गेरुआ वस्त्र पहनने की क्या कोई अवस्था है, या धर्मार्थी लोग अपनी इच्छा से ही उसे पहन सकते हैं?’

ठाकुर ने कहा-**“गेरुआ पहनने, भस्म लगाने, दण्ड, कमण्डलु और चिमटा आदि धारण करने की पृथक्-पृथक् विशेष अवस्थाएँ हैं। उस अवस्था की प्राप्ति के अनुसार ही इन सब चिह्नों को धारण करने का अधिकार होता है; अन्यथा विडम्बना है, अपराध होता है। आजकल इन सब विषयों का विचार न रहने से बड़ी हानि हो रही है। तुम लोगों के लिए उन सबका अभी कोई प्रयोजन नहीं है। अवस्था होने पर वह ग्रहण कर पाओगे। शास्त्र में है-भगवती के रजः से गेरुआ हुआ है। गेरुए वस्त्र को भगवत्-वस्त्र कहते हैं। वह भगवान् नारायण का वस्त्र है। देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियों, योगी-महापुरुषों के लिए वह बड़े आदर एवं सम्मान की वस्तु है। उसे ग्रहण करके उचित रूप से उसकी मर्यादा की रक्षा न कर पाने से बहुत बड़ा अपराध होता है। गेरुए वस्त्र में किसी का किसी भी प्रकार से एक बिन्दु वीर्यपात होने से सभी देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियों, सिद्ध महात्माओं का शाप लगता है; पहले इन सब विषयों पर दृष्टि थी, शासन था, वस्तु की भी ठीक मर्यादा थी। अब विदेशी राजा**

है, कौन शासन करेगा? तभी तो फेरीवाला भी गेरूआ वस्त्र पहनता है।"

प्रतिदिन नये तत्त्व का प्रकाशः परतत्त्व

भोजन के बाद हरिवंश पाठ करके कुछ क्षण चुपचाप बैठा रहता हूँ, ठाकुर स्वयं कोई बात उठाते हैं, तभी साहस करके विभिन्न विषयों पर प्रश्न करता हूँ। जिस दिन किसी प्रसंग पर बातचीत होती है, उस दिन माता ठाकुरानी कुंज में रहती हैं, नहीं तो श्रीधर के साथ कुतु को लेकर दर्शन के लिए चली जाती हैं। ठाकुर जिस दिन बाहर जाते हैं, हम सभी उनके साथ जाया करते हैं, फिर जिस दिन ठाकुर कुंज में रहते हैं, दर्शन के लिए कुंज के अन्य सभी लोगों के जाने पर भी मैं ठाकुर के ही पास बैठा रहता हूँ एवं अवसर मिलने से नाना विषयों पर प्रश्न करता हूँ। संध्या के समय ठाकुर किसी-किसी दिन आसन पर ही बैठे रहते और हम लोगों को विग्रह-दर्शन हेतु जाने के लिए कहा करते हैं, लेकिन स्वयं उस दिन प्रातः से संध्या तक एक बार के लिए भी आसन छोड़कर कहीं जाते नहीं। इसका क्या तात्पर्य है, जानने की इच्छा हुई। ठाकुर से पूछा-आप भी नियमित रूप से दर्शन के लिए क्यों नहीं जाते? थोड़ा चलने-फिरने से शरीर भी स्वस्थ रहता है।

ठाकुर ने कहा-**"श्रीवृन्दावन आने के बाद ही गुरुजी ने मुझसे कहा, 'कम-से-कम एक वर्ष तक यहाँ तुमको आसन लगाना होगा। आसन पर प्रतिदिन तुम्हारे समक्ष नये-नये तत्त्व प्रकट होंगे।' तब से प्रतिदिन ही दो-एक नये तत्त्व प्रत्यक्ष हो रहे हैं। जब तक कम-से-कम एक तत्त्व प्रकट नहीं होता, मैं आसन**

छोड़कर कहीं नहीं जाता। इसीलिए मैं प्रतिदिन दर्शन करने नहीं जा पाता। वह हो जाने पर ही मैं आसन छोड़ता हूँ, दर्शन के लिए भी जाता हूँ।"

ठाकुर की बात सुनकर मैं बिल्कुल स्तब्ध हो गया। कुछ क्षण चकित होकर सोचने लगा, 'ठाकुर ने अब यह किस तत्त्व की बात कही? तीव्र वैराग्य का अवलम्बन करके युग-युगान्तर तक लगातार कठोर साधन-भजन में रक्त, मांस, अस्थि, मज्जा को विलीन कर-करके, प्राचीनकाल के ब्राह्मण लोग जिस एक तत्त्व को आयत्त करने से ऋषि-पद के योग्य हो जाते थे, कुछ घण्टे आसन पर बैठकर, क्षण-क्षण में हँसी-मजाक में समय बिताकर भी इस धर्म-विरोधी घोर कलिकाल में वही तत्त्व ठाकुर प्रत्येक दिन दो-एक सहज में प्राप्त कर रहे हैं। यह कितनी असम्भव बात है! मैं स्थिर न रह सका, ठाकुर से पुनः पूछा-तत्त्व किसे कहते हैं? तत्त्व कुल कितने हैं? किस प्रकार से साधना करने पर ये सब तत्त्व प्राप्त होते हैं। मेरा मुँह खुलते ही ठाकुर मेरा सारा भाव समझ गए, इसलिए मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए कहने लगे-**"स्वयं भगवान् ही तत्त्व हैं। भगवान् के भाव का, कार्य का और लीला का क्या कोई विराम है? तत्त्व अनन्त हैं। फिर इन तत्त्वों को क्या साधनादि द्वारा प्राप्त किया जाता है? लाखों जन्म कठोर साधन-भजन में देह पतन करके भी इनमें से एक तत्त्व को भी कोई जान नहीं पाता। फिर ये सब तो साधन-सापेक्ष नहीं, साधनातीत हैं; एकमात्र भगवान् की कृपा से ही ये सब तत्त्व प्राप्त होते हैं। साधना द्वारा इसे प्राप्त करना असम्भव है। उनकी कृपा से पलभर में ही सब हो सकता है। जीव मुक्त होकर एकमात्र भगवान् की कृपा से लीला तत्त्व में**

प्रवेश कर सकता है। यही परतत्त्व है।”

ठाकुर की ये सब बातें सुनकर मैं उसका अभिप्राय समझ गया। फिर कोई बात न करके नाम-जप करने लगा।

नवीन तिलक: श्रीअद्वैत प्रभु द्वारा संस्कार

३ अगस्त, रविवार। श्रीवृन्दावन में इस बार ठाकुर को नये रूप में देख रहा हूँ। ठाकुर का अभिप्राय क्या है, पता नहीं; उद्देश्य क्या है, वह भी समझ नहीं आता। मुझे उनके कार्य-कलाप के सम्बन्ध में पूछने का अधिकार ही कहाँ है? स्वयं दया करके वे जब हम लोगों के साथ हिल-मिलकर बातचीत करते हैं, तभी सुयोग मिलने पर केवल दो-एक विषय में पूछकर ही सन्देह का समाधान कर लेता हूँ। इतने समय से ठाकुर को जैसा देखा, अब उनका वैसा रूप नहीं हैं। इस समय वे सहज भाव से मन्दिर जाकर मूर्ति को साष्टांग प्रणाम करते हैं, पाषाण-मूर्ति के सामने रखी खाद्य-सामग्री को प्रसाद मानकर खाते हैं, गले में विभिन्न प्रकार की मालाएँ हैं, फिर द्वादश अंगों में गोपी चन्दन द्वारा तिलक लगाया करते हैं। सीधे शब्दों में कहें तो अब उन्होंने वैष्णवों के समस्त आचरण का आश्रय ले लिया है। इस विषय में सारी बातें पूछने की इच्छा होती है, लेकिन साहस नहीं होता।

जो भी हो, आज भोजन के बाद ठाकुर से पूछा-श्रीवृन्दावन में वास करने से क्या इस प्रकार तिलक लगाना पड़ता है? आपको पहले कभी माला-तिलक धारण करते देखा नहीं। आपने कहा था, हमारा कोई सम्प्रदाय नहीं है, लेकिन तिलक तो वैष्णव लोगों के जैसा ही है। ठाकुर ने कहा-**“वह ठीक है। मैं जब श्रीवृन्दावन में**

आया, तिलक धारण करने का आदेश हुआ। उस समय किस प्रकार तिलक लगाऊँगा, सोचने लगा। किसी सम्प्रदाय-विशेष का चिह्न नहीं लूँगा, यह निश्चय करके एक नये प्रकार का तिलक लगाया। मेरे उस नवीन तिलक को देखकर वैष्णव बाबाजी लोग उग्र आन्दोलन आरम्भ कर दिए। एक दिन गौर शिरोमणिजी ने आकर मुझसे कहा-'प्रभु, इस प्रकार का तिलक क्यों किए हैं, समझ नहीं पा रहा हूँ। ऐसा तिलक तो किसी सम्प्रदाय में देखा नहीं! दया करके इस तिलक का तात्पर्य मुझे बताइए।' मैंने उनसे कहा, 'हमारा कोई सम्प्रदाय नहीं है; इसलिए मोहम्मद का अर्धचन्द्र, यीशु ख्रीष्ट का क्रॉस एवं महादेव का त्रिशूल लेकर यह एक नये प्रकार का तिलक लगाता हूँ।' शिरोमणि जी ने कहा-'आप सब कर सकते हैं; लेकिन आप जो करेंगे, उसका अनुकरण हजारों लोग करके एक सम्प्रदाय गठित करेंगे। अतएव शास्त्र की व्यवस्था के अनुसार ही क्यों नहीं करते? नवीन सम्प्रदाय फिर क्यों खड़ा करोगे? हमारा विनयपूर्वक अनुरोध है, आप यह तिलक त्यागकर यथारीति तिलक धारण करें!' मैंने शिरोमणिजी की बात सुनकर कहा-"इस विषय में जो उचित होगा, शीघ्र ही आपको पता चल जाएगा।' फिर एक दिन श्रीअद्वैत प्रभु ने इस प्रकार तिलक दिखाकर मुझसे कहा-'तुम इस प्रकार तिलक करो।' अद्वैत प्रभु इसी प्रकार तिलक करते थे। उनके आदेश के अनुसार ही मैं इस प्रकार तिलक करता हूँ।"

श्रीवृन्दावन में साम्प्रदायिक भाव

मैंने कहा, आप जब श्रीवृन्दावन पहुँचे, माला-तिलक न देखकर बाबाजी लोग गड़बड़ नहीं करते थे? इन लोगों का भाव देखकर लगता है, साम्प्रदायिक कट्टरता इनमें बहुत अधिक है। अन्य वेशधारी साधुओं को ये लोग स्वीकार नहीं करते, उन्हें साधु ही नहीं मानते। कोई माला-तिलक धारण न करे तो उन्हें अपवित्र समझते हैं। मैंने जितने दिनों तक मुण्डन कराकर चोटी नहीं रखी, और जब तक माता ठाकुरानी ने मेरे गले में कण्ठी नहीं पहनाई, उतने दिनों तक वैष्णव-बैरागी लोग मुझे प्रसन्न दृष्टि से नहीं देखते थे; अब मेरे इस मुण्डित मस्तक पर चोटी और गले में कण्ठी देखकर वे लोग कहते हैं, 'अहा, कैसा सुन्दर रूप है, अंग से ज्योति फूट रही है। फिर मैं अपना रूप एक बार जब आईने में देखता हूँ, तो पलटकर फिर देखने की इच्छा नहीं होती; मुण्डित मस्तक पर चोटी इतनी भद्दी दिखती है।'

ठाकुर मेरी बात सुनकर खूब हँसे; फिर कहने लगे-**"वेश लिए बिना यहाँ रहना बड़ा कठिन हो जाता है। मेरे इस गेरुए को छुड़वाने के लिए उन लोगों ने कितना प्रयास किया! यहाँ तक कि गौर शिरोमणिजी के द्वारा भी कितना अनुरोध करवाया। एक दिन शिरोमणिजी के साथ भागवत सुनने गया था। सभी बैठकर भागवत सुन रहे हैं, एकजन ने नाली के गंदे पानी में कुछ गोबर घोलकर ऊपर से मेरे सिर पर गिरा दिया। पास में शिरोमणिजी बैठे थे, सारा पानी उनके ऊपर ही गिरा। वे सब समझ गए, फिर मुझसे बोले, 'देख लिया प्रभु, इन लोगों का कर्म? चलिए, अब इस स्थान पर नहीं रहना! कहकर वे मुझे लेकर चले आए। वैष्णव वेश न देखकर यहाँ बाबाजी लोग ऐसा ही व्यवहार करते**

हैं।’

यह बात सुनकर सोचा, ‘इतने दिन हो गए ठाकुर को यहाँ पर आए हुए; इस बीच न जाने और भी कितने अत्याचार इन लोगों ने उनके ऊपर किया है। बातों-बातों में ठाकुर के मुख से कभी-कभी ऐसी बातें अचानक निकल पड़ती हैं, इसी से एकाध घटना का पता चल जाता है, अन्यथा इन सब बातों को जानने का तो कोई उपाय नहीं है। जो भी हो, दामोदर पुजारी और श्रीधर आदि से पूछने पर हो सकता है कुछ-कुछ खबर मिल जाए, यह सोचकर मैंने कुछ समय बाद नीचे आकर उन लोगों से पूछा-ठाकुर जब श्रीवृन्दावन में आए, तब यहाँ के लोगों ने ठाकुर को नीचा दिखाने के लिए क्या किसी प्रकार का प्रयास किया था? उन्होंने मुझसे जो सब बातें कही, सुनकर मैं चकित रह गया। उनमें से केवल एक ही विषय को यहाँ लिखकर रख रहा हूँ, घटना इस प्रकार है-

दर्शन में विरोध करनेवाले प्रभुसन्तान को उत्कट शिक्षा

श्रीवृन्दावन पहुँचकर ठाकुर ब्रजवासी दामोदर पुजारी के कुंज में ठहरे। कुछ दिन बाद उन्होंने कहा-**“कल प्रातः गोविन्दजी का दर्शन करने जाऊँगा।”** ठाकुर के ऐसा कहते ही सभी जगह यह बात फैल गई। श्रीवृन्दावन में बड़ा कोलाहल मच गया! बिजली की गति से यह संवाद प्रभुपाद के दरबार में पहुँचा। सबसे प्रभावशाली सम्मानित वैष्णव नेता एक प्रभुसन्तान उत्तेजित होकर कह उठे, ‘यह क्या? ऐसे ही मन्दिर में जाएगा? आकर हम लोगों का दर्शन किया नहीं, अनुमति ली नहीं। उसको तो जानते हैं। इतने सहज में

ही वह मन्दिर जाएगा? अच्छा, देखा जाएगा। यह कहकर उन्होंने तीन-चार प्रभुसन्तानों के साथ समस्त वैष्णव समाज को बुलवाकर एक बहुत बड़ी सभा का आयोजन किया। प्रभुपाद ने विरक्ति होते हुए सबसे कहा, 'अद्वैत परिवार के कुल में कलंक लगानेवाला जाति-नाशक म्लेच्छाचारी एक गोसाँई इस समय श्रीवृन्दावन में आया है। सनातन धर्म-विरोधी ब्राह्मधर्म का प्रचार करके हजारों लोगों को उसने धर्मभ्रष्ट किया है। दीर्घकाल अनाचार में बिताकर अब गेरुआ पहनकर संन्यासी के वेश में वह वृन्दावन में उपस्थित है। हमसे भेंट किए बिना ही अनुमति की उपेक्षा करके वह कल गोविन्दजी के दर्शन हेतु मन्दिर जाने का साहस कर रहा है। अब उसको मन्दिर में प्रवेश करने देना है या नहीं?' प्रभुपाद का प्रश्न सुनकर वैष्णव बाबाजी लोग तुरन्त चीत्कार उठे और सभी ने उत्तेजित होकर कहा, 'यह कभी नहीं होगा। हम रोकेंगे। इस निर्णय से सन्तुष्ट न होकर प्रभुपाद ने कहा, 'केवल रोकना नहीं, मन्दिर में घुसने से द्वार पर ही उसको विशेष रूप से अपमानित करके भगा देना। गोविन्दजी के पुजारी को भी यह आदेश दिया गया। दो-चार अत्यन्त उदासीन वैष्णवों के अतिरिक्त सभी इस कार्य में खूब उत्साह प्रकटकर अपने-अपने कुंज में चले गए।

रात्रि भोजन के बाद प्रभुसन्तान गहरी नींद में थे, अचानक उत्पात हुआ। उन्होंने स्वप्न देखा-एक भयानक जंगली वाराह ने गर्जन करते-करते दौड़ते हुए आकर प्रभुसन्तान पर तीव्र गति से आक्रमण किया। धक्के खा-खाकर प्रभुपाद की नींद टूट गई, हाय-हाय करते हुए वे जाग उठे। फिर कुछ क्षण बैठकर हाथ-मुँह रगड़कर पुनः शयन किए एवं नींद लग गई। कुछ क्षण के भीतर पुनः वही

जंगली सूअर ने भयंकर गर्जन करते हुए प्रभुजी के ऊपर टूट पड़ा एवं धक्के मार-मारकर उनको बेचैन कर डाला। प्रभु तब 'हाय-हाय' करके चित्कारते हुए जाग उठे। कुछ क्षण विचलित अवस्था में रहकर फिर सो गए। इस बार फिर वैसी नींद नहीं रही। थोड़ी झपकी आते ही प्रभुपाद ने देखा-स्वयं बलदेवजी वाराह मूर्ति धारण करके भयानक गर्जन से चारों दिशा को कम्पित करते हुए भयंकर दाँत दिखाकर अत्यन्त तीव्र गति से उनको लक्ष्य करके अग्रसर हो रहे हैं। क्षणभर में वे प्रभुजी के ऊपर टूट पड़े, बार-बार घसीटते और कुचलते हुए प्रभुपाद के सर्वांग को दबाकर, मुख के अग्रभाग से छाती को मसलकर कहने लगे-'तेरा इतना साहस! गोसाँई को मन्दिर जाने से रोकेगा? जानता नहीं वे कौन हैं? उनको सामान्य समझता है? आज तेरे को खत्म करूँगा।' प्रभुजी की तन्द्रा दूर हो गई; काँपते हुए चैतन्य अवस्था में वे वाराहदेव का बारम्बार गर्जन सुनने लगे। कड़े दबाव से उनकी श्वास रुद्ध होने लगी, करवट बदलने का भी सामर्थ्य नहीं रहा। फिर वे चित्कारते हुए उठ गए एवं धीरे-धीरे श्वास लेकर क्रमशः स्वस्थ हुए। तब उन्होंने सोचा, 'अब क्या करूँ? इस अपराध से कैसे बचें?' श्रीवृन्दावन में श्री गौर शिरोमणिजी को सभी सिद्ध महापुरुष मानकर उन पर विश्वास करते हैं। प्रभुसन्तान तुरन्त रात्रि में ही उनके पास जा पहुँचे, उनसे बिना कुछ छिपाए समस्त विवरण विस्तार से कहकर शरीर के विभिन्न स्थानों पर वाराह के प्रहार का चिह्न दिखलाते हुए उन्होंने कहा, 'अब हमारा क्या कर्त्तव्य है? कृपा करके कहिए।' शिरोमणिजी ने कहा, 'प्रभु, आपने भयंकर दुःसाहस किया था। इस प्रकार का संकल्प करना बड़ा अपराध है। प्रातः होते ही आप जाकर गोस्वामी

प्रभु से क्षमा माँगिए एवं सम्मान के साथ आदरपूर्वक उन्हें गोविन्दजी के मन्दिर में ले जाएँ। अगले दिन प्रातःकाल प्रभुसन्तान ने वही किया। श्रीगोविन्दजी का दर्शन करके ठाकुर भावावेश में अचेत हो गए; तब ठाकुर की वह अवस्था देखकर विद्रोही लोग बहुत लज्जित होकर पश्चात्ताप करने लगे। फिर सभी लोग बड़े आनन्द के साथ ठाकुर को लेकर हमारे कुंज में आए। ऐसा लगता है, इस प्रकार कोई असाधारण घटना न होने से इतने कम समय में इस स्थान पर ठाकुर का इस प्रकार गौरव और ऐसी प्रतिष्ठा असम्भव थी।

साधक का सुरापान क्या है?

आज ठाकुर अपराह्न के समय आसन से उठे नहीं। ठाकुर के पास बैठकर हम लोग विभिन्न विषयों पर प्रश्न करने लगे। मैंने पूछा- हम लोगों के लिए तो नशा करना बिल्कुल ही निषिद्ध किया गया है, परन्तु साधु-संन्यासी लोग तो खूब नशा करते हैं। शास्त्र में क्या मादक पदार्थ का सेवन निषिद्ध है?

ठाकुर ने कहा-**"मादक पदार्थ का सेवन सम्पूर्ण रूप से निषिद्ध है; शास्त्र में धर्मार्थियों के लिए मादक पदार्थ के सेवन की व्यवस्था कहीं नहीं है। जो लोग सदा पहाड़ों में घूमा करते हैं, उन स्थानों पर ही रहकर साधनादि करते हैं, उन्हें बहुत शारीरिक कष्ट सहना पड़ता है। विभिन्न स्थानों पर सर्दी-गर्मी आदि में शरीर को ठीक रखने हेतु उनके लिए मादक पदार्थ का सेवन आवश्यक होता है; परन्तु वह केवल शरीर की रक्षा के लिए ही है, उससे साधना में कोई सहायता नहीं मिलती; वरन्**

बहुत अनिष्ट ही होता है, चित्त विचलित होता है। योग-शास्त्र एवं आयुर्वेद में मादक पदार्थ के प्रयोग को बहुत बड़ा दोष बतलाया गया है। केवल शरीर रक्षा के लिए औषधि के रूप में लोग उसका सेवन करेंगे, औषधि का प्रयोजन पूर्ण होते ही फिर छोड़ देंगे-यही व्यवस्था है।"

मैंने कहा-क्यों? देखते तो हैं, तान्त्रिक साधक खूब शराब पिया करते हैं। शराब न पीने से मानो साधना ही नहीं होती है। वीराचारी लोग तो बहुत शराब पीते हैं, मांस खाते हैं, ये तो सभी जानते हैं।

ठाकुर ने कहा-**"शराब पीकर साधना करने की व्यवस्था वीराचारियों के लिए भी नहीं है। फिर भी स्वयं की परीक्षा करने के लिए वीर लोग उसका उपयोग कर सकते हैं, इतनी ही बात है। तन्त्र में जिस अवस्था को 'वीर' कहते हैं, वह तो बहुत सहज नहीं है।"**

मैंने पूछा-किस अवस्था में तान्त्रिक साधक 'वीर' होते हैं?

ठाकुर ने कहा-**"वीर सहज में नहीं होते; समस्त पशुभाव विनष्ट होने से ही वीर होते हैं। काम-क्रोधादि समस्त रिपु जब बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं, तभी वीराचारी हो सकते हैं।"**

मैंने कहा-शास्त्र में सुरापान की व्यवस्था नहीं है, आपने कहा; परन्तु तान्त्रिक लोग तो सुरापान का माहात्म्य दिखाकर कहते हैं-'पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले। उत्थाय च पुनः पीत्वा, पुनर्जन्म न विद्यते।।।

ठाकुर ने कहा-**"जिस सुरापान की यह व्यवस्था है, वह बाहर की सुरा नहीं है। ये सब मादक नहीं हैं। लोग इस बात को समझे बिना गडबड करते हैं। भक्ति के द्वारा इस देह से ही एक प्रकार**

की सुरा उत्पन्न होती है; उसे पीने से भयंकर नशा होता है। उसे अमृत कहते हैं; उसे पीने से फिर जन्म नहीं होता।"

मैंने कहा-भक्ति से देह के भीतर किस प्रकार सुरा उत्पन्न होती है? उसको पीएँगे भी कैसे?

ठाकुर ने कहा-**"देखो, जब हम लोगों को क्रोध आता है, तब मस्तिष्क के किसी एक विशेष स्थान पर एक प्रकार के प्रभाव से उस स्थान के रक्त में कुछ अन्य प्रकार का परिवर्तन होता है। वह रक्त तब गरम होकर अस्वाभाविक रूप से पूरे शरीर में फैल जाता है। काम से भी वैसा ही होता है। इस प्रकार सत्-असत् सभी भाव का मस्तिष्क के विशेष-विशेष स्थान पर एक-एक प्रकार की अनुभूति से रक्तादि में परिवर्तन होता है। वही शिरा-धमनी से होकर शरीर में सर्वत्र फैल जाता है। भाव, भक्ति, आनन्द से भी रक्त में इस प्रकार का परिवर्तन होता है! भक्ति से मस्तिष्क के रक्त की जो अवस्था होती है, बहुत अधिक होने से वह क्रमशः भाव के द्वारा गरम होकर एक प्रकार का रस बन जाता है। वह रस धीरे-धीरे तालू से चूकर जीभ पर गिरता है, वही रस अमृत है। उसकी दो-तीन बूँद ही पीने से इतना नशा होता है कि पाँच-सात दिन सहज में बिता दिया जाता है, भोजन की भी आवश्यकता नहीं होती। उसको ही सुरा कहा गया है, वही पीने की व्यवस्था है। उस सुरा की मादकता इतनी अधिक होती है कि जिन्होंने नहीं पिया है, बताने से वे किसी प्रकार भी समझ नहीं पाएँगे। उसको पीते ही मनुष्य अचेत हो जाता है। शरीर बिल्कुल अचल हो जाता है, लेकिन भीतर का ज्ञान कम नहीं होता, जैसा है, वैसा ही रहता है; केवल**

बाह्यज्ञान नहीं रहता।"

मैंने कहा-जिस अमृत की बात आपने कही है, वह पीने में कैसा लगता है? वह रक्त के किसी एक प्रकार के परिवर्तन से उसका ही टपका हुआ रस है, तब उसे पीने से क्या कोई अनिष्ट नहीं होता?

ठाकुर ने कहा-**"प्रत्येक बार उसका स्वाद भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। भक्ति के सब भावों के साथ उसका योग है। जिस भाव से भक्ति होती है, स्वाद भी उसी प्रकार का हुआ करता है-कभी नमकीन, कभी मीठा, तो कभी खट्टा-मीठा, फिर कभी तीखा, इस प्रकार विभिन्न स्वाद मिलता है। भक्ति का जिस समय जैसा भाव, उस समय वैसा स्वाद। मैंने तो देखा है, उसको पीने से कोई अनिष्ट नहीं होता; वरन् शरीर और भी स्वस्थ रहता है। उसको पीने से लम्बे समय तक भोजन न करने पर भी किसी प्रकार की दुर्बलता नहीं लगती; शरीर खूब बलिष्ठ और स्वस्थ हो जाता है। उससे शरीर का बहुत कल्याण होने के कारण ही शास्त्र में उसे 'अमृत' कहा है। वह वास्तव में अमृत है।"**

मैंने कहा-जिस भक्ति से वह अमृत उत्पन्न होता है, वह भक्ति कैसे प्राप्त होती है? हम लोग वह अमृत प्राप्त कर नहीं सकते?

ठाकुर ने कहा-**"इस अमृत को प्राप्त करने के लिए श्वास-प्रश्वास में खूब नाम-जप करो। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप कर पाने से ही देखना धीरे-धीरे सभी प्राप्त होगा। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना ही सबसे श्रेष्ठ उपाय है।"**

नाम-जप से ठाकुर की शुष्कता और ज्वाला

परमहंसजी की सान्त्वना

ठाकुर की बात सुनकर कहा-चेष्टा तो कम नहीं करता, लेकिन श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना असम्भव लगता है। नाम-जप करने से यदि आनन्द मिले, तब तो श्वास-प्रश्वास में प्रयास किया जा सकता है। नाम-जप जितने दिन शुष्क लकड़ी के समान नीरस रहता है, तब तक चेष्टा करने का धैर्य रहेगा कैसे? नाम-जप करने से क्या उपकार हो रहा है, वह भी तो समझ नहीं आता।

ठाकुर कहने लगे-**"उपकार क्या हो रहा है, वह अभी नहीं समझोगे। केवल नाम-जप करते जाओ। धीरे-धीरे सब समझोगे। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना बहुत ही कठिन है, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु इस कारण छोड़ मत देना। पहले-पहले नाम बहुत ही नीरस लगता है। मुझे जब गुरुदेव ने श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करने के लिए कहा, कुछ दिन प्रयास करने के बाद ही मुझे बहुत विरक्ति होने लगी। क्योंकि कुछ समझे बिना नीरस नाम का जप फिर कितने समय तक किया जाएगा? कई बार नाम-जप करते-करते इतना नीरस लगता था कि व्यर्थ ही जप कर रहा हूँ सोचकर छोड़ देने की इच्छा होती थी। तब एक दिन परमहंसजी ने दर्शन दिया; मैंने कहा-व्यर्थ में इस प्रकार नाम-जप अब नहीं कर सकता। नीरस नाम जपने से अब क्या होगा? कुछ भी तो समझ नहीं रहा हूँ। तब उन्होंने थोड़ा हँसते हुए मुझसे कहा-'केवल मेरा अनुरोध समझकर नाम-जप करते जाओ। नीरस लगता है लगने दो, उससे क्या होता है? विरक्ति लगने पर भी उससे कोई हानि नहीं है। नाम-जप करते रहो, धीरे-धीरे सब**

अनुभव होगा।"

मैंने परमहंसजी की बात के अनुसार फिर नाम-जप करना आरम्भ किया। गया के आकाशगंगा में, बराबर पहाड़ में और विन्ध्याचल में खूब नाम-जप करके छः मास बिताया, तब थोड़ा-थोड़ा अनुभव होने लगा। वहाँ मेरी विभिन्न प्रकार की अवस्था होने लगी। तब सो रहा हूँ या जाग रहा हूँ, इस विषय में भी समय-समय पर संशय होता था, तब संशय दूर करने के लिए कभी शरीर में काँटा चुभाकर देखा; कितना कुछ किया! फिर जब दरभंगा आया, गुरुदेव ने एक दिन दर्शन दिया। उनको मैंने अपनी सभी अवस्था खुलकर बतलाई; तब उन्होंने मुझसे इतना ही कहा-**'हठयोग प्रदीपिका' एवं 'विचारसागर' ये दो ग्रन्थ लेकर एक बार पढ़ो। मैंने पूछा-कहाँ मिलेंगें? उन्होंने एक दुकान का उल्लेख करके कहा- 'दरभंगा में केवल उस दुकान में ये ग्रन्थ हैं, पाँच रुपये लेगा। जाओ, ले आओ।' गुरुजी के कथनानुसार उस दुकान में जाकर देखा-केवल वही दो पुस्तकें ही उस दुकान में हैं। मूल्य भी पाँच रुपये लिया। मैंने दोनों पुस्तकें पढ़ी। देखा उन दोनों ग्रन्थ में जितनी अवस्थाओं की बातें लिखी हुई हैं, वे सभी मुझे प्राप्त हो गई हैं। वे सब अवस्थाएँ जब मुझे प्राप्त हुई, सोचा था, मेरी बुद्धि नष्ट हो गई है। ग्रन्थ पूरा पढ़ते ही गुरुदेव ने फिर दर्शन दिया। तब उनसे कहा-ये दोनों पुस्तक पढ़ने के लिए आपने मुझे पहले क्यों नहीं कहा; फिर इतना काण्ड नहीं करता। गुरुजी ने कहा-'नहीं, पहले देने से ठीक नहीं होता। तुम बड़े कट्टर लड़के हो, वह तो मैं जानता ही हूँ। दोनों ग्रन्थ पहले पढ़ा लेने से तुम सोचते- उसको पढ़ने के संस्कार से तुम्हारा माथा गड़बड़ हो**

गया है। इन सब अवस्थाओं पर तुम्हें यथार्थ विश्वास नहीं होता। अभी तुम अपनी अवस्था स्वयं अनुभव कर रहे हो। हजारों वर्ष पहले ऋषि-मुनि जो सब शास्त्र लिख गए हैं, उससे उन अवस्थाओं की पुष्टि होती है; अब मैं भी कहता हूँ, साधना द्वारा तुम्हें जो सब अवस्थाएँ प्राप्त हुई हैं, सभी सत्य है। फिर उस विषय में तुम्हें अब कोई संशय नहीं होगा। अवस्था प्राप्त करके ही उसकी सत्यता के प्रमाण के लिए शास्त्र देखना ठीक है। उससे शास्त्र में भी ठीक विश्वास होता है।' इतना कहकर ठाकुर थोड़ा रुक गए; फिर पुनः कहने लगे-"अनेक लोग मुझसे विभिन्न विषयों पर प्रश्न करते हैं; लेकिन उसका उत्तर देने में मुझे अच्छा नहीं लगता। एकमात्र श्वास-प्रश्वास में नाम-जप कर पाने से धीरे-धीरे सब अवस्थाएँ प्रकट होती रहेंगी। तब उसके प्रमाण के लिए शास्त्र देख लेना चाहिए। शास्त्र ही यथार्थ अवस्था का प्रमाण देगा। जो कुछ प्रत्यक्ष करोगे, ठोक-बजाकर देख लेना। तुम लोग तो थोड़ा-कुछ प्रत्यक्ष होने से ही विश्वास कर लेते हो; परन्तु मेरे साथ वैसा नहीं है। मैं जब तक समस्त इन्द्रियों द्वारा अच्छे-से ठोक-बजाकर समझ नहीं लेता कि सत्य है, तब तक उसे सत्य मानकर ग्रहण नहीं करता। वास्तव में, सब इन्द्रियों द्वारा ठोक-बजाकर जिसको सत्य मानते हैं, उसी पर विश्वास किया जाता है। किसी विषय को केवल देखकर, सुनकर अथवा स्पर्श करके तुरन्त सत्य मानकर ग्रहण नहीं करना; समस्त ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय द्वारा ठीक से ठोक-बजाकर सत्य को समझ लेने के बाद पुनः शास्त्र देखो। उसमें यदि प्रमाण मिले, तभी नि:शंक हो सकोगे; अन्यथा सच नहीं

होता।"

मैंने कहा-सुना है, सभी देवी-देवता, विशेषतः ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि पंच-देवताओं को सन्तुष्ट किए बिना मुक्ति नहीं मिलती, तो क्या उन सब लोगों की पूजा करनी होगी?

ठाकुर ने कहा-**"सभी का बहुत सम्मान करना; अनादर, अमर्यादा किसी की भी नहीं करना। उनकी पूजा न करने से भी चलेगा। पूजा द्वारा केवल उनका ही लोक प्राप्त होता है, मुक्ति नहीं होती।"**

मैंने फिर कहा, पूजा द्वारा उनको सन्तुष्ट न किया जाए, तो रास्ते में वे लोग किसी प्रकार का विघ्न तो उत्पन्न नहीं करेंगे?

ठाकुर ने कहा-**"एकमात्र भगवान् की पूजा से ही सब होता है। जैसे वृक्ष की जड़ में पानी देने से शाखा-प्रशाखा, फूल-पत्ते सभी में वह पानी जाता है, उसी प्रकार एकमात्र भगवान की पूजा करने से सभी को उससे सन्तोष होता है, आनन्द होता है।"**

हरिमोहन और मेरे दावन छोड़ने के सम्बन्ध में ठाकुर का कथन

४-५ अगस्त, सोमवार-मंगलवार। कुछ दिनों से मेरे सिर-दर्द का रोग बढ़ गया। ब्रह्मचर्य ग्रहण करने के बाद रात्रि का भोजन छोड़ दिया था। लगता है, उसी से इस रोग की पुनः उत्पत्ति हुई है। ब्रह्मचर्य आश्रम के नियमानुसार गुरु के प्रसाद के सिवा अन्य कुछ भी दूसरी बार ग्रहण नहीं करते। लगता है, इसी कारण आजकल कुछ दिनों से ठाकुर प्रतिदिन मुझे रात्रि में दूध-रोटी का प्रसाद देते हैं। ठाकुर के आहार की मात्रा निर्दिष्ट है, मुझे प्रसाद देना है, इसके लिए वे

परिमाण से अधिक कभी ग्रहण नहीं करते, अपने आहार के ही अंश से दिया करते हैं। कदाचित् ऐसी ही व्यवस्था है। अपने इस रोग के सम्बन्ध में ठाकुर को कुछ भी पता चलने नहीं दिया, क्योंकि उनको पता चलने से हो सकता है वे मुझे बड़े भैया के पास जाने के लिए कहें।

ठाकुर की अनुमति पाकर श्री योगजीवन नौकरी की प्रत्याशा से भागलपुर गए हैं। श्री मथुर बाबू ने उन्हें भरोसा देकर चिट्ठी लिखी थी। स्वामीजी (हरिमोहन) भागलपुर में बहुत दिन थे। वे भी अब शीघ्र ही वहाँ जाने के लिए व्यग्र हो रहे हैं। सतीश को भी ठाकुर बार-बार मातृ-सेवा के लिए गाँव जाने को कहते हैं, लेकिन सतीश किसी प्रकार से ठाकुर का संग छोड़कर न जाने की जिद कर रहे हैं। ठाकुर के साथ परम आनन्द से दिन बिता रहा हूँ, परन्तु मस्तिष्क पीड़ा की तीव्रता से बीच-बीच में बहुत अवसन्न हो जाता हूँ।

आज नित्यकर्म समाप्त करके ठाकुर के पास जाकर बैठते ही ठाकुर ने मेरी ओर देखकर कहा-**"देख रहा हूँ, तुम्हारा शरीर बहुत दुर्बल हो गया है; आधा सेर दूध तुम्हें पीना ही होगा। नहीं तो खूब अस्वस्थ हो जाओगे। फिर रात में नियमानुसार रोटी खाओ। ब्रह्मचर्य के सभी नियम ठीक-ठीक मानकर चलना पहले-पहल सहज नहीं है; धीरे-धीरे अभ्यास करना पड़ता है। शरीर के लिए जो आवश्यक है, वह नहीं करने से कैसे होगा? शरीर ठीक नहीं रहने से कुछ भी नहीं कर पाओगे। मस्तिष्क का रोग बड़ा खराब है। मस्तिष्क से ही सब काम-काज होते हैं। वह खराब होने से जीवन ही व्यर्थ हो जाता है। वरन् तुम कुछ समय के लिए अपने भैया के पास जा सकते हो। फैजाबाद बहुत**

अच्छा स्थान है। मस्तिष्क की अस्वस्थता भी दूर होगी, फिर साधना में भी कोई हानि नहीं होगी। भैया के संग से तुम्हारा उपकार ही होगा। शरीर थोड़ा स्वस्थ होने पर फिर चले आना।"

ठाकुर की बात सुनकर समझ गया, शीघ्र ही मुझे फैजाबाद जाना होगा। स्वामीजी (हरिमोहन) कुछ स्वस्थ होकर मथुरा से यहाँ आ गए हैं। रोग की यन्त्रणा से अत्यन्त दुःखी होकर उन्होंने मुझसे कहा-'भाई, भागलपुर में अच्छा था, क्यों मेरी ऐसी दुर्मति हुई, यहाँ आ गया? देह का यह क्लेश तो अब सहन नहीं होता। किसी प्रकार से थोड़ा स्वस्थ और सबल होने पर मैं पुनः भागलपुर जाऊँगा। धर्म-कर्म तो सभी जगह हो सकता है, आत्मीयजनों के पास रहना सुरक्षित भी है। बातों-बातों में आज स्वामीजी का अनुतापपूर्ण कथन मैंने ठाकुर से कहा। सुनकर ठाकुर कहने लगे-**"तीव्र वैराग्य उत्पन्न हुए बिना कर्म समाप्त नहीं होता। बलपूर्वक क्या कभी कर्म क्षय किया जाता है? हरिमोहन को मैंने बार-बार पहले ये सब कर्म समाप्त कर लेने के लिए कहा था। अब देखो, संन्यास लेकर उन्होंने पछतावा तक कर लिया है। इस अनुताप से उसका सब कुछ तो नष्ट हो गया। अब नियम के अनुसार कर्म समाप्त किए बिना हरिमोहन किसी प्रकार से स्थिर नहीं हो पाएँगे। कुछ भी नहीं होगा।"**

स्वामीजी ने भी ठाकुर की ये सब बातें सुनकर शीघ्र ही यह स्थान छोड़ने का निश्चय कर लिया।

वैराग्य, वासना और वैध कर्म

मैंने ठाकुर से पूछा-कर्म समाप्त न करने से लोगों की मुक्ति नहीं

होती। आपने कहा है, लेकिन ऐसा क्या कोई उपाय नहीं है, जिसका अवलम्बन करने से मनुष्य कर्म क्षय करके मुक्त हो सके?

ठाकुर ने कहा-**"हाँ, है क्यों नहीं? तीव्र वैराग्य द्वारा भी मुक्त हो सकते हैं, लेकिन वैसा वैराग्य है कहाँ? जब मन को विषय से हटाकर सम्पूर्ण रूप से भीतर की ओर आकर्षित कर सको और प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में नाम-जप कर सको, तभी आशा की जा सकती है। एक भी श्वास अथवा प्रश्वास व्यर्थ होने से यह नहीं होगा, क्योंकि उस छिद्र को पाते ही कितने शत्रु भीतर प्रवेश कर सकते हैं। इस निष्काम मुक्ति के पथ में कितने मनुष्य, गन्धर्व, देवतादि नाना प्रकार से विघ्न उत्पन्न करते हैं; इस पथ में सभी कठोर परीक्षा लेते हैं। वासनाहीन होकर तीव्र साधना किए बिना इस पथ पर चलना सम्भव नहीं है। इसीलिए वैध कर्म की व्यवस्था है। वैध कर्म द्वारा भोग समाप्त कर लेना ही सहज होता है।"**

मैंने कहा-जिस कर्म को समाप्त करने की बात आपने कही है, वह कर्म किस प्रकार का है? नौकरी करके संसार-गृहस्थी चलाना ही क्या कर्म है?

ठाकुर ने कहा-**"कर्म का अर्थ गृहस्थ होना या नौकरी करना नहीं है। जिसकी जिस विषय में आसक्ति है, उसका कर्म उसी को लेकर है।"**

मैंने पूछा-वैध भोग की बात जो कही है, वह किस प्रकार का है? शास्त्र के अनुसार भोग करने से ही तो वह वैध भोग है?

ठाकुर ने कहा-**"वैध भोग क्या है, उसे समझना बड़ा कठिन है। शास्त्र के अनुसार भोग तो ठीक है, लेकिन शास्त्र में भोग**

काटने के लिए प्रकृति की भिन्नता के अनुसार भिन्न-भिन्न कर्म की व्यवस्था है। जिसकी जैसी प्रकृति है, उसके लिए उसी प्रकार के कर्म की व्यवस्था है। इस प्रकार व्यवस्था के अनुसार कर्म का भोग ही वैध भोग है। शास्त्र देखकर प्रकृति के अनुरूप व्यवस्था ठीक कर लेना बहुत कठिन काम है। नियम से प्रकृति के अनुरूप कर्म करने से धीरे-धीरे भोग कट जाता है।"

मैं-शास्त्रोक्त लक्षण द्वारा क्या प्रकृति को पहचाना नहीं जा सकता?

ठाकुर-**"प्रकृति को जानना क्या इतना सहज है? शास्त्र पढ़कर अथवा अन्य किसी चेष्टा द्वारा उसका कुछ पता नहीं चलता।"**

मैं-तो फिर अन्दाज से किस प्रकार कर्म करूँगा?

ठाकुर-**"अपनी प्रकृति स्वयं कभी कोई समझ नहीं पाता। इसीलिए सद्गुरु का आश्रय लेना होता है; सद्गुरु जिसकी जैसी प्रकृति स्पष्ट प्रत्यक्ष करते हैं, उस प्रकृति के अनुसार कर्म की व्यवस्था कर देते हैं। बिना विचार किए उनके आदेशानुसार कर्म करते जाने से सहज में कर्म समाप्त हो जाता है। इसके सिवा कोई उपाय नहीं है।"**

मैं-अभी तक मेरा मानना था कि नौकरी करना, गृहस्थ होना ही कर्म है।

ठाकुर ने कहा-**"वासना में ही कर्म है; वासना की निवृत्ति ही कर्म का उद्देश्य है। वैध भोग द्वारा ही वासना समाप्त करनी पड़ती है। जिसकी जिस ओर वासना है, उसका कर्म भी उसी ओर है। केवल गृहस्थी करना अथवा नौकरी करना कर्म नहीं**

है।"

मैंने पूछा-धर्म-प्राप्ति के लिए घर-बार, माता-पिता को छोड़कर जो लोग आते हैं, वह धर्म-प्राप्ति भी तो उसकी वासना है। अतएव वही तो उसका कर्म है।

ठाकुर ने कहा-**"वह तो है ही, फिर भी यदि केवल धर्म की ओर वासना रहे, तब तो वह निर्विघ्न उसको कर सकेगा। और यदि अन्य ओर भी वासना रहती है, तो स्थिर होकर धर्मानुष्ठान नहीं कर सकेगा। जिस परिमाण में अन्य ओर वासना रहेगी, उसी परिमाण में उसको उद्विग्न होना होगा और भुगतना होगा। इसीलिए अन्य वासना को समाप्त करके आना पड़ता है।"**

मैं-कर्म जिससे समाप्त हो जाए, सद्गुरु तो वही करने के लिए कहते हैं, किन्तु उस प्रकार करने से कर्म समाप्त हुआ या नहीं कैसे समझूँगा?

ठाकुर ने कहा-**"जब देखोगे किसी ओर भी कोई वासना नहीं है, विषय के सम्पर्क से भी सब इन्द्रियाँ सम्पूर्ण अनासक्त हैं, निवृत्त हैं, तभी समझना ये सब कर्म समाप्त हो गए हैं।"**

गोसाँईजी प्रदत्त उपवीत की शक्ति

आज मध्याह्न में सतीश ने मुझे एकान्त में ले जाकर कहा-'भाई, बतलाओ तो क्या करूँ? मेरी दुर्दशा दिनों-दिन बढ़ती ही जा रही है। प्रायः गोसाँईजी मुझे घर जाकर माँ की सेवा करने के लिए कहते हैं-मेरी तो बिल्कुल ही वैसी इच्छा नहीं होती। कर्म में यदि मातृ-सेवा है, तो क्या गोसाँईजी उसको काट नहीं सकते?' मैंने कहा-थोड़ा भोगे बिना सहज में ये कर्म काटा जा सकता तो फिर

क्या वे काट नहीं देते? ठाकुर ने जो कहा है, बिना विचार किए वैसा करना तो अच्छा है। सतीश ने कहा-‘भाई, वह तो नहीं कर पाऊँगा। वैसी बात फिर मत कहना। गोसाँईजी इच्छा करने से सब कुछ कर सकते हैं। केवल व्यर्थ में हम लोग को भुगताकर मार रहे हैं। मैं उनकी अद्भुत शक्ति देखकर चकित हो गया। जानते तो हो मैं कट्टर ब्रह्मसमाजी था। सहज में कुछ भी विश्वास नहीं करता था, लेकिन गोसाँईजी की अद्भुत शक्ति देखकर तो अविश्वास करने का कोई उपाय नहीं है। कुछ दिन पहले की एक घटना सुनो, समझ जाओगे।’ उसके बाद सतीश मुझसे इस प्रकार कहने लगे-“भाई, जनेऊ त्यागकर ब्राह्मधर्म में दीक्षा ली थी। वह पूरी घटना तो जानते ही हो। कुछ दिन पहले पिता की मृत्यु हो गई। माँ ने मुझे घर आने के लिए संवाद भेजा, लेकिन पिता की मृत्यु का संवाद सुनते ही न जाने मुझे क्या हो गया। सब छोड़-छाड़कर तुरन्त पैदल श्रीवृन्दावन के लिए निकल पड़ा। रास्ते में कितनी अवस्थाओं में पड़ा, कितना दुःख भुगतना पड़ा, कह नहीं सकता। बहुत कष्ट के बाद श्रीवृन्दावन आया। तब प्रतिदिन गोसाँईजी के साथ मेरा झगड़ा होता था। यहाँ आते ही गोसाँईजी ने मुझसे कहा-**‘तुम्हारे पिता की प्रेतात्मा सब समय तुम्हारे ऊपर रहती है, जाकर शास्त्र के अनुसार श्राद्धादि करो। उससे उनका बड़ा कल्याण होगा, तुम्हारा भी उपकार होगा।’** मैंने गोसाँईजी से कहा-‘जनेऊ त्यागकर मैं ब्राह्म हुआ था। शास्त्र के अनुसार श्राद्ध कैसे करूँगा?’ गोसाँईजी ने कहा-**‘जनेऊ पुनः ग्रहण करो, तब फिर हो जाएगा।’** मैंने कहा-‘यदि ग्रहण ही करना होता, तो फिर त्याग क्यों किया था? जनेऊ का यदि वैसा कोई गुण रहता, तो क्या उसका त्याग करता-अथवा त्याग कर

पाता?' गोसाँईजी ने मेरी यह बात सुनकर बड़े तेज स्वर में कहा-**'अच्छा, जनेऊ का गुण नहीं है! उस प्रकार से जनेऊ मिला नहीं है, तभी तो; उस प्रकार से ब्राह्मण जनेऊ देता तो सामर्थ्य था जो तुम त्याग करते? जनेऊ का गुण देखोगे? अच्छा मैं जनेऊ देता हूँ, तुम त्याग करो तो।'** यह कहकर कुछ क्षण बाद गोसाँईजी ने मेरे गले में जनेऊ पहनाकर कहा-**'सतीश, इस जनेऊ को अब तुम फेंको तो।'** भाई, गोसाँईजी के जनेऊ देते ही तुरन्त उसे फेंक दूँगा, मन में पहले से सोच रखा था-जिद भी मेरी बहुत थी। गोसाँईजी ने जब वैसा कहकर मुझे जनेऊ दिया, मैं उसको उसी क्षण फेंकने के लिए जैसे ही जनेऊ को स्पर्श किया, मेरी न जाने कैसी अवस्था हो गई, सारा शरीर बारम्बार सिहरने लगा, भीतर से वेग के साथ गायत्री-मन्त्र उठने लगा, भीतर में एक प्रकार के अपूर्व आनन्द की स्फूर्ति हुई। मेरे सारे अंग अवसन्न हो गए, तब मैं रोने लगा, बारम्बार गोसाँईजी को प्रणाम करने लगा, इसीलिए कहता हूँ भाई, मैंने तो कई बार देखा है, गोसाँईजी सब कुछ कर सकते हैं। फिर हमें क्यों व्यर्थ में भुगता रहे हैं?" सतीश की बात सुनकर मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ। ठाकुर से ब्रह्मचर्य मिलने के बाद से अपने स्वयं के ही जीवन में जो सब अद्भुत घटनाएँ अनुभव कर रहा हूँ, उसका स्मरण करके सोचा-'ये फिर है ही क्या? अपनी अद्भुत अनुभूतियों की बात को गुप्त रखकर सतीश से कहा-यह सब देखकर ही तो ठाकुर की किसी बात को अस्वीकार करने का साहस नहीं होता।

सतीश ने अपने रिपु की उत्तेजना के सम्बन्ध में जिन सब शोचनीय दुर्दशाओं की बात कही, उसे सुनकर आश्चर्य हुआ। मैं

उसकी दुरावस्था का विवरण सुनकर दुःखित होकर चुपचाप बैठा रहा। कुछ समय बाद मैं ठाकुर के पास गया। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने कहा-**"सतीश अपनी जिन सब अवस्थाओं की बात तुमसे कह रहे थे, उससे समझा जाता है, यहाँ अब उनका रहना ठीक नहीं है। उनसे कह दो, अन्यत्र जाकर रहें।"**

मैंने ठाकुर के कहे अनुसार जाकर सतीश से सब कहा। सतीश ने मुझसे विरक्त होकर धमकाते हुए कहा-'जा, जा, बेटा, गोसाँईजी मुझसे नहीं कह सकते?' तब मैंने ठाकुर से वह बात कही तो ठाकुर ने सतीश को बुलाकर कहा-**"सतीश तुम्हारे भीतर की जैसी अवस्था है, स्त्री लोगों से दूर रहना ही अच्छा है। यहाँ जब स्त्रियाँ रहती हैं, तब तुम अन्यत्र जाकर रहो। भोजनादि यहाँ कर लिया करो, रहने का बन्दोबस्त अन्य कहीं कर लो।"**

ठाकुर की बात सुनकर सतीश एकदम उछल पड़े और बड़े तेज स्वर में कहने लगे-'क्यों, मैं क्यों जाऊँ? स्त्रियाँ सब यहाँ से चली जाएँ। उन लोगों को अन्यत्र जाने के लिए क्यों नहीं कहते? संन्यासी के आश्रम में स्त्रियाँ क्यों रहेंगी? मैं कभी यहाँ से नहीं जाऊँगा।' सतीश यह बात कहकर ठाकुर के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना उसी समय नीचे चले गए। माता ठाकुरानी ने कहा-'सतीश की माँ की जो भयंकर अवस्था है, कहा नहीं जाता। समय-समय पर उनकी ज्वाला की आँच मेरी छाती में लगती है। उसी से मैं बेचैन हो पड़ती हूँ।' ठाकुर ने कहा-**"पिता का श्राद्ध किए बिना सतीश इस प्रकार आ गए हैं, इसी कारण विभिन्न प्रकार के कष्ट भोग रहे हैं।"**

श्राद्ध से प्रेतात्मा की यन्त्रणा की शान्ति

तब मैंने पूछा, 'श्राद्ध से क्या वास्तव में प्रेतात्मा का क्लेश दूर होता है?' ठाकुर ने यहाँ पर कुछ दिन पहले हुई एक घटना का उल्लेख करते हुए कहा-**"एक दिन मैं यमुना के किनारे-किनारे चलकर जैसे ही कालीदह के पास पहुँचा, एक प्रेत मेरे सामने गिरकर भयंकर छटपटाने लगे। मैंने उनसे पूछा-वैसा क्यों कर रहे हो? प्रेत ने कहा-'प्रभु, रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए, अब यह क्लेश सहन नहीं कर पा रहा हूँ। सैकड़ों-हजारों बिच्छू मुझे सब समय डंक मार रहे हैं। यन्त्रणा से छटपटाकर रात-दिन मैं दौड़-धूप करता हूँ। क्षणभर के लिए भी मुझे छुटकारा नहीं मिल रहा है। आप मेरी रक्षा कीजिए।' मैंने उनसे कहा-आपके किस पाप का यह दण्ड हैं? प्रेत ने चीखकर रोते हुए कहा- 'प्रभु, यहाँ मैं • • • मन्दिर में पुजारी था। ठाकुर सेवा के लिए जो अर्थादि मिलता, सेवा में न लगाकर उसे मैं भोग-विलास और बदमाशी में उड़ाता था। यही मेरा सबसे बड़ा अपराध है।' मैंने उनसे पूछा-आपके इस भोग की शान्ति कैसे होगी? प्रेतात्मा ने कहा-'मेरा श्राद्ध नहीं हुआ है; श्राद्ध होने से ही इस क्लेश की शान्ति होगी। आप दया करके मेरे श्राद्ध की व्यवस्था कर दीजिए।' मैंने कहा-किस प्रकार व्यवस्था करूँगा? प्रेत ने कहा- 'अपने श्राद्ध के लिए डेढ़ हजार रुपये अपने भतीजे के हाथ में दिया था, लेकिन उसने अभी तक मेरा श्राद्ध नहीं किया। आप दया करके उस रुपये को लेकर कुछ अंश ठाकुर की सेवा में दे दीजिए; बचे रुपयों द्वारा मेरे कल्याण हेतु श्राद्ध करके महोत्सव करने से मुझे इस यन्त्रणा से छुटकारा मिलेगा।' प्रेत की बात सुनकर मैं उस मन्दिर के वर्तमान पुजारी के पास जाकर सब बतलाया। फिर**

पूरी घटना उस प्रेत के भतीजे को भी विस्तारपूर्वक बतलाई गई। वे सोच रहे थे, उस रुपये की अब कोई खबर नहीं लेगा। जो भी हो, उसने पूरे रुपये देकर विधिपूर्वक श्राद्धादि किया। महोत्सवादि भी हुआ। फिर उस प्रेत की वह यन्त्रणा दूर हो गई। यहाँ कुछ दिन पहले ही यह घटना हुई है।"

चीरघाट में नौका-लीला

संध्या के कुछ पहले हम लोग ठाकुर के साथ बाहर निकले। यमुना के किनारे-किनारे चलकर चीरघाट पहुँचे। वहाँ ठाकुर एक वृक्ष के नीचे बैठकर दूसरे छोर के बेलवन की ओर देखने लगे, थोड़े समय के बाद ही वे समाधिस्थ हो गए। कुछ क्षण तक स्थिर भाव से नाम-जप करके संध्या के बाद हम लोग कुंज में लौटे। कुतु तुरन्त एक लोटा पानी लाकर ठाकुर के चरण धोने के लिए सीढ़ी के किनारे खड़ी हो गई। ठाकुर ने परिहास करके कुतु से कहा-**"कुतु, आज बिल्लियों का कितना ही मल रौंदते हुए आया हूँ। पैरों में सब मल सना हुआ है।"** कुतु 'ठीक है, ठीक है' कहकर जैसे ही पैरों को पकड़ने गई, ठाकुर ने दोनों पैर हटाते हुए कहा-**"अरे, रुक न, पैर में सब घृण्य मल लगा हुआ है।"** कुतु ने कहा-'ठीक है न, उससे मुझे थोड़ी-भी घृणा नहीं। मैं रगड़कर अच्छे-से धो देती हूँ।' ठाकुर ने कहा-**"अरे तेरे हाथ में मल लगेगा।"** कुतु ने थोड़ा हँसकर कहा-'ये क्या कहते हो, तुम्हारे पैरों में जो लगा है, वह फिर मल कैसा?' ठाकुर ने फिर कुछ कहा नहीं। मैं कुतु का यह भाव देखकर चकित रह गया। 'अहा! ठाकुर के श्रीपादपद्म में जो लगा है, वह फिर क्या मल है? उससे फिर घृणा क्यों?' ठाकुर के प्रति कहाँ

तक श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न होने से इस प्रकार का भाव स्वाभाविक होता है, मैं उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। धन्य है कुतु!

हम सभी बरामदे में आकर ठाकुर के पास बैठे हैं, कुतु ने ठाकुर से कहा-"बाबा, यमुना के किनारे में जब हम सभी बैठे थे, तब तुम समाधि अवस्था में **'डूबोगे नहीं, डूबोगे नहीं'** कहकर खूब हँसे क्यों थे? वह बात तुमने किससे कही थी?"

ठाकुर ने कहा-"और किससे कहूँगा?" कुतु ने कहा-'खुलकर क्यों नहीं कहते?' ठाकुर ने कहा-**अरे यमुना के किनारे में बैठते ही कृष्ण नौका लेकर आए, मुझसे कहे-'उठ! एक बार यमुना में नौका-विहार करें। कृष्ण के कहने पर नौका पर चढ़ गया। कृष्ण नौका के एक सिरे पर थे। यमुना के बीच में नौका ले जाकर उन्होंने उस सिरे को पानी के भीतर दबा दिया। तब नौका मानो डूबने लगी। नौका में जो लोग थे, सभी एकदम चिल्लाने लगे। मैंने देखा, कृष्ण नौका को डुबाने ही वाले हैं। तब मन में सोचा, कृष्ण केवल डरा रहे हैं। यह नौका कभी डूबेगी नहीं। नौका के डूबने से तो केवल हम लोग नहीं डूबेंगे, कृष्ण जब नौका में हैं, उस सिरे पर नौका में पानी चढ़ने पर पहले कृष्ण ही डूबेंगे। वही सबसे कहा था, 'डरो मत, डूबोगे नहीं, डूबोगे नहीं; ये कृष्ण की चालाकी है!'**

कुतु-तुम कृष्ण के साथ गए, हम लोगों को क्यों नहीं ले गए?

ठाकुर-अरे, वह तो बहुत छोटी नौका थी; फिर उसमें क्या अधिक लोग आ पाते?

माता ठाकुरानी ने कहा-'अपना खेल कम-से-कम देखने देते। आपने वह भी तो नहीं किया।'

ठाकुर ने कहा-'उससे फिर क्या लाभ होता? एक चित्र देखने के जैसा देखना, उसके सिवा कुछ नहीं है।'

माता ठाकुरानी ने कहा-'तो भी हानि क्या थी? नहीं से तो काना अच्छा।'

माता ठाकुरानी, कुतु एवं ठाकुर श्रीकृष्ण-लीला के सम्बन्ध में और भी कई बातें करने लगे; किन्तु मैं उसको कुछ समझ नहीं पाया।

कुतु ने ठाकुर से कहा-बाबा, जब गेण्डारिया में थी, तब तुमने मुझे चिट्ठी क्यों नहीं लिखी?

ठाकुर ने कहा-**तेरे को क्या चिट्ठी लिखता? तू तो सब समय मुझे देख पाती थी।**

कुतु ने कहा-देख लेती थी, इसलिए तुमको क्या चिट्ठी भी नहीं लिखना चाहिए?

ठाकुर ने कहा-**देख लेने, बात सुन लेने के बाद भी चिट्ठी की आवश्यकता है?**

कुतु ने कहा-देख तो लेती थी, लेकिन बातें तो सदा सुन नहीं पाती थी।

ठाकुर ने कहा-**सब समय बातें सुनना भी क्या अच्छा लगता है?**

मैंने थोड़ा अवसर पाकर कुतु से पूछा-कुतु! आजकल तुम्हें मच्छर काटते नहीं?

कुतु ने कहा-काटेंगे क्यों? बाबा ने मच्छर को जो मना कर दिया है।

बहुत समय तक इन लोगों की इस प्रकार बातचीत के बाद हम

लोग शयन करने चले गए।

माता ठाकुरानी को ठाकुर के साथ रखने की बात

६ अगस्त, बुधवार। कल सतीश ने क्रोधवश ठाकुर को जो सब बातें कही थीं, उससे चिन्ता हुई, ऐसा लगता है ठाकुर फिर माता ठाकुरानी को अन्यत्र जाकर रहने के लिए कहेंगे। ठाकुर ने तो कहा था कि साथ में माता ठाकुरानी के रहने से आश्रम की मर्यादा का उल्लंघन होता है। माता ठाकुरानी को साथ में रखे हैं। यह ठाकुर की अपनी इच्छा है या परमहंसजी का आदेश, उसे समझ नहीं पा रहा हूँ। इस विषय में पूछना आरम्भ करते ही ठाकुर मन्द-मन्द मुस्कुराकर कहने लगे-

"कुछ समय पहले एक दिन गुरुदेव मुझे सूक्ष्म शरीर से ले जाकर पहाड़ों में घूमने-फिरने लगे। फिर मुझे लेकर मन्दार पर्वत में पहुँचे। वहाँ उन्होंने कृपा करके मुझे ऊर्ध्वरेता कर दिया। बहुत समय से ऊर्ध्वरेता होने की मेरी एक इच्छा थी। मेरी वह अवस्था होने पर मैंने उनके लिए विशेष रूप से कहा, दया करके उनको भी उन्होंने वह अवस्था दे दी। फिर एक दिन गुरुदेव ने आकर मुझसे कहा, 'तुम तो सम्पूर्ण निरापद् हो गए हो। तुम पहाड़-जंगल में रहो या घर-गृहस्थी में ही रहो, सभी जगह तुम्हारी अवस्था एक ही प्रकार है। उनको तुम यहीं रखो; अच्छा होगा।' गुरुदेव के आदेशानुसार ही उन्हें फिर लाया गया है, अन्यथा मैं तो उत्तरकुरु ही जाऊँगा, सोचा था।"

ठाकुर की बात सुनकर बड़ा लज्जित हुआ। सोचने लगा, 'हाय

रे! क्या दुर्दशा है। ठाकुर के कार्य में भी मेरी फिर प्रश्न करने की प्रवृत्ति हुई। जो भी हो, कुछ क्षण बाद ही पूछा-क्या उत्तरकुरु जाना सम्भव है?

ठाकुर ने कहा-**"जा क्यों नहीं सकते? किन्तु बड़ा कष्टदायक है।**

मैंने कहा-सुना है, मानससरोवर और कैलास में कोई जा नहीं सकता?

ठाकुर ने कहा-**"जा क्यों नहीं सकता? हठयोग का अच्छा अभ्यास रहने से जा सकता है। नहीं तो जाना असम्भव होता है। उस दिन जो परमहंस यहाँ आए थे, वे कैलास से ही आए थे।"**

कैलास यात्रा का विवरण

मैंने ठाकुर से पूछा-उस साधु के साथ क्या पहले से आपका परिचय था? वे किस प्रकार गए थे-अकेले या साथ में कोई और भी थे?

ठाकुर कहने लगे-**कुछ वर्ष पूर्व उस परमहंस के साथ भेंट हुई थी। एक हठयोगी साधु, ये परमहंस और मैंने कैलास जाने के संकल्प से यात्रा आरम्भ की। पहाड़ी रास्तों पर बहुत दूर चलते-चलते एक बहुत बड़े पर्वत के समीप पहुँचे। एक व्यक्ति ने आकर हमें जाने से रोकते हुए कहा-'उस पहाड़ पर जाने का हुकुम नहीं है।' उनसे पूछा गया, क्यों? उन्होंने कहा, 'उस पहाड़ पर चढ़ते ही मनुष्य पत्थर हो जाता है। उनकी बात पर सन्देह करने से उन्होंने हमें बहुत दूर में पहाड़ के ऊपर तीन मनुष्यों को**

दिखलाते हुए कहा-‘वह देखो, वे पत्थर हो गए हैं।’ उस पहाड़ पर चढ़ने के रास्ते में पहाड़ के ही किनारे एक बड़े पत्थर पर बड़े-बड़े अक्षरों से खुदा हुआ है-‘अत्र अग्रे न गच्छन्ति। (यहाँ से आगे नहीं जाना) पहाड़ की वैसी दशा देखकर युधिष्ठिर स्वर्ग जाते समय उस प्रकार की बात लिख गए थे, ऐसा न हो कि कोई उस पथ से चलकर संकट में पड़ जाए। हमने वह सब देखकर उस ओर से जाने का संकल्प त्याग दिया। हठयोग का मेरा अभ्यास नहीं है, मार्ग में और भी कितने प्रकार के विघ्न रह सकते हैं, सोचकर मैं लौट आया; परन्तु वे दोनों संन्यासी लौटे नहीं। उन लोगों ने कहा-‘अग्नि का अभाव हम लोगों को होगा नहीं, साथ में ‘चकमक’ पत्थर है। रास्ते में यदि पानी मिले, तो फिर हम लोगों की क्रिया चलेगी; क्रिया के चलने से हम लोगों के शरीर को कुछ नहीं होगा। यह बात कहकर वे लोग अन्य पथ से थोड़ा घूमते हुए चले गए। इस बार श्रीवृन्दावन आने से उसी परमहंस के साथ मेरी भेंट हुई। उन्होंने रास्ते का सारा विवरण मुझसे कहा। सुना-वे लोग पहाड़ी रास्ते से बहुत दिन तक चलकर मानससरोवर पहुँचे। कैलास जाने के लिए मानससरोवर होकर ही जाना पड़ता है। कैलास के सभी यात्री एक निर्दिष्ट दिन तक वहाँ प्रतीक्षा करते हैं। उस निर्दिष्ट दिन में मानससरोवर के बीच से महादेव का रथ निकलता है। जिन लोगों को उस रथ का चूड़ा भी दिख जाता है, वे लोग ही कैलास यात्रा करते हैं, अन्य सब रह जाते हैं। यदि कोई रथ अथवा चूड़ा का दर्शन न पाकर भी कैलास जाते हैं, तो कैलास जाकर उनके भाग्य में महादेव का दर्शन नहीं रहता। कैलास के यात्रियों के

लिए महादेव-दर्शन की वही परीक्षा है। हठयोगी और परमहंस ने मानससरोवर जाकर देखा, निर्दिष्ट दिन आने में समय है तो उन्होंने मानससरोवर की परिक्रमा की। परिक्रमा में उनको १७ दिन लगे। निर्दिष्ट दिन आने पर सरोवर के चारों ओर हजारों साधु-महात्माओं का 'हर हर, बम बम' शब्द उठने लगा; फूल, बिल्वपत्र, धूप-धूना, चन्दन आदि लेकर सब सरोवर में महादेव की पूजा-आरती करने लगे। उस समय मानससरोवर का जल चक्कर लगाता हुआ खूब घूमने लगा। महादेव की स्तुति करते-करते सभी सरोवर की ओर ताकते रहे। यथासमय घूर्णित जल के बीच से स्वर्णरथ का चूड़ा निकला। परमहंस तो उसका दर्शन पाकर कैलास की ओर चल पड़े; परन्तु हठयोगी साधु को चूड़ा का दर्शन नहीं हुआ, इस कारण वहाँ से लौट आए।

"परमहंस अन्य कुछ महात्माओं के साथ जाकर ठीक समय पर कैलास पहुँच गए। कैलास पर्वत के एक सौ आठ शिखर एक के बाद एक श्रृंखलाबद्ध ऊँचे हैं। प्रत्येक शिखर ही शिवलिंग के आकार के हैं। उन सब शिखरों को भी शिवलिंग कहते हैं। उन सब शिवलिंग की परिक्रमा करके कैलास में चढ़ने का नियम है। एक-एक शिखर की परिक्रमा में लगभग एक-एक दिन लगते हैं। सुना है, एक सौ आठ शिखर की परिक्रमा में उन लोगों को ठीक एक सौ आठ दिन लगे थे। ठीक शिवचतुर्दशी के दिन कैलास के ऊपर मन्दिर के समीप वे लोग पहुँच गए। यथासमय रात्रि में अपने-आप मन्दिर का दरवाजा खुल गया। तब सभी ने मन्दिर के भीतर प्रत्यक्ष रूप से साक्षात् महादेव और भगवती का दर्शन पाया। यह दर्शन अधिक समय के लिए नहीं होता, केवल तीन-

चार मिनट ही होता है। परमहंस के साथ भेंट होने पर अनेक बातें हुईं। तीन-चार वर्ष के बाद इस बार उनके साथ भेंट हुई।

तिब्बत में बंगाली बाबू

ठाकुर की ये सब बातें सुनकर पूछा-सुना है, तिब्बत देश में भी बहुत अच्छे-अच्छे बौद्ध लामा योगी हैं। उन सब स्थानों पर हम जा नहीं सकते?

ठाकुर ने कहा-**पहले तो इस देश के साधु लोग वहाँ जा सकते थे। अब वहाँ जाने का कोई उपाय नहीं है। एक बंगाली बाबू के जाने के बाद से वहाँ पर बड़ी कठिनाई हुई थी। वहाँ कानून निकल गया। अब तिब्बत में अन्य किसी को घुसने का हुकुम नहीं है।**

पूछा-बंगाली के जाने से क्या अनिष्ट हुआ था?

ठाकुर ने कहा-**कुछ दिनों पहले छद्म वेश में एक बंगाली बाबू तिब्बत जाकर उस देश की भाषा सीखने लगे और गुप्त रूप से उस देश का नक्शा अंकित करने लगे। फिर अन्त में पकड़े जाने पर, वे अपने देश लौट नहीं पाएँगे, राजा का ऐसा आदेश हुआ। बंगाली बाबू ने राजा के पण्डित की शरण ली एवं जिससे अपने देश लौट पाएँ, ऐसी व्यवस्था कर देने के लिए उनसे प्रार्थना की। विपत्ति में पड़े शरणागत का परित्याग नहीं करना चाहिए सोचकर पण्डितजी ने उनको आश्रय दिया। फिर पण्डितजी के कथनानुसार उन्होंने शपथ ली कि देश में जाकर वह भाषा वे अन्य किसी को नहीं सिखाएँगे और तिब्बत के रास्ते आदि की जानकारी भी किसी को नहीं देंगे। राजपण्डित बड़े धार्मिक**

व्यक्ति थे। उन्होंने उस बात पर विश्वास करके, उस बंगाली बाबू को कन्धे पर उठाकर गहन रात्रि के समय पहाड़ी रास्ते से लगभग चार-पाँच कोस चलकर एक निरापद् स्थान पर पहुँचा दिया। बाबू ने कोलकाता आते ही सब प्रकट कर दिया एवं तिब्बती भाषा भी सिखाने लगे। इस बात का क्रमशः तिब्बत में प्रचार होने से वहाँ के राजा ने उस पण्डित को भयानक दण्ड दिया। एक चमड़े के भीतर उनको भरकर चारों ओर से सिलाई करके नदी में डुबवा दिया। एक लामा-गुरु ने कुछ दिन पूर्व मुझे ये सब बातें बतलाई। उन्होंने यह भी कहा-'राजा यदि हमारे जैसे दस हजार लोगों का सिर लेकर भी योगीश्रेष्ठ पण्डितजी को छोड़ देते, तो देश के सभी लोग उससे खुश होते। गुरुजी सभी विषयों में सर्वश्रेष्ठ थे, राजा भी उनका बड़ा सम्मान एवं पूजा करते थे; लेकिन इस प्रकार कठोर शासन नहीं होने से देश की रक्षा करना कठिन होगा, यह सोचकर उन्होंने देश के प्रधान व्यक्ति को इस प्रकार मृत्यु-दण्ड दिया।' वह लामा-साधु बारम्बार 'बेईमान बंगाली, बेईमान बंगाली' कहने लगा। फिर बंगाली लोगों के ऊपर तिब्बती लोगों को अब विश्वास नहीं रहा- वे सभी अब 'बेईमान बंगाली' ही कहते हैं।

माता ठाकुरानी का योगैश्वर्य और आकांक्षा

श्रीवृन्दावन में आकर माता ठाकुरानी के असाधारण कार्यों को देखकर आश्चर्य हो रहा है। ये सब घटनाएँ किस प्रकार घट रही हैं, कुछ भी समझ नहीं पा रहा हूँ। माता ठाकुरानी ने आकर हम लोगों के आहारादि का समस्त भार स्वयं ग्रहण कर लिया है। हम इतने

लोगों को जब जिस वस्तु की आवश्यकता होती है, वह न बतलाने पर भी, माता ठाकुरानी स्वयं उसे समझकर जुगाड़ कर देती हैं। रुपया-पैसा पहले जैसा आता था, अब भी ठीक उसी प्रकार आ रहा है, फिर भी हम लोगों को किसी वस्तु का अभाव नहीं है। भण्डार-घर सर्वदा ही वस्तुओं से भरा रहता है। प्रतिदिन हम नौ-दस लोग दोनों समय भोजन किया करते हैं, उसके अतिरिक्त कुंज में निमन्त्रणादि का कार्य भी दो-तीन दिन के अन्तर में चलता है- माता ठाकुरानी एक छोटे 'पतीले' में केवल एक बार चावल पकाती हैं, उस पात्र में एक सेर से अधिक चावल समाता नहीं। दाल, तरकारी आदि पाँच-छ: प्रकार के व्यंजन एक छोटी कढ़ाही में बना लिया करती हैं। पात्र छोटा होने पर भी एक ही वस्तु को दुबारा बनाना, माता ठाकुरानी का नियम नहीं है। कभी-कभी जब हम १५-२० लोग भोजन के लिए पहुँच जाते हैं एवं अतिरिक्त लोगों का भोजन के लिए निमन्त्रण होता है, तब भी माताजी नियमित परिमाण से अधिक रसोई नहीं बनातीं। रसोई हो जाने पर दाऊजी को भोग लगाती हैं; भोग लग जाने के बाद सारा प्रसाद रसोईघर में रखा जाता है। रसोईघर में ही हम लोग भोजन करते हैं। आश्चर्य का विषय यह है कि केवल एक छोटे पतीले के प्रसाद एवं निर्दिष्ट परिमाण के व्यंजनादि द्वारा हम जितने भी लोग उपस्थित क्यों न रहें, माता ठाकुरानी अपने हाथ से परिवेषण करके सभी को तृप्तिपूर्वक भरपेट भोजन करा दिया करती हैं। सबका भोजन हो जाने पर माताजी एवं कुतु प्रसाद पाती हैं। अतिरिक्त भात एवं तरकारी आदि की व्यवस्था कहाँ से किस प्रकार होती है, समझ में नहीं आता। यह आश्चर्यजनक घटना प्रतिदिन ही यहाँ होती है।

दाल, तरकारी आदि सभी व्यंजन का स्वाद भी एक नये प्रकार का देखता हूँ इस प्रकार का स्वादिष्ट व्यंजन जीवन में और कभी कहीं खाया हूँ, ऐसा स्मरण में नहीं आता।

कुतुबुड़ी भोग की रसोई के समय माता ठाकुरानी की सहायता करती हैं। उस समय हम लोगों को उस ओर जाने का हुकुम नहीं है। रसोई का सारा प्रबन्ध करके भात और पाँच-सात प्रकार के व्यंजन बना लेने में माता ठाकुरानी को दो-तीन घण्टे से अधिक समय किसी दिन भी नहीं लगता। किस कौशल से माता ठाकुरानी यह सब कार्य श्रृंखलाबद्ध रूप से जो पूर्ण किया करती हैं, विभिन्न प्रकार से जाँच-पड़ताल करके भी उसको कुछ समझ नहीं पाया। एक दिन मध्याह्न में भोजन के बाद हरिवंश का पाठ करके माता ठाकुरानी के कमरे में जाकर बैठ गया। माता ठाकुरानी ने मुझसे कहा-'कुलदा, लगता है, शीघ्र ही तुम्हें गाँव जाना होगा। गाँव जाकर माँ की अच्छे-से सेवा करना।' माता ठाकुरानी की बात सुनकर मैं चौंक उठा। पूछा-'मुझे गाँव जाना होगा, क्या आप यह स्पष्ट देखकर कह रही हैं?' माता ठाकुरानी ने कहा-'क्यों? गाँव जाने की तुम्हारी इच्छा नहीं होती? गाँव जाने से तुम्हारा भला होगा।' मैंने कहा-माँ, आपके विषय में तो मैं कुछ नहीं जानता। अपनी अवस्था की दो-एक घटना मुझे बताइए न। आप कृपण के समान सब छिपाकर क्यों रखती हैं? माताजी ने कहा-'तुमको एक बात कहती हूँ, यदि धर्म-जगत् में बड़े व्यक्ति बनना चाहते हो, धनी होना चाहते हो, तो कृपण बनो। अपनी कोई भी अवस्था किसी को मत बतलाना, बतलाने से फिर वह रहती नहीं।'

मैंने पूछा-भविष्य की सब घटनाएँ क्या आपके सामने प्रकट

होती हैं?

माता ठाकुरानी-होंगी क्यों नहीं? फिर सभी क्या प्रकट होती हैं? दूर की विशेष-विशेष घटनाओं का पता चल जाता है; और आने वाले पाँच-सात दिनों की घटनाएँ सदा ही प्रकाशित रहती हैं।

मैं-साधना के समय आपको दर्शनादि नहीं होते? कभी समाधि होती है?

माता ठाकुरानी-साधन-भजन करती कहाँ हूँ? दिन का समय तो सेवा के काम-काज में बीत जाता है। मध्याह्न में समय मिलने पर थोड़ा विश्राम करती हूँ। संध्या का समय भी ठाकुर-दर्शन में ही निकल जाता है, केवल रात्रि में बैठती हूँ। तब दर्शन भी होता है। कभी-कभी इच्छा होती है, समाधि लेकर पड़ी रहूँ, फिर वह इच्छा होती नहीं, समाधि की अपेक्षा इस प्रकार से सेवा का कार्य करके दिन बिता देना ही अच्छा है।

इस प्रकार कई बातें कहने के बाद माताजी ने मुझसे अपने-आप ही कहा-'भविष्य में किसकी क्या दशा होगी, वह तो इस समय कहा नहीं जा सकता। इसलिए तुमको कुछ बातें कह रही हूँ, ध्यान रखना। माँ के लिए मुझे बड़ा कष्ट होता है। माँ बड़ी दुःखी हैं। वे सदैव मेरे ही भरोसे रही हैं। कितना कष्ट पाई हैं। एक दिन के लिए भी वे सुखी नहीं हो सकीं। भविष्य में माँ के भाग्य में क्या है, कह नहीं सकते। माँ को देखना; वृद्धावस्था में किसी के लिए भार स्वरूप न हो। माँ यदि किसी तीर्थ में जाकर रहना चाहे तो चार-पाँच रुपये मासिक की व्यवस्था कर देना और उनको खूब सान्त्वना देना।

मैंने कहा-नानीजी के लिए आप चिन्ता न करें। किसी समय भी

उन्हें कष्ट नहीं होगा। भिक्षा करके भी मैं नानीजी का अभाव दूर करूँगा।

माता ठाकुरानी ने फिर कहा-'तुम्हें और एक काम करना होगा। शान्तिसुधा गर्भवती है। मैं उसको छोड़कर आ गई हूँ। माँ के साथ उसका वैसा प्रेमभाव नहीं है। शान्ति का दिमाग भी स्वस्थ नहीं है। गर्भावस्था में यदि सदा मानसिक कष्ट पाए तो गर्भस्थ सन्तान का अनिष्ट होगा। तुम शान्ति को मेरी ओर से एक पत्र लिख दो। मेरा जो कुछ है, सभी शान्ति का है। गेण्डारिया-आश्रम शान्ति का ही है, जिससे शान्ति वहीं पर निश्चिन्त होकर रहे।

माता ठाकुरानी के आदेशानुसार उनके नाम से मैंने तुरन्त श्रीमती शान्तिसुधा को पत्र लिखा। उन्होंने उस पर हस्ताक्षर कर दिया। माता ठाकुरानी की ये सब बातें सुनकर मुझे नाना प्रकार की दुश्चिन्ता होने लगी। ठाकुर ने कहा था कि माताजी को अब गेण्डारिया नहीं लौटाया जा सकता। उस बात का भी मुझे इस समय स्मरण हुआ। सोचा, यदि माता ठाकुरानी शीघ्र ही देह त्याग करेंगी, तो मैं उनकी कोई सेवा कर ही नहीं पाया।

मैंने माताजी से पूछा-माँ, आपकी बातें सुनकर मुझे नाना प्रकार की आशंका होती है। आपके मन में किसी प्रकार की कुछ आकांक्षा है या नहीं, जानने की इच्छा है।

माताजी ने कहा-'कुतु का विवाह हिन्दू समाज में हो और योगजीवन समाज में सम्मिलित हो, मेरी यही दो आकांक्षाएँ हैं।' फिर कहा-'गोस्वामीजी महाराज महाभारत पढ़ना चाह रहे थे, उनको एक महाभारत देने की इच्छा होती है। कुतु बच्ची है, ब्रजमाइयों के समान उसके पैरों में एक जोड़ा पायल देने से अच्छा

होता। मेरी और कोई वासना नहीं है।’

माता ठाकुरानी कुतु के विवाह के लिए थोड़ा व्याकुल हैं, उनकी बातों से लगता है। उन्होंने इस सम्बन्ध में मुझसे और भी कई बातें कही।

स्वप्न में भूत का उपद्रव

७ अगस्त, गुरुवार। आज अवसर पाकर रात के एक भयानक स्वप्न का वृत्तान्त ठाकुर से बतलाया। ‘रात्रि में लगभग ढाई बजे देखा, मैं आसन पर बैठकर नाम-जप कर रहा हूँ, अचानक एक विशाल आकृति का भूत आकर मेरे सामने उपस्थित हुआ। विभिन्न प्रकार से डराकर मुझे साधना से विरत करने का प्रयास करने लगा। मैं डर के कारण बीच-बीच में काँपने लगा, लेकिन नाम-जप छोड़ते ही विपत्ति में फँसना पड़ेगा सोचकर बड़ी दृढ़ता के साथ नाम-जप करने लगा। तब वह भूत एक विशाल खड्ग हाथ में लेकर मुझे काट डालने का भय दिखाने लगा एवं बोला-‘वह नाम लेगा, वह साधना करेगा तो तेरे को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा। शीघ्र उस साधना को छोड़ दे।’ मैं भूत का वह विशाल आकार और भयंकर आक्रोश देखकर बहुत घबरा गया। तब अचानक मुझे स्मरण हुआ, गुरुदेव ने कहा है-‘स्थिर भाव से साधना करने, नाम-जप करने से फिर कोई थोड़ा भी प्रहार नहीं कर सकता। यह बात स्मरण होते ही भूत की ओर दृष्टि रखकर मैं नाम-जप करने लगा। तब भूत मेरी ओर बढ़ न सका। ‘नाम जपना छोड़, नाम जपना छोड़’ कहकर चीखने लगा। फिर छटपटाते हुए एकदम से भागकर अदृश्य हो गया। मैं भी नाम-जप करते-करते जाग उठा। स्वप्न का विवरण सुनकर ठाकुर ने

कहा-**ये क्या, यह तो कुछ भी नहीं है! जिस पथ पर चले हो- कितने बाघ, साँप, कितने भूत-प्रेत, कितने देवी-देवता आकर बाधा देंगे। सभी साधना छुड़ाने की चेष्टा करेंगे। बहुत सावधान रहना, कभी किसी प्रकार भी नाम-जप छोड़ना नहीं। नाम-जप करने से ही वे सब उत्पात दूर होंगे। नाम-जप छोड़ने के लिए अनेक लोग कहेंगे।**

प्रकृति का रोगः कर्म ही धर्म है

मैंने पूछा-हरिवंश-पाठ शेष हो जाने के बाद अब और कौन-कौन सा ग्रन्थ पढूँगा?

ठाकुर ने कहा-**महाभारत आरम्भ से अन्त तक अच्छे-से पढ़ो। उद्योगपर्व, शान्तिपर्व एवं अश्वमेधपर्व को बड़े ध्यान से पढ़ना। भागवत का एकादश और द्वादश स्कन्ध एवं तृतीय स्कन्ध पढ़ो। ये सब पढ़ने के बाद रामायण और योगवाशिष्ठ पढ़ सकते हो। अन्य कोई पुराणादि का पाठ अभी मत करना। इन कुछ ग्रन्थों को पढ़ लेना ही पर्याप्त है।**

मैंने कहा-जिसकी कभी कल्पना नहीं की थी, ऐसी श्रेष्ठ अवस्था में आपने मुझे रखा है। काम-क्रोधादि के नाम की गन्ध भी मेरे भीतर है, पता नहीं चलता, परन्तु आपका साथ छूटने पर कितने प्रकार की परीक्षा-प्रलोभन में पड़ सकता हूँ। तब मेरे ब्रह्मचर्य की किस प्रकार रक्षा होगी?

ठाकुर ने कहा-“**परीक्षा-प्रलोभन में भले ही पड़ो। उसके लिए तुम्हें चिन्ता क्यों है? जहाँ भी रहो, ब्रह्मचर्य के नियम का प्रतिपालन करके चलने का प्रयास करो। उससे ही सब ठीक**

होने लगेगा। काम, क्रोध ये सब तो मनुष्य की प्रकृति नहीं है-ये सब मनुष्य की प्रकृति का रोग है। रोग होने से जिस प्रकार औषधि का सेवन आवश्यक है, उसी प्रकार इन सब उत्पातों के प्रतिकार के लिए ब्रह्मचर्य आवश्यक है। शरीर के रस से ही ये सब नाना प्रकार के विकारों की उत्पत्ति होती है। इसलिए शरीर के रस को घटा लेना चाहिए। रस को कम करने के लिए आहार के सम्बन्ध में बहुत सावधान रहना पड़ता है। इन सब विषयों में जितना हो सकता है प्रयास करो, क्रमशः सब ठीक होने लगेगा।

इसके बाद ठाकुर से धर्म-कर्म, पाप-पुण्य एवं वैराग्य के सम्बन्ध में पूछा। उसके उत्तर में ठाकुर ने संक्षेप में कहा-**जो सब कर्म धर्म-प्राप्ति के अनुकूल है, उसे ही करना चाहिए। धर्म के प्रतिकूल कर्म ही पाप है। मनुष्य चाहे तो दो दिन की साधना से ही हो सकता है पाप को दूर कर भी ले; मनुष्य में पाप छोड़ने की क्षमता है, किन्तु कर्म छोड़ने की क्षमता नहीं है। कर्म करके ही कर्म क्षय करना पड़ता है। कर्म किए बिना किसी का भी उद्धार नहीं होता। कर्म धर्म के बाहर का विषय नहीं है, कर्म ही धर्म है। धर्म-कर्म की अतीत अवस्था बहुत दूर की बात है। वैराग्य का अर्थ यह नहीं है कि काम-काज छोड़ दिया, भिक्षा द्वारा जीवन निर्वाह कर लिया। सभी विषयों से इन सब इन्द्रियों का सम्पूर्ण रूप से निवृत्त होना ही वैराग्य है। विषयों में अनासक्ति होने से ही समझो कि वैराग्य हुआ है। कर्म किए बिना वैराग्य नहीं होता। तुम लोग निश्चित रूप से जान लो; जितना ही क्यों न करो, कर्म जिसका जितना है, आज हो, कल हो चाहे दो दिन बाद हो, एक दिन करना ही होगा। उसको किए बिना किसी प्रकार से छुटकारा नहीं मिलेगा।**

एकमात्र भगवान् की कृपा से ही क्षणभर के भीतर सब समाप्त हो सकता है, अन्यथा बलपूर्वक कर्म त्यागने का सामर्थ्य किसका है?

मातृ-सेवा एवं भ्रातृ-सेवा का आदेश

ठाकुर की बातें सुनकर मैं भयभीत हो गया। कितने कर्म का बोझ मेरे भाग्य में है, कुछ भी तो नहीं जानता। शीघ्र ही उन सबको दूर किए बिना किसी भी प्रकार से स्थिर नहीं हो पाऊँगा; निश्चिन्त होकर साधन-भजन, भगवान् का नाम कुछ कर नहीं पाऊँगा। गुरुदेव तो मेरा सब जानते ही हैं। मेरा क्या-क्या कर्म है, उनसे ही स्पष्ट रूप से पूछकर उसे समाप्त कर डालूँगा। ऐसा मन में सोचकर मैंने ठाकुर से कहा-मेरा जो कर्म है, मैं तो वह जानता नहीं। आप मुझे स्पष्ट रूप से बता दीजिए, मैं बड़े उत्साह के साथ वही करूँगा। सतीश को मातृ-सेवा करने के लिए प्रतिदिन तो कहते हैं; स्वामीजी को भी कर्म करने हेतु कितना कहते हैं, लेकिन उन लोगों की वैसी मति नहीं होती। इस प्रकार की दुर्मति बाद में मेरी भी तो हो सकती है। इसलिए आप स्पष्ट रूप से बता दीजिए, मुझे क्या करना होगा?

ठाकुर ने कहा-**तुम्हारा कर्म मातृ-सेवा ही है। उसे कर लेने से सब ठीक हो जाएगा। नियम के अनुसार ब्रह्मचर्य की रक्षा करते हुए अभी जाकर माँ की सेवा करो। उससे ही सब ठीक होगा। कुछ समय माँ की सेवा करने से ही समझ पाओगे कि उससे कितना उपकार होता है? तुम्हें नौकरी करके अर्थोपार्जन की चेष्टा या गृहस्थी नहीं करनी होगी। माता की सेवा कर लोगे, उससे ही तुम्हारा सब कर्म कट जाएगा।**

मैंने कहा-मेरी सेवा से माँ सन्तुष्ट होकर, यदि मुझे धर्म-प्राप्ति के लिए आशीर्वाद देकर छोड़ देती हैं, तब फिर आपके साथ रह पाऊँगा तो?

ठाकुर ने कहा-**सेवा से सन्तुष्ट होकर माँ तुम्हें छोड़ देती हैं, तो उनकी अनुमति लेकर सहज में हमारे साथ रहना। वह सब हो जाएगा। अभी जाकर खूब भक्ति के साथ माँ की सेवा करो।**

ठीक इसी समय दस रुपये के एक मनी-आर्डर पर मेरे हस्ताक्षर करवाने के लिए पोस्टमैन मुझे पुकारने लगा। हस्ताक्षर करके मैंने दस रुपये ले लिए। देखा, फैजाबाद से बड़े भैया ने ये रुपये भेजे हैं। अचानक वे इस समय मुझे रुपये क्यों भेजे, समझ में नहीं आया। ठाकुर से यह बात कहते ही उन्होंने कहा-अभी तुम यहाँ से अपने भैया के पास चले जाओ। कुछ दिन वहाँ उनकी सेवा करो। सन्तुष्ट होकर वे अनुमति दें, तो घर जाकर माँ की सेवा करना। सेवा द्वारा सब गुरुजनों को सन्तुष्ट करके उनकी अनुमति और आशीर्वाद लेकर फिर धर्म के पथ पर चलना चाहिए। ऐसा होने से सहज में इस पथ पर चल सकते हैं। गुरुजन और आत्मीयजन में यदि एक व्यक्ति भी विरोधी हो, तो धर्म पथ में अनेक विघ्न आते हैं।

इन सब बातों के बाद ठाकुर ने मुझे कांगाल फकीर के 'ब्रह्माण्डवेद' का पाठ करने के लिए कहा। ठाकुर की दीक्षा और हम लोगों की साधना में शक्ति-संचार का प्रसंग इस पत्रिका के विभिन्न स्थानों पर कांगाल ने कुछ-कुछ लिखा है। ठाकुर के कहने पर मैं उसे पढ़कर सुनाने लगा।

कांगाल के ब्रह्माण्डवेद में ठाकुर की दीक्षा और

शक्ति-संचार की कथा

कांगाल का ब्रह्माण्डवेद, प्रथम भाग, पृष्ठ- ३९२। "२३ जनवरी, सन् १८८५ ई. को प्रातःकाल पण्डित विजयकृष्ण महोदय ने जिस समय कोलकाता के साधारण ब्राह्म-समाज की वेदी का कार्य सम्पादन किया, उस समय ऐसा एक दृश्य प्रकाशित हुआ था, तब अनेक लोग 'माँ माँ' करते हुए उच्च स्वर में रो पड़े थे। इस दृश्य में मोहम्मद, नानक देव का हाथ पकड़कर, फिर नानक अन्य भक्तों के साथ गले मिलकर 'एकमेवाद्वितीयम्' का कीर्तन करते हुए भावावेश में नाचे थे। महात्मा राजा राममोहन राय भी वहाँ उपस्थित थे। उसके अगले वर्ष २३ जनवरी, १८८६ ई. को प्रातः विजयकृष्ण महोदय ढाका के साधारण ब्राह्म-समाज की वेदी में उपासना कर रहे थे, तब उसी प्रकार का एक आध्यात्मिक दृश्य प्रकाशित हुआ। सन् १८८६ ई. के अप्रैल महीने में रंगपुर काकिनिया के जमींदार कुमार महिमारंजन राय ने जिस समय वहाँ ब्राह्म-मन्दिर की प्रतिष्ठा की एवं जिस दिन विजयकृष्ण गोस्वामीजी ने प्रातः वेदी का कार्य सम्पादन किया, उस दिन भी उस प्रकार का एक दृश्य पुनः प्रकाशित हुआ था, लेकिन वह पहले के समान स्पष्ट नहीं दिखा।"

कांगाल का ब्रह्माण्डवेद, द्वितीय भाग, पृष्ठ-२४३। "असाम्प्रदायिक धार्मिक-प्रवर श्रीमत् विजयकृष्ण गोस्वामी ने कहा कि वे किसी समय पर्वतवासी कुछ योगियों के साथ भेंट करने गए थे। उनके पथ-प्रदर्शक एक मद्रासी व्यक्ति साथ में थे। पर्वत के निकट पहुँचते ही, ललाट आदि स्थानों में सिन्दूर लगाए हुए एक भीषणमूर्ति भैरव ने उन लोगों को आगे आने से रोकने के लिए पत्थर फेंकना आरम्भ

किया। भैरव के इस व्यवहार से मद्रासी तो जातीय तेज से गरम हो उठे। गोस्वामीजी ने उनको रोककर कहा, 'गरम होने से काम नहीं होगा। मैं इसका उपाय करता हूँ। उसके बाद भैरव के थोड़ा अन्यमनस्क होने से गोस्वामीजी शीघ्रता से जाकर उनके दोनों पैर पकड़ लिए। भैरव ने हँसते हुए कहा, 'तुम लोग समझ रहे हो मैं बड़ा पाखण्डी और निर्दयी हूँ, वास्तव में वैसा नहीं है। इस पर्वत में जो कुछ एक योगी रहते हैं, वे लोग सिद्ध-पुरुष हैं। मैं उन लोगों की सेवा के लिए नियुक्त हूँ। विषयी लोग विषय का शुभ-अशुभ जानने के लिए उन्हें सदैव विरक्त करते हैं। इससे साधना में विघ्न पड़ता है। इस कारण वे लोग अब सुरंग के पथ से पर्वत के भीतरी भाग में चले गए है। धर्म-जिज्ञासुओं के लिए वहाँ जाना निषिद्ध नहीं है। कौन धर्म-जिज्ञासु हैं और कौन विषयी, मैं पत्थर फेंक-फेंककर उनकी परीक्षा लिया करता हूँ। विषयी होने से भयभीत होकर चले जाएँगे और यथार्थ धर्म-जिज्ञासु होने से तुम लोगों के समान उद्देश्य को नहीं छोड़ेंगे। यदि इच्छा हो तो मेरे साथ चलो, योगीजनों को देख सकोगे, लेकिन वहाँ पानी नहीं है, यहीं पर कुछ खाकर झरने से पानी पी लो।' यह कहकर उस भैरव ने नर-कपाल में नर-मांस लाकर उन लोगों को खाने के लिए दिया। 'मैं किसी प्रकार का मांस नहीं खाता' कहकर गोस्वामीजी ने उसे छोड़ दिया। इससे भैरव ने विरक्त होकर उन लोगों के प्रति घृणा का भाव दिखलाया, किन्तु मार्ग-दर्शक बनकर उन्हें योगियों के पास ले गया। गोस्वामीजी सुरंग के मार्ग में लेटकर कोहनी के बल चलते हुए बड़े कष्ट से योगियों के पास पहुँचे और उन लोगों को प्रणाम करके उन्होंने देखा, वह स्थान बिना छत का एक दरवाजे वाले कोठे की भाँति है, अर्थात्

चारों ओर दीवाल के समान चट्टानें हैं, बीच का स्थान अति सुन्दर स्वच्छ एवं वृक्ष-लता से सुशोभित है। उन योगियों में से एक ने गोस्वामीजी से पूछे बिना ही भैरव को डाँटते हुए कहा-'तुमने अघोरपन्थी का पथ अवलम्बन किया है, अतएव नर-मांस तुम्हारा खाद्य है, लेकिन अन्य पथावलम्बियों का जो खाद्य नहीं है, उनको तुमने वह क्यों दिया? इससे तुम्हारी विचित्र निर्लज्जता दिखाई पड़ती है। तुम क्या सोचते हो, अघोरपन्थी न होने से कोई सिद्ध नहीं हो सकता? यह तुम्हारी बहुत बड़ी भूल है। पथ कुछ नहीं है, केवल उपाय है। सिद्धि प्राप्त करना अलग बात है। हम जो चार लोग यहाँ पर हैं, सभी ने क्या एक ही पथ का अवलम्बन करके साधना की थी? कोई वैष्णव, कोई अन्य प्रणाली का अवलम्बन करके साधना करने में प्रवृत्त हुए थे। अब सभी का पथ और उद्देश्य एक है। अतः इस समय अन्य कोई प्रणाली नहीं है। गोस्वामीजी ने योगियों से जो कुछ पूछने का विचार किया था, भैरव को दी गई चेतावनी के रूप में ही योगीवर ने उस प्रश्न का उत्तर दे दिया। योगी लोग जो बाहरी दोनों नेत्र की भाँति ललाट के भीतर तृतीय नेत्र से सभी जान सकते हैं, देख पाते हैं, यह घटना उस बात की पुष्टि करती है। उसके बाद योगियों ने गोस्वामीजी के साथ जिस प्रकार की बातचीत की, उसमें उन्होंने पृथ्वी के भिन्न-भिन्न देशों की भिन्न-भिन्न घटनाएँ कही। गोस्वामीजी को संवाद-पत्र पढ़कर जो ज्ञात हुआ था एवं लोक-परम्परा से उन्होंने जो सुना था, उसके साथ उन समस्त बातों का मेल देखकर गोस्वामीजी चकित हो गए। घने वनाच्छादित पहाड़ी क्षेत्र में संवाद-पत्र तो दूर रहा, सांसारिक लोगों का भी आवागमन नहीं है। विशेषकर, पृथ्वी के सब देशों का

इतिहास और वर्तमान घटनाओं का संवाद, पाठक जिससे अवगत नहीं हैं, योगीगण उसे जानते हैं, यह जो दिव्य-दृष्टि का फल है, उसे कौन अस्वीकार कर सकता है?”

ठाकुर से पूछा-भैरव जब पत्थर फेंकने लगे, आप लोगों ने क्या किया? वह क्या आप लोगों के शरीर में लगा था?

ठाकुर-**भैरव भयंकर चिल्लाकर गाली देते-देते पत्थर फेंकने लगे, तब साथ के ब्रह्मसमाजी मित्र तो दौड़कर भाग गए। पत्थर मेरे शरीर पर पड़ने लगे। पैर में एक ही स्थान पर दो पत्थर पड़ने से चोट लगकर झर-झर रक्त बहने लगा। मैं पैर को झटकारकर उसी स्थान से हाथ जोड़कर भैरव की ओर एकटक देखता रहा। भैरव तब चकित होकर मेरी ओर देखते रहे। उसी अवसर में दौड़कर मैं उनके पैरों पर गिर पड़ा। तब वे आदरपूर्वक मुझे पकड़कर पहाड़ के एक निर्जन स्थान पर ले गए। वहाँ पर भैरव ने मुझे एक जले हुए हाथ की हथेली लाकर खाने के लिए देते हुए कहा, ‘महाप्रसाद पाइए’। हाथ की हथेली उन लोगों के लिए बड़े सम्मान का आहार है। मैं मांस नहीं खाता कहकर उसका परित्याग कर दिया तो वे बड़े दुःखी हुए। फिर मुझे महापुरुषों के पास ले गए। देखा, एक कमरे के चार कोने में चार महात्मा समाधि लगाकर बैठे हैं। उनमें से एकजन पहले आचारी थे, एकजन अघोरी, एकजन कापाली और एकजन नानकपन्थी थे। इस प्रकार परस्पर विरुद्ध पथावलम्बी थे। गया के गम्भीरनाथजी भी उनमें से एक थे। वे सभी एक ही स्थान पर शान्तिपूर्वक परमानन्द से हैं। उन लोगों के साथ अनेक विषयों में बातचीत हुई।**

मैं ठाकुर के कहने पर ब्रह्माण्डवेद तृतीय भाग के १७८ पृष्ठ में ठाकुर की दीक्षा के विषय में कांगाल का लेख पढ़ने लगा।

कांगाल का ब्रह्माण्डवेद, तृतीय भाग, पृष्ठ- १७८। "बहुतों को स्मरण होगा, एक बार खूब चर्चा उठी थी कि असाम्प्रदायिक धार्मिक-प्रवर श्रीमान् पण्डित विजयकृष्ण गोस्वामी संसार-धर्म का त्याग करके संन्यासी हो गए हैं। यह कोलाहल बिल्कुल निराधार नहीं है। गोस्वामीजी ने दार्जिलिंग के वनाच्छादित प्रान्त में षट्चक्रभेदी किसी योगी का साधन देखकर एवं उनके पास बैठकर उनके नर्मदा के किनारे अवस्थित गुरुदेव के दर्शन करने हेतु अपने आत्मीयजनों से विदा माँग ली थी। घटनावश वे वहाँ न जाकर गयाधाम में स्थित ब्रह्मयोनि पर्वत पर पहुँचे एवं वहाँ के वैष्णव महन्त से उन्होंने साधन की शिक्षा लेनी चाही। इस समय उन्होंने विलास-वेश त्यागकर संन्यासी वेश में वहाँ के आश्रम के महन्त परमहंस से लगभग नौ महीने तक अनुष्ठान के साथ ज्ञान, योग, भक्ति और कर्म की पद्धति सीखी थी। इतना करके भी अपने साधन के धन को हृदयमन्दिर में न देख पाने से इस प्रकार व्याकुल हो गए थे कि वे एक निर्जन वन में अचेत अवस्था में कुछ दिन पड़े रहे। उसके बाद लगातार स्पर्श के अनुभव से जागने पर उन्होंने देखा, एक परमहंस की गोद में लेटे हैं। प्रकृतिस्थ होने पर गोद से उतरकर उस अपरिचित परमहंस को प्रणाम करके उनके चरणों में गिर पड़े एवं प्रार्थना की, 'आप मुझे अपने आश्रम में ले चलिए, मैं जिससे साधन के धन को हृदय में देख सकूँ, वैसा उपदेश दीजिए; मैं अब गृहस्थाश्रम में लौटूँगा नहीं।' परमहंसप्रवर ने कहा-'वत्स! शान्त होकर हमारी बात सुनो, तुम्हारे स्त्री, पुत्र, कन्या एवं अनाथ सास तुम्हारे आश्रित हैं, उन लोगों का

त्याग करने से तुम दोषी होगे और कुछ भी साधन नहीं कर पाओगे।' गोस्वामीजी के स्त्री-पुत्र आदि हैं, सम्पूर्ण अपरिचित बहुत दूर स्थित निर्जन पर्वतवासी उसे किस प्रकार जान गए! गोस्वामीजी इस कारण आश्चर्यमय दृष्टि से उनके मुख की ओर देखते रह गए। फिर पुनः एक अन्य बात सुनकर और भी चकित हो गए, जब परमहंस ने हास्यपूर्वक कहा, 'वत्स! तुम कुछ लोगों ने मिलकर एक घर को 'उजाड़ दिया है, घर को पुनः आच्छादित कर सके, ऐसा एक भी व्यक्ति तुम लोगों के बीच नहीं देख पा रहा हूँ। जैसा उजाड़े हो, वैसे ही छाने का उपाय करो, अन्यथा ईश्वर के समक्ष अपराधी होगे।' गोस्वामीजी ने परमहंसजी के रहस्यमय उपदेश का तात्पर्य समझकर, उनके चरण पकड़कर कातर स्वर में कहा, 'भगवान्! मुझमें थोड़ा भी वह सामर्थ्य नहीं है। योग्यता प्राप्त करने के लिए ही इतने दिन आश्रम में वास किया और अब आपका अनुगामी होना चाहता हूँ। परमहंसदेव ने कहा, 'मैं मानससरोवरवासी योगी हूँ, तुम्हारे वैराग्य के बारे में जानकर तिब्बत छोड़कर इस गयाधाम में आया हूँ, अब डर नहीं है। मैं जो उपदेश दे रहा हूँ, उसके कार्य में परिणत होने से घर जैसा था, नये आच्छादन से फिर वैसा ही हो जाएगा। उन्होंने यह बात कहकर ज्ञान, योग और भक्ति साधना के लिए उपयोगी सहज प्राणायाम सिखला दिया एवं कहा, 'मैं आज से तुम्हारी साधना में सहायक हो गया हूँ। जो किसी भी देश में किसी भी साधन पद्धति का अवलम्बन करके साधना करते हैं, मैं उन लोगों की सहायता किया करता हूँ।' इस प्रकार के विविध वार्तालाप के बाद गोस्वामीजी समझ गए, वे सामान्य परमहंस नहीं हैं। उनका जो शरीर दिख रहा है, वह भी जड़मय देह नहीं है। परमहंसप्रवर ने

सूक्ष्म शरीर में आकर उन पर कृपा की है। अतएव उनके शिक्षा-साधन को आदरपूर्वक धारणकर अपने विरही पुत्रादि के साथ कोलकाता पहुँचकर कार्यक्षेत्र में लग गए।”

“हम लोगों ने देखा है, विजयकृष्ण गोस्वामीजी जिस पद्धति से प्राणायाम की शिक्षा देकर साधन प्रदान कर रहे हैं, उसमें ज्ञान-साधना के साथ योग और भक्ति-साधना संयुक्त है। अतएव उक्त साधन-प्रणाली श्रीचैतन्यदेव द्वारा चलाई हुई साधन-प्रणाली के सम्पूर्ण अनुरूप है एवं बहुत ही सहज है और विषयी लोगों के समय के अनुसार आवश्यक है। जो लोग ब्रह्माण्डवेद में प्रदर्शित साधन-प्रणाली को कठिन समझते हैं, वे लोग गोस्वामीजी की प्रणाली का अवलम्बन करके साधना करने से सहज में कृतार्थ हो सकते हैं। हमने उक्त प्रणाली का अवलम्बन करने वाले तीन-चार लोगों को कृतार्थ होते देखा है एवं गोस्वामीजी को उपदेश देनेवाले परमहंसप्रवर जो साधनार्थी के सहायक हुआ करते हैं, उसे निःसन्देह रूप से केवल समझा ही नहीं हैं, वरन् कभी-कभी प्रत्यक्ष भी किया है।”

नाना स्थानों से ठाकुर को मन्त्र प्राप्तः नाना प्रकार की साधना

परमहंसजी से दीक्षाः तैलंग स्वामी की कथा

ब्रह्माण्डवेद पाठ के बाद ठाकुर से पूछा-आपकी दीक्षा के सम्बन्ध में कांगाल जिस प्रकार लिखे हैं, वह क्या ठीक है?

ठाकुर ने कहा-**बहुत-कुछ वैसा ही है। फिर कहीं-कहीं गड़बड़ भी है।**

इसके बाद सतीश, श्रीधर एवं मैंने ठाकुर के साथ बातों-बातों में उनके मन्त्र प्राप्ति और साधनादि के विषय में बहुत-सी बातें पूछी। उत्तर में ठाकुर ने जिस प्रकार कहा, यथासाध्य लिखकर रख रहा हूँ-

ठाकुर कहने लगे-**बचपन में माताजी के साथ मुझे शिष्यों के घर जाना पड़ता था। हमारी कुल-प्रथा के अनुसार तब माताजी ने ही मुझे मन्त्र दिया था। उपनयन के बाद मैं खूब निष्ठापूर्वक प्रतिदिन संध्या आदि नित्यकर्म किया करता था। कुछ दिनों के बाद पाठशाला में संस्कृत पढ़कर वेदान्त की आलोचना से मैं अद्वैत मत को मानने लगा। मैंने तभी जनेऊ का त्याग कर दिया। चारों ओर हलचल मच गई। माताजी तो आत्महत्या करने के लिए तत्पर हो गईं। क्या करता? माँ की बात मानकर फिर जनेऊ धारण किया। तब तक मैं ब्राह्म-समाज में नहीं गया था। उसके बाद ब्राह्म-समाज में प्रवेश करने से लगा कि उपवीत जातिभेद का चिह्न है, उसे धारण करना बहुत बड़ा अपराध है। तब पुनः जनेऊ त्याग दिया। माताजी को बता दिया-यदि वे इस बार मुझे जनेऊ ग्रहण करने के लिए जिद करेंगी तो मैं आत्महत्या करूँगा। माताजी ने फिर कुछ नहीं कहा। ब्राह्म-समाज में प्रवेश करके रीति के अनुसार उपासनादि करने लगा और विविध स्थानों में ब्राह्मधर्म का प्रचार करने लगा। तब मुझे पूरा विश्वास था, जो मेरा व्याख्यान सुनेगा, वही ब्राह्मधर्म ग्रहण करेगा।**

"एक बार जब मैं १३ नम्बर, मिर्जापुर स्ट्रीट (कोलकाता) में था, एक दिन गहन रात्रि में बैठकर उपासना कर रहा था; थोड़ी

झपकी लग गई। अचानक दरवाजा खटखटाने का शब्द हुआ। तुरन्त द्वार खोला तो देखा, महाप्रभु का पूरा दल है; कमरा भर गया; बिजली जैसा प्रकाश है।

अद्वैत प्रभु ने मुझसे कहा-'मैं तुम्हारा पूर्वज हूँ, अद्वैत आचार्य। ये नित्यानन्द प्रभु हैं और ये महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य। प्रणाम करो। ये तुम्हें मन्त्र देंगे; स्नान करके आओ।' मैंने तीनों प्रभु को प्रणाम करके बैठने के लिए आसन दिया। फिर छोटे कुँए पर जाकर स्नान करके आ गया। महाप्रभु ने मुझे नाम (मन्त्र) दिया। मैं अचेत हो गया। प्रातःकाल नींद से उठने पर पूरी घटना का स्पष्ट स्मरण होने लगा। सोचा-लगता है, स्वप्न देखा था; किन्तु कमरे में आसन बिछे हुए और कुँए के किनारे भीगे कपड़े देखकर वह संशय दूर हुआ। तब सोचा-मैं कैसा ब्राह्म हूँ, वही परीक्षा लेने के लिए कुछ 'स्पिरिट' आई थीं। तब तो जानता नहीं था, महाप्रभु स्वयं भगवान् हैं। इसलिए वह 'नाम' दबा ही रह गया।

"ब्राह्मधर्म की पद्धति के अनुसार उपासना करने से मेरे भीतर विभिन्न प्रकार की अवस्थाएँ प्रकट होने लगीं। अप्राकृत सब दर्शन, श्रवणादि होने लगे, परन्तु कुछ भी स्थायी नहीं रहता था। होता था, फिर चला जाता था, ऐसी अवस्था थी। सत्य वस्तु प्रकट होकर फिर चली क्यों जाती है, मुझे यह संशय होने लगा। तब सत्य वस्तु की खोज के लिए बाहर निकला। बहुत घूमा; कहाँ क्या है, देखने के लिए कबीरपन्थी, दाउदपन्थी, गोरखपन्थी, सुन्दरपन्थी, बाउल, दरवेशादि सब सम्प्रदायों के भीतर प्रवेश किया। एक-एक करके उनकी प्रणाली

के अनुसार साधना करके, किस सम्प्रदाय में कहाँ तक क्या है, देख लिया; परन्तु किसी प्रकार भी मेरी आकांक्षा पूर्ण नहीं हुई। मैं जो चाहता था, वह कहीं नहीं मिला।

मैंने पूछा-आपने क्या बाउल सम्प्रदाय के भीतर भी साधना की थी? उनकी साधना किस प्रकार है?

ठाकुर-वह एक भयानक घटना है। मैं तो संकट में पड़ गया था। बाउल सम्प्रदाय में कई जगह बहुत ही निकृष्ट काम होते हैं। वह फिर मुँह से कहा नहीं जाता। बाउल लोगों के बीच अच्छे-अच्छे लोग भी हैं। वे सभी चन्द्रसिद्धि करते हैं। शुक्र चाँद, शनि चाँद, गरल चाँद, उन्माद चाँद, ये चार चाँद सिद्ध हो जाने से ही वे समझते हैं, सब हो गया। शरीर का रक्त, मवाद, मल, मूत्र कुछ भी वे फेंकते नहीं, सब खाते हैं। एक दिन एक बाउल को खूनी आँव (मल) खाते देखकर मैंने बहुत अप्रसन्नता प्रकट की। अखाड़े के महन्त ने सुनकर मुझे धमकाते हुए कहा, 'तुम्हें उन्माद चाँद, गरल चाँद सिद्ध करने हेतु मल-मूत्र खाना होगा।'

मैंने कहा, वह मैं नहीं कर सकूँगा। मल-मूत्र खाकर जो धर्म प्राप्त होता है, वह मुझे नहीं चाहिए। महन्त ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा, 'इतने दिन तक तुम हमारे सम्प्रदाय में रहकर हमारा सब जान लिए हो और अब कहते हो साधन नहीं करोगे! तुमको वह सब साधन करना ही होगा।' मैंने कहा, वह कभी नहीं करूँगा! महन्त सुनकर गाली देते-देते मुझे मारने आए; शिष्य लोग भी 'मारो, मारो' कहते हुए आ गए। तब मैंने खूब धमकाते हुए कहा, 'अच्छा, इतना साहस, मारोगे? जानते हो मैं कौन हूँ? मैं शान्तिपुर के अद्वैतवंश का गोस्वामी, मुझसे कहते हो मल-

मूत्र खाने?' मेरी धमकी से सभी चौंक गए। महन्त भयभीत होकर, प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा, 'प्रभु! आप गोस्वामी सन्तान हैं, अद्वैत प्रभु के वंशज! मैं जानता नहीं था। मुझसे बड़ा अपराध हुआ है, दया करके क्षमा कीजिए। मैं तुरन्त वहाँ से चला आया। ऊर्ध्वरेता होना ही उन लोगों के साधन का लक्ष्य है। वैसे लोग भी बाउलों के बीच हैं।

प्रश्न-ब्रह्मोपासना करने से ही जब धीरे-धीरे आपकी सब अवस्थाएँ प्रकट हो रही थीं, तब फिर गुरु की आवश्यकता क्यों समझी?

ठाकुर-**प्रकट होने से क्या होगा? स्थायी तो होती नहीं थीं। एक दिन मछुआबाजार स्ट्रीट (कोलकाता) में एक महापुरुष का दर्शन हुआ। उनको अपनी सारी अवस्था खुलकर बतलाने पर उन्होंने कहा, 'अनेक अवस्थाएँ प्राप्त हो सकती हैं, उससे क्या होता है? रहती तो हैं नहीं। शास्त्रानुसार गुरु से दीक्षा लिए बिना कोई भी अवस्था टिकेगी नहीं।' वे एक दिन अचानक ब्राह्म-समाज में आकर उपासना में सम्मिलित हुए। फिर जाते समय कह गए, 'घर तो अच्छा बना है, किन्तु अलग बँटे पर है, नींव नहीं है-खड़ा कैसे होगा? गुरु नहीं है; यह कभी टिकेगा नहीं।' मैंने इस महापुरुष के सामने दीक्षा के लिए प्रार्थना की थी। उन्होंने पीठ थपकी मारकर आशीर्वाद देते हुए कहा, 'बच्चा, घबराओ मत। गुरु तुम्हारा है, बखत् पर मिल जाएगा। मैं स्थिर न रह सका; विन्ध्याचल में, तिब्बत में, हिमालय में, अनेक स्थानों और पहाड़ों पर गुरु की खोज की। गुरु कहीं नहीं मिले। सभी महापुरुषों ने एक ही बात कही 'गुरु तुम्हारे निश्चित हैं,**

समय पर मिलेंगे।’ अन्त में गया में आकाशगंगा पहाड़ पर रघुवर बाबाजी के आश्रम में कुछ दिन रहा। एक दिन उस पहाड़ के ऊपर निर्जन में अकेला बैठा था, गुरु नहीं मिला सोचकर निराशा से मन में कष्ट होने के कारण मूर्च्छित हो गया। चेतना लौटने के बाद देखा, एक महापुरुष की गोद में सिर रखकर लेटा हूँ। वे बड़े स्नेह के साथ मेरे शरीर पर हाथ फेर रहे हैं। मैंने तुरन्त उठकर उनके चरणों में गिरकर प्रणाम करके पूछा, ‘आप कौन हैं? यहाँ कब आए?’ उन्होंने कहा, ‘मैं परमहंस हूँ, मानससरोवर में रहता हूँ। तुम्हारे इस क्लेश की दशा को देखकर तुम्हें दीक्षा देने अभी तुरन्त यहाँ आया हूँ। मैंने पूछा, ‘मानससरोवर से आप इतने शीघ्र किस प्रकार आए?’ परमहंसजी ने कहा, ‘योगी वैसा कर सकते हैं। योगी लोग देह के पंचभूत को पंचभूत में मिलाकर केवल चैतन्य का अवलम्बन करके जहाँ इच्छा हो, जा सकते हैं, फिर इच्छाशक्ति द्वारा उस पंचभूत को आकर्षित करके पुनः स्थूल देह धारण कर लेते हैं। योगियों में ऐसी क्षमता है। मेरा जो यह स्थूल शरीर देख रहे हो, यह वैसा ही है। इस प्रकार अनेक बातें होने के बाद उन्होंने मुझे दीक्षा दी।

मैंने पूछा- दीक्षा लेने के बाद क्या किए?

ठाकुर-**दीक्षा ग्रहण करते ही मेरा बाह्यज्ञान लुप्त हो गया। चेतना लौटने पर चारों ओर देखा, परमहंसजी नहीं हैं। मुझे भयंकर नशा हुआ था। ठीक से आँखें खोल नहीं पाया। ऊँघती हुई अवस्था में ही किसी प्रकार उतरकर बाबाजी के आश्रम में आया। गुफा के किनारे बेल वृक्ष के नीचे एक बड़ी चट्टान पर बैठ गया। ११ दिन ११ रातें एक ही अवस्था में बीत गईं। उस समय**

बाबाजी ने यत्नपूर्वक मेरी देह की रक्षा की थी। वे मुझे बहुत चाहते थे।

प्रश्न-तैलंग स्वामी ने भी तो आपको दीक्षा दी थी?

ठाकुर-**तैलंग स्वामी ने भी मुझे मन्त्र दिया था। यह बहुत पहले की बात है। एक बार काशी में एक महीने रहा था। केदार घाट के पास होमियोपैथी डॉक्टर लोकनाथ बाबू के निवास पर ठहरा था। उन्होंने अपने निवास में रहने के लिए मुझसे बहुत आग्रह किया। मैंने कहा, आप लोगों को बहुत असुविधा होगी। मैं रात-दिन घूमता फिरूँगा; प्रयोजन के अनुसार निवास में आऊँगा। दिन में, रात में कभी एक निर्दिष्ट समय पर भोजन नहीं कर पाऊँगा। फिर मुझे एक कमरे की भी आवश्यकता होगी; उसमें अन्य लोगों के रहने से नहीं चलेगा। लोकनाथ बाबू सब बातों में सहमत होकर अपने निवास पर ही रहने के लिए जिद करने लगे। मुझको निर्जन कमरा दिया। मैं रात-दिन इच्छानुसार घूमता-फिरता था; प्रयोजन के अनुसार निवास पर आता था। अधिकांश समय तैलंग स्वामी के पास रहता था। पहले-पहले कुछ दिन उन्होंने मेरी बड़ी परीक्षा ली। शरीर पर कुत्ते की बिष्ठा, मैला, कीचड़ मलकर रहते, पास जाने पर वही फेंकते थे। बाद में छोड़ेगा नहीं देखकर बड़ा आदर करते थे, जाते ही अपने पास बैठने के लिए कहते। समय अधिक होने से, 'भूख लगी है या नहीं संकेत द्वारा पूछते; पास में जो लोग रहते थे, उनसे कुछ खाने की वस्तु लाने के लिए कहते। एक को खाना लाने के लिए इंगित करते ही पाँच-छः लोग दौड़ पड़ते थे। अधिक मात्रा में खाद्य-सामग्री आ जाती थी; अपनी आवश्यकता के अनुसार**

निकालकर अन्य सब स्वामीजी से खाने के लिए कहता। वे भी मुझसे संकेत द्वारा खाना मुँह में डाल देने को कहते थे। मैं उनके मुँह में कौर दे देता। वे अच्छा खा सकते थे। शरीर अच्छा सबल और स्वस्थ पहलवानों के जैसा था। कभी-कभी वे केदार घाट जाकर गंगा में डुबकी लगाते, फिर सीधे मणिकर्णिका में निकलकर तैरते थे। मैं उस समय गंगा के किनारे-किनारे दौड़ता था।

एक दिन देखा, वे काली मन्दिर में जाकर काली के सामने खड़े होकर मूत्र त्याग कर रहे हैं और उस मूत्र को चुल्लू में ले-लेकर 'गंगोदकम्, गंगोदकम्' कहते हुए काली के ऊपर छिड़क रहे हैं। मैंने पूछा, यह क्या कर रहे हैं? उन्होंने कहा, 'पूजा।' मैंने फिर पूछा, इस पूजा की दक्षिणा क्या है? उत्तर दिए, 'यमालय।' रात्रि में भी कई बार तैलंग स्वामी के पास रहता था। वे मुझे कई प्रकार के अद्भुत योगैश्वर्य दिखलाते थे। एक दिन कहा, आप मुझे इतना दिखला रहे हैं, परन्तु मुझे थोड़ा भी विश्वास नहीं होता। कृपा करके मुझे आशीर्वाद दीजिए, जिससे विश्वास हो। उन्होंने मुझे स्नान करके आने को कहा। रात्रि के लगभग एक बजे हैं, कड़कती ठण्ड है; मैं तो टाल-मटोल करने लगा! उन्होंने तुरन्त गर्दन पकड़कर मुझे अधर में उठा लिया और झप्प से गंगा में डुबाकर निकाल लिया। फिर मेरे सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा, 'विश्वास बन जाए।' आश्चर्य है! उस दिन से फिर सत्य विषय पर मुझे संशय नहीं होता। उन्होंने मुझे मन्त्र देना चाहा। मैंने कहा, मैं आपके पास से मन्त्र कैसे लूँगा? आप साकार उपासक हैं, देखता हूँ, आप सौ बेलपत्ता

और गंगाजल शिव के ऊपर चढ़ाते हैं, शिव-पूजा करते हैं; फिर मैं निराकार ब्रह्मोपासक हूँ, मैं आपको गुरु नहीं बनाऊँगा। उन्होंने सावलम्ब और निरवलम्ब उपासना के सम्बन्ध में अनेक उपदेश दिया। फिर कहा, 'नल राजा को जिस प्रकार सर्प ने डस लिया था, मैं भी उसी प्रकार तुमको थोड़ा स्पर्श कर दे रहा हूँ। इसका गूढ़ तात्पर्य है। मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ तुम्हारे गुरु निर्दिष्ट हैं, वे ही तुम्हें यथासमय दीक्षा देंगे।' यह कहकर उन्होंने मेरे कान में तीन मन्त्र दिया।

एक तो राधाकृष्ण के युगल उपासना का मन्त्र है। यह मन्त्र पहले मुझे मेरी माताजी ने भी दिया था। दूसरा, सर्वदा जप करने के लिए भगवान् का नाम है और एक का संकट में पड़ने पर जप करने को कहा। परमहंसजी से दीक्षा प्राप्ति के बाद जब तैलंग स्वामी से मेरी भेट हुई, तब लगभग २० वर्ष पहले की घटना के सम्बन्ध में हाथ की हथेली पर लिखकर उन्होंने पूछा, 'याद है?'

मैंने पूछा-तैलंग स्वामी क्या मौनी थे?

ठाकुर-**हाँ; बातें नहीं करते थे, संकेत द्वारा सब बतलाते, कभी-कभी लिख भी देते थे। रात्रि में कई बार वे मेरे साथ बातें किया करते थे। तब उन्होंने अजगर-व्रत नहीं लिया था। अन्त में अजगर-व्रत लेकर सब छोड़ दिया। किसी प्रकार का संकेत भी नहीं करते थे। एक स्थान पर ही बैठे रहते थे। शरीर स्थूल हो गया था; वात हो गया। ऊपर से उन्हें जीवन्त शिव समझकर सब उनके सिर पर दूध, गंगाजल ढालने लगे। भोर ४ बजे से लेकर दिन के १२ बजे** तक पौष-माघ की ठण्ड में भी इस जल ढालने के क्रम में विराम नहीं था। देह का धर्म है-अन्त में घाव होकर

शरीर गल गया। एक प्रकार से निर्विकार अवस्था में रहकर उन्होंने देह त्याग दी। गंगा में उनको जल-समाधि दी गई।

महादेव का शिरोवस्त्र: यह साधन वैदिक है।

इस बार श्रीवृन्दावन में आकर ठाकुर के सिर का बाल लगभग छः-सात इंच लम्बा देख रहा हूँ। इतने बड़े बाल ठाकुर के सिर पर और कभी नहीं देखा। यमुना में स्नान करके सिर के बालों को प्रतिदिन एक ही प्रकार से एक गेरुए कपड़े की पट्टी से बाँधकर रखते हैं। कपाल के ऊपर के सारे बाल दोनों कनपटी के पास से तालू तक लपेटकर पट्टी को सिर के दोनों ओर ले जाते हैं, फिर कानों के ऊपर की दोनों समान लटों को उस पट्टी से लपेटकर पीछे की ओर के नीचे वाले बालों को एकत्र करके बाँध लेते हैं। ब्रह्मतालु के दोनों पार्श्व के अलग बाल पीछे की ओर के अवशिष्ट बालों के साथ अपने-आप लिपट जाते हैं। उससे ठाकुर के मस्तक पर कुल पाँच जटाएँ बन गई हैं।

गेरुए कपड़े की पट्टी को बहुत फटा-पुराना देखकर मैंने कहा-इस गेरुए कपड़े को फेंककर एक नया गेरुआ कपड़ा ले नहीं लेना चाहिए?

ठाकुर ने कहा-**राम, राम! वैसा नहीं होता। यह साधारण कपड़ा नहीं है, महादेव के सिर का वस्त्र है। उन्होंने मेरे सिर पर बाँध दिया था।**

मैंने पूछा-कब, कहाँ पर बाँधे थे?

ठाकुर ने कहा-श्रीवृन्दावन आते समय काशी में विश्वेश्वर के दर्शन करने गया था, वहाँ मन्दिर पर मेरे सिर में यह वस्त्र लपेट

दिए।

मैंने पूछा-महादेव ही क्या इस साधन-मार्ग के प्रवर्तक हैं?

ठाकुर ने कहा-**महादेव इस साधन के प्रवर्तक नहीं हैं; वे भी यह साधन करके सिद्ध हुए हैं। वेद में इस साधन के विषय में उल्लेख है। अनेक योगी, ऋषि इसका अवलम्बन करके सिद्ध हुए थे। इस साधन को कुछ समय नियमानुसार किया जा सके तो इसका लाभ पता चलता है। वीर्यधारण के साथ यह प्राणायाम और कुम्भक छः महीने करने से अन्यान्य सब प्रकार के प्राणायाम का फल प्राप्त किया जा सकता है। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप कर पाने से फिर कुछ करने की आवश्यकता नहीं होती। उससे प्राणायाम, कुम्भकादि सब हो जाता है। अलग से प्रयास नहीं करना पड़ता। इस पथ के समान सहज पथ और नहीं है। केवल श्वास-प्रश्वास में नाम-जप कर पाने से ही सब अवस्था प्राप्त होती है; फिर कुछ करना नहीं पड़ता!**

मैंने कहा-प्राणायाम की प्रणाली कई प्रकार की हैं, ऐसा सुना है। हमारे इस प्राणायाम के विषय में क्या किसी शास्त्र में उल्लेख है?

ठाकुर-**शास्त्र में आठ प्रकार के प्राणायाम की प्रणाली बतलाई गई है; क्योंकि प्रथम शिक्षार्थियों के लिए वही आवश्यक है। हमारे इस प्राणायाम के विषय में बहुत संक्षेप में केवल किसी-किसी तापनीय में, उपनिषद् में उल्लेख है। इसे सिद्धगुरु से सीखें, शास्त्र में इस प्रकार का संकेत दिया गया है। चिरकाल से ही यह सिद्ध महर्षि लोगों के बीच बड़े गुप्त रूप से चला आ रहा है। शास्त्र देखकर इसका अभ्यास करने से अचानक मृत्यु भी हो सकती है। देखा-देखी इस प्राणायाम को**

करने की चेष्टा करके अनेक ही लोग कठिन रोग की पीड़ा से आक्रान्त हुए हैं। इस कारण एवं अन्य कई कारणों से यह चिरकाल से बहुत गोपनीय है। विश्वस्त पात्र देखकर ही सिद्ध महापुरुष यह प्राणायाम दिया करते हैं। अन्यान्य कुम्भक, प्राणायाम आदि से जो सब फल प्राप्त होते हैं, इस प्राणायाम का ठीक नियमानुसार अल्पकाल अभ्यास करने से ही वे सब फल प्राप्त हुआ करते हैं।

मैं-हम लोग का यह साधन तान्त्रिक है या वैदिक? किन-किन ऋषियों ने इस साधन का सर्वप्रथम अवलम्बन किया था?

ठाकुर-**यह साधन आधुनिक नहीं, बहुत प्राचीन वैदिक साधन है। पहले महादेव, दत्तात्रेय आदि योगीश्वर यह साधन करके सिद्ध हुए थे।**

मैं-साधन के समय जो विविध प्रकार की ज्योति, आकृति अथवा छाया का दर्शन होता है, वह सब क्या है? उस समय क्या करना चाहिए?

ठाकुर-**जो कुछ दर्शन होता है, उसका बहुत आदर करना चाहिए, अनादर नहीं करते। दर्शन होने से सभी का खूब भक्तिपूर्वक सम्मान और पूजन करना चाहिए।**

मैं-साधन करते-करते जो सब अवस्था प्राप्त होती है, किसी प्रकार के अपराध से उससे पतित होने पर पुनः साधन करके वह सब क्या प्राप्त की जा सकती है?

ठाकुर-**हाँ, अवश्य, अवश्य; ठीक रीति के अनुसार साधना करने से वह पुनः प्राप्त होती है।**

मैं-मेरा कौन-सा विशेष कल्याण करने के लिए मुझे श्रीवृन्दावन

लाए हैं?

ठाकुर-**विशेष क्या कल्याण हुआ है, वह क्या अभी सहज में समझ आता है? बाद में सब समझोगे।**

माता ठाकुरानी की पति-पूजा: वाराह का दाँत

सुना है, पिछले वर्ष ठाकुर चार-पाँच महीने कोलकाता में रहकर एक दिन अचानक शान्तिपुर चले गए। फिर किसी कारण से माता ठाकुरानी के साथ झगड़ा करके तुरन्त ही श्रीवृन्दावन के लिए निकल पड़े। रास्ते में काशीधाम में रुककर लगभग महीने-भर से अधिक समय तक वहाँ रहे। इस समय मेरी अनुपस्थिति में कोलकाता, शान्तिपुर और काशी में जो सब घटनाएँ हुई थीं, उसमें से कुछ एक श्री कुंजबिहारी गुह ठाकुरता की डायरी से एवं श्रीधर, माता ठाकुरानी व सतीश आदि के मुख से नि:शंक रूप से ज्ञात होने पर लिखकर रख रहा हूँ-

जुलाई, सन् १८८९ ई. में कोलकाता के सुकिया स्ट्रीट में ५०/१ नं० का मकान ठाकुर के रहने के उद्देश्य से चार महीने के लिए किराए पर लिया गया। वहाँ वे शिष्यों के साथ सपरिवार आकर रहने लगे। इस मकान में माता ठाकुरानी प्रतिदिन निर्जन में ठाकुर की चरण पूजा करती थीं। दूब, चन्दन, फूल, तुलसी इत्यादि पूजा का सामान लेकर ठाकुर के आसन-गृह में प्रवेश करतीं। ठाकुर को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके उनके समीप बैठकर बड़ी लगन से उनके चरणों में तुलसी, चन्दनादि अर्पण करतीं। फिर उनके मस्तक में फूल, तुलसी प्रदानकर चन्दन का टीका लगा देतीं। उसके बाद ठाकुर के मुख में कुछ मिठाई देकर उन्हें साष्टांग प्रणाम करतीं।

ठाकुर भी उसी समय माता ठाकुरानी के मस्तक में चन्दन का टीका लगाकर, उनके सिर पर हाथ रखकर स्थिर भाव से कुछ समय ध्यानस्थ रहते। यह पूजा किए बिना माता ठाकुरानी कभी जल ग्रहण नहीं करतीं। पूजा आरम्भ करने के प्रथम दिन नानीजी ने दरवाजे की दरार से देखा, माता ठाकुरानी ठाकुर को साष्टांग प्रणाम करके पड़ी हैं। फिर ठाकुर अपने आसन पर बैठे-बैठे माता ठाकुरानी के सिर पर दोनों पैर रखकर स्थिर हैं। दोनों को बाह्य-चेतना नहीं थी।

इस मकान में ही वे अपने जन्मदिन झूलन-पूर्णिमा तिथि पर पहने हुए वस्त्र परित्याग करके डोर-कौपीन और बहिर्वास धारण कर धोती की लाँग से मुक्त हुए। अपने हाथ से चिट्ठी-पत्र लिखना इसी समय से बन्द हो गया। इस मकान में विभिन्न स्थानों के बहुत-से सम्मानित परिवारों और देश के उच्च शिक्षित माननीय सज्जनों ने अलौकिक रूप से ठाकुर से दीक्षा प्राप्त की।

इस मकान में रहते समय एक दिन भाव में उन्मत्त श्रीधर सूर्योदय के पहले स्नान करके वाराहरूपी भगवान् का दर्शन पाकर गंगा के किनारे-किनारे दौड़-धूप करने लगे। प्रातः से संध्या तक बिना कुछ खाए काशीपुर, वाराहनगर आदि स्थानों में दौड़-धूप करके संध्या के पूर्व नदी के किनारे एक पशु की हड्डी पड़ी हुई देखी। श्रीधर उसको तुरन्त उठाकर एकदम से दौड़ते हुए ठाकुर के पास आए। पसीने से लथपथ श्रीधर ने ठाकुर को साष्टांग प्रणाम करके ही उनके सामने रखकर कहा, यह लो अपना दाँत। ठाकुर उसे हाथ में लेकर भावावेश में अभिभूत हो गए।

देह की अनाहत ध्वनि

इस मकान में माता ठाकुरानी ठाकुर के पास बैठकर प्रायः रातभर उनको हवा करती थीं। कभी-कभी पैर दबाते-दबाते भाव-विभोर होकर ठाकुर के चरण-तल में पड़ी रहतीं। एक दिन माता ठाकुरानी ने बातों-बातों में वृन्दावन बाबू से कहा कि रात्रि में समय-समय पर गोस्वामीजी के शरीर से एक प्रकार की मधुर ध्वनि निकलती है। वह इतनी मधुर होती है कि सुनते-सुनते वे मुग्ध हो जाती हैं। यह बात सुनकर उस ध्वनि को सुनने का वृन्दावन बाबू को बड़ा कौतुहल हुआ। उन्होंने अवसर देखकर गहन रात्रि के समय ठाकुर के आसन-गृह में प्रवेश किया। ठाकुर तब ध्यानस्थ थे। वृन्दावन बाबू ठाकुर के चरण स्पर्श करके प्रणाम करने के बाद ध्वनि सुनने के लिए कान लगाए रहे। कुछ क्षण बाद ही ठाकुर ने सिर उठाकर कहा-**"क्या बात है वृन्दावन?"** वृन्दावन बाबू ने कहा-'महाराज! सुना था, आपके शरीर से एक प्रकार की ध्वनि निकलती है, वही सुनने के लिए आया हूँ।' ठाकुर ने पूछा-**"अचछा, सुन लिया तो?"** वृन्दावन बाबू ने कहा-'हाँ, यह ध्वनि सुनकर आश्चर्य हुआ। लगता है, ऐसी सुमधुर मनोहर ध्वनि जगत् में और नहीं है। यह किसकी ध्वनि है?'

ठाकुर ने कहा-**इसे अनाहत ध्वनि कहते हैं। साधक लोगों के शरीर से यह ध्वनि उठती है। यह इतनी मधुर होती है कि साँप सुन ले तो सीधे साधक के शरीर पर चढ़ जाएगा।**

इस समय पूर्व बंगाल के कोई विशिष्ट सज्जन ठाकुर से दीक्षा की प्रार्थना का संवाद देकर कोलकाता आने के लिए व्याकुल हैं।

इस पर ठाकुर ने कहा-**वे कोलकाता आ सकते हैं, किन्तु हमारे यहाँ उनका कोई काम नहीं है।** कोई-कोई गुरुभाई उन सज्जन के विविध सद्गुणों की बातें उठाकर ठाकुर से उनकी दीक्षा की आकांक्षा प्रकट करने लगे। ठाकुर ने थोड़ा मुस्कुराते हुए उन लोगों से कहा-**जिनको साधन मिलने का है, उनको ठीक मिलेगा ही। ऐसा कोई यदि मेरे पास न आए, तो मैं उनके पास जाकर दीक्षा दूँगा। वे यदि मुझे बाँस लेकर भगाए, मार खाकर उनको दीक्षा देकर आऊँगा।**

सूक्ष्म शरीर और परलोक के सम्बन्ध में श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर की कथा

ठाकुर एक दिन श्री देवेन्द्रनाथ सामन्त, कुंजबिहारी गुह आदि गुरुभाइयों को लेकर आचार्य श्री नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय के साथ महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के दर्शन करने गए। महर्षि ने उन्हें बड़े आदरपूर्वक पास में बैठाया एवं शिष्यों की कुशल-क्षेम पूछी। फिर कथावार्ता में उन्होंने कहा, 'बचपन से मुझे जानने की बड़ी इच्छा होती थी कि गरीब लोग किस प्रकार रहते हैं, उत्सवादि में क्या करते हैं। उसके लिए कई बार गुप्त रूप से भिन्न-भिन्न वेश में उनके घर जाता करता था। उन लोगों के अनजाने में सब देखकर आ जाता था। अब भगवान् दया करके मुझे साथ लेकर विभिन्न जगह घुमाते हैं। अभी तुम लोगों के आने के पहले ही उनके साथ कई जगह घूमकर आया हूँ। उनकी अपार दया है।'

बातों-बातों में ठाकुर ने पूछा-**"मृत्यु के बाद मनुष्य कहाँ जाता है?"** महर्षि ने कहा-'क्यों? जो सब ग्रह-नक्षत्र देखते हो, उसमें

जाता है।’ परलोक के सम्बन्ध में इसी प्रकार की अनेक बातों के पश्चात् महर्षि को प्रणाम करके ठाकुर संध्या के बाद निवास-स्थान पर आ गए।

जातिभेद के सम्बन्ध में ठाकुर का उपदेश

हमारे गुरुभाई श्री राखालचन्द्र राय बरीशाल जाकर वहाँ के गुरुभाइयों के पास प्रचार करने लगे कि ‘जातिभेद भीतर में रहने से हम लोगों में से किसी की इस साधन में थोड़ी-भी उन्नति नहीं होगी’, ठाकुर ने इस प्रकार कहा है; इस बात को लेकर बरीशाल के गुरुभाइयों के बीच नाना प्रकार की आलोचना होने लगी। श्री शिवचन्द्र गुह ने इस विषय में स्पष्ट जानने के लिए कुंज बाबू को पत्र लिखा। कुंज बाबू ने ठाकुर को जब वह पत्र सुनाया तो ठाकुर ने तुरन्त उनके ही द्वारा निम्नलिखित पत्र शिव बाबू के पास भिजवाया-

पत्र की नकल-

२६ सितम्बर, १८८९ ई.
५०/१, सुकिया स्ट्रीट, कोलकाता।

परम पूज्य श्री शिवचन्द्र गुह,

श्रीचरण कमलेषु,

जातिभेद के सम्बन्ध में बरीशाल में इस समय जो गड़बड़ी हुई है, उसके सम्बन्ध में परम पूज्य श्रीयुक्तेश्वर गोस्वामीजी से पूछने पर उन्होंने मुझसे तुरन्त जो लिखने को कहा, उसे उनके सम्मुख ही लिख रहा हूँ “सत्त्व, रज, तमः-ये तीन गुण हैं, ये तीन ही वास्तविक जातियाँ हैं। इन तीनों गुणों का त्याग किए बिना जाति

का परित्याग नहीं किया जा सकता। एक बात में कहा जाए तो अभिमान ही जाति है। इस अभिमान का त्याग किए बिना जाति का परित्याग नहीं होता। जिस किसी के भी हाथ का भोजन कर लेने से ही जातिभेद नहीं जाता। इस प्रकार का आचरण जातिभेद परित्याग का उपाय नहीं है। अभिमान त्याग करो, समदर्शी बनो, जातिभेद अपने-आप चला जाएगा। जो जिस सम्प्रदाय में हैं, वे उसी सम्प्रदाय की आचार पद्धति के अनुसार चलें। अवस्था हुए बिना देखा-देखी कोई कार्य नहीं करें। साधना के उद्देश्य से जीवन गठन होने पर जैसा जीवन होगा, बाहर वैसा ही प्रकट होगा। भीतर और बाहर एक होना ही यथार्थ जीवन है। अतएव विपक्ष में न जाकर साधना की ओर अग्रसर हों। इति

सेवकाधम

श्री कुंजबिहारी गुह।

श्री कुंजबिहारी ने लिखा है-'सुकिया स्ट्रीट, ठाकुर के निवास-स्थान पर एक दिन मध्याह्न के समय वहाँ के सारे गुरुभाइयों को और विलायत से लौटे श्रीद्विजदास दत्त आदि को भोजन का निमन्त्रण दिया गया। हम सभी एक साथ नीचेवाले कमरे के बरामदे में भोजन करने बैठे। इसी बीच जातिभेद की बात उठी, ठाकुर ने कहा-**"गुरु के घर पर एक पंक्ति में बैठकर भोजन करने में दोष नहीं है। मैं यदि तुम लोगों के गाँव में जाऊँ, तब इस प्रकार नहीं करना। सभी को सामाजिक नियम के अनुसार चलना होगा।"**

ठाकुर का स्टार-थियेटर दर्शन

एक दिन 'स्टार-थियेटर' के श्रीगिरीशचन्द्र घोष ने

‘चैतन्यलीला’ देखने के लिए शिष्योंसहित ठाकुर को निमन्त्रण दिया। संध्या के बाद ठाकुर सबको लेकर यथासमय नाट्यशाला में पहुँचे। उसके बाद थियेटर के अध्यक्ष श्रीअमृतलाल बसु ने बड़े आदरपूर्वक उन लोगों की अगवानी करके सबको रंगमंच के सामने बैठाया। ठाकुर अभिनय देखते-देखते भावावेश में अभिभूत हो गए।

केशव कुरु करुणा दीने कुंज काननचारी।
माधव-मनोमोहन, मोहन मुरलीधारी।
हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल मन आमार।
ब्रजकिशोर कालियहर कातर भयभंजन;
नयन बाँका बाँका शिखिपाखा,
राधिका-हृदि-रंजन,
गोवर्धन-धारण, वन-कुसुम-भूषण,
दामोदर कंस दर्पहारी।
श्याम रास-रस-विहारी
हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल मन आमार।

(बंगला शब्दार्थ-बाँका- तिरछा, शिखिपाखा- मयूरपंख, आमार- मेरा।)

यह गान आरम्भ होते ही ठाकुर भाव संवरण न कर पाने से एकदम उछल पड़े। **‘जय शचीनन्दन, जय शचीनन्दन’** कहते-कहते उद्दाम नृत्य करने लगे। तब भाव-विभोर गुरुभाई भी सुधबुध खो बैठे। वे लोग बारम्बार हरिध्वनि करके ठाकुर के चारों ओर नृत्य करने लगे। ‘गड़बड़ हो रहा है, गड़बड़ हो रहा है; रुक जाओ, रुक जाओ’ इत्यादि शब्द जगह-जगह से उठने लगे। इसी समय अमृतलाल बसु जी रंगमंच पर उपस्थित होकर, ‘आज नाटक कराने का मेरा उद्देश्य सार्थक हो गया, आज मैं धन्य हो गया’- ऐसी

कई बातें वे बार-बार कहने लगे। फिर ताली बजाते हुए 'हरिबोल हरिबोल' कहकर वे अभिनेत्रियों को उत्साहित करने लगे। तुरन्त फिर गान आरम्भ हो गया-

चन्द्रकिरण अंगे, नम वामनरूपीधारी।
गोपीगण-मनोमोहन, मंजु-कुंजचारी।।
जय राधे, श्रीराधे।
ब्रजबालकसंग, मदन-मानभंग।
दैत्यछलन नारायण, सुरगण-भयहारी,
ब्रजविहारी गोपनारी-मान-भिखारी।।
जय राधे, श्री राधे।।

इस समय भावावेश से परिपूर्ण नृत्य-गीत से दर्शक मण्डली का चित्त भी अभिभूत हो गया। देखते-देखते नाट्य-मन्दिर में बड़ा कोलाहल मच गया। हरिमोहन स्वामीजी भावावेश में दोनों हाथ ऊपर करके नृत्य करने लगे। भक्तप्रवर श्रीधर क्षणभर के लिए ठाकुर की ओर एकटक देखकर काँपते हुए बेहोश हो गए। फिर चेतना लौटने पर उच्च स्वर में 'हरिबोल' कहते-कहते उन्होंने नाना प्रकार से नृत्य करने के साथ सभी को मतवाला कर दिया। ठाकुर की बाहु संचानलपूर्वक मधुर हरिध्वनि की तड़ित् झंकार से सभी का अन्तःकरण काँप उठा। नाटक का अभिनय स्थगित रखकर इस प्रकार बहुत समय तक कीर्तन का उत्सव हुआ। उसके बाद सभी अत्यन्त प्रसन्न मन से अपने घर लौट गए।

वेश्या द्वारा समाज का परिणाम

कोलकाता की कोई एक प्रसिद्ध अभिनेत्री, वेश्या थी। उनकी

एक कन्या थी, वह बेथुन स्कूल में पढ़ती थी। ब्राह्म-समाज के किसी एक व्यक्ति के साथ उसके विवाह का प्रस्ताव हुआ। ठाकुर ने वह सुनकर कहा

"वेश्या की लड़की को समाज में लेना कभी भी उचित नहीं है। इससे समाज कलुषित होगा। यद्यपि पहले खूब भली एवं सच्चरित्र लगे, किन्तु समय में भीतर का बीज अंकुरित होने से सब प्रगट हो जाता है।"

ठाकुर इस विषय को समझाने के लिए 'नारद-पंचरात्र' से वेश्या की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक बातें कही।

रोग अपने-आप हटता है, अविश्वासी के लिए उपाय क्या हैं?

गुरुभाई श्री श्रीशचन्द्र मुखोपाध्याय दीर्घकाल दुःसह रोग भोगकर मरणासन्न अवस्था में पड़े हैं। बहुतों ने उनके जीवन की आशा छोड़ दी। एक बार रात्रि में मृत्यु के सारे लक्षण प्रगट हो गए। श्रीश ने व्याकुल होकर साथियों से कहा-'अभी मेरी मृत्यु हो जाएगी। इस समय एक बार दया करके तुम लोग ठाकुर को लाकर दिखला दो।' श्री कुंजबिहारी गुह तुरन्त रात्रि में २ बजे ही ठाकुर के पास दौड़े। ठाकुर ने श्रीश का कथन और उसकी दशा के सम्बन्ध में सुनकर कहा-**'जाकर उनसे कहो, कोई डर नहीं है। अस्वस्थता दूर हो जाएगी। घबराएँ नहीं।'**

कुछ ही दिन बाद श्रीश की अस्वस्थता दूर हो गई। तब एक दिन ठाकुर गंगास्नान करके आते समय श्रीश को देखने उनके घर पहुँच गए। वहाँ कुंज बाबू को ज्वर से पीड़ित देखकर उन्होंने पूछा-

“तुम्हारी चिकित्सा अभी कौन कर रहा है?” कुंज बाबू ने एक विद्वान् चिकित्सक का नाम कहा। ठाकुर ने कहा-**“डॉक्टर का सामर्थ्य नहीं है, जो तुम्हारा रोग दूर कर दे। जब दूर होगा, अपने-आप ही होगा। देखा तो, श्रीश का रोग कौन दूर कर पाया?”**

कुंज बाबू ने कहा-‘आपने ही तो कहा था कि औषधि के सेवन से बहुत-से कर्म-भोग कट जाते हैं।’

ठाकुर ने कहा-**“हाँ, वह ठीक है।”**

श्रीचरण चक्रवर्ती ने कहा-मेरा अविश्वास तो किसी प्रकार से जाता नहींक्या करूँ?

ठाकुर-**जिन्होंने साधन प्राप्त किया है, उन सबने भीतर कुछ-न-कुछ विश्वास की वस्तु प्राप्त की है। अविश्वास के समय उसका स्मरण करने से और उसको पकड़े रहने से विशेष उपकार होता है।**

फिर कहा-**अविश्वास क्या, प्रलोभन के समय भी यदि पाँच-छ: बार नाम-जप किया जा सके तो भी बचाव है; किन्तु कैसा दुर्भाग्य है, वह भी कोई कर नहीं पाता।**

पीड़ित कुंज बाबू ने कहा-मैं नाम-जप कर ही नहीं पाता।

ठाकुर ने कहा-**नाम-जप करने की इच्छा होने से हो जाता है।**

बातों-बातों में ठाकुर ने कहा-**हमारा जो योग है, वह नाम का योग है। गम्भीरनाथ बाबा से श्वास-प्रश्वास में नाम-जप की बात सुनी थी। २० वर्ष बाद उस बात का अर्थ समझा। माँझी और साधारण लोगों के मुख से भी तो कितनी बार सुना है-**

मन पगला रे हर दम में गुरुजी का नाम लेओ।

दम दम में लेओ रे नाम कामाई नहीं दो।

एकजन ने पूछा-हरिदास ठाकुर एक दिन में किस प्रकार तीन लाख नाम जपते थे?

ठाकुर ने कहा-**एक लाख उच्च स्वर में, एक लाख मन-ही-मन में और एक लाख उनकी आत्मा में अपने-आप होता था।**

कुंज बाबू ने लिखा है, इस मकान में रहते समय अत्यन्त अर्थाभाव था। बिछौने के अभाव से माता ठाकुरानी एक फटी हुई चटाई के ऊपर हाथ का ही तकिया लगाकर शयन करती थीं। ठाकुर के व्यवहार के लिए बहुत कम मूल्य का केवल एक देशी कम्बल था। वे शयन के समय ग्रन्थ के ऊपर एक बहिर्वास बिछाकर उस पर ही सिर रखते थे। कुंज बाबू एक दिन ठाकुर के व्यवहार के लिए एक तकिया बनवाकर ले लाए। उस पर वृन्दावन बाबू ने ठाकुर के सामने ही कुंज बाबू से उपहास करके कहा, 'वे संन्यास लिए हैं, तुम उनके लिए तकिया लाए हो? अच्छा, एक गद्दा और एक छाता क्यों नहीं ले आए?' कुज बाबू चुप रहकर दुःखी मन से सोचने लगे- 'इस बात के बाद लगता है, ठाकुर अब इस तकिये का उपयोग नहीं करेंगे।' किन्तु कुंज बाबू का अत्यन्त आग्रह समझकर दयालु ठाकुर प्रतिदिन ही शयन के समय उसे लेते थे।

जो मकान किराए पर लिए थे, वह चार महीने के लिए लिया गया था। निर्दिष्ट समय पूरा होते देखकर ठाकुर ने कम किराए का एक मकान देखने के लिए सबको कहा। खोज करने के बाद गुरुभाइयों ने आकर बतलाया कि कम किराए के मकान का जुगाड़ नहीं हो रहा है, तब ठाकुर ने कहा-**"एक खपरैल वाला मकान होने से भी काम हो जाएगा।"** मणि बाबू ने किराए का मकान देखने का भार ग्रहण किया।

अगले दिन प्रातः लगभग ८ बजे ठाकुर केवल श्रीधर को लेकर अचानक मकान से बाहर निकल पड़े। १० बजे मकान में खबर आई-वे शान्तिपुर चले गए। इस संवाद से सभी बहुत दुःखी हो गए। किसी से बिना कुछ कहे, अचानक इस प्रकार ठाकुर के जाने से सब लोग भिन्न-भिन्न कारण का अनुमान लगाने लगे। अगले दिन गुरुभाई श्रीपशुपतिनाथ मुखोपाध्यायजी की सहायता से बाजार का ८० रुपये का ऋण परिशोध हुआ। माता ठाकुरानी भी उसी समय नानीजी और कुतु को लेकर योगजीवन एवं कुंज बाबू के साथ शान्तिपुर के लिए निकल पड़ीं। वहाँ जाकर उन्होंने देखा, दादी माँ तीव्र उन्माद रोग से भयंकर सनक गई हैं। ठाकुर को देखकर वे समय-समय पर थोड़ा शान्त रहती हैं।

दादी माँ का भयंकर पागलपन थोड़ा कम होने पर भी समय-समय पर वे शयन-कक्ष में मल-मूत्र त्यागकर उसे सब दीवाल और फर्श पर छिड़क देती हैं। प्रातः माता ठाकुरानी उसे स्वच्छ करतीं हैं। नानीजी को यह बिल्कुल सहन नहीं होता। वे इस बात को लेकर कई बार दादी माँ के साथ झगड़ा करतीं। एक दिन प्रातः इन सब अनाचार, अत्याचार को लेकर दोनों के बीच भयंकर झगड़ा हो गया। तब ठाकुर ने दो तल्ले पर अपने रहने के कमरे में दादी माँ को ले जाना चाहा। दादी माँ की सेवा-शुश्रूषा, मल-मूत्र की सफाई इत्यादि सब स्वयं किया करेंगे, कहने लगे। अकारण इस दुर्भाग को अपने सिर पर क्यों लेते हैं, यह कहकर माता ठाकुरानी ठाकुर की बात पर आपत्ति करने लगीं। नानीजी भी उसमें सम्मिलित होकर भयंकर झगड़ा करने लगीं। इस समय एकाएक आसन से उठकर ठाकुर ने माता ठाकुरानी से कहा-**"मैं अभी काशी चला, किराए के**

लिए आठ रुपये दो।”

एकाएक ठाकुर को काशी जाने के लिए उद्यत देखकर माता ठाकुरानी डर गईं एवं उनके संकल्प में बाधा देने के अभिप्राय से रुपये देने में टालमटोल करके कहने लगीं-‘तो फिर मुझे भी साथ में लो।’ ठाकुर तब भयंकर क्रुद्ध हुए एवं माता ठाकुरानी को धमकाते हुए डण्डे से ‘पोर्टमेंट’ के ऊपर बारम्बार आघात करने लगे। माता ठाकुरानी ने तुरन्त बॉक्स की चाबी ठाकुर के सामने फेंककर कहा-‘बॉक्स तोड़ो नहीं, ये लो चाबी।’ ठाकुर ने बॉक्स खोलकर आठ रुपये गिनकर ले लिया। फिर माता ठाकुरानी के पास चाबी फेंककर तुरन्त अकेले ही राणाघाट की ओर निकल पड़े। वहाँ पहुँचकर नदी पार करते समय उन्होंने माझी के हाथ में एक रुपया देकर कहा-“कुछ समय बाद यहाँ एक बाबाजी मुझे ढूँढ़ने आएँगे, उनको ये रुपया देकर कहना, मैं काशी जा रहा हूँ-वे जिससे काशी आकर मेरे साथ भेंट कर लें!”

ठाकुर जब घर से निकल रहे थे, श्रीधर तब किसी कारण से बाहर गए थे। घर आकर श्रीधर ने जैसे ही सुना, ठाकुर काशी चले गए हैं, वे तुरन्त उसी अवस्था में ही पागल के समान दौड़कर राणाघाट की ओर गए। नदी के किनारे पहुँचकर, पार करने के लिए घाट पर पहुँचते ही माझी ने उनको देखकर कहा-‘कुछ क्षण पहले एक साधु यहाँ से स्टेशन गए। वे काशी जाएँगे। मेरे हाथ में एक रुपया देकर उन्होंने कहा, कुछ समय में यहाँ एक बाबाजी मेरी खोज में आएँगे, उनको ये रुपया देकर कहना, मैं काशी जा रहा हूँ, वे भी काशी पहुँचकर मेरे साथ भेंट करें।’

श्रीधर ने माझी से कहा-‘हाँ, वे मेरे गुरु हैं, मैं उन्हीं की खोज में

आया हूँ।' माझी ने तुरन्त श्रीधर के हाथ में रुपया दे दिया। तब श्रीधर नदी पार करके शीघ्र ही राणाघाट स्टेशन पहुँचकर देखे- यात्रियों से भरी एक ट्रेन स्टेशन पर है। इधर-उधर ताकते-ताकते ठाकुर को गाड़ी के भीतर देख लिए। ठाकुर ने भी श्रीधर को देखकर पुकारते हुए कहा-**'श्रीधर! मैं काशी जा रहा हूँ। तुम कोलकाता जाकर कुंज के घर में ठहरना। वहाँ से रुपये संग्रह करके काशी आना, मेरे साथ भेंट होगी। घबराओ मत।'**

देखते-देखते गाड़ी छूट गई। श्रीधर भी कोलकाता जाकर कुंज बाबू के घर में ठहरे। वहाँ रेल-किराया के लिए रुपये संग्रह करके अगले दिन ही काशी के लिए निकल पड़े। कुछ दिन बाद माता ठाकुरानी भी नानीजी एवं योगजीवन आदि को लेकर कोलकाता में श्रीउमेशचन्द्र दत्तजी के निवासस्थान पर पहुँच गईं। वहाँ कुछ दिन रहकर कुंज बाबू एवं श्रीविधुभूषण मजूमदार आदि के साथ भेंट करके काशी जाने की सुव्यवस्था कर लीं। इसी समय एक दिन विष्णु बाबू ने बेंगाल फोटोग्राफर को लाकर माता ठाकुरानी का फोटो खिंचवा लिया। इस फोटो को अनेक गुरुभाइयों ने बहुत आग्रह के साथ ग्रहण किया। माता ठाकुरानी शीघ्र ही योगजीवन और देवेन्द्र चक्रवर्ती आदि गुरुभाइयों के साथ काशी चली गईं।

ठाकुर की काशीधाम में अवस्थिति

ठाकुर श्रीकाशीधाम पहुँचकर पहले काकिनिया महाराज के छत्र में ठहरे। कुछ दिन वहाँ रहकर अगस्त्य-कुण्ड के समीप मानिकतला की माताजी के किराए के मकान में गए। माता ठाकुरानी भी उस समय योगजीवन को लेकर कुछ एक गुरुभाइयों के साथ उसी

मकान में उपस्थित हुईं। मकान में १०-१२ लोग हो गए। आहारत्यागी माताजी चुल्लूभर भी पानी ग्रहण किए बिना स्वस्थ रहकर प्रफुल्लित मन से प्रतिदिन सब लोगों का परिवेशनादि समस्त सेवा का कार्य करने लगीं। ठाकुर काशी में महीनेभर से अधिक रहे। उनकी उस समय की अद्भुत घटनावली लिखने में बहुत बाधा देखकर मैंने उसे छोड़ दिया। कुछ साधारण घटनाओं का थोड़ा-बहुत उल्लेख कर रहा हूँ।

ठाकुर को संन्यासीवेश में देखकर शहर के अंग्रेजी-शिक्षित वकील, अध्यापक आदि बंगाली बाबू लोग नाना प्रकार से उपहास करने लगे। एक दिन श्रीकृष्णानन्द स्वामी और विख्यात श्रीनाथ राय आदि लोगों ने धर्म-सभा के अधिवेशन में ठाकुर को निमन्त्रित किया। ठाकुर यथासमय सभा-स्थल में उपस्थित हुए, सब लोगों ने आदर-सत्कार करके उनको संन्यासी-मण्डली की अग्रपंक्ति में बैठाया। अनेक सम्मानित लोगों के समागम से सभा-स्थल परिपूर्ण हो गया। अधिवेशन का कार्य समापन के बाद संकीर्तन का आयोजन होने लगा। ठाकुर अस्वस्थ रहने के कारण निवास-स्थान पर जाने की चेष्टा करने लगे, लेकिन कार्यकर्ताओं के विशेष अनुरोध से वे संकीर्तन में रुकने के लिए सहमत हो गए। कुछ समय बाद कीर्तन आरम्भ हुआ। ठाकुर कुछ क्षण शान्त बैठे रहे। फिर उच्च स्वर में **‘हरिबोल, हरिबोल’** कहकर नृत्य करने लगे। देखते-देखते संकीर्तन में महाभाव की बाढ़ आ गई। सभी दर्शकवृन्द उसमें गोता लगाने लगे। शीघ्र ही ठाकुर समाधिस्थ हो गए। कृष्णानन्द स्वामी और सभा के अन्यान्य प्रतिष्ठित व्यक्तिगण आकर ठाकुर की पदधूलि लेने लगे। तब विरोधी बंगाली बाबू लोग भी ठाकुर को

प्रणाम करके उनकी अलौकिक शक्ति की प्रशंसा करते-करते चले गए। समाधि भंग होने पर ठाकुर निवास-स्थान पर लौट आए।

विश्वेश्वर की आरती दर्शन

ठाकुर एक दिन संध्या के कुछ पूर्व विश्वेश्वर की आरती दर्शन करने के लिए मन्दिर पहुँचे। मन्दिर में बहुत भीड़ होने के कारण भीतर प्रवेश न कर पाने से मण्डप के एक किनारे बैठे रहे। रात्रि में लगभग ८ बजे आरती आरम्भ हुई। ठाकुर दूर से ही हाथ जोड़कर खड़े-खड़े आरती दर्शन करने लगे। उनका सारा शरीर थरथर काँपने लगा। फिर उच्च स्वर में **'बम् भोला, बम भोला'** कहकर नृत्य करने लगे। चारों ओर सब लोगों के आनन्द का मधुर कोलाहल होने लगा। आरती दर्शन न करके सब लोग उल्लसित भाव से ठाकुर की ओर देखने लगे। ठाकुर नृत्य करते-करते विश्वेश्वर की ओर अग्रसर होते-होते दरवाजे तक आकर फिर पीछे की ओर हटने लगे। तब पण्डों ने आग्रहपूर्वक वहाँ अबाध गति से नृत्य करने की व्यवस्था कर दी। ठाकुर 'बम् भोले, बम् भोले' की मधुर ध्वनि से सभी को मुग्ध करते हुए उद्दाम नृत्य करने लगे। श्रीधर, स्वामीजी आदि लोग भी उन्मत्त होकर जय-ध्वनि देते-देते ठाकुर के दोनों ओर नृत्य करना आरम्भ कर दिए। सेवकगण बड़े उत्साह के साथ उच्च स्वर में स्तव-पाठ करके आरती करने लगे। ठाकुर दर्शन करते-करते भावावेश में अचेत हो गए। ठाकुर का दर्शन और स्पर्श करने के लिए लोगों की भीड़ जमा हो गई। रात्रि में ठाकुर बहुत विलम्ब से निवासस्थान पर लौटे।

अन्य एक दिन ठाकुर विश्वेश्वर की आरती देखने मन्दिर के

भीतर गए। वहाँ एक कोने में खड़े रहकर दर्शन करने लगे। विश्वेश्वर के दर्शन करते-करते ठाकुर भावावेश में अधीर हो गए; सिसक-सिसककर बालक के समान रोने लगे। तब आश्चर्यजनक रूप से ठाकुर के दोनों नेत्रों से बड़े वेग के साथ अश्रु निकलकर विश्वेश्वर के सामने गिरने लगे। इस अद्भुत घटना को देखकर पण्डे, पुजारी और दर्शकवृन्द आश्चर्य से ठाकुर की ओर ताकते रहे। निर्दिष्ट समय बीत जाने के बाद भी उन लोगों ने आनन्द, उत्साह के आवेग में आधा घण्टा अधिक आरती की।

इसके बाद प्रतिदिन बड़ी संख्या में लोग आकर ठाकुर का दर्शन करने लगे। ठाकुर किस दिन कब विश्वेश्वर के दर्शन के लिए जाएँगे, बंगाली टोला के निवासी प्रतिदिन आकर खबर ले जाते।

भास्करानन्द स्वामी एवं पाल महोदय

ठाकुर एक दिन भास्करानन्द स्वामी के दर्शन करने शिष्यों के साथ दुर्गाबाड़ी गए। एक व्यक्ति ने ठाकुर को स्वामीजी के पास जाने से रोकते हुए कहा, 'वहाँ मत जाइए। इस समय स्वामीजी के साथ भेंट नहीं होगी, वे ध्यानस्थ हैं।'

ठाकुर उसको कुछ कहे बिना ही एक वृक्ष के नीचे आँखें बन्द करके बैठे रहे। दो-एक मिनट के भीतर ही स्वामीजी मुस्कुराते हुए 'आनन्द है, आनन्द है' कहते-कहते ठाकुर के सामने पहुँच गए। स्वामीजी को साष्टांग प्रणाम करने के लिए ठाकुर जैसे ही उठने लगे, स्वामीजी ने तुरन्त उन्हें छाती से लगा लिया। परस्पर आलिंगन करने से दोनों को ही बाह्यज्ञान न रहा। इसी प्रकार स्तब्ध अवस्था में बहुत समय बीत गया। उसके बाद दो-एक बातें करके

ठाकुर निवास-स्थान पर आ गए।

ठाकुर के मुख से श्री द्वारकानाथ पाल की बातें कई बार सुनी है। ठाकुर ने कहा है, **'ये एक कुशल दार्शनिक पण्डित थे; सब त्याग करके दीन-हीन कंगाल की भाँति काशी के एक प्रान्त, दुर्गाबाड़ी की ओर एक निर्जन बागान में रहते हैं। लोगों के आगमन से ऐसा न हो कि भजन में विघ्न आए, इसलिए वे कुटीर के द्वार पर बाहर से ताला लगा दिया करते हैं; फिर एक छोटी खिड़की से भीतर प्रवेश करते हैं। उसके बाद उसे भी बन्द करके निर्जन कमरे में दिनभर एक आसन पर ध्यान-मग्न रहते हैं।'** ठाकुर उनके दर्शन के अभिप्राय से उनके आश्रम में पहुँचे; कुटीर का द्वार बन्द देखकर दीवाल पर अपना नाम व ठिकाना लिखकर आ गए। अगले दिन दुबले-पतले वृद्ध पाल महोदय ठाकुर के साथ भेंट करने अगस्त्य-कुण्ड में आए। ठाकुर जितने दिन काशी में थे, पाल महोदय प्रायः ही आते थे। उनके आगमन से ठाकुर के निवास-स्थान पर शिक्षित लोगों का अत्यधिक समागम होने लगा। सनातन धर्म के सूक्ष्म तत्त्व की आलोचना में और समस्त दर्शनशास्त्र में उनका प्रगाढ़ पाण्डित्य देखकर उच्च शिक्षित व्यक्तिगण चकित हो गए। 'शास्त्र अभ्रान्त है', यह उनका दृढ़ विश्वास है। विशुद्धानन्द स्वामी, पूर्णानन्द स्वामी इत्यादि और भी कई संन्यासी एवं परमहंस के साथ भेंट करके, काशी का प्रयोजन पूर्ण होने पर ठाकुर फैजाबाद के लिए निकल पड़े।

परमहंसजी का आह्वान

अवसर देखकर ठाकुर से पूछा, 'माता ठाकुरानी के साथ झगड़ा

होने से ही क्या आप शान्तिपुर छोड़कर आए हैं?'

ठाकुर-**मैं अपनी इच्छा से कुछ नहीं करता। परमहंसजी के आह्वान से ही आया हूँ। झगड़े के समय उन्होंने कहा, 'इसी समय तुम काशी चले जाओ। काशी में मेरे से भेंट न होने पर अयोध्या जाना। वहाँ भी भेंट न हो तो श्रीवृन्दावन जाना। श्रीवृन्दावन में मेरे साथ भेंट होगी।' झगड़े के समय जैसे ही परमहंसजी का आदेश मिला, मैं निकल पड़ा।**

एक दिन ठाकुर शौच के लिए गए थे; कोई समारोह का संकीर्तन कुंज के पास वाले रास्ते से निकला। ठाकुर उसे सुनते ही शौचालय से 'हरिबोल, हरिबोल' कहते-कहते दौड़कर बाहर निकल पड़े। संकीर्तन के साथ-साथ बहुत समय तक आनन्द करके कुंज में आए। तब अचानक उन्हें स्मरण हुआ, शौच के बाद जल से धोया नहीं।

अन्य एक दिन भोजन करते-करते खोल-करताल की आवाज सुनकर बिना मुँह धोए ही दौड़कर बाहर आ गए। संकीर्तन उत्सव में आनन्द करके अपराह्न में निवास-स्थान पर लौटे। तब मुख-प्रक्षालनादि किए।

गुरु के आह्वान के सिवा इस प्रकार का विचारहीन अद्भुत आवेग मैं नहीं समझता ठाकुर का अन्य किसी में हो सकता है।

गुरुभाई के संस्पर्श से विलुप्त गुरु-शक्ति का स्फुरण

कोई यदि कभी सिद्ध महात्मा अथवा महापुरुष से दीक्षा ग्रहण करके इष्ट मन्त्र भूल जाते हैं, गुरु को भी बिल्कुल भूल जाते हैं, तो

उनके किसी गुरुभाई के साथ किसी प्रकार से केवल थोड़ा संस्पर्श होने से भी गुरु-शक्ति की कुछ क्रिया उनके भीतर हुआ करती है; ठाकुर के मुख से इस प्रकार का वृत्तान्त सुनकर यह बात समझ में आई। ठाकुर ने वृत्तान्त इस प्रकार कहा-

"गया में एक समृद्धशाली सज्जन ने बचपन में किसी सिद्ध महात्मा से दीक्षा ली थी। बाद में रुपये-पैसे, धन-सम्पत्ति के सम्पर्क से वे साधन-भजन, इष्ट मन्त्र, यहाँ तक कि गुरु को भी भूल गए; क्रमशः घोर विषयी हो गए। एक दिन एक उदासी साधु ने उनके द्वार पर पहुँचकर कहा, 'हम भूखे हैं, हमको कुछ भोजन दीजिए।' घर के नौकर ने एक मुट्ठी चावल लाकर साधु से कहा, 'यह लो, चले जाओ।' साधु ने कहा, 'दाना मैं नहीं माँगता, हमको थोड़ा भोजन दो।' बाबू ने साधु की बात सुनकर नौकर को धमकाते हुए कहा, 'वह क्या गड़बड़ कर रहा है? अच्छा उपद्रव है! उसको धक्का मारकर भगा ना।' नौकर तुरन्त साधु को धक्का मार-मारकर भगाने लगा। तब साधु बैठ गया एवं कहने लगा 'हम बहुत भूखे हैं, जरा भोजन दे दीजिए।' साधु की जिद देखकर बाबू एकदम आग-बबूला हो उठे; 'ठहर बदमाश, भोजन देता हूँ' कहकर उन्होंने साधु को पकड़ लिया, फिर लात, घूँसा, चाँटा मारते-मारते उसको धराशायी कर दिया। साधु 'हाय रे गुरुजी' कहकर चिल्ला उठे। इस समय बाबू को क्या हुआ भगवान् जाने; वे लात मारते-मारते अचानक रुककर खड़े हो गए, थर-थर काँपते हुए गिरकर साधु को जकड़ लिए एवं बारम्बार साधु के चरणों में गिरकर रोते-रोते कहने लगे, 'अरे तुम कौन हो, अरे तुम कौन हो?' साधु ने उनके शरीर पर हाथ

फेरते-फेरते कहा, 'अरे, हम तुम्हारे गुरुभाई हैं, हम तुम्हारे गुरुभाई हैं।' यह कहकर साधु तुरन्त दौड़कर एक ओर चले गए। फिर बाबू बहुत चेष्टा करके भी उनको नहीं ढूँढ पाए। इस घटना के बाद से बाबू का स्वभाव अद्भुत रूप से परिवर्तित हो गया। वे साधन-भजन करने लगे, अल्प दिनों के भीतर ही वे सदाचारी, निष्ठावान्, भजनानन्दी हो गए।"

नन्दोत्सवः दर्शन के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर

८ अगस्त, शुक्रवार। आज जन्माष्टमी है। पूरा वृन्दावन आज बड़े आनन्दोत्सव में उन्मत्त है, ठाकुर के साथ हम लोग श्रृंगार-वट गए। श्री राखाल बाबू, प्रबोध बाबू, दक्ष बाबू एवं अभय बाबू भी हमारे साथ गए। श्रृंगार-वट के आँगन को लोगों से परिपूर्ण देखा। हाँडियों में दही ला-लाकर उसमें बहुत सारी हल्दी मिलाकर ब्रजवासी और वैष्णव बाबाजी लोग उसे उछाल-उछालकर चारों ओर फेंकने लगे। सब लोग आनन्दपूर्वक एक-दूसरे के अंग में पीला दही मलकर बड़े उत्साह के साथ नृत्य करने लगे। नन्दोत्सव का महासंकीर्तन आरम्भ हो गया। क्रमशः कीर्तन खूब जम गया। उत्साह के साथ बाबाजी लोग नृत्य करते-करते आँगन में फिसल-फिसलकर 'धम् धम्' गिरने लगे। श्रीधर सर्वांग में पीला दही मलकर ब्रजवासियों के साथ उन्मत्त हो गए। वे समय-समय पर दोनों हाथ उठाकर आकाश की ओर दृष्टि करके 'जय निताई, जय निताई' कहते-कहते गिरने लगे। ठाकुर भावावेश में बालक के समान संकीर्तन-स्थल पर इधर-इधर दौड़ने लगे। फिर भूमि पर लेटकर साष्टांग प्रणाम करके अचेत हो गए। ठाकुर लगभग तीन घण्टे तक समाधिस्थ अवस्था में रहे।

अपराह्न में हम सभी यमुना में स्नान करके कुंज में आए। श्रीधर कीर्तन-स्थल में नाना प्रकार से अंग हिलाकर नित्यानन्द और अद्वैत प्रभु के नृत्य करने का विवरण ठाकुर को बतलाकर आनन्द व्यक्त करने लगे।

श्रीधर चले गए। फिर मैंने ठाकुर से पूछा-जन्माष्टमी में उपवास की व्यवस्था भिन्न-भिन्न प्रकार की है। शाक्त लोगों के साथ कभी-कभी वैष्णवों का मत मिलता नहीं, मैं किस मत से उपवास करूँगा?

ठाकुर ने कहा-**व्रत-उपवास आदि वंश-परम्परा में जिसका जो नियम है, वे उसके अनुसार ही करें।**

मैंने कहा-हमारा लक्ष्य क्या है? किस रूप में भगवान् हम लोगों के समक्ष प्रकट होंगे?

ठाकुर ने कहा-**हमारे इस साधन में कोई देवता लक्ष्य नहीं हैं। केवल भगवान् ही लक्ष्य हैं। फिर भी जिनका जैसा भाव है, जिनके जो कुल देवता हैं, भगवान् आरम्भ में उनको उस भाव से उसी रूप में दर्शन दिया करते हैं।**

मैंने पूछा- हम लोगों के बीच जो लोग ब्राह्म-समाज में थे, वे लोग तो किसी देवी-देवता का विचार नहीं करते, मानते भी नहीं उनके समक्ष भगवान् किस प्रकार प्रकट होंगे?

ठाकुर ने कहा-**मैंने इस प्रकार की कुछ घटनाएँ देखी है; कोई-कोई अच्छे ब्रह्मसमाजी अनेक दिन उपासनादि करके मुझसे आकर कहते हैं, 'महाराज, अमुक देवता के भाव और रूप मन में क्यों आते हैं? कभी तो वह सब विचार किया नहीं, कल्पना भी की नहीं; फिर ऐसा क्यों होता है?' मैंने उनकी बात का**

अनुसन्धान करके देखा, जिनके जो कुल देवता हैं, उनके भीतर उसी देवता का रूप और भाव आ जाता है। पितृ-पितामह आदि वंश के पूर्वजों से हमारे भीतर रक्त मांस के साथ जो सब भाव जड़ित है, वह क्या सहज में जाता है? ब्रह्मोपासक होने से क्या होगा? ब्रह्म जब प्रकट होंगे, तब एक भाव, एक रूप में ही तो प्रकट होंगे। कई जगह देखा गया है, जिनके वंश के जो देवता हैं, ब्रह्म आरम्भ में उनके समक्ष उसी रूप में प्रकट होते हैं, फिर उससे अन्यान्य देवी-देवता और जो भी हैं, धीरे-धीरे प्रकट हुआ करते हैं।

मैंने कहा-मुझे लगता है, ब्राह्म-समाज के पल्ले में पड़कर मेरी बड़ी हानि हुई है; सरल विश्वास अब नहीं रहा। सभी में सन्देह रहता है, सब टूट-फूटकर एक हो गया है। वहाँ गया ही क्यों?

ठाकुर ने कहा-**सरल विश्वास जिन्होंने तोड़ा है, अब वे ही पुनः बना भी रहे हैं। फिर उसके लिए तुम्हें चिन्ता क्यों हैं? अब जो होगा वह ठीक होगा। वह फिर टूटेगा नहीं। ब्राह्म-समाज में जाने से हानि कुछ नहीं हुई, बहुत उपकार हुआ है। वहाँ पर जाने से ही नीति, चरित्रादि की रक्षा हुई है। फिर प्रथम अवस्था में ब्रह्मज्ञान होना आवश्यक है। ब्रह्मज्ञान हुए बिना किसी प्रकार से ठीक तत्त्व जानने का अधिकार नहीं होता। इसीलिए ऋषि लोग प्रथम अवस्था में ब्रह्मज्ञान की शिक्षा देते हैं। ब्रह्म सर्वव्यापी, सत्यस्वरूप, पवित्रस्वरूप, मंगलमय, निर्विकार, निराकार है, इत्यादि सब भावों का ध्यान करते-करते जब धीरे-धीरे उसके भीतर से अलौकिक रूप की अद्भुत छटा प्रगट हुआ करती है, तभी वह धीरे-धीरे समझ में आता है, पकड़ में आता**

है।

मैंने फिर पूछा-हम लोगों के बीच सभी तो ब्राह्म-समाज से आए नहीं, जिन्होंने हिन्दू समाज में रहकर यह साधन प्राप्त किया है, उन्हें इन सब तत्त्वों का बोध होता है?

ठाकुर ने कहा-**क्यों नहीं होगा? फिर भी थोड़ी कठिनाई होती है। प्रथम अवस्था में जो लोग ब्रह्मज्ञान प्राप्त करते हैं, सब तत्त्व ग्रहण करने में उन्हें वैसी कोई कठिनाई नहीं होती; बहुत सहज में पकड़ सकते हैं। फिर ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुए बिना तो कुछ होना सम्भव नहीं है। इसलिए प्रथम अवस्था में ही वह होना अच्छा है, इससे सब कुछ सहज होने लगता है। जिससे ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो, वही करना उचित है, वही करो।**

ठाकुर कुछ क्षण चुप रहकर फिर अपने-आप ही कहने लगे-**'अवश्य ही ब्राह्म-समाज में जाने से बहुतों की बड़ी हानि भी हुई है। ब्राह्म-समाज की जितनी भी अच्छाई है, उसे तो सभी सहज में ग्रहण कर नहीं पाते; जिससे अनिष्ट होता है, ऐसे सब विषयों में ही साधारण लोग प्रायः आसक्त हो जाते हैं। अविश्वास, सन्देह आदि कितने ही वृथा संस्कार से कोई-कोई बहुत कष्ट भोग रहे हैं। सहज में वह सब संस्कार जाता नहीं, वह सब संशोधन होना बड़ा कठिन है।**

इन सब बातचीत में बहुत समय बीत गया; ठाकुर के आदेशानुसार महोत्सव की पूरी, कचौरी, मिठाई आदि प्रसाद का तृप्तिपूर्वक भोजन किया। ठाकुर के पास बैठकर नाम-जप करते-करते देखा-बारम्बार एक अत्यन्त उज्ज्वल स्निग्ध काली ज्योति जगमगाकर एक-एक बार प्रगट होकर पुनः अन्तर्धान होने लगी,

बहुत समय तक इस ज्योति के सौन्दर्य पर मुग्ध रहा। भोजन के कुछ क्षण बाद प्राणायाम आरम्भ किया तो माता ठाकुरानी ने मना कर दिया।

ठाकुर ने कहा-बहुत खाली पेट अथवा पेट बहुत भरे रहने पर प्राणायाम नहीं करते। भोजन के लगभग तीन घण्टे बाद करना चाहिए।

अभय बाबू पर कृपा
गोसाँईजी और काठिया बाबा का प्रथम साक्षात्कार

आज श्रीअभयनारायण राय के साथ बातचीत में उनके जीवन की एक अच्छी घटना सुनकर बड़ा आनन्द आया। अभय बाबू के साथ मेरा परिचय नया नहीं है, पहले भी फैजाबाद में भैया के निवास पर उनके साथ मेरी भेंट हुई थी। तब उन्होंने कोई धार्मिक वेश धारण नहीं किया था। इस बार श्रीवृन्दावन में अभयबाबू को संन्यासी के वेश में देख रहा हूँ। उनके ही मुख से सुना है-कुछ समय पहले एक दिन वे मानसिक ज्वाला की यन्त्रणा से पागल के समान हो गए। उन्होंने आत्महत्या करने का विचार किया। यमुना में डूबकर मरने का निश्चय करके, यमुना के किनारे पहुँचे। उस समय श्रीवृन्दावन के चौरासी कोस के महन्त सिद्ध महापुरुष श्रीरामदास काठिया बाबा अभय बाबू का अभिप्राय जानकर अचानक उनके पास आकर खड़े हो गए। अज्ञात महापुरुष ने अपने-आप ही स्नेह के साथ सान्त्वना देकर अभय बाबू को भरोसा दिलाते हुए कहा, ‘तुमको मैं दीक्षा दे रहा हूँ, सारी अशान्ति दूर हो जाएगी। तुम उस

प्रकार का विचार त्याग दो।' सिद्ध महात्मा ने ऐसा कहकर अभय बाबू को दीक्षा प्रदान की। तब अभय बाबू मन्त्र-शक्ति के प्रभाव से एक प्रकार से बाह्यज्ञान से अनभिज्ञ रहकर उन्मत्तवत् कूदने लगे एवं सामने एक वृक्ष की डाल पकड़कर ज्ञानशून्य अवस्था में ही उसमें झूलने लगे। उसके बाद काठिया बाबा धीरे-धीरे उनको शान्त करके चले गए।

अभय बाबू ने कहा-"इस बार श्रीवृन्दावन में आने के पहले कुछ समय गया के आकाशगंगा पहाड़ में था। एक दिन स्वप्न देखा, काठिया बाबा ने मुझसे कहा, 'चलो, तुमको एक असली महात्मा का दर्शन कराएँगे।' यह कहकर मुझे साथ लेकर दाऊजी के मन्दिर में गोस्वामी प्रभु के पास पहुँचे। वे दाऊजी के 'जगमोहन' (सभा-मण्डप) में बैठे हुए थे; बहुत-से ब्रजवासी, साधु, ब्राह्मणादि को गोसाँईजी के पास खड़े देखा। गोस्वामी प्रभु ने दया करके अँगुलि से इंगित करके मुझे दाऊजी भगवान् का दर्शन कराया एवं आदेश दिया कि 'भक्तमाल ग्रन्थ का पाठ और निराहार रहकर एकादशी व्रत करना।' इस मन्दिर एवं गोस्वामी प्रभु के बारे में मैं कुछ भी नहीं जानता था। स्वप्न दर्शन के कुछ समय बाद संयोग से मैंने श्रीवृन्दावन की यात्रा की एवं दाऊजी के मन्दिर में आया। यहाँ गोस्वामीजी को देखते ही, स्वप्न में दिखे महात्मा के रूप में उनको पहचानकर चकित हो गया। गोस्वामीजी के आश्रम में ही मैं रहने लगा। एक दिन सुना, श्रीवृन्दावन में काठिया बाबा आए हैं। तुरन्त मैं उनके दर्शन करने गया। उन्होंने मुझे देखकर कहा, 'देख स्वप्न तो प्रत्यक्ष हुआ! उन्हीं का नाम साधु है। वे ही सच्चे साधु हैं। चल हम भी दर्शन करने के वास्ते तुम्हारे साथ जाएँगे।' यह कहकर काठिया

बाबा मेरे साथ गोसाँईजी के पास उपस्थित हुए। वे एक-दूसरे को दण्डवत् प्रणाम करके अपने-अपने आसन पर बैठकर सम्पूर्ण अपरिचित के समान बातचीत करने लगे। यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उस दिन गोस्वामीजी ने काठिया बाबा को बड़े आदरपूर्वक भोजन कराया। अगले दिन गोस्वामीजी मेरे साथ काठिया बाबा के दर्शन के उद्देश्य से उनके पास पहुँचे। दोनों ने एक स्थान पर बैठकर ध्यान-मग्न अवस्था में बहुत समय बिता दिया, कोई बात नहीं हुई। इस प्रकार तीन-चार दिन लगातार वे लोग परस्पर मिले; लेकिन बिल्कुल शान्त रहे, एक वाक्य भी नहीं कहे। तब एक दिन मैंने गोस्वामीजी से पूछा, 'आप लोग तो कोई बात ही नहीं करते? ' गोसाँईजी ने कहा-**'मुख से कहे बिना भी महापुरुष लोग सारी बातें अन्तःकरण में पहुँचा देते हैं, भीतर-ही-भीतर बातें होती है।'** एक दिन गोस्वामीजी काठिया बाबा को प्रणाम करके उनके पास बैठ गए। दोनों अपने-अपने भाव में निर्वाक् एवं एकाग्र अवस्था में रहे। अचानक काठिया बाबा ने गोस्वामीजी के घुटने को स्पर्श करके नम्रतापूर्वक कहा, 'बाबा! हम आपके बालक हैं।' गोसाँईजी ने तुरन्त उनको दोनों हाथों से पकड़कर छाती से लगा लिया।"

'काठिया बाबा बहुत दिनों से प्रतिदिन दिन में अधिकांश समय सेवाकुंज के द्वार पर आसन बिछाकर बैठा करते हैं। इसका कारण पूछने पर उन्होंने कहा था कि इस स्थान पर ही उनको अप्राकृत-लीला का प्रथम दर्शन हुआ। इसलिए प्रतिदिन इस स्थान पर बैठकर वे अब भी नित्य-लीला का दर्शन करते हैं।'

गोसाँईजी की करुणा

बातों-बातों में अभय बाबू ने कहा-एक दिन मथुरा के सरकारी डॉक्टर श्रीमनोमोहन दास एक कटोरा-भर बड़े-बड़े लड्डू लेकर कुंज में उपस्थित हुए। गोस्वामीजी को न पाकर वे उनकी सेवा के लिए उसे दामोदर पुजारी के हाथ में देकर चले गए। दामोदर उनमें से कुछ यहाँ रखकर सब लड्डू अपने घर भेज दिए। अगले दिन प्रातःकाल दामोदर ने आकर गोस्वामीजी से कहा-'बाबा, मनोहर बाबू छः लड्डू दिए थे; आपके लिए दो रखकर, दाऊजी ठाकुर को दो लड्डू, अभय बाबू को एक और श्रीधर बाबू को एक दे दिया। यह बात मैंने कुछ दूरी में रहकर सुनी। बाद में दामोदर के प्रति अत्यन्त विरक्त होकर मैंने गोस्वामीजी से कहा-'मनीआर्डर जो आता है, उसमें तो आप केवल हस्ताक्षर करते हैं, पूरा दामोदर ले जाता है, फिर जैसा-तैसा भोजन देकर आपको कष्ट देता है। कल भी सब लड्डू अपने घर भेज दिया, यह कैसा व्यवहार है?' गोस्वामीजी ने खूब हँसते हुए प्रसन्नतापूर्वक मेरी ओर देखकर कहा-**"अहा, अहा! अच्छा किया। छोटे-छोटे लड़के-बच्चे, स्त्री, परिजनादि हैं, वे लोग खाएँगे। अच्छा ही हुआ।"** मैं सुनकर अपनी क्षुद्रता का अनुभव करके बहुत लज्जित हुआ। कुछ समय बाद गोसाँईजी ने कहा-**"मेरे गुरु का आदेश है, एक वर्ष इस आसन पर मुझे रहना होगा, उसमें जितना क्लेश-कष्ट होता है, होने दो। मैं जानता हूँ, आप लोगों को आहारादि का कष्ट हो रहा है। अपना-अपना कुछ-कुछ खर्च करके बाजार से खरीदकर खा लेना। फिर रूखा-सूखा खाना भी अच्छा है, उससे इन्द्रिय-संयम होता है।"**

महात्मा गौर शिरोमणि

९ अगस्त, शनिवार। आज भोजन के बाद गौर शिरोमणिजी की बात उठी। सुना है, श्रीधर एक दिन शिरोमणिजी के दर्शन करने के लिए उनके कुंज में गए, उन्होंने देखा, वे सो रहे हैं, अतएव उसी अवस्था में उनका दर्शन करके, उनके चरणों की ओर जाकर दूर से ही प्रणाम किया। निद्रित अवस्था में रहने पर भी शिरोमणिजी के दोनों चरण उसी समय घूम गए। श्रीधर ने फिर उनके चरणों की ओर जाकर प्रणाम किया; उठकर देखा, शिरोमणिजी के दोनों चरण फिर दूसरी ओर घूम गए। श्रीधर ने पुनः चरणों की ओर जाकर छः-सात फीट दूर से साष्टांग प्रणाम किया, इस बार भी श्रीधर ने उठकर देखा, दोनों चरण फिर वहाँ नहीं हैं, निद्रित अवस्था में ही शिरोमणिजी के चरण हट गए। तीनों बार ही एक जैसी घटना देखकर वे चकित होकर चले आए। शिरोमणिजी के पैर को छूकर प्रणाम करने की क्षमता किसी में नहीं है, उनको ज्ञात रहने पर दूर से भी कोई उन्हें पहले प्रणाम नहीं कर पाता। बिना विचार किए सभी को वे साष्टांग प्रणाम करते हैं। रास्ते में उनके साथ चलना एक बड़ा मुश्किल काम है। वे चलते-चलते रास्ते के दोनों ओर बिल्ली, बन्दर, गाय, स्त्री, पुरुष एवं विग्रह आदि सभी को एक भाव से साष्टांग प्रणाम करते-करते अग्रसर होते हैं। श्रीवृन्दावन के सभी स्त्री-पुरुष लोग शिरोमणिजी को सिद्ध महापुरुष मानकर उनकी श्रद्धा-भक्ति करते हैं।

ठाकुर ने कहा-‘**तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥**(साधक अपने को तृण से भी छोटा माने, वृक्ष से भी अधिक सहनशील होवे। स्वयं सम्मान की आशा किए बिना दूसरों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करे। इस

प्रकार अपना आचरण रखकर सर्वदा नाम-कीर्तन करता रहे।) **इस श्लोक का यथार्थ दृष्टान्त देखना है तो शिरोमणिजी को जाकर देखो; वर्तमान समय में ऐसा कहीं देखा नहीं जाता।'**

शिरोमणिजी की पूर्वकालीन घटना ठाकुर बतलाने लगे- **"शिरोमणिजी अपने ग्राम के एक अनुभवी पण्डित थे; छहों दर्शन, स्मृति और पुराणादि में इनकी बड़ी ख्याति थी। एक दिन गाँव में एक ब्राह्मण के घर पर वे श्रीमद्भागवत सुनने गए। सभा में कई प्रतिष्ठित ब्राह्मण पण्डित उपस्थित थे। भक्त ब्राह्मण पाठक भागवत-पाठ के पूर्व गौर-वन्दना पढ़ने लगे। सर्वत्र यही नियम है; किन्तु शिरोमणिजी वह सुनते ही भड़क उठे। पाठक ब्राह्मण को बुलाकर उन्होंने कहा, 'यह क्या है महोदय, ये क्या भागवत पाठ हो रहा है? आप भागवत पाठ करने बैठे हैं, सामने भागवत खुली हुई है; उधर देखकर आप गौर-चन्द्रिका क्यों पढ़ रहे हैं? ब्राह्मण पण्डितों के बीच बैठकर, सामने शालग्राम रखकर, भागवत पढ़ने के नाम से इन सब मिथ्या वचनों की आवृत्ति किसलिए? भागवत में वह सब कहाँ लिखा है?' भक्त ब्राह्मण ने हाथ जोड़कर शिरोमणिजी से कहा, 'प्रभो! मैं भागवत का ही पाठ कर रहा हूँ। यह समस्त भागवत में है। मैंने असत्य वाक्य का उच्चारण नहीं किया।' शिरोमणिजी तब आसन से उछल पड़े, पाठक के पास जाकर उन्होंने कहा-"महोदय, 'अनर्पितचरीं' भागवत में कहाँ है, एक बार दिखाइए तो?" ब्राह्मण ने तुरन्त प्रत्येक दो लाइनों के बीच रिक्त स्थान दिखाकर कहा, 'इस सादे स्थान पर ध्यान से देखिए।' शिरोमणिजी ने कहा, 'कहाँ? यह तो सादा स्थान दिखला रहे**

हो।’ ब्राह्मण ने कहा, ‘आपकी दृष्टि-शक्ति नहीं है, किस प्रकार देखेंगे? दोनों आँखें थोड़ा स्वच्छ कर लीजिए, फिर देख पाएँगे।’ शिरोमणिजी ने क्रुद्ध होकर कहा, ‘शालग्राम सामने रखकर, भागवत स्पर्श करके इतने ब्राह्मणों के बीच आप अनायस झूठ बोल रहे हैं।’ ब्राह्मण ने तब बड़े तेज स्वर में कहा, ‘आप वैसी बात न कहें, चुप रहिए। इस ब्राह्मण सभा में शालग्राम को साक्षी मानकर, भागवत को स्पर्श करके मैं सत्य कह रहा हूँ, भागवत की प्रत्येक दो लाइनों के बीच ‘गौर-वन्दना’ लिखी हुई है। मैं देख रहा हूँ। आप किसी सिद्ध वैष्णव महात्मा के पास जाकर दीक्षा लेकर आइए, फिर मैं जो सब नियम बताऊँगा, ठीक उसके अनुसार एक सप्ताह चलिए; आठवें दिन यहाँ आइए, तब भागवत के प्रत्येक लाइन के बीच गौर-चन्द्रिका यदि स्पष्ट रूप से न दिखा सका तो अपनी जीभ काट दूँगा, सभी के समक्ष मैं यह शपथ लेता हूँ।’ शिरोमणिजी बड़े तेजस्वी पुरुष थे। उसी समय जाकर उन्होंने सिद्ध चैतन्यदास बाबाजी से दीक्षा ली, फिर पाठक ब्राह्मण के पास आकर उनकी नियम प्रणाली ग्रहण की। सात दिन ठीक उसी के अनुसार चले; फिर ब्राह्मण के पास पुनः आकर उन्होंने कहा, ‘महोदय, अब आप भागवत में वह गौर-वन्दना दिखलाएँगे तो?’ ब्राह्मण ने तुरन्त भागवत खोलकर कहा, ‘अच्छा, अब आकर देखिए।’ तब गौर शिरोमणिजी ने भागवत के श्लोक की प्रत्येक दो लाइनों के बीच जैसे ही देखा, उन्हें उज्ज्वल स्वर्ण अक्षरों में गौर-वन्दना स्पष्ट लिखी हुई दिखाई दी। तब वे भूमि पर गिरकर लोटने लगे; रोते-रोते अधीर हो गए। तुरन्त सब कुछ छोड़कर उन्होंने श्रीवृन्दावन की पैदल

यात्रा की। तब से वे यहीं हैं। ऐसी अवस्था के लोग श्रीवृन्दावन में नहीं हैं। ये ही यथार्थ वैष्णव हैं।”

मत्स्याहार की अनिष्टकारिता

अशुद्ध देह का आशय और परिणाम एवं शुद्धि का उपाय

गौर शिरोमणिजी की बात कहते-कहते ठाकुर वैष्णवाचार की प्रशंसा करने लगे। तब मैंने सुयोग पाकर पूछा-‘योग-साधना के पक्ष में मछली, मांस खाने से क्या कुछ अनिष्ट होता है?

ठाकुर ने कहा-**कुछ क्या? बहुत अनिष्ट होता है।**

मैंने फिर पूछा-मांस खाने से हानि होती है, यह तो सुना है; क्या मछली खाने से भी हानि होती है?

ठाकुर ने कहा-**मछली खाने से भी हानि होती है। फिर पहले-पहल जो लोग योग का अभ्यास करते हैं, उनको उतनी हानि नहीं होती; थोड़ी उन्नति होते ही उससे कितनी हानि होती है, उसे वे लोग ठीक समझ सकते हैं। मछली खाने से सूक्ष्म-शरीर में यातायात करने से कष्ट होता है। इसलिए कई लोग बाध्य होकर तब मछली खाना छोड़ देते हैं। मैंने मुसलमान फकीरों एवं बौद्ध योगियों में बहुतों को देखा है, जिन्होंने बहुत समय तक मांस-मछली का सेवन किया, योग आरम्भ करने के बाद कुछ उन्नति होते ही वे लोग भी वह सब छोड़ देने के लिए बाध्य हुए हैं।**

मैंने कहा-सूक्ष्म-शरीर में यातायात तो उच्च अवस्था की बात लगती है। मांस-मछली खाने से और भी कोई अनिष्ट होता है?

ठाकुर ने कहा-**भोजन के साथ मन का बहुत निकट सम्बन्ध है; भोजन सात्त्विक होने से मन भी सात्त्विक होता है। राजसिक और तामसिक भोजन से मन भी उसी प्रकार हो जाता है। मछली व मांस रजः व तमोगुणी आहार है, इन सब आहार के सम्बन्ध में सदैव बहुत सावधान रहना चाहिए।**

'माता-पिता आदि गुरुजनों के प्रति भक्ति क्यों नहीं होती? उसका उपाय क्या है?' किसी व्यक्ति के इस प्रश्न पर ठाकुर ने कहा-**पूर्वजन्म में शरीर अशुद्ध रह जाने से माता-पिता एवं अन्यान्य गुरुजनों के प्रति अभक्ति और घृणा होती है। उन लोगों के स्नेह करने पर भी अश्रद्धा होती है। यहाँ तक कि भगवान् के प्रति भी भक्ति नहीं होती। पूर्वजन्म के सूक्ष्म परमाणु अगले जन्म की सूक्ष्म देह के साथ स्थूल देह में प्रविष्ट होते हैं। इसलिए बाद के जन्म में भी माता-पिता आदि के प्रति अश्रद्धा होती है। इस भक्ति का शरीर के साथ योग है। इसके साथ आत्मा का विशेष कोई योग नहीं। माता-पिता के साथ देह का योग है। पिता के वीर्य और माता के रक्त से देह की सृष्टि होती है। इस देह को शुद्ध करना होगा, शुद्ध रखना होगा, नहीं तो माता-पिता के प्रति भक्ति नहीं होगी। गंगास्नान, तीर्थ-भ्रमण, एकादशी उपवास, पूर्णिमा और अमावस्या का निशिपालन आदि व्रत करने से देह शुद्ध होती है।**

ठाकुर कुछ दिनों से मेरे शरीर की अस्वस्थता देखकर भैया के पास जाने के लिए कह रहे हैं। कल ही फैजाबाद जाने का निश्चय करके मैंने ठाकुर की अनुमति माँगी। उन्होंने खूब सन्तुष्ट होकर मुझे अनुमति देकर कहा-**श्रीवृन्दावन के सब मन्दिरों में जाकर**

ठाकुरजी का दर्शन करके आओ। मैं संध्या तक घूमकर श्रीवृन्दावन के प्रसिद्ध विग्रह आदि के दर्शन करके कुंज में लौटा।

ठाकुर से विदा लेनाः माता ठाकुरानी का अन्तिम आदेश

११ अगस्त, सोमवार, एकादशी। प्रातःकाल झोला-कम्बल बाँधकर फैजाबाद जाने के लिए प्रस्तुत हुआ। गुरुभाइयों से विदा लेकर दामोदर पुजारी के पास पहुँचा। आठ आना पैसे देकर उनके चरणों में प्रणाम करते ही उन्होंने मेरी पीठ तीन बार ठोकते हुए कहा, 'सुफल, सुफल, सुफल। अब तुम्हारा श्रीवृन्दावन वास सुफल हो गया। मैं ऊपर आकर गुरुदेव से विदा लेने हेतु जैसे ही उनके चरणों में प्रणाम करने आगे बढ़ा, इसी समय माता ठाकुरानी मुझे बुलाकर कमरे में ले गई। उन्हें चरण स्पर्श करके प्रणाम करते ही उन्होंने मेरे सिर पर दाहिना हाथ रखकर कहा-'कुलदा! भविष्य की बातें कुछ कही नहीं जा सकतीं, मेरी इन कुछ बातों को सदा स्मरण रखना; योगजीवन जैसे मेरा पुत्र है, तुमको भी मैं ठीक उसी प्रकार पुत्र समझती हूँ। इसे केवल कहने की बात मत समझना; तुमसे सच कह रही हूँ। अपने लड़के के समान तुम्हें देखती हूँ। तुम योगजीवन के सगे भाई हो, यह समझकर सदा उनका सहारा होकर रहना। शान्तिसुधा के कष्ट में कोई सहानुभूति नहीं रख पाता। उसको क्लेश के समय सान्त्वना देना, फिर भविष्य में माँ जिससे सब लोगों के लिए भार न बन जाए, इस विषय में ध्यान रखना। ब्रह्मचर्य लिए हो, अच्छा हुआ, शरीर स्वस्थ होने पर विवाह करने में हानि क्या है? गोसाँईजी की अनुमति लेकर इसके बाद विवाह कर सकते

हो, उससे धर्म-कर्म, साधन-भजन में कोई अनिष्ट नहीं होगा। ये सब बातें कहकर उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया। मैंने गुरुदेव के पास जाकर उन्हें चरण स्पर्श करके प्रणाम किया।

वे स्नेहपूर्वक मेरी ओर कुछ क्षण देखते रहे, फिर मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए उन्होंने कहा-**अच्छा अब जाओ-जो कहा है, वह करने का प्रयास करो; बीच-बीच में चिट्ठी लिखना, प्रयोजन के अनुसार उत्तर मिलेगा।**

मेरी फैजाबाद यात्राः रास्ते में संकट

१२ अगस्त, मंगलवार। श्रीवृन्दावन से ट्रेन में चढ़कर सीधे कानपुर आ गया। मन्मथ भैया के घर पहुँचा। मुझसे मिलने की आकांक्षा उनकी बहुत समय से थी। मुझसे मिलकर उनको बड़ी प्रसन्नता हुई। कल अथवा परसों मेरे फैजाबाद जाने की बात सुनकर वे बड़े दुःखी हो गए। १०-१५ दिन रखे बिना वे मुझे कभी छोडेंगे नहीं, ऐसा बार-बार कहने लगे। मन्मथ भैया से कहकर मेरा अविलम्ब फैजाबाद जाना असम्भव लगने लगा। तीसरे दिन मध्याह्न में वे जैसे ही कचहरी गए, मैं चुपचाप एक इक्का (घोड़ा-गाड़ी) करके कानपुर स्टेशन पहुँच गया। दुर्भाग्यवश उसी समय ट्रेन छूट गई। एक सज्जन ने मुझसे कहा-'अभी इसी इक्के से पोलघाट चले जाइए, ट्रेन मिल जाएगी। मैं तुरन्त उसी इक्के से पोलघाट गया। स्टेशन पहुँचकर देखा, कुछ समय पहले ट्रेन छूट गई। तब मैं बड़ी कठिनाई में पड़ गया, इधर इक्कावाला किराया के लिए शीघ्रता करने लगा। कागज में मोड़कर पाँच रुपये अंटी में रखा था, किराया देने के लिए जब अंटी में हाथ लगाकर देखा, रुपये उसमें नहीं हैं, मैं चौंक उठा। वह

रुपया ही मेरे लिए रास्ते का सहारा था। मैं बड़े संकट में पड़कर गुरुदेव को स्मरण करके प्रार्थना किया-'ठाकुर! इस विपत्ति से मेरी रक्षा कीजिए।' सोचा, 'कानपुर स्टेशन में जहाँ बैठा था, लगता है। रुपये वहीं गिर गए हैं।' झोला-कम्बल इक्के में ही रखकर, हित-अहित का विचार किए बिना उस विशाल रास्ते में दौड़ लगा दी। दो-तीन मिनट दौड़ने के बाद अचानक रास्ते के ऊपर रुपये पड़े देखकर रुक गया। मुड़े हुए फटे कागज से कुछ दूरी पर पाँच रुपये पड़े देखकर उसे उठा लिया। विशाल राजपथ पर सैकड़ों कुली-मजदूर, दीन-दुःखी सब समय आना-जाना कर रहे हैं, इतने समय से किसी की दृष्टि इस रुपये पर पड़ी नहीं-यह कैसी घटना है। रास्ते के बीचो-बीच न चलकर यदि मैं किसी किनारे से दौड़ता हुआ जाता, तो इस रुपये पर मेरी दृष्टि कभी नहीं पड़ती। यह सोचकर और भी आश्चर्य हुआ। तुरन्त स्टेशन आकर इक्केवाले को किराया दिया। अब दूसरी गाड़ी न मिलने तक कानपुर स्टेशन में जाकर प्रतीक्षा करूँगा, यह निश्चय किया।

इसी समय एक हिन्दुस्तानी सज्जन ने आकर मुझसे कहा-'महाराज, आप फैजाबाद जाएँगे, मुझको भी आज ही लखनऊ जाना होगा। चलिए तीन कोस चलकर नावघाट चलते हैं, वहाँ निश्चय ही गाड़ी मिलेगी। यह गाड़ी नावघाट में दो घण्टे खड़ी रहती है। फिर हम लोगों को वहाँ पहुँचने में कितना समय लगेगा?' मैंने इस उपाय को ठीक समझकर झोला-कम्बल सिर पर उठा लिया एवं उनके साथ द्रुत गति से नावघाट के लिए पक्के रास्ते से चलने लगा। पक्के रास्ते के एक ओर बड़ी नदी है और दूसरी ओर विशाल मैदान। इस समय वर्षा का पानी बढ़ जाने से नदी, मैदान, रास्ता

सब एकाकार हो गया है। नदी का पानी प्रबल वेग से रास्ते के ऊपर से मैदान की ओर जा रहा है। रास्ते के ऊपर लगभग ढाई फुट पानी है; रास्ते के दोनों ओर बड़े-बड़े वृक्ष होने के कारण ठीक रास्ता समझने में कोई असुविधा नहीं हुई। हम लोग कमर तक जल में स्रोत को काटते हुए अग्रसर होने लगे। लगभग एक मील चलने से ही मेरा शरीर अवसन्न हो गया। उसके ऊपर प्रत्येक कदम पर कांटे के समान पत्थर और कंकड पैरों में चुभने लगे। इसी समय एकाएक चारों ओर अन्धकार हो गया एवं मूसलाधार वर्षा होने लगी, सिर का बोझा भीगकर चार गुना भारी हो गया। बड़े संकट में पड़कर गुरुदेव को स्मरण करने लगा। सिर का बोझा फेंक देने के लिए तत्पर हुआ। इसी समय साथी ने मेरा बोझा अपने सिर पर उठा लिया एवं हाथ पकड़कर वे स्रोत काटते हुए मुझे खींचकर ले जाने लगे। दो कोस इसी प्रकार चलकर हम लोग नावघाट पहुँचे। स्टेशन पहुँचते ही अपना बोझा कन्धे पर लेकर एकदम से फाटक की ओर दौड़ा। वहाँ पहुँचकर देखा, प्लेटफॉर्म में जाने का फाटक बन्द हो गया है। तब एक हाथ सिर के बोझे पर और दूसरा फाटक पर रखकर खड़ा रहा। उसी समय ट्रेन छोड़ने की सीटी बज उठी, तब मानो मेरे सिर पर बिजली गिर पड़ी; मैं स्तब्ध होकर गाड़ी की ओर देखता रहा। इस समय दूर से गार्ड साहेब मेरी दुर्दशा देखकर दौड़ते हुए फाटक के पास आए एवं मेरा हाथ पकड़कर ‘जल्दी चलिए, जल्दी चलिए’ कहते हुए खींचकर चलती ट्रेन में चढ़ा दिए। ‘टिकट बाद में मिल जाएगा’ कहकर गार्ड साहेब ने दौड़ लगा दी। अगले स्टेशन में मुझे टिकट मिल गया।

अचानक एक बड़े संकट में पड़कर, बिना प्रयास के तुरन्त

संकट निवारण होने से वह आकस्मिक घटना ही लगती है, किन्तु एक के बाद एक बड़े संकट में तुरन्त ही बचाव का उपाय हो जाने से उसे किस प्रकार आकस्मिक मानूँ? प्रत्येक चाल में 'पौ बारह' पड़ना, हाथ के कौशल के बिना कुछ सोचा नहीं जा सकता। इन सब असम्भव संयोग में गुरुदेव का ही हाथ समझकर मैं उनके अभय चरणों का स्मरण करने लगा। प्रातः फैजाबाद पहुँच गया।

अगस्त-सितम्बर, सन् १८९० ई. (बंगला सन् १२९७, भाद्र)

नौकरी का दबावः संघातक रोग

माता ठाकुरानी का पत्र

अगस्त-सितम्बर। फैजाबाद पहुँच गया। फिर बहुत समय पुराने मेरे शूलरोग से मुझे मुक्त देखकर भैया चकित रह गए! किस प्रकार आरोग्य प्राप्त किया, यह सुनकर उन्होंने कहा-'यह केवल तुम्हारे ठाकुर की ही कृपा है। गोस्वामीजी का ऐसा संग छोड़कर तुम क्यों आए?' मैंने कहा-अभी आपकी सेवा करने का उन्होंने मुझे आदेश दिया है। माँ की एवं आपकी सेवा किए बिना मेरा कल्याण नहीं होगा। भैया ने कहा-'सेवा के लिए लोगों का तो मेरे पास अभाव नहीं है। अच्छा, तुम यहाँ रहकर उनके आदेश के अनुसार साधन-भजन करो; उससे ही मैं समझूँगा, मेरी यथेष्ट सेवा कर रहे हो।' भैया के कथनानुसार मैं समय निर्धारित करके साधन-भजन करने लगा। अवसर मिलने पर भैया के साथ ठाकुर के सम्बन्ध में बातचीत होने लगी। फैजाबाद में भैया के निवास पर ठाकुर कुछ दिन रहकर जो सब कार्य किए थे, जहाँ-जहाँ गए थे, वह सब सुना। अच्छे आनन्द से साधन-भजन व सत्प्रसंग में मेरा दिन बीतने लगा।

इसी समय मँझले भैया बहुत दिनों की सरकारी नौकरी छोड़कर वकालत करने के अभिप्राय से फैजाबाद आ गए। मेरा शरीर सबल एवं स्वस्थ देखकर भैया से उन्होंने एक नौकरी का जुगाड़ करके मुझे फैजाबाद में ही रखने के लिए कहा। भैया ने भी उसी प्रकार एक अच्छे काम की व्यवस्था कर दी है। इधर नौकरी की बात सुनकर मेरा सिर चकरा गया। 'ब्रह्मचर्य-व्रत में नौकरी करना निषेध है' भैया को समझाकर कहा। भैया ने कहा-'व्रत भंग करके नौकरी करो, मेरी ऐसी इच्छा नहीं है, केवल तुम्हारे मँझले भैया के कहने से ही मैंने नौकरी जुगाड़ कर दी है; उनको तुम समझाकर कहो।' मँझले भैया को यह सब बात कहने से उन्होंने कहा-'वह सब कुछ नहीं, नौकरी करने की इच्छा नहीं है, इसलिए वैसा कह रहे हो। अच्छा, नौकरी नहीं करनी है तो व्यवसाय करो, भैया की पेटेन्ट औषधि घर में बैठकर बनाओ और विक्रय करो। संवाद-पत्र में औषधि का विज्ञापन दे देते हैं।' मैंने कहा-इससे भी व्रत भंग होगा। अर्थोपार्जन की चेष्टा करना भी निषिद्ध है। मँझले भैया ने विरक्त होकर कहा-'वह सब कुछ नहीं, चालाकी है।'

इस संकट में 'मैं क्या करूँगा' ठाकुर से पूछने के लिए श्रीवृन्दावन में पत्र लिखा। इधर मेरे सिर में अत्यन्त तीव्र यन्त्रणा होने से मैं बिस्तर में पड़ गया। १०५ डिग्री ज्वर हो गया। मानो सिर के भीतर अँगार भर दिया है, ऐसा लगने लगा। भैया बहुत प्रयास करके मेरे सिर की असह्य यन्त्रणा को थोड़ा भी दूर न कर सके। वरन् और भी अनेक प्रकार की पीड़ा उत्पन्न हो गई। बारम्बार मूर्च्छा के कारण बड़बड़ाने लगा। भैया डर गए, 'इस बार देख रहा हूँ, रक्षा नहीं की जा सकी' कहकर वे भयंकर चिन्ता में पड़ गए।

दो सप्ताह बाद मेरी चिट्ठी का उत्तर आया। माता ठाकुरानी ने उत्तर दिया-

कल्याणवरेषु,

कुलदा, तुम्हारा पत्र पाकर सब ज्ञात हुआ एवं गोस्वामीजी को पढ़कर सुनाई। उन्होंने कहा, तुम्हारे शरीर की जो अवस्था देखे हैं, उस दशा में विषय-कर्म करने से पीड़ा और भी बढ़ जाएगी। अपने भाइयों से कहना कि उनके संसार का जो कार्य तुम कर सकते हो, वह तुमसे कराएँ उनका दासत्व करने को कहा है। भगवान् के राज्य में एक मुट्ठी आहार भगवान् किसी भी प्रकार से दिया करते है। सभी का कार्य एक प्रकार का नहीं होता। जिसको जिस भाव से रखें। मन शान्त रखकर चलना, संसार में कितनी अवस्थाओं का सामना करना पड़ता है! धैर्य ही सहारा है। भगवान् तुम्हारा मंगल करें। यहाँ एक प्रकार से सब ठीक है।

आशीर्वादिका,
योगमाया।

पत्र पढ़कर बड़े भैया और मँझले भैया सब समझ गए। उन्होंने मुझसे कहा-'नौकरी अब तुम्हें नहीं करनी पड़ेगी, अभी ठीक होना है बस।' रोग के १८ वें दिन में भैया लोगों के मुख से यह बात सुनकर मेरा अन्तःकरण मानो शीतल हो गया, १९ वें दिन अचानक मेरे सिर की व्यथा कम हो गई, अब कोई शारीरिक दुर्बलता नहीं रही। २० वें दिन हल्का भोजन करके चलने-फिरने लगा।

इतने समय से साधन-भजन, व्रत के नियम समस्त ही बन्द हो गए थे। स्वस्थ होने के बाद पुनः साधना करने की प्रबल इच्छा हुई।

मैंने नियम बनाकर ठीक उसी के अनुसार चलने लगा। प्रातः थोड़ा जलपान करके ६ बजे से ११ बजे तक नाम-जप, प्राणायाम, पाठ एवं ध्यान करने लगा। भोजन के बाद, साढ़े १२ से ५ बजे तक नाम-जप करके समय बिताता हूँ। रात्रि में थोड़ा जलपान करके कभी १२ तो कभी १ बजे तक सोता हूँ, उसके बाद प्रातः तक प्राणायाम, कुम्भक, नाम-जप और ध्यान करके समय बिताया करता हूँ। इस प्रकार परमानन्द से मेरे दिन-रात बीत रहे हैं।

सद्गति के लिए शक्तिशाली मृतात्मा का उपद्रव

इस बार फैजाबाद आकर बहुत-सी नई-नई घटनाएँ देखीं। उनमें से कुछ घटनाओं का उल्लेख कर रहा हूँ। यहाँ आकर निर्जन में साधन-भजन की सुविधा के लिए मैंने पूजा-घर में आसन लगाया। ऊपर में केवल दो कमरे हैं। भैया के कमरे के दक्षिण ओर ही पूजा-घर है, इस कमरे में दक्षिण की ओर एक बड़ी खिड़की है। नीचे विशाल बगीचा है। खिड़की के आठ-नौ फीट के अन्तर में ही एक सुन्दर बेल का पेड़ है। इस बेल के पेड़ के नीचे थोड़ी दूरी पर बाहर का शौचालय है। पूजा-घर में एक परमहंस द्वारा प्रदत्त भैया के शालग्राम हैं। इस कमरे के एक कोने पर आसन बिछाकर मैं साधना करने लगा। इसी समय श्वास-प्रश्वास की स्पष्ट ध्वनि मेरे कान में आने लगी। ठीक जैसे एक व्यक्ति सामने बैठकर वेग से दीर्घ श्वास-प्रश्वास में प्राणायाम कर रहा है। मैं आँखें खोलकर चारों ओर देखने लगा; सूने कमरे में बारम्बार तीव्र श्वास-प्रश्वास की ध्वनि सुनकर चकित रह गया। अनुसन्धान करके भी कुछ समझ नहीं पाया। आसन पर स्थिर बैठते ही इस प्रकार की ध्वनि होने लगती है, जब

तक आसन में बैठा रहता हूँ, यह ध्वनि रुकती नहीं, मुझे बड़ी दुश्चिन्ता होने लगी। तीन-चार दिन बाद भैया को इस विषय में बताया। भैया ने कहा-'गोस्वामीजी के जाने के बाद से यहाँ यह एक नई घटना होने लगी है। पूजा-घर में जाते ही हमें श्वास-प्रश्वास की भयानक ध्वनि सुनाई पड़ती है। घर का कोई सदस्य साधारण कारण से उस कमरे में नहीं जाता; सभी वैसी ध्वनि सुना करते है, लेकिन आँखों से अभी तक किसी ने कुछ देखा नहीं। मैं वहाँ अकले कभी नहीं बैठता। तुम ही इतने दिन से उस कमरे में हो, यह बड़ा आश्चर्य है।' मैंने भैया से पूछा-'गोस्वामीजी जब यहाँ आए थे, तब क्या उन्होंने यहाँ किसी भूत-प्रेत के रहने की बात कही थी?' भैया कहने लगे-'गोसाँईजी जिस दिन यहाँ आए, प्रातः बाहर के शौचालय में जाते ही एक भूत उनके पास पहुँच गया और नाना प्रकार से उपद्रव करने लगा। इधर चाय बन गई थी, सभी गोसाँईजी की प्रतीक्षा करने लगे। गोसाँईजी को आने में विलम्ब होते देखकर सभी घबरा गए। कुछ लोग दूर से ही देखने लगे कि गोसाँईजी आ रहे हैं या नहीं। फिर मुझसे उन लोगों ने पूछा, तो मैंने कहा, गोसाँईजी को भूत ने पकड़ा है। उन लोगों ने मेरी बात को मजाक समझा। आधे घण्टे बाद गोसाँईजी आए। हाथ-मुँह धोकर दरवाजे के सामने खड़े होकर दीर्घ नि:श्वास छोड़ते हुए उन्होंने कहा-

"दुर्गा! दुर्गा!! बाबा! कैसा उपद्रव है! कैसा उपद्रव है! बच गया! श्रीधर ने पूछा-'क्या हुआ?'

गोसाँईजी ने कहा-**'बेल के पेड़ में एक भूत है, उसके साथ इतना समय लगा। सामने आकर खड़ा हो गया; जाता भी नहीं, महा मुश्किल! इसीलिए विलम्ब हुआ।'**

'भूत ने क्या कहा', पूछने पर गोसाँईजी ने कहा-**"शौचालय जाते ही भूत सामने आकर खड़ा हो गया। मुझसे कहा-'आप यहाँ आएँगे जानकर १२ वर्ष से यहाँ पर आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ, अब मेरा उद्धार कीजिए।' मैंने कहा-'आप अब हट जाइए, मैं शौच से निवृत्त हो लूँ: फिर जो है, वह सुनूँगा।' उसने किसी भी प्रकार से दरवाजा छोड़ा नहीं; रोना-धोना, गड़बड़ करना आरम्भ कर दिया; अपनी सद्गति के लिए मुझसे प्रतिज्ञा करवा ली। यहाँ वह किसी का कुछ भी अनिष्ट नहीं करेगा, यथासाध्य उपकार ही करेगा; उसने स्वीकार किया। उसको और भी कुछ समय प्रतीक्षा करनी होगी, मैंने कहा। फिर उसको हटाकर शौच से निवृत्त होकर आया; इसलिए इतना विलम्ब हुआ।**

भैया की यह सब बातें सुनकर मेरा सन्देह दूर हो गया। मैं पूजा-घर में ही आसन रखकर निश्चिन्त मन से दिन-रात बिताने लगा। गुरुदेव ने कहा था, 'प्रथम अवस्था में ब्रह्मोपासना अच्छी है। ब्रह्मज्ञान होने से सहज में तत्त्व की उपलब्धि होती है। मैं नाम-जप करते समय गुरु का ध्यान करना छोड़कर सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, निराकार परब्रह्म के अस्तित्व का ही ध्यान करने लगा। पूर्व के अभ्यास के कारण इस प्रकार की उपासना में मुझे बड़ा आनन्द आने लगा। अन्यान्य दिनों की भाँति रात्रि १ बजे उठा, हाथ-मुँह धोकर, मोटी सूखी लकड़ी की धूनी जलाकर आसन पर बैठा। प्राणायाम, कुम्भक नियमानुसार करके नाम-जप करने लगा। शरीर थोड़ा सुस्त लगने पर तकिये में एक भुजा रखकर, करवट लेकर ऊपर के एक पैर को मोड़ लिया और दूसरे को दीवाल की ओर

फैला दिया। मेरे सामने धू-धू करके धूनी जलने लगी। कभी आँखें खोलकर तो कभी बन्द करके नाम-जप करने लगा। कुछ क्षण बाद ही स्पष्ट रूप से ठाकुर का रूप मेरे मन में बारम्बार उदित होने लगा, लेकिन मैं उसे मन से हटाकर ब्रह्म के ध्यान में चित्त को एकाग्र करने लगा। इस समय अचानक देखा, मेरे पैर की ओर आसन पर एक व्यक्ति बैठा हुआ है। उसकी आकृति विशाल पहलवान की भाँति-वर्ण काला, मुण्डित मस्तक, दोनों नेत्र अति उज्ज्वल। उससे आँख मिलने पर उसने मुझे संकेत द्वारा आसन से उठकर बैठने एवं अपने साथ प्राणायाम करने के लिए कहा। **'साधना के आसन पर दूसरे के बैठने से साधना की एकाग्रता का भाव नष्ट हो जाता है, दूसरे के भाव से आसन दूषित होता है, इसलिए दूसरे को साधना के आसन पर बैठने नहीं देते।'** यह बात ठाकुर के मुख से सुनी थी। अतएव उसको अपने आसन पर बैठा देखकर मेरा माथा गरम हो गया। उतरकर बैठने के लिए एक बार मैंने विरक्त होकर उससे कहा, परन्तु वह मेरी बात न मानकर एकटक मेरी ओर देखता रहा। तब मैं क्रुद्ध होकर मुड़े हुए बायें पैर को खींचकर तीव्रता से उसकी छाती को लक्ष्य करके लात मारा। पैर उसका शरीर भेदकर धम् शब्द के साथ दीवाल पर लगा, लेकिन उसके शरीर के स्पर्श का थोड़ा भी अनुभव नहीं हुआ। लात मारते ही उस व्यक्ति ने एक अद्भुत शक्ति का प्रयोग किया। अचानक प्राणायाम में भयंकर दम लगाकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसकी दोनों भुजाओं, गले और मस्तक की नसें फूल गईं, यह स्पष्ट देखने लगा। तब मेरे भीतर की वायु को प्राणायाम के प्रबल आकर्षण से खींचकर वह भूत क्रमशः दम चढ़ाने लगा। मैं बहुत

प्रयास करके भी वायु खींच नहीं पाया। कुम्भक द्वारा कमरे की पूरी हवा को रोक लिया है, मैं समझ गया। तब सर्वांग अवसन्न हो गया, मुझमें हिलने की भी शक्ति नहीं रही। मृत्युकाल आ गया समझकर मैं अभ्यासवशतः निराकार ब्रह्म का ध्यान करने लगा। इस समय भाँग के नशे की भाँति मानो मुझे कोई बार-बार हवा में उछालने लगा; खड़े होने का स्थान न पाकर भयंकर आतंक और यन्त्रणा से मैं चारों ओर अन्धकार देखने लगा। उठा-पटक के भय से बेचैन होकर उस समय गुरुदेव के श्रीचरण का स्मरण करने लगा। मेरी चेतना लगभग विलुप्त हो गई। इस अवस्था में कितने क्षण रहा, कुछ पता नहीं। फिर अनजाने में रुक-रुककर धीरे-धीरे श्वास चलने लगी। कुछ समय बाद मेरी चेतना लौटी, मैं तुरन्त उठकर आसन पर बैठ गया। तब बड़े तेजःपूर्ण स्वर में बारम्बार भूत को पुकारने लगा; किन्तु वह दिखलाई नहीं दिया। श्वास-प्रश्वास की ध्वनि इस दिन से बन्द हो गई। जागृत अवस्था में इस प्रकार भूत के झमेले में कभी पड़ा नहीं। यह भूत बड़ा शक्तिशाली था, उस विषय में कोई सन्देह नहीं।

इस घटना के कुछ दिन बाद, एक बार रात्रि में लगभग १ बजे स्वप्न देखा-एक डकैत भैया के कमरे में प्रवेश करके, भैया की हत्या करने के उद्देश्य से पेड़ की एक बड़ी लाठी से उनके सिर पर लगातार प्रहार कर रहा और मैं भैया की रक्षा करने के लिए दौड़कर जा रहा हूँ। स्वप्न देखते ही नींद टूट गई। जागने पर भैया के कमरे से 'गों, गों' शब्द एवं वहाँ कुछ हल्ला सुना। मेरा हृदय काँप उठा। मैं दौड़कर भैया के कमरे में गया; जाकर देखा भैया बिछौने पर बैठकर हाथ-पैर पटक रहे हैं, श्वास बन्द हो गई है। मैंने 'जयगुरु, जयगुरु'

कहते-कहते भैया को जकड़ लिया। कुछ क्षण बाद भैया श्वास-प्रश्वास लेने में समर्थ हुए। स्वस्थ होकर भैया ने कहा-'स्वप्न देखा, एक व्यक्ति ने मुझे दबाकर पकड़ लिया है, उसी से मेरी श्वास बन्द हो गई थी।'

सत्य स्वप्नः आँखों का कष्ट

अन्य एक दिन नाम-जप करते-करते रात्रि के अन्तिम प्रहर में निद्रा के आवेश में आ गया। स्वप्न देखा-एक गौरवर्ण, पवित्रमूर्ति ब्राह्मण ने आकर कहा, 'अरे, आज तुम्हारी बायीं आँख उठेगी, तीन-चार दिन थोड़ी यन्त्रणा होगी, फिर दूर हो जाएगी, घबराना नहीं।' प्रातः उठकर, हाथ-मुँह धोकर भैया को दोनों आँखें दिखाकर पूछा-क्या मेरी आँख उठेगी? भैया ने देखकर कहा-'आँखें तो ठीक हैं, आँख आने का कोई लक्षण नहीं दिखता।' कुछ क्षण बाद स्वप्न की बात भूल गया। दिन में ८ बजे आँख थोड़ी 'आने, आने' (भारी) जैसे लगी। कुछ समय बाद ही बायीं आँख लाल हो गई, भयंकर ज्वाला होने लगी, भैया मेरी आँख की दशा देखकर चकित हो गए। चार दिन बड़ा कष्ट भोगा, फिर दूर हो गया। किसी भी औषधि का उपयोग नहीं किया। स्वप्न अक्षरशः सत्य हुआ देखकर आनन्द मिला।

क्षुधार्त शालग्राम

एक दिन प्रातःकाल आसन पर बैठकर नाम-जप कर रहा था, यज्ञ के धुँए की पवित्र सुगन्ध आने लगी। कहाँ से वह सुगन्ध आ रही थी, जाँच-पड़ताल करके भी कुछ जान नहीं पाया। अन्य कहीं भी वह सुगन्ध नहीं थी, केवल पूजा-घर में सुगन्ध फैली हुई थी।

प्रातः से संध्या तक एक ही प्रकार से दिनभर वह अद्भुत सुगन्ध रही। सुगन्ध के गुण से चित्त प्रफुल्लित होने लगा। पूजा-घर में दिनभर यह सुगन्ध पाकर सभी लोग चकित हो गए। सुगन्ध आने का किसी प्रकार का कारण निश्चित नहीं कर पाने पर भैया ने कहा- 'यह मेरे शालग्राम ठाकुर की देह की सुगन्ध है, अन्यथा कमरे के बरामदे में यह सुगन्ध क्यों नहीं है?' मैं भैया की बात सुनकर हँसने लगा। तब भैया शालग्राम के विषय में कहने लगे-'मेरे नारायण पर तुम विश्वास नहीं करते। मैं भी उनको पत्थर के सिवा और कुछ नहीं मानता था, लेकिन अब शालग्राम के अद्भुत प्रभाव को देखकर विश्वास किए बिना नहीं रह पा रहा हूँ। एक दिन अचानक एक विशालकाय जटाधारी, सौम्यमूर्ति संन्यासी आकर मुझे पुकारने लगे। उनके पास पहुँचते ही उन्होंने मेरे हाथ में शालग्राम देकर कहा-'इस शालग्राम को घर में रखकर आप इसकी सेवा-पूजा करें, आपका विशेष कल्याण होगा।' 'मैं उन सब में विश्वास नहीं करता, सेवा-पूजा भी नहीं कर पाऊँगा' कहकर उसे लेने से अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा-'अच्छा, आप केवल इस चक्र (शालग्राम) को रख दीजिए, वे स्वयं ही अपनी सेवा-पूजा की व्यवस्था करवा लेंगे।' मैंने संन्यासी के कथनानुसार घर के एक स्थान पर उसे रख दिया, उसकी कोई खोज-खबर नहीं रखता था। एक बार रात्रि में स्वप्न में शालग्राम ने कहा-'देख इस कचरे के भीतर मुझे फेंक दिया है।' प्रातः उठकर कचरे के भीतर से शालग्राम को उठाकर ले आया। कौन, कब, किस प्रकार उसे फेंक दिया था, कुछ पता नहीं। उस कारण थोड़ा आश्चर्य हुआ। इस घटना से शालग्राम के ऊपर थोड़ी भक्ति भी हुई। मैंने शालग्राम को लाकर कमरे में एक छोटी चौकी के

ऊपर रख दिया, प्रतिदिन मैं स्नान के बाद कुछ समय आसन पर बैठता हूँ, उसी समय शालग्राम को भी स्नान कराकर फूल, तुलसी देने लगा।

इसके बाद से ही शालग्राम बार-बार स्वप्न में मुझ पर इस प्रकार कृपा करने लगे कि उसकी किसी प्रकार से उपेक्षा नहीं पाया। जिस प्रकार शालग्राम का परिचय मिलने लगा, उसी प्रकार मेरी श्रद्धा-भक्ति भी बढ़ने लगी। गोस्वामीजी के यहाँ आने के बाद से, उनके कहने पर रीति के अनुसार शालग्राम की सेवा-पूजा करता हूँ। मेरे ठाकुरजी पत्थर नहीं हैं, जागृत देवता हैं, वे भी यही कह गए हैं। एक दिन वे अयोध्या जाकर समस्त ठाकुरजी का दर्शन करके आए। घर पहुँचते ही उन्होंने मेरे ठाकुरजी का दर्शन करने के लिए पूजा-घर में प्रवेश किया। कुछ क्षण शालग्राम की ओर देखकर वे बालक के समान रोने लगे, आँखों से झर-झर आँसू गिरने लगे; व्यग्रता से इधर-उधर ताककर फिर अपने अलखल्ला के पॉकेट में हाथ डाले एवं कुछ पेड़ा-बरफी निकाल करके ठाकुरजी के पास रख दिए। कुछ क्षण बाद साष्टांग प्रणाम करके बाहर आ गए। मिठाई कहाँ से मिल गई, हम लोगों ने पूछा। उन्होंने कहा-**मैंने कुछ मिठाइयाँ संग्रह करके रखी थी; पूजा-घर में जाते ही ठाकुरजी ने प्रकट होकर मेरे पास दोनों हाथ फैलाकर कहा, 'शीघ्र मुझे कुछ खाने के लिए दो; कई दिन से उपवास हूँ ये लोग मुझे खाना नहीं देते।' मेरे पॉकेट में जो था, वही नारायण को दिया। समस्त मन्दिर और देवालय देखकर आया, परन्तु इस प्रकार का और कहीं नहीं देखा। यहाँ वामनदेव सर्वदा जीवन्त अवस्था में विद्यमान हैं। ठाकुरजी की। नियमानुसार सेवा-पूजा करनी**

चाहिए।”

भैया ने कहा-अस्पताल का काम-काज निपटाकर शालग्राम की पूजा करने में बड़ी असुविधा होती है, भोग का यहाँ बन्दोबस्त करना और भी कठिन है। गोसाँईजी ने यह बात सुनकर कहा- **अस्पताल जाने के पूर्व हाथ-मुँह धोकर, कपड़े बदलकर एक बार नारायण को नहलाकर चन्दन-तुलसी देना; फिर थोड़ी मिठाई और जल-तुलसी निवेदन करने से ही हो जाएगा।** मैं गोस्वामीजी के कहे अनुसार ही अब शालग्राम की पूजा करता हूँ।

मैंने भैया से कहा, यहाँ जब ठाकुर आए थे, उनके साथ और कौन-कौन थे? घर में सभी के सुविधानुसार रहने की व्यवस्था तो हो गई थी? ठाकुर कहाँ-कहाँ गए थे? दिनभर कहाँ-कहाँ घूमते थे? यह सब जानने की इच्छा होती है।

फैजाबाद में गोसाँईजी की अवस्थिति

भैया कहने लगे-तुम्हारा पत्र पाकर ही मैं तीन-चार दिन की छुट्टी लेकर गोस्वामीजी का दर्शन करने काशी गया। उनको बहुत समय बाद देखा, देखकर ही लगा कि अब वे पहले जैसे मनुष्य नहीं रहे, अब वे आकृति व प्रकृति से साक्षात् महादेव हो गए हैं। मुझे बड़ा आनन्द मिला। छुट्टी बहुत कम दिनों की थी, इसलिए मुझे शीघ्र लौटना पड़ गया। लौटते समय, गोस्वामीजी से श्रीवृन्दावन जाने पर रास्ते में फैजाबाद होकर जाने का अनुरोध करके आया; वे दया करके मेरी बात पर सहमत हो गए। गोसाँईजी कुछ दिन बाद ही यहाँ आ गए, उनके साथ उनकी पत्नी, योगजीवन, हरिमोहन, देवेन्द्र चक्रवर्ती, मानिकतला की माँ और उनके पति ब्रज बाबू आए थे।

तब मेरे घर में देवेन्द्र पाल आदि चार-पाँच लोग थे; स्थानाभाव के कारण बाहर के बैठकखाने में एक साथ बिछौना करके हम सब लोग रहते थे। मैं गोस्वामीजी के पास ही शयन करता था, देवेन्द्र मेरे पास दूसरी ओर रहते थे। गोसाँईजी सोते नहीं थे, सारी रात बैठकर बिताते थे। एक बार रात्रि में ढाई बजे पता नहीं क्यों, देवेन्द्र ने मेरी छाती पर एक थप्पड़ मारा। शक्ति चोरी और वशीकरण की क्षमता उनमें थी। थप्पड़ खाकर मैं जाग गया। मेरा अन्तःकरण मानो निस्तेज शून्य हो गया, मन बहुत उदास हो गया। तब गोसाँईजी अचानक कह उठे-**"अविश्वासी के संसर्ग से साधु सावधान! सावधान!! सावधान!!!"** गोसाँईजी के उस कथन के साथ-साथ मेरे भीतर ऐसी एक शक्ति का संचार हुआ कि ऐसा लगने लगा मानो इच्छा करने पर सारा मकान, कमरा, बैठक और कोठा को लात मारकर चूर-चूर कर सकता हूँ। उस समय देवेन्द्र मेरे पास रह न सका, उठकर अन्य कमरे में चला गया।

एक दिन गोस्वामीजी सभी को लेकर नागा बाबा का दर्शन करने गए। गोसाँईजी को देखकर नागा बाबा आनन्द से विह्वल हो गए। फिर स्थिर होकर उन्होंने गोसाँईजी से एक रात्रि वहाँ वास करने के लिए अनुरोध किया। वे सहमत हो गए। बाबाजी ने मोटे चावल का भात एवं लहसुन दी हुई दाल बनाकर अतिथि-सेवा की। शीतकाल की रात्रि में सरयू नदी के खुले तट पर सब नहीं रहे। पाएँगे, इसलिए केवल श्रीधर, हरिमोहन और देवेन्द्र चक्रवर्ती गोसाँईजी के साथ रह गए, अन्य सब चले आए। मेरे मित्र देवेन्द्र ने वहाँ रात्रि बिताने की इच्छा व्यक्त की, लेकिन नागा बाबा ने उसको रुकने नहीं दिया। देवेन्द्र घर में आकर, एकान्त में मेरे पास सबकी

निन्दा करने लगा, गोस्वामीजी को भी एक बार परखकर देखेंगे, इस प्रकार घमंड करने लगे। उसकी बात सुनकर मेरा मन बहुत खराब हो गया। अगले दिन प्रातःकाल सबको लेकर गोस्वामीजी घर आ गए। उन्होंने घर में प्रवेश करते समय दरवाजे के पास आते ही कहा-**"अरे! यहाँ साधु निन्दा हुई है। अब यहाँ रहना ठीक नहीं, तुम सब आसन उठाओ।"** यह कहकर गोसाँईजी ने घर में प्रवेश किया। आसन पर बैठकर खूब तेज स्वर में अपने-आप कहने लगे-**इन लोगों को जानने में तेरे को बहुत समय लगेगा! कितना समझता है? क्या जानता है? हुआ क्या है? कुछ भी नहीं-बहुत चक्कर खाना होगा, बहुत भुगतना होगा। तू फिर क्या परीक्षा लेगा?**

गोसाँईजी जब ये सब बातें कहने लगे, देवेन्द्र डर गया। उसका मुँह काला हो गया, वह घबराहट से चारों ओर ताकते हुए तुरन्त कमरे से बाहर निकल गया।

चाय पीने के बाद सभी बैठकर कल रात्रि के दर्शनादि के विषय में बातचीत करने लगे। भूत-प्रेत के साथ महादेव का, डाकिनी-योगिनी के साथ काली का एवं महावीर का जिन्होंने जिस प्रकार दर्शन किया, परस्पर वही बातचीत करने लगे। सब सुनकर गोसाँईजी ने कहा-**"नागा बाबा की प्रार्थना से ही सब आकर दर्शन दिए थे। नागा बाबा ने तुम लोगों पर बड़ी कृपा की! उनकी अद्भुत शक्ति के प्रभाव से ही इस प्रकार नदी के तट पर हम लोगों को ठण्ड की थोड़ी-भी अनुभूति नहीं हुई। यह कोई सहज बात नहीं है।"**

भैया ने पूछा-आप सब लोगों के पास तो केवल एक-एक कम्बल

ही था, इस कड़ाके की ठण्ड में रातभर सरयू के खुले मैदान में क्या आप लोगों को ठण्ड से कष्ट नहीं हुआ?

ठाकुर ने कहा-**कहा तो, हम लोगों को कोई कष्ट ही नहीं हुआ, छप्पर के नीचे बड़े आराम से थे।**

हरिमोहन ने हँसते-हँसते कहा-हाँ, बहुत सुन्दर छप्पर, दोनों ओर केवल दो टूटी टट्टियाँ, सामने और पीछे खुला, सिर के ऊपर स्वच्छ आकाश में असंख्य तारों का छप्पर; परन्तु आश्चर्य है कि कुछ क्षण बाद शरीर से कम्बल हटाना पड़ा। गरमी लगने लगी। तब योगजीवन ने कहा-'मुझे भी लगा मानो एक गरम हवा की कुण्डली में हूँ। भोर ४ बजे वह कुण्डली अन्तर्धान हुई। तब थोड़ा ठण्ड का अनुभव हुआ था।' इस समय ठाकुर ने भैया से पूछा-**नागा बाबा ने कौन-सी साधना की थी, जानते हो?** भैया ने कहा-सुना है, शव-साधना की थी।

ठाकुर ने कहा-**हाँ, तभी सम्भव है; अन्यथा ऐसी शक्ति इतने सहज में प्राप्त होना प्रायः देखा नहीं जाता; किन्तु यह शक्ति अधिक दिन नहीं रहती। इस साधन-मार्ग के साधुओं की प्रकृति जिस प्रकार उग्र होती है, नागा बाबा की वैसी नहीं है। वे बहुत शान्त हैं। यह कहकर नागा बाबा की तपस्या की बहुत प्रशंसा करने लगे।**

एकजन ने पूछा-इन सब तपस्या में सिद्ध होने पर ही क्या मनुष्य दीर्घजीवी होता है?

ठाकुर ने कहा-**नहीं, सिद्ध होने से ही मनुष्य दीर्घजीवी होगा, वैसा नहीं है। कायाकल्प में सिद्ध होने से शरीर दीर्घकाल तक स्थायी होता है।** यह कहकर उन्होंने एक फकीर साहेब की कथा

सुनाई-

कायाकल्प फकीर की कथा

(यह कहानी ठाकुर के मुख से मैंने जिस प्रकार सुनी थी, भैया की डायरी में भी बिल्कुल वैसा ही देखकर उसे लिखकर रख रहा हूँ।)

ठाकुर ने कहा-**"जब गया में था, प्रायः एक फकीर के पास जाना-आना करता था। फकीर निर्जन स्थान में जंगल के भीतर एक टूटी हुई मस्जिद में रहते थे। एक दिन जाकर देखा, फकीर साहेब मस्जिद के बरामदे में अचेत अवस्था में औंधे पड़े हुए हैं। उस दिन वहाँ कुछ क्षण चुपचाप बैठे रहकर चला आया। इस प्रकार पाँच-सात दिन हो गए, रोज एक बार मैं फकीर साहेब को देखने जाता। एक दिन देखा, फकीर साहेब का शरीर भयंकर फूल गया है और उसमें विष्ठा के कीट के जैसे पूँछ वाले बड़े-बड़े कीड़े पूरे शरीर में बैठकर रक्त चूस रहे हैं। सरसों के बराबर भी जगह खाली नहीं है। फकीर साहेब कीड़ों के काटने की यन्त्रणा से बीच-बीच में 'ऊह, ऊह' कर रहे हैं। देखकर बड़ा कष्ट हुआ; वहाँ ऐसा एक पक्षी भी नहीं था जो आकर कीड़ों को खाए। ऐसी भगवान् की लीला है!"**

"उस समय एक दिन एक मुसलमान जमींदार ने मुझसे साहेब की बात पूछी। मैं उनको फकीर साहेब के पास ले गया। वे उनकी किसी प्रकार की चिकित्सा का प्रयास करके फकीर साहेब को जिससे विरक्त न करें, यह विशेष रूप से कहा; लेकिन उन्होंने मेरी बात सुनी नहीं। धीरे-धीरे जाकर फकीर के पास बैठ गए और बड़ी सावधानी से पूँछ पकड़कर खींचते हुए दो-तीन कीड़ों को निकाले। अब तुरन्त उस स्थान से निरन्तर रक्त

निकलने लगा। फकीर साहेब चीत्कार उठे। जमींदार तब डर गए। उन कुछ कीड़ों को उठाकर पुनः उसी-उसी स्थान पर बैठा देने के लिए फकीर साहेब बारम्बार चीत्कार करते हुए कहने लगे। मुसलमान के वैसा करने के बाद फकीर शान्त हुए। जमींदार बहुत पछताते हुए चले गए। मैं निवास-स्थान पर आ गया। इसके कुछ दिन बाद जाकर देखा, फकीर साहेब मस्जिद के बरामदे में चहल-कदमी कर रहे हैं। सुन्दर प्रफुल्लित मुख, शरीर में मानो एक ज्योति खेल रही है। तब समझा फकीर साहेब का संकल्प सिद्ध हो गया; कुछ दिन बाद फिर उनको देखा नहीं गया। कहीं चले गए।"

"सुना है-देहकल्प में तीन सौ वर्ष, पाँच सौ वर्ष, हजार वर्ष की परमायु प्राप्त करने के लिए संकल्प करके भिन्न-भिन्न प्रकार की साधना, आचार, नियम और औषधि ग्रहण करनी होती है। पक्ष के आरम्भ से अन्त तक कोई १५ दिन तो कोई एक मास, फिर उस प्रकार समर्थ तपस्वी व्यक्ति दीर्घ परमायु प्राप्ति के लिए औषधि सेवन करते हुए डेढ़ मास नियम-निष्ठा से रहकर देहकल्प सिद्ध होते हैं।"

"मैं जब भागलपुर में था, तब दो साधु गंगा के किनारे स्थित बरोरी के एक प्राचीन निर्जन अन्धकार गुफा में तीन सौ वर्ष का जीवन प्राप्त करने का संकल्प करके १५ दिन के लिए इस साधन में प्रवृत्त हुए। सम्भवतः औषधि के गुण से दिनो-दिन उनके शरीर का मांस धीरे-धीरे गलकर गिरने लगा, फिर वैसे ही साथ-साथ उसी-उसी स्थान पर नया मांस बनना आरम्भ हो गया; एक साधु की यन्त्रणा से मृत्यु हो गई। दूसरा सिद्धि प्राप्त

करके १५ दिन बाद कहाँ चला गया, पता नहीं चला। भगवान् की सृष्टि में कितना कुछ है, जानने के पूर्व उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती!"

गोस्वामीजी को एक दिन गाड़ी में बैठकर अयोध्या जाते समय रानुपाली के विशाल मैदान में अपूर्व राजवेश में राम-सीता के दर्शन हुए। उस दिन वे सरयू में स्नान करके हनुमानगढ़ी, रंगमहल, सीता-राम के मन्दिरादि कई देवस्थान गए थे। माधोदास बाबाजी के आश्रम जाकर उन्होंने उनके शिष्य नारायण दास से भेंट की। मणिबाबा के आश्रम गए। अयोध्या में सभी मणिबाबा को सिद्ध महात्मा समझते हैं। गोसाँईजी का दर्शन करके वे आनन्द से अचेत हो गए। कुछ क्षण बाद उठकर हाथ जोड़ते हुए उन्होंने गोसाँईजी से कहा-'कृपा करके दर्शन तो दिए, अब हमारे रहने का क्या प्रयोजन? आप हमारे स्थान पर रहिए, हम देह छोड़ देते हैं।' गोसाँईजी भी मानो कितने पुराने परिचित लोग मिल गए, उसी भाव से उनके साथ बातचीत करने लगे। गोसाँईजी पतितदास बाबाजी के दर्शन करने भी गए थे। उन लोगों के परस्पर मिलन से जो आनन्द की स्फूर्ति और भाव का आवेश हुआ था, उसे फिर हम लोग क्या समझेंगे?

भैया ने कहा-हम सभी लोगों का भोजन एक साथ होता था। जो लोग मछली खाते हैं, वे लोग पहले ही भोजन कर लेते। मैं गोस्वामीजी के साथ उनके पास ही बैठता था। एक दिन भोजन करते-करते उन्हें पता चला कि मैं मछली खाता हूँ, तुरन्त उन्होंने रसोइये ब्राह्मण को बुलाकर मुझे मछली देने के लिए कहा। मैं बारम्बार मना करने लगा। अन्त में उनके अत्यन्त आग्रह को टाल

न सका, मैंने मछली खाई। गोसाँईजी ने कहा-**'आप निःसंकोच मछली खाएँ, उससे मुझे कोई असुविधा नहीं होती।'** खाते समय मेरे मुख से चबाने का शब्द होता था। उसे सुनकर एक दिन उन्होंने कहा-**'भोजन चबाने का शब्द नहीं होना ही अच्छा है।'** मैं तब से सावधान होकर भोजन करता हूँ।

मानिकतला की माँ बहुत समय तक आहारत्यागी रहीं, वे एक चुल्लु पानी भी नहीं पीती थीं; अनुरोध करके कोई अच्छी वस्तु खिला देने से उनको तुरन्त उल्टी हो जाती थी। ऐसी अद्भुत अवस्था कहीं देखी नहीं।

धर्म-सम्बन्ध से ठाकुर के परम आत्मीय नानकपन्थी सिद्ध महात्मा माधोदास बाबाजी के एक शिष्य, भजननिष्ठ कन्हाईलाल बाबा प्रायः सब समय गोस्वामीजी के पास रहते थे। वे एक दिन अप्राकृत जलराशि के मध्य मत्स्यावतार भगवान् को गोसाँईजी के सामने स्वेच्छानुसार तैरते देखकर आनन्द से मूर्च्छित हो गए। माधोदास बाबाजी के कई सम्मानित अंग्रेजी शिक्षित शिष्यगण अधिकांश समय ही गोस्वामीजी के पास रहते थे। वे लोग वहाँ नाना प्रकार के अलौकिक दृश्य और अपने इष्टदेव का आविर्भाव देखकर मुग्ध हो जाते थे।

ठाकुर के फैजाबाद में रहते समय अच्छी-अच्छी घटनाएँ हुई थीं। चर्चा होने पर उसे ठाकुर के मुख से सुनकर लिखने की इच्छा है।

फैजाबाद में लगभग दो महीना भैया के साथ बड़े आनन्द से बिताया अचानक एक दिन घर से खबर आई, माताजी अस्वस्थ हो गई हैं। भैया ने मुझसे कहा, 'तुमने ये कुछ महीने जिस प्रकार मेरे

पास बिताया, उससे मुझे बड़ा सन्तोष मिला। मैं भगवान् से हार्दिक प्रार्थना करता हूँ, वे तुम्हें कर्म-बन्धन से मुक्त करें। गोस्वामीजी ने तुम्हें माँ की सेवा करने के लिए कहा है; अब तुम घर जाकर माँ की सेवा करो, उससे तुम्हारा यथार्थ कल्याण होगा। भैया के आदेशानुसार मैं घर के लिए निकल पड़ा; काशी, भागलपुर, कोलकाता और ढाका में रुकने से मुझे लगभग एक महीना विलम्ब हो गया। रास्ते में जिन-जिन स्थानों पर जिन सब अवस्थाओं में पड़ा, उसे विस्तारपूर्वक लिखना अनावश्यक है। श्रीवृन्दावन में गुरुदेव की दया से ब्रह्मचर्य ग्रहण करके जिस दुर्लभ अवस्था का भोग किया था, आकस्मिक एक दुर्घटना में पड़कर उससे पतित हो गया। किस प्रकार की दुर्घटना से, कैसे और कहाँ तक मेरी दुर्दशा हुई, उसे स्मरण में रखने के लिए घटना की भूमिका मात्र का सामान्य रूप से उल्लेख करके रख रहा हूँ।

ब्रह्मचर्य की अद्भुत अवस्था

गुरुदेव ने जिस दिन मुझे ऋषियों के आदर का परम पवित्र ब्रह्मचर्य-व्रत दिया, उस दिन उन्होंने मुझे क्या कर दिया, वे ही जानते हैं। मुझे अनुभव हुआ, मैं अब पहले जैसा मनुष्य लगता था। रास्ते आदि में चलते-फिरते समय रूई के समान हल्का शरीर मानो भूमि से ऊपर वायु का अवलम्बन करके चल रहा है, ऐसा अनुभव करता था। जनेऊ को स्पर्श करते ही ब्रह्मचर्य का वैदिक मन्त्र अपने आप स्मृति में आकर, 'मैं ब्राह्मण हूँ, मैं ऋषि हूँ' इस प्रकार एक भाव का संचार कर देता था। जप के समय 'नाम' एक सारवान् सजीव शक्तिशाली मन्त्र लगता था। उससे नई-नई स्फूर्ति और भाव की

तरंग अन्तःकरण में प्रायः सब समय खेला करती थी। कई दिनों की अभ्यस्त कामिनी-कल्पना और सुख-कामना भूल से भी अन्तःकरण में उदित होने से बड़ी विरक्ति लगती, ज्वाला होती थी। केवल शुद्ध देह का अद्भुत आनन्द उपभोग करके समय-समय पर मुग्ध हो जाता था। सोचता, 'ये क्या हो गया? गुरुदेव ने मुझे ये क्या कर दिया?' गुरुदेव के श्रीचरणों से विदा लेने के बाद भी बहुत दिनों तक उन्होंने मुझे इस अपूर्व अवस्था का उपभोग करने दिया था। दयालु ठाकुर ने फिर पता नहीं क्यों एक सुन्दर स्त्री को माध्यम बनाकर मेरे अचल व्रत में प्रलय ला दिया; मैं धीरे-धीरे निस्तेज, शक्तिहीन हो गया।

प्रलोभन में अविकारः अहंकार से पतन

माताजी अस्वस्थ हैं, यह संवाद पाकर उनकी सेवा के लिए अविलम्ब घर पहुँचने का संकल्प किया, किन्तु भाग्य के फेर से दुर्मतिवश महीनेभर से भी अधिक समय तक यहाँ-वहाँ घूमता-फिरता रहा। इस समय में कुछ दिन एक परिचित के घर में मुझे रहना पड़ा। वे एक के बाद एक कई अनर्थों से उत्तेजित होकर, उसकी निवृत्ति हेतु अन्यत्र जाने के लिए बाध्य हो गए। घर में एकमात्र पत्नी रह गईं। नौकर-नौकरानी के सिवा अन्य परिजन के न रहने से पत्नी की देख-रेख का भार बाबू मेरे ऊपर सौंप गए। अधिक घनिष्ठता के कारण सजन में, निर्जन में निःसंकोच मेरे साथ उनका परस्पर वार्तालाप, उठना-बैठना बहुत समय से चला आ रहा है। मेरा आसन और सोने का स्थान उनके आग्रह और जिद करने पर भीतर ही हुआ। दिन के १२ बजे तक का समय मैं एकान्त

में साधन-भजन करके बिता देता था। रमणी उस समय अपने गृहकार्य में लगी रहतीं। मध्याह्न में भोजन के बाद, नौकरादि बाहर चले जाते थे। रमणी तब अकेली अलग कमरे में न रहकर मेरे कमरे में आसन से कुछ दूरी पर शयन और विश्राम करती थीं। इस समय वे धर्म-वृत्तान्त उठाकर, सरलता की आड़ में अपने भीतर का कुभाव मेरे सामने धीरे-धीरे प्रकट करने लगीं। मैं बड़े संकट में पड़कर, क्या करूँ सोचने लगा।

उनकी किसी भी चेष्टा में बाधा देने का मेरा साहस नहीं हुआ। सोचा, इस समय उनके लिए कुछ भी कार्य असाध्य नहीं है। मेरे किसी विरुद्ध व्यवहार से यदि उनके हृदय और अभिमान पर आघात लगे, तो युवती तुरन्त मेरे नाम से निन्दित बातें कहकर चिल्लाते हुए लोगों को एकत्र कर लेंगी एवं क्षणभर में मुझे अपदस्थ करके चिरकाल के लिए मेरी अपकीर्ति, अपयश का चारों ओर प्रचार कर देंगी। एक दिन भयंकर संकटावस्था आ गई जानकर मैं आतंक से अंधकार देखने लगा। ठाकुर ने कितनी बार कहा है- **'पुरुष अभिभावक की अनुपस्थिति में किसी गृहस्थ के घर में अविवाहित युवक का पलभर भी रहना उचित नहीं है।'** सोचा, ठाकुर के इस अनुशासन वाक्य को सामान्य समझकर अग्राह्य करने से ही आज मैं संकट में पड़ गया। तब गुरुदेव के अभय-चरणों का स्मरण करके बारम्बार उन्हें प्रणाम करने लगा। कामिनी अत्यधिक साहस से कुछ क्षण भयंकर चंचलता प्रकट करके अन्त में 'ओ हरि! इसलिए तुम ब्रह्मचारी हो!' कहकर लज्जा से मुस्कुराते हुए अन्य कमरे में चली गई। तब मैं पर्दायुक्त मन से सोचने लगा- 'ब्रह्मचर्य के नियम का पालन करके निश्चय ही मुझे अपूर्व शक्ति प्राप्त

हुई है। इसलिए इस प्रकार की घटना में मैं निर्विकार रहने में समर्थ हुआ। मैंने वास्तव में साधन-राज्य के फिसलन मार्ग का अतिक्रम करके निरापद् भूमि प्राप्त कर ली है।' किन्तु हाय! इस प्रकार मिथ्या अहंकार होने के कुछ दिन बाद ही समझ में आ गया कि मेरा सर्वनाश हो गया है। घटना का सूत्र पकड़कर धीरे-धीरे मेरे हृदय में आग लग गई। चारों ओर की अग्नि के काले धुएँ ने दुर्लभ ब्रह्मचर्य की उज्ज्वल दीप्ति को आच्छादित कर लिया। मैं पहले की अपूर्व पवित्र अवस्था से पतित हो गया। अगले दिन ही बाबू घर आ गए। मैं भी तुरन्त वह स्थान छोड़कर चला आया।

स्वप्न में गुरुदेव का अनुशासन

इस घटना के कुछ दिन बाद ही एक के बाद एक कई स्वप्न देखा। एक स्थान पर परिचित-अपरिचित अनेक लोग एकत्र हुए हैं। गुरुदेव ने मुझे बुलाकर कहा, **'मेरे पीछे-पीछे चलो।'** मैं उनके आदेशानुसार पीछे-पीछे चलने लगा। रास्ते के दोनों ओर फैले हुए खेत में बकरों और भेड़ों की विचित्र क्रीड़ा देखकर मैं बार-बार रुक जाता। गुरुदेव तब पीछे की ओर देखकर मुझे शीघ्र चलने के लिए कहते। मैं भी तुरन्त दौड़कर गुरुदेव के साथ-साथ फिर से चलने लगता। इस प्रकार मैं ठाकुर के साथ एक ऊँचे पर्वत के समीप पहुँचा। पर्वत पर चढ़ने के लिए अनेक गुरुभाइयों को एकत्रित देखा। वहाँ गुरुदेव ने मेरी ओर देखकर कहा-**'तुम यहाँ रुको, मैं अभी जाता हैं।'** ठाकुर की बात सुनकर मैं रो पड़ा एवं बड़े प्रार्थित भाव से कहा-'मैं आपके साथ ही इस पर्वत पर चढ़ूँगा, मुझे अपने साथ ले लीजिए।' ठाकुर ने मुझे खूब धमकाते हुए कहा, **'तुम बड़े जिद्दी**

लड़के हो। जो मन में आता है, वही किया करते हो। तुमको साथ ले जाकर क्या अन्त में उत्पात में पड़ूँगा? यहाँ कुछ समय रुको; जब सब लोग जाएँगे, तब तुम भी जाना। अभी मेरे साथ नहीं जा सकोगे।' यह कहकर गुरुदेव पहाड़ पर चढ़ने का प्रयास करने लगे, मैं रोते-रोते जाग उठा। यह स्वप्न देखकर मेरा मन बहुत बेचैन हो गया। खूब नियम-निष्ठा में रहकर साधना करने लगा-गुरुदेव के पास शीघ्र चले जाने की इच्छा हुई। तब एक दिन स्वप्न देखा-एक स्थान पर बड़ी धूमधाम से हरिसंकीर्तन हो रहा है; संकीर्तन में उन्मत्त होकर अनेक लोग भावावेश में अचेत हो गए हैं। 'दयाल निताई, दयाल निताई' कहकर सब लोग क्रन्दन कर रहे हैं। मैंने सोचा-निताई पतितपावन हैं, उन्हें ही पुकारता हूँ। यह सोचकर 'दयाल निताई, दयाल निताई' कहते-कहते रोने लगा। यह स्वप्न देखकर भी मेरे मन में शान्ति नहीं मिली, सर्वदा विचार आने लगा-'अपने दोष से ही दुर्लभ अवस्था खो दी है।' अनुताप और क्लेश में मेरा समय बीतने लगा। एक दिन खूब व्याकुल होकर अपनी दुरावस्था गुरुदेव के चरणों में निवेदन करके सो गया। रात्रि में स्वप्न देखा-अनेक लोगों को साथ लेकर गुरुदेव एक बड़े संकीर्तन में जाने लगे। मैं अपनी दुरावस्था से उदास होकर एक किनारे खड़ा रहा। गुरुदेव ने मुझसे कहा-**'चलो, कीर्तन में जाएँगे; आज कीर्तन में तुम विशेष कृपा प्राप्त करोगे।'** मैं स्वयं को पतित समझकर, हाथ जोड़कर काँपने लगा। ठाकुर की ओर देखकर रो पड़ा। तब गुरुदेव ने मुझे पकड़कर गोद में उठा लिया। ठाकुर को देखकर उनका शरीर पत्थर के जैसा कठोर लग रहा था, परन्तु गोद में उठने पर उनका शरीर रूई के जैसा नरम अनुभव करने लगा। संकीर्तन-

स्थल पर मुझे गोद से उतारकर उन्होंने कहा, 'कुछ समय तुम यहाँ प्रतीक्षा करो। मैं अभी आता हूँ। यह कहकर वे समीप के एक सुन्दर मकान में प्रवेश किए। मैं उसी समय जाग उठा।

यह स्वप्न देखने के बाद ठाकुर की दया का विचार करके मन में बहुत-कुछ शान्ति मिली, पर गुरुदेव की असाधारण कृपा से जो अद्भुत अवस्था प्राप्त हुई थी, वह फिर लौटी नहीं। दाता वे ही हैं, उनकी दया से क्षणभर के भीतर वही अवस्था पुनः प्राप्त हो सकती है-यह सोचकर शान्त मन से साधन-भजन करने लगा।

गुरुवाक्य में अनास्था के कारण दुर्दैव

फैजाबाद से घर जाते समय काशी में कुछ दिन रुककर गंगा-स्नान करने की इच्छा हुई। एक दिन दशाश्वमेध घाट पर स्नान करके विश्वेश्वर-दर्शन करने का निश्चित किया। श्रीवृन्दावन में एक दिन ठाकुर ने कहा था-**'तीर्थ में जाकर पहले तीर्थगुरु करना चाहिए, उनकी अनुमति लेकर पण्डे की सहायता से स्नान, दर्शनादि तीर्थ के सारे कार्य करने चाहिए-यही व्यवस्था है।'**

इस प्रकार की व्यवस्था का तात्पर्य क्या है, ठाकुर से पूछा नहीं। साधारण लोगों की सुविधा के लिए ही यह शास्त्र की साधारण व्यवस्था है, ऐसा लगता है, शक्त सामर्थी के लिए लगता नहीं इस प्रकार की विवशता का कुछ प्रयोजन है। यह सोचकर इस नियम-पद्धति में मेरी प्रवृत्ति नहीं हुई। मैं स्नान करने के लिए दशाश्वमेध घाट पहुँचा; घाट में स्नान के लिए अग्रसर होते ही पण्डे लोग मुझे घेरकर खड़े हो गए। संकल्प मन्त्र पढ़े बिना दशाश्वमेध में स्नान करने नहीं देंगे, कहकर हल्ला करने लगे। मैं 'मन्त्र-तन्त्र जानता

नहीं', 'देवी-देवता मानता नहीं' कहकर उन लोगों को भगा दिया। विश्वनाथ के मन्दिर जाने के रास्ते में फिर पण्डों का बड़ा उत्पात आरम्भ हो गया। वे सामान्य दो-चार आना मिलने से ही सन्तोषपूर्वक मुझे सरलता से दर्शन करा देंगे, कहने लगे। कोई-कोई दो-चार पैसे के फूल, बिल्वपत्र की डाली मेरे सामने रखकर, पैसे के लिए विरक्त करने लगे। इसे पण्डों की केवल पैसे लेने की चतुराई समझकर, सभी को डाँटते हुए कहा-'अन्धे-लंगड़े, बूढ़े-बूढ़ियों को दर्शन कराकर पैसे लिया करो। पण्डे उनके लिए हैं, मैं अच्छे-से दर्शन कर सकता हूँ। फूल, बेलपत्ते में अनर्थक पैसे व्यय नहीं करूँगा। जो विश्वनाथ हैं, वे क्या फिर फूल, बेलपत्ते की आशा करेंगे? अनावश्यक खर्च के लिए पैसा नहीं है।' सभी मेरी बात सुनकर 'अरे राम राम' कहकर अलग हो गए। मैं मन्दिर के द्वार पर पहुँचकर लोगों की भीड़ देखकर चकित रह गया। बहुत प्रयास करके भीतर प्रवेश किया, लेकिन अनेक लोगों के धक्के से दीवाल के पास जाकर खड़ा हो गया। इतने स्त्री-पुरुषों को ठेलकर विश्वेश्वर का दर्शन करना मुझे असम्भव लगा। तब बाहर निकलने का प्रयास करने लगा। इस समय एक सुन्दर युवती ने सुयोग पाकर लोगों की हलचल में विभिन्न कौशल से मुझे बेचैन कर डाला। विपद् समझकर मैं बड़ी कठिनाई से बाहर आया। विश्वेश्वर का दर्शन न होने से मन में कोई उद्वेग नहीं हुआ, वरन् भयंकर उत्पात से छुटकारा मिला, यह सोचकर सन्तुष्ट ही हुआ। निवासस्थान पर जाते समय अच्छे-अच्छे कमण्डलु देखकर, एक क्रय करने की इच्छा हुई। मूल्य देने हेतु रुपये निकालने लगा तो देखा, पॉकेट में रुपये नहीं हैं। भीतर के कुर्ते में ऊपर के पॉकेट पर ३५ रुपये थे,

एक भी नहीं है। मुझे बड़ा क्लेश होने लगा। तब सोचा, यदि पण्डों को आठ-दस आने पैसे देकर मन्दिर जाता, तो वे मेरे लिए दर्शन की व्यवस्था सहज में कर देते। अन्य कोई उपद्रव भी मुझे स्पर्श नहीं करता, रुपये भी इस प्रकार गँवाता नहीं। शास्त्र-व्यवस्था की अमर्यादा के कारण इसे अपने लिए गुरुदेव का ही अनुशासन समझकर अनुताप करने लगा। काशी में रहने का अब मेरा उत्साह नहीं रहा, विरक्ति के कई कारण उपस्थित हो गए। मैं शीघ्र काशी छोड़कर भागलपुर पहुँचा। कुछ दिन वहाँ योगजीवन के साथ आनन्द से बिताया। फिर कोलकाता आ गया।

मानिकतला की माँ

कोलकाता आकर एक सप्ताह रहा। भैया ने मुझे मानिकतला की माँ के साथ भेंट करने के लिए कहा था, मैं समवयस्क दो मित्रों को साथ लेकर मानिकतला की माताजी के घर गया। माताजी के पति, भैया के परिचय से मुझे पहचानकर बड़े आदर के साथ हम सब लोगों को भीतर ले गए। उस समय माताजी भावावेश में समाधिस्थ थीं। उच्च स्वर में हरिनाम करने से पाँच-सात मिनट बाद उनकी चेतना लौटी। उन्होंने बड़े स्नेह के साथ मुझे कुछ जलपान करने के लिए कहा। 'मैं प्रसाद के सिवा कुछ खाता नहीं-कहने पर माताजी ने कहा, 'भूमि में स्पर्श करने के बाद खाओ, तो वह माँ का प्रसाद ही खाना होगा। माता के गर्भ से भूमिष्ठ होने पर सर्वप्रथम इस माँ का ही आश्रय लेना पडता है, भूमि ही यथार्थ माँ है। इस माँ को निवेदन करके भूमि में स्पर्श करा लेने से वस्तु में अपवित्रता का दोष नहीं रहता।'

माताजी ने अपने-आप मुझे अनेक उपदेश दिया। मैं उन सब बातों का कोई अर्थ नहीं समझ पाया; तत्त्वज्ञान के अत्यन्त दुर्बोध्य सब विषयों को विशुद्ध भाषा में निरन्तर कहने लगीं। लगभग दो घण्टे तक उन्होंने धाराप्रवाह व्याख्यान दिया। उस समय उनकी तेज:पूर्ण भाषा की रचना, शब्दों की शैली और क्रम देखकर हम लोग चकित रह गए। माताजी का व्याख्यान समाप्त होने के बाद मैंने कहा, आपने इतने समय तक क्या कहा, कुछ समझ नहीं पाया। माताजी ने कहा-'तुम्हें देखकर भीतर में एक प्रकार का भाव हुआ, अपने-आप जो आया, वही कह दिया। क्या कहा, वह मैं भी नहीं जानती। जो कहा गया है, वह सब अवस्था जब तुम्हें प्राप्त होगी, तब तुम मेरी इन सब बातों का स्मरण करोगे। लगता है, तुम गोसाँईजी के शिष्य हो। वह लड़का साधारण नहीं है! जिसको उनका आश्रय मिला है, वह सम्पूर्ण रूप से निर्भय हो गया है, यह निश्चय जान लो; शिष्यों के भीतर उन्होंने नित्यधाम स्थापित कर लिया है; जैसी इच्छा हो चलो, समय पर वे सब कर लेंगे।

माताजी की बातें सुनकर मुझे बड़ा अच्छा लगा। ठाकुर के मुख से माताजी की बहुत प्रशंसा सुनी है। बिना साधना के बहुत-सी अद्भुत शक्तियाँ उन्हें पूर्वजन्म के संस्कारवश स्वतः ही प्राप्त हुई हैं। लगभग दस वर्षों से आहार त्याग करके स्वस्थ शरीर में हैं। रूप की उज्ज्वलता और मुख की शोभा देखकर सभी लोग उनकी देह में किसी देवी का आविर्भाव मानते हैं। माताजी के असाधारण स्नेह से मैं अपने को धन्य समझने लगा।

हरिचरण बाबू और लाल का पश्चात्ताप

कोलकाता से ढाका आकर गेण्डारिया-आश्रम में एक सप्ताह रहा। भजननिष्ठ संसारत्यागी गुरुभाई श्रीनवकुमार बागची और पण्डित श्यामाकान्त चट्टोपाध्यायजी से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। ढाका के सब गुरुभाइयों के साथ भी मेरी भेंट हुई। एक दिन श्रीहरिचरण चक्रवर्तीजी मुझे अपने निवास पर ले गए। श्रीवृन्दावन में ठाकुर ने उनके सम्बन्ध में कुछ कहा या नहीं, वे बड़े आग्रह के साथ पूछने लगे। मैंने कहा-सुना है, ठाकुर का आदेश उल्लंघन करके ब्रह्मचारीजी का संसर्ग करने के फलस्वरूप आप तीन-चार गुरुभाइयों का बड़ा अनिष्ट हुआ है, उनके उपदेश के अनुसार अद्वैतवाद एवं प्रारब्ध के संस्कार से जड़ित होकर आप लोगों ने साधन-भजन छोड़ दिया है, गुरुदेव द्वारा प्रदत्त साधन में आप लोगों की पहले जैसी निष्ठा, भक्ति कुछ भी नहीं रही, वरन् इस साधन के विरोधी हो गए हैं। इसीलिए ठाकुर ने बातों-बातों में एक दिन कहा-**'ये लोग यदि अभी से नियमानुसार साधना करें तो हो सकता है, पाँच-छः वर्ष बाद पूर्वावस्था पुनः प्राप्त कर लें। अन्यथा इस बार इसी प्रकार चले जाना होगा।'**

हरिचरण बाबू ने कहा-'गोसाँईजी ने ठीक बात कही है। दीक्षा ग्रहण करके उनकी कृपा से जिस अपूर्व अवस्था का भोग किया, वह अब नहीं रही, ब्रह्मचारीजी के संसर्ग से ही उस अवस्था को खो दिया है। अहा! गोसाँईजी ने दया करके कितने आनन्द में रखा था। कितने दर्शनादि होते थे; वह सब स्वप्न लगता है। अब उन सब विषयों के चिन्तन से रात-दिन जल-भुन जा रहा हूँ। गोसाँईजी फिर मुझ पर कृपा करेंगे तो?' यह कहकर हरिचरण बाबू रोने लगे। मैं कुछ क्षण बाद चला आया।

गेण्डारिया आश्रम में असाधारण योगैश्वर्यशाली गुरुभाई श्रीलालबिहारी के साथ मेरा खूब मेल-मिलाप हुआ। हम दोनों सर्वदा एक साथ रहकर ठाकुर के प्रसंग में परमानन्द से दिन बिताने लगे। एक दिन गेण्डारिया के निर्जन जंगल में ले जाकर लाल ने मुझसे पूछा-'भाई, वहाँ गुरुजी के पास मेरी कुछ चर्चा हुई थी? जो जानते हो उसे छिपाए बिना मुझे खुलकर बतलाओ। मैंने लाल के सम्बन्ध में जो सब बातें हुई थी, स्पष्ट कह दी। सुनकर लाल कुछ क्षण स्तब्ध रहे, मुख मलिन हो गया। फिर एक लम्बी श्वास छोड़कर कहने लगे-'ठीक कहते हो, उस समय सर्वदा जो ब्रह्मज्योति मेरे समक्ष प्रकाशित थी, वह तब से बिल्कुल अदृश्य हो गई। शक्ति की बात, योगैश्वर्य की बात छोड़ दो, अब वह सब कुछ नहीं रहा, इस समय आत्मरक्षा भी असम्भव हो गई है। रात-दिन अनुताप से, यन्त्रणा से छटपटाता हूँ। हाय! गोसाँईजी ने मुझे कितना सावधान किया था, किन्तु तब उनकी बात मानी नहीं। उनके पास से आते समय भी उन्होंने मुझसे कहा था-**'लाल! सम्पूर्ण उत्ताप-शून्य होने से, बहुत समय बाद मिट्टी की घास पर चन्द्र की किरण पड़ने से एक बूँद ओस गिरती है; किन्तु अभिमान-सूर्य के प्रकाश से वह क्षणभर में बिल्कुल सूख जाती है; खूब सावधान रहना।'** उस समय मैं गोसाँईजी की बात समझा नहीं, जो हो, उससे मेरी क्या हानि हुई? वह सब अवस्था मैंने कोई साधन-भजन करके, परिश्रम से तो प्राप्त की नहीं थी; उनकी वस्तु, उन्होंने कृपा करके दी थी, भोग किया। अब वे अपनी वस्तु ले लिए; मैं पहले जैसा था, अब भी वैसा हूँ। इस प्रकार लाल ने बहुत समय तक खेद व्यक्त किया; फिर हम लोग गेण्डारिया आश्रम चले आए।

छोटे भैया (श्री शारदाकान्त बन्द्योपाध्याय) के मुख से माताजी की पीड़ा की बात सुनकर बहुत व्याकुल हो गया। छोटे भैया का शरीर भी बहुत पीड़ित दिखा। इस बार वे बी.ए. की परीक्षा देंगे। पीड़ित अवस्था में अत्यधिक पढ़ाई-लिखाई करके अब बहुत अस्वस्थ हो गए हैं। परीक्षा दे पाएँगे या नहीं, सोचकर बीच-बीच में बड़े हताश हो जाते हैं। छोटे भैया के कहने पर मैं घर चला गया।

नवम्बर-दिसम्बर, सन् १८९० ई. (बंगला सन् १२९७, अग्रहायण)

मेरी दिनचर्या: मातृ-सेवा से सम्पूर्ण कल्याण

नवम्बर-दिसम्बर। घर आकर माँ को अत्यन्त पीडित अवस्था में देखा। पित्तशूल की वेदना एवं आमाशय आदि रोग से वृद्धावस्था में माँ का शरीर बहुत ही अस्वस्थ हो गया है। रात-दिन रोग की यन्त्रणा से अवसन्न रहकर भी विशाल गृहस्थी के समस्त कार्यों का निरीक्षण एवं अपने भोजन की जो कुछ व्यवस्था है, माँ को ही करनी पड़ती है। माँ स्वस्थ रहने पर किसी से अपनी सेवा नहीं करातीं। माँ की दुरावस्था देखकर मन में बड़ा दुःख हुआ। गृहस्थी का सारा भार एवं माँ की सेवा-शुश्रूषा का जो कुछ कार्य है, मैंने ग्रहण कर लिया।

मेरी बहुत पुरानी पित्तशूल की वेदना एवं वायुरोग बिल्कुल दूर हो गया है। शरीर अच्छा सबल व स्वस्थ देखकर माँ ने पूछा-‘तेरा यह रोग कैसे दूर हुआ? मैं रोग की यन्त्रणा से पागल जैसा होकर आत्महत्या करने के संकल्प से श्रीवृन्दावन गया था, तब ठाकुर की कृपा से जिस प्रकार मैं रोगमुक्त हुआ एवं मेरी रक्षा हुई, माँ को विस्तारपूर्वक बतलाया। अपने ‘ब्रह्मचर्य’ ग्रहण की बात भी माँ को स्पष्ट रूप से बतलाई। माँ सब बातें सुनकर चकित हो गईं।

गोसाँईजी तेरे जीवन की रक्षा किए है, कहकर माँ रोने लगीं। माँ ने कहा-'ऐसा गुरु जब पाया है, तो फिर उनको छोड़कर आया क्यों? उनके साथ रहने से तेरा अधिक उपकार होता।' मैंने कहा, उन्होंने तुम्हारी सेवा करने के लिए ही मुझे घर भेजा है। मेरे लिए गुरु का यह आदेश सुनकर माँ ने कहा-'अच्छा गुरु की आज्ञानुसार तू मेरी सेवा कर। माँ का आदेश पाकर मैं सभी कार्यों का एक नियम बनाकर चलने लगा।

मैं प्रतिदिन रात्रि के अन्तिम प्रहर में आसन से उठकर शौच के बाद ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करता; फिर निर्जन कमरे में आसन पर बैठकर साधना समाप्त करके कभी तिल, तुलसी, कुशोदक से तो कभी पंचामृत से फिर विशेष-विशेष तिथि में गाय के सींग के जल से पितरों का तर्पण करके माँ के पास जाता हूँ। माँ को भूमिष्ठ होकर प्रणाम करता; माँ अपने दोनों पैरों को मेरे मस्तक पर रखकर पीठ पर हाथ फेरते-फेरते आशीर्वाद देतीं-'तेरी मनोकामना पूर्ण हो, सुख से रह। मैं मन-ही-मन प्रार्थना करता-'मेरी सेवा से तुम स्वस्थ हो जाओ, तुम्हें तृप्ति मिले और मेरे गुरुदेव प्रसन्न हों।' माँ जब मेरे शरीर और मस्तक पर हाथ फेरते-फेरते बड़े स्नेह के साथ आशीर्वाद देती हैं, तब मेरा पूरा शरीर शीतल हो जाता है। भीतर एक अपूर्व आनन्द मिलता है, लगता है, मैं धन्य हो गया। माँ की पदधूलि व आशीर्वाद लेने के बाद आसन पर बैठकर ९ बजे तक साधन-भजन करता हूँ। इस समय माँ मेरे कमरे में आती हैं। गुरुगीता, भगवद्गीता और सूर्यस्तव आदि का पाठ करके माँ को सुनाता हूँ। १० बजे माँ के लिए भोजन बनाने जाता हूँ माँ भी उस समय पूजा-पाठ करने बैठती हैं। माँ का पूजा-पाठ और जप होते

तक मेरा भोजन बनाना हो जाता है। तब माँ को प्रणाम करके उनका चरणामृत लेता हूँ। माँ शिव के मस्तक पर फूल-बिल्वपत्र चढ़ाकर, हाथ जोड़कर प्रणाम करते-करते प्रार्थना करतीं-'ठाकुर! उसकी अभिलाषा तुम पूर्ण करो।' पूजा समाप्त करके माँ भोजन करने बैठतीं; माँ को भोजन देकर मैं उनके सामने प्रसाद पाने बैठता हूँ। माँ को भोजन में जो अच्छा लगता, उसे स्वयं कम खाकर मेरे थाली में डाल देतीं। आनन्दपूर्वक माँ के हाथ से उनका प्रसाद पाता हूँ। मेरा बनाया भोजन खाकर माँ प्रतिदिन बहुत ही सन्तुष्ट होती हैं, माँ की तृप्ति देखकर मुझे जो आनन्द होता है, कह नहीं सकता। इस समय मुझे दयालु ठाकुर की बात का ही स्मरण होता है; उनकी कृपा से मेरा यह शुभ दिन आया है। भोजन के बाद गुरुदेव के शान्तिप्रद अभयचरणों के उद्देश्य से प्रणाम करके अपने आसन पर बैठता हूँ।

दिन में १ बजे से लेकर ३ बजे तक एकान्त में बैठकर नाम-जप करता हूँ। माँ इस समय विश्राम करती हैं। ३ बजे आकर माँ मेरे आसन-गृह में बैठतीं हैं। उस समय मैं महाभारत, श्रीमद्भागवत एवं रामायण पाठ करके माँ को सुनाता हूँ। इस समय मोहल्ले के और भी अनेक स्त्री-पुरुष लोग आकर पाठ सुना करते हैं। ५ बजे तक पाठ करके, आसन से उठता हूँ। तब गृहस्थी का बाजार करना, हिसाब-किताब लिखना आदि जो कुछ कार्य हैं, किया करता हूँ। संध्या के समय माँ को प्रणाम करके दो-चार समवयस्कों के साथ भगवान् का नाम-गान करता हूँ। फिर माँ के पास जाता हूँ। रात्रि में माँ मेरे ही कारण कुछ जलपान करके मुझे प्रसाद देती हैं। माँ के शयन करने पर कभी-कभी उनके पैरों में तेल लगाकर मालिश कर

देता। माँ कुछ समय के लिए मुझे छाती से लगाकर सोया करतीं एवं मेरे सर्वांग में हाथ फेरकर, माथे पर फेंक मारते-मारते पेट में अँगुलि से बारम्बार ठोकते हुए रक्षा-मन्त्र पढ़ा करती हैं। माँ के स्पर्श से मेरा शरीर और मन बिल्कुल शीतल हो जाता है। माँ का स्नेह देखकर इस समय मैं फफक-फफककर रोता हूँ। नींद आने पर अपने आसन-गृह में आकर शयन करता हूँ। कभी बिछौने पर तो कभी आसन पर ही करवट ली हुई अवस्था में पड़ा रहता हूँ। रात्रि में प्रायः १ बजे हाथ-मुँह धोकर, धूनी जलाकर साधना करने बैठता हूँ। रात्रि के अन्तिम प्रहर तक नाम-जप करते-करते भावावेश में या कभी तन्द्रावेश में मेरा समय बीत जाता है। गुरुदेव ने मुझे कितने आनन्द में रखा है, व्यक्त नहीं कर सकता।

घर पर रहकर प्रतिदिन एक ही नियम से साधन-भजन में, माताजी की सेवा में मेरा समय बीतता है, प्रतिदिन नये-नये उत्साह और आनन्द से साधन-भजन करने की मेरी आकांक्षा में वृद्धि हो रही है। रात्रि के अन्त में लगता है-कब सूर्योदय होगा, कब नित्यकर्म समाप्त करके माँ की चरणधूलि मस्तक पर लगाऊँगा, वे मेरे सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद देंगी, कब माँ का चरणामृत पाऊँगा, स्वादिष्ट व्यंजनादि बनाकर माँ को खिलाऊँगा। विशेष-विशेष पूजा-उत्सव के दिन सूर्योदय होते ही सभी के मन में जैसा एक उत्साह और आनन्द खेला करता है, प्रत्येक दिन उसी प्रकार, दिन के प्रारम्भ से ही मेरे भीतर एक आनन्दोल्लास की तरंग आ जाती है। गुरुदेव की असीम कृपा के गुण से माताजी की प्रसन्नता और आशीर्वाद प्राप्त करके वास्तव में मैं कृतार्थ हो गया, धन्य हो गया! मेरे प्रति ठाकुर की इस असाधारण दया का सदा स्मरण करके

निर्जन में चिल्ला-चिल्लाकर रोने की इच्छा होती है; गुरुदेव जब दया करते हैं, तब सब कुछ अनुकूल हो जाता है। मातृ-सेवा की बात सुनकर भैया लोग सन्तोषपूर्वक मुझे आशीर्वाद देकर लिखते हैं-'साधन-भजन में तुम्हारी उन्नति हो, तुम सुख से रहो।' आत्मीयजन, अभिभावकगण जो पहले मुझसे अप्रसन्न थे, अब वे लोग भी मुझसे बड़े सन्तुष्ट हैं; गाँव के वृद्ध ब्राह्मण लोग भी मेरे दैनिक अनुष्ठान की बड़ी प्रशंसा कर रहे हैं। ब्रह्मसमाजी कहकर इतने समय तक जिन्हें मेरे प्रति आन्तरिक घृणा और ईर्ष्या थी, उन्हें भी अब मेरे साथ धर्म-प्रसंग में आनन्द मिल रहा है। सभी गुरुजनों के स्नेह, ममता और आशीर्वाद के गुण से नित्य नये उत्साह-उद्यम से साधन-भजन करके भीतर एक अपूर्व शक्ति का अनुभव करता हूँ। बड़े आनन्द से मेरे दिन बीत रहे हैं।

गुरुकृपा का अलौकिक दृष्टान्तः छोटे भैया का आरोग्य

मैं स्पष्ट अनुभव कर रहा हूँ, सद्गुरु के किसी एक सामान्य आदेश के प्रतिपालन की चेष्टा करने से ही वही सूत्राकार में परिणत होकर, बहुत दूर स्थित शिष्य के चित्त को भी अपने अनन्त महत् भाव के साथ जोड़कर रखती है। यह सूत्र मकड़ी जाल के समान महीन होने से भी, उसी का सहारा लेकर गुरुकृपा की प्रबल धारा तड़ित प्रवाह की भाँति वेग से शिष्य के भीतर संचारित होती है। गुरु का आदेश पालन कर रहा हूँ, सदा मन में यह आने से, गुरुदेव मुझसे प्रसन्न हैं-मेरी इस प्रकार की धारणा दृढ़ हो रही है। गुरुदेव मेरी प्रार्थना सुनते हैं, व्याकुल होकर कहने से अथवा जिद करके

माँग करने से वे उसे पूर्ण करते हैं-मन में इस प्रकार का संस्कार पड़ रहा है एवं उसके ही फलस्वरूप अपने ऊपर अत्यन्त विश्वास उत्पन्न हो गया है। कुछ घटनाओं में इस विषय का मुझे प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिला, उसमें से दो-चार का ही उल्लेख कर रहा हूँ।

कुछ दिन पहले छोटे भैया का पत्र मिला। उन्होंने लिखा है- 'अचानक छाती में कष्ट होने के कारण तीन दिन से शय्यागत हूँ। पढ़ाई-लिखाई भी नहीं कर पा रहा हूँ, सदा भयंकर यन्त्रणा भोग रहा हूँ। परीक्षा का समय सन्निकट है, दिनो-दिन बड़ी हानि हो रही है, इस बार लगता है, परीक्षा पास नहीं कर पाऊँगा। तुम मेरे मंगल के लिए प्रार्थना करना।' छोटे भैया का पत्र पढ़ते ही मेरा हृदय काँप उठा। मैंने व्याकुल मन से ठाकुर के चरणों में प्रणाम करके प्रार्थना की-'गुरुदेव! छोटे भैया के शरीर की यन्त्रणा से मैं शान्त नहीं हो पा रहा हूँ शीघ्र उनके रोग को तुम दया करके मेरे भीतर संचारित कर दो। मैं विचलित हुए बिना सन्तोषपूर्वक रोग समाप्त होने तक क्लेश भोगूँगा।' इस प्रकार प्रार्थना करके आसन पर बैठकर कुछ क्षण गुरुदेव का स्मरण किया; फिर बड़े उत्साह के साथ प्राणायाम के प्रत्येक दम में रोग की कल्पना करते हुए वायु खींचकर, रेचक के साथ अपना स्वास्थ्य छोटे भैया के पीड़ित शरीर में संचारित करने लगा। इस प्रकार एकाग्र मन से, प्राणपण से ध्यान और प्राणायाम करते-करते मुझे छाती में वेदना का अनुभव हुआ। क्रिया के साथ-साथ यह यन्त्रणा क्रमशः बहुत बढ़ने लगी, तब भीतर से उत्साह पाकर, आग्रहपूर्वक बारम्बार कुम्भक करके दृढ़ता के साथ उसे दबाकर छाती में धारण करने लगा। कुछ क्षण में ही ठाकुर की इच्छा से, मेरा शरीर असह्य यन्त्रणा से अवसन्न हो गया। मैं तुरन्त

'जयगुरु, जयगुरु' कहते-कहते आसन से उठ गया। उसी समय छोटे भैया को पत्र लिखा। जिस दिन, जिस समय मेरे भीतर इस रोग का संचार हुआ, छोटे भैया को स्पष्ट रूप से बतलाया। छोटे भैया के जवाब से पता चला, उसी दिन ठीक उसी समय उनकी वेदना कम हो गई। अद्भुत है। गुरुदेव की दया! मुझे यह पीड़ा अधिक दिन भुगतनी नहीं पड़ी।

इस घटना के कुछ दिन बाद छोटे भैया की बी.ए. की परीक्षा आरम्भ हुई, परीक्षा के तीन दिन पहले भीषण ज्वर से शय्यागत होकर उन्होंने मुझे पत्र लिखा। मैं सोमवार को प्रातः ९ बजे किसी कार्यवश जैनसार ग्राम जा रहा था, रास्ते में छोटे भैया का पत्र मिला। समझ गया, उस दिन ही छोटे भैया की परीक्षा आरम्भ होगी। रोगमुक्त होकर छोटे भैया हो सकता है परीक्षा न दे पाए, इस चिन्ता से मेरा सिर चकरा गया; जैनसार जाने के आधे रास्ते में एक बड़े वट वृक्ष के नीचे मैं बैठ गया। छोटे भैया के आरोग्य प्राप्ति एवं परीक्षा में सफलता के लिए व्याकुल होकर ठाकुर के चरणों में प्रार्थना करने लगा। एक ही दशा में व्याकुल हृदय से लगभग तीन घण्टे रोया; विपत्ति की आशंका से निरुपाय होकर ठाकुर को सब निवेदन किया। इस समय अन्तःकरण की यन्त्रणा से एवं भयंकर शोक से मूर्च्छित-सा हो गया। कुछ समय बाद ठाकुर की कृपा से समझ पाया-'ठाकुर छोटे भैया पर दया करेंगे! छोटे भैया सम्पूर्ण आरोग्य प्राप्त करेंगे। परीक्षा में वे अवश्य पास होंगे।' मैं तुरन्त उठकर जैनसार ग्राम चला गया। उसी समय पोस्ट-ऑफिस में बैठकर छोटे भैया को पत्र लिखा-'कोई चिन्ता मत कीजिएगा, गुरुदेव आपका कल्याण करेंगे। परीक्षा में आप अवश्य पास होंगे। लगता है, ज्वर

सम्पूर्ण रूप से दूर हो गया है; कैसे हैं, लिखिएगा।' छोटे भैया ने मेरे पत्र का उत्तर दिया-'परीक्षा के दिन (सोमवार को) पथ्य पाकर, बहुत कष्ट से परीक्षा देने गया; रास्ते में अचानक मेरे भीतर मानो एक शक्ति प्रविष्ट हो गई, अब मुझे कोई कष्ट नहीं है, भगवान् की दया से परीक्षा अच्छे-से ही दिया। छोटे भैया का पत्र पाकर मैं निश्चिन्त हो गया; गुरुदेव की अपार कृपा का स्मरण करके रोने लगा।

जनवरी-फरवरी, सन् १८९१ ई. (बंगला सन् १२९७, माघ)

प्रकृति पूजा से दुर्दशाः श्रीश्री गुरुदेव का अभय दान

घर आकर गुरुदेव के आदेशानुसार ब्रह्मचर्य के नियम का यथारीति प्रतिपालन करके साधन-भजन में दिन-रात बिताने लगा। गाँव के वृद्ध ब्राह्मणगण, आत्मीय एवं माननीयजन, जो लोग इतने समय तक मुझसे व्यावहारिक अनाचार के कारण बहुत अप्रसन्न थे, वे लोग भी मेरी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। सभ्य-असभ्य, स्त्री-पुरुष आदि सभी मुझे सदाचारी, चरित्रवान, भजननिष्ठ ब्राह्मण समझकर मेरी श्रद्धा-भक्ति करने लगे। दूर ग्रामवासी एवं पास-पड़ोस के लोग मुझे अपनी शारीरिक, मानसिक एवं सांसारिक नाना प्रकार की दुरावस्था और विपत्ति की बात कहकर आशीर्वाद चाहने लगे; भगवान् की कृपा से कुछ लोग असह्य रोग, आपद्-विपद् से छुटकारा पाकर वृथा ही मेरे समक्ष कृतज्ञता प्रकट करने लगे। चारों ओर मेरी प्रशंसा होने लगी। मेरे ऊपर गुणों का आरोपण पूर्णतः निरर्थक है, इन सब कार्यों से मेरा कोई सम्पर्क नहीं, यह स्पष्ट

जानकर भी लोगों का किया हुआ गुणगान मुझे अच्छा लगने लगा। समय-समय पर देखने लगा, जिनका कष्ट मेरे मन को स्पर्श करता है, जिनकी विपत्ति से मैं विचलित होता हैं, उनके कल्याण की मैं कामना करता हूँ तो ठाकुर उनका मंगल करते हैं, उत्पात को दूर करते हैं। यह सब देखकर मुझे लगा-'एक-एक नियम का पालन करके चलता हूँ, साधन-भजन में दिन-रात बिताता हूँ, लोग मेरे चरित्र एवं अनुष्ठान की बड़ी प्रशंसा करते हैं, अतः यथार्थ में मैं धन्य हो गया हैं। इस प्रकार का भाव मन में आने से अपने ऊपर मुझे अत्यधिक विश्वास होने लगा। सोचा, 'ठाकुर के अलौकिक ऐश्वर्य का एक कण मेरे भीतर संचारित हुआ है, उनकी असाधारण कृपा से इस बार मैं वास्तव में निरापद् हो गया हूँ।' इस प्रकार के संस्कार से मैं धीरे-धीरे गर्वित होने लगा। उत्साह और आनन्दपूर्वक सभी के साथ निर्भय होकर हिलने-मिलने लगा। मेरे चरित्र पर लोगों का अत्यधिक विश्वास होने से युवतियाँ भी निःसंकोच स्वेच्छानुसार सजन में, निर्जन में मेरे पास आने लगीं। सभी अपने-अपने मन की बात मुझसे कहकर आराम पाने लगे।

एक दिन एक पूर्ण यौवनावस्था की परम सुन्दरी ब्राह्मण कन्या ने आकर रोदनपूर्ण स्वर में मुझसे कहा-'भीतर की असह्य ज्वाला अब मैं सह नहीं सकती, तुम्हारा चिन्तन होने से ही मेरी असहनीय दशा हो जाती है। भोग की लालसा से बेचैन हो जाती हूँ। मेरी इस कामना को तृप्त करो।' मैंने उनसे कहा-'एक समय तुम्हारे ऊपर मेरा भी भयंकर अनुराग था। गुरुदेव ने उसे अब शान्त कर दिया है। ब्रह्मचर्य ग्रहण किया हूँ; चिरकाल के लिए उन सब कार्यों से निवृत्त हो गया हूँ। युवती ने कहा-'तो फिर मेरा यह भाव जिससे नष्ट हो,

उसका उपाय बता दो, मैं अब यह यन्त्रणा सहन नहीं कर सकती।' उनके क्लेश की बात सुनकर मेरे मन में बड़ा दुःख हुआ। मैंने उनको आश्वासन देकर कहा-'तुम निश्चिन्त हो जाओ, अवश्य ही मैं तुम्हारे चित्त की स्थिरता के लिए व्यवस्था करूँगा।'

इस घटना के बाद, युवती सुयोग मिलते ही मेरे कमरे में आकर बैठ जातीं, मैं भी धर्म-प्रसंग से नाना दृष्टान्त देकर संयम का उपदेश देता, किन्तु अवसर पाते ही वह व्याकुल होकर अपनी असह्य ज्वाला की निवृत्ति का उपाय मुझसे पूछतीं। यद्यपि काम से उन्मत्त कामिनी के सुन्दर अंग-स्पर्श से देवदुर्लभ ब्रह्मचर्य का अतुलनीय अमृतफल इसके पहले मैंने खो दिया था, तथापि वर्तमान में गुरुकृपा से कामशून्य, अचंचल अवस्था पर अधिक गर्वित रहने के कारण मैंने सोचा-सुना है, 'विशुद्ध निर्मल मन से निर्विकार काम-शून्य दशा में कोई व्यक्ति प्रकृति के रतिमन्दिर में महाशक्ति की पूजा करे, तो उससे कामिनी के कामभाव का उपशम होता है एवं उपासक की भी यथार्थ अवस्था की परीक्षा हो जाती है। तब मैं वही क्यों न करूँ? युवती के अंग को स्पर्श करना ही तो मेरे लिए निषिद्ध है, लेकिन दूर से पूजा करने में क्या दोष है?' मैंने इस प्रकार निश्चित करके उनको अपना संकल्प बतलाया; रमणी सन्तुष्ट होकर सहमत हो गई।

माघ महीने की किसी शुभ तिथि में, एक विशेष कार्य के उपलक्ष्य में मोहल्ले के सभी लोग निमन्त्रण पाकर हमारे घर आए। उस दिन को ही इस कार्य का श्रेष्ठ दिन समझकर मैंने संकल्प के अनुसार शक्ति-पूजा का आयोजन किया। यज्ञ के लिए लकड़ी के साथ घी, बिल्वपत्र, अतसी, जवा, अपराजिता, धूप, धूना और

चन्दन आदि पूजा की सामग्री संग्रह करके दोपहर में युवती के पास पहुँचा, केवल संकेत से अभिप्राय समझकर वह प्रसन्नतापूर्वक मेरा अनुगमन करने लगीं। हम लोग अविलम्ब एक निर्जन गुप्त स्थान पर पहुँचे। फिर आसन पर बैठकर कामिनी को थोड़ी दूरी पर रहने के लिए कहा। उसके बाद श्रीश्रीचण्डी का कुछ अंश पाठ करके शान्त मन से कुछ क्षण गायत्री-जप किया। फिर अग्नि प्रज्वलित करके एकाग्र मन से उज्ज्वल अग्नि में अपने इष्ट के रूप का ध्यान करने लगा। तब जवा, अपराजिता एवं बिल्वपत्र घी में मिश्रित करके सावित्री-मन्त्र से कई बार अग्नि में आहुति देकर होम समाप्त किया। फिर हाथ जोड़कर ठाकुर के चरणों के उद्धेश्य से प्रणाम करके व्याकुल होकर प्रार्थना करने लगा-'गुरुदेव! आज मैं भयंकर कार्य में प्रवृत्त हो रहा हूँ, अभी मैं हित-अहित से अनजान हूँ, मनोमुखी हूँ, मोहग्रस्त हूँ, तुम्हारा अभिप्राय क्या है, मैं कुछ नहीं जानता, तुम्हारा आह्वान करने पर उसे तुम समझ जाते हो, तुम्हें कुछ कहने पर उसे तुम सुन लिया करते हो, इसलिए ठाकुर, आज तुमको पुकार रहा हूँ, तुम्हारे पैर पड़कर प्रार्थना करता हूँ, इस अवस्था में जो कल्याणकर हो, वही व्यवस्था करो। मैं प्रकृति-पूजा करूँ, यदि तुम यह नहीं चाहते, तो अचानक किसी प्रकार विघ्न उत्पन्न करके मेरे इस प्रयास को रोक दो, और भी पाँच मिनट तक मैं प्रतीक्षा करूँगा। इस समय के भीतर कोई बाधा उत्पन्न न होने से संकल्प के अनुसार शक्ति-पूजा में प्रवृत्त होऊँगा।' इस प्रकार प्रार्थना करके एकाग्र मन से ठाकुर की पवित्र मूर्ति का ध्यान करने लगा। पाँच-सात मिनट निर्विघ्न बीत गए, इस समय अधीर रमणी को पाँच-छ: फीट दूर शान्त भाव से रहने के लिए कहा। कामिनी मेरे

संकेतानुसार अत्यन्त आनन्दपूर्वक तुरन्त उलंगिनी होकर खड़ी हो गई। तब देवी का वांछित अतसी, अपराजिता, जवा, बिल्वदल अँजलि में भरकर मस्तक पर धारण किया। फिर चण्डी का 'या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता, शक्तिरूपेण संस्थिता, शान्तिरूपेण संस्थिता,' इत्यादि मन्त्र उच्च स्वर में पढ़ने के बाद बारम्बार प्रणाम करके तुरन्त रमणी के सिर से पैर तक प्रत्येक अंग-प्रत्यंग का शान्त भाव से मनोयोगपूर्वक निरीक्षण करने लगा। बड़ा अद्भुत देखा- अचानक उनके नाभि-स्तर से लेकर दोनों जाँघों के मध्य स्थल तक गोल आकृति की घनी काली छाया से बिल्कुल आच्छादित हो गया; मध्याह्न के समय सूर्य के अच्छे प्रकाश से चारों दिशा आलोकित है। एकाएक गौर वर्ण की रमणी के अंग-विशेष में महाकाली का आविर्भाव हुआ। बहुत समय तक बारम्बार देखने पर भी घने कृष्ण वर्ण के मध्यवर्ती स्थल में चमकीली शीतल बिजली की चमक के सिवा और कुछ भी दिखा नहीं। असम्भव दृश्य देखकर मेरा सारा शरीर रोमांचित हो उठा। बारम्बार सिहरने लगा। मस्तक की पुष्पांजलि भगवती के चरणों के उद्देश्य से अर्पण करके साष्टांग प्रणाम किया। अद्भुत है। भगवान् गुरुदेव की लीला! अद्भुत है भगवती योगमाया का खेल! क्या दिखलाए! क्या देखा! स्तम्भित होकर आसन पर बैठ गया। चकित होकर ताकता रहा। तब देखा- रमणी का गौर मुखमण्डल रक्तिम हो गया है, दोनों ओठ थोड़े कम्पित हो रहे हैं, संकुचित नयनों से दृष्टि संचालनपूर्वक मनोहारिणी शोभा धारण की हैं। उनकी ओर देखकर मैं मुग्ध हो गया। उनके चंचल कटाक्ष से, बिजली के वेग से मेरे भीतर कामोत्तेजना का संचार हुआ। विचलित दशा में संकट समझकर

उनको शीघ्र हट जाने के लिए कहा। युवती ने मेरी बात काटे बिना होमाग्नि को प्रणाम किया। आशीर्वाद दिया-'मेरा जो होने का है वह हो, ठाकुर तुम्हारा कल्याण करें।' शीघ्र ही वे प्रकृतिस्थ होकर वस्त्र धारण करने के बाद अपने घर चली गई। युवती के चले जाने के बाद मेरे भीतर अदम्य काम की उत्तेजना आरम्भ हो गई। प्राणायाम, कुम्भक आदि से उत्तेजित भाव को शान्त करने में असफल हो गया। विपत्ति समझकर तुरन्त आसन से उठ गया।

इस दुःसाहसिक कार्य के साथ-साथ मेरी भयंकर दुर्दशा आरम्भ हो गई। भगवान् गुरुदेव का अभिप्राय क्या है, पता नहीं। युवती के काम-विकार का सम्पूर्ण विराम तो हो गया, किन्तु दिनो-दिन मैं कामाग्नि से दग्ध होने लगा। लगता है, परम दयालु गुरुदेव ने अबला की अपूर्व सरलता का अवलोकन करके उसकी ज्वाला दूर कर दी एवं मेरे भयंकर उग्र अनुष्ठान में अधिक साहस और हठकारिता देखकर काम से पीड़ित कामिनी के कामभाव को मेरे भीतर संचारित कर दिया। मैं रात-दिन कामाग्नि में जल-भुनकर छटपटाने लगा। किस प्रकार यह ज्वाला दूर होगी, किस उपाय से इस विपद् से रक्षा होगी, सब समय केवल वही सोचने लगा। फिर निश्चय किया-अस्थि-मज्जा जलाकर कठोर साधना करूँगा। उसी के अनुसार मैं परिमित आहार (एक मुट्ठी चावल) का एक तिहाई अंश कम कर दिया। भोजन बनाने में थोड़ा ही समय लगाकर, अन्य समय निर्जन जंगल में जाकर साधना करने लगा। शयन बिल्कुल नहीं करता; निद्रा एक प्रकार से त्याग दी।

सामने धूनी जलाकर प्राणपण से साधना करके रात बिताना आरम्भ कर दिया। नींद आने से कभी एक पैर पर खड़े होकर, तो

कभी चहल-कदमी करके नाम-जप करते-करते रात काटने लगा। अत्यधिक नींद आने पर कुछ समय के लिए खड़े-खड़े ही सो लेता हूँ। दिन में तीन बार स्नान, खट्टे-मीठे-कड़वे आदि रसों का त्याग एवं लोक-संग का त्यागादि सब बड़ी कठोरतापूर्वक करने लगा। उससे मेरी अहैतुकी उत्तेजना का बहुत-कुछ उपशम तो हुआ, लेकिन पहले जैसी अवस्था किसी भी प्रकार से पुनः प्राप्त नहीं हुई। बीती घटना की छवि अचानक अन्तःकरण में उदित होकर मुझे बेचैन करने लगी; मैं हताश हो गया। चारों ओर अन्धकार देखने लगा; ठाकुर की कृपा के सिवा अब अपना उद्धार होना असम्भव समझकर, गुरुदेव को यही कुछ बातें लिखकर बतलाया-

परम पूज्यनीय श्रीश्री गोस्वामीजी

श्रीचरण कमलेषु,

आपके आदेशानुसार वृन्दावन से अयोध्या जाकर वहाँ प्रायः दो महीने था। फिर घर आकर इतने दिन माँ की सेवा में बिताया। इतने दिन बड़े आनन्द में था। आजकल की मेरी सब दशा आप देख ही रहे हैं, अतएव फिर लिखने से क्या लाभ? इस समय मुझे जो करना होगा, शीघ्र ही बतलाएँगे। अपने मन के ऊपर इस समय मेरा कोई अधिकार नहीं है। दया करके इस समय आप रक्षा करेंगे तो कीजिए। आप रक्षा नहीं करेंगे तो फिर इस समय मेरा कोई सहारा नहीं है। ब्रह्मचर्य आपके कहने से, आपकी दया और शक्ति के ऊपर निर्भर करके ही लिया हूँ। अब व्रत भंग होने पर मैं उत्तरदायी नहीं हैं। पहले मेरी प्रकृति जानकर ही तो यह व्रत दिए हैं।

सेवक

श्री कुलदा।

पत्र लिखने के बाद श्रीवृन्दावन से सीधे मेरे पास चार पत्र आ गए। स्वामीजी हरिमोहन ने लिखा-भाई, गुरुजी ने तुम्हारा पत्र पढ़कर, तुरन्त हाथ हिलाकर **'माँ भैः! माँ मैः! माँ भैः!'** उच्च स्वर में तीन बार कहा। कुछ क्षण चुप रहकर **'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामेव केवलम्, कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।'** कहकर तुम्हें अभय प्रदान करके पत्र लिख देने के लिए कहा तुम्हारी जानकारी हेतु लिखा है। निर्भय हो जाओ।

योगजीवन ने लिखा-गोसाँईजी ने तुम्हें लिख देने को कहा, **'यदि घर पर रहने में असुविधा लगे तो समय-समय पर गेण्डारिया जाकर रहो। घबराओ नहीं। हम लोग भी शीघ्र जा रहे हैं।'**

इस प्रकार श्रीधर व माता ठाकुरानी ने भी लिखा-**'तुम्हारे प्रति गोसाँईजी की असीम कृपा है। चिन्ता की कोई बात नहीं। निर्भय हो जाओ। आनन्द करो।'**

पता नहीं, गुरुदेव ने इन लोगों के पत्र में कैसी अलौकिक शक्ति डाल दी, पढ़ते समय प्रत्येक पत्र के प्रत्येक अक्षर से नया तेज, नया उत्साह आश्चर्यजनक रूप से मेरे हृदय में संचारित होने लगा। कुछ क्षण के भीतर ही मेरे मन की मलिनता दूर हो गई और मन में विमल आनन्द प्रवाहित होने लगा। उत्साह, उद्यम के साथ प्रफुल्लित मन से मैं पुनः भजनानन्द में दिन काटने लगा। गुरुदेव की असीम कृपा प्रत्यक्ष करके मैं चकित हो गया। अपने दयालु ठाकुर के श्रीचरणों का दर्शन फिर कब पाऊँगा, बड़े आग्रह के साथ उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा।

माँ का आशीर्वाद एवं गोसाँईजी के चरणों में मुझे अर्पण करना

बहुत दिनों के बाद इस बार गंगा-स्नान का अत्यन्त दुर्लभ श्रेष्ठ (अर्द्धोदय) योग पड़ा है। पूर्वबंगाल से हजारों लोग गंगा-स्नान में जाने के लिए प्रस्तुत हो रहे हैं; माताजी भी इस प्रशस्त योग में गंगा-स्नान करने के लिए व्याकुल हो गईं। गृहस्थी की कई बाधाओं के बाद भी माताजी को गंगा-स्नान के लिए भेजने का निश्चय किया। माँ को भी निश्चिन्त रहने का भरोसा दिया। पश्चिम अंचल के सारे तीर्थों का इस सुयोग में माँ को दर्शन कर लेने की सुविधा होगी। माताजी ने तीर्थ-दर्शन में जाने के कुछ दिन पहले मुझसे कहा-'मैं तो तीर्थ में चली, फिर कब गाँव लौटूँगी, उसका भी निश्चय नहीं है, अभी मेरा शरीर स्वस्थ हो गया है, तेरा शरीर भी अब स्वस्थ है, पश्चिम से आकर इस बार तेरा विवाह कराऊँगी। तब मैंने माँ को स्पष्ट रूप से ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन एवं धर्म-जीवन यापन करने की अपनी आकांक्षा बतलाई। विवाह करने से मुझको फिर से रोग घेर सकता है, यह भी समझाकर कह दिया। माँ ने मेरी सभी बातें बड़े ध्यानपूर्वक सुनकर कहा-**'तेरे विवाह अथवा नौकरी न करने से गृहस्थी में थोड़ी भी कठिनाई नहीं होगी। मेरे अन्य सभी लड़के तो संसारी हैं। तेरे सुख के लिए ही तुझे विवाह करने को कहा, परिवार बसाने को कहा। वह तुझे अच्छा नहीं लगता, तो आवश्यकता नहीं है। संसार में सुख नहीं है, सुख से अधिक ज्वाला है। धर्म लेकर यदि रह सकता है, तो वह अच्छा ही है! तेरी इच्छा है तो धर्म-कर्म लेकर ही रह।'**

मैंने कहा-तुम सन्तुष्ट होकर मुझे अनुमति दो, तो मैं गुरुदेव के पास रह सकता हूँ उन्होंने मुझे तुम्हारी सेवा हेतु भेजते समय कहा था, **‘जाकर माँ की सेवा करो। सेवा से सन्तुष्ट होकर वे अपने कर्म-बन्धन से तुम्हें मुक्ति दें, तो मेरे पास आकर रह सकोगे।’**

माँ ने कहा-अच्छा, तेरी सेवा से तो मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ, अपने कर्म से तुझे मैं छुटकारा देती हूँ। घर में रहने से धर्म-कर्म नहीं होता, गोसाँईजी के पास रह। उससे तेरा भी उपकार होगा, मेरा भी मन प्रसन्न रहेगा।

मैंने कहा-ठाकुर ने मुझसे कहा था, **‘सेवा द्वारा माँ को सन्तुष्ट करके अनुमति लानी होगी; अन्य किसी प्रकार कौशल करके अनुमति लाने से नहीं होगा।’** यदि तुम यथार्थ में मेरी सेवा से सन्तुष्ट रहती हो, तो फिर मेरे ठाकुर को तुम एक बार बतला दो। धर्म के लिए मुझे यदि तुम उनके चरणों में अर्पण कर दो, तो मेरा परम कल्याण होगा और तुम्हें भी पुत्र-दान का बड़ा फल प्राप्त होगा।

माँ ने कहा-‘मैं स्वयं तो धर्म-कर्म कुछ कर नहीं सकी। तुम यदि कुछ कर सको तो उससे मेरा भी उपकार होगा। तेरी इस आकांक्षा में मैं बाधा क्यों दूँगी? सन्तुष्ट होकर ही तुझको गोसाँईजी के हाथ में सौंप दिया।’

मैंने कहा-तो फिर तुम मेरे गुरुदेव को यह कहते हुए एक पत्र लिख दो कि ‘अपने सबसे छोटे पुत्र को धर्म के उद्देश्य से आपके चरणों में अर्पण करती हैं। जिससे उसको धर्म की प्राप्ति हो, आप वही कीजिए।’

माँ ने कहा-अच्छा, कागज-कलम ले आ। अभी मेरे नाम से गोसाँईजी को पत्र लिख दे।

माँ की बात सुनते ही मैंने कागज-कलम लाकर उनके सामने रख दिया। माँ ने मँझली बहू से निम्नलिखित पत्र लिखवाकर, श्रीवृन्दावन में ठाकुर के पास भिजवा दिया-

सविनय निवेदन,

मेरे सबसे छोटे पुत्र श्रीमान् कुलदा ने आपके आदेशानुसार घर आकर नाना प्रकार से मेरी सेवा-शुश्रूषा करके मुझे बड़ा सुख दिया। मैं उसे अब अपने कर्मपाश में बद्ध रखना नहीं चाहती। धर्म के लिए मैंने सन्तोषपूर्वक श्रीमान् कुलदा को सम्पूर्ण रूप से आपके हाथ में अर्पण कर दिया। 'विवाहादि करके संसार करे' मैं उसकी अवस्था देखकर मैं वैसी आकांक्षा नहीं करती, अतएव जिससे धर्म प्राप्त करके एवं आपके अधीन रहकर श्रीमान् कुलदा मन में सर्वदा शान्ति पा सके, चाहे जैसे भी हो, आप वह कर दीजिए। कुलदा यदि आनन्द में रहे, तो मैं सुखी रहूँगी। उसे अपने साथ रखेंगे तो मेरा मन बिल्कुल सन्तुष्ट रहेगा। इति-

नि:- श्रीमान् कुलदा की माँ

पत्र लिखवाकर माँ ने मुझसे कहा-मेरी दो बातों का तू स्मरण रखना-१. मेरी मृत्यु के बाद तू एक ब्राह्मण को 'सीधा' दान करना। २. फिर जब तक जीवित रहेगा, पेट भरकर भोजन करना।

मैंने कहा-भविष्य में मेरे भाग्य में तो कितनी ही अवस्थाएँ घट सकती हैं; पेटभर खाना यदि न जुटे?

माँ ने कहा-मैं आशीर्वाद देती हैं, परमेश्वर तुझे आहार का कष्ट कभी नहीं होने देंगे। चिरकाल तू पेटभर भोजन पाएगा। पेट भरकर खाना, उससे अन्तरात्मा तृप्त रहेगी।

मैंने कहा-तुम्हारी मृत्यु के समय यदि मैं पास में न रहा, बहुत

समय बाद मृत्यु का संवाद मिले, उस समय यदि मेरे पास रुपया अथवा चावल-दाल न रहे, तो फिर क्या करूँगा?

माँ ने कहा-यदि वैसा होता है, तो फिर जब मेरी मृत्यु का संवाद पाएगा, तब सुविधानुसार एक ब्राह्मण को सीधा देने से ही हो जाएगा। हाथ में यदि कुछ न रहे, तो भिक्षा करके देना।

माँ की बात सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरे परम कल्याण का पथ माताजी ने आज प्रशस्त कर दिया। संसार में आने का मेरा उद्देश्य माँ की कृपा से आज सार्थक हो गया। माँ की दया से ही मुझे गुरुदेव के विमल शान्तिपूर्ण दुर्लभ चरण-रज के साथ संलग्न होकर रहने का सुयोग प्राप्त हुआ। जय गुरुदेव! तुम्हारी कृपा सारे शुभ और सौभाग्य का मूल है, इस बात को मैं जिससे कभी न भूलें, यह आशीर्वाद दीजिए।

ठाकुर ने श्रीवृन्दावन में एक दिन बातों-बातों में मुझसे कहा था- **'तुम्हारी माँ अब वृद्ध हो गई हैं, उनको फिर इस समय घर में क्यों रखे हो? उनकी गृहस्थी तो पूरी हो गई। अब तुम्हारी भाभियों की ही गृहस्थी है। वे लोग ही अब घर-बार देखें, संसार करें। तुम्हारे भाइयों का कर्तव्य है, माँ को अब तीर्थ में रखें। काशी या श्रीवृन्दावन में अब उनको वास करने देने से उनका यथार्थ उपकार होगा। वृन्दावन की अपेक्षा काशी उनके लिए अच्छा है। तुम लोगों का इस विषय में चेष्टा करना कर्तव्य है।'**

उस समय ठाकुर की बात सुनकर, माँ को संसार के झमेले से हटाकर काशी में रखने की प्रबल इच्छा हुई थी। बड़े भैया से भी इसके लिए विशेष रूप से अनुरोध किया था। इस बार सुयोग पाकर, अनेक विघ्न-बाधाओं के बाद भी ठाकुर की बात का स्मरण

करके माँ को तीर्थ भेज दिया। माँ स्वस्थ शरीर से पश्चिम की ओर निकल पड़ीं।।

छोटे भैया की दीक्षा लेने की प्रवृत्ति

माँ के पश्चिम में जाने के कुछ दिन बाद ही छोटे भैया बी.ए. की परीक्षा देकर घर आ गए। दो-एक विषय में अच्छे-से उत्तर नहीं लिख पाने के कारण परीक्षा में सफलता के सम्बन्ध में शंकित होकर बहुत चिन्ता करने लगे। कभी-कभी कहने लगते-'इस बार परीक्षा में पास न हुआ, तो आत्महत्या करूँगा।' मैंने आवेश में आकर छोटे भैया से कहा-मैंने आपके पास होने के लिए गोसाँईजी से प्रार्थना की है। गोसाँईजी अवश्य ही आपको पास करा देंगे। छोटे भैया ने कहा-'गोसाँईजी की वैसी कोई अलौकिक शक्ति है, मैं विश्वास नहीं करता। अच्छा यदि वैसा है, तो फिर मैं एक 'प्रॉब्लम' (Problem) देता हूँ, गोसाँईजी उसे हल (Solve) करें, देखें तो!' मैं उनकी इस बात का कोई अच्छा उत्तर न दे सका। छोटे भैया गोसाँईजी से दीक्षा लें, इस अभिप्राय से उनको 'योग साधन' पुस्तक पढ़ने के लिए दिया। उसे पढ़कर उन्होंने कहा-'ब्राह्मधर्म के मत के साथ जो नहीं मिलता, वह कुसंस्कार है। मैं वह सब कुछ नहीं मानता। गोसाँईजी धार्मिक हैं, मानता हूँ लेकिन उनके शिष्यों का कुछ हुआ है, इस पर विश्वास नहीं करता।' मैं छोटे भैया की बात का प्रतिवाद न करके चुप रह गया। फिर बातचीत के बीच सुयोग मिलते ही धीरे-धीरे गोसाँईजी की महिमा बतलाकर, उनकी ओर छोटे भैया को आकृष्ट करने का प्रयास करने लगा। गोसाँईजी की विभिन्न असाधारण अवस्था की बातें सुनते-सुनते छोटे भैया की

गोसाँईजी के प्रति कुछ श्रद्धा-भक्ति हो गई। तब मैं गोसाँईजी से दीक्षा लेने के लिए छोटे भैया से बारम्बार अनुरोध करने लगा। दीक्षा का क्या प्रयोजन है, इस विषय में तीन-चार दिन तर्क-वितर्क, आलोचना के बाद, छोटे भैया ने कहा-'अच्छा, इस बार यदि मैं परीक्षा में पास हो जाता हूँ, तो गोसाँईजी से दीक्षा लूँगा।' मैं भी उत्सुकता के साथ उनके पास होने की खबर की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ दिन बाद खबर मिली, छोटे भैया पास हो गए हैं। तब छोटे भैया से दीक्षा लेने के लिए कहा। उन्होंने कहा-'गोसाँईजी से दीक्षा लेने के लिए जब कहा हूँ, तो अवश्य ही लूँगा, लेकिन इसी समय लूँगा, ऐसी बात तो मैंने नहीं कही थी। अभी मेरा शरीर अस्वस्थ है; स्वस्थ हो जाए, फिर लूँगा।' मैंने कहा-मैं कितना अस्वस्थ था वह तो सभी जानते हैं, गोसाँईजी की कृपा से अब बिल्कुल स्वस्थ हो गया हूँ। आप भी दीक्षा लेने से स्वस्थ हो जाएँगे।

छोटे भैया ने कहा-'योग-साधना के जो सब नियम हैं, मैं उसका अभी प्रतिपालन नहीं कर पाऊँगा।'

मैंने कहा-आप जो प्रतिपालन नहीं कर पाएँगे, ऐसे कोई नियम का निर्देश गोसाँईजी आपको कभी नहीं देंगे।

अन्त में छोटे भैया ने स्वीकार किया, गोसाँईजी के गेण्डारिया में आते ही, उनके पास जाकर दीक्षा के लिए प्रार्थना करेंगे। मैं भी निश्चिन्त हुआ।

मार्च-अप्रेल सन् १८९१ ई. (बंगला सन् १२९७, चैत्र)

माता योगमाया देवी का तिरोधानः लालजी का देहत्याग

बड़े भैया के पत्र से अवगत हुआ-'माता ठाकुरानी योगमाया देवी को श्रीवृन्दावनधाम की प्राप्ति हो गई है। शनिवार, २१ फरवरी, सन् १८९१ ई., माघी शुक्ला त्रयोदशी तिथि को एक दिन के हैजे से ही उन्होंने देह त्याग कर दिया। ठाकुर ने योगजीवन के द्वारा यह संवाद भैया को दिया है। अचानक यह खबर सुनकर मैं बहुत ही दुःखी हो गया। माता ठाकुरानी श्रीवृन्दावन से लौटेंगी नहीं, उसी स्थान पर रह जाएँगी–ठाकुर और माता ठाकुरानी की बातों के अभिप्राय से कई बार इस प्रकार का सन्देह मन में उत्पन्न हुआ था। किस प्रकार, किस अवस्था में माता ठाकुरानी ने देह छोड़ी, विस्तारपूर्वक जानने के लिए व्याकुल हो गया। इसी बीच फिर संवाद मिला, जीवन्मुक्त जातिस्मर गुरुभाई लाल बिहारी वसु प्रायः उसी समय, एक दिन स्वेच्छा से अचानक गेण्डारिया में अन्धकार करके परमधाम में प्रस्थान कर गए। यह सब दुःसंवाद सुनकर एवं अन्य दो-एक उद्वेगजनक कारणों से मेरा मन विचलित हो उठा। मैंने श्रीवृन्दावन जाने का संकल्प करके, ठाकुर को अपना अभिप्राय बतलाया। ठाकुर ने योगजीवन के द्वारा उत्तर दिया-**'शीघ्र मैं गेण्डारिया जा रहा हूँ। सुविधा लगे तो तुम अभी से वहाँ जाकर रह सकते हो।'** पत्र पाकर मैंने शीघ्र ही गेण्डारिया जाने का निश्चय किया।

छोटे भैया की दीक्षा और अद्भुत घटना: विविध प्रश्न

२७ मार्च, शुक्रवार, द्वितीया तिथि। रात्रि के अन्तिम प्रहर में आसन पर बैठे-बैठे ही मेरा मन बहुत बचैन हो उठा। ठाकुर गेण्डारिया आ गए

हैं, बारम्बार ऐसा लगा। आज ही ढाका जाने का निश्चय किया। बहुत अनुनय-विनय करके छोटे भैया को अपने साथ गेण्डारिया चलने के लिए कहा। वे इच्छा न रहने पर भी राजी हो गए। मैंने एक महीने के लिए चावल, दाल, नमक, मिर्च, तेल, घी इत्यादि भोजन की सारी सामग्री जमा करके ले ली। फिर दिन के १० बजे ढाका के लिए निकल पड़ा। कुली के अभाव के कारण बड़ी भारी गठरी का भार मुझे वहन न करने देकर, दुर्बल होने पर भी छोटे भैया ने उसे अपने कन्धे पर उठा लिया। तीन-चार मील का रास्ता तय करके हम लोग सेराजदीघा की नाव पर सवार हुए। अपराह्न में संध्या के थोड़ा पहले हम लोग गेण्डारिया पहुँच गए। आश्रम के पश्चिम प्रान्त में स्थित पण्डित जी के घर पहुँचते ही सूचना मिली-ठाकुर कल ही आश्रम आ गए हैं। दूर से देखा, बहुत भीड़भाड़ है। ठाकुर आम पेड़ के नीचे बैठे हैं। पिछली दुष्कृति की बात इस समय बारम्बार मन में उदित होने लगी। इसलिए इतने लोगों के बीच ठाकुर के पास जाने की मेरी इच्छा नहीं हुई। पण्डितजी की कुटिया में ही उदास बैठा रहा। कुछ क्षण बाद ठाकुर आसन से उठकर दक्षिण की ओर जलाशय के पास मूत्रत्याग के लिए गए, तब सब लोग आम पेड़ के नीचे से उठकर चले आए। उसी अवसर को उपयुक्त जानकर मैं भैया को दीक्षा की प्रार्थना के लिए ठाकुर के पास भेजा। ठाकुर मुँह-हाथ धोकर अपने पैरों पर जल ढाल रहे थे, तभी छोटे भैया 'अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया। चक्षुरुन्मिलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।' इस मन्त्र का अस्फुट भाव से बारम्बार उच्चारण करके उनके चरणों में गिर पड़े। फिर हाथ जोड़कर 'मेरे लिए क्या आज्ञा है' कहकर कंगाल की भाँति खड़े रहे। ठाकुर छोटे भैया की ओर

देखकर **'कहाँ ठहरे हो? कब आए?'** पूछने के बाद, उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही कहने लगे-**'अच्छा तुम जाओ, मैं अभी कुलदा से कह दूँगा।'** छोटे भैया ठाकुर को पुनः प्रणाम करके चले आए। मैं थोड़े दूर से, वृक्ष की आड़ में रहकर यह सब देखा। ठाकुर अवश्य ही छोटे भैया पर कृपा करेंगे सोचकर शीघ्र छोटे भैया के पास पहुँचा एवं उनको भरोसा देने लगा।

तीन वर्ष के भीतर ठाकुर ने भैया को देखा नहीं। अनेक लोगों के बीच किसी समय देखे भी हैं तो 'मेरे भाई हैं, ऐसा परिचय उन्हें मिला नहीं। ठाकुर छोटे भैया को देखते ही कैसे पहचान गए एवं मैं गेण्डारिया आ गया हूँ वे कैसे जान गए, यह सब सोचकर छोटे भैया को बड़ा आश्चर्य हुआ। कुछ क्षण बाद ठाकुर आम पेड़ के नीचे खड़े होकर मुझे पुकारने लगे। मैं तुरन्त दौड़ते हुए जाकर ठाकुर के चरणों में गिर पड़ा। ठाकुर ने मेरी ओर बड़े ही स्नेह के साथ देखते हुए कहा, **'तुम्हारे भैया को कुंज के घर ले आओ। अभी उनकी दीक्षा होगी।'**

ठाकुर के आदेशानुसार मैं तुरन्त भैया को लेकर घोषजी के घर पहुँचा। छोटे भैया ठाकुर के पीछे-पीछे चलकर उस घर के पूर्व दिशा के कमरे में गए। बाहर का कोई व्यक्ति कमरे के निकट न आए, इस बात का ध्यान रखने के लिए ठाकुर मुझसे कह गए। मैं कमरे के चारों ओर टहलने लगा। इस बीच साधन-प्राप्त अनेक महिलाएँ एवं पुरुष आकर कमरे के भीतर-बाहर, जहाँ-तहाँ आनन्दपूर्वक बैठ गए। आज कितने दीक्षा-प्रार्थी लोग कमरे में प्रवेश किए, कुछ पता नहीं चला। परिचित लोगों में बंकिम नामक एक कायस्थ बालक एवं कुंज बाबू के परिवार की कुछ महिलाओं को छोटे भैया के साथ ठाकुर के

सामने दीक्षा के लिए बैठे हुए देखा। धूप, धूना, चन्दन, गुग्गुलादि के सुगन्धित धुएँ से कमरा परिपूर्ण हो गया। ठाकुर ने दीक्षा का कार्य आरम्भ किया। साधन की नियम-प्रणाली बतलाकर ठाकुर ने जब ध्रुव, प्रह्लाद, नारदादि सर्वश्रेष्ठ भगवत्-भक्तों के कलेजे की वस्तु महामन्त्र प्रदान किया, तब अद्भुत महाशक्ति की उठती तरंग ने सभी को कम्पित कर दिया। ठाकुर प्राणायाम का अंश दिखलाकर **'जय गुरु! जय गुरु!!'** कहते-कहते संज्ञाशून्य हो गए। तब कमरे के भीतर-बाहर स्थित सभी के भीतर एक बृहत् काण्ड आरम्भ हो गया! गुरुभाई-बहिन नाना भावों में अभिभूत होकर, मूर्च्छित होकर गिरने लगे। चारों ओर अनेक लोगों के हँसने और रोने का विचित्र कोलाहल होने लगा। इस समय छोटे भैया उच्च स्वर में 'अखण्डमण्डलाकारं' एवं 'अज्ञान तिमिरान्धस्य' दोनों मन्त्र का बारम्बार उच्चारण करते-करते ठाकुर के चरणों में लोटने लगे। भावावेश में आकर ठाकुर गद्गद स्वर में कहने लगे-**'अहा! अहा!! अहा!!! क्या चमत्कार है! क्या चमत्कार है!! आज सत्ययुग की ध्वजा आकाश में लहरा रही है, आज से सत्ययुग आरम्भ हो गया, अहा देखो! कितने योगी, कितने ऋषि, कितने देवी-देवता आज सत्ययुग का झण्डा हाथ में लेकर नभोमण्डल में आनन्द से नृत्य कर रहे हैं; महापुरुषगण आज पृथ्वी में सर्वत्र नृत्य करते-करते घूम रहे हैं। ऐसा शुभ दिन फिर नहीं आता। २५ बौद्ध योगी लामागुरु इस स्थान पर उपस्थित हैं। संसार का कल्याण करने के लिए आज ये महापुरुष पृथ्वी में अवतरण किए हैं। आज बड़े आनन्द का दिन है। धन्य है! धन्य है!! धन्य है!!!'**

ठाकुर भावावेश में यह सब बातें कह रहे थे, अचानक एक कम आयु की बालिका ठाकुर के सामने आकर घुटने के बल बैठ गई एवं भावविह्वल अवस्था में हाथ जोड़कर बारम्बार ठाकुर को प्रणाम करके गद्गद स्वर में, तिब्बती भाषा में ठाकुर की स्तुति करने लगीं। फिर एक-एक बार सभी की ओर देखकर अँगुलि से संकेत करके ठाकुर को दिखलाते-दिखलाते उन्होंने विविध भाषा में असामान्य तेजस्विता के साथ आधे घण्टे तक लोगों को चकित करनेवाला भाषण दिया। भाषा अज्ञात होने पर यद्यपि उसका एक शब्द का भी अर्थ समझ में नहीं आया, तथापि तेजस्विनी के तेजःपूर्ण प्रत्येक शब्द के प्रभाव से भीतर एक अद्भुत शक्ति का प्रवाह चलने लगा। भाषण की मुग्धकारी शक्ति से प्रायः सभी चकित रह गए। इस प्रकार की अद्भुत घटना जीवन में और कभी देखी नहीं सुना है, बालिका कुंज बाबू की साली हैं, इनका नाम अबला है; इन्होंने भी आज दीक्षा प्राप्त की है। जीवन में कभी इन्होंने तिब्बती भाषा सुनी नहीं। किस प्रकार इन्होंने अज्ञात भाषा में निरन्तर व्याख्यान दिया, जानने का बड़ा कौतुहल हुआ।

दीक्षा के बाद ठाकुर सबको धीरे-धीरे शान्त एवं स्वस्थ करके कमरे से बाहर आ गए। ठाकुर के पीछे-पीछे हम लोग भी चलने लगे। गुरुभाई लोग भाव के आवेश में विभोर होकर झूमते-झूमते आश्रम जाकर एक-एक स्थान पर बैठ गए। दो-चार लोगों के साथ ठाकुर पक्के कमरे में जाकर विश्राम करने लगे। छोटे भैया के साथ मैं उस कमरे के बरामदे में बैठ गया। ठाकुर के साथ गुरुभाइयों की बातचीत होने लगी। घोषजी के १०-११ वर्षीय पुत्र फणिभूषण ने ठाकुर से पूछा 'दीक्षा के समय उन्होंने जो बुटबुट करके इतने समय तक

कहा, उनके भीतर क्या कोई स्पिरिट (प्रेतात्मा) प्रवेश की थी? क्या कहा, कुछ भी तो समझ में नहीं आया।'

फणि की बात सुनकर ठाकुर ने थोडा हँसकर कहा-**जो सब बौद्ध योगी दीक्षा-स्थल पर उपस्थित थे, उनमें से ही एकजन ने उसके भीतर प्रवेश किया था। उन्होंने तिब्बती भाषा में कहा, इसलिए तुम लोग कुछ समझ नहीं पाए।**

फणि ने कहा-आप तो वह भाषा जानते नहीं हैं। आपने कैसे समझा? दूसरों की भाषा समझने का क्या कोई साधन है?

ठाकुर ने कहा-**इस साधन से ही सब होता है। केवल संकेत ज्ञात रहने से ही हो जाता है। संकेत है, किसी की भाषा समझने की इच्छा होने से सुषुम्ना में प्रवेश करके चेतना-शक्ति द्वारा मन को स्थिर रखकर सुनना होता है। ऐसा करने से केवल मनुष्य की ही क्यों, समस्त जीव-जन्तु, पशु-पक्षी वृक्ष-लता की भाषा का भी अर्थ ज्ञात हो जाता है। जब वैसी अवस्था होगी, तो चेष्टा करने से ही समझ जाओगे।**

ठाकुर ने इस प्रकार तत्त्व की और भी कई बातें कही। वे सब बातें मैं स्पष्ट रूप से कुछ समझा नहीं। कुछ क्षण चबूतरे के ऊपर बैठकर बाहर चला आया; देखा, कहीं दो-चार गुरुभाई मिलकर आनन्द से भजन गा रहे हैं तो कहीं कोई चुपचाप बैठकर नाम-जप के आनन्द में मग्न हैं, आश्रम आज लोगों से परिपूर्ण है। सभी प्रसन्नतापूर्वक वार्तालाप में, भजन-कीर्तन में, एकान्त साधन-भजन में, नाना प्रकार की अवस्था में परमानन्द से समय काट रहे हैं, केवल मेरे ही भीतर भयंकर शुष्कता है। मैं बेचैन होकर कभी गुरुभाइयों के पास तो कभी ठाकुर के पास आना-जाना करने लगा।

अकारण शुष्कता की ज्वाला से मेरा मन छटपटाने लगा। बड़ी अधीरता के साथ जाकर ठाकुर से कहा-'सभी तो आपके हैं। आज सबके मन में आनन्द देकर केवल मुझे शुष्कता की ज्वाला में जलाकर क्यों मार रहे हैं? यह ज्वाला कैसे जाएगी?'

ठाकुर ने कहा-**जिसके लिए जो कल्याणकर है, भगवान् उसको वही देते हैं। बहुत भाग्य से मनुष्य के भीतर यह शुष्कता आती है। बैठकर स्थिरता के साथ नाम-जप करो। उसकी ओर ध्यान मत दो; नाम-जप करते-करते ही वह चली जाएगी।**

मैंने कहा-मेरा अन्तःकरण सरस कर दीजिए, बैठकर नाम-जप करता हूँ।

ठाकुर ने कहा-**जिसके लिए जो कुपथ्य है, रोगी के चाहने से ही क्या डॉक्टर वह दे देता है? थोड़ा शान्त हो, जाकर नाम-जप करो।**

मैं फिर कुछ कहने का साहस नहीं कर पाया। बरामदे में छोटे भैया के पास बैठकर नाम-जप करने लगा।

श्रीवृन्दावन का वृक्ष काटने से ब्राह्मण का विनाश

मध्य रात्रि तक ठाकुर ने गुरुभाइयों से श्रीवृन्दावन की बातें आदि कही। भीतर-बाहर अनेक लोग बैठकर वह सुनते रहे। महापुरुषगण कितने स्थानों पर कितने भाव से अवस्थान कर रहे हैं, कहा नहीं जा सकता। श्रीवृन्दावन की रज प्राप्ति की आकांक्षा से बड़े-बड़े सिद्ध महात्मा अभी भी नाना रूपों में वहाँ रहते हैं। इस विषय में ठाकुर एक घटना के उल्लेख करते हुए कहने लगे

‘श्रीवृन्दावन के किसी कुंज में एक सुन्दर वृक्ष था। कुंज के स्वामी ने उस वृक्ष को काटने के लिए पास के ही एक व्यक्ति को आदेश दिया। रात्रि में उन्होंने स्वप्न देखा, एक वैष्णव-वेशधारी ब्राह्मण ने उनसे आकर कहा-‘मैं तुम्हारे कुंज में उस वृक्ष के रूप में बहुत समय से हूँ। श्रीवृन्दावन की रज प्राप्ति से धन्य होने की आकांक्षा से ही मैंने वृक्ष का रूप धारण किया है। तुम वृक्ष को काटकर मुझे इस रज के स्पर्श से कभी वंचित मत करना। तुम्हारे वैसा करने से मुझे पुनः जन्म लेना होगा, उससे तुम्हारा भी मंगल नहीं होगा। स्वप्न को मिथ्या सोचकर तुम मेरी इस विनती की उपेक्षा मत करना। तुम्हारे विश्वास के लिए मैं कल प्रातः वृक्ष के नीचे एक बार खड़ा होऊँगा; इच्छा होने से मुझे देख सकोगे। अगले दिन प्रातःकाल वृक्ष के नीचे पण्डितजी ने वास्तव में एक ब्राह्मण को देखा, किन्तु उससे भी उनको विश्वास नहीं हुआ। वे माने ही नहीं। वृक्ष को कटवा दिए। जिन लोगों ने यह बातें सुनकर भी वृक्ष को काटा, वे हैजे से पीड़ित होकर मर गए। पण्डितजी के स्त्री-पुत्र भी कुछ दिन के भीतर उसी रोग से मर गए। पण्डितजी की दर्शनशास्त्र के विद्वान् के रूप में वृन्दावन में विशेष ख्याति थी; किन्तु बुद्धि लोप होने से उन्हें अब कुछ बोध नहीं रहता। पहले सभी उनका कितना सम्मान करते थे, लेकिन अब कोई उनका आदर नहीं करता।

ठाकुर के मुख से इस प्रकार अनेक बातें सुनकर हम लोगों ने शयन किया।

गोसाँईजी के मुख से श्रीवृन्दावन की कथा

२८ मार्च, शनिवार। प्रातः शौचादि के बाद, स्नान-तर्पण समापन करके पूर्व दिशा के कमरे में ठाकुर के पास बैठ गया। रात्रि में हम लोग कहाँ थे, किसी प्रकार की असुविधा तो नहीं हुई, वह सब ठाकुर ने पूछा। पण्डितजी के रसोईघर में हम लोगों ने रात्रि में रहने की व्यवस्था कर ली है, ठाकुर को बतलाया। लोगों की भीड़ कम हो जाने के बाद आश्रम के दक्षिण ओर के चौकोने छानी वाले कमरे में हम लोगों को रहने के लिए ठाकुर ने कहा। छोटे भैया आश्रम में ही दोनों समय भोजन करेंगे और मैं अपराह्न में एक बार पूर्ववत् स्वपाक आहार करूँगा, यही व्यवस्था हुई। छोटे भैया की बात उठाकर ठाकुर ने कहा-**आश्चर्य है! बड़े ही सत्पात्र हैं, इस प्रकार के लोग बहुत दुर्लभ हैं। दीक्षा होते ही क्षणभर में उनकी गुरुनिष्ठा की दिशा खुल गई। ऐसा अधिक देखा नहीं जाता।**

आज अपराह्न में नारायणगंज से वैष्णव धर्मावलम्बी एक ब्राह्मण, ठाकुर का दर्शन करने आए। उन्होंने ठाकुर से पूछा-प्रभु! श्रीवृन्दावन में आपने क्या-क्या अलौकिक देखा? सुनने की इच्छा है।

ठाकुर ने कहा-**श्रीवृन्दावन अप्राकृत धाम है, वहाँ सब अद्भुत है! श्रीवृन्दावन क्षेत्र के वृक्ष-लता, पशु-पक्षी समस्त ही अलग प्रकार के हैं। अन्य किसी स्थान के साथ उसकी तुलना नहीं होती। वहाँ के सभी वृक्षों की शाखाएँ, पत्ते सब नीचे झुके हुए हैं। कई स्थानों में सब बड़े-बड़े वृक्ष लता के समान रज से संलग्न हो गए हैं। देखकर स्पष्ट लगता है, साधु, वैष्णव महात्मा लोग ही ब्रज-रज पाने हेतु वृक्ष के रूप में विद्यमान हैं। वृक्ष में देवी-देवताओं की मूर्ति अपने-आप स्पष्ट रूप से प्रस्तुत हुई हैं।**

राधाकृष्ण, हरेकृष्ण आदि नाम के अक्षर वृक्षों में अपने-आप बनते हैं। कहीं 'रा' तो कहीं केवल 'कृ' ही बने हुए हैं। वृक्षों की शिरा-शिरा में ये सब स्वाभाविक अक्षर देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ।

वैष्णव ने पूछा-प्रभु! यह सब क्या सभी लोगों को दिखा या केवल आपको ही दिखलाई दिया था?

ठाकुर ने कहा-**यह सब सभी ने देखा है। कालीदह के ऊपर बहुत प्राचीन एक केलिकदम्ब का वृक्ष है; उसकी शाखा-प्रशाखा में 'हरेकृष्ण', 'राधाकृष्ण' नाम स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है। जिनकी इच्छा हो, देखकर आ सकते हैं। वन की परिक्रमा के समय एक दिन एक वन के किनारे बैठा था, सामने एक पेड़ का पत्ता पड़ा देखकर उसे उठा लिया। फिर देखा, पत्ते के शिरे-शिरे में देवनागरी लिपि से 'राधाकृष्ण' नाम लिखा हुआ है। थोड़ा ढूँढ़ने से ही पेड़ मिल गया, तब एक-एक करके भारत पण्डितजी, सतीश आदि जो लोग मेरे साथ थे, सभी को बुलाकर दिखलाया; सभी ने एक ही प्रकार का नाम, वृक्ष के पत्तों-पत्तों में देखा। खोज करने से वहाँ इस प्रकार की अनेक विचित्रताएँ दिखलाई पड़ेगी।**

अन्य एक दिन परिक्रमा के समय एक वन के निकट पहुँचे। सुना है, भगवान् श्रीकृष्ण ने वहाँ के कदम्ब वृक्ष के पत्ते से 'दोना' बनाया था। अभी भी भगवान् उस लीला का प्रमाण समय-समय पर भक्तों को दिखाते हैं। हम लोग वन में प्रवेश करके ढूँढते-ढूँढ़ते हैरान हो गए। दोना किसी वृक्ष में दिखा नहीं। फिर साष्टांग प्रणाम करके व्याकुलता के साथ सब बैठे हैं, सामने

ही देखे, कदम्ब पेड़ का पत्ता दोने के समान दिख रहा है। पास जाकर देखे, पेड़ के सभी पत्ते दोने के आकार में हैं। साथ में जो थे, सभी ने पेड़ के पत्ते-पत्ते में दोना देखा।

चरणपहाड़ी में जाकर देखा, पहाड़ की चट्टानों पर गाय-बझड़ों एवं मनुष्य के असंख्य पद-चिह्न हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की जिस वंशी-ध्वनि से पूरा वृन्दावन मुग्ध हो जाता था, उसी मधुर वंशी-ध्वनि से एक समय वह पहाड़ भी द्रवीभूत हो गया था। उस समय गाय, बछड़े और ग्वाल बालकगण जो श्रीकृष्ण के साथ उस पहाड़ पर थे, सबके पद-चिह्न उस चट्टान पर अंकित हो गए। आज भी वे चिह्न पहाड़ पर स्पष्ट अंकित हैं। देखकर स्पष्ट समझ आता है कि वह सब मनुष्य के खोदे हुए नहीं हैं। मनुष्य के द्वारा उस प्रकार का कभी हो नहीं सकता।

ये सब बातचीत होते-होते दिन प्रायः बीत गया। शहर से बड़ी संख्या में स्कूल के छात्र एवं बाबू लोग आ गए। उन लोगों के साथ ठाकुर विभिन्न विषयों में बातचीत करने लगे। मैं भी भोजन बनाने चला गया।

संध्या के समय आम पेड़ के नीचे कीर्तन आरम्भ हुआ। सुना था, संकीर्तन के समय आश्रम के बूढ़े लाल कुत्ते को प्रायः महाभाव होता है। आज उसे संकीर्तन के समय भावावेश में अचेत अवस्था में देखकर चकित हो गया। 'हरेकृष्ण' नाम उच्च स्वर में बहुत समय तक उसके कान में सुनाने के बाद उसकी चेतना लौटी।

गोसाँईजी की जटा और दण्ड

२९ मार्च, रविवार। श्रीवृन्दावन में ठाकुर के मस्तक पर महादेवजी

का जो शिरोवस्त्र सर्वदा बँधा रहता था, अब वह नहीं है। मस्तक के दायें-बायें एवं सामने लगभग एक फुट की लम्बी सुन्दर तीन जटाएँ देख रहा हूँ। पीछे की ओर वेणी के आकार में एक जटा पीठ पर लटक रही है; ब्रह्मतालु के चारों ओर के बालों के गुँथ जाने से ऊपर एक अन्य सुन्दर जटा बन गई है, सब मिलाकर ठाकुर के मस्तक पर पाँच जटाएँ हैं। सामने की बड़ी जटा का विस्तृत अग्रभाग ठाकुर के नृत्य के समय जब आश्चर्यजनक रूप से ठाकुर के कपाल के ऊपर उठ जाता है, तब महादेव के मस्तक पर सर्प का स्मरण होता है। फिर समाधि के समय वही जटा जब बायीं ओर थोड़ा हिल-डुलकर मस्तक के ऊपर अवस्थित रहा करती है, तब देखने से श्रीकृष्ण के अपूर्व मयूर-मुकुट का स्वाभाविक संस्कार मन में उदित हो जाता है। स्वाभाविक जटा इतनी सुन्दर, इतनी मनोरम कहीं देखी नहीं। ठाकुर की देह का वर्ण बहुत स्वच्छ है, पर हाथ-पैर और मुखमण्डल अपेक्षाकृत काला है। इसका कारण पूछने पर ठाकुर ने कहा-**श्रीवृन्दावन में ठण्ड बहुत अधिक पड़ती है। शरीर में सर्वदा 'अलखल्ला' पहने रहता था। जो सब स्थान खुला रहता था, ठण्ड लगने से वही काला हो गया है।**

श्रीवृन्दावन में ब्रजवासी आज एक सज्जन ने ब्रजभूमि की विविध प्रशंसा सुनकर कहा-'श्रीवृन्दावन अप्राकृत ही हो और चाहे जो भी हो, लेकिन वहाँ के लोग बड़े भयानक हैं। पैसा-पैसा करके यात्रियों के ऊपर जो भयंकर अत्याचार करते हैं, वह सुनकर तो मन में डर बैठ जाता है।' ठाकुर ने कहा-**'पैसे के लिए ब्रजवासी लोग नर-हत्या भी कर देते हैं, ऐसी कुछ घटना सुनी तो है, लेकिन वे लोग वास्तव में ब्रजवासी हैं या नहीं, कहना कठिन है।**

आगरा, दिल्ली, जयपुरादि विभिन्न स्थानों के अनेक लोग तीन-चार पीढ़ी से ब्रजभूमि में वास कर रहे हैं। वे लोग भी ब्रजवासी कहकर अपना परिचय देते हैं। लोग भी उन्हें ब्रजवासी ही समझते हैं। श्रीवृन्दावन के ग्रामों में घूमने से यथार्थ ब्रजवासी लोगों की सरलता, उदारता देखकर मुग्ध हो जाओगे। जो सब ब्रजवासी यात्री-यजमानों को सताकर पैसा लेते हैं, वे लोग उस पैसे के द्वारा क्या करते हैं, वह भी तो देखना होगा। वन परिक्रमा के समय हजारों-हजारों साधु, वैष्णव, यात्री लोगों का भरण-पोषण वे लोग ही तो करते हैं। पैसा वे लोग जमा नहीं करते। तुम लोगों के हाथ से पैसा लेकर, तुम लोगों की ही सेवा करते हैं। पहले ब्रजवासी लोग आहार के अभाव से, अर्थ के अभाव से कहीं भी घूमना-फिरना नहीं करते थे। यात्रियों के ऊपर उन लोगों का कोई उपद्रव नहीं था। उन लोगों की प्रचुर सम्पत्ति थी। हम लोगों के ही दुर्व्यवहार से इस समय उन लोगों की यह दुर्दशा है।'

जिस लाला बाबू के नाम का गुणगान करके आज पूरे बंगाल के लोग कृतार्थ हो रहे हैं, एक समय वे भी किस प्रकार के व्यक्ति थे? फिर श्रीधाम वास के गुण से, भगवत् कृपा से कितनी दुर्लभ अवस्था प्राप्तकर जन-साधारण को स्तम्भित करके श्रीवृन्दावनधाम को प्राप्त हुए, ठाकुर वह कहने लगे-

प्रथम अवस्था में लाला बाबू अन्यान्य जमींदारों के जैसे ही थे। ब्रजवासी लोग सरल होते हैं। भाँग और लड्डू मिलने से वे लोग फिर कुछ नहीं चाहते। उसमें ही उन लोगों को परम आनन्द मिलता हैं। लाला बाबू यह देखकर उन लोगों को खूब

भाँग और लड्डू खिलाने लगे। धीरे-धीरे उन लोगों का सब कुछ लिखवा लिए। अनके ब्रजवासी अभी भी दुःख के साथ कहते हैं, लाला बाबू ने हम लोगों का नाश कर दिया। फिर भगवान् की कृपा से जब लाला बाबू को वैराग्य हुआ, वे राधाकुण्ड के एक सिद्ध महात्मा के पास दीक्षाप्रार्थी हुए। सिद्ध बाबाजी ने लाला बाबू का बहुत तिरस्कार करते हुए कहा-'जिन लोगों के साथ तुम्हारी बहुत शत्रुता है, केवल लँगोटी पहनकर कंगाल के वेश में जाकर पहले उन लोगों के पैर पड़कर क्षमा माँगो और उनका आशीर्वाद लेकर आओ। फिर उन लोगों के घर से मुट्ठीभर भिक्षा करके भोजन करना।' लाला बाबू जब कंगाल वेश में केवल लँगोटी पहनकर मथुरा के चौबे लोगों के द्वार-द्वार में जाने लगे, तब सबने सोचा था, लाला बाबू को अब लौटकर नहीं आना होगा; परन्तु चौबे लोग उनकी अवस्था देखकर आँखों के आँसू को रोक न सके, कहने लगे-'ओह! तुम्हारी यह अवस्था, भिक्षा करने हम लोगों के ही द्वार पर आए हो? तुमको क्या भिक्षा दें, कहो? हम लोगों का जो कुछ बचा है, वह भी तुम ले लो।' चौबे लोगों ने उन्हें हृदय से क्षमा करके आशीर्वाद दिया। फिर उनकी दीक्षा हुई। दीक्षा के बाद उन्होंने जिस प्रकार कठोर वैराग्य धारण किया, वह और कहीं प्रायः देखा नहीं जाता। प्रतिदिन भिक्षा के समय पहचान लेने से लोग उनको अच्छा-अच्छा खाने को देते; इसलिए उन्होंने कितनी कठोरता की थी। आदर, यत्न, प्रशंसा उन्हें विष के समान ज्वाला देती। लोग उन्हें पहचान न सके, इसलिए कितने प्रकार से पागल के समान ही घूमते। लोग आदरपूर्वक भिक्षा देते, इसलिए उन्होंने भिक्षा करना छोड़

दिया। अन्त में घोड़े की लीद में जो दाना पाते, केवल वही खाकर किसी प्रकार जीवन यापन करते थे। एक दिन उसी प्रकार घोड़े की लीद से दाना चुन रहे थे, अचानक घोड़े ने एक भयंकर दुलत्ती मारी, उसी से लाला बाबू की मृत्यु हुई। इस प्रकार अद्भुत वैराग्यपूर्ण जीवन इस समय और देखा नहीं जाता।

परिक्रमा के समय ब्रजमाइयों का व्यवहार

३० मार्च, सोमवार। ठाकुर को श्रीवृन्दावन की बातें कहने में बड़ा आनन्द मिलता है। इतने दिन ठाकुर श्रीवृन्दावन में थे, इस कारण दर्शकगण भी आकर ठाकुर से श्रीवृन्दावन की ही बातें पूछते हैं। आज एक सज्जन ने ठाकुर से पूछा, 'ब्रज परिक्रमा के समय असंख्य यात्रियों का आहारादि किस प्रकार चलता है? साथ-साथ क्या बाजार जाता है? या यात्री लोग वस्तुएँ साथ में लेकर चलते हैं? रास्ते में क्या चोर-डाकुओं का उपद्रव नहीं होता? ठाकुर ने कहा-**चोर-डाकुओं का उपद्रव तो सभी जगह है। परिक्रमा के समय साथ में वस्तुएँ ले जानी नहीं पड़ती। साथ-साथ बाजार चलता है, फिर रास्ते में जगह-जगह अड्डे भी हैं। वहाँ सभी वस्तुएँ मिलती हैं। जो गृहस्थ हैं, वे अड्डे में जाकर प्रयोजन के अनुसार वस्तुएँ खरीदकर भोजनादि करते हैं और साधु लोग लूट-पाट करके भोजन संग्रह कर लेते हैं। परिक्रमा के समय गाँव-गाँव में ब्रजमाइयाँ दही, दूध इत्यादि लाकर एक कमरे में सजाकर रखतीं हैं। फिर अन्य कमरे में जाकर चुपचाप बैठ जाया करती हैं। साधु लोग इधर-उधर के कमरे में जाकर दूध-दही खोजकर बाहर कर लेते हैं। उसी समय ब्रजमाइयाँ कृत्रिम**

क्रोध प्रकट करके, हाथ में डण्डा लेकर उन्हें भगाया करती हैं। साधु लोग दही, दूध इत्यादि लूट-पाट करके हँडियाँ तोड़कर भाग जाते हैं। इससे ब्रजमाइयों को बड़ा ही आनन्द होता है। वे लोग इस समय ग्वाल-बालों के साथ श्रीकृष्ण के दूध-दही चोरी की कथा का स्मरण करके उसी भाव में मुग्ध हो जाया करती हैं। चोरी करके अथवा बलपूर्वक इस प्रकार लूट-पाट करके किसी के कुछ लेने से ब्रजमाइयों को जो आनन्द होता है, वह कहा नहीं जा सकता। इस आनन्द के लिए ही वे लोग प्रतिदिन कितने उत्साह से दूध, दही, मख्खनादि विविध खाने की अच्छी-अच्छी वस्तुएँ पूरे कमरे में सजाकर रखती हैं। जो सब साधु लूट-पाट नहीं करते, आसन पर ही रहते हैं, ब्रजमाइयाँ उनके पास जाकर वात्सल्य-भाव से कितनी गालियाँ देतीं, हाथ पकड़कर खींचते हुए घर ले जातीं। साधुओं की गरदन पकड़कर कितना आदर करके घर में जो कुछ रहता अपने हाथ से उन्हें खिलातीं। ब्रजमाइयों के ये सब भाव देखकर चकित हो जाओगे।

ब्रज के ग्रामों में जाने से देखा जाता है, अभी वही भाव विद्यमान है। दिन ढलने पर ब्रजमाइयाँ व्याकुल मन से रास्ते की ओर देखती हुई खड़ी रहतीं हैं। कब ग्वाल-बाल गायों को लेकर लौटेंगे, वही देखती हैं। जान-पहचान का बोध नहीं है। घर की अच्छी-अच्छी वस्तुएँ लाकर, कितना आदर करके ग्वाल-बालों को खिलाती हैं। ग्वाल-बालों को आने में थोड़ा विलम्ब होने से, स्नेहपूर्वक उन्हें कितना डाँट-डपट लगाती हैं। ब्रज के ग्रामों में जाने से देखा जाता है, ब्रजमाइयों के भीतर अभी भी पहले के जैसा वही भाव, वही सब अवस्था विद्यमान है।

ठाकुर के साथ इस बार माता ठाकुरानी, सतीश, श्रीधर आदि अनेक लोगों ने ब्रज की परिक्रमा की। ये लोग ही धन्य हैं। बहुत कम दिन रहने के कारण मेरे भाग्य में वह नहीं था। ठाकुर ने सतीश को चौरासी कोस श्रीवृन्दावन-परिक्रमा का विवरण विस्तृत रूप से लिखने के लिए कहा था। सतीश भी उसे लिखकर बीच-बीच में ठाकुर को सुनाते थे। आशा करता हूँ, ठाकुर की श्रीवृन्दावन-परिक्रमा की सारी घटनाएँ इस पुस्तक में रहेंगी। सतीश अभी इस आश्रम में ही हैं।

जीवप्रकृति के साथ समप्राणता

३१ मार्च, मंगलवार। आहार के बाद साढ़े १२ बजे ठाकुर आम पेड़ के नीचे अपने आसन पर बैठते हैं। प्रायः संध्या तक एक ही भाव से स्थिर बैठा करते हैं। चैत्र मास की भीषण गर्मी में मध्याह्न के समय घर से कोई बाहर नहीं निकलता। ठाकुर भी इस समय गर्मी के कारण कभी-कभी पसीने से तर हो जाते हैं। ठाकुर के साथ-साथ मैं भी हाथ में एक पंखा लेकर आम के पेड़ के नीचे बैठता हूँ। ठाकुर की बायीं ओर, तीन फीट के अन्तर पर रहकर उन्हें पंखे से हवा करने लगता हूँ। ठाकुर लगभग तीन घण्टे तक स्थिर रहकर पूर्व दिशा में वृक्ष की ओर एकटक देखा करते हैं। कभी-कभी तो आँखें बन्द करके एक ही अवस्था में तीन घण्टे तक समाधिस्थ रहते हैं। प्रायः ५ बजे वहाँ लोग आ जाते हैं। तब ठाकुर उन लोगों के साथ विविध विषयों पर बातचीत करने लगते हैं। विभिन्न श्रेणी के लोगों के समागम से वह स्थान परिपूर्ण देखकर मुझे बड़ा आनन्द मिलता है। आज मध्याह्न में, आम्र वृक्ष के नीचे अपने आसन पर बैठते ही

ठाकुर आँखें बन्द करके ध्यान-मग्न हो गए। मैं पास में बैठकर हवा करने लगा। बहुत समय तक समाधिस्थ रहकर, लगभग ३ बजे ठाकुर अचानक चौंक उठे एवं व्यग्र होकर मुझसे बोले-**देखो तो! देखो तो! उन लोगों को भगा दो, पक्षी लोग भय से पुकार रहे हैं। मैंने पूछा-पक्षी लोग कहाँ पुकार रहे हैं?** किसको भगा दें? ठाकुर ने कहा-**जाकर देखो, कुंज घोष के घर में बड़े आम के पेड़ पर।** इतना ही कहकर ठाकुर ने आँखें बन्द कर ली। मैं तुरन्त घोषजी के घर की ओर दौड़ा। वहाँ बड़े आम के पेड़ के पास जाकर देखा, कुछ दुष्ट बालक पंछी के घोंसले पर पत्थर मार रहे हैं। तीन-चार पंछी पेड़ के ऊपर इस डाल से उस डाल में घबराकर उड़ रहे हैं और चें-चें कर रहे हैं। मेरे धमकाने पर वे सब बालक भाग गए। पंछी शान्त हो गए।

मैं ठाकुर के पास आकर बैठ गया एवं पंखा हाथ में लेकर उनको हवा करने लगा। ठाकुर ने उसी समय सिर उठाते हुए आँखें खोलकर मुझसे पूछा-**क्या देखे?** मैंने दुष्ट लड़कों के द्वारा पंछी के बच्चों को गिराने की दुश्चेष्टा और पंछी को भगाने के लिए पत्थर मारने की बात कहने लगा। ठाकुर जैसे कुछ जानते ही नहीं, इस प्रकार के भाव से बड़े ध्यानपूर्वक मेरी बातें सुनने लगे। दिन ढल जाने के बाद मैंने पूछा-मैं तो यहीं पर बैठा था, पक्षियों के शब्द तो कुछ सुन ही नहीं पाया। आपने मग्न अवस्था में रहकर उतनी दूर से पक्षियों की पुकार कैसे सुन ली?

ठाकुर ने कहा-**पास, दूर क्या है? जहाँ जिस दशा में रहा जाए, किसी विपत्ति में पड़कर कोई पुकारे, तो वह आकर हृदय में लगता है।**

इस समय ठाकुर के आसन के पास से होकर एक पंक्ति में चींटियाँ द्रुत गति से आवागमन कर रही थीं। ठाकुर उनकी ओर देखकर, थोड़ा सिर झुकाकर कान लगाते हुए मुस्कुराते-मुस्कुराते मानो उनकी बातें सुनने लगे एवं उनकी बातें मानों समझ रहे हैं, इस प्रकार के भाव से समय-समय पर वे सिर हिलाने लगे। तब मैंने पूछा-क्या चींटियाँ भी बात करती हैं? उनकी बातें सुनी जा सकती है?

ठाकुर ने कहा-**चींटियाँ ही क्यों, वृक्ष-लतादि भी बात करते हैं। मन थोड़ा स्थिर होने से कीट-पतंग, वृक्ष-लता सभी की बातें सुनी जा सकती हैं।**

ठाकुर ने मुझे और कोई प्रश्न न करने देकर तुरन्त कहा-**उसे छोड़ो, तुम चींटियों के लिए कुछ खाना लाओ न। आटा और चीनी मिलाकर देने से चींटियाँ उसे खाकर बहुत प्रसन्न होती हैं।** आटा न मिलने से मैंने केवल चीनी लाकर ठाकुर की आज्ञा अनुसार उसे उनकी दाहिनी ओर डाल दिया। ठाकुर उसी समय आँखें बन्द करके ध्यानस्थ हो गए। बीच-बीच में आँखें खोलकर चींटियों की ओर देखने लगे। कुछ क्षण बाद उन्होंने कहा-**इन लोगों के भीतर कुछ भी अव्यवस्थित नहीं होता। समस्त कार्यों की सुन्दर श्रृंखला है। इनके बीच भी चालक हैं, शासन है, विचार और दण्ड की व्यवस्था है। मनुष्य बड़ा समझकर किसका अभिमान करता है? चींटियों के समान बालू में से इस प्रकार चीनी अलग करके देखे तो?**

श्रीवृन्दावन में 'राधाश्याम' पक्षी

मध्याह्न की गर्मी में सभी अपने-अपने कमरे में विश्राम करते हैं, चारों ओर सन्नाटा रहता है। गेण्डारिया के सब पक्षी छाँव में वृक्ष की डाल पर बैठकर नाना प्रकार से चहकते हैं, सुनकर बड़ा अच्छा लगता है। आज अपराह्न में ठाकुर ने श्रीवृन्दावन के एक प्रकार के अद्भुत पक्षी की बात कही। सुनकर चकित हो गया। श्रीवृन्दावन में इतने दिन था, लेकिन किसी विषय में कुछ पता करके देखा नहीं। उसके लिए अब पछतावा होता है। ठाकुर आज श्यामा-पक्षी की बात कहने लगे-**किसी एक ऋतु में उत्तर की ओर से एक विशेष प्रकार के पक्षी बड़ी संख्या में श्रीवृन्दावन आते हैं। वे पक्षी 'राधाश्याम', 'राधाश्याम' कहकर पुकारते हैं। इतने स्पष्ट स्वर में 'राधाश्याम', 'राधाश्याम' कहते हैं कि सुनकर मन में अन्य कुछ विकल्प नहीं आता। श्रीवृन्दावन में उन पक्षियों को 'राधाश्याम' पक्षी कहते हैं। एक बार एक ब्रजवासी ने कौशल करके दो पक्षियों को पकड़ा, किन्तु एक उड़ गया; दूसरे को उसने एक पिंजरे में बन्द करके रख लिया। उसको दाना दिया, लेकिन पक्षी ने पिंजरे में बन्द होने से खाना त्याग दिया। फिर उसने चहकना बन्द कर दिया, उसकी स्फूर्ति भी नहीं रही। अगले दिन प्रातःकाल 'राधाश्याम' पक्षियों का दल ब्रजवासी के कुंज में आ गया और सभी 'राधाश्याम', 'राधाश्याम' कहकर पुकारने लगे। तब मोहल्ले के सब ब्रजवासियों ने उस ब्रजवासी को डाँटते हुए कहा, 'शीघ्र तुम उस पक्षी को छोड़ दो, नहीं तो तुम्हारा सर्वनाश हो जाएगा! देखो, दल के सभी पक्षी आकर उसके लिए 'राधाश्याम', 'राधाश्याम' कहकर पुकार रहे हैं। तब ब्रजवासी ने पक्षी को छोड़ दिया।**

श्रीवृन्दावन में हिंसा

श्रीवृन्दावन में कौवा कहीं देखा नहीं। मांसाहारी लोगों के न रहने से ही वहाँ कौवे नहीं हैं। मांस-मछली आदि खाना आरम्भ होने से ही कौवे वहाँ पहुँच जाएँगे। ब्रज-भूमि के जैसा हिंसारहित स्थान और कहीं देखा नहीं जाता। इसलिए वन के पशु-पक्षियों को मनुष्य के शरीर को स्पर्श करते हुए चलने में भी डर नहीं लगता। जिसके भीतर हिंसा हैं, उसके पास ही डर है।

सुना है, श्रीवृन्दावन में हिंसा नहीं होने के कारण सरकार की ओर से ही पूरे ब्रजभूमि में पशु-पक्षियों का शिकार करना निषिद्ध है। कुछ समय पहले एक पुलिस अधिकारी सरकार के हुकुम की अवेहलना करके शिकार करने गए थे। शिकार की चेष्टा करते ही वे मारे गए। ठाकुर ने घटना इस प्रकार बतलाई-

पुलिस साहेब घोड़े पर चढ़कर यमुना पार करके 'बेलवन' की ओर एक जंगल में पहुँच गए। बहुतों ने मना किया था, वे किसी की बात नहीं माने। जंगल में एक सुअर को देखकर उन्होंने बन्दूक चला दी; सुअर तुरन्त दो छलाँग में उनके पास आ गया; घोड़ा साहेब को गिराकर भाग गया। सुअर ने तुरन्त साहेब को चीरकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया।

होम की व्यवस्था

१ अप्रेल, बुधवार। मध्याह्न में आम पेड़ के नीचे ठाकुर के पास में बैठा हूँ। ठाकुर ध्यानस्थ थे, अचानक सिर ऊपर करके मेरी ओर देखकर कहा-

वैशाख (बंगला) महीने के प्रथम दिन (१३ अप्रेल) से तीन

महीने के लिए तुमको होम करना होगा।

मैंने कहा-होम किस प्रकार से करूँगा, मैं तो कुछ जानता नहीं।

ठाकुर ने कहा-**बेल, वट, पीपल या गूलर की लकड़ी द्वारा होम करना। एक सौ आठ त्रिदल बिल्वपत्र लेकर, घी में मिलाकर '• • •' यह मन्त्र पढ़ते हुए एक सौ आठ बार आहुति देना। प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान के बाद गायत्री का जप करके, तीन महीने इस प्रकार होम करना। संध्या ४ बजे के बाद स्वपाक आहार करना ही तुम्हारे लिए अच्छा है।**

मैंने कहा-गाँव में देखा हूँ, होम करने के पहले ब्राह्मण लोग यन्त्रादि आँककर कुण्ड बना लेते हैं और होम के स्थान में बालू फैला देते हैं, क्या मुझे भी वैसा ही करना होगा?

ठाकुर ने कहा-**नहीं, नहीं, कुछ नहीं। आसन के सामने इस प्रकार एक कुण्ड बनाकर, प्रतिदिन उसी में होम करना।**

यह कहकर ठाकुर ने हाथ से संकेत द्वारा गोलाकार कुण्ड दिखला दिया। वैशाख महीना आरम्भ होने में अधिक दिन नहीं हैं। होम के लिए गाय का शुद्ध घी और लकड़ी संग्रह की यहाँ असुविधा देखकर कल ही घर जाने का निश्चय किया।

फकीर अलीजानः प्राणायाम के प्रकार

५ अप्रेल, रविवार। केवल एक दिन घर में रुककर, होम के लिए गूलर की लकड़ी और गाय का घी लेकर गेण्डारिया आ गया। देखा, विभिन्न ओर से अनेक स्त्री-पुरुष, गुरुभाई-बहिन आकर आश्रम को परिपूर्ण कर दिए हैं। ठाकुर के गेण्डारिया आने के बाद से विभिन्न श्रेणी के साधु-संन्यासी, ईसाई एवं मुसलमान फकीर भी

आश्रम में आना आरम्भ कर दिए। सेना के पेंशनधारी कप्तान काम्बेल साहब बहुत समय से निर्लिप्त रहकर, साधन-भजन में जीवनयापन कर रहे हैं। मध्याह्न में निर्जन पाते ही वे ठाकुर के पास आकर कुछ समय बिताते हैं, भीड़ देखते ही तुरन्त चले जाते हैं। समुद्र बाबा नामक एक साधु कुछ दिनों से आश्रम में हैं। वे पण्डितजी के कमरे के बरामदे में रहते हैं। बाबाजी को कुछ साधन-भजन करते देखा नहीं। क्या करते हैं, वह भी पता नहीं, लेकिन उनकी बातचीत, उनका आचार-व्यवहार बड़ा आनन्ददायक है। ठाकुर के ऊपर उनकी बड़ी श्रद्धा है। ठाकुर का जो दर्शन मिला हैं, इसी से वे अपने को कृतार्थ मानते हैं।

एक मुसलमान फकीर प्रायः ठाकुर के पास आते हैं। वे ठाकुर के यहाँ आने के पूर्व गेण्डारिया के घने जंगल में रहते थे। फकीर साहेब का नाम अलीजान है। वे जो बातें कहते हैं, एक का भी अर्थ समझ नहीं आता। कई बार चाल-चलन भी प्रायः पागलों के जैसा लगता है; परन्तु वे किसी को भी कोई हानि पहुँचानेवाला कार्य नहीं करते। लड़के-बूढ़े सभी अलीजान को लेकर बहुत आनन्द मनाते हैं। अलीजान भी सबके साथ खूब हिल-मिलकर रहते हैं। मैं ठाकुर के पास बैठा हूँ, दिन के २ बजे वृद्ध अलीजान गन्ने के तीन-चार टुकड़े लेकर आ गए। ठाकुर के सामने आसन लगाकर बड़ी दृढ़ता के साथ बैठ गए। फिर गन्ने का एक बड़ा टुकड़ा हाथ में लेकर खाने के उद्देश्य से जैसे ही दाँत से लगाए, वैसे ही एकाएक उछलकर उठ गए एवं चारों ओर चंचल दृष्टि से देखकर, गन्ने के टुकड़े को दायें-बायें प्रबल वेग से घुमाने लगे और उच्च स्वर में कहने लगे-'हाय, अल्लाह! साला कड़वा कर दिया। खाने नहीं दिया। अरे साला,

लाट साहेब तो आया है। लाट साहेब का बड़ा मस्त जहाज भी आया है, इससे क्या हुआ? लाट के पास काम का हिसाब नहीं देगा? साला ऐसे ही चला जाएगा? वैसा नहीं कर सकता, तंग करने आया है! निकल! निकल! निकल!' यह कहकर फकीर साहेब गोसाँईजी के सामने कई बार गन्ने का टुकड़ा घुमाकर उछल-कूद करते-करते दौड़कर दक्षिण की ओर गेण्डारिया के जंगल में प्रवेश कर गए।

ठाकुर इस समय धीरे-धीरे मुस्कुराते हुए फकीर साहेब की ओर देखते रहे। फकीर साहेब के जाने के बाद ठाकुर से पूछा-'अलीजान ने ऐसा क्यों किया? हवा में गन्ने के टुकड़े से किसको मारा? किसने अलीजान के गन्ने को कड़वा किया? ये सब क्या अलीजान का केवल पागलपन है?'

ठाकुर ने मेरी बात सुनकर कहा-**'अलीजान को तुम लोग पागल समझते हो? वे पागल नहीं हैं, वे बहुत अच्छे फकीर हैं। सिद्ध पुरुष हैं। लोगों के सामने पागल का ढोंग न करने से आजकल अपनी रक्षा कर पाना बड़ा कठिन है। अलीजान जो कहते हैं, जो कुछ करते हैं, सभी के साथ अपनी क्रिया का योग बनाए रखते हैं। वे निरर्थक कुछ नहीं करते। भूत-प्रेतादि की दृष्टि से भी खाद्य वस्तु नष्ट होती है, जूठी होती है। अलीजान वह सब स्पष्ट देख पाते हैं। हवा में गन्ना घुमाकर उन्होंने जो उछल-कूद की, वह एक प्रकार का प्राणायाम है। अलीजान कई प्रकार के प्राणायाम जानते हैं। फकीर साहेब को साधारण मत समझो।'**

मैंने कहा-उछल-कूद करके, हाथ-पैर हिलाकर मुँह बनाते हुए नाना प्रकार के भयंकर शब्द के साथ चिल्लाकर भी प्राणायाम

होता है? उनको श्वास-प्रश्वास की कोई क्रिया करते हुए तो देखा नहीं। प्राणायाम के कितने प्रकार हैं?

ठाकुर ने कहा-**मनुष्य देह में ७२ हजार नाड़ियाँ हैं। उन नाड़ियों में प्राण-वायु को चलाने की जो प्रक्रिया है, उसे ही प्राणायाम कहते हैं। प्रत्येक नाड़ी में एक-एक प्रकार की प्रक्रिया से यह प्राण-वायु चलती है। इसलिए प्राणायाम के भी ७२ हजार प्रकार हैं। नाना प्रकार की शारीरिक मुद्राओं से एवं विभिन्न प्रकार के शब्द करने से भी प्राणायाम होता है। किस प्रकार की चेष्टा से कौन-सी नाड़ी में किस प्रकार के प्राणायाम की क्रिया होती है, लोग उसकी प्रणाली नहीं जानते। आजकल वे सब प्राणायाम देखे नहीं जाते; प्रायः सभी लुप्त हो गए हैं। फकीरों के बीच अभी भी ये सब प्राणायाम थोड़े-बहुत देखे जाते हैं।**

इन सब बातों के चलते-चलते अनेक लोग आ गए। ठाकुर उन लोगों के साथ बातचीत करने लगे। मैं भी भोजन बनाने के लिए चला आया। प्रतिदिन ही संध्या-कीर्तन में बड़ा आनन्द उत्सव चलता है।

प्रतिष्ठा से बचने हेतु सिद्ध महात्माओं का लोक-विरुद्ध व्यवहार

८ अप्रेल, सोमवार। आज ठाकुर ने कहा-**"धर्मार्थियों का प्रतिष्ठा और प्रशंसा से जितना अनिष्ट होता है, उतना अन्य किसी से नहीं होता। इसलिए कितने अच्छे-अच्छे साधु-महात्मा कितने प्रकार के उपाय का आश्रय लेकर लोगों की दृष्टि से बचने के लिए अपने को गुप्त रखते हैं, कह नहीं सकते। एक बार**

श्रीवृन्दावन के एक सज्जन ने एक दिन साधु-वैष्णवों का भण्डारा करवाया; मैं भी दर्शन करने गया था। देखा, टिकट दिखाकर वैष्णव बाबाजी लोग कुंज के भीतर प्रवेश कर रहे हैं। एक कंगाल भीतर जाना चाह रहा था, लेकिन टिकट न रहने के कारण द्वारपाल ने उनको गाली देकर हटा दिया। पुनः भीतर जाने के लिए। उस व्यक्ति के प्रयास करते ही द्वारपाल ने उनको कुछ एक बार जोर से धक्का मारा। वे प्रहार से किसी प्रकार का क्लेश प्रकट किए बिना, प्रसन्नतापूर्वक उस स्थान से चले गए। देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैं उनके लिए कुछ भोजन माँगकर ले लिया और उनके पीछे-पीछे गया। वे यमुना के किनारे-किनारे बहुत दूर जाकर वन के भीतर एक निर्जन स्थान पर पहुँचे। वहाँ एक गुफा के भीतर गए। मैंने उनके पास पहुँचकर, उन्हें प्रणाम करके खाना दिया। फिर पूछा-'लोकालय से इतनी दूर रहकर आपको भिक्षादि की कैसे सुविधा होती है? शहर में भी तो कहीं पर रह सकते हैं।' बाबाजी ने कहा, 'छिपकर रहना ही सुरक्षित है। केवल एक बार प्रातःकाल उठकर यमुना में स्नान करता हूँ और रात्रि में एक बार मधुकरी (भिक्षा) करके रोटी का टुकड़ा ले आता हूँ, उसे ही यमुना के जल में भिगाकर खा लेता हूँ, इसमें मेरा कोई झँझट नहीं है। अच्छे-से हूँ।' बाबाजी परम वैष्णव हैं। इस प्रकार बहुत दिनों से निर्जन गुफा में रहकर दिन बिता रहे हैं। श्रीवृन्दावन में इस प्रकार गुप्त रूप से और भी कितने महात्मा हैं, उन सब की फिर कौन खबर लेता है?"

ठाकुर फिर कहने लगे-**"इस बार हरिद्वार में एक साधु को**

देखा। वे बहुत अच्छे साधु हैं, ऐसा चारों ओर प्रचार होने से सर्वदा उनके पास लोगों की भीड़ रहने लगी। लोगों के उपद्रव से बचने के लिए उन्होंने साधु का वेश त्याग दिया। लोग ने तब भी उनका साथ नहीं छोड़ा। तब साधु 'कोट-पैंट' पहनकर, छड़ी हाथ में लेकर बाबू के वेश में रास्तों पर घूमने लगे। उससे भी लोग उन्हें भूले नहीं। सर्वदा उनके साथ-साथ लोगों की भीड़ चलने लगी। तब साधु अधीर हो उठे। लोगों का साथ त्यागने हेतु थोड़ा बदनाम होने के लिए उन्होंने एक व्यापारी की दुकान में जाकर चावल चुराया। पुलिस ने उनको पकड़कर चोरी करने का चालान दिया। अदालत के निर्णय से उनको तीन रुपया जुर्माना हुआ। तब व्यापारी ने उनको पहचान लिया; उन्होंने स्वयं तीन रुपये जुर्माना देकर उनको छुड़वाया और हाथ जोड़कर, पैर पड़कर उनसे क्षमा माँगी। कई बार महात्मा लोग प्रतिष्ठा, प्रशंसा से बचने के लिए इस प्रकार के कार्य करते हैं, जिससे चारों ओर उनकी अपकीर्ति का प्रचार हो।"

"अयोध्या के हरिदास बाबाजी एक सिद्ध महात्मा हैं। वे लोकालय त्यागकर बहुत दूर जंगल के भीतर एक पुरानी कुटिया में रहते और अपनी इच्छानुसार आनन्दपूर्वक भजन करते थे। वहाँ जाकर भी अनेक लोग उनके दर्शन करते एवं संसारी आपद्-विपद् की बातें कहकर उसके प्रतिकार के लिए बाबाजी से प्रार्थना करते। बाबाजी उनको नाना प्रकार से समझाकर कहते कि वे वह सब कुछ नहीं जानते। बाबाजी की बात न मानकर सब उनके पास आने लगे। तब बाबाजी ने अश्लील गालियाँ देकर उन लोगों को भगाना आरम्भ किया। कोई उनके

पास न आए, इसलिए वे लोगों को डर दिखाने के लिए कभी-कभी पत्थर फेंककर मारते थे।”

“श्रीवृन्दावन जाते समय कुछ दिन काशी में रुका था। उस समय पूर्णानन्द स्वामी के साथ भेंट करने की बहुत इच्छा हुई। तीन दिन उनके दर्शन के लिए जाने का प्रयास किया। तीनों दिन लोगों ने मुझे रोकते हुए कहा-‘महाराज, आप वहाँ जाएँगे, उस बेटा शराबी के पास! नहीं, वैसा नहीं होगा। काशी में सभी उनको शराबी और बदमाश के नाम से जानते हैं। फिर वह सब बातें सुनकर भी मेरे मन में उसका प्रभाव नहीं पड़ा। जाने के लिए मन अधीर हो उठा। मैं किसी की बात न सुनकर, स्वामीजी के आश्रम में गया। स्वामीजी को प्रणाम करते ही उन्होंने थोड़ा हँसकर कहा-‘क्यों शराबी बेटा के पास आया है, बैठ।’ उस समय वे एक महिला को अभद्र भाषा में गाली देकर कहने लगे, ‘अरे तुझे शिष्या बनाने से क्या होगा, तेरी तो उमर अधिक हो गई है। मैं सुन्दर युवती मिलने से शिष्या बनाता हूँ। तेरे को दीक्षा नहीं दूँगा, तू चली जा। दूसरे के पास जाकर दीक्षा ले।’ महिला बहुत आग्रह करने लगी। तब स्वामीजी ने कहा, ‘अच्छा, मेरे कहे अनुसार चल सकेगी? शपथ ले, तो फिर शिष्या बना लूँगा।’ महिला ने कहा-‘आपकी दया होने से क्यों नहीं कर सकूँगी बाबा?’ तब स्वामीजी ने कहा-‘अच्छा, तो फिर थोड़ी प्रतीक्षा कर, मैं पी लेता हूँ। फिर तेरे को उस रास्ते में ले जाकर बेइज्जत करूँगा। उसके बाद तेरी दीक्षा होगी।’ तब स्वामीजी ने तेज स्वर में अपनी भैरवी से कहा-‘अरी, एक बोतल शराब ले आ, तो। और देख, हरामजादी भाग न पाए, बाहर दरवाजे में सिटकिनी

दे दे।’

तब महिला डरकर भाग खड़ी हुई। स्वामीजी ने मन्त्र से शुद्ध करके मदिरा-पान किया। फिर मुझसे कहा-‘अरे देख, इस शराबी बेटा के पास क्यों आया है? मैं शराबी बेटा, शराब पीता हूँ, कितनी बदमाशी करता हूँ, वह तू जानता है? मेरा घर भी शान्तिपुर में था, बचपन में नाटक-मण्डली में मेहतरानी बनता था, तब किस प्रकार नाच-नाचकर गाना गाता था सुनेगा?’ यह कहकर वे नाच-नाचकर गाने लगे-‘रात में देखा स्वप्न, काला एक पुरुष रत्न।’ यह गाना गाते-गाते स्वामीजी का बाह्यज्ञान लुप्त हो गया। देखते-देखते महादेव के समान हो गए। स्वामीजी काले थे, लेकिन वे बिल्कुल गोरे हो गए। मस्तक पर अदभुत ज्योतिर्मय अर्धचन्द्र प्रकाशित हो गया। जो वहाँ थे, सभी देखकर चकित हो गए। चैतन्य होने पर स्वामीजी ने कहा-‘देख, शराब पीकर, शराब की बोतल बगल में लेकर, रास्ते में पड़ा रहता हूँ, इतनी मस्ती करता हूँ, जो लोग पास आते हैं, उन्हें कितने अश्लील भाव से गालियाँ देता हूँ, कभी-कभी खड्ग लेकर उन लोगों को काटने के लिए जाता हूँ, लेकिन तब भी मनुष्य यहाँ आते हैं, मुझे विरक्त करते हैं, सिद्ध पुरुष कहते हैं, कितनी बातें मुझसे पूछने आते हैं। मैं थोड़ी शान्ति से रह नहीं पाता। इन लोगों के उत्पात से बचने के लिए मैं अब क्या करूँ, बताओ तो?

“योगजीवन को देखकर उन्होंने कहा-‘उसकी इतनी आयु हो गई, अभी भी उसका जनेऊ हुआ नहीं, अच्छा मैं उसको जनेऊ दे दूँगा।’ फिर स्वामीजी ने ही यथारीति योगजीवन को एक दिन जनेऊ दे दिया। स्वामीजी के यहाँ हम सभी को बहुत

आनन्द मिला।”

अयाचित दान अग्राह्य करने से दुर्दशा

इस बार श्रीवृन्दावन में अर्ध कुम्भ-मेले के समय लगभग छः-सात हजार वैष्णव साधु यमुना के तट पर सम्मिलित हुए थे। ठाकुर प्रतिदिन प्रातः उन सबकी परिक्रमा और दर्शन करके आते थे। एक दिन वे साधु-दर्शन के लिए निकले। जमात के बीच एक साधु को खुले बदन ठण्ड से कष्ट पाते देखकर उन्होंने प्रणाम करके उनको एक कम्बल देते हुए कहा-**‘आपके पास कुछ गरम कपड़े नहीं हैं, दया करके यह कम्बल लीजिए।’** कम्बल साधारण था, साधु को पसन्द नहीं आया। उन्होंने उसकी ओर देखते ही हाथ में लेकर विरक्ति के साथ फेंक दिया एवं अत्यन्त क्रोध प्रकट करके कहा-‘अरे, ऐसा कम्बल मैं नहीं लेता, इसको फेंक दो।’ ठाकुर ने हाथ जोड़कर साधु से खूब अनुनय-विनय किया; पर साधु ने किसी भी प्रकार से उसे नहीं लिया। ठाकुर अन्त में उसे एक अन्य साधु को देकर आ गए। कुछ दिन बाद बहुत वर्षा आरम्भ हो गई। यमुना-तट पर भयंकर ठण्ड से जब सब साधु व्याकुल हो गए, तब वे साधु ठण्ड से अधीर होकर इधर-उधर भागने लगे। कहीं कुछ न पाकर, ठण्ड से बचने के लिए धूनी जलाने के अभिप्राय से लकड़ी संग्रह करने में व्यस्त हो गए। अन्य कहीं लकड़ी न पाकर लकड़ी-टाल से कुछ कुन्दे चोरी किए। लकड़ीवाले ने उन्हें चोर समझकर पुलिस के हाथ में सौंप दिया। साधु को जेल हो गई। ठाकुर ने इस विषय का उल्लेख करके कहा-

“अभाव होने पर अयाचित रूप से जो आए, उसे भगवान्

का ही दान समझकर श्रद्धापूर्वक ग्रहण करना चाहिए। भगवान् का दान अग्राह्य करने से बड़ा अनर्थ होता है। वे साधु जब कम्बल फेंके, तभी मुझे लगा, ये बड़े झंझट में पड़ गए। अभिमान करके श्रद्धा का दान अग्राह्य करने से अपराध होता है।"

अनाहारी साधु के प्रति ठाकुर का आकस्मिक खिंचाव

एक दिन अपराह्न में ठाकुर अचानक आसन से उठकर तुरन्त यमुना के तट पर जा पहुँचे। साधुओं के बीच से होकर निरन्तर द्रुत गति से चलने लगे। प्रतिदिन रास्ते के दोनों ओर जिन सब साधु-वैष्णवों को आग्रहपूर्वक दर्शन करके प्रणामादि करते हैं, उन सब साधुओं के डेरे पर उस दिन एकक्षण भी नहीं रुके। उन लोगों की ओर देखने का भी अवसर नहीं मिला। दोनों ओर साधुओं को छोड़कर, जमात के बीच से होकर दूसरे प्रान्त में एक त्यागी साधु के पास पहुँचे। तब साधु आनन्दपूर्वक प्रफुल्लित मन से कुछ लोगों के साथ धर्म-चर्चा कर रहे थे। ठाकुर कुछ क्षण उनके पास बैठकर, अवसर देखकर साधु से पूछे-**"महाराज, आज आप प्रसाद पाए?"** साधु ने कहा 'नहीं'। ठाकुर ने पूछा, **"कल पाए थे?"** साधु ने कहा 'नहीं'। क्रमशः पूछने पर पता चला, सात दिन से वे कुछ नहीं खाए। लगातार सात दिन बिना आहार किए, बिना थके, आनन्दपूर्वक बातें करते देखकर ठाकुर चकित हो गए। पता चला, प्राण जाने पर भी वे किसी से कुछ नहीं माँगते। ऐसे साधु बड़े दुर्लभ हैं। ठाकुर कुंज में आकर तुरन्त उनके लिए भोजन भिजवाया।

जमात के साधुओं के धनागम और संकट की

बातें

ठाकुर की बात पूरी होने के बाद पूछा-हजार-हजार साधु कुम्भ-मेले में एकत्र होते हैं, उन लोगों का भोजन आदि प्रतिदिन किस प्रकार चलता है?

उन्होंने फिर कहा-**"सभी सम्प्रदाय के साधुओं के महन्त होते हैं। साधु लोग अपने-अपने सम्प्रदाय के महन्तों का आश्रय लेते हैं। प्रत्येक महन्त के जमात में तीन-चार हजार साधु रहते हैं। राजा, महाराजा और बड़े-बड़े धनी लोग उन महन्तों की यथेष्ट आर्थिक सहायता करते हैं। ऊँट, घोड़ा व हाथी के ऊपर बोझा लादकर महन्त लोग अपना भण्डार लेकर चलते हैं। साधुओं को आहार आदि का कोई कष्ट ही नहीं होता। जो लोग किसी भी महन्त का आश्रय न लेकर स्वतन्त्र रूप से रहते हैं, उन लोग को ही भिक्षा करके काम चलाना पड़ता है।"**

पूछा-महन्त लोगों के साथ जब इतना अधिक माल एवं अर्थादि रहता है, तो जमात के भीतर चोर-डकैतों का उपद्रव नहीं होता?

ठाकुर ने कहा-**"वह बहुत होता है। इस बार श्रीवृन्दावन में अर्ध कुम्भ-मेले में एक महन्त के ऊपर बहुत अत्याचार हुआ। उनके पास तीन-चार सौ रुपये थे। हरिद्वार जाने पर उन रुपयों का प्रयोजन होगा, इस कारण से वे जमा करके रखे थे। साधु के साथ १०-१२ लोग थे। एक साधु, जो महन्त की सेवा करते थे, केवल वे ही उन रुपयों की बात जानते थे। एक दिन उन्होंने रोटी के साथ अधिक मात्रा में भांग, धतूरा मिलाकर महन्त को खिला दिया; महन्त खाकर नशे से अचेत हो गए। वे साधु रुपये**

लेकर भाग गए। महन्त दो दिन तक नशे में अचेत थे। फिर अन्य साधुओं को पता चलने पर उन्होंने घी गरम करके खिलाया। उससे महन्त का नशा दूर हुआ। बाद में पता चला, महन्त के सेवक ने ही अर्थ के लोभ में वह काण्ड किया था।"

सोना बनाने वाला साधु

मैंने फिर पूछा-सुना है, साधु लोगों के बीच ऐसे लोग भी हैं, जो इच्छा होने से सहज में ही सोना बना सकते है?

ठाकुर ने कहा-**हाँ! इस बार श्रीवृन्दावन में एक संन्यासी आए थे, वे सोना बनाते थे। उनके लिए उनके गुरु का हुकुम था, प्रतिदिन कम-से-कम १२ साधुओं की सेवा करनी होगी। अर्थ का अभाव होने पर, १२ जनों की सेवा के लिए जो प्रयोजन होगा, उसी परिमाण में वे सोना बना सकते हैं। अन्य कारण से अथवा स्वयं के प्रयोजन हेतु सोना बनाने के लिए उनके गुरु ने मना किया था। श्रीवृन्दावन में आकर वे आवश्यकता के अनुसार सोना बनाने लगे। क्रमशः उसका प्रचार होने से, पुलिस के लोगों को सन्देह होने पर एक दिन मथुरा से पुलिस साहेब ने आकर उस साधु को पकड़ लिया। साधु ने सोना बनाकर साहेब को दिखलाया। सोने की परख करने पर साहेब को पता चला, बड़ा उत्कृष्ट सोना है। फिर साहेब ने सोना बनाने की प्रणाली सीखने के लिए साधु को रुपयों का लोभ दिखलाया। दस हजार रुपये देना चाहा। साधु ने कहा-'मैं १० मिनट के भीतर दस हजार रुपये का सोना सहज में बना सकता हूँ। मुझे रुपयों का लोभ क्यों दिखला रहे हो? अपनी यह विद्या मैं किसी को नहीं**

सिखाऊँगा।’ फिर साहेब उनको बहुत डराने लगे। साधु ने कहा, ‘मैं कृत्रिम माल देकर ठगकर रुपये लेता हूँ या नहीं, आप केवल वही जाँच कर सकते हैं। अपनी विद्या मैं अन्य लोगों को नहीं सिखाऊँगा। इस विषय में मैं किसी की जिद से बाध्य नहीं होऊँगा।’

“एक दिन उस साधु ने दाऊजी के मन्दिर में आकर मुझसे भेंट करके कहा-‘मेरे गुरुजी ने मुझे हुकुम दिया है कि मेरे आदेश का पालन करके चल सके, ऐसे साधु को यह विद्या सिखा देना; पर मुझे ऐसा साधु मिल नहीं रहा है। फिर किसी एक को यह विद्या सिखलानी ही होगी। आपकी यदि इच्छा है, तो आपको यह विद्या सिखा देता हूँ।’ यह कहकर उन्होंने मेरे सामने थोड़ा ताँबा लेकर, उसमें एक पत्ते का रस मिलाकर उसे आग में डाल दिया; पाँच-सात मिनट बाद आग से निकाल लिया। देखा, बहुत उत्कृष्ट सोना बन गया। मैंने साधु से कहा-‘ये सब सीखने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं है। यह विद्या आप जानते है, इस कारण देखिए कितने लोग सर्वदा आपके पीछे लगे रहते हैं। ये सब उत्पात लेने का क्या प्रयोजन? एक मुट्ठी अन्न जब भगवान् देंगे ही, तब और सबका क्या आवश्यकता है?’ सोना बनाने की अनेक प्रकार की प्रणालियाँ हैं; लेकिन इस साधु ने जिस प्रणाली से बनाया, वह बहुत ही सहज है। इतने सहज में सोना बनाना और कहीं देखा नहीं। ये सब सीखना नहीं चाहिए। ये सब सीखने से मनुष्य को नाना प्रकार के उत्पात में, आपद्-विपद् में पड़ना होता है। धर्म-कर्म सब चूल्हे में चला जाता है। भगवान् की कृपा जो प्राप्त करना चाहते हैं, ये सब उनके लिए भयंकर

प्रलोभन हैं। ये प्रलोभन आने से थूककर उसे अग्राह्य कर देना चाहिए।'

सुखमय वृन्दावन

७ अप्रेल, मंगलवार। श्रीवृन्दावन के वैष्णव महात्माओं की बातें ठाकुर अनेक समय कहा करते हैं। ठाकुर के श्रीवृन्दावन से आने के कुछ समय पहले एक वैष्णव ने अद्भुत रूप से देह का त्याग किया था। ठाकुर ने आज उनकी बात कही-**"एक दिन एक महोत्सव के उपलक्ष्य में वृन्दावन परिक्रमा करते हुए हजारों-हजारों वैष्णव संकीर्तन करने लगे। गाने का पद था-'सुखमय वृन्दावन यमुनापुलिन।' एक वैष्णव महात्मा संकीर्तन में महाभाव के आवेश में अचेत हो गए। तीन दिन, तीन रात्रि वे एक ही अवस्था में रहे। बाबाजी की मग्न अवस्था के समय मैंने कई बार उनकी छाती पर कान लगाकर सुना, भीतर से 'सुखमय वृन्दावन' स्पष्ट शब्द उठ रहा है। बाबाजी ने उसी अवस्था में देहत्याग किया।"**

अज्ञात साधु के पास आश्रय ग्रहण करने से विपत्ति

इस बार हरिद्वार पूर्ण कुम्भ में पर्वतवासी अनेक महात्मा-महापुरुष आएँगे। भारतवर्ष के सभी स्थानों से साधु-संन्यासियों का इस महामेले में आगमन होगा, इस प्रकार की बात पहले से ही सर्वत्र प्रचारित हो गई थी। बंगाल के विविध स्थानों से अनेक सज्जन एवं स्कूल के लड़के भी हरिद्वार के इस मेले में आए।

सिद्ध महात्माओं से दीक्षा लेना ही उन लोगों का उद्देश्य था। स्कूल के तीन-चार लड़कों ने किसी संन्यासी के बाहरी वेश एवं

साधुता के आडम्बर से धोखे में आकर, उनको महापुरुष समझकर उनसे दीक्षा ले ली। संन्यासी ने उन लोगों को दीक्षा देते ही वस्त्रादि उतरवाकर कौपीन पहनने को दिया एवं सेवाकार्य में लगा लिया। सभ्य घर के लड़के नियमित बर्तन माँजना, लकड़ी काटना, पानी भरना इत्यादि परिश्रम का कार्य करते-करते अस्वस्थ हो गए। संन्यासी ने उनकी पीड़ित अवस्था देखकर भी उन्हें अत्यधिक परिश्रम से छुट्टी नहीं दी वरन् और भी फटकारने लगे। उनका निर्दिष्ट कार्य ठीक प्रकार से न करने पर निर्दयता से पीटेंगे, इस प्रकार का डर भी दिखाने लगे। ये लड़के जिससे भाग न पाए, इसके लिए अपने अन्य संन्यासी शिष्यों को उन पर दृष्टि रखने के लिए कह दिए। वे लोग भी कामकाज में किसी प्रकार की शिथिलता देखने से उन लड़कों पर अत्याचार करते थे। अस्वस्थ शरीर से रात-दिन लगातार परिश्रम का कार्य करने का सामर्थ्य नहीं, भागने का उपाय भी नहीं, अतएव वे लड़के बड़े संकट में पड़ गए। एक दिन ठाकुर अचानक उस संन्यासी के पास पहुँच गए। उन लड़कों ने ठाकुर को देखकर, रोते-रोते अपनी सारी दशा उनसे कही। ठाकुर ने उन लोगों को छोड़ देने के लिए संन्यासी से अनुरोध किया। संन्यासी ने ठाकुर का अनुरोध स्वीकार नहीं किया। नाना प्रकार से गाली-गलौज करके बड़ा तेज दिखाते हुए कहा-'ये लोग हमारे चेले बने हैं, मन्त्र लिए हैं, हम कभी इन लोगों को नहीं छोड़ेंगे।' ठाकुर चले आए एवं शीघ्र पुलिस की सहायता लेकर उन लोगों को छुटकारा दिलवाए। स्कूल के और भी कुछ लड़के उसी प्रकार धर्म-धर्म करके अज्ञात कुलशील संन्यासी से दीक्षा लेने के लिए तत्पर हो गए थे। ठाकुर ने संकट में पड़े उन लड़कों की बात कहकर,

उनका वह संकल्प सुरक्षित नहीं है, बतलाया एवं शीघ्र उन्हें गाँव भेज दिया।

अनधिकारी के गेरुआ धारण करने से अपराध

अन्य एक दिन कुछ बंगाली सज्जन गेरुआ वस्त्र धारण करके संन्यासी के वेश में ठाकुर के पास पहुँचे। ठाकुर को उन लोगों का परिचय मिलने से पता चला कि वे लोग संन्यास अथवा अन्य कोई आश्रम ग्रहण नहीं किए हैं। अभी तक उन लोगों की दीक्षा भी नहीं हुई है। तब ठाकुर ने उन लोगों से पूछा-**'आप लोग गेरुआ वस्त्र क्यों पहने है? गेरुआ धारण करने की एक पात्रता है। बिना अधिकार के अपनी इच्छा से गेरुआ वस्त्र ग्रहण किए हो, यह पता चल जाने पर ऐसे अनेक साधु हैं, जो सहन नहीं करेंगे। चिमटा लेकर भयानक रूप से प्रहार करके ये वस्त्र छीन लेंगे।'**

उन सज्जनों ने कहा-'महाराज, सादा कपड़ा दो-चार दिन में मैला हो जाता है। हाथ में पैसे नहीं हैं जिससे धुलवा लें, इसलिए यह रंग कर लिए।'

ठाकुर ने उनकी बात सुनकर १२ आने पैसे उनके हाथ में देते हुए कहा, **'कपड़े धुलवाने के लिए ये कुछ पैसे लो। आज ही गेरुआ त्याग दो।'**

उन सज्जनों ने वही किया। शीघ्र गेरुआ त्यागकर सादा वस्त्र पहन लिए।

कुम्भ-मेले का प्रसंग

कुम्भ-मेले में असंख्य साधु-संन्यासियों के सम्मिलन की बात सुनकर ठाकुर से पूछा-'गंगा-स्नान करने के लिए ही क्या साधु-

महात्मा कुम्भ-मेले में आते हैं?'

ठाकुर ने कहा-**"कुम्भ-योग पर तीर्थ-स्थान में गंगा-स्नान का जो विशेष महात्म्य है, वह तो है ही; किन्तु कुम्भ-मेले का उद्देश्य केवल स्नान नहीं है। यह मेला तीन वर्ष के अन्तर में एक-एक स्थान पर हुआ करता है। हरिद्वार, प्रयाग, नासिक एवं उज्जैन में कुम्भ-मेला होता है। कुम्भ-योग के उद्देश्य से विविध स्थानों के, यहाँ तक कि पर्वतवासी महापुरुष भी निर्दिष्ट स्थान पर एकत्र होते हैं। साधु-महात्माओं के एक निर्दिष्ट स्थान पर सम्मिलित होने का समय ही कुम्भ-योग है। यह सभी साधु-संन्यासी जानते हैं। साधन-भजन में जो सब संकट-संशय आते हैं, साधु लोग इस समय महात्मा-महापुरुषों के समक्ष उसे व्यक्त करके समाधान कर लेते हैं।"**

"साधन-भजन के विषय में जिसका जो प्रयोजन है, उस विषय में शिक्षा प्राप्त करना ही इस मेले का मुख्य उद्देश्य है। इस समय महापुरुष एकत्र होकर साधु-संन्यासियों एवं देश के साधारण लोगों का धर्म-भाव कैसा है, उसकी खबर लेते हैं। जिस प्रकार की व्यवस्था करने से जिस क्षेत्र के लोगों का कल्याण होता है, वही निश्चित करके वे लोग एक-एक क्षेत्र का भार एक-एक महात्मा के ऊपर अर्पण करके प्रस्थान करते हैं। इस बार चौरासी कोस ब्रजमण्डल का भार उन्होंने रामदास काठियाबाबा को दिया हैं। महापुरुषों ने उनको 'ब्रजविदेही महन्त' की उपाधि दी है। इस प्रकार भारतवर्ष के सभी क्षेत्रों के लिए इसी प्रकार एक-एक महात्मा निर्दिष्ट हैं। देश में धर्म-संस्थापन के लिए उन लोगों को समस्त भार ग्रहण करना पड़ता

है। सर्वदा कठोर परिश्रम करना पड़ता है।”

मैंने तुरन्त पूछा, ‘पूरे बंगाल के धर्म-संस्थापन का भार किसके ऊपर है?’ ठाकुर से यह प्रश्न करने के साथ-साथ ही आँखें बन्द करके वे ध्यानस्थ हो गए। अतएव मुझे भी चुप रहना पड़ा।

शान्तिसुधा के मातृ-शोक में ठाकुर की सान्त्वना

८ अप्रेल, बुधवार। श्रीवृन्दावन में माता ठाकुरानी के देहत्याग के विषय में विस्तारपूर्वक जानने की बड़ी इच्छा हुई, लेकिन ठाकुर से पूछने का सुयोग नहीं मिल पा रहा है, साहस भी नहीं हो पा रहा है। माता ठाकुरानी के देहत्याग के बाद ठाकुर ने गेण्डारिया आश्रम में शान्तिसुधा आदि लोगों को उसकी जानकारी देने के लिए अपने हाथ से जो पत्र लिखा था, उसमें विस्तार से कुछ नहीं लिखा है। उस पत्र को पाकर आश्रम में रहने वाले गुरुभाई-बहिन लोग उस समय शान्तिसुधा को वह घटना बतलाने का साहस नहीं कर पाए। पत्र को गुप्त रख लिए। ठाकुर आकर स्वयं शान्तिसुधा को वह खबर देंगे, उस समय वे सान्त्वना भी दे सकेंगे, यह सोचकर सब गुरुभाई-बहिन चुप रह गए। ठाकुर ने इस प्रकार लिखा है-

“ॐ हरि:”

कल्याणवरेषु,

गत शनिवार, २१ फरवरी, सन् १८९१ ई. को संध्या के समय श्रीमती योगमाया देवी ने अपनी चिरप्रार्थनीय सिद्ध देह प्राप्त कर ली। अविश्वासी लोग इसे मृत्यु कहते हैं; किन्तु एक बार अविश्वास का आवरण हटाकर देखो, योगमाया आज सखीवृन्द

के बीच कितनी अपूर्व शोभा, सौन्दर्य प्राप्त की हैं; श्रीमती शान्तिसुधा से कहना जिससे वह शोक न करे। यह शोक की घटना नहीं है, अत्यन्त आनन्द की बात है। बहुत भाग्य से मनुष्य को यह प्राप्त होता है।

आगामी बुधवार, ४ मार्च को यहाँ उनके नाम से उत्सव होगा। उसके बाद हम लोग ढाका के लिए निकल पड़ेंगे। श्रीमती शान्तिसुधा यदि श्राद्ध करना चाहे, तो आनन्दपूर्वक उत्सव करके दु:खी-कंगाल लोगों को भोजन करा दे।

'माँ शान्तिसुधा! शोक मत करना, आनन्द करना। जितना शीघ्र हो सकता है, हम लोग आ रहे हैं।'

आशीर्वादक

श्री विजयकृष्ण गोस्वामी

इस घटना के कुछ समय पहले शान्तिसुधा को गर्भ के आठवें महीने में सुलक्षणयुक्त एक पुत्र सन्तान की प्राप्ति हुई। लड़के को लेकर शान्तिसुधा परमानन्द से दिन काट रही हैं एवं शीघ्र ही माता-पिता आएँगे, सोचकर प्रसन्नचित्त से उन लोगों के आने के दिन की प्रतीक्षा कर रही हैं। इस समय ठाकुर हरिद्वार से कोलकाता होकर शीघ्र ढाका गेण्डारिया-आश्रम में आ गए। योगजीवन, कुतुबुड़ी, नानीजी आदि सभी ने ठाकुर के साथ आश्रम में प्रवेश किया। पिताजी आ गए हैं, यह सुनते ही शान्तिसुधा ने लड़के को गोद में लेकर दौड़ते हुए ठाकुर के पास पहुँचकर हँसते-हँसते कहा-'बाबा! माँ कहाँ हैं?' ठाकुर ने कहा-**"शान्तिसुधा! मैं तुम्हारी माँ को श्रीवृन्दावन में छोड़ आया। वे नहीं आईं, वहीं रह गईं। हम लोग भी फिर कुछ समय के बाद वहाँ जाएँगे।"**

सुना है, वह सब बातें सुनकर शान्तिसुधा स्पष्ट कुछ समझ नहीं पाई। ठाकुर ने शान्तिसुधा को सामने बैठाकर महाभारत और पुराणादि की कथाएँ सुनाते-सुनाते माता ठाकुरानी के देहत्याग की बात भी कह दी। शान्तिसुधा सुनते ही मूर्च्छित-सी हो गई। ठाकुर ने उनके शरीर पर हाथ फेरकर सचेत किया। शान्तिसुधा बहुत अस्वस्थ थीं, अतएव मातृशोक से उनके मस्तिष्क की दशा विकृत होने की सभी को आशंका थी, लेकिन वैसा कुछ हुआ नहीं। ठाकुर के शीतल स्पर्श से शान्तिसुधा का हृदय इतना शीतल हो गया कि माता के देहत्याग का भयंकर यन्त्रणादायक शोक भी उनको वैसा कुछ स्पर्श नहीं कर पाया।

माता ठाकुरानी के देहत्याग का विवरण

आज मध्याह्न में, भोजन के बाद ठाकुर आम पेड़ के नीचे बैठे। तब मैंने माता ठाकुरानी के देहत्याग की बात पूछी। ठाकुर ने कहा- **“श्रीवृन्दावन जाने से फिर वे नहीं लौटेंगी जानकर ही उनके जाने के पहले कितनी बार पत्र लिखकर मना किया था, लेकिन वह उन्होंने माना नहीं। मेरी अस्वस्थता की बात जानकर तुरन्त वहाँ गईं। श्रीवृन्दावन पहुँचने के बाद भी उनको ढाका भेजने के लिए कितना कौशल किया था, लेकिन किसी प्रकार भी वे यहाँ आईं नहीं। किस दिन देहत्याग होगा, वे पहले ही जान गई थीं। दो बार दस्त होने से ही शरीर अवसन्न हो गया। उस समय परमहंसजी ने मुझसे कहा- ‘तुम शीघ्र कुंज से कहीं और चले जाओ; यहाँ तुम्हारे रहने से उन्हें नहीं ले जा सकेंगे। देहत्याग हो जाने पर कुंज में आना।’ मैं परमहंसजी के आदेशानुसार**

उसी समय आसन से उठ गया। वे पास वाले कमरे में थीं। एक बार देखकर जाऊँ सोचकर, उस कमरे में गया। वे सब समझ गई थीं। उनकी इच्छा थी, उस समय पास में ही रहूँ, इसलिए हाथ पकड़कर खींचते हुए संकेत द्वारा मुझे पास बैठने को कहा; किन्तु परमहंसजी के आदेशानुसार मैं फिर विलम्ब न करके कुंज से चला गया। फिर उनका देहत्याग हो गया, यह जानकर कुंज में आ गया।"

सुना है, ठाकुर माता ठाकुरानी के देहत्याग के कुछ क्षण बाद कुंज में आए। तब वहाँ गुरुभाई-बहिन लोग माता ठाकुरानी की देह को बरामदे में रखकर चीख-चीखकर रो रहे थे। ठाकुर ने उस स्थान पर जाकर योगजीवन से कहा, **"योगजीवन! मृत देह को इतने समय तक रखे क्यों हो? यमुना के किनारे ले जाकर संस्कार कर आओ।"** यह कहकर ठाकुर उस ओर देखे बिना अपना आसन बिछाकर बैठ गए। अन्य दिन जिस प्रकार रहते हैं, ठाकुर उसी प्रकार आसन पर एक भाव में बैठे रहे। कोई अन्तर देखा नहीं गया। योगजीवन, श्यामाकान्त पण्डितजी, श्रीधर, अश्वनी, सतीश आदि गुरुभाइयों ने माँ की परम पवित्र देह को शीघ्र यमुना के किनारे ले जाकर केशीघाट में अग्नि-दाह किया। ठाकुर की इच्छा के अनुसार चिता निर्वाण के बाद योगजीवन माता ठाकुरानी की तीन अस्थियाँ संग्रह करके ले आए। उनमें से एक श्रीवृन्दावन में समाहित किए। अन्य दो हरिद्वार और गेण्डारिया में प्रतिष्ठित करने के लिए रख लिए।

भक्त के विरह से महात्मा लोगों को असाधारण

ज्वाला

माता ठाकुरानी के शोक से नानीजी रात-दिन दग्ध हो रही हैं। कभी-कभी ठाकुर की कृपा से उन्हें माता ठाकुरानी का दर्शन मिला करता है। तभी ठीक हैं, अन्यथा इतने दिन में वे पागल हो जातीं। नानीजी जब उच्च स्वर में 'योगमाया, योगमाया' कहकर रोया करती हैं, तब सारा आश्रम विषाद से भर जाता है। सुनकर हम लोगों का भी शरीर अवसन्न होने लगता है। नानीजी को इस प्रकार रोते देखकर, उनको सान्त्वना देने की चेष्टा करने पर ठाकुर हम लोगों को बाधा देकर कहते हैं-**'शोक के समय चीत्कार करके रो लेने देना चाहिए, उससे शोक घट जाता है। शोक होने पर रो नहीं पाने से कई लोग पागल हो जाते हैं। यहाँ तक कि कई लोग असह्य रोग होने से मर भी जाते हैं!'**

माता ठाकुरानी का नाम लेकर, नानीजी जब हृदयविदारक शब्द के साथ उच्च स्वर में रोया करती हैं, उस समय ठाकुर के श्रीमुख पर किसी प्रकार का भावान्तर होता हैं या नहीं, मैं उसे बड़े ध्यान से लक्ष्य किया करता हूँ। एक दिन भी ठाकुर में किसी प्रकार का परिवर्तन न देखकर मैंने पूछा-जो लोग जीवन्मुक्त महापुरुष हैं, उनको क्या किसी के लिए शोक-कष्ट नहीं होता?

ठाकुर ने कहा-**"हाँ बहुत होता है। भक्त के विरह से वे लोग जो ज्वाला भोगते हैं, उसकी फिर कहीं तुलना नहीं होती। आत्मा के साथ जिनका सम्बन्ध हो जाता है, उनके विरह से जो यन्त्रणा होती है, साधारण लोगों का सामर्थ्य ही क्या है, जो उसकी कल्पना करें। उस ज्वाला की आँच भी सहन करने का**

सामर्थ्य साधारण लोगों में नहीं है। वह बहुत भयंकर है।"

मैंने कहा-जो लोग भक्त या महापुरुष हैं, उन लोगों के शोक का कोई लक्षण क्या बाहर प्रकाशित नहीं होता?

ठाकुर ने कहा-**"कभी होता है तो कभी बिल्कुल भी नहीं होता। महाप्रभु के अन्तर्धान के बाद रूप, सनातन आदि महाप्रभु के भक्तों में बाहर से किसी प्रकार के शोक का चिह्न न देखकर, बहुतों के मन में सन्देह हुआ था कि ये लोग फिर कैसे भक्त हैं? एक दिन एक वृक्ष के नीचे भागवत् पाठ हो रहा था। सभी पाठ सुन रहे थे। अचानक उस वृक्ष का एक सूखा पत्ता रूप गोस्वामी के शरीर पर गिरा। पत्ता शरीर पर पड़ते ही धप् से जल उठा। तब उसे देखकर सभी समझ पाए, महाप्रभु की विरह-अग्नि में उनके भक्तगण किस प्रकार दग्ध हो रहे हैं।"**

मैंने फिर पूछा-ऐसी कितनी ही बातें तो सुनी जाती हैं, लेकिन यथार्थ में क्या वैसा होता है? शोक से मनुष्य की देह से यथार्थ में क्या उत्ताप निकलता है?

ठाकुर ने कहा-**"हाँ निकलता है। श्रीवृन्दावन में उनके (माता ठाकुरानी के) देहत्याग के बाद कुतु अत्यन्त विचलित हो गई थी। उसको सान्त्वना देने के लिए जैसे ही उसकी पीठ पर हाथ फेरा, वैसे ही कुतु 'ऊह-ऊह' करके चमककर उछल पड़ी। मैं तभी समझ गया। कुछ क्षण बाद ही देखा गया, कुतु के पीठ में जलने से फफोले पड़ने के समान पाँच अँगुलियों के दाग पड़ गए हैं।"**

ठाकुर के साथ ये सब बातचीत के समय अन्य लोगों के आ जाने से फिर इस विषय में कुछ पूछने का सुयोग नहीं मिला।

गोसाँईजी के दर्शन हेतु पर्वतवासी अज्ञात महापुरुष

१० अप्रेल, शुक्रवार। श्रीवृन्दावन में माता ठाकुरानी का श्राद्ध-कार्य योगजीवन द्वारा समापन करवाने के कुछ दिन बाद, मार्च महीने के मध्य में ठाकुर हरिद्वार पूर्ण कुम्भ-मेले में गए। कुछ महापुरुषों के साथ भेंट करना एवं माता ठाकुरानी की अस्थि को गंगा-गर्भ में समाहित करना ही ठाकुर का वहाँ जाने का उद्देश्य था। अतः वे चार-पाँच दिन से अधिक वहाँ रुके नहीं। हरिद्वार पहुँचते ही ठाकुर गुरुभाई-बहिनों को लेकर ब्रह्मकुण्ड के घाट पर गए। वहाँ स्नान के बाद उन्होंने योगजीवन से माता ठाकुरानी की एक अस्थि गंगा के भीतर समाहित करवा दी।

कनखल में नानकशाही महन्त श्रीरामप्रकाशजी के आश्रम में ठाकुर के रहने की बात थी, परन्तु वहाँ सुविधा नहीं होगी सोचकर ब्रह्मकुण्ड के पास गंगा के किनारे एक पण्डे के घर में ठहरे।

एक दिन ठाकुर साधु-दर्शन के अभिप्राय से साथियों को लेकर मेले में गए। उस समय केवल लँगोटी पहने हुए एक पर्वतवासी संन्यासी ठाकुर को देखकर दूर से ही भीड़ के मध्य अबाध गति से, बड़े उल्लसित भाव से, नृत्य करते-करते ठाकुर के सामने आए एवं बारम्बार उच्च स्वर में कहने लगे-'आज मुझे मिला रे मिला, आज मुझे मिला रे मिला।' डबडबाई आँखों से देखते हुए उच्च स्वर में इस प्रकार कहते-कहते हाथ उठाकर नाचते-नाचते कुछ एक बार ठाकुर की परिक्रमा करके एकाएक अदृश्य हो गए। किस प्रकार कहाँ चले गए, कोई उन्हें खोज नहीं पाया।

अन्य एक जटाधारी उदासी महापुरुष लगभग उलंग अवस्था में थोड़े अन्तर में रहकर ठाकुर का दर्शन करते ही लड़खड़ाते हुए दो-चार कदम अग्रसर होकर, स्तम्भ की भाँति खड़े रहे। लगातार अश्रु बहने से उनका वक्षःस्थल भीगने लगा। बारम्बार वे सिहरने लगते। हाथ जोड़कर काँपते हुए ठाकुर की ओर एकटक देखते रहे। गद्गद भाव से अस्फुट स्वर में बार-बार कहने लगे-'मेरा सब पूरण हो गया, आज हम धन्य हो गए। धन्य हो गए।' कुछ क्षण बाद ही श्रीधर ने उनके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम करके कहा-'आशीर्वाद दीजिए महाराज, आशीर्वाद दीजिए।' महापुरुष ने श्रीधर से कहा-'अहोभाग्य तुम लोगों का, अहोभाग्य तुम लोगों का! भगवान् का संग पाए हो। दर्शन ही बहुत दुर्लभ है। सब समय पीछे-पीछे रहना। संग कभी नहीं छोड़ना। धन्य हो गया! धन्य हो गया! '

इन सब महात्माओं के विषय में ठाकुर से पूछने पर उन्होंने कहा-**"ऐसे महापुरुष लोकालय में कभी नहीं आते। पहाड़ों में ही रहते हैं। उन लोगों को देखते ही लगा मानो उनका हमारे साथ कितना पुराना परिचय है। प्राणों का योग जिनके साथ है, बहुत समय बाद भी भेंट होने पर उन लोगों को पहचान लिया जाता है। बड़े ही आत्मीय लगते हैं।"**

--: ०:--

(द्वितीय खण्ड समाप्त)

श्री श्री गुरुदेवाय नमः।

श्री श्री सद्गुरुसंग

तृतीय खण्ड

ठाकुर का श्रीवृन्दावन से गेण्डारिया आगमन और आश्रम की तत्कालीन दशा।

श्री श्रीगुरुदेव (प्रभुपाद श्री श्रीविजयकृष्ण गोस्वामीजी) १२९६ बंगला सन् के पौष महीने से श्रीवृन्दावन धाम में एक वर्ष से अधिक रहे। यहीं पर माता ठाकुरानी (श्रीमती योगमाया देवी) ने १० फाल्गुन शुक्ल, १२९७ बंगला सन् को देहत्याग किया था। इसके तुरंत पश्चात् ही ठाकुर, अपनी सास (मुक्तकेशी देवी) अपने पुत्र श्रीयोगजीवन गोस्वामी, कन्या कुतुबूडी (श्रीमती प्रेमसखी) और अन्यान्य कतिपय गुरुभाई-बहनों को साथ लेकर, श्रीवृन्दावन से हरिद्वार में पूर्ण कुम्भ मेले में उपस्थित हुए। वहाँ वे कुछ ही दिन तक रुके और योगजीवन के द्वारा माता ठाकुरानी के अस्थि ब्रह्मकुण्ड, गंगागर्भ में समाहित करवाने के बाद, ढाका के गेण्डारिया आश्रम को रवाना हो गये।

कुछ दिन पहले ही ठाकुर ने मुझको सूचना दे दी थी-**हम शीघ्र ही गेण्डारिया जा रहे हैं। सुविधा हो तो तुम अभी से वहाँ जाकर रह सकते हो।** मुझे यह पता न था कि ठाकुर किस दिन और किस समय पहुँचेगे। मैं बड़ी उत्कण्ठा के साथ घर में रहते हुए ही, ठाकुर के ढाका पहुँचने की प्रतीक्षा कर रहा था। आश्चर्य की बात यह है कि

एकाएक १३, चैत्र को ठाकुर के लिए मेरे प्राण बहुत ही व्याकुल हो उठे। बस, मैं उसी क्षण एक महीने के लायक भोजन की सामग्री एकत्र करके छोटे दादा (श्रीशारदाकान्त बन्द्योपाध्याय) के साथ १४ चैत्र को गेण्डारिया जा पहुँचा। वहाँ जाकर सुना कि ठाकुर कल ही यहाँ पधारे हैं।

कोई दो वर्ष के बाद ठाकुर ढाका आ रहे हैं, यह बात इससे पहले ही सब जगह प्रचारित हो गई थी। अतएव अनेक स्थानों से शिष्य और शिष्याएँ ठाकुर के दर्शन करने के लिए गेण्डारिया-आश्रम आकर उपस्थित होने लगे। जिस दिन ठाकुर गेण्डारिया-आश्रम पधारे उसके दूसरे दिन से ही दीक्षा-स्रोत प्रवाहित होने लगा। नहीं कह सकता कि चैत्र के अवशिष्ट कुछ दिनों में कितने लोगों ने ठाकुर से दीक्षा प्राप्त की। बरीशाल, फरीदपुर और कलकत्ता आदि स्थानों के गुरुभ्राताओं का समागम होने से अब आश्रम में तिल रखने की भी जगह नहीं है। आश्रम से लगे हमारे सतीर्थ श्रद्धेय श्री कुंजविहारी घोष, श्री राधारमण गुह, शशि बाबू और सतीश बाबू आदि सबके घरों में भी खूब भीड हो गई है। आश्रम के दक्षिण की ओर के चौकोर छावनी वाले कमरे में एक लम्बा बिस्तर बिछाकर और उस घर के दोनों ओर के बरामदों में चटाइयाँ बिछाकर कई सम्भ्रान्त गुरुभ्राता रात बिताते हैं। ठाकुर का आसन पूर्व ओर वाले कमरे है। वहाँ भी कुछ गुरुभ्राता रात को रहते हैं। छोटे दादा, कुंजबिहारी गुह, सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय और मैंने, कहीं स्थान न मिलने पर, भण्डार घर के एक कोने में किसी प्रकार रात बिताने का प्रबन्ध कर लिया है।

रात बीतते ही खोल और करताल बजना आरम्भ हो जाता है।

सभी गुरुभाई मिल प्रातःसंकीर्तन करने लगते हैं। उसी समय तीन-चार गुरुभाई झाड़ू लेकर सारे आश्रम को साफ करते हैं। कुछ लोग गोबर और पानी लेकर आम के पेड़ के नीचे ठाकुर की आसन-कुटी, आश्रम के आँगन चबूतरों और बरामदों आदि को सूर्योदय के पहले ही लीप डालते हैं। सभी गुरुभाई अपनी अपनी रूचि के अनुसार ठाकुर की सेवा का कोई न कोई कार्य लेकर बड़े आनन्द से दिन बिताते हैं। बड़े समारोह की पूजा अथवा महोत्सव आदि में जिस प्रकार बड़ी उमंग में दिन बीत जाता है, उसी प्रकार हम लोगों के दिन बीत रहे हैं। किन्तु ठाकुर की बड़ी बेटी श्रीमती शान्तिसुधा, कई महीने पहले पुत्र (दाऊजी) के जन्म लेने के समय से ही अत्यन्त-पीड़ित थी, अब मातृवियोग की सूचना मिलने से वे और भी दुःखी हो गई। नानी माँ कन्या के वियोग से अत्यन्त शोकातुर रहने पर भी, गुरुभगिनियों के साथ प्रातःकाल से ग्यारह बजे तक आश्रमवालों के लिए भोजन का प्रबन्ध करने में लगी रहती हैं। योगजीवन की स्त्री पचास-साठ मनुष्यों के लिए रसोई प्रतिदिन दोनों समय बड़ी प्रसन्नता से, बहुत अच्छी तरह बनाया करती हैं। यह देखकर सभी को विस्मय होता है।

प्रातःकाल ७ बजे ठाकुर चाय पीते हैं, फिर श्रीश्री चैतन्यचरितामृत एवं सिक्खगुरुओं के उपदेश और भजन से संग्रह 'गुरुग्रन्थ साहब' का पाठ होता रहता है। कोई ग्यारह बजे तक प्रतिदिन ठाकुर के कमरे में भीड़ रहती है। भोजन करने के पश्चात् दोपहर को ठाकुर का आसन आम के वृक्ष के नीचे बिछा दिया जाता है। फिर चार बजे तक ठाकुर किसी से बातचीत नहीं करते, ध्यान लगाये रहते हैं। इसलिए अधिकांश गुरुभ्राता इस समय अपने

अपने स्थान पर जाकर विश्राम करते हैं। ठाकुर के समीप एक व्यक्ति का बने रहना आवश्यक समझकर, मैं ही पाँच बजे तक उनके पास बैठा रहता हूँ। पहली वैशाख से ठाकुर ने मुझे आज्ञा दी थी कि भोजन हो जाने के बाद प्रतिदिन स्व0 कालीप्रसन्न सिंह के महाभारत का, उनके पास बैठकर पाठ किया करूँ। मैं जिस समय महाभारत सुनाता हूँ, उस समय कुछ गुरुभ्राता लोग आम के नीचे आकर बैठ जाते हैं, किन्तु महाभारत का पाठ समाप्त होने पर सभी चले जाते हैं। अतएव दोपहर से पाँच बजे तक आम्रवृक्ष के नीचे प्रायः एकान्त रहता है। इसके बाद धीरे-धीरे भीड़ होने लगती है। मैं, उस समय, ठाकुर की आज्ञा के अनुसार अपने लिए भोजन बनाने चला जाता हूँ। पाँच बजे से लेकर शाम तक ठाकुर आराम से सबके साथ शास्त्र , सदाचार, धर्म और साधन आदि विषयों पर बातचीत आदि किया करते हैं, सन्ध्या होने से कुछ समय बाद सभी गुरुभाई एकत्र होकर बहुत से 'खोल' और 'करताल' बजाकर जोर-जोर से संकीर्तन करने लगते हैं। इस संकीर्तन के चित्र को प्रकट करने योग्य भाषा मेरे पास नहीं है। खोल और करताल की ध्वनि, संकीर्तन का सम्मिलित रव आश्रम को कंपित देता है। महाभाव की तरंग प्रबल वेग से बार-बार उठकर, सभी आश्रमनिवासियों को बिलकुल अभिभूत कर डालती है। हम लोगों को पता ही नहीं चलता कि लगभग तीन घंटे का समय किस तरह बीत जाता है। संकीर्तन के अंत में ठाकुर संदेश, बताशा, पेडा, बरफी आदि मिष्ठान्न, स्वयं निवेदन करके, 'हरि की लूट' लुटाते हैं। इसके बाद सब लोग अपने-अपने स्थान पर चले जाते हैं। फिर भोजन करके ठाकुर दो घंटे तक वहाँ उपस्थित शिष्यों के साथ बातचीत करते हैं और तब अवशिष्ट

रात्रि चार बजे तक एक भाव में ध्यान लगाये बैठे रहकर बिता देते हैं। फिर कोई आधे घण्टे तक विश्राम करते हैं। आश्रम में सभी के दिन और रातें इसी प्रकार बीत रही हैं।

गंगा का प्रस्तर –गौरीशंकर।

वैशाख १२९८ शुक्रवार। आज महाभारत पढ़ चुकने पर तीसरे पहर आम्रवृक्ष के नीचे ठाकुर के पास बैठा हुआ हूँ, इसी समय गुरुभगिनी, श्रीमती मनोहरा दीदी ने आकर अपनी एक प्रत्यक्ष घटना ठाकुर को बताई। उसको सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। माता ठाकुरानी के शरीर छोड़ने से कुछ दिन पहले मनोहरा दीदी श्रीवृन्दावनधाम गई थीं। इसी मास के प्रारम्भ में ठाकुर जब हरिद्वार पूर्ण कुम्भ के मेले गये तब अन्यान्य गुरुभ्राताओं और गुरुभगिनियों के साथ मनोहरा दीदी भी वहाँ गई थीं। हरिद्वार में गंगागर्भ में और रेत के मैदान में अच्छे-अच्छे असंख्य छोटे-छोटे पत्थर पड़े हैं। उनमें से गोल-मटोल सफेद पत्थर में लाल, नीले, हरे और काले रंग के चक्र, माला की तरह लिपटे से, बहुत अच्छी रीति से अंकित पत्थर पाये जाते हैं। स्नान के समय मनोहरा दीदी एक दिन अनेक रंगों के चक्र से युक्त एक गोल शिला उठा लाई थी। गेण्डारिया में आकर उन्होंने वह शिला शयन कक्ष में टेबिल के ऊपर कागज पर रख दी, किन्तु इस समय उस शिला के कारण वे बड़ी उलझन में पड़ गई हैं। उन्होंने ठाकुर के पास आकर कहा, “हरिद्वार से आते समय में एक सुन्दर गोल सफेद चक्रांकित पत्थर लाई थी। अब तक उसे टेबिल पर कागज दबाकर रख दिया है। न जाने क्यों, उसमें कभी कभी महादेव और भगवती को देखती हूँ। पिछली रात को

सुना, पत्थर मुझसे कह रहा है ‘गंगाजी में बड़े आनन्द से थे, इस दशा में हमें यहाँ लाकर क्यों रख दिया है?’ हमें बड़ा क्लेश हो रहा है।” समझ में नहीं आता कि ऐसा क्यों देखती और सुनती हूँ। ठाकुर ने जरा चुप रहकर कहा-**हरिद्वार के गंगागर्भ के हर पत्थर को गौरीशंकर कहते हैं। उसमें महादेव और पार्वती विराजते हैं। इस शिला को बिना पूजा किये नहीं रखना चाहिये।**

दीदी ने पत्थर लाकर मुझे दिया और कहा, ‘भैया, मैं अब इस पत्थर को न रख सकूँगी। इसका जो चाहो सो करो।’ मैंने पत्थर लेकर रख लिया। घर पर गोपालजी हैं, यह शिला भी उन्हीं के साथ पूजित होगी।

गोवर्द्धन की शिला-गिरिधारी गोपाल।

हरिद्वार के गंगागर्भ के प्रस्तर में महादेव और भगवती के प्रत्यक्ष दर्शन की बात सुनकर श्रीवृन्दावन धाम की एक और अद्भुत घटना का स्मरण हो आया। हम लोग जिस समय ठाकुर के साथ श्रीवृन्दावन धाम में थे, उस समय एक दिन गुरुभाई स्वामीजी (* स्वामीजी-श्रीहरिमोहन चौधरी-घर धामराई, जिला ढाका। इन्होंने कुछ समय तक ढाका गवर्नमेंट कालेजियट स्कूल में मास्टरी की थी। इनमें बचपन से ही धर्मोन्मत्तता थी। वे जैसे -जैसे बड़े होते गये वैसे वैसे धर्मोन्मत्तता भी धीरे-धीरे बढ़ती गई। छोटी उम्र से ही बहुत चेष्टा करके भी वे वास्तविक धर्म को प्राप्त नहीं कर पाये, इससे वे बिलकुल हताश हो गये। स्वामीजी से सुना है कि उस समय उन्होंने मानसिक क्लेश सहने में असमर्थ होकर, एक दिन बहुत ही निर्जन स्थान में आत्महत्या करने का प्रयत्न किया था। ठीक उसी समय

अकस्मात् ठाकुर ने दर्शन देकर उन्हें आश्वासन दिया था। ठाकुर से दीक्षा लेने के कुछ समय पश्चात् स्वामीजी सरकारी नौकरी छोड़कर घर से निकल पड़े। फिर ठाकुर से संन्यास आश्रम के कतिपय नियमों को ग्रहण करके उदास भाव से अनेक स्थानों में पर्यटन करते-करते श्रीवृन्दावन धाम पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने बहुत समय तक निवास किया। उनके जीवन की जिन अद्भुत घटनाओं को मैंने देखा है, उनका विवरण मेरी पिछले तीन वर्षों की डायरी में विद्यमान है।) गोवर्द्धन गये थे। इन्होंने पहले ही सुन रखा था कि भगवान् श्रीकृष्ण गिरिधारी गोपाल रूप से उस पर्वत की प्रत्येक शिला में जाग्रत् रूप से विराजमान रहते हैं। इसी से वे श्रीवृन्दावन आते समय छोटी-छोटी सुन्दर बारह शिलाएँ अपने झोले में भर कर लाये थे। गोवर्द्धन की शिलाओं को ब्रजवासी बाहर नहीं ले जाने देते, इससे स्वामीजी इन शिलाओं को झोले में छिपाये हुए थे। ठाकुर के बगलवाला कमरा ही गुरुभ्राता श्रीधर का शयनकक्ष था। स्वामीजी ने श्रीधर के बगल में ही आसन लगा लिया था। वे प्रायः यत्र-तत्र घूमते रहते थे, झोला-झोली सदा उनके आसन पर ही पड़े रहते थे। एक दिन स्वामीजी सुबह परिक्रमा के लिए कुंज से बाहर निकले। श्रीधर दोपहर को भोजन करके अपने आसन पर बैठे हुए थे, अकस्मात् उन्होंने देखा कि स्वामीजी के आसन के ऊपर कई बालक खेल रहे हैं। वे श्रीधर से कहने लगे, 'हम लोग गोवर्द्धन पर बड़े आराम से रहते थे। हमें यहाँ लाकर क्यों कष्ट दे रहे हो? न तो नहलाते-धुलाते हो और न कुछ खाने पीने को देते हो। हमें इस तरह और कितने दिनों तक रखोगे?' ये बातें कहकर वे बालक अकस्मात् अदृश्य हो गये। श्रीधर जाग्रत् अवस्था में यह लीला देखकर चौंक

गये। कुछ कारण समझ में न आने पर, तुरन्त ठाकुर के पास जाकर उन्होंने सब हाल कह सुनाया।

ठाकुर ने श्रीधर से कहा-**खाने के लिए कुछ मिठाई और एक लोटा साफ जल अभी लाकर गिरिधारी गोपालों को निवेदन कर दो। हरिमोहन के झोले के भीतर गोवर्द्धन की शिलाएँ हैं, ढूँढोगे तो मिल जायेंगी।**

श्रीधर ने लगे हाथ स्वामीजी का झोला खोला तो बारह शिलाएँ देखकर वे दंग हो गये। उन्होंने चटपट नैवेद्य लाकर गिरिधारी गोपालों को निवेदन कर दिया। स्वामीजी सन्ध्या समय जब कुंज आये तब ठाकुर ने घटना का उल्लेख करके उनसे कहा-**रीति के अनुसार सेवा-पूजा न की जा सके तो इन शिलाओं को कदापि नहीं लाना चाहिये, कल सुबह ही गोवर्द्धन में जाकर इन्हें रख आना।**

स्वामीजी भी दूसरे दिन भोर होते ही झोला लेकर गोवर्द्धन चले गये। शिला के माहात्म्य को सोच-सोचकर वे रास्ते भर रोते गये। सब शिलाओं को वे किसी तरह वहाँ नहीं छोड़ सके। दस शिलाएँ तो उन्होंने गोवर्द्धन पर रख दी और बाकी दो को कण्ठ में धारण करने के लिए साथ लेते आये और कुछ समय तक उनकी सेवा-पूजा करने के बाद, एक शिला सतीश (सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय-घर ढाका, बाधिया ग्राम में। इनकी सांसरिक, घर-गृहस्थी की दशा अच्छी न थी, इससे पढ़ाई के दिनों में इन्हें बहुत क्लेश सहने पड़े थे। बहुत सी दुर्गति झेलने पर भी इन्होंने अपने अध्यवसाय से एन्ट्रेस और एफ.ए. परीक्षाओं में गवर्नमेंट की श्रेष्ठ छात्रवृत्ति प्राप्त कर बी.ए. तक अध्ययन किया था। किन्तु किसी आकस्मिक कारण

से परीक्षा देने में विघ्न आ पड़ा। अंग्रेजी और संस्कृत भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था। पढ़ने-लिखने के साथ ही सतीश की धर्म प्राप्त करने की आकांक्षा प्रबल हो उठी। उपासनाशील, निष्ठावान, ब्राह्म लोगों की संगति से इन्हें ब्राह्मधर्म के प्रति अनुराग हो गया। फिर इन्होंने यज्ञोपवीत का परित्याग करके, ब्राह्मधर्म को ग्रहण कर लिया। इस समय सतीश की सत्यनिष्ठा, सरलता उपासना का भाव और असाधारण उत्साह उद्यम देखकर हम लोग विस्मित हो गये थे। ये जिसे सत्य समझते थे उसी को, छोटा-बड़ा न मानकर कहते और करते थे। उसी से हम लोग इन्हें पागल सतीश कहा करते थे। १९४४ संवत् के अगहन में इनको ठाकुर से दीक्षा मिली थी। ठाकुर के साथ ये पुरी गये थे। जब ठाकुर के शीघ्र ही शरीर छोड़ने का सतीश को पता चला तब उन्होंने श्रीश्री जगन्नाथजी के चरणों में हाथ जोड़कर, आँखों में आँसू भरे हुए यह प्रार्थना की कि ठाकुर के शरीर-त्याग से पहले ही मेरा शरीर छूट जाए। उन्होंने ठाकुर से भी उस समय व्याकुल होकर अपनी उक्त प्रबल आकांक्षा बार-बार प्रकट की। ठाकुर ने एक दिन सतीश से कहा-जगन्नाथजी ने तुम्हारी प्रार्थना मंजूर कर ली। इसके कुछ दिन बाद ही दो दिन के ज्वर में संवत् १९५५ कार्तिक शुक्ल ९ मंगलवार को श्रीश्रीजगद्धात्री पूजा के दिन, रात को लगभग डेढ़ बजे सतीश को अभीष्ट श्रीधाम प्राप्त हो गया। इनके जीवन की अत्यन्त अद्भुत घटनाएँ मेरी आगे-पीछे की डायरी में लिखी हुई हैं।) को दे दी। सतीश प्रतिदिन बड़ी श्रद्धा के साथ उसकी पूजा किया करते हैं। स्वामीजी ने बची हुई एक शिला को सोने के तावीज में भर कर दाहिने हाथ में पहन लिया है। अब वे जल और तुलसी के द्वारा

उसकी पूजा प्रतिदिन किया करते हैं।

सतीश पर मायाचक्री का उत्पीड़न।

७ वैशाख, १९ अप्रैल रविवार। भोजन के पश्चात् ठाकुर के आम के वृक्ष के नीचे बैठने पर मैं भी उनके समीप, सदा की भाँति दो घण्टे तक महाभारत सुनाकर बैठा रहा। थोड़ी देर में श्रीधर और सतीश आकर वहीं आकर बैठ गये। ठाकुर ध्यानमग्न थे, थोड़ी देर में ध्यान भंग होने पर उन्होंने श्रीधर और सतीश से बातचीत आरम्भ की।

ठाकुर ने सतीश से कहा-**सतीश, श्रीवृन्दावन जाते समय रास्ते में क्या तुमने मायाचक्र देखा था? घटना को तुम्हारे मुँह से नहीं सुना है | सुनाओ तो।**

ठाकुर कोई बात सतीश को बुलाकर पूछते तो सतीश की प्रसन्नता का ठिकाना न रहता। ठाकुर की आज्ञा पाकर सतीश आज बड़े उत्साह के साथ हाथ और सिर हिलाकर कहने लगे- "पिताजी की मृत्यु की खबर मिलने से मैं बहुत उदास हो गया। मुझे चारों ओर अंधेरा सा दीखने लगा। सब कुछ असार समझकर उसी समय (हेड मास्टरी) नौकरी छोड़ दी और पैदल ही श्रीवृन्दावन के लिए चल पड़ा। यह जानकर कि आप श्रीवृन्दावन में हैं, मैंने यह संकल्प कर लिया कि मैं वहाँ पर आपके साथ रहूँगा। समस्तीपुर से रवाना होकर रास्ते में इलाहाबाद के पास एक स्थान पर कुछ साधु-संन्यासियों से भेंट हुई। कुछ समय तक उन लोगों के साथ रहने की मुझे इच्छा हुई। एक अत्यन्त तेजस्वी संन्यासी को देखकर मैं उसके पास गया। उसने बड़ी आवभगत के साथ मुझे बैठाया और बातचीत के सिलसिले में उसने मेरा सब हाल मालूम कर लिया। मैं

अंग्रेजी लिख-पढकर भी उदासीन भाव से सब छोड़कर निकल पड़ा हूँ, यह जानकर साधु बहुत खुश हुआ। उसने मुझसे कहा-‘तुम्हारा जी चाहे तो कुछ दिन यहीं रहो। रास्ता चलते-चलते मैं बहुत थक गया था, साधु ने भी मेरी खूब आवभगत की। इसे भगवान की ही कृपा समझकर मैने साधु के यहाँ दो-चार दिन रुकने का विचार कर लिया। कई दिन के बाद जब मैंने वृन्दावन जाना चाहा तो साधु ने मुझसे कहा-‘अरे कहाँ जाओगे? हमारे ही साथ रहो, थोड़े दिनों में सिद्ध बन जाओगे।’ मैंने साधु से पूछा-‘महाराज क्या आप सिद्ध है?’ साधु ने बड़े जोश के साथ मुझसे कहा-‘तब क्या? तुमने हमको क्या समझा?’ मैंने कहा-तो क्या आप मुझे कुछ सिद्धि (करामात) दिखा सकते हैं? साधु ने कहा-‘हाँ, देखोगे?’ अब उसने मेरे माथे से अपनी कुछ अँगुलियों का स्पर्श कराके हाथ घुमाते-घुमाते तीन बार चुटकी बजाकर कहा, ‘लो अब मायाचक्र देखो।’ उस समय मुझे न जाने क्या हो गया। मेरी विचित्र दशा हो गई। मैं अनेक अलौकिक दृश्य देखने लगा। देखा-चन्द्र, सूर्य, ग्रह, उपग्रहों समेत सारा ब्रह्माण्ड पहिये की तरह घूम रहा है। सैंकड़ों ग्रहों और उपग्रहों की उत्पत्ति हो रही है, उनकी वृद्धि हो रही है और फिर उनका ध्वंस हो रहा है। मायाचक्र में पड़कर असंख्य जीव-जन्तु स्वर्ग को जा रहे हैं, आनन्द कर रहे हैं, फिर क्रम से वे ही चक्कर खाते-खाते सैकड़ों भयानक नरक कुण्डों में आकर गिरते हैं, चिल्लाते हैं और भस्म होते हैं। नहीं कह सकता कि तीन दिन और तीन रात तक इस मायाचक्र में मैंने क्या-क्या देखा। यह सब देखकर कभी तो आनन्द से मुग्ध हो गया और कभी मारे डर के सिकुड़ गया। जब तक मायाचक्र देखता रहा, तब तक इष्ट मन्त्र का

स्मरण एक बार भी नहीं हुआ, किन्तु एकाएक चौथे दिन ज्योंही इष्ट मन्त्र का स्मरण हुआ, त्योंही मायाचक्र अदृश्य हो गया। इस अद्भुत घटना के कारण मैं साधु को एक असाधारण सिद्ध महापुरुष समझने लगा और यह सोचकर कि यदि यह संन्यासी मेरे ऊपर दयालु हो जाए तो मेरा कल्याण विशेष रूप से होगा, मैं उसकी सेवा में जुट गया। अब वह भी मुझसे बार-बार कहने लगा कि संन्यास ग्रहण करके हमारे ही साथ रहा करो मुझे विश्वास हो गया कि यह संन्यासी चाहे तो मुझे आसानी से सिद्ध बना सकता है। इसीलिए मैं उससे संन्यास लेकर कुछ दिनों तक वहीं टिका रहा।

एक दिन प्रातःकाल संन्यासी ने मुझसे कहा-चलो, अब यहीं नहीं रहेंगे।' यह सुनते ही मैं उसके साथ चलने को तैयार हो गया। संन्यासी ने अपना आसन लपेटकर, अन्यान्य वस्तुओं के साथ एक बडा-सा बोझ बनाया और मेरे सिर पर रख दिया। मैं उसको लेकर संन्यासी के पीछे-पीछे चलने लगा। कुछ देर में हम लोग एक बड़े से मैदान के पास पहुँचे। मैदान इतना बड़ा था कि उसका ओर-छोर साफ दिखाई न देता था। संन्यासी ने कहा कि इस मैदान को पार करना है। उस समय दस बजे होंगे। हम लोग मैदान में चलने लगे। हम दोनों के सिवा साथ में और कोई नहीं था। मैदान में भी कोई नहीं था। संन्यासी तेजी से चलने लगा। बहुत बड़े बोझ को सिर पर रखे हुए कड़ी धूप में मैं भी उसके पीछे-पीछे दौडने लगा। मैं यों ही कमजोर था, इतनी मेहनत करने से मैं बहुत ही पस्त पड़ गया। मैंने संन्यासी से कहा कि महाराज, जरा धीरे-धीरे चलिए तो वह कुढ़कर बड़े कठोर स्वर में बोला-'अरे, चला चल' तब मैंने सोचा, यह कैसा साधु है? क्लेश के मारे मेरे तो प्राण निकले जाते

हैं और इसे जरा भी दया नहीं आती।' फिर सोचा, ये तो सिद्धपुरुष है। शायद मेरी परीक्षा ले रहे हैं। यह विचार आते ही मन में उत्साह आ गया, फिर थोड़ी देर तक खूब चला, अन्त में बिलकुल हैरान हो गया। फिर मैंने उससे कहा कि 'महाराज बोझा बहुत भारी है। जब मैं नहीं था, तब इस बोझ को कौन लादकर चलता था?' साधु ने उत्तर दिया-'अरे साले, भूत सिद्ध हैं, हमारा सब सामान वही ले जाता है।' साधु की बात सुनकर मेरा माथा गरम हो गया। बहुत क्रोध आया। उसी क्षण सिर से बोझा पटक दिया और चिल्लाकर कहा-अरे साले भूत का बोझा मेरे सिर पर किसलिए? पटक देने से साधु की बहुत सी चीजें टूट-फूटकर बेकार हो गई। यह देखकर वह बमका और बुरी-बुरी गालियाँ देता हुआ चिमटा तानकर मुझे मारने के लिए झपटा। तब मैंने सोचा कि 'ये तो महापुरुष है, इनकी मार सह लेने से मेरा कल्याण ही होगा। इसलिए मैं भागा नहीं, वहीं पर खड़ा हो गया। अब साधु अपने लोहे के बडे चिमटे से मुझे जोर-जोर से पटापट मारने लगा। मैं सोचने लगा कि मेरे अन्तःकरण में विषम रिपुओं की उत्तेजना है, साधु दया करके उन्हीं को मारकर खदेड़ रहे हैं। इसलिए साधु जब मुझे पटापट मारने लगा और मैं एक, दो, तीन, चार-यों गिनने लगा। छः बार चिमटे की चोट सह लेने पर भी जब उसने सातवीं बार मारने के लिए चिमटा ताना तब मैं 'दूर साले है, शत्रु तो छः हैं' कहकर भाग खड़ा हुआ। गाली सुनकर साधु और भी नाराज हो गया। चिमटा लेकर भंयकर यमदूत की तरह वह मेरे पीछे दौड़ पड़ा। मैंने समझ लिया कि अब ये मुझे पा जाएगा तो जान ले लेगा। इससे बेतहाशा भागने लगा। जब मैंने देखा कि साधु समीप आ गया और पकड ही लेगा, तब प्राण बचाने

के लिए दूसरा उपाय न देखकर सामने एक जंगल में अंधा पुराना कुआँ मिलते ही मैं उसी में कूद पड़ा। साधु अब क्या करता, इससे लौट आया। कुएँ में पानी बहुत थोड़ा था, किन्तु उससे बाहर निकलने का उपाय न देख, मैं उसी में पड़ा रहा। चिमटे की चोटें लगने से शरीर में कई जगह घाव हो गये और रक्तस्राव लगा। इतना अधिक कष्ट होने लगा कि मैंने समझा कि अब प्राण निकलने को ही हैं। अब मृत्यु का निश्चय हो जाने पर, मैं बड़ी एकाग्रता से ठाकुर का नाम जपने लगा। दिन डूबने से जरा पहले कुछ चरवाहे वहाँ पर आ गये। उन लोगों ने एक दूसरों की धोतियाँ बाँधकर कुएँ में लटका दी। उसको पकड़कर वे नीचे उतरे और बड़ी कुशलता से उन्होंने मुझे कुएँ से बाहर निकाला। मुझमें चलने-फिरने की शक्ति नहीं थी। इससे वे मुझे अपने कन्धे पर बैठाकर मैदान के एक बड़े से पेड़ के नीचे ले गये और वहीं उतारकर चले गये। जब वे जाने लगे तो मैंने पूछा कि तुम लोगों को मेरा पता किस तरह लगा था। उनमें से एक ने कहा, 'साधु ने तुमको खदेड़ा था और तुम कुएँ में कूद पड़े थे, तभी हम लोगों ने बड़ी दूर से देख लिया था।' अब वे लोग चले गये। मैं पेड़ के नीचे लेटा रहा। साधु ने मुझे इतना मारा था कि दर्द के मारे मुझे जोर से ज्वर चढ आया। दो दिन तक तो मैं करवट भी नहीं बदल सका। सारे बदन में बहुत दर्द था। तीसरे दिन भूख, प्यास और शरीर की पीड़ा, इतनी असह्य हो गई कि ऐसा जान पड़ा मानो अब मृत्यु आ गई। अब चक्कर आने लगा और चारों अंधेरा दीखने लगा। समझ में न आया कि क्या करूँ। तब सामने के पेड़ को जोर से पकड़कर मैंने रोते-रोते कहा-हे वृक्ष, मेरी जान निकलने को है, इस समय एक फल देकर मेरी रक्षा करो।' यह प्रार्थना करके

मैं बार-बार वृक्ष को प्रणाम करने लगा। भगवान की कैसी अद्भुत दया है! अकस्मात् उसी समय टप् से एक फल मेरे सामने आ गिरा। फल लाल रंग का गोल, बेल की तरह बड़ा था। फल मिल जाने से मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। जरा स्थिर होकर मैंने वह ठाकुर को निवेदन किया और फिर उसे खा लिया। ऐसा ठण्डा और मीठा फल मैंने जीवन में कभी नहीं खाया। फल खाने के बाद पाँच-छ:मिनिट में मेरी सारी थकावट दूर हो गई, शरीर में नई जान सी आ गई। अब मैं पता लगाने लगा कि यहाँ पर यह फल कहाँ से आया? मैंने बड़ी बारीकी से छानबीन की, वृक्ष में न तो एक भी फल था और न फूल ही। पेड फैला हुआ, बरगद की तरह था। फल खाने से ऐसी स्फूर्ति आ गई कि मैं सहज ही तीन कोस पैदल चलकर एक गाँव में पहुँच गया। मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। फिर मुझे वह साधु नहीं मिला।

ठाकुर ने कहा-**वह मिलता कहाँ? उसका सब कुछ उसी दिन खो गया। उसकी सिद्धि आदि सब गायब हो गई। अब तो वह पागल की तरह मारा-मारा फिरता है। यंत्रणा के मारे दिन रात छटपटाता रहता है। अब उसके पास कुछ नहीं है। सब कुछ नष्ट हो गया।**

यह सब सुनकर मैंने पूछा-'सिद्ध हो जाने पर भी क्या मनुष्य इतना निष्ठुर होता है?'

ठाकुर ने कहा-**होता क्यों नहीं है? सिद्ध हो जाने से ही क्या वह धर्मात्मा हो गया? सिद्ध से तुम लोग क्या समझते हो? भूतसिद्धि, प्रेतसिद्ध, ऐश्वर्यसिद्ध, सिद्ध तो बहुत प्रकार से होते हैं। धर्म के साथ किसी प्रकार का सम्पर्क न रखकर भी लोग**

कितने ही विषयों में सिद्ध हो जाते हैं। सिद्ध हो जाने से ही कोई धर्मात्मा नहीं हो जाता है। आजकल सिद्ध लोगों की कमी नहीं है।

मैंने पूछा-जिन लोगों को भूत-प्रेत की सिद्धि है, उनमें क्या धर्मात्मा लोग नहीं होते?

ठाकुर-**ऐसे लोगों को यथार्थ धर्म-प्राप्ति नहीं होती।**

मैंने पूछा-जिन्हें भूत-प्रेत सिद्ध हो जाता है, वे क्या देव-देवी के रूप का दर्शन करा सकते है?

ठाकुर-**'सभी तो नहीं करा सकते, किन्तु कोई-कोई करा भी सकता है। इस बार श्रीवृन्दावन में एक साधु आया था। वह चतुर्भुज विष्णुमूर्ति के दर्शन करा सकता था। वह अच्छा आदमी था।'**

प्रश्न-'सो किस तरह?'

प्रेत का विष्णुमूर्ति धारण करना, इस संबंध में प्रश्नोत्तर।

ठाकुर-**एक दिन उस साधु से भेंट होने पर उसने मुझसे कहा, 'कल सवेरे आप अकेले आइएगा, आपको विष्णुमूर्ति के दर्शन कराऊँगा। मैं दूसरे दिन सुबह साधु के स्थान पर गया। उसने मुझे बैठाया और सामने के कमरे में दृष्टि जमाने को कहा। मैं उस कमरे की ओर दृष्टि जमाकर बैठ गया। साधु मेरे पास बैठकर जप करने लगा। थोड़ी देर में ही सुन्दर स्पष्ट विष्णुमूर्ति दिखाई दी। किन्तु विष्णुमूर्ति दिखने पर भी, जब जरा भी भक्तिभाव का उदय नहीं हुआ, तब मन में सन्देह हुआ। मैंने विशेष रूप से**

देखा कि श्रीवत्सचिह्न अथवा शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि उसमें कुछ भी नहीं है। तब एकटक उसकी ओर देखता हुआ मैं नाम करने लगा। तब वह मूर्ति थर-थर काँपने लगी और बाबाजी से बोली, 'ये तुम मुझे किसके पास ले आये। मैं टिक नहीं पा रहा हूँ।' थोड़ी देर में वह जमीन पर लोटकर चिल्लाने लगा। तब उस साधु ने कहा-'छोड़ दीजिए महाराज, छोड़ दीजिए।' मैंने कहा-'मैंने तो उसे पकड़ा नहीं है। साधु ने कहा-आप जो नाम जपते हैं, उसी से वह बँध गया है।' उस समय देखा कि अब विष्णु की मूर्ति नहीं हैं। एक विकट आकार का प्रेत नीचे पड़ा हुआ छटपटा रहा है। मैंने उस साधु को खूब धमकाकर पूछा, 'तुम्हारे कान में मल रखा है? क्या तुम प्रेतसिद्ध हो?' साधु ने कहा, 'हाँ महाराज! मुझे मालूम नहीं था कि आप भगवद्भक्त हैं। हमारा प्रेत भगवद्भक्त के सामने नहीं ठहर सकता।' मैंने उससे कहा कि विष्णुमूर्ति दिखलाने का ढोंग करके लोगों को धोखा देकर, तुम रुपया-पैसा क्यों लूटते हो?' साधु ने कहा, 'पता लगाने से आपको मालूम हो जायगा कि मैं चाहे जिसको विष्णुमूर्ति नहीं दिखलाता। जिन लोगों का धन मदिरा, वेश्या और अन्य विविध विलासिता में बर्बाद होता है, उन्हीं को यह मूर्ति दिखलाकर मैं उनसे खूब रुपया लेता हूँ, किन्तु उसमें से एक पैसा भी अपने निजी खर्च के लिए नहीं लेता। अपनी आवश्यकता के लिए तो मैं भिक्षा माँग लेता हूँ। जिन स्थानों में पानी का कष्ट होता है, वहाँ पर कुएँ और तालाब खुदवाने में इस रुपये को मैं खर्च कर देता हूँ, दुर्गम स्थानों में सड़क बनवा देता हूँ और दीन-दुःखियों की यथाशक्ति सहायता करता हूँ। अब आप इसको कष्ट न दें, छोड़

दें।' तब मैं वहाँ से चला आया। वहाँ से आते समय मुझसे साधु ने दीनतापूर्वक कहा, 'आप जब तक श्रीवृन्दावन में रहे, तब तक किसी से मेरी प्रेतसिद्धि की चर्चा न करें, साधु की बात मानकर मैंने श्रीवृन्दावन में रहते समय किसी को यह वृत्तान्त नहीं बताया। आज ही तुम लोगों को बताया। वैसे वह साधु भला आदमी था।

ठाकुर से पूछा-जब भूत-प्रेत भी विष्णुमूर्ति अथवा देवी-देवता का रूप धारण करके दर्शन दे सकते हैं, तब असली और नकली रूप की पहचान कैसे होगी?

ठाकुर ने कहा-**उस रूप की ओर दृष्टि को स्थिर करके खूब तेज के साथ नाम करते रहने से नकली रूप कभी नहीं टिक सकेगा, अदृश्य हो जायगा। असली देवी-देवता के दर्शन होते ही उस देव-देवी के भाव का उदय हृदय में होगा। नाम करते रहने से वह रूप और भी उज्ज्वल तथा स्पष्ट हो जायगा।**

ठाकुर से पूछा-प्रेत के भी उज्ज्वल स्पष्ट रूप का ही दर्शन तो पहले हुआ था, आपने बतलाया है। तो क्या असली और नकली रूप की आकृति में कोई विलक्षणता नहीं रहती?

ठाकुर ने कहा-**हाँ, वह भी रहती है। भूत-प्रेत आदि देव-देवी का आकार धारण कर सकते हैं सही, फिर भी देवी-देवताओं के चिह्नों को नहीं धारण कर सकते। जिस प्रकार शंख, गदा, चक्र, पद्म आदि विष्णु के चिह्न है, उसी प्रकार सभी देव-देवताओं के विशिष्ट चिह्न हैं। जब जिस देवी देवता के दर्शन हों, तब उसके लक्षणों को मिला लेना चाहिये। उस समय नाम खूब करना चाहिये। नाम करने से सब कुछ पकड़ में आ जाता है। सतीश ने**

नाम नहीं किया था, इसी से वह जाल में पड़ गया था। नाम करते ही मायाचक्र अदृश्य हो गया, सुन तो लिया।

फिर पूछा-‘शंख, चक्र अथवा ऐसा ही कोई दूसरा चिह्न तो सद्गुरु का नहीं है, अतएव यदि भूत-प्रेत सद्गुरु का रूप धारण करके आ जाय तो किस प्रकार पहचान कर पाएंगे।

ठाकुर ने कहा-**सद्गुरु का रूप न तो भूत-प्रेत और न देवी-देवता या ऋषि-मुनि ही धारण कर सकते हैं। सद्गुरु के रूप का दर्शन होने पर, उस विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना।**

गेरुवा का त्याग करने के लिए कहने से ठाकुर के साथ सतीश का झगड़ा।

१० वैशाख २२ अप्रेल बुधवार। मायाचक्री के जंजाल से बचकर सतीश शीघ्र ही श्रीवृन्दावन जा पहुँचे। उस समय पागल सतीश से ठाकुर की जैसी कुछ बातचीत हुई थी, उसका उल्लेख करके ठाकुर श्रीधर के साथ आनन्द करने लगे। फटा सा गेरुवा कपड़ा पहने, हाथ में लम्बी सी बाँस की लाठी लिये सतीश दाऊजी के मंदिर में अकस्मात् ठाकुर के पास पहुँचे। जैसा उनका वेश था, वैसे ही वे जीर्ण-शीर्ण थे। विश्राम करके जरा स्वस्थ होने पर सतीश से ठाकुर ने पूछा-**सतीश, तुमने गेरुवा क्यों पहन लिया है? वीर्य धारण हुए बिना गेरुवा नहीं पहनना चाहिए, शास्त्र में निषेध है, तुम गेरुवा उतार डालो।**

सतीश ने कहा-‘मैं संन्यासी हो गया हूँ, गेरुवा और दण्ड मेरा संन्यास का चिह्न है, इसे क्यों छोड़ूँ?’ तब श्रीधर ने कहा, ‘सतीश!

गुरुवाक्य की अवज्ञा मत करो। बड़ा भारी अपराध है।'

सतीश ने सिर हिलाकर और हाथ नचाकर बडे तेज के साथ कहा, जाओ, जाओ! गुरु! गुरु कौन है? गुरु तो परमहंस जी हैं। दीक्षा के समय उन्होंने तो कहा था-'परमहंसजी दीक्षा दे रहे है। वे भी परमहंसजी के शिष्य है, मैं भी परमहंसजी का शिष्य हूँ। वे तो मेरे गुरुभाई हैं। साधु संग करने आया हूँ।

ठाकुर ने कहा-**तुम गेरुवा धारण करके मेरे पास नहीं रह सकते, दूसरी जगह जाकर रहो।**

सतीश-आज तो मैं आपका अतिथि हूँ।

ठाकुर-**तो अतिथि की हैसियत से आये हो? तब फिर तुमसे कुछ भी नहीं कहना है, तब आज यहीं रहो।** यह कहकर ठाकुर ने हम लोगों को सतीश की सेवा करने की आज्ञा दी। हम लोगों पर डटकर सेवा करवाने में सतीश ने उस दिन-रात खूब फुर्ती दिखलाई। दूसरे दिन सवेरे ठाकुर ने सतीश को बुलाकर कहा-**सतीश! एक तिथि से अधिक समय तक ठहरने का अतिथि का नियम नहीं है, अब तुम दूसरी जगह जाओ।** पागल सतीश चिल्ला चिल्लाकर कहने लगा-'ऐसा क्यों? शास्त्र में लिखा है कि किसी के साथ एक रात भी रहने से वह बान्धव हो जाता है। इसलिए अब तो आप मेरे बान्धव हो गये। बान्धव-विहीन होकर किसी का कहीं रहना ठीक नहीं। अब मैं अन्यत्र नहीं जाऊँगा।' यह कहकर सतीश शरीर को हिलाकर अपने आसन पर जमकर बैठ गया। सतीश को गेरुवा उतार देने के लिए ठाकुर ने बहुत समझाया। किन्तु सतीश ने किसी तरह नहीं माना। श्रीवृन्दावन में पागल सतीश और श्रीधर के पागलपन को लेकर ठाकुर कई बार मजे

किया करते थे। ठाकुर जिन लोगों के साथ, और दस व्यक्तियों के आगे, जिनकी चर्चा छिड़ने पर ऐसा आनन्द पाते हैं; वे सतीश और श्रीधर ही धन्य है।

ठाकुर के प्रति श्रीधर का आकर्षण।

श्रीवृन्दावन में श्रीधर(श्रीधरचन्द्र घोष फरीदपुर जिले के अन्तर्गत भाँगा के समीप सदरदी गाँव इनका जन्मस्थान है। साधारण लिखना-पढ़ना सीखकर, इन्होंने कुछ समय तक पुलिस में नौकरी की थी। उस समय न्यायपरता और कार्यकुशलता के कारण जनता में इनकी बड़ी प्रशंसा थी। बचपन से ही जीवन में धर्म को प्राप्त करके ब्राह्मधर्म में इनको प्रबल अनुराग हो गया। तब शीघ्र ही ब्राह्मधर्म को अंगीकार करके ये प्रतिदिन नियमित रूप से व्याकुल हो प्रार्थना करने में समय लगाने लगे। कुछ समय बीतते ही भगवान की कृपा से श्रीधर को कई एक अलौकिक उपलब्धियाँ और प्रत्यक्ष दर्शन भी प्राप्त हो गये। इससे श्रीधर बिलकुल ही मुग्ध हो गये। महत् का आश्रम ग्रहण किये बिना कोई भी दशा स्थायी नहीं होगी, यह समझकर श्रीधर सद्गुरू को ढूँढने निकल पडे और थोड़े ही समय में श्रीश्रीरामकृष्ण परमहंसदेव के पास जाकर उनसे बोले-मैं सद्गुरु का आश्रय पाने की इच्छा से यहाँ आया हूँ। -आप दया करके मुझको दीक्षा दीजिये। परमहंसजी ने कहा-सद्गुरू से दीक्षा लेनी हो तो उसी विजय के पास जा। XXX श्रीधर वहाँ पर विलम्ब न करके और हाथ के इशारे से संकेत पाकर ढाका ब्राह्मसमाजमन्दिर में प्रचारक-निवास में ठाकुर के पास आकर उपस्थित हो गये और जहाँ उनको दीक्षा मिल गयी।

दीक्षा लेने के पश्चात् श्रीधर ने फिर कभी ठाकुर का साथ नहीं छोड़ा। श्रीधर जैसा सीधा-सादा चाल-चलन और स्वाभाविक सरलता के दृष्टान्त समाज में बहुत ही कम है। उनके प्रगाढ़ भजनानुराग और असाधारण गुरुनिष्ठा को देखकर मैं तो अवाक् रह जाता हूँ। ठाकुर के अन्तर्धान होने के अनन्तर श्रीधर का आनन्द, उत्साह ठंडा पड़ गया था। वे जितने दिनों तक फिर जीवित रहे उतने समय तक ठण्डी साँस ही उनकी नित्य-सहचरी थी। मैंने एक दिन पूछा-'श्रीधर, दिन किस तरह बिताते हो? श्रीधर ने कहा, भाई! सवेरे से सोचता रहता हूँ कि देखें कब शाम होती है और शाम हो जाने पर सोचने लगता हैं कि दिन कब निकलेगा। इसी तरह समय बीत रहा है।' बंगला सन् १३०९ में श्रीधर कुछ समय तक कलकत्ते के बादुड बागान में श्रीजगबन्धु मैत्र महाशय के यहाँ ठहरे थे। मार्गशीर्ष कृष्ण त्रयोदशी शनिवार को अकस्मात् उनको ज्वर आ गया और रात को दस बजे के बाद श्रीधर कुछ एक गुरुभाईयों को बुलाकर बार-बार कहने लगे-अजी! तुम लोग मेरे पास आओ, आज मैं शरीर छोड़ दूँगा। गुरुभाईयों ने सोचा कि ज्वर की जलन से सिर गरम हो गया है, इसी से श्रीधर ये बातें कह रहे हैं। इसी से गुरुभाईयों ने उनकी बात की परवाह नहीं की। सवेरे जब वे श्रीधर की खबर लेने गये कि देखें अब कैसे हैं; तब देखा कि श्रीधर बिछौने से तनिक हटकर, सिरहाने की ओर पैर और पैताने की और सिर किये साष्टांग प्रणाम किये हुए हैं। बार-बार पुकारने से और जरा भी हिलते-डुलते न देख सभी को संदेह हुआ। फिर हाथ से छूने और डाक्टरी परीक्षा से ज्ञात हुआ कि श्रीघर चले गये। उनका सरल भाव से भूमि में लगा हुआ माथा और सामने की ओर अंजलिबद्ध

दोनों हाथ फैले हुए देखकर, उस समय सबकी यह धारणा हुई कि उन्होंने किसी के दर्शन पाकर और उन्हीं को यथारीति साष्टांग प्रणाम करते-करते शरीर छोड़ा है। गुरुभाईयों ने उनकी पवित्र देह को सुसजित करके, नीमतला घाट पर ले जाकर अग्निसंस्कार किया। श्रीधर अपुत्रक थे। इसलिए विभिन्न स्थानों के गणमान्य गुरुभ्राताओं ने समवेत होकर संकीर्तन महोत्सव कर माघकृष्णा १२ रविवार को श्रीधर की पारलौकिक क्रिया समारोह के साथ सम्पन्न की। श्रीधर की अद्भुत घटनाएँ मेरी आगे-पीछे की डायरी में लिखी हुई है।), माथा गरम हो जाने से समय-समय पर भारी पागलपन कर बैठते थे। एक दिन मामूली सी बात पर गुरुभ्राता श्रद्धेय श्रीकामिनी बाबू के साथ बड़ा झगडा हो गया। सिर गरम हो जाने पर श्रीधर को कभी-कभी पन्द्रह दिन तक उचित-अनुचित अथवा कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान नहीं रहता था। कामिनी बाबू ने श्रीधर को ऐसे ही एक अवसर पर डराकर कहा-'सावधान हो जाओ, झगड़ा करोगे तो पिटोगे।' श्रीधर यह बात सुनते ही दौड़कर बड़ी सड़क पर पहुँचे और पुलिसवाले के समीप जा खड़े हुए और बड़ी घबराबट में जोर से चिल्लाकर उन्होंने पुलिसवाले से कहा-बंगाल से एक नामी डकैत हमारे कुंज में आया है, वह हमारी जान लेना चाहता है-उसे अभी गिरफ्तार कर लो, नहीं तो मारकाट करके वह मुझे साफ कर देगा। श्रीधर की बात सुनकर पुलिस का सिपाही उसी समय कुंज आया। तब श्रीधर ने कामिनी बाबू को दिखाकर कहा-'इसको पकड़ लो।' इस समय वहाँ पर जो और लोग थे उन्होंने पुलिसवाले से कहा कि आप जाइए, यह तो पागल है। यह खबर पाकर ठाकुर ने श्रीधर को खूब धमकाकर कहा-**श्रीधर!**

इसी क्षण जाओ और कामिनी बाबू के पैरों में गिरकर उनसे क्षमा माँगो, नहीं तो यहाँ से अभी चले जाओ।

श्रीधर ने कहा-'जो मारना चाहें उसका दोष नहीं हुआ, वह डाकू नहीं है! डाकू को पुलिस से पकडवा देना अपराध है! उसके लिए मैं क्षमा क्यों माँगू। मैं डाकू से किसी तरह क्षमा माँगने का नहीं।'

ठाकुर ने श्रीधर को धमकाकर कहा-**तुम हमारे पास से इसी समय, इसी क्षण चले जाओ।**

श्रीधर भी ऐसे साथ मैं अब कभी न रहूँगा-मैं यह चला-कहकर उसी पल फुर्ती से कुंज से बाहर चले गये। कुछ देर तक इधर-उधर घूमते रहे। फिर रोते-रोते कातर होकर लौट आये और उन्होंने ठाकुर के चरणों को पकड़ लिया।

ठाकुर ने कहा-**श्रीधर चले तो गये थे। अब लौट क्यों आये?**

श्रीधर फफक-फफककर रोते हुए बोले-क्या करूँ, आपको छोड़कर रह भी तो नहीं सकता। ठाकुर श्रीधर की बात सुनकर सजल नेत्रों से उनके मस्तक पर हाथ फेरते हुए बोले-**तो फिर जाओ, उनसे क्षमा माँग लो।** श्रीधर ने तुरन्त कामिनी बाबू के पैरों पर गिर कर क्षमा माँग ली। धन्य श्रीधर, तुम्हारा गुरु-प्रेम अद्भुत है और गुरु के प्रति तुम्हारा आकर्षण भी बड़ा अद्भुत है।

ठाकुर पर सतीश और श्रीधर दोनों का ही असाधारण प्रेम, प्रगाढ़, भक्ति और अटल विश्वास था, इसी से ये लोग जब-तब ठाकुर से झगड़ा भी कर बैठते थे और उनके मन का न होता तो वे ठाकुर की बात का प्रतिवाद अथवा विपरीत कार्य करने में जरा भी हिचकते नहीं थे। श्रीधर और सतीश की ऐसी बाहरी निरंकुशता ठाकुर के प्रति उन लोगों के असामान्य अनुराग का ही तो निदर्शन

है, इसमें सन्देह नहीं।

दुर्दशाग्रस्त परशुराम पर माधव की कृपा।

१० से १५ वैशाख अप्रैल २३-२७। आजकल गेण्डारिया आश्रम में परशुराम आये हैं। ठाकुर कई बार परशुराम की बातें किया करते हैं। ठाकुर के श्रीमुख से इन परशुराम का जो वृत्तान्त सुना है, उसे लिख लेता हूँ। परशुराम धामराई गाँव के एक सम्पन्न बुनकर थे, उधार देने के व्यापार के सिलसिले में गाँववालों के ऊपर उनकी अच्छी धाक थी। आठ लड़के थे सभी उपयुक्त, काम-काज में होशियार और उपार्जनक्षम थे। छः बेटियों का विवाह अच्छे घरों में अच्छे लड़कों के साथ हो गया था। परशुराम का जीवन बड़े आराम से बीत रहा था। एकाएक बुरे दिन आ गये। थोड़े ही समय में एक एक करके आठों लड़के मर गये। कुछ दिनों के बाद पाँच लड़कियाँ भी चल बसी। केवल एक युवती कन्या बच गई, दुर्भाग्य से वह भी विधवा हो गई। परशुराम रोते-रोते अन्धे हो गये। अत्यन्त बूढे पति को छोड़कर, शोकसन्तप्त पत्नी ने भी शरीर छोड़ दिया। अकेली विधवा बेटी उनके यहाँ चली आई और प्राणपण से उनकी सेवा-सुश्रूषा करने लगी। गाँव के जिन लोगों पर परशुराम का ऋण था, उन्होंने सोचा कि अब परशुराम जल्द ही रुपया वसूल करके बेटी को दे जायेंगे। इससे पापी कर्जदारों ने एकमत होकर असहाय कन्या के ऊपर अनेक प्रकार से अत्याचार प्रारम्भ कर दिया और विषम कपटता से अकाल में ही, बूढे अन्धे की एकमात्र सहारा स्वरूप, बाल-विधवा को मार डाला। कन्या की मृत्यु के थोड़े ही दिन बाद ही पाखण्डी लोग सन्दूक तोड़कर दस्तावेज जो कुछ मिला, सब

उठा ले गये। बूढा अन्धा खाली घर में पड़ा हुआ हाय-हाय करने लगा। गाँव का एक मामूली-सा ब्राह्मण, परशुराम की दुर्गति देख दया करके, उसे अपने घर ले गया। किन्तु गाँव के उन बदमाशों से यह भी न देखा गया। उन लोगों ने बुलाकर ब्राह्मण से कहा-'तुमने निर्वंश मनुष्य को अपने घर में आश्रय दिया है, इससे तुम भी जल्दी निर्वंश हो जाओगे। तुम्हारे साथ किसी प्रकार का सम्पर्क रखने से हम लोगों का भी वंश न रहेगा। अपने घर से तुम उसको अभी निकाल बाहर करो, नहीं तो हम लोग तुम्हारा बहिष्कार कर देंगे।' ब्राह्मण ने घर जाकर परशुराम को सब बातें कह सुनाई। सुनकर परशुराम ने कहा-'मुझे आश्रय देने से आप भी संकट में पड़ेंगे, इसलिए मुझे तुरन्त माधव के मंदिर पहुँचा दीजिए।' परशुराम की जिद देखकर ब्राह्मण लाचार हो उन्हें प्रत्यक्ष देवता श्रीश्रीमाधव के मंदिर में ही पहुँचा आया। लोग माधव को जिस वस्तु का भोग लगाते थे, वे दया करके परशुराम को भी उसमें से थोड़ा सा प्रसाद दे दिया करते थे। परशुराम उसी को खाकर जीवन धारण करने लगे। उनके लिए चारों ओर अँधेरा हो गया, कहीं किसी प्रकार के आश्रय की आशा नहीं, अब किसके भरोसे रहें? दिन-रात केवल 'माधव-माधव' का ही जप करने लगे। थोड़े ही दिनों में अन्धे परशुराम पर दयालु माधव की कपादृष्टि हुई। एक दिन माधव ने परशुराम से कहा-'परशुराम, तुम हमको देखोगे? परशुराम ने उत्तर दिया-ठाकुर, मैं तो अन्धा हूँ।' माधव ने कहा-'अच्छा तुम हमारी ओर देखो तो एक बार।' सिर ऊँचा करके माधव की ओर देखते ही उनके अद्भुत रूप के दर्शन करके परशुराम उसी क्षण मूर्च्छित हो गये। उसी दिन से उनकी बाहरी दृष्टि भी विचित्र रीति से खुल गई। अब परशुराम आनन्द से

मस्त होकर दिन-रात दयालु माधव का भजन करने में मग्न रहने लगे। अब प्रायः सर्वदा उन्हें माधव के दर्शन मिलते हैं। प्रतिदिन शाम-सवेरे घर-घर जाकर वे माधव की महिमा का कीर्तन किया करते हैं। गाँव के सभी लोग सिद्धपुरुष समझकर उनका आदर करते हैं। अब परशुराम का कोई भी शत्रु नहीं है, अब तो पुराने शत्रु भी परशुराम की कृपा के भिखारी और बहुत ही अनुगत हो गये हैं। वे ही परशुराम इस समय हमारे गेण्डारिया आश्रम में पधारे हैं। वे हमारे ठाकुर को 'माधव' ही कहकर बुलाते हैं, वे जब तब 'माधव' मेरे दयालु माधव कहकर स्तुति किया करते हैं। परशुराम की उन्नत दशा देखकर आश्रम के सभी लोग विस्मित हो जाते हैं।

एक बार परशुराम से मैंने पूछा-'परशुराम, यहाँ किसलिए आये हो?' उन्होंने उत्तर दिया-'यह जानकर कि माधव गेण्डारिया में हैं।'

प्रश्न-तुम तो वृद्ध हो। रास्ता किस तरह पहचानकर आ सके?

परशुराम ने कहा-मैं तो आश्रम पहचानता नहीं था, ढाका आ गया। एक साँवले रंग की लड़की, १४-१५ वर्ष की, मुझसे कहने लगी-'गेण्डारिया आश्रम में जाना चाहो तो मेरे साथ चलो।'

आश्रम के पास आ जाने पर मुझसे कहा, 'यही तो आश्रम है, जाओ।' इसके बाद फिर वह लडकी नहीं दिखाई दी। तब सारा मामला समझ में आ गया। वह कोई साधारण कन्या नहीं थी। मैंने आश्रम में आकर देखा, मेरे माधव तो यहीं विराजे हैं।

परशुराम की उम्र अस्सी के ऊपर है। वे माधव का नाम जपने में, वे और सब कुछ भूल जाते हैं। श्री नवकुमार विश्वास ने, भोजन के समय पूछा-'दाल केसी बनी है?'

परशुराम ने तुरन्त ही चौंककर कहा-जी हाँ, ठीक कहा, कृष्ण

नाम बहुत ही मीठा है। परशुराम की बहुत सी बातों से इसी प्रकार अपने को भूले रहने के भाव का परिचय मिल जाता है।

परशुराम सदा सभी से कहा करते हैं-'मेरे माधव बडे दयालु हैं। उन्होंने मेरे बेटे-बेटी और सारा जंजाल ग्रहण करके मुझे अपने दुर्लभ चरण दिये हैं। माधव इतनी दया न करते तो उनका नाम लेने का मुझमें क्या साध्य था?' परशुराम ये सारी बातें कहते-कहते रोकर अस्थिर हो जाते हैं, उनका गला भर आता है। मेरे माधव बडे दयालु हैं, यह बात वे बार-बार कहा करते हैं।

ठाकुर के मुँह से परशुराम की प्रशंसा सुनते-सुनते हमारे गुरुभ्राता श्री कुंजबिहारी गुह को कुछ संशय हो गया था। उन्होंने सोचा था कि 'ठाकुर तो प्रायः सभी की इसी तरह प्रशंसा किया करते हैं इनके संबंध में भी कदाचित् यही बात हो।' सन्ध्या कीर्तन से कुछ पहले वे आम के पेड़ के नीचे ठाकुर के पास बैठे हुए थे, कीर्तन हो रहा था-इसी बीच परशुराम ने उनके कान में तीन बार 'गुरु सत्य, गुरु सत्य, गुरु सत्य' कहकर उनकी पीठ कई बार थपथपा दी। उसी पल कुंज बाबू एकाएक न जाने कैसे हो गये। उनके भीतर एक अद्भुत शक्ति का खेल होने लगा। वे हाथ-पैर फैलाकर जमीन लेट गये और रोने लगे।

ठाकुर जिस समय धामराई गये थे, उस समय परशुराम से माधव के मंदिर में उनकी भेंट थी। परशुराम ने ठाकुर से प्रार्थना कि-मुझे माधव के दर्शन मिलें। ठाकुर ने उत्तर दिया-**'आप तो माधव के दर्शन किया ही करते हैं, वे तो आपके पास ही हैं',** इस पर परशुराम ने कहा-ये माधव नहीं, बल्कि इनके भीतर जो एक और माधव हैं, उन्हीं को में निरन्तर देखते रहना चाहता हूँ। वे बीच-

बीच में मात्र झाँक लिया करते हैं।

स्वप्न, प्रारब्ध और विशुद्ध सात्त्विक देह के विषय में प्रश्नोत्तर।

२६-३१ वैशाख। आजकल अरूणोदय में स्नान कर आता हूँ। आसन पर बैठकर स्थिर भाव से १०८ बार गायत्री का जप करके होम किया करता हूँ। फिर प्राणायाम कुम्भक के साथ कुछ देर तक नाम करके, गीता के एक अध्याय का पाठ करता हूँ। इसके पश्चात् ११ बजे तक ठाकुर के पास जाकर बैठा रहता हूँ। ठाकुर ११ बजे शौच को जाते हैं। श्रीधर उस समय कुएँ से पानी भरकर, कौपीन और बर्हिवास लिये ठाकुर की प्रतीक्षा में खड़े रहते हैं। ठाकुर शौच से आकर शरीर धोते हैं और फिर आसन पर जाकर बैठ जाते हैं। बारह बजे तक ठाकुर भोजन कर लेते हैं। जब वे भोजन कर लेते हैं तो मैं आमवृक्ष के नीचे आसन उठाकर ले जाता हूँ। ठाकुर शाम तक आमवृक्ष के नीचे वहाँ रहते हैं। उनके वहाँ बैठ जाने पर मैं दो घंटे तक कालीप्रसन्न सिंह का महाभारत पढता हूँ, इसके बाद पाँच बजे तक ठाकुर के समीप वैठा रहता हूँ और अवसर पाकर समय समय पर अनेक संशययुक्त प्रश्न पूछ लेता हूँ। एक दिन बातों ही बातों में ठाकुर को अपने कई स्वप्न वृत्तान्त सुनाये।

सुनकर ठाकुर ने कहा-**सभी स्वप्न झूठे नहीं होते। कई बार तो स्वप्न में अतीत जीवन का चित्र दिखाई दे जाता है। भविष्य जीवन की घटना का भी आभास कभी-कभी स्वप्न में मिल जाता है। मस्तक अथवा पेट के गरम होने पर भी कई बार उलटे-सीधे सपने दिखाई पड़ते हैं। जिन सपनों को देखते हो,**

उनमें से कुछ तो जीवन में परिणत हो रहे हैं और कुछ को भविष्य में समझोगे। यह कहकर ठाकुर कुछ रुक गये। भागलपुर में १२९७ के ज्येष्ठ में अर्धतन्द्रावस्था में जो दृश्य अथवा स्वप्न देखा था, वह ठाकुर को बतलाया। सुनकर ठाकुर ने कहा-**प्रकृति को तृप्त करना होगा। प्रकृति ने ही आकर तुमसे वैसा कहा था। दो उपायों से प्रकृति को तृप्त किया जा सकता है। एक तो वैध भोग के द्वारा और दूसरे साधन द्वारा। साधन द्वारा ही तुम्हें प्रकृति को तृप्त करना होगा। तुम्हारे लिए साधन ही एकमात्र उपाय है।**

मैंने पूछा-'सद्गुरु का आश्रय ग्रहण कर लेने पर मनुष्य जिन कर्मों को किया करता है, वे क्या पिछले प्रारब्ध के प्रभाव से होते हैं अथवा स्वाधीन इच्छा से? ऐसा आश्रित व्यक्ति कर्म करके नवीन कर्मफल को उत्पन्न कर सकता है या नहीं।

ठाकुर ने कहा-**एक बार वास्तविक सद्गुरु का आश्रय ले लेने पर मनुष्य कभी नवीन कर्म उत्पन्न नहीं कर सकता। वह केवल पिछले कर्म का ही भोग किया करता है। सद्गुरु का आश्रय लेने पर मनुष्य दुष्कर्म कर तो सकता है, किन्तु उन दुष्कर्मों में आबद्ध कभी नहीं हो सकता। दुष्कर्म करते समय वह समझ सकता है कि यह दुष्कर्म है, और उससे बचने की एक चेष्टा भी भीतर ही भीतर होती है। केवल प्रारब्ध ही मानो बाध्य करके उन कर्मों को करा लेता है। सद्गुरु का आश्रय लेने पर नवीन कर्म नहीं कर सकता। यही उसका एक प्रमाण है।**

मैंने पूछा-तो भोग किसका होता है? और उस भोग का अन्त ही किस समय और किस प्रकार होता है?

ठाकुर ने कहा-**संस्कारवश भोग तो देह का ही होता रहता है।**

मनुष्य का शरीर जब बिलकुल विशुद्ध सात्त्विक हो जाता है, तभी भोग का अन्त हो जाता है। मैंने पूछा-विशुद्ध सात्त्विक देह किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है?

ठाकुर ने कहा-**विशुद्ध सात्त्विक देह की प्राप्ति केवल नाम साधन द्वारा ही होती है। श्वास-प्रश्वास में नाम करते रहने से देह सात्त्विक हो जाती है। देखो, श्वास-प्रश्वास के द्वारा ही देह की रक्षा होती है, श्वास-प्रश्वास का कार्य देह के प्रत्येक परमाणु में होता रहता है। श्वास-प्रश्वास से ही रक्त विशुद्ध होता है और देह में सर्वत्र संचारित होता है। सौ बात की एक बात यह कि देह की वृद्धि, स्थिति और क्षय श्वास-प्रश्वास द्वारा ही सम्पन्न होता है। इस श्वास-प्रश्वास के साथ जब नाम गुँथ जायगा, प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में जब अपने-आप नाम चलने लगेगा, तब श्वास-प्रश्वास का कार्य जैसे ही समस्त देह में होगा, वैसे नाम का कार्य भी प्रत्येक परमाणु में होने लगेगा। श्वास-प्रश्वास में नाम मिल जाने पर, धीरे-धीरे देह भी नाममय हो जायेगी। देह नाममय हो जाने पर, उसके द्वारा फिर अन्य कार्य होना संभव नहीं होगा। केवल सात्त्विक कर्म ही होगा। प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में लक्ष्य रखकर नाम किया करो। चेष्टा करते-करते सब कुछ सहज हो जाता है।**

मैंने पूछा-जिन्हें श्वास-प्रश्वास के साथ नामस्मरण का अभ्यास हो जाता है उनके शरीर में क्या कोई विशेष चिह्न प्रकट हो जाता है? यदि कोई यह कहे कि हमें श्वास-प्रश्वास में नामस्मरण हुआ करता है, तो उसके किस बाहरी लक्षण को देखकर समझूँगा कि उसकी बात सच है?

ठाकुर ने कहा-**मुँह से कह देने से ही तो नहीं हो जायगा। ऐसे**

लोगों के शरीर में लक्षण देखने को मिलेंगे। श्वास-प्रश्वास के साथ नाम गुँथ जाने पर शरीर की चमड़ी पर दिखाई देगा। ध्यान से देखने पर उसकी परख हो जाएगी।

यह कहकर ठाकुर ने अपनी अँगुली के पिछले भाग में एक प्रकार का चक्राकार चिह्न दिखलाया। दोनों हाथों की अँगुलियों के पिछले हिस्सों में वैसे घुँघराले ॐकारवत् चिह्नों को देखकर में दंग हो गया।

मैंने पूछा-'हाड, मांस और रक्त में जब नाम हुआ करता है, तब उन सब में क्या नाम की छाप पड़ जाती है?'

ठाकुर ने कहा-**वृक्ष की शिरा तक में नाम की स्वाभाविक छाप तो तुम श्रीवृन्दावन में देख ही आये हो। मनुष्य के शरीर के प्रत्येक परमाणु में जब नाम हुआ करता है, तब हड्डी, मांस और रक्त में भी नाम की छाप पड़ जाती है। मुसलमानों के धर्मग्रन्थ में एक फकीर के संबंध में लिखा है कि जब उसका रक्तपात हुआ तब रक्त की प्रत्येक बूंद में 'अनलहक' शब्द अंकित दिखाई दिया। इस बार अर्धकुम्भी के अवसर पर श्रीवृन्दावन में यमुना की रेतीले तट में एक दिन हम साधुओं के दर्शन करने गये थे। बालू पर एक हड्डी देखकर उसे उठा लिया। देखा कि तमाम हड्डी में नागरी लिपि में 'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण' लिखा हुआ है। हमने वह हड्डी साधुओं को दिखलाई तो उन लोगों को भी बड़ा अचम्भा हुआ। किसी वैष्णव महापुरुष की हड्डी समझकर उन्होंने उसको ले लिया और बड़ी धूमधाम से उत्सव करके यमुना की रेतीले तट में उसको समाधिस्थ कर दिया।**

यह सुनकर थोड़ी देर में श्रीधर और सतीश से पूरा वृत्तान्त जानने के लिये मैंने प्रश्न किया। उन्होंने कहा-श्रीवृन्दावन में अर्धकुम्भी के समय यमुना के रेतीले तट में बहुत से वैष्णव संन्यासियों और साधुओं के आसन लगे हुए थे। एक दिन प्रातःकाल ठाकुर अकस्मात् आसन से उठकर, किसी ओर बिना देखे ही, यमुना की रेतीले तट में जा पहुँचे। वहाँ वे न तो साधुओं के पास गये और न ही बैठे ही, सीधे रेतीले तट पर से होकर जाने लगे। एक स्थान पर पहुँचकर थोड़ी सी बालू के भीतर से एक हड्डी निकालकर कहा-देखो, किसी महापुरुष की हड्डी है, 'हरे कृष्ण' नाम लिखा हुआ है। ठाकुर ने हड्डी लाकर साधुओं को दिखलाई। साधु-संन्यासियों ने हड्डी को 'हरे कृष्ण' नाम से परिपूर्ण देखकर साष्टांग नमस्कार किया। ठाकुर से वह हड्डी साधुओं ने माँग ली, और उन्होंने बडे आनन्द से एकत्र होकर, संकीर्तन महोत्सव करके, धूमधाम के साथ केशीघाट के समीप यमुना की रेतीले तट में उसको समाधिस्थ कर दिया।

मैं श्रीवृन्दावन में ठाकुर के साथ अन्त तक नहीं रह पाया था, इससे उस समय की बहुत सी घटनाओं को मैं नहीं जानता। ठाकुर समय-समय पर बातचीत के सिलसिले में किसी घटना का उल्लेख करते हैं तो मैं उसको ज्यों की त्यों लिख लेता हैं। बहुत संक्षेप में ठाकुर जो कुछ कह देते हैं, उसका विवरण मैं श्रीधर और सतीश आदि से पूछ लिया करता हूँ। श्रीवृन्दावन में ठाकुर के रहते समय अनेक अद्भुत घटनाएँ हुई थीं, उनकी खबर यहाँ सुन पाता हूँ।

धर्मात्मा सर्वदा विनयी होते हैं।

आज ठाकुर ने कुछ उपदेश दिये हैं। मैं उस समय उपस्थित नहीं था, इसलिए छोटे दादा (श्रीशारदाकान्त बन्योपाध्याय) ने उनको मेरी डायरी में लिख दिया है। मैं नहीं जानता कि ये उपदेश कौन सा प्रश्न करने पर दिये गये थे। मुझे जैसा लिखा मिल गया, वैसा ही रख लिया है।

ठाकुर-**ऋषिप्रणीत शास्त्रमार्ग पर सर्वदा चलना चाहिए। कोई साधु-वाक्य, यदि ऋषि-वाक्य से भिन्न हो तो ऋषि-वाक्य को ही ग्रहण करना चाहिए। लोभ, मोह, इन्द्रियदमन आदि नियमों पर सर्वदा ही दृष्टि रखें। नहीं तो साधन में बहुत अनिष्ट होगा। जिन नियमों की पद्धति पर मनुष्य समाज प्रतिष्ठित है, उसका जरा सा भी व्यतिक्रम करना कभी उचित नहीं। किसी प्राणी के, यहाँ तक कि पेड़-पौधों के भी कष्ट का कारण न बनें। सबके साथ बैठकर भोजन करने के लिये हरिदास से महाप्रभु ने बहुत अनुरोध किया था, किन्तु उन्होंने इसे किसी तरह नहीं माना। बल्कि अपने को अत्यन्त नीचा समझकर सदा दूर ही दूर रहते थे। रूप और सनातन यद्यपि ब्राह्मण-सन्तान थे, तथापि समाज की और सबकी मर्यादा की रक्षा करके चलते थे। कभी साधारण लोगों के साथ एकत्र बैठकर उन्होंने भोजन आदि नहीं किया। वास्तविक धार्मिक की पहचान, उसके स्वभाव को परखने से होती है। धर्मात्मा लोग सर्वदा ही विनयी होते हैं।**

दृष्टान्त के लिए ठाकुर ने एक कहानी सुनाई-**एक दिन पोप ने देखा कि बहुत से लोग एक स्त्री के पास जा रहे हैं, प्रचार हो गया था कि उस स्त्री पर ईसा मसीह का आविर्भाव हुआ है। पोप बड़ी उलझन में पड़ गये। पोप से उनके कार्डिनेल ने कहा-'आप**

जरा ठहरे, मैं जाकर एक बार देख आऊँ।' उस स्त्री के पास जाकर कार्डिनेल ने कहा-'अरी, हमारा जूता तो उतार दे।' कार्डिनेल की यह अवज्ञासूचक बात सुनकर, उस स्त्री ने जरा भी परवाह न की। दर्शक -मण्डली भी ऐसा व्यवहार देखकर दंग हो गई। उस स्त्री का ऐसा भाव देखकर कार्डिनेल लौट आया। उसने पोप का सब हाल सुनाकर कहा-'वह स्त्री पाखण्ड कर रही है, उस पर ईसा का आविर्भाव हर्गिज नहीं हुआ है। यदि उनका आविर्भाव हुआ होता तो वह अवश्य ही विनयी होती और मैंने जो काम कहा था, कर देती..'

ठाकुर ने कहा-**ज्ञान का सम्यक् व्यवहार करना चाहिए। किसी पर सहज ही विश्वास मत कर बैठना। फिर विश्वास कर लेने पर, सहज ही उस पर अविश्वास भी मत करने लग जाना। ज्ञान और भक्ति सब कुछ प्रकृतिगत है। देखो, रामकृष्ण परमहंस बिलकुल निरक्षर थे। फिर भी बड़े-बड़े ज्ञानी लोग उनके पास बैठकर ज्ञान प्राप्त करते थे और महान भक्त लोग भी उनके चरणों में बैठकर भक्ति का उपदेश सुनते थे। उन्हें ज्ञानी लोग तो महाज्ञानी और भक्त लोग महान् भक्त समझते थे।**

आसन और होम के विषय में प्रश्नोत्तर।

१ वैशाख। नित्य होम करने की आज्ञा ठाकुर ने दी है। प्रतिदिन सवेरे स्नान करके नाम, प्राणायाम करके मैं होम किया करता हूँ। १०८ त्रिपत्र बिल्वपत्रों को एक छटाक घी में मिलाकर मन्त्र का मन में जप करके, 'अग्नये स्वाहा' कहकर आहुति देता हूँ। ठाकुर ने कहा है-**बेल, बरगद, पीपल अथवा गूलर की लकड़ी से होम**

करना। यह मन्त्र पढ़कर जलती हुई आग में 'अग्नये स्वाहा', कहकर आहुति देना। यह कहकर उन्होंने होम करने का मन्त्र बतला दिया। गेण्डारिया आश्रम के तालाब के दक्षिण-पूर्व कोण में श्री कुंजबिहारी घोष ने वन में एक घर बनवाया है। उस घर में कभी कोई किसी समय भी नहीं रहता। निर्जन पाकर और कुंजबिहारी बाबू की सम्मति पाकर मैंने अपना आसन उसी घर में लगा लिया था। अब उस स्थान में बड़ा विघ्न देख रहा हूँ। आश्रम से भी थोड़ी सी दूरी पर है, समझ में नहीं आता क्या करूँ।

आज ठाकुर भोजन करके आम वृक्ष के तले जा बैठे और अपने आप कहने लगे-**उत्तरमुख या पूर्वमुख हो आसन पर बैठकर होम करना। भगवत्प्रीति की इच्छा से अथवा निष्काम होकर जो कुछ करना हो वह उत्तरमुख होकर करना, और सकाम अथवा संकल्पित कार्य पूर्वमुख होकर करने की विधि है। होम करते समय होम का धुआँ शरीर में लगने दो। नहीं तो देह में होम की क्रिया पूरी तरह नहीं होती।**

मैंने पूछा-'होम से कौन सा लाभ होता है?

ठाकुर ने कहा-**होम से अनेक लाभ हैं, उनको इस समय जानने की आवश्यकता नहीं। रीति से होम करते जाओ। लाभ तो तुम्हारी समझ में अपने आप आ जायगा। होम कर चुकने पर होम का तिलक माथे में लगा लेना। होम की विभूति से त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिए। ब्राह्मण के लिए माथे के बीच में ऊर्ध्वपुण्ड्र भी लगाने की व्यवस्था है।**

मैं होम की विभूति द्वारा सवेरे ही त्रिपुण्ड्र और ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाकर होम कर चुकने पर होम का तिलक लगा लेता हूँ। कन्धे से

आरम्भ कर दोनों हाथों में पाँच स्थानों पर और दोनों पार्श्वों में, दोनों स्तनों, नाभि, हृदय, कण्ठ के पीछे मेरूदण्ड के ऊपर और पीठ में, नाभिमूल के विपरीत स्थान में सर्वत्र विभूति द्वारा त्रिरेखा बना लेता हूँ।

महाप्रभु के धर्म और आधुनिक वैष्णव-धर्म में स्त्रियों का संसर्ग।

४-१३ ज्येष्ठ। हमारे देश में हीन जातिवाले मामूली आदमियों में, महाप्रभु द्वारा प्रचारित परम विशुद्ध वैष्णव धर्म के नाम से, स्त्रियों के संसर्ग में जो वीभत्स कार्य प्रतिदिन हुआ करते हैं, उनमें वैरागी वैष्णव शब्द पर ही एक तरह से साधारण लोगों को अश्रद्धा सी उत्पन्न हो गई है। वर्तमान सुरुचिसम्पन्न समाज के दो-एक व्यक्तियों ने इन सम्प्रदायों में प्रवेश किया है, इससे साधारण जनसमाज की बड़ी हानि हो रही है। आज एक सजन ने आकर ठाकुर से पूछा-'महाशय, हीन श्रेणी के बाउल वैष्णवों में स्त्रियों के साथ साधन भजन करने की व्यवरथा सुनी जाती है, तो क्या यह महाप्रभु का धर्म है?'

यह सुनकर ठाकुर के कान में हाथ लगाकर कहा-**राम! राम! महाप्रभु ने शास्त्र-सदाचार के विरुद्ध न तो कोई कार्य ही किया है और न कहा ही है। 'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामेव केवलम्। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।' महाप्रभु ने केवल इसी का प्रचार किया है। नाम के जपने की विधि भी बतला दी है-'तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।' स्त्रियों से महाप्रभु कितने बचते थे और**

अपने नित्यसंगियों को भी स्त्रियों के संसर्ग से कितना बचाये रखते थे, यह चरितामृत ग्रन्थ को पढ़ने से ही ज्ञात हो जाता है। केवल इसी ओर नहीं, बल्कि प्रायः सर्वत्र देखा जाता है कि स्त्रियों से विशेष घनिष्ठता रखने से वैष्णव समाज की, धर्म विषय में, विशेष अधोगति हुई है। श्रीवृन्दावन में भी देखा कि संयोगी बने बिना वहाँ किसी का रहना सहज नहीं हैं।

यह कहकर ठाकुर ने एक घटना कह सुनाई। ठाकुर जिन दिनों श्रीवृन्दावन में थे, मैं भी वही था। इस घटना का मुझे प्रत्यक्ष अनुभव है। अतएव उस समय की डायरी से उसको यहाँ विस्तृत रूप में उद्धृत करता हूँ। श्रीवृन्दावन में एक दिन एक भले घरकी युवती ब्राह्मणी घबराई हुई आई। वह ठाकुर के श्रीचरणों में प्रणाम करके रोते-रोते कहने लगी-'प्रभो, बतलाइए मैं इस समय क्या करूँ।' जब ठाकुर ने उससे पूरे विषय के बारे में पूछा तो वह कहने लगी-'मैं छोटी अवस्था में ही धर्मोन्मादवश तीर्थयात्रा करने निकल पड़ी थी। चारों धामों की परिक्रमा करके कुछ समय हुआ श्रीवृन्दावन में आकर ठहर गई हूँ। अब तक मजे में थी, कुछ दिनों से कुछ एक वैष्णव मेरे पीछे बुरी तरह पड़े हुए हैं। वे रात-दिन मुझे हैरान किया करते हैं। 'वेष ग्रहण करके, वैष्णव को लेकर संयोगी बन, युगल उपासना की जाती है, ऐसा किये बिना श्रीवृन्दावन में रहना अपराध है'-मुझसे सभी यह बात कहते हैं। बहुत से वैष्णव सदा मेरे पास आते हैं, और वेष देना चाहते हैं। मैं ब्राह्मण की बेटी हूँ, कुछ दिनों से विधवा हो गई हूँ। तो क्या अब वैष्णव को ग्रहण करके युगल-उपासना करने की आप मुझे आज्ञा देते हैं?'

ठाकुर ने कहा-**दुष्ट लोग आपका सत्यनाश करने के लिए ही**

ऐसी सलाह देते हैं। शास्त्र में तो इसके विपरीत ही व्यवस्था है, जो लोग ऐसा करते हैं उनकी अधोगति होती है। ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है कि संयोगी हुए बिना युगल-उपासना नहीं हो सकती। युगल-उपासना न हो तो न सही दुष्टों के फेर में पड़कर स्त्रियों के सार, सतीत्व धर्म को किसी हालत में तिलांजलि न दीजियेगा।

ठाकुर की बातें सुनकर वह स्त्री बहुत ही सन्तुष्ट हुई। वैष्णवों से किसी प्रकार का संबंध न रखकर, अपने मन के अनुसार साधन भजन करने का उसने संकल्प कर लिया।

सती के रक्षक स्वयं भगवान्।

युवावस्था में जब यही स्त्री अकेले ही चारों धामों की यात्रा कर रही थी, तब एक दिन यह एक दुष्ट के पल्ले पड़ गई थी। उसने वह बात ठाकुर को बताई। ठाकुर उस घटना को कई अवसरों पर बताया करते हैं। सच्ची सती के सहायक भगवान् हैं। वे ही उसकी रक्षा करते हैं। यह महिला बंगाल प्रदेश के किसी गाँव के एक उन्नत परिवार की पुत्रवधू हैं। स्वामी और पुत्र आदि के होते हुए भी धर्म के आकर्षण से यह बिलकुल अस्थिर हो गई। पैदल तीर्थयात्रा करने की आशा से यह स्वामी के चरणों में पड़ कुछ दिन अनुमति माँगती रही। पति ने उसे तरह-तरह से सान्त्वना देकर कुछ समय तक घर में रखा तो सही, किन्तु अन्त में एक दिन, रात्रि को दूसरे पहर, वह सबसे छुपकर पागलों की तरह, श्रीश्रीपुरूषोत्तम के मार्ग पर चल पड़ी। समस्त तीर्थों के दर्शन की इच्छा से, बिलकुल असहाय होते हुए भी, मन के आवेग में वह एकमात्र परिधेय वस्त्र अवलम्बन

करके, अकेली दौड़ चली। इस तरह चलते-चलते भगवत्कृपा से वह नीलाचल पहुँची और श्रीश्रीनीलाचलचन्द्र के दर्शन पाकर कृतार्थ हो गई। वहाँ कुछ समय तक बिताकर फिर वह सेतुबन्ध रामेश्वर की ओर चली। सेतुबन्ध के मार्ग में उसे जिस आकस्मिक संकट का सामना करना पड़ा उसके विषय में ठाकुर के यहाँ जो बातचीत हुई, वह यहाँ उद्धृत की जाती है।

श्रीधर ने उस स्त्री से पूछा था-'युवावस्था में अकेली अनेक स्थानों में घूमते रहने पर भी कहीं किसी प्रकार का संकट तो नहीं हुआ?' स्त्री एक लंबी साँस लेकर कहने लगी-'बाल न बाँका कर सके जो जग वैरी होय'-जिसके सहायक भगवान् हों उसके लिए संकट कहाँ? हाँ, एक दिन की घटना का विवरण आप लोगों को सुनाती हूँ। श्रीश्रीजगन्नाथ-देव के दर्शन करके, सेतुबन्ध रामेश्वर जाने के लिए मैं व्याकुल हो उठी। कोई अच्छा साथी न मिलने से, मैं अकेली ही दक्षिण को रवाना हो गई। एक दिन सारा रास्ता चलकर विश्राम के लिए संकटहीन कोई स्थान न पाकर मैं चिन्तित हुई। मार्ग बहुत ही दुर्गम था। इंसान का कहीं नाम तक न था, लगातार शाम होने तक चलती रही। शाम हो जाने के बाद एक जनहीन स्थान में साधुओं की एक कुटी दिखाई दी। पास जाकर देखा, कुछ एक शान्त-मूर्ति संन्यासी बैठे हुए थे। उनको देखने से भरोसा हुआ। इसी से मैंने वहाँ आश्रय लिया। किन्तु रात्रि ज्यों ही कुछ अधिक हुई संन्यासी लोग थोड़ी दूरी पर एक-दूसरे अड्डे में चले गये। केवल एक बलिष्ठ युवक संन्यासी वहाँ पर रह गया। रात गहरी होने पर जब चारों ओर अँधेरा फैल गया और सन्नाटा होने के बाद मेरे पास आकर इधर-उधर की बातें करके, उसने अपना

दुष्ट अभिप्राय प्रकट किया। मैं उस समय बड़े संकट में पड़ गई। थोड़ी देर के लिये मैं हक्की-बक्की सी रह गई। मैं अबला नारी सुनसान स्थान में, आधी रात को अत्यन्त बलिष्ठ कामुक के शिकंजे में पड़कर किस प्रकार रक्षा पाऊँ, यही सोचने लगी। मैंने दो-चार बार हाथ जोडकर, दीनता प्रकट करके साधु की चेष्टा को रोकने का प्रयत्न किया, किन्तु कुछ फल न हुआ। साधु मुझे नीचे गिराकर, खींचातानी करने लगा। उस समय मैं क्या करती? 'माँ, जगदम्बे!' कहकर मैं चिल्लाने लगी। साधु था बहुत ही बलवान्, विषम उत्तेजना की दशा में जोर से ज्योंही उसने मुझे खींचकर गिराया, त्यों ही अकस्मात् एक बड़ा भारी बाघ आकर उसके सिर पर कूद पड़ा और उसे मुँह में दबाकर पलभर में चला गया। दूसरे दिन समीप के गाँववालों ने आकर देखा कि थोड़ी दूरी पर एक जगह साधु की लाश पड़ी हुई है और उसकी गर्दन टूटी हुई है। गाँववालों ने कहा कि यहाँ तो हम लोगों ने कभी बाघ को आते नहीं देखा और बड़े-बूढों से कभी नहीं सुना कि इस गाँव में बाघ आया हो। वह साधु कुटी में बहुत दिनों से रहता था। जगदम्बा की कृपा बड़ी अद्भुत है।

उस स्त्री ने ठाकुर से जब यह वृत्तान्त कहा था तब मैं वहीं था और पूरी बातें सुन रहा था। इसी ढंग की एक और घटना का वर्णन ठाकुर ने उसी समय किया था, उसको मैं उस समय की डायरी से यहाँ लिखता हूँ।

वास्तविक सती पर कोई संकट पड़ता है तो भगवान् उसकी रक्षा करते हैं, इसका प्रमाण देने के लिए ठाकुर ने एक घटना का उल्लेख करके कहा-**बर्दवान जिले (बंगाल) के अंतर्गत एक गाँव**

में कोई सज्जन रहता था। वह युवावस्था से ही, बीमारी के कारण, अफीम खाने लगा था। एक दिन उसे दूसरी जगह जाना था। वह अपनी युवती स्त्री को साथ ले पैदल रवाना हुआ। दिन डूबने से कुछ पहले रास्ते में देखा कि अफीम नहीं है। अब तो ब्राह्मण बेचैन हो गया। थोड़ी ही देर में वह जमीन में लोट गया और बार-बार जंभाईयाँ लेकर ठंडी साँस लेने लगा। कष्ट के मारे छटपटाकर दुःसह क्लेश प्रकट करते हुए उसने स्त्री से कहा- 'अजी, अब मुझसे सहा नहीं जाता, झटपट अफीम लाकर, मेरे प्राण बचाओ।' पति की यह दशा देख विषम विपत्ति की आशंका करके, स्त्री उसी क्षण पास के गाँव में गई और प्रत्येक घर में जा जाकर अफीम की तलाश करने लगी। अन्त में उसे पता लगा कि उस गाँव में एक ही आदमी के यहाँ अफीम है, किन्तु वह बड़ा शराबी है। युवती को गरज थी, लाचार होकर उसके यहाँ गई।

उसने हाथ जोड़कर कहा कि अफीम न मिलने से मेरे पति की जान निकल रही है। अधिक दाम लेकर भी अफीम दे दीजिए। उसने बड़ी दीनता दिखलाकर अफीम माँगी। शराबी ने कहा-अजी तुम्हें पति के लिए सचमुच दर्द हो तो अफीम ले जा सकती हो। शराब, गांजा, जो चाहो, वह दे सकता हूँ, किन्तु बेचूँगा नहीं-दाम नहीं लूँगा। थोड़ी देर के लिए तुम मुझे अपनी देह दे देना, दूसरी रीति से अफीम न दूँगा। स्त्री ने बड़ी दीनता दिखलाई, गिड़गिड़ाई किन्तु शराबी किसी तरह राजी न हुआ। दूसरा उपाय न देख युवती अपने पति के पास लौट आई। उसने पति को बातें कह सुनाई। वह अफीम के नशे के लिए छटपटा

रहा था। उसने कर्तव्य-अकर्तव्य का निश्चय किये बिना ही कह दिया-अरी मेरे तो प्राण निकले जाते हैं; तुमको जहाँ से, जिस तरह अफीम मिले, अफीम लाकर मुझे बचाओ। युवती विषम समस्या में पड़ गई। एक ओर स्त्रियों के सार धर्म-सतीत्व का नाश होता है, दूसरी ओर आराध्यदेव पति की अपमृत्यु होती है। सती भगवान के स्मरण करती हुई शराबी के पास पहुँची। वह शराबी के पैर पकड़कर रोती हुई कहने लगी, 'आप मेरी इस देह को ग्रहण करके बदले में मेरे स्वामी को जीवन-दान दीजिए। इस पाप के लिए मुझे नरक में जाना पड़े तो कुछ चिन्ता नहीं, आप जो कुछ करना चाहे कर लें, किन्तु शीघ्र ही अफीम देकर मरणासन्न मेरे पति की रक्षा करें।'

'भगवान् की बड़ी अद्भुत दया है, सती की कैसी अद्भुत शक्ति है, युवती के हाथ का स्पर्श होने से नशेड़ी को न जाने क्या हुआ कि वह चौंक उठा। वह तुरन्त ही युवती के चरणों पर मस्तक रखकर लोटने लगा और रोते-रोते बोला-'माता मुझे क्षमा करो, तुम्हारी कृपा से आज मेरा पुनर्जन्म हो गया। मैं बड़ा भारी दुराचारी हूँ, शराब-गांजा और अफीम सभी नशे करता हूँ। किन्तु आज मैंने इन सबको छोड़ दिया। तुमको जितनी अफीम लेनी हो, ले जाओ। माँ, तुम्हारी तरह मेरी स्त्री की भी ऐसी दुर्गति हो सकती है। मैं अब कभी नशे की चीज को छूनेवाला नहीं। युवती अफीम लेकर पति के पास पहुँची। वह बैठा बैठा रो रहा था। उसको अफीम दी तो उसने उसको दूर फेंककर कहा, हाय मेरे लिए तुमने अपने सर्वस्व सतीत्व धर्म को बहा दिया! मेरे जीवन को धिक्कार है! मेरा जीवित न रहना ही भला। अब

मैं कभी अफीम को स्पर्श भी न करूँगा, प्राण भले ही निकल जायें। तुम धन्य हो, तुम सचमुच सती हो। तब युवती ने पति के चरण पकड़कर रोते-रोते बतलाया कि भगवान् की अद्भुत कृपा से किस प्रकार का इस विषम संकट में उसकी रक्षा हुई है।

हवन की उपयोगिता और प्रार्थना के पश्चात्ताप।

आज एक महीने से अधिक हो गया, मैं नियमित रूप से सूर्योदय के पहले ही बूढ़ीगंगा में स्नानतर्पण करके आश्रम आ जाता हूँ और ९ बजे तक आसन पर स्थिरता से बैठा रहता हूँ। घर से गूलर की लकड़ी और विशुद्ध गाय का घी लाकर रखा है। सवेरे थोड़ी देर तक गायत्री का जप करने के पश्चात् अखण्डित बिल्वपत्र द्वारा, ठाकुर की आज्ञा के अनुसार, प्रज्वलित अग्नि में १०८ आहुतियाँ देता हूँ। आहुतियाँ देकर पंखे की सहायता से होम के धुएँ को शरीर में लगाया करता हूँ तथा बड़ी सरलता से प्राणायाम और नाम किया करता हूँ। कुछ दिन से पवित्र होमगन्ध का अनुभव, आसन से उठ आने पर भी, समय-समय पर हुआ करता था। किन्तु आजकल होम की गन्ध अब मुझे छोड़ती नहीं है। प्रायः सर्वदा जहाँ-तहाँ इस अद्भुत होमगन्ध को पाकर मैं बिलकुल मुग्ध हो जाता हूँ। होम की गन्ध सदा मेरे साथ रहती है। इस पवित्र होमगन्ध के प्रभाव से चित्त की प्रफुल्लता और मन का उत्साह क्रमशः बढ़ रहा है। नाम बहुत स्पष्ट भाव से बड़े तेज सहित, रसमय होकर प्रस्फुटित हो रहा है। गन्ध नाम का तथा नाम गन्ध का प्रभाव बढ़ाता है। मन किसी दूसरी ओर न जाकर केवल नाम में निविष्ट

बना रहता है। सूर्योदय से पूर्व स्नान करके शाम के छः बजे तक मैं भोजन नहीं करता, सुस्ती और भूख-प्यास नहीं लगती। पहले जो लोग मेरी देह के पसीने की दुर्गन्ध से समय-समय पर चिढ़कर दूर ही दूर रहते थे, आजकल वे भी यह होमगन्ध पाकर मुझसे सटकर बैठते हैं और आपस में बातचीत करते हैं कि उसकी देह में होम की गन्ध समा गई है। किन्तु मुझे देह की गन्ध का जरा भी आभास नहीं मिलता, मैं तो सदा सर्वत्र होमगन्ध पाकर मग्न रहता हूँ। समय-समय पर मेरे मन में यह संशय हुआ करता था कि ठाकुर ने विशुद्ध गाय का घी, खाने की आज्ञा न देकर बेकार आग में फेंकने को क्यों कह दिया। ठाकुर की दया बड़ी अद्भुत है। यदि वे मुझे यह अनुभव न करा देते तो मुझे किसी तरह शान्ति न मिलती। ठाकुर! दया कीजिए। इसी तरह प्रत्येक संशय से मुझको बचाते रहिए। ठाकुर की जय!

आश्रम से पश्चिम ओर श्रीराधारमण गुह के घर के दक्षिणी भाग में पण्डितजी और श्रद्धेय श्रीनवकुमार विश्वास का रसोईघर और दो कमरे हैं। सारी आवश्यक वस्तुएँ स्वयं लाकर भोजन आदि की व्यवस्था आश्रम से बिलकुल अलग करके, वे आनन्द से भजन साधन करने में दिन बिता रहे थे। आजकल ठाकुर की आज्ञा से उनके भोजन आदि का प्रबन्ध आश्रम में ही हो गया है। उनके रसोईघर को खाली देख, मुझे उसी में अपना आसन उठाकर लगाने का अवसर मिल गया। जंगल के भीतर बिना किवाड़ों की खुली कोठरी में आसन, वस्त्र और होम की सामाग्री घी, आदि रखकर ठाकुर के समीप दिनभर रहने से बिना उद्वेग के निश्चिन्त नहीं रह पाता। गेण्डारिया के जंगल में बाघों की कमी नहीं है, साँप

भी बहुत है, रात को उस घर में जाकर अकेले रहने को मुझे बहुतों ने मना किया है। जरा दूरी पर रहने से, रात को ठाकुर के पास सब लोग जो आनन्द पाते हैं, मैं उससे भी वंचित हूँ।

एक और घटना ने मेरे चित्त को बड़ा अस्थिर कर रखा है। संध्या से कुछ पहले आश्रम में रसोई बना रहा था, बड़ी गर्जना के साथ एकाएक आँधी, वर्षा होने लगी। मेरी लकड़ियाँ थोड़ी गीली थी, इसलिए उनको अच्छी तरह सुखा लेने के लिये मैं आसनघर के खुली जगह मैं धूप लगने के लिए रख आया था। पानी बरसते ही यह सोचकर घबरा गया। 'हाय ठाकुर! यह क्या हुआ, लकड़ियाँ भीग गई।' कल गीली लकड़ियों से होम किस प्रकार होगा, इस चिन्ता से अस्थिर होकर मैंने मन ही मन ठाकुर से कहा-उनकी दया होने से सब कुछ हो सकता है, नहीं तो और कुछ उपाय नहीं है, समय अनुसार विवश होकर रह गया। भोजन करके रात को जब पानी रुक गया, आसन पर जाकर देखा कि पूरी लकड़ियाँ घर के बीच में सजाकर रखी हुई हैं। मैं आश्चर्य से रात को देर तक सोचता रहा कि घर के भीतर लकड़ियाँ किसने लाकर रख दी। फिर २-३ दिन तक की लकडियाँ किसने भीतर लाकर रख दी थीं, किन्तु सभी ने बतलाया कि 'उन्हें नहीं मालूम।' पण्डित दादा ने कहा-इसका पता क्यों लगाते हो? यदि किसी अन्य व्यक्ति ने यह काम किया भी होगा तो उसे कराया तो ठाकुर ने ही है। औरों के लिए यह साधारण घटना होने पर भी इसने मेरे चित्त को बहुत आलोडित कर दिया। हाय! हाय! मेरी घबराहट देखकर ठाकुर को यह काम करना पड़ा।

पण्डित दादा के रसोईघर में ही मैंने अपना आसन लगा लिया

है।

कर्म किस प्रकार समाप्त होता है?

आज एकान्त पाकर पाठ के अन्त में मैंने ठाकुर से पूछा-‘सुनता हूँ, कर्म ही मनुष्य का बन्धन है। तो यह कर्म किस प्रकार समाप्त होता है? कर्म करके ही क्या कर्म को समाप्त किया जाता है?’ ठाकुर ने कहा-**यह भी कहीं होता है? कर्म करके कोई भी कर्म को समाप्त नहीं कर सकता है। कर्म करते-करते तो मनुष्य उसमें और भी जकड़ जाता है। निष्काम कर्म द्वारा कर्म समाप्त किया जा सकता है, सही; किन्तु निष्काम कर्म करना बड़ा ही कठिन काम है। उसका अभ्यास करना सहज नहीं है। साधना द्वारा कर्म को समाप्त करना ही सहज है।**

मैंने पूछा-‘सद्गुरु का आश्रय ले लेने पर भी कर्म के शेष होने में इतनी देर क्यों होती है? सद्गुरु का आश्रय आदि लेने पर भी क्या फिर साधन-भजन करके प्रारब्ध कर्म को समाप्त करना होगा?

प्रश्न को सुनकर ठाकुर जरा हँसकर कहने लगे-**सद्गुरु का आश्रय मिल जाने पर कर्म अपने-आप समाप्त होने लगता है। आग के ऊपर लकड़ियों का ढेर लगाकर रखने से धीरे-धीरे जिस प्रकार वह जलता रहता है। और फिर जरा हवा लगते ही तुरन्त जलने लगती है और थोड़ी देर में, सब लकड़ियों को जलाकर बिलकुल भस्म कर डालती है। उसी प्रकार गुरु की दी हुई शक्ति भी अनेक जन्मों के कर्मरूप कूड़े-कचरे के नीचे से धीरे-धीरे नष्ट करते-करते गुरु की कृपा से जब वह एक बार जोर से जलने लगेगी, तब सारी कर्मराशि पल भर में नष्ट होगी एवं**

यथार्थ शान्ति की अवस्था में ले जाएगा। गुरुशक्ति अपने आप कार्य करती है।

मैंने पूछा-'जो दुष्कार्य प्रारब्ध के वश किये जाते हैं वे प्रारब्ध के ही कार्य हैं, यह किस प्रकार ज्ञात होता है?'

ठाकुर ने कहा-**एक कार्य में नितान्त अनिच्छा होने पर भी और बार-बार उससे बचने की चेष्टा करने पर भी जब विवश होकर उसे कर डालते हो, तब समझ लेना कि वह प्रारब्धवश ही हुआ। ऐसे कार्य के हो जाने पर सचमुच पछतावा होते ही, वह प्रारब्ध समाप्त हो जाता है। प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में ध्यान रखकर नाम करने लगने से, समस्त प्रारब्ध बड़ी शीघ्रता से नष्ट हो जाता है। इतनी सरलता से और किसी प्रकार नहीं होता।**

जीवन्मुक्त का कर्म; प्रारब्ध-क्षय का उपदेश।

१३ से ३१ ज्येष्ठ, जून १८९१। मैंने पूछा-'मनुष्य जब बिल्कुल निःस्वार्थ हो जाता है, जीवन्मुक्त हो जाता है, तब भी क्या उसका कर्म रहता है?'

ठाकुर ने कहा-**मनुष्य में जब तक स्वार्थ है, तब तक उसके कर्म कहाँ है? मनुष्य जब मुक्त हो जाता है तभी उसके वास्तविक कर्म का आरम्भ होता है। स्वार्थ नष्ट होकर मुक्तावस्था की प्राप्ति होने पर सारे संसार के लिए बेहद परिश्रम करना पड़ता है। निःस्वार्थ हुए बिना वास्तविक कर्म का आरम्भ नहीं होता। जीवन्मुक्त होने पर ही वास्तविक कर्म का आरम्भ होता है।।**

मैंने पूछा-'जो प्रारब्ध में है उसको न भोगने का भी क्या कुछ

उपाय नहीं है? क्या समस्त प्रारब्ध को भोगकर ही समाप्त करना होगा।'

ठाकुर ने कहा-**भगवान् प्रारब्ध का जितना भोग करावेंगे उतने को किसी प्रकार छुड़ा नहीं सकोगे। हाँ, जो लोग प्रसन्नता से कर्म करते जाते हैं, उनका कर्म शीघ्र समाप्त हो जाता है। और बेगार सी टालने से धीरे-धीरे बहुत कर्म जकड़ लेता है। कर्म की उपेक्षा कभी नहीं करनी चाहिए। कर्तव्य समझकर प्रसन्नता से कर्म किये जाओ। ऐसा करने पर बड़ी शीघ्रता से प्रारब्ध समाप्त हो जायेगा।**

कुछ दिन हुए, ठाकुर ने कहा था-**कर्म करके वह समाप्त नहीं किया जा सकता, साधन द्वारा ही कर्म को समाप्त करना सहज है। फिर अब कहा-भगवान् जितना प्रारब्ध भोग कराएंगे, उससे किसी तरह बच नहीं सकते। प्रसन्नता से कर्म करते जाओ, शीघ्र प्रारब्ध समाप्त हो जाएगा।** इन दोनों प्रकार की बातों का सामंजस्य करने के लिए मैंने यह समझा है कि भगवान् ही सबके कर्ता है उन्हीं की इच्छा से प्रारब्ध-भोग होता है। साधन-भजन करके भगवान के शरणापन्न हो सकने से उनकी कृपा होने से पल भर में सारा प्रारब्ध समाप्त हो सकता है। अतएव एकाग्र मन से उन्हीं को स्मरण करता हूँ। किन्तु यह तो कुछ जानता ही नहीं हूँ कि भगवान हैं क्या वस्तु? अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक भगवान को किस प्रकार पुकारना चाहिए, किस प्रकार पूजन करना चाहिए, यह तो मैं कुछ जानता-समझता नहीं हूँ। आकाश में पत्थर फेंकने की तरह, बिना लक्ष्य के ही केवल नाम किया करता हूँ। मन में यह संदेह पैदा हो गया। इसलिए एकान्त पाकर मैने दिल खोलकर

ठाकुर से पूछा-‘अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक भगवान की धारणा किसी तरह नहीं कर पाता। उनकी पूजा किस प्रकार करूँगा? मानो शून्य में भटककर हैरान हो रहा हूँ? क्या गुरु का ध्यान और पूजन करने से भगवान् का पूजन नहीं हो जाता? मुझे यह स्पष्ट समझा दीजिए।’

गुरु ही भगवान हैं।

ठाकुर ने कहा-**अग्नि तो सभी स्थानों में है, किन्तु उस अग्नि को क्या कोई पकड़ सकता है? क्या उसके द्वारा कोई काम लिया जा सकता है? आग की आवश्यकता होने पर, सर्वत्र जो आग है, आकाश में जो अग्नि है उसे नहीं पाया जा सकता। जहाँ अग्नि विशेष रूप से वर्तमान है, वहीं से ही अग्नि पायी जा सकती है। प्रदीप, धूनी, चूल्हा आदि स्थानों में अग्नि विद्यमान है, वहाँ से ही उसे पाया जा सकता है। इसी प्रकार ईश्वर यद्यपि सर्वव्यापक है, फिर भी कोई उसको पकड़ नहीं सकता। गुरु में ईश्वर की चित्शक्ति का प्रकाश देखकर वहीं पूजा करनी चाहिए। गुरु कोई मनुष्य नहीं है। गुरु ही तो भगवान हैं, उनकी पूजा करने से ही भगवान की पूजा हो जाती है।**

साधकजीवन में शुष्कता की आवश्यकता।

कई बार नाम का जप करते-करते बहुत ही निराशा, उद्वेग और शुष्कता आ जाती है, तब नाम का जप करने से जलन होती है। इसी से मैंने ठाकुर से पूछा-‘साधन करते समय कभी-कभी बहुत ही निराश हो जाता हूँ, शुष्कता और ज्वाला अस्थिर कर देती है, उस समय साधन भजन अच्छा नहीं लगता। ऐसी शुष्कता कब तक

भोगनी पड़ेगी? ऐसा होता ही क्यों हैं?

ठाकुर ने कहा-**देखो, यह वर्तमान ग्रीष्मऋतु कैसी भयानक है, ताल-तलैया, झील सभी सूख गये हैं। सूर्य की कड़ी गर्मी से सभी बैचेन हो रहे हैं, सभी प्राणी हाहाकार कर रहे हैं। पेड़-पौधों की भी अच्छी दशा नहीं है, देखते ही जान पड़ता है कि यह बड़ी विषम दशा है। वास्तविक प्रकृति लिए ऐसी दारूण दशा और कभी नहीं होती। किन्तु विचार करके देखो यदि यह गर्मी न पड़े तो न तो पानी बरसे, और न प्रकृति दुबारा नवीन सौन्दर्य से परिपूर्ण हो। यह ग्रीष्म ऋतु ही प्रकृति के नवीन सौन्दर्य की जननी है। गर्मी पड़ने से ही हम लोग वर्षा के इतने सुख और सौन्दर्य का अनुभव कर सकते हैं। साधन की अवस्था भी ऐसी ही है। साधन के समय शुष्कता, नैराश्य और जलन इत्यादि अनेक प्रकार की दुःख की दशा भोगनी पड़ती है, इसी से तो धर्म का इतना सौन्दर्य है। नैराश्य और शुष्कता न आती तो धर्म में इतना आनन्द ही न रहता। इन दशाओं के भीतर से होता हुआ साधक जब धर्म के सबसे ऊँचे शिखर पर पहुँचता है, तभी उसको यथार्थ शान्ति प्राप्त होती है। जब तक उसकी प्राप्ति नहीं होती, तब तक इन दशाओं से व्यक्ति का पीछा किसी तरह नहीं छूट सकता। इस समय इन सबकी आवश्यकता है। यदि शान्ति की दशा एक बार प्राप्त हो जाए तो फिर वह किसी तरह नष्ट नहीं होती।**

असमय शास्त्र पढ़ने और साधुसंगति करने से हानि।

मैंने पूछा-‘बहुत से शास्त्रों के पढ़ने और अनेक साधुओं की संगति करने से धर्म जीवन का कल्याण होता है या अनिष्ट?’

ठाकुर ने कहा-**सभी कार्यों की एक प्रणाली होती है। असमय या अनियम से किसी भी कार्य को करने में उसका सुफल प्राप्त नहीं होता, बल्कि हानि हो सकती है। शास्त्र के पढने और साधुसंगति करने का भी एक समय निर्दिष्ट है, एक अवस्था है। असमय या उलटी सीधी रीति से उन कार्यों के करने से कोई भी लाभ नहीं होता, बल्कि अनिष्ट हो जाता है। शास्त्र में भिन्न-भिन्न प्रकृतियों के अनुरूप भिन्न-भिन्न पथ और उपदेश हैं। प्रकृति अनुरूप मार्ग पर कुछ दूर तक अग्रसर होने पर, अवस्था के अनुरूप शास्त्र को पढ़ना चाहिए। जब तक अपने साधनमार्ग पर थोड़ी बहुत निष्ठा न हो जाये तब तक किसी भी शास्त्र को पढ़ना अथवा किसी भी साधु की संगति करना ठीक नहीं है। कई अवसरों पर देखा गया है कि वैसा कर बैठने से लोगों की बहुत हानि हो गई है। अपने साधन भजन के मार्ग की निष्ठा बिलकुल नष्ट हो जाती है।**

गेण्डारिया-आश्रय में नित्य संकीर्तन और भावावेश।

गर्मियों की छुट्टी में चारों ओर से बहुत से गणमान्य गुरुभ्राता ठाकुर के दर्शन करने के लिए गेण्डारिया आश्रम आये हैं। आजकल साधु-संन्यासी, बाउल, उदासी और मुसलमान फकीर लोग भी आश्रम आते-जाते हैं, और कोई तो ठहर भी जाते हैं, गुरुभ्राता लोग अपनी अपनी रुचि के गुरुभ्राताओं से मिलकर, अलग-अगल झुण्डों

में, स्थान-स्थान पर बैठकर, कहीं स्थिर भाव से नाम करते हैं, प्राणायाम करते है, कहीं उत्साह से धर्मालोचना में तत्पर रहते हैं, और कहीं कीर्तन के आनन्द में मस्त होकर समय बिता रहे हैं। ठाकुर की सेवा का कार्य लेकर किसी में प्रतियोगिता, झगड़ा और विवाद भी चल रहा है। सभी एक ही भाव में मस्त हैं, किसी को खबर नहीं कि कब सबेरा हुआ और कब शाम हो गई। मानो एक प्रकार के नशे में दिन-रात बीत जाते हैं। प्रतिदिन ही शाम को सभी मिलकर ठाकुर के समीप, कभी आश्रम के पूर्वी ओर के कमरे में और कभी आम के पेड़ के नीचे बड़ी उमंग से संकीर्तन किया करते हैं। यह संकीर्तन एक बड़ा भारी कार्य है। बरीशाल, बानरीपाड़ा, ढाका और भिन्न-भिन्न स्थानों के गुरुभ्राता एकत्र होकर, खोल, करताल लेकर जब जोर-जोर से संकीर्तन करते हैं, तब सभी की दृष्टि एकमात्र ठाकुर पर रहती है। ठाकुर आसन पर बैठे-बैठे बार-बार कम्पित होते रहते हैं, बार-बार अपने को रोकने की चेष्टा करने पर भी स्थिर न रह सकने पर एकदम उछल पड़ते हैं, उद्दाम नृत्य करके **'हरि बोल, हरि बोल'** की ध्वनि किया करते हैं। ठाकुर के हुंकार और **'हरि बोल'** की ध्वनि से चारों ओर स्त्रियों और पुरुषों के भीतर मानो एक अद्भुत शक्ति प्रविष्ट हो जाती है। देखते-देखते दो -चार मिनटों में ही बड़ी हलचल मच जाती है, सभी न जाने किस प्रकार के हो जाते हैं। किसी किसी को 'जय राधे, जय राधे' कहकर चिल्लाते हुए होश ही नहीं रहता, कोई-कोई बड़े जोर से हरिबोल, हरिबोल, कहकर एकटक ठाकुर की ओर देखते रहते और बहिर्वास उड़ाकर ठाकुर की परिक्रमा किया करते हैं, और कोई 'निताई निताई' कहकर जोर से गर्जन करके हुंकार करते-करते मल्लवेश में

ठाकुर का सामने आते हैं, फिर कोई-कोई थोड़ी देर निष्पन्ददशा में खड़े रहकर ठाकुर की ओर अपलक देखते और काँपते हुए, अचेत होकर गिर पड़ते हैं। सभी एक न एक भाव में मतवाले हो ठाकुर की ओर ताकते रहकर मगन रहते हैं। 'खोल' की ध्वनि और संकीर्तन का रव, गुरुभाईयों की हुँकार और गर्जन मिलकर विचित्र तड़ित्प्रवाह से दर्शकमण्डली को कंपित कर देती है। इस समय थोड़े अन्तर पर पर्दे की ओट में, स्त्री समुदाय के खूब रोने की ध्वनि सुनाई पड़ती है। अचेत दशा में कोई नृत्य करते-करते ठाकुर के चरणों के समीप आकर लोटती रह जाती, कोई-कोई पागलों की भाँति दौड़ती हुई ठाकुर को पकड़ने जाती, और रोकने पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है तथा छटपटाया करती है। हम कई एक गुरुभाई सबके स्पर्श से ठाकुर को बचाने के लिए उनको चारों ओर से घेर कर खड़े हो जाते, और भावावेश में उन्मत्त, मुग्ध, मूर्च्छित और ठाकुर के चारों ओर लपक रहे स्त्री-पुरुषों को अवस्था परखकर हटा दिया करते हैं। आश्रम में आजकल प्रतिदिन ही ऐसा महान् आनन्द उत्सव होता रहता है। धन्य ठाकुर! धन्य ठाकुर! आपका संग पाकर हम लोग भी धन्य हैं!

साधन क्या है? साधक का और सिद्ध का कर्तव्य क्या है? कैसे पहचाना जायगा कि धर्म प्राप्ति हुई या नहीं?

भोजन करके ठाकुर जब आम के वृक्ष के नीचे बैठते हैं, तब तक बहुत भीड़ नहीं रहती। पाठ कर चुकने पर एक दिन मैंने पूछा- 'मनुष्य की अशान्ति का मूल कारण क्या है?'

ठाकुर ने कहा-**धैर्य के अभाव से मनुष्य की समस्त अशान्ति होती है। धैर्य ही मनुष्य का मनुष्यत्व है। चंचलता ही अशांति का एकमात्र कारण है। जरा ठहरकर ठाकुर अपने आप फिर कहने लगे-मनुष्य का किसी भी विषय में चंचल होना ठीक नहीं। मनुष्य जब जो कुछ करे, स्थिरता से सोच विचारकर करे। एकाएक किसी भी काम को कर बैठना ठीक नहीं। सभी विषयों में खूब धैर्य रखकर काम करना चाहिए। धैर्य ही धर्म है और धैर्य ही मनुष्य का मनुष्यत्व है।**

मैंने पूछा-'हम लोगों का साधन क्या है? क्या नाम करना ही साधन है?'

ठाकुर ने कहा-**सद्गुरु के प्रदत्त नाम करना साधन नहीं कहलाता। सद्गुरु जिस नाम का उपदेश देते हैं, वह (नाम) गुरुशक्ति के प्रभाव से अपने-आप अनन्त काल तक चलता रहेगा। सभी विषयों में चंचलता को छोड़कर अत्यन्त धैर्य के साथ विचार करके समस्त कार्यों को करते जाना ही वास्तविक साधन है। सब कामों में धैर्य का अवलम्बन करना ही साधन है।**

विचारपूर्वक काम करने की बात सुनकर मैंने फिर पूछा-'साधक साधन की अवस्था में तो सभी काम विचारपूर्वक करेगा। क्या सिद्ध हो जाने पर फिर विचार करके कार्य नहीं करेगा?'

ठाकुर ने कहा-**सिद्धपुरुष के पास जो-जो विषय आते हैं, उनको वह भगवान के सामने रख देता है। वह जिन विषयों में भगवान की ज्योति स्पष्ट रूप से पड़ती देखें, उन्हीं को कर्तव्य मानकर स्वीकार कर लेते हैं। सिद्ध महापुरुष लोग सभी कामों को भगवान के इंगित के अनुसार किया करते हैं। वे अपनी इच्छा**

से कुछ भी नहीं करते। वे लोग तो भगवान की इच्छा के पीछे खड़े होकर केवल उनका पताका वहन कर लेते हैं।

मैंने पूछा-'कैसे समझूँगा कि धर्म ठीक-ठीक प्रकृतिगत हो गया है या नहीं!

ठाकुर ने कहा-**आग जिस प्रकार सभी दशाओं में एक सी रहती है, किसी भी दशा में उसकी गर्मी (उत्ताप) नष्ट नहीं होती, उसी प्रकार आपत्ति-विपत्ति, आनन्द-उल्लास, किसी भी हालत में जिसका धैर्य नष्ट नहीं होता, सत्य और धर्म एक ही सा बना रहता है, विनय और समता में जरा भी अन्तर नहीं होता, समझ लेना कि उसका धर्म प्रकृतिगत हो गया है। सभी अवस्थाओं में धर्म, धैर्य, विनय और मित्रता के ठीक रहने पर यथार्थ धर्मप्राप्ति हुई समझना। विपत्ति-सम्पत्ति में, निन्दा और प्रशंसा में ही सही परख हो जाती है कि मनुष्य को यथार्थ धर्म प्राप्त हुआ है कि नहीं।**

इन उपदेशों के समय ठाकुर ने बहुत सी कहानियाँ सुनाईं और दृष्टान्त दिये। धर्म सहज नहीं है, क्या उसकी प्राप्ति इस जीवन में हो पाएगी!

भाव की विचित्रता के सामंजस्य का उपदेश।

निष्ठावान् हिन्दू, पाश्चात्य रंग में रँगे ब्राह्म, यहाँ तक कि मुसलमान और ईसाई आदि विभिन्न सम्प्रदायों के गणमान्य लोगों ने भी साधन ग्रहण करके ठाकुर का आश्रय प्राप्त किया है। कुछ समय तक एक स्थान में रहने और कई बार आचार-व्यवहार की भिन्नता के कारण इन लोगों के बीच आपस में बहस, कलह, वाद-

विवाद हो जाता है और अनेक विषयों में मतभेद भी हो जाया करता है। इन सभी मतामतों और आचार-व्यवहार के विरोध का निर्णय करने के लिए कई बार दोनों ही पक्ष, बडी स्पर्धा के साथ ठाकुर के पास आते हैं। सर्व साधारण के व्यवहार पर कोई कुछ करता है तो उसे सारहीन सिद्ध करने के लिए भी ठाकुर से कितने ही प्रश्न किये जाते हैं। किन्तु समस्या में दोनों ही पक्षों को सन्तुष्ट रखकर ठाकुर विचित्र रीति से प्रश्न का समाधान कर देते हैं।

आज ठाकुर ने सभी से कहा-**सभी की अवस्था से सहानुभूति रखनी चाहिए। दूसरे के साथ मतभेद होने अथवा उसकी दशा के साथ मेल न खाने पर भी उनकी बिल्कुल अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। दूसरे के अवस्था का विचार करने के लिए, इसे अपनी अवस्था समझकर अनुभव करना पड़ता है। एक इंच का अन्तर रहने पर भी, एक की अवस्था की आवश्यकता, गुरुत्व, दोष या गुण दूसरे की समझ में नहीं आ सकता। मतभेद और दशा की भिन्नता तो संसार में सदा रहेगी ही। भगवान के राज्य में कोई भी दो वस्तुएँ हू-ब-हू एक सी नहीं है। किसी न किसी अंश में कुछ न कुछ भिन्नता रहेगी ही। इन विविध विचित्रताओं के बीच में भी एक सुन्दर श्रृंखला है। मनुष्य उसको जब तक देख नहीं पाता, तभी तक गोलमाल करता है। वास्तव में सभी एक से हो जाएँ तो प्रकृति का सौन्दर्य ही नष्ट हो जाए। विविध फूलों के पौधों से बगीचे की शोभा जैसे बढ़ती है, वैसी एक ही किस्म के पौधों से नहीं होती। वैसी ही विभिन्न प्रकृतियों के समावेश से यह संसार भी शोभित है। मनुष्य जब इसको देखने लगता है, तब किसी प्रकार का विरोध नहीं रह जाता। वह प्रकृति की**

विचित्रता के भीतर भगवान् की अद्भुत सृष्टि श्रृंखला और विचित्र कुशलता देखकर बिल्कुल मुग्ध हो जाता और परम आनन्द पाता है। वह किसी तरह न तो विचलित होता है और न अशान्त होता है। अपने स्थान पर स्वयं ठीक रहकर केवल दूसरे की अवस्था देखते रहना चाहिए, तभी धीरे-धीरे शान्ति मिलती है।

'सबसे रसिये, सबसे बसिए, सबसे लीजिए काम।।
हाँजी हाँजी करते रहिए , बैठिये अपने ठाम।।'

दुर्गाचरण बाबू पर फकीर का अत्याचार। सम्पूर्ण क्षमा के स्थान पर भगवान् का दण्ड।

हम लोगों के गुरुभाई गेण्डारिया के श्रीदुर्गाचरण साहा फकीरों के साथ कुछ दिन मेलजोल रखने से कुछ करामातों की बातें सीख गये हैं। समय-समय पर दुर्गाचरण ठाकुर के आगे भी ऐसी बातें कहकर खूब मजे करते हैं। हम लोग भी खुश होते हैं और हँसते हैं। हम सबको गांजा पीने की मनाही है फिर भी फकीरों के चक्कर में पड़कर दुर्गाचरण ने गांजे की दम लगाने का अच्छा अभ्यास कर लिया है। श्यामाकान्त पण्डितजी ने एक दिन दुर्गाचरण से कहा, 'दुर्गाचरण, गांजा क्यों लेते हो?' उन्होंने जरा गम्भीर भाव से सिर हिलाते हुए कहा-आप लोग साधारण रीति से जिन स्थानों में विचरते हैं, वहाँ से ऊपर जाने के लिए गांजे की दम लगानी पड़ती है। गांजा पीने पर भी, दुर्गाचरण बहुत ही विनीत और निरीह स्वभाव के भले आदमी हैं। गेण्डारिया के एक प्रभावशाली फकीर को दुर्गाचरण प्रतिदिन दो-चार पैसे का गांजा देते रहते हैं। दो दिन हुए,

हाथ में पैसे न रहने से दुर्गाचरण उस फकीर को निर्दिष्ट समय पर गांजा नहीं दे सके। इसी से जरा डरकर, वे आश्रम आये और वृक्ष के नीचे ठाकुर के पास चुपचाप बैठे रहे। फकीर को समय पर जब गांजा न मिला तब वह दुर्गाचरण को ढूँढता हुआ आश्रम में आ पहुँचा और ठाकुर के पास दुर्गाचरण को चुपचाप बैठा देखकर, मारे क्रोध के आगबबूला हो गया। वह बेंत लिये हुए था। उसी से वह अत्यन्त निष्ठुरता से जोर-जोर से दुर्गाचरण की पीठ पर मारता हुआ कहने लगा, 'अरे साले! गुरु के सामने आकर बैठा है! तुझको मारने से तेरा गुरु हमारा क्या कर लेगा!' दुर्गाचरण चाहते तो सहज में फकीर के टुकड़े-टुकड़े कर डालते, किन्तु किसी प्रकार की चंचलता प्रकट न करके, मार खाकर, वे ठाकुर के मुख की ओर देखकर रोने लगे। ठाकुर दो एक बार फकीर की ओर देखकर स्थिर हो गये। फकीर भी बड़ी अकड़ के साथ हाथ का बेंत घुमाता हुआ, आश्रम से निकलकर पश्चिम ओर चला गया।

ठाकुर ने थोड़ी देर तक स्थिर रहकर दुर्गाचरण से कहा- **दुर्गाचरण, फकीर साहब ने अनुचित रीति से तुम्हें इतना पीटा और तुम चुपचाप सहते रहे, तुमने कुछ कहा तक नहीं!**

दुर्गाचरण ने कहा-'प्रभो! आपके सामने उससे मैं कैसे कुछ कहता? मैंने तो भगवान् के ऊपर सब छोड़ दिया था।

ठाकुर ने कहा-**ओहो! ऐसा नहीं करना चाहिए। प्रतिकार करने में समर्थ होकर भी अत्याचार को चुपचाप सहकर जो लोग बिल्कुल भगवान् पर सब छोड़ देते हैं, वे अत्याचारी का काम तमाम कर डालते हैं। आश्रम से बाहर निकलते ही फकीर साहब जैसे विचित्र संकट में पड़े हैं, उसका अन्वेषण करने पर तुम्हें**

मालूम हो जाएगा।

दुर्गाचरण ने आश्रम से बाहर जाकर फकीर का पता लगाया, फिर लौटकर ठाकुर से बताया, 'फकीर साहब बेंत घुमाते हुए लोहे के पुल के पास जाकर, एक व्यक्ति को नाहक गालियाँ देने लगे। पास ही पहरेवाला था, उसने जब फकीर साहब को गाली-गलौज करने से रोका तो उन्होंने आगा-पीछा न सोचकर अपनी बेंत से पुलिसवाले को भी पीट दिया। इस पर दो-चार पुलिसवाले जमा हो गये। फकीर साहब को गिरफ्तार करके ले गये। आज सुना है कि फकीर साहब पागल समझे जाकर उसी दिन पागलखाने में बन्द कर दिये गये। जेलर और डॉक्टर के पास पहुँचाये गये तो फकीर साहब उन्हें गन्दी गालियाँ देने लगे। इस अपराध के लिए उसी दिन से उन्हें प्रतिदिन शाम-सवेरे पाँच-पाँच, कुल दस बेंत लगाये जाने का हुक्म हुआ है। अब फकीर साहब को प्रतिदिन बेंत पड़ती हैं।' यह खबर पाकर ठाकुर बहुत दुखी हुए और फकीर साहब के छुटकारे के लिए प्रयत्न करने का कुछ सज्जनों से उन्होंने अनुरोध किया। सम्भवतः उन पदस्थ लोगों की चेष्टा से शीघ्र ही जेलखाने से फकीर की रिहाई हो सकेगी।

यदि दुर्गाचरण उक्त फकीर से बदला ले लेते तो उस बेचारे को यह दण्ड न भोगना पड़ता, ऐसा अनुमान करके मैंने ठाकुर से पूछा- 'यदि कोई अनुचित रीति से अत्याचार करे तो क्या उससे प्रतिहिंसा करनी चाहिए?'

प्रश्न को सुनकर ठाकुर सिहर उठे। उन्होंने कहा-**राम! राम!! मनुष्य प्रतिहिंसा करेगा? अत्याचारी को सदा क्षमा कर देना, अत्याचारी की भलाई की आकांक्षा करना चाहिए। हाँ, जो**

अत्याचार करता है, उसी के भले के लिए, मन में पूर्ण क्षमा और शान्ति रखते हुए, ऊपरी कृत्रिम क्रोध दिखलाकर दो-चार बातों से थोड़ा सा धमका देना चाहिए। इससे बदला भी ले लिया गया और अत्याचारी की विषम दण्ड से रक्षा भी हुई। पूर्णतः क्षमा करके, भगवान् के हाथ में बिल्कुल छोड देने से अत्याचारी को भारी दण्ड सहना पड़ता है। गयाजी में एक बार ऐसी ही एक घटना हो गई थी। वहाँ आकाशगंगा पहाड़ पर जिन दिनों में रहता था, उस समय हम लोगों के साथ कुछ दिन तक एक परमहंस भी थे। एक बार परमहंस के एक शिष्य ने एकादशी को निर्जला व्रत रखकर, द्वादशी को प्रातःकाल फल्गु में जाकर स्नान किया; फिर विष्णुपद के दर्शन करने में उसे थोड़ा सा विलम्ब हुआ। वह अपने साथ छोटे से गोपालजी को सदा लिये रहता था। द्वादशी का पारण करने का समय व्यतीत होते देख वह व्याकुल हो गया और शीघ्र एक हलवाई की दुकान पर जाकर, उसने दुकानदार से कहा-'पारण करने का समय बीता जा रहा है, मुझे थोड़ी सी मिठाई दे दो, गोपालजी को भोग लगाकर मैं जरा पानी पीऊँगा।' दुकानदार ने उसकी बात अनसुनी कर दी। साधु ने तीन-चार बार अपनी बात दुहराई, किन्तु दुकानदार ने जब 'हाँ', 'न' कुछ नहीं कहा, तब जल्दी में एक बताशा उठाने के लिए जैसे ही साधु ने हाथ बढ़ाया, तभी दुकानदार और उसका बेटा दोनों ही दुकान से कूदकर रास्ते में आ गये और साधु को बुरी तरह पीटने लगे। एकादशी का निर्जला उपवास करने से साधु यों ही कमजोर था, अब ऐसी मार पड़ने से वह नीचे गिर पड़ा। राह चलनेवालों ने बीच-बचाव

करके साधु को छुड़वा दिया। साधु ने दुकानवालों से भला-बुरा कुछ भी नहीं कहा, उसने आकाश की ओर देखा और जरा मुस्कुराकर हाथ जोड़कर कहा-‘भला है, दयालु गुरुजी, तुम्हारी लीला है!’ इतना कहकर साधु पहाड़ की ओर चला गया। परमहंसजी पहाड़ पर एक चट्टान के ऊपर स्थिर बैठे हुए थे। वे एकाएक चौंक पड़े और चट्टान से कूदकर नीचे आ गये व गोदावरी नामक रास्ते की ओर दौड़ पड़े। रास्ते में शिष्य को देखकर परमहंसजी कहने लगे-‘क्यों रे बच्चा, तूने क्या कर डाला?’ शिष्य ने कहा, मैंने तो कुछ नहीं किया गुरुजी? परमहंसजी ने कहा-‘बहुत कुछ कर डाला है। बहुत बुरा काम किया है। रामजी के ऊपर बिल्कुल छोड़ दिया। चलकर देख, रामजी ने उसका क्या हाल किया है। यह कह कर शिष्य को साथ ले परमहंसजी हलवाई की दुकान के पास पहुँचे तो देखा कि हलवाई का सत्यानाश हो गया है। साधु को पीटकर, हलवाई का लड़का भट्टी में जलाने के लिए लकड़ियाँ निकालने को जैसे ही ईंधन की कोठरी में घुसने लगा तभी एक काले साँप ने उसे डस लिया। हलवाई घी को गरम कर रहा था। बेटे को साँप के डसने की खबर पाते ही भट्टी के ऊपर घी की कड़ाही छोड़कर, उसने दौड़कर बेटे को पकड़ा और उसे खींचकर रास्ते पर रख दिया। इधर भट्टी पर रखा घी इतना गरम हो गया कि उसमें से जो लौ निकली, उससे छत में आग लग गई। परमहंसजी ने जाकर देखा कि हलवाई का लड़का रास्ते में मुर्दे की तरह पड़ा हुआ है, घर को आग जला रही है और लोग रास्ते में खड़े-खड़े हाय-हाय कर रहे हैं। विचित्र संकट था। परमहंसजी शिष्य के

साथ पहाड़ पर लौट आये और उसको बहुत गालियाँ देकर कहने लगे-'बिना अपराध के कोई अत्याचार करे तो, क्रोध न होने पर भी, कम से कम उसको एक-आध गाली दे आना चाहिए। मनुष्य थोड़ा सा बदला ले लेता है तो अत्याचारी की रक्षा हो जाती है, रामजी के ऊपर सारा भार छोड़ देने से रामजी बड़ा कठोर दण्ड देते हैं। भगवान् का दण्ड बड़ा कठिन होता है।'

वैशाख और ज्येष्ठ में आश्रम की अवस्था।

वैशाख के मध्य में अनेक स्थानों से दीक्षा लेने के लिए लोगों के झुण्ड आने लगे हैं। इतने ही समय में सैकड़ों स्त्रियों और पुरुषों को दीक्षा मिल गई। दीक्षा के समय गुरुभ्राताओं और गुरुभगिनियों पर परलोकगत विविध स्तर की आत्माओं का आविर्भाव हुआ करता है। इस समय उन लोगों के नाना प्रकार के भावोच्छ्वास और अजीब बातचीत, स्तुति, रोना, पश्चात्ताप और दशा की विचित्रता देखकर में बिल्कुल अवाक् हो जाता हूँ। लगातार नये आनेवालों के समागम से कोई डेढ़ महीने तक इस आश्रम में सदा सरगरमी सी बनी रहती है। दिन रात लोगों में उत्साह एवं उद्यम है, आनन्द का एक स्त्रोत सा लगातार बहता रहता है। भोजन और सोने में जितना समय लगता है, उसको छोड़कर सदा गुरुभ्राता लोग बड़ी प्रसन्नता से ठाकुर के संग का लाभ उठा रहे हैं। ठाकुर के समीप बैठने में ही सबको आनन्द है, उनकी बातें सुनने से ही सभी परितृप्त हैं, उनके दर्शन में ही सब लोग मुग्ध है। विवाद-झगड़ों में भी तो उन्हीं का प्रसंग दिखाई देता है।

इस समय ठाकुर के प्रतिदिन के क्रियाकलाप।

कड़ी धूप के मारे कुछ दिन तक अब घर के बाहर नहीं रहा जाता। भोजन के पश्चात् दोपहर को ठाकुर पूर्व दिशा के कमरे में बैठते हैं। एकरामपुर से गेण्डारिया-आश्रम में आते ही ठाकुर ने पूर्व दिशा के कमरे के उत्तर ओर, दक्षिणामुखी आसन लगाया था। ठाकुर जिस समय श्रीवृन्दावन में थे उस समय गेण्डारिया के गुरुभाईयों ने ठाकुर के आसनवाले स्थान की पक्की जुड़ाई करवा दी थी। किन्तु ठाकुर श्रीवृन्दावन से लौटने पर पक्की जुड़ाई के ऊपर नहीं बैठे। उन्होंने उस घर के दक्षिण ओर उत्तरमुख आसन लगाया है।

ठाकुर खूब सुबह आसन से उठकर शौच को जाते हैं। वहाँ से आकर, कोई आधे घंटे तक आश्रम के ही भीतर आम वृक्ष के नीचे की ओर टहलते रहते हैं। फिर कभी तो साधन-कुटीर में और कभी पूर्व ओर के घर में आसन पर जाकर बैठते हैं। सात बजे के लगभग वे चाय पीते हैं। इसके पश्चात् श्रद्धेय श्रीकुंज घोष, भावविभोर होकर, श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत का पाठ करते हैं। पाठ सुनने के लिए बहुत से स्त्री-पुरुष आ जाते हैं। किन्तु मैं केवल ठाकुर के दर्शन करने और घोष महाशय की दशा को देखने के लिए ही वहाँ जा बैठता हूँ। चरितामृतग्रन्थ को नमस्कार करके गौरचन्द्रिका पढ़ते ही कुंज बाबू का गला भर आता है। थोड़ा-बहुत पाठ करते ही पुलक, अश्रु और कम्पन से वे अवसन्न हो जाया करते हैं। चरितामृत के किसी भी श्लोक का स्पष्ट उच्चारण करने की क्षमता उनमें नहीं रह जाती।

घोष महाशय का भावविह्वल गद्गद स्वर सुनते ही ठाकुर भी मानो डूब जाते हैं। इस पाठ की समाप्ति में कोई एक घंटा लग जाता है। फिर ठाकुर स्वयं 'ग्रन्थ साहब' तथा और भी कई शास्त्रों का पाठ करते हैं। इसी में लगभग ग्यारह बज जाते हैं। ग्यारह बज जाने पर ठाकुर आसन से उठकर शौच को जाते हैं। आधे घण्टे में ही स्नान करके आसन पर आ जाते हैं। तिलक लगाने और औषधि आदि का सेवन करने में कोई बारह बज जाते हैं।

दोपहर को बारह बजे के लगभग ठाकुर भोजन करते हैं। इसके पश्चात् मैं महाभारत का पाठ सुनाने लगता हूँ। दो घंटे तक महाभारत पढ़्ता रहता हूँ। फिर ठाकुर सिद्धासन लगाकर स्थिरता से बैठे रहते हैं। इस समय बिना विशेष आवश्यकता के उस कमरे में कोई आता-जाता नहीं है; बातचीत बन्द रहती है। ठाकुर हाथ में एक पुस्तक लिये आँख मूँदे रहते हैं। लगातार इतने आँसू गिरते है कि उनके कपड़े भीग जाते हैं। आवेश में ठाकुर की देह स्थिर नहीं रह पाती, इससे वे आगे की ओर झुक पड़ते हैं कभी पन्द्रह-बीस मिनट तक अचेत से पड़े रहते हैं। फिर धीरे-धीरे सँभलकर बैठते हैं। प्रतिदिन कोई पाँच बजे तक इसी प्रकार समय बीतता है। इसके बाद आसन से ठाकुर के उठने पर, मैं आम के वृक्ष के नीचे आसन ले जाकर बिछा देता हूँ।

शाम को शहर के बहुत से गणमान्य लोग आया करते हैं। वृक्ष के नीचे का स्थान भर जाता है। संध्या होने तक ठाकुर सबसे बातचीत किया करते हैं। मैं इस समय अपने भोजन के प्रबन्ध में रहता हूँ। इससे इस समय की किसी भी घटना को मैं साक्षात् रूप से नहीं जानता। प्रतिदिन सन्ध्या-कीर्तन होता है। रात को कोई नौ बजे तक

बड़े आनन्द से यह उत्सव होता रहता है। लगभग दस बजे ठाकुर रोटी, तरकारी और हलुवा आदि का भोग लगाते हैं। भोजन करके रात को चार बजे तक ठाकुर एक ही तरह एकासन पर बैठे रहते हैं। चार बज जाने पर, आधे घंटे मात्र शयन करते हैं। योगजीवन आदि तीन-चार गुरुभाई रात में ठाकुर के कमरे में रहते हैं। लगभग पाँच बजे ठाकुर करताल बजाकर प्रभाती कीर्तन करते हैं। ठाकुर दिनरात इसी प्रकार दिनरात व्यतीत करते हैं।

परमहंस गौर शिरोमणिजी का दृष्टान्त-दोष में गुण देखना।

१ से १५ आषाढ़। मैंने पूछा-'परमहंस किसको कहते हैं?

ठाकुर ने कहा-**दूध में पानी मिलाकर हंस के पास रखने से हंस पानी के अंश को छोड़कर केवल दूध के अंश को ग्रहण करता है। इसी प्रकार इस अनित्य मिथ्या संसार में जो लोग केवल सार सत्य को ही ग्रहण करते हैं, वे ही परमहंस है। परमहंसगण केवल सार को ग्रहण करते हैं, गुण को ही देखते हैं; वे दोष को देखते ही नहीं। परमहंस सर्वदा गुण-ग्राही होते हैं।**

परमहंस का दृष्टान्त देने के लिए ठाकुर ने श्रीवृन्दावन के गौर शिरोमणिजी का उदाहरण दिया-**श्रीवृन्दावन में संसार के विषय आदि से विरक्त एक वैष्णव संन्यासी बहुत दिनों से एकान्त में भजन-साधन करके परमानन्द से निवास कर रहे थे। भगवान् का ऐसा चक्र! एक बार उस साधु को स्त्री-संग हो गया। वैष्णव समाज में इसकी चर्चा फैल जाने से सर्वत्र उनकी निन्दा, आलोचना होने लगी। पतित हो जाने से वैष्णव समाज ने घृणा**

के साथ उनका संसर्ग छोड़ दिया। इसकी खबर गौर शिरोमणिजी को भी मिली। एक दिन उनके कुंज में महोत्सव था। सभी वैष्णवों को निमंत्रण दिया। उस समय उन्होंने उस वैष्णव साधु को भी निमंत्रण दिया। भोजन के समय अन्यान्य वैष्णवों के साथ एक पंक्ति में बैठने का अनुरोध उन्होंने उस साधु से भी किया। तब सभी वैष्णवों ने शिरोमणिजी से कहा,-'प्रभो! आप जो कहेंगे या करेंगे वही हम लोगों को शिरोधार्य होगा। फिर भी यह प्रार्थना है कि हमें इनके साथ एक पंक्ति में बैठने की आज्ञा न दीजिए। कुकर्म करने से ये पतित हो चुके है।' शिरोमणिजी ने हाथ जोड़कर सभी को नमस्कार किया और रोते-रोते कहा, 'आप लोग अब यह बात न कहिएगा। ये तो महात्मा है। हम लोगों पर इनकी बड़ी दया है। ऐसा महात्मा पुरुष भी यदि कोई गर्हित आचरण कर बैठता है, तो समाज में उसे कैसी लांछना अपमान और घृणा का पात्र बनना पड़ता है, यही दिखाने के लिए हम लोगों पर दया करके ही यह विकट भोग स्वीकार किया है।' ऐसा कहकर उन्होंने साष्टांग हो उस दीनभावापन्न, आर्त साधु को नमस्कार किया और फिर सभी वैष्णवों से कहा,-'आप लोग मेरा भी त्याग कर दीजिए; सच कहता हूँ, मैंने तो इनसे भी बढ़कर अपराध किये हैं। अब वे अपने जीवन की पिछली घटनाओं का विवरण सुनाने लगे। तब तो सभी वैष्णव कानों में अँगुलिया लगाकर बोले 'प्रभो, रहने दीजिए, बस कीजिए।' उन लोगों ने उस साधु को अपनी पंक्ति में भोजन करने के लिए बैठा लिया। कोई तो गुण में भी दोष देखते हैं, कोई गुण को गुण और दोष को दोष देखते हैं, फिर किसी को

दोष दिखाई ही नहीं देता, वे दोष में भी सिर्फ गुण ही देखते हैं। सब कुछ अवस्था के अनुसार होता है।

साधक जीवन में दुर्दशा। असारता का बोध ही निर्भरता का हेतु।

एक दिन पाठ की समाप्ति हो जाने पर छोटे दादा ने ठाकुर से प्रश्न किया-'राधाकृष्णसंवाद में राधा जीवात्मा हैं या और कुछ?'

ठाकुर ने उत्तर दिया-**ये सब विषय अत्यन्त दुरूह है, अभी बतलाने से इन विषयों को कुछ भी समझ न पाओगे। असमय बतला देने, अवस्था की प्राप्ति न होने पर कोई भावार्थ को हृदयंगम नहीं कर सकता; कथा का विकृत अर्थ समझ लेने से आत्मा का अनिष्ट होता है, और वर्णित विषय दूषित हो जाता है। देखो, कृष्णदास कविराजजी ने चैतन्यचरितामृत लिखकर जीव गोस्वामी को दे दिया। जीव गोस्वामीजी ने उस ग्रन्थ को पाकर उसका प्रचार न करने को कहते हुए कहा, 'यद्यपि इस ग्रन्थ के द्वारा भक्त वैष्णवों का बहुत कल्याण होगा, तथापि इसके द्वारा साधारण जनसमाज का अनिष्ट के अतिरिक्त इष्ट साधन कुछ भी न होगा।'**

सदा नाम करो; भाव और लीला आदि सब कुछ खुल जावेगा। तब अपने आप प्रकट हो जावेगा कि चैतन्य कौन हैं, ईसा कौन हैं, और लीला क्या है। साधन करते-करते धीरे-धीरे पाँच अवस्थाओं की प्राप्ति होती है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर। इन अवस्थाओं को प्राप्त करने के लिए पहले कर्म करना पड़ता है, खूब साधन करना पड़ता है। इस

समय लोभ, मोह आदि शत्रुओं का आक्रमण होने पर साधक को बार-बार बड़ी परीक्षा देनी पड़ती है; साधक कभी तो परीक्षा में असफल हो जाता है और कभी उत्तीर्ण हो जाता है। समुद्र में नाविक नाव लेकर आगे बढ़ता है तो जिस प्रकार तरंग के साथ-साथ कभी तो वह ऊपर और कभी नीचे जाता हुआ भी चलता रहता है, उसी प्रकार साधक भी अनेक प्रकार की परीक्षाओं में उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण होते हुए भी चलता ही जाता है। परीक्षा-काल में बहुत से साधक साधन भजन बिल्कुल छोड़ देते हैं। नाना प्रकार के क्लेश, अशान्ति, शुष्कता और निराशा में पड़कर बिल्कुल घबरा जाते हैं, किन्तु दिन भर में यदि इस समय कम से कम चार-पाँच बार भी नाम लेते हैं तो किसी न किसी प्रकार उनका उद्धार हो ही जाता है। इस विषम दुःसमय में नाम-स्मरण ही उद्धार का एकमात्र उपाय है। ऐसी परीक्षा के प्रलोभन में पड़ना भी उन्नति का एक लक्षण है। बहुतों के जीवन में तो दो-तीन जन्मों तक इन परीक्षाओं का अवसर ही नहीं आता। दीक्षा लेने पर साधक की अवस्था में ये प्रलोभन-परीक्षाएँ न हो तो अपनी शोचनीय अवस्था समझना चाहिए। परीक्षाएँ आने से व्यक्ति की उन्नति की अवस्था का आरम्भ होता है। धीरे-धीरे इन दुरवस्थाओं में पड़ने पर साधक अपने को जब बिल्कुल अक्षम एवं अधम समझने लगता है, मनुष्य जब यह समझ लेता है कि 'मेरी अपनी कुछ भी क्षमता नहीं है, अपनी शक्ति से में एक साधारण तिनके को भी नहीं उठा सकता' तभी से भक्ति का विकास होने लगता है। आत्मशक्ति असार से भी असार है; एकमात्र 'भगवच्छक्ति को ही सार' समझ

लेने से साधक भगवान् के ही भरोसे हो जाता है, तब भगवान् की कृपा से उसके हृदय में भगवत्तत्व भी प्रकाशित होने लगता है। थोड़ा समय बीतने पर अपने आप फिर कहने लगे-**'अहंकार के नष्ट हो जाने पर सर्दी-गर्मी, मान-अपमान आदि किसी का भान नहीं होता ; क्योंकि ममत्व (मैं का भाव) रहने से ही ये सब होते हैं। मनुष्य जब भगवान से युक्त हो जाता है तो उसके सब आनेवाले सुख- दुःख, भगवान् ही ग्रहण किया करते हैं। भगवान् की कृपा से भक्तों को उसका भोग नहीं करना पड़ता। इस नियम से ही प्रह्लाद की रक्षा, अग्नि, जल, हाथी इत्यादि से अनायास हो गई थी। भगवद्भक्त चाहे तो अनायास ही सब भोगों से बचे रह सकते हैं, किन्तु वे भूलकर भी ऐसा नहीं करते। भक्त लोग सारे संकटों को सहते रहते हैं। प्रकृति में एक यह साधारण नियम देखा जाता है कि यदि एक व्यक्ति दूसरे को सचमुच चाहता है तो एक को कष्ट होने पर उसे दूसरा भी भोगता है; एक को बेंत मारने से दूसरे की देह में भी उस चोट के दाग पड़ जाते हैं।'**

आन्तरिक प्रेम का परिणाम शुभ। दो दृष्टान्त।

एक दिन महाभारत पढ़ते समय बहुत से लोग आ गये। पोथी सुना चुकने पर बहुत सी बातें होने लगीं। जी खोलकर, लगन से, चित्त को पूर्णतया एक ही स्थान पर संयुक्त कर दिया जाए तो उसी से धीरे-धीरे परम वस्तु की प्राप्ति का उपाय हो जाता है। यहाँ तक कि, एक स्त्री का अवलम्बन करने के जीवन का यथार्थ कल्याण हो गया है। दृष्टान्त द्वारा इसको समझाने के लिए ठाकुर ने दो कहानियों सुनाई, यथा-

'कलकत्ते के तालतला में, एक छात्रों की 'मेस' के पड़ोस में एक साहब रहता था। साहब की एक अविवाहिता युवती बेटी थी। उस पर 'मेस' के किसी लड़के की नजर पड़ी। कुछ दिन तक आपस में एक दूसरे को देखते रहने के बाद, वे परस्पर अत्यन्त आसक्त हो गये। एक दिन लड़के को चैन न पड़ी तो वह साहब के घर में चला गया। पता लग जाने से साहब ने उस दिन लड़के को बहुत धमकाया। कई दिन बाद वह फिर साहब के घर गया तो पकड़ा गया। उस दिन साहब ने दरबान से कुछ अपमान करवाकर उसको निकलवा दिया। लड़की के भी लक्षणों से साहब ने समझ लिया कि बात ठीक नहीं है। साहब ने सोचा कि इसको शीघ्र दूसरी जगह पहुँचा देना चाहिए, इसलिए वह एक दिन अन्यत्र जाने की तैयारी करने लगा। पता पाकर लड़का रास्ते में जाकर खड़ा हो गया। गाड़ी मँगवाकर साहब ज्यों ही लड़की को उसमें बैठाने लगा त्यों ही लड़का दौड़कर उस युवती से लिपट गया। तब साहब क्रोध से उन्मत्त होकर उस लड़के को लाठी से बुरी तरह पीटने लगा। इस पर लड़की ने साहब के हाथ की लाठी पकड़ी और मार पीट करना रोकवाकर पिता से कहा, 'तुम्हारा बर्ताव तो कसाई का सा निष्ठुरतापूर्ण है। कौन सा अपराध देखकर उसे इस तरह पीट रहे हो?' वह तो मुझ पर बहुत दिनों से प्रेम रखता है और मैं भी उसको हृदय से चाहती हूँ। उसका जरा भी दोष नहीं है। ऐसी ही बातें कहकर वह साहब से झगड़ने लगी। साहब देर करना ठीक न समझकर बेटी को अपने भाई के घर ले गया और उसे वहीं छोड़ आया।

वह लड़का साहब की मार से बेहोश होकर देर तक सड़क पर

पड़ा रहा; फिर होश आने पर, 'वह कहाँ गई, वह कहाँ गई?' कहता हुआ चारों ओर उन्मत्त की तरह दौड़ने लगा। उसके पीछे-पीछे चला। उसी समय एक सिद्ध फकीर उसकी हालत देखकर उसके पीछे हो लिए उसने मौका पाकर लड़के से पूछा तो सब हाल मालूम हो गया। लड़के ने रो-रोकर फकीर से कहा, 'फकीर साहब, मुझ पर मेहरबानी कीजिए। ऐसा उपाय बतला दीजिए जिससे वह मिल जाए और फिर कभी मुझसे अलग न हो।' फकीर ने कान में उसको एक मन्त्र सुनाकर कहा, कि 'अच्छी बात है, तुम लगातार इस मन्त्र का जप किया करो और मन में उस युवती का ध्यान करते रहो।' अब उन्होंने उसे बाजार में एक बरगद के नीचे बैठा दिया। वह लड़का तीन दिन तीन रात तक भूखा प्यासा, जागता रहकर, एक ही आसन में बैठा बैठा, आँखें बंद किए मन्त्र का जप करने और उस युवती के रूप का ध्यान करने लगा। उधर युवती भी उस लड़के का खयाल करते करते बावली सी होकर एक दिन घर से निकली और ढूँढती हुई पता लगाकर उस लड़के के पास आ गई। उसने लड़के को पुकार कर कहा, 'अजी जिसके लिए तुम इतना कष्ट सह रहे हो वही में आ गई हूँ। आँखें तो खोलो सही।' आवाज सुनकर उसने आँखें खोली तो एक ओर युवती को देखा फिर सामने और इधर उधर भी ताक-ताककर वह घबराहट के साथ कहने लगा, 'अरे! यह क्या है? तुम हो? नहीं, तुम नहीं। मैं तो एक सी दो सूरतें देख रहा हूँ। कल से तो तुम हर घड़ी मेरे ही पास हो। अब फिर तुम कौन हो?' साहब की बेटी थोड़ी देर तक उसका रंग-ढंग देखकर अन्त में यह समझकर वहाँ से चली गई कि यह तो पागल हो गया है। फकीर के मन्त्र के प्रभाव से और लड़के के मन लगाकर ध्यान करने तथा

जप करने से, भगवान् ही उसके आगे युवती के रूप में प्रकट हो गये?

यह किस्सा सुनाकर ठाकुर कहने लगे-**स्त्री हो चाहे और कुछ, उसमें मन की पूरी शक्ति लगाकर, एक मन और एक-चित्त होकर बैठने से ही काम बन जाता है। किन्तु यह क्या सहज है! यह होता ही कहाँ है। सच्चा सौहार्द आजकल बहुत ही दुर्लभ है। एक व्यक्ति का दूसरे को पूर्ण अंतःकरण से चाहना, प्रेम करना बहुत कम देखा जाता है। बहुत दिन हुए, शान्तिपुर में एक घटना देखी थी। ऐसी घटना अब सुनने में नहीं आती।**

यह कहकर ठाकुर उस घटना का वर्णन यों करने लगे-**शान्तिपुर के एक मुहल्ले में, छोटी उम्र में एक लड़के और लड़की में प्रेम हो गया। जैसे-जैसे उनकी उम्र बढ़ने लगी, वैसे वैसे प्रेम भी बढ़ता गया। मुहल्लेवाले उन दोनों की अनोखी प्रीति देखकर तरह-तरह की बातें करने लगे। लड़की ने एक दिन उस लड़के से कहा, 'लोग तरह-तरह की बातें फैलाते हैं, अभी तुम मेरे पास इस तरह मत आया करो।' यह सुनकर लड़का पागल सा हो गया; दिन-रात बहुत कष्ट पाने लगा। शीघ्र ही उस लड़की का विवाह हो गया। विवाह के बाद जब वह ससुराल जाने लगी तो वह लड़का भी रोता हुआ उसके पीछे हो लिया। लोगों ने गालियाँ देकर उसे भगा दिया। उस समय एक संन्यासी ने लड़के को देखकर कहा-ओहो, जो तुम किसी देवता से इस तरह मन लगाते तो इतने दिनों में तुम्हारा उद्धार हो गया होता। तुम किसी देवता को चाहते हो? लड़के ने उत्तर दिया, 'हाँ, मुझे रामजी प्यारे लगते हैं। तब संन्यासी उसे दीक्षा देकर रामनाम**

का जप करने के लिए कह गया। मुहल्ले में एक जगह राममूर्ति है लड़का यहाँ प्रतिदिन जाता और भगवान् के समीप बैठकर जप किया करता। जप करते समय उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती। रामजी को भोग लगाकर ही वह नित्य भोजन करता था। ऐसा देखा गया कि वह थाली परोसे हुए दो-दो, तीन-तीन दिन तक रामजी के आगे बैठा-बैठा रोया करता फिर भी जब तक रामजी भोग ग्रहण न कर लेते, वह कदापि भोजन न करता। यह अधिक समय तक जीवित नहीं रहा, कुछ दिनों में ही चल बसा।'

प्रकृति में आसक्ति की छाप।

हम लोगों के गुरुभाई विक्रमपुर के श्रीराजकुमार दत्त, श्रीवृन्दावन से आते समय एक पीतल का कमण्डल ले आये हैं। दोपहर को भोजन करके ठाकुर आसन-कुटीर में आकर जब बैठ गये तब राजकुमार बाबू ने वह कमण्डलु ठाकुर के आगे रखकर प्रणाम किया और कहा-'यह आपके लिये लाया हूँ, कृपा करके आप इसे ग्रहण कर लें।'

ठाकुर ने खूब सन्तुष्ट होकर उसे उठा लिया और उसको इधर-उधर देखकर नीचे रखकर कहा-**मेरे पास तो एक कमण्डलु है ही, यह अश्विनी को दे दीजिए। शायद अश्विनी जलपात्र नहीं है। मुझे आवश्यकता नहीं है।**

राजकुमार बाबू जिद न करके कमण्डलु ले गये। मुझे बड़ा कष्ट होने लगा। मैंने ठाकुर से कहा-'ग्रहण कर लिया है ऐसा भाव दिखलाकर हाथ में ले लिया, फिर उसको अपने वापस क्यों कर

दिया? मैं तो समझता हूँ कि अश्विनी के पास जलपात्र है।'

ठाकुर ने कहा-**हो तो भी वह अश्विनी को देना अच्छा है। अश्विनी की इच्छा उसको लेने की हुई थी।**

मैंने कहा-'लेने की इच्छा एक अश्विनी की ही क्यों, और दूसरे की भी तो रह सकती है?'

ठाकुर ने कहा-**हाँ यह हो सकता है। किन्तु एक वस्तु को देखकर साधारण रीति से लेने की इच्छा एक बात है और उसमें आसक्ति होना दूसरी बात है।**

मैंने पूछा-'किसी वस्तु पर किसी की आसक्ति थी, यह उस वस्तु को देखने से ही मालूम हो जाता है?'

ठाकुर ने कहा-**जिस वस्तु में जिसकी आसक्ति होती है, उस वस्तु में उस व्यक्ति की आकृति की एक छाप पड़ जाती है। वस्तु की ओर देखते ही वह आकृति भली-भाँति दिखाई पड़ती हैं।**

मैंने पूछा-जो कुछ आपने कहा है, वह मेरी समझ में नहीं आया। स्वच्छ वस्तु के ऊपर केवल मनुष्य का ही क्यों, सभी वस्तुओं का प्रतिबिम्ब पड़ता है। फिर वस्तु को हटा लेने से प्रतिबिम्ब भी लुप्त हो जाता है। वस्तु बहुत साफ निर्मल न हो प्रतिबिम्ब पड़ता भी नहीं। और प्रतिबिम्ब पड़ता भी है तो वह स्थायी कहाँ होता है?

ठाकुर ने कहा-**केवल साफ वस्तुओं में ही नहीं; मनुष्य जिस वस्तु को देखता है उसी में उसकी एक आकृति पड़ जाती है। स्वच्छ वस्तु में जो आकृति बन जाती है, उसको तो सभी लोग देख लेते हैं। दर्पण के पास खड़े होने से उसमें चेहरे का प्रतिबिम्ब पड़ता है और हट जाने से वह भी नहीं रहता, यही ठीक है; किन्तु फोटो लेते समय काँच पर जो फोटो उतरता है,**

वह पक्का हो जाता है, मिटता नहीं है। उसका कारण यह है कि काँच में जो अर्क लगा रहता है, उसी में आकृति बद्ध हो जाती है। इसी प्रकार साधारण रीति से वस्तुओं में जो आकृति झलकती है, वह स्थायी नहीं रहती। जिस वस्तु में आसक्तिरूपी अर्क लगा रहता है उसमें जो चेहरे की छाया पड़ जाती है तो फिर यह मिटती नहीं है-पक्की हो जाती है। जिनकी दृष्टि जरा स्वच्छ हो गई है, वे तुरन्त ही उसको देख लेते हैं। ये तत्त्व जब तक प्रत्यक्ष नहीं हो जाते, तब तक अवगत नहीं हो सकते, सिर्फ सुन लेने से कुछ समझ नहीं आता। जिस वस्तु पर किसी का लोभ होगा उसी पर उसकी आकृति अंकित हो जाएगी, यह समझ रखो।

इन बातों को सुनने से मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। जरा रुककर मैंने फिर पूछा-आसक्ति होने से वस्तुओं में जो चेहरा अंकित होता है, वह कब तक बना रहता है?

ठाकुर ने कहा-**जब तक जिस विषय में आसक्ति बनी रहेगी, तब तक उसमें आकृति स्थायी बनी रहेगी। आसक्ति नष्ट हो जाएगी तो फिर आकृति भी न रहेगी। फोटो का अर्क उड़ जाने पर जिस प्रकार चित्र भी मिट जाता है।**

मैंने पूछा-'शास्त्र में लिखा है कि विषय में आसक्ति होना ही पुनर्जन्म का कारण है? विषय में आसक्ति होने से आकृति अंकित हो जाती है, क्या वही परलोकगत जीव को संसार खींचकर ले आता है?'

ठाकुर ने कहा-**हाँ, यह भी हो सकता है। संसार में आने के और भी गुरुत्वपूर्ण कारण होते हैं?**

मैंने पूछा-'जिस वस्तु के संबंध में मनुष्य का जैसा भाव होता है, उस वस्तु में मनुष्य की जो आकृति अंकित हो जाती है, वह क्या उस भाव के ही अनुरूप होती है?'

ठाकुर ने कहा-**हाँ, बिल्कुल वैसी ही।**

मैंने कहा-'तब तो बड़ी कठिनाई है। कुछ भी छुपाना संभव नहीं हो सकता।'

ठाकुर ने कहा-**छुपाने का सामर्थ्य कहाँ है। प्रकृति में जो चेहरे की छाप अपने आप सदा पड़ी रहती है उसमें क्या किसी का हाथ है? जिसमें दृष्टि है वह प्रकृति की ओर देखते ही तो पल भर में सब कुछ देख लेगा। कोई कुछ, क्या छुपा सकेगा?**

साधन की अवस्था में इन्द्रिय-चांचल्य।

मौका पाकर मैंने ठाकुर से पूछा-यथातथ्य सावधान रहकर नियम के अनुसार साधन करता हूँ पर भी रिपु की उत्तेजना क्रमशः बढती ही पाता हूँ, ऐसे क्यों होता है?

ठाकुर ने कहा-**ऐसा होता है। जब जिस रिपु के बिल्कुल नष्ट हो जाने का उपक्रम होता है, तब यह बहुत प्रबल हो उठता है, जिस प्रकार बुझने से पहले दीपक तेज हो जाता है। उस समय रिपु की उत्तेजना यहाँ तक बढ़ जाती है कि बहुतों को साधन भजन पर भी अविश्वास हो जाता है। ऐसा समय बड़ा विकट होता है। सर्वदा प्रायः उन्मत्तता सी बनी रहती है। उस समय यदि गुरुप्रदत्त नाम का बिल्कुल त्याग नहीं कर देता तो साधक कुछ समय बीतने पर निरापद होकर पार हो जाता है और उसे उत्तम अवस्था की प्राप्ति हो जाती है, नहीं तो फिर बुरी तरह**

भटक जाता है। सर्वदा नाम करते रहने से किसी प्रकार का डर नहीं रहता। न जाने कितनी अवस्थाओं को पार करना पड़ेगा, उस समय एकमात्र नाम का ही सहारा रहता है।

मैंने पूछा-'जब किसी प्रकार की मानसिक उत्तेजना ही नहीं रहती और मन में किसी प्रकार कल्पना न होती तब अकस्मात् इन्द्रिय विषमरूप से उत्तजित क्यों हो जाती है? ऐसी दशा में क्या किया जाय?'

ठाकुर ने कहा-**स्नायुओं की दुर्बलता से कई अवसरों पर ऐसा हो जाता है। उस समय कभी एक स्थान पर नहीं बैठे रहना चाहिये, घूमने लगो, या किसी के पास जाकर बातचीत करने लगो। जब मुझे ऐसा होता था, तब मैं तुरन्त सिर पर कई घड़े पानी डाल लेता था; कभी-कभी दौड लगाता और थक जाने पर बैठ जाता था। ऐसी स्थिति में तुमको दौड़ लगाना अथवा नहाना सहन न होगा। आसन से उठकर टहलने लगना, इससे तुम्हारी कोई भी हानि न हो सकेगी।**

गुरुदक्षिणा, गुरु के अनुगत होने और गुरु-संग के विषय में प्रश्न।

मैंने पूछा-'प्राचीन काल में उपनयन के पश्चात् गुरु के घर में रहकर अपने-अपने संकल्प को सिद्ध कर लेने के बाद जब शिष्य घर लौटता था तब गुरुदक्षिणा देकर जाता था। हम लोगों को गुरुदक्षिणा देनी होगी?'

ठाकुर ने कहा-**मोक्षार्थियों को गुरुदक्षिणा देने की आवश्यकता नहीं। जो लोग गुरु के घर में रहकर विद्या ग्रहण**

करते थे, वे ही अध्ययन कर लेने पर गुरुदक्षिणा देकर जाते थे। सद्गुरु दीक्षा देकर, सब प्रकार से अपना लेते हैं। फिर उन्हें गुरुदक्षिणा कौन दे? हमारे यहाँ ऐसा कोई बन्धन नहीं है।

दीक्षा देते ही सद्गुरु तो शिष्य को अपना लेते हैं, किन्तु शिष्य यदि गुरु के संग संबंध न रखे तो विशेष लाभ क्या होगा? गुरु का अनुगामी होना ही गुरु के साथ संबंध है। यह न हो तो फिर गुरु के संग शिष्य का क्या संबंध? नाना प्रकार का संशय सर्वदा गुरु के प्रति मति को चंचल कर देता है, अतएव ऐसी स्थिति में क्या किया जाय?-यह सोचकर मैंने पूछा-'गुरु के अनुगत होने का क्या उपाय है?'

ठाकुर ने कहा-**गुरु के अनुगत होने का कोई उपाय नहीं बतलाया जा सकता। वृक्ष किस प्रकार बड़ा होगा, फूलों और फलों से सुशोभित होगा, क्या यह कोई बता सकता है? पानी और उत्ताप आदि के मिलते रहने पर वृक्ष बढ़ता और फूल-फल आदि से सुशोभित होता है, इतना ही कहा जा सकता है। इसी प्रकार रीति के अनुसार गुरु की आज्ञा का पालन करते-करते शिष्य भी तदनुरुप श्रद्धा, भक्ति और अनुकूलता प्राप्त कर लेता है। इतना ही कहा जा सकता हैं। ठीक आज्ञा के अनुसार चलने की चेष्टा करने से ही समझ जाओगे कि अनुगत किस प्रकार होना चाहिए।**

गुरु के पास रहकर गुरु में भगवद्बुद्धि रखना बहुत कठिन है। साधारण मनुष्य की भाँति गुरु की भी अनेक अवसरों पर चेष्टा, कार्य और भूल-चूक दिखाई पड़ती है। इससे तो दूर रहकर गुरु को भगवान् समझने में सुविधा है। इस सन्देह से मैंने ठाकुर से पूछा-

'सदा गुरु के साथ रहकर उनकी सेवा-सुश्रुषा करने में अधिक लाभ है या दूर रहकर उनकी बताई विधि से साधन-भजन करने में जीवन का अधिक कल्याण है?'

ठाकुर ने कहा-**सबके लिए एक ही मार्ग नहीं है। ऐसी प्रकृति के व्यक्ति भी होते हैं, जो गुरु के पास रहते हैं तो क्रमशः गुरु के प्रति उनका सन्देह बढ़ने लगता है, अतएव उनको कुछ दिशेष लाभ नहीं होता। फिर किसी-किसी को गुरु के सनीप रहने से ही दिशेष लाभ होता है। यह सब स्वभाव के ऊपर निर्भर है। सबका स्वभाव एक सा नहीं होता। यह तो निश्चित है कि गुरु के समीप रहने से हानि किसी की नहीं होती; सेवा-सुश्रुषा में रहने से वात्सल्यभाव कुछ अधिक होते देखा जाता है।**

ठाकुर की बातों से मैंने यह समझा कि समीप रहकर गुरु पर सन्देह आदि होने पर भी वात्सल्य भाव से जो मनता और आर्कषण उत्पन्न हो जाता है, वह बड़ा अनमोल है। गुरु पर ममता और आकर्षण होना समस्त सद्भावों के आरोप का हेतु है।

विधिमार्ग और चंचलता के विषय में उपदेश।

एक दिन एकान्त पाकर मैंने ठाकुर से पूछा-'मुझे क्या फिर संसार में आना होगा?'

ठाकुर ने कहा-**देखो, खूब प्रयत्न करके इस बार सब निपटा लो तो फिर क्यों आओगे? वासना को जीत सको तो फिर न आना पड़ेगा। वासना रह जाने से ही दुबारा आना पड़ता है।**

मैंने पूछा-'जब कि हम लोगों का लक्ष्य मोक्ष ही है, तब विधिमार्ग पर चलने की क्यों आवश्यकता होती है?'

ठाकुर ने कहा-**जब तक इन्द्रियदमन नहीं होता, तब तक विधिमार्ग पर चलना पर किन्तु उस साधन का उद्देश्य एकमात्र मोक्ष ही रहेगा। इन्द्रियदमन के लिए ही विधिमार्ग पर चलने की आवश्यकता है। अवस्था की प्राप्ति होते ही फिर अपने लिए विधि की आवश्यकता नहीं रह जाती। जब तक यह नहीं होता, विधि को मानकर चलना ही होगा।**

मैंने फिर पूछा-'प्राचीन काल में क्या सभी योगी-ऋषि मोक्ष के साधक थे या अन्य भाव के भी थे?'

ठाकुर ने कहा-**हाँ, कई मोक्ष के साधक थे और बहुत से त्रिवर्ग के भी साधक थे। सभी एक प्रकार के नहीं थे, न जाने कितने प्रकार के थे।**

एक दिन छोटे दादा ने ठाकुर से पूछा-**'नाम करते समय मन तो किसी प्रकार स्थिर होता ही नहीं। क्या करूँ?'**

ठाकुर ने कहा-**मन क्या सहज ही स्थिर हो जाता है? मन स्थिर हो गया तो फिर रह क्या गया? पहले-पहले मन बहुत अस्थिर ही रहता है, नाम का जप करने से मन में उचाट आता है। किन्तु इस समय नाम को छोड़ो मत। जबर्दस्ती औषधि खाने की तरह, इच्छा न रहने पर भी नाम करना चाहिए। इस समय जबर्दस्ती नाम किये बिना निस्तार नहीं होता। नाम करते-करते जहाँ एक बार उसका भली भाँति अभ्यास हुआ तब फिर और कोई कठिनाई नहीं रह जाती। जब तक नाम करने का अच्छा अभ्यास न हो जाय तब तक किसी प्रकार उसको छोड़ना नहीं चाहिए। सर्वदा चेष्टा करते रहो। मन लगाकर चेष्टा करते जाओ, भगवान् की कृपा से समय पर सब कुछ होगा।**

आसन की मर्यादा।

१६ से ३२ आषाढ कृष्णा। भोजन के उपरान्त पूर्व ओर के कमरे में बैठकर आज ठाकुर ने मुझे एक प्रकार का आसन दिखलाकर कहा- **ऐसा आसन लगाकर सदा बैठने की चेष्टा करो। इसका इतना अभ्यास कर लो कि जहाँ कहीं बैठो वहाँ इसी आसन में बैठा करो।**

मैंने पूछा-'आसन कितने प्रकार के हैं? यह आसन क्या सब आसनों से उत्तम है?'

ठाकुर ने कहा-**चौरासी लाख जीव हैं, और इतने ही आसन हैं। इनमें चौरासी मुख्य बतलाये गये हैं। उन चौरासी आसनों में भी पद्मासन और सिद्धासन श्रेष्ठ हैं। सिद्धासन सर्वश्रेष्ठ है, इससे असाधारण लाभ होता है। सभी आसनों की कुछ न कुछ आवश्यकता है।**

मैंने पूछा-'साधु-संन्यासी लोग जिस प्रकार बैठने के लिए अलग आसन रखते हैं, उस प्रकार क्या हम लोग भी साधन भजन करने के लिए आसन रख सकते हैं?

ठाकुर ने कहा-**जिन्हें यह साधना प्राप्त हो गया है, वे सभी चाहें तो अलग आसन रख सकते हैं। हाँ, आसन की मर्यादा की रक्षा की जा सके तभी।**

मैंने पूछा-'आसन की मर्यादा की रक्षा किस प्रकार करनी होती है?'

ठाकुर ने कहा-**आसन को नियम के अनुसार एक स्थान पर बिछाये रखो और प्रतिदिन एक निर्दिष्ट समय पर थोड़ी देर तक**

बैठकर साधन भजन करना चाहिए। धर्मविषयक सभी कार्य उस आसन पर ही बैठकर करो। और किसी को उस पर बैठने न दो। यदि उस पर कोई दूसरा व्यक्ति बैठ जाता है तो आसन का गुण नष्ट हो जाता है। आसन की पवित्रता की रक्षा ही आसन की मर्यादा की रक्षा है। आसन को एक निर्दिष्ट स्थान पर रखने में ही अधिक लाभ है। थोड़ी देर के लिए भी आसन्न उठाना हो तो कम से कम एक तिनका वहाँ पर पड़ा रहने दे, आसन के स्थान को कभी बिलकुल खाली न रखें।

जीवन्मुक्त की बात-मृत्यु और अपमृत्यु।

आज महाभारत का पाठ करने के उपरान्त मैने ठाकुर से पूछा- 'जो लोग जीवन्मुक्त हो जाते हैं, वे चाहें तो क्या फिर संसार में आ सकते हैं? '

ठाकुर ने कहा-**हाँ, चाहेंगे तो आ क्यों नहीं आ सकेंगे?**

मैंने दुबारा पूछा-'जीवन्मुक्त व्यक्ति संसार में आ जाय और संसार में पाप-स्त्रोत में पड़ जाय तो क्या उसका कुछ अनिष्ट नहीं होता?'

ठाकुर ने कहा-**उनका अनिष्ट और हो ही क्या सकता है? ये तो संसार में आते हैं और कुछ समय तक संसार का कार्य करके चले जाते हैं। संगदोष में पड़ जाने से उन्हें भोग की इच्छा होने पर भी वे उसमें बिल्कुल आबद्ध नहीं हो जाते, मात्र ऊपर से ही नाना प्रकार की बाधाएँ उपस्थित हो जाती है। वैसा कुछ गड़बड़ देखते हैं, तो महापुरुष ही उन्हें हटाकर ले जाते हैं, जैसी कि लाल की घटना हुई थी।**

मैंने कहा-'लाल तो विष खाकर मर गया था। अपमृत्यु होने से क्या उसे दण्ड नहीं मिलता?'

ठाकुर ने कहा-**लाल ने विष खा लिया था सही, किन्तु उसके देहत्याग के समय पर महापुरुषों ने मृत्यु को बुलाकर उसके जीवात्मा को ग्रहण कर लेने के लिये कहा, इसी से उसकी न तो अपमृत्यु हुई और न उसे कोई अपराध ही लगा; दण्ड भी नहीं मिला।**

इस विषय को और भी स्पष्ट रूप से समझने के लिए प्रश्न करने पर ठाकुर ने कहा-**प्राणवायु निकलते समय मृत्यु आकर जीवात्मा को ग्रहण कर लेता है तो स्वाभाविक मृत्यु होती है; और अकस्मात् किसी दुर्घटना में पड़कर देह में जीवात्मा के रहने पर भी यदि प्राणवायु निकल जाए तो वह मृत्यु अस्वाभाविक होती है। वही अपमृत्यु है, ऐसा होने से ही असद्गति हुआ करती है।**

रूद्राक्ष-धारण की आज्ञा: ब्रह्मचर्य के लिए उत्कण्ठा।

सवेरे अपना नित्य कर्म समाप्त करके ग्यारह बजे तक ठाकुर के पास बैठा रहता हूँ। आज देवी भागवत् पढ़ते समय ठाकुर ने मुझसे कहा-**तुम रूद्राक्ष की माला पहनो तो विशेष लाभ होगा। बड़े-बड़े अच्छे रूद्राक्ष के पक्के एक सौ आठ दाने मँगवा लो। काशी में अच्छा रूद्राक्ष मिलता है। असली रूद्राक्ष को जाँच करके लेना चाहिए। जो लोग नित्य होम करते हैं उनको 'योगपाट' धारण करना चाहिए। एक योगपाट (उत्तरीय) भी मँगवा लो।**

ठाकुर की आज्ञा पाकर मैंने काशी में श्रीब्रह्मानन्द भारती (ताराकान्त गांगुली) को लिखा है कि असली रूद्राक्ष के एक सौ आठ बड़े-बड़े दाने और एक योगपाट भेज दीजिए।

ठाकुर ने मुझे एक वर्ष के लिए ब्रह्मचर्य दिया था। वह अवधि अब पूरी होने को है। इस एक वर्ष में न जाने कितने प्रकार के विषम प्रलोभनों की परीक्षा में पड़कर ठाकुर का स्मरण किया है और उन्हीं की असाधारण कृपा से मरते-मरते बचा हूँ। वह सब याद आते ही डर के मारे सिकुड़ जाता हूँ, आतंक से अस्थिर हो जाता हूँ। ठाकुर के दुर्लभ संग में बिल्कुल निरापद रहकर बड़े आनन्द में दिन बीत रहे हैं सही, किन्तु यह नहीं जानता कि मेरा यह सौभाग्य और कितने समय तक रहेगा। यदि कर्म विपाक से मुझे यह संग प्राप्त न रहे तो फिर इस साल कौन सा मुँह लेकर किस साहस से ठाकुर के पास ब्रह्मचर्य लेने जाऊँगा? इस व्रत में अटल रह सकूँगा इसका अभय वचन उन्हीं ने, व्रत देते समय मुझे दया करके दिया था। अब मन लगाकर रात दिन नाम करते मैं यही प्रार्थना किया करता हूँ कि ठाकुर मुझ पर प्रसन्न होकर इस बार भी ब्रह्मचर्य का व्रत हैं और मुझे अपने शान्तिप्रद श्रीचरणों का अनुगत सेवक बनाये रखें।

ब्रह्मचर्य का प्रथम वर्ष व्यतीत।

३२ आषाढ़ बुधवार। आज भोर को स्नान करके नामहोम, प्राणायाम और पाठ समाप्त किया फिर नौ बजे ठाकुर के पास जा बैठा। एकान्त पाकर मैंने ठाकुर से कहा-'आज मेरे ब्रह्मचर्य का एक वर्ष पूर्ण होगा।'

ठाकुर ने कहा-**कल से फिर एक वर्ष के लिए नैष्ठिक ब्रह्मचर्य**

ले लेना। नियम जो थे वे ही रहेंगे। और कुछ अधिक न करना होगा। उन नियमों का पालन और भी दृढ़ता के साथ करते रहने की चेष्टा करना।

मैने पूछा-'तो क्या अगले वर्ष भी होम किया करेंगा?'

ठाकुर ने कहा-**हाँ, तर्पण भी प्रतिदिन करना। ब्राह्मण को तो नित्य होम करने की व्यवस्था है। गायत्री और होम का क्या त्याग किया जाता है?**

मैंने पूछा-'तर्पण जिस प्रकार करता हूँ, अब भी उसी प्रकार करता रहूँ?'

ठाकुर ने कहा-**हाँ, तर्पण प्रतिदिन करते रहना। ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ, ये सभी नित्यकर्म हैं, इनमें से एक को भी न छोड़ना। यथासाध्य इन सबको प्रतिदिन करते रहना चाहिए।**

मैंने पूछा-'इन यज्ञों के करने की कौन सी रीति है?'

ठाकुर ने कहा-

ब्रह्मयज्ञ-ऋषिप्रणीत ग्रन्थ आदि का अध्ययन और सन्ध्या-गायत्री-जप आदि।

पितृयज्ञ-श्राद्ध-तर्पण आदि; कम से कम प्रतिदिन तर्पण तो करें ही।

देवयज्ञ-होम, पूजा, जो कि किया करते हो।

भूतयज्ञ-जीवसेवा-मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्ष-लता आदि सभी जीवों की सेवा प्रतिदिन किया करो।

नृयज्ञ-अतिथिसेवा।

अध्ययनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।

होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोहतिथिपूजनम्॥

इन सबको प्रतिदिन नियमानुसार करते जाने से थोड़े समय में ही इसका लाभ समझ में आ जायेगा।

(श्रावण)

दूसरे वर्ष के ब्रह्मचर्य का उपदेश।

सवेरे ठाकुर के समीप जाकर बैठते ही उन्होंने मुझसे कहा-**अब फिर तुम्हें एक वर्ष के लिए ब्रह्मचर्य व्रत दिया गया। इस वर्ष के विशेष नियम-बिना पूछे बात न करना, पूछी हुई बात का भी आवश्यकता होने पर ही उत्तर देना; उत्तर भी जितना संक्षिप्त हो उतना ही अच्छा, अत्यन्त आवश्यक विषय को ही पूछना। इसके अनुसार चल सकने से बहुत लाभ होगा। पैर के अँगूठे की ओर सदा दृष्टि रखना। अँधेरे में भी उसी ओर दृष्टि रखना। इसके पश्चात् नित्य प्रति होम करना और अधिक परिणाम में गायत्री का जप करना।**

मैंने पूछा-'तो अब तक जिन ग्रन्थों को पढ़ता रहा हूँ और जिस प्रकार होम करता आया हैं उसी प्रकार करता रहूँ।'

ठाकुर ने कहा-**प्रतिदिन खूब सुबह नहा लेना, सप्तसती (चण्डी) और गीता के एक-एक अध्याय का पाठ किया करना। फिर कुछ देर तक इष्टनाम का जप करके कम से कम एक सौ आठ बार गायत्री का जप करना। इसके बाद थोड़ा सा होम करना। विशिष्ट वृक्षों की लकड़ी के नियम का अब प्रयोजन नहीं। घी का भी एक निर्दिष्ट परिमाण न रखो तो भी चल सकता है।**

मैंने पूछा-'ब्रह्मचर्य क्या एक ही एक वर्ष के लिए लिया जाता

है?'

ठाकुर ने जरा हँसकर कहा-**ऐसा कुछ नहीं है। बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य रखना पड़ता है। किन्तु तुम्हें इस बार भी एक वर्ष के लिए ही यह व्रत दिया है। एक ही बार में अधिक समय के लिए देने का साहस नहीं होता। क्या जाने कहीं नियम को भंग कर डालो। एक बार व्रत खण्डित हो जाने से बड़ा दोष लगता है। नियमों की रक्षा ठीक-ठीक करने पर अगले वर्ष फिर व्रत मिल जायगा। यही अच्छा है। जिस प्रकार चल रहे हो इसी प्रकार चलते रहोगे तो बारह वर्ष तक न भी करना पड़े। नौ वर्ष में ब्रह्मचर्य पूर्ण हो जायेगा।**

मैंने पूछा-'आपने श्रीवृन्दावन में जो दिया था, वही क्या इस बार भी है या कुछ विशेष है? अगले वर्ष यदि मैं आपके साथ न रहूँ तो क्या करूँगा?'

ठाकुर ने कहा-**श्रीवृन्दावन में तुमको जो मिला था, वही है; नया कुछ भी नहीं है। हाँ, प्रत्येक वर्ष व्रत लेकर पाठ की वृद्धि करनी चाहिए। अगले साल हमारा साथ न रहे तो भी स्वयं सब मालूम कर लोगे। इसके लिए उलझन में नहीं पड़ना होगा। इसके पश्चात् एकादश स्कन्ध भागवत और योगवाशिष्ठ पढ़ना होगा।**

मैं और अधिक बातचीत न करके ठाकुर को प्रणाम करके चला आया।

क्रोध से स्वप्नदोष।

५ से २ श्रावण। दूसरे वर्ष ब्रह्मचर्य ग्रहण करने के उपरान्त माताजी के दर्शन करने की इच्छा हुई। चावल भी अब समाप्त हो गया था। हर

बार चार-पाँच सेर चावल ले आने से मेरे लिये महीने भर से अधिक चल जाता है। घर जाकर माता ठाकुरानी के लिए स्वयं भोजन बनाता और उनका प्रसाद लेता वह क्रम कई दिन तक रहा। भोजन का नियम घर पर कभी नहीं रख सकता। माता ठाकुरानी के जगह से असमय ही उनका प्रसाद होने के कारण मिठाई, खटाई इत्यादि तथा तीन-चार तरकारियाँ भी खानी पड़ती हैं। ठाकुर से यह सब स्पष्टतः कहने पर उन्होंने कहा था-माता ठाकुरानी का प्रसाद खूब खाना; उससे कुछ हानि न होगी, लाभ ही होगा। मेरे लिए भी अच्छी सुविधा हो गई। जब जिन चीजों के खाने की इच्छा होती, उसको माता ठाकुरानी के पूछने पर ही बतला देता, वे भी बड़ा दुलार करके उक्त चीजें मुझे, प्रसाद करके देती। जब आश्रम में रहता हूँ, तब सिर्फ खिचड़ी के सिवा दिन-रात में फिर एक घूँट पानी तक नहीं पीता हूँ। ठाकुर का प्रसाद, मेरे हिस्से का केवल एक ग्रास पाता हूँ। इस बार नवीन ब्रह्मचर्य ग्रहण करके निश्चय किया था कि बड़ी कड़ाई से रहूँगा, इसलिए मैंने माता ठाकुरानी का मिष्टान्न प्रसाद तक नहीं लिया। माता ठाकुरानी का हठ देखकर मुझे बहुत गुस्सा आ गया, खूब झगड़ा किया और चार-पाँच सेर चावल लेकर आश्रम को चला आया।

आश्रम आने के बाद लगातार तीन रात तक स्वप्नदोष होता रहा है। सिर गरम हो गया। इतने नियमों में जकड़ा रहता हूँ फिर भी स्वप्नदोष का उत्पात कम न हुआ। ठाकुर के प्रति भी क्षोभ सा हुआ। जाकर उनसे पूछा-'अब तो मैं ठीक नियमानुसार चलता हूँ, फिर भी स्वप्नदोष क्यों हो जाता है?'

ठाकुर ने हँसकर कहा-**क्या केवल खान-पान के नियम ही**

नियम है? व्यवहार के नियम कुछ नहीं है? उनका पालन कहाँ तक करते हो? घर जाकर किसी पर क्रोध किया था? क्रोध करने से शरीर का रक्त विकृत हो जाता है, उससे भी बहुत स्वप्नदोष होने लगता है। शरीर के रक्त को सर्वदा शीतल रखना चाहिए।

आज यह नई बात मालूम हुई कि गुस्सा करने से स्वप्नदोष होता है। इसको सुनकर चुप रह गया।

ठाकुर का जीवन वृत्तान्त लिखने का उत्साह और बाधा।

१० श्रावण शनिवार। महाभारत पढ़ने के उपरान्त श्रीश्यामाकान्त पण्डितजी की बात मानकर मैंने ठाकुर से शनिवार कहा-मैंने सुना है कि अपने जीवन की कुछ घटनाओं को आपने बहुत समय पहले 'आशावती का उपाख्यान' में लिखा था। उस पुस्तक में जहाँ तक लिखा है, उसके आगे की घटनाओं को जानने की आकांक्षा बहुतों को है। यदि आप समय निकालकर थोड़ा-थोड़ा बताएँ तो मैं लिखता जाऊँगा।

सुनकर ठाकुर ने कहा-**अच्छी बात है। एक नियम कर लो; प्रतिदिन पाठ के पश्चात दोपहर के समय एक घंटे भर लिख लिया करो। मैं बोलता जाऊँगा; कागज पेंसिल लेकर बैठा करो। चाहो तो कल से ही लिखना आरम्भ कर दो।**

ठाकुर का उत्तर सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। तीसरे पहर पण्डित दादा ने मुझसे यह सब पूछ लिया। बहुत से गुरुभ्राता लोग इससे बहुत ही आनन्दित हुए।

आज दोपहर को, महाभारत पढ़ लेने पर, मैने हाथ में कागज पेंसिल लेकर कहा-'अब आप बोलते जाएँ, मैं लिखने को प्रस्तुत हूँ।'

ठाकुर ने थोड़ी देर तक चुप रहकर कहा-**इसे रहने दो। 'आशावती का उपाख्यान' जब मैंने बामाबोधिनी पत्रिका में लिखना आरम्भ किया था तब थोड़ा सा लिखते ही चारों ओर बड़ा हो-हल्ला मच गया। ब्राह्मधर्म का प्रचारक होकर वैसा लिखता हैं, इसके लिए साधारण ब्राह्मसमाजवालों में तीव्र आन्दोलन होने लगा। भीतर की सच्ची घटनाओं पर लोगों का अनादर, अश्रद्धा देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। बस मैने लिखना बन्द कर दिया। आशावती में जो कुछ लिखा था वह तो कुछ भी नहीं, बिल्कुल सामान्य है। उसके बाद की घटनाएँ तो और भी विचित्र हैं। उन पर किसी को विश्वास न होगा। लोग अफीमची का किस्सा समझेंगे। इसी से उनका प्रचार न होने में ही भलाई है।**

ठाकुर की बात सुनकर मेरा सिर मानो चकरा गया। मैं थोड़ी देर तक चुपचाप बैठा रहा। ठाकुर बार बार मेरी ओर देखने लगे। मैंने ठाकुर से कहा-हम लोग प्रचार नहीं करेंगे; आपस में ही उसे रहने देंगे। जीवन की वैसी घटनाएँ हमेशा के लिए बिल्कुल लुप्त हो जायेगी, किसी को कुछ मालूम न होंगी।

ठाकुर ने मेरे मन की बेचैनी देखकर बड़े स्नेह से कहा-**मेरे जीवन की समस्त घटनाएँ समय आने पर तुम लोगों को मालूम हो जायेगी। उसके लिए अभी इतने उतावले क्यों हो? अभी जाने दो, समय पर सब होगा।**

ठाकुर की इन बातों से मुझे शान्ति मिली। मैंने सोचा कि ठाकुर

ने जब साफ कह दिया है कि **‘समय आने पर मालूम हो जायेंगी’** तब चिन्ता किस बात की है। आज नहीं तो दस दिन पीछे सही।

ठाकुर का ब्रह्मचर्य और संन्यास का वृत्तान्त।

१३ श्रावण मंगलवार। दोपहर को पाठ के बाद मैंने ठाकुर से पूछा-‘संन्यास ग्रहण करने के लिए सभी को क्या पहले ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करना पड़ता है?

सुनकर ठाकुर ने कहा-**ब्रह्मचर्य किये बिना कभी वैदिक संन्यास के ग्रहण करने का अधिकार नहीं होता।**

मैंने पूछा-कितने समय तक इस ब्रह्मचर्य को करने से वैदिक संन्यास के ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त होता है? क्या सभी को एक निर्दिष्ट समय तक ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता है?

ठाकुर ने कहा-**सभी के लिए एक सी व्यवस्था नहीं है। किसी के लिए छत्तीस वर्ष, किसी के लिए चौबीस वर्ष और किसी किसी के लिए बारह वर्ष ब्रह्मचर्य में रहने की आवश्यकता होती है। फिर कोई तो नौ वर्ष में, कोई छः वर्ष में और कोई तीन वर्ष में संन्यास लेने का अधिकारी हो जाता है। मैंने तीन दिन ब्रह्मचर्य किया था।**

मैंने पूछा-आपने कब ब्रह्मचर्य धारण किया था ?

ठाकुर ने कहा-**दीक्षा लेने के बाद ही मैंने संन्यास लेना चाहा था। परमहंसजी ने कहा, ‘ऐसे न होगा, सब कुछ शास्त्र की रीति से करना होगा। तुम काशी चले जाओ। वहाँ पर तुम्हें संन्यास देने के लिए हरिहरानन्द सरस्वती विद्यमान हैं।’ मैं गयाजी से पैदल चलकर काशी गया था। हरिहरानन्द सरस्वती के दर्शन**

हुए। उन्होंने मुझसे कहा-'तुम्हें संन्यास दीक्षा देने के लिए ही हम यहाँ आये हैं, संन्यास ग्रहण करने के पहले तुमको कुछ और भी करना है। तुमने बहुत सा अनाचार किया है, अभी मुण्डन करवाकर प्रायश्चित्त करो। फिर ब्रह्मचर्य ग्रहण करो; उसके बाद संन्यास मिलेगा।' मैंने तुरन्त मस्तक मुण्डित करके प्रायश्चित्त किया। फिर यज्ञोपवीत धारण करके ब्रह्मचर्य लिया। तीन दिन ब्रह्मचर्य धारण कर चुकने पर मुझे उन्होंने संन्यास दिया।

मैंने कहा-'संन्यास लेने के बाद भी तो आपने ब्राह्मधर्म का प्रचार किया है न?'

ठाकुर ने कहा-**हाँ मैंने सोचा था कि संन्यास ले चुकने पर मैं फिर नहीं लौटूँगा? जब मैंने परमहंसजी से यह कहा तो उन्होंने कहा कि ऐसा मत करो। संसार में तुम्हें बहुत सा काम करना है। जैसे रहते थे, वैसे ही जाकर रहने लगो, संसार में ही सब कुछ हो जाएगा।**

मैंने पूछा-'तो क्या तभी से पहनने लगे?'

ठाकुर ने कहा-'नहीं, गेरुवा तो और भी पहले से पहनता हूँ। जब गयाजी में रहता था तब पहाड़ पर एक परमहंस ने अपना गेरुवा कपड़ा मुझे देकर कहा कि हमारा यह गेरुवा कपड़ा तुम ले लो, और अपना नाम (मन्त्र) हमें दे दो। मैं तभी से गेरुवा पहनने लगा। ठाकुर की और भी ऐसी ही बहुत सी बातें सुनी।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागरजी के स्वर्गारोहण का दृश्य।

१४ श्रावण बुधवार। आज मैं स्वस्थ हूँ। दोपहर को ठाकुर के पास

मैंने नाममात्र को महाभारत का पाठ किया। ठाकुर ध्यानमग्न थे। मैं भी एक ओर बैठकर पंखे से हवा करने लगा। ठाकुर भावावेश में बार

बार झुककर ढलने लगे। एक बजे के लगभग ठाकुर एकाएक चौंक पड़े और व्यग्र होकर घर के पश्चिम ओर के दरवाजे से पश्चिमोत्तर दिशा में आकाश की ओर एकटक देखकर कहने लगे- **आहा! बड़ा अच्छा है! बहुत अच्छा है!! कितना सुन्दर!!! सोने का रथ है, कैसी बढ़िया शोभा है! धन्य! धन्य!! धन्य!!! पीली कितनी ही पताकाएँ उड़ रही है। अहा! आज पीले रंग की छटा से समूचा आकाश झिलमिला रहा है। चारों ओर बहुत सी सुन्दरी देवकन्याएँ हैं! देवकन्याएँ चँवर डुला रही है। अप्सराएँ नृत्य और गान कर रही है! अहा बड़ा आनन्द है! आज गुणों के सागर विद्यासागर को लेकर आकाशमार्ग में सभी आनन्द करते हुए जा रहे हैं। वे महापुरुष आज पृथ्वी को छोड़कर स्वर्ग को जा रहे हैं। हरि बोल! हरि बोल!**

ठाकुर ने और बातचीत न करके नेत्र बंद कर लिये। समाधिस्थ हो गए।

कुछ दिन हुए, समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ था कि विद्यासागरजी बहुमूत्र से पीड़ित होकर शैय्यागत है। इसके विरोध में स्वयं विद्यासागर जी ने उसी समय प्रतिवाद कर लिखा था-'हमारी चौदह पीदियों में किसी को बहुमूत्र नहीं हुआ' इत्यादि। उसको पढ़ने से में अब तक यही समझता था कि विद्यासागरजी स्वस्थ हैं। अतएव ठाकुर ने भावावेश में जो जो बातें कहीं, उनको सुनकर मैने समझा कि ठाकुर ने शायद विद्यासागरजी के भविष्य के जीवन का ही एक चित्र देखकर ये बातें कहीं होगी। किन्तु थोड़ी देर में ही खबर

मिली कि दया के सागर विद्यासागरजी ने शरीर छोड़ दिया है। स्कूल और कॉलेज आदि बन्द हो गये। विद्यासागरजी की जय! धन्य विद्यासागरजी!!

स्वर्गीय ईश्वरचन्द्र विद्यासागरजी के संबंध में ठाकुर ने आज बहुत सी बातें कहीं-यहाँ दो-एक ही लिखी जाती हैं:-

ठाकुर ने कहा-**विद्यासागरजी की 'बोधोदय' पुस्तक प्रकाशित होते ही सर्वत्र बच्चों की पाठ्य पुस्तक बन गई। मैंने उस पुस्तक को पढ़कर देखा, उसमें भगवान् का नाम कहीं पर न था। इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ। मैने तुरन्त विद्यासागरजी के पास जाकर कहा, 'आपने बोधोदय की रचना इस ढंग से की है जिसमें साधारण आवश्यक सभी वस्तुओं की जानकारी बड़ी आसानी से हो जाए। किन्तु संसार में मनुष्य को जिसकी जानकारी और सब चीजों की अपेक्षा सबसे अधिक आवश्यक होती है, उस ईश्वर के संबंध में एक शब्द भी बोधोदय में नहीं है।' विद्यासागरजी ने मेरी बात सुनकर कुछ लज्जित होकर कहा, 'हाँ, गोसाँई, ठीक कहते हैं। अच्छा, अगले संस्करण में, आरम्भ में ही मैं ईश्वर के संबंध में पाठ लिखूँगा।' फिर देखा कि बोधोदय के द्वितीय संस्करण में ईश्वर के संबंध में पाठ मौजूद है। वे सभी की बातों को बड़े ध्यान से निरपेक्ष भाव से सुनते थे।**

इसके बाद मेडिकल कॉलेज के झगड़े के सिलसिले में ठाकुर ने विद्यासागर की दया और उत्साह की बात कही। मैं इस समय दो-एक बार आसन से उठकर चला गया था इससे आद्योपान्त पूरी बात नहीं सुन पाया। अतएव गुरुभाई श्रीकुंजबिहारी गुह ने ठाकुर से सुनकर इस विषय में जो कुछ लिख रखा है उसको यहाँ उद्धृत

करता हैं-

मेडिकल कॉलेज की अंतिम परीक्षा से कई महीने पहले, उक्त कॉलेज के तत्कालीन अध्यक्ष ने, बंगला विभाग के एक छात्र को, चोर होने के सन्देह में, पुलिस के सुपुर्द कर दिया और उस विभाग के सभी छात्रों को कमीना, असभ्य कहकर खुले रूप से दोषारोपण किया, गाली-गलौज किया। इसमें छात्रों ने अपना अत्यन्त अपमान समझा। उन लोगों ने गोस्वामीजी को अपना नेता बनाया और बहुतों ने एक साथ कॉलेज छोड़ दिया। सर्वत्र हो-हल्ला होने लगा। इस घटना पर चारों ओर बहुत चर्चा हुई। इसके कुछ न कुछ प्रतिकार की प्रत्याशा से गोस्वामीजी बहुत से सहपाठियों को साथ लेकर विद्यासागरजी के पास गये। दो-चार बातें कहते ही विद्यासागरजी धमकाकर छात्रों से कहने लगे-'जाओ, जाओ, हम यह सब नहीं सुनना चाहते। लड़के अनेक अवसरों पर झूठमूठ ऐसा अनर्थक झगड़ा कर बैठते हैं यह कहकर जब उन्होंने कोई बात नहीं सुननी चाही तब गोस्वामीजी ने बड़े जोश के साथ कहा-'आप हम लोगों की एक भी बात सुने बिना ही कुछ निश्चय क्यों कर ले रहे हैं? पहले हम लोगों की दो बातें सुन लीजिए, फिर चाहे जो कहिए। जो लोग 'बंगला' विभाग में पढ़ते हैं उनकी क्या वंश या जाति की मर्यादा नहीं है? क्या ये सबके सब तुच्छ, कमीने, चोर, बदमाश हैं? क्या आप भी यही कहते हैं? यह सुनकर विद्यासागरजी चौक कर कहने लगे-'गोस्वामी, कहते क्या हो? तो फिर मामला बतलाओ।' तब गोस्वामीजी ने सिलसिलेवार सब वृत्तान्त सुनाया। सुनकर विद्यासागरजी अत्यन्त दुःखित होकर कहने लगे तो यह मामला है? अच्छा अब तुम लोग कॉलेज मत जाओ। देखूँ, मैं इसका कुछ

प्रतिकार कर सकता हूँ या नहीं। फिर उन्होंने उस समय के छोटे लाट वीडन साहब को सब मामला साफ-साफ लिख भेजा और जब गोस्वामीजी से ज्ञात हुआ कि बहुत से छात्रों की वृत्ति भी बन्द हो गई है और उस वृत्ति पर ही उनकी जीविका निर्भर थी तब अब ये बड़ी कठिनाई में पड़ गये हैं; बहुत से छात्र तो इस छात्रवृत्ति में से ही कुछ रुपये बचाकर अपने असहाय वृद्ध माता-पिता की भी हर महीने सहायता करते हैं, तब विद्यासागरजी ने सबकी छात्रवृत्ति के रुपये देना स्वीकार कर लिया और तीन-चार महीने तक उन्होंने सभी का प्रायः सारा खर्चा अपने पास से दिया। वीडन साहब की आज्ञा से इस मामले की जाँच की गई। उसमें प्रमाणित हो गया कि कॉलेज के अध्यक्ष के दोष से ही यह घटना हुई थी। इसलिए अध्यक्ष को भूल माननी पड़ी। कॉलेज के अध्यापकों को मालूम हो गया कि गोस्वामीजी दल के नेता है, इसलिए उन लोगों ने गोस्वामीजी से किसी प्रकार बदला लेने का विचार किया। किन्तु गोस्वामीजी को फिर कॉलेज में जाने की प्रवृत्ति नहीं हुई: अतएव उन लोगों की आशा निष्फल हो गई। कुछ दिनों के बाद एक अध्यापक तमीज खाँ से गोलदीधी के किनारे गोस्वामीजी की भेंट हो गई। तब उन्होंने गोस्वामीजी से कहा-'गोसाई, अच्छा हुआ कि तुमने पहले ही कॉलेज छोड़ दिया, नहीं तो तुम्हें बड़ी मुश्किल में पड़ना पड़ता।

रूद्राक्ष-धारण; नीलकण्ठवेश।

१६ श्रावण शुक्रवार। काशी से रूद्राक्ष की माला आ गई है। वह ठाकुर को दिखलाई। माला को हाथ में लेकर ठाकुर ने कहा-**बहुत**

अच्छे दाने हैं। सभी बढ़िया है, पक्के हैं। अब इन्हें ठीक-ठीक गूँथ लो।

रूद्राक्ष के प्रत्येक छिद्र जो जड़ें थीं उनको मैंने कई दिन तक परिश्रम करके सुई की सहायता से निकाल डाला। फिर उन्हें मैं ठाकुर के पास ले गया। ठाकुर ने देवीभागवत खोलकर श्लोक पढ़कर धारण करने की प्रणाली समझा दी,-

रूद्राक्षन्कण्ठदेशे, दशनपरिमितान्मस्तके विशति द्वे
षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलकृते द्वादश द्वादशैव।
बाह्योरिन्दो: कलाभिर्नयनयुगकृते त्वेकमेकं शिखायां
वक्षस्यष्टाधिक यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठ:।।

मैंने ठाकुर की आज्ञा के अनुसार कण्ठ के लिए ३२, मस्तक के लिए २२ दोनों कानों के लिए ६-६ के हिसाब से १२, दोनों हाथों के लिए १२-१२ के हिसाब से २४, दोनों भुजाओं के लिए ८-८ के हिसाब से १६, शिखा के लिए १, और वक्ष के लिए १, यों अलग-अलग मालाएँ बना ली। कुल १०८ दाने हुए हैं।

आज श्रावण कृष्ण एकादशी को प्रातःकृत्य समाप्त करके मैं पूर्व ओर के घर में ठाकुर के पास गया और ग्रंथि दिया हुआ नया जनेऊ, योगपाट तथा रूद्राक्ष की माला मैंने उनके आगे रख दी। ठाकुर ने जनेऊ को हाथ में लेकर बारह बार गायत्री का जप किया और उसे मेरे गले में डाल दिया। फिर योगपाट को छूकर मेरे हाथ में दे दिया। इसके पश्चात् रूद्राक्ष की मालाओं को हाथ में लिये हुए थोड़ी देर तक चुप बैठे रहें; फिर वे मुझे पहनाकर कहने लगे-यही नीलकण्ठवेश है।

मैं साष्टांग प्रणाम करके ठाकुर के पास बैठ नाम करने लगा।

ठाकुर ने आज मुझे नीलकण्ठ महादेव का वेश दिया है, यह सोचकर मेरा मन और शरीर पुलकित हो उठा। मैं रोते-रोते मन ही मन प्रार्थना करने लगा-'ठाकुर, दया करके आपने मुझे जिस प्रकार यह वेश दिया है उसी प्रकार ऐसी दया कीजिए इस वेश की मर्यादा बनी रहे। सदा आपका अनुगत बना रहूँ।' ग्यारह बजे तक ठाकुर के समीप बैठा रहा। नहीं कह सकता कि मेरा यह समय किस प्रकार बीत गया। ठाकुर शौच को उठ गये और मैंने भी आसन से उठकर आश्रम के सभी गुरुनाताओं को नमस्कार किया। सभी ने प्रसन्न होकर मुझे आशीर्वाद दिया। दोपहर को महाभारत का पाठ करके पाँच बजे तक मैं बड़े आनन्द से नाम करता रहा।

साधन से दैहिक उपसर्ग।

२० से ३१ श्रावण। द्वितीय वर्ष ब्रह्मचर्य ग्रहण कर लेने पर नवीन नियमों के पालन करने का उत्साह क्रम से बढ़ रहा है। रूद्राक्ष माला धारण करके सभी नियमों पर विशेष रूप से दृष्टि रखकर चलने लगा। अब दिनों दिन शरीर की यन्त्रणा मुझे असह्य हो गई है। समझ में नहीं आता कि क्या करूँ। पैर के अँगूठे पर सदा दृष्टि को जमाये रखने के कारण लगातार एक ही तरह माथा झुकाये रहता हूँ, इससे आज कई दिन से गर्दन में बहुत पीड़ा होती है। ऐसा जान पड़ता है कि गर्दन पक गई है। यह पीड़ा समय-समय पर इतनी तीव्र हो जाती है कि रोने की इच्छा होने लगती है। बिना पूछे बात न कर सकूँगा और पूछी गई बात का उत्तर भी-बिना आवश्यक हुए नहीं दे सकूँगा। यह आज्ञा देकर ठाकुर ने मुझे एक प्रकार से मौनी बना दिया है। दिन-रात में दो-चार बातें भी तो नहीं कर पाता। बड़ी छटपटाहट

होती है; जी चाहता है कि कहीं सुनसान में जाकर चिल्ला आऊँ। बार-बार जम्हाइयाँ लेकर समय बिता रहा हूँ। गुरुभाई लोग एक बार एक प्रश्न करेंगे तो मैं दस बातों में उत्तर दूँगा, इस आशा से किसी का हाथ पकड़कर खींचता हूँ तो वह कुछ बातचीत किये बिना ही मेरी चोटी खींचकर दो-एक बार घुमाकर चला जाता है। प्रश्न करवाने की इच्छा से किसी गुरुभ्राता से सटकर बैठ जाता हूँ तो वह उठकर चुपचाप मुझे जोरों से ऐसे दबा देता है, उस समय मेरे प्राणों पर आ बनती है, कभी कोई घूँसा मारकर हटा देता है। हाय रे भाग्य! केवल आह-ऊह करके भाग खड़ा होता हूँ। ठाकुर मेरी दशा देखकर ही दया करके समय-समय पर एक आध बात पूछ लेते हैं, उसी का उत्तर देने से प्राण बचते हैं। आज मैंने जाकर ठाकुर से कहा, 'क्या आपके साथ भी इच्छानुसार बात-चीत न कर सकूँगा?'

ठाकुर मेरी ओर देखकर जरा हँसकर कहने लगे- **अच्छी बात है। किया करो।**

मैंने पूछा-'केवल आपकी ओर देख भी सकूँगा?'

ठाकुर ने कहा-**सिर ऊँचा किये बिना देख सको तो देख लिया करो।**

स्वप्नदोष; हेतु और बचने का उपदेश।

इस बार ब्रह्मचर्य लेकर वीर्यधारण करने की चेष्टा जी जान से कर रहा हूँ; किन्तु किसी तरह वीर्य स्थिर नहीं रख पाता हूँ। बार-बार स्वप्नदोष होने से चित्त अत्यन्त चंचल और अशान्त हो जाता है; कुछ भी अच्छा नहीं लगता। वीर्यस्थिर क्यों नहीं रहता, इतने नियमों में आबद्ध रहने पर भी मेरा स्वप्नदोष क्यों नहीं छूटता, मेरी

यह दुर्दशा क्यों हो रही है, इसका निश्चय न कर सकने पर मैंने ठाकुर से पूछा।

ठाकुर ने धमकाकर कहा-**पाँच-दस दिन की थोड़ी सी चेष्टा से ही क्या कुछ बन जाना चाहते हो? बचपन में कुःअभ्यास करके बहुत समय तक वीर्य नष्ट किया है। उसका स्रोत क्या एक बार में ही बन्द हो जायेगा? अब खूब नियम मानकर कुछ समय तक चलने पर धीरे-धीरे सब ठीक हो जायेगा। घबराने से क्या होगा! उधर नजर न रखकर नियम पर ध्यान देकर चलो। चित्त की चंचलता से स्वप्नदोष होता है, क्रोध करने से स्वप्नदोष होता है, स्नायवीय दुर्बलता से होता है। पेट के और मस्तक के गरम होने से होता है, आहार के दोष से होता है और अधिक सोने से भी स्वप्नदोष हो जाया करता है। सन्ध्या के बाद थोड़ी देर तक सोकर रात को क्या दस-ग्यारह बजे उठकर सारी रात बैठकर नाम नहीं कर सकते? सोना कम कर दो। बहुत सोने से स्वप्नदोष नहीं जाने का। सोने से पहले कुहनियों तक दोनों हाथ और घुटनों तक पैर धो लिया करो। पश्चिम या उत्तर की ओर सिरहाना करके नहीं सोना चाहिए। सोते समय बिल्वपत्र पर गायत्री लिखकर सिरहाने रख सकते हो। तुलसीपत्र रखने से भी किसी-किसी को लाभ होता है।**

ठाकुर का उपदेश सुनकर मन ही मन दुःखित हुआ, कुछ चिढ़ भी पैदा हुई। सोचा, 'स्वप्नदोष की बात कहते ही ठाकुर एक न एक नया कारण बतलाकर नये-नये नियम सिर पर लाद देते हैं। यह उत्पात भी बुरा नहीं है! भले नींद कम कर दूँगा, किन्तु सोते समय गर्दन सीधी रखकर रात को जो थोड़ा सा आराम पा लेता था वह,

ठाकुर ने अब वह भी समाप्त कर दिया। ग्यारह बजने के बाद आसन पर बैठते ही गर्दन झुकाकर बैठना पड़ेगा। अधिक सोने से स्वप्नदोष होता है, यह बात पहले कभी नहीं सुनी।'

ऊर्ध्वरेता होने की साधन-प्रणाली।

ठाकुर के उपदेश के अनुसार चलने की यथाशक्ति चेष्टा करता हूँ। रात को लगभग बारह बजे तक सोता हैं, फिर सारी रात नाम किया करता हूँ, किन्तु किसी तरह वीर्य की रक्षा नहीं कर पाता। वीर्यधारण हुए बिना साधन, भजन, तपस्या और व्रत, नियम आदि सभी व्यर्थ है, यह सोचकर चित्त बहुत ही अस्थिर हो गया। मैंने जाकर ठाकुर से कहा-'सुना है ऊर्ध्वरेता हुए बिना किसी प्रकार वीर्यधारण नहीं होता। ऊर्ध्वरेता होने के लिए किस प्रणाली से साधन करना होता है? नियमानुसार चलने पर ऊर्ध्वरेता होने के लिए कितना समय लगता है?

ठाकुर ने कहा-**ऊर्ध्वरेता होना सबके लिए सहज नहीं है। फिर यह भी नहीं कहा जा सकता कि एक निर्दिष्ट समय के भीतर सभी ऊर्ध्वरेता हो सकते हैं। ऐसे भी व्यक्ति है जो तीन दिन के भीतर ही ऊर्ध्वरेता हो सकते हैं। किसी को तीन महीने और किसी को तीन वर्ष लग जाते हैं। पर बहुत समय तक चेष्टा करते रहने पर भी किसी को तो संभव ही नहीं होता। जो लोग अभ्यस्त हैं, उनको थोड़ा समय लगता ही है; झटपट नहीं हो जाता। तुम्हारा वीर्य अधिक परिमाण में नष्ट हो चुका है। इसलिए कुछ समय लगेगा। नियमानुसार चलते रहो, अधिक घबराने की आवश्यकता नहीं।**

मुझे साफ यह जानने की इच्छा हुई कि ऊर्ध्वरेता होने के लिए किन-किन नियमों का पालन करना पड़ता है। साहस करके मैंने ठाकुर से फिर पूछा। उन्होंने जरा हँसकर कहा-**ठीक ठीक नियम के अनुसार चलते रहो; तुम्हें अधिक समय नहीं लगेगा। इस समय से सदा पैर के अँगूठे पर दृष्टि को स्थिर रखने की चेष्टा करो। कभी दूसरी ओर मत देखना। यदि पैर के अँगूठे पर दृष्टि को किसी प्रकार न जमा सको तो नाक के अगले हिस्से पर उसको जमाओ। किन्तु इसमें सिर जरा गरम हो जाता है। पैर के अँगूठे पर दृष्टि जमाने से मस्तक खूब ठण्डा रहता है। अँधेरी रात में इधर-उधर न ताकना। सदा एक ही तरह से माथा नीचे किये रहा करो।**

ठाकुर ने जरा चुप रहकर फिर कहना आरम्भ किया-**एक काम और करो। पेशाब को एक धार में न करके जरा रुक-रुककर किया करो। दो-चार सेकेंड तक पेशाब करके फिर दो-चार सेकेंड के लिए रुक जाया करो। यों धीरे-धीरे थोड़ा थोड़ा धारण करके त्याग करने का अभ्यास करो। धारण के समय खूब कुम्भक और साथ-साथ नाम करना। जब तक कुम्भक किये रह सको, तभी तक धारण की चेष्टा करना। थोड़ा-थोड़ा (मूत्र का) त्याग करते करते कम से कम पाँच-सात बार में कुल पेशाब किया करो। यह अभ्यास करते मूत्रमार्ग रास्ते की माँसपेशियाँ खूब दृढ़ हो जाएंगी और धारण करने की क्षमता भी बढ़ जायेगी। इस अभ्यास को अभी से करने लगो।**

थोड़ी देर में ठाकुर फिर कहने लगे-**स्वाभाविक कुम्भक करके सदा नाम किया करो। धीरे-धीरे हर एक दम (श्वास) में कुम्भक के**

साथ नाम का जप करने लगने पर इस विषय में भरपूर लाभ होगा। ये क्रियाएँ जिनका शरीर के साथ एक विशेष योग हैं, ये अकस्मात् एक बार में ही नहीं हो जाती; कुछ समय लगता है। अनेक कारणों से, अनेक दशाओं में देह का वीर्य मथित होकर प्रशस्त मार्ग में हो उपस्थ की ओर जाता है। वीर्य को ऊपर की ओर जाने के लिए भी एक सँकरा मार्ग है। नीचे के मार्ग का मुख बिलकुल बन्द हुए बिना वीर्य कभी ऊपरी मार्ग में नहीं जा सकता। वीर्य के स्रोत को ऊपरी मार्ग में न कर पाने से और किसी उपाय से उसको शरीर में नहीं रोका जा सकता।

वीर्य कभी एक स्थान में रहने वाली वस्तु नहीं है। उसको अधोगामी न होने देने के लिए कितने लोग कितने ही काम करते हैं। शरीर की गर्मी को घटाने के लिए कोई शिरा काट डालते हैं, कोई की उत्तेजना को घटाने के लिए अंग आदि का छेदन करते हैं। किन्तु इससे वास्तविक कुछ भी नहीं होता। ऐसे उपायों का अवलम्बन करने से धर्मजीवन का भी कुछ कल्याण नहीं होता। संयम द्वारा, चित्त को स्थिर रखकर नाम करते हुए कुम्भक द्वारा वीर्य को ऊपर की ओर आकर्षित करना पड़ता है। कुम्भक करने से वीर्य के नीचेवाले मार्ग पर दबाव पड़ता है और ऊपर का रास्ता प्रशस्त हो जाता है; अतएव वीर्य की गति नीचे की ओर न होकर ऊपर की ओर हो जाती है। एक बार वीर्य की गति ऊपर की ओर पलट जाने पर फिर वह नीचे नहीं जाता। जब मुझे ऐसा हुआ था, तब ऐसा प्रतीत हुआ कि मुझे एक अमृत के सागर में डुबा दिया है। चेष्टा करके किये गये कुम्भक आदि से कुछ नहीं होता जाता। नाम के साथ लगातार स्वाभाविक

कुम्भक करने से ही यह सब होता है। अस्वाभाविक कुम्भक से कुछ लाभ नहीं। नाम के साथ-साथ थोड़ा-थोड़ा इस रीति से कुम्भक का अभ्यास करो। इन मामलों में सदा खूब चेष्टा भी करनी चाहिए। दृढ़ता न हो तो अधिक समय तक चेष्टा नहीं हो सकती।

यह सब कहकर ठाकुर चुप हो गये। कुछ देर में मैंने फिर पूछा- क्या मेरी कभी ऊर्ध्वरेता होने की सम्भावना है? किसी समय मैं न जाने कितना उपद्रव कर चुका हूँ।

ठाकुर ने कहा-**उपद्रव ऐसा क्या किया है? प्रयत्न करते रहोगे तो क्यों नहीं हो सकोगे? देखो, मेरे भी तो लड़के-लड़कियाँ हुए हैं। मैं भी तो तुम्हीं लोगों की तरह था। स्त्रियों को देखने से मुझे भी कामभाव होता था, कई बार चंचल हो जाया करता था। अब तो कल्पना में नहीं ला सकता कि काम है क्या। ऊर्ध्वरेता हो जाने पर तुमको भी ऐसा ही हो जायेगा। सदा श्वास-प्रश्वास में नाम किया करो, स्वाभाविक कुम्भक का भी अभ्यास किया करो। प्रत्येक श्वास में कुम्भक के साथ नाम करने लग जाओगे तो ऊर्ध्वरेता हो सकोगे। ऊर्ध्वरेता हो जाने पर शरीर खूब स्वस्थ रहेगा। बीमारी आदि कुछ भी प्रायः न होगी। थोड़ा बहुत अच्छा या बुरा भोजन किसी तरह शरीर का जरा भी अनिष्ट कर नहीं सकेगा।**

जरा ठहरकर वे फिर कहने लगे-**वीर्यधारण करने के लिए भोजन के संबंध में बहुत सावधान रहना पड़ता है। भोजन के दोष से अनेक अवसरों पर उत्तेजना हो जाया करती है। सब कामों में खूब सावधानी न रखने से इस विषय में सफलता**

मिलना कठिन है।

मैंने इसी समय पूछा-'भोजन के संबंध में किन नियमों का पालन किया करूँ?'

ठाकुर ने कहा-**भोजन बिलकुल एकान्त में किया करो। भोजन की चीज पर किसी की दृष्टि न पड़ने दिया करो। भोजन करते समय प्रत्येक ग्रास पर नाम किया करो। उस समय भोजन की वस्तु के अतिरिक्त और किसी और न देखना। शुद्ध सात्त्विक वस्तु ही खाना। अधिक तीखा, खारा और खट्टा मत खाना। मिठाई तो बिलकुल ही छोड़ दो। दूध पीना भी ठीक नहीं। आवश्यकता पड़ने पर थोड़ा सा, एक उबाल आया हुआ दूध ले सकते हो। गाढ़ा दूध अनिष्ट करता है।**

यह सब सुनकर मैंने कहा-'क्या और भी किसी विषय का कोई नियम है?'

ठाकुर ने कहा-**हैं क्यों नहीं? सोने का भी नियम है। जहाँ-तहाँ नहीं सो जाना चाहिए। सोने का बिछौना सर्वत्र अलग रखना। दूसरे के बिछौने पर सोना या बैठना अथवा दूसरों के कपड़े को उपयोग में लाना बिलकुल बन्द कर देना। इन सभी नियमों का सदा पालन करना; नहीं तो बहुत हानि होती है। जिस प्रकार दूसरे के व्यवहार के वस्त्र आदि को उपयोग में न लाना, उसी प्रकार अपने व्यवहार के वस्त्र आदि का उपयोग दूसरों को मत करने देना। सब कुछ अलग रखना। इस साधन की अवस्था में दूसरे का स्पर्श हो जाने से भी हानि होती है।**

जैसी ठाकुर की आज्ञा है, उसके अनुसार ऊर्ध्वरेता होने की साधन-प्रणाली का बड़े उत्साह के साथ पालन कर रहा हूँ। खिचड़ी

छोड़ दी, केवल भात खाता हूँ। दिनभर और कुछ नहीं खाता। बातचीत नहीं करता; हाँ, ठाकुर से अवश्य बोलता हूँ। रात को सीधी गर्दन करके सोता था, अब टेढ़ी गर्दन किये हुए ही सोने का अभ्यास कर रहा हूँ। जैसा ठाकुर ने बतलाया है, वैसा रात्रि का जागरण नहीं हो रहा है; कभी तो जागते बारह बज जाते हैं और कभी एक बज जाता है। सो गया तो ठीक समय पर उठ बैठना मेरे वश में नहीं है।

मैंने एक दिन ठाकुर से कहा-'जिस समय चाहता हूँ, उस समय नींद नहीं खुलती क्या करूँ?'

ठाकुर ने जरा हँसकर कहा-अच्छा, अपना नाम लेकर जोर से कह दिया करो कि 'अजी, हमें रात को इतने बजे उठा देना।' ऐसा करके देखो तो।

मैंने कहा-'मैं ऐसा न कर सकूँगा। लोग हँसेंगे। मुझे शर्म लगती है।'

ठाकुर जरा हँसे। उन्होंने और कुछ नहीं कहा। अब एक बार परीक्षा करनी है कि यह बात सच है या ठाकुर ने मुझे मजाक से ऐसा कहा है।

वर्षा में श्रीधर को भावावेश और झगड़ा।

६ से १८ भाद्रपद। इस साल भाद्रपद महीने में आँधी पानी की बहुत अधिकता है। एक दिन सवेरे पण्डितजी के रसोईघर में अपने आसन पर बैठा हुआ नित्यकर्म कर रहा था। एकाएक जोरों से पानी बरसने लगा। थोड़ी ही देर में इतनी प्रबलता से मूसलाधार पानी बरसने लगा, कि ऐसा जान पड़ा मानो आज सब एकाकार हो

जाएगा। आँगन में बहुत पानी भर गया। दस-बारह हाथ की दूरी पर खड़े दूसरे कमरे के व्यक्ति छाया की भाँति दिखाई देने लगे। इसी समय पण्डित दादा के घर से निकल कर श्रीधर 'हरि बोल, हरि बोल' कहते हुए आँगन में आ गये। वे साष्टांग नमस्कार करके हाथ जोड़े हुआ आकाश की ओर थोड़ी देर तक देखते रहे। फिर केवल लँगोटी लगाये श्रीधर, ऊपर हाथ उठाकर, ऊँचे ऊँचे कूदते-फाँदते 'जय राधे, जय राधे' चिल्लाने लगे। एक घण्टा हो गया, फिर भी श्रीधर का नृत्य न रुका। आकाश से भगवान् का चरणामृत गिर रहा है, इस भाव में मस्त होकर श्रीधर पागल की तरह एक बार कीचड़ में लोट गये और फिर आंगन के चारों ओर दौड़ने लगे। धीरे-धीरे श्रीधर का हुँकार और गर्जन बढने लगा। भावावेश में वे लगातार नाचते-नाचते गिरने पड़ने लगे। यह देखकर मुझे याद आया कि श्रीधर को प्रायः तेजवात ज्वर आता है, उस समय यन्त्रणा के मारे वे अस्थिर हो जाते हैं। इस समय श्रीधर किसी की भाव में मस्त क्यों न रहें, इतनी कूद-फाँद और बरसात को, इनका शरीर कभी सहन न कर सकेगा। किसी तरह क्यों न हो, इनको एक बार रोक लिया जाय तो ठीक हो। यह सोचकर मैंने पुकार कर कहा 'श्रीधर! रहने दो, बहुत हो चुका। इतना कूदना सहन न होगा; अब ठहर जाओ।' मेरी बात सुनकर श्रीधर जरा रुक गये और मेरी ओर कठोर दृष्टि से ताकने लगे, किन्तु उन्होंने फिर नृत्य आरम्भ कर दिया। मैंने दुबारा टोका-'श्रीधर! इतनी कूद-फाँद बर्दाश्त न होगी। अब रुक जाओ।'

श्रीधर ने बहुत चिढ़कर मुझे गाली देकर कहा-'चुप रहो साले।'

मैंने कहा-अच्छा, मैं चुप हुआ जाता हूँ, किन्तु ज्वर आने पर

तुम भी चुप ही रहना। उस समय चिल्ला चिल्लाकर मुहल्लेवालों को अस्थिर मत कर देना।

मेरी बात से बेहद नाराज हो श्रीधर ने कहा-'चुप रहो साले! लात मार कर तेरे दाँत तोड़ डालूँगा।' यह कहकर श्रीधर ने मुझे लात दिखलाई। मैं क्रोध और अभिमान में बावला सा हो गया। मैंने चिल्लाकर कहा-'इतनी मजाल! लात दिखलाई! अच्छा, यदि मैं ब्राह्मण हूँ तो छः महीने तक पैर को लिये पड़े रहोगे। यह उछल-कूद, यह लात दिखलाना तब याद आवेगा, यह समझ लो।

श्रीधर ने मुँह बनाकर गालियाँ देते हुए कहा-'अरे साले! मैं तो मरा ही हुआ हूँ। मुझ पर अपना ब्राह्मणपन का तेज दिखलाकर क्या तू मेरी यह कूद-फाँद रोक लेगा? अपनी उत्तेजना के समय यदि तू इन्द्रियचांचल्य को रोक सके, तभी मैं तुझे ब्राह्मण समझूँ।' श्रीधर के व्यवहार से अत्यन्त अपमान, क्रोध तो हुआ, किन्तु उसकी बात की सत्यता को समझकर मैं झेंप गया। बिना ही माँगे, अपने आप, उपदेश देने का मुझे उपयुक्त दण्ड मिल गया, मैं बार-बार यही सोचने लगा। सारा दिन बड़े क्लेश में कटा। अवसर पाकर मैंने ठाकुर के पास जाकर पूछा-'अभिमान का नाश क्या करने से होता है?'

प्रश्न को सुनकर ठाकुर ने मुस्कुराकर कहा-**अभिमान का नाश सहज काम नहीं है। बिल्कुल मुक्त हुए बिना अभिमान नहीं जाता। अपने को सबसे नीचा समझना पड़ता है। जब तक अपने को दीन हीन, कंगाल नहीं समझोगे, तब तक समझ लो कि, कुछ भी नहीं हुआ। कुली-मजदूर तो क्या गये गुजरे लोगों को भी अपनी अपेक्षा अच्छा समझना पड़ता है, सभी को श्रद्धा-भक्ति**

करनी होती है। किसी कारण मन में अभिमान का लेश आ गया तो, फिर रक्षा नहीं है। साधारण कामों में अभिमान आ जाने से बड़े-बड़े योगियों का भी पतन देखा गया। धर्म की प्राप्ति के संबंध में तो अभिमान सबसे प्रबल शत्रु है। सभी के आगे माथा नीचा करके रहना चाहिए। सिर्फ अपने साधन भजन में ही लगे रहने पर, सभी प्रकार के उत्पातों से बचा जा सकता है।

आज कई दिन से श्रीधर को ज्वर आ रहा है। वे बिछौने पर पड़े रहते हैं। बरसात के पानी में भीगते रहकर श्रीधर वातज्वर से अवसन्न हो गये हैं। पैरों को हिलाने-डुलाने की शक्ति उनमें नहीं है। यन्त्रणा से बेचैन होने पर, श्रीधर मुझे बुलाकर कहते हैं, 'भैया, तेरे शाप से ही मेरी यह दुर्दशा हुई है। मुझे क्षमा कर दे।' उनकी दशा देखकर और बातें सुनकर बड़ा कष्ट होता है। हाय! मनुष्य को सभी प्रकार के भोग भगवान् की इच्छा से भोगने पड़ते हैं, उनकी व्यवस्था के अनुसार ही सब कुछ हो रहा है, व्यर्थ अभिमान में आघात लगने पर मैंने ऐसी एक बात कह डाली थी, मैं क्यों अनर्थक निमित्त बन गया?

लोक समागम ही क्रोध और अभिमान आदि का हेतु होता है, यह देख मैंने जाकर ठाकुर से कहा-जनसमुदाय छोड़कर पहाड़, पर्वत पर रहने से, शायद, अभिमान आदि से छुटकारा मिल जाय। कैसी अवस्था होने पर पर्वतों में रहा जा सकता है?

ठाकुर ने कहा-**अभिमान के अनेक कारण होते हैं सही, परन्तु पर्वत पर जा रहने से इस झंझटों से बहुत कुछ छुटकारा भी हो सकता, किन्तु भोजन का त्याग हुए बिना निर्जन पहाड़ पर्वत पर शान्ति से निवास नहीं हो सकता। भोजन के लिए अस्थिर**

होकर फिर बस्ती में आना पड़ता है। भोजन की चिन्ता सभी को बेचैन करती है। भोजन की चिन्ता से साधकों का अनेक अवसरों पर बहुत अनिष्ट हो जाता है। इसलिए कई साधु लोग कठोर साधन करके पहले ही भोजन के त्यागने का अभ्यास करते हैं। भोजन का त्याग हो जाने पर इन्द्रियदमन आदि में भी बड़ी सुविधा हो जाती है। बड़े अध्यवसाय से कुछ समय तक नियमों का पालन करने से भोजन का त्याग संभव हो जाता है। यह सभी के लिए न ही सहज है और न ही संभव, किन्तु प्रयत्न करने से किसी-किसी को बड़ी सरलता से सफलता हो जाती है। परन्तु प्रयत्न करता कौन है?

ठाकुर ने इस प्रकार से उपदेश देकर मेरी भोजन छोड़ देने की प्रवृत्ति बहुत बढ़ गई, बिना प्रार्थना किये ठाकुर अपने आप प्रायः कुछ भी नहीं कहते। इसीसे मैंने बड़े आग्रह से कहा-'यदि मैं चेष्टा करूँ क्या मुझमें निराहार रहने की क्षमता आ सकती है? सम्भव हो तो इसके लिए नियम बतला दीजिये एकबार यथाशक्ति चेष्टा करके देखूँ।'

ठाकुर ने कहा-भोजन त्यागने की इच्छा हो तो अभी तुम उपाय कर सकते हो। अभी तुम्हारी अवस्था अधिक नहीं हुई है। लगता है चेष्टा करोगे तो सहज ही सफल हो जाओगे। एकाएक भोजन नहीं छोड़ दिया जाता। रीति के अनुसार बड़े धैर्य के साथ धीरे-धीरे अभ्यास करना पड़ता है। जिन वस्तुओं को खाते हो, उनमें अन्न (भात) का एक परिमाण निर्दिष्ट कर लेना। पहले ही भोजन कम कर देना ठीक नहीं। दाल, तरकारी आदि बहुत सी वस्तुओं का भोजन करना छोड़कर एक चीज के साथ भोजन करने का अभ्यास किया

जाता है। जब केवल दालभात या तरकारी-भात खाने की आदत पड़ जाये, तब 'भाते सिद्ध भात' (भात के साथ उबली हुई तरकारी) का अभ्यास करो आवश्यकता हो। तो थोड़ा सा दूध घी भी ले सकते हो। किन्तु दूध का उपयोग न करना ही अच्छा है। जब 'भाते सिद्ध भात' का अभ्यास हो जाय तो पानी के साथ भात खाने लगो। इस समय बड़ी सावधानी से धीरे-धीरे भात का भी परिमाण कम करके पानी की मात्रा बढ़ाते जाओ। पानी और भात के अभ्यास के साथ-साथ नमक छोड़ने की आदत डालो। नमक छूट जाने पर पानी और भात के साथ कुछ फल खाने लगना। ज्यों-ज्यों फलों की मात्रा बढ़े, तब फिर भात की मात्रा घटा देना। फिर मात्र फल और पानी पर ही रहने लगना। इस समय फल के साथ दो-चार नीम के पत्ते और बिल्वपत्र खाने का अभ्यास करना। फिर फलों की मात्रा घटाकर पत्तियों का परिमाण बढ़ा लेना। इसके बाद पत्तियों और जल पर ही रहना। यह सब अभ्यास बहुत धीरे-धीरे करना, नहीं तो बीमार पड़ जाओगे। बड़ी दृढ़ता से बहुत समय तक अभ्यास करते-करते भोजन का त्याग किया जाता है। यदि भोजन का त्याग करने की इच्छा हो तो मिठाई को अभी से छोड़ दो। मिठाई में केवल फल खा सकते हो। वीर्यधारण ही समस्त साधन का मूल है, यदि वह न हुआ तो और कुछ नहीं होने का। वीर्यधारण होते ही सब कुछ सहज हो जाता है।

समाधिमन्दिर आरम्भ, गेण्डारिया की बात।

माता ठाकुरानी का शरीर छूटने पर ठाकुर की आज्ञा से, उनकी एक अस्थि श्रीवृन्दावन में समाहित कर दी गई। हरिद्वार में पूर्ण

कुम्भ मेले के समय एक अस्थि ब्रह्मकुण्ड में, गंगाजी में प्रवाहित कर दी गई थी। समाधि देने के लिए एक अस्थि गेण्डारिया-आश्रम में लाई गई है। ढाका के गुरुभ्राता लोग चन्दा करके एक छोटा सा मंदिर बनवा रहे हैं। गुरुभ्राता राधारमण गुह ने नक्शा बना दिया है। आश्रम की दक्षिणी सीमा पर तालाब के ठीक उत्तरी तट पर, आम के पेड़ से तीन-चार हाथ के दूरी पर, पश्चिम-दक्षिण कोने में मंदिर बन रहा है। मंदिर की नींव खोदते समय सीढी के स्थान पर दो मुसलमानों की कब्रें निकली।

ठाकुर ने कहा-**कुछ समय पहले भी गेण्डारिया मुसलमान फकीरों का साधन स्थान था। गेण्डारिया के जंगल में अनेक स्थानों पर मुसलमानों की कब्रें हैं। अच्छे-अच्छे फकीर तो प्रायः बहुत से चले गये हैं। जंगल में अब भी दो-चार व्यक्ति हैं, वे लोग भी जल्दी चले जायेंगे।**

मैंने पूछा-'योगिनी माई की बात सुनी थी। क्या अभी वे हैं? उनका आसन कहाँ है?

ठाकुर ने कहा-**कुछ दिन हुए, वे मणिपुर के जंगल में चली गई है। आनन्द बाबू के बगीचे की ओर जहाँ मैं बैठता था, वहीं प्रायः योगिनी माई रहती थी। उनका आसन एक निर्दिष्ट स्थान में नहीं था। वे सदा वृक्षों पर रहती थी।**

मैंने पूछा-'जो फकीर महात्मा लोग सूक्ष्म देह में रहते हैं, क्या वे भी गेण्डारिया को छोड़कर चले जायेंगे?

ठाकुर ने कहा-**वे लोग जिन वृक्षों का अवलम्बन करके रहते हैं, उनके कट जाने पर वे लोग क्यों रहेंगे? आनन्द बाबू के बागीचे के पास नवकान्त बाबू के घर की सीमा पर एक बड़ा सा**

पेड़ था। उसके काट दिये जाने से दो महात्मा गेण्डारिया छोड़कर चले गये हैं। गेण्डारिया में अधिक लोगों के निवास होने पर कदाचित् सभी को हट जाना पड़ेगा।

गेण्डारिया की भूमि बहुत समय से महात्माओं का साधनक्षेत्र रही है, यह सुनकर बड़ा आनन्द मिला।

गुरुमर्यादा का उल्लंघन करने से सिद्ध पुरुष का पुनरागमन।

श्रीमति शान्तिसुधा के पुत्र दाऊजी की बात प्रायः ठाकुर किया करते हैं। ठाकुर के पास दाऊजी आते हैं तो ठाकुर तुरन्त उनको बहुत प्यार करते हैं। आदरपूर्वक उनके मस्तक पर फूल रखकर नमस्कार करते हैं, **'दाऊजी की जय, बलदेव महाराज की जय'** कहकर प्रसन्न होते हैं। दाऊजी इतने छोटे हैं कि उन्हें अभी तक बोलना नहीं आया है, किन्तु उनका हाव-भाव देखकर, मैं कई बार विस्मित हो जाता हूँ। संकीर्तन के समय दाऊजी, खोल-करताल बजने की ध्वनि सुनते ही, स्थिरता से एक ओर ताकते रहते हैं और थोड़ी ही देर में अचेत हो जाते हैं। कान के पास हरे कृष्ण, हरे कृष्ण कहते रहने से धीरे-धीरे उनकी चेतना लौट आती है।

ठाकुर ने कहा-**पूर्व जन्म की सारी बातें दाऊजी को याद हैं। उन्हें चौरासी प्रकार के आसनों का अभ्यास था, उनको कुछ भी भूला नहीं है। दाऊजी एक सिद्धपुरुष थे। श्रीवृन्दावन में दामोदर पुजारी के कुंज में बलराममूर्ति दाऊजी महाराज प्रतिष्ठित हैं। ये दाऊजी उन्हीं बलरामजी की सेवा-पूजा किया करते थे। मन लगाकर उपासना करने से दाऊजी ने उसी विग्रह का रूप प्राप्त**

कर लिया है।

अब ठाकुर की बातों से मैं भी समझ गया कि सचमुच दाऊजी की आकृति उस विग्रह के अनुरूप ही है। मैं प्रायः सोचा करता था कि इस बच्चे का चेहरा माता-पिता से क्यों नहीं मेल खाता है; फिर भी यह चेहरा बार बार याद पड़ता है, मानो इसे कहीं देखा है। मैंने ठाकुर से पूछा-'तो क्या दाऊजी सदा जातिस्मर रहेंगे?'

ठाकुर ने कहा-ऐसा भी कभी होता है! ज्यों ही ये बोलने लगेंगे, त्योंही स्मृति नष्ट हो जायगी।

मैंने पूछा-'दाऊजी इतने बड़े सिद्ध थे, तो उन्हें फिर आना क्यों पड़ा?'

ठाकुर ने कहा-**एक बार गुरु की मर्यादा उल्लंघन करने से ही इस बार दाऊजी को संसार में आना पड़ा है। दाऊजी पूर्व जन्म में एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। सदा गुरु के साथ रहते थे। गुरु एक महापुरुष थे। नर-नारी उनके दर्शन करने आया करते थे। एक दिन कई स्त्रियाँ दर्शन करने आई तो उक्त महापुरुष ने आदर करके उनको बैठाया। एक व्रजमाई थोड़ी देर तक बैठी फिर हँसी और बातचीत करके चली गई। गुरु के पास स्त्रियों का आना-जाना, उठना-बैठना बाचतीत करना और हँसना-बोलना इनको बिल्कुल पसन्द न था, कई बार तो वे चिढ़ जाते थे। उस दिन स्त्रियों के जाते ही दाऊजी ने अपने गुरुजी को धमकाकर दो-चार बातें कहीं। उस समय दाऊजी के गुरुजी के समीप एक और महापुरुष बैठे हुए थे। उन्होंने दाऊजी से कहा, 'अरे बच्चा, गुरुजी से ऐसा कहना ठीक नहीं, चुप रहो।' दाऊजी ने कहा, क्यों? उचित बात क्यों न कहे? महात्मा ने कहा, 'अरे हाथी**

कितना खाता है और कितना हजम करता है, इसको तुम कैसे जानोगे? तुम तो बिल्ली हो।' दाऊजी को क्रोध आ गया, उन्होंने तुरंत कह दिया, हाँ, जी हाँ। बहुत से ऐरावत देख लिये हैं। सुनकर महापुरुष ने कहा, 'यह बात है, तो एक बार फिर देखना होगा, लौटना पड़ेगा।' यह सुनते ही दाऊजी के गुरु ने उन महापुरुष के चरणों में गिरकर कहा, वह तो बच्चा है, आप दया करके उसके अपराध को क्षमा कर दीजिए। महापुरुष ने उत्तर दिया, एक बार और लौटने से उसका विशेष कल्याण होगा, कुछ भी अनिष्ट न होगा, इसीलिए दाऊजी फिर आये हैं, परलोक में रहकर दाऊजी ने पचीस वर्ष तक प्राणायम से ऐसी चेष्टा की थी, जिससे संसार में न जाना पड़े किन्तु महापुरुष का वाक्य किसी तरह अन्यथा नहीं हो पाया। मर्यादा का उल्लंघन करना बड़ा भारी अपराध है। दण्ड भोगे बिना उस अपराध से किसी प्रकार छुटकारा नहीं मिलता।

स्वप्न में लाल के साथ प्रतियोगिता।

एक स्वप्न देखने से मन बड़ा उद्विग्न हो गया। दोपहर को ठाकुर के पास और किसी को न देख मैंने उन्हें स्वप्न का वृत्तान्त सुनाया- 'मैं और लाल आपको लक्ष्य करके ऊपर की ओर आकाश मार्ग में उड़े जा रहे हैं। लाल मुझसे दो-तीन हाथ आगे-आगे जाने लगा। मैं लाल से ऊपर जाने के लिए बहुत बहुत जोर लगाने लगा, किन्तु न जा सका। इससे मन में बड़ा दुःख हुआ, तुरन्त ही आपके समीप जाकर मैंने कहा, 'लाल को मुझसे बहुत पीछे दीक्षा मिली है, फिर वह तो शूद्र है। मैं ब्राह्मण हूँ, फिर प्राणपण से चेष्टा करने पर भी

उससे ऊपर क्यों नहीं पहुँच सका? लाल को बिना ही कुछ चेष्टा किये स्वाभाविक गति से जाते मैंने देखा है, वह मुझसे दो-तीन हाथ आगे-आगे निकल गया। आपसे यह पूछने पर कि ऐसा क्यों हुआ, आपने कहा-**लाल का वैष्णव भाव है और तुम्हारा शाक्तभाव है।** आपने और कुछ नहीं कहा। इतने में ही जाग पड़ा। यह कहकर मैंने ठाकुर से पूछा-'शाक्तभाव में और वैष्णव भाव में क्या अंतर है?'

ठाकुर ने कहा-**शाक्त और वैष्णव सभी को अन्त में एक सी ही अवस्था प्राप्त होती है। हाँ, मार्ग में उपासना के भाव का पार्थक्य अवश्य देखा जाता है। जो लोग वैष्णव प्रकृति के होते हैं वे भगवद्भक्ति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं माँगते, वे लोग ऐश्वर्य को अपनी भक्ति में विघ्न ही मानते हैं, वे उसको विष की भाँति त्याग देते हैं। वे लोग तो तन-मन से प्रभु के दास ही होना चाहते हैं। भगवद्भक्ति को प्राप्त करके वे लोग अभय पद पा लेते हैं। उन लोगों की इच्छा न करने पर भी समस्त ऐश्वर्य दास दासी की भाँति सदा उनके पीछे चलते हैं। किन्तु शाक्तों का दूसरा भाव है -वे पहले ऐश्वर्य की आकांक्षा से ही कठोर साधन करते हैं, फिर धीरे-धीरे अनेक प्रकार का ऐश्वर्य प्राप्त करके पृथिवी का यथेष्ट कल्याण करते हैं, इस प्रकार सभी जीवों की सेवा करके, भगवान् द्वारा मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। अंतिम अवस्था सभी की एक है।**

लगता है, मेरा स्वप्न मिथ्या नहीं है, क्योंकि मेरा झुकाव तो ऐश्वर्य की ओर ही अधिक है। ऊर्ध्वरेता होना, आहार त्यागी होना इत्यादि सभी ऐश्वर्य की ही क्रियाएँ हैं। परन्तु जब इन सारी चेष्टाओं के लक्ष्य भगवान् हैं तब इन्हें सिवा भक्ति के साधन के और क्या

कहा जा सकता है? भगवान् पर लक्ष्य रखकर जो कुछ भी किया जाये वह सब उन्हीं की तो सेवा है।

काली के अपमान से उत्पात-पूजा से शान्ति।

कुछ दिन पहले की एक अत्यन्त विचित्र घटना, मेरे ही हाथ की लिखी हुई, एक कागज पर मिल गई। घटना की ठीक तारीख या महीना उसमें नहीं लिखा है और मुझे भी याद नहीं है; इसलिए जैसा लिखा है, वैसा ही यहाँ उद्धृत करता हूँ।

हमारे गुरुभाता श्रीकुंज घोष, ठाकुर के बहुत ही अनुगत और श्रद्धावान् सेवक हैं। घोष बाबू का समूचा परिवार ही स्वतंत्र रूप का है। वृद्धों से लेकर छोटे से बच्चों तक सभी बातचीत आचरण और व्यवहार में मानो ठाकुर के भाव में मग्न रहते हैं। देखने से जान पड़ता है कि ठाकुर के सिवा इस परिवार के किसी के भी जीवन का मानो और कुछ भी लक्ष्य नहीं है। सहज भाव से निःसंकोच होकर ठाकुर से मिलना-जुलना इस परिवार के बच्चों और बूढ़ों में जैसा देखता हूँ, वैसा अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलता है। किन्तु हाय रे अदृष्ट, ठाकुर से जिस परिवार की इतनी लगन है, उसमें भी एक विषम उत्पात आरम्भ हो गया।

एक दिन भोर को उठकर सभी ने देखा कि घोष महाशय के घर में रक्त की वर्षा हुई है। घोष महाशय का घर आश्रम से सटा हुआ, पूर्व की ओर है। वह कहीं रक्त की एक बूँद तक नहीं है किन्तु उस घर के आँगन में, घास के ऊपर और पेड़ की पत्तियों पर रक्त की बूँदें प्रायः सर्वत्र पड़ी हुई मिली। कुंज बाब की स्त्री और बालक आदि कई व्यक्तियों को सवेरे से ज्वर चढ़ आया। इस ज्वर का वेग

धीरे-धीरे बढ़कर एक सौ चार-पाँच डिग्री तक पहुँचा। सभी रोगी बिस्तर पर प्रायः बेहोश पड़े थे। घोष महाशय की बुढिया सास कभी तो ठाकुर के पास और कभी अपने घर जाने लगीं। अवसर पाकर बुढिया ने ठाकुर को विपत्ति का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सुना है कि ठाकुर ने कदाचित् बुढिया को खूब धमकाकर कहा कि उनके ही अपराध से यह सारा उत्पात हो रहा है। अभी वृद्धा को ठाकुर ने उसका अपराध नहीं बतलाया था, उससे पहले ही वृद्धा ने कहा- 'कई दिन से, नाम करते समय, काली की मूर्ति मेरे सामने प्रकट हो जाती थी। मैं जितना ही जप करती थी, उतनी ही समीप माँ काली आती जाती थीं। मैंने कई बार काली से हट जाने के लिए कहा, किन्तु वे गई नहीं। फिर घर को झाड़-बुहारकर मैं झाड़ू लेकर दरवाजे के पास बैठ गई।

और नाम का जप करने लगी, देखा कि सामने काली खड़ी हुई हैं। मैंने बार बार हट जाने के लिए कहा, किन्तु वे नहीं गईं; तब मुझे क्रोध आ गया, हाथ में झाड़ू थी ही, वही मैंने उनके ऊपर फेंक दी। तब से फिर काली को नहीं देखा।

सब बातें सुनकर ठाकुर ने खूब धमकाकर कहा-**क्या कर बैठी हो? क्रुद्ध काली तो कच्चा चबा जाने वाली देवी हैं, उन्हें तुमने झाड़ू से मारा! लोगों को कितनी ही साधना करने पर भी एक बार जिनके दर्शन नहीं मिलते, उन्होंने दया करके तुम को दर्शन दिये थे और तुमने उन्हें झाड़ू मारी?**

वृद्धा ने कहा-'मैं तो भगवान् का भजन करती हूँ और उन्हीं को बुलाती हूँ। काली मेरे पास किस लिए आती है? मैं तो समझती थी कि काली मेरे साधन मार्ग का प्रलोभन हैं।'

ठाकुर ने कहा-**यह क्या कहती हो! काली क्या भगवान् नहीं है?**

वृद्धा ने कहा-'भगवान् तो श्रीकृष्ण हैं। मैं उन्हीं के नाम का जप करती हूँ।'

ठाकुर ने कहा-**दीक्षा के समय क्या भगवान् के एक निर्दिष्ट रूप की ही बात बताई गई थी? जो समस्त विश्व ब्रह्माण्ड में है, और अखिल विश्व ब्रह्माण्ड भी जिनके भीतर है, वही तो भगवान् हैं। यह तो कुछ कहा नहीं गया था कि वे द्विभुज मुरलीधर हैं या चतुर्भुजा है! वे किस रूप में तुम्हारे आगे प्रकट होंगे इसको एकमात्र वे ही जानते हैं। पहले से ही ऐसी कल्पना क्यों किया?**

वृद्धा ने कहा-'तो अब क्या करूँ? '

ठाकुर ने कहा-**मन से मानकर, काली की पूजा करो। काली की प्रतिमा मँगवाकर विधिवत् उनकी पूजा करनी होगी।**

ठाकुर की बात सुनकर, बिना कुछ कहे, वृद्धा अपने घर को चली गई। अब ठाकुर ने कुंज घोष महाशय को बुलवाकर कहा-**तुम्हारी सास तो सुनेगी नहीं, तुम शीघ्र कालीपूजा करो, नहीं तो अकल्याण होगा।**

इसके बाद ही कुंज बाबू के घर माँ काली की मूर्ति लाई गई। नियमानुसार शास्त्र की रीति से वडी धूमधाम के साथ कालीपूजा की गयी। इस पूजा के दिन, न जाने क्यों, वृद्धा के प्रतिनिधि रूप में हो या एक ब्राह्मण के उपवास करने की व्यवस्था होने से हो, ठाकुर ने मुझको निर्जला व्रत रखने की आज्ञा दी। मैंने दिन भर उपवास किया था।

रात को कालीपूजा आरम्भ होने पर, ठाकुर जाकर समाने खड़े हो गये और हाथ जोड़कर दर्शन करने लगे। इस अपूर्व दर्शन के विषय में ठाकुर ने बाद में एक बार जो लिखकर बताया था, वह यहाँ उद्धृत किया जाता है।

ठाकुर के हाथ से लिखा हुआ है-पहले देखा, काली माता नैवेद्य के आम को सिर पर रखे बैठी हुई हैं। फिर देखा, महावीर श्रीरामचन्द्रजी को कन्धे पर बैठाये खड़े हैं। इसके बाद देखा, गरुड़ पर विष्णु विराजमान हैं। फिर महादेव के ऊपर काली को देखा। इसके पश्चात् बलराम के हृदय में राधाकृष्ण को स्थित देखा। अनन्त भाव है, कौन समझेगा।

इस पूजा में, ठाकुर के आज्ञानुसार कूष्माण्ड (रखिया) और गन्ने का बलिदान हुआ और पूजा के दूसरे दिन बहुत से गुरुभ्राताओं और गुरुभगिनियों ने बड़े आनन्दपूर्वक प्रसाद पाया।

कालीपूजा हो गई, फिर अवसर देखकर मैंने ठाकुर से पूछा-'आपके अनजान क्या काली ने ऐसा उत्पात कर डाला था?'

ठाकुर ने कहा-**क्या कभी ऐसा हो सकता है? ज्योंही माँ काली को झाडू मारी गई, माँ काली ने आमवृक्ष के तले आकर मुझसे कहा-'देखो, बुलाकर मेरा अपमान किया है, मैं उसे शिक्षा देना चाहती हूँ।'-उसके बाद ही यह सब हुआ।**

मैंने कहा-'इससे वृद्धा को भला कौन सी शिक्षा मिली? ठाकुर ने कहा-**जो मिली है, वही काफी है।** मैंने कहा-'क्यों, काली उस वृद्धा का कुछ क्यों न कर सकीं?'

ठाकुर जरा हँसकर कहने लगे-**वह बुढिया कोई मामूली बुढिया नहीं है। साधारण ब्राह्मसमाज के एक सज्जन के घर बहुत समय**

से एक काली की मूर्ति प्रतिष्ठित है। उस सज्जन की माता बड़ी श्रद्धा भक्ति से प्रतिदिन उस मूर्ति की सेवा पूजा किया करती हैं। ब्राह्म सज्जन घर पहुँचते ही उस प्रति को फेंक देने के लिए तैयार हो जाते थे और मन्दिर के बरामदे में तरह-तरह के अनाचार करने थे। एक दिन काली ने बुढिया से स्वप्न में कहा-अरी सावधान रहना, तुम्हारा छोटा लड़का तो बहुत अत्याचार करने लगा है। उसको रोको। यदि वह फिर ऐसा करेगा तो मैं तुम्हारे बड़े बेटे की गर्दन मरोड़ दूँगी? बुढिया ने कहा-'क्यों माँ, बड़े बेटे की गर्दन क्यों मरोड़ डालोगी?' बड़े बेटे ने तो कोई अपराध किया नहीं है। गर्दन मरोड़नी हो तो छोटे लड़के की ही क्यों नहीं मरोड़ती? काली ने उत्तर दिया, 'अरी वह तो मुझे बिलकुल मानता ही नहीं है। जरा भी परवाह नहीं करता। मैं उसका कुछ नहीं कर सकती।'

मैंने पूछा-'एक ही स्थान में दीक्षा लेने और एक ही नाम करने से किसी को काली के दर्शन होते हैं, किसी को कृष्ण के और किसी किसी को अन्य देव-देवियों के भी दर्शन होते हैं। ऐसा क्यों होता है?'

ठाकुर ने कहा-**जो जिस देश का है, उसके आगे पहले उसी वंश के कुलदेवता ही प्रायः प्रकट होते हैं। फिर धीरे-धीरे सब कुछ प्रकट होता रहता है।**

मैंने पूछा-'नाम करते-करते जो कुछ प्रकट होता है, उसकी मर्यादा की रक्षा किस प्रकार का आचरण करने से होती है?'

ठाकुर ने कहा-**नाम करते-करते जो कुछ प्रकट हो, उसको श्रद्धा भक्ति के साथ नमस्कार करो और आशीर्वाद भी माँग लो,**

ऐसा करने से ही कल्याण होता है।

मैंने फिर पूछा-‘आशीर्वाद में क्या माँगना चाहिए?’

ठाकुर ने कहा-**भगवान् के चरणों में मति-गति लगी रहे, उनके चरणों की भक्ति हो, इतना आशीर्वाद माँगने से ही वे सन्तुष्ट हो जाते हैं।**

गुरुभक्ति की पराकाष्ठा।

कुछ दिन हुए, ठाकुर ढाका जिले के अन्तर्गत धामराई गाँव में गुरुभ्राता श्रीश्यामाकान्त पण्डितजी {पण्डित श्यामाकान्त चट्टोपाध्यायः ढाका विक्रमपुर में, ‘तेजपुर रशुनिया’ गाँव में इनका निवास था। नार्मल स्कूल की शिक्षा पाकर इन्होंने कुछ समय तक मास्टरी की थी। पण्डितजी ब्राह्मसमाजी थे। ब्राह्मधर्म पर इनको असाधारण अनुराग था। इनके उत्साहपूर्ण जीवन में सत्यनिष्ठा और साधनशीलता देखकर पूर्वी बंगाल के बहुत से शिक्षित सज्जन ब्राह्मधर्म में आकृष्ट हो गये थे। जिस समय से इन्होंने मूर्तिपूजा को अपराध मान लिया उसी समय से ये पूजा के समय प्रदेश छोड़कर इसलिए चल देते थे कि उस समय ढाक वाद्य की ध्वनि कहीं कानों में न जा पहुँचे। शायद सर्वप्रथम इन्हीं ने ठाकुर से दीक्षा ली थी। दीक्षा लेने के बाद फिर इन्होंने प्रायः ठाकुर का साथ नहीं छोड़ा। पण्डितजी की दीर्घकालव्यापी एक सी असाधारण साधन चेष्टा एवं दुर्लभ अवस्था देखकर मैं कृतार्थ हो गया। ठाकुर के अन्तर्धान के बाद ये ठाकुर के समाधि आश्रम में ही अन्त समय तक रहे। १३१८ब. सन् संवत् में होली (फाल्गुल पूर्णिमा) के दिन इन्होंने शरीर छोड़ा।}, श्रीमन्मथनाथ मुखोपाध्याय {स्व. मन्मथनाथ

मुखोपाध्याय, बी. एल. का निवासस्थान दमदम के समीप केन्देटि गाँव था। ये एक कट्टर ब्राह्म थे ब्राह्मधर्म ग्रहण करने के कुछ समय पश्चात् ही इन्होंने ठाकुर से दीक्षा ले ली। जिस समय ठाकुर ने पूर्वी बंगाल के ब्राह्मसमाज से संसर्ग छोड़ा था, उस समय के पश्चात् मन्मथ बाबू उपाचार्य का कार्य किया करते थे (यह कार्य इन्होंने इससे पहले भी किया था)। उस समय इनके उत्साहपूर्ण वक्तृता सुनकर बहुत लोग ऐसा सोचते थे कि जान पड़ता है, इस व्यक्ति के द्वारा स्व. केशवचन्द्र सेन महाशय की कमी पूर्ण हो जायेगी। इनकी वक्तृता के समय श्रोतालोग मन्त्रमुग्ध की भाँति अभिभूत हो जाया करते थे। कुछ समय के बाद अवस्था में परिवर्तन हो जाने पर इन्होंने ब्राह्मधर्म प्रचार करना छोड़ दिया, फिर कानपुर में वकालत करके इन्होंने खूब प्रतिष्ठा प्राप्त की और अन्त में वहीं पर जीवन बिताया।} आदि को साथ लेकर एक प्रसिद्ध सिद्ध फकीर साहब के दर्शन करने गये थे। इन फकीर साहब को लोग ‘शा साहब’ कहा करते हैं। शा साहब के एक युवक शिष्य है, वह भी मुसलमान है। इस शिष्य की अद्भुत अवस्था और असाधारण गुरुभक्ति की बात समय-समय पर बताकर ठाकुर आनन्दित होते हैं। उस दिन घटना जैसी सुनी, वैसी ही लिख रखता हूँ। बूढे शा साहब के एक ओर वह शिष्य लड्डूगोपाल की भाँति बैठा, हाथ जोड़े हुए गुरु की ओर एकटक देख रहा था। वह ऐसी प्रतीक्षा में था मानो कोई हुक्म मिलते ही वह उसकी तामील करेगा। कभी-कभी मैदान की ओर ताककर चौंक पड़ता और तुरन्त ही हाथ से डंडा चलाकर चिलाकर कहता, ‘अरे उधर जा, हट; इधर क्यों आया? किशनजी तो उधर गया।’ कभी खाली मिट्टी पर लाठी मारकर कहता, ‘अरे

साले! बलाईजी की बात नहीं मानता है?’ मारेंगे डण्डा तो मालूम पड़ेगा। इस शिष्य के सम्मुख प्रायः भगवान् श्रीकृष्ण की गोचारणलीला प्रकट होती थी और यह भी स्वयं उसमें सम्मिलित हो जाता था। चौपायों और बछड़ों को बेचाल होते देख, समय-समय पर डण्ड़ा लेकर, ऐसे जाकर उनको हाँक देता है।

उस दिन शा साहब कुछ चिन्तायुक्त भाव में बैठे हुए थे। शायद कुछ सोच रहे थे; देखकर शिष्य ने अत्यन्त व्यस्त होकर पूछा, ‘शा साहब! आप दुखी क्यों हुए?’

शा साहब ने कहा-‘अरे, गुरुजी ने शादी करने का हुक्म दिया है। शिष्य ने कहा-‘वाह! अच्छा तो है। गुरुजी का हुक्म है, तो करनी ही होगी, आप शादी कर लीजिए।’ शा साहब ने कहा-‘अरे! कहने को तो तुमने कह दिया, लेकिन हमको लड़की देगा कौन? मैं तो बूढ़ा हो गया हूँ।’ शिष्य ने कहा, ‘क्यों गुरुजी, मैं दिये देता हूँ। मेरी जोरू से आप शादी कर लें।’ शा साहब ने कहा-‘यह कैसे होगा? तू तो जिन्दा है। खसम के मर जाने पर बेवा का निकाह हो सकता है। शिष्य थोड़ी देर तक चुपचाप बैठा रहा, फिर एकदम उछल पड़ा और ताली बजाकर बोला-‘अच्छा तो है गुरुजी, अच्छा तो है। उसमें मुश्किल क्या है? मैं अभी मरता हूँ, आप मेरी जोरू से निकाह कर लीजिए।’ शा साहब शिष्य को बड़ी कठिनाई से रोक पाये। शिष्य बीच-बीच में चौंककर शा साहब से एक ही बात कहने लगा, ‘गुरुजी का हुक्म तो मानना ही होगा।’ जान पड़ता है कि शा साहब ने वहाँ पर उपस्थित सज्जनों को शिष्य की गुरुभक्ति दिखलाने के लिये ही यह खेल खेला था। विचित्र शिष्य था! अद्भुत दृष्टान्त था!!

एक गुरुभाई ने ठाकुर से प्रश्न किया कि हम लोगों के साधन से,

शा साहब के साधन में कौन सा भेद है। इस पर ठाकुर ने कहा-**इन लोगों के साधन में निजी पुरुषार्थ प्रधान होता है, गुरुकृपा भी अपेक्षित होती है। हमारे यहाँ पूर्णतः गुरुकृपा का भरोसा है, पुरुषार्थ की जरा भी अपेक्षा नहीं। रहती। इतनी ही भिन्नता है।**

श्रीधर का उपहास और शिक्षादान।

कुछ समय से श्रीधर बीमार है। समय-समय पर बुखार से वे बहुत ही व्याकुल हो जाते हैं। इन दिनों श्रीधर की इन्द्रिय के अग्रभाग में एक फोड़ा हो गया है, इससे बड़ा कष्ट है। एक अनभिज्ञ गुरुभाई से कष्ट के दूर होने का उपाय पूछा तो उसने कहा-'अच्छी तरह कास्टिक लगा देने से फोड़ा अच्छा हो जायगा।' श्रीधर ने जरा भी आगा-पीछा न सोचकर उसमें अच्छी तरह कास्टिक लगा दिया। इससे बड़ा सा घाव हो गया। अब श्रीधर दिनरात चिल्लाते रहते और दर्द के मारे तड़पते रहते हैं। महेन्द्र दादा ने जाकर श्रीधर से पूछा-'क्यों भाई श्रीधर, क्या हो गया है?' श्रीधर ने चटपट उत्तर दिया-'अरे भाई होगा क्या? पाप का भोग है! उस दिन यहाँ पर कुत्ता यहीं पर था। कहूँ क्या, वेग को न सँभाल सका। यह उसी कुकर्म का फल है। हाय रे भाग्य!'

महेन्द्र दादा पागल श्रीधर के स्वभाव को जानते हैं। दिमाग के गरम हो जाने पर श्रीधर सब कुछ भी कह सकते और कुछ भी कर सकते हैं। इसी से वे और कुछ न कहकर चले गये और समय पाकर उन्होंने ठाकुर से श्रीधर की बात कही।

सुनकर ठाकुर ने कहा-**राम! राम! वह कुछ नहीं है, नहीं है। जब श्रीधर का सिर गरम हो। जाता है, तब वह ऐसी बहुत सी**

झूठी बातें कहने लगता है। उसने दवा लगाकर घाव कर लिया है।

महेन्द्र दादा सोचने लगे-सिरफिरा श्रीधर सभी काम कर सकता है। श्रीधर ने स्वयं अपने पाप की बात कह सुनाई है, उसके पाप को छिपाने के लिये ही ठाकुर ने उसकी बात को झूठ कहकर बिल्कुल उड़ा दिया है। कुछ समय पश्चात् महेन्द्र दादा ने एक दिन श्रीधर से बातचीत के सिलसिले में कहा

श्रीधर! तुम्हारी बीमारी का सब हाल मैंने गोस्वामीजी को बतलाया था, उन्होंने वह कुछ नहीं है, 'श्रीधर ने झूठ बात गढ़कर कह दी है, उसने दवा लगाकर घाव कर लिया है, कहकर तुम्हारे दोष को छिपा दिया।' यह सुनकर श्रीधर ने महेन्द्र दादा की ओर जरा देखा और खिलखिलाकर कहा-'भैय्या! इस बार तुम ठगे गये, मेरी बात पर तुमने विश्वास कर लिया, लेकिन गोसाईजी की बात पर विश्वास न कर सके!' तब कहीं जाकर महेन्द्र दादा को सत्य का बोध हुआ, वे जरा झेंप गये। कई अवसरों पर गुरुभ्राताओं के आगे यह सब सुनाकर महेन्द्र दादा अफसोस किया करते हैं। मैंने सोचा ठाकुर के इतने निष्ठावान् भक्त को भी जब ऐसा मतिभ्रम होता है, तब मैं हूँ ही किस गिनती में।

श्रीधर की अवस्था और प्रकृति।

जिस समय श्रीधर ने ठाकुर से दीक्षा ली उस समय से उन्होंने प्रायः कभी ठाकुर का साथ नहीं छोड़ा; विशेष आवश्यकता होने पर भी श्रीधर, ठाकुर का साथ छोड़ने से नाराज होते थे। ठाकुर का साथ छोड़ना उनकी दृष्टि में यम-यातना के समान थी। श्रीधर के

जब होश-हवास ठीक रहते, तब उन्हें बड़े भजनपरायण, शान्त, सरल, निष्ठावान्, विश्वासी और बड़ी मधुर प्रकृति के एक भावमग्न महापुरुष के अतिरिक्त और कुछ नहीं सोचा जा सकता। किन्तु जिस समय उनका सिर गरम हो जाता है, उस समय वे विचारशून्य बड़े पागल लगते हैं। चन्द्र के उदय के समय से श्रीधर का माथा गरम होने की सूचना होती है। और चन्द्रमा की वृद्धि के साथ साथ वह क्रमशः अधिक गरम होता जाता है। एकादशी से लेकर पूर्णिमा तक वे कहाँ, किस दशा में, कौन सा रूप धारण करेंगे, यह कोई नहीं बतला सकता। उस समय सभी आश्रमवाले शंकित रहते हैं, क्या जाने श्रीधर कब किसकी गर्दन दबा दें। किन्तु उन्माद की दशा में भी श्रीधर किसी न किसी प्रकार धर्म का कोई अनुष्ठान किये बिना नहीं रह सकते। गृहस्थों के घरों से, उनकी जानकारी में झगड़ा करके अथवा बिना ही जानकारी में, आवश्यक लकड़ियाँ आदि लाकर बड़ा भारी अग्निकुंड जलाते हैं और दिन-रात एक भाव में मग्न हो नाचने लगते हैं। फिर कभी, औरों के पसन्द न करने पर भी अपने आप गले पड़कर, उपदेश देते-देते सबकी नाक में दम कर देते हैं। इस समय श्रीधर कभी-कभी धर्मबुद्धि से ही लोकाचार विरुद्ध कार्य भी करके बड़ी निर्भयता और सरलता से उसको औरों पर प्रकट करने का साहस करने लगते हैं। मधुर प्रकृतिवाले श्रीधर की दिमाग गरम होने की हालत भी प्रायः सभी को अच्छी लगती है। श्रीधर कभी कहीं क्यों न रहे, वे सभी अवस्थाओं में आनन्द-मग्न रहते हैं। बिलकुल उदास व्यक्ति भी श्रीधर की संगति पाकर प्रसन्न हो जाता है। हाँ, जब उनका सिर गरम रहता है में वे जिसके सिर पर सवार हो जाते हैं, तब उसका पिण्ड छुड़ाना कठिन हो जाता है।

गुरु की अवज्ञा देखने से श्रीधर का आपे से बाहर होना।

आजकल हाई स्कूल के एक प्रसिद्ध हेडमास्टर, स्त्री-वियोग के शोक से अत्यन्त व्याकुल होकर आश्रम आये हुए हैं। ठाकुर को अपने समग्र शोक और दुःख की बातें बताकर उन्होंने कहा- 'महाराज क्या आप बता सकते हैं, कि इस समय मुझे शान्ति कैसे मिलेगी?'

ठाकुर ने उनके दुःख में खूब सहानुभूति प्रकट करके कहा- **शोक बड़ी विषम वस्तु है; इसकी शान्ति किसी तरह नहीं होती। जितना समय बीतता जायगा, उतना ही शोक अपने आप धीरे-धीरे कम होता जायगा। अब रामायण और महाभारत आदि पढ़िए, सत्संग कीजिए और जितना बने उतना भगवान का भजन करके समय बिताने की चेष्टा कीजिए। इससे कुछ शान्ति मिलेगी।**

लगता है, भले आदमी को ठाकुर के उपदेश से विशेष तृप्ति नहीं मिली। वे धीरे-धीरे उठ आये। और दक्षिण ओर के कमरे में गये। वहाँ एक कोने में श्रीधर अपने आसन के सामने धूनी जलाकर आग की ओर टकटकी लगाये हुए जप कर रहे थे। लँगोटी लगाये, कम्बल लपेटे श्रीधर को एकाग्रता से बैठे देखकर मास्टर साहब को कुछ आशा हुई; थोड़ी देर तक श्रीधर के पास चुपचाप बैठे रहकर उन्होंने कहा, 'बाबाजी, कुछ दिन हुए मेरी स्त्री गुजर गई है, इससे मुझे बड़ा क्लेश है, क्या कृपा कर बतलाइएगा कि मुझे आराम कैसे मिलेगा।' सुनकर श्रीधर ने धीर भाव से कहा-हाँ, आराम मिलने का

एक उपाय बतलाता हूँ। उस कमरे में चले जाइए, गोस्वामीजी के पास बैठिए। उनको अपना सारा दुःख सुनाइए। आराम मिलेगा।' उन्होंने कहा-'महाशय, अब तक तो मैं उन्हीं के पास था। उन्होंने जो कुछ कहा वह भी सुन लिया। वह सब तो बहुत सुना हुआ है; दया करके आप कुछ बतलाइए।' 'वह सब तो बहुत सुना हुआ है, ठाकुर की बात के प्रति ऐसा अवज्ञासूचक भाव देखकर श्रीधर का माथा गरम हो गया। उन्होंने कहा-'तो ब्याह कीजिएगा?'

मास्टर ने कहा-'नहीं महाशय, वह अब नहीं चाहिए। आप मुझे ऐसी किसी प्रक्रिया का उपदेश दीजिए जिससे थोड़ा आराम मिले।' अब श्रीधर ने बहुत ही उत्तेजित होकर हाथ हिलाकर कहा-'मुझसे प्रक्रिया सीखिएगा? अच्छी बात है, जाइए! अभी जाकर यह क्रिया कीजिए, खूब आराम मिलेगा। मास्टर श्रीधर का हाथ-मुँह हिलाना देखकर और उनके वचन सुनकर क्रोध के मारे आग-बबूला हो गया। वह तुरन्त ही गोस्वामीजी के पास पहुँचा और श्रीधर के पूर्ण व्यवहार का परिचय देकर बोला 'क्या आप उसे अनुशासित नहीं कर सकते?'

सब सुनकर ठाकुर ने नाराजी प्रकट की और श्रीधर को बुलाकर कहा-**श्रीधर! यह क्या है? तुम तो बहुत ही अजीब आदमी हो! तुमने इस भले आदमी से क्या कह दिया है। ऐसा पागलपान करोगे तो यहाँ न रहने पाओगे। खूब सावधानी से रहो, नहीं तो यहाँ से अभी चले जाओ।**

श्रीधर का सिर तो गरम हो ही चुका था, अब फिर ठाकुर के धमकाने पर उन्होंने और भी उत्तेजित होकर कहा, 'आप से धर्म का उपदेश सुनकर इनका जी नहीं भरा, इन्हें आराम नहीं मिला।

मेरे पास पहुँचे शान्ति का उपदेश लेने! क्या मैं आचार्य हूँ? जिस समय मेरी स्त्री मरी थी, उस समय जो कुछ करने से मुझे आराम मिलता था, वही मैंने बतला दिया। जैसा मेरा अधिकार है, वैसा ही तो मैं बतलाऊँगा। इसमें मेरा कौन सा दोष है?'-इतना ही कहकर श्रीधर शीघ्र अपने आसन पर चले गये और आँखें नचाकर, मुँह बनाकर कहने लगे-'साला गोस्वामीजी की बात न मानकर मेरे पास आया है, आराम का उपदेश लेने! दिन भर श्रीधर का क्रोध दूर नहीं हुआ। ठाकुर ने सज्जन को बताया कि दिमाग गरम हो जाने पर श्रीधर अनाप-शनाप बकने लगता है, उस व्यवहार के लिए ठाकुर ने क्षमा माँगी और बड़ी मधुरता से उपदेश देकर उनको ठण्ड़ा किया। मस्तक पर गर्मी चढ़ जाने से कभी कभी श्रीधर ऐसे ही विचित्र कुछ काम कर बैठते हैं।'

हम लोगों के समान सनकी, असंयत और उन्माद प्रकृतिवाले शिष्यों को सीने से लगाए रखकर ठाकुर प्रशान्त सागर की भाँति किस प्रकार स्थिर हैं और सभी के विष को पचाकर किस प्रकार परमानन्द से समय बिता रहे हैं, यही देखने योग्य विषय है। पग-पग पर हम लोगों के अत्याचार और आज्ञा उल्लंघन पर भी ठाकुर का धैर्य, विरोध में शान्ति एवं सभी की हर दुरवस्था में ठाकुर की असाधारण दया तथा सहानुभूति देखकर मुग्ध हो रहा हूँ।

श्रीधर के जठरानल में आहुति।

श्रीधर के एक और कार्य को यहाँ लिखता हूँ। श्रीधर की बीमारी से कई दिन पहले की बात है, एक दिन हमारे आश्रम का भण्डार खाली हो गया। सवेरे उठकर नानी माँ, कुछ घबरा गई। फिर दो

तीन घरों में जाकर वहाँ से दो रुपये उधार माँग लाई और श्रीधर के पास जाकर कहने लगीं, ‘श्रीधर, इस समय ध्यान-धारणा से काम न चलेगा। आसन से उठो, भण्ड़ार बिलकुल खाली पड़ा है, बाजार चले जाओ, सौदा आने पर रसोई चढ़ेगी।

श्रीधर ने कुछ उत्तर न देकर आँखें बंद कर ली। नानी माँ बार बार श्रीधर को आवाज देने लगी, तब उन्होंने जोर से कहा-‘बाजार खाली हाथ कैसे जाऊँ? रुपये निकालिए; रुपये कहाँ हैं?’ नानी माँ के रुपये देते ही श्रीधर आसन से उछलकर खड़े हो गये और बाजार को फुर्ती से चल पड़े। नानी माँ ने श्रीधर से कहा, ‘कौन-कौन सी चीजें लानी है, यह तो तुमने पूछा ही नहीं।’ श्रीधर ने उत्तर दिया। मैं भात नहीं खाता? क्या मैं नहीं जानता कि क्या-क्या लाना है? दाल लाऊँगा, चावल लाऊँगा, और क्या?’ नानी माँ ने अधिक बात न बढ़ाकर जिन चीजों की आवश्यकता थी, वे बतला दीं। श्रीधर ने कहा-‘आप जाइए, चूल्हा जलाइए, बस मैं अभी आया।’ अब श्रीधर कन्धे में झोला लटकाकर बाजार को चले गये। धीरे-धीरे दिन चढने लगा। श्रीधर को आते न देख नानी माँ बड़ी उलझन में पड़ीं। दस बजे तक राह देखती रहीं, श्रीधर का कुछ पता न पाकर, वे पड़ोसियों के घर से दाल, चावल उधार ले आई। रसोई चढ़ा दी। रसोई बन गई, किन्तु श्रीधर बाजार से न लौटे। सभी लोग सिर्फ दाल-भात खाकर विश्राम करने लगे। साढ़े बारह बजे वृक्ष के नीचे ठाकुर की धूनी जली। भोजन करके ठाकुर वहाँ जाकर बैठे। महाभारत का पाठ होने लगा, दो बज गये; श्रीधर एक बड़ी सी पोटली कन्धे पर रखे हुए जल्दी-जल्दी आये और ठाकुर के दाहिने ओर धूनी के सामने आसन बिछाकर बैठ गये। पाँच-पाँच छः-छः

मिनट में श्रीधर पोटली में से धूप, चन्दन और गुग्गुल आदि मुट्ठी भर-भरकर निकालते व 'अग्न्ये स्वाहा! अग्न्ये स्वाहा!' कहकर प्रज्वलित अग्नि में आहुति देते जाते थे। यह देखकर ठाकुर बिना कुछ कहे, बड़े आनन्द से मुस्कुराने लगे। थोड़ी देर में नानी माँ श्रीधर के संबंध में ठाकुर से पूछताछ करने को ही आम के पेड़ के नीचे आई। उस समय श्रीधर को धूनी की ओर ताकते बैठे देखकर, वे थोड़ी देर तक चकरा गई और खड़ी रहीं। नानी माँ को देखकर ठाकुर हँसने लगे। नानी माँ ने श्रीधर से कहा, 'श्रीधर तुम बाजार नहीं गये?' कुछ उत्तर न देकर बड़े ध्यान से पोटली में से मुट्ठी भर-भर धूप-चन्दन आदि निकालते और 'अग्न्ये स्वाहा, अग्न्ये स्वाहा' कहकर अग्नि में आहुति देने लगे। नानी माँ ने कहा-'पागल! यह क्या कर रहा है? ऐसा करने से क्या काम चल जायगा?' श्रीधर ने बड़े तेज के साथ उत्तर दिया, 'फिर आप क्या कहती हैं?' जठरानल-अनल (अग्नि) ही तो है। आग में आहुति देने पर भी क्या क्षुधा रहेगी? आप शास्त्र जानती हैं न?

श्रीधर की बातें सुनकर ठाकुर खूब हँसने लगे और नानी माँ से कहने लगे-आपने बाजार करने के लिए श्रीधर को रुपये दिये थे। श्रीधर उन रुपयों से धूप आदि लाकर, जठरानल में आहुति दे रहे हैं। भोजन दे दिया। श्रीधर का ऐसा पागलपन प्रायः सर्वदा देखता रहता हूँ। यह सारा उत्पात और उपद्रव अधिकतर प्रायः नानी माँ को ही सहना पड़ना है। जिस समय श्रीधर का दिमाग सही नहीं रहता, उस समय नानी माँ की सहिष्णुता और दया देखकर मैं दंग हो जाता हूँ।

माता ठाकुरानी का समाधि मन्दिर।

आश्विन मास के प्रथम भाग में माताजी के दर्शन करने के लिए मैं घर चला गया। घर से आश्रम लौटने में दस-बारह दिन लग गए। इधर देखते-देखते शारदीय पूजा (नवरात्र) आ गई। दफ्तर, अदालत और स्कूल आदि में छुट्टी हो गई। गुरुभ्राताओं और गुरुभगिनियों के झुण्ड के झुण्ड आने लगे। आश्रम में भीड़-भाड़ हो गई। ठाकुर के दर्शन पाकर सभी बड़े आनन्दित हैं। महाष्टमी के दिन महामाया की पूजा हम लोगों ने बहुत दिनों से नहीं देखी। इस बार ठाकुर की कृपा और उन्हीं की इच्छा से इस तिथि को भगवती माँ योगमाया की अस्थि नये मंदिर में स्थापित की जायेंगी। उसी तिथि से माता ठाकुरानी की नित्य सेवा-पूजा होने लगेगी। इस दिन की कल्पना करके अभी से हम लोगों के मन में बहुत आनन्द है। गुरुभाईयों के सम्मिलन पर ठाकुर के आश्रम में एकमात्र ठाकुर को पाकर ही हम लोगों के लिए नित्य ही आनन्द और महोत्सव है। अब की बार महाष्टमी को, देशव्यापी महान् आनन्द के दिन, ठाकुर हमारी स्नेहमयी माता योगमाया की स्मृति को जाग्रत करके, उनके शीतल विमल आनन्दप्रद श्रीचरणों में साष्टांग प्रणाम करने का अवसर देंगे। इस बार से हमारे यहाँ भी हर वर्ष महाष्टमी तिथि को महामाया भगवती योगमाया की महापूजा हुआ करेगी, यह सोचकर गुरुभ्राताओं तथा गुरुभगिनियों को बड़ा ही आनन्द और उमंग है।

माता ठाकुरानी के अतंर्धान से कुछ समय पहले, श्रीवृन्दावन में रहते समय, एक दिन ठाकुर ने मुझसे कहा था, **'देखना, इस वर्ष गेण्डारिया में शीघ्र ही शंख और घंटा आदि बजेंगे।'** उस समय

मैंने कल्पना तक नहीं की थी, कि यह कार्य माता ठाकुरानी के समाधिमंदिर में होगा।

मंदिर बनकर तैयार है, किन्तु ठीक नक्शे के अनुसार नहीं बना। मंदिर को देखकर ठाकुर ने कहा-**भगवान् की इच्छा से जो होगा, मनुष्य का क्या हाथ है? नक्शे के अनुसार बनाने का प्रयास राजमिस्त्रियों ने बहुत किया था, किन्तु बन गया दूसरे ही ढंग का। मंदिर कुछ-कुछ विष्णु मंदिर के ढंग का बन गया है।**

मंदिर की प्रतिष्ठा की प्रणाली।

पंचमी को प्रातःकाल नौ बजे ठाकुर ने मुझसे कहा-**महाष्टमी के दिन तुम प्रतिष्ठा का कार्य करना। उस दिन मंदिर में बैठकर अपना नित्यकर्म करना। दुर्गापाठ करके होम करना। इतना ही करना है।**

मैंने कहा-'तो पूरा दुर्गापाठ करके होम करूँगा? होम वैसा ही करूँगा जैसा रोज किया करता हूँ?'

ठाकुर ने कहा-**पूरा पाठ न करो तो भी चल सकता है। जैसा होम किया करने हो, वैसा करना। एक सौ आठ आहुतियाँ देना।**

दुर्गापाठ के समय प्रतिष्ठा कार्य में पाठ में कहीं भूल-चूक न हो, इसलिए मैं पहले से सप्तशती आवृत्ति करने लगा। छाँटकर सूखी बेल की लकड़ियाँ एकत्र करके रख लीं। इस प्रतिष्ठा के कार्य में पर ठाकुर की विशेष कृपा है। गुरुदेव की जय!!

सप्तमी को श्रीमंदिर की जमीन में बीचोंबीच पक्के चौकोन, सीमेंट किये गये कुण्ड के भीतर योगजीवन आदि गुरुभ्राताओं ने एक डिब्बे में रखकर माता ठाकुरानी की अस्थि स्थापित कर दी

और उनके नाम से अंकित सफेद 'मारबल' पत्थर ऊपर रख दिया। ऊपर से उसकी जुड़ाई सीमेंट से पकी कर दी। फिर उसके ऊपर एक चौकी रख दी, जिसके ऊपर माता ठाकुरानी के व्यवहार की वस्तुएँ-आसन, तकिया, वस्त्र इत्यादि-गद्दी के आकार में ठीक-ठीक सजाकर रख दी। उन सबके ऊपर एक गेरुवा वस्त्र आवरण के रूप में डाल दिया। कल उनकी एक फोटो और ठाकुर का लिखा हुआ 'नामब्रह्म' का पट उसके ऊपर स्थापित किया जायेगा।

तरह-तरह के पत्तों और पुष्पों की मालाएँ–गूँथकर मंदिर के चारों और लटकाई गई हैं। मंदिर की सीढियों पर दोनों ओर दो केले के पेड़ खड़े किये गये और उनके नीचे दो पूर्ण कलश स्थापित किये गये हैं। कल आम के पल्लव, तोरण, नारियल और फूलमालाओं से वे रीति के अनुसार सजाये जायेंगे। सन्ध्या को आम वृक्ष के नीचे संकीर्तन का आरम्भ हुआ। इस कीर्तन के आनन्द में रात के नौ बज गये। फिर सभी ने अपने-अपने आसन पर जाकर विश्राम किया।

माता ठाकुरानी की समाधिप्रतिष्ठा।

२५ आश्विन रविवार। महाष्टमी को सूर्योदय से पहले ही मैं बूढीगंगा में जाकर स्नान और तर्पण आदि कर आया। फिर माला और तिलक धारण करके ठाकुर के श्रीचरणों में प्रणाम किया तथा समाधि-प्रतिष्ठा की अनुमति लेकर मैं मंदिर के भीतर गया। कुतुबूडी मंगल प्रतिष्ठा कार्य की और सब सामग्री संग्रह करके देने लगीं। माता ठाकुरानी के आसन को दक्षिण की ओर मैंने अपना आसन पूर्वाभिमुख बिछाया।

माता ठाकुरानी के फोटो को बार-बार प्रणाम करके, उसे गद्दी के ऊपर उत्तरमुख स्थापित किया। 'नामब्रह्म' के चित्रपट को भी उसी प्रकार नमस्कार करके माता ठाकुरानी की गद्दी पर ही रखा। मंदिर के फर्श पर बालू बिछाई और होम के लिए बेल तथा गूलर की लकड़ियाँ ठीक तौर से रख दी। अरवा चावल, केले और चीनी आदि के द्वारा भली भाँति प्रस्तुत करके कई प्रकार का नैवेद्य लाया गया। उसको होमकुण्ड के पास रख दिया। फिर आचमन करके प्राणायाम तथा कुम्भक करने के बाद स्थिरता से माता ठाकुरानी की उस स्नेहपूर्ण कृपामयी मूर्ति का ध्यान करके, मैं इष्टनाम का जप करने लगा। निर्दिष्ट संख्या में गायत्री का जप करके फूल, तुलसी और बिल्वपत्र आदि के द्वारा मैंने माता ठाकुरानी की पूजा की और फोटो तथा नामब्रह्म के चित्रपट का विधि के अनुसार माला, तुलसी, पुष्प एवं चन्दन आदि से श्रृंगार किया। फिर महाष्टमी की पूजा के लग्न में, शंख-घंटा-ध्वनि करके दुर्गापाठ आरम्भ कर दिया। मंदिर के आँगन में शंख, घंटे बजने लगे; अब ठाकुर धीरे-धीरे मंदिर के द्वार पर आकर खड़े हो गये। वे अपलक थोड़ी देर तक माता ठाकुरानी के फोटो की ओर ताकते रहे। फिर दुर्गापाठ के कई श्लोक सुनकर मंदिर से नीचे उतर पड़े और भावावेश में दहिने-बाँये हिलते-डुलते हुए मंदिर की परिक्रमा करने लगे। गुरुभाता एवं गुरुभगिनियाँ आनन्द-ध्वनि करके शंख और घंटे बजाते हुए ठाकुर के पीछे-पीछे चलकर मंदिर की प्रदक्षिणा करने लगे। स्त्रियों ने बार-बार मंगल ध्वनि करना आरंभ कर दिया। थोड़ी ही देर में मैंने दुर्गापाठ समाप्त कर लिया। माता ठाकुरानी के श्रीचरणों में पुष्पांजलि चढ़ाकर मैंने होम के लिए अग्नि प्रज्वलित की। गौ के

विशुद्ध घी के साथ अखण्ड बिल्वपत्र द्वारा होम आरम्भ कर दिया। मैं इस समय गुरुदेव की अद्भुत कृपा को देखने लगा। होमाग्नि प्रज्वलित होते ही, दक्षिणावर्त हो, अनेक रंगों की शिखाएँ फलाकर माता ठाकुरानी के फोटो की ओर जाने लगी। उज्ज्वल ताम्रवर्ण की, नाखून के बराबर, एक ज्योतिर्मय मूर्ति, बड़ी चंचलता से, समस्त अग्नि में नृत्य करके कभी तो अन्तर्धान होने और कभी प्रकट होने लगी। किसी भी प्रकार में मूर्ति की ओर दृष्टि न जमा सका। फिर भी अग्नि की जिस दिशा में दृष्टि पड़ती, वही बिजली की तरह बड़ी चमकीली चंचल मूर्ति नृत्य करते हुए क्षण भर में प्रकट और क्षण भर में अन्तर्हित होती दिखने लगी। वह मूर्ति मेरे लिए विशेष रूप से परिचित थी, इसलिए मुझे अपार आनन्द आया। मैं तो बिल्कुल मुग्ध हो गया। १०८ आहुतियों का होम सम्पन्न हो गया। माता ठाकुरानी को नैवेद्य लगाकर मैंने आरती की। फिर बरामदे में साष्टांग नमस्कार करके मैं मंदिर से नीचे उतरा। ठाकुर की जय हो, आपकी जय हो! जय हो!! जय हो!!!

दोपहर को अनेक प्रकार की सामग्री बनाकर माता ठाकुरानी को भोग लगाया गया। कोई आधे घण्टे तक श्रीमंदिर का दरवाजा बन्द रहा। भोग लगने पर सभी प्रसाद पाकर परम परितुष्ट हुए।

सन्ध्या को कुतुबूडी ने माता ठाकुरानी की आरती की। फिर मंदिर के प्रांगण में संकीर्तन आरम्भ हुआ। ठाकुर को पाकर सभी कीर्तन के आनन्द में मत्त हो गये। कीर्तन के बाद ठाकुर अपने हाथ लूट लुटाकर अपने आसन पर जा बैठे। हम लोगों ने भी अपने अपने आसन पर जाकर विश्राम

होम के अन्त होते समय अकस्मात् एक उत्पात हुआ था। कच्चे

सीमेंट के ऊपर होमाग्नि प्रल होने से सीमेण्ट फट गया और चट-चट शब्द करता हुआ जलते हुए कोयलों के साथ चारों ओर पर गिरने लगा। किन्तु अचम्भे की बात यह है, कि घर भर में और बरामदे में जलते हुए कोयलों के गिरने पर भी सीमेंट का एक भी टुकड़ा या कोयला न तो आधे हाथ की दूरी पर स्थित माता ठाकुरानी के आसन गिरा और न मेरे ऊपर ही।

शक्तिपूजा और भगवान् की नरलीला।

२५ आश्विन सोमवार। नवमी को सुबह स्नान-तर्पण करके लौटने पर मैं ठाकुर को प्रणाम करने गया। ठाकुर ने मुझसे कहा-**मंदिर में बैठकर ही अपनी नित्यक्रिया करना। दुर्गापाठ करके होम करना।**

कल वहाँ होम करने से मंदिर का फर्श फटकर टुकड़े उड़ने का उल्लेख करने पर ठाकुर ने कहा-**तो मंदिर के फर्श पर आग जलाकर होम न करना, पीतल की जो बड़ी सी धूपदानी है, उसी में होम कर लेना।**

मैं नानी माँ के पास गया और उनसे वह धूपदानी माँग लाया। नाम, प्राणायाम और गायत्री का जप करके मैंने गीता का और सप्तशती का पाठ किया, फिर होम कर लेने पर माता-ठाकुरानी की पूजा की। इसके पश्चात् साष्टांग प्रणाम करके, मैं मंदिर से बाहर निकला। बारह बजे माता ठाकुरानी को भोग लगाया गया। ठाकुर ने कह दिया है कि भोग के लिए भीतर थाल रखकर, आधे घण्टे तक मंदिर का दरवाजा बन्द रखना चाहिए।

शाम को पंचप्रदीप, धूप, शंख और वस्त्र आदि के द्वारा कुतुबूडी

ने माता ठाकुरानी की आरती की। शंख और घंटे आदि की ध्वनि से आश्रम मानो नृत्य सा करने लगा। संध्या आरती होने पर सभी मिलकर आम वृक्ष के नीचे संकीर्तन करने लगे। ठाकुर ने हरि लूट लुटाई।।

दशमी के दिन माता ठाकुरानी की पूजा नित्य एक ही नियम से होने लगी। आज सतीश और श्रीधर ने ठाकुर से शक्तिपूजा, दुर्गापूजा, और मूर्तिपूजा के संबंध में कई प्रश्न किये।

मैंने कहा-'क्या श्रीरामचन्द्र ने दुर्गापूजा की थी?'

ठाकुर ने कहा-**हाँ, की थी। इस विषय का कोई उल्लेख वाल्मीकि रामायण में नहीं है। कालिका पुराण आदि में इसका उल्लेख है।**

मैंने कहा-'श्रीरामचन्द्र तो स्वयं भगवान् हैं। वे सब कुछ जानते थे, सब कुछ कर सकते थे, फिर उन्होंने दुर्गापूजा क्यों की?'

ठाकुर ने कहा-**यह नलीला जो थी। यहाँ जानने-समझने और कर सकने या न कर सकने का कोई प्रश्न ही नहीं। ये यदि पूर्णब्रह्म की ही तरह सब कुछ करें तो फिर उन्होंने अवतार ही क्यों लिया? वहीं से तो सब कुछ कर सकते थे। उनके लिए असाध्य ही क्या है? जिनकी इच्छा से सृष्टि, स्थिति और प्रलय होता है, वे पल भर में क्या नहीं कर सकते? वे जिस समय जिस उद्देश्य से अवतार लेते हैं, उस समय उसके अनुरूप ही आचरण करते हैं, लीला के समय ये अपनी मायाशक्ति के द्वारा ही अपने को स्वयं आच्छान्न रखते हैं, जैसे कि रेशम का कीड़ा अपने ही धागे में आप आबद्ध हो जाता है। उनकी लीला को समझने की साध्य किसमें है? केवल उनकी कृपा होनी चाहिए।**

मैंने पूछा-'श्रीरामचन्द्र ने जो बालि-वध किया था, उसके संबंध में बहुत लोग तरह तरह की बातें करते हैं।'

ठाकुर ने कहा-**उनकी बातें सुननी नहीं चाहिए, सुनने से अनिष्ट होता है। जो लोग न तो शास्त्रों को आद्योपान्त पढ़ते हैं और न समझते ही हैं, वे ही वैसी बातें करते हैं। जो लोग शास्त्रों का कुछ अंश ग्रहण कर लेते हैं और कुछ अंश को छोड़ देते हैं, उन्हें शास्त्रों पर विश्वास नहीं है, वे अपने मनचाही बात ही चुन लेते हैं। फिर ऐसे लोग शास्त्र की चर्चा और आलोचना क्यों करते हैं? शास्त्रों पर विश्वास रखने के लिए आद्योपान्त समस्त शास्त्रों को मानना चाहिए। थोड़े पर विश्वास करने और थोड़े पर विश्वास न करने से काम नहीं होता है? शास्त्रकारों ने कोई भी बात छुपाई नहीं है। समस्त विषय की स्पष्ट मीमांसा कर दी है। दुर्दशाग्रस्त, विपन्न, बिल्कुल शरणागत भक्त सुग्रीव की रक्षा करने के लिए ही श्रीरामचन्द्र ने, भाई की स्त्री छीन लेनेवाले बालि का वध किया था, यह रामायण में साफ-साफ शब्दों में लिखा हुआ है। किसी शास्त्रग्रंथ के आद्योपान्त समस्त विषय को विश्वास किये बिना पढ़ने से ठीक अर्थ समझ में नहीं आता। जो लोग श्रद्धापूर्वक शास्त्र को नहीं पढ़ते वे शास्त्र को न पढ़ा करें बल्कि, अंग्रेजी की पुस्तक में बाघ या कुत्ते की कहानियों भले पढ़ें। बिना श्रद्धा और विश्वास के पढ़ने से शास्त्र को पढ़ना और न पढ़ना एक सा है।**

मैंने पूछा-'व्रजगोपियों ने जो भगवती की पूजा की थी, सो क्या कोई मूर्ति बनाकर की थी? गोपियों ने शक्तिपूजा क्यों की थी?'

ठाकुर ने कहा-**शक्ति की पूजा किये बिना क्या कोई पार पाया**

जा सकता है? शक्ति की कृपा हुए बिना कुछ भी तो नहीं होता। व्रजगोपियों ने श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिए कात्यायनी की पूजा की थी। इस समय भी उसी रीति से व्रजमाईयाँ, हर साल कार्तिक में प्रातः स्नान करके यमुनातट पर बालू की वेदी बनाती और उस पर कात्यायनी की पूजा किया करती हैं। उस रीति में कोई मूर्ति स्थापित नहीं की जाती। मूर्तिपूजा करने की बहुत सी रीतियाँ हैं। वेदी में करना अथवा यन्त्र बना करके पूजा करना, मूर्तिपूजा का ही एक भेद है।

मैंने पूछा-'दुर्गा और काली एक ही शक्ति तो है; फिर किसी की पूजा रात को और किसी दिन को क्यों की जाती है?'

ठाकुर ने कहा-**शक्तिपूजा तन्त्रमत से भी होती है और वैदिक रीति से भी। तन्त्र के मत से कालीपूजा रात में की जाती है और वैदिक रीति से दुर्गापूजा दिन में की जाती है। हिमालय के घर पहले श्यामवर्ण द्विभुजा काली ने जन्म लिया था, इसके पश्चात् पार्वती ने जन्म ग्रहण किया।**

ब्रह्मज्ञान और अवतारतत्त्व।

आज एक गुरुभाई ने पूछा-'क्या निर्गुण परब्रह्म ही साकार होकर लीला करते हैं? महाप्रलय में यह सब क्या उसी परब्रह्म में लीन हो जाता है?'

ठाकुर ने कहा-**हाँ, महाप्रलय में कुछ भी नहीं बचता। क्षिति, अप, तेज, मरुत, व्योम, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, सभी कुछ अद्वय ब्रह्म का ही परिणाम है। ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। श्रुति का कथन है-'यतो वा**

इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।' जिससे सब कुछ उत्पन्न हुआ है, यही कहा है, किन्तु यह नहीं कहा कि 'जिसके द्वारा हुआ है।' पंचमी विभक्ति का उपयोग किया है; करणार्थ तृतीया का नहीं। 'जिससे,' जैसे मृत्तिका से घट, सुवर्ण से कुण्डल और समुद्र से तरंग इत्यादि। मृत्तिका और घट एक ही वस्तु ही है, मृत्तिका का ही एक परिणाम घट है, सुवर्ण का ही एक प्रकार का परिणाम कुण्डल है और समुद्र का ही एक परिणाम तरंग है। ऐसा होने पर भी घट को मृत्तिका और तरंग को समुद्र नहीं कह सकते, घट को घट ही कहना होगा; तरंग ही कहना होगा। इसी प्रकार ब्रह्म अद्वय है और चराचर अनन्त ब्रह्माण्ड उसी का परिणाम है। अतः ऐसे दृष्टान्त देकर समझाया है। कुम्हार और घट, ऐसा दृष्टान्त नहीं दिया। जो कुछ है सब ब्रह्म है। पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्ष, लता, और यह लाठी, माला, अस्थि, मांस, मैं, सभी तो ब्रह्म है। इसीको ब्रह्मज्ञान कहते हैं। यह अद्वय ब्रह्मज्ञान होने से ही सगुण ब्रह्मतत्त्व का ज्ञान होता है। निर्गुण अद्वय तत्त्व की स्फूर्ति हुए बिना, सगुण साकार तत्त्व को समझने की शक्ति कहाँ होगी? साकार क्या ऐसी सहज बात है? श्रीमद्भागवत का वचन है-

वदन्ति तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।।

फिर यह निर्गुण परब्रह्म ही साकार होकर लीला करता है, काकभुशुण्डी तक को संशय हो गया था। वह निर्गुण परब्रह्म ही

क्या ये दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र हैं?' वही क्या यहाँ अयोध्या में दशरथ के घर हैं? एक दिन श्रीरामचन्द्र आँगन में हाथ में लिये कुछ खा रहे थे, उसका थोड़ा सा टुकड़ा नीचे गिर पड़ा, उसको उन्होंने उठा लिया! काकभुशुण्डी को देखकर बालक श्रीरामचन्द्रजी ने मुस्कुराकर उनको पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया। भुशुण्डी डर कर भागे। किन्तु हाथ उनके पीछे चला। काकभुशुण्डी समूचे ब्रह्माण्ड में भागते फिरे, किन्तु श्रीरामचन्द्र का हाथ पीछे पीछे था। अन्त में और कहीं स्थान न पाकर, वे फिर दशरथ के आँगन में लौटकर उसी जगह आ गये। उनको देखकर श्रीरामचन्द्र जरा हँसे। तब भुशुण्डी ने श्रीरामचन्द्र के मुख के भीतर प्रवेश किया। उन्होंने श्रीरामचन्द्र के श्रीमुख के भीतर अनन्त ब्रह्माण्ड, लोक, लोकान्तर, चौदहों भुवन, सभी कुछ वर्तमान देखा। कितने ही ब्रह्माण्डों में ऐसे ही सैकड़ों राम लीला कर रहे थे। स्वयं अपने को भी भुशुण्डी ने ऐसे ही एक स्थान पर देखा। यह सब देखने से भुशुण्डी को बड़ा अचम्भा हुआ। तब श्रीरामचन्द्र फिर हँसे। इसी समय भुशुण्डी मुख के बाहर निकल आये। यह सब अपनी आँखों देख लेने पर भी उनका संशय दूर न हुआ। तब श्रीरामचन्द्र ने उस पर कृपा की; अद्वय ब्रह्मतत्त्व और सगुण साकार लीलातत्त्व उनके लिए प्रकट हो गया। तब कहीं सारी बात भुशुण्डी की समझ में आई। खण्ड प्रलय में एक ब्रह्माण्ड के लीन हो जाने पर भी असंख्य ब्रह्माण्ड बने रहते हैं; किन्तु महाप्रलय में एकमात्र ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं बचता। ब्रह्म के अतिरिक्त जब दूसरी वस्तु ही नहीं है, तब यह भी तो नहीं कहा जा सकता कि उस समय और कुछ

नहीं रहता। ब्रह्म नित्य है, अतः सब कुछ नित्य

इन उपदेशों के बाद कई तरह की बातें होने लगीं। पागल श्रीधर ने हँसते-हँसते कहा-'ब्रह्म को जान लिया है, यह भी नहीं, ब्रह्म को नहीं जान पाया है, यह भी नहीं; इसका अर्थ जिनकी समझ में आ गया है, उन्हीं को ठीक-ठीक ब्रह्म का ज्ञान हुआ है। उपनिषद् की यह बात श्रीधर ने इस समय कह दी, इससे सभी हँसने लगे।

भगवान की नरलीला।

मैंने पूछा-'परमेश्वर पर तो सभी को विश्वास है; तब वे जिस समय संसार अवतार लेते हैं, उस समय लोग उन्हें पहचान क्यों नहीं पाते?'

ठाकुर ने कहा-**अनादि, अनन्त चैतन्यस्वरूप परमेश्वर सर्वत्र विद्यमान हैं, ऐसे ऐसे ब्रह्मज्ञान से उसकी उपासना करना और ध्यान करना सहज है। साधक लोग पहले इस ब्रह्मज्ञान की ही उपासना करते हैं। अवतार तत्त्व, लीलातत्त्व पर विश्वास तो बहुत बाद में होता है। जो हम लोगों की ही तरह खाते-पीते हैं, चलते-फिरते हैं, उठते-बैठते और बीमारी में दर्द के मारे कराहतो हैं, 'मर गये, अब नहीं बचते' आदि जोर से कहते हैं, छटपटाते हैं; शोक से बेचैन होकर 'कहाँ गया, कहाँ जाने पर भेंट होगी' कहकर रोते-रोते देश-देशान्तरों में पागल की तरह भटकते हैं, कभी भूख से व्याकुल होते हैं, कभी प्यास के मारे तड़पते हैं, उन्हीं को सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, आनन्दमय, चैतन्यस्यरूप, परमेश्वर समझना और विश्वास करना हँसी खेल नहीं है। वे जिस पर दया करते हैं, वही महाभाग्यवान उनको पहचान सकता है,**

और किसी में सामर्थ्य नहीं कि उनको पहचान ले। स्वयं ब्रह्मा तक को इसमें संशय हो गया था। ब्रह्मा ने सोचा ‘क्या यह कभी संभव है? जो मैदान में हल्ला करके गौएँ चराता फिरता है, धूप के मारे बेचैन होकर पेड़ की छाँह में जाता है, पानी बरसने पर चट्टान की ओट में खड़ा होता है, खेल में हार जाने पर चरवाहों को कन्धे पर चढ़ा लेता है, उनके साथ उछलता-कूदता और दौड़ता-फिरता है, कभी कीचड़ में गिरता है, कभी ठोकर खाकर गिर पड़ता है। गोलोकबिहारी श्रीकृष्ण इस गोकुल में है? अच्छा देखना चाहिए।’ अब ब्रह्मा ने अकस्मात् बछड़ों, चरवाहों, मुरली, लाठी आदि सबको ले जाकर पर्वत की एक गुफा में छुपा दिया और उसके दरवाजे पर एक शिला रख दी। श्रीकृष्ण ने जान लिया कि यह ब्रह्मा का काम है। वे उसी क्षण स्वयं बछड़े, चरवाहे, मुरली, लाठी, सिंगा, सीका और हाँडी आदि बन गये, किसी को इसका जरा भी भेद मालूम न हुआ। उस दिन बलराम गोष्ठ में नहीं गये थे; बछड़ों पर गौओं का, बच्चों पर गोपियों का पहले से भी अधिक स्नेह और चाह देखकर उन्होंने सोचा कि ‘यह क्या है? ऐसा तो इससे पहले कभी नहीं देखा। यह तो सब का सब बड़ा ही विचित्र है।’ जब कुछ समझ में न आया तो उन्होंने ध्यान लगाया; तब उनको सारा भेद मालूम हो गया। इसी प्रकार एक वर्ष बीत गया; ब्रह्मा ने फिर आकर देखा कि श्रीकृष्ण सभी के साथ पहले की सी लीला कर रहे हैं। अब उन्होंने पर्वत की गुफा में जाकर देखा तो वहाँ ये सभी वस्तुएँ उसी रूप में मौजूद थीं, जैसी कि वे वहाँ रख गये थे। अब ब्रह्मा कभी तो उस गुफा में जाते और कभी गोष्ठ में जाकर अन्वेषण

करते; अन्त में बहुत ही चकराकर श्रीकृष्ण के चरणों में गिरे और स्तुति करने लगे-'प्रभो ! मेरे अपराध को क्षमा कीजिए। मैं अबोध हूँ। शिशु माता की गोद में रहकर कितने ही उपद्रव करता है, लातें मारता है, किन्तु क्या इससे माता क्रोध करती है? तुम धन्य हो! व्रजवासी धन्य हैं। इस व्रज के वृक्ष और लताएँ भी धन्य हैं, क्योंकि उन्हें तुम्हारे और व्रजवासियों के चरणों की रज का स्पर्श प्राप्त होता है। दया करके मुझे अपने व्रज में वृक्ष लता बना लो।' ग्रन्थ आदि में जैसा लिखा है, श्रीवृन्दावन में नियमानुसार निवास करने पर धीरे-धीरे, यह सब प्रत्यक्ष हो जाता है। भगवान् की नरलीला, उनकी कृपा हुए बिना, ब्रह्मा, विष्णु और शिव को भी समझ में नहीं आ सकता; फिर मनुष्य की तो बात ही क्या?

संशय के संबंध में उपदेश।

मैंने पूछा-'संग में रहने से तो देखता हूँ कि पग-पग पर सन्देह होता है। इसके लिए कौन सा उपाय है। विश्वास हुए बिना तो निस्तार है नहीं।'

ठाकुर ने कहा-**संशय भी होता है, फिर विश्वास भी होता है; सब उन्हीं की इच्छा से होता है। शाक्यसिंह जब संसार में आये, एक दिन घर से बाहर निकलने पर जरा, मृत्यु और पीड़ा का दृश्य देखते ही उनको एकाएक तीव्र वैराग्य हो गया। उन्होंने घर-द्वार का त्याग कर दिया। लगातार छ; वर्ष तक एक सी कठोर तपस्या करते करते बिलकुल जड़वत् हो गये। किन्तु जिस वस्तु को चाहते थे, वह न मिली। वे निराश होकर आसन**

से उठ बैठे; एक मुर्दे का वस्त्र मिल जाने पर उसे पहनने को उद्यत हो गये। देवताओं ने उस वस्त्र को धोकर ला दिया। बुद्धदेव भूखे थे, उन्हें भोजन करने की इच्छा हुई। उसी समय भूखे अतिथि को भोजन कराने के लिए सुजाता ने किसी व्यक्ति को भेजा; उसको ढूँढने पर भी कहीं कोई न मिला, उसने एक मात्र बुद्धदेव को ही देखा। सुजाता ने शाक्यसिंह को एक सोने के कटोरे में मिष्ठान्न खाने के लिए दिया। निरञ्जना नदी में खड़े हुए शाक्यसिंह मिष्ठान्न खाने लगे। तब देवतालोग उनको चारों ओर से घेरकर खड़े हो गये। किन्तु शाक्यसिंह के साथ जो पाँच शिष्य सदा रहते थे, वे उनको मिष्ठान्न खाते देख आपस में कहने लगे 'देख लिया भाई? यह तो बड़ा भारी पाखण्डी है, इस तरह मिठाई खाया करता है, किन्तु हम लोगों को नहीं बतलाता। चलो, इस पाखण्डी के साथ रहने में कुछ लाभ नहीं है।' बस, साधारण कारण से संदेह पैदा होते ही ये लोग चले गये। भोजन करके शाक्यसिंह ने सुजाता से कहा, 'बहन, मिठाई खा ली, अब इस कटोरे का क्या करूँ?' सुजाता ने कहा, 'मिठाई के साथ-साथ कटोरा भी तुम्हीं को दे दिया है।' तब शाक्यसिंह ने यह कटोरा नदी में फेंक दिया। अब देवता लोग उसमें से प्रसाद खाने लगे। भोजन कर चुकने पर शाक्यसिंह, अभीष्ट प्राप्ति के लिए, दृढ़ प्रतिज्ञा करके बोधिवृक्ष के नीचे बैठ गये। भीतर के सभी शत्रु परास्त हो गये, वासना-कामना का बिल्कुल लय हो गया, उनके भीतर बोधिसत्व ने प्रवेश किया, वे बुद्ध हो गये। बुद्धदेव थे, तो अवतार; किन्तु अपने को भूले हुए थे। उन्होंने बोधिसत्व होकर सोचा, 'यह वस्तु किसको दूँ, तब

उन्हें उन शिष्यों की याद आई। उन्हीं को यह वस्तु देने के लिए वे रवाना हुए। रास्ते में घाट के मल्लाह से नदी पार पहुँचाने को कहा तो उसने पैसे माँगे। पैसे तो थे नहीं; तब संकल्पमात्र से देखा और नदी पार पहुँच गये। काशी पहुँचने पर वे पाँचों शिष्य मिले; वे लोग दूर से बुद्ध को देखकर आपस में कहने लगे, 'अरे भाई, वह देखो, वही पाखण्डी है! वही इधर चला आ रहा है! उससे हम लोग बोलेंगे ही नहीं। किन्तु बुद्धदेव जब उन लोगों के पास पहुँचे, तब उन लोगों ने बड़े आदर और भक्ति के साथ अभ्यर्थना की। उनके प्रभाव की अवहेलना करने की शक्ति अब किसमें थी? तब बुद्धदेव ने उन लोगों पर कृपा की और कहा, तुम लोग इस वस्तु का प्रचार करो। उन लोगों ने उक्त आज्ञा को शिरोधार्य करके बहुतों को संन्यासी बना लिया। भगवान् जब जिस काम को करने के लिए आते हैं, तब उसे बिना किये नहीं जाते। वे जिनको पकड़ लेते हैं, उनको फिर कभी छोड़ते नहीं। यदि वे न पकड़े तो मनुष्य का क्या साध्य कि उनको पकड़े रह सके? मनुष्य में जरा भी क्षमता नहीं है। उनकी कृपा ही सार है।

श्राद्धान्न और उच्छिष्ट से हानि।

हमारे एक गुरुभ्राता पार्वती बाबू ने आम के वृक्ष के नीचे जाकर ठाकुर से पूछा-'श्राद्ध के निमंत्रण में भोजन करने से क्या कुछ अनिष्ट होता है? हमें अक्सर श्राद्ध का निमंत्रण मिलता रहता है।'

ठाकुर ने कहा-**श्राद्ध में भोजन करने से विशेष अनिष्ट होता है, भक्तिभाव बिलकल चौपट हो जाता है। श्राद्ध का अन्न खाने से उसके द्वारा सभी प्रकार के दुष्कार्य हो सकते हैं।** यह कहकर

ठाकुर ने कुछ समय पहले की एक घटना का उल्लेख किया। घटना ढाका से कुछ घण्टे की दूरी पर मुंशीगंज में हुई थी।

ठाकुर कहने लगे-**'कुछ दिन हुए, अच्छा संन्यासी इस रास्ते से चन्द्रनाथ को जा रहा था। एक दिन संध्या समय मुंशीगंज पहुँचकर उसने ब्राह्मण के घर आश्रय लिया। ब्राह्मण ने बड़ी श्रद्धा-भक्ति करके अपने ठाकुरजी वाले घर के बरामदे में उसके रहने को स्थान दिया।' संन्यासी ने रसोई बनाकर भोजन किया और फिर आराम करने लगे। ब्राह्मण के घर में ठाकुरजी की मूर्ति प्रतिष्ठित थी। ब्राह्मण देवता ठाकुरजी की खूब भक्ति करते थे। कई सोने के गहने पहनाये रहते थे। संन्यासी ने संध्या-आरती के समय यह सब देखकर खूब आनन्द प्रकट किया। शेष रात्रि को वे ठाकुरजी के सब गहनों को लेकर भाग खड़े हुए। सवेरे उठने पर ब्राह्मण को संन्यासी न मिला। उसने सोचा कि 'उदासीन संन्यासी ठहरा, उसे किसी से क्या लेना-देना, जी में आया चला गया। नहा धोकर ब्राह्मण ठाकुरजी की पूजा करने को पूजाघर में गया तो देखा कि मूर्ति पर सोने के गहने नहीं है। इससे वह अवाक् हो गया। इसको संन्यासी की ही करतूत समझ कर ब्राह्मण ने गाँववालों को खबर दी। चारों ओर चोर की खोज में आदमी दौड़ाये गये। इधर संन्यासी गहने लेकर रात के पिछले पहर से भागता-भागता, दिन को तीसरे पहर एक स्थान में पेड़ के नीचे विश्राम करने के लिए बैठा। थोड़ी देर में स्थिर होते ही एकाएक उसको ऐसा लगा कि 'भला, मैं यह क्या कर बैठा! तब वह माथा पीटकर हाहाकार करने लगा। अब वह उसी क्षण उसी ब्राह्मण के घर की ओर दौड़ने लगा। यहाँ संन्यासी के पहुँचते ही**

सब लोग उसे गालियाँ देने लगे। संन्यासी ने गहनों की पोटली सामने रखकर कहा-‘आप लोग मुझे जरा दम ले लेने दीजिए; मेरे पास आपके पूरे गहने मौजूद हैं। मुहल्ले के कुछ आदमियों को यहाँ बुला लीजिए, मुझे कुछ कहना है; सब लोगों के सामने गहने दूँगा।’ ब्राह्मण ने यही किया। गाँव के सज्जनों के आ जाने पर संन्यासी ने सबसे कहा, ‘देखिए, आप लोगों के सामने में इस ब्राह्मण देवता से कुछ बातें पूछता हूँ , ये ठीक-ठीक उत्तर दें। मैंने बचपन में संन्यास लिया था, तब से लेकर इस वृद्धावस्था तक में देश-परदेश में भ्रमण किया करता हूँ, लेकिन इससे पहले मेरी ऐसी दुर्बुद्धि कभी नहीं हुई।’ इतने समय तक साधन भजन करके भने जो कुछ प्राप्त किया था, वह सब एक बार आपके घर अन्न खा लेने से नष्ट हो गया है। मैंने अपने जीवन में कभी किसी की एक कौड़ी तक नहीं चुराई। आपका अन्न ग्रहण करने के बाद अकस्मात् मेरी बुद्धि भ्रष्ट क्यों हो गयी? अच्छा, यह बतलाइए कि आपने मुझे जो रसोई के लिए सामान दिया था, उसमें क्या चोर का किसी प्रकार का संसर्ग है, एक बार पता तो लगाइए। घर के भीतर जाने पर ब्राह्मण को पता लगाने से मालूम हुआ कि दाल, चावल, घी आदि जो कुछ उन्हें यजमान के यहाँ से मिला था, वही संन्यासी को सेवा में दिया था। संन्यासी को जब यह बतलाया गया तब उसने फिर पूछा ‘आपको यजमान के यहाँ कौन सा कार्य करने पर ये चीजें मिली थी?’ ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि श्राद्ध कराने पर ये चीजें मिली थी। उन्हीं में से आपको दे दी थी। संन्यासी ने चौंककर कहा-तो मुझे श्राद्ध का अन्न दिया था? अच्छा, जिसका श्राद्ध कराया

था, वह किस ढंग का आदमी था? तब गाँव के सभी भले आदमियों ने बतलाया कि महाराज उसका हाल न पूछिये। उसके जैसा पक्का चोर इस प्रदेश में कभी पैदा हुआ कि नहीं, यह हम लोग नहीं जानते। यहाँ के आदमी तो उसके नाम से काँपते थे, यह कई बार जेल काट चुका था।'

साधु ने कहा-'देखिए, उस चोर के श्राद्ध का अन्न खाने से ही मेरी यह दुर्गति हुई है। ये अपने गहने सँभालिए, अब मैं चन्द्रनाथ नहीं जा सकता। मेरा तो सब कुछ नष्ट हो गया है। मुझे एक महीने तक चान्द्रायण करके प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।' तब गाँववालों ने उसके ठहरने का प्रबन्ध करके चान्द्रायण की व्यवस्था कर दी। साधु एक महीने तक मुंशीगंज में चान्द्रायण करके यहाँ से चला गया। श्राद्ध का अन्न बड़ी विकट वस्तु है। उसको खाने पर फिर रक्षा नहीं है; भक्ति की दिशा तो बिलकुल चौपट हो जाती है।

ठाकुर की बात सुनकर बड़ा अचम्भा हुआ। मैंने पूछा-'श्राद्ध का अन्न तो वही है जो कि श्राद्ध के समय प्रेत को दिया जाता है। जिस घर में श्राद्ध हुआ है, वहाँ का दाल चावल आदि सामान दूषित क्यों हो जाता है?'

ठाकुर ने कहा-**श्राद्ध के समय प्रेत को बुलाया जाता है। उस प्रेत की दृष्टि जिन वस्तुओं पर पड़ती है, वे सभी प्रेत की जूठी हो जाती हैं। इसीसे श्राद्ध वाले घर की कोई भी वस्त्र खानी चाहिए, खाने से उस प्रेत की जूठन खाई जाती है।**

पार्वती बाबू ने कहा-'तो क्या अब हम यजमान के यहाँ श्राद्ध करवाकर कुछ लेंगे नहीं? श्राद्ध का भोज्य (सीधा) ग्रहण करना

चाहिए, यह नियम पुरोहितों के यहाँ दीर्घकाल से है।'

ठाकुर ने कहा-**भोज्य क्यों न लीजिएगा? बात इतनी है कि उसका स्वयं व्यवहार न करना चाहिए। उसको बेच डालो।**

मैंने कहा-'जो उसको मोल लेगा उसे तो जूठी चीज ही मिलेगी।'

ठाकुर ने कहा-**नहीं, जो दाम देकर मोल लेगा उसको पवित्र वस्तु ही मिलेगी। 'द्रव्यं मूल्येन शुद्धति'। मूल्य देकर लेने से ये वस्तुएँ पवित्र हो जाती है। उनमें कुछ दोष नहीं रहता। न तो बेचने वालों की ही कुछ हानि होती है, और न खरीदनेवाले की ही।**

मैंने पूछा-'श्राद्ध में ब्राह्मण भोजन कराने की व्यवस्था तो सभी समाजों में है। शास्त्र की भी यही विधि सुनी है। श्राद्धवाले घर में सभी तो निमंत्रित होकर भोजन करते हैं।'

ठाकुर ने कहा-**श्राद्ध में भोजन करने की मनाही कब है? श्राद्ध के दिन श्राद्धवाले के घर कुछ न खावे। ब्राह्मण भोजन आदि उसी दिन नहीं होता। (यहाँ श्राद्ध भोजन से मतलब तेरहीं के भोजन से है)**

श्राद्ध के दिन प्रेत को बुलाया जाता है और उसकी दृष्टि पड़ने से उस घर की सभी वस्तुएँ उच्छिष्ट हो जाती हैं, इसीसे श्राद्धवाले घर में भोजन करने की मनाही है। प्रेत के कल्याणार्थ ब्राह्मणभोजन आदि तो दूसरे समय होता है और उसमें प्रेत को नहीं बुलाया जाता, इसलिए जूठन की सम्भावना भी नहीं है। ठाकुर ने ऐसी ऐसी और भी बहुत सी बाते कहीं।

अपघात से मरे हुए व्यक्ति की प्रेतात्मा का

अत्याचार।

बरीशाल जिले के अतंर्गत किसी अच्छे गाँव के, कायस्थ वंश में उत्पन्न, एक बालक ने कुछ समय पूर्व ठाकुर से दीक्षा ली है। दीक्षा लेने के पश्चात् ही उसकी भजन निष्ठा, ठाकुर के प्रति स्वाभाविक आकर्षण और उसकी सरलता देखकर मैं कई बार विस्मित हुआ हूँ। एक दिन ठाकुर के पास आकर उसने कहा-'गोस्वामीजी, आप सचमुच हमारा उद्धार करेंगे?'

ठाकुर ने कहा-**तुम लोगों का उद्धार हुए बिना मेरी निष्कृति नहीं। देखो न, चरवाहा तमाम गायों को नदी किनारे एकत्र करता है और फिर एक-एक करके सब को पार पहुँचा देता है; अन्त में जो गाय रह जाती है उसकी पूँछ पकड़कर वह भी पार हो जाता है। तुम सब लोगों के पार हो जाने पर पीछेवाले को पकड़कर, मैं भी पार हो जाऊँगा।**

सुना है कि कुछ दिन से अनेक प्रकार के अलौकिक कार्य और अस्वाभाविक आचरण हमारे इस गुरुभाई के द्वारा हो रहे हैं। दिमाग खराब हो गया समझकर अभिभावकों ने उसे दो मंजिले में बन्द कर रखा है। वह दोमंजिले से रास्ते में कूद पड़ता है, लेकिन उसे जरा सी भी चोट नहीं लगती है और सहज ही किसी ओर भाग जाता है। और कभी-कभी कोठे में बन्द करके बाहर से साँकल लगा देने पर देखा गया है कि वह रास्ते में टहल रहा है, साँकल खुली पड़ी है। अब तक हम लोग यह समझते थे कि उसको साधन के प्रभाव से ऐसी शक्ति प्राप्त हो गई है। किन्तु अब मामला कुछ और ही जान पड़ता है। गेण्डारिया आश्रम में आकर अब उसने बड़ा उत्पात

आरम्भ कर दिया है। उसका अपार दुस्साहस, अनाचार और अत्याचार देखकर सभी हैरान हैं। कई दिन से उस पर इंसान का खून करने की धुन सवार है। आश्रम में अब कोई स्थिर होकर आँखे बंदकर निश्चित नहीं बैठ सकता, उसके डर से सभी चौकन्ने हैं। वह ठाकुर के पास कभी नहीं जाता। दूर से उनको देखता है, तो कभी डर के मारे काँपने लगता है और कभी स्तुति करने लगता है, फिर कभी-कभी उन्हें बुरी-बुरी गालियाँ देने लगता तथा ईंट आदि फेंककर मारने की भी चेष्टा करता है। उस पर हर घड़ी नजर रखनी पड़ती है। यह बड़ी आफत है। मैंने एकान्त पाकर ठाकुर से पूछा 'इस लड़के की एकाएक यह दशा कैसे हो गई? कुछ समय पहले तो यह अच्छा भला था।'

ठाकुर ने कहा-**इसको एक प्रेत लगा है। अब उसके सभी कार्य यही प्रेत किया करता है।**

मैंने पूछा-'तो उसे प्रेत क्यों लग गया?'

ठाकुर ने कहा-**उसके एक पूर्वज एक धनवान आदमी के साथ चन्द्रनाथ को जा रहे थे। उस धनवान् के पास बहुत रुपया पैसा था। रुपये के लालच में पड़कर उसने निर्जन मार्ग में उस धनवान् का बड़ी क्रूरता से उसका वध कर दिया। अपघात से मारे जाने के कारण उस प्रेत को बड़ा आक्रोश हुआ। हत्यारा जब तक जीवित रहा, तब तक इस प्रेत ने उसको तरह तरह से सताया। मर जाने पर भी वंशवालों के द्वारा उसकी किसी प्रकार से सद्गति न होने देने के लिए वह उसके वंश का ही नाश कर देने की चेष्टा कर रहा है। इस लड़के के द्वारा उसके पूर्वजों की सद्गति हो जायेगी, यह जानकर ही वह प्रेत इसको लग गया है,**

और अनेक प्रकार से विपन्न करने की चेष्टा कर रहा है। तुम लोग इसके साथ सदा सावधान रहना।

मैंने पूछा-'वह बीच-बीच में ऐसा विचित्र काम कर डालना चाहता है कि देखकर सहन नहीं होता। डर लगा रहता है कि क्या जाने कब किसकी जान ले ले। सहन न होने पर क्या करूँगा?'

ठाकुर ने कहा-**मन ही मन प्रेत को उद्देश्य करके, बड़े तेजी के साथ नाम करते घूँसा और चाँटे मारना। इससे प्रेत को चोट लगेगी, लड़के को कुछ न होगा। ऐसा करने से भी प्रेत छूट भी जा सकता है।**

अब हम लोग लड़के को अत्याचार करते देखते तो घूँसे और चाँटेजमा देते। दो चार दिन मार पड़ते ही लड़के को भूत ने छोड़ दिया और वह ठीक हो गया। लेकिन न मालूम क्यों वह अधिक दिनों आश्रम में नहीं रह पाया। दो दिन हुए, वह न जाने कहाँ चला गया।

अर्थ से कितने अनर्थ होते हैं। यह समझाने के लिए ठाकुर ने कहा-रुपये की बदौलत अपमृत्यु हुई और परलोक में प्रेतयोनि मिली। और दूसरा व्यक्ति रुपये के लोभ से नर हत्या करके, परलोक में दुर्गति भोग रहा है। उसने वंशवालों तक को संकट में डाल रखा है। रुपया बड़ा कालकूट है, उसे कभी जमा करके न रखो, रुपये कमा करके आवश्यकतानुसार खर्च कर डालो। जो कुछ बच रहे उसे भगवान् को थाती समझकर दीन दुःखी को निशंक होकर दे दो। यदि कोई विपत्तिग्रस्त कुछ माँगे तो तुरन्त दे दो, किसी प्रकार की दुविधा न रखो। जिनको धर्म प्राप्त करना हो। उनको ऐसा ही बर्ताव करना चाहिए, किसी प्रकार दिन कट

गए तो ही तो काम बन गया।

प्रेतात्मा की मुक्ति का उपाय।

मैंने पूछा-'अपघात मृत्यु आदि से जिनकी परलोक में असद्गति होती है, उनके वंशवालों के कौन से कार्य से प्रेतात्मा की सद्गति हो सकती है?'

ठाकुर ने कहा-**शास्त्र का वचन है कि गयाजी में रीति के अनुसार श्राद्ध करने से ऐसी आत्माओं का उद्धार हो जाता है।**

मैंने फिर पूछा-'गयाजी में किया गया पिण्डदान क्या सचमुच प्रेत को मिल जाता है?'

ठाकुर ने कहा-**'हाँ, रीति के अनुसार किया गया पिण्डदान परलोकगत आत्मा को मिल जाता है। मैं जिस समय गया में ब्राह्मधर्म का प्रचार करने गया था, उस समय आकाशगंगा पहाड़ पर अक्सर जाकर रहता था। उस समय एक बार एक अद्भुत घटना हुई थी। उन्हीं दिनों मेरा एक ब्राह्मसमाजी मित्र डॉक्टर जो विलायत होकर आया था, गयाजी आया हुआ था। उसके परलोकगत पिता ने उससे एक दिन स्वप्न में कहा-बेटा, गया आ गये हो तो मुझे एक पिण्ड दे दो, मैं बड़ा कष्ट पा रहा हूँ, ब्राह्मसमाजी होने के कारण उस डॉक्टर को इन बातों पर विश्वास नहीं था, इससे उसने स्वप्न की बात पर विश्वास नहीं किया। अगले दिन उसने रात को फिर स्वप्न देखा, पिता बड़ी आतुरता से कह रहे है-'बेटा, तुम्हारा कल्याण होगा, मुझे एक पिण्ड देते जाओ।' किन्तु दो बार स्वप्न देखने पर भी उसने कुछ भी परवाह न की। एक दिन आकर मुझे यह वृत्तान्त**

सुनाया। मैंने उससे कहा-'जब आपको बार-बार यही स्वप्न दिखाई देता है, तब पिण्डदान कर देना ही अच्छा है।' उसने चिढ़कर मुझसे कहा, आप ब्राह्मधर्म के प्रचारक होकर ऐसे कुसंस्कारों पर विश्वास करते हैं? मैंने उसे समझाया कि, 'आप अपने विश्वास के अनुसार पिण्डदान न करे, आप अपने पिता के विश्वास के अनुसार करे। इसमें रुकावट ही कौन सी है? वह इस पर भी राजी न हुआ। इसके बाद वह एक दिन लेटा हुआ था, जरा सी तन्द्रा आ गई। देखा कि पिता हाथ जोड़ कर कह रहा है, 'बेटा, मुझे एक पिण्ड नहीं दिया?' तब मित्र ने आकर मुझसे कहा, 'महाशय, आज फिर स्वप्न में पिता को देखा है। वे हाथ जोड़े हुए दीनतापूर्वक कह रहे थे-'बेटा मुझे एक पिण्ड नहीं दिया? मैं बहुत कष्ट पा रहा हूँ।' सुनकर मुझे रोना आया। तब मैंने कहा, 'आप स्वयं पिण्ड नहीं देना चाहते तो प्रतिनिधि के द्वारा दिला दीजिए।' वह चुप हो गया। मैंने दो रुपये देकर एक पण्डे को उसका प्रतिनिधि बनाया और उसी के हाथ से पिण्ड दिलाने का प्रबन्ध कर दिया। इस पिण्डदान के दिन मित्र को साथ ले मैं घूमता-फिरता विष्णुपदमंदिर में जा पहुँचा। प्रतिनिधि पण्डे ने जिस समय पिण्डदान किया उस समय मित्रों की आँखों में आँसू बहने लगे। वह रोते-रोते बेचैन हो गया। बाद में पूछने पर उसने बतलाया, 'महाशय, जब पिण्ड दिया गया तब मैंने साफ-साफ देखा कि मेरे पिता ने बड़े आग्रह के साथ दोनों हाथ फैलाकर पिण्ड को ले लिया और हाथ उठाकर मुझे आशीर्वाद देते हुए कहा, बेटा! मेरा यथार्थ उपकार कर दिया, तुम सुखी रहो, भगवान् तुम्हारा भला करे।' यदि मुझे पहले से मालूम होता

कि पिता इस तरह आकर पिण्ड को ग्रहण करेंगे तो मैं स्वयं बहुत अच्छी तरह पिण्ड देता। क्या ये बातें युक्ति और तर्क से समझाई जा सकती हैं?'

धर्म के रूप में अधर्म।

मैंने ठाकुर से पूछा-'सभी धर्मशास्त्रों ने दया और सरलता आदि को धर्म बतलाया है; किन्तु अनेक स्थलों पर देखा जाता है कि दया करके लोगों की हानि की जाती है, फिर सरल होकर और विश्वास करके भी पछताना पड़ता है। अतएव कैसे समझे कि कौन सा यथार्थ धर्म है और कौन सा अधर्म?'

ठाकुर ने कहा-**अधर्म यदि अधर्म के रूप में मनुष्य के पास उपस्थित होता है तो उसको मनुष्य सहज में पहचान लेते हैं और उसके आक्रमण से भी बचने का कुछ न कुछ उपाय हैं, किन्तु अधर्म धर्म बनकर आ जाता है, तब उसको पहचान लेना बहुत ही कठिन हैं। ऐसे अवसरों पर सिद्ध पुरुषों को भी धोखा हो जाता है, स्वयं भक्तराज महावीर को भी हो गया था, फिर औरों की तो बात ही क्या?**

अब ठाकुर भक्तराज महावीर की कथा कहने लगे-**अपने इष्टदेव राम-लक्ष्मण की पापरूपी महीरावण से रक्षा करने के लिए महावीर ने अपनी पूँछ की कुण्डली द्वारा गढ़ बनाया। उसके भीतर राम-लक्ष्मण को बिठाकुर स्वयं फाटक पर सावधान होकर पहरा देने लगे जिससे मायावी पापी महीरावण किसी छल से भीतर घुसकर राम लक्ष्मण को न ले भागे। महीरावण ने कभी कौशल्या, कभी दशरथ, कभी जनक और कभी भरत का**

आकार धारण करके भीतर प्रवेश करना चाहा कि भक्तराज महावीर ने सभी से हाथ जोड़कर कहा, 'जरा ठहर जाइए, अभी विभीषण आयेंगे उनके कहने पर दरवाजे से हट जाऊँगा।' 'महीरावण जब किसी प्रकार हनुमान को चकमा न दे सका तब विभीषण बनकर आ गया और कहने लगा, 'महावीर, झटपट दरवाजे से हट जाओ, मैं एक बार राम-लक्ष्मण को देख आऊँ।' हनुमान को एक बार संशय तो हुआ, किन्तु उन्हें उस पर ध्यान देने अवसर न मिला। विभीषण बने हुए महीरावण ने तुरन्त ही कहा, 'महामायावी महीरावण सदा चक्कर लगा रहा है, क्या जाने कब किस बहाने भीतर घुस जाय। तुम चौकन्ने रहना, मैं एक बार राम-लक्ष्मण के सिर में रक्षा बाँध आऊँ।' तब हनुमान ने दरवाजा छोड़ दिया। महीरावण सहज ही भीतर जा पहुँचा और सोते हुए राम लक्ष्मण को लेकर पाताल में चला गया।

इस घटना का उल्लेख करके ठाकुर कहने लगे-**अधर्म किसी भी रूप में भक्त के समीप क्यों न आये, धर्म की ओर स्थिर दृष्टि रखने से भक्त को वह किसी तरह विचलित नहीं कर सकता। किन्तु धर्म के रूप में अधर्म आ जाता है तो यह महान् सिद्ध पुरुष को भी मुग्ध कर देता है। गयाजी में आकाशगंगा के बाबाजी की भी दया करने में बड़ी दुर्दशा हुई थी।**

रघुबर बाबाजी के ऐश्वर्य का वृत्तान्त।

आकाशगंगावाले बाबाजी का हाल पूछने पर ठाकुर कहने लगे-**गया के बाबाजी की अद्भुत शक्ति मैं अपनी आँखों से देख चुका हूँ। रात को बड़े-बड़े बाघ आते और बाबाजी के चरणों पर माथा**

झुकाकर पड़े रहते थे। बाबाजी आटे का टिक्कड़ बनाकर रखते थे। रात को बाघ आता तो उसे वही टिक्कड़ खिलाते थे। गेहुँअन साँप बाबाजी के चारों ओर फिरता रहता था और बाबाजी निश्चल बैठे हुए नाम का जप किया करते थे। कभी-कभी आकाश की ओर देखकर पक्षियों से कहते, 'अरे तुम भी रामजी के जीव हो और मैं भी उन्हीं का दास हूँ, यहाँ आकर मेरा कान तो साफ कर दो।' बाबाजी के यह कहते ही पक्षी आकर उनके कन्धों पर बैठ जाते और चोंच से उनके कान को साफ कर देते। कभी-कभी बाबाजी के आश्रम में दो-दो, तीन-तीन सौ आदमी आ जाते थे और फिर भी बाबाजी आसन से बिना उठे ही सबको पूरी मिठाई आदि दिया करते थे। पहाड़ पर पानी की कमी होने से कई बार बड़ी दिक्कत होती थी। बाबाजी महावीर के यहाँ तीन दिन धरना दिये पड़े रहे, तब महावीरजी ने कृपा कर दी,पहाड़ के पश्चिम ओर एक बड़ी सी चट्टान दिखलाकर उन्होंने कहा-'एक लाठी से इस चट्टान पर मामूली ठोकर लगाओ, नीचे से झरना, फूटकर निकल आवेगा।' बाबाजी ने शीघ्र ही वहाँ जाकर एक लाठी से ज्योंही उस पर ठोकर मारी त्योंही लाख मन से भी भारी चट्टान खट से टूट गई। और वहाँ से कल-कल शब्द करता हुआ झरना बहने लगा। बाबाजी ने उस झरने का नाम यमुना रखा था। वह झरना अब तक वहाँ उसी दशा में हैं। वहाँ कभी पानी की कमी नहीं होती।

दया करने से भी पतन।

ठाकुर की बात पूरी होते न होते मैंने पूछा-सुना है कि बाबाजी

बड़े भारी भक्त थे, सभी पर उनकी बड़ी भारी दया रहती थी।

ठाकुर ने कहा-**उनमें असाधारण दया थी, किन्तु यह दया ही उनके पतन का कारण बनी।**

मैंने पूछा-तो दया करने से भी पतन होता है?

ठाकुर ने कहा-**क्यों नहीं?**

अब ठाकुर आकाशगंगा वाले रघुबर बाबाजी के संबंध में इस प्रकार कहने लगे-**बाबाजी के एक गुरुभाई थे। वे फल्गु के उस पार रामगया पहाड़ के नीचे एक गाँव में रहते थे। उनकी स्त्री और दो नाबालिग लड़के थे। गुरुभाई के बीमार पड़ने पर बाबाजी प्रतिदिन जाकर उनकी सेवा करते थे। मरते समय उन्होंने दोनों नाबालिग लड़कों और स्त्री को बाबाजी के सुपुर्द कर दिया। बाबाजी प्रतिदिन दोनों वक्त रसोई बनाते और दो कोस चलकर उन्हें भोजन दे आया करते। कुछ दिन तक इस तरह सेवा करते करते वृद्ध बाबाजी हैरान हो गये। उन्होंने सोचा कि असहाय विधवा और उसके दोनों नाबालिग बच्चों को पास ही क्यों न रख लें। इससे मुझे भजन करने के लिए काफी समय भी मिल जायगा और आने-जाने की मेहनत से भी बचूँगा, स्त्री की भी निगरानी होती रहेगी और बच्चे भी सयाने हो जायेंगे। यह निश्चय करके बाबाजी ने उस स्त्री को और उसके बच्चों को आश्रम में लाकर रख लिया। पहाड़ पर आते ही एक बच्चे की मृत्यु हो गई। दूसरे बच्चे पर बाबाजी की ममता धीरे-धीरे बढ़ने लगी। वे उस बच्चे के भविष्य की चिन्ता करने लगे। बाबाजी के पास अक्सर बड़े-बड़े आदमी आया करते थे, सैकड़ों रुपयों की भेंट चढ़ती थी। उसमें से बाबाजी अपने पास एक कौडी भी न**

रखकर सब दीन दुखियों को दान कर दिया करते और भण्डारा भी कर देते थे। किन्तु जिस दिन से वह स्त्री आकर रहने लगी, दान तथा भण्डारा कम आने लगा। लोग अनुमान करने लगे कि इस स्त्री और बच्चे के ऊपर ममता बढ़ जाने से बाबाजी रुपया जमा करने में लगे हैं। उनका एक प्रिय शिष्य बार-बार उनसे कहने लगा, 'महाराजजी, स्त्री को और लड़के को पहाड़ पर मत रखिए। आप संकट में पड़ेंगे। इनको कहीं बस्ती में रख दीजिए। बाबाजी ने पहले उसको समझाकर कहा, मृत्युशय्या पर पड़े हुए गुरुभाई ने हमसे जो प्रार्थना की थी उसको पूर्ण करने का वचन हम दे चुके हैं। अतएव इनको जहाँ तक सुरक्षित रखते बनेगा रखूँगा, ये दोनों हमारे आश्रित हैं, इनको सदा साथ रखने से यदि हमारे ऊपर संकट आवेगा तो भी हम इनको न छोड़ेंगे। ये बड़ी दुखी हैं। इसी शिष्य ने बाबाजी से एक दिन और कहा, 'महाराज पहाड़ पर स्त्री के रहने से आपकी बदनामी होगी। लोग यह समझने लग जायेंगे कि आप इन लोगों के लिए रुपया-पैसा जमा कर रहे हैं। इस सुनसान पहाड़ पर गुण्डों का उपद्रव होगा।' तब बाबाजी ने कुछ अप्रसन्न होकर कहा कौन साला हमारा क्या कर सकता है। आने दो। शिष्य बहुत ही नाराज होकर चला गया। सुना गया कि उसी शिष्य ने दो चार दिन में गुण्डों को लालच देकर बाबाजी का आश्रम लूटने की चालाकी बतला दी। एक दिन गहरी रात के समय सत्रह गुण्डे बाबाजी के आश्रम में मारो-मारो कहते हुए आ धमके। बाबाजी एक लाठी लेकर बाहर आ गये। उन्होंने अकेले ही सत्रह गुण्डों को मार-पीटकर खदेड़ दिया। दूसरी बार गुण्डों ने जब बाबाजी पर

हमला किया तब बाबाजी पहले की तरह लाठी घुमाते हुए लपककर गुण्डों को खदेड़ने लगे।

दैवयोग की बात है, उनकी लाठी एक पत्थर से टकराकर टूट गई। तब तो गुण्डों ने बाबाजी को पकड़ लिया और फिर लाठियाँ मार-मारकर उन्हें बिल्कुल बेहोश कर डाला। बाबाजी के बेहोश हो जाने पर भी गुण्डों ने दम न लिया। उन लोगों ने पत्थर मार-मारकर बाबाजी की खोपड़ी और अंजर-पंजर सब तोड़-ताड़ डाला। हाथ-पैरों की हड्डियाँ टूट गईं। फिर गमछे से पैर बाँधकर चार-पाँच आदमी उन्हें पहाड़ के ऊपर घसीट ले गये। वहाँ उनको एक जगह पटक दिया और उनकी छाती पर बड़ा सा पत्थर रखकर गुण्डे चले गये। जो लोग बड़े तड़के पहाड़ पर जाया करते थे। उन्होंने उस दिन वहाँ पहुँचकर देखा कि आश्रम खाली पड़ा है, कहीं बाबाजी का पता नहीं है। जहाँ-तहाँ रक्त के दाग दिखाई दिये। बाबाजी को ढूँढते सब लोग पहाड़ के ऊपर पहुँचे तो देखा कि बाबाजी एक बड़े से पत्थर के नीचे दबे हुए हैं, वहाँ रक्त ही रक्त भरा हुआ है। तब बहुत आदमियों ने मिलकर पत्थर को हटाया। बाबाजी को उठा लाकर महावीर के आगे ला रखा और पुलिस को इत्तिला दी। खबर पाकर पुलिस सुपरिटेंडेंट जा पहुँचे। बाबाजी की देह भर में घाव थे और श्वास भी बन्द थी। यह देखकर सभी हाय-हाय करने लगे। अकस्मात् बाबाजी का शरीर हिला। उन्होंने महावीर को साष्टांग प्रणाम करके माथा ठोकते हुए कहा, 'महावीरजी की जय, तुम्हारी जय हो, धन्य तुम्हारी दया। हाय, जैसा कुसूर किया वैसा दण्ड दिया। तुम लोग बड़े दयालु हो, बड़े दयालु हो,

सुपरिटेंडेट साहब ने बाबाजी से पूछा, ‘जिस लोगों ने आपके ऊपर अत्याचार किया है। उनमें से क्या किसी को आप पहचानते हैं?’ बाबाजी ने कहा, 'मैं पहचानता तो सभी को हूँ, किन्तु किसी का नाम न बताऊँगा। उनको भगवान् कठोर दण्ड देंगे। आप उनको सजा क्यों दे। पुलिस के साहब ने बहुत चेष्टा की, किन्तु बाबाजी ने किसी का भी नाम नहीं बताया। इस घटना के बाद बाबाजी को बुखार आ गया, उन्होंने पहाड़ छोड़ दिया ये अब रात में पहाड़ पर नहीं रहते, ‘चाँद चउरा’ में रहते हैं।’

यह कहकर ठाकुर कहने लगे-आकाशगंगा के बाबाजी की आजकल की दशा देखने पर उनकी पिछली दशा स्वप्न सी लगती है। जिस प्रकार आकाश से तारा टूट पड़ता है, उसी प्रकार जरा सा अहंकार उत्पन्न होते ही बड़े-बड़े योगियों का भी पतन हो जाता है। अंहकार के हाथ से बचने का उपाय प्राणिमात्र की सेवा है। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्ष और लता की भी सेवा करनी चाहिए। मल के कीड़े से भी घृणा न करे। सभी को अपनी अपेक्षा बड़ा समझे। सबके चरणों में सच्चे दिल से माथा झुकाये रहने में ही रक्षा है। सिर ऊँचा करने में निस्तार नहीं है। परमहंसजी ने जब मेरे ऊपर कृपा की तब मैंने बाबाजी को सब बातें बतलाई। सुनकर बाबाजी में अभिमान आ गया। कहने लगे ‘अरे एक जंगल में दो शेर नहीं रह सकते, यहाँ और कोई नहीं है, तुम्हारा जो कुछ हुआ है, हमीं ने किया है। देखो, यहाँ यमुना भी हमीं ले आये, दूसरा कोई नहीं है।’ मुझे तभी संदेह सा हो गया था कि बाबाजी का ऐसा अभिमान ही

इनको जल्दी चौपट कर डालेगा। ऐसे शक्तिशाली पुरुष को भी पतित होना पड़ा। पश्चात् उनकी क्या-क्या दुर्दशा नहीं हुई? अब ये मुट्ठी भर अन्न के लिए दरवाजों पर घूमते हैं।

मैंने पूछा-तो क्या अव बाबाजी को पुरानी उच्च दशा फिर नहीं प्राप्त हो सकती?

ठाकुर ने कहा-**ये बड़े कठोर साधक हैं। स्थिर होकर बैठ जाये तो थोड़े समय में ही सब सँभाल लेंगे, पुरानी अवस्था को प्राप्त कर लेंगे।**

रघुबर बाबाजी का हाल सुनकर हम लोग दंग हो गये। इतने बड़े महात्मा की भी ऐसी दुर्गति हो जाती है। मैंने पूछा-कामिनी कांचन का आकर्षण कब तक रहता है?

ठाकुर ने कहा-**जब तक मन रहता है, तब तक स्त्री-पुरुष और विषय-विषयी का आकर्षण रहता है। मन का लय हो जाने पर भी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के कार्य होते रहते हैं सही किन्तु दूसरे प्रकार से।**

अभिमान कैसे होता है।

मैंने पूछा-'रघुबर बाबाजी तो बड़े विनीत साधु थे। फिर उन्हें अभिमान कैसे हो गया?

ठाकुर ने कहा-**अभिमान का क्या एक ही प्रकार होता है? उसके अनेक भेद हैं। रुपया हो जाने से अभिमान होता है, बहुत विद्या का भी अभिमान होता है। इस ढंग के अभिमान नाश आसानी से किया जा सकता है। किन्तु एक और तरह का अभिमान होता है, इससे बिल्कुल उलटा। उससे बचना बहुत ही**

कठिन है। धनवान् व्यक्ति निर्धन से घृणा करता है ऐसा सोचकर निर्धन को धनी पर अभिमान होता है। विद्वान व्यक्ति मूर्ख को तुच्छ समझता है ऐसा सोचकर विद्वान पर मूर्ख को अभिमान होता है। संसार में आसक्त पापी भी धर्मात्मा उदासीन संन्यासी पर ऐसा सोचकर अभिमान करता है। इस ढंग का अभिमान सत्ययुग से होता चला आया है। राजर्षि जनक के पास जाकर अनेक ऋषि और तपस्वी भी ऐसा ही अभिमान प्रकट किया करते थे।

मैंने पूछा-'जिन्हें सद्गुरु से साधन प्राप्त हो जाता है, उन पर क्या भगवान् दया न करेंगे?'

ठाकुर ने कहा-**उन्हें उपयुक्त साधन प्राप्त हो गया है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। किन्तु वे जब तक अपने को दीन-हीन, कंगाल न मानेंगे, तब तक कुछ होने का नहीं। कंगाल पर दीनानाथ दया किया करते हैं। अभिमानी व्यक्ति दया का पात्र नहीं है।**

एक गुरुभाई ने पूछा-'महापुरुष लोग दया करके पल भर में हमारे सारे कुस्वभाव को दूर करके क्या अच्छा नहीं कर सकते?'

ठाकुर ने उत्तर दिया-**हाँ, कर सकते हैं, किन्तु जो लोग प्रणाली के अनुसार न करके, दूसरे प्रकार से दया करते हैं, उन्हें बदला भोगना पड़ता है, पतित होना पड़ता है। जैसे कि गयाजी के बाबाजी चले थे दूसरे का उपकार करने, किन्तु बुढ़ापे में उनकी स्वयं की दुर्गति हो गई। उनका वह असाधारण प्रभाव सर्वथा नष्ट हो गया है। अब देखो, ये ढाका में इधर-उधर मारे मारे फिर रहे हैं। उन्हें झमेले में पड़ने की क्या आवश्यकता है**

थी? सुख-दुःख का भोग मात्र है। सब कुछ भगवान् ही करते हैं, मुझमें क्षमता ही कितनी सी है? मैं कर ही क्या सकता हूँ? यह नहीं बतलाया जा सकता कि किस झमेले में पड़ने से किसका पतन हो जायेगा। जब तक शरीर न फूट जाए तब तक कुछ विश्वास नहीं। शायद मृत्यु से थोड़ी देर पहले किसी की एक वासना उत्पन्न हो जाये, इसी से अंतिम साँस तक कुछ भी भरोसा नहीं।

औषध में बाबाजी की आपत्ति।

कार्तिक १-१७ तक। आश्विन के समाप्त होते ही मेरी गर्भधारिणी माताजी को देखने के लिए मैं बहुत ही व्याकुल हो रहा हूँ। ठाकुर से अनुमति लेकर मैं घर आ गया। गहना (नाव) में ४-५ घण्टे बिताकर सेराजदीघा जाना पड़ता है। नाव में प्रातःकाल सात बजे से प्रायः बारह बजे तक रहना पड़ता है। कोई आधे रास्ते में पहुँचने पर मेरे माथे में जोरों का दर्द होने लगा। मैं बेचैन हो गया। नाव में कोई पच्चीस व्यक्ति थे। मेरी हालत देखकर सभी खेद प्रकट करने लगे। एक कविराज (वैद्य) ने मुझे एक गोली देकर कहा, 'एक चुल्लू पानी के साथ इसे खा जाओ, दर्द न रहेगा।' उस समय एक वैष्णव बाबाजी नाव के छोर पर बैठकर हरिनाम की झोली लिये हुए जप कर रहे थे। सब लोग उनका उपहास कर रहे थे। मैंने ज्यों ही कविराज से वह गोली खाने के लिये हाथ में ली, त्योंही बाबाजी ने कविराज की ओर कड़ी दृष्टि से देखा। फिर मेरी वेश-भूषा से मुझे अपने ही दल का व्यक्ति समझकर वे अपने स्थान से लपके और कूदकर मेरे पास आकर जोर से कहने लगे, 'अच्छा गोसाईं, आप

दवा क्यों खायेंगे? धौलेश्वरी के पानी में उस गोली को फेंक दीजिए। कृष्ण कहिए, कृष्ण कहिए।' बाबाजी का ढंग देखने से मुझे दवा खाने का साहस नहीं हुआ। किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि बाबाजी का यह कहना था कि मेरा दर्द दूर हो गया। नाव के सभी मुसाफिरों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

हमारे गाँव के संबंध में ठाकुर की अनेक बातें।

घर पर सात-आठ दिन तक रहकर मैं फिर गेण्डारिया आ गया। मैं जब घर से लौटता हूँ, ठाकुर मुझसे वहाँ की खबरें पूछते हैं। इस बार ठाकुर ने कहा-**तुम्हारे गाँव से जैनसार जाने के रास्ते में एक बहुत पुराना बड़ा भारी बरगद और पीपल का संयुक्त पेड़ था। वह आजकल किस हालत में है?**

मैंने कहा-'उस पेड़ के नीचे होकर ही सदा से सबके आने-जाने का रास्ता है, वहाँ पहुँचते ही शरीर मानो शीतल हो जाता है, पेड़ के नीचे जरा बैठे बिना नहीं रहा जाता। पेड़ को बचपन में जैसा बड़ा और फैला हुआ देखा है अब वह वैसा नहीं है। अपने आप एक-एक करके उसकी डालें सूखती जाती है। सुना है कि समीपवर्ती किसी आदमी द्वारा उस पेड़ की दो-एक डाल काटने पर उनके मुँह से रक्त की कै हुई। इसी में वे एकाएक मर गये। मालूम नहीं, उस पेड़ में ऐसा क्या है?'

ठाकुर ने खेद प्रकट करके कहा-**अहा, तुम्हारे अंचल का वह प्राचीन वृक्ष धर्म का एक निशान सा है। उस वृक्ष की क्षीणता के साथ-साथ, ऐसा लगता है, प्राचीन धर्मभाव भी तुम्हारे उस प्रदेश से लुप्त हो जायगा।**

मैं सुनकर चुप रहा।

ठाकुर ने पूछा-**तुम्हारे वहाँ के लोगों का धर्मभाव अब कैसा है?**

मैंने कहा-'कोजागरी पूर्णिमा के दिन हमारे गाँव के घर-घर बड़ा आनन्द मनाया जाता है। इस पूर्णिमा को स्त्रियाँ ढाल जैसा बड़ा लक्ष्मी का सकोरा मोल लाती है और उसकी पूजा करती है। क्या अमीर और क्या गरीब जो एक वक्त आधापेट खाकर जीवन धारण करते हैं, वे भी यह लक्ष्मीपूजा अवश्य करते हैं। प्रत्येक गृहस्थ के घर यथाशक्ति यह लक्ष्मीपूजा का आडम्बर हुआ करता है। मुहल्लेवाले एक-दूसरे के घर जा-जाकर बड़े आनन्द और उत्साह से रात को प्रसाद पाते हैं, प्रसाद खाने-पीने में रात बीत जाती है। दिन भर बहुत सी स्त्रियाँ निर्जला व्रत रखती हैं। इस बार देखा-देखी मैंने भी व्रत किया। अच्छा लगा।

ठाकुर ने कहा-**तो देहात की स्त्रियाँ व्रत आदि नहीं रखती?**

मैंने कहा-'हमारी ओर प्रायः सभी गाँवों में इस कार्तिक में, चार-पाँच वर्ष की छोटी-छोटी लड़कियाँ सवेरे उठकर यमपुकुर का व्रत करती हैं। घर की किसी कोठरी के कोने में या आँगन में, कोई फुट भर जगह में चौकोर गड्ढा खोदकर तालाब बना लिया जाता है, उस गड्ढे के चारों ओर कौवा, चील, बाज, कछुवा, घड़ियाल, यम और यमुना आदि के छोटे-छोटे मिट्टी के खिलौने रखकर पानी को हिलाते हिलाते व्रतमन्त्र पढ़ती रहती हैं और इस गड्ढे में से चूल्लू पानी लेकर लड़कियाँ अपने भावी सास-ससुर को परलोक में पानी मिलने की प्रार्थना करके उन खिलौनों के मुँह में पानी डालती हैं। छोटी-छोटी लड़कियाँ इस प्रकार से एक न एक व्रत वर्ष के

अधिकांश समय में करती रहती है।'

ठाकुर ने कहा-**पूजा, व्रत, उपवास यह सभी जितना किया जायें, उतना ही अच्छा। खेल-खेल में बचपन से ही छोटी लड़कियों को इन व्रत-नियम आदि का अभ्यास कराने की प्रथा इस देश में थी। यह भावी जीवन के लिए जितनी कल्याणप्रद है, इसको अब कोई नहीं समझता। देखते-देखते, लगता है, इन सबका लोप हो जायगा। स्त्रियों से ही देश में धर्म की रक्षा होती है। बचपन से ये सब करते रहने से बड़ा लाभ होता है।**

गुरु का अपमान, फल हाथों हाथ।

ठाकुर ने पूछा-**तुम्हारे उधर गाँवों में साधारण लोग हरिसंकीर्तन और महाप्रभु का महोत्सव आदि पहले प्रायः प्रत्येक गाँव में किया करते थे। क्या अब भी वैसा ही होता है?**

ठाकुर का प्रश्न सुनने से मुझे एक प्रत्यक्ष घटना सुनाने का अवसर मिल गया। मैंने कहा-'हमारे गाँव के समीप शुजानगर में दत्त परिवार के एक धनी वैष्णव ने, कुछ समय हुआ, एक बड़ा महोत्सव का अनुष्ठान किया था। उसमें गाँव के सभी लोग बड़े उत्साह से सम्मिलित हुए थे। एक धान के खेत में कोई ५०-६० बीघे में इस महोत्सव के लिए स्थान बनाया गया। कोई सौ चूल्हों पर बहुत सा भात और (लाफरा) मिली-जुली तरकारियाँ आदि बनाई गईं। खुले मैदान में चटाईयाँ बिछाकर उन पर इन चीजों के ढेर लगा दिये गये। चारों ओर से आदमियों के झुण्ड आ गये। मृदंग, खोल और करताल ले-लेकर वैष्णव लोग भिन्न-भिन्न स्थानों पर जोर-जोर से संकीर्तन करने लगे। धीरे-धीरे और करताल ले-लेकर वैष्णवलोग

आ गये। पूजा, भोग और आरती से जरा पहले यजमान ने अपने गुरु के समीप जाकर कार्य का आरम्भ करने की अनुमति माँगी। गुरुदेव गरीब थे। उन्होंने कुछ अधिक दक्षिणा माँगी। इससे चिढ़कर यजमान ने कहा, 'आपको जो कुछ दे रहा हूँ उसी को लेकर अनुमति दे दीजिए, नहीं तो चले जाइए। आपके अनुमति न देने पर भी मेरा यह कार्य अब असम्पन्न नहीं रहनेवाला।' शिष्य के मुँह से ऐसी अवज्ञासूचक बात सुनकर गुरु को मर्मान्तक क्लेश हुआ। वे आसन से उठकर खड़े हो गये और जाते समय कह गये, 'महाप्रभु जाग्रत देवता है, मैं तुम्हारा गुरु हूँ, जब तुमने इस प्रकार मेरा अपमान किया है, तब वे तुम्हारे इस कार्य को किसी तरह सुसम्पन्न न होने देंगे।' इधर सारी तैयारी हो चुकी थी। महाप्रभु का आसन सजाया जाने लगा। इसी समय अकस्मात् आकाश में काले-काले मेघ घिर आये, देखते-देखते बादल चारों और फैल गये। अँधेरा हो गया। साथ-साथ जोरों की आँधी आ गई और मूसलाधार पानी बरसने लगा। लोग चारों ओर भागने लगे। तरकारियों और भात आदि के जो ढेर लगे हुए थे, वे सारे सामान समेत आधे-घण्टे में ही पानी में नष्ट हो गये। तीस-पैंतीस हजार का खर्च करके जो जबर्दस्त तैयारी की गयी थी वह थोड़ी ही देर में मिट्टी में मिल गई। घर पर रहते समय मैंने इस घटना को देखा है।

ठाकुर ने कहा-**गुरु का अपमान तो बड़ा भारी अपराध है, इसीसे हाथोंहाथ फल मिल गया। अपराध का दण्ड, अपराध की गुरुता के हिसाब से, कहीं तीन दिन में, कहीं तीन महीने में और कहीं तीन वर्ष के भीतर मिल जाता है। कितने ही अपराधों का दण्ड परलोक तक भोगना पड़ता**

अपने पुत्र का जीवन देकर शिष्य के पुत्र को जीवनदान।

गुरु का दिल दुखाने से जिस प्रकार अकस्मात् विपत्ति उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार उनको प्रसन्न कर लेने से, उनकी कृपा से, विचित्र रीति से संकट टल जाता है। इस संबंध में अपने परिवार की एक सच्ची घटना मैंने इस बार घर पर मेरी गर्भधारिणी माताजी से सुनी थी। वह मैंने ठाकुर को भी सुनाई।

हमारे बड़े मामा के कई बच्चे, एक के बाद एक, पैदा होते ही मरने लगे। लाल, नीला, पीला, इत्यादि अनेक प्रकार के रंगों का परिवर्तन होता, अन्त में बच्चा अचेत हो जाता और थोड़ी देर में मर जाता। बार-बार ऐसा ही होने से हमारे मामा बहुत ही उद्विग्न और हताश हो गये। एक बार ऐसा हुआ कि हमारी मामी के प्रसव के समय पर ही दैवयोग से उनके गुरुजी उस गाँव के एक अन्य शिष्य के घर पर आ गये। वे एक तांत्रिक, सिद्ध पुरुष थे। वे नरकपाल और सुरा आदि लेकर बड़ा कठोर साधन करते थे। पुत्र जन्म लेते ही (जैसा कि पहले हुआ करता था) चीं चीं करके रोने लगा। उसकी देह नीली पड़ गई। हमारे मामा ने देखा कि बच्चा इस बार भी मर जायगा। वे बहुत ही मर्माहत और हताश हो गये। फिर एकाएक गुरुदेव की याद आ जाने से वे उस अँधेरी रात में दौड़े-दौड़े उनके पास पहुँचे। रोते-रोते उन्होंने गुरु चरण पकडकर बार-बार व्याकुलता प्रार्थना की कि ऐसी कृपा कीजिए जिससे अब की मेरी वंशरक्षा हो जाये। गुरुजी ने जरा चुप रहकर कहा-'एक बिल्वपत्र ले आओ।' बिल्वपत्र ला देने पर उन्होंने उसके ऊपर, सिन्दूर से एक

यन्त्र और एक मूर्ति बनाई, फिर उस बिल्वपत्र को स्पर्श करके वे थोड़ी देर तक मंत्र का करते रहे। इसके पश्चात् हमारे मामा से कहा, 'यदि तुम एक दौड़ में यह पत्र ले जाकर अपने नवजात की छाती पर रख सको तो इस बच्चे की लंबी आयु होगी, किन्तु यदि इस बिल्वपत्र को लिये हुए रास्ते से कहीं ठहर जाओगे तो तुम बड़े संकट में पड़ोगे। एक बात और है, इस बच्चे का नाम हरचरण रखना।' हमारे मामा उस बिल्वपत्र को लिये हुए एक दौड़ में घर पहुँचे और उन्होंने उसको बच्चे की छाती पर रख दिया। अचम्भे की बात है कि उसी क्षण बच्चे का सारे उपसर्ग बिल्कुल शान्त हो गये और वह धीरे-धीरे स्वस्थ हो गया। दूसरे दिन हमारे मामा ने गुरुजी के पास जाकर उन्हें बच्चे के स्वस्थ हो जाने की खबर दी और कौतुहलवश पूछा कि आपने बच्चे का नाम 'हरचरण' रखने की आज्ञा क्यों दी है। इस पर उन्होंने बताया कि हमारे बेटे का यही नाम है और उसी के आयुष्य को लेकर हमने तुम्हारे बच्चे में संचारित कर दिया है। तीन दिन के बाद खबर मिली कि सचमुच गुरुजी का पुत्र उसी समय हैजे से मर गया।

घटना को सुनकर ठाकुर ने कहा-**तान्त्रिकों में अच्छे महापुरुष इस समय भी मौजूद हैं। तुमने अपनी माताजी से और क्या सुना है?**

अद्भुत जन्म विवरण।

मैंने कहा-'महाप्रभु की कृपा से मेरे बडे दादा (हरकान्त बाबू) का जिस प्रकार से जन्म हुआ था, वह घटना भी उन्होंने कहा था।'

ठाकुर ने कहा-**सो किस तरह? बताओ न।**

मैंने कहा-‘गर्भ का ग्यारहवाँ महीना बीत जाने पर भी प्रसव न होते देख, घरवाले और रिश्तेदार सभी अत्यन्त चिन्तित होकर डर गये। ऐसे ही समय एक दिन प्रसव-वेदना हुई। वेदना के मारे मेरी माताजी तीन दिन तक अचेत बनी रहीं। तीसरे दिन रात को उन्होंने स्वप्न देखा कि किसी ज्योतिर्मय महापुरुष ने उनके आकर कहा-‘तुम महाप्रभु के महोत्सव की मनौती मानो तो तुरन्त ही सन्तान प्रसव हो जाय। नहीं तो शिशु का जन्म कदापि न होगा।’ इसी समय घर के दूसरे कमरे में बुआजी भी ऐसा ही सपना देखकर ‘महाप्रभु की जय महाप्रभु की जय’ कहते-कहते बाहर निकल आई। तब सपने के वृत्तान्त पर बातचीत होने लगी। इसी समय गाँव के दूसरे छोर से एक निष्ठावान ब्राह्मण (रामचन्द्र भट्टाचार्य) हाँफते-हाँफते घबराये हुए आकर कहने लगे-‘अभी अभी स्वप्न देखा है, महाप्रभु के महोत्सव की मनौती के बिना सन्तान जन्म न लेगी, तुम लोग महाप्रभु के महोत्सव की मनौती मानो।’ तीनों व्यक्तियों ने विभिन्न स्थानों में एक ही सा सपना एक ही समय देखा। इससे सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। अब घरवालों ने तुरंत मनौती मान ली। अचम्भे की बात है कि इसके थोड़ी देर बाद ही दादा का जन्म हो गया। किन्तु दादा को बचपन में अनेक रोग सताने लगे। इससे माताजी बहुत चिन्तित हो जाती थी। उन्हीं दिनों माताजी ने एक बार फिर स्वप्न देखा, किसी ने आकर उनसे कहा-‘मनौती के अनुसार महोत्सव नहीं किया गया। इसीसे बालक को ये बीमारियाँ हो रही हैं।’ हम लोगों के शाक्त होते हुए भी, इस घटना के बाद बड़ी धूमधाम के साथ महाप्रभु का महोत्सव करके दादा का अन्नप्राशन किया गया।

ठाकुर ने कहा-**श्रीवृन्दावन जाते समय हम लोग कुछ दिनों तक फैजाबाद में तुम्हारे दादा के यहाँ ठहरे हैं, उनकी अवस्था देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वे इस युग के मनुष्य नहीं है, वे तो सत्ययुग के हैं, ऐसे मनुष्य प्रायः देखे नहीं जाते।**

इसके पश्चात् ठाकुर ने दादा के जीवन की कई विचित्र अवस्थाओं का उल्लेख किया। ठाकुर जिन दिनों फैजाबाद थे, वहाँ पर जो अद्भुत घटनाएँ हुई थीं, उन सबको सुनाने लगे। वे सब मेरी उस समय की डायरी में स्पष्ट लिखी हुई है, इसलिए यहाँ पर उनको नहीं लिखा।

कोई अहिंसक की हिंसा नहीं करता।

महाभारत का पाठ करके मैंने ठाकुर से पूछा-'हिंसक जन्तुओं से परिपूर्ण जंगल पहाड़ों में निरापद कैसे रह सकते हैं?

ठाकुर ने कहा-**महाभारत में तो बार-बार पढ़ा करते हो! जिनके भीतर हिंसा नहीं है उनकी हिंसा कोई भी नहीं करता, उन लोगों को हिंसक जन्तु भी पौधों और पत्थरों जैसा समझते हैं।**

अब ठाकुर एक सच्ची घटना का उल्लेख करके कहने लगे-**कुछ समय हुआ कि यहाँ के हाथीखेदा के एण्डरसन साहब, हाथी पर सवार होकर जयदेवपुर के जंगल में शिकार के लिए गये थे। वे घने जंगल में पहुँचकर बड़े संकट में फँस गये। बाघ की गंध पाकर हाथी, साहब को हौदे से पटककर, भाग गया। साहब ने बाघ पर निशाना लगाकर दो-तीन बार बन्दूक चलाई, किन्तु निशाना न लगा। बड़ा भारी बाघ साहब की ओर लपका। अब**

साहब बहादुर जी-जान से जंगल में इधर-उधर भागने लगे। बाघ इस तरह धीरे-धीरे साहब के पीछे-पीछे खेल करता हुआ चलने लगा मानो शिकार पंजे में आकर फँस गया है। साहब ने थोड़ी देर तक इधर-उधर दौड़ने के बाद हैरान हो जंगल के झुरमुट में एक नग्न संन्यासी को देखा। बस वह उन्हीं के पास पहुँच गया। संन्यासी ने साहब को धैर्य से बैठने को कहकर पूछा, 'तुम इतने क्यों घबरा गये हो?' साहब ने डरकर कहा, 'हमें बाघ दबोच लेगा।' तब संन्यासी ने हाथ हिलाकर बाघ को और आगे आने से मना किया और कहा, 'बैठ जा बच्चे, अब नजदीक मत आ।' बाघ थोड़ी देर तक बैठा पूँछ हिलाने और गुर्राने लगा। फिर एक ओर चला गया। साहब से संन्यासी ने पूछा 'बाघ के डर से तुम इतने घबरा क्यों गये थे।' साहब ने उत्तर दिया, 'बाघ को मारने के लिये मैंने दो-तीन गोलियाँ चलाई थी, किन्तु निशाना नहीं लगा। तब हमला करने के लिये बाघ पीछा करने लगा। 'संन्यासी ने पूछा, 'बाघ पर तुमने गोली क्यों मारी? क्या तुम उसको खाते हो?' साहब ने कहा, 'नहीं बाघ को हम लोग खाते नहीं है, मन खुशी के लिए उसका शिकार करते हैं। आपके इशारे से बाघ शान्त हो गया, फिर चला गया। जंगल के बाघ को आपने किस उपाय से वश में कर लिया? दया करके मुझे बतला दीजिए।' संन्यासी ने कहा, 'किसी तन्त्र-मन्त्र से नहीं, सिर्फ प्रेम से। पशु, पक्षी, कीट, पतंग, मनुष्य, सभी को एक प्रेम से ही वश में कर लिया जाता है। तुम्हारे भीतर हिंसा का भाव रहने से ही दूसरे भी तुमपर हिंसा करते हैं। हिंसा छोड़ देने पर साँप या बाघ कुछ नहीं करता।' यह सुनकर साहब को बड़ा अचम्भा हुआ। साहब

के मन में न जाने क्या बात आई कि उन्होंने बहुत ही व्याकुल होकर संन्यासी से आश्रय की प्रार्थना की। संन्यासी ने साहब को दीक्षा दी और घर जाकर साधन भजन करने के लिए कहा। साहब ने अपने स्थान पर पहुँचकर बावर्ची को विदा कर दिया। तबसे वे ब्राह्मण के हाथ का बना निरामिष भोजन करते हैं। साधु संन्यासी को खूब श्रद्धा-भक्ति करते हैं। ढाका के बहुत से विद्वान व्यक्ति उनसे मिलने को जाते हैं। उनकी दशा देखने से सभी को आश्चर्य होता है। पता नहीं, आजकल वे कहाँ पर हैं।

ठाकुर ने जिन एंडरसन साहब के बारे में सुनाया है, उनको मैंने कई बार रमना के मैदान में क्रिकेट खेलते देखा है। वे लम्बे और बलवान हैं। सुना है कि अब चटगाँव की ओर उनकी बदली हो गई है। वे बड़े सात्त्विक भाव से रहते और वैष्णव आचार को मानते हैं। ब्राह्मण रसोईया उनके साथ रहता है।

यह हाल सुनाकर ठाकुर फिर कहने लगे-**जहाँ पर हिंसा नहीं हैं, वहाँ पर साँप और बाघ भी हिंसा नहीं करते। खाद्य-संबंधी वध दूसरी बात है। उसको ठीक हिंसा नहीं कहते। कामाख्या में एक दिन अचलानन्द स्वामी एक जलाशय के पास बैठे हुए थे। वहाँ पर ब्राह्मण लोग पूजापाठ कर रहे थे। इसी समय एक बाघ पानी पीने को आ गया। ब्राह्मण लोग उसके डर से पूजा-पाठ छोड़कर भागने लगे। अचलानन्द स्वामी ने शान्त रहने के लिए कहकर समझाया- 'आप लोग ही तो कहा करते हैं कि कामाख्या में हिंसा नहीं है, फिर इतना क्यों डर रहे हैं? आप लोग जरा भी न डरें? निश्चिन्त होकर अपना काम करते रहें।' स्वामीजी की बातें मानकर ब्राह्मण लोग सशंक होकर पूजा पाठ**

करने लगे। बाघ भी पानी पीकर चुपचाप चला गया।

शान्तिपुर जाने के लिए ठाकुर की व्यग्रता।

१८ कार्तिक मंगलवार। कोई एक महीना अनेक स्थानों के गुरुभ्राताओं के सम्मिलन में ठाकुर के साथ गेण्डारिया आश्रम में बड़े आनन्द से बिताया। पता नहीं आज ठाकुर क्यों अकस्मात् शान्तिपुर जाने के लिये व्याकुल हो रहे हैं। आज सवेरे चाय पीने के कुछ बाद ठाकुर ने कहा-**माँ को देखने कल सवेरे ही में शान्तिपुर जाऊँगा।**

हम लोगों ने अनुमान किया कि ठाकुर की माताजी बहुत बीमार हैं, इसी से जान पड़ता है कि ठाकुर उनका अन्त समय समीप आया समझकर उनको देखने के लिए जल्दी कर रहे हैं। साथ में शान्तिपुर कौन जायेगा, यह पूछने पर ठाकुर ने कहा-**जो लोग चलना चाहें, सभी चल सकते हैं।**

ठाकुर के साथ जाने के लिए हम आठ-नौ गुरुभाई तैयार हो गये। श्रीधर वातव्याधि से बिस्तर पर पड़े हैं। उनमें उठने की शक्ति नहीं है। वे यह सोचकर बहुत रोने लगे कि ठाकुर के साथ न जा सकेंगे। श्रीधर हैं ठाकुर के नित्यसंगी, ठाकुर कभी उनको अपने से अलग नहीं करते। इस समय उनको सर्वथा अचल देखकर ठाकुर ने बड़े स्नेह से कहा-**श्रीधर, लो, यह तुम्हारा राहखर्च है, समर्थ होते ही मेरे पास आ सकते हो!** श्रीधर सारी रात रोते-रोते बिताए।

शान्तिपुर की यात्रा।

१९ श्रावण बुधवार। ट्रेन छूटने के बहुत पहले ही, रात के पिछले पहर ठाकुर दोलाईगंज स्टेशन पर पहुँच गये। बहुत से गुरुभाई

इसलिए साथ हो गये कि ठाकुर को नारायणगंज में रेल से उतारकर स्टीमर पर सवार करा देंगे। रानाघाट तक के हम लोगों के लिए तीसरे दरजे के आठ-नौ टिकट लिये गये। नारायणगंज स्टेशन पर पहुँचकर हम लोग ग्वालन्दो स्टीमर पर सवार हुए। गुरुभ्राता लोग ठाकुर के चरणों में प्रणाम करके रोते-रोते लौट आये। स्टीमर पर चढ़कर एक ओर हम लोगों ने ठाकुर के लिए आसन बिछाया और हम कई एक गुरुभाई ठाकुर को घेरकर बैठ गये। बहुत लोग आते और ठाकुर को देख जाते। कोई अपने मामले-मुकदमे की हार-जीत का हाल पूछता और कोई अपनी सांसारिक विविध अशान्तियों एवं उत्पातों से बचने का उपाय पूछता। कोई-कोई बहुत ही व्याकुल होकर अपने उत्कट रोग की दवा बारंबार पूछता था।

ठाकुर धैर्य के साथ सभी से कहने लगे-**मैं यह सब कुछ नहीं जानता हूँ। मैं तो भगवान् का नाम किया करता हूँ।**

किन्तु ठाकुर का यह उत्तर सुनकर भी कोई-कोई अपनी जिद पर डटे ही रहे। धीरे-धीरे ऐसे लोगों की संख्या बढ़ते देखकर हम लोग बहुत ही चिढ़े। जरा अवसर पाकर मैंने ठाकुर से कहा-ये लोग इसी तरह दिनभर हैरान करते रहेंगे। आप कहें तो मैं एक ही बात में सहज ही इन लोगों को रोक सकता हूँ। तो क्या ऐसा करूँ?

ठाकुर पूछा-**तुम क्या कहकर इन लोगों को रोकोगे?**

मैंने कहा-'ये हजार रुपये से कम में किसी तरह औषधि नहीं देते, मुकदमें की हार-जीत का हाल भी नहीं बतलाते। यह कहने पर रुपयों की बात सुनते ही सबकी श्रद्धा कम हो जायेगी। इधर झाँकेगा भी नहीं।'

ठाकुर ने कहा-**यदि कोई हजार रुपया देने को तैयार हो जाय**

तो क्या करोगे? ऐसा आदमी भी तो हो सकता है।

मैं इसका कुछ उत्तर न दे सका।

तब ठाकुर ने कहा-**यह बात कहना ठीक नहीं, सच बात ही कहनी होगी। कोई विश्वास करे चाहे न करे, इसमें हानि ही कौन सी है? मनुष्य आशा करके आता है, जरा तंग भी न करेगा? इससे अशान्त होना नहीं चाहिए।**

मैं लज्जित होकर चुप हो रहा। हम लोग शाम के लगभग ग्वालन्दो उतरकर ट्रेन पर सवार हुए और रात के पिछले पहर रानाघाट पहुँचे। वहाँ सवेरे तक घोड़ा गाड़ी की प्रतीक्षा में बैठे रहे।

सुबह घोड़ा गाड़ी में बैठकर चले और लगभग साढ़े आठ बजे शान्तिपुर पहुँच गये। ठाकुर के घर के दरवाजे पर पहुँचकर देखा कि ठाकुर की माताजी वहाँ जैसे उन्हीं की प्रतीक्षा कर रही हैं। ठाकुर ने माताजी के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। ठाकुर की आँखों में आँसू भर आये। माताजी ने कहा, 'तू अभी आ गया?'

ठाकुर ने कहा-**माँ, तुमने जो मुझे, 'विजय' 'विजय' कहकर पुकारा था उसको मैने सुन लिया था।**

ठाकुर की माता के शरीर पर मार-पीट के दाग देखकर मैं अवाक् रह गया। किन्तु उन्होंने ठाकुर से किसी की जरा भी शिकायत नहीं की। धीरे-धीरे ठाकुर की माताजी से बातें करने पर मालूम हुआ कि उन्माद की दशा में उनकी देखरेख जिन लोगों के जिम्में थी उन्हीं में से किसी ने, उनको न संभाल न सकने पर, ऐसा भीषण प्रहार किया था कि ठाकुर की दादी माँ दो तीन बार 'विजय' 'विजय' आवाज देकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। उनका चिल्लाना सुनकर ही ठाकुर ने शान्तिपुर जाने की जल्दी की थी। साफ-साफ

इस बात को जानने से हम अवाक् हो गये। हमको बड़ा आश्चर्य हुआ। ठाकुर घर पहुँचकर नीचे के कमरे में ही अपना आसन लगाकर बैठ गये। हम लोगों ने ऊपर के कमरे को साफ करके ठाकुर के साथ रहने का प्रबन्ध कर लिया। अब तक मैं अपने हाथ से रसोई बनाकर भोजन किया करता था, आज सभी के साथ प्रसाद पाने की आज्ञा मुझे ठाकुर ने दी। ऊपर एक ही कमरा है, उसी में हम लोग ठाकुर के साथ ही रहने लगे।

पाण्डव-विजय-लीला का अभिनय-सत्यनिष्ठा का उपदेश।

२१ कार्तिक शुक्रवार। भोजन कर चुकने पर हम लोग ठाकुर के साथ बाहर निकले। गृहदेवता श्यामसुन्दर को प्रणाम करके ठाकुर हम लोगों को शान्तिपुर के कई देवालयों में ले गये। मैं सब जगह साष्टांग प्रणाम करने लगा। सन्ध्या हो जाने के थोड़ी देर बाद हम लोग यात्रा (नाटक) सुनने के लिए एक गोस्वामी के घर गये। गृहस्वामी ने ठाकुर से यात्रास्थल पर मंच के पास बैठने का अनुरोध किया, वे केवल मुझे साथ लेकर सभा में जा बैठे। अन्यान्य लोगों से संकेत करके कहा कि 'दरवाजे के सामने खड़े होकर' यात्रा गान सुनो। तत्कालीन ब्राह्मण लोगों की सभा में उनके साथ, एक ही आसन पर अन्यान्य जातियों के लोग नहीं बैठते, इसी से ठाकुर सभी साथियों को सभास्थान में साथ नहीं ले गये। यह बात उन्होंने बाद में बतलाई। यात्रा-गान सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। श्रीकृष्ण से युद्ध में परास्त होकर, प्राणों के भय से, दण्डी राजा पाण्डवों की शरण में आया। भीमसेन ने दण्डी को अभय देकर आश्रय दिया। इसका पता

पाकर श्रीकृष्ण ने पाण्डवों से दण्डी राजा को माँगा। पाण्डवों ने कहा-'इन्होंने प्राण बचाने के लिए हमारी शरण ली है। हम लोगों ने भी अभय देकर इन्हें आश्रय दिया है। इससे हम लोग किसी तरह उनका परित्याग नहीं कर सकते।' श्रीकृष्ण ने कहा, 'तब तो तुम लोगों के साथ हमारा विरोध होता दिखता है।' भीमसेन ने कहा, 'हे कृष्ण, हम लोगों के एकमात्र बल तुम्हीं हो। तुम्हारी आत्मीयता के गर्व से ही हम लोग इन्द्र आदि को भी कुछ नहीं समझते। किन्तु शरणागत की रक्षा करने के लिए यदि हम लोगों को प्राण देने पड़े, और यदि तुमसे भी लोहा लेना पड़े तो हमको यह स्वीकार है। धर्म को किसी तरह न छोड़ेंगे।' तब श्रीकृष्ण ब्रह्मा, विष्णु, शिव, कार्तिक और गणेश आदि देवताओं को साथ लेकर पाण्डवों से युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हो गये। पाण्डव भी भीष्म, द्रोण आदि कौरवों से सम्मिलित हो रणभूमि में आ गये। देवताओं से महायुद्ध होने लगा। अन्त में पाण्डवों की विजय और श्रीकृष्ण की पराजय हुई। इस 'यात्रा' को सुनकर लौटने पर मैंने ठाकुर से पूछा-'श्रीकृष्ण यदि साक्षात् भगवान् हैं, तब वे समस्त देवताओं के साथ रहकर भी साधारण पाण्डवों से परास्त क्यों हुए?'

ठाकुर ने कहा-**उन्होंने यह दिखलाया है कि अपने कर्तव्य पर यदि दृढ़ता हो, सत्य पर और धर्म पर यदि पूरी निष्ठा तथा चेष्टा हो तो ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यक्ष, राक्षस और पिशाच आदि के साथ सम्मिलित होकर भी स्वयं भगवान् उसके विरुद्ध हो जायँ तो भी उसका कुछ नहीं कर सकते। सत्य की सर्वत्र ही जय समझो। जो सत्य है, जो धर्म है, उसी पर स्थिर रहो। भगवान भी यदि अनेक प्रकार का ऐश्वर्य दिखलाकर विचलित करने की**

चेष्टा करें, तो भी डिगना नहीं चाहिए। वे यदि सारी शक्ति लगाकर परास्त करने की चेष्टा करेंगे तो भी न कर सकेंगे। देवी, देवता, यक्ष, राक्षस, समस्त ब्रह्माण्ड को साथ लिये रहने पर भी परास्त हो जायेंगे। उनकी कृपा से सर्वत्र सत्य की जय होती है। यह निश्चित जानो।

मैंने पूछा-'गुरु जिसके लिये जिन नियमों का निर्देश कर देते है? और उनका उपदेश ही तो उसके लिए धर्म है?'

ठाकुर ने कहा-**हाँ, उसके अतिरिक्त और क्या है?**

मैंने कहा-'तो क्या सभी नियमों की रक्षा सर्वत्र पूर्णतः की जानी चाहिए?'

ठाकुर ने कहा-**अवश्य। नहीं तो काम कैसे चलेगा? जिसका जो नियम हो उसका, सर्वत्र ठीक-ठीक सोलह आने करना चाहिए। थोड़ा सा भी अन्तर पड़ने से काम नहीं चलने का। नियम जरा भी छूट जायगा तो अन्यान्य पाँच और भी नियम छूट जायेंगे। सैकड़ों हजारों बाधाएँ और विघ्न होने पर भी अपने नियम पर दृढ़ बने रहना चाहिए। इस विषय में वज्र की भाँति कठोर रहना। 'वज्रादपि कठोराणि मृदुणि कुसुमादपि। लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति।' वज्र की तरह कठोर और कुसुम की भाँति कोमल होने के लिए ऋषियों ने जो कहा है वह ऐसे नियमरक्षा के लिए ही कहा है। और इस नियम के पालन के विषय में फिर पुष्प की तरह कोमल होना होगा। उसे धैर्य के साथ, धीर और शान्त भाव से अपने नियम की रक्षा करते रहना।**

चित्त का विकार और शासन।

२२ कार्तिक शनिवार। ठाकुर शान्तिपुर पहुँच गये। उनके आत्मीय और स्वजन, बहुत सी स्त्रियाँ और पुरुष आते हैं और ठाकुर के दर्शन करके चले जाते हैं। एक अल्पवयस्का विधवा ब्राह्मणी प्रायः सदा हमारे यहाँ आया करती है। वह कल से मुझे अपने घर ले जाने का आग्रह विशेष रूप से कर रही है। उसके बार-बार अनुरोध करने पर मैंने कहा-'ठाकुर की आज्ञा हुए बिना मैं कहीं आ जा नहीं सकता। आप ठाकुर से कहें।' विधवा ने जाकर ठाकुर से कहा, 'आपके ब्रह्मचारी शिष्य को मैं एक बार अपने घर ले जाना चाहती हूँ।'

ठाकुर ने उत्तर दिया-**ब्रह्मचारी चाहे तो जाए।**

ठाकुर को छोड़कर पाँच मिनिट के लिए भी अन्यत्र जाने की मेरी इच्छा नहीं होती। किन्तु विधवा का विशेष आग्रह और अनुरोध देखकर मेरे लिये बड़ी विषम समस्या उपस्थित हुई। ठाकुर ने मुझे अनुमति दे दी है, अतएव किसी प्रकार मन को समझा-बुझाकर मैं उसके पीछे-पीछे रवाना हुआ। उसके घर पहुँचकर देखा कि उसके यहाँ और कोई भी व्यक्ति नहीं है, केवल एक छोटा सा लड़का है। विधवा ने मेरे बैठने आसन बिछा दिया। फिर वह मुझे जल-पान कराने का प्रबन्ध करने लगी, किन्तु मेरे मना करने पर वह मान गई। अब वह मेरे सामने बैठकर बातचीत के द्वारा परिचय लेने लगी। सुन्दरी युवती का रूप-लावण्य और हावभाव देखकर मैं न जाने कैसा हो गया। मेरी देह काँपने लगी। अब मैं यह सोचने लगा कि बैठा रहूँ या चला जाऊँ। एकाएक डर के मारे मैं स्थिर न रह सका।

मैंने विधवा से कहा-'यहाँ आये मुझे देर हो गई, अब मुझे शीघ्र ठाकुर के पास जाने दीजिए। मेरी तबीयत ठीक नहीं जान पड़ती। फिर किसी दिन आऊँगा।' यह सुनकर वह स्त्री अत्यन्त दुःखी हुई। मुझ से कई बार कहा कि ऐसी जल्दी क्या जरा और बैठिए, किन्तु फिर उसने जिद न करके मुझे रास्ता दिखला दिया। मैं घर जाकर ठाकुर के समीप अपने आसन पर बैठ गया।

ठाकुर ने मुझको देखते ही कहा-**क्यों ब्रह्मचारी, घूम आये? अच्छा लगा?**

मैंने कहा-'बड़ा अच्छा लगा। मैं क्या ऐसा जानता था?'

ठाकुर ने कहा-**तो क्या जानते नहीं हो? बिना जाने-समझे ही चले गये थे?**

मैंने बहुत ही लज्जित होकर कहा-'क्या करूँ, उसके अनुरोध को नहीं टाल सका। मेरी तो विशेष इच्छा थी ही नहीं।'

ठाकुर ने जरा तेज के साथ कहा-**तो फिर गये किसलिये थे? धर्म को प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले को लोगों का अनुरोध उपरोध टालना पड़ता है। क्या करने से किसी का दिल दुखेगा और क्या करने से किसी का मन रखा जाएगा-इस ओर दृष्टि रखने से कभी धर्म-कर्म नहीं होता। ठीक-ठीक प्राणों के सरल आकर्षण की ओर दृष्टि जमाये रखकर कार्य करना पड़ता है। किसी का अनुरोध मानकर कहीं पर जाना अथवा कोई काम करना ठीक नहीं है। ऐसा करने से किसी का उपकार तो होता नहीं है, बल्कि अनेक अवसरों पर हानि ही हो जाती है। सहज रीति से प्राणों के आकर्षण के अनुसार कार्य करते जाने से जरा भी हानि नहीं होती। हाँ, ऐसा भी हो सकता है कि किसी लम्पट**

पर तो आकर्षण हो गया और एक साधु पर नहीं हुआ। ऐसे स्थलों को समझ पाना बड़ा ही कठिन है। फिर भी सरल भाव से प्राणों के सहज आकर्षण के अनुसार किसी कार्य को करने पर परिणाम अमंगलकारी नहीं होता। कोई कितना ही उन्नत क्यों न हो, स्त्रियों से तो सर्वदा दूर ही रहना चाहिए। और तो क्या, ऊर्ध्वरेता हो जाने पर भी, स्त्रियों से बड़ा अनिष्ट हो जाया करता है।

सत्संग के विषय में उपदेश।

ठाकुर की ये बातें सुनने से मैं क्षुब्ध हो गया। ठाकुर पर ही जरा दबाव डालकर मैंने कहा-'सदा सद्गुरु का संग लाभ करने पर भी मेरी ये कुप्रवृत्तियाँ किसी तरह नहीं छूटी।'

ठाकुर ने कहा-**सद्गुरू का संग! वह तो बहुत दूर की बात है, तुम तो भली भाँति सत्संग भी नहीं करते। सत्संग करने से सारी कुप्रवृत्तियों नष्ट हो जाती है।**

मैंने पूछा-'तो फिर सत्संग किस तरह किया जाता है? सत्संग किसे कहते हैं?'

ठाकुर ने कहा-**'साधु के साथ दस-पाँच धर्म संबंधी बातें करना ही सत्संग नहीं है। साधु के पास रहकर उसकी सारी क्रियाकलापों और आचार-व्यवहार आदि बड़े धैर्य के साथ, धीर-भाव से देखना होता है। वे किस समय क्या करते हैं, किसके साथ किस दशा में वह कैसा बर्ताव करते हैं, वे किस प्रकार समय बिताते हैं,- साधुओं के इन समस्त कार्यों पर सदा दृष्टि रखने से चित्त उसी में आकृष्ट हो जाता है, धीरे-धीरे अपनी**

त्रुटियाँ भी पकड़ में आ जाती है और उनके प्रति धिक्कार उत्पन्न हो जाता है। साथ ही प्रकृति के ये सभी विकृत भाव भी नष्ट हो जाते हैं।'

बाबला में अप्राकृत हरि संकीर्तन।

२३ कार्तिक रविवार। ठाकुर के यहाँ आने की खबर पाकर कलकत्ते से कई गुरुभ्राता कल शान्तिपुर आये हैं। तड़के हम लोग गंगास्नान करने गये। गंगाजी बहुत दूर है, रेतीले तट पर पहुँच जाने पर भी कोई एक मील और जाना पड़ता है।

ठाकुर ने कहा-**'बड़े रास्ते पर, जहाँ श्री श्री जगन्नाथ देव प्रतिष्ठित हैं, वहीं पर काफी समय पहले गंगाजी बहती थीं।'**

भोजन कर चुकने पर सभी लोग ठाकुर के साथ अद्वैतप्रभु का भजनस्थान देखने को बाबला के लिए रवाना हुए। बहुत दूर चलने पर एक नाला मिला।

ठाकुर ने कहा-**यहीं पर किसी समय गंगाजी बहती थी।**

संध्या से कोई घण्टे भर पहले हम लोग बाबला पहुँच गये। एक वृद्ध हिन्दी-भाषी संन्यासी अद्वैतप्रभु के मंदिर में सेवक हैं। उनकी विनय, भक्ति और सेवानिष्ठा देखकर हम लोग बहुत ही आनन्दित हुए। स्थान बहुत ही निर्जन है और अब गंगाजी से बहुत दूर है। किसी समय गंगाजी मंदिर के किनारे से ही बहती थी। ठाकुर के साथ हम लोग साष्टांग प्रणाम करके मंदिर के प्रांगण में बैठ गये।

ठाकुर ने हम लोगों से कहा-**इस स्थान का प्रभाव बड़ा विलक्षण है। जरा स्थिरता से बैठकर नाम करने से ही इस बात को समझ जाओगे।**

हम लोग स्थिरता से बैठकर नाम करने लगे। कोई आधे घण्टे में ऐसा सुनाई पड़ा मानो बड़ी दूर खोल, करताल, घण्टे तथा बार-बार शंखध्वनि के साथ एक महान् संकीर्तन धीरे-धीरे समीप चला आ रहा है। सोचा कि आज ठाकुर को यहाँ उपस्थित जानकर कदाचित् आसपास के लोग संकीर्तन करते हुए यहाँ चले आ रहे हैं। हमलोग बड़ी उमंग से नाम करने लगे। संकीर्तन की ध्वनि से हम लोगों का चित्त नाचने लगा। दो एक मिनिट में स्पष्ट ही ऐसा जान पड़ा कि संकीर्तन समीप आ जायगा। अतः कोई-कोई आसन से उठकर संकीर्तन में सम्मिलित होने के लिए बाहर चले गये और नजदीक ही संकीर्तन होगा मानकर वे लोग उसी ओर को बढ़ने लगे। भगवान् का खेल बड़ा अद्भुत है, ठाकुर को छोड़कर संकीर्तन में सम्मिलित होने के लिए हम लोग ज्यों ज्यों आगे बढ़ने लगे त्यों-त्यों संकीर्तन की ध्वनि मंद होकर दो-तीन मिनट में ही विलुप्त हो गई। हम लोगों ने लौटकर ठाकुर से पूछा की संकीर्तन का महान् कोलाहल सुनकर उसमें सम्मिलित होने की इच्छा से ज्यों ही हम लोग मंदिर के प्रांगण से बाहर जाकर दौड़ने लगे त्यों ही एकाएक न जाने किस प्रकार वह महासंकीर्तन पल भर में कहाँ चला गया।

ठाकुर ने कहा-**बचपन में मैं अक्सर यहाँ आया करता था। ऐसा ही संकीर्तन सुनता था, तब एक बार एक ओर और दूसरी ओर दौड़ पड़ता था। स्थिरता से बैठकर नाम करते ही धीरे-धीरे उसमें और भी सम्मिलित हो सकते थे। यह संकीर्तन साधारण कीर्तन नहीं है। तुम लोग बड़े भाग्यवान हो, तुम लोगों ने महाप्रभु के संकीर्तन की ध्वनि सुनी है।**

सुनकर हम लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। सब कुछ भगवान्

गुरुदेव की कृपा है। उन्हीं की कृपा से उस अप्राकृत महाप्रभु के संकीर्तन का आभास हम लोगों को प्राप्त हो गया। दुर्बुद्धिवश, ठाकुर के समीप से दूर जाते ही, उनकी असीम कृपा का फल पलभर में बिल्कुल अन्तर्हित हो गया। धन्य गुरुदेव, यही आशीर्वाद दो कि तुम्हारी कृपा के अतिरिक्त सारी अलौकिक दशाएँ, अद्भुत दृश्य और अप्राकृत आनन्द को मैं कुछ भी न समझूँ। ठाकुर को अद्वैतप्रभु कहकर पुजारी बाबाजी खूब स्तुति करने लगे। बाबाजी की निष्कपट श्रद्धा-भक्ति बड़ी अच्छी लगी। मैंने ठाकुर से पूछा-हिन्दीभाषी प्रान्त के बाबाजी यहाँ किस तरह आकर रहने लगे? यहाँ पर ये कितने समय से हैं?

ठाकुर ने उत्तर दिया-**नहीं कह सकते कि यहाँ पर ये कितने समय से रहते हैं। मैं तो इन्हें यहाँ पर बहुत समय से देखता आ रहा हूँ। छोटी अवस्था में ही ये यहाँ पर अकस्मात् आ गये थे। अद्वैतप्रभु की विशेष कृपा प्राप्त करके ही यहाँ पर ये दीर्घकाल तक पड़े हैं। यों मृतवत् पड़े न रहने से कहीं धर्म की प्राप्ति होती है? धर्म क्या ऐसी सहज वस्तु है? अभिमानशून्य होना पड़ता है। जिस प्रकार वृक्ष का बीज सड़े बिना उसमें से अंकुर नहीं निकलता है उसी प्रकार जब तक मनुष्य का अभिमान बिलकुल नष्ट नहीं हो जाता तब तक धर्म का अंकुर नहीं फूटता। जब तब अभिमान है तबतक वास्तविक धर्म का नाम या गन्ध भी नहीं है, यह निश्चित रूप से जान लो जीवनमृत होना पड़ेगा।**

बाबला में कुत्ते के द्वारा अद्वैतप्रभु की पादुका का आविष्कार।

मैंने सुना कि यह बाबला श्रीश्री अद्वैतप्रभु की तपस्या का स्थान था। यह स्थान शान्तिपुर के कोई दो मील उत्तर में हैं। चार सौ वर्ष पहले यह स्थान शान्तिपुर के ही अंतर्गत था। अभी तक इसे शान्तिपुर कहते हैं। उस समय सुतरंगिणी गंगाजी इस पुण्यभूमि के समीप होकर दक्षिण की ओर बहती थी, अब तो कछार मात्र रह गया है। यहाँ पर बबूल के वृक्षों का जंगल होने से इसको बाबला कहते हैं। बाबला के उत्तर में पंचवटी है। इस पंचवटी के समीप एक दोलमंच था। वहाँ अद्वैतप्रभु का दोल यानि होलिका महोत्सव होता था। अब तो यह उत्सव श्रीमंदिर में ही होता है। इस दोल को सप्तम दोल कहते थे। अब तक इस दोल के उपलक्ष्य में यहाँ हजारों की भीड़ होती है और महोत्सव हुआ करता है। श्रीमंदिर में अद्वैतप्रभु की काष्ठ मूर्ति प्रतिष्ठित है। बहुत समय से उसकी सेवा पूजा प्रतिदिन हुआ करती है।

इस परम पवित्र, निर्जन भजन-साधन स्थल के प्रति बाल्यकाल से ही ठाकुर का असाधारण आकर्षण था। यह आकर्षण धीरे-धीरे बढ़ता गया। शान्तिपुर में रहने पर ठाकुर प्रायः यहाँ पर आकर संकीर्तन करते और भावावेश में अधीर हो जाते थे। पहले भी जब शान्तिपुर में ब्राह्म मित्रों का समागम होता तो ठाकुर उनको भी यहाँ ले आते थे। केशव बाबू, साधु अधोरनाथ, भाई प्रताप, कान्तिबाबू, त्रैलोक्य सान्याल आदि ब्राह्म मित्रों को साथ लेकर ठाकुर ने कितनी ही बार इस बाबला में आकर संकीर्तनोत्सव किया है।

श्री योगजीवन गोस्वामी और श्रीमती शान्तिसुधा का विवाह होने के थोड़े ही समय पश्चात् ठाकुर जब शान्तिपुर आकर कुछ दिनों तक ठहरे थे तब इस बाबला में एक अद्भुत घटना हुई थी। उसे

सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। एक दिन ठाकुर चौदह मादल (मृदंग विशेष) लेकर बड़े जनसमूह के साथ अपने घर से संकीर्तन करते हुए बाबला को चले। पालतू कुत्ता केलो भी साथ साथ चला। यह मामूली कुत्ता न था। सुना है कि इस कुत्ते ने जिन्दगी भर कभी न तो मांस खाया और न जूठा ही। कुत्ता 'केले' प्रतिदिन श्यामसुन्दर के मंदिर की परिक्रमा किया करता था। खोल-करताल की ध्वनि सुनते ही उस स्थान पर चला जाता और मन लगाकर एक जगह बैठा संकीर्तन सुना करता था। कभी-कभी उसकी आँखों से आँसू बहने लगते थे। ठाकुर केले को 'भक्तराज' कहकर बुलाते थे। कहते, 'केले कदाचित् कोई महापुरुष है, जो किसी विशिष्ट कार्य के साधन करने को संसार में आया है।' संकीर्तन के साथ आनन्दपूर्वक केले ठाकुर के पीछे-पीछे चला। किन्तु गंगा के नाले को पार करते समय साथवालों में से कुछ लोग केले को भगाने की चेष्टा करने लगे। तब वह निरुपाय होकर दौड़ता हुआ ठाकुर के पास गया और उनके चरणों पर लौट गया। ठाकुर ने कह दिया कि इसको साथ चलने दो। हरिसंकीर्तन शीघ्र ही मंदिर के प्रांगण में पहुँच गया। तब भावावेश में मत्त होकर सभी उद्दाम नृत्य करने लगे और चारों ओर से अप्राकृत महासंकीर्तन के मृदंग करताल की ध्वनि सुनकर, सभी मतवाले से हो गये थे। कोई-कोई यह समझकर कि समीप ही संकीर्तन होता चला आ रहा है, उसमें सम्मिलित होने के लिए इधर-उधर दौड़ने लगे। किन्तु वे लोग मंदिर से ज्यों ही दूर जाने लगे उस संकीर्तन की ध्वनि का सुनाई पड़ना बन्द हो गया। इस समय (भक्तराज) केले कुछ दूरी पर पंचवटी के समीप एक स्थान में दौड़ता हुआ जाकर पंजों से तेजी से मिट्टी खोदने लगा और फिर तुरन्त ही ठाकुर के

समीप आकर चिल्लाता हुआ, ठाकुर के वस्त्र को मुँह से पकड़कर जोर से खींचने लगा। उसको लगातार ऐसा करते देख ठाकुर केले के साथ-साथ उस स्थान पर गये और उन्होंने उस स्थान को खोदने की आज्ञा दी। समीप के किसानों के घर से दो कुदालियाँ लाकर वह स्थान थोड़ी गहराई तक खोदने पर जब कुछ न मिला, तब खुदाई रोक दी गई। इस समय भक्तराज ठाकुर की ओर सतृष्ण दृष्टि से देखकर चिल्लाने और अपने पंजों से फिर बड़ी आतुरता के साथ मिट्टी खोदने लगा। यह देखकर ठाकुर ने फिर खुदवाना आरम्भ कर दिया। अब थोड़ी देर तक खुदाई करते ही पीतल की एक बड़ी सी हाँडी मिली। उसके भीतर श्री अद्वैतप्रभु की नामांकित एक जोड़ी लकड़ी की पादुका, एक मिट्टी का करवा और हस्तलिखित फटी हुई पोथी एक बक्से के भीतर देखकर सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। ठाकुर उन पादुकाओं को मस्तक पर रखकर नृत्य करने लगे। फिर संकीर्तन होने लगा। ठाकुर भावावेश में अचेत हो गये। चेतना लौटने पर उन्होंने देखा कि भक्तराज केले भी अचेत हो गया है तब ठाकुर उसको कान में हरिनाम सुनाने लगे। इससे वह धीरे-धीरे उठ बैठा। ठाकुर ने उसे छाती से लगाकर कहा-तुम जिस काम के लिए आये थे, वह आज सम्पन्न हो गया, अब तुम गंगा-लाभ करो। उसको ठाकुर का आशीर्वाद मिल गया। अधिक रात को संकीर्तन करते-करते सभी घर पहुँचे। सवेरे सब लोग गंगास्नान करने गये तो देखा कि घुटने भर पानी में केले की मृतदेह तैर रही है। ठाकुर ने अपने हाथ से गंगा-किनारे बालू खोदी और उसमें भक्तराज केले को समाधिस्थ कर दिया। श्री अद्वैतप्रभु के करवा और पादुका के लिए कुछ समय के बाद गोस्वामियों में झगड़ा हुआ

तब ठाकुर ने एक दिन बाबला जाकर उक्त वस्तुओं को अद्वैतप्रभु के श्रीविग्रह के सिंहासन के नीचे समाधिस्थ कर दिया। यह सब सुनकर मुझे बड़ा विस्मय हुआ।

हिमालय में गुरु की खोज और महापुरुष से भेंट।

२४ कार्तिक सोमवार। भोजन करने के बाद ठाकुर के समीप बैठकर हम लोग उनके मुख से शान्तिपुर की बहुत सी बातें सुनने लगे। बातचीत के सिलसिले में, मौका पाकर, मैंने ठाकुर से पूछा-'सुना है कि बारोदी के ब्रह्मचारीजी का जन्मस्थान भी इसी शान्तिपुर में था। शान्तिपुर में शान्तिपुर में क्या इस समय भी कोई प्राचीन महात्मा हैं?'

ठाकुर ने कहा-**कह नहीं सकता, जीवित है या नहीं, किन्तु हिमालय में मुझे एक महापुरुष के दर्शन हुए थे। उन्होंने अपना जन्म स्थान शान्तिपुर ही बतलाया था।**

हम लोगों को यह जानने का कौतूहल हुआ कि ठाकुर को उक्त महात्मा के दर्शन किस प्रकार हुए। पूछने पर ठाकुर कहने लगे-**महात्माओं से मैंने बार-बार यह सुना था कि 'तुम्हारे तो गुरु निर्दिष्ट हैं, समय आने पर उनकी प्राप्ति होगी।', इससे उनको ढूँढने के लिए अस्थिर हो, मैं पागलों की तरह दौड़ धूप करने लगा। उसी समय मैं हिमालय पर पहुँचा और बहुत ही दुर्गम स्थान में लामा गुरुओं के मठों में चक्कर लगाने लगा। कई बौद्ध योगियों के मुँह से सुना कि झरने के पास घने जंगल के भीतर, एक गुफा के समीप, इस पहाड़ की ऊँची चोटी पर, एक बंगाली**

महापुरुष बहुत समय के रहते हैं। वे प्रायः दिनरात समाधि लगाये रहते हैं। समय-समय पर आवश्यकतानुसार शिष्य समीप की गुफा से निकलकर जाते और उन्हें सचेत करा देते हैं। महापुरुष की खबर पाकर मैं उनके दर्शन करने के लिए बहुत ही बेचैन हो गया। हिमालय पर घने जंगल के भीतर हो, बिना पहचाने मार्ग पर, मैं महापुरुष को ढूँढने चल पड़ा। दो दिन और दो रातों तक, न तो मैंने कुछ खाया और न सोया ही। तीसरे दिन भूख-प्यास के मारे शरीर इतना विवश हो गया कि एक पेड़ के नीचे मैं बिलकुल बेहोश होकर गिर पड़ा। भगवान् तो बड़े ही दयालु हैं। एक नग्न ऊँचे पूरे पर्वतवासी संन्यासी ने आकर मुझे स्वस्थ किया। फिर मेरे हाथ में कई एक छोटे-छोटे दाने देकर कहा 'बच्चा-इन दानों को पा लो, भूख-प्यास दूर हो जाएगी, जब तक पर्वत पर रहो, दो-एक दाना पा लिया करो। कभी भूख-प्यास नहीं लगेगी।' अब उन्होंने मुझे सरसों बराबर कई एक छोटे-छोटे बीज दिये। दो-एक दाने खाते ही मेरी भूख-प्यास और राह चलने की सारी थकावट दूर हो गई। उन बीजों को बहुत दिनों तक मैं अपने साथ लिये रहा। मैं जब तक पहाड़ पर रहा, आवश्यकता पड़ने पर दो-एक पा लिया करता था। पर्वतवासी संन्यासी से मैंने उन महापुरुष की चर्चा की तो उन्होंने कहा-'एक बंगाली बड़े भारी महात्मा पर्वत के ऊपर रहते हैं। कभी-कभी नीचे आकर झरने में स्नान करके विद्युत गति से तुरन्त चले जाते हैं। लम्बी-लम्बी जटाएँ है, उनमें से पानी टपकता जाता है। ऐसे चले जाओ, मिल जायेंगे।' अब वे जंगल के भीतर चले गये हैं। मैं उसी रास्ते से चलता चलता महापुरुष के समीप

पहुँच गया। उनकी सेवा में मुझे दो शिष्य तत्पर मिले। वे हरदम महापुरुष के साथ रहते थे। महापुरुष खुली जगह में पत्थर के ऊपर एक भाव से, एक ही आसन में, समाधि लगाये बैठे रहते थे। रात को बरफ में महापुरुष का सारा शरीर ढक जाता था। सवेरे बरफ के ढेर के सिवा और कुछ दिखाई न देता था। फिर दिन चढ़ने पर बरफ गलने लगती और धीरे-धीरे महापुरुष की देह दिखाई देने लगती। उस समय शिष्य लोग महापुरुष के सामने आग जलाकर आँच पहुँचाया करते और अवसर देखकर समय-समय पर उनके मुँह में गरमागरम चाय डाल दिया करते। कोई ग्यारह बजे महापुरुष को बाह्यज्ञान होता था।

मैंने पूछा-'तो क्या हिमालय पर साधु लोग चाय पीते हैं? उन्हें चाय मिलती कहाँ से हैं?

ठाकुर ने कहा-**हिमालय पर जो बौद्ध योगी महात्मा हैं, उनकी धूनी पर सदा चाय के लिए पानी गरम होता रहता है। दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह मिनिट के अंतर पर वे थोड़ी-थोड़ी चाय पीते रहते हैं। वह चाय हम लोगों की चाय से भिन्न होती है। उस चाय के बड़े- बड़े पौधे होते हैं। साधु लोग उनके पत्तों को लाकर सुखाकर रख लेते हैं। पत्ते भी खूब बड़े-बड़े होते हैं।**

मैंने पूछा-'तो वे चाय में दूध नहीं मिलाते?'

ठाकुर ने कहा-**हाँ, बहुत बढ़िया दूध मिलाते हैं। थन में दूध का भार बढ़ने पर पहाड़ी गौएँ, एक-एक निर्दिष्ट स्थान पर जाकर दूध गिरा आती है। वह दूध बरफमय पत्थर पर गिरते ही जम जाता है, साधु लोग उस दूध को चिमटे से खोदकर उठा लाते हैं। गरम पानी में डालते ही यह बढ़िया दूध बन जाता है। वे चाय**

में मीठा नहीं डालते। आवश्यकता होने पर उन्हें वह भी सहज मिल जाता है। गन्ने की तरह मीठे रसवाली लताएँ और पत्ते पहाड़ पर बहुत होते हैं। साधुओं को उनका पता रहता है।

मैंने पूछा-'तो क्या महापुरुष ने कोई बातचीत नहीं की?'

ठाकुर ने कहा-**हाँ, खूब बातचीत की। अपना पूरा परिचय दिया। थोड़ी अवस्था में, जनेऊ होने के बाद ही, एक संन्यासी का साथ पाकर वे घर छोड़कर चल दिये। उन्होंने बहुत उपदेश देकर अन्त में यह कहा-'वीर्यधारण और सत्य की रक्षा-ये दो कार्य ठीक-ठीक होते ही क्रम से योगीजन दुर्लभ ब्रह्मपद प्राप्त होता है।' वीर्यधारण और सत्य की रक्षा हुए बिना कुछ नहीं हो सकता। वीर्यधारण जिस प्रकार एक शरीर की रक्षा का सर्वप्रधान कारण है, उसी प्रकार आत्मा की रक्षा के लिए सत्य है। असत्य चिन्तन और असत्य व्यवहार योगसाधन के लिए बड़ा ही अनिष्टकर है। मिथ्या बोलना जिस प्रकार महापाप है उसी प्रकार मिथ्या कल्पना करना भी है। जिन्हें योगमार्ग पर चलना है, उनको सभी कार्यों में सत्य से युक्त रहना चाहिए। नाटक और उपन्यास आदि तो बिलकुल असत्य और मिथ्या है, उनको पढ़ने और सुनने का योगशास्त्र में निषेध है। असत्य चिन्तन को महापाप समझना। वह मस्तिष्क को नष्ट कर देता है। भगवान ही सत्य है, भगवचिन्तन करने से मस्तिष्क की शक्ति सभी ओर इतनी अधिक बढ़ जाती है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।**

मैंने पूछा-'साधु-महात्माओं की संगति प्राप्त होने पर वे जो उपदेश दे उनके लोग चल सकते हैं?'

ठाकुर ने कहा-**हाँ, चाहो तो चल सकते हो। जहाँ सत्य है, न्याय है वही हम लोगों का अधिकार है। सभी स्थानों में, सभी के पास हम शिक्षा ले सकते हैं, इसमें कुछ भी बाधा नहीं, किन्तु कुछ आवश्यकता भी नहीं है। इस साधन को करते जाने से धीरे-धीरे सब कुछ प्राप्त हो जायगा। किसी वस्तु की कमी न रहेगी। दूसरे के उपदेश के अनुसार चलने से कई बार हानि भी हो जाती है। निष्ठा की ओर भी अनिष्ट हो जाता है। कई बार लोग अपने मत की ओर खींच ले जाने की चेष्टा करते हैं, यह तो अक्सर देखा जाता है।**

जातिभेद के संबंध में प्रश्नोत्तर।

२० ते २९ कार्तिक मंगल-शनिवार। यहाँ आने पर दो दिन मैंने होम नहीं किया। अब नित्य होम करता हूँ। ठाकुर ने आज से फिर मुझसे स्वयं रसोई बनाकर भोजन करने के लिए कहा। अनेक असुविधाओं में भी मैंने स्वयं रसोई बनाकर भोजन करने का प्रबन्ध किया। शाम के वक्त अब ठाकुर के साथ घूमने न जा सकूँगा, यह सोचकर बड़ा दुःख हुआ। सोचा, गुरुकुल में रहता हूँ, गुरुपरिवार की ब्राह्मणकन्या रसोई करती है। ठाकुर के लिए भोग बनता है। किसी भी प्रकार के अनाचार की संभावना नहीं है, फिर भी अपने हाथ से रसोई बनानी होगी। इसका क्या मतलब? लोगों में जिस प्रकार का जातिभेद प्रचलित है, उससे भी कई गुनी कठिन व्यवस्था मेरे लिए है। ब्राह्मधर्म प्रचारक के रूप में ठाकुर ने जनता के हृदय से जातिभेद की भावना को उखाड़ फेंका था। इस समय भी व्यावहारिक जातिभेद का वैसा भेदभाव ठाकुर के कार्य-कलाप में मैं नहीं देखता

हूँ। तब फिर मेरे लिए ही इतने कठोर नियम की आज्ञा क्यों है? ठाकुर के मुँह से किसी प्रकार एक बार जातिभेद का तनिक सा दोष प्रकट हो जाय तो मेरे लिए जो सारी कठोरता की व्यवस्था हुई है, उसको बिल्कुल पलटवा लूँगा, यह निश्चय करके मैंने ठाकुर से पूछा, 'हमारे यहाँ जो जातिभेद की प्रथा है, उसका रहना क्या अच्छा है?'

ठाकुर जरा हँसकर कहने लगे-**जातिभेद की प्रथा न केवल हमारे ही देश में है, बल्कि सभी देशों में है। प्रकृतिगत जातिभेद केवल मनुष्यसमाज में ही नहीं है, बल्कि पशु, कीट, पक्षी, पतंग, वृक्ष और लता आदि सभी में वह दिखाई पड़ता है। यह जातिभेद तो समस्त ब्रह्माण्ड में भरा हुआ है। कहीं कोई इसका अतिक्रमण नहीं कर सका। आजकल हमारे यहाँ जो जातिभेद प्रचलित है यह समाजगत है। यह भेद किसी देश में व्यवसायगत है और किसी में मर्यादा या हैसियत के अनुसार है। किसी भी रूप में सही, जातिभेद है सभी देशों में एवं मनुष्य समाज की सभी जातियों में है। किन्तु ऋषि लोग जिस जातिभेद का उल्लेख कर गये हैं, यह दूसरे प्रकार का है, यह गुणगत है। सत्त्व, रज, और तमोगुण के भेद से जो जातिभेद है, उसी को ऋषियों ने स्वीकार किया है, यही स्वाभाविक है। उस हिसाब से आजकल शूद्रों में कई ब्राह्मण और ब्राह्मणों के भीतर शूद्र देखे जाते हैं। सामाजिक जाति एक प्रकार की होती है और प्रकृतिगत जाति दूसरे प्रकार की। परमहंस अवस्था की प्राप्ति जब तक नहीं होती, तब तक कोई भी इस जातिबुद्धि का त्याग नहीं कर सकता। जब तक उत्कृष्ट, निकृष्ट बुद्धि रहेगी तो**

जातिबुद्धि अवश्य रहेगी। हिंसा, लज्जा, मान, अपमान, भला और बुरा जब तक बुद्धि में हैं, तब तक मनुष्य किसी भी प्रकार जातिभेद का अतिक्रमण नहीं कर सकता। चाहे जिसके हाथ का खा पी लेने से जाति बुद्धि दूर नहीं हो जाती, बल्कि इससे तो और भी अधिक अनिष्ट हो जाता है। जिसके हाथ की बनी रसोई खाने में आती है उसके शारीरिक और मानसिक सभी भाव भोजन की वस्तु के साथ भोजन करनेवालों के भीतर संक्रामित होते रहते हैं। साधारण दृष्टि से मनुष्य इसको नहीं देख पाता है, फिर भी है यह बिलकुल सत्य। यह बड़ी कठिन समस्या है।

मैंने पूछा-'किस अवस्था की प्राप्ति कर लेने से चाहे जिसके हाथ का खा लेने में कुछ अनिष्ट नहीं होता?'

ठाकुर ने कहा-**जिस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर मनुष्य सभी वस्तुओं में एक के ही अस्तित्व को देखता है। जो नित्यशुद्ध, मंगलमय और पतितपावन हैं, जिनका नाम लेने से महापापी का भी उद्धार हो जाता है, वे सर्वत्र विराजमान है, वह जब प्रत्यक्ष हो जाता है, तब वह क्या कभी अपवित्र माना जा सकता है? क्या तो विष्ठा और क्या चन्दन में सर्वत्र जो अपने इष्टदेवता का ही अधिष्ठान स्पष्ट देखता है, वह क्या उसे परम पवित्र तीर्थ समझे बिना रह सकता है? फिर वस्तुविशेष में उसकी भेदबुद्धि होगी किस तरह? ऐसी परमहंस अवस्था की प्राप्ति हो जाने पर वह सर्वत्र सभी कार्यों में भगवल्लीला को देखता है, वह सर्वत्र ही अमृत भोजन करता है, उसकी बात अलग है। यह न हो तो जब तक भेदबुद्धि हो तब तक मेहतर, मोची और ब्राह्मण को एकाकार करके चाहे जिसके हाथ का**

खा-पी लेने से ही जातिभेद दूर नहीं हो जाता। अन्तःकरण से जातिबुद्धि का दूर हो जाना सहज बात नहीं है, बहुत ही कठिन है।

प्रसाद के संबंध में प्रश्नोत्तर और श्यामाखेपा (पागल) का हाल।

मैने फिर पूछा-'सर्वसाधारण के हाथ की रसोई खाने से आपने जिस अनिष्ट की संभावना बतलाई वैसा अनिष्ट होने की सम्भावना क्या ठाकुरजी का प्रसाद खाने में भी है?'

ठाकुर ने कहा-**प्रसाद पाना तो बड़े भाग्य की बात है, उससे परम कल्याण है। किन्तु मात्र रसोई बनाकर देवता के आगे रख देने से ही देवता उसको स्वीकार कर लेंगे और वह प्रसाद हो जायगा, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। बहुत समय हुआ, बचपन में शान्तिपुर में एक महात्मा को देखा था। लोग उन्हें श्यामाखेपा कहते थे। उनके चलन विचार और बातचीत से कोई यह नहीं समझ पाता था कि वे किस सम्प्रदाय के साधु थे। वे कभी एक स्थान पर नहीं रहते थे। प्रायः नित्य रास्ते-रास्ते, गली-गली में पागलों की तरह घूमते-फिरने थे। ठाकुरजी का भोग लग चुकने का समय पहचानकर वे भोजन के लिए एकाएक किसी के यहाँ जा पहुँचते थे। ठाकुरजी के लिये भोग बनाते समय स्त्रियों की असावधानी से किसी प्रकार-अनाचार हो जाता तो अनेक अवसरों पर वे प्रसाद पाये बिना ही उठ जाते और गालियाँ देकर जाते कि 'अरे, भोग में ऐसी गन्ध आ रही है, इसी से आज यह प्रसाद नहीं हुआ। ठाकुरजी ने आज भोग**

ग्रहण नहीं किया, आज वे भूखे हैं, शीघ्र दुबारा रसोई बनवा दो।' आश्चर्य की बात यह ये जो कुछ कह जाते थे, वह बात पता लगाने पर सच ही निकलती थी। स्त्रियाँ लज्जा के मारे गड़ जाती थीं। स्त्रियाँ इसलिए सदा शंकित बनी रहती और बड़ी सावधानी से नियम के अनुसार रसोई बनाया करती थीं कि क्या जाने कब, किसके घर श्यामाखेपा प्रसाद पाने को पहुँच जायें। ऐसी घटना एक बार हमारे यहाँ भी हुई थी। श्यामाखेपा ठाकुरजी का प्रसाद पाने के अतिरिक्त बस्ती में और किसी काम से न आते थे।

एक बार पुरी धाम से शान्तिपुर निवासी एक गोस्वामी ने पत्र द्वारा खबर दी कि 'श्यामाखेपा श्रीक्षेत्र में कुछ दिन से आये हुए हैं, उनको प्रायः श्रीश्रीजगन्नाथदेव के मंदिर में देखा करता हूँ। और मजे की बात यह कि उस समय वे शान्तिपुर में ही मौजूद थे। वे मुझे देख लेते तो लपककर पकड़ लेते और कई सेकेंड तक मेरी ओर ताकते रहकर कहते 'खूब काला, लाल सुर्ख, साफ सफेद और यह पीला क्या है भाई, और यह पीला क्या है भाई।' बार-बार ऐसा ही कहकर किस ओर जाकर गायब हो जाते थे। कुछ समय के बाद वे न जाने कहाँ चले गये। उनका कहीं कुछ पता न चला।

मैंने पूछा-'संन्यास लिये बिना, घर में रहकर भी क्या कोई ऐसी परमहंस-अवस्था को प्राप्त कर सकता है?'

ठाकुर ने कहा-**हाँ, अच्छी तरह प्राप्त कर सकता है। भीतर समस्त वासना कामनाओं के रहते हुए, सामयिक उत्साह में आकर संन्यास लेकर कठिन वैराग्य के मार्ग पर चलना बुद्धिमान्**

का काम नहीं है। दुर्ग के भीतर रहकर जिस प्रकार निरापद होकर युद्ध किया जाता है, उसी प्रकार घर गृहस्थी में रहते हुए भी वैध उपाय से कर्म का क्षय करना सहज है। कर्म का क्षय न हो तो कुछ भी होने का नहीं। संन्यास कुछ सामान्य बात अथवा मत नहीं है। वह तो मनुष्य के भीतर की ही एक अवस्था है, भगवान् में सम्यक् रूप से आत्मसमर्पण ही तो संन्यास है।

मैंने पूछा-'सुना है कि उत्पातशून्य स्थान में रहकर, निरुद्वेग हो, भगवान् की उपासना करनी चाहिए। संसार में, घर-गृहस्थी में, विविध विषम प्रलोभनों में रहकर, बाघ और भैंसे से लड़ाई लड़कर जो स्थिरता से भगवान् की उपासना करने में असमर्थ हो वह क्या करे?'

ठाकुर ने कहा-**सम्मुख युद्ध भला कितने लोग कर सकते है? वीरता का परिचय देना तो भगवान् की उपासना का तात्पर्य नहीं है। संसार के प्रलोभनों का अतिक्रमण करके जो लोग निश्चिन्त होकर साधन भजन न कर सके, वे अवश्य ही दूसरा उपाय करें। लोग कहते तो हैं कि 'संसार में रहकर धर्म करना चाहिए, किन्तु जो ऐसा नहीं कर सकते, अपने को अत्यन्त अशक्त समझते हैं व जहाँ जाकर, जैसी हालत में धर्म को प्राप्त कर सकें उसका उपाय करे। इसके सिवा और क्या उपाय है?' ऐसा तो कुछ है नहीं कि सभी को एक ही बँधे रास्ते से चलना चाहिए। प्रकृति और अवस्था की भिन्नता के अनुरूप विभिन्न मार्गों का अवलम्बन करना भी आवश्यक हो जाता है।**

मैंने पूछा-'संसार का त्याग करके संन्यासी हो जाने पर भी क्या फिर साधारण कर्मबन्धन बना रहता है?'

ठाकुर ने कहा-**घर-द्वार, रुपया-पैसा, जमीन-जायदाद को ही संसार नहीं कहते। इन चीजों का त्याग कर देने मात्र से ही कोई संन्यासी नहीं हो जाता। संसार तो देहात्मबुद्धि ही है। इस देहात्मबुद्धि के नष्ट हुए बिना सब कुछ विडम्बना मात्र है। जब तक मनुष्य को ठीक-ठीक वैराग्य नहीं हो जाता, तब तक कर्म भी बना रहता है। बाहर चाहे संन्यास लो, चाहे न लो, कर्म करना ही होगा। भगवान् पर लक्ष्य रखकर कर्म करते जाने से शीघ्र ही वह कर्म समाप्त हो जाते हैं।**

मैंने पूछा-'जीव जब पराधीन है, अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं करता, तब फिर उसके लिए बन्धन क्यों है?'

ठाकुर ने कहा-**जीव तो सम्पूर्ण रूप से पराधीन है, फिर भी उसके मन में वासना, कामना जो कुछ उठती हैं, वे ही उसके लिए बन्धन का हेतु होती हैं। यह वासना ही तो कर्म है, यह स्वाधीनता या पराधीनता की अपेक्षा नहीं रखता। आत्मा के प्रकाश के साथ साथ वासना, कामना का क्षय हो जाता है। जब उनका क्षय होता है, तब यह स्पष्ट समझ में आ जाता है।**

११८

अन्तिपुरवासी, भगवान् के रासोत्सव भिओं के घर कहीं श्यामसुन्दर और कहीं हैं। आज सभी अपने अपने घर के ठाकुर

शान्तिपुर का रास।

३० कार्तिक १५ नवंबर रविवार। आज भगवान् श्रीकृष्ण की रासयात्रा है। सवेरे से सभी शान्तिपुरवासी भगवान के रासोत्सव का स्मरण करके मानो नाच उठे। सभी गोस्वामी प्रभुओं के घर कहीं

श्यामसुन्दर और कहीं राधागोविन्द इत्यादि श्रीकृष्ण की मूर्तियाँ बहुत समय से प्रतिष्ठित हैं। आज सभी अपने-अपने घर के ठाकुरजी को कई तरीके से सजाने में बड़ी उमंग से तत्पर है। आज शान्तिपुर में असीम आनन्द है।

ठाकुर ने कहा-**ढाका की जन्माष्टमी, श्रीवृन्दावन की दोलयात्रा (होलिकोत्सव) अयोध्या के झूलनोत्सव और शान्तिपुर की रासयात्रा देखने योग्य होती है। इसकी तुलना और कहीं नहीं है। जिन्होंने इन उत्सवों को आँखों से नहीं देखा है, उन्हें किसी तरह नहीं समझाया जा सकता। जो लोग इन उत्सवों में सम्मिलित होते हैं, उनके भीतर की सारी अशान्ति और उद्वेग नष्ट होकर चित्त प्रफुल्लित हो जाता है।**

संध्या समय हम सब लोग रासोत्सव देखने के लिये घर से निकले। ठाकुर पहले अपने घर में प्रतिष्ठित श्यामसुन्दरजी के दर्शनार्थ मंदिर के प्रांगण में गये। साष्टांग प्रणाम करके वे श्यामसुन्दरजी को अपलक देखते हुए फफक-फफककर रोने लगे। ठाकुर की आँखों से गिरते हुए आँसू की धार से उनका वक्षःस्थल भीग गया। वे १५-२० मिनट तक एक ही तरह से लगातार रोते हुए अवसन्न हो गये। जरा शान्त होने पर श्यामसुन्दर को प्रणाम करके वे मंदिर के बाहर आये। बड़े रास्ते पर खड़े होकर हम लोग रासयात्रा देखने लगे। मूर्तियों की बहुमूल्य वेश-भूषा और सजावट की निपुणता देखकर मैं चकित हो गया। अहा! जिन्होंने भगवद्बुद्धि से अपने ठाकुरजी को इन ऐश्वर्यों से सज्जित किया है, वे अवश्य ही धन्य हैं। मैं तो यह विपुल अर्थव्यय का आडम्बर देखकर विस्मित हो रहा हूँ।

ठाकुर के मुँह से श्यामसुन्दर का वृत्तान्त।

रात जरा अधिक हो जाने पर ठाकुर अपने घर के श्यामसुन्दरजी का वृत्तान्त बतलाने लगे-**एक बार श्यामसुन्दर ने आकर मुझसे कहा, अरे में सोने का मुकुट पहनूँगा, मेरे लिए एक मुकुट बनवा दे न। मैंने कहा, 'मैं तो तुम पर विश्वास करता नहीं हूँ, जो लोग विश्वास करते हों, उनसे कहो। मुझे रुपये कहाँ मिलेंगे?' श्यामसुन्दर ने कहा, 'देख, अपनी काकी से कह दे, उसके झाँपी में रुपये रखे हुए हैं। उन्हीं रूपयों से बनवा दे।' फिर काकी से यह कहा तो उन्होंने भी कहा, अरे, कल श्यामसुन्दर ने आकर मुझसे स्वप्न में कहा-अरी, हमें मुकुट बनवा दे न। मैंने कहा, 'रुपये कहाँ पाऊँगी? मेरे पास तो कुछ है नहीं।' श्यामसुन्दर ने कहा, 'अरी, क्या तू ४०-५० रुपये नहीं दे सकती? देख, जो तू न दे सके तो विजय से कह, वह देगा। यह कहकर काकी रोने लगीं और बोली, मैंने ६७ रुपये बहुत ही छिपाकर रख छोड़े थे, इसे कोई नहीं जानता। काकी ने वही रुपये दिये और उन्हीं रुपयों से मैंने ढाका से सोने का मुकुट बनवा दिया। आज श्यामसुन्दर ने वही मुकुट पहना है। संध्या से जरा पहले मैं जब छत पर गया था, श्यामसुन्दर ने झाँककर मुझसे कहा, 'अरे देखकर जा न, मुकुट पहनकर हम कैसे सजे हुए हैं।' मैंने कहा-मैं क्या देखूँ, मैं तो तुमको जानता नहीं हूँ। श्यामसुन्दर ने कहा, 'इससे क्या, नहीं मानते हो तो न सही, एक बार देख लेने में कौन सा दोष है।' फिर मैं श्यामसुन्दर के समीप गया। उनकी स्नेहमिश्रित स्निग्ध दृष्टि और उज्ज्वल रूप की**

छटा देखकर मैं बिलकुल मुग्ध हो गया। श्यामसुन्दर ने जरा हँसकर कहा, ‘यह क्या, तू तो हम पर विश्वास नहीं करता है न?’ मैंने कहा, ‘ठाकुर यदि मेरे ऊपर तुम्हारी इतनी दया है तो फिर अब तक मुझे भटकाया किसलिए? सब कुछ तोड़ फोड़कर विषम काला पहाड़ किसलिए बना रखा था?’ श्यामसुन्दर ने कहा, ‘इससे तेरा क्या? हमीं ने तोड़ा था और अब हमीं बनाये लेते हैं, इसमें तेरा क्या हुआ? तोड़कर बनाने से और भी कितना सुन्दर हो जाता है, यह जानता है?’

इस वृत्तान्त के पश्चात् ठाकुर फिर कहने लगे-प्रचारक रहते समय मैं बीच-बीच में माताजी को देखने घर आया करता था। एक बार इसी घर में दोपहर के समय बैठा हुआ था कि श्यामसुन्दर ने आकर कहा, ‘देख, आज हमें खाने को तो दिया किन्तु पीने को जल नहीं दिया।’ मैंने तुरन्त काकी को बुलाकर कहा, ‘काकी, तुम्हारे श्यामसुन्दर ने कहा है कि आज उन्हें जल नहीं दिया है।’ काकी ने मुझसे कहा, ‘हाँ, श्यामसुन्दर को और कोई नहीं मिला, तू ब्रह्मज्ञानी है न, इसी से जाकर तुझसे कहा है कि जल नहीं दिया।’ मैंने कहा, ‘अच्छा! पता लगाकर देख ही लो।’ तुरन्त ही पूछताछ करने पर काकी को मालूम हो गया कि सचमुच जल नहीं दिया गया था। इस प्रकार श्यामसुन्दर अनेक अवसरों पर बहुत बातें कहते थे।’ पुजारी किसी प्रकार का अनाचार अथवा भूल करता था तो श्यामसुन्दर आकर कह जाते थे। मैं तो बचपन से ही श्यामसुन्दर की अद्भुत कृपा देखता आ रहा हूँ, मेरे उनको न मानने पर भी उन्होंने कभी भी, मुझे नहीं छोड़ा है।

भाव की अमर्यादा; नीलकण्ठ का यात्रा-अभिनय बन्द करना।

ठाकुर हम लोगों को साथ लेकर देश के प्रसिद्ध कीर्तनिया श्रीनीलकण्ठ मुखोपाध्याय का यात्रा-गान सुनने के लिए एक सज्जन के घर गये। शान्तिपुर के गणमान्य अनेक गोस्वामी प्रभु भी यह गान सुनने वहाँ आये थे। यात्रा आरम्भ होने पर ठाकुर भाव के आवेश में झूम-झूमकर गिरने लगे। अश्रु, कम्प और पुलक आदि एक साथ प्रकट हो गये। यह देखकर नीलकण्ठ बड़ी उमंग से कीर्तन करने लगे। ठाकुर जब भाव न रोक सके तो उछल पड़े और जोर जोर से हरिध्वनि करके नृत्य करने लगे। नीलकण्ठ भी मस्त होकर हाथ हिलाते-हिलाते ठाकुर के सामने आकर आरती करने लगे। तब तो गुरुभाईयों में भी भाव का प्रसार हो गया, यह देख गोस्वामी प्रभु लोग बहुत ही असंतोष प्रकट करके जोर-जोर से कहने लगे, ये लोग बहुत गड़बड़ कर रहे हैं, इन लोगों को झटपट रोक दो। भाव विरोधी दल की प्रतिकूल चेष्टा देखकर नीलकण्ठ ने गाना बन्द कर दिया। उन्होंने कहा, 'जहाँ पर इन उच्च भावों का आदर नहीं है और भक्त महापुरुष की भी मर्यादा नहीं की जाती, वहाँ मैं गाता नहीं हूँ। ऐसे स्थान में ठहरना भी मेरी दृष्टि में अपराध है।' यह कहकर सब लोग उसी क्षण सभा से उठकर चले गये। ठाकुर हम लोगों को साथ लेकर चले आए।

अग्रहायन

सिद्ध भगवानदास बाबाजी का वृत्तान्त।

१-५ अग्रहायन १६ से २० नवंबर। भोजन करने के उपरान्त सभी लोग ठाकुर के पास बैठ गये। अवसर देखकर मैंने पूछा-'हिन्दुओं के मठ-मंदिरों में सर्वत्र देव-देवियों की मूर्तियाँ, शालग्राम, शिवलिंग प्रतिष्ठित दिखाई देते हैं, गेण्डारिया के समाधि मंदिर में माता ठाकुरानी के फोटो के साथ जो नाम-ब्रह्म का पट प्रतिष्ठित है, ऐसी पटप्रतिष्ठा तो और कहीं नहीं देखी।'

ठाकुर ने कहा-**है क्यों नहीं? कालना के सिद्ध भगवानदास बाबाजी के आश्रम में नामब्रह्म का पट प्रतिष्ठित है-मैं बहुत पहले उसको देख आया था। दो-एक स्थानों में और भी है।**

एक गुरुभाई ने कहा-भगवानदास बाबाजी किस प्रकार के सिद्ध पुरुष थे? सिद्ध सुनने से ही डर लगता है।

ठाकुर ने कहा-**आजकल लोगों का ऐसा ही विश्वास जान पड़ता है। सिद्ध सुनने से लोग कुछ भयानक सा समझते हैं। भगवानदास बाबाजी वैष्णव परमहंस थे। वे तो विनय के अवतार थे। कभी किसी के दोष नहीं देखते थे। उनसे कोई किसी के दोष की चर्चा करता, तो वे रोने लगते थे। वे अपने को सबसे हीन समझते थे।**

गुरुभाई ने फिर पूछा-'आप जब वहाँ गये थे तब आप ब्राह्म थे, बाबाजी ने आपके साथ कैसा व्यवहार किया?'

ठाकुर ने कहा-**मैं प्रचारक अवस्था में, दो ब्राह्म मित्रों के साथ, सिद्ध भगवानदास बाबाजी के दर्शन करने कालना गया था। वहाँ पहुँचने पर बाबाजी ने साष्टांग प्रणाम किया और बैठने के लिए आसन दिया। रास्ते की थकावट के कारण मुझे बड़ी प्यास लगी थी, बाबाजी से कहा तो वे अपने कमण्डलु को धो-**

माँजकर साफ ठण्डा पानी भर लाये और वही मुझे पीने को दिया। बाबाजी का ही कमण्डलु जानकर मैने कहा 'बाबाजी, मैं तो चाहे जिसके हाथ का खा-पी लेता हूँ, जात-पाँत भी नहीं मानता, ब्रह्मज्ञानी हूँ, मुझे दूसरे बर्तन में पानी दीजिए, बाबाजी ने बड़ी दीनता से हाथ जोड़कर कहा, 'प्रभो, आप मेरी आकांक्षा में रुकावट न डालिए। जात-पाँत रहते हुए क्या कभी भक्ति होती है?' ब्रह्मज्ञान ही तो समस्त धर्म की जड़ है। आप दया करके इसी पात्र से जल पीजिए। मैने जल पीकर ज्यों ही कमण्डलु नीचे रखा, बाबाजी ने उसे उठाकर अपने माथे से लगा लिया और बचा पानी पी लिया। वहाँ पर कई सज्जन बैठे हुए थे। उनमें से एक ने कहा, 'बाबाजी, यह क्या कर डाला? इन्होंने तो जनेऊ उतार डाला है, ये ब्राह्मसमाज में भर्ती हो गये हैं। कुछ भी नहीं मानते।'

बाबाजी ने उत्तर दिया-'हमारे अद्वैतप्रभु के भी तो जनेऊ नहीं था। ब्राह्मसमाज में भर्ती गये हैं, किन्तु देखो, यहाँ भी हमारे गोसाई आचार्य हैं। उस भले आदमी ने कुछ चिढ़कर कहा, 'आप ठीक ही कह रहे हैं बाबाजी, आचार्य! आचार्य कैसे हैं, सो तो देख ही रहे हैं! कैसा कुर्ता, धोती, दुपट्टा और जूता है! वाह! यह सुनकर बाबाजी की आँखें डबडबा आईं।' उन्होंने कहा, नियम से प्रभु का श्रृंगार करना तो हम लोगों का ही कर्तव्य है। किन्तु दुर्भाग्य से मैं नहीं कर पाया। प्रभु ने स्वयं आवश्यकता के अनुसार वस्तुओं का संग्रह कर लिया है, यह देखकर जरा प्रसन्न हो लेता, सो हाय यह भी भाग्य में न हुआ।' यह कहकर बाबाजी बच्चे की तरह फूट-फूटकर रोते हुए बिल्कुल अस्थिर

हो गये।

बाबाजी के यहाँ नाम-ब्रह्म को प्रतिष्ठित देखा, ये बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ उस पट की सेवा-पूजा नित्य किया करते थे।

वैराग्य और त्रिताप के संबंध में उपदेश।

आज एक गुरुभाई ने पूछा-'कैसा आचरण करने से वास्तविक वैराग्य प्राप्त होता है? और यही कैसे मालूम होगा कि वैराग्य प्राप्त हो गया?'

ठाकुर ने कहा-**विषय की आसक्ति नष्ट हुए बिना, त्रिताप गये बिना, वास्तविक वैराग्य प्राप्त नहीं होता। भूख-प्यास, रोग-शोक और मान-अपमान आदि से जब तक कर्तव्य, कार्य करने में बाधा होती रहेगी तब तक समझना कि त्रिताप दूर नहीं हुआ। तब तक खूब नियम से रहना चाहिए। दिन को अनेक कार्यों में विभक्त करके, बड़ी निष्ठा के साथ उसमें लगे रहो। कुछ भी क्यों न हो, उन नियमों के विपरीत आचरण न करें। ऐसा बर्ताव करते-करते धीरे-धीरे त्रिताप नष्ट हो जाते हैं।**

मैंने पूछा-'त्रिताप क्या है? कष्ट ही तो ताप है न?'

ठाकुर ने कहा-**केवल कष्ट ही क्यों? विषय का सारा अनुभव ही तो ताप है। दुःख जैसा ताप है, ऐसा हो सुख भी तो ताप है। निरानन्द भी ताप है और आनन्द भी ताप है। सुख, दुःख, आनन्द, निरानन्द, मान और अपमान जब तक चित्त को स्पर्श करते रहेंगे, तब तक समझना कि वास्तविक धर्म का अंकुर ही नहीं फूटा।**

मैंने फिर पूछा-'विषय का और ताप का ज्ञान न रहेगा, तो लोग

कोई भी कार्य किस तरह करेंगे?'

ठाकुर ने उत्तर दिया-**जब तक कर्तव्य का अभिमान है, तब तक ताप भी रहेगा। कर्तव्य अभिमान गये बिना मनुष्य मुक्त नहीं होता। मुक्त हो जाने पर भी मनुष्य कर्म करता हुआ तो देखा जाता है, किन्तु वह बालक के खेल और पागल के नृत्य की तरह होता है। किसी यन्त्र की तरह देह द्वारा उनके कार्य हुआ करते हैं, बस।**

बचपन में उत्पीड़न देखने से ठाकुर की मूर्च्छा।

आज शान्तिपुर के एक जबरदस्त प्रतापशाली, अत्याचारी जमींदार के बहुत बड़े भवन जनशून्य श्मशानतुल्य परिणाम हुए देखकर ठाकुर खेद प्रकट करके कहने लगे-**किसी समय इस घर की बड़ी ही सजावट थी। जमींदार ...बाबू के डर से इस घर के समीप से आने-जाने का किसी को साहस न होता था। शान्तिपुर के लोगों को इसके अत्याचार की आशंका सदा बनी रहती थी। आज कहाँ तो ये गये और कहाँ है उनका बड़े शौक का वह घर? देखते ही देखते थोड़े ही समय में सब बिल्कुल मटियामेट हो गया। सदा कुछ भी एक जैसा नहीं रहता, साथ में भी कुछ नहीं जाता, फिर भी एक व्यक्ति दूसरे को सताकर सुखी होना चाहता है, बड़ा आदमी बनना चाहता है! कोई यह नहीं सोचता कि इसका परिणाम क्या होगा।**

मैंने पूछा-'यह जमींदार कैसा अत्याचारी था? अत्याचार करने से उसकी कैसी दुर्दशा हुई थी?'

ठाकुर ने कहा-एक दिन इसका अत्याचार मैंने अपनी आँखों से देखा था। उसकी याद आ जाने से शरीर सिहर उठता है। मैं उस समय छः-सात वर्ष का था, हम उम्र मित्रों के साथ खेलते-खेलते एक दिन इस घर के दरवाजे पर पहुँचकर सुना कि जमींदार साहब रुपये के लिए एक गरीब आदमी को बुरी तरह सता रहे हैं। खेल छोड़कर मैं दौड़ता हुआ उस घर के भीतर पहुँचा। यहाँ देखा कि एक आदमी नीचे पड़ा है। उसकी छाती पर एक बाँस रखा है जिसके दोनों सिरों पर दो आदमी खड़े हैं। यह यंत्रणा के मारे हाथ-पैर पटकता है, उसके मुँह से खून निकल रहा है और बीच-बीच में उसका दम रुक जाता है। यह देखकर मैं पागल सा होकर बिलकुल जमींदार के सामने कूद पड़ा। मैं जोर से चिल्लाकर उससे कहने लगा-'तुम डाकू हो, डाकू! मारे क्लेश के वह मर गया तो, तुमको कुछ नहीं लगता? भला चाहो तो इसको अभी छोड़ दो, इसको इसी वक्त छोड़ दो।' ये बाते कहकर ही मैं मूर्च्छित हो गिर पड़ा। जमींदार ने उस आदमी को तुरन्त छोड़ दिया। लड़कों ने घर जाकर मेरे मूर्च्छित होने की खबर दी। थोड़ी देर में जब मुझे होश आया, तब जमींदार ने कहा-'अजी, तुम्हारे कहने से हमने उसको छोड़ दिया है। तुम तो बड़े हिम्मती दिखाई देते हो, तुमने मुझको धमकी दी, जरा सा डर तक नहीं लगा। मैंने उत्तर दिया, 'डरूँ किसलिए? मैंने तो ठीक ही कहा है। जानते नहीं, मैं गोसाईं का बेटा हूँ?'

कुछ दिनों बाद जमींदार ने एक असहाय ब्राह्मणी विधवा के घर में घुसकर उसका सब कुछ लूट लिया। विधवा रसोई बना रही थी, भात की हाँड़ी को लात मारकर चूल्हे पर से गिरा दिया,

फिर उसपर भरपूर अत्याचार किया। विधवा क्या करती? उसने इतना ही कहा-'मैं तो बिलकुल असहाय विधवा हूँ। हाय हाय! मेरे साथ तुमने ऐसा सलूक किया! अब मैं किससे नालिश करूँ? मेरा और है ही कौन? भगवान् से ही कहती हूँ, वे ही इसका फैसला करेंगे। तुमने मेरे साथ जैसा किया है, वैसा ही तुम्हारी स्त्री पर बीतेगा।' अचम्भे की बात है कि इस घटना के कुछ दिन बाद ही जमीदार साहब एक कठिन मामले में फँस गये। उसमें उनका सब कुछ लुट गया। उनको कठोर सश्रम कारावास का दण्ड भोगना पड़ा। सजा काटते-काटते जेलखाने में ही उनकी मृत्यु हुई। एक दिन उनकी विधवा पत्नी चूल्हे पर हविष्यान्न बना रही थी कि विपक्षी लोगों ने घर में घुसकर सब कुछ लूट लिया। बटलोई में भात अभी पक ही रहा था कि एक आदमी ने लात मारकर उसे गिरा दिया और बटलोई को लेकर वह चलता बना। नीच प्रकृति के ओछे आदमियों के विविध अकथनीय अत्याचारों को सहनकर जमींदार की स्त्री रोती-रोती घर से निकलकर चली गई। कहते ही है, सताई गई नीच स्त्री के शाप से ब्राह्मण का बाप भी नहीं बच सकता।' बात सोलह आने सच है। बिलकुल अधम, तुच्छ, दुराचारी भी यदि दारूण क्लेश पाकर श्राप देता है, एक ठण्डी साँस छोड़ता है तो अच्छे से अच्छा धर्मात्मा ब्राह्मण भी उससे बच नहीं सकता।

धर्म ही सार, और सब असार है।

इसके बाद ठाकुर ने कहा-**कुछ भी तो नहीं रहता। एकमात्र धर्म ही सार है और सब असार है। संसार के सुख के लिए, धन-**

दौलत के लिए, कभी असत्य मार्ग को स्वीकार मत करना, धर्म को नहीं छोड़ना। ऐसा करने में चाहे संसार (घर गृहस्थी) रहे चाहे या जाय, बल्कि भीख माँगकर सारा जीवन बिता देना। जिस प्रकार पति के प्रति सती की दृष्टि रहती है, उसी प्रकार धर्म पर साधक को सदा दृष्टि रखकर चलना पड़ता है। स्वयं भगवान् सभी दशाओं में धर्मार्थी की रक्षा किया करते हैं।

नाम और ध्यान के संबंध में उपदेश।

जिस दिन से शान्तिपुर आया हूँ, यहाँ अनेकों लोगों से बातचीत और परिचय हो रहा है। मेरे वेश को देखकर बहुत लोग प्रश्न करते हैं, 'तुम किस भाव के उपासक हो?' मैं उन लोगों के प्रश्न का कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दे सकता। कारण यह है कि मैं किसी विशिष्ट भाव की साधना नहीं कर रहा हूँ। मेरे भीतर समय-समय पर नाना प्रकार के भाव आते और चले जाते हैं। मैंने आज ठाकुर यह पूछा-'कोई यह पूछे कि किस भाव के उपासक हो तो क्या कहूँगा?'

ठाकुर ने कहा-**जिसे जो भाव अच्छा लगता है, वह उसे ही बताए। विष्णु अच्छे लगते हो तो वैष्णव कहो, और शिव अच्छे लगते हो तो शैव कहो, इसी प्रकार और भी।**

मैंने कहा-किसी समय कोई भाव अच्छा लगता है और थोड़ी ही देर में कोई दूसरा भाव श्रेष्ठ जान पड़ता है। स्थिरता से किसी एक का अवलम्बन नहीं कर पाता हूँ। ऐसी चंचलता क्यों होती है?

ठाकुर ने कहा-**अनेक प्रकार की दशाओं में पड़कर, संसर्ग और सन्देह से पूर्वाभास आकर उपस्थित हो जाता है। जब तक कर्म है, तब तक कोई किसी एक पर स्थिर नहीं हो सकता।**

चंचलता से बचना असंभव होता है। हमारा एकमात्र अवलम्बन नाम ही है, उसी को पकडे रहो। इस नाम के भीतर होकर ही भगवान् का अनन्त राज्य, अनन्त रूप, अनन्त भाव और अनन्त लीला प्रकट होगी। अनन्त राज्य में, अनन्त दिशाओं से होकर अनन्त भाव से चलना होगा। कोई एक छूट जायगा तो बाद में ऐसा जान पड़ सकता है कि उस ओर से उस भाव से चलने पर और भी सुविधा होती। अंत में मन में इस ढंग का पछतावा न हो, इसलिए अनेक दशाओं के भीतर होकर, विभिन्न भावों से, अनेक दिशाओं में होकर चलना साधन के लिए आवश्यक है। ऐसा करने से सब कुछ मालूम भी हो जाता है।

यह सब सुनकर मैंने फिर पूछा-'मन तो नितान्त चंचल है,उसके ऊपर बाहरी बाधाएँ भी बहुत सी हैं, फिर स्थिर होकर नाम किस प्रकार करूँ? हम लोगों के यहाँ क्या कुछ ध्यान की व्यवस्था नहीं है?'

ठाकुर ने कहा-**वैध ध्यान और राग का ध्यान, ऐसे दो प्रकार के ध्यान हैं सही-किन्तु हम लोगों को उनकी कुछ आवश्यकता नहीं है। मन को किसी एक चक्र में रखकर और आँखों की दृष्टि को किसी वस्तु में स्थिर करके नाम किया जाता है। ऐसा करने पर बहुत से उत्पातों से रक्षा पाई जाती है। कार्य भी सभी अवस्थाओं में प्रायः ठीक चलता है। चक्र में मन को रखकर नाम करते-करते जरा स्थिर होते ही चक्र के भीतर एक रूप प्रकट होता है, वह ज्यों ही प्रकट हो त्यों ही उसको आयत्त कर लो। हमारे यहाँ कल्पना करके किसी भी रूप के ध्यान की व्यवस्था**

नहीं है। भगवान के अनन्त रूप हैं। यह कौन कह सकता है कि वे किस रूप में किसके आगे प्रकट होंगे? और इस बात की भी क्या स्थिरता है, कि वे सदा एक ही रूप में दर्शन देंगे? केवल श्वास-प्रश्वास के साथ-साथ नाम करते जाओ, इसी में सब कुछ ठीक हो जायगा।

मैंने पूछा-'तो नाम करते-करते मन स्थिर हो जायगा या मन को स्थिर करके नाम करना चाहिए?'

ठाकुर ने कहा-**क्या ऐसा कोई कर सकता है? श्वास-प्रश्वास के साथ भगवान का नाम करते-करते, उन्हीं की कृपा से मन स्थिर हो जाता है। ऐसा करने पर धीरे-धीरे सब समझ लोगे।**

नौ वर्ष की उम्र में ठाकुर की दया और उदारता।

आज तीसरे पहर ठाकुर के साथ घर से चले और कोई डेढ मील पर, निर्जन स्थान में, एक जीर्ण कुटीर में पहुँचे। वहाँ थोड़ी देर बैठने पर ठाकुर ने कहा-**बहुत समय हुआ इस कुटीर में एक हीन जाति के भजनानन्दी वैष्णव बाबाजी रहते थे। मैं उनके लिए समय- समय पर घर से श्यामसुन्दर का प्रसाद ला दिया करता था। उनको देह छोड़े बहुत समय हो गया। तब से यह स्थान खाली पड़ा है।**

बाबाजी से ठाकुर का परिचय कहाँ पर, किस प्रकार हुआ था- यह जानने की इच्छा हुई तो मैंने पूछा।

ठाकुर कहने लगे-**मैं उस समय नौ वर्ष का बालक था। धूमधाम से किये गये एक भोज में प्रसाद पाने के लिए बाबाजी**

हमारे घर गये थे। निमन्त्रित ब्राह्मणों को भोजन कराने के पहले अन्य जातिवालों को प्रसाद नहीं दिया जाता। बाबाजी ने दरवाजे पर खड़े होकर, दो तीन बार खाना माँगा। उनसे कहा गया कि जरा ठहर जाइए, ब्राह्मणों के बैठते ही आपको भोजन मिलेगा। किन्तु बाबाजी प्रतीक्षा किए बिना ही जाने लगे। तब मैंने घर के भीतर जाकर कहा, 'एक वैष्णव ने प्रसाद माँगा था, वे बिना प्रसाद पाये ही चले जा रहे हैं! भूखे होने से खाने को माँग रहे हैं, भोजन का सामान रखा हुआ है, दे देना चाहिए-इसमें ब्राह्मण और शूद्र से क्या मतलब? मुझसे सबने कहा, 'बाबाजी से जरा ठहरने को कहो।' मैंने लौटकर देखा तो बाबाजी दरवाजे पर नहीं थे, वे रास्ते से चले जा रहे थे। मैंने दौड़कर उन्हें जाकर पकड़ा और बहुत आग्रह किया, किन्तु बाबाजी नहीं लौटे। तब मैंने उसके स्थान का पता पूछ लिया। थोड़ी देर में ब्राह्मणों के भोजन करने को बैठ जाने पर मैं एक व्यक्ति के लायक प्रसाद माँगकर पूछता हुआ यहाँ चला आया। प्रसाद देकर मैंने पूछा, 'बाबाजी, प्रतिदिन आपका निर्वाह किस प्रकार होता है?' बाबाजी ने कहा, 'भीख माँग लाता हूँ। जिस दिन भगवान् जो दे देते हैं, वही मिल जाता है।'

इसके बाद मैं जब तक घर पर रहा, भूख लगते ही मुझे बाबाजी की याद आ जाती थी। प्रयास करके श्यामसुन्दर का प्रसाद बचा लेता, बाबाजी को दे आता था। ऐसा किये बिना भोजन करना अच्छा न लगता था। शान्तिपुर में कुछ समय पहले तक वैष्णव-महापुरुषों की कमी न थी। आजकल वैसे महात्मा नहीं दिखाई देते। धीरे-धीरे सभी का लोप हो गया।

जब से ठाकुर की बात सुनी है, दिनरात उस घटना की याद आती रहती है। अहा की छः-सात वर्ष की अवस्था में जो एक व्यक्ति की यातना देखकर मारे क्लेश के मूर्च्छित हो गिर पड़े और नौ अवस्था वर्ष की में जिन्हें बेघर, भिक्षोपजीवी भूखे बाबाजी की याद आने पर बहुत दिनों तक भोजन अच्छा न लगता था एवं रोज आँधी-पानी और गर्मी सहकर भी डेढ़ मील चलकर जो उन्हें भोजन दे आया करते थे उन्हीं दया के निधान ने मुझे भी आश्रय दिया है, सो हे भगवान्, यह मेरे पिछले जन्म के किस पुण्य का फल है? धन्य, दया के ठाकुर, तुम्हारे गौरव से हम लोग भी धन्य हैं।

मैंने ठाकुर से पूछा-'दूसरे के रोग, शोक और भूख-प्यास का कष्ट देखकर वैसी ही पीड़ा मुझे क्यों नहीं होती? मुँह से केवल हाय-हाय कर देता हूँ। सच्ची दया का उदय प्राणों में कब होगा?

ठाकुर ने कहा-**यह कैसे बताया जा सकता है? सभी के भीतर सारी सद्वृत्तियाँ है-समय आते ही वे प्रकट हो जाती हैं, जिस प्रकार कि समय आने पर वृक्ष में फल-फूल आ जाते हैं। नियम से चलते हुए समय की प्रतीक्षा करके पड़े रहो।**

मैंने प्रश्न किया-'आप अकसर कहा करते हैं कि 'समय आने पर होगा।' तो इस समय का अर्थ क्या कोई निर्दिष्ट अवधि है?'

ठाकुर ने कहा-**केवल वही नहीं है। एक खास ऋतु में खास किस्म के पेड़ों में फल लगते हैं; किन्तु उस ऋतु में भी पेड़ की उम्र फल लगने लायक होनी चाहिए। जब तक चारा बढ़ नहीं जाता, उसकी रक्षा पशुओं से करनी पड़ती है, उसको बाड़ी से घेरना पड़ता है, पानी देना पड़ता और धूप लगने का प्रबन्ध करना पड़ता है। जिस प्रकार ये कार्य आवश्यक हैं, वही बात**

अन्य विषयों के लिए भी हैं। नियम से न रहो तो समय भी नहीं आता।

सिद्ध चैतन्यदास बाबाजी की भविष्यवाणी।

भोजन करने के पश्चात् बहुत सी बातें सुनने पर मैंने ठाकुर से पूछा-'सुना है, बहुत समय पहले एक बाबाजी ने यह कहा था कि आपको 'माला-तिलक धारण करना होगा।' यह कब की बात है? क्या आपने बाबजी से इस विषय में कोई प्रश्न किया था या उन्होंने यों ही कहा था?'

ठाकुर ने कहा-**ब्राह्मसमाज में सम्मिलित होने के कुछ समय पश्चात् मैं सिद्ध चैतन्यदास बाबाजी के दर्शन करने नवद्वीप गया था। उस समय इस देश के सभी लोग बाबाजी को बड़ा भारी सिद्ध पुरुष मानकर उनकी श्रद्धाभक्ति किया करते थे बाबाजी का निष्किंचन भाव, स्वाभाविक विनय और भक्तिभाव देखकर बहुत ही प्रसन्नता हुई। ये कुत्ते-बिल्ली तक को भूमि पर अवनत होकर नमस्कार किया करते थे। फटी पुरानी कथरी, नारियल की कटोरी और एक मिट्टी के करुवा के सिवा बाबाजी के पास कुछ भी न था। मैंने उनके पास थोड़ी देर तक बैठे रहकर पूछा, 'बाबाजी, भक्ति कैसे होती है?' मेरा प्रश्न सुनकर बाबाजी ने कुछ उत्तर नहीं दिया, वे एकटक मेरी ओर देखते हुए थर-थर काँपने लगे। उनकी देह में बारं-बार रोमांच होने लगा। उनकी शिखा तक खड़ी हो गई। बाबाजी ने अस्फुट स्वर में एक गम्भीर हुकार करके कहा, 'क्या पूछा गोसाईं? तुम पूछते हो कि क्या करने से भक्ति होती है! तुम पूछते हो कि क्या करने से भक्ति होती है !!**

तुम पूछते हो कि क्या करने से भक्ति है!!!' इतना कहकर वे समाधिस्थ हो गये। तीन घण्टे तक बाबाजी को बाह्य ज्ञान न रहा। उस समय बाबाजी के शरीर में अश्रु, कम्प और पुलक आदि अनेक प्रकार के अद्भुत भावों को देखकर मैं बिलकुल अवाक् हो गया। समाधि टूटने पर बाबाजी ने साष्टांग होकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा, 'प्रभो, आशीर्वाद दीजिए जिससे निष्किंचन कंगाल हो सकूँ। जब तक ऐसा नहीं होता, भक्ति की नामगन्ध भी नहीं होती।' इस समय आप किसी भी भाव में क्यों न चलें, मैं आपके मस्तक में तिलक, कण्ठ में माला साफ-साफ देख पा रहा हूँ। भक्ति तो आपके ही भंडार की वस्तु है। हमारे अद्वैत के भण्डार में क्या भक्ति की कमी है? बाबाजी की बात सुनकर मैं चला

आया। तब मैंने एक बार कल्पना तक नहीं की थी कि कभी मुझे फिर तिलक और माला लेनी होगी। एक और सज्जन ने बाबाजी से यही प्रश्न किया तो उन्होंने उत्तर दिया था 'दो पैसे में भक्ति मिलती है।' उसने फिर पूछा-'यह कैसी भक्ति है, क्या आपने मेरा उपहास किया है?' बाबाजी ने कहा, 'हरे कृष्ण! उपहास नहीं किया, ठीक ही कहा है। दो पैसे खर्च करके 'बटतला' की छपी एक 'नरोत्तम दास की प्रार्थना' लाकर कुछ दिनों तक पढ़िए न उसको पढ़ने से सब समझ में आ जाएगा।'

मैंने ठाकुर से पूछा-'दूरदृष्टि, भविष्यदृष्टि और अणिमादि ऐश्वर्य जो कि सिद्ध पुरुषों को प्राप्त रहता है, वह सब क्या योग साधन से मिलता है?'

ठाकुर ने कहा-**कुछ ऐसी शर्त नहीं है कि योग साधन से ही ये**

ऐश्वर्य मिलें, किसी भी रीति से क्यों न हो, चित्त को एकाग्र होना चाहिए। तब सभी ऐश्वर्य अपने आप आ जाते हैं। किन्तु ऐश्वर्य को प्रकट करने से ही सत्यानाश हो जाता है। गुप्त रखने पर ही ये शक्तियाँ धीरे-धीरे बढ़ती रहती हैं। इन ऐश्वर्यों को प्राप्त करना तो सहज है, किन्तु इनकी रक्षा करना बहुत कठिन है। इन ऐश्वर्यों का त्याग करना ही योगियों का सच्चा त्याग है। सैकड़ों योगियों के साधन की सम्पत्ति इस ऐश्वर्य के तूफान में पड़कर बिलकुल डूब गई है। बहुत ही सावधान रहना पड़ता है।

मैंने फिर कहा-'यदि प्रयोग ही न किया, उसका उपयोग ही न हुआ तो फिर इन शक्तियों का क्या लाभ है?'

ठाकुर ने कहा-**सारी शक्तियाँ और समस्त ऐश्वर्य भगवान् के ही है। उन्हीं की कृपा से मनुष्य को इनकी प्राप्ति होती है। उन्हीं का इशारा पाकर, तब इनका उपयोग करना चाहिए। अपनी मर्जी से कुछ करते ही गड़बड़ हो जाती है।**

खुदा के ऊपर खुदाई।

मैने फिर पूछा-'शास्त्रों में जिन कार्यों को सत्कार्य कहा गया है, धर्मकार्य कहा गया है, उनके संबंध में भी क्या योगैश्वर्य का प्रयोग नहीं करना चाहिए?'

ठाकुर ने कहा-**सत् और असत् को समझ लेना बहुत सहज नहीं है। मुसलमानों के धर्मग्रन्थ में इस विषय पर बड़ी अच्छी एक कहानी है। एक दयालु फकीर ने शहर में दुःख, दरिद्र, रोग, शोक, इत्यादि से लोगों के क्लेश पाते देखकर सोचा-आह, खुदा इनके लिए तो कुछ नहीं कर रहा है। फकीर ने खुदा से प्रार्थना**

की ‘प्रभो! यदि एक ही दिन के लिए शक्ति देकर मुझे इस पर अपनी खुदाई करने दो तो मैं सबके सब प्रकार के क्लेश दूर कर परम शान्ति स्थापित कर दूँ। खुदा ने ‘यही सही’ कहकर फकीर की प्रार्थना स्वीकार कर ली। अब फकीर शहर में सर्वज्ञ और शक्तिमान हो गया। उसने तुरन्त ही सभी प्राणियों के दुःख, कष्ट, रोग और शोक को बिलकुल दूर करके, बड़े आनन्द की तरंगे उठा दीं। एक बड़ा भारी दुष्ट, घोर पाखण्डी उस शहर में एक सुन्दरी युवती पर अत्यन्त आसक्त था। बहुत चेष्टा करने पर भी वह युवती को जीवित अवस्था में प्राप्त नहीं कर सका। अकस्मात् स्त्री का शरीर छूट गया। उसके घरवाले और रिश्तेदार उसे दफनाकर चले गये। थोड़ी देर में उस दुराचारी को इसकी खबर मिली तो वह सूनी जगह में उस कब्र के पास पहुँचा और युवती की लाश को कब्र में से निकालकर अपनी जघन्यवृत्ति को चरितार्थ करने की तैयारी करने लगा। इस घटना पर ज्यों ही फकीर की नजर पड़ी, त्यों ही वह तलवार लेकर कूद पड़ा और पलभर में घटनास्थल पर पहुँच कर ‘काफिर’, ‘काफिर’ चिल्लाता हुआ उसकी गर्दन उड़ाने के लिए तलवार का वार करने लगा। खुदा ने उसी क्षण तलवार को पकड़कर फकीर से कहा ‘यह क्या कर रहे हो? जरा सी देर के लिए खुदाई पाकर यह क्या करते हो। यह जिन्दगी भर ऐसे ऐसे न जाने कितने दुष्कर्म करता रहा है, उनको देखते रहकर भी मैं इसे क्षमा करता आया हूँ, और जिस तरह औरों का पालन करता हूँ, उसी तरह सभी दशाओं में इसका पालन मैंने किया है, इसे एक दिन भीभूखा नहीं रखा और तुम इसका एक ही दोष

देखकर इसकी जान लेने पर उतारु हो गये! जाओ, अब तुम्हें खुदाई करने की आवश्यकता नहीं।' फकीर ने कहा, ' प्रभो! मैंने कुछ गलत नहीं किया है। कुरान का ही तो हुक्म है कि ऐसे अपराधी का कत्ल कर डालना चाहिए।' खुदा ने पूछा, 'कुरान तुम्हारे लिए है कि मेरे लिये?' फकीर ने उत्तर दिया, 'मनुष्य के लिए है, मेरे लिए है।' खुदा 'तो फिर? पर आज तो तुम पुराने तुम नहीं थे। आज तो तुम खुदा बन गये थे। खुदा के लिए तो कुरान का हुक्म नहीं है! तब फकीर भगवान् के कार्य और असली दया को देखकर अपना भला करने की भूल और हैसियत को समझकर बिलकुल मुग्ध और लज्जित हो गये। साधारण मनुष्य को असाधारण शक्ति मिल जाने पर उसके द्वारा संसार का विशेष अनिष्ट होता है। इसी से रामचन्द्रजी ने शूद्र तपस्वी का वध किया था।'

ठाकुर ने इन विषयों पर बहुत सी बात कहीं। शक्ति मिल जाने पर शुभ की अपेक्षा विपत्ति का ही सामना अधिक करना पड़ता है।

ठाकुर का शान्तिपुर से कलकत्ता जाना।

६ अग्रहायन शनिवार। ठाकुर की बाल्यलीलाभूमि, शान्तिपूर्ण, मधुर शान्तिपुर का निवास आज हम लोगों के लिए पूरा हो गया। ढाका, बरीशाल, कलकत्ता और काकिना आदि स्थानों के गुरुभ्राता लोग ठाकुर को लेकर कलकत्ते के लिए रवाना हुए। कलकत्ते के गुरुभाईयों का अत्यन्त हार्दिक आग्रह जानकर कुछ दिन पहले ठाकुर ने उनको बता दिया था कि 'हम शीघ्र ही वहाँ आवेंगे।' कलकत्ते के गुरुभाईयों में से कोई भी सम्पन्न नहीं है, सभी गरीब

हैं। ठाकुर के साथ भीड़ पहुँचेगी तो वे लोग खर्च का प्रबन्ध किस प्रकार कर सकेंगे, इसका विचार करके वे लोग जरा चिन्तित हो गये थे। उन लोगों ने ठाकुर को साफ-साफ बता भी दिया था कि यदि आपके साथ बहुत लोग कलकत्ते आयें तो बड़ी असुविधा होगी तब ठाकुर ने उन लोगों की उस बात का कुछ उत्तर न देकर जरा हँस दिया था।

शान्तिपुर से ठाकुर के कलकत्ता पहुँचने का निर्दिष्ट दिन मालूम हो जाने पर, श्रद्धेय अचिन्त्य बाबू, आदि गुरुभ्राता ठीक समय पर अहीरीटोला स्टीमर घाट पर पहुँचकर प्रतीक्षा करने लगे। उन्होंने समझा था कि ठाकुर के साथ ३-४ आदमी आयेंगे, इसलिए उन लोगों ने पहले ही ठाकुर के ठहरने के लिए एक छोटा सा मकान ठीक कर लिया था। रास्ते में एकाएक स्टीमर की गति रुक जाने से स्टीमर कलकत्ते मे ठीक समय पर नहीं पहुँचा। यहाँ गुरुभाई लोग देर तक स्टीमर की आशा में बैठे रहकर, अन्त में रात को दस बजे बहुत ही निराश हो, अपने-अपने स्थान को चले गये।

हम लोगों को कलकत्ता पहुँचने में बहुत रात हो गई। ठाकुर स्टीमर से उतरते ही, किसी की अपेक्षा न करके, सीधे ब्राह्मप्रचारक श्रीनगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय के डेरे पर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर हम लोगों ने देखा कि वे और उनकी सहधर्मिनी ‘माँ आनन्दमयी’ हम आठ-दस आदमियों के लायक भोजन सामग्री रखे हुए बडी उत्कण्ठा के साथ ठाकुर के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ऐसा जान पड़ा मानो उन्हें पहले ही किसी प्रकार से मालूम हो गया होगा कि हम लोग उस दिन, उनके स्थान पर जाकर ठहरेंगे।

अगले दिन, ठाकुर के आने की खबर पाकर सभी लोग आ गये।

गुरुभ्राताओं को असीम आनन्द हुआ। उन लोगों का समावेश कहाँ पर होगा, यह सोचकर सभी को थोड़ी सी चिन्ता हुई। उसी समय श्रीसुरेश चन्द्र देव, बारह दिन की छुट्टी लेकर, वैद्यनाथ जाने लगे। गुरुभाईयों ने देव बाबू से पूछा कि आपके खाली घर में इन सबके ठहरने का प्रबन्ध हो सकता है कि नहीं, तो उनके बड़े आग्रह से, उनके मसजिदबाड़ी स्ट्रीट वाले खाली घर में हम लोगों के टिकने का प्रबन्ध हो गया। केवल एक दिन नगेन्द्र बाबू के यहाँ रहकर सोमवार को भोजन करने के उपरान्त ठाकुर का आसन लेकर हम लोग उस घर में पहुँच गये।

मसजिदबाड़ी स्ट्रीट का निवासस्थल।

अग्रहायन ८ से १४। इस स्थान पर पहुँचकर, ठाकुर के रहने का कमरा हम लोगों ने सबसे पहले पसन्द किया। रास्ते की ओर, खुले हुए दुमंजिले के कमरे के एक कोने में ठाकुर का आसन लगाया। इस कमरे के भीतर की ओर सामने ही बड़ा बरामदा है और बरामदे से लगे हुए एक ओर दो बड़े-बड़े कमरे हैं। जो गुरुभ्राता लोग ठाकुर के साथ हैं, वे सभी यह सोचकर बहुत ही प्रसन्न हुए कि वे आराम से इस मकान में रह सकेंगे। किन्तु हम लोग अधिक देर तक प्रसन्न नहीं रह सके। अब देखते हैं कि अपराह्न दर्शनार्थियों के झुण्ड के झुण्ड आकर जब मकान को परिपूर्ण कर देते हैं, तब जगह न रहने से बड़ी असुविधा होती है। सन्ध्या-कीर्तन के पश्चात्, रात बढ़ने पर, बाहर वालों की भीड़ भाड़ तो कम हो जाती है परन्तु फिर गुरुभाईयों के आ जाने से मैं अस्थिर हो जाता हूँ। अदालत और दफ्तरों की छुट्टी होते ही सभी गुरुभाई यहाँ आ जाते हैं और कई

तो सारी रात यहीं बिताकर सुबह अपने स्थान पर लौट जाते हैं। ठाकुर का कमरा सारी रात भरा रहता है। कोई दो-तीन घण्टे सोता है कि नहीं इसमें सन्देह है। रात को मात्र थोड़ा सा जलपान करके, प्रायः बिना खाये ही, क्लान्त होकर गुरुभाई लोग यहाँ रहते हैं। वे लोग प्रायः इसी प्रकार सारी रात जागरण करके प्रतिदिन दफ्तर, अदालत और व्यवसाय-वाणिज्य आदि का काम बिना विघ्न के किस प्रकार कर लेते हैं, यह सोचने से मुझे विस्मय होता है।

वृन्दावन बाबू की सेवानिष्ठा।

ठाकुर के प्रति गुरुभाईयों के आन्तरिक आकर्षण के कुछ एक दृष्टान्त देखकर मैं दंग रह जाता हूँ। ठाकुर का संग प्राप्त करने के लिए, किसी ओर की, किसी प्रकार की बाधा को गुरुभाई लोग तिनके की बराबर नहीं मानते। किसी कारण ठाकुर की सेवा में थोड़ी सी भी असुविधा होने की खबर सुनते ही वे लोग बहुत ही बेचैन हो जाते हैं।

आज हमारे यहाँ चूल्हा जलाने के लिए कंडे न रहने की खबर स्त्रियों ने दी। कहा कि कंडे मँगाये बिना गोस्वामी के लिए रसोई न बन सकेगी। तब श्रीवृन्दावन चन्द्र मजूमदार तुरन्त ही कंडे लाने के लिए रवाना हो गये। कंडो की तलाश में उन्हें कई जगह भटकना पड़ा। अन्त में वे गोवाबागान में एक कंडेवाले की दुकान पर पहुँचे। अब उन्होंने सोचा कि मजूर के सिर पर बोझा रखवाकर पहुँचने में बड़ी देर होगी। इससे किसी की परवाह न करके जूता, मोजा, कोट और गरम कपड़ा पहने रहने पर भी कंडों के टोकरे को सिर पर रखकर वे चल पड़े। वे बड़े रास्ते से झपटते हुए बहुत जल्दी आ

गये। ये कोई साधारण दर्जे के आदमी नहीं हैं, उच्च पदस्थ सरकारी अफसर हैं, कायस्थों में इनकी बड़ी इज्जत है और कलकत्ते के कई सम्मानित लोगों से इनका परिचय और आत्मीयता है। ठाकुर के साथ इनका सुन्दर सख्यभाव है। ठाकुर अक्सर इनकी असाधारण सरलता और उदारता की बातें कहकर आनन्द पाते हैं।

ठाकुर का मुक्तिफौज दर्शन-मेरा अभिमान चूर्ण।

हमारे गुरुभाई श्रद्धेय श्री श्रीचरण चक्रवर्ती ने जनरल बूथ और मुक्तिफौज पर एक पुस्तक लिखी है। पुस्तक को सुनकर ठाकुर परम सन्तुष्ट हुए। इस समय मुक्तिफौज के अध्यक्ष जनरल बूथ की, ठाकुर के समीप अक्सर चर्चा होने लगी।

निःस्वार्थ कर्मवीर, परोपकारी ,दयालु जनरल बूथ का असाधारण सेवाव्रत इस पृथ्वीमंडल पर फैल गया है। बड़े-बड़े लार्ड घरानों की सम्भ्रान्त महिलाएँ, संसार-सुख को तिलांजलि देकर इस महात्मा के दृष्टान्त के अनुसार रोगी सेवा-व्रत में जीवन लगा देने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हुई हैं। वे कंगाल वेश में भिक्षा के द्वारा निर्वाह करके, रास्ते के आश्रयहीन अपाहिज, अन्धे, लूले-लँगड़े ही नहीं बल्कि कोढियों तक को बड़े आग्रह से बढ़िया स्वास्थ्यप्रद स्थान में ले जाती हैं और बड़ी सावधानी तथा लगन से उन लोगों की सेवा-सुश्रूषा किया करती है। रोगियों के प्रति इनकी हमदर्दी, प्रेम और रोगियों की परेशानी में भी इनके धैर्य, सहनशीलता एवं सेवा परायणता की बातें सुनकर ठाकुर रो पड़े और उसे देखने को उतावले हो गये।

ठाकुर ने कहा-**पर दुःख से जिनका हृदय दुःखी होता है, वे तीर्थ स्वरूप हैं, उनके दर्शन से भी लोग पवित्र हो जाते हैं।**

यह कहकर ठाकुर, दो बजे के लगभग सबको साथ लेकर मुक्तिफौज देखने चले। सबके साथ जाने को मैं भी तैयार हुआ। तब ठाकुर ने मेरी ओर देखकर बड़े स्नेह से कहा-**मेरा आसन खाली घर में रहेगा; तुम थोड़ी देर तक यहाँ नहीं रह सकोगे?**

एक गुरुभाई ने कहा-'क्यों? घर पर और भी तो आदमी हैं।'

ठाकुर ने फिर कहा-**केवल आसन की रखवाली के लिए ही नहीं। मुक्तिफौज में कम उम्र वाली, युवती मेम लोग हैं। वहाँ ब्रह्मचारी का जाना क्या ठीक होगा?**

ठाकुर के अभिप्राय को समझकर मैं रुक गया। मैं अपने आसन पर बैठकर सोचने लगा, 'हाय रे भाग्य! यदि मैं सर्वत्र, सभी दशाओं में ठाकुर के साथ न रह सका तो इस ब्रह्मचर्य की मुझे क्या आवश्यकता?'

मन में बड़ा दुःख हुआ, ठाकुर पर क्षोभ भी बहुत हुआ। सोचा 'ठाकुर ने अभी-अभी कहा था, वे तीर्थस्वरूप हैं, उनको देखने से भी पुण्य होता है। तो ठाकुर और सभी को साथ लेकर तीर्थ को चले गये, सभी पवित्र होंगे, एक मैं ही जाता तो बिल्कुल अपवित्र हो जाता? खासकर जहाँ पर ठाकुर स्वयं उपस्थित हों वहाँ भी मुझे ले जाने में इतनी आशंका! तो क्या ठाकुर मुझे इतना अधम, इतना कामुक समझते हैं? इसका खेद करते-करते ठाकुर से मैं बहुत ही क्षुब्ध सा हो गया। मैं ठाकुर का खयाल करते-करते मुक्तिफौज को ही देखने लगा। इस समय, अपने ही अनजाने, कल्पना की धारा में बहकर मैं सुन्दरी मेमों युवतियों का अंग सौष्ठव और रूप-लावण्य

को मन ही मन अंकित करने लगा। अन्त में पसीने से तर होकर सुस्त होकर बरामदे में पड़ा रहा।

मेरे अभिमान को चूर्ण करने के लिए ठाकुर ने दया करके मुझे मेरा असली रूप दिखला दिया-मैंने इस समय इस बात को अच्छी तरह समझ लिया।

ठाकुर ने मुझे ब्रह्मचर्य दिया है, अतएव इस ब्रह्मचर्य का नियम भंग करके वे शास्त्र की मर्यादा तोड़ने को किसी तरह प्रश्रय न देंगे। इसी से मुझे स्त्रियों के भीतर अपने साथ भी नहीं ले गये। उन्होंने कहा-**'क्या वहाँ ब्रह्मचारी का जाना ठीक होगा?'**

इसको मैंने समझा कब? मैंने इसका अर्थ कुछ दूसरा ही समझ लिया; मानो मेरी प्रकृति की दुर्बलता को लक्ष्य करके ही ठाकुर ने वे बातें कहीं थीं। जो हो, अपनी दशा को स्वयं बिना समझे मैं ठाकुर के कार्य से जैसे अप्रसन्न हो रहा था, वैसे ही ठाकुर ने दया करके मेरी प्रकृति मुझे दिखलाकर, मेरे उस अभिमान को चूर्ण कर डाला।

ठाकुर की अनुपस्थिति में डाकखानों के डेपुटी कंट्रोलर, ब्राह्म श्रीउमाचरण दास ने आकर मुझसे पूछा-'कब आने पर गोस्वामीजी एकान्त में मिलेंगे?' इनसे बातें करने पर मुझे मालूम हुआ कि ये दो-एक दिन में ही ठाकुर से दीक्षा लेंगे। इनसे मैंने दो और तीन बजे के अंदर आने के लिए कह दिया।

गुरुभ्राता डाक्टर नवीनचन्द्रघोष आये और ठाकुर के लौटने की प्रतीक्षा करने लगे। ये मेरे बड़े दादा के घनिष्ठ मित्र, सहपाठी हैं। इनके कहने से मैंने दादा को लिखा कि ठाकुर से दीक्षा लेने के लिए आ जाइए। इसके लिए मैं ठाकुर से अनुमति लेने के लिए भी नहीं ठहरा।

ठाकुर जब वापस लौट आये तब मौका पाकर मैंने उनसे पूछा- 'नियम से रहकर जितना ही न करता हूँ उतनी ही रिपु की वृद्धि देख रहा हूँ। साधारण मनुष्यों की अपेक्षा साधकों के लिए की प्रबलता अधिक होती है? काम की उत्तेजना तो किसी तरह शान्त नहीं हो रही है।'

ठाकुर ने कहा-**हमारे शरीर और मन में काम अत्यन्त अभ्यस्त हो गया है। साधारण लोगों की अपेक्षा साधकों के लिए ये सब बहुत प्रबल रहते हैं, क्योंकि ये सब तो आत्मा की ही वृत्तियाँ हैं। पानी और उत्ताप आदि मिलने से जिस प्रकार वृक्ष बढ़ते हैं, उसी प्रकार साधन भजन द्वारा भी आत्मा की वृत्तियों की पुष्टि होती है। हाँ जब ये वृत्तियाँ बहिर्मुख रहती हैं तभी एक रिपु का सा कार्य करती हैं। अन्तर्मुख होते ही साधक समझ जाते हैं कि इनकी वृद्धि की जितनी आवश्यकता थी; इस वृद्धि से ही तब फिर बहुत आनन्द आता है। साधन भजन द्वारा आत्मा की समस्त वृत्तियों की पुष्टि होना स्वाभाविक है। ये वृत्तियाँ जब तक बहिर्मुख दशा में रहती हैं तभी तक रिपु जैसा कार्य करती हैं, अनिष्ट करने वाली लगती हैं, किन्तु भगवत्कृपा से जहाँ एक बार इनका मुँह फिर जाता है, ये ही परम उपकारी हो जाती हैं। साधकों के जीवन की दशाएँ दूसरे ही ढंग की होती हैं। साधारण लोगों जैसा इनका कुछ भी नहीं होता। एकमात्र उनके (भगवान के) अनुगत होने पर ही निरापद हुआ जा सकता है।**

कॉलेज के कुछ छात्रों का संकीर्तन; मुकुन्द

घोष का आकर्षण।

ठाकुर के कलकत्ते आने की खबर पाकर एक दिन मुकुन्द घोष ने ठाकुर को कीर्तन सुनाने का विशेष आग्रह प्रकट किया। इसी के अनुसार दिन भी निश्चित हो गया। किन्तु उस दिन ठाकुर बहुत बीमार हो गये, जोर से बुखार आ गया। उधर उसी दिन मुकुन्द घोष के भतीजे की अकस्मात् मृत्यु हो गई। उसे लेकर मुकुन्द घोष श्मशान गये। शाम को कोई पाँच बजे बकुलाल बाबू और अमिय बाबू आदि कॉलेज के छात्र, ठाकुर को कीर्तन सुनाने के लिए, आये। ठाकुर की बीमारी की खबर पाकर वे लोग ऊपर नहीं आये, नीचे की मंजिल में ही हरिसंकीर्तन करने लगे। कीर्तन धीरे-धीरे खूब जम गया। ठाकुर बीमार होने पर भी आसन पर स्थिर न रह सके, वे उठकर खड़े हो गये और लाठी के सहारे काँपते-काँपते नीचे कीर्तनस्थल में जा पहुँचे। ठाकुर को देख कर सभी का उत्साह बढ़ गया। ठाकुर जोर-जोर से हरिध्वनि करके नृत्य करने लगे, गुरुभाई लोग भी मस्त हो गये। इस कीर्तन में लगभग दो घण्टे तक सभी लोग भाव के आवेश में अभिभूत रहे। इसी समय अकस्मात् मुकुन्द घोष भी आकर संकीर्तन में शामिल हो गये। त होकर पूछा-'आप इस समय किस

, इसी से लहो गया; आज मुझे पूर्ण दर्शन

उनको देखकर कीर्तन के अन्त में हमारे किसी गुरुभाई ने विस्मित होकर पूछा-'आप इस समय किस प्रकार आ गये? उन्होंने कहा श्मशान में प्रभु की बात याद आते ही, न जाने कैसा मन हो गया, इसी से सत्कार कार्य के बाद घर न जाकर यहाँ दौड़ा चला

आया। मेरा आना सफल हो गया; आज मुझे पूर्ण दर्शन मिल गये। पहले भी एक बार प्रभु के ऐसे ही दर्शन मिले थे।'

पता लगाने से मालूम हुआ कि गत १२९४ बं. सन् में ठाकुर जब शान्तिसुधा का विवाह तय करने कलकत्ते के चोरबागान में आकर श्रीनगेन्द्र बाबू के यहाँ उतरे थे, तब एक दिन नगेन्द्र निमन्त्रित होकर काँसारीपाड़ा के श्रीहरजहर के घर गये थे। वहाँ पर ठाकुर ने भगवान का नाम गान सुनने की इच्छा प्रकट की तो मुकुन्द घोष ने कीर्तन किया था। उस कीर्तन में ठाकुर की दशा देखकर कई लोग अचेत हो गये थे और मुकुन्द भी बिल्कुल मुग्ध हो गये थे। तभी से मुकुन्द के हृदय में सदा यह आकांक्षा रहती थी कि ठाकुर एक बार फिर मिल जायें तो कीर्तन सुनाकर वैसे ही दर्शन पा लूँ।

वैष्णव दर्शन-महाप्रभु का वृत्तान्त।

आज ठाकुर एक सज्जन से मिलने घर से चले। योगजीवन, सतीश और मैं उनके साथ थे। काफी रास्ता चलकर हम लोग एक घर में पहुँचे। जिनके यहाँ गये थे, वे ठाकुर को देखकर अत्यन्त आनन्द प्रकट करने लगे। ठाकुर के साथ हम लोगों को वे अपने दो मंजिले के बरामदे में आग्रहपूर्वक ले गये। ठाकुर ने बड़ी भक्ति से उनको नमस्कार किया। वे वृद्ध थे। महाप्रभु के बड़े ही भक्त, गौड़ीय वैष्णव अथवा 'कर्ताभजा' सम्प्रदाय के बहुत ऊँचे दर्जे के पुरुष जान पड़े। भगवत्प्रसंग में विविध सात्त्विक भाव दोनों के ही शरीरों में, क्षण-क्षण में प्रकट होने लगे। थोड़ी देर तक बातचीत हो चुकने पर वृद्ध ने ठाकुर से पूछा, 'आप तो श्रीवृन्दावन में बहुत दिन तक

रह आये हैं, वहाँ कभी उनको भी देखा था? सुना है, वे इस समय भी उसी शरीर में हैं।'

ठाकुर ने कहा-**हाँ, बिल्कुल वैसे ही हैं। एक दिन दया करके एकाएक आ गये, देखते ही मैंने समझ लिया कि ये महाप्रभु हैं।**

वृद्ध ने पूछा-'फिर कुछ कहा?'

ठाकुर ने कहा-**मैं तो देखते ही पैरों पर गिरकर बहुत रोने लगा, बहुत कुछ कहा। उन्होंने माथे पर हाथ फेरकर आशीर्वाद देकर कहा, 'सभी तो पूर्ण हो गया है, और किसलिए? शान्त हो जाओ, शान्त हो जाओ। मैं तो तुम लोगों के घर बिका हुआ हूँ।' मैं उसी समय अचेत होकर गिर पड़ा। फिर चेतना लौटी तो उठकर देखा कि वे वहाँ नहीं है, चले गये हैं।**

दो घण्टे के बाद हम लोग ठाकुर के साथ निवासस्थल पर लौट आये।

विद्यारत्नजी का गैरिक-ग्रहण करना।

तीन बजे के लगभग हमारे परम आत्मीय, बहुत दिनों के परिचित, ब्राह्मधर्म-प्रचारक श्री रामकुमार विद्यारत्नजी ठाकुर के पास आये। ठाकुर ने बड़े आदर के साथ उनको बैठाया। उन्होंने कहा, 'मुझे एकान्त में कछ कहना है।' सुनते ही मैं आसन से उठकर बरामदे में चला गया। विद्यारत्नजी की आवाज जरा भारी है, बरामदे से ही मैंने उनकी कई बातें सुन लीं। उन्होंने कहा, 'मैं गंगोत्री से हिमालय जाकर कुछ दिन था। वहाँ कुछ दिनों तक रह आया हूँ। एक दिन व्यासदेव के दर्शन मिल गये। उन्होंने मुझे आशीर्वाद देकर कई उपदेश दिये और कहा कि मैं आपसे गैरिक ग्रहण करके आपके

उपदेशानुसार चलूँ। आप दया करके मुझे गेरुवा दीजिए और मुझे व्यवहार के नियम भी बतला दीजिए।'

ठाकुर ने कहा-**सर्वत्र मठ-मंदिर आदि में भगवान् की मूर्ति के दर्शन करके, साष्टांग होकर प्रणाम करने से लाभ होता है। सत्य पर लक्ष्य रखकर, सरल भाव से चलने से ही सब हो जाता है। गैरिक पहनने पर वीर्य भी धारण करना पड़ता है, शास्त्र की ऐसी ही व्यवस्था है, ऐसा न करने से विशेष अनिष्ट होता है।**

फिर ठाकुर ने मुझे बुलाकर कहा कि विद्यारत्नजी को हमारा एक बहिर्वास दे दो।' उसको लेकर विद्यारत्नजी ठाकुर को नमस्कार करके चले गये।

ठाकुर का अनुशासन और सान्त्वना।

जहाँ हम लोग ठहरे थे, वहाँ स्थान कम होने से हर दिन बड़ी असुविधा होती है। सवेरे और रात्रि को धीरे-धीरे बड़ी भीड़ हो जाती है। कई गुरुभगिनियाँ यहाँ पर हर वक्त रहती हैं, इससे अन्यान्य स्त्रियों को भी दर्शन करने के लिए आने का अवसर मिल जाता है। ठाकुर ने अपने आप दया करके अपने ही कमरे में मुझे आसन लगाने की आज्ञा दे दी है, इसी से बहुत कुछ आराम में हूँ। किन्तु रसोई, भोजन और होम आदि कामों में प्रतिदिन बड़ी असुविधा हो रही है। मैं ऊपर के कमरे के सामने वाले बरामदे में नित्य होम किया करता हूँ। इस समय गुरुभ्राता-भगिनियों से मेरा झगड़ा हुआ करता है। गीली लकड़ियों के धुएँ से सभी की परेशानी होती है। गुरुभाईयों ने मुझसे कई बार कहा है कि यहाँ होम करना बन्द कर दो; किन्तु मैंने किसी की बात नहीं मानी, बल्कि उन लोगों को ही धमका दिया

है। आज गीली लकड़ियों को किसी तरह जलाकर ज्यों ही उसमें कुछ आहुतियाँ दी त्यों ही, बेहद धुँआ होने से, हम में से ही एक व्यक्ति अपने लड़के को गोद में लिये हुए आकर कहने लगे-'तुम कैसे आदमी हो? क्या सभी को मार डालोगे? रहने दो अपना होम। सभी को परेशान कर डाला।' मैं उनका हाथ नचाना, मुँह मटकाना देखकर और चिढ़कर कही बातें सुनते ही आग-बबूला हो उठा और बड़ी तेजी के साथ कहने लगा-'अच्छा, लोगों पर बड़ी दया देख रहा हूँ। बच्चा जब टें टें करके चिल्लाता है और सबकी नाक में दम कर देता है तब उसका मुँह क्यों नहीं दबाकर रखते? तब क्या बच्चे को हटा देते हो? तुम्हारी हैरानी को देखकर क्या मैं अपना नित्यकर्म छोड़ दूँगा? वाह!' वे मेरी बातों का उत्तर न दे सकने से चले गये। उसी समय ठाकुर ने आसन से बहुत ही नाराजगी प्रकट करके कहा-**वहाँ कौन है? अभी आग पर पानी डाल दो। यह कैसी बात है? कर्तव्यबुद्धि नहीं है।**

ठाकुर के मुँह से वह बात निकलते ही दो-तीन गुरुभाई पानी लाने को दौड़े गये, उपाय न देखकर, अपना मान रखने के लिए, उन लोगों के आने से पहले ही पानी दी। ठाकुर ने मुझे दस आदमियों के आगे इतना लज्जित किया, यह सोचकर मैं छत पर चला गया और अभिमान से मेरी देह में आग सी लग गई। मैं ठाकुर पर क्रुद्ध हो गया। सोचा कि एक ओर अपने नियमों पर अटल बने रहने के लिए दिन में दस बार उपदेश दिया करते हैं और अब इन लोगों देखकर मेरे नियम के टूटने की कुछ परवाह नहीं की। जीने के ऊपर वाली कोठरी में जाकर फिर आग और हवन किया। अब निश्चय कर लिया कि ठाकुर के कमरे में न जाऊँगा, इसलिए इस

बहुत ही तंग कुल चार फुट जगह में कुत्ते की तरह सिकुड़कर पड़ा रहा। सारा दिन मानसिक क्लेश में छटपटाते हुए बिताया।

दिन डूबने से जरा पहले ठाकुर एकाएक छत पर आ गये और मुझे वहाँ उस दशा में देखकर कहने लगे-**क्यों, क्या तुमने यहाँ होम करने का बन्दोबस्त कर लिया है? यह अच्छा किया। क्लेश देकर क्या यह सब करना चाहिए? उपासना करने से यदि दूसरों को कष्ट हो तो वह उपासना ही क्या हुई। खास कर बूढ़े, बालक, रोगी और गर्भवती स्त्री के आराम का विचार प्रत्येक दशा में सबसे पहले करना चाहिए। ऐसा न करने से अपराध होता है। जाओ, अब रसोई बनाओ।**

ठाकुर ने ये बातें इतने स्नेह से कही कि मेरा मन बिल्कुल ठण्डा हो गया। ठाकुर कभी किसी का क्लेश नहीं देख सकते, फिर यह तो बच्चे और रोगी को क्लेश हो रहा था। इधर मेरे मानसिक क्लेश की ओर से भी तो वे उदासीन नहीं रहे। वे कभी छत पर नहीं आते हैं। आज यद्यपि मैंने उन्हें अपनी यातना का हाल नहीं बतलाया तो फिर भी उसका अनुभव करके मेरे हृदय को शीतल करने के लिए छत पर आ गये। दयालु ठकुर धन्य हो। इस दया का ही तो हम लोगों को सहारा है।

आज अपराह्न घर में बड़ी भीड़ हुई। श्री रामकृष्ण परमहंसदेव के एक अनुगत शिष्य ने आकर देर तक ठाकुर से धर्म-कर्म की चर्चा की। मैं उस समय रसोई बनाने के लिए छत पर चला गया। बीच-बीच में नीचे जाकर दो एक बातें सुन आता था। उन्होंने अपने गुरुदेव का स्मरण करके भक्तिभाव से गद्गद होकर कहा-तन, मन, धन सब कुछ गुरुदेव के चरणों में समर्पित किये बिना कुछ नहीं

होता। सब विडम्बना मात्र है। यह बात मुझे बहुत अच्छी लगी।

माँ आनन्दमयी का संगीत।

हमारे परम श्रद्धाभाजन श्री नगेन्द्र बाबू की स्त्री (श्रीमती मातंगिनी देवी) हमारी कई गुरुभगिनियों के साथ अपराह्न को आई। ठाकुर इनको 'माँ आनन्दमयी' कहकर बुलाते हैं। माँ आनन्दमयी जब जहाँ जाती हैं स्वाभाविक स्नेह और प्रेम से सभी को मानो आनन्द में डूबा रखती है। रसोई बनाने में मुझे हैरानी होती देखकर माँ ने कहा-'बेटा, यह कष्ट क्यों सहते हो? सबके साथ मुट्ठी भर अन्न खा ले सकते हो!' मैंने कहा-'करूँ क्या माँ? स्वयं रसोई बनाकर खाता हूँ, उनको यही अच्छा लगता है। रसोई बनाकर किसी प्रकार भोजन करके मैं अपने आसन पर जा बैठा। सन्ध्या कीर्तन समाप्त होते-होते रात के प्रायः नौ बजे गये।

ठाकुर जब भोजन कर चुके, तब माँ आनन्दमयी एकतारा लेकर गाने लगीं। धीरे-धीरे गाना ऐसा जम गया कि सभी अचल होकर अपने-अपने आसन पर पुतले की तरह स्थिर हो गये। माँ आनन्दयमी भाव में विभोर हो गई। थोड़ी देर में कीर्तन का पद मधुर कण्ठस्वर पा जाने से, ऐसे भाव के तरंग उठीं कि ठाकुर स्थिर न रह सके। बार-बार अश्रु और पुलक आदि से विवश होकर आसन पर ही बार-बार झूमकर गिरने लगे। इसी समय **'हरि बोल! हरिबोल!' 'जय राधे' 'जय राधे' 'आह ऊह'** इत्यादि एक-एक शब्द ठाकुर के मुख से निकलने पर एक प्रबल शक्ति ने, आँधी की तरह आकर, घर के भीतर और बाहर सभी को आच्छन्न कर लिया। चारों ओर रोने की ध्वनि होने लगी। कोई चिल्लाने लगा,

किसी को बाहरी चेतना न रही। फिर कुछ लोग मूर्च्छित अवस्था में ही लोटते हुए ठाकुर की ओर बढ़े। मुझे कभी भाव का संचार नहीं होता, मैं स्थिरता से सभी की भिन्न-भिन्न दशाओं और भावों का विकास देखने लगा। इसी प्रकार क्षण भर में स्थिर और पल भर में अस्थिर दशा में प्रायः सारी रात बीत गई।

प्रसादी वस्त्र के स्पर्श से भावावेश।

ठाकुर दिन-रात आसन पर ही बैठे रहते हैं, विशेष आवश्यकता हुए बिना वे कभी आसन छोड़कर नहीं उठते। ठण्डे घर में लगातार बैठे रहने से ही, जान पड़ता है, पैर में वात की पीड़ा बढ़ गई। इधर ठण्ड भी कड़ाके की पड़ रही है। मणि बाबू और वृन्दावन बाबू ने एक ऊनी 'ट्राउजर' लाकर ठाकुर से उसको पहन लेने का अनुरोध किया। ठाकुर कभी इन चीजों को पहनते नहीं हैं, किन्तु उन लोगों का आग्रह देखकर उन्होंने उसे बड़े सन्तोष से ले लिया और उसको ५-६ मिनिट तक वे पहने भी रहे। फिर उसे उतार कर वृन्दावन बाबू को देते हुए कहा-**वृन्दावन, इसे तुम पहन लो, तुम्हारे पहनने से मेरा पहनना हो जायेगा।**

वन्दावन बाबू किसी प्रकार की दुविधा न करके उसे पहनकर बैठ गये। हम लोग देखकर असंतुष्ट होकर रह गये। सोचने लगे कि 'ठाकुर ने अपनी पहनी हुई वस्तु अपने हाथ से दी है, उसे मस्तक पर रखना चाहिए, वृन्दावन बाबू की यह कैसी धृष्टता है कि उसे अनायास पैरों में लगाकर पहन लिया।

तीन-चार मिनट में ही वृन्दावन बाबू ने उसे बड़ी घबराहट से उतार डाला और विस्मित होकर ठाकुर ने कहा-'महाशय! यह

क्या? एक इनेनिमेट (निर्जीव) वस्तु में भी इतनी इलेक्ट्रिसिटी (विद्युत शक्ति) प्रविष्ट हो गई। मेरा सारा शरीर झनझना रहा है। इसे किसी तरह पहने नहीं रह सका। यह क्या?' अब वृन्दावन बाबू बार-बार सिहरने लगे। तब हम लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। सोचा, 'ठाकुर के हाथ-पैर दबाकर शरीर की सेवा करने में हम भी तो कितना ही समय बिता देते है, किन्तु कभी ऐसा विशिष्ट अनुभव नहीं हुआ जिससे शरीर और मन अस्थिर अथवा और कुछ हो, और दो-चार मिनट के लिए ठाकुर के व्यवहृत वस्त्र को छू लेने से ही वृन्दावन बाबू का शरीर बिलकुल अवसन्न हो गया। काँपने लगे और थोड़ी देर तक तो बिल्कुल स्तब्ध होकर बैठे रहे।'

दोपहर को ठाकुर के भोजन कर चुकने पर प्रसाद के लिए बड़ी छीनाझपटी होने लगती है। वृन्दावन बाबू बड़ी निरीह प्रकृति के हैं, इसलिए उन्हें प्रसाद नहीं मिलता। वे खाली केले का पत्ता उठाकर झटपट नीचे ले गये, और उसे कई बार माथे से लगाकर बड़े आग्रह से डण्ठल समेत चबाकर निगलने लगे। उस समय भक्तिभाव से उनकी डबडबाई हुई आँखें और मुखमण्डल की एक विचित्र प्रभा देखकर मैं विस्मित हो गया। धन्य हो वृन्दावन बाबू।

संध्या से पहले ठाकुर कई गुरुभाईयों के साथ घूमते हुए वृन्दावन बाबू के घर जा निकले। उस समय वृन्दावन बाबू भी हम लोगों के साथ थे। ठाकुर ने उनसे कहा-**वृन्दावन, तुम्हारा घर तो अच्छा है। तुम्हारा वह कुंज कहाँ है?** सुनकर सभी हँसने लगे। ठाकुर थोड़ी देर तक वहाँ खड़े रहे, फिर हाथ जोड़कर घर को बारंबार नमस्कार करके लौट आये। थोड़ी देर में बातों ही बातों में कहा-**वृन्दावन के घर जाने से मेरा शरीर शीतल हो गया; ऐसी**

इच्छा हुई कि एक बार उस भूमि पर लोट जाऊँ। मकान बहुत अच्छा है। बहुत साफ-सुथरा है।

रात को आने पर वृन्दावन बाबू को जब ठाकुर की कही हुई उस बात का पता चला तो उन्होंने ठाकुर से कहा-'महाराज! मकान साफ हो चाहे न हो, किन्तु अब भूत के उपद्रव से घर में रहना मुश्किल है। आपका साधन लेने से और कुछ हुआ हो या न हो, किन्तु भूत-प्रेत पर विश्वास हो गया।'

ठाकुर ने कहा-**केवल भूत-प्रेत पर ही क्यों? जो कुछ सत्य है, उन सभी पर धीरे-धीरे विश्वास हो जायगा। सब कुछ तो उड़ाकर बैठे थे।**

हमारे एक गुरुभाई नन्द बाबू एक अन्य सम्प्रदाय के महात्मा के यहाँ जाने लगे थे और उनकी ओर अत्यन्त आकृष्ट हो गये थे। आज उन्होंने ठाकुर से पूछा-'गुरु की संगति की अपेक्षा किसी अन्य

की संगति में यदि अधिक आनन्द प्राप्त होता हो तो वहाँ जाना चाहिए कि नहीं और गुरु के पास न आने से कुछ अपराध तो नहीं होगा?'

सुनकर ठाकुर ने कहा-**जिसे जहाँ जाने से आनन्द मिले, लाभ हो, वह वहाँ जावे। गुरु के पास जाने से यदि आनन्द न मिले, लाभ न हो, तो वहाँ पर न जाना ही उत्तम है, बल्कि ऐसी स्थिति में तो जाने पर पाप ही होता है।**

निवासस्थल का बदलना।

१५ अग्रहायन। आजकल हम लोग जिस मकान में है उसमें पानी, शौचालय, रसोईघर और रहने की जगह भी बड़ी असुविधा है, फिर

दिनों दिन लोगों की संख्या भी धीरे-धीरे बढ़ती जा रही है। ठाकुर की माताजी एक नौकरानी और सीतानाथ (प्रभुजी के बड़े भाई स्व. ब्रजगोपाल गोस्वामी के पौत्र और योगेन्द्रनाथ के पुत्र) के साथ, कुछ समय तक यहाँ रहने की आशा से शान्तिपुर से आई थीं। किन्तु केवल चार-पाँच दिन ठहरकर ही चली गईं। श्रीमती शान्तिसुधा और उनके पुत्र (दाऊजी) दरभंगा में थे। ठाकुर ने उनको यहाँ बुलवा लिया है। शान्तिसुधा के साथ रहने का अवसर मिल जाने से कई गुरुभगिनियाँ भी यहीं ठहरी हुई हैं। मणि बाबू और वृन्दावन बाबू आदि तीन-चार गुरुभ्राता, घर-गृहस्थी का संबंध बिल्कुल छोड़कर दफ्तर के समय के अतिरिक्त, दिन-रात यहीं आते रहते हैं। वे लोग 'भाते-सिद्ध भात' खाकर दफ्तर चले जाते हैं और रात को मुट्ठी दो मुट्ठी मुरमुरा और मुड़्की से काम चल जाता है। इनके अतिरिक्त नये आने वालों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। इधर मकान-मालिक सुरेश बाबू की छुट्टी भी पूरी होने को है।

अतएव अब हमें मकान बदलना ही है। ठाकुर ने सभी से कहा कि शीघ्र एक मकान ढूँढो। कलकत्ते के गुरुभाईयों ने अपने-अपने स्थानों के समीप मकान ढूँढे और उनमें जो सुविधा या असुविधा थी, वह सब ठाकुर को बताया। श्रीचरण बाबू की चेष्टा से श्यामबाजार की बड़ी सड़क के त्रिमुहानी पर, कान्तिघोष का तिमंजिला मकान ही किराये पर मिला। यह डेरा, नवीन बाबू के घर के समीप, रास्ते के ठीक पीछे है। किन्तु तिमंजिले पर ठाकुर के रहने से लगातार नीचे ऊपर आने-जाने में सभी को असुविधा होगी, इस दृष्टि से ठाकुर ने कुछ असम्मति प्रकट की। फिर नवीन बाबू आदि गुरुभाईयों का आग्रह और मणि बाबू की जिद्द देखकर ठाकुर

लाचार हो, उसी घर में जाने को तैयार हो गये। कल भोजन करने के पश्चात् हम लोग उसी मकान में चले जायेंगे। यही निश्चय हुआ।

श्यामबाजारवाला मकान।

१६ अग्रहायन १ दिसंबर, मंगलवार। आज ब्राह्मधर्मप्रचारक श्रीनगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्यायजी की माता के पारलौकिक कल्याण के लिए उपासना आदि की जाएगी। निमंत्रण पाकर ठाकुर योगजीवन के साथ वहाँ गये। श्यामबाजार वाले नये मकान में, ठीक ठीक बन्दोबस्त न होने से पीड़ित अवस्था में शान्तिसुधा को रहने में असुविधा होगी। इसलिए वृन्दावन बाबू उनको अपने घर ले गये। अब शान्तिसुधा कुछ दिनों तक वहीं रहेंगी।

अपराह्न हम लोग सारा सामान लेकर श्यामबाजार वाले मकान में पहुँच गये। इस घर की तीसरी मंजिल ही हम लोगों के लिए ली गयी है। बीचवाले कमरे के बीच में, दीवार के पास उत्तर मुख ठाकुर का आसन लगा दिया गया। ठाकुर ने अपने आसन के पश्चिम की ओर, केवल दरवाजे का अन्तर रखकर मुझे आसन लगा लेने की आज्ञा दी है। इसके अनुसार मैंने ठाकुर की बायीं ओर चार फुट की दूरी पर अपना आसन बिछा लिया। नित्य होम मैं अन्यत्र करूँगा।

मकान की हालत अच्छी ही मालूम हुई। बीच वाले कमरे के भीतर पचास आदमी आसानी से सकते हैं। इस कमरे के दक्षिण और उत्तर में कम चौड़ा लम्बा सा बरामदा भी है। पूर्व और पश्चिम दो कमरे हैं। पूर्व ओर वाले कमरे के सामने, दक्षिण ओर दो मंजिले की बड़ी भारी छत और पश्चिम के कमरे से लगा हुआ दक्षिण ओर बड़ा सा रसोई घर है। मकान के बिल्कुल उत्तर-पूर्व कोने में एक

शौचालय है। वह ठाकुर के उपयोग लिए निर्दिष्ट हुआ।

बीच वाले कमरे के पश्चिम ओर के कमरे में भण्डार रहेगा। चौबीसों घण्टे ठाकुर के पास बैठे रहने में गुरुभाईयों को असुविधा होती है, इसलिए आवश्यकता पड़ने पर उस कमरे में जाकर वे लोग आराम भी कर सकेंगे। बीचवाले कमरे के पूर्व का कमरा स्त्रियों के लिए रहेगा।

तिमंजिले पर पानी का कुछ प्रबन्ध नहीं है, मजदूर ऊपर पानी पहुँचावेगा। एक ही शौचालय है, इसलिए गुरुभाई लोग नवीन बाबू के घर जाया करेंगे। रास्ते से तिमंजिले तक सीधी सीढ़ी है, इसलिए ऊपर आने-जाने में कोई दिक्कत नहीं है। नवीनबाबू ने अपना घर गुरुभाईयों को सौंप दिया। आवश्यकता होने पर कोई भी वहाँ बेधड़क जा सकेगा और रह सकेगा।

आज शाम होते न होते गुरुभाईयों के झुण्ड आ गये। खोल, करताल लेकर धूमधाम से संकीर्तन होने लगा। इस मकान में आने से सभी को बड़ी प्रसन्नता हुई। संकीर्तन के अन्त में ठाकुर ने अपने हाथ से 'हरि लूट' लुटाई। आज बहुत से गुरुभाईयों ने यहीं पर रात बिताई। रात को कोई एक बजे तक हम लोग आनन्द मना कर सो गये।

श्यामबाजार में ठाकुर का दैनिक कार्य।

रात के पिछले कोई चार बजे ठाकुर आसन पर उठकर बैठ जाते हैं। कई गुरुभाई भी इसी समय जाग जाते हैं और अपने-अपने आसन पर बैठकर साधन करने लगते हैं। थोड़ी देर में ठाकुर करताल बजाकर दो-तीन भजन गाते हैं। फिर गुरुभाई लोग

प्रातःकाल तक ऊषा कीर्तन गाते रहते हैं।

ठाकुर खूब सुबह कीर्तन के अन्त में आसन छोड़कर शौच को जाते हैं। फिर आधे घण्टे में आसन पर शान्ति से बैठे रहते हैं। आठ बजे के लगभग वे चाय पीते हैं। इसके पश्चात् थोड़ी देर तक गुरुभाईयों से बातचीत करके पाठ आरम्भ कर देते हैं। पाठ ग्यारह बजे तक होता रहता है। इसके बाद आधे घण्टे के लिए शौच स्नान को चले जाते हैं। बारह बजे भोजन होता है। भोजन के पश्चात् आधे घण्टे तक ठाकुर से बातचीत करने का अवसर रहता है। इसके उपरान्त ठाकुर चार बजे तक ध्यानमग्न अवस्था में रहते हैं। इस समय लगातार आँसू बहते रहने से ठाकुर के वक्ष का कपड़ा भीग जाता है। चार बजे के बाद उनकी बाहरी चेतना लौटती है। उसी समय विभिन्न श्रेणियों के लोगों की भीड़ हो जाती। बातचीत, प्रश्न-उत्तर और हँसी गप की बातों में शाम हो जाती है। मैं इस समय अपने लिए रसोई बनाने लग जाता हूँ, अतएव बहुत सी जरूरी बातें नहीं सुन पाता। कोई विशेष घटना होती है अथवा आवश्यक उपदेश होता है तो रसोई बनाना छोड़कर मैं ठाकुर के पास पहुँच जाता हैं। रसोई बनाने का स्थान बिल्कुल समीप रहने से मुझे यह अच्छी सुविधा हो गई है।

शाम को हरिकीर्तन होता है। इस समय कमरे के भीतर सभी को स्थान नहीं मिलता। साधारणतः रात को साढ़े नौ बजे के भीतर संकीर्तन समाप्त हो जाता है। फिर ठाकुर भोजन करते हैं। इसके पश्चात् कोई बारह बजे तक गुरुभाईयों के साथ ठाकुर हँसी, बातें और अन्य बातचीत किया करते हैं। फिर बिल्कुल सन्नाटा रहता है। रात तीन बजने पर ठाकुर एक बार लेटते हैं। किसी-किसी दिन

समाधिस्थ रहने से लेटते ही नहीं है। इसी प्रकार रात व्यतीत करते हैं।

यथार्थ सत्य कैसे प्राप्त हो? आकाशवाणी-'संकीर्णता छोड़ो।'

१७ अग्रहायन बुधवार। ठाकुर के विशेष घनिष्ठ, लब्धप्रतिष्ठ, कृतविद्य एक ब्राह्म मित्र श्रीउमेशचन्द्रदत्त ने ठाकुर से पूछा-'वास्तविक सत्य की प्राप्ति किस उपाय से होती है?'

ठाकुर ने कहा-**वास्तविक सत्य को प्राप्त करने के लिए सभी प्रकार के संस्कारों को छोड़ना पड़ता है। संस्कारों को बिल्कुल छोड़ देने से मन सर्वथा निर्मल हो जाता है। उस दशा में कोई भी भाव नहीं रह जाता। उसी दशा में सत्य का अनुसंधान होता है। मत, आचरण, भावों और संस्कारों के मन से बिल्कुल निकल जाने पर जो प्राप्ति होती है, वहीं तो वास्तविक सत्य वस्तु है। संस्कारों से वर्जित अन्तःकरण में सत्य के एक कण का भी प्रकाश हो जाय तो वही अमूल्य है। रीति के अनुसार उच्च साधन करने से पहले ही संस्कार को बिल्कुल नष्ट कर डालते हैं। इसमें उनका लगभग तीन वर्ष का समय लग जाता है। बौद्ध लोग आरम्भ में ही संस्कारशून्य हो लेते हैं, इसी से कई लोग उनको नास्तिक कहते हैं।**

जरा ठहकर ठाकुर फिर कहने लगे-**जो लोग किसी मत अथवा संस्कार के वशवर्ती होकर चलते हैं, वे विशिष्ट दलों में आबद्ध हो जाते है। जो लोग किसी भी मतामत या संस्कार के अधीन न होकर केवल अपने अन्तःकरण में सत्य का ही अनुसन्धान**

करते हैं उनका न तो कोई दल होता है और न सम्प्रदाय ही। जिन दिनों मैं ब्राह्मधर्म का प्रचारक था उन दिनों कुछ समय तक मैं बागआँचड़ा में रहा उस समय की मेरी कार्यप्रणाली, वक्तृता और उपदेश आदि से ब्राह्मसमाज में अच्छी हलचल मच गई थी। मेरा समय बड़ी अशान्ति में बीतने लगा। मेरे कुछ एक मित्र कलकत्ते से मुझे बारंबार लिखने लगे कि उन आलोचनाओं का प्रतिवाद करो। उन लोगों ने मुझे कलकत्ते आने को भी लिखा। मैं बड़ी कठिन समस्या में पड़ गया। अपनी कर्तव्यबुद्धि को छोड़कर, ब्राह्मसमाज के संसर्ग रहना ठीक होगा कि नहीं इसी का चिन्तन मैं मन में सदा करने लगा। मैंने भगवान से प्रार्थना की-ठाकुर, बतलाइए, मैं इस समय क्या करूँ। उस समय स्पष्ट रूप से आकाशवाणी हुई। मैंने सुना 'संकीर्णता के भीतर रहने से जीवन में सत्य की प्राप्ति न होगी।' आकाशवाणी सुनने से मेरी चिन्ता दूर हो गई। मनुष्य का मन रखकर चलने से कभी धर्म-कर्म नहीं हो सकता। मनुष्य चाहे हमारे कार्य की निन्दा करें चाहे प्रशंसा, उसका खयाल रखने से सब नष्ट होगा। बिना किसी की परवाह किये बिल्कुल स्वाधीन रूप से यदि अपनी कर्तव्यबुद्धि से कार्य किया जा सके, तब तो काम बन गया, नहीं तो अपनी रक्षा करना बहुत ही कठिन है। सत्य अनन्त है, उसके भाव अनन्त हैं, सत्य के रूप भी अनन्त हैं और सत्य की प्राप्ति के उपाय भी अनन्त हैं। यह भी नहीं कहा जा सकता है कि सत्य के प्राप्त करने के लिए भी सभी को एक ही मार्ग से, एक ही मत को मानकर चलना होगा। जिस प्रकार मनुष्य पृथक् हैं उसी प्रकार उनकी प्रकृति भी भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। सभी

को अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार ही चलना है। भिन्न-भिन्न प्रकृतियों के लिए भिन्न-भिन्न मार्ग हैं, अतएव भिन्न-भिन्न प्रणालियों का अवलम्बन करना भी आवश्यक होता है।

एक ने पूछा-महाराज, क्या भोजन के साथ धर्म का किसी प्रकार का संबंध है?

ठाकुर ने उत्तर दिया-**हाँ, अवश्य है। भोजन के संबंध में बहुत सावधान रहना चाहिए। अपवित्र वस्तु खा लेने से शरीर रोगी हो जाता है, मन भी बहुत चंचल हो उठता है, इससे धर्म प्राप्त करना कठिन हो जाता है। सदा पवित्र भोजन करना चाहिए।**

अनुगत होना ही ब्रह्मचर्य है।

आज का दिन अशान्ति और उद्वेग में बीता। धर्म को प्राप्त करने की आशा से संसार सुख को तिलांजलि देकर, भूखे-प्यासे रहकर, बिना ही सोये, कितने ही क्लेश सहकर दिन बिता रहा हूँ किन्तु एक विषय में भी सफल होने का भरोसा नहीं मिल रहा है। ठाकुर ने ब्रह्मचर्य दे दिया है, बस। इससे लाभ ही कौन सा हो रहा है? केवल स्त्री संग ही नहीं करता हूँ। किन्तु मन ही मन सभी कुछ तो होता रहता है। किसी सुन्दरी को देख लेता हूँ तो उसी की धुन में लगे रहने में ही अच्छा लगता। हाय-हाय क्या मुझे अब जीवन में धर्म की प्राप्ति होगी? जो गुरुभाई स्त्री संग करते हैं, वे तो मेरी अपेक्षा बहुत उत्तम दशा को प्राप्त करके आनन्द कर रहे हैं! अतएव इस ब्रह्मचर्य से लाभ ही क्या? सच्चा ब्रह्मचर्य कहाँ हुआ? ऐसी चिन्ताओं में लगे रहने से मेरा सिर गरम हो गया, सभी सो गये। मैं बिस्तर पर लेटा हुआ बीच-बीच में गहरी गाँस छोड़कर छटपटाने लगा। ठाकुर

समाधि में थे। रात के दो बजे होंगे, जब ठाकुर के मुख से अकस्मात् ये बातें निकली-

एक परिवार के दो मालिक, एक राज्य के दो राजा होने से कभी मंगल नहीं होता। स्वयं मरकर इष्टदेवता को देह-मन का राजा बनाना चाहिए। नहीं तो कल्याण नहीं होता। वृक्ष का बीज जब सड़ जाता है तभी उसमें से अंकुर निकलता है। अभिमान के नष्ट होने पर ही चित्त में चैतन्य प्रकट होगा।

कुछ ठहरकर फिर कहा-**गहन आधी रात में, एकान्त में, अपने भीतर प्रवेश करके खोजने से धीरे-धीरे यह मालूम हो जाता है कि हम कौन हैं। ब्रह्मचर्य ही सब साधनों का मूल है और अनुगत हुए बिना वह नहीं हो सकता। एकमात्र गुरु की कृपा से ही वास्तविक ब्रह्मचर्य प्राप्त होता है। उसकी प्राप्ति हो जाने पर फिर कुछ भी बाकी नहीं रहता। तब तो सभी दशाएँ हथेली में रखे आँवले की तरह सुलभ हो जाती है। अनुगत होना ही तो ब्रह्मचर्य है।**

मैंने ठाकुर की कही हुई इन बातों को सोचते हुए बाकी रात बिता दी। न तो कोई प्रश्न ही किया और न संकेत, अपनी जलन में जल रहा था, समाधि में रहने पर भी ठाकुर ने मेरा हाल मालूम कर लिया और उपदेश देकर धैर्य बँधाया। दयालु ठाकुर! तुम धन्य हो।

इस देश का सच्चा हित कैसे होगा?

जबसे ठाकुर इस घर में आ गये हैं, बहुत भीडभाड़ होती है। दर्शनार्थियों के लिए ठाकुर ने चार बजे से शाम तक का समय निर्दिष्ट कर दिया है। प्रतिदिन अपराह्ण दूर-दूर से, विभिन्न स्तरों के

लोग सत्संग की आशा से ठाकुर के पास आते हैं। शिक्षित समाज के शीर्ष स्थान के बड़े भारी पण्डित श्री ब्रजेन्द्रनाथ शील ठाकुर से अनेक विषयों पर बाते और चर्चा करके परम सन्तुष्ट हुए। उन्होने पूछा-'इस देश का सच्चा हित कैसे होगा?'

इस प्रश्न को सुनकर ठाकुर कहने लगे-**स्कूल, कॉलेज के लड़कों के जीवन पर ही ही देश का सारा हित निर्भर है। हमारे देश में, ऋषियों के जमाने में ऋषि लोग बच्चों को शिक्षा देने के साथ-साथ वीर्यधारण और सत्य की रक्षा का अभ्यास करा देते थे। आजकल लड़कों को उस प्रणाली से शिक्षा नहीं दी जाती। इसलिए शिक्षित हो जाने पर भी वैसा फल नहीं मिलता। मैं जब ढाका में था, प्रायः स्कूल-कॉलेज के लड़के आकर यही प्रश्न किया करते थे, 'महाशय अपने कुअभ्यास को हम किस तरह छोड़ पायेंगे?' बचपन में हमारे माता-पिता शिक्षक, अथवा अभिभावकों में से किसी ने भी कभी यह नहीं समझाया कि वीर्य को नष्ट करना अनिष्टकर हैं, अतएव हमने उसके विषय में सावधान रहने की चेष्टा कभी की ही नहीं। अब समझ में आया है कि उसी से हमारा सत्यानाश हो रहा है। किन्तु करें क्या? दीर्घकाल के अभ्यास को अब बड़ी चेष्टा करने पर भी नहीं छोड़ पाते। सचमुच सभी जगह छोटे-छोटे लड़कों को इस विषय की थोड़ी बहुत शिक्षा न रहने से बहुत हानि हो रही है। हमारे देश में जो लोग शिक्षादान करते हैं, वे यदि लड़के के साथ मित्र भाव में हिलमिल कर ऐसा वातावरण बना दें कि लड़के अपनी सारी अवस्था उन्हें निःसंकोच बता सकें और साथ ही बच्चों के मन में वे यह बात भी अच्छी तरह जमा दे कि ऐसे कुअभ्यास का**

परिणाम कितना भयंकर है, तो इससे लड़कों का और देश का सर्वांगीण मंगल होगा। जो शिक्षा सबसे पहले दी जानी चाहिए और जिस पर व्यक्तिगत जीवन का तथा सारे देश का मंगल अवलंबित है, उसी शिक्षा का देश में अभाव है। बहुत दिन की बात है, एक बार हिमालय में एक महापुरुष के दर्शन हुए थे; मैंने उनसे पूछा था, 'इस देश का कल्याण कैसे होगा?' इस पर उन्होंने कहा था, 'एकमात्र सत्य और वीर्य की रक्षा करने से ही देश का भला होगा।' ऐसा किए बिना देश का भला नहीं हो सकता।

इस विषय पर ठाकुर ने और भी बहुत सी बातें कहीं। ब्रजेन्द्रनाथ बाबू देशमान्य सुप्रसिद्ध अध्यापक हैं। ठाकुर के मुँह से इन बातों को सुनकर वे बहुत सन्तुष्ट हुए।

धर्म सहज ही नहीं मिलता।

१८ अग्रहायन। कुछ सज्जनों ने आकर ठाकुर से प्रश्न किया, 'कौन सा उपाय करने से धर्म सहज ही प्राप्त होता है?'

ठाकुर ने कहा-**आजकल देखता हूँ कि सभी बहुत ही आसानी से धर्म प्राप्त कर लेना चाहते हैं। कोई एक बार यह नहीं सोचता है कि धर्म कितनी मूल्यवान् वस्तु है और वह धर्म को प्राप्त करना कितना कठिन कार्य है। जब तक भीतर के सारे कुअभ्यास दूर नहीं हो जाते, धर्म की प्राप्ति किसी तरह नहीं हो सकती। बहुत पुराने अभ्यास को मनुष्य इच्छा करने से ही नहीं छोड़ सकता, यह काम दो-एक दिन का है भी तो नहीं। इनको दूर करने में जितना समय लगता है, उतनी देर तक भी कोई**

धैर्य रखकर ठहरना नहीं चाहता। शीघ्र ही कुछ पाने के लिए लोग आतुर हो जाते हैं, इससे कुछ हीं होता। इसके अतिरिक्त सभी अपनी रुचि के अनुसार धर्म चाहते हैं। अपनी रुचि से थोड़ा सा मेल न होते ही कोई उसे धर्म नहीं मानते। इन दो कारणों से लोगों के लिए धर्म प्राप्त करना कठिन हो गया है। धर्म किसी पेड़ का फल तो नहीं है कि जिसे इच्छा करते ही कोई तुरन्त तोड़ लेगा।

उन लोगों ने फिर प्रश्न किया-'भगवान् को प्राप्त करने के लिए क्या ऐसे कार्य करना चाहिए जो उनको प्रिय हो अथवा केवल जप-तप करने से ही काम बन जायगा?'

ठाकुर ने उत्तर दिया-**भगवान् की प्राप्ति सहज ही नहीं हो जाती। कोई सदा उनके प्रिय कार्य करते रहने से उनको प्राप्त कर लेता है और कोई सदा ध्यान करते रहने से उनको प्राप्त हो जाता है; किसी-किसी को सदा जप करते रहने से उनके दर्शन मिल जाते हैं। सभी के लिए कोई एक बंधा हुआ मार्ग नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता कि कौन सा व्यक्ति, कैसा आचरण करने से उनको प्राप्त कर लेगा। यह भी शर्त नहीं है कि सभी लोग ध्यान-धारणा और जप-तप के द्वारा ही उनको प्राप्त करें। उनकी कृपा से ही उनकी प्राप्ति होती है। कृपा ही सबका मूल है।**

जिज्ञासा की अवस्था; हिन्दूभाव और पाश्चात्यभाव।

मैंने पूछा-'पुराण आदि में देखा जाता है कि गुरु से शिष्य कोई प्रश्न करता था तो उस प्रश्न उत्तर के साथ-साथ शिष्य के अन्तस् में

वही ज्ञान प्रस्फुटित हो जाता था। यह हम लोगों को ऐसा क्यों न होता?

ठाकुर ने कहा-**विवेक, वैराग्य, श्रद्धा और मुमुक्षुत्व, इन चार साधनों से सम्पन्न हुए बिना तत्त्वज्ञान संबंधी प्रश्न करने का किसी को अधिकार ही नहीं होता। उक्त अवस्थाओं को प्राप्त करके प्रश्न करने पर उत्तर के साथ-साथ ज्ञान लाभ भी हो जाता है। बिना ऐसा हुए, यदि जो कुछ मन में आ जाय, वही उड़ते हुए पूछ लेने से उत्तर भी उसी ढंग का होता है; कुछ भी लाभ नहीं होता। अन्तस् में सच्ची व्याकुलता हुए बिना, वस्तु के अभाव का यथार्थ ज्ञान बिना, प्रश्न करना वैसा ही है जैसा कि बच्चों का बिना पैसा लिये ही बाजार में अच्छी-अच्छी चीजें देखकर मोलभाव करना। उसका कुछ भी मूल्य नहीं है। कई बार तो प्रश्न का कोई भी उत्तर देने की आचार्य लोग आवश्यकता ही नहीं समझते। औरों की तो बात क्या, ब्रह्मा तक से कह दिया था कि 'तप! तप! तप!' तपस्या करो, तपस्या तपस्या करने से ही सब समझ लोगे।**

एक व्यक्ति ने कहा-'किसी बात को पूछकर सन्देह-मुक्त हो जाने से, उसको उत्साह होता है, वैसा बिना समझे-बूझे करने से नहीं होता।

ठाकुर ने कहा-**ये तो सारे पाश्चात्य भाव हैं। पहले समझ लेंगे तब करेंगे। यह न तो हमारे देश का भाव है और न सनातन धर्म का। हमारे शास्त्रकारों का उपदेश है 'पहले करो, फिर समझो।' सभी विषयों में कुछ तो स्वीकार करने योग्य होता है, जो सबको मानना ही पड़ता है। जैसे कि क के बाद ख और उसके बाद ग**

पढ़ना पड़ता है। इसमें पहले से ही यह पूछ बैठने से कि 'ऐसा क्यों होता है' कभी शिक्षा प्राप्त नहीं हो सकती।

आज होम के लिए बिल्वपत्र नहीं मिल सके। इसलिये मैने ठाकुर से पूछा कि 'किसी फूल द्वारा क्या होम नहीं हो सकता?'

ठाकुर ने कहा-**शाक्त लोग अपराजिता पुष्प का होम करते हैं और वैष्णयों के लिए कुन्द तथा सफेद कनेर की व्यवस्था है।**

ब्रजमाईयों का स्वाभाविक भाव और भजन।

१९ अग्रहायन। गुरुभाईयों से बातचीत के सिलसिले में ठाकुर आज श्रीवृन्दावन की व्रजमाईयों के भाव और भजन के संबंध में कहने लगे-**बहुत ही मामूली हैसियत की गरीब, दुखी ग्रामीण ब्रजमाईयों में भगवान् के प्रति जैसा स्वाभाविक स्नेह, ममता और वात्सल्यभाव देखा जाता है उसको बहुत साधन भजन के द्वारा भी प्राप्त करना दुस्साध्य है। वे इस समय भी गोविन्दजी को उसी भाव से देखती हैं। ब्रजमाईयों के झुण्ड के झुण्ड दही, दूध और मक्खन आदि हाँड़ियो में लिये हुए, रास्ते भर नाचते गाते हुए, गोविन्दजी के मंदिर में पहुँचते हैं। और गोद के बच्चे को माता जिस प्रकार प्रेम करते हैं, उसी प्रकार ये गोविन्दजी को तरह-तरह से दुलारती हैं, उनसे कितनी ही बातें पूछती हैं, सारे अंग पर हाथ फेरती हैं, चूमती है और अपने पैरों की धूल हाथ में लेकर गोविन्दजी के माथे में लगा देती हैं तथा आशीर्वाद देती हैं। वे गोविन्दजी को देखते-देखते वात्सल्य भाव में बिल्कुल मुग्ध हो जाती हैं। वे गोविन्दजी को बिल्कुल घर का बच्चा समझती है। ऐसा और कहीं देखने को नहीं मिलता।**

मैंने पूछा-'ब्रजमाईयों का भगवान् के प्रति क्या केवल वात्सल्य भाव ही होता है या अन्यान्य भाव भी होते हैं?'

ठाकुर ने कहा-**सभी ब्रजमाईयों को ऐसा ही भाव नहीं होता। भजन तो कई प्रकार का होता कोई अनेक प्रकार से सजधजकर, गहने पहनकर, एक एक बार अपने को आपही देखती है और अपने ही रूप को देख-देखकर भाव में मुग्ध हो जाती हैं। इस दशा में ये बाह्यज्ञानशून्य होकर देर तक पड़ी रह जाती हैं। कोई दो-दो घण्टे तक मुँह पोंछती रहती हैं, कई कई बार तिलक लगाती और मिटाती हैं। अपने मन का हो जाता है तो दर्पण में एक बार अपना मुँह देखकर बिल्कुल वशहीन होकर ढुलक जाती हैं। तीन-चार घण्टे तक फिर होश ही नहीं रहता। शरीर में न जाने कितने प्रकार भावों का खेल होता रहता है। कोई पान का एक बीड़ा खाकर चार-चार पाँच-पाँच घण्टे तक उसी को चबाती रहती हैं, आँसुओं से छाती भीगती रहती है। भाव में बिल्कुल मग्न रहती है। अश्रु, कम्प और पुलक आदि सभी एक साथ प्रकट हो जाते हैं। पल-पल भर में मूर्च्छा आ जाती है। साधारण लोग इन भावों और अवस्थाओं को कैसे समझ सकते हैं। और इन सब भजनों को ही ये किस तरह समझे? देह के द्वारा भगवान् का भजन करना कितना मधुर है, इसे वे ही जान सकते हैं, जो इसको करते हैं। श्रीवृन्दावन में इन सभी भावों द्वारा भगवान् की उपासना की जाती है। ऐश्वर्यभाव की उपासना यहाँ कम देखी जाती है। स्थान का प्रभाव ही ऐसा विलक्षण है कि किसी भी साधन भजन करते रहने से चित्त में अपने आप इन सभी भावों और भक्ति का उदय हुआ करता है।**

भाव किसे कहते हैं?

२० अग्रहायन ५ दिसंबर, शनिवार। आज शनिवार था, इललिए दो बजे से ही ठाकुर के पास बहुत लोगों का जमाव होने लगा। ब्राह्मसमाज के ठाकुर के कई गणमान्य ब्राह्ममित्रों ने आकर विविध धर्म-चर्चा करने के उपरान्त ठाकुर से कहा-देखते हैं कि वैष्णव धर्म की भावभक्ति आजकल प्रायः सभी सम्प्रदायों में प्रवेश कर रही है। इससे ज्ञान का अंश मानो प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा है।

ठाकुर ने कहा-**वैष्णव धर्म की भावभक्ति होने से ज्ञान का अंश कभी क्षीण नहीं होता। मात्र नाचना-कूदना, रोना-गाना और मस्त होकर झूमने लगना, भाव नहीं है। भाव कोई मामूली चीज नहीं है।**

एक बाबू ने कहा-'महाशय! हम लोग तो इन्हीं कार्यों को भाव कहते हैं। यदि उक्त कार्य भाव नहीं है तो फिर भाव किसे कहते हैं?'

ठाकुर ने कहा-**भाव तो बहुत दूर की बात है। भाव का अंकुर मात्र जमने से जो जो अवस्थाएँ प्रकट होती हैं, उनका वर्णन वैष्णव शास्त्र में इस प्रकार है-**

'क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिर्मानशून्यता।
आशाबद्धसमुत्कण्ठा नामगाने सदा रुचिः।।
आसक्तिस्तद्गुणाख्याने प्रीतिस्तवसतिस्थले।
इत्यादयोअनुभावाः स्युर्जातभावांकुरे जने।।

भाव उत्पन्न होने के पहले ही यह सब होना चाहिए; मुँह से मात्र 'भाव भाव' कहने से नहीं होगा।

१. 'क्षान्ति'-सभी विषयों में उसको धैर्य और क्षमा रहेगी।

निन्दा, अपमान और अत्याचार आदि कितना ही दुर्व्यवहार उसके साथ क्यों न किया जाय, वह तिल भर भी उससे विचलित न होगा। सर्वदा क्षमाशील रहेगा।

२. 'अव्यर्थकालत्वम्'-वह कभी समय नहीं गँवाएगा, वह सदा किसी न किसी ऐसे काम में लगा रहेगा, जिससे कि आत्मा का कल्याण हो।

३. 'विरक्ति'-उसे सभी विषयों से वैराग्य रहेगा, विषय में अनासक्त भाव उत्पन्न होगा।

४. 'मानशून्यता'-उसे गर्व, अभिमान आदि कुछ भी न होगा।

५. 'आशाबद्धसमुत्कण्ठा'-भगवत्कृपा की प्राप्ति और अपनी अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के विषय में पक्का विश्वास रहेगा। जब तक अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति न हो जायगी, तब तक सदा एक उत्कण्ठा सी रहेगी।

६. 'नामगाने सदा रुचिः'-भगवान् का नामकीर्तन करने की सदा रुचि अभिलाषा रहेगी, उसी में आनन्द होगा।

७. 'आसक्तिस्तद्गुणाख्याने'-भगवत् गुणगान के प्रति अनुराग होगा।

८. 'प्रीतिस्तवसतिस्थले'-भगवान् के वसति-स्थान, कोई-कोई कहते हैं कि मूर्ति, प्रतिमा और तीर्थ आदि में, और किसी का तो कहना है कि चराचर विश्वब्रह्माण्ड में, सर्वभूतों में उसको प्रीति और चाह होगी।

'इत्यादयोअनुभावाः स्युर्जातभावांकुरे जने'-जिसमें केवल भाव का अंकुर जमा है, उसमें ही ये सभी लक्षण विद्यमान होंगे। भाव कुछ हँसी खेल नहीं है। आँखों से दो-चार आँसू गिरने से ही

भाव नहीं हो जाता।

'आदौ श्रद्धा ततः साधुसंगोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थ निवृत्तिः स्यात् ततो निष्ठा रुचिस्ततः।।
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदंचति।
साधकानामय् प्रेम्नः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः।।'

सबसे पहले श्रद्धा है; शास्त्र और सदाचार पर विश्वास। शास्त्र और सदाचार पर विश्वास हो जाने से साधुसंग का अधिकार प्राप्त होता है। शास्त्र और सदाचार का अनुकरण करने पर, साधुओं ने कैसा जीवन प्राप्त किया है, वे कैसी शान्ति, आराम और आनन्द से दिन बिताते हैं, यह सब देख साधुओं का सा जीवन प्राप्त करने की आकांक्षा उत्पन्न होती है, चाह होती है। यह हो जाने पर भजन की क्रिया करते-करते सारे अनर्थ रुक जाते हैं। भीतर कोई भी अनिष्टकर प्रतिकूल दशा ही नहीं रह जाती। भजन करते रहने से वह सब नष्ट हो जाती हैं। सब यह हो जाने पर भाव आता है। भाव के पश्चात् भक्ति और तब प्रेम। भाव वृक्ष है, भक्ति पुष्प है और प्रेम है पका हुआ फल। ये बहुत दूर की बातें हैं।

प्रश्न-'अश्रु, पुलक और कम्प आदि का होना क्या भाव नहीं है?'

ठाकुर ने कहा-वह सब भीतर की एक अवस्था का विकास तो अवश्य है, किन्तु अश्रु और कम्प होने से ही यह न मान लेना चाहिए कि ये भाव भी उसे हो गये। शास्त्रकारों ने भक्ति के दर्शन शास्त्र में बहुत ही बारीकी से इतना तक बतला दिया है कि कौन सा भाव उपस्थित होने पर उस समय आँसू किस ओर से किस प्रकार गिरेगा और किस भाव में आँसू का स्वाद किस तरह का

होगा। अश्रु, कम्प और पुलक आदि तो अभ्यास करने से भी बहुतों को सहज ही होने लगते हैं।

गुरु की आवश्यकता और महापुरुष के लक्षण।

प्रश्न-'महाशय! लोग कहते हैं कि गुरु किये बिना धर्म की प्राप्ति नहीं होती। इस विषय में आपका क्या मत है?'

ठाकुर ने उत्तर दिया-**मत की बात मैं नहीं जानता; मत दे भी नहीं सकता। हाँ, यह बात मुझे निश्चित रूप से मालूम हो गई है कि बिना गुरु के धर्म प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। कुछ मामूली सा काम सीखने के लिए, साधारण लिखना पढ़ना-सीखने के लिए भी गुरु की आवश्यकता होती है; बिना गुरु के क्या हो सकता है और जो विषय सबसे अधिक दुर्बोध है, उसको बिना ही गुरु के सहज में पा जाना सम्भव नहीं है।**

प्रश्न-'पशु, पक्षी, मनुष्य-सभी तो देखकर शिक्षा लेते हैं; साधारण भाव से सभी तो गुरु हैं, फिर विशेष रूप से किसी एक मनुष्य को ही पकड़ रखने की क्या आवश्यकता?'

ठाकुर ने कहा-**विशेष रूप से एक ही मनुष्य को पकड़ना पड़ेगा। एक विशिष्ट व्यक्ति गुरुत्व की स्थापना कर लेने से सच्चा गुरु मिल जाता है। उस समय सभी पदार्थ गुरुमय हो जाते हैं। ऐसा हो जाने पर फिर साधारण गुरुभाव नहीं रह जाता।**

प्रश्न-'तो कैसे मनुष्य को गुरु बनाना चाहिए?'

ठाकुर-**जिनमें भगवान् की चित्शक्ति का विलास होता हो, जिनमें भगवान् की ज्ञानशक्ति का प्रकाश हो वही तो गुरु हैं। गुरु**

और कोई नहीं हो सकता। ऐसे महापुरुष लोग ही गुरु होते हैं।

प्रश्न-'हम लोगों को अन्तदृष्टि तो प्राप्त है नहीं, इसलिए आप बताएँ कि बाहरी किन लक्षणों से हम महापुरुषों को पहचान सकेंगे।'

ठाकुर ने कहा-**साधारणतः इन पाँच लक्षणों से महापुरुष की पहचान की जा सकती है-**

पहले तो-महापुरुष कभी आत्मप्रशंसा नहीं करते; कार्य द्वारा अथवा किसी दूसरे प्रकार से भी वे अपना महत्व प्रकट नहीं होने देते।

दूसरे-महापुरुष लोग कभी किसी की निन्दा नहीं करते।

तीसरे-महापुरुष लोग कभी समय को वृथा नष्ट नहीं करते; आत्मा के लिए कल्याणकारी किसी कार्य में सदा तत्पर रहते हैं।

चौथे-महापुरुष लोग सभी जीवों पर दया रखते हैं; मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, और वृक्ष-लता तक के दुःख से सहानुभूति रखते हैं, वे दूसरों की सारी दशाओं को अपनी समझते हैं, वे स्वयं किसी के लिए उद्वेग का कारण नहीं बनते।

पाँचवे-महापुरुष लोग सदा सन्तुष्ट रहते हैं; कभी किसी कारण विचलित नहीं होते।

महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर का आह्वान।

ये सब बातें हो ही रही थीं कि ब्राह्मधर्म के आदर्शमूर्ति प्रातः स्मरणीय धार्मिकप्रवर महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर की आज्ञा से, उनके अनुगत सेवक प्रियनाथ शास्त्रीजी ठाकुर के पास आये। शास्त्रीजी ने ठाकुर से कुशलप्रश्न करके कहा-'महर्षि अस्वस्थ हैं, कान से ठीक तरह नहीं सुन पाते, उनकी दृष्टि भी बहुत कमजोर हो गई है।

आपके कलकत्ते आने की खबर पाकर उन्होंने आपको देखने का बहुत आग्रह प्रकट करके मुझे आपके पास भेजा है। वे आपसे अपनी कुछ बातें कहना चाहते हैं। शास्त्रीजी की बात पूरी होते ही ठाकुर ने महर्षि के लिए हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए कहा-**यह मेरा परम सौभाग्य है कि उन्होंने मुझे स्मरण किया है। मैं उनके दर्शन करने जाऊँगा। कब पहुँचने पर उनके दर्शन मिलने की सुविधा होगी?**

शास्त्रीजी ने तीन से पाँच बजे के बीच का समय निर्दिष्ट किया। ठाकुर ने उसी समय पर वहाँ पहुँचना स्वीकार कर लिया। शास्त्रीजी शाम को चले गये। हम लोगों का भी संध्या कीर्तन आरम्भ हो गया।

महर्षि से ठाकुर की भेंट-महर्षि को भाव और उपदेश।

२५ अग्रहायन ६ दिसंबर, रविवार। आज गुरुभाई लोग, ठाकुर के साथ महर्षि के दर्शन करने जायेंगे, इससे सभी को बड़ी प्रसन्नता है। मैं प्रातः कृत्य सम्पन्न करके बड़ी ही उदासी से ठाकुर के समीप आसन पर बैठा बैठा सोचने लगा-'शायद मेरे भाग्य में महर्षि के दर्शन नहीं है। सब लोग जिस समय महर्षि के यहाँ जायेंगे वही समय मेरा भोजन करने का समय है। एक दिन भूखा रह जाना मेरे लिए कठिन नहीं है, किन्तु भोजन केवल मेरी मर्जी पर ही कहाँ है! वह ठाकुर के आज्ञानुसार, मेरी साधन-प्रणाली का एक बंधा हुआ नियम है। इस नियम को तोड़ने से ठाकुर असन्तुष्ट हो जायेंगे? इस विषय में ठाकुर से पूछने का भी मुझे साहस नहीं होता। अब क्या करूँ?' यह सब सोच-विचारकर मैं ठाकुर के पास चुपचाप बैठा रहा।

ठाकुर का नियमित पाठ समाप्त हो जाने पर, ग्यारह बजे उन्होंने मुझसे स्वयं कहा-**क्यों, आज तुम क्या करोगे? रसोई न बनाकर मुट्ठी भर प्रसाद पा लेने से क्या काम नहीं चल जाएगा?**

यह सुनकर मैंने बहुत ही प्रसन्न होकर कहा, 'मैंने कभी महर्षि के दर्शन नहीं किये, चलने की बड़ी इच्छा है।'

ठाकुर-**तो फिर थोड़ा सा प्रसाद ही पा लेना।**

ठाकुर ने स्वयं मेरे लिए सुविधा कर दी, यह देखकर प्रसन्नता से मुझे रोना आ गया। ठीक समय पर प्रसाद पाकर मैं तैयार हो गया।

आज रविवार है। स्कूल, कॉलेज और कचहरी आदि बन्द रहने से कई गुरुभ्राता आ गये। दो बजे के बाद तेरह-चौदह गुरुभाई ठाकुर के साथ चले। कोई तीन बजे हम लोग पार्क स्ट्रीट में महर्षि के भवन पहुँचे। देखा कि महर्षि के ज्येष्ठ पुत्र श्रीद्विजेन्द्रनाथ ठाकुर सामने के हॉल में विद्यमान हैं। हम लोगों को देखते ही उन्होंने खूब आव-भगत किया, घर के भीतर ले जाकर बैठाया और शिष्यों के साथ ठाकुर के आने की सूचना महर्षि को भेज दी। उस समय महर्षि मग्नावस्था में थे, इससे हम लोग आठ-दस मिनट तक नीचे के कमरे में ही प्रतीक्षा करते रहे। बाहरी चेतना होते ही महर्षि ने हम सबको ऊपर आने की सूचना भेजी। ठाकुर के पीछे-पीछे हम सभी लोग महर्षि के समीप पहुँच गये।

देखा कि महर्षि बड़े भारी बीच वाले कमरे के बीच में एक आराम कुर्सी पर आधे लेटे हुए हैं। उनके दाहिनी और बायीं ओर कुर्सियाँ रखी हुई हैं तथा उन्हीं के पास दो लंबी-लंबी बेंचें इस ढंग से रख दी गयी हैं कि उन पर बैठकर सभी लोग महर्षि के दर्शन कर

सकें। ठाकुर ने दोनों बेंचों के बीच नमस्कार किया। वे महर्षि के चरणों को मस्तक से लगाकर रोने लगे। उस समय पवित्र-मूर्ति वृद्ध महर्षि का सफेद मुखमण्डल लाल हो गया। उन्होंने हाथों को वक्षः स्थल पर रखकर बार-बार मस्तक हिलाते हुए गद्गद स्वर में बार-बार कहा-'नमो ब्रह्मण्यदेवाय, गोब्राह्मणहिताय च। जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नम:, गोविन्दाय नमो नमः, गोविन्दाय नमो नमः।।' यह कहते समय देह में सिहरन हुई। कपोलों पर होते हुए आँसू ढुलकने लगे। ठाकुर भावावेश से अवसन्न होकर ही महर्षि के बायीं ओर कुर्सी पर बैठ गये। महर्षि और ठाकुर दोनों ही कुछ क्षणों तक चुपचाप बैठे रहे। उस समय हम लोगों ने महर्षि को साष्टांग प्रणाम किया और फिर दोनों ओर की बेंचों पर हम लोग जा बैठे। प्रियनाथ शास्त्रीजी महर्षि के दाहिनी ओर की कुर्सी पर बैठे हुए थे। हम लोगों को देखकर महर्षि ने उनसे कहा-'इन लोगों को देखने से मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। ये कौन-कौन हैं?' शास्त्रीजी ने महर्षि के कान के पास मुँह लगाकर जोर से कहा-'ये लोग गोस्वामीजी के शिष्य हैं।'

महर्षि ने कहा-'मनुष्य को जब कोई अच्छी खाने की चीज मिल जाती है, तब वह उसको अकेला ही न खाकर, दूसरों को भी हिस्सा देना चाहता है, ये भी स्वयं जिसका भोग कर रहे हैं, वही शिष्यों को भी देते हैं; इसमें उनका जरा भी स्वार्थ नहीं है, ये तो शिष्यों का ही कल्याण चाहते हैं। ये धन्य हैं, ये सचमुच शिष्यों के सन्तापहारक हैं। इनके दर्शन से प्राचीन ऋषियों का भाव ही प्राणों में जागृत होता है। ये बातें कहकर उन्होंने ठाकुर से कुशल-प्रश्न किया और बोलपुर के शान्तिनिकेतन के संबंध में कहा-'बोलपुर में

एक आश्रम बनाया गया है, उसकी प्रतिष्ठा का कार्य शीघ्र ही होगा। तुम शिष्यों के साथ उसमें सम्मिलित हो सको तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। उस आश्रम की आवश्यकता और कार्य-प्रणाली तुम्हारी समझ में कैसी होनी चाहिए, मैं जानना चाहता हूँ।'

ठाकुर कहने लगे-**भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रदेशों में विभिन्न धर्म सम्प्रदायों के आश्रम हैं। इससे साधु-संन्यासियों को उन प्रदेशों की यात्रा करने में कोई असुविधा नहीं होती। किन्तु बंगाल में इस ढंग का कोई धर्माश्रम नहीं है। जो दो-एक हैं भी वे किसी विशिष्ट सम्प्रदाय के हैं। एक ऐसे स्थान की बड़ी आवश्यकता जान पड़ती है, जहाँ सभी धर्मार्थी आश्रय पाकर अपना अपना भजन साधन बेरोक-टोक कर सके। शान्तिनिकेतन में यदि साधु-संन्यासी, फकीर, दरवेश आदि विभिन्न धर्म सम्प्रदायों के भगवत् उपासकों को शान्तिमय, साधारण स्थान मिले तो बड़ा लाभ हो। देश की सचमुच बड़ी भलाई हो। असाम्प्रदायिक ढंग का आश्रम कहीं दिखाई नहीं देता। देश में इसकी बड़ी कमी है।**

ठाकुर की बातें सुनकर महर्षि बहुत ही सन्तुष्ट होकर कहने लगे-'साधु! साधु! सचमुच जिनके हृदय में विशुद्ध प्रेम है, उनकी बात अन्तःकरण को स्पर्श कर लेती है, मन शीतल हो जाता है। असली साधु की बात ऐसी ही होती है। नहीं तो बातें ऊपरी तौर पर कही हुई हो जाती है। तुमने जैसा बतलाया सचमुच वैसा ही होना चाहिए, यही ठीक है। किन्तु जिन लोगों पर शान्तिनिकेतन का भार है, उनमें मतैक्य न रहने के कारण गोलमाल हो रहा है। तुम्हारे इस असाधारण उदार भाव को वे लोग कभी स्वीकार नहीं पाएँगे। अपने

अन्तःकरण की बातें मैं किसी से कहता नहीं हूँ, कोई उसे समझता भी नहीं। तुम समझोगे इसलिए मन की बातें तुमसे कहकर आज हृदय शीतल करूँगा।' अब महर्षि अपने जीवन की घटनाओं का वर्णन के साथ-साथ, हाफिज की कविता सुनाने और उनका अर्थ करने लगे। इस समय भाव के आवेश में विह्वल होने से महर्षि की आँखों से आँसू बहने लगे। पल पल भर में उनका गला भर आने लगा। वे फिर कहे लगे-'भगवान् को जिस भाव में प्राप्त करने की इच्छा है, उसी में नहीं पा रहा हूँ, दिल छटपटाने लगता है, वे ही जानते हैं कि समय को किस तरह काटता हूँ। वे दया करके दर्शन न दें तो मैं क्या करूँ! ज्ञान के द्वारा उनको कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता। ज्ञान तो मात्र एक कहने की ही बात है। वास्तविक प्रेम भक्ति ही उनको प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है। वह चेष्टासाध्य नहीं है। उन्हीं की दया से होती है; 'पुरुषाकार' अर्थशून्य बात है। उनके चरणों पर निर्भर होने में ही सार है। अश्वमेध का सफेद घोड़ा बनाकर मुझे ग्रहण करने को उन्होंने कहा है। उनकी इस बात के भरोसे ही, उनकी दया की ओर ताकता हुआ पड़ा हूँ। अब महर्षि बालक की तरह रोते-रोते बिल्कुल ही अधीर हो गये। ठाकुर 'जय गुरु, जय गुरु' कहने लगे। थोड़ी देर में आँखें और मुँह पोंछकर महर्षि ठाकुर से कहने लगे, 'जहाँ पर भगवान् की कृपा अवतीर्ण होती है, पहले से ही उसके लक्षण दिखाई देते हैं। जन्म, संग, शिक्षा और साधन ये चारों एक साथ न हो तो यथार्थ सत्य वस्तु, सोलहों आने धर्म प्राप्त नहीं होता। तुममें तो यो चारों उपयुक्त रूप में है। विशुद्ध अद्वैतप्रभु के वंश में तुमने जन्म ग्रहण किया है, सद्गुरु का आश्रय तुम्हें मिल गया है, उनकी कृपा से वास्तविक सत्शिक्षा और

सदुपदेश तुम प्राप्त कर चुके हो। इसके पश्चात् मनुष्य की चेष्टा से साधन-भजन भी जितना संभव है, पूर्ण मात्रा में तुमने किया है। सर्वोपरि बात है भगवान् की कृपा, सो वह भी तुम पर यथेष्ट है। तुम धन्य हो। अब महर्षि ने एक संस्कृत श्लोक पढ़ा-

'कुलं पवित्रं जननी कृतार्था, वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।

नृत्यन्ति स्वर्गे पितरस्तु तेषां, येषां कुले वैष्णवनामधेयः॥'

'तुम जो भी करते हो, जब जिस भाव से चलते हो, वही भगवान को बहुत सुन्दर लगता है।'

ठाकुर ने कहा-**आपने ही तो हाथ पकड़कर मुझे सिखाया है। मेरा सब कुछ आपकी ही कृपा से है। आप भी मेरे गुरु हैं।**

ठाकुर की बात पूरी होते न होते ही महर्षि ने हँसकर कहा, 'हाँ, तुमने यह ठीक ही कहा है। गुरु हूँ तो सही, किन्तु पाठशाला के बच्चों के मास्टर की तरह हूँ! क, ख सीखने के लिए जिस प्रकार बच्चों को पहले मास्टर साहब से सीखना पड़ता है और बाद में वे लड़के ही विश्वविद्यालय की उच्च शिक्षा प्राप्त कर चुकने पर मास्टर साहब के भी गुरु होने के उपयुक्त हो जाते हैं। उस दशा में पाठशाला के मास्टर को गुरु कहना जैसा होता है, ठीक वैसा ही तुम्हारा यह कहना है।' ठाकुर चुपचाप बैठे रहे। महर्षि ऐसी ही बहुत सी बातें कहकर ठाकुर की प्रशंसा और स्तुति करने लगे। अब ठाकुर उठकर खड़े हो गये। महर्षि के चरणों को मस्तक से लगाकर ठाकुर कहने लगे-

मैं आपका बालक हूँ, आप मुझे आशीर्वाद दीजिए।

महर्षि ने ठाकुर को नमस्कार करके कहा- 'मैं तुम्हें आशीर्वाद नहीं दे सकता, मैं तो तुम्हें श्रद्धा करता हूँ। तुम्हारी जय हो।'

हम लोग सभी महर्षि के चरण छूकर प्रणाम करके वहाँ से चलने को तैयार हो गये। महर्षि ने हम लोगों को बड़ी प्रसन्नता से आशीर्वाद देते हुए कहा, 'तुम लोगों का भला हो, तुम लोग कभी गोसाईं को छोड़ना मत, ये तुम लोगों को अनन्त उन्नति के मार्ग पर ले जाएँगे।'

महर्षि के यहाँ से बाहर आते ही गुरुभाई श्रीचरण बाबू ने ठाकुर से पूछा, 'सुना है कि बिना सद्गुरू की कृपा हुए, इस तरह की अवस्था खुलती नहीं है। फिर महर्षि को इस अवस्था प्राप्ति कैसे हो गई?' ठाकुर ने उत्तर दिया-**किसने कहा कि महर्षि पर सद्गुरू की कृपा नहीं हुई?**

श्रीवृन्दावन में महाप्रभु। महर्षि पर गुरुकृपा, सगर्भ और विगर्भ समाधि।

हम लोग ठाकुर के साथ, सिटी कालेज के प्रिंसिपल श्रीउमेशचन्द्र दत्त के गुरु श्रीनवीनचन्द्र सेन के घर पर पहुँचे। नवीन बाबू ने बड़े आग्रह से हम लोगों को बैठाया और ठाकुर से पूछा, 'सुना है कि श्रीवृन्दावन में आपके साथ महाप्रभु की भेंट हुई थी? यदि आप बताएँ कि उन्होंने क्या कहा था, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।'

ठाकुर ने कहा-**हाँ, उनके दर्शन पाने पर पहले तो मेरे मुँह से कोई बात ही न निकली। मैं उनके चरणों में गिरकर केवल रोने लगा। थोड़ी देर में मन का आवेग कुछ कम होने पर मैंने कहा 'ठाकुर, बहुत भटका हूँ।' उन्होंने कहा, 'यह तो तुम लोगों के कुल का धर्म ही है। मैंने कहा-देव, दया करके पुनः प्रकट होकर**

कलियुग के मलिन जीवों का उद्धार कीजिए। उन्होंने कहा-‘प्रकट हो जाऊँ तो अब मुझ पर कौन विश्वास करेगा। यह समय तो निकल गया।’ इसी तरह और भी बातें सी बातें हुई।

इसके पश्चात् ठाकुर ने नवीन बाबू से कहा-**मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि उनका ठीक-ठीक समव्यथी कोई था नहीं; यदि होता तो वे और भी कुछ समय तक रहते।**

महाप्रभु के संबंध में नवीन बाबू से ठाकुर की और भी बहुत सी बातें हुई। शाम हो जाने पर हम लोग घर पर पहुँचे।

रात को खूब संकीर्तन हुआ। महर्षि के संबंध में आज बहुत सारी बातें हुई। नगेन्द्र बाबू के पूछने व ठाकुर ने कहा-**महर्षि जिस समय हिमालय में साधन कर रहे थे, उस समय एक दिन एक हिमालय पर्वत निवासी महापुरुष ने दृष्टि द्वारा महर्षि के भीतर शक्तिसंचार किया था। जबसे महापुरुष की कृपा हुई है, तभी से महर्षि की दशा खुल गई है। भगवान् के ध्यान में महर्षि की समाधि लग जाती है।**

प्रश्न-‘क्या भगवान् के ध्यान के अतिरिक्त भी समाधि लग सकती है?

ठाकुर-**समाधि के दो भेद हैं। सगर्भ और विगर्भ। वायु को रोककर शरीर को स्थिर रखने से जो समाधि लगती है वह विगर्भ समाधि है; उससे कुछ लाभ नहीं होता। बाजीगर भी कुम्भक करके ऐसी समाधि लगा देते हैं। धर्म-कर्म के साथ उसका कुछ भी संबंध नहीं रहता। योगवाशिष्ठ में इसका उदाहराण है। एक दिन वशिष्ठ रामचन्द्र को लेकर एक निर्जन स्थान में गये। यहाँ मिट्टी को खोदा तो एक पक्की कोठरी मिली।**

उसके भीतर जाने पर रामचन्द्र को दिखलाया, एक मनुष्य शून्य में अवस्थित था। वशिष्ठजी ने ज्यों ही उसमें चैतन्य का संचार किया, त्यों ही उसने तीन चक्कर लगाकर ताना-ना-ना-ना करके हाथ फैलाये और यह प्रार्थना की 'महाराज, रुपया दीजिए।' बहुत समय पहले यह धन की कामना से, धन कमाने के लिए दिखा रहा था कि कुम्भक के द्वारा समाधि लगाकर शून्य में किस प्रकार स्थिर हुआ जाता है। किसी प्रकार नियम में व्यतिक्रम हो जाने से फिर उसका कुम्भक नहीं टूटा। राजा का राज्य चला गया। मकान जंगल में परिणत हो गया किन्तु उसकी समाधि नहीं टूटी। वशिष्टजी ने ज्यों ही उसमें ज्ञान का संचार किया त्यों ही अपने पिछले संस्कार के अनुसार वह उसी राजा को अनुमान करके, श्री रामचन्द्र से धन माँगने लगा। मुद्रा करके, कुम्भक करके, हठयोग की भिन्न-भिन्न रीतियों से जो समाधि लगाई जाती है उसका कुछ भी मूल्य नहीं है। भगवत्चिन्तन के साथ लगाई हुई समाधि ही यथार्थ समाधि है।

जो लोग भगवान् के साथ योग की आकांक्षा करते हैं, वे सभी प्रकार के ऐश्वर्यों अथवा शक्तियों को अनर्थ समझकर छोड़ देते हैं। सभी ऐश्वर्य दासी की तरह उनके पीछे पीछे चलते हैं, किन्तु वे लोग एक बार मुड़कर भी उस ओर नहीं देखते। असली योग को प्राप्त करने के लिये वीर्यधारण करना पड़ता है। सत्यवादी हुए बिना, वीर्यधारण नहीं होता और सत्यवादिता के लिए वाणी का संयम आवश्यक होता है। प्रायः मौन धारण कर लेना पड़ता है। आजकल राजयोग बहुत ही कठिन है। इसमें सफलता पाना एक प्रकार से असम्भव है। इस समय के लिए

उपयोगी भक्तियोग ही है। भगवान् की कृपा बिना कुछ भी नहीं होता।

सभी अवतार-पूर्णभगवान्। प्रासंगिक प्रश्न।

२२ अग्रहायन। आज अवतार आदि के संबंध में प्रश्न करने पर ठाकुर कहने लगे-**किसी-किसी समय पर किसी विशेष आवश्यकता से, भगवान् की शक्ति, व्यक्ति-विशेष के भीतर होकर कार्य करती देखी जाती है, यही अवतार है। ज्यों ही वह कार्य पूरा हो जाता है, उस व्यक्ति में फिर वह शक्ति नहीं रह जाती। उस समय फिर वह अवतार भी नहीं रहता। जिस प्रकार 'परशुराम' एक विशिष्ट समय के लिए अवतार थे। कभी तो जीवन भर तक अवतार रहते हैं, जैसे 'रामचन्द्र'। अंश, कला, आविर्भाव और आवेश आदि अनेक प्रकार के अवतार होते हैं। अवतार सदा पूर्ण होते हैं, क्योंकि भगवत् शक्ति का प्रकाश ही तो अवतार होता है। भगवान् सदैव पूर्ण हैं। हाँ, उनका अंश, अंशांश इत्यादि कहने का तात्पर्य यह है कि कहीं पर ज्ञान का कार्य, कहीं पर वीर्य का कार्य और कहीं पर भक्ति का कार्य ही दिखाई देता है। भगवान् जिस कार्य में जितनी शक्ति को प्रकट करना आवश्यक समझते हैं, उतनी ही शक्ति प्रकट करते हैं। इससे यह कहना ठीक नहीं कि उनमें अन्य शक्ति है नहीं। शक्ति तो पूरी मात्रा में ही रहती है, किन्तु पूर्णतः वे उसको प्रकट नहीं करते। यदि पल भर के लिये भी किसी में भगवान् की शक्ति का आवेश हो जाता है तो समझना चाहिए कि उसमें पूरी-पूरी शक्ति है। भगवान् कहीं भी अपूर्ण नहीं हैं, सर्वत्र सभी दशाओं में पूर्ण**

हैं। सभी अवतार पूर्ण हैं, जितना प्रकट रहता है मात्र उतने को ही लोग जान पाते हैं।

प्रश्न-भगवान् की प्राप्ति साकार का ध्यान करने से होती है या निराकार का ध्यान करने से? कौन सा मार्ग ठीक है? इसके उत्तर में ठाकुर ने कहा-**पथ कोई एक नहीं है। मतामत से यह काम नहीं होता। चाहे साकार का ध्यान करो, चाहे निराकार का, कुछ भी करो, किसी प्रकार भगवान् की प्राप्ति नहीं हो सकती। वे तो स्वप्रकाश हैं, वे जब स्वयं दया करके प्रकट हो जाते हैं, तभी उनको जाना जा सकता है। चित्त शुद्ध हुए बिना उसका प्रकाश धारण नहीं हो पाता। साधन-भजन कुछ भी क्यों न किया करो, पहले चित्तशुद्धि होनी चाहिए। जब तक चित्त शुद्ध नहीं होता तब तक भगवान् प्रकट नहीं होते। पहले चित्त को शुद्ध करो।**

प्रश्न-कौन सा उपाय करने से शरीर नीरोग और बहुत समय तक स्थायी रह सकता है?

इस प्रश्न के उत्तर में ठाकुर ने कहा-**शरीर को निरोग और अधिक समय तक स्थायी रखने के लिए भोजन का परिमाण और समय निर्दिष्ट रखना पड़ता है। असली चीज है, वीर्यधारण किन्तु उक्त दोनों नियमों का पालन हुए बिना वीर्यधारण भी ठीक तरह से नहीं होता। पहले योगी और ऋषि सभी का इस ओर विशेष रूप से ध्यान रहता था। वे कभी उन दोनों नियमों में गड़बड़ी नहीं होने देते थे।**

कालीघाट में कालीदर्शन-उदासी साधु के दर्शन -स्पर्श के विषय में उपदेश।

२३ अग्रहायन। आज ठाकुर हम लोगों को साथ लेकर कालीघाट, काली के दर्शन करने गये थे। मंदिर में बहुत भीड़ थी। पण्डे, लोग ठाकुर को बड़े आग्रह और आदर के साथ भीतर ले गये-साथ में केवल हम ही लोग थे। किसी प्रकार की असुविधा नहीं हुई। काली को माला और फूलों की डाली चढाकर नमस्कार करते-करते, हाथ जोडकर, अश्रुपूर्ण हो ठाकुर ने जब 'माँ, माँ' कहकर पुकारा तब ठाकुर के अर्द्धरोदनपूर्ण स्वर से हम लोगों के प्राण भी काँपने लगे। वे इधर-उधर झूम-झूमकर गिरने लगे, हम लोग उनको बड़ी सावधानी से बाहर ले आये। लोगों के झुण्ड आकर ठाकुर की चरणरज लेने लगे। भीड़भाड़ को हटाकर हम लोग ठाकुर को रास्ते पर ले आये। जरा चलकर ही ठाकुर एक चबूतरे पर बैठ गये और कहने लगे-**जगन्नाथ के रूप से काली के रूप में समानता है। माता की बड़ी दया है। माता सभी पर दया करती है।**

काली का माहात्म्य बतलाते समय ठाकुर भावावेश में डूबने लगे। इस समय एक बुढिया कंगालिन ने आकर ठाकुर को नमस्कार करके कहा-'बाबा, आज मेरा जन्म सफल हो गया। मेरे पास कुल एक पैसा है, दया करके तुम इसको ले लो।' अब बुढिया ने पैसा ठाकुर के आगे रख दिया। ठाकुर ने आग्रह से पैसे को उठाकर थोड़ी देर तक सिर पर रखा, फिर उसे महेन्द्र बाबू को दे दिया। कहीं वापस न कर दें, इसलिए कहा-**अयाचित दान को ले लेना चाहिए, यह पैसा अपनी बेटी को दे दीजिएगा। महेन्द्र बाबू ने हिफाजत से रख लिया।**

जरा विश्राम करके ही ठाकुर एकाएक खड़े हो गये और समीप के एक बरगद के नीचे जाकर उपस्थित हुए। वहाँ पर कई संन्यासी,

अपने-अपने आसन पर बैठे हुए धूनी ताप रहे थे। एक सौम्यमूर्ति भजनान्दी संन्यासी देह में भस्म रमाये हुए थे। उन्हें नमस्कार करके ठाकुर ने कई रुपये दिये और कहा-**आज मुझे भगवान् इसीलिए यहाँ ले आये हैं।**

आश्रम से चलते समय ही ठाकुर कुछ रुपये लेते आये थे। संन्यासियों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि वे लोग किसी से कुछ माँगते नहीं है। दो दिन से उन्हें बिल्कुल ही भोजन नहीं मिला। संन्यासी के प्रभाव से उस स्थान में उदासीनता के साथ, आनन्द का अनुभव उस स्थान पर पहुँचते ही हमलोगों को भी होने लगा। वहाँ थोड़ी देर ठहरकर ही ठाकुर ने घर पर चलने की इच्छा प्रकट की। ही देखते ठाकुर का शरीर अस्वस्थ हो गया। ज्वर चढ़ आया। तुरन्त हम लोगों ने गाड़ी ली और उसमें ठाकुर को बैठाकर घर आ पहुँचे। नियमित सन्ध्याकीर्तन के उपरान्त ठाकुर स्वस्थ हो गये। अधिक रात होने पर बातों ही बातों में ठाकुर ने कहा-**भावावेश में रहने अथवा अन्यमनस्क रहने पर किसी को छूना न चाहिए। छूना हो तो तीन बार पुकार लेने का नियम प्रचलित है। अकस्मात् कोई स्पर्श कर लेता है तो उसके सारे भावों का संचार देह में हो जाता है। समूचा शरीर झुलस सा जाता है। इस नियम को सब लोग नहीं जानते, कई अवसरों पर बड़े उत्पात में पड़ना होता है।**

राजा कालीकृष्ण ठाकुर की आकांक्षा और अनुरोध।

२४ से २६ अग्रहायन। कलकत्ते के सुप्रसिद्ध दानी, बहुत बड़े धनिक

कालीकृष्ण महाराज ने अनुरोध करके रामकुमार विद्यारत्नजी को आज दो बजे ठाकुर के पास भेजा, वे आकर कहने लगे 'कालीकृष्ण ठाकुर हर महीने हजारों रुपया धर्मार्थ दान कर रहे हैं। उपयुक्त पात्र को धन देने से वे अपने को कृतार्थ समझते हैं। लोगों से आपके संबंध में बहुत सी बातें सुनकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए। आपके दर्शन करने की उनकी बड़ी इच्छा है। आपकी कोई बँधी हुई आमदनी नहीं है, और बहुत से सम्मानीय सज्जन घर-द्वार छोड़कर धर्म की प्राप्ति की आकांक्षा से आपका आश्रय लेकर सदा आपके साथ-साथ रहते हैं। आपका सब कुछ पूर्णतः आकाशवृत्ति पर ही निर्भर है। इससे महोदय ने मुझे आपके पास यह सूचित करने के लिए भेजा कि उनकी इच्छा आपको एक लाख रुपया देने की है, यह रुपया आपकी इच्छा के अनुसार धर्मार्थ खर्च किया जायेगा। जिस दिन समय मिले, आप कृपा करके एक बार उनके घर पधारें और उनसे भेंट करें तो वे अपनी आकांक्षा आपको बतलावें और आपको प्रत्यक्ष उक्त रकम सौंप दें। उनको अच्छी तरह मालूम है कि यहाँ पर आगन्तुकों का ताँता लगा रहता है, और जो लोग यहाँ सदा रहते हैं वे किस अवस्था के हैं और किस प्रकार अभाव में रहकर भी सन्तुष्ट रहते हैं।'

विद्यारत्नजी की बातें सुनने से ठाकुर की आँखें भर आयीं; मुख स्फीत और आरक्त हो गया। ठाकुर हाथ जोड़कर भगवान् को प्रणाम करके कहने लगे-**ठाकुर महोदय से कहिएगा-मुझे यहाँ जितना यथार्थ प्रयोजन होता है, उसका पूरा पाई-पाई हिसाब लगाकर भगवान प्रतिदिन देते हैं। दो कौडी की भी कमी नहीं रहने देते। उन्हीं के द्वार पर दीन-हीन-कंगाल होकर उन्हीं का**

नाम लेता हुआ पड़ा रहूँ, बस ठाकुर महोदय यही आशीर्वाद दें। वे उस रुपये को धर्मार्थ चाहे अन्यत्र जहाँ खर्च करें। मैं उस रुपये को लूँगा तो मेरा बहुत अनिष्ट होगा। बड़े आदमियों के घर जाने से भी मुझे डर लगता है।

विद्यारत्नजी इसका कुछ उत्तर न देकर थोड़ी देर तक चुपचाप बैठे रहे, फिर चले गये। कालीकृष्ण ठाकुर महोदय बहुत से साधुओं को मासिक वृत्ति दिया करते हैं। विद्यारत्नजी ने भी बडे सद्भाव से यह चर्चा छेड़ी थी।

छोटे दादा की सेवा-ठाकुर के अश्रु।

२४ से २६ अग्रहायन। हम लोगों के कलकत्ते पहुँचते ही दरभंगा से पत्र आया, वहाँ शान्तिसुधा बहुत बीमार हैं। दाऊजी भी खूनी आँव से बहुत पीड़ित हैं। यह खबर मिलते ही ठाकुर ने योगजीवन को भेजकर शान्तिसुधा को यहाँ बुलवा लिया है। शान्तिसुधा कई दिन तक वृन्दावन बाबू के घर रहकर अब यहाँ आ गई हैं। प्रबल ज्वर और पेट की बीमारी से वे अब मरणासन्न हैं। यहाँ पर सेवा-सुश्रुषा करने वाले भी कोई नहीं! उनकी हालत देखकर हम लोग अत्यन्त दुखी और चिंतित हैं। किन्तु क्या करें। सांसारिक आराम, आनन्द और सुख को विषमय समझकर, केवल ठाकुर की अमृतमय संगति पाकर ही हम लोग मुग्ध रहते हैं। यहाँ रोगी की विपदा को अपने मत्थे लेकर बार-बार मल-मूत्र छूना भला कैसे लगेगा? अतएव हममें से रोगी से दूर रहकर, आपस में एक दूसरे को कर्तव्यबुद्धि का निरा यह उपदेश दिया करते हैं कि रोगी की सेवा-सुश्रूषा सबसे पहले होनी चाहिए। इधर शान्तिसुधा की हालत दिन पर दिन खराब होती

जाती है।

छोटे दादा कलकत्ते में ही एम.ए. और कानून की शिक्षा ले रहे हैं। उनको फुरसत बहुत ही कम मिलती है; फिर भी ठाकुर के संग के लोभ से झामापुकुर मुहाने से वे कम से कम कुछ समय के लिए ही आ जाते हैं और प्रतिदिन ठाकुर के दर्शन करके जाते थे। शान्तिसुधा की हालत देखकर उनको बड़ा दुःख हुआ। सारी आवश्यकताएँ, यहाँ तक कि ठाकुर के संग की आकांक्षा तक को बिलकुल त्यागकर बड़े धैर्य से, प्रायः अर्द्धक्षिप्त और उत्कट पीडित शान्तिसुधा की सेवा में लगातार लगे रहने लगे। वे बड़े सन्तोष से विकारी रोगी के विषम उत्पात सहकर, स्थिर रहते हुए सेवा सुश्रुषा करते हैं। निर्विकार भाव से मलमूत्र, कै दोनों हाथों से साफ करते हैं। यह देखकर सभी गुरुभाई बहुत सन्तुष्ट हुए। ठाकुर सदा बगल के कमरे में रहकर शान्तिसुधा की सारी हालत देखा करते हैं। आज प्रसंग आ जाने पर छोटे दादा की सेवा निपुणता की चर्चा करके ठाकुर रो पड़े और कहने लगे-**बिलकुल माता की भाँति दर्द को समझकर, रोगी का मन जो कुछ चाहता है, उसको जानकर सेवा-सुश्रूषा शारदा ही कर सकते हैं। उसके स्पर्श से मन ठण्डा हो जाता है। शारदा एक लोटा पानी देते हैं, तो उसमें भी जी-जान सब लगा देते हैं। सेवा तो बहुत लोग करते हैं, किन्तु ऐसी सेवा तो देखी नहीं जाती।**

ठाकुर की आँखें भर आयीं। वे गद्गद होकर छोटे दादा के सेवाकार्य की प्रशंसा करने लगे। सुनकर मुझे अपने ऊपर धिक्कार उत्पन्न हुआ। सोचा, हाय, ऐसा दिन कब होगा, जब ठाकुर मेरी सेवा देखकर ऐसी ही प्रसन्नता प्रकट करेंगे। इतने दिनों से इतना

साधन भजन करने पर भी और ठाकुर की सेवा-सुश्रुषा करके उनकी जिस प्रसन्नता को मैं प्राप्त नहीं कर सका, उसी को दो पाँच दिन थोडी सी सेवा करके, सहज ही छोटे दादा ने प्राप्त कर लिया। सब कुछ भाग्य से होता है।

इस समय ठाकुर अपने आप को ही कहने लगे-**स्वार्थ और अभिमान से जो सेवा की जाती है वह दूसरे ही प्रकार की होती है। किन्तु जो सेवा हृदय से की जाती है, वही तो यथार्थ सेवा है। ऐसी सेवा न तो चेष्टा करने से बन सकती है और न प्रत्येक व्यक्ति वैसा कर ही सकता है।**

शान्तिसुधा की सेवा के दिनों में छोटे दादा ने अपनी डायरी में ठाकुर की कृपा के विषय में लिख रखा है उसका थोड़ा सा अंश यहाँ उद्धृत करता हूँ-

‘दोनों हाथों से कै साफ करते-करते, जी मचलाते देख मैंने गुरुजी से सहायता माँगी। गुरु की कृपा से-उन्हीं के नाम के गुण से, कुछ तो मिली भी। हाय! हाय! अपनी थोड़ी सी भी क्षमता नहीं है।

थोडी सी साधारण सेवा करने के लिए भी गुरुजी की सहायता की आवश्यकता हुई। गुरुजी की ही सुन्दर उज्ज्वल मूर्ति हृदय में प्रकाशित हुई। गुरुजी मेरी ओर एकटक देख रहे हैं। उनके पलकों का गिरना बन्द है। मैंने उसे हटाने का प्रयास किया।

ठाकुर की नाराजी।

२४ से २६ अग्रहायन। छोटे दादा और कुंज बाबू रात को ठाकुर के पैर दबाया करते हैं। एक दिन निर्दिष्ट समय पर वे ठाकुर के पैर दबाने को जाने ही वाले थे कि महेन्द्र बाबू ने उन लोगों से कहा,

'हमारा सिर दबा दो।' वे लोग मन में कुछ नाराज होकर जल्दी जल्दी उतावलेपन से महेन्द्र बाबू का सिर दबाकर चले गये। महेन्द्र बाबू को आराम न मिला। ठाकुर के पास पहुँचकर, वे लोग ज्यों ही उनके पैर दबाने को तैयार हुए त्यों ही ठाकुर ने जरा चिढ़कर धमकाते हुए, कहा-**जाओ जाओ, पैर दबाने की आवश्यकता नहीं। जाकर सो जाओ। चले जाओ।**

वे लोग ताड़ गये कि यह महेन्द्र बाबू का काम ठीक से न करने का फल है। इससे लज्जा और डर के मारे बिना कुछ कहे उठकर चले गये।

किसी के क्लेश की परवाह न करके अथवा किसी की आवश्यकता को पूर्ण किये बिना ही ठाकुर सेवा के लिए जाने पर हमें सदा ठाकुर की ऐसी ही नाराजी का सामना करना पड़ता है।

भीतर त्रिभंग।

२४ से २६ अग्रहायन। ठाकुर का कार्य दिन रात घड़ी के काँटों के अनुसार नियमपूर्वक होता रहता है। इससे हम लोगों के प्रतिदिन के कार्य भी नियमित हो गये हैं। पता नहीं लगता कि सारा दिन किस प्रकार बीत गया। दिन भर में ठाकुर से जी खोलकर, एक बात कहने तक का अवसर किसी को नहीं मिलता। रात को भोजन कर लेने के पश्चात् ठाकुर थोड़ी देर के लिए शिष्यों के साथ, उन्हीं लोगों की तरह हो जाते हैं और हँसी-गपशप प्रायः रात के बारह बजे तक होती रहती हैं। अन्यान्य दिनों की भाँति आज भी श्रीकुंजबिहारी गुह और छोटे दादा ठाकुर की चरण सेवा कर रहे थे। ठाकुर बहुत सी बातें छेड़कर कई तरह की बातें करते रहे। छोटे दादा ने मौका

देखकर कहा-स्वप्न में देखा कि दशभुजा भगवती मेरे भीतर प्रवेश करके बिलकुल समा गई। उस समय मैंने एक असीम शक्ति का अनुभव किया। क्या यह सत्य है?

ठाकुर ने कहा-**अजी, ये स्वप्न क्या केवल स्वप्न है? एक त्रिभंग मेरे भीतर प्रवेश करके मझे त्रिभुवन घुमा रहा है। वह निकलने की चेष्टा करके भी बाहर नहीं निकल पाता, (हाथ से दोनों पार्श्व दिखाकर) इधर-उधर चक्कर लगाकर रह जाता है। फिर तुम्हारे भीतर तो दशभंग है, धीरे-धीरे मालूम हो जायगा।**

ठाकुर ने किसी अन्य अवसर पर कहा था-**मेरे नाम का अर्थ है, घूमते फिरना।**

कृष्ण की विजय अर्थात् कृष्ण का घूमना फिरना। पता नहीं, ठाकुर की बात का यही अर्थ है या कुछ और भी।

स्वप्न-संबंधी बातें। रोगी के लिए ठाकुर की सहानुभूति और चिकित्सा।

तरह-तरह के स्वप्न देखने के संबंध में प्रश्न करने पर ठाकुर ने कहा-**कई बार स्वप्न में ही मनुष्य के चरित्र की परीक्षा होती है। जब स्वप्न में देखो कि अनेक प्रकार के प्रलोभनों में पड़ने पर भी चित्त स्थिर है, किसी ओर विचलित नहीं होता है, तभी ठीक समझो। और स्वप्न में थोड़ी सी भी मानसिक चंचलता हो जाय तो समझ लेना कि भीतरी दुर्बलता दूर नहीं हुई है। गुरु-संबंधी या देवतासंबंधी जो स्वप्न दिखाई देते हैं, उनको सच समझना। उनमें जो कुछ असंलग्न या बेतुका जान पड़ता है उसका भी कुछ न कुछ तात्पर्य रहता है। अच्छा स्वप्न देखना बड़े सौभाग्य**

की बात है। बहुत समय तक साधन-भजन करते रहने से भी जिन अवस्थाओं की प्राप्ति कठिन होती है, उनकी प्राप्ति एक मिनट के स्वप्न में अनायास होती देखी गई है। मैं जब डॉक्टरी करता था, तब कठिन रोगी की चिन्ता होने पर प्रायः परलोकगत दुर्गाचरण डॉक्टर स्वप्न में मुझे औषधि के बारे में बता जाते थे। उससे मैंने रोगियों में अचूक उपकार होते देखा है।

अब ठाकुर कहने लगे कि वे किस प्रकार रोगियों की सेवा और चिकित्सा किया करते थे। वह सब सुनने से हम लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। एक बार शान्तिपुर में खूब हैजा फैला हुआ था। तीन-चार कै-दस्त होते ही रोगी चल बसता था। शान्तिपुर के घर-घर से रोने-पीटने की आवाज सुनायी पड़ती थी। बस्तीवाले चारों ओर भागने लगे, ठाकुर खाना-पीना और सोना छोड़कर दिन-रात दवाओं का बक्सा लिये हुए रोगियों के घर दौड़ने लगे, किन्तु किसी को कुछ फायदा न हुआ। अन्त में कोई उपाय न देखकर एक दिन, रात के समय, वे रो पड़े और कातर हो, दवा देने के लिए प्रार्थना करके सो गये। सो जाने पर स्वप्न में परलोकगत दुर्गाचरण डॉक्टर साहब ने आकर ठाकुर से कहा-'सैंटोनिन में अमुक कुछ औषधियाँ मिलाकर दो, इसका सेवन करने से रोगी स्वस्थ हो जायगा।' रात को साढ़े तीन बजे वह व्यवस्था मिलते ही ठाकुर उठ बैठे और उसी समय घर-घर जाकर रोगियों को वह दवा देने लगे। आश्चर्य की बात है कि उस औषधि का सेवन करने के बाद फिर एक भी रोगी नहीं मरा।

शान्तिपर में ठाकुर के रहते समय एक दिन वे गंगाजी के उस पार एक मरणासन्न रोगी को देखने के लिए बुलाये गये। रोगी की

बुरी हालत और उसकी गृहस्थी की दुरवस्था देखकर ठाकुर चिन्तित हुए। रोगी को दवा देकर दूसरे दिन सवेरे फिर दवा मँगा लेने के लिए वे रोगी के घरवालों से कह आये। किन्तु उस दिन मौसम बहुत ही खराब हो गया। सवेरे से ही जोरों से पानी बरसने लगा। इधर ठाकुर बडी उत्कण्ठा से प्रतीक्षा करने लगे कि रोगी के घर से कोई दवा लेने को आ रहा होगा। किन्तु दिन ढल जाने पर भी कोई न आया। आँधी-पानी ने और भी विकट रूप धारण कर लिया। ऐसा लगता था मानो आँधी, शहर को उखाड़ ले जायगी। तब ठाकुर रोगी की अवस्था का विचार करके बेचैन हो उठे। अब वे दवा की शीशी लेकर गंगा किनारे पहुँचे। वहाँ पार पहुँचाने के लिए एक भी नाव न पाकर उन्होने धोती के छोर से दवा की शीशी कसकर सिर से बाँधी और वे चटपट उस समय की प्रबल स्त्रोत वाली भयंकर नदी में कूद पड़े और तैरते-तैरते दूसरे किनारे पर अनिर्दिष्ट स्थान में पहुँचे। वहाँ से दुर्गम, अज्ञात मार्ग से भटकते-भटकते रोगी के घर गये। घरवाले उस दशा में, उस समय, ठाकुर को देखकर विस्मित होकर कहने लगे-‘ऐसे बुरे मौसम में घर के बाहर पैर रखना कठिन है। आप ऐसी रात में इतनी दूर किस तरह आये?’ तब ठाकुर ने उन्हें रास्ते का सारा किस्सा सुनाया और रोगी को दवा दी। रात को वे वहीं रहे। रोगी की हालत में कुछ सुधार हो जाने पर, दूसरे दिन सवेरे वे घर लौटे।

नवीन बाबू का सेवाकार्य।

गुरुभाई श्रद्धेय डॉक्टर नवीन बाबू(श्री नवीनचन्द्र घोष-किसी समय मेडिकल अफसर थे। नौकरी करते हुए अपनी धर्मप्रवृत्ति के

अनुकूल स्वाधीनता से जीवन बिताना बहुत ही कठिन समझकर इन्होंने नौकरी छोड़ दी। इस समय ये कट्टर ब्राह्म थे। उन दिनों ब्राह्मसमाज में इनका बड़ा नाम था। ठाकुर से दीक्षा लेने पर धीरे-धीरे नवीन बाबू के मत और दशा में परिवर्तन हो गया। उस समय से ये ठीक-ठीक वैष्णव आचार-विचार से रहकर लगातार साधन-भजन किया करते हैं। चौबीस परगना जिले के अंतर्गत बागुण्डि गाँव इनका निवास स्थान है।) की स्त्री को बहुत दिनों से उन्माद रोग है। ऊपर से तरह तरह बीमारियों से उनकी हालत बहुत ही नाजुक हो गई है। अक्सर उनको बाँधकर रखना पड़ता है। नवीन बाबू स्वयं प्रतिदिन बड़ी सावधानी से उनका मलमूत्र साफ करते, स्नान और भोजन आदि कराते हैं। वे इन कामों को एक दिन के लिये भी नौकरानी या अन्य किसी के भरोसे नहीं छोड़ते। ठाकुर नवीन बाबू की रोगी के प्रति असीम समवेदना और अक्लान्त सेवा की प्रशंसा करके कहने लगे-**आजकल इस तरह की सेवा अक्सर देखने को नहीं मिलती।**

प्रतिदिन सवेरे और दोपहर को नवीन बाबू के घर गुरुभाईयों का समागम होता है। वे जिस प्रकार अपनी स्त्री का मन रख करके और सदा उनकी आवश्यकताओं पर दृष्टि रखकर गुरुभाईयों की आवभगत करते हैं, उसकी तुलना नहीं की जा सकती। अच्छे कामों में उनका आग्रह और अध्यवसाय बिना किसी दिखावे के रहता है। यह देखकर मैं तो दंग हो जाता हूँ।

प्रतिदिन का पूजा-पाठ समाप्त करके, एकान्त और अवसर देख, फूल-चन्दन-तुलसी लेकर ठाकुर की पूजा करने आया करते हैं। ठाकुर के आगे थोड़ी देर बैठते ही, वे अश्रु-कम्प-पुलक आदि से

बिल्कुल अभिभूत हो जाते हैं और ज्यों ही वे ठाकुर के चरण पर तुलसी-चन्दन आदि पूजा अर्पण करने को उद्यत होते हैं त्यों ही ठाकुर-'तुलसी पैर पर न रखनी चाहिए, यह मेरे सिर पर रखिए' कहकर मस्तक पर धारण कर लेते हैं। और पल भर में ही समाधिस्थ हो जाते हैं। निर्दिष्ट समय पर हमलोग उन्हें आसन से नहीं उठा पाते।

गुरुभाई वृन्दावन बाबू, एक दिन सवेरे, रात की ही धोती पहने हुए कुछ जलपान कराने को ज्यों ही ठाकुर को देने लगे त्यों ही नवीन बाबू ने कहा-यह क्या! आप अशुद्ध धोती पहने हुए जलपान लाकर ठाकुर को देने जा रहे हैं। वृन्दावन बाबू जरा लज्जित होकर रुक गये। फिर बातचीत के सिलसिले में वृन्दावन बाबू ने इस विषय को छेड़ा तो ठाकुर ने हँसकर कहा-**डॉक्टर साहब ने अपने भाव के अनुसार ठीक ही कहा है, किन्तु तुमने अपनी भावना के अनुसार काम किया क्यों नहीं? उन्होंने तो तुम्हें ठग लिया।**

वृन्दावन बाबू ने कहा-'क्या पता था कदाचित आप न खाते!'

ठाकुर ने कहा-**मेरे न खाने पर भी, तुम मानते क्यों? मेरी गाल दबाकर खिला देते।**

भक्त के सेवा-साहस से ठाकुर को दुःख।

२४ से २७ अग्रहायन। दूर देश से सपरिवार गुरुभाईयों ने आकर आश्रम को परिपूर्ण कर दिया है। दीक्षा लेने के लिए बहुत से नर-नारी दूर-दूर से आये हैं। आश्रम में पचास-साठ व्यक्ति सदा रहते हैं। श्रद्धेय नवीन बाबू और चन्द्रमणि दीदी बिना प्रकट किये, उदार होकर खर्च चला रहे थे। ठाकुर मग्नावस्था में थे कि एक दिन

अकस्मात् रोकर कहने लगे-**इन्होंने मुझे खदेड़ दिया, यहाँ अब और नहीं रहने देंगे।** जरा ठहरकर गुरुभाईयों ने पूछा-'आपको किन्होंने भगाया?'

ठाकुर ने कहा-**नवीन बाबू और मुंडा ने।**

यह सुनकर चन्द्रमणि दीदी रो-रोकर कहने लगीं-'बाबा! हम लोगों ने आपको कब भगाया है?'

ठाकुर ने कहा-**भगाया नहीं तो क्या! तुम लोग जिस तरह करते हो, उससे अगर मैं कुछ दिनों तक यहाँ रहूँगा तो तुम सबको भीख माँगने की नौबत आ जाएगी।**

उन्होंने कहा-'हम लोगों का है क्या बाबा! आपका रुपया आपके ही काम में खर्च हो रहा है। हम लोग तो उसे केवल हाथ से देकर ही धन्य हो रहे हैं। क्या आप इतना भी नहीं करने देंगे?' अतिरिक्त साहस करने से चन्द्रमणि दीदी और नवीन बाबू के कर्जदार होने की नौबत आई देखकर, इस तरह ठाकुर ने उनकी चेष्टा रोकी।

भक्त के भाव से ठाकुर का आग्रह और समादर।

२४ से २७ अग्रहायन। एक दिन एक बहुत ही गरीब गुरुभाई, ठाकुर को कुछ खिलाने के लिए, केवल दो-तीन आने लेकर लगभग सवेरे सात बजे से डेढ़ बजे तक कलकत्ते में घूमता रहा। अन्त में अपनी पसन्द की खाने की वस्तु दो-तीन पैसे में उसने मोल ली। यह लेकर वह भूखा-प्यासा, थका हुआ, दो बजे श्यामबाजार वाले घर पर आया। किन्तु इस सन्देह और डर से उसका मुँह सूख गया था कि क्या मालूम ठाकुर इसको ग्रहण करेंगे कि नहीं। वह गुरुभाई ज्यों ही

नीचे (रास्ते में) जीने के पास पहुँचा त्यों ही ठाकुर एकाएक आसन से उठकर खड़े हो गये। उनकी आँखों में आँसू आ गये। वे दौड़कर ऊपर जाने के दरवाजे पर जा खड़े हुए और अश्रुपूर्ण स्वर में बार-बार बुलाकर उन्होंने गुरुभाई से कहा-**अजी तुम यह क्या लाये हो? लाओ, जल्दी ले आओ, मुझे बड़ी भूख लगी है।** स्नेह से ठाकुर के बुलाने पर गुरुभाई रो पड़ा। वह ठाकुर के हाथ में खाने की वस्तु देकर, उनके चरणों में लोट गया। ठाकुर की आँखें सजल थीं। उन्होंने बड़े आग्रह से वह वस्तु प्रायः सब खा ली; थोड़ी सी बचाकर उस गुरुभाई को दे दी। उस वस्तु की बहुत प्रशंसा करते करते और आँखें पोंछते हुए वे आसन पर जाकर बैठ गये।

निर्दिष्ट समय के अतिरिक्त बीच में ठाकुर इस प्रकार कुछ नहीं खाते। असमय कुछ खाने को लाया जाता है तो ठाकुर बहुत ही थोड़ा सा ग्रहण करके बाकी सब का सब हम लोगों को बाँट देते हैं। किन्तु इस गुरुभ्राता के असाधारण आग्रह और अनुराग को समझकर ही, जान पड़ता है कि ठाकुर ने नियम को भुलाकर प्रायः सब खा लिया।

डॉक्टर हरकान्त बाबू की दीक्षा।

२८ अग्रहायन। कुछ दिनों से दीक्षा की धूम चल रही है। किसी को दीक्षा मिलते देखते ही मुझे बड़े दादा की याद आती है। अब तक उनको दीक्षा न मिलने से बहुत ही खेद है। इस बार दादा के आते ही ठाकुर कृपा करेंगे, यह सोचकर मैंने दादा को आने के लिए बार-बार आग्रह किया है। ठाकुर की कृपा पर भरोसा रहने से मैंने उनकी अनुमति की भी प्रतीक्षा नहीं की। दादा फौजाबाद से आ गये।

उनको देखकर ठाकुर बहुत प्रसन्न हुए।

मार्गशीर्ष शुक्ला १३ रविवार को ठाकुर ने दादा की इच्छा के अनुसार, उन्हें निर्जन कक्ष में ले जाकर दीक्षा दी। दीक्षा के समय दादा को कोई विशेष अनुभव हुआ कि नहीं यह पूछने पर उन्होंने बतलाया। 'मुझसे प्राणायाम करते नहीं बना। कई बार नाम का स्मरण करते ही मुझे न जाने क्या हो गया। महादेव ने आकर मुझे पकड़ लिया। बैटरी से बिजली का संचार जैसे होता है, वैसे ही अकस्मात् मेरे अंगों में आनन्द समा गया। गोस्वामीजी ने दोनों हाथों से मेरी दोनों भुजाएँ पकड़ ली। गोस्वामी को मैंने महादेव के वेश में देखा। उस समय मुझे तन्द्रा सी आ गई। मैं और कुछ नहीं जानता।' दादा की बातें सुनने से मुझे {स्वर्गीय डाक्टर हरकांत वन्द्योपाध्याय मेरे सबसे बड़े भाई हैं। प्रख्यात श्री के. जी. गुप्त, डॉक्टर पी. के. राय आदि इनके सहपाठी और मित्र थे। जब नवयुवक केशव बाबू के प्रथम उद्यम के समय, इन्हें ब्राह्मधर्म पर बड़ी आस्था थी; तभी से इनकी जान पहचान गोस्वामीजी से थी। बहुत समय तक संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) के फैजाबाद, लखनऊ, मथुरा और काशी आदि स्थानों में बड़े सुयश के साथ सरकारी असिस्टेंट सर्जन और सिविल मेडिकल अफसर का कार्य इन्होंने बहुत समय तक किया था। नौकरी करते समय अनेक तीर्थों में इनकी अनेक महापुरुषों से भेंट हुई थी। उन लोगों की कृपा से इन्हें सनातन धर्म पर प्रगाढ़ अनुराग हो गया था। इसके बाद इन्हें ठाकुर की कृपा से दीक्षा प्राप्त हुई। फिर पेंशन लेकर, जीवन के अंतिम भाग में, घर-गृहस्थी का सम्पर्क बिल्कुल छोड़कर साधन-भजन लेकर वे पुरीधाम में गुरुजी के समाधि स्थान में रहने लगे थे।

बहुत थोड़े समय में ही इनको ठाकुर की कृपा का विशेष रूप से अनुभव हो गया। पुरीधाम में समुद्र किनारे खड़े होकर ये बंगाल की खाड़ी के उस पार के मनोरम दृश्यों को देख लेते थे। बहुत दूर रहने पर भी गंगाजी की कल-कल ध्वनि सुनकर मुग्ध हो जाते थे। बहुत सी अलौकिक घटनाएँ ये प्रत्यक्ष देखते थे। वरदाकान्त को बुलाकर अपनी मृत्यु का समय बतला दिया और शव को उठाने के लिए विमान बनवाया। जिस दिन शरीर छोड़ा उस दिन प्रातःकाल अपनी पत्नी को बुलाकर कहा-'आज ठाकुर ने मुझको बताया है तुम्हारा कर्म पूरा हो गया है, चाहो तो कुछ समय तक और भी सकते हो और इच्छा हो तो अभी हमारे पास चले आओ।' अबतक तो मैं तुम्ही सबकी रोवा-सुश्रूषा करता रहा है, अब ठाकुर दया करके मुझे बुला रहे हैं, इससे मैं अब नहीं रहना चाहता। तुम सभी मुझे आशीर्वाद दो। इसके पश्चात् उन्होंने अपने स्थापित किये हुए ठाकुरजी को तुलसी और चन्दन चढ़ाया एवं थोड़ी सी बार्ली का नैवैद्य लगाया। फिर नमस्कार करके वह प्रसाद पाया और अपने बिछौने पर लेटे रहे। फिर थोड़ी देर में होश हवास रहते हुए, उन्होंने शरीर का त्याग करके श्रीश्रीगुरुदेव के श्रीचरणों का आश्रय ले लिया।} बडा आनन्द आया। साधन के ग्रहण के उपरान्त दादा सोचने लगे 'ठाकुर ने दीक्षा तो दे दी, किन्तु यह नहीं बतलाया कि कैसा आसन लगाकर जप करूँगा।' ठाकुर ध्यान में मग्न थे। दादा के मुँह की देखकर उन्होंने तीन प्रकार के आसन लगाकर दिखला दिये। इसके पश्चात् फिर ध्यान में डूब गये। दादा मन ही मन खूब प्रसन्न हुए। (दादा की डायरी से उद्धृत)।

हरकान्त बाबू का स्वप्न।

२९ अग्रहायन। दोपहर को भोजन के बाद ठाकुर ने दादा से बहुत सारी बातचीत की। दादा का स्वप्न वृत्तान्त बड़ा अद्भुत है। ठाकुर ने और कई गुरुभाईयों ने दो एक स्वप्नों का विवरण सुनने की इच्छा प्रकट की। ठाकुर ने भी दादा को उक्त वृत्तान्त सुनाने के लिए उत्साहित किया। तब दादा दो-तीन स्वप्नवृत्तान्त सुनाने लगे। इनको उन्होंने लिख रखा था।

१) 'एक दिन देखा-आप एक बड़ी लम्बी, काली, तरंगयुक्त चौड़ी नदी के बीचोबीच खड़े हुए हैं, उसका प्रवाह बहुत तीव्र है; बड़ी चेष्टा करके, कई गोते खाते, लोगों के झुण्ड ज्यों ही आपके पास पहुँचते हैं, त्यों ही आप उनमें से हर एक को दोनों हाथों से पकड़कर नदी में डुबोकर छोड़ देते हैं।' उन लोगों का शरीर तुरन्त ही सफेद कॉच की तरह स्वच्छ हो जाता है और उन सबकी आकृति भी एक-सी हो जाती है; फिर वे सभी नदी को सहज ही पार करके चले जाते हैं।

२) दादा ने फिर कहा-'एक दिन देखा कि एक मेम हाथ में एक रकाबी भर खाद्य वस्तु लिये हुए मेरे नारायण को भोग लगाने के लिए पूजावाले कमरे के भीतर आई। ऐसा क्यों देखा?'

ठाकुर ने कहा-**लक्ष्मीजी अब अंग्रेज साहबों के घर में ही हैं। इसीसे उस रूप में दिखाई पड़ीं। जहाँ स्त्रियों की मर्यादा नहीं होती वहाँ लक्ष्मीजी नहीं रहती। इस देश में द्रौपदी की जैसी विडम्बना हुई थी, उसका पूरा-पूरा प्रायश्चित अभी तक नहीं हुआ।**

माधवदास बाबाजी का समाधि में अन्तर्धान होना और ठाकुर का वृत्तान्त।

२९ अग्रहायन। अयोध्या के नानकशाही संप्रदाय के प्रसिद्ध महात्मा माधवदास बाबाजी ने किस दशा में शरीर छोड़ा था? ठाकुर के यह पूछने पर दादा ने कहा-'बाबाजी प्रतिदिन शाम होने के बाद भजन कुटीर में जाकर दरवाजा बन्द कर लेते थे और रातभर आसन पर समाधि लगाये बैठे रहते थे। जिस रात को उन्होंने शरीर छोड़ा उसी रात को उन्होंने शिष्यों से दरवाजे को बाहर से बन्द कर देने के लिए कह दिया। उस दिन बाबाजी ने मुझे दोपहर को बुला भेजा था। मैं यह सोचकर उस दिन नहीं गया कि जरा फुरसत से जाऊँगा। रात के पिछले पहर स्वप्न देखा-बाबाजी की देह सोने की हो गई है। वे हँसते-हँसते पास आये और मेरे सिर पर हाथ फेरते-फेरते आशीर्वाद देकर कहने लगे-'बेटा, तुम्हारा भला होगा, आनन्द करो। अब हम जाते हैं।' अब वे अपने शरीर की छटा से दिशाओं को आलोकित करते हुए, शून्य मार्ग से होकर अनन्त आकाश में अदृश्य हो गये। स्वप्न देखते ही मैं जाग पड़ा; मेरा दिल धड़कने लगा। बाबाजी का वही रूप बार-बार मन में दिखाई देता था, इससे मैं बेचैन हो उठा। मैंने भोर होते ही बाबाजी की खबर लाने के लिए आदमी भेजा। थोड़ी देर में ही उसने लौटकर कहा, कि सवेरे निश्चित समय पर जब बाबाजी आसन से उठकर बाहर नहीं आये, तब शिष्यों को सन्देह हुआ। बाद में ज्ञात हुआ कि उसी रात को बाबाजी ने अपने आसन पर, समाधिस्थ अवस्था में शरीर त्याग दिया है। इस घटना से कुछ दिन पहले

बाबाजी ने अपने प्रिय शिष्य नारायणदास को रानोपाली में आ जाने की खबर दे दी थी। अब वे नारायणदास ही बाबाजी की गद्दी पर हैं। नारायणदास की भी बड़ी प्रशंसा सुनता हूँ।

माधवदास बाबाजी के वृत्तान्त के सिलसिले में एक बार ठाकुर ने कहा-**बाबाजी बड़े दयालु थे। मुझ पर बड़ी कृपा रखते थे। उन्होंने मेरे साथ एक ही पात्र में भोजन किया था। मुझसे उन्होंने 'ग्रन्थसाहब' का पाठ करने के लिए कहा था। उन्हीं के कहने से मैं प्रतिदिन ग्रन्थसाहब का पाठ किया करता हूँ। नारायणदास को वह गद्दी मिल गई, यह अच्छा हुआ। नारायणदास पर बाबाजी की असाधारण कृपा थी।**

साधु नारायण दास का अद्भुत जन्मवृत्तान्त।

३१ अग्रहायन। माधवदास बाबाजी की कृपा से नारायणदास का अलौकिक जन्म हुआ था, वह वृत्तान्त सुनकर हम लोगों को आश्चर्य हुआ। बाबाजी के आश्रम में जब जंगल ही जंगल था, तब एक विधवा स्त्री आकर वहाँ प्रतिदिन दोनों वक्त झाड़-बुहार करके साफ कर जाती थी। उस स्त्री के और कोई नहीं था। वह बहुत ही गरीब थी। आँधी-पानी, सर्दी-गर्मी में सदा उसको सेवा करते देख बाबाजी बहुत ही सन्तुष्ट हुए। उन्होंने एक दिन उसको बुलाकर कहा-'माँ, शीघ्र ही तुमको गर्भ रहेगा और एक साधु सत्पुत्र उत्पन्न होगा।' स्त्री ने कहा, 'बाबाजी! मैं तो विधवा हूँ और बिल्कुल ही दरिद्र हूँ! पुत्र होने से मेरी क्या दशा होगी?'

सुनकर बाबजी ने कहा-सब गुरुजी की इच्छा है! मैंने प्रसन्न होकर जो कुछ कह दिया है मिथ्या नहीं हो सकता। तुम्हारा जरा भी

अनिष्ट न होगा। अच्छा ही होगा। लड़का जब पाँच वर्ष का हो जाय तो हमें दे देना। हम उसे चेला बना लेंगे। बाबाजी के कहने के अनुसार विधवा के पुत्र हुआ और जब पाँच वर्ष का हो गया तब माँ ने लाकर उसे बाबाजी के चरणों में अर्पित कर दिया। उसकी अवस्था तेरह-चौदह वर्ष की हो जाने तक बाबाजी ने उसे अपने ही साथ रखा। फिर उसे सभी तीर्थों की यात्रा करने को उसे भेज दिया। तभी से नारायणदास गुरुजी की आज्ञा न मिलने तक, अभी तक तीर्थों में विचरते रहे। बाबाजी से उनकी भेंट नहीं हुई।

मैं जब फैजाबाद गया था, तब अवसर मिलते ही दादा के साथ रानोपाली में बाबाजी के दर्शन करने जाता था। आश्रम बिल्कुल ऋषि-मुनियों के तपोवन जैसा था। वहाँ पहुँचते ही चित्त प्रफुल्लित हो उठता था। भजन की एक अद्भुत शक्ति और गम्भीरता का अनुभव आश्रम में पहुँचते ही होता था। आश्रम में से होकर रेल के पथ का सारा बन्दोबस्त हो जाने पर भी, बाबाजी के असाधारण ऐश्वर्य-प्रभाव से वह काम बन्द हो गया था। प्रायः सभी संप्रदाय के लोग बाबाजी को असाधारण सिद्ध पुरुष मानकर उनका सम्मान करते थे। अतुल ऐश्वर्य पाकर भी वे दीन, हीन, कंगाल बने रहते थे। धीर, शान्त आनन्दमय बाबाजी की पवित्र मूर्ति का स्मरण करने से चित्त प्रफुल्लित हो जाता है।

ठाकुर की पूजा और आरती-महाभाव।

१ पौष। आज गुरुभाई रामदयाल बाबू फूल, चन्दन, माला, धूपदानी और पंचदीप आदि पूजा की सामग्री, आरती का सब सामान लिये हुए कोई साढ़े नौ बजे आश्रम आये। ठाकुर उस समय

आसन पर स्थिर बैठे हुए थे। जान पड़ता है कि रामदयाल बाबू का अभिप्राय समझकर वे आँखें बन्दकर समाधिस्थ हो गये। रामदयाल बाबू साष्टांग प्रणाम करके ठाकुर के आगे बैठ गये और हाथ जोड़कर उनकी ओर ताकने लगे। लगातार आँसू बहकर कपोलों को भिगोने लगे। गद्गद हो पुष्पांजलि लेकर मस्तक पर धारण कर, वे उसे ठाकुर के चरणों में अर्पित करने लगे। समूचे शरीर को तुलसी और चन्दन से सजाकर गले में और मस्तक में मालाएँ पहना दी।

भाग्यवान् गुरुभाई लोग भी उस समय चारों ओर से बड़ी उमंग के साथ जयध्वनि करते-करते अंजलि भरकर ठाकुर को पुष्प अर्पित करने लगे। रामदयाल बाबू ने पंच-प्रदीप आदि के द्वारा यथारीति ठाकुर की आरती की। महिलाएँ बार-बार मंगलध्वनि करने लगीं।

सभी गुरुभ्राता भावविह्वल अन्तःकरण से अपलक ठाकुर की ओर दृष्टि जमाते ही अस्थिर हो गये। उस समय कोई 'जय नृसिंह', 'जय नृसिंह' कहकर ऊँचे हाथ उठाकर कूदता-फाँदता भयंकर गर्जन करने लगा। कोई 'जय राम', 'जय राम' कहता हुआ ठाकुर के सामने मल्लवेश में घुटनों के बल बैठकर जोर जोर से ताल ठोकने लगा। कोई 'वह क्या है, क्या है', कहता हुआ, काँपते-काँपते, ठाकुर की ओर अँगुली उठाकर खड़ा होकर अचेत हो गया, कोई-कोई हुँकार करके 'वह देखो, वह देखो' कहता हुआ उद्दण्ड नृत्य करते करते मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। ठाकुर की ओर क्षण भर ताकते ही प्रत्येक व्यक्ति में विभिन्न प्रकार के भावों का आविर्भाव हो गया।

ठाकुर को प्रत्येक भिन्न-भिन्न रूप में देखकर कोई तो कम्पित और कोई स्तम्भित हो गया; कोई-कोई हुंकार गर्जन करके जोर से

कूदता-फाँदता हुआ मूर्च्छित हो गया। संचारी भाव की महातंरग में आज अभी अचेत हो गये। धन्य गुरुदेव! धन्य गुरुदेव! एक घण्टे तक इसी प्रकार रहकर धीरे-धीरे सभी इस तरह उठ बैठे, मानो सोकर जाग गये हों। मैं ठाकुर के बायीं ओर अपने आसन पर खड़ा गुरुभाईयों के विचित्र भावों का अद्भुत विकास देखकर पुलकित और विस्मित होने लगा। आज ही प्रथम बार ठाकुर की पूजा और आरती हुई। गुरुप्राण गुरुभाईयों! धन्य हो। तुम लोगों के इस असाधारण गुरुप्रेम के दृष्टान्त सदा स्मरण रखकर, मेरा अवशिष्ट जीवन भी धन्य हो जाय, यही आशीर्वाद दो। दोपहर को अनेक प्रकार का सुस्वादु भोजन शताधिक लोगों ने किया। आज दिन भर बहुत लोगों का भावावेश बना रहा। सन्ध्याकीर्तन में फिर भाव की प्रबल तरंग में लोग अत्यधिक झूमने लगे। अधिक रात होने पर भोजन करके सभी ने विश्राम किया।

"आसन को हिलाओ मत, फुफकार मारेगा।"

२ पौष। कल ठाकुर की पूजा और आरती के समय उन पर जो पत्र, पुष्प, दूर्वा और चन्दन आदि की वर्षा की गई थी, अवसर न मिलने के कारण उन्हें आसन से हटा लेने की सुविधा नहीं हुई। दोपहर को जब ठाकुर शौच को जाते हैं, तब किसी-किसी दिन ठाकुर स्वयं कह जाते हैं कि आसन को धूप में ले जाकर रख दो। मैं भी उसको धूप में फैला दिया करता हूँ। आज जब वे शौच को जाने लगे तब तक आसन साफ नहीं किया गया था, फिर भी उन्होंने आसन को उठाने और साफ करने की आज्ञा नहीं दी। मैंने समझा कि ठाकुर को कहने की याद नहीं रही है। इसी से आसन को धूप में

फैलाने का विचार करके ज्योंही उसको लपेटने के लिए जरा सामने की ओर खींचा, त्यों ही ऐसा जान पड़ा मानो ठाकुर के शरीर पर भी खिंचाव पड़ गया हो, उन्होंने उसी क्षण शौचालय से जोर से कहा-**अरे! आसन को मत हिलाना, ठहर जाओ, ठहर जाओ! फुफकार मारेगा।**

सुनते ही मैं एकदम चौंक पड़ा। आसन के ऊपरी हिस्से को झाड़कर मैं हट आया। ठाकुर जब श्रीवृन्दावन में दाऊजी के मंदिर में थे, तब ठाकुर के आसनवाले कमरे में सदा साँप रहता था, यह मैं जानता हूँ। गेण्डारिया में भी ठाकुर के साधन कुटीर में, आसन के पास सदा एक करैत साँप रहता है। पता नहीं इसका क्या रहस्य है। दो पक्की दीवालों की ओट में शौचालय में रहने पर भी, आसन को खींचते ही ठाकुर ने मुझे उसी क्षण रोक दिया-इससे भी मैं चौंक पड़ा। ठाकुर के आने पर मैंने धीरे-धीरे पूछा, 'कलकत्ता शहर में, तिमंजिले के ऊपर आसन के नीचे साँप कहाँ से आ गया?'

ठाकुर ने कहा-**चाहे कलकत्ता और चाहे कोई अन्य स्थान हो, वास्तुसर्प प्रायः सभी पुराने मकानों में रहते हैं। कुछ समय के लिए किसी निर्दिष्ट स्थान में आसन लगाकर बैठते ही समीपवर्ती वास्तुसर्प आसन के नीचे आकर आश्रय लेने की चेष्टा करता है।**

मैंने कहा-'तो क्या आपके आसन के नीचे सर्वदा साँप रहता है?'

ठाकुर ने कहा-**ऐसे स्थानों में सदा रहने की सुविधा कैसे मिलेगी? आसन के नीचे रहने की सुविधा न मिलने पर उसी घर में किसी अन्य स्थान में रह सकता है। वे आस-पास ही रहना चाहते हैं।**

मैं-'आसन को तो प्रायः धूप में फैलाना पड़ता है। डर लगता है, क्या जाने किस दिन कौन दुर्घटना हो जाये।'

ठाकुर ने कहा-**दुर्घटना की जरा भी आशंका नहीं है। विशेष उपद्रव न हो तो ये कुछ अनिष्ट नहीं करते। हाँ, अकस्मात् चोट लग जाने से मात्र फुफकार मार सकते हैं।**

मैं-'मैं कैसे समझेंगा कि आसन के नीचे कब साँप है और कब नहीं?'

ठाकुर-**आसन को स्वयं कभी हिलाना-डुलाना नहीं चाहिए। मैं जब कहूँ, तभी उठाकर घर में फैलाना। नहीं तो ऊपर से ही साफ कर दिया करो।**

योगजीवन की पत्नी के गर्भस्थ पुत्र की मृत्यु का विवरण और उसकी जननी का भविष्य।

शान्तिसुधा को जरा आराम होते ही गेण्डारिया से खबर आई, कुछ दिन हुए योगजीवन की स्त्री को गर्भ नष्ट हो जाने से, दारुण ज्वर-विकार आने लगा है। ज्वर इतने जोर से चढ़ता है कि वह बेहोश हो जाती है। गुरुभाई डॉक्टर प्रसन्नचन्द्र मजूमदार बड़ी लगन से चिकित्सा कर रहे हैं। फिर भी रोगी की दशा आशंकाजनक है। गेण्डारिया में स्थित गुरुभाईयों और गुरुबहनों को उनको लिए बहुत ही चिन्ता है। यह खबर पाकर ठाकुर ने योगजीवन से ढाका जाने के लिए कहा-ठाकुर का साथ छूटने का विचार करके योगजीवन रोने लगे। तब ठाकुर ने योगजीवन को धैर्य से समझाकर कहा-**स्त्री के प्रति जो थोड़ा सा कर्तव्य है, उसको इस समय जाकर पूरा कर लो। अब तुम्हें स्त्री के साथ गृहस्थी में नहीं**

रहना है। बहू बहुत जल्दी शरीर छोड़ देगी। इस बार उसको बचाना संभव नहीं। इसपर भी वह जितने दिनों तक है, उसकी सेवा-सुश्रूषा और चिकित्सा में कोई कमी न होनी चाहिए। चिकित्सा करने से दैहिक भोग का प्रायश्चित हो जाता है। शीघ्र ढाका पहुँचकर इन सब कार्यों का अच्छा बन्दोबस्त कर दो। मैं भी शीघ्र आता हूँ।

योगजीवन का स्वभाव जन्म से ही उदासीन है। अब स्त्री के साथ गृहस्थी में न रहना पड़ेगा, यह सुनकर वे प्रसन्नता के मारे मानो उछल पड़े और रात की ही गाड़ी से गेण्डारिया को रवाना होने के लिए तैयार गये। अवसर पाकर गुरुभाईयों ने ठाकुर से पूछा- 'योगजीवन की स्त्री का पुत्र गर्भ में ही क्यों मर गया? उसका रोग क्या प्राण ले लेगा?'

ठाकुर ने कहा-**एक उन्नत श्रेणी के योगी ने कर्मजाल में पड़कर, एक बड़ा भारी अपराध कर डाला। इससे शाप मिला कि सात बार गर्भ की यन्त्रणा भोगनी पड़ेगी। इससे ये कभी जीवित अवस्था में जन्म नहीं लेते। अभी इनको तीन बार और गर्भवास करना है, तभी इनको पुरानी स्थिति की प्राप्ति होगी। ये ऐसे-वैसे क्षेत्र में प्रवेश नहीं करते हैं। इनका जन्म होने के पश्चात् ही प्रसूता भी प्राण त्याग देती है।**

योगजीवन की स्त्री का यह भविष्य सुनने से बड़ा दुःख हुआ! प्रथम गर्भ के उपसर्ग और अवसाद में बहुत ही रूग्ण होने पर भी, प्रतिकूल आचरण, उपयुक्त दया और सहानुभूति न मिलने पर भी हताश न होकर जिस प्रकार सदा प्रसन्नता, सन्तोष के साथ सब कुछ सहन करके आश्रमवालों और परिवारवालों की उसने सेवा की

है, वह न तो बहुत सहज कार्य और न साधारण धैर्य का परिचायक ही है। अब इस बार गेण्डारिया पहुँचकर क्या फिर उनकी वही दीनभावापन्न, सरलतामय मूर्ति देख पाऊँगा? ठाकुर की बातों से ऐसा जान पड़ा कि वह शीघ्र ही देह-त्याग कर देंगी और उनके देहान्त से पहले ही ठाकुर को वहाँ पहुँचना होगा। अब हम लोग इस उत्कण्ठा में रहने लगे कि योगजीवन की स्त्री का कब क्या संवाद आ जाय। कुछ निश्चय नहीं है कि ठाकुर कब गेण्डारिया चले जाएँ।

आहार के संबंध में अनुशासन-जातिविचार।

३ पौष। दिन को तीन बजे के बाद चूल्हा जलाकर रसोई बनाते और भोजन करते-करते ही शाम हो जाती है, अतएव उस समय ठाकुर की बहुत सी बातें नहीं सुन पाता। इसलिए मैंने सोचा कि आज रसोई का झंझट आसानी से दूर कर लूँगा। मैंने आमलोगों की रसोई बन जाते ही, उसी जलते चूल्हे पर भाते-सिद्ध भात बना ली। फिर उसको उसी कोठरी के एक कोने में रखकर निश्चिंत होकर ठाकुर के पास आकर मैं बैठ गया। मेरे लिए भोजन के संबंध में ठाकुर के उपदेश का सार यह है कि निर्दिष्ट समय पर, पवित्रता से, रसोई बनाकर भोजन किया करना। मतलब को साधने के लिए मन को इस प्रकार समझाकर मैं तीन बजने के बाद ही भोजन करने चला गया। भोजन करने के लिए मैं सामने भात परोसे हुए बैठा था कि एक कायस्थ गुरुबहन बीमार शान्तिसुधा के लिए पथ्य बनाने के लिए, रसोईघर में प्रविष्ट हुई। यह देख मुझे क्रोध आया। मैंने धमकाकर कहा-'मैं एकान्त में भोजन करता हूँ, क्या तुमको यह नहीं मालूम?' तुम भीतर क्यों चली गई? आज मेरा भात नष्ट हो

गया। मैं अब भोजन नहीं करूँगा।' यों धमकाकर मैं आसन से उठकर खड़ा हो गया। गुरुभगिनी घबराहट और डर के मारे काँपने लगी। ठाकुर उसी समय मुझे जोर-जोर से बुलाने लगे। मैं तुरन्त ज्यों ही उनके पास पहुँचा, उन्होंने पूछा-**क्या हुआ?**

मैंने कहा-'मैं भोजन करने को बैठा ही था कि एक शूद्र जाति की गुरुभगिनी उसी भीतर आ गई?'

ठाकुर ने कहा-**अच्छा, जाओ। उसी भात को खा लो।**

उस समय ठाकुर ने मुझसे और कुछ नहीं कहा। भोजन करके ठाकुर के पास जाकर बैठते ही वे कहने लगे-**मिजाज जरा ठण्डा रखने की चेष्टा करो। मिजाज गरम हो जाने से साधन-भजन का सब फल नष्ट हो जाता है। भोजन करते समय वहाँ पर कायस्थ पहुँच जाय तो इससे रसोई नष्ट हो जाती है, यह तुमको किसने बतलाया है? फिर कायस्थ और ब्राह्मण की पहचान भी तो आसान नहीं है। शूद्र कायस्थों में भी बहुत से ब्राह्मण हैं। सत्त्वगुणी ही तो ब्राह्मण होते हैं। रजोगुणियों और तमोगुणियों के स्पर्श से ही रसोई दूषित होती है। सत्त्वगुणी कायस्थों के प्रति लोगों का ऐसा बर्ताव हो तो यह ठीक नहीं। बिल्कुल संकीर्ण हो जाओगे। गुण के द्वारा ही जाति विचार करना चाहिए, ऐसा विचार न करने से मनुष्य बड़े भ्रम में पड़ जाता है।**

दूसरे का बनाया भोजन न करने का तुम्हारा नियम है। सबके खा-पी लेने पर एक निर्दिष्ट समय में रसोई बनाकर और उसे निवेदन करके खा लिया करो। रसोई बनाकर रख देना फिर कुछ देर में जाकर खा लेना ठीक नहीं। ढँक कर रख देने से उस पर मनुष्य की दृष्टि तो नहीं पड़ती है, किन्तु तैयार रसोई पर

सिर्फ मनुष्य की ही दृष्टि नहीं पड़ती है बल्कि भूत, प्रेत, अपदेवता आदि की दृष्टि और कुत्ते-बिल्ली आदि का स्पर्श भी तो चाहे जब हो सकता है। इसलिए रसोई तैयार होते ही निवेदन करके भोजन कर लिया करो। सदा विचार करके न चलने से कई बार गोलमाल हो जाता है। अपराधी बनना पड़ता है।

बिना विचारे भला-बुरा समझने का संकेत।

प्रश्न-प्रत्येक कार्य पर विचार करने लगने से कहीं काम पूरा होना सम्भव है? विचार का तो अन्त है नहीं, क्या ऐसी दशा नहीं हो सकती कि विचार किये बिना ही भला या बुरा मालूम हो जाय?

ठाकुर ने कहा-**हो क्यों नहीं हो सकती। हमारे अन्तःकरण में हर पल प्रत्येक कार्य के संबंध में अपने आप ऐसा शब्द उठता रहता है कि यह भला और यह बुरा है। जो लोग नियम से सदा श्वास-प्रश्वास पर लक्ष्य रखकर नाम करते हैं, हर दम में कुम्भक करते हैं, उनकी देह शुद्ध हो जाती है, ऐसे ही लोग उस ध्वनि को सुन सकते हैं। इस दशा की प्राप्ति हो जाने पर, उन लोगों को इसपर कभी विचार आदि नहीं करना पड़ता। उन लोगों को फिर न तो कोई भय रह जाता है और न संशय जिनको यह दशा प्राप्त नहीं हुई हैं, उनका निर्वाह प्रत्येक कार्य पर विचार किये बिना कैसे होगा?** ऐसी बातें कहकर ठाकुर चुप हो गये।

वीर्यधारण आदि शारीरिक तपस्या की आवश्यकता।

मैंने कुछ ठहरकर पूछा-'आहारशुद्धि, देहशुद्धि और वीर्यधारण यह सभी शारीरिक तपस्या है न?'

ठाकुर ने जरा हँसकर कहा-**हाँ, है तो यही। किन्तु इन सबके ठीक हुए बिना सहज में धर्म प्राप्त नहीं होता। धर्म को प्राप्त करने का सबसे प्रधान उपाय शरीर ही है। सबसे पहले इस शरीर की ही रक्षा करनी चाहिए। दूध, दही, घी, मक्खन इत्यादि के खाने से देह की जो पुष्टि होती है यह तो बिलकुल असार हैं। वीर्यधारण से ही ठीक ठीक देह की रक्षा होती है। भोजन यदि बड़ी पवित्रता से नहीं होता तो वीर्यधारण नहीं होता। शरीर के स्वस्थ और पवित्र हुए बिना, साधन क्या लेकर करोगे?**

यह सुनकर मैंने पूछा-'पवित्रभोजन, पैर के अँगूठे पर दृष्टि, वाणी का संयम आदि और वीर्यधारण के जो नियम आपने बता दिये हैं उनका पालन मैं जी जान से किया करता हूँ, किन्तु वीर्यधारण किसी तरह नहीं हो रहा है। बता दीजिए क्या करूँ जिससे स्वप्नदोष से रक्षा पा सकूँगा।'

नाम की सिद्धि ही वास्तविक सिद्धि है।

मैंने पूछा-आपने जितने नियम मुझे दिये हैं, उनका पालन करते रहने से कितने समय में सिद्ध हो जाऊँगा?

ठाकुर ने कहा-**सिद्धि है क्या? कुछ शक्तियों की प्राप्ति को ही क्या सिद्धि समझते हो? षड़ैश्वर्य तो अत्यन्त तुच्छ वस्तु है। कभी उसमें आसक्ति मत रखना। जैसे अध्यवसाय से साधन, भजन और चेष्टा कर रहे हो, वैसे यदि ऐश्वर्य पाने के लिए करते रहो तो एक वर्ष में ही बहुत-सा ऐश्वर्य पा जाओगे। यदि एक वर्ष तक ही वीर्यधारण करके सत्य बोलो, सत्य का ही चिन्तन करो और सत्य व्यवहार करते रहो तो बहुत से ऐश्वर्य मिल जायेंगे।**

किन्तु वह वास्तविक सिद्धि नहीं है। जब देह की सारी इन्द्रियाँ और अंग-प्रत्यंग आदि प्रतिक्षण अपने आप भगवान् का नाम करेंगे, तभी समझना कि यथार्थ सिद्धि प्राप्त हुई है। किसी एक विषय में लोभ या आसक्ति बनी रहने पर उक्त अवस्था की प्राप्ति नहीं हो सकती। सभी विषयों में सम्पूर्ण निर्लोभ और अनासक्त होने से कार्य सिद्ध होता है। यह अवस्था प्राप्त हो जाने पर ही सचमुच भगवान् के नाम का स्वाद मिलता है। यह नाम की सिद्धि ही यथार्थ सिद्धि है।

ठाकुर की बात सुनकर मैं चौंक गया। मैंने फिर पूछा-'असत् विषय के लोभ से ही तो हानि है?'

लोभ तो सर्वत्र एक सा हानिप्रद है।

ठाकुर ने कहा-**सभी विषय असत् हैं। लोभ किसी विषय का क्यों न हो, उसे अनिष्ट समझना। रास्ते में किसी स्त्री को देखकर उसका लोभ करने से जो हानि होती है, बाजार में हलवा की दुकान पर एक रसगुल्ला को देखकर उसका लोभ करने से भी धर्म की प्राप्ति में उतनी ही हानि होती है। सामाजिक हानि-लाभ की बात भिन्न है।**

उसी समय मणि बाबू, अचिन्त्य बाबू और महेन्द्र बाबू आदि गुरुभ्राताओं ने हँसी करके हँसते-हँसते कहा-'यह सब हम लोगों से न होगा। धर्म की प्राप्ति हो चाहे न हो, सबको पैतृक सम्पत्ति (गुरुकृपा) तो थोड़ी-बहुत मिलेगी ही।'

ठाकुर ने कहा-**धर्म तो सभी को प्राप्त होगा, वंचित कोई भी नहीं होगा। हाँ, किसी को दो दिन पहले मिलेगा, किसी को दो**

दिन पीछे। सभी सब नियमों का पालन नहीं कर सकेंगे। कम से कम नियमों का पालन करने की जरा इच्छा रहे तो इतना ही बहुत है।

यह बात कहना था कि सभी एक साथ हँस पड़े। ऐसा जान पड़ा कि कड़े से कड़े बन्धन में भी ढील तो है।

गुरु-शिष्य के संबंध के विषय में कुछ प्रश्नोत्तर।

श्रद्धेय गुरुभ्राता श्रीदेवेन्द्रनाथ सामन्त ने ठाकुर से पूछा-'आपने जैसा बताया है, उस पर जो लोग चलते हैं और जो नहीं चलते हैं, उनमें क्या अन्तर है?'

ठाकुर ने उत्तर दिया-**जो लोग उपदेश के अनुसार चलते हैं, उनके साथ जो एक लगाव (संबंध) रहता है, वे उसको साफ-साफ समझ सकते हैं और जो उपदेश के अनुसार नहीं चलते उनमें वह कुछ समय तक दबा पड़ा रहता है।**

देवेन्द्र बाबू ने फिर पूछा-'साधन के समय जिसको जैसा करने के लिए आपने कह दिया है वह यदि तद्नुसार न कर सके अथवा उसके विपरीत आचरण करे तो उसका क्या होगा? और इन कारणों से क्या किसी का त्याग भी कर दिया जाता है?'

ठाकुर ने कहा-**किसी का बिल्कुल त्याग नहीं कर दिया जाता; जिनको यह वस्तु मिल चुकी है, उनके पास से वह कभी नष्ट नहीं होती। समय पर सभी का सब ठीक हो जाता है।**

देवेन्द्र बाबू ने फिर पूछा-'जो लोग साधन ले लिये हैं, किन्तु जीवन में उनसे फिर कभी भेंट नहीं हुई है, उन सभी को क्या आप

पहचानते हैं?'

ठाकुर ने कहा-**सभी के साथ अन्तःकरण का एक योग व संबंध बना रहता है।**

देवेन्द्रबाबू ने कहा-'भीतरी संबंध की बात नहीं कहता हूँ, बाहरी रूप में आप उन्हें पहचानते हैं या नहीं?'

ठाकुर ने कहा-**हाँ, पहचानता हूँ।**

अब देवेन्द्र बाबू ने फिर प्रश्न किया-'तब किसी नये व्यक्ति के आने पर आप क्यों पूछा करते हैं। ये कौन हैं, कहाँ से आये हैं, इत्यादि?'

ठाकुर इसका कुछ उत्तर न देकर वे केवल जरा हँसे। देवेन्द्र बाबू ने पूछा-'क्या आप इनमें से प्रत्येक की खबर रखते हैं?'

ठाकुर ने कहा-**हाँ।**

देवेन्द्र बाबू-तो क्या आपको उन लोगों के विषय में मन लगाकर जानना पड़ता है? (अर्थात् जिस प्रकार पहले ऋषि-मुनि किसी बात को जानना चाहते थे तो ध्यान लगाकर उसको अवगत कर लेते थे उसी प्रकार?)

ठाकुर-**मन लगाकर नहीं जानना पड़ता। प्रत्येक के जीवन का भला-बुरा जो कुछ घट रहा होता है, यह आँखों के सामने दिखाई देता है।**

उदाहरण के लिए ठाकुर ने साहब के घर एवं दुकान के शीशे की बात कही।

श्रीमनोरंजन गुह ने ठाकुर से कहा-'गुरुकी आज्ञा का पालन न कर सकने पर क्या होता है?'

ठाकुर ने कहा-**क्या कोई गुरु की आज्ञा का ठीक पालन कर**

सकता है?

मनोरंजन बाबू-'साधारण आज्ञा का पालन तो कर सकता है, जैसे मांस आदि न खाना आदि।'

ठाकुर ने कहा-**यह भी नहीं कर सकता।** जरा ठहरकर-**जो गुरु की आज्ञा का पालन करते हैं, वे तो करते ही हैं, किन्तु जिन्हें आज्ञापालन करने की इच्छा है, पर जो दुर्बल पड़कर पालन नहीं कर पाते, वे भी गुरु की आज्ञा का पालन करते हैं। जिनको यह साधन मिल चुका है वे यदि गुरु की आज्ञा का पालन न भी करे, यहाँ तक कि विपरीत आचरण भी करें, तो उन्हें भी समय पर फल मिलेगा। यह निश्चित है।**

लोभ में हताश-उपदेश।

३ पौष। सवेरे साधन करते-करते मन में एक विषम जलन पैदा हुई-सोचा कि दीक्षा लिए आज छः वर्ष होगये। इतने समय तक यथाशक्ति नियम-निष्ठा में रहकर साधन-भजन भी करता आ रहा हूँ, किन्तु जीवन की उन्नति तो जरा भी नहीं दिखाई पड़ती। बचपन से जो कुअभ्यास हैं, उनमें से एक भी तो इतने दिनों में कम नहीं हुआ। इन सबसे छुटकारा पाकर कब स्थिर हो सकूँगा? और भगवान की उपासना ही कब करूँगा? समय तो इन उत्पातों को शान्त करने के लिए जूझते हुए ही बीता जा रहा है। ठाकुर की असीम कृपा से कठिन शत्रु काम की उत्तेजना की प्रायः निवृत्ति हो गई है सही, किन्तु लोभ की भयंकर उद्दीपना में दिनरात जलता-भुनता रहता हूँ। ठाकुर की आज्ञा के अनुसार शाम को एक बार ही स्वपाक 'भातेसिद्ध भात' खाता हूँ, उसस पेट तो भर जाता है,

किन्तु तरह-तरह की स्वादिष्ट मिठाइयों-पुलाव आदि प्रतिदिन ठाकुर मेरे ही हाथ से परोसवाते हैं, इससे विषम लोभाग्नि में मानो घी की आहुति देने की व्यवस्था उन्होंने कर दी है। जिन स्वादिष्ट समाग्रियों को प्रतिदिन उठाता और रखता हूँ, उन्हीं का स्वाद लेने की कल्पना करके दिनभर जीभ को चूसता रहता हूँ। भजन-साधन कुछ भी नहीं होता। सबसे छिपकर इन सारी चीजों को चुराकर खाने की प्रबल इच्छा तक कभी-कभी होती है; फिर कभी कभी तो ऐसी जलन होने लगती है, ठाकुर का साथ तक अच्छा नहीं लगता। ऐसा लगता है कि ठाकुर के संग रहने से यदि इन लोभ की वस्तुओं को इधर-उधर रखकर जलते-भुनते रहना पड़े, तो ऐसा संग किस काम का? हानि ही तो हो रही है, इससे तो अच्छा है दूर चला जाना। हाय! हाय! भगवान् की पूजा करके कृतार्थ होने की आशा से घर-द्वार, भाई-बन्धु सभी को छोड़कर चला आया। अन्त में मेरी यह गति हुई। अब लोभ के वशीभूत होकर चोरी की प्रवृत्ति होती है!! ठाकुर की दुर्लभ संगति से मन में उचाट सा हो रहा है।

मन की व्याकुलता असह्य हो जाने पर मैंने जाकर ठाकुर से कहा-'अब मुझसे सहन नहीं होता। मैं चेष्टा करने में कोई भी त्रुटि नहीं करता, यह आप देख ही रहे हैं। अब क्या करूँ?'

ठाकुर ने कहा-**उसके लिए इतना व्यग्र क्यों हो? यह सब कहीं एकदम थोड़े ही हो जाता है! धीरे-धीरे ही सब बातें होगीं। बार-बार प्रयत्न करके असफल होने पर, सारा भार उन्हीं पर छोड़कर बैठे-बैठे उनका नाम लो। धीरे-धीरे सभी उत्पात शान्त हो जायेंगे। अपनी अक्षमता समझने, उन पर भरोसा करने के अतिरिक्त और उपाय ही क्या है? मन को खोल करके, अपनी**

दुरवस्था को साफ-साफ समझकर सरलता से एक बार उनकी ओर देखकर यदि कह सको, 'प्रभो! मुझसे अब नहीं सम्भलता, मुझे बचाओ, तो ये अवश्य रक्षा करेंगे। इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं है।'

मैंने मन में सोचा-'अपनी चेष्टा से कभी सफल न हो पाऊँगा, इसको अच्छी तरह समझ लेने पर फिर पछतावा क्यों होता है? अभी तो समझता हूँ कि मैं ही सब कुछ कर लूँगा, किन्तु सहायता भी माँगता हूँ।'

दीक्षास्थल में विचित्र भाव।

४ पौष। श्यामबाजारवाले घर में ठाकुर के आने के उपरान्त फरीदपुर, बर्दवान और हुगली जिले के बहुत से स्त्री पुरुष तथा कलकत्ते में रहनेवाली बहुत सी प्रतिष्ठित महिलाएँ आकर ठाकुर से दीक्षा ग्रहण कर रही हैं। दो-चार दिन की आड़ लोगों को दीक्षा दी जाती है। दीक्षा के समय जिन अलौकिक घटनाओं को देखता हूँ, उनको कैसे व्यक्त करूँ। एक ही समय पर बहुतों की दीक्षा के समय, एक-एक व्यक्ति के भीतर भिन्न-भिन्न प्रकार के दर्शन और अनुभव, उसमें भी भिन्न-भिन्न भाव और उच्छवास एवं आनन्द आवेश को देखकर मैं विस्मित हो जाता हूँ। महापुरुषों और परलोकगत आत्माओं का, एक ही समय पर विभिन्न क्षेत्रों में आविर्भाव होने से, कोई जानकर और कोई अनजाने, विभिन्न भाषाओं में आनन्दपूर्वक उमंग से स्तुति किया करता है। फिर कोई-कोई अपना परिचय देकर क्लेशसूचक विलाप करता हुआ, आर्त भाव से दीक्षा के लिए प्रार्थना करता है। यह सब देख सुनकर मैं तो अवाक् हो

जाता हूँ। ठाकुर इन परलोकगत जीवों में से किसी को स्तुति और नमस्कार आदि के द्वारा और किसी को भर्त्सना एवं धमकी के द्वारा विदा कर देते हैं। इस साधन में प्रकृतिभेद से कोई-कोई उपदेश और दीक्षा होते ही, नाम सुनने के अन्त में प्राणायाम करके सहज दशा में रहते हैं; उन्हें दीक्षा के समय कुछ विशिष्ट अनुभव नहीं होता। कोई तो मन्त्र मिलते ही दो-चार बार प्राणायाम करने पर भाव के आवेश में अभिभूत हो जाते हैं। और कोई तो कान में नाम के प्रविष्ट होते ही बिल्कुल अचेत हो जाते। उन्हें दो-दो तीन-तीन घंटे तक बाहरी होश नहीं रहता। उनके अनजान में प्राणायाम आदि अपने आप होता रहता है। अंग-प्रत्यंग आदि में महासात्त्विक भाव का विकार प्रकट हो जाते हैं। एक ही समय पर दीक्षास्थान में बहुतों के भीतर विचित्र भावों और अवस्थाओं का समावेश देखकर दिन-प्रतिदिन बिलकुल मुग्ध हो जाता हूँ। कुछ भी समझ में नहीं आता कि यह सब क्या हो जाता है।

यह दीक्षा लेना ही त्रिवेणी स्नान है।

५ से १८ पौष। बरीशाल, बानरीपाड़ा और ढाका जिले के कुछ लोगों को दीक्षा मिली। बाबू कुंजबिहारी गुहठाकुरता की माता, बहन और स्त्री आदि को इसी दिन दीक्षा मिली। कुंज बाबू की साली श्रीमती वसन्तकुमारी के कलकत्ता आने के उद्देश्य को जानकर, दीक्षा लेने की इच्छा से एक प्रेत ने वहीं उनका आश्रय ले लिया था। दीक्षा के समय प्रेत का रोना-चिल्लाना और आर्त उक्तियाँ सुनकर मैं विस्मित हो गया। कुंज बाबू की स्त्री श्रीमती कुसुमकुमारी दीक्षा मिलते ही बेहोश हो गई। दिनभर वे मानो किसी नशे में झूमती रही।

कुंज बाबू की माँ ने दीक्षा मिल जाने पर, अवसर पाकर ठाकुर से कहा-'देश जाकर मैं यह नहीं बता सकूँगी कि मैंने आपसे मन्त्र लिया है। तो क्या कहूँगी?' यह सुनकर सब लोग हँसने लगे और बोले-'तो क्या गोसाईंजी आपको झूठ बोलना सिखाएंगे?'

ठाकुर ने कहा-**तुम लोग इनकी दशा को नहीं जानते। इनका समाज बहुत बड़ा है, समाज में इनका मान भी बहुत अधिक है। वहाँ पर इन बातों को वे प्रकट न कर सकेंगी।**

अब उन्होंने कुंज बाबू की माता से कहा-**कह दीजिएगा कि त्रिवेणी में स्नान कर आई हूँ। इस प्रक्रिया को शास्त्र ने त्रिवेणी स्नान कहा है-इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना ही गंगा, यमुना और सरस्वती तथा उनका संगमस्थल कुण्डलिनी है, उसको त्रिवेणी कहते हैं। कुण्डलिनी शक्ति को जगाना ही त्रिवेणीस्नान है।**

ठाकुर की इस बात के बाद ही, कुंज बाबू की माता को, घटनाक्रम से, त्रिवेणी में जाकर स्नान कर आना पड़ा। उन्होंने ठाकुर से पूछा-'मैंने पहले कुलगुरु से जो पूजा सीखी है उसको छोड़ दूँ क्या?'

ठाकुर ने कहा-**क्यों? पहले जो पूजा सीखी है, उसे भी कीजिएगा।**

ठाकुर से दीक्षा लेने पर बहुतों ने विभिन्न समय पर ठाकुर से यह प्रश्न किया है कि कुलगुरु के दिये हुए साधन को करना पड़ेगा या छोड़ सकते हैं।

ठाकुर ने बहुत समय पहले ही कह दिया था-**कोई आवश्यकता नहीं है। यह साधन करने से ही सब हो जायगा।**

किसी से कह दिया है-**जी चाहे तो करते रहना।**

फिर अब स्पष्ट कह रहे हैं-**हाँ, उसे भी करना, इच्छा करके उसको छोड़ने की जरूरत नहीं।**

पता नहीं, दशा के भेद से व्यक्ति विशेष की आवश्यकता के अनुसार यह व्यवस्था है या अन्य किसी कारण से आज्ञा में यह परिवर्तन है।

दीक्षा के विनिमय में दान और उसे लेने से अपराध।

दीक्षा लेने के बाद गुरुभ्राता श्रीपरेशनाथ बाबू ने ठाकुर को एक गर्मवस्त्र दिया। ठाकुर ने वह एक कंगाल को दे दिया, जिसके पास ठण्ड से बचने को गरम कपड़ा नहीं था। इससे सभी को और खासकर परेश बाबू को बहुत दुःख हुआ। रात को बातों ही बातों में मणि बाबू ने ठाकुर से कहा-'यदि जमाई को उपयोग करने के लिए कपड़ा दिया जाय और वह उसको, उपयोग में न लाकर किसी और को दे दे तो मन में बड़ा दुःख होता है।'

ठाकुर ने कहा-**दान पूरी तरह कर देना चाहिए। दान की वस्तु जब उसकी अपनी हो चुकी, तब वह उसे दूसरे को क्यों नहीं दे सकता? मन्त्र देने के बदले गुरु के लिए कोई दान-प्रतिदान नहीं होता, मन्त्र का दान तो अमूल्य है। हाँ, यदि कोई अन्य अवसर पर वृद्ध पिता जानकर या अन्य अभिभावक समझकर अथवा रास्ते के अन्धे को दान देने की तरह दया करके दान दे तो गुरु उसको ले सकते हैं, अन्यथा गुरु और शिष्य दोनों ही अपराधी होते हैं। अतएव दूसरे भाव से गुरु को कोई कुछ मत देना।**

दूसरे एक अवसर पर, दीक्षा के समय, एक गुरुभाई ने ठाकुर

को कुछ रुपये दिये तब ठाकुर ने उससे कहा-**मैं तो साधारण जीव हूँ, मुझमें सभी दोष हो सकते हैं। मेरे किसी व्यवहार से यदि ऐसा प्रकट हुआ हो कि मैं याचना कर रहा हूँ, तो यह मेरी त्रुटि है, मुझे क्षमा कीजिए। रुपये पैसे की आशा से मैं दीक्षा नहीं देता। दीक्षा के विनिमय में जो रुपया देते और लेते हैं, दोनों को ही नरक जाना पड़ता है।**

देव देवी का अनुरोध- पूजा का लोप न हो।

५ से १८ पौष। अब की यहाँ आने के बाद, कुछ दिन हुए, दीक्षा के समय ठाकुर सभी को एक नया उपदेश देने लगे हैं। वे दीक्षा के प्रारम्भ में ही कहते हैं-**जिसकी जो देशगत, समाजगत या कुल क्रमागत रीति-नीति और आचार-पद्धति हो, यथाशक्ति उसका पालन करते हुए इस साधनपथ पर चलने की चेष्टा करना।**

मैंने जानना चाहा कि यह नया उपदेश क्यों दिया जाने लगा है, तब ठाकुर ने कहा-**एक दिन देखा कि हिमालय पर्वत की सबसे ऊँचा शिखर अग्निमय हो गया है। उस आग में से काली, दुर्गा, महादेव और विष्णु आदि देवी-देवताओं ने निकल कर कहा, 'देखो, ऐसा करना कि हमारी पूजा आदि का लोप न हो जायगा।' तभी से दीक्षा के समय वह उपदेश देना आरम्भ कर दिया है।**

एक गुरुभाई ने कहा-'विष्णु और शिव आदि को पूजा पाने का इतना आग्रह क्यों है?'

ठाकुर ने उत्तर दिया-**ये भी तो त्रिगुण के भीतर ही हैं।**

प्रश्न-'ब्रह्मा, विष्णु और शिव की पूजा करने से क्या भगवान् की

पूजा नहीं हो जाती?'

ठाकुर-**हाँ, हो जाती है। भगवद्बुद्धि से करना चाहिए, बस इतनी ही बात है। भगवान ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप से जिस प्रकार मायिक सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कर्ता हैं, उसी प्रकार अप्राकृत वैकुण्ठ एवं शिवलोक आदि धाम में भी उनका वैसा सच्चिदानन्द रूप है। भगवान ही विभिन्न रूप से भक्त के समीप लीला करते हैं।**

महात्मा मणिबाबा की दृष्टि-शक्ति।

५ से १८ पौष। ठाकुर जिस समय फैजाबाद में दादा के पास कुछ दिनों तक रहे थे, उस समय एक दिन उन्होंने मणिबाबा से भेंट की। मणिबाबा ने बड़े आदरपूर्वक ठाकुर से कहा था, 'आप कृपा करके हमारे आसन पर रहिए। हम अभी देह छोड़ देते हैं।' दादा को ठाकुर ने इन महात्मा के साथ भेंट करने के लिए कहा था। दादा केवल दो दिन कलकत्ते में ठहरकर नौकरी पर चले गये और मणिबाबा के दर्शन करके पत्र लिखा है-'गोस्वामीजी की आज्ञा के अनुसार मणिबाबा के दर्शन करने गया था। पहले, कभी-कभी उनके यहाँ जाया करता था; वे और लोगों के साथ जैसा व्यवहार किया करते थे। वैसा ही मेरे साथ भी करते थे। किन्तु इस बार उनके आश्रम में पहुँचते ही बाबाजी मुझको देखते ही आसन उठकर खड़े हो गये और दोनों हाथ फैलाये हुए आकर, बड़ी उमंग से मुझे हृदय से लगाकर कहने लगे। 'अहा! कई जन्म तक तपस्या करके अब सद्गुरु की कृपा पाए हो। सब पूरण हो गया। धन्य हो गए! धन्य हो गए!! उन्होंने बहुत आदरपूर्वक मुझे अपने आसन के सामने ले जाकर

बिठाया और आशीर्वाद दिया। मैं आश्चर्यचकित रह गया। गोस्वामीजी से मुझे दीक्षा मिलने का विवरण जानने की बाबाजी को कोई सम्भावना नहीं है। उनकी इस दृष्टिशक्ति को देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ है। बाबाजी का आशीर्वाद मिल जाने से बड़ी प्रसन्नता हुई।'

चरणामृत लेने से प्रेतात्मा का उद्धार।

५ से १८ पौष। अत्यन्त दुष्कर्म करनेवालों की आत्मा, परलोक में रहते समय, दुःसह यन्त्रणा के मारे छटपटाती रहती है, शान्ति प्राप्त करने के लिए न जाने कितने उपाय किया करती है। कोई गयाजी में पिण्डदान की इच्छा से अपने वंशवालों पर तरह-तरह के उत्पात किया करती है, कोई यह समझकर कि महत् पुरुषों का आश्रय ग्रहण करने पर क्लेश शान्त हो जायेंगे, सुविधा मिलते ही महापुरुषों के यहाँ दौडधूप किया करती है और कोई-कोई आत्मा सद्गुरू की कृपा की एक बूँद मिल जाने से बिल्कुल कृतार्थ हो जाने का निश्चय करके, इसीलिए यथाशक्ति चेष्टा किया करती है। यह सब देख सुनकर मैं अवाक् रहता हूँ।

अधिक रात हो जाने पर कई गुरुभाईयों से ठाकुर ने प्रेतात्माओं के बारे में कहा-**मैं आज भी वन्दावन गया था। यमुनातट पर कई प्रेतात्माओं ने बहुत ही आर्त होकर मुझसे कहा-'हमें ऐसा क्लेश होता है, मानो सैकड़ों बिच्छुओं ने डंक मार दिया हो, दीक्षा देकर हम लोगों को इस क्लेश से बचा लीजिए।' 'मैंने कहा-मैं कुछ भी नहीं जानता। अपने गुरुदेव की आज्ञा मिले बिना मैं कुछ भी नहीं कर सकता। उन लोगों ने कहा-'आप यमुना में**

स्नान कर लीजिए।' फिर मैं यमुना में स्नान करके बाहर निकला तो गीले शरीर से जल टपक-टपक कर गिरने लगा। प्रेत लोग बड़े आग्रह से उसी को चाटने लगे। तब देखा कि उन लोगों का शरीर ज्योतिर्मय हो गया और दिव्य रथ आकर उन लोगों को ले गया।

ठाकुर की बात सुनकर कई गुरुभाईयों ने सोचा कि चरणामृत पीने से जब प्रेतात्माओं का उद्धार हो गया, तब हम लोग भी उसको क्यों न एक बार पी लें? दूसरे दिन सवेरे गुरुभ्राता श्रीमहेन्द्रनाथ मित्र, ठाकुर के शौचादि से लौट आने पर, जबर्दस्ती उनका चरणामृत ले आये। आश्चर्य की बात है कि साफ नल के पानी का चरणामृत श्यामाकान्त पण्डितजी, देवेन्द्र सामन्त और महेन्द्र बाबू आदि जिन लोगों ने पान किया उन सभी को पवित्र मनमोहक एक प्रकार की सुगन्ध आई इससे वे लोग बड़े विस्मित हुए। हम लोग जानते हैं कि ठाकुर किसी प्रकार की सुगन्धि का उपयोग नहीं करते।

उन्मादिनी माता और ठाकुर, ठाकुर का जन्म-विवरण आदि सुनना।''

५ से १८ पौष। जबसे हम श्यामबाजार आये हैं, आश्रमवालों के भोजन आदि के प्रबन्ध, अतिथि-अभ्यागतों की आवभगत और दीक्षा लेने के लिए आनेवाले स्त्री-पुरुषों के ठहराने के बन्दोबस्त का भार धीर-प्रकृति कार्यकुशल गुरुभ्राता श्रीवृन्दावन मजूमदार पर विशेष रूप से है। श्रीमणीन्द्रमोहन मजूमदार और डॉक्टर नवीनचन्द्र घोष भी इन कार्यों में नियुक्त हैं। चन्द्रमणि दीदी,अना की माता,

शारदा बुआ एवं आगन्तुक गुरुभगिनियों द्वारा अब तक रसोई का काम बहुत अच्छी तरह होता आया था। फिर ठाकुर की पगली माता के आ जाने पर सारा काम उलट-पलट गया है। वे आश्रम में आते ही रसोईघर में पहुँची। गुरुभगिनियों को रसोई के कार्य में नियुक्त देखकर उन्होंने कहा-'अरे ! यह क्या है? तुम सब किसलिए हो? गोसाईं के यहाँ रसोई घर में शूद्र? तुम लोग तो केवल जूठन साफ करो और बर्तन माँजो। जब तक विजय का दूसरा ब्याह नहीं करती, तब तक मैं ही रसोई बनाया करूँगी। तुम लोग यहाँ से बाहर निकलो।' अब उन्होंने उन स्त्रियों का काटा-कूटा और पीसा हुआ सब फेंक दिया और अपने हाथों छिलके समेत तरकारी काटकर अधपकी सब्जी उतार ली। दाल भी ऐसे ही बनाई। बिना धोये चावल पकाकर पिण्ड बना लिया। पहले दिन सभी ने ठाकुर की माता की रसोई देखकर बड़ी हँसी-खुशी से खा पी लिया। ठाकुर की माता प्रतिदिन ऐसी ही रसोई बनाने लगी। एक दिन चन्द्रमणि दीदी ज्यों ही दाल-चावल धोकर लाई, त्यों ही ठाकुर की माता ने उनको झाडू मारकर कहा-ठाकुर का भोग तूने शूद्र होकर छू लिया है। तेरी इतनी बड़ी हिम्मत। ठाकुर की माँ की बनी रसोई खाकर टिके रहना सभी के लिए कठिन हो गया। एक दिन सभी पत्तलों में दाल, भात, तरकारी पड़ी देखकर, ठाकुर की माता ने तेजी से पुत्र के पास जाकर कहा, 'अरे विजय, बता तो कैसी रसोई बनी है।'

ठाकुर ने कहा-**क्यों माँ! यह भी कोई पूछने की बात है। यह तो जगन्नाथजी के भोग जैसा है। वे लोग अच्छे से खा रहे हैं?** ठाकुर की माता ने कहा-'वे लोग क्या खाएँगे! उन लोगों में भक्ति कहाँ है। हम लोग हैं शान्तिपुर के गोसाईं, हमारे हाथ से देवता खाते

हैं, समझा! बेटा, मैं तो तेल-घी डालती नहीं हूँ, और मसालों का भी झंझट नहीं रखती। सादे पानी में ही वस्तुओं को उबाल लेती हूँ। देखा नहीं कैसा बढ़िया स्वाद होता है?'

ठाकुर-**जगन्नाथजी की रसोई साधारण जल से ही तो बनती है।**

गुरुभाईयों ने कौतुहल करके कहा-दादी माँ! श्रद्धा से हो या अश्रद्धा से, किसी प्रकार इसका एक ग्रास खा लेने से ही हो गया। बिल्कुल निश्चिन्त फिर दिनभर कुछ खाने को न मिले तो कुछ चिन्ता नहीं है। यह सुनकर दादी माँ बहुत खुश हुई। किन्तु समय-समय पर उनकी बनाई रसोई बड़ी स्वादिष्ट होती है। समझ में नहीं आता कि क्यों ऐसी स्वादिष्ट होती है।

लोगों की संख्या बढ़ने के साथ-साथ सामान भी अधिक परिमाण में आता है। किन्तु ठाकुर की माता एक दिन का सामान दूसरे दिन के लिए नहीं बचाती। प्रतिदिन भण्डार को समाप्त कर देती हैं। बहुत अधिक रसोई बना लेती हैं और सड़क से कंगालों एवं दीन-दुखियों को बुलाकर खिला पिला देती हैं। उनसे कहा जाता है कि आवश्यकता से अधिक रसोई मत बनाइए तो वे धमकाकर कहती है कि-'तुम लोग मनुष्य हो या पशु? दूसरों को भोजन कराये बिना क्या कभी कोई मनुष्य खाता है? ऐसा तो गीदड़ और कुत्ता ही करता है। भगवान् दया करके मुट्ठी भर दें तो उसमें से भी दूसरे को एक ग्रास देना चाहिए। जिसको आवश्यकता है उसी के लिए भगवान् का दान मिलता है जो सभी के लिए है, पूँजी जमा करने के लिए नहीं है।' सवेरे की कोई चीज शाम को नहीं बचती, यह देखकर वृन्दावन बाबू जरा घबरा गये। उन्होंने ठाकुर की माता से कहा कि

जरा हिसाब से काम करना चाहिए तो उन्होंने कहा-अरी गृहिणी, हम गोसाईयों के घर की बहू हैं, आज के लिए जो आया वह हो गया, कल की चिन्ता गोविन्दजी करें।

केवल ठाकुर के लिए एक सेर दूध आता है। ठाकुर की माता वह दूध भोजन के समय सभी को जरा-जरा परोस देती हैं। ठाकुर को भी उतना ही हिस्सा मिल पाता है। इससे सभी नाराज हैं, किन्तु ठाकुर की माँ किसी की नहीं सुनती। एक गुरुभगिनी सेर भर दूध छुपाकर लाती और ठाकुर को देती हैं।

एक दिन नौकरानी झटपट काम करके घर जाने के लिए व्यस्त थी। ठाकुर की माता ने उससे-‘आज जल्दी घर क्यों जाना चाहती है। उसने कहा-‘माँ! मेरा लड़का बीमार है, आज उसे थोड़ा सा दूध ही दूँगी। उसी का इन्तजाम करने को जाऊँगी।’

यह सुनकर ठाकुर की माँ ने कहा-‘अच्छा ठहर जा।’ अब उन्होंने गुरुभगिनी के घर से ठाकुर का दूध लाकर नौकरानी को दे दिया और कहा, ‘इसे ले जा। लड़का बीमार है, दूध लेने को कहाँ भटकेगी, क्या जाने न मिले।’ इस घटना पर किसी-किसी गुरुभ्राता और गुरुभगिनी का दादी माँ से झगड़ा हो गया। सभी ने उनसे कहा-‘दादी! बिल्कुल दूध न मिलने से तुम्हारे बेटे की तबीयत खराब हो जाती है, उनको कष्ट होता है, क्या यह नहीं जानती?’

ठाकुर की माँ ने कहा-‘जा, सब जानती हूँ। बीमारी में क्या नौकरानी के बेटे को कष्ट नहीं होता? विजय के लिए तुम इतने आदमी हो, आवश्यकता पड़ने पर दस जगह दौड़े जाओगे। नौकरानी के बेटे के लिए कौन बैठा है?’ ठाकुर की माँ खूब गालियाँ देकर भी जब सबको न चुप करा सकी तब ठाकुर के पास दौड़ी गई

और उनको धमकाकर कहने लगी 'विजय तेरे साथ-साथ रहने पर भी इन लोगों की ऐसी बुद्धि क्यों है?' ठाकुर की आँखें भर आई।

उन्होंने दादीजी को शान्त करके सभी से कहा-**माँ के हृदय में जितनी दया है उसका एक आना भी मुझमें नहीं है। बचपन में देखा है, नौकरानी के बेटे को मेरे साथ बैठाकर माँ भोजन कराती थी। हम लोगों का सा उसका भी आसन था। माँ ने उसको वैसी ही थाली, कटोरा और गिलास मोल ले दिया था। उसे वे किसी प्रकार गैर न मानती थी। वह मेरा हमउम्र था। इससे धोती, दुपट्टा, कुर्ता, जूता जब जो कुछ माँ मुझे देती थी, तब उसे भी देती थी।**

हमारे भण्डार घर में ठाकुर भोजन करते हैं। उनके भोजन के उपरान्त हमलोग आपस में प्रसाद बाँट लेते हैं। फिर मौका पाकर नौकरानी खाली बर्तन उठा ले जाती है। एक दिन ठाकुर की माँ उस स्थान में एकाएक आई। वहाँ जूठे बर्तन पड़े देखकर वे बहुत नाराज हुई। उन्होंने ठाकुर को जोर से आवाज देकर कहा, 'अरे विजय! यह कैसा अनाचार है! भण्डार घर में जूठे बर्तन! चूहे, बिल्ली न जाने कौन-कौन भीतर आते हैं। इस घर की चीजों का भोग ठाकुरजी को कैसे लगेगा?' अब वे गालियाँ देने लगीं। सुनते ही ठाकुर दादी माँ से भी ऊँचे स्वर में कहने लगे-**राम! राम! उन चीजों को अभी फेंक दो। उन चीजों को भीतर रखना चाहिए? राम! राम! यदि कोई तुरन्त ही जूठन साफ न कर सके तो यह काम कल से मैं ही करूँगा।** अब क्या था, दादी माँ रास्ते में सभी चीजें फेंकने लगी और धीरे-धीरे शान्त हो गई।

थोड़ी देर में ठाकुर ने कहा-**माँ पंचम में पहुँचती है तो उसी**

ताल में मुझे भी सप्तम में जाना पड़ता है। ऐसा किये बिना रक्षा नहीं पाया जा सकता। माँ को इस प्रकार से शान्त न किया जाता तो वे आज कुछ न कुछ कर बैठती। पागल को कई मौकों पर, उसकी मर्जी से चलकर ठण्डा करना पड़ता है। ऐसा न किया जाय तो उसका अनिष्ट होता है।

प्रातःकीर्तन समाप्त होते ही, गंगा नहाने को जाते समय, दादी माँ एक बार, ठाकुर के सामने आकर खड़ी होती है। ठाकुर एकाग्रता से भाव में आँखे बन्द किये रहते हैं, तो भी दादी माँ ठाकुर को बड़े स्नेह से पुकारकर कहती हैं, 'अरे विजय ले, प्रणाम कर। अब उठ न; देखता नहीं, दिन निकल आया?' ठाकुर चटपट दादी माँ को प्रणाम करके उनकी चरणरज माथे में लगा लेते हैं और दुधमुँहे बच्चे की तरह की ओर टुकुर-टुकुर ताकने लगते हैं। इस समय ठाकुर का देखना दूसरे ही ढंग का हो जाता है। उसे देखकर हमलोग विस्मित होकर बैठे रहते हैं। एक दिन वृदावन बाबू ने ठाकुर से पूछा-महाराज! आप दादी माँ ओर उस तरह से क्यों देखा करते हैं? आपको उस ढंग से देखते देख हम लोगों का मन न जाने कैसा जाता है।

ठाकुर ने कहा-**माँ जब आकर खड़ी होती है तो मैं उनके प्रत्येक रोएँ से ब्रह्मज्योति को प्रस्फुटित होते देखता हूँ।**

एक दिन मैंने दादी माँ से पूछा-'आप हमारे ठाकुर के जन्म का कुछ वृत्तान्त बताइए न? लोगों के मुँह से तो कई तरह की बातें सुनता हूँ।'

दादी ने कहा-'लोगों के मुँह से और क्या सुनता है? लोगों को मालूम ही क्या है? जिस तरह से सबका जन्म होता है, उसका

जन्म तो उस तरह से हुआ नहीं है। उसको बतलाने से क्या तू विश्वास कर सकेगा? उसके पिता उन दिनों ब्रह्मचर्य से रहते थे। शान्तिपुर से दण्डवत् प्रणाम करते हुए श्रीक्षेत्र (पुरी) गये थे। उनकी छाती में, हाथों में और घुटनों में, साष्टांग प्रणाम करते-करते जाने से छाले पड़ गये थे। उस तरह से कोई करके दिखा तो दे? जगन्नाथजी के साक्षात् दर्शन करके उन्होंने जो प्रार्थना की, वही हुआ। भक्त की आकांक्षा को भगवान् अपूर्ण नहीं रखते। विजय जब मेरे पेट में था, उदयास्त सूर्य की प्रत्येक किरण में मुझे राधाकृष्ण के दर्शन होते थे।'

वे कभी-कभी परिहास करके हम लोगों से कहती हैं-'जाओ, तुम लोग तो कोचई के वन में जन्म लिए विजयकृष्ण के शिष्य हो।'

एक गुरुभाई ने दादी माँ से पूछा-'दादी माँ, क्या आपको और कहीं स्थान न मिला था जिससे लड़का कोचई के वन में उत्पन्न हुआ?' उन्होंने कहा-'अरे उस समय शिकारपुर (गाँव) के घर को तो बरकन्दाजों ने आकर घेर लिया था, इससे सब लोग घर छोड़कर भाग गये थे। आँधी, पानी, तूफान में मैं जाती कहाँ? मैं घर के पास ही कोचई के वन में जा बैठी। थोड़ी देर में देखा कि विजय उत्पन्न हो गया। प्रसववेदना हुई ही नहीं तो पहले से मुझे मालूम कैसे होता? इसी से उसको सभी 'कोचूबूनो' कहते हैं। और उसके बाप को मोहल्ले वाले 'खड़ी-धोया-गोसाई' कहते थे।'

प्रश्न-'तो उनको 'खड़ी धोया गोसाई' क्यों कहते थे?'

उत्तर-'अरे वे आचार-विचार का बेहद खयाल रखते थे। समझा? अपने हाथों से हविष्यान्न बनाते थे। रसोई बनाते समय वे प्रतिदिन हर एक चूल्हे में जलाने की लकड़ी को पानी से धोकर

सुखा लेते थे। इसी से लोग उन्हें ‘खड़ी धोया गोसाईं’ कहा करते थे। ऐसा आदमी आजकल मिलता कहाँ हैं? बडे भारी भक्त थे। भागवत का पाठ करते समय उन्हें तीन-चार घण्टे तक सुध-बुध न रहती थी। शरीर की सफेद पतली चादर पसीने की तरह, रक्त से भीग कर, लाल हो जाती थी।

ठाकुर की माता से पूछा-‘दादी माँ तो क्या आपने ठाकुर को सौरी में विष दे दिया था?’

दादी ने उत्तर दिया-‘राम, राम! तुम लोग क्या कहते हो! क्या कोई ऐसा करता है! बच्चे को ठण्ड लग गई थी। मैं न जानती थी कि मुसव्वर लगाया जाता है, इसी से मैंने मुसव्वर समझकर कोई दो आने भर अफीम घोलकर पिला दी थी, इससे काला हो गया था। उससे बच्चे को क्या हुआ? भगवान् ने ही दया करके उसकी रक्षा की।’

एक दिन दादी माँ ने ठाकुर से कहा-‘विजय तू और सभी तीर्थों में जाना किन्तु श्रीक्षेत्र (पुरी) को मत जाना।’ दादी माँ से इस बात का अर्थ पूछने पर उन्होंने कहा-‘वह श्रीक्षेत्र से ही तो आया है; वहाँ एक बार पहुँच जायगा तो कौन लौटाकर ला सकेगा? जहाँ वह अपनी जगह पर एक बार पहुँचा, फिर वापस नहीं आवेगा। वहीं रह जायगा।’

दादी माँ ठाकुर के संबंध में ऐसी ऐसी बहुत सी बातें बताती हैं, जिनका अभिप्राय समझ में नहीं आता। जब उनका मिजाज गरम हो जाता है, उस अवस्था में वे जैसी बातें किया करती हैं, वैसी ही ये बातें जान पड़ती है। ये बातें सच हैं कि नहीं, इसी की जाँच करने के लिए बीच-बीच में इनको डायरी में लिख लेता हूँ। मौका मिलने पर

ठाकुर से इनकी पूछताछ करने की इच्छा है।

प्रसाद किसे कहते हैं, कार्य-अकार्य की पहचान कठिन है।

५ से १८ पौष। प्रतिदिन प्रसाद के लिए हम लोगों में भगदड़ सा मच जाता है। कभी-कभी झगड़े तक की नौबत आ जाती है।

यह जानकर ठाकुर ने कहा-**जो खाने से बच जाय वह प्रसाद नहीं है। वह तो उच्छिष्ट है, जूठन है। प्रसन्न भाव ही प्रसाद है। प्रसाद भाव से होता है। कृपा ही प्रसाद है, दया ही प्रसाद है। गुरु जिन नियमों को बतला दे उनको ठीक-ठीक मानकर चलने से ही वास्तविक गुरु का मिलता है।**

किसी व्यक्ति के कार्य-अकार्य के संबंध में संशय होने पर गुरुभ्राताओं ने ठाकुर से पूछा तो उन्होंने कहा-**जो लोग अन्तर्दर्शी हैं, वे बाहरी कार्य-अकार्य को कुछ महत्व नहीं देते हैं। वे तो भीतरी भाव को ही देखते हैं। किसके किस कार्य से लाभ होता है, यह समझना बहत कठिन है। कभी कोई बीमार कुपथ्य करके भी भयंकर रोगों से बच जाते हैं। जिन कामों को संसारी आदमी बहुत ही घृणित समझते हैं, कदाचित उन्हीं को करने से किसी के जीवन का विशेष रूप से कल्याण हो जाता है। यह समझ लेना आसान नहीं है कि क्या करने से क्या हो जायेगा। कोई कुछ भी क्यों न करे, परिणाम भला ही होता है। अपने कर्तव्य पर स्थिर रहकर दूसरे के कार्य को केवल देखते रहो। इसी से रक्षा पाई जा सकती है। लोगों के गुण-दोषों की आलोचना करने से अनिष्ट ही होता है।**

ठाकुर ने जरा ठहरकर फिर कहा-**इच्छा न रहने पर अनजान में यदि किसी से अकस्मात् को अनुचित काम हो जाए तो उसके लिए उसे अपराधी नहीं होना पड़ता। जान बूझकर अनुचित काम करने से ही अपराध होता है। अच्छा करने जाकर यदि कुछ अनिष्ट कर डाले तो इसमें भी अपराध नहीं लगता।**

रासलीला और गुरुशिष्य संबंध।

५ से १८ पौष। श्यामाकान्त पण्डितजी ने ठाकुर से प्रश्न किया- 'आपके प्रति संकोच का भाव दूर क्यों नहीं होता?'

ठाकुर ने कहा-(पण्डित जी से संगृहीत) **अपने आपको जैसा पापी समझते हैं वैसा ही मुझे भी समझिए। नन्द और यशोदा, गोपाल को जैसा देखते थे, उसी रूप में आप मुझे देखें।**

इसके बाद जरा ठहरकर ठाकुर फिर कहने लगे-**श्रीमती राधा के प्रति विशेष अनुग्रह दिखाने से उन्हें गर्व हो गया, उस समय श्रीकृष्ण भाग गये। फिर सखियाँ और श्रीमती एकत्र होकर श्रीकृष्ण के लिए रोने लगी। तब श्रीकृष्ण ने प्रकट होकर रासलीला की। श्रीकृष्ण के वाम भाग में श्रीमती को देखकर सखियाँ आनन्द से विह्वल हो गई और श्रीमती भी श्रीकृष्ण के वाम भाग में सखियों को देखकर आनन्दित हुई। गुरु-शिष्य-संबंध भी ऐसा ही है। गुरु यदि शिष्य को तुच्छ समझे तो भगवान् गुरु का परित्याग कर देते हैं। गुरु और शिष्य के एकत्र होकर क्रन्दन करने पर भगवान् प्रकट हो जाते और रासलीला करते हैं। उस समय कृष्ण के बायीं ओर गुरु को देखकर शिष्य सुखी होता है और भगवान् के वाम भाग में शिष्य को देखकर**

गुरु भी सुखी होते हैं।

भोर कीर्तन-शिष्य चरणों पर लोट पोट।

५ से १८ पौष। रात के अंतिम पहर कोई चार बजे प्रतिदिन ठाकुर के आसन के आगे धूपबत्ती, धूप, चन्दन, गुग्गुल आदि जलाया जाता है। कमरे में सुगन्धित धुआँ भर जाता है। ठाकुर करताल बजा बजाकर-

'हरि बोलबो आर मदनमोहन हेरिबो गो।
जाबो व्रजेन्द्रपुर, हबो गोपिकार नुपूर,
गोपीर राँगा पाये रूजूझूनू बाजिबो गो।
तोरा सब व्रजवासी पुराओ ए अभिलाषी,
आमि नितुई नितुई श्यामेर बाँसी शुनिबो गो।।'

गाते हुए बड़े मधुर स्वर से 'हरि ॐ, हरि ॐ कहते-कहते और रोते-रोते उनकी समाधि लग जाती है। इसी समय श्रद्धेय श्री अचिन्त्य बाबू भाव आविष्ट होकर गाने लगे-'

'कानाई! ए कि भाई! रोलि' प्रभाते अचैतन्य?
उठ्लो भानु ओ नीलतनु, जाय ना धेनु कानू भिन्न।
अंजन आँखियुगले, गुंजाहार पोरबे गले,
कदम्बमंजरी दिये साजाओ युगल कर्ण।
परो धड़ा मोहन चूड़ा, व्रजेर चूड़ा रूपलावण्य।
एक दिन बने राखालगणे विषभोजने जीवनशून्य,
तुई जाइ छिलि, जीवन दिलि, तोर तुलना नाई आर अन्य।'

कभी-

'श्रीअंग त्रिभंग केनो, केनो बा बाँका नयन्।

ओलो सखि! कहो देखि ईहार किविवरण।

श्याम चंचल नयने चाय, कोता थाके कोथा जाय,

के बूझिबे अभिप्राय ईहार केमन।

सरल बाँशेर अंस, बंशीकुल-अवतंस,

कुल धर्म करे ध्वंस, से करे मनोहरण।

श्याम अतनु सतनु करे, सतनुर मनहरे,

शिखी पाखीर पाखा शिरे, से करे मनोहरण।

(हरि कहूँगा और मदनमोहन को देखूँगा। ब्रजेन्द्रपुर को जाऊँगा और गोपिका का नुपूर बनूँगा। गोपी के लाल पैरों में रुन-झुन बजूँगा। तुम सभी ब्रजवासी मेरी इस अभिलाषा को पूर्ण कर दो। मैं प्रतिदिन श्याम की वंशी सुनूँगा। ॐ 'कन्हैया! भैया, यह क्या? तुम प्रातःकाल बेखबर हो! सूर्य निकल आया। कन्हैया के बिना धेनुएँ नहीं जाती। आँखों में अंजन और गले में गुंजाहार पहनो। दोनों कानों में कदम्बमंजरी पहन लो। ब्रज के रूप-लावण्य-शिरोमणि मोहन चूड़ा बाँधो, किरीट पहनो। चरवाहे एक दिन वन में विष खाने से निर्जीव हो गये थे। तुमने जाकर उन्हें जीवन दिया था। तुम्हारी तो तुलना ही नहीं है। श्याम त्रिभंगी क्यों है? और नेत्र ही क्यों बाँके हैं? -अरी सखी! इसका विवरण तो बताओ। श्याम चंचल नेत्रों से देखता है, कहाँ रहता है और कहाँ जाता है? इसका कैसा क्या अभिप्राय है, इसे कौन समझेगा? यह बाँसुरी सीधे बाँस का टुकड़ा है। यह कुल और धर्म का ध्वंस करके मन को चुरा लेती है। श्याम अतनु को शरीरधारी कर देता है और उसके मन को हर लेता है। इसके माथे पर मोरपंख है। वह मन को चुरा लेते हैं।

ठाकुर किसी किसी दिन-

'आमार मन पागला रे, हरदमे गुरुजीर नाम लइयो।

अरे दमे-दमे लइयो नाम, कामाइ नाहि दियो।'

(अरे मेरे पागल मन, हर दम गुरुजी का नाम लिया कर। अरे दम दम पर नाम ले। इसमें छूट मत दे।)

इत्यादि गाते-गाते **'गुरु ॐ, गुरु ॐ'** कहा करते हैं और उनका गला भर आता है। तब ढाका और बानरीपाड़ा के शशि बाबू खोल-करताल के साथ संकीर्तन करने लगते हैं।'

'आमि गौर प्रेमे होयेछि पागल (औषधे आर माने ना)

चलो सजनी जाइगो नदियाय।

नगरेते हेंटे जेते पाड़ार लोके मन्द कय,

(आमि) परेर मन्द पुष्प चन्दन अलंकार पोरेछि गाय।

सापेर विष झाड़िले नामे, प्रेमेर विष उजान धाय,

(ओलो) गौरांग भुजंग होये, दंशियाछे आमार गाय।'

{मैं तो गौर प्रेम में पागल हो गई (कोई दवा काम नहीं आती।) चलो सखी, नदिया को चले। नगर में पैदल चलने से मुहल्लेवाले बदनाम करते हैं। मैंने तो इस बदनामी को पुष्प चन्दन का गहना बनाकर पहन लिया है। झाड़ फूँक करने से साँप का विष उतर जाता है। लेकिन प्रेम का विष तो और भी चढ़ता है। अरी, गौरांग ने भुजंग बनकर मुझे डस लिया है।}

भावविह्वल अन्तःकरण से बड़े उत्साह के साथ उन लोगों के गाने लगने पर अवशिष्ट सभी गुरुभाई आनंद में विभोर होकर अपने-अपने आसन पर निस्पन्द अवस्था में बैठे रहते हैं। कभी-कभी ठाकुर भाव के आवेश में अधीर होकर लंबे-चौड़े कमरे के फर्श पर लोटते-लोटते शिष्यों के पैरों में जाकर लोटने लगते हैं और बार-

बार शिष्यों के चरणों को माथे से लगाकर रोते-रोते-**मुझ पर दया कीजिए मुझे आशीर्वाद दीजिए-कहते-कहते अचेत हो जाते हैं।**

अहा! उस समय ठाकुर के जटामण्डित मस्तक को तुच्छ शिष्यों के पैरों तले लोटते देख मन बड़ा विचलित हो जाता है। दयालु ठाकुर! धन्य हो! हमारे सदृश आज्ञा उल्लंघनकारी, अविनयी और दम्भी, अपने ही (गोस्वीमी के) आश्रित के पैरों के नीचे कातरता से इस तरह लोटते हो। इस जगत में ऐसा कोई और कहाँ है।

पाप की जड़ कैसे उखड़ती है? धर्म क्या है?

५ से १८ पौष। आज कुछ अवसर पाकर मैंने ठाकुर से पूछा-'चेष्टा के द्वारा क्या पाप की जड़ उखाड़ी नहीं जा सकती?'

ठाकुर ने कहा-**पाप की जड़ को मनुष्य आसानी से नहीं उखाड़ सकता। कहना चाहिए कि इस विषय में मनुष्य की बिल्कुल ही शक्ति नहीं है। प्रायश्चित्त और व्रत नियम आदि के द्वारा मनुष्य पाप मुक्त हो तो जाता है, किन्तु वह सामयिक है, हाथी के स्नान की तरह। भीतर संस्कार रूप में पाप रह जाता है, और जरा सा कारण पाते ही फिर प्रकट हो जाता है। एकमात्र भगवान के दर्शन होने से ही, उनकी कृपा से पाप की जड़ कट जाती है।**

'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।'

इस पर मैंने कहा-'तो फिर हमलोग क्या करें? यों ही पड़े रहें, उनकी कृपा कभी होनी होगी तो हो जायगी।'

ठाकुर ने कहा-**यह कह देने से काम नहीं चलेगा। जब तक चेष्टा है, तब तक कार्य किये बिना निस्तार नहीं हो सकता। कार्य तो करते ही रहना होगा। कई ओर से तरह-तरह की चेष्टा करके मनुष्य जब अपने को तुच्छ और अकर्मण्य समझ लेगा, तभी वह ठीक स्थान पर जाकर पहुँचेगा। किन्तु जब तक यह भली भाँति समझ में नहीं आता, तब तक वह समझता है कि चेष्टा करने से ही कृतकार्य हो सकता हूँ। अतएव वह भगवान् की शक्ति पर ठीक-ठीक निर्भर नहीं हो पाता। इसलिए बार-बार निष्फल होने पर भी बड़े धैर्य के साथ चेष्टा करते रहना चाहिए, नहीं तो कार्य सफल नहीं होता।**

मैंने पूछा-'धर्म को प्राप्त करने के लिए पहले किस कार्य की चेष्टा करनी चाहिए?'

ठाकुर ने कहा-**बताता तो कई हूँ, किन्तु करते कहाँ हो, धर्मार्थियों को पहले ही शौच, सत्य, क्षमा और शान्ति इन चारों का अभ्यास करना चाहिए।**

प्रश्न-'तो शौच क्या शरीर को शुद्ध रखना है?'

ठाकुर-**हाँ, यही बात है। गृहत्यागी संन्यासियों के लिए शारीरिक शौच, ऊर्ध्वरेता होना है। और गृहस्थों के लिए शौच है केवल ऋतुकाल में गमन करना। आन्तरिक शौच है 'सरलता'। ठीक-ठीक सरल होने पर ही अन्तःकरण शुद्ध होता है।**

'सत्य'-साधक सत्य बोले, सत्य आचरण करे और सत्य चिन्तन। असत्य का किसी प्रकार से संसर्ग न रखे।

'क्षमा'-मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष, लता किसी से भी उद्वेग-ग्रस्त न हों। इसका खूब ध्यान रखना।

'शान्ति'-चित्त को सदा सब बातों में सन्तुष्ट रखो, एक ही प्रकार का रखो, न तो बात की उपेक्षा करे और न अपेक्षा ही। इन नियमों का दृढ़ता से पालन करने की चेष्टा करो।

यह सब सुनकर मैंने सोचा, 'यह भी अच्छा है। सिद्ध होने पर जिस अवस्था की प्राप्ति हो अब तक कल्पना किया करता था, धर्म की प्राप्ति के लिए उसी को पहले आरम्भ करने की ठाकुर ने कहा है; अतएव धर्म की प्राप्ति मेरे लिए, हाथ से चाँद पकड़ने की तरह कल्पनामात्र है। जो कभी होने का नहीं, मैं उसी के लिए निरी चेष्टा कर रहा हूँ।'

मैंने ठाकुर से फिर पूछा-'तो वास्तविक धर्म है क्या?'

ठाकुर ने उत्तर दिया-**धर्म बहुत ही सूक्ष्म वस्तु है। न तो बाहरी वेश-भूषा धर्म है और बाहरी काम-काज। अभी तो स्वयं भले बनने और दूसरों का भला करने को ही धर्म समझो। एकान्त में, अंधेरे में अकेले बैठकर आत्मानुसन्धान करके देखो कि अपने भीतर कोई दोष तो नहीं है। अपने पास स्वयं भला हो जाना ही भला है। झूठी बात, कुदृष्टिपात, हिंसा (डाह) और विद्वेष आदि जिन-जिनको दोष समझो, उनको पहले ही छोड़ दो। फिर त्रिताप से अतीत हो जाने पर समझ लोगे कि धर्म क्या चीज है। तापमुक्त हुए बिना वास्तविक धर्म का पता नहीं लग सकता। भगवान् ही धर्म हैं।**

महाप्रभु का पुराना चित्रपट।

एक दिन गुरुभाई श्रीरामदयाल बाबू ने एक चित्रपट लाकर ठाकुर के सामने रखा। छोटे दादा (शारदा बाबू) किसी काम से

झटपट उस स्थान से होकर जाने लगे तो उनका वस्त्र उस चित्रपट से कहीं छू न जाये, इस शंका से ठाकुर ने चित्रपट हाथ में उठा लिया और थोड़ी देर तक उसे एकटक देखते रहे, फिर उसे अपने मस्तक पर रखकर, सिसक-सिसककर रोने लगे। थोड़ी देर के लिए ठाकुर अचेत हो गये, फिर किसी प्रकार भाव को रोककर आँख व मुँह को पोंछकर कहने लगे-**उस समय महाप्रभु का चेहरा बिल्कुल ऐसा ही था। विरहोन्माद से जीर्ण-शीर्ण शरीर का और भाव के आवेश में नृत्य का ऐसा यथार्थ चित्र दूसरा नहीं देखा।**

चित्रपट में महाप्रभु की आँखों से पिचकारी के से वेग से आँसू बहते देखकर मैंने पूछा-'क्या कभी ऐसा भी होता है?' ठाकुर ने जरा तेज के साथ कहा-**अवश्य होता है। चित्रकार ने जैसा देखा था बिल्कुल वैसा ही बना दिया है। उसने तीन प्रभु (श्रीचैतन्यमहाप्रभु, श्रीनित्यानन्दप्रभु, श्रीअद्वैतप्रभु) का चेहरा और नृत्य की अवस्था हूबहू अंकित कर दी है।** {श्रीश्रीमहाप्रभु की अन्तलीला के अन्तिम भाग में जब उनका शरीर अत्यन्त शीर्ण हो गया था तब तत्कालीन दिल्ली के बादशाह (शेरशाह) ने यह विवरण लोगों से सुना और अपने कई एक सुदक्ष चित्रकारों को पुरुषोत्तम (पुरी) महाप्रभु का चित्र अंकित कर लाने के लिए भेजा। चित्रकारों ने पुरी पहुँचते ही देखा कि महाप्रभु संकीर्तन में मत्त होकर उद्दण्ड नृत्य कर रहे हैं, पिचकारी से निकली धारा की तरह उनकी आँखों से बड़े बेग से आँसू बह रहे हैं; घुटनों तक लम्बी भुजाएँ और विशाल वक्षःस्थल है, उनकी सुन्दर देह चार हाथ ऊँची है जो बिलकुल ही हड्डियों का ढाँचा हो गया है। चित्रकारों ने उस दृश्य को बड़ी सावधानी से ज्यों-का-त्यों अंकित करके

बादशाह को दे दिया। उस समय से वह चित्र दिल्ली राजधानी में बड़ी संभाल कर रखा हुआ था। फिर दिल्ली के अवरोध के समय वह भरतपुर के महाराजा के हाथ लगा। श्रीवृन्दावन में रहते समय लाला बाबू के कुंज में श्रीगुरुदास बाबाजी के दर्शन करने को भरतपुर के महाराजा कई अवसरों पर जाते थे। बाबाजी उन्हें महाप्रभु का लीलाचरित सुनाते थे। उन कलाओं को सुनकर एक दिन महाराजा ने कहा-प्रभो! आप जैसा बतलाते हैं वैसा एक चित्रपट मेरी राजधानी में है। उस चित्रपट के देखते ही बाबाजी रोते-रोते मूर्च्छित हो गये। उस समय उस चित्रपट की दूसरी प्रति चित्रकार से बनवाई गई। यह चित्रपट वही प्रतिकृति है। इस चित्रपट को देखकर ठाकुर मुग्ध हो गये थे और उन्होंने इसका फोटो उतरवा लेने के लिये कहा जिसमें इसके खो जाने का डर न रहे। इस कारण पुरी में ठाकुर (जटिया बाबा) के समाधि मंदिर के सेवायत छोटे दादा श्री शारदाकान्त वद्योपाध्याय ने बड़े यत्न से प्राप्त करके हमारे ठाकुर द्वारा प्रतिष्ठित जगन्नाथजी और राधाकृष्ण के पट के साथ समाधिमन्दिर में इसे भी रख दिया है। वहाँ पर वे इसकी पूजा नियमित रीति से करते हैं।} **किसी समय जो घटना सचमुच होती है, वही अन्य अवसर पर असम्भव जान पड़ती है। प्रार्थना करते समय केशव बाबू की आँखों से कभी-कभी रक्त की धारा बहने लगती थी। जिन्होंने नहीं देखा है, उन्होंने क्या कभी इस पर विश्वास किया है? यह तो अभी-अभी की बात है।**

प्रश्न-'महाप्रभु के समय तो फोटो उतारने की कला का प्रचार नहीं था, तो फिर ज्यों का त्यों रूप कैसे बना होगा?'

ठाकुर ने कहा-**ध्यान से बनाया होगा। उस समय के**

चित्रकारों में ऐसी शक्ति थी कि जिस वस्तु को चित्रित करना चाहते थे उसको इतनी एकाग्रता से देखते थे कि उसकी छाप-सी उनकी आँखों में पड़ जाती थी। कुछ दिनों तक वे उसी का ध्यान किया करते थे और उसे पूर्णता से आयत्त करके फिर अंकित कर देते थे।

मैंने पूछा-'ऐसा करने से क्या हूबहू बन जाता है?'

ठाकुर ने कहा-**बिल्कुल हूबहू न भी बन पाए तो भी लगभग ठीक ही बन जाता है। अभी तक कृष्णनगर के कुम्हारों में से किसी-किसी में बहुत कुछ यह शक्ति है। जिसका जी चाहे, जाकर जाँच के देख सकता है।**

ठाकुर ने इस चित्रपट को अत्यन्त जीर्ण देखकर इसका एक फोटो उतरवा लेने की इच्छा प्रकट की।

अद्भुत संकीर्तन-जाता हूँ जाता हूँ।

यहाँ पर जैसे-जैसे दिन बीतते जाते हैं, उतनी ही भीड़भाड़ बढ़ती जाती है। शहर के गुरुभ्राता और गुरुभगिनियाँ प्रतिदिन ही झुण्ड के झुण्ड आया करते हैं। प्रतिदिन सौ से अधिक पत्तलें पड़ती हैं। केनाराम नामक एक प्रसिद्ध रसोईया ब्राह्मण नियुक्त किया गया है। प्रत्येक सप्ताह में दो-तीन दिन सौ व्यक्तियों के लिए पूड़ी, मिष्ठान्न, घी-भात आदि का भोजनोत्सव बड़ी तैयारी और धूमधाम से होता है। खोज करने पर भी हम लोगों को पता नहीं लग पाता कि कहाँ से, किस दिन, किस प्रकार यह सब सामान आता है। परिचित और अपरिचित बहुत लोगों के समागम और संकीर्तन-महोत्सव से दिन-रात गहमा-गहमी रहती है।

आश्रम का संध्या कीर्तन बड़ी विचित्र घटना है। उसको शब्दों द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता। दिन डूबते ही संकीर्तन के आनन्द का स्मरण करके झुण्ड के झुण्ड शिक्षक, छात्र, रोजगार व्यापारी और अन्य श्रेणियों के सम्भ्रान्त लोग प्रतिदिन आकर आश्रम को परिपूर्ण कर देते हैं। सन्ध्या होने पर ठाकुर करताल बजाकर **'हरि से लागि रहो रे भाई। तेरी बनत बनत बनि जाई।'** और **'प्रभुजी ऐसा नाम तुम्हारा। पतित पवित्र लिये कर आपनार'** कभी **'गगन में थाले रवि चन्द्र दीपक बने, तारकामण्डल चमके मति रे'** आदि गीत गाकर आसन पर स्थिर होकर बैठ जाते हैं। फिर सभी गुरुभाई मिलकर हरिसंकीर्तन करने लगते हैं। किसी-किसी दिन प्रसिद्ध गायक मुकन्द घोष या रामतारण घोष अथवा वैष्णवचरण कुण्डू अपने-अपने दल के साथ बड़े उत्साह से, या तो महात्माओं की पदावली का या नाम गान किया करते हैं। इस संकीर्तन में प्रतिदिन ठाकुर की नई-नई अवस्थाओं का जो विचित्र विकास होता है और भक्तमण्डली का जो अद्भुत भावोच्छवास होता है उसको भाषा द्वारा व्यक्त करना कठिन है। जिन भाग्यवानों ने इसे एक दिन भी देख लिया है, वे कृतार्थ हो गये हैं। जीवनभर वे कभी इस दृश्य को कदाचित ही भूल सकें।

कल सन्ध्या के पश्चात् धूमधाम से किये गये कीर्तन में तीन-चार खोल करताल एक ही ताल में बजने लगे। बहुत से लोग जब एक तान और समस्वर से जोर से संकीर्तन करने लगे तब ठाकुर थोड़ी देर तक आसन पर स्थिर बैठे रहे और फिर दाहिनी तथा बायीं ओर झूम-झूमकर गिरने लगे। दर्शकमण्डली एक बार ठाकुर की ओर और फिर भक्तों की ओर बड़ी उमंग से ताकने लगी। ठाकुर सामने की

ओर दोनों हाथ उठाकर **'जय शचीनन्दन, जय शचीनन्दन'** कहते-कहते आसन से खड़े हो गये। साथ-साथ सभी लोग उठकर खड़े हो गये। ठाकुर कूद-कूदकर उद्दाम नृत्य करने लगे। गुरुभाईयों ने ठाकुर को घेरकर तरह-तरह के नृत्य और हरिध्वनि से आश्रम को कम्पित कर दिया। न जाने क्या देखा! ठाकुर का भारी शरीर धीरे-धीरे छोटा हो गया; 'ऐइरे ऐइरे' कहते-कहते वे बालक की तरह मुट्ठी बाँधे दोनों हाथों को सामने और पीछे बार-बार घुमाकर उस लंबे-चौड़े कमरे में इधर से उधर तेजी दौड़ने लगे। मृदंग और मँजीरों का ताल बार-बार पड़ने लगा। संकीर्तन की ध्वनि चौगुनी बढ़ गई। बार-बार हरिध्वनि ने हुंकार गर्जन के साथ मिलकर विचित्र चमक ने सभी को मानो दिग्भ्रम में डाल दिया। अब यह कैसा अद्भुत दृश्य है! ठाकुर 'पकडो, पकड़ो' कहकर चिल्लाते हुए बड़ी भीड़ के भीतर बेधड़क दौड़ने लगे। थोड़ी ही देर में अकस्मात् एक जगह खड़े हो गये और वक्षस्थल पर हाथ रखकर सिर नीचे करके बार-बार नमस्कार करने लगे। इसके बाद बार-बार दाहिना हाथ ऊँचा करके 'जय राधे, जय राधे' कहते हुए ऊपर की ओर एकटक देखने लगे। शरीर स्थिर था, फिर भी भुजा और वक्षस्थल आदि अंग-प्रत्यंग पुलकित होकर पृथक् पृथक् नृत्य करने लगे। देखते-देखते सामने और दोनों ओर की लटकती हुई लम्बी लम्बी जटाएँ थर थर काँपकर माथे पर खड़ी हो गई। और साँप के फण की तरह अगला हिस्सा फैलाकर काँपने लगीं। उस समय मस्तक से चन्द्रकिरण जैसी उज्ज्वल छटा और नेत्रों से ज्योतिर्मय चिनगारियाँ बिजली की तरह निकलने लगीं। यह देखकर कई दर्शक विस्मयसूचक चीत्कार करके मूर्च्छित हो गये। ठाकुर ने ऊपर की ओर तर्जनी से

दिखलाकर-**वह देखो, सभी मुझे लेने को आये हैं, मैं चला, मैं चला**, कहते-कहते शरीर को ढीला कर दिया। 'ठाकुर ने शरीर छोड़ दिया, ठाकुर ने शरीर छोड़ दिया' कहकर चारों ओर रोना-पीटना हाहाकार मच गया। बहुत आदमियों को लाँघकर हम चार-पाँच आदमी ठाकुर के समीप पहुँचे। हम लोगों ने ठाकुर को कसकर पकड़ लिया। ब्राह्मधर्मप्रचारक श्री नगेन्द्र बाबू उन्मत्त से होकर 'दोहाई परमहंसजी! कभी नहीं जाने देंगे, कभी न जाने देंगे' कहते-कहते मस्तक और हाथों को बार-बार हिलाकर बेतरह हुंकार करने लगे। भीतर स्त्रियाँ और बाहर पुरुष जोर-जोर से रोने चिल्लाने लगे। ठाकुर अचेत होकर धराशायी हो गये। थोड़ी देर में-**जय गुरु! जय गुरु!** कहते हुए ठाकुर उठ बैठे। चारों ओर निस्तब्ध हो गया। आये हुए सज्जन धीरे-धीरे अपने स्थानों को चले गये। कुछ ठहरकर श्रीनगेन्द्र बाबू ने ठाकुर से पूछा-'ये कौन लोग थे, जो आपको खींच रहे थे? हम लोगों ने तो समझा था कि इस बार आप चले गये।'

ठाकुर ने कहा-**लक्षण तो ऐसे ही जान पड़ते हैं! गौर शिरोमणिजी, योगजीवन की माँ, श्रीवृन्दावन की सखियाँ तथा और भी बहुत लोग आये थे। उस समय परमहंसजी** (मानस सरोवर निवासी पूज्य श्रीश्रीस्वामी ब्रह्मानंद परमहंसजी जिन्होंने गयाजी में आकाशगंगा पहाड़ पर प्रभुजी को दीक्षा दी थी और जिनके निर्देश से प्रभुजी ने काशी-घाम में जाकर श्रीश्रीहरिहरानन्द सरस्वतीजी से संन्यास ग्रहण किया था।) **ने अकस्मात् आकर रोक दिया। बिना गुरुजी की इच्छा के किसी की चेष्टा से कुछ भी नहीं हो सकता।**

प्रश्न-'क्या गौर शिरोमणिजी को यह शक्ति प्राप्त हो गई थी?'

ठाकुर-**बिना इस शक्ति को प्राप्त किये, वे रासमण्डल में प्रवेश किस प्रकार करते?**

प्रश्न-'रासमण्डल में प्रवेश करते समय क्या सखीदेह प्राप्त हो जाती है?'

ठाकुर-**हाँ, वहाँ पर प्रवेश करने का अधिकार पुरुष को नहीं है।**

कल भावोन्माद में किसी भी दशा में क्यों न रहा, किन्तु मेरी दृष्टि ठाकुर पर ही थी। जितना याद था वही लिखा है। नहीं जानता कि समस्त दशा और भाव का पूरा-पूरा विवरण लिख पाया हूँ या नहीं।

संकीर्तन में गुरुभाईयों के अनेक प्रकार का भावोच्छवास देखकर सोचने लगा कि मैं किसी गुरुभाई से कुछ कम साधन-भजन नहीं करता हूँ, सभी तो सांसारिक काम-काज में या व्यर्थ की में दिन बिता रहे हैं, मैं तो प्रायः दिनभर नाम करता रहता हूँ, फिर मुझमें ऐसी शुष्कता क्यों है? दशाओं की प्राप्ति के लिए साधन की अपेक्षा हो तो इनकी प्राप्ति सबसे पहले मुझे होनी चाहिए। और यदि इनकी प्राप्ति कृपा सापेक्ष है तो फिर अयोग्य पर ही कृपा हुई, योग्य पर नहीं हुई। भगवान् ने ऐसा अविचार क्यों किया?

ठाकुर के संबंध में नगेन्द्र बाबू की बात।

पूस के बीचोबीच योगजीवन की स्त्री श्रीमती वसंतकुमारी देवी की हालत बहुत ही शोचनीय होने की खबर आई। बहुत दिनों से लगातार ज्वर की पीड़ा सहते-सहते वे अब एक तरह से मरणासन्न हैं। गेण्डारिया के सभी लोग उनके लिए अस्थिर हैं। यह खबर पाते

ही ठाकुर ने ढाका जाने की इच्छा प्रकट की। हम लोग भी पूस के बीचोबीच ठाकुर के साथ ढाका जाने को तैयार हो गये।

ढाका जाने से जरा पहले श्रीनगेन्द्र बाबू ने ठाकुर से थोड़ी देर तक एकान्त में बातचीत की। उस समय नहीं मालूम कि उन्होंने क्या कहा। बाद में एक बार छोटे दादा और कुंज बाबू (गुह) से बातचीत के सिलसिले में नगेन्द्र बाबू ने कहा-'सुना था कि गोसाईंजी मन की बात बतला देते हैं, किन्तु मुझे इस पर विश्वास नहीं था। गोसाईंजी की परीक्षा लेने की इच्छा हुई। मैंने उनसे पूछा-'गोस्वामी, बतलाइए तो सही मैं किस चक्र में हूँ।' गोस्वामी ने तुरन्त षट्चक्रों में से ठीक उस चक्र को लेकर कहा **आप... इस चक्र में घूम रहे हैं।** उनके पास दीक्षा की इच्छा व्यक्त करने पर उन्होंने कहा-**मैं आपको मित्रभाव से देखता हूँ, आपको और आवश्यकता नहीं है।'**

नगेन्द्र बाबू ने इन दोनों लोगों को तथा और भी किसी से ठाकुर के प्रसंग में कहा है-जिस दिन गोसाईं कलकत्ते आये उसी दिन उन्होंने आकाशमार्ग में मुझे दर्शन दिये थे। इसी से मैंने स्पष्ट समझ लिया था कि गोसाईं आ रहे हैं। मैं भी तैयार हो गया। वे स्टेशन से उतरकर सीधे उस रात को मेरे निवासस्थल पर आ पहुँचे।

ठाकुर का ढाका जाना। गुरुभाईयों की दशा।

यद्यपि गाड़ी के छूटने का समय रात को नौ बजे के लगभग था, फिर भी ठाकुर की जल्दबाजी करने से हम लोग छः बजे ही घर से रवाना हो गये। ठाकुर जब कहीं रेल से जाते हैं तब गाड़ी छूटने के समय से दो-तीन घण्टे पहले ही स्टेशन पर जाकर बैठ जाते हैं।

बचपन से ही ठाकुर का यह अलंघ्य नियम है। बहुत पहले से स्टेशन पर पहुँच जाने की ठाकुर की व्यस्तता देखकर हम लोग कई बार तंग आ जाते हैं।

ठाकुर ने बातों ही बातों में कहा-**घर पर नाहक बैठे रहने के बाद, घबराहट के साथ दौड़ने की अपेक्षा दो-तीन घण्टे पहले ही स्टेशन पर जाकर आराम से बैठना कहीं अच्छा है। कहीं जाना होता है तो मैं ऐसा ही करता हूँ। जिन्दगी में ऐसा कभी नहीं हुआ कि मेरी गाड़ी छूट गई हो।**

सन्ध्या होने के बाद ही सभी गुरुभाई ठाकुर को साथ लेकर सियालदह स्टेशन पर पहुँचे। आज आनन्द का मेला टूट गया। किसी गुरुभाई के मन में शान्ति नहीं है। सभी के चेहरों पर उदासी है, चित्त में स्फूर्ति नहीं है। ठाकुर जब तक स्टेशन पर थे, सभी उनको घेरे चुपचाप बैठे रहे। गाड़ी छूटने के कुछ पहले सभी ने ठाकुर को गाड़ी में सवार कराकर उनकी चरणरज ली। ठाकुर भी अश्रुपूर्ण नेत्रों और स्नेहपूर्ण दृष्टि से सभी की ओर देखकर हाथ जोड़े हुए माथा झुकाकर प्रति नमस्कार करने लगे। इस समय एक भी गुरुभाई स्थिर न रह सका; उन लोगों के आर्त प्राण और भी व्याकुल हो उठे। कोई-कोई तो जोरो से रोने लगे, उन लोगों की वह दशा देखकर हम लोगों को भी रोना आ गया। गाड़ी के भीतर और बाहर रोने की धूम मच गई। इसी समय गाड़ी छूट गई। अहा! ठाकुर के महीने भर से अधिक समय के नित्यसंगी नवीन बाबू, अचिन्त्य बाबू, मणि बाबू, वृन्दावन बाबू, देवेन्द्र बाबू, कुंज गुह, श्रीचरण बाबू, महेन्द्र बाबू, छोटे दादा और मनोरंजन गुह आदि की अनुराग से विह्वल, विषण्णमूर्तियों का चिंतन करते हुए दुःखी मन से हम लोग

ग्वालन्दो को जा रहे हैं। ऐसा लगने लगा, 'हाय रे भाग्य! इन गुरुभाईयों के अनुराग का एक कण पाकर यदि मैं ठाकुर का स्मरण कर क्षण भर के लिए भी इस इस तरह रो पाता, तो मेरा जीवन भी धन्य हो जाता।'

पद्मा की जलवायु। साहब का परिहास।

हम लोग सारी रात गाड़ी में रहे, सवेरे ग्वालन्दो में स्टीमर पर सवार हुए। एक बड़ा सा कम्बल बिछाकर सभी ठाकुर के चारों ओर बैठ गये। पद्मा नदी को देखकर ठाकुर ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। वे रह-रहकर कहने लगे-**गंगा की प्रबल धारा ही इस पद्मा में मिलकर प्रवाहित होती है। पद्मा की हवा से शरीर की जड़ता दूर होती है, प्रत्येक अंग-प्रत्यंग में स्फूर्ति आ जाती है। जल में असाधारण गुण है। अधपका भात या कच्चा चिउड़ा आधा सेर खा लेने पर भी, पद्मा का लोटे भर जल पी लेने से वह आसानी से पच जाता है। पद्मा के किनारे रहनेवाले मल्लाह जैसे सबल और स्वस्थ होते हैं ऐसे अन्यत्र प्रायः नहीं देखे जाते। पद्मा नदी का विस्तार देखने से चित्त प्रशान्त हो जाता है।**

थोड़ी देर तक पद्मा के जल और हवा का गुण बतलाकर ठाकुर चुप हो गये। यहाँ पर एक घटना का वर्णन लिखता हूँ। दोपहर को ठाकुर शिष्यों के बीच ध्यान लगाये बैठे हुए थे और प्रगाढ़ता में बार-बार झूम जाते और माथा ऊपर कर लेते थे। कपोलों पर होकर लगातार आँसू बह रहे थे। गुरुभ्राता लोग भी चुपचाप अपने-अपने इष्ट-नाम का स्मरण करने में मग्न थे। दूर से एक उच्च पदस्थ साहब ठाकुर की यह दशा देख, मतवाला समझकर, उनके सामने आया

और परिहास करके कहने लगा 'क्यों जी, दारु पी ली है? कितनी पी है? अरे तुमने कैसी दारु पी है?' साहब ने जब ये बातें दो-तीन बार कही तब ठाकुर ने माथा सीधा करके जरा मुस्कराकर उसकी ओर देखते हुए कहा-**हाँ दारु पी ली है, बहुत पी ली है। तुम्हारे ईसा मसीह जिस दारु को पीते थे, उसी को मैंने भी पिया है।**

साहब सुनकर जरा चौंका, कई सेकेण्ड तक ठाकुर की ओर ताकता रहा; फिर लज्जित होकर जरा हँसकर सिर से टोप उतारा और दोनों हाथों से ठाकुर को सलाम करता करता अपनी जगह पर चला गया।

रात को हम लोग दोलाईगंज स्टेशन पर उतरकर गेण्डारिया आश्रम पहुँचे। आश्रम में खूब भीड थी। ठाकुर के दर्शन मिलने से सबको बड़ा आनन्द हुआ।

श्रीयोगजीवन गोस्वामीजी की स्त्री वसन्तकुमारी का देहान्त।

५ से १८ पौष। ठाकुर गेण्डारिया-आश्रम आ गये। आश्रम के तथा शहर के गुरुभ्राताओं और गुरुभगिनियों से भेंट होने पर हम लोगों को जैसा आनन्द और उत्साह हुआ है, वैसा ही एक आतंक और विषाद का भाव योगजीवन की स्त्री की मरणासन्न दशा को देखकर सभी के मन में प्रवेश कर गया है। डॉक्टर श्रीप्रसन्न चन्द्र मजूमदार दिन-रात बड़ी सतर्कता से चिकित्सा करते रहने पर भी बिल्कुल निराश हो गये हैं। इस समय आश्रम में ठाकुर के आ जाने से थोड़ा सा भरोसा हो गया था कि शायद इस बार वसन्तकुमारी बच जाय; किन्तु देखते-देखते उनकी दशा धीरे-धीरे खूब बिगड़ जाने से सब

लोग बिल्कुल निराश हो गये।

वसन्तकुमारी की सेवा की व्यवस्था करने के लिए ही ठाकुर ने योगजीवन को गेण्डारिया भेज दिया था। किन्तु सेवाकार्य में बिल्कुल अयोग्य होने से कहो या आजन्म उदासीन प्रकृति रहने से स्वयं नियम के अनुसार सेवा-सुश्रूषा करके, रोगिणी की पीड़ा को कम करने में वे कुछ सहायता नहीं कर पाये; फिर भी उनके पहुँच जाने पर और उपस्थित रहने से ही वसन्तकुमारी को जो आनन्द मिला और सान्त्वना प्राप्त हुई, वह परम करुणामय गुरुदेव की व्यवस्था और आज्ञा का फल जान पड़ता है।

पौष शुक्ल ७ को वधू की विकार की सी दशा और ऊर्द्ध्वश्वास की क्रिया होने लगी। इसकी खबर देने पर ठाकुर ने कहा-**देह का जो थोड़ा सा भोग रह गया है, वह प्राणायाम द्वारा साफ हुआ जा रहा है।**

शुक्ल ९ को वसन्तकुमारी ने ठाकुर के दर्शन की आकांक्षा प्रकट की। ठाकुर रोगिणी की शैय्या के बगल में जाकर खड़े हो गये। वसन्तकुमारी ने रोते-रोते हाथ जोड़कर ठाकुर से कहा-'बाबा, और कितना दुःख दोगे बाबा?'

ठाकुर की आँखें डबडबा आईं। उन्होंने कहा-**माँ! अपने क्लेश का अन्त हुआ समझो।**

उस दिन डॉक्टर साहब ने कुछ आश्चर्यचकित होकर ठाकुर से जाकर कहा-'तीन दिन से वसन्तकुमारी की भयंकर श्वास चल रही है। इस दशा में और कब तक चलेंगी? अब यह हालत नहीं देखी जाती।'

ठाकुर ने कहा-**अब देर नहीं है, समय प्रायः आ गया; हाँ, घर-**

गृहस्थी के काम-काज में कभी कभी नानी माँ की गालियाँ खाने से, उनके ऊपर अभी तक उसको जो थोड़ा सा क्षोभ बना हैं, उसके दूर होते ही सब साफ हो जाएगा।

डॉक्टर ने कहा-'तो यह कैसे होगा?'

ठाकुर ने कहा-**नानी माँ जाकर जरा उसको प्रसन्न कर लें। इतनी ही तो बात है। इसके लिए घबराने की आवश्यकता नहीं, अभी सब ठीक हो जायगा।**

अब रोगिणी की हालत बहुत ही खराब हो गई देखकर नानी बेचैन हो गई। यह समझकर कि अब बहू बचने की नहीं, वे रोती-रोती उसके पास गई और प्राण के आवेग से कहने लगीं, बहू! मैंने कुछ अन्याय किया हो, कष्ट दिया हो, तो मुझे क्षमा कर दो। वसन्तकुमारी ने नानी की व्याकुलता और रोना देखकर तथा करुणापूर्ण बातें सुनकर उनको गले से लगा लिया। आँखे भर आईं। कहा, 'नानी माँ, आपने तो कुछ भी अपराध नहीं किया है।' इसके बाद संध्या हो जाने पर, पुण्यशीला भाग्यवती वसन्तकुमारी ने अठारह वर्ष की आयु में, बड़े भाई जगबन्धु मैत्र के सामने, आश्रम के गुरुभाईयों को रुलाकर, पति के चरणों के समीप, गुरु के आश्रम में शरीर छोड़ दिया।

माघ

योगजीवन की स्त्री का श्राद्ध और पारलौकिक अवस्था प्रश्नोत्तर।

५ माघ सोमवार। वसन्तकुमारी का शीघ्र ही देहान्त हो जायगा, इसका अनुमान करके मैं होम के लिए घी और भोजन के लिए

चावल लाने को, ठाकुर से आज्ञा लेकर घर चला गया। सात दिन बाद घर से लौटकर आश्रम में आया। मालूम हुआ कि बहुत से गुरुभाई एकत्र होकर हरिध्वनि करते हुए वसन्तकुमारी की पवित्र देह को श्यामपुर श्मशान घाट पर ले गये थे। ठाकुर के अभिप्राय के अनुसार योगजीवन ने का दाहकर्म किया था। अग्नि-संस्कार के समय देह से अकस्मात् एक गोल ज्योतिःपिण्ड चिता से उठकर नक्षत्र के वेग से ऊपर की ओर अनन्त आकाश में जाकर मिल गया था। जो लोग श्मशान में गये थे उनमें से किसी-किसी ने यह देखा था।

गेण्डारिया पहुँचने पर दूसरे दिन ठाकुर ने चाय पीकर मुझसे कहा-**तुम योगजीवन को श्राद्ध के मन्त्र पढ़ा सकोगे?**

मैंने कहा-'मैं तो श्राद्ध मन्त्र नहीं जानता।'

ठाकुर ने कहा-**पुस्तक देखकर उच्चारण करते जाना, इसमें जानने न जानने की क्या बात है?**

मैं-'मैंने देखा है कि श्राद्धमंत्रों का उच्चारण के साथ कई प्रक्रियाएँ कराई जाती है। मैं तो वह सब नहीं जानता हूँ। फिर मैं संस्कृत भी तो अच्छी तरह नहीं जानता। यदि मुझसे श्राद्धमन्त्र पढ़वाना हो तो मुझे अभी से पुस्तक देखकर अभ्यास कर लेना होगा; नहीं तो शुद्ध उच्चारण न कर सकूँगा।'

ठाकुर ने फिर मुझसे और कुछ नहीं कहा। ग्यारहवें दिन ठाकुर ने स्वयं श्राद्धपद्धति पुस्तक देखकर योगजीवन से श्राद्धमन्त्रों का उच्चारण करवाया और शास्त्रीय व्यवस्था के अनुसार श्राद्धकार्य कराया। श्राद्ध के पश्चात् ठाकुर ने बातचीत के दौरान कहा-वसन्त ने श्राद्धस्थान में उपस्थित होकर, हाथ फैलाकर पिण्ड को ग्रहण

किया; सूक्ष्म देह का परित्याग करके उन्होंने दुर्लभ कारण देह प्राप्त कर लिया।

समय के अनुसार मैंने पूछा-'जीव की कैसी दशा में, देहान्त के उपरान्त ही फिर देह का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है?

ठाकुर ने कहा-**घर-गृहस्थी में जिनकी अत्यन्त वासना रहती है, जिनके भोग की इच्छा अत्यन्त प्रबल रहती है, वे शरीर छूटते ही अन्य देह का आश्रय ले लेते हैं।**

प्रश्न-'पितृलोक को कौन जाते हैं?'

ठाकुर-**विषय उपस्थित होने पर जो उसको भोग तो लेते हैं, किन्तु उसकी प्राप्ति के लिए कोई प्रबल स्पृहा नहीं रखते, साधारणतः ऐसे लोग ही पितृलोक को जाते हैं।**

प्रश्न-'बैकुण्ठ और ब्रह्मलोक में तथा उससे भी अतीत लोक में, जीव किस अवस्था की प्राप्ति कर लेने पर जाता है?'

ठाकुर-**जो लोग धर्मशास्त्र पर लक्ष्य रखकर, किसी भी अच्छे कार्य में जीवन व्यतीत कर देते हैं, उनको कर्म के अनुसार वासनानुसार एक-एक प्रकार का लोक मिलता है। जिनकी वासना की जड़ तक कट जाती है, एकमात्र भगवान् पर ही जिनका लक्ष्य रहता है उन्हीं की गति ब्रह्मलोक के अतीत स्थान में होती है। केवल वासना के ही कारण जीव को भिन्न-भिन्न लोकों में जाना पड़ता है।**

इसके अतिरिक्त लोकान्तर-प्राप्ति का और भी कोई कारण है? यह प्रश्न करने का विचार करते ही ठाकुर अपने आप कहने लगे-**इन बातों की और भी बहुत सी मीमांसा है, किन्तु सभी को सब दशाओं की बातें नहीं बताई जा सकती। जिसकी जैसी अवस्था**

है, जिसको जिस ओर से समझने का अधिकार है उसको उसी ढंग से कहा जाता है, नहीं तो यह समझ ही नहीं पाता। बता देने से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक हो जाती है। यह सब सुनने मात्र से कुछ लाभ नहीं होता है,काम करते जाना चाहिए।

आश्रम में अशान्ति।

9 माघ सोमवार। हम लोग आपस में जब तब यह डींग हाँकते हैं कि ठाकुर के समीप सदा रहने को मिले तो हम हजारों असुविधाओं की भी कुछ परवाह नहीं करते। इस बार जबसे गेण्डारिया-आश्रम आये हैं, हमारे उस अभिमान को भगवान्, पग-पग पर तोड़ रहे हैं। कई दिन से ठाकुर के समीप रहने पर भी आश्रम में बड़ी अशान्ति मची हुई है। सभी गुरुभाई अस्थिर हो रहे हैं; क्या करें, कहाँ जावें, सभी के मन में इसकी एक उद्विग्नतापूर्ण हलचल हो रही है।

आश्रम में एक ही नौकर है। वह बाहर के कामों में व्यस्त रहता है। रसोई बनाने के लिए रसोईया न तो कभी आश्रम में था और न इस समय है। शान्तिसुधा बीमारी के कारण कुछ करने लायक नहीं है; अकेली नानी माँ रोग, शोक से जर्जर रहने पर भी, इस बुढ़ापे में आश्रम के सब लोगों और अभ्यागतों के लिए रसोई बनाती, परोसती और चौका-बर्तन माँजना भी करती हैं। इससे वे बहुत ही हैरान हो गई। अतएव वे अपनी असमर्थता प्रकट करके प्रतिदिन गुरुभ्राताओं से इन सभी कामों को सँभालने के लिए अनुरोध करने लगीं। गुरुभाई लोग इतने दिनों से यह सब सेवा गुरुपरिवार से बेधड़क प्राप्त करते आये हैं, इसलिए अब नानी माँ की असमर्थता अथवा गाली-गलौज की भी किसी ने कुछ परवाह न की। इधर

रुपये-पैसे की भी बेहद तंगी हुई। केवल भात के साथ किसी दिन दाल या किसी दिन तरकारी के अलावा भोजन का और कुछ प्रबन्ध नहीं हो पाता है। प्रतिदिन एक ही प्रकार का अरुचिकर भोजन पाकर और अप्रसन्नता के साथ दिये हुए भोजन के साथ साथ गालियाँ भी सुनकर, गुरुभ्राता लोग बहुत ही ऊब गये। नानी माँ के किसी काम में कोई किसी प्रकार से सहायता नहीं करता, अर्थाभाव जानकर सहानुभूति प्रकट नहीं करता था; उलटे यह चर्चा की जाती थी कि नानी माँ के लोभ संकीर्णता और स्वार्थ के कारण ही यहाँ ऐसी असुविधा हो रही है। इस अशान्ति के साथ लड़ाई-झगड़ा धीरे-धीरे इतना बढ़ गया है कि अन्त में किसी-किसी गुरुभाई ने अपने खाने-पीने का अलग प्रबन्ध कर लिया; किसी ने दूसरे गुरुभाईयों के घर भोजन की व्यवस्था कर ली और कोई-कोई आश्रम छोड़कर ही चला गया। अब नानी माँ की चर्चा ही मानो सबका भजन-साधन हो गया।

पवित्र आश्रम में साधारण भोजन और तुच्छ व्यवहार के लिए आपस में भीतर ही भीतर विवाद, समय-समय पर लड़ाई-झगड़ा होते देख मैंने सोचा-'यह है क्या? ठाकुर की परम शान्तिप्रद संग प्राप्ति ही जिनके यहाँ रहने का एकमात्र उद्देश्य था, उनका चित्त मामूली खाने-पीने और बर्ताव के कारण इतना उत्तप्त हो गया? ठाकुर ने मुझे अपने हाथ से पकाकर खाने की आज्ञा देकर इन झगड़ों से बचा लिया। मैं इन झगड़ों से दूर रहकर बड़े आनन्द में हूँ।' गुरुभाईयों की दशा देखकर मुझे दिन दिन गर्व होने लगा। इस समय कुछ दिनों में ही आश्रम की गरम हवा से मैं भी त्रस्त हो गया। मैं भी त्राहि-त्राहि करने लग गया।

अपने लिए चावल न रह जाने पर मैं घर से ले आता हूँ। दिन को शाम के पहले 'भाते सिद्ध भात' या खिचड़ी खाता हूँ। दक्षिण ओर के घर में अपराह्न बड़ी भीड़भाड़ होती है, इसलिए मैं भंडारघर के बरामदे में रसोई बनाने लगा हूँ। ठाकुर की आज्ञा के अनुसार मैं पर्दा लगाकर एकान्त में भोजन करता हूँ। भण्डारघर के बरामदे में भोजन का प्रबंध करने से, वहाँ की तरकारी, दाल और नमक आदि चुरा लेने का अपवाद मुझ पर लगाया गया।

कोई-कोई मेरे भोजन के समय छिपकर यह भी देखने लगा कि मैं क्या-क्या खाता हूँ। यह सब सुनकर मैं आग-बबूला होने लगा। शीघ्र ही मैं दक्षिण ओर के घर के बरामदे में भोजन बनाने लगा। किन्तु इतने पर भी अपवाद ने पीछा न छोड़ा। दो मुट्ठी चावल पकाने के लिए दो-तीन लकड़ियाँ बहुत हैं। यह ईंधन मैं फुरसत के वक्त पेड़ की सूखी डालें तोड़कर जमा कर लेता हूँ। यदि कभी ईंधन नहीं रहता तो आश्रम से जरूरत भर के लिए ले लेता हूँ। इसके लिए भी कई तरह की चर्चा हुई। ये सब उत्पात देखकर मैंने संकल्प कर लिया कि आश्रम की किसी वस्तु को हाथ तक न लगाऊँगा। मामूली बातों के लिए आश्रम में ऐसी अशान्ति मची रहती है लेकिन फिर भी ठाकुर किसी से कुछ नहीं कहते। यह देखकर मुझे उन पर क्षोभ तो हुआ ही और क्रोध भी आया। हम लोगों में इस स्वार्थपरायणता और संकीर्णता के कारण हिंसा, विद्वेष, डाह और जलन न जाने कब तक बनी रहेगी। ठाकुर सबको अपनी-अपनी मर्जी के माफिक चलने देकर चुप बैठे हुए हैं, आखिर इसका तात्पर्य क्या है?

समय पाकर मैंने ठाकुर से पूछा-'मायिक विषय के सम्बन्ध से

कब तक जलते-भुनते रहना पड़ता है?'

ठाकुर ने कहा-**अरे बापू! न जाने कितने ज्ञानी, योगी और बड़े-बड़े विज्ञ व्यक्ति माया के चक्र में पड़कर बिल्कुल अस्थिर हो जाते हैं। नहीं कहा जा सकता कि किस समय, किसके भीतर, किस छिद्र से होकर, पाप प्रवेश कर लेता है। इसीलिए सदा भगवान् को ही लेकर रहना पड़ता है। सत्संग, सदालाप, सदनुष्ठान और सच्चिन्तन में प्रातःकाल से लेकर सोते तक बिता देना चाहिए। और सदा मन ही मन प्रार्थना करनी पड़ती है-'भगवन्! मुझे अपना लो। मैं तुम्हारे सिवा और कुछ भी न चाहूँ।' दिन-रात इस प्रकार बिताया जा सके तो भगवान् की दया से धीरे-धीरे माया मोह से छुटकारा मिल जाता है। बिना उनकी कृपा के, हजार सिर पटकने पर भी कुछ नहीं हो सकता। उनकी थोड़ी सी कृपा होते ही पल भर में सब कुछ हो सकता है।**

वसन्तकुमारी का देहान्त हो जाने पर योगजीवन ने सोचा, 'अब संसार के बन्धन से छुटकारा हो गया; अब सदा निश्चिन्त होकर ठाकुर के साथ बड़े आनन्द से रह सकूँगा।' वसन्तकुमारी के लिए सबको दुःख रहने पर भी, योगजीवन को जरा भी दुःख न था। गुरुभाईयों से वे यह कहकर कि 'अब गृहस्थी के पचड़े में न पड़ना पड़ेगा।' आनन्द मनाते हुए समय बिताने लगे। एक दिन शौच को जाते समय सामने योगजीवन को देखकर ठाकुर ने एकाएक कहा-**योगजीवन, अच्छी तरह समझ ले कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर भी बहुत हुआ तो सामयिक एक आनन्द की तरंग मन में उत्पन्न कर सकते हैं, लेकिन ये प्रारब्ध के भोग को नष्ट नहीं कर सकते; यह कार्य केवल एक के हाथों में है।**

नानी माँ थोड़े दिनों में ही योगजीवन के विवाह के लिए चिन्ता करने लगी। किसी-किसी गुरुभाई ने भी ठाकुर के आगे इसकी चर्चा भी की।

ठाकुर ने कहा-**मैं उससे अब विवाह करने के लिए नहीं कहता, उसका जी चाहेगा तो कर लेगा, पर अब विवाह करना ठीक नहीं है।**

ठाकुर का अभिप्राय समझकर नानी रोने-पीटने लगी। गुरुभ्राता और भगिनियाँ यह सोचकर बहुत दुःखित हुई कि 'योगजीवन का दूसरा विवाह नहीं होगा, गुरुवंश लुप्त हो जायेगा।' किन्तु किसी ने आशा बिल्कुल नहीं छोड़ी; सोचा, 'अभी ठाकुर ने मना कर दिया है, सम्भव है फिर कभी अनुमति दे भी दें।'

ठाकुर का इन दिनों का प्रतिदिन का कार्य।

११ माघ रविवार। गेण्डारिया में ठाकुर के आ जाने की खबर फैलते ही शहर से लोगों के झुण्ड के झुण्ड आश्रम में आने लगे। सवेरे ठाकुर को बातचीत करने के लिये समय नहीं मिलता, इससे अपराह्न भीड़भाड़ अधिक होती है। ठाकुर प्रतिदिन भोर को आसन से उठकर कुएँ पर जाते हैं। शौचादि के बाद खड़ाऊँ पहने और हाथ में दण्ड लिये हुए आश्रम के दक्षिण ओर टहलते रहते हैं। वृक्ष-लताओं के पास जाकर उनकी ओर देखते हुए खड़े हो जाते हैं। कभी किसी को बड़े स्नेह से स्पर्श करते हैं। छोटे पौधों की वृद्धि और दूर से लता का वृक्ष से लिपटने की कुशलता एवं चेष्टा देखकर वे आनन्दित होते हैं। अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार चलने के लिये पेड़-पौधों में दृष्टिशक्ति है; सुख-दुःख का अनुभव और

विचार की बुद्धि, उनमें मनुष्य से कम नहीं है, इसका प्रमाण ठाकुर दिखाया करते हैं। हरे पौधों में लाल फूल, एक-एक फूल के कई-कई रंग और श्रृंखला बद्ध पंखुड़ियाँ देखते-देखते, समय-समय पर ठाकुर भावमग्न हो जाते हैं। टहलने के बहाने माता ठाकुरानी के मंदिर की परिक्रमा करके, कुंज बाबू के मकान के दक्षिण ओर तालाब के उत्तर-पूर्व कोने में घास पर जा खड़े होते हैं; फिर तालाब के दक्षिण किनारे के घने जंगल की ओर थोड़ी देर तक स्थिर भाव से देखते रहते हैं। इस समय मच्छर के काटने से बेचैन होकर ही मानो ठाकुर जोर से पैर उठाने और पटकने लगते हैं। फिर पक्षियों के चुगने के लिए कुछ मुट्ठी चावल फैलाकर ठाकुर अपने आसन पर आकर स्थिरता से बैठ जाते हैं।'

इसी समय कुंज बाबू अपने घर से चाय बनाकर ले आते हैं। अब तक ठाकुर को नारियल की प्याली में चाय पीते देखता आया हूँ। इस बार कुंज बाबू ठाकुर के लिए चाय पीने को एनामेल की कटोरी ले आये हैं। ठाकुर उसी कटोरी से चाय पीते हैं। चाय पी लेने के अनन्तर कुंज बाबू चरितामृत का पाठ करते हैं। फिर ठाकुर स्वयं 'ग्रन्थसाहब' का पाठ करके शास्त्रों को देखने लगते हैं। अक्सर ग्रन्थ तो उनके हाथ में ही रहता है और वे ध्यान में डूबे रहते हैं। इतने में ग्यारह बज जाते हैं। ग्यारह बजे ठाकुर आसन छोड़कर शौच को जाते हैं। फिर केवल मस्तक को बचाकर सारे शरीर को धो डालते हैं। इसके उपरान्त आसन पर आकर तिलक लगाते और दवा लेते हैं। बारह बजे के लगभग भोजन कर लेते हैं। फिर मैं आम वृक्ष के नीचे उनका आसन ले जाता हूँ। ठाकुर धूनी के सामने बैठकर कोई तीन घण्टे तक पूर्व दिशा में किसी वृक्ष की ओर अपलक देखते

रहते हैं। ठाकुर का शरीर स्थिर दीपशिखा की भाँति अचल रहता है। लगातार आँसू बहते रहने से शरीर का कपड़ा भीग जाता है। आँखें नक्षत्र की तरह दमकती रहती हैं। कभी-कभी शरीर का रंग भी भिन्न हो जाता है, मैं इस समय कोई दो घण्टे तक महाभारत पढ़कर, नाम किया करता हूँ। समय-समय पर, ठाकुर की मग्नावस्था में, उनकी देह का विचित्र रूपान्तर देखकर, मैं हर्षित और स्तम्भित हो जाता हूँ।

तीसरे पहर शहर से लोग आ जाते हैं, तब ठाकुर उन लोगों से बातचीत करने लगते हैं और मैं रसोई बनाने के लिए चला जाता हूँ। शाम को प्रतिदिन बड़े उमंग से पूर्व के कमरे में हरिसंकीर्तन होता है। रात को नौ बजने पर गुरुभाई लोग अपने अपने घर को चले जाते हैं। ठाकुर कुछ जलपान करके अपने आसन पर बैठे रहते हैं।

ठाकुर का हँसना और झगड़ा समाप्त।।

१२ माघ। इस बार गेण्डारिया में बड़ी ठण्ड पड़ रही है। ठाकुर के घर का बेड़ा स्थान-स्थान पर टूट गया है। रात को बड़ी ठण्ड लगती है। चार-पाँच गुरुभाई रात को उसी घर में रहते हैं जिसमें ठाकुर हैं। उनके पास अच्छा गरम कपड़ा नहीं है, इसलिए ठाकुर ने रात को धूनी जलती रखने की आज्ञा दी है। हाथ में रूपया-पैसा न होने से आश्रम में रसोई के लिए ही सदा ईंधन नहीं रहता, धूनी के लिए लकड़ी आवेगी कहाँ से? इसलिए अधिक रात होने पर महेन्द्र बाबू और श्रीधर आदि गुरुभाई धूनी जलाने के लिए लकड़ियों की खोज में आश्रम के पड़ोसी गुरुभाईयों के घर चक्कर लगाया करते हैं। जरा निस्तब्ध होते ही वे कुछ सोच-विचार किये बिना, किसी के

यहाँ से चौखट बनाने के लिए संभालकर रखी हुई लकड़ी, किसी के यहाँ रसोई घर में लगाने के खम्भे और किसी के यहाँ से मचान बनाने का बढिया तख्ता लाकर धूनी में झोंक देते हैं। सवेरे जब घर का मालिक देखता है तो इसके लिए झगड़ता है। मैं रसोई बनाने के लिए मांगकर बड़ी कठिनाई से थोड़ी सी लकड़ियाँ ले आया था। इन लोगों से बचाकर मैंने वे लकड़ियाँ राधारमण बाबू की गोशाला में रख दी। मेरा मतलब यह था कि यदि वे लोग लकडियाँ उठाने को रात के अंधेरे में गोशाला में घुसेंगे तो गौओं की मार खाकर भाग आवेंगे। किन्तु गुरुभाई लोग मेरी एक महीने भर काम आने लायक लकड़ियाँ न जाने किस चतुराई से उठा लाये और उनको रातभर में फूँककर ताप डाला। मैं सवेरे उठकर प्रतिदिन लकड़ियों की चौकसी कर आता था कि कोई उठा तो नहीं ले गया। आज गोशाला में जाकर देखा कि लकड़ियाँ गायब हैं। इससे मुझे बड़ा खेद हुआ। मैं उत्तेजित होकर ठाकुर के सामने पहुँचा और सब लोगों से पूछताछ करने लगा कि मेरी लकड़ियाँ कौन उठा लाया। किसी ने कहा-'ठाकुर की धूनी में तुम्हारी लकड़ियाँ जली हैं, यह तो तुम्हारा अहोभाग्य है। इसके लिए इतना गुस्सा क्यों करते हो?' ठाकुर चुपचाप स्थिर भाव से हम लोगों का झगड़ा सुनने लगे, फिर जब झगड़ा बहुत अधिक बढ़ गया और इससे भी अधिक बढ़ने की आशंका हुई, तब ठाकुर हम लोगों की ओर देखकर खिलखिलाकर हँस पड़े। मैंने आश्चर्यसहित देखा कि उनके हँसते ही पल भर में सभी को शान्ति मिल गई। सभी के चेहरे पर हँसी नाचने लगी। सभी के हृदय में एक आनन्द की तरंग उमड़ पड़ी।

श्रीधर के वैराग्य से विषम उत्पात; ठाकुर का उपदेश।

१३ माघ। आश्रम के दक्षिण की ओर के कमरे के दक्षिण-पूर्व कोने में मेरा आसन है, इसी कमरे में मंगलवार दक्षिण-पश्चिम कोने में श्रीधर रहते हैं। घर की बाकी जगह में लम्बा बिछौना बिछाकर अन्यान्य गुरुभ्राता रात को सोते हैं। श्रीधर के और मेरे आसन के बीच में दरवाजा है। वसन्तकुमारी के देहान्त के पश्चात् श्रीधर को बहुत अधिक वैराग्य हो गया है; उनको किसी दिन किसी ढंग का वैराग्य होता है तो किसी दिन और किसी ढंग का। इस वैराग्य के मारे हम लोग बड़े संकट में है। एक दिन श्रीधर अपने आसन को लपेटकर साढे छः फुट लम्बी और साढ़े तीन फुट चौड़ी जमीन पर कुदाली चलाने लगे। फुटभर धरती खोदकर वे फर्श पर मिट्टी का ढेर लगाने लगे। श्रीधर से इस हालत में कोई कुछ भी नहीं कह सकता। क्या जाने, किसी के सिर पर कुदाली मार दे। खबर पाकर नानी माँ बहुत ही नाराज हुई। कहा-घर को बरबाद कर दिया! यह पागलपन किसलिए किया है? श्रीधर व्यर्थ बातचीत में समय न गँवाकर बड़ी लगन से घर के फर्श पर धमाधम कुदाल चलाने लगे। नानी माँ की बात की कुछ भी परवाह नहीं की। नानी माँ भी चिल्ला चिल्लाकर भर्त्सना करने लगीं। तब श्रीधर ने स्वर बिगाड़कर नानी माँ से कहा-मिट्टी में मिला दिया!!जब मैं मर जाऊँगा तब क्या आप मेरी व्यवस्था करेंगी? अब श्रीधर ने हाथ के कुदाल को तो बाहर फेंक दिया और कलश लेकर वे तालाब की ओर चले। अब वे पानी ला लाकर कमरे के भीतर मिट्टी के ऊपर डालने लगे। घर भर में

पानी और कीचड़ हो गया। अपने आसन के पास पानी आते देख मैं आसन से कूद पड़ा। मैंने धमकाकर कहा, ‘श्रीधर! होशियार हो जाओ। यदि मेरे होमकुण्ड में एक बूँद पानी गिरा या मेरे आसन में पानी गया तो आज तुम्हारा खून कर डालूँगा।’ यह हाल देखकर श्रीधर ने पानी धार को फुर्ती से दूसरी ओर घुमाकर नरमी से कहा, ‘भाई, जरा ठहर तो जाओ। फिर खून कर डालोगे तो कुछ चिन्ता नहीं है। मैं नाराज होकर कमरे से बाहर निकल आया और ठाकुर के पास जा बैठा। मौका पाकर मैंने ठाकुर से पूछा, ‘कोई अत्याचार करे तो उसे दण्ड देना क्या अनुचित है?’

ठाकुर ने कहा-**प्रकृति को समझकर मनुष्य के साथ आचरण करना चाहिए। यदि कोई अपने स्वभाव के अनुसार चले और इसमें किसी दूसरे का कुछ नुकसान हो जाय किन्तु यदि उसका अभिप्राय किसी की हानि करने का न हो तो शान्ति के साथ उसको समझा देना चाहिए। जहाँ तक बन सके, उसके भाव में मिलकर उसका पविरर्तन करने की चेष्टा करनी चाहिए। और यदि सचमुच ही किसी बुरे अभिप्राय से, अपना मतलब साधने के लिए, कोई कुछ अत्याचार करे, तब तो उसका अनुशासन करना चाहिए। कई बार अच्छी नीयत से मनुष्य काम करता है, किन्तु फिर भी किसी की हानि हो जाती है, तो इसके लिए वह दोषी नहीं हो सकता। भूल-चूक तो मनुष्य से होती ही रहती है। समय आने पर वह उसको अपने आप समझ लेता है। सभी कामों को बड़े धैर्य से करना चाहिए। धैर्य न होने से ही तो कितने विरोध होते हैं।**

ठाकुर की बातें सुनकर मैंने सोचा, ‘वाह! यह भी अच्छी रही।

एक तो सदा अत्याचार करे और दूसरी कल्पना द्वारा उसके शुभ उद्देश्य को समझे और अत्याचार में केवल धैर्य धारण किये रहे। यह उपदेश बुरा नहीं है। मैं समझ गया कि श्रीधर का नाम न लेने पर भी ठाकुर ने उन्हीं पर लक्ष्य रखकर मुझे उपदेश दिया है। किन्तु जिस समय श्रीधर का दिमाग गरम हो जाता है, उस समय उनके जिन कर्तव्यज्ञानशून्य उद्वेगजनक कामों को सभी लोग पागलपन के सिवा और कुछ नहीं कहते, उनमें ठाकुर ने श्रीधर का कौन सा शुभ उद्देश्य देखा, यह मैं नहीं समझ सका। श्रीधर ने दिन भर पानी गिराकर गारे के आसन के बराबर गड्ढे के चारों ओर, ऊँची वेदी बनाई। फिर तुलसी के पौधे लाकर उस पर एक पंक्ति में लगा दिये। इसके बाद गड्ढे के भीतर चटाई बिछाकर उसके ऊपर कम्बल काआसन बिछाया। अब एक एकतारा लेकर यह भजन गाने लगे - 'शेषेर से दिन कर रे स्मरण, भवधाम जब छाड़िवे।' (मन, अन्त के उस दिन की याद कर जब संसार को छोड़ेगा)। श्रीधर का भजन पूरा होने से पहले ही शहर के सभी गुरुभाई आ गये। कमरे को श्रीधर के पागलपन से भरा देखकर सभी ने कहा-श्रीधर, यह क्या है? यह क्या किया?

श्रीधर ने बड़े तेज से उत्तर दिया, 'यह क्या है, देखते नहीं हो, आँखे नहीं है? यह तुलसीकानन है।' गुरुभाईयों ने कहा-पागल तुलसी कानन कमरे में क्यों? बाहर तुलसी कानन में भजन क्यों नहीं करते? श्रीधर ने कहा, 'ऐसी ठण्ड में कहीं बाहर जाना पड़े, इसी से तो यह सब बनाया है। मेरा देहान्त होगा तो इसी तुलसी कानन में होगा। तुम लोगों को जरा भी ठण्ड न लगेगी। मुझे इसी गड्ढे में दफनाकर ऊपर से यह मिट्टी डाल देना। कब्र बना देना।'

अब श्रीधर इकतारा रखकर कम्बल ओढ़कर लेट गये। उनके चुप हो जाने पर किसी किसी गुरुभाई ने 'हरि बोल! हरि बोल!! की ध्वनि करके 'श्रीधर तो मर गया' कहकर ऊपर से उनके ऊपर मिट्टी चढ़ा दी और उन्हें दबा लिया। तब श्रीधर हड़बड़ाकर उठ बैठे। सबके साथ श्रीधर भी आधे घण्टे तक हँसते रहे। यह सब देख सुनकर मैंने ठाकुर के उपदेश का अर्थ समझा और श्रीधर के पागलपन में भी शुभ उद्देश्य जानकर मैं तो चकरा गया।

जब श्रीधर के होश-हवास ठीक हो गये तब मैंने पूछा, 'क्यों भाई, पागलपन किसलिए किया था?'

श्रीधर ने कहा-भाई, ठाकुर ने कहा था कि 'तेरे शरीर में संन्यास रोग का बीज प्रविष्ट हो गया है', अतएव इसका कोई भरोसा नहीं कि मैं किस दशा में, कब मर जाऊँ। इसी से तुलसीकानन बना लिया था; यदि तुलसी के पास मरूँगा तो सद्गति तो हो जायगी। इसके सिवा अब ऐसी ठण्ड पड़ती है। यदि शाम को मरा तो जो लोग श्मशान जायेंगे उनको क्या कम कष्ट होगा? यह विचार उठते ही मैंने ऐसा प्रबन्ध कर डाला जिससे देह छूटे तो किसी को नाहक हैरानी न हो। बस, मैंने इतना परिश्रम करके घर के भीतर ही कब्र के लिए जगह तैयार कर ली थी। होश-हवास ठीक हो जाने पर श्रीधर अपने पागलपन को समझकर बडे लज्जित हो गये।

स्वप्न में फकीर के दर्शन।

एक दिन स्वप्न देखा, गेण्डारिया-आश्रम में दक्षिण-पूर्व कोने में कठोर साधक, तीन मुसलमान फकीर मौजूद हैं। उनमें से एक लंबे से, दुबले-पतले गोरे रंग के अत्यंत तेजस्वी वृद्ध ने मुझसे कहा-

'देखो, यह मैं बैठ गया हूँ, जब तक सिद्ध न हो जाऊँगा। इस आसन से न हटूँगा। बिना बिना खाये पिये इसी आसन पर शरीर छोड़ दूँगा।' अब फकीर साहब बायें पैर के गुल्फ पर सीधा बैठ गये है और दाहिना पैर सामने फैलाकर दाहिने हाथ की तर्जनी से पैर के अँगूठे को खींचकर नाक की नोक पर दृष्टि को स्थिर करके ध्यानमग्न हो गये। अन्य दोनों फकीरों की उम्र कम थी। चेहरा किंचित् स्थूल, स्वभाव धीर, रंग कुछ कुछ गोरा था; तालाब के दक्षिण-पूर्व कोने में घने जंगल के भीतर, मिट्टी के नीचे,आसन लगाये बैठे थे। कुछ दिनों के बाद उनकी खबर लेने गया तो पूर्वोक्त फकीर को देखा। अब उसकी पहले की शकल-सूरत नहीं थी। सारी देह वायु से फूल गई थी और फूट-फूटकर रस बह रहा था। जाँघों और कमर के कई स्थानों से सड़ जाने के कारण, मांस अलग होकर गिर रहा था। असह्य क्लेश सहन करके भी वे आसन पर स्थिरता से बैठे थे। अन्य दोनों फकीरों की हालत देखने के लिये ज्यों ही मैं जंगल के भीतर घुसा कि पैर में ठोकर लगने से नींद टूट गई। फकीरों की कठोर तपस्या के चित्र पर चिंतन करते-करते बाकी रात गई।

सुबह ठाकुरप्रतिदिन की भाँति टहलते-टहलते कुंजबाबू के घर के दक्षिण की ओर ईख के खेत के पश्चिम-दक्षिण कोने में घास पर जाकर ठहरे और नित्य जहाँ पर खड़े होकर कुछ देर दक्षिण को मुँह कर जंगल की ओर देखा करते हैं, वहीं ठहरकर दो-चार बार पैरों को उठाकर एवं रखकर अपने आसनवाले घर में चले गये। मैंने स्वप्न में जहाँ फकीर को देखा तो ठीक वहीं पर ठाकुर नित्य जाकर खड़े होते और देखते हैं। इसी से विस्मित होकर मैंने समय पाकर पूछा-सवेरे तालाब के कोने पर आप जहाँ जाकर ठहरते हैं,

वहीं मैंने स्वप्न में एक फकीर को आसन लगाए देखा है। तो क्या स्वप्न की घटना सच्ची है?

ठाकुर ने कहा-**स्वप्न का सब विवरण साफ-साफ सुनाओ।**

मैंने स्वप्न का पूरा ब्योरा ठाकुर को सुना दिया।

ठाकुर ने कहा-**घटना सच्ची है; तुमने फकीर की ठीक हालत ही देखी है। ये ही काले साँप की देह का आश्रय करके मेरे साधन कुटीर में आसन के नीचे आकर रहते हैं और तालाब के दक्षिण-पूर्व कोने में जिन्हें देखा है उनमें से एक साँप हो गया है- उसका रंग दूध की तरह सफेद हैं, आँखें लाल, बहुत ही चमकीली; वह कभी-कभी आम के वृक्ष के नीचे आ जाता है; ध्यान रहे तो देख सकोगे।**

स्वप्न का विवरण सुन लेने पर फिर ठाकुर को एक दिन भी उस स्थान पर जाकर ठहरते और पैर उठाते-रखते नहीं देखा। पता नहीं, इसमें कौन सा भेद है। स्वप्न का विवरण सुनकर ठाकुर ने कहा कि इसको अपनी डायरी में लिख लो। किसी समय गेण्डारिया आश्रम में मुसलमान फकीरों की एकान्त भजन भूमि थी। बहुत से सिद्ध फकीरों की कब्रें इस आश्रम में और आश्रम से सटे हुए सतीशचन्द्र गुह के घर में है। घर के पूर्व ओर बड़े से आम के पेड़ के नीचे एक मुसलमान महात्मा की कब्र है। दया करके कभी-कभी मनोहरा दीदी (सतीश बाबू की माता) को दर्शन देते हैं। फकीर की तृप्ति के लिए अथवा आदर करने के लिए प्रतिदिन शाम को उस पेड़ के नीचे धूप जलाई जाती तथा दीपक रखा जाता है।

गुरुभाईयों के प्रति अश्रद्धा; ठाकुर का उपदेश।

१९ माघ। आश्रम के गुरुभाईयों का लड़ाई-झगड़ा और बहिर्मुख भाव देखकर मैं मन ही मन गर्व करने लगा-सोचने लगा, जिन्हें घर में रहकर विविध उद्वेगों और अशान्ति का सामना करना पड़ता है, वे ही आराम से रहने के लिए यहाँ आकर पड़े हुए हैं। इनका यहाँ रहने का उद्देश्य सचमुच साधन-भजन अथवा ठाकुर का संग प्राप्त करना नहीं है; इसी से मामूली स्वार्थ की बातों में उलझकर ये लोग लड़ते-झगड़ते रहते हैं। इनका सारा समय इसी में बीत जाता है। ठाकुर के आकर्षण और धर्म को प्राप्त करने की आकांक्षा से एक मैं ही यहाँ रहता हूँ। अन्यान्य गुरुभाईयों की अपेक्षा ठाकुर की आज्ञा का पालन मैं ही अधिक करता हूँ। ठाकुर के साथ भी मैं ही अधिक रहता हूँ। इन कारणों से और लोगों की अपेक्षा मैं अधिक प्रिय पात्र हुआ हूँ कि नहीं, इसको जानने के लिए मैंने चतुराई से एक दिन ठाकुर से पूछा-'सद्गुरु का आश्रय प्राप्त करके कोई तो नियम-निष्ठा मानकर चलता है और कोई उलटे मार्ग पर जाता है। किसी को सामान्य दोष के लिए कठोर शासन होता है और किसी-किसी के भारी से भारी अपराध की भी उपेक्षा की जाती है। ऐसा क्यों?'

ठाकुर ने कहा-**मनुष्य की प्रकृति देखकर, अवस्था का खयाल करके उसे चलने दिया जाता है और चलाना पड़ता है। सबके लिए एक सी ही व्यवस्था नहीं है। बालक, वृद्ध, युवक तीनों को एक ही घर में बुखार आ जाय तो उनको स्वस्थ करने के लिए सिर्फ कुनैन देने से हमेशा काम नहीं होता। किसी को कुनैन से लाभ हो भी जाता है, और किसी का कुनैन से मर जाना भी सम्भव है। रोग के एक होने पर भी, रोग के कारण और रोगी के शरीर की हालत, वगैरह जाँच-पड़ताल करके दवा और**

पथ्य की व्यवस्था करने के लिये, प्रत्येक रोगी की पृथक् चिकित्सा करने की आवश्यकता हो सकती है। जिसका जो है, वह उसी को लेकर रहेगा, दूसरे को किससे क्या होता है, यह देखने की क्या आवश्यकता है? और देखने से ही समझोगे क्या? 'सब मेरी तरह चलें, अन्यथा किसी के हाथ कुछ न लगेगा', यह समझना अत्यन्त भूल होगी।

मैंने पूछा-'सद्गुरू से केवल दीक्षा ले लेने से ही क्या सभी को एक सी अवस्था प्राप्त हो जायगी?'

ठाकुर ने उत्तर दिया-**हाँ, ऐसा तो होगा ही; किसी एक स्टेशन का टिकट कटाकर दस मुसाफिर रेल में बैठ जायें, फिर चाहे सोते रहे, चाहे जागते, लड़ाई-झगड़ा करते रहें, चाहे ताश पासा खेलते हुए जायें, सभी को एक ही स्थान पर जाकर पहुँचना होगा।**

मैंने फिर पूछा-'तब फिर आज्ञा का और नियम आदि का पालन करने से क्या लाभ?'

ठाकुर-**लाभ बहुत हैं। जायेंगे तो सभी एक जगह, किन्तु कोई जायगा पालकी में बैठक और कोई जायगा पालकी को कन्धे पर उठाये हुए। बस, राह में पार्थक्य इतना ही है।**

ठाकुर के प्रथम दोनों प्रश्नोत्तरों से मैं मन में कुछ दुःखी हो गया था, अब मन में उमंग आ गया फिर ठाकुर के मुख से कहीं दूसरा कुछ न निकल पड़े, इस डर से मैंने कुछ नहीं पूछा। मैं धीरे-धीरे आसन लपेटकर उठ आया।

अभिमान से दुर्दशा; ठाकुर का अनुशासन।

२० से २७ माघ। माघ के बीचों बीच मेरी राशि को विषम कुग्रह ने दबा लिया। उसी समय से गुरुभाईयों के प्रति अवहेलना का भाव आने लगा और उनके कामों पर प्रतिदिन दोष-दृष्टि पड़ने लगी। साथ-साथ अपनी दशा का विचार करके मैं बहुत फूलने लगा। नीलकण्ठ वेश, माला, तिलक, एक बार का भोजन, पैर के अंगूठे पर दृष्टि, नित्य होम, पाठ और ठाकुर के समीप अधिक समय तक निवास इत्यादि बाहरी कामों पर मेरी नजर आवश्यकता से अधिक पड़ गई। मैं दिन भर नाम करके जिस अपूर्व आनन्द पाता था, वह इस समय धीरे-धीरे अनजाने बिल्कुल लुप्त हो गया। भोजन करने के पश्चात् मैं रात को मात्र ग्यारह-बारह बजे तक सोता हूँ, इस समय के भीतर भी दो-एक दिन के अन्तर से स्वप्नदोष होने लगा। नाम में अरुचि और मन के चिड़चिड़ेपन के साथ शरीर में भी तरह-तरह की उपाधियाँ हो गई। हाथ, भुजा और मस्तक आदि जिस स्थानों में रूद्राक्ष को कसकर धारण करता हूँ, उन स्थानों में जलन होने लगी। धीरे-धीरे इन जलन के बढ़ने से बालतोड़ फोड़े की सी यन्त्रणा सदा होने लगी और उन स्थानों में फफोले जैसी खाल उखड़ने लगी। माथा आग की तरह गरम हो गया। भीतर की अशान्ति और शरीर का क्लेश असह्य हो जाने पर मैंने ठाकुर के पास जाकर कहा, 'कई दिन से मुझे सप्ताह में तीन-चार बार स्वप्नदोष हो जाता है मन में चिड़चिड़ापन बना रहता है, दिन-रात शरीर में बड़ी जलन रहती है। मेरी ऐसी दुर्दशा क्यों हुई?'

ठाकुर ने कहा-**दुर्दशा हुई ही क्या है? अभी से सावधानी न करोगे तो और भी न जाने कितनी दुर्दशा होगी। धर्म कुछ खेल तमाशे की चीज नहीं है। सभी के पैरों के नीचे से होकर धर्म का**

मार्ग है। मनुष्य, पशु, पक्षी, सबके पैरों के नीचे होकर धर्म की सीढ़ी पर चढ़ना पड़ता है। ऊँचा सिर करने से कभी धर्म प्राप्त नहीं होता। अभिमान बड़ी बुरी चीज है। जटा, माला और तिलक आदि धर्म की वेश-भूषा के धारण करने से यदि जरा भी प्रतिष्ठा का भाव मन में आ जाये तो उसी क्षण उसका त्याग कर देना चाहिए। नहीं तो यही साँप बनकर डस लेता है। सदा इन सबका विचार रखकर चलना चाहिए। जो वस्तु भगवान् के उद्देश्य से धारण नहीं की जाती और जिसके धारण करने से केवल प्रतिष्ठा का लोभ ही बढ़ता है उसे, वह कुछ भी क्यों न हो, काकविष्ठा की तरह त्याग दे। और जिसे उनके उद्देश्य से रखे, सारे ब्रह्माण्ड का ध्वंस हो जाने पर भी, उस ओर ध्यान न दें। इन कामों को बडी सावधानी से करना चाहिए। धर्माभिमान बड़ा भयानक होता है। इतना अनिष्ट और किसी काम से नहीं होता। शराबी, दुश्चरित्र, दुराचारी व्यक्ति अपनी दुरवस्था को जितना समझकर अपने को बिल्कुल तुच्छ, जघन्य मानने लगता है, तो वह किसी अच्छे कार्य करने वाले, सच्चरित्र, धर्माभिमानी से भी कई गुना श्रेष्ठ है। अन्यान्य अपराधों का तो पार पाया जा सकता है, किन्तु धर्माभिमानी का बेडा सहज ही पार नहीं होता। अभिमान हो जाय, प्रतिष्ठा का भाव मन में आ जाय तो उसे बुरी बीमारी समझकर उसी पल छोड़ दो। जब तक शरीर और मन शीतल न होगा, तब तक रूद्राक्ष धारण सहन नहीं हो सकता गरमी करेगा। अब जाकर रूद्राक्षमाला उतारकर रख दो, केवल तुलसी की माला धारण करो।

भोजन में भी किसी प्रकार का अनियम या गड़बड़ हो जाने

पर स्वप्नदोष से रक्षा नहीं पाई जा सकती। अशुद्ध भोजन एक बार पेट में पहुँचकर रक्त के रूप में परिणत हो जाता है तो धीरे-धीरे शरीर भर के रक्त को दूषित कर देता है। वैसा रक्त जब तक देह में रहता है, नाना प्रकार के विकारों को उत्पन्न किया करता है। जब तक वह समाप्त नहीं हो जाता, विविध उत्पातों को सहन करना पड़ता है। एक-एक प्रकार के रस से एक-एक प्रकार का विकार उत्पन्न होता है। इसका त्याग किये बिना शरीर सहज निर्मल नहीं होता। और शरीर के विकार शून्य हुए बिना साधन भजन भी नहीं होता। विशुद्ध सात्त्विक भोजन से ही शरीर शुद्ध रहता है। पहले शरीर को ठीक कर लो। शरीर से ही सब कुछ है। शरीर ठीक न होगा तो किससे, क्या करोगे?

ठाकुर के अनुशासन वाक्य सुनकर मैं अपने आसन पर चला आया। मैंने रूद्राक्ष की मालाएँ उतारकर रख दी। भोजन की पवित्रता और मात्रा को ठीक रखने के लिए, ठाकुर का प्रसाद मिलाकर 'भाते सिद्ध भात' खाने लगा।

प्रसाद का गुण और उस पर विश्वास।

२८ माघ बुधवार। गेण्डारिया निवासी हमारे श्रद्धेय गुरुभ्राता श्यामाचरण बक्शी, प्रतिदिन शाम से कुछ पहले ही आश्रम आ जाते हैं; थोड़ी देर तक ठाकुर के पास चुपचाप बैठकर घर जाते समय मेरे पास से प्रसाद ले जाते हैं। ब्राह्मसमाज के होने पर भी प्रसाद पर बख्शी दादा की अचल भक्ति है। प्रसाद (भात) के दो-तीन दाने ही उनको गिनकर दिया करता हूँ; अधिक देने लगता हूँ तो वे लेते ही नहीं। हाथ

में प्रसाद के मिलते ही वे थर थर काँपने लगते हैं। अफीमची की तरह उनकी आँखें बन्द होने लगती हैं। पल भर भी न ठहरकर शीघ्र घर चले जाते हैं। समय के अनुसार अपने आसन पर बैठकर उस प्रसाद को मुँह में डालकर वे बिल्कुल अचेत हो जाते हैं और तीन-चार घण्टे तक समाधिस्थ रहते हैं। मेरे जिद करने पर कभी दो-एक ग्रास प्रसाद पा लेते हैं तो दो-तीन दिन तक उनको शौचादि भी नहीं होती। उस समय वे शराबी की तरह दिन रात ऊँघते से रहते हैं। आज उन्होंने बातों ही बातों में कहा-प्रसाद पाते ही ऐसा नशा चढ़ जाता है कि दूसरी ओर मन को लगाने की शक्ति ही नहीं रहती। प्रसाद में ऐसी शक्ति है कि मन को नाम में निविष्ट कर देती है; शरीर भी अवसन्न हो जाता है। बक्शी दादा की दशा देख, सुनकर विस्मित हो जाता हूँ। सोचा कि इस प्रसाद को तो मैं प्रतिदिन प्रत्येक ग्रास में खाता हूँ मुझे ऐसा क्यों नहीं होता?

कुछ समय हुआ, रूद्राक्षमाला पहनना छोड़ दिया है; इससे मन में उत्साह बिल्कुल नहीं रह गया है, शरीर भी पहले जैसा नहीं है, निस्तेज हो गया है। किन्तु किसी भी प्रकार उलटे-सीधे स्वप्नों का दिखना बन्द नहीं हो रहा है। सब प्रकार के नियमों को मानकर चलने पर भी जब कुछ लाभ नहीं हुआ तब दादा की बात याद आई। सोचा कि मुँह में प्रसाद रखकर सोया करूँगा। जागते में तो शरीर यों ही अस्थिर और मन चंचल बना रहता है, इसलिए प्रसाद के असाधारण गुण का अनुभव नहीं हो पाता। परन्तु सोते समय तो देह और मन दोनों ही स्थिर रहते हैं, अतएव यदि भोजन या संग के किसी दोष से निद्रितावस्था में अकस्मात् विकार की सम्भावना होगी तो मुँह में महाप्रसाद रहने पर उसके प्रभाव से, अवश्य ही

विकार शान्त हो जायगा। यह निश्चय करके आज मुँह में प्रसाद का ग्रास रखकर सो गया। रात को स्वप्न देखा 'ठाकुर हमारे घर आये हैं। उनको देखकर सब लोग आनन्द मनाने लगे। अनेक प्रकार की सामग्रियों लाकर ठाकुर के लिए रसोई बनाई गई। ठाकुर ने बड़े संतोषपूर्वक भोजन किया। अन्यान्य दिनों की तरह भोजन का पात्र हाथ में लेकर मैं सबको प्रसाद बाँटने लगा। मेरी एक घनिष्ठ आत्मीया, १५-१६ वर्ष की युवती, प्रसाद पाने के लिए आई। मेरे हाथ को बायें हाथ से जोर से दबाये रहकर दूसरे हाथ से प्रसाद उठाकर खाने लगी। मैं उसके हाथ को बायें हाथ से जोर से दबाये रहकर दूसरे हाथ से प्रसाद उठाकर झटपट खाने लगा। तब उस युवती ने अपना हाथ छुड़ाने की चेष्टा की। उसी समय मेरी नींद टूट गई। देखा कि स्वप्नदोष हो गया। मुख में रखे हुए उस प्रसाद को बड़ी व्यस्तता से चबाकर खा रहा था। बाकी रात रो-रोकर बिताई, सोचा-'हाय, यह क्या हो गया? जिसे बहुत दिनों से भूल गया हूँ, महाप्रसाद के गुण ने आज सोते में उसी की याद ताजा करके मेरा यह सत्यानाश कर दिया। तो क्या प्रसुप्त दोषों को पुनर्जीवित करना ही महाप्रसाद का गुण है? यह अन्धभक्तों की कल्पना का ही एक परिणाम मात्र जान पड़ता है।'

दोपहर को महाभारत का पाठ करने के उपरान्त समय पाकर मैंने ठाकुर से कहा-'स्वप्नदोष से रोकने के लिए मैंने सोते समय मुँह में प्रसाद रख लिया था। सो जाने पर स्वप्न में एक स्त्री से छीना-झपटी करके प्रसाद खाने से स्वप्नदोष हो गया। मुँह में प्रसाद को चबाता हुआ मैं जाग पड़ा। उस स्त्री को तो मैं एक प्रकार से भूल ही गया था, तो इस पर ऐसा क्यों हुआ?'

ठाकुर ने कहा-**ऐसा कहने से कैसे चलेगा? प्रकृति में जो दोष छुपे हैं वे सबके सब प्रकट होकर बाहर निकलेंगे। उसके प्रति तुमको बहुत दिनों से आसक्ति थी। उसके प्रति जब कल्पना में किसी प्रकार कामभाव को न आने दोगे, तभी समझना कि तुम्हारी यह प्रवृत्ति नष्ट हुई है। आठों प्रकार के मैथुन का त्याग करना होगा। स्त्रियों के स्पर्श से जिस प्रकार उत्तेजना हुआ करती है, उसी प्रकार उनको देखने, स्मरण करने और उनके बातचीत आदि करने से भी होती है। अतएव वीर्यरक्षा करने के लिए इनमें से एक की भी अवहेलना नहीं होनी चाहिए। किसी विषय की चेष्टा करने के लिए भीष्म की भाँति प्रतिज्ञा करके लग जाना पड़ता है। ऐसा किये बिना कुछ नहीं होता। नीचे माथा झुकाये रहकर, कनखियों से इधर-उधर ताकने से व्रत की रक्षा नहीं होती। ऐसा करने से तो चोर जैसा कपट-व्यवहार करना होता है। किसी प्रकार की असत् कल्पना मन में आ जाय तो जोर-जोर से गान करो या पाठ करो।**

मैं जिस पात्र में भोजन बनाता हूँ उसी में खा लेता हूँ। अक्सर केले का पत्ता न मिलने से बड़ी असुविधा होती है। आज एक गुरुभाई ने एनामेल की एक रकाबी लाकर मुझे दी और कहा-तुम इसमें भोजन किया करो, माँजने में भी मेहनत न होगी। मैं उसको लेकर ठाकुर के पास गया और उनको दिखलाकर पूछा, 'क्या मैं इस पात्र में भोजन कर सकता हूँ?

देखकर ठाकुर ने कहा-**राम! राम! इसमें भी कहीं भोजन किया जाता है? इन चीजों को तो छूना भी न चाहिए। इसमें कुछ दिनों तक मैं चाय पिया करता था। मैं अब फिर अपनी नरियरी**

से ही चाय पिया करता हूँ। यह पात्र शुद्ध नहीं है।

जिन्होंने मुझे वह रकाबी दी थी, उन्हीं को मैंने ले जाकर लौटा दी।

आये बिना ही न

आश्रम के दक्षिण ओर आंगन में स्थान स्थान पर 1 जा

गेण्डारिया के सिद्ध फकीरों का अजीब हाल।

३ फागुन रविवार। माघ महीना बीत गया, किन्तु गेण्डारिया से ठण्ड दूर नहीं हो रही है। रात को घण्टे दो घण्टे आसन पर बैठने से ही ठण्ड के मारे देह सुन्न हो जाती है; धूनी जलाये बिना निर्वाह नहीं होता। धूनी में जलाने के लिए मैं रोज लकड़ियाँ इकट्ठी कर लाता हूँ। फागुन लगने पर एक दिन धूनी जलाने के लिए मेरे पास लकड़ियाँ न थी; नींद खुली तो सोचा कि बाहर जाकर धूनी के लिए लकड़ियाँ बटोर लाऊँ। ज्यों ही मैं आसन से उठा, ठाकुर ने पूर्व वाले घर के आसन से आवाज देकर कहा-**अरे बाहर मत जाना, जरा ठहर जाओ; बाघ पर सवार होकर फकीर साहब आये है। अभी चले जायेंगे।**

ठाकुर की बात सुनकर मैं तुरन्त आसन पर बैठ गया। सोचा, 'मनुष्य क्या कभी बाघ पर सवार होकर होकर चल सकता है? कहीं फकीर साहब मुझे देखकर, आश्रम में आये बिना ही न लौट जायें, इसीलिए जान पड़ता है कि ठाकुर ने बाघ की बात कहकर मुझे इस समय बाहर नहीं निकलने दिया है।'

सवेरे उठकर देखा कि आम वृक्ष के नीचे और आश्रम के दक्षिण ओर आंगन में स्थान-स्थान पर बाघ के पंजों के साफ चिह्न बने हुए

हैं। अवसर पाकर मैंने ठाकुर से पूछा ‘फकीर साहब बाघ पर क्यों थे?’

ठाकुर ने कहा-**बहुत से फकीर तान्त्रिक साधन की किसी प्रणाली का अवलम्बन का साधन भजन करते हैं। ये लोग शक्ति के उपासक होते हैं। साँप और बाघ को साथ रखने की आवश्यकता होती है।**

मैंने पूछा-‘फकीर साहब रात को क्यों आते हैं?

ठाकुर ने कहा-**भेंट करने।**

मैंने कहा-‘आप तो आसन छोड़कर उठते नहीं हैं। भेंट किस तरह होती है?’

ठाकुर ने उत्तर दिया-**हो जाती है।**

मैंने फिर पूछा-‘हम लोग रात को बाहर रहें तो क्या इन फकीरों को देख सकते हैं?’

ठाकुर ने कहा-**वे दया करके दर्शन देना चाहें, तो देख सकते हो।**

आज महाभारत का पाठ करने के पश्चात् ढाई बजे, एक लम्बे से बूढे फकीर आम के वृक्ष के नीचे आये। जैसे ही वे आये, ठाकुर ने बड़ी आवभगत से उन्हें बैठाया। फकीर साहब को देखने से ऐसा जान पड़ा कि उनकी उम्र अस्सी वर्ष के लगभग रही होगी; किन्तु उनकी बात-चीत से यह अनुमान हुआ कि वे अस्सी वर्ष से भी काफी पुराने हैं। तीस वर्ष से भी अधिक समय हुआ कि वे बस्ती छोड़कर गेण्डारिया के घने जंगल में साधन-भजन किया करते हैं। धर्म के सम्बन्ध में उन्होंने ठाकुर से बीच बीच में सांकेतिक भाषा में जो बात-चीत की उसको मैं नहीं समझ पाया। बातों ही बातों में

फकीर साहब ने कहा-'मैंने बहुत समय तक जहाज पर नौकरी की थी। नये-नये देशों का आविष्कार करना ही हम लोगों का काम था। एक बार हिन्द महासागर के दक्षिण समुद्र में जाते-जाते हमलोगों ने दूरबीन से एक देश को देखा। वह बहुत बड़ा जान पड़ा। हम लोग उसी ओर को अपना जहाज चलाने लगे। अकस्मात् एक दिन दूर से एक जहाज ने हम लोगों को देखकर सीटी बजाकर इशारा किया कि अब आगे मत बढो। फिर उस जहाज के साथ ही हम लोग और कुछ दूर दक्षिण की ओर बढ़े, तो देखा कि बड़ी दूर तक फैला हुआ भारी भँवर बड़ी तेजी से, सायँ सायँ करके, एक केन्द्र स्थान में जाकर गिर रहा है। उस धारा में जहाज एक बार जा पड़े तो फिर किसी तरह उसका बचाव नहीं हो सकता। उस जहाजवालों से मालूम हुआ कि उस धारा में पड़कर कई जहाज डूब गये हैं। जान पड़ता है, समुद्र के भीतर ऐसी कोई चीज है, जो जहाज को खींच कर डुबा देती है अथवा पानी में ही ऐसी कोई विशेषता है कि उसमें कोई चीज तैर नहीं सकती। उस भँवर के केन्द्र स्थान में सोने के से रंग का बहुत ही चमकीली एक बड़ी सी लौ की तरह न जाने क्या दिखाई देती है और फिर डूब जाती है। दूरबीन से भी हम लोग जाँच नहीं कर पाये कि वह क्या था। भँवर की सीमा को लाँघकर उस देश में पहुँचने का कोई भी उपाय हम लोगों को नहीं सूझा।'

मैंने पूछा-'रामायण में जो लंका का वर्णन है, वह देश वही लंका तो नहीं है?'

ठाकुर ने कहा-**हो सकता है। आजकल जिसे लंका कहते हैं वह सीलोन है, यह लंका नहीं है। समुद्री मार्ग से जहाज आदि के द्वारा लंका पहुँचना असम्भव है। आकाशमार्ग से भी यहाँ सहज**

ही पहुँच नहीं सकते। सुना है कि पानी खींच लेता है। लंका के चारों ओर भँवरों का विवरण भी पाया जाता है। लंका बहुत दूर है।

फकीर साहब ने कहा-'हम लोग एक बार उत्तर महासागर में गये थे, वहाँ भी हम लोगों ने उत्तर की ओर जाते-जाते बहुत बड़ा एक देश देखा था। बर्फ को काटकर हमारा जहाज दूर तक नहीं जा सका। अपने बड़े साहब के साथ खाने के लिए कुछ साथ लेकर एक तेज चलनेवाली यांत्रिक गाड़ी पर उस देश की ओर बर्फ पर हम लोग चले। अन्त में हम उस देश के दक्षिण छोर पर पहुँचे। देखा कि वहाँ भी मनुष्य हैं उनकी शकल-सूरत हमीं लोगों सी है, किन्तु मुँह घोड़े का सा है। वे बहुत अच्छा गाते हैं। स्वर भी बहुत मीठा है। व्यवहार से पता चला कि वे बड़े दयालु होते हैं।

ठाकुर ने कहा-**उस देश को किम्पुरुषवर्ष कहते हैं। यहाँ हयमुख नर रहते हैं। पुराण आदि में ऐसा ही लिखा है। वे लोग असभ्य नहीं, बड़े सज्जन हैं।**

रमना के बूढ़े-शिव की कृपा। ठाकुर के पूर्वजन्म की स्मृति।

६ फाल्गुन रविवार। ढाका शहर के उत्तर में, पुराने रमना के अधिकांश स्थान में बीहड़ जंगल है। इस भयंकर जंगल में दोपहर को भी अकेले जाने की किसी की हिम्मत नहीं होती। इस जंगल के भीतर जगह-जगह पर बहुत पुराने जमाने के मकानों के खंडहर देखे जाते हैं। हम लोग ठाकुर के साथ उसी जंगल में घुसकर एक मंदिर में पहुँचे। मंदिर में दो-तीन नानकशाही साधु मिले। सुना कि कोई

चार सौ वर्ष पहले जब गुरुनानक ढाका आये थे, तभी से उनका यह पदचिह्न है। साधु लोग इस निर्जन जंगल में रहकर इस पदचिह्न की सेवा-पूजा किया करते थे। उन्होंने हम लोगों को स्वागत करके बैठाया और कड़ाह-प्रसाद दिया।

ठाकुर वहाँ से चलकर, रास्ते से कुछ हटकर, जंगल के भीतर बूढ़े-शिव के मंदिर में हम लोग को ले गये। शिवजी को साष्टांग प्रणाम करके मंदिर के सामने बहुत ही प्राचीन बरगद के नीचे बैठते ही ठाकुर समाधिस्थ हो गये। सभी गुरुभाई स्थिर होकर बैठे-बैठे भगवत् नाम करने लगे। इस समय एकाएक दो-तीन सेकेण्डों में एक अलौकिक घटना हो गई। भगवान् महेश्वर की अपार कृपा का अद्भुत निदर्शन स्पष्ट देखकर बहुत लोग बिल्कुल ही मुग्ध हो गये। कोई 'यह क्या हुआ' कहकर ऊपर की ओर चंचल दृष्टि से देखने लगे। हम लोग इस घटना का स्मरण करके, सोचते-सोचते, दिन डूबते ही गेण्डारिया-आश्रम में लौट आये।

प्रश्न किया-'जहाँ कभी गये ही नहीं, या कभी देखा भी नहीं, ऐसे किसी-किसी स्थान में जाने पर जान पड़ता है कि मानो इसे पहले कभी देखा है। ऐसा क्यों होता है?'

उत्तर-**पूर्व जन्म में जिन स्थानों से विशेष सम्बन्ध रहता है, वहाँ पहुँचने पर किसी-किसी को पूर्वपरिचित जान पड़ता है।**

यह कहकर ठाकुर अपने पूर्वजन्म की स्मृति का हाल बतलाने लगे-**मैं जब गयाजी में था, तब एक दिन टहलता-टहलता, फल्गु के उस पार रामगया में जा निकला। वहाँ एक मंदिर में नृसिंहदेव के दर्शन करने पर तुरन्त ऐसा जान पड़ा कि मानो पहले कभी मैंने इस मूर्ति को देखा है। इसके बाद धीरे-धीरे मुझे सब बातें**

याद आने लगीं। वहाँ, फल्गु के उस पार, पुराने बँधे हुए घाट पर एक पीपल का पेड़ है। उस पेड़ के पश्चिम ओर की एक डाल में छुरी से खोदकर 'ॐ रामः' बड़े-बड़े अक्षरों में लिख रखा था। उसकी भी मुझे याद आई। मैं शीघ्र उठकर उस पेड़ के पास गया तो उस डाल में मेरी यह लिखावट मिल गई। हाँ, डाल के बढ़ते रहने से अक्षर अवश्य दूर-दूर फैल गये हैं। फिर रामगया के जिस स्थान में रहकर मैंने साधन-भजन किया था और उस समय मेरे साथ जो दो परमहंस थे, उन सबका मुझे स्मरण हो आया। धीरे-धीरे और भी बहुत सी बातें याद आ गई। पहाड़ पर सब जगह घूम फिरकर उन सब स्थानों और चिह्नों को देखने से मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। पूर्वजन्म की सब बातों की उस दिन, उसी समय याद आ गई।

बहुत से तीर्थों की यात्रा और अनेक स्थानों की सैर करते-करते, कोई पूर्व जन्म के साधन-भजन का या विशेष सम्बन्ध का स्थान मिल जाता है तो अकस्मात् उसका पूर्वभाव या उसकी स्मृति पल भर में उदित हो सकती है। बहुत साधन भजन करके भी ऐसी स्मृति सहज ही नहीं आती। यह नहीं कहा जा सकता कि किस स्थान और किस विग्रह के साथ, किसके जीवन का कौन सा सम्बन्ध है। सारे संयोग होने पर किसी-किसी के लिए वह प्रकट हो जाता है। यह कोई जरुरी नहीं कि सबके लिए वह हो ही।

प्रश्न-'किसी मैले गन्दे स्थान में पहुँचने पर कई बार मन प्रफुल्लित होता देखा जाता है, चित्त मानो अपने आप केन्द्रित हो जाता है। और साफ सुथरे बागीचे वाले बढ़िया घर में जाने पर भी

मन उचाट सा हो जाता है। इसका क्या कारण है?’

उत्तर-**विशेष भाव से, जहाँ-जहाँ पर, जिस कार्य का अनुष्ठान होता रहता है उन सबका एक भाव उन स्थानों में पुंजीभूत रहता है। यहाँ पहुँचने पर वे सभी भाव चित्त को स्पर्श करते हैं। चित्त जितना निर्मल रहता है, उतना ही उन भावों का अनुभव होता है, नहीं तो नहीं होता। भजन-साधन, तपस्या, देव-देवी का अधिष्ठान, महापुरुषों का निवास या परलोकगत पुण्यात्माओं का वास जिन स्थानों में होता है, वहाँ हजार वर्ष बाद जाने पर भी ये सभी भाव चित्त को अभिभूत करते है। इसी प्रकार जिन स्थानों में विषम अत्याचार, अनाचार और दुष्कर्म आदि होते रहते हैं यहाँ दीर्घकाल बाद जाने पर भी उन भावों का असर चित्त पर पड़ता है। चित्त के निर्मल होने पर ही स्थान के प्रभाव की परख शीघ्र हो सकती है।**

आज्ञा का पालन करने में असमर्थता; ठाकुर की सहानुभूति और उपदेश।

स्वभाव में जो दोष बहुत समय से हैं और जिनको बिल्कुल तुच्छ समझकर अब तक लापरवाही से यह समझा था कि ‘इन दोषों को हटाने की चेष्टा क्यों करें, ये तो मात्र इच्छा करते ही दूर हो जायेंगे’ अब उनका त्याग करने की चेष्टा करने पर देखा कि एक से भी पिण्ड नहीं छुड़ा पाता हूँ। इसकी जड़ का पता लगाने से मालूम हुआ कि इन दोषों की जड़ स्वभाव के ऐसे गहरे स्तर में जा पहुँची है, उसका अन्त ही नहीं मिलता। स्वभाव का वह राई बराबर दोष अब बहुत बड़ा पहाड़ सा लगता है। अपनी दुर्बलता को पहचानकर

हताश हो मैंने जाकर ठाकुर से कहा-'साध्यानुसार चेष्टा करके स्वभाव के एक दोष को भी नहीं छुड़ा पाया। अब क्या करूँ।'

ठाकुर ने बड़े स्नेह से सहानुभूति प्रकट करके कहा-**स्वभाव के दोष को क्या कोई इच्छा मात्र ही छोड़ सकता है? निषिद्ध से वर्जन करें और विधि का अनुष्ठान करें-इसमें निषिद्ध के वर्जन की अपेक्षा विधिविहित को करना ही सहज है। विधिविहित को करते-करते निषिद्ध विषय अपने आप धीरे-धीरे छूट जाते हैं। नियमों का पालन करते रहने की चेष्टा करो, दोष अपने आप हट जायेंगे।**

मैंने कहा-'जिन नियमों का पालन करते रहने के लिए आपने कहा है, उनका पालन ठीक-ठीक नहीं कर पाता हूँ।'

ठाकुर ने कहा-**चेष्टा करते रहो। इसकी परवाह मत करो कि पालन कर पाते हो कि नहीं कर पाते। ब्रह्मचर्य आश्रम की समस्त व्यवस्था को क्या लोग सहज कर सकते हैं? इसी से तो बारह वर्ष का समय रखा गया है। बारह वर्ष तक प्रयास से धीरे-धीरे सब ठीक हो जाता है। दो-चार बार करने पर सफलता न हो तो हाथ-पैर ढीला नहीं छोड़ना चाहिए। जब तक सफलता न मिले त तक दृढ़ता से चेष्टा करते रहना चाहिए।**

मैंने पूछा-'जिन नियमों के पालन और निषेध से बचने के लिए आपने बता दिया है उनका पालन न कर पाऊँ तो आप मुझे अपराधी तो नहीं मानेंगे?'

ठाकुर ने उत्तर दिया-**बिल्कुल नहीं। मैं तो बहुत से नियम बताऊँगा, क्या उन पर बिल्कुल ठीक-ठीक चल सकोगे? तब तो फिर सिद्ध ही हो गये। जितना बने, उतना करते रहो। चेष्टा**

करके भी न कर सको तो इसमें जरा भी अपराध न होगा। बात यह है कि जान-बूझकर कोई अनियम न हो पावे। अकस्मात् कुछ बन पड़े तो उसको अपना किया हुआ क्यों समझते हो? 'मैने किया' यह समझना ही तो अपराध है। सब कुछ भगवान् पर छोड़ देना चाहिए। वे ही तो सब कुछ करते ही सब करा लेते है-ऐसा समझने में ही शान्ति है।

मैंने कहा-'किस दोषनीय कार्य को न करने की बार-बार चेष्टा करने पर भी जब हार मानकर उसे कर बैठता हूँ तब भी तो पछतावा होता है; ऐसा लगता है कि और भी अधिक चेष्टा करता तो शायद ऐसा करने से बच जाता।'

ठाकुर ने कहा-**वास्तविक पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म की परख हमें है कहाँ? बचपन से देखते-सुनते रहने से एक भले-बुरे के संस्कार मात्र बन गये हैं। वास्तविक तत्त्व को समझना बहुत ही कठिन है। लोगों की लज्जा से और डर से हम लोग कुछ कामों को नहीं करते हैं; उनको पाप समझते हैं। किन्तु ठीक-ठीक नहीं कह सकते कि यह सचमुच पाप है या नहीं। पाप और पुण्य, सभी का अपना एक स्वरूप है, उसे देखते ही परख लेते हैं कि वह पाप है या पुण्य। जिस काम में पाप बोध हो, उसे क्या कोई पुनः कर सकेगा? अभी जिसे पाप पुण्य समझते हो, यह तो मात्र संस्कार है।**

बारोदी-निवासी जमींदार, ढाका-जगन्नाथ कॉलेज के वर्तमान प्रिंसिपल, हमारे श्रद्धास्पद गुरुभाई श्रीकुंजलाल नाग ने किसी समय अनेक बातों के सिलसिले में एक दिन ठाकुर से कहा था- 'हम लोग प्रतिदिन सैकड़ों अपराध किया करते हैं; उनके साथ एक

और बड़ा सा अपराध जोड़कर मानो आपने हम लोगों को और भी कठिनाई में डाल दिया।'

ठाकुर ने पूछा-**वह कैसे?**

उत्तर-'आपने जिन विधि-निषेधों की व्यवस्था बतलाई है उनका पालन करना बहुत ही कठिन है। हमारे अन्यान्य अपराधों के साथ, गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करने से एक और बड़ा सा अपराध संयुक्त हो गया।'

ठाकुर ने बड़े स्नेह से कहा-**तो इस सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्त स्थिर किया है?**

कुंज बाबू ने उत्तर दिया-'मैंने मन में एक समन्वय कर लिया है वह ठीक है या नहीं, यह आप ही जानते हैं।'

ठाकुर ने पूछा-**कौन सा समन्वय?**

उत्तर-'आपके विधि-निषेध देखने में तो सहज जान पड़ते हैं, किन्तु अत्यन्त कठिन हैं। यदि उनका पालन एक दिन भी कर सकें तब तो जीवन्मुक्त हो जायेंगे। आप ऐसी आशा और इच्छा नहीं करते कि एक दिन में हम उसका पालन करने में समर्थ हो जायेंगे। आपने कतिपय उच्च लक्ष्य हम लोगों के सामने रख दिये हैं। उनकी ओर देखकर सावधान और सचेष्ट होकर चलते रहने से, धीरे-धीरे हम लोग लक्ष्य के साधन में समर्थ एवं कृतार्थ हों, यही आपका अभिप्राय है। ऐसा न होता तो हमारे कल्याण के बदले अकल्याण का मार्ग ही प्रस्तुत हो जाता।'

ठाकुर ने कहा-**ठीक, ठीक, यही बात तो ठीक है।**

साधु का अनादर करने और सताने से विपत्ति।

आज अपराह्न शहर से बहुत से आदमी ठाकुर के पास आये। धर्म के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की चर्चा होने लगी।

एक सज्जन ने ठाकुर से कहा-'सुनते हैं कि भारतवर्ष में लाखों साधु-संन्यासी हैं। वे बंगाल में क्यों नहीं आते?'

ठाकुर ने कहा-**किसी जमात के महन्त से मैंने यह बात पूछी थी। उन्होने कहा कि 'बंगाल में उन लोगों का आदर सत्कार नहीं होता, ठहरने के लिए स्थान ही नहीं है। यहाँ पर ठहरने को स्थान और भोजन की सुविधा न होने से उन्हें चले जाना पड़ता है। भारतवर्ष में प्रायः सभी जगह साधुओं के ठहरने के लिए बड़ी-बड़ी धर्मशालाएँ है, सदावर्त आदि हैं, साधु जब तक चाहें, वहाँ आराम से रह सकते हैं। स्थानीय जमींदार, सेठ-साहूकार, राजा-महाराजा आदि उनके लिए सब प्रकार का आवश्यक सामान देते हैं। बंगाल में न तो ऐसे स्थान हैं और न ऐसे मनुष्य जो उनकी सेवा करें। बंगाली लोग तो गुण्डा, चोर, उचक्का समझकर उनकी अवज्ञा ही करते हैं।'**

एक व्यक्ति ने कहा-पश्चिम में तो नीची जाति के लोग भी पेट भरने के लिए भस्म रमाकर, लंगोटी लगाकर साधु बन जाते हैं। बहुत से उचक्के और बदमाश भी साधु के वेश में घूमते रहते हैं। मौका पाकर वे चोरी-डकैती भी किया करते हैं। अच्छे साधु थोड़ा सा परिचय देने से ही तो, अपने लिए व्यवस्था करवा सकते हैं।

उत्तर-**परिचय लेना जानो तब परिचय भी देते हैं। कई लोग तो साधओं की की परख करने में विपत्ति में भी पड़ जाते हैं।**

अब ठाकुर ने कुछ समय पहले का एक घटना का उल्लेख किया। यथा-**एक बार गंगासागर के मार्ग में साधुओं का एक झुण्ड**

रामपुरहाट में कई दिन ठहरा। वे लोग रास्ते के किनारे धूनी जलाये हुए दिन रात पड़े रहते थे। वहाँ के भले लोग तीसरे पहर साधु-दर्शन करने जाया करते थे। एक बंगाली वकील साहब प्रतिदिन जाकर साधुओं से दिल्लगी और व्यंग करने लगे। धीरे-धीरे वे साधुओं को सताने लगे। मोटा शरीर देखकर वे किसी साधु के पेट में छड़ी खोंचकर कहते थे। 'अरे, तुम तो हलुवा-मालपुआ के सिद्ध हो, कितना खाते हो,' किसी साधु की जटा में झटका देकर कहते थे 'इसमें कितना चोरी का माल छिपा रखा है? रात को चोरी करते हो और दिन को साधु बनकर बैठ जाते हो।' इस बंगाली बाबू को देखते ही साधु लोग सकपका जाते थे। जमात में एक सिद्ध महात्मा थे। उन्होंने महन्त से कहा-'महाराज, बंगाली बाबू रोज आकर बड़ा अपराध करता जाता है, जरा उस पर कृपा कीजिए।' महन्त ने कहा, 'बंगाली लोग साधु को नहीं मानते।' एक दिन उक्त बंगाली ने आकर महन्त से कहा, 'ए साधु, तुम तो गांजे की खूब दम लगाते हो। इसमें काफी करामात है। कुछ और भी कारामात दिखा सकते हो?' इसी समय सिद्ध महात्मा ने वकील बाबू को बुलाकर बड़े तेज के साथ कहा, 'अरे बंगाली बाबू, क्या कहते हो? साधु की और कुछ करामात देखोगे? अच्छा, बाल-बच्चा लेकर घर-गृहस्थी करते हो न? अब घर जाकर साधु की करामात देख लो।' साधु की बात सुनकर वकील साहब चौंक पड़े। उनका चेहरा उतर गया; वे घर की ओर लपके। रास्ते में उनका नौकर मिला। वह उनको बुलाने दौड़ा आ रहा था। वकील साहब पर नजर पड़ते ही उसने जोर से कहा 'बाबू, आपके बेटे को साँप ने डस लिया

है।' वकील बाबू घर पहुँचे तो लड़के को बेहोश देखकर बिल्कुल घबरा गये। ओझा, वैद्य, डाक्टर आदि को बुलवाकर सब प्रकार का उपचार कराया, किन्तु कुछ लाभ न हुआ। तब उनको स्मरण हुआ कि साधु की इच्छा से ही यह संकट उपस्थित हुआ है, इससे ये अपनी स्त्री के साथ उक्त साधु के पास आये और रो-पीटकर साधु के पैरों पर गिर पड़े। साधु ने कहा-'अब क्यों आये? साधु की करामात देखो न! अच्छा, अब तीन दिन याद आना।' साधु की बात से आश्वस्त होकर वकील बाबू ने लड़के को उठाकर एक कमरे में रख दिया। उसका शरीर फूल गया। तीन दिन बाद उन्होंने साधु के चरणों में गिरकर दवा माँगी, तब साधु ने धूनी में से थोड़ी सी भस्म उठाकर दी और कहा-'अपने हाथ से सौ घड़े पानी लेकर लड़के के सिर पर डालो, फिर उसके शरीर में इस भस्म को भलीभाँति मल दो। आधे घण्टे में लड़का स्वस्थ हो जायगा।' इसके बाद उक्त महात्मा जमात को छोड़कर तुरन्त चले गये। बतलाई हुई रीति का उपयोग करने से लड़का स्वस्थ हो गया। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर वकील बाबू ने साधु को बहुत ढूँढा; किन्तु कहीं पता न लगा।

स्वप्न-कर्म का उपदेश।

१९ फाल्गुन मंगलवार। ठाकुर कुछ दिनों से मुझसे कह रहे हैं कि आश्रम में रहनेवालों की सेवा करो और बाहरी काम काज कर दिया करो। सवेरे से लेकर शाम तक अपना नियमित कार्य करते रहने से मुझे प्रायः अवसर नहीं मिलता, समय-समय पर नाम करने से जी ऊब जाने पर भी, कोई बाहरी काम-काज अथवा किसी की सेवा

करने की मुझे प्रवृत्ति ही नहीं होती। मैं उस समय एक आध प्रश्न करके ठाकुर से ही बातें किया करता हूँ। रात को सपने में देखा, एक महात्मा ने आकर मुझसे कहा, 'गुरु ने जैसा बतलाया है वैसा ही करते जाओ, उसमें कभी आलस्य मत करो। काम-काज को छोड़ना न चाहिए। जब तक विशुद्ध सत्त्वगुण की प्राप्ति न हो तब तक कर्म करते रहना चाहिए; जब तक रजोगुण और तमोगुण है तब तक कर्म से निस्तार नहीं। आलस्य से अभी कर्म न करोगे तो बाद में भोगना पड़ेगा। विहितकर्म करते-करते रजोगुण और तमोगुण नष्ट हो जाते हैं।' स्वप्न का हाल ठाकुर को सुनाया तो उन्होंने कहा-**समय न कटे या नाम का जप करने में चित्त ऊब जाय, तो चुप नहीं रहना चाहिए; बाहरी काम-काज करने लगना चाहिए। उस समय जबर्दस्ती नाम करने से नाम में और भी शुष्कता आ जाती है। इससे अनिष्ट होता है।**

मैंने कहा-'मुझे तो ऐसा लगता है कि बाहरी काम-काज करने की अपेक्षा, उस समय जबर्दस्ती नाम करने या पाठ करने में ही अधिक लाभ है।'

ठाकुर ने कहा-**ऐसा कुछ नहीं है। मैं तो बाहरी काम-काज और नाम के जप को एक सा समझता हूँ। सभी तो कर्म है। लक्ष्य को स्थिर रखने में ही सब कुछ है। बात केवल कर्म करने को लेकर के ही है। किसे किस कर्म से किस वस्तु की प्राप्ति होती है, यह कौन बतला सकता है? लक्ष्य को स्थिर रखकर चाहे कथरी सिलो, चाहे नाम करो, एक ही बात है। जीवन की गति किस ओर है, जब तक यह ठीक नहीं हो जाता, तब तक ऐसा ही करना पड़ता है। अब तक तुम्हारे जीवन की दिशा ठीक नहीं हुई**

है। जब यह निश्चित हो जाय। तब एक ही धारा से कर्म करना। जीवन की गति तय करने पर, जीवन में किस ओर, किस पथ में से जाना होना यह कहा नहीं जा सकता, सबका एक पथ नहीं होता। कई पथों से होकर लक्ष्य तक पहुँचना पड़ता है। बैठे मत रहो, तभी क्रमशः एक ओर जा पाओगे।

स्वप्न प्रलय का दृश्य

१५ फाल्गुन शुक्रवार। गत रात एक भयानक स्वप्न देखा। मैंने देखा- दिन डूबने को है मैं रसोई बना रहा हूँ, एकाएक घर काँपने लगा। कुछ सेकण्डों में बारबार भूकम्प आने लगा मैं बैठा रहकर स्थिर न रह सका। चारों ओर भीषण शब्द सुनकर घर से बाहर निकल आया। भयंकर घटना देखी-

अनन्त आकाशव्यापी भयंकर बवंडर, ग्रह-उपग्रहों सहित समस्त ब्रह्माण्ड को पहिये की तरह घुमाता हुआ मानो कहीं ले जा रहा है। सारा नभमंङल धूल उड़ने से, धुएँ में छिप गया है। अगणित कौवे, चील और बाज जैसे पक्षी बवंडर में पड़कर, भँवर में पड़े तिनके की तरह चक्कर खाते हुए पृथ्वी की ओर गिर रहे हैं। चट-चट शब्द से चारों ओर पत्थर गिर रहे हैं। महादुर्लक्षण देखकर मैंने एकाएक पश्चिम आकाश की ओर देखा-उस दिशा में चमकता सूर्य निकला। मैं विस्मित होकर चारों ओर देखने आकाश में सभी दिशाओं में एक-एक सूर्य दिखायी पड़ा। ऐसे दस-बारह अत्यन्त प्रखर तेजयुक्त सूर्यों का एक साथ प्रकाश और बारंबार उनका कम्पन देखकर मैं स्तम्भित रह गया। उस समय सूर्यों के साथ पृथ्वी भी भयंकर सनसनाती हुई नक्षत्रों के वेग से नीचे की ओर

जाने लगी। मैं तुरन्त ही गुरुदेव के चरणकमलों में मन लगाकर 'जय गुरु' 'जय गुरु' कहता हुआ तल्लीन हो गया। थोड़ी देर में सब दिशाये शांत हो गयी और मेरी नींद खुल गयी।

स्वप्न का वर्णन सुनकर ठाकुर ने कहा-**तुमने भविष्य के प्रलय का दृश्य देखा है। प्रलय कई तरह के होते हैं, तुमने सौर जगत का ही प्रलय देखा है, सम्भवतः ऐसा ही शीघ्र होने वाला है।**

स्वप्न-ठाकुर की शरीर त्यागने की तैयारी।

१९ फाल्गुन मंगलवार। तीन चार दिन हुए स्वप्न में प्रलय का दृश्य देखा था। कल उससे भी भयंकर स्वप्न देखकर मन अस्थिर हो उठा। देखा-हम बहुत से आदमी ठाकुर के साथ एक ही स्थान पर हैं। ठाकुर ने उत्तर की ओर आसन पर बैठकर कहा-मेरा काम पूरा हो गया है, अब मैं देह त्याग दूँगा। फिर हम लोगों की ओर देखकर कहा-मैं वृन्दावन में अपनी कथरी छोड़ आया था, क्या कोई उसे ला सकता है? मैं तुरन्त वृन्दावन के लिए रवाना हो गया, और थोड़ी देर में कथरी ले भी आया। उस समय गुरुभाई और बहनें ठाकुर को घेरकर खड़े हो गये। मैं ठाकुर की बायीं ओर थोड़ी दूरी पर था। ठाकुर सबको स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखे, प्रत्येक को कुछ न कुछ देने लगे। मैं यद्यपि औरों की अपेक्षा ठाकुर के समीप था, फिर भी उन्होंने मुझे कुछ नहीं दिया। फिर देह त्याग के समय समाधिस्थ होकर गिरते हुए एकाएक मेरी ओर देखकर कहा 'क्यों तुम्हें कुछ नहीं दिया? अब उन्होंने अपने मस्तक के सामने से कोई वस्तु मुट्ठी में लिया और उसे उठाकर मुझे देते हुए कहा अच्छा तुम इसे लो।' हाथ में लिए वस्तु को मैंने उसको अपने माथे पर रख लिया। मैं

भावावेश में मग्न होकर नृत्य करने लगा। फिर तुरन्त ही उसे नीचे डालकर, आसन बनाकर उस पर बैठ गया और नाम जप करने लगा। इतने में नींद उड़ गयी।

स्वप्न का वृत्तान्त ठाकुर को सुनाकर मैंने पूछा-मैं तो कभी इस तरह की कल्पना तक नहीं करता, तब फिर ऐसा क्यों दिखायी दिया?

ठाकुर ने कहा-**कैसे बतलाऊँ कि क्यों देखा। ऐसे स्वप्नों को लिख लेना चाहिए। सभी स्वप्न वृत्तान्त मिथ्या नहीं होते एक स्वप्न को बीस वर्ष बाद भी सत्यरूप होते देखा जाता है।**

मैंने कहा-जिस वस्तु को एक बार माथे से लगाने से कृतार्थ हो जाता, उसे नीचे डालकर, आसन बनाकर, उस पर बैठने की प्रवृत्ति मुझे क्यों हुई?

ठाकुर ने कहा-**यह शक्ति है। भगवान का नाम लेने के लिए शक्ति के ऊपर ही तो बैठना पड़ता है।**

इसके बाद ठाकुर ने थोड़ी देर तक चुप रहकर कहा-**तुम सभी भाईयों में वैष्णव-बीज है। इस समय किसी भी भाव में क्यों न हो, अन्त में सभी में वैष्णव भाव आ जायेगा।**

ठाकुर के देह त्यागने की चिन्ता से दुःख के मारे अधीर हो जाना चाहिए था, सो तो हुआ नहीं, 'ठाकुर मुझे यह वस्तु देंगे' इसका विचार आकर उलटा गर्व होने लगा, हाय रे दशा! यही तो मेरी दशा है।

कृपणता के लिए अनुशासन; घर की वसीयत किसके नाम करोगे?

२९ फाल्गुन बृहस्पतिवार। **आश्रम के दक्षिण की ओर के कमरे में, शाम-सवेरे, बहुत से गुरुभाई आया करते हैं। यही सबका बैठकखाना है। अतएव यहाँ आसन पर स्थिरता से नहीं बैठ पाता। मैंने आज जाकर ठाकुर से कहा, 'दक्षिण ओर के घर में सदा हल्ला रहता है। वहाँ पर साधन-भजन करने में बड़ी असुविधा होती है। लोग बाग इधर-उधर से आकर गपशप किया करते हैं, और रोको तो झगड़ा होता है।'**

ठाकुर ने कहा-**वहाँ पर असुविधा होती है, तो क्या अन्यत्र नहीं जा सकते? पेड़ के नीचे इधर-उधर, आश्रम में स्थान की तो कमी है नहीं। भजन करने की ही बात है, यह तो चाहे जहाँ हो सकता है। जहाँ दस आदमी मिलजुलकर आनन्द मना रहे हों, वहाँ अपनी सुविधा के लिए उनको रोकना ठीक नहीं।**

मैंने कहा-'आश्रम के दक्षिण-पूर्व कोने में, तालाब के किनारे, आप आज्ञा दें तो एक छोटा सा घर बनवा लूँ। तब फिर किसी प्रकार की असुविधा न होगी।'

ठाकुर ने कहा-**इसके बाद? कहीं चले जाने पर उस घर की वसीयत किसके नाम से करके जाओगे?**

यह सुनकर मैं चुप हो गया। मन में बड़ा क्लेश होने लगा। मैं सोचने लगा 'ठाकुर ने यह बात क्यों कही?'

रात को ठाकुर ने मेरे सम्बन्ध में महेन्द्र बाबू से कहा-**उसके साधन-भजन से जो थोड़ा सा लाभ हो रहा है, उसको कृपणता-दोष मिट्टी में मिला दे रहा है। उसके पास सौ रुपये हैं। बड़ी कोशिश से उनको जमा कर पाया है। क्या उनको आप किसी तरह खर्च करा सकते हैं? कृपणता ही तो संकीर्णता है ना।**

धर्मार्थियों के स्वभाव में यदि एक भी दोष रह जाता है तो उससे साधन-भजन का समस्त फल चौपट हो जाता है। अभी से इस विषय में सावधान न हो, तो धीरे-धीरे घटना चक्र में पड़कर धक्के खाकर ठीक होगा।

ठाकुर ने इस समय छोटे दादा की उदारता की खूब प्रशंसा की। 'घर की वसीयत किसके नाम कर जाओगे?' ठाकुर की इस बात का मतलब अब मेरी समझ में आया। ठाकुर के मुँह से ये बातें सुनकर मेरा माथा बहुत गरम हो गया। सोचा, 'आवश्यक वस्तु न रहने पर जब तक उद्वेग, अशान्ति और क्लेश होता है, तब तक बिना प्रयत्न के द्रव्य संचित करके उस क्लेश और अशान्तिको दूर करने का उपाय करने में क्या दोष है! लगातार कमी रहने से यदि मन अशान्त बना रहे तो साधन-भजन करूँगा कैसे? द्रव्य का संचय तो साधन-भजन के सुविधा के लिए ही किया है, विलासिता के लिए नहीं। ठाकुर इतना कुछ समझते हैं, मेरे इस शुभ अभिप्राय को ही उन्होंने नहीं समझा।

मेरी संकीर्णता। ठाकुर का उपदेश और भिक्षा की व्यवस्था।

२२ फाल्गुन शुक्रवार। कल जबसे ठाकुर के मुख से अपनी संकीर्णता का हाल सुना है, मुझे बहुत ही बेचैनी हो रही है। हाहाकार करके जला जा रहा हूँ। समझ में नहीं आता कि अभाव (कमी) होने से मुझमें यह संकीर्णता है या मेरे स्वभावगत है। ठाकुर ने कहा है, 'धीरे-धीरे धक्के खाते-खाते मेरा यह दोष दूर होगा। किन्तु धक्के कुछ कम तो नहीं खा रहा हूँ! दोष कहाँ दूर होता है?

कई दिन हुए, नानी माँ ने बतलाया कि सरकारी भण्डार में घी नहीं है, तब से ठाकुर के लिए आधी छँटाक घी प्रतिदिन दिया करता था। पाँच-छ: दिन तक देने पर एक दिन मैंने सोचा, 'भला! सरकारी भण्डार में अब तो घी मँगाया ही नहीं जा रहा है, नानी माँ ने भी अच्छी सुविधा पा ली है। वे लोग जब तक घी नहीं मँगावेंगे, मुझे प्रतिदिन ठाकुर के लिए इसी प्रकार घी देना पड़ेगा! मैं तो बड़ी कठिनाई से घी प्राप्त करता हूँ। इस तरह देता रहूँगा तो मेरा एक महीने के होम के लिए संगृहीत घी, दस-बारह दिन में समाप्त हो जायगा।'

मेरे मन में ऐसा विचार और दुर्भाव आने पर उसी दिन ठाकुर ने नानी माँ को बुलाकर कहा-**मुझे भोजन में उसका घी न दीजिएगा। मुझे यह घी हजम न होगा।** ठाकुर की बात सुनकर सबने समझा होगा कि होम का घी बहुत पुराना है-खराब हो गया है। इसी से ठाकुर ने यह बात कही है। किन्तु मैंने तो ठाकुर की बात का मतलब उसी समय लिया, तब से मन ही मन जल-भुन रहा हूँ। ठाकुर ने वही तो किया है जो मैं चाहता था, फिर इसमें पछतावा कैसा? भीतर का क्लेश असह्य हो जाने पर मैंने जाकर ठाकुर से कहा 'बतलाइए, मेरी संकीर्णता किस तरह दूर होगी। अपने रुपयों को मैं दान में दे दूँगा।'

ठाकुर ने जरा हँसकर कहा-**रुपयों को अभी खर्च कर देने की आवश्यकता नहीं। अभी रहने दो। किसी सामयिक भाव अथवा उत्साह में आकर किसी काम को न करना चाहिए। कई बार उत्साह में आकर दान देकर, फिर बाद में पछतावा करके लोग नरक भोगते हैं। सभी काम स्वाभाविक अवस्था में धैर्य से करना**

चाहिए। हाँ, अबसे संचय करना छोड़ दो। दादा हर महीने जो देते हैं उसे मिलते ही खर्च कर दिया करो। जिस रास्ते पर चल रहे हो, उसमें संचय नहीं करना चाहिए।

मैंने कहा-'तो अपने काम में खर्च करूँगा या दूसरे के?'

ठाकुर ने कहा-**अब तुम्हारी निजी आवश्यकता क्या है? आज से भोजन के लिए भिक्षा माँग लाया करो। रुपया-पैसा किसी से मत माँगना। प्रतिदिन जितनी आवश्यकता हो, उससे अधिक भिक्षा मत लेना। यदि कोई अधिक दे दे तो उतना तुम और किसी को दे देना। भोजन की कोई भी वस्तु संचित करके मत रखना। अपनी आवश्यकता से अधिक रसोई भी मत बनाना। जिस दिन भिक्षा में कुछ भी न मिले, भण्डार से ले लेना। आश्रम के भण्डार की सामग्री तो भिक्षुकों के ही लिए है। इस तरह से चलने पर पूरा वैराग्य उत्पन्न हो जाय, तभी तो यथार्थ संन्यास होगा। नहीं तो अब जीवन की गति जिस ओर झुके उसी ओर जाना पड़ेगा। ब्रह्मचर्य आश्रम में ही सब अभ्यास कर लेना पड़ता है, ब्रह्मचर्य ठीक होने पर सब ठीक हुआ समझो। समस्त अभ्यास इस समय नहीं करोगे तो और कब करोगे?**

मैंने पूछा-'भिक्षा कितने घरों में माँग सकता हूँ?

ठाकुर ने कहा-**तीन घरों तक।**

मैंने पूछा-'किस किस जाति के घर भिक्षा माँगूँगा?'

ठाकुर ने कहा-**चावल तो सभी के यहाँ से ले सकते हो। श्रद्धा से मिला भिक्षा का अन्न सर्वत्र ही पवित्र है। ब्रह्मचारियों के लिए भिक्षा का ही नियम है।**

प्रथम भिक्षा ठाकुर के हाथ से, यह कैसा चमत्कार है।

यह बातें कहकर चुप हो गये। अब मैं सोचने लगा-'लोग कहते हैं कि पहले दिन की भिक्षा जिस भाव से मिलती है, उसी भाव से उस प्रकार की वस्तु जिन्दगी भर भिक्षा में मिलती रहती है। उपनयन के समय सबसे पहले माता के हाथ से भिक्षा ली जाती है। स्नेहपूर्वह उत्तम पवित्र वस्तु ठाकुर के सिवा मुझे और कौन देगा?' इसी से मैंने ठाकुर से कहा-'तो जीवन में प्रथम आपके ही हाथ से भिक्षा लूँगा।'

ठाकुर ने बड़े स्नेह से मेरी ओर देखा और मुस्कुराकर कहा- **अच्छी बात है। आज मैं ही तुम्हें भिक्षा दूँगा। कल से दूसरे घर से माँगना। अभी इसी मुहल्ले में भिक्षा माँगना।।**

सवेरे ठाकुर का उपदेश और आदेश पाकर मैं अपने आसन पर चला आया। नौ बजे के लगभग देखा कि आश्रम में बड़ी धूमधाम है। एक मालदार भक्त गुरुभाई आज ठाकुर को भोजन कराने के लिए बहुत सी सामग्री में ले आये। जिससे पुलाव, पनीर की सब्जी आदि बढ़िया वस्तुएँ ठाकुर के भोजन के लिए बनाई गई। एक बजे के लगभग ठाकुर ने भोजन किया। भोजन कर चुकने पर उन्होंने भोजन से बचा हुआ पुलाव (मीठा भात) और पनीर की सब्जी आदि अपने हाथ से एक पत्थर की कुंड़ी में रखकर, मझे बुलाकर कहा-**यह लो, आज यही तुम्हारी भिक्षा है। इसको ले जाकर रख दो, जब तुम्हारे भोजन का समय हो तब खाना।**

मैं आनन्दित होकर उसे ले आया और ढँककर रख दिया। अब

सोचने लगा-ठाकुर आपने पुलाव दिया था तो अभी गरमागरम खाने की आज्ञा क्यों नहीं दी? चार-पाँच घण्टे में तो यह ठण्डा होकर बिल्कुल पानी हो जायगा। प्रथम भिक्षा में उत्कृष्ट प्रसाद हाथ में देकर भी तृप्ति के साथ गरमागरम खाने नहीं दिया।

ठाकुर के भोजन कर चुकने पर, नियमित रूप से महाभारत का पाठ करके मैं, आसन पर स्थिर बैठा रहा। ठाकुर ने, अन्यान्य दिनों की भाँति, साढे पाँच बजे मुझसे कहा-जाओ, अब भोजन कर लो। भोजन करने के लिए बैठकर कुंडी को छूते ही मैं चौंक पड़ा। देखा, तरकारी समेत पुलाव अभी तक गरम है, मानो किसी ने अभी अभी चूल्हे पर से उतारकर रख दिया है। पत्थर की कुंडी में पुलाव पाँच घण्टे के बाद भी किस तरह ऐसा गरम बना रहा, यह सोचकर मैं बहुत ही विस्मित हुआ। देर तक उसे लेकर बैठा, रोता रहा। प्रसाद पाने में आज सन्ध्या बीत गई। प्रसाद पाने के पश्चात् रात को सो जाने पर स्वप्न देखा 'संकल्प करते ही पक्षी की तरह आकाश मार्ग से अनन्त आकाश में ऊपर की ओर उड़ा जा रहा हूँ।'

आज जीवन में पहली बार भिक्षा के लिये बाहर निकला। मनोहरा दीदी ने बड़ी श्रद्धा से चावल, चने की दाल, आलू, कच्चे केले, बैंगन, मिर्च, सेंधा नमक और घी भिक्षा में दिया। मैंने अपनी आवश्यकता भर के लिए बचाकर बाकी पक्षियों के लिए बिखेर दिया। पके हुए चावलों से होम करके योगजीवन, श्रीधर और पण्डितजी को एक-एक ग्रास दिया और फिर प्रसाद पाया। भिक्षा के अन्न से मुझे बड़ी तृप्ति हुई।

इधर कई दिनों से ठाकुर की बात की सदा याद आती है। बचे हुए रुपयों को जब तक खर्च नहीं कर डालता हूँ, बड़ी अशान्ति

बनी रहती है। श्रीवृन्दावन में रहते समय माता ठाकुरानी ने ठाकुर को एक महाभारत देने की इच्छा प्रकट की थी। अब निश्चय किया कि ठाकुर को मैं वही दूँगा। इसके लिए रुपये लाने घर जाऊँगा। ठाकुर से घर जाने की इच्छा प्रकट की तो उन्होंने कहा-**घर जाने पर भिक्षा मत करना, माँ को दुःख होगा। जब घर जाओ, तो माताजी का प्रसाद पाया करो।**

समवयस्क गुरुभाई अश्विनीकुमार मित्र के साथ घर को चला। घर पहुँचने के लिए नाव में और स्थल मार्ग पर पाँच-छः घण्टे लगते हैं। इस समय कई बार धूपबत्ती, धूप-चन्दन-गुग्गुल की स्पष्ट सुगन्ध आने से हम दोनों को आश्चर्य होने लगा। लम्बे-चौड़े मैदान में राह चलते समय ऐसी अच्छी सुगन्ध कहाँ से किस प्रकार आ रही है, कुछ भी समझ में न आया।

खाने को मांगते हैं। किसी प्रकार का अनाचार

सेवा-भक्ति से विग्रह जाग्रत होते हैं।

१० चैत्र। इस बार घर पर मेरी गर्भधारिणी माताजी ने बातचीत के सिलसिले में अपने गोपालजी का वृत्तान्त बतलाया। उसको सुनने से मुझे आश्चर्य हुआ। माताजी के पास दो सुन्दर छोटे-छोटे गोपालजी की मूर्तियाँ हैं। वे प्रतिदिन बड़ी श्रद्धा भक्ति से उनकी सेवा-पूजा किया करती हैं। एक दिन मुहल्ले का एक उपद्रवी लड़का हमारे घर के लड़कों के साथ खेलने आया, तो उसने दोनों मूर्तियाँ देखीं। खेल समाप्त होने पर, थोड़ी देर ठहरकर, वह शाम हो जाने के बाद, गोपालजी को चुराकर ले गया। माताजी को इसका कुछ पता न चला। रात के पिछले पहर गोपालजी ने माँ से स्वप्न में कहा

‘अरी एक बार हमें तो देखो। वह नटखट लड़का हमें अपने घर उठा लाया है। उत्तर ओर के घर में सीके पर हाँड़ी के भीतर नरियरी में उसने हमें रख दिया है। दिन निकलते ही पुरोहित को भेजकर हमें मँगवा लेना। रात के पिछले पहर स्वप्न देखकर माताजी जाग गई। उन्होंने घबराकर पूजावाले कमरे में जाकर देखा-सिंहासन पर सचमुच ठाकुरजी नहीं है। उन्होंने तुरन्त पुरोहित को बुलवाकर स्वप्न का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। पुरोहित गाँव के दूसरे छोर पर उसी घर में पहुँचे और सीधे उस कमरे में गये तथा सीके पर रखी हाँड़ी के भीतर नरियरी में से दोनों गोपाल मूर्तियों को ले आये।।

यह हाल सुनकर ठाकुर ने कहा-**श्रद्धा सहित सेवा-पूजा करने से विग्रह सजीव हो जाते हैं। तब ये सेवक से बातचीत करते है। मनुष्य की तरह खाने को माँगते हैं। किसी प्रकार या गडबडी होती तो बता देते हैं। इसमें कोई अचरज की बात नहीं है। अनेक स्थानों में ऐसा जाता है। तुम्हारे दादा के शालग्राम भी बड़े विलक्षण है। खूब जाग्रत् है। मैं जब तुम्हारे दादा के फैजाबाद में था, तब एक दिन अयोध्या से ठाकुरजी के दर्शन करके लौटने पर बरामदे में खड़े होते ही तुम्हारे दादा के शालग्राम ने मुझसे कहा ‘अरे हमें कुछ खाने को दे। ये लोग हमारी पूजा तो करते हैं पर खाने को नहीं देते।’ मैं कुछ खाने के लिए लेता आया था, उसी का भोग मैंने उन वामन को लगाया। तब से तुम्हारे दादा ठाकुरजी को भोग लगाने लगे हैं।**

इसके पश्चात ठाकुर ने दादा के शालग्राम की और भी कई बातें बतलाई। पिछले साल जब में दादा के पास था तब उनके मुँह से सुनकर उस समय की डायरी में लिख रखा है, इसलिए उनको यहाँ

पर, पुनः नहीं लिखा। एक वैष्णव परमहंस एक दिन अचानक आये और दादा के न माँगने पर भी वे उक्तशाल शिला दे गये। दादा ने उनसे कहा-'मैं तो यह कुछ मानता नहीं हूँ, विश्वास भी नहीं करता। परमहंसजी ने उत्तर दिया-'घर में यों ही रख लीजिए। मेरे ठाकुरजी खूब जाग्रत् हैं, ये अपने आप मनवा लेंगे।' दादा शालग्राम की ओर से बिलकुल उदासीन थे, फिर भी ठाकुर की कृपा से वे शालग्राम पर विश्वास हो गया।

दादा की चर्चा ठाकुर ने छेड़ी थी, यह अवसर पाकर मैंने कहा-'दादा की पाँच छः वर्ष की लडकी को जागते में भी जो दर्शन आदि होते हैं, उसके सम्बन्ध में आपसे पूछताछ करने के लिए उन्होंने मुझे कई दिन पहले लिखा है।' यह कहकर मैंने ठाकुर को दादा के पत्र का विवरण विस्तार से बताया।

ठाकुर ने कहा-**तुम्हारे दादा डाक्टर हैं। लिख दो, दिमाग गरम हो गया समझकर या और किसी बीमारी की शंका करके उसकी दवा न करने लगे। इस दशा में दवा खिलाने से अनिष्ट होगा। साधारण दृष्टि से जो सबको नहीं दिखाई देता, उसी को देखकर या सुनकर गोलमाल हो जाता है। लोग समझते हैं कि इसके दिमाग में कुछ खराबी हो गई है। इस हालत में बीमारी समझकर दवा करने से कई अवसरों पर बड़े संकट का सामना करना पड़ता है।**

मैंने पूछा-'तो दिमाग की खराबी से क्या उस तरह के दर्शन आदि नहीं होते?'

उत्तर-**होते क्यों नहीं? जरूर होते हैं। इसीलिए तो शास्त्र और पुराणों में जो वर्णन हैं। उनके साथ बारीकी से मिलाना**

पड़ता है। दिमाग की खराबी से जो दिखाई देता है वह तो बेसिर पैर का ही होता है। प्रमाण से उसकी विधि ठीक नहीं बैठती।

प्रश्न-'साधन के समय आसन पर बैठने से लोगों को जो विभीषिकाएँ दिखाई पड़ती हैं, वे क्या सत्य हैं?'

उत्तर-**आसन पर स्थिर होकर साधन करने से ही समझ में आ जाता है, कि विभीषिका सच है या झूठ।**

कुशलतापूर्वक दान, पश्चात्ताप।।

१२ चैत्र बृहस्पतिवार। मैं इस बार घर पर आठ-दस दिन तक रहा। डाकखाने से रुपये निकाल लिये। मेरी गर्भधारिणी माताजी को पच्चीस रुपये देकर गेण्डारिया चला आया। मैंने ठाकुर के लिए एक महाभारत ला देने को एक गुरुभ्राता को चालीस रुपये दिये। अपने लिए भी आठ-दस रुपये की पुस्तकें मोल ली। बाकी रुपयों को दो दिन तक अपने ही पास रहने दिया। किसी-किसी गुरुभाई को इसका पता लग गया। वे लोग अपनी आवश्यकता और प्रयोजन की बात कहकर कुछ रुपये माँगने लगे। मैंने तुरन्त जाकर नानी माँ को रुपये देकर कहा-'नानी माँ, इन रुपयों को आप जिन कामों में खर्च करना चाहें, खर्च करें; मैं यह रकम आश्रम के भण्डार के लिए देता हूँ।' पता नहीं, ठाकुर को इस दान की बात का पता कैसे लग गया। उन्होंने मुझसे कहा-**आश्रम के भण्डार के लिए नानी माँ को इतने रुपये क्यों दे दिये?**

ठाकुर ने मुस्कुराकर, दिल्लगी के तौर पर, यह प्रश्न किया था। इसको सुनते ही मेरे सिर पर बिजली सी गिरी। मैं झेंप के मारे नीची गर्दन किये चुपचाप बैठा रहा। सोचा, अब भाँडा फूट जायगा।

पिछले साल श्रीवृन्दावन में दामोदर पुजारी को जो दान दिया था, उसकी याद मुझे इस समय आ गई। इससे और भी पछतावे और जलन के मारे मैं बेचैन होने लगा। श्रीवृन्दावन में ठाकुर के पास पहुँचते ही ठाकुर ने यमुनास्नान कर आने की आज्ञा दी। मेरे पास ग्यारह रुपये थे। जो मैं उन्हें सामान में रख जाता तो शायद उनको कोई देख लेता इससे मैंने उन्हें अण्टी में रख लिया। मुझे रास्ता मालूम न था, इससे कुंज के मालिक दामोदर की नजर पड़ गई। मैं बड़ी कठिनाई में पड़ गया। सोचा कि 'यह जब चाहेगा तभी ठाकुर के लिए अमुक वस्तु लाने का बहाना करके रुयपे माँग लेगा। रुपयों पर जब इसकी नजर पड़ चुकी है तब रुपये बचने के नहीं। अतएव अभी से ऐसा प्रबन्ध कर लेना चाहिए, जिसमें उत्पात के लिए गुंजाइश ही न रह जाय।' यह सोच विचार करके मैंने स्नान करके दामोदर से कहा, 'पुजारीजी! हमारे ठाकुर की सेवा का जिम्मा आपने लिया है। मेरे पास यही थोड़े से रुपये हैं, आप इनको ठाकुर की सेवा में खर्च कर दीजिएगा। और मैं आपके आश्रम में दो तीन महीने रहूँगा, सो दया करके मुझे ठाकुर का प्रसाद दोनों वक्त दो मुट्ठी देते रहिएगा। तीर्थ में आकर सबसे पहले ब्राह्मण को दान देना चाहिए, नहीं तो कुछ भी सफल नहीं होता। इसलिए, मेरे पास जो थोड़ा सा है, वह आपको ही देता हूँ, आशीर्वाद दीजिए।' अब मैंने दामोदर को रुपये देकर नमस्कार किया। रुपये मिलने से दामोदर ने बहुत ही खुश होकर बड़े आदर से मेरी पीठ ठोककर कहा-'अजी, तुममें तो अच्छी भक्ति है! भला! सबका सब दे दिया! राम! राम!' मैंने मन में कहा-'हाँ, मेरे दान और भक्ति का पता तो तुम्हें पीछे लगेगा।'

इस बार भी मैंने जिस चालाकी से आश्रम की सेवा के लिए दान दिया है, उसको जानकर ठाकुर ने कहा-**जिसको आवश्यकता हो उसी को, और किसी ओर न देखकर, दान देना चाहिए। हमदर्दी का अनुभव करके दान करना चाहिए। अपने लिए किसी चीज की आवश्यकता होने पर जिस प्रकार उसकी पूर्ति की इच्छा होती है, दूसरे की आवश्यकता भी यदि वैसी ही लगे, तभी ठीक दान होता है। बिना ही श्रद्धा के, देखा-देखी अथवा उत्पात से बचने के लिए किया गया दान, दान नहीं प्रतिष्ठा पाने के लिए, किसी चतुराई से या किसी प्रकार के स्वार्थ से किया गया दान भी दान नहीं है। यह तो कुशलता या चालाकी है। उससे आत्मा का जरा भी कल्याण नहीं होता। हाँ, अनिष्ट हो जाता है।**

दुर्दिन में ठाकुर की कृपादृष्टि।।

13 चैत्र शुक्रवार। कल एकादशी को, अन्य एकादशियों की भाँति, निर्जला व्रत किया था। शाम हो जाने पर छः-सात साल की कई बालिकाएँ आकर मेरे आसन के पास बैठ गई और कहानी सुनाने के लिए बार-बार जिद करने लगी। मैंने दो-एक कहानियाँ सुनाकर ही उन्हें विदा कर दिया। रात को स्वप्नदोष हो गया। बाकी रात कोई बारह बजे से लेकर सवेरा होते तक, मैंने एक बार बाहर और एक बार कमरे के भीतर, उठ-बैठकर काट दी। बहुत ही उदासी हुई। मानसिक क्लेश से सिर गरम हो गया। ठाकुर पर अत्यन्त अविश्वास हो गया। सोचा-'सब कुछ व्यर्थ है। नाहक परिश्रम कर रहा हूँ। शरीर की साधारण दुर्गति, गुरु की आज्ञा के अनुसार इतने समय तक कार्य करते रहने पर भी दूर नहीं हुई। अब उनके उपदेश के अनुसार

चलने से स्वभाव का दोष, मन की बहिर्मुख अवस्था दूर हो जायगी, इसका क्या भरोसा? भगवान् को प्राप्त करने की आशा से, जिनकी कृपा का ही भरोसा करके, मैं निश्चिन्त रहता हूँ और जिनके उपदेश को ही एकमात्र कर्तव्य समझकर स्थिर बैठा हुआ हूँ, उनकी बात यदि साधारण कामों में ही कट गई, तब तो वास्तविक धर्म को प्राप्त करने के लिए वे जो-जो उपाय बताते हैं, वे कहाँ तक सत्य होंगे? चिकित्सक की व्यवस्था के अनुसार औषधि का सेवन करने से यदि रोग दूर न हो तो, उसके हाथ के यश पर रोगी का निर्भर रहना और भाग्य के भरोसे बैठे रहना, एक ही बात है। यह मुझसे नहीं होने का। मैं कल ही ठाकुर को अंतिम साष्टांग प्रणाम करूँगा।' यह निश्चय करके मैं सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगा।

दिन निकलने से पहले ही स्नान करके, किसी प्रकार नित्य कर्म किया। एकान्त में अवसर देखकर, जब कि ठाकुर चाय पी रहे थे, उनके पीछे की ओर, कमरे के बाहर मैंने आंगन में साष्टांग प्रणाम किया। 'हाय! ठाकुर को छोड़कर जा रहा हूँ, यह विचार मन में आते ही मुझे रोना आया। मैं रोना रोक न सका। इस समय ठाकुर भी, भरे हुए कण्ठ से, कोई दो मिनिट तक-'हरि बोल! हरि बोल!' कहने लगे। मेरे मस्तक उठाते ही ठाकुर पीछे की ओर मेरी तरफ मुँह करके ममतापूर्ण, डबडबाई हुई आँखों से देखकर बड़े स्नेह से बुलाकर कहने लगे-**अहा! तुमने कल निर्जला उपवास किया था, अभी तक तुमने क्या कुछ नहीं खाया? यह लो, थोड़ा सा पानी पीकर ठण्डे हो लो।**

अब ठाकुर ने कुछ मिठाई और एक बेल मेरे हाथ पर रख दिया। ठाकुर के उस समय के रोदन, अर्धस्फुट स्वर और विशिष्ट दृष्टि से

मानो मेरी छाती फट गई। केवल यही जान पड़ने लगा कि 'अहा! इस जगत में ऐसी दृष्टि से मुझे और कौन देखेगा?' मैं रोता हुआ अवसन्न सा हो गया। थोड़ी देर में ठाकुर की दी हुई जलपान की वस्तुएँ लेकर अपने आसन पर जाकर बैठ गया।

सवेरे जलपान करने के पश्चात् कोई साढे नौ बजे मैं ठाकुर के पास जा बैठा। ठाकुर ने थोड़ी देर के लिए पाठ बन्द कर दिया। उस समय मैंने कहा-'कई बार आपसे बहुत सी बातें करने के लिए मन करता है, किन्तु आपके पास आते ही सब भूल जाता हूँ।'

ठाकुर ने मेरी बात काटकर कहा-**कहना क्या है? कहने सुनने को है ही क्या? काम किये जाओ। महात्मा लोग एकाएक कोई स्थायी अवस्था नहीं दे देते। सिंहनी का दूध सोने के पात्र में न रखो तो नष्ट हो जाता है। महात्मा लोग पात्र को ठीक करके तब वस्तु देते हैं। अवस्था की प्राप्ति के लिए घबराओ मत, यह ठीक समय पर ही प्राप्त होगी।'**

मैंने कहा-किसी समय प्राप्त होने का भरोसा हो जाय तो निश्चिन्त हो जाऊँ।

ठाकुर ने कहा-**यदि तुम्हें अभी वह अवस्था दे दी जाय तो उससे तुम्हारा अनिष्ट होगा। अभी ऊर्ध्वरेता हो जाओगे तो तुम किसी को कुछ न समझोगे। वह अवस्था पाने पर तुम स्थिर नहीं रह पाओगे, इस ऐश्वर्य से संसार को विनष्ट करके सत्यानाश कर दोगे। अभिमान के नष्ट हो जाने पर ही उन ऐश्वर्यों का प्राप्त होना निरापद होता है। अभी तो काम किये जाओ। उस ओर मत देखो। सब ओर से ठीक हो जाना, कोई एक-दो दिन का काम नहीं है।** जरा रुककर ठाकुर फिर कहने लगे-**ब्रह्मचर्य आश्रम में**

स्त्रियों से किसी प्रकार का साथ नहीं रखना चाहिए। इस विषय में बहुत ही सावधान रहना पड़ता है। न उनकी ओर देखो, न उनके साथ बैठो और न उनसे किसी प्रकार की बातचीत ही करो। स्त्री कोई भी क्यों न हो-चाहे बिल्कुल बुढिया हो, चाहे युवती, अथवा बिल्कुल बच्ची ही हो सदा उनसे दूर ही रहो। चुम्बक जिस प्रकार लोहे को खींचता है, उसी प्रकार स्त्रीजाति का शरीर कुछ ऐसे उपादानों से बना है कि वे पुरुष शरीर को आकृष्ट करते हैं। यह वस्तुगुण है, इसमें पात्र-अपात्र और साधु-असाधु का विचार नहीं है। इसी से शास्त्रकारों ने माता भगिनी और दुहिता के संबंध में भी, सावधान रहने का अनुशासन करके कहा है-

‘मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।।’

माता, बहन और बेटी के साथ भी एकान्त में एक ही आसन पर न बैठें, बलवान् इन्द्रियगण विद्वान को भी आकर्षित कर लेते हैं। विद्वान् का अर्थ है ब्रह्मविद्यावित्, जिसे ब्रह्मज्ञान हो चुका है वह मुक्त पुरुष को भी आकृष्ट करता है। काशी में दण्डी स्वामी को इस पर विश्वास न हुआ। उन्होंने सोचा, ‘कभी ऐसा होता है? जिसे ब्रह्मविद्या प्राप्त हो चुकी है ऐसे विद्वान को यह किसी तरह आकृष्ट नहीं कर सकता।’ उन्होंने इसे व्यासदेव की भूल समझकर उसे काटकर लिख दिया ‘न हि कर्षति, न हि कर्षति, न हि कर्षति।’ इसके बाद उनकी जैसी कुछ दुर्दशा हुई थी, सो सुन ही चुके हो।

अविश्वास, साधन का अभिमान; अनुशासन।

महाभारत का पाठ करने के पश्चात् भीतर ही भीतर विषम उद्वेग प्रतीत होने लगा। सोचा, ठाकुर के सम्बन्ध में मुझे जो अविश्वास और सन्देह हो गया था, उसको प्रकट कर दूँ जब मैं रोक न सका तब ठाकुर ने कहा, 'झूठ बोलना क्या हम लोगों का ही दोष है या भगवान का भी है?'

ठाकुर ने कहा-**भगवान् कभी मिथ्या नहीं बोलते, उनकी इच्छा कार्य और वाक्य सभी सत्य हैं। यहाँ मिथ्या कुछ भी नहीं है।**

मैंने कहा-'श्यामबाजार में मुझे आज्ञा हुई थी, 'दो घण्टे स्थिरता से बैठकर नाम किया करो, स्वप्नदोष न होगा।' मैं तभी से प्रतिदिन कम से कम छः सात घण्टे बैठकर नाम करता हूँ, किन्तु स्वप्नदोष से पिण्ड नहीं छूटता। इससे आपकी बात पर मुझे अविश्वास हो गया है। हम लोग भूतकाल और वर्तमान के सम्बन्ध में झूठ बोलते हैं और आप लोग भविष्य के सम्बन्ध में मिथ्या बोलते हैं।'

यह सुनकर ठाकुर ने किसी प्रकार से असन्तोष का भाव प्रकट नहीं किया। उन्होंने सहज भाव में ही कहा-**तो क्या तुम मन को स्थिर करके दो घण्टे नाम किया करते हो?**

मैंने कहा-'मन को स्थिर करके कैसे करूँगा? मन तो स्वभाव से ही अस्थिर है। आसन पर दो घण्टे से भी अधिक समय तक एक ही तरह से बैठकर नाम करता हूँ।'

ठाकुर ने कहा-**तो फिर दूसरे का क्या दोष? दो घण्टे तो बहुत होते हैं, तुम दो मिनिट भी मन को स्थिर करके नाम नहीं**

करते। एक बार करके देखो तो सही, कैसे बात सही नहीं होगी?

केवल नाम करने मात्र से नहीं होगा,मन को स्थिर करके करना होगा। यह नाम अक्षर नहीं है, एक शब्द भी नहीं है, इस नाम में भगवान् की अनन्त शक्ति निहित है। भगवान् ही नाम है। नाम का जप करना और भगवान् का संग करना एक ही बात है। लक्ष्य वस्तु को छोड़कर नाम करने से क्या होगा? नाम करते समय मन इधर उधर भटकता फिरता है। इससे नाम ठीक-ठीक नहीं होता। अपना दोष नहीं देखते, समझते हो कि दूसरे के दोष से तुम्हें कष्ट मिल रहा है। अपनी भूल को बिना देखे दूसरे पर दोषारोपण नहीं करना चाहिए। इससे अपराध लगता है।

थोड़ा रुककर ठाकुर फिर कहने लगे-**दूसरों की अपेक्षा तुम आसन पर कुछ अधिक समय तक बैठे रहते हो, इसीसे तुम्हें कितना अभिमान हो गया है! देखो, कसा भयानक है! जो लोग तुम्हारी तरह आसन पर नहीं बैठते, नाम नहीं करते सदा हँसी-दिल्लगी करते हुए फिरते रहते हैं, तुम जिनको कुछ भी करते नहीं देखते हो, उनके भीतर ऐसे सद्गुण है जो तुममें नहीं है। बिना कुछ भी किये, केवल विश्वास से ही किसी-किसी को ऐसी अवस्था प्राप्त हो जायगी जिसकी प्राप्ति होना तुम्हें साधन भजन करते रहकर बहुत समय के बाद भी कठिन होगा। अपने को औरों से सदा छोटा समझो, किसी विषय में अपने को किसी से भी श्रेष्ठ मत समझो। कितने लोग बहुत साधन-भजन करके, कठोरता करके जिस अवस्था को बहुत समय में भी प्राप्त नहीं कर सकते, वही अवस्था एक लम्पट, बदमाश और डकैत में भी की स्वाभाविक ही रह सकती है। अभिमान करने के लिए है ही**

क्या? थोड़ा सा साधन करते हो, इसी अभिमान से राह नहीं सूझता। इस अभिमान के रहते कोई अवस्था तुम्हें दे दी जाय तो तुम ऐश्वर्य मत्त होकर किसी को तिनके बराबर भी न समझोगे। प्रत्येक कार्य का विचार करके आचरण करो। बिना विचारे कार्य करने से अनेक अनर्थ होते हैं। जब तक अपने को छोटा न समझोगे, हजार साधन-भजन और तपस्या से भी कुछ न होगा।

15 चैत्र रविवार। ठाकुर पर मुझे अविश्वास हो गया है, और भविष्य के सम्बन्ध में वे मिथ्या कह देते हैं-यह मैंने जब से उनके मुँह पर कह दिया है तभी से मैं मन शून्य हूँ, मैं बहुत दुःखी हूँ। मेरे दिन-रात किस तरह बीत रहे हैं, इसको मैं भाषा द्वारा प्रकट करने में असमर्थ हूँ। अन्तःकरण की असह्य यन्त्रणा से पागल सा होकर मैंने देह पर कई जगह प्रहार किया, बाल नोच डाले, सिर पटक दिया और रोते-रोते बेचैन होकर मैं कभी तो हाथ-पैर पटकने लगा। बीच-बीच में आत्महत्या करने की भी इच्छा होने लगी। इस समय ठाकुर पाठ बन्द करके एक एक बार जोर से **'हरि बोल', 'हरि बोल'** कहने लगे।

उन्होंने थोड़ी देर में मुझे बुलाकर कहा-**तुम कल से फिर रुद्राक्षमाला धारण कर लो।**

आज ठाकुर की आज्ञा से फिर उसी 'नीलकण्ठवेश' को धारण करके मैं उनको प्रणाम कर आया। वेश के गुण से हो या ठाकुर की कृपा से, धीरे-धीरे मेरी जलन, यन्त्रणा कुछ क्षणों में ही दूर हो गई।

परोसने में त्रुटि। तीर्थपर्यटन का नियम।

१६ चैत्र मंगलवार। इस बार कलकत्ते से आने के बाद अब तक

आश्रम में रुपये पैसे की बड़ी कमी है। भोजन की असुविधा होने से बहुत से गुरुभाईयों ने अपने लिए अलग प्रबन्ध कर लिया है। आश्रम में भोजन आदि के मामले में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। कुछ दिन ठाकुर और समाधि-मंदिर के लिए एक प्रकार का भोग बना लिया जाता था और आश्रम के गुरुभाईयों के लिए साधारण प्रबन्ध था। जान पड़ता है कि हम लोगों के भीतर की दुरवस्था का ज्ञान हम लोगों को करा देने के लिए ही उस समय ठाकुर ने इस सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं था। 'ठाकुर पूर्व के कमरे में पृथक् भोजन करते हैं और उनके लिए दूसरे ढंग की रसोई बनती है' इस पर हम में से किसी ने तरह-तरह की बातें उठाई। इसका पता लगते ही ठाकुर उसी दिन से दक्षिण ओर के कमरे में सबके साथ बैठकर वही भोजन किया करते हैं जो सबको परोसा जाता है। परोसने का भार मुझ पर है। मैं गुरुभाईयों की अपेक्षा ठाकुर को अच्छी तरकारी अधिक मात्रा में परोस दिया करता हूँ। ठाकुर ने दो-तीन दिन मुझे ऐसा करने से रोका है। उसको मैंने अनसुना कर दिया।

आज फिर ठाकुर ने कहा-**एक पंक्ति में दस आदमी भोजन करने को बैठे तो वहाँ परोसने में छोटे-बड़े का विचार न करना चाहिए; एक सा ही देना चाहिए। प्रसाद पाने की आशा से कोई वस्तु अधिक परोसना जूठन देना है। ऐसा भोजन खा लेने से न तो तृप्ति होती है और न पेट भरता है।**

आज महाभारत पाठ के बाद मुझे ठाकुर ने तीर्थ पर्यटन के नियम बतलाये-युवावस्था में तीर्थयात्रा न करो तो फिर नहीं होती। जो कुछ करना हो इसी समय करना चाहिए। पर्यटन करते समय सदा माथा झुकाकर, नीची दृष्टि करके चलना चाहिए। प्रतिदिन

तीन-चार कोस अथवा दस बजे तक चलकर किसी स्थान में ठहरकर विश्राम कर लो। वहाँ भिक्षा माँगकर अपने हाथ से रसोई बना लेना अच्छा है। पर्यटन करते समय धातु, वस्तु साथ न रखे। अर्थादि का तो स्पर्श भी नहीं करें। कोई टिकट कटा दे तो दूसरी बात है। पानी पीने के लिए लकड़ी का पात्र या तुम्बा अच्छा है। कौपीन, बहिर्वास, कम्बल और पढ़ने के लिए दो एक पुस्तकें साथ रखें। बिना साथी के अकेले चलने में अधिक लाभ है। किसी मंदिर में प्रसाद मिल जाय तो लिया जा सकता है।

मैंने सोचा, यह भी बुरा नहीं है। मैं देवमूर्ति को कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानता, इस दशा में मेरे लिए तीर्थयात्रा का प्रबन्ध!

और उनके

का पता

योग संकट।

गत रात्रि को बड़ी कठिनाई में पड़ गया था। रात को बारह बजे, अन्य दिनों की भाँति, हाथ-मुँह धोकर मैं आसन पर बैठ गया। कोई डेढ़ बजने पर ठाकुर के गले की आवाज सुनकर मैं चौकन्ना आ। प्रायः गहरी रात को दो एक गीत गाकर एक-दो मिनिट में ही भावावेश में गों-गों करते हुए उनका कण्ठरोध हो जाता है। गत रात्रि को भी-

(सेई) एक पुरातने, पुरुष निरंजने, चित्त समाधान करोरे।
आदि सत्य तिनि, कारण-कारण, प्राणारूपे व्याप्त चराचरे।।
जीवन्त ज्योतिर्मय, सकलेर आश्रय,

देखे सेई जे जन विश्वास करे।

अतीन्द्रिय, नित्य, चैतन्यस्वरूप, विराजित हृदि-कन्दरे;

ज्ञान प्रेम पुण्ये, भूषित नाना गुणे, जाँहार चिन्तने सन्ताप हरे।

अनन्त गुणाधार, प्रशान्त मूरति, धारणाकरिते केह नाहि पारे।

पदाश्रित जने, देखा देन निज गुणे, दीन हीन बले दया करे।

चिरक्षमाशील कल्याण-दाता, निकट सहाय दुःख-सागरे;

परमन्यायवान, करेन फलदान, पाप पुण्य कर्म अनुसारे।

प्रेममय दयासिन्धु, कृपानिधि, श्रवणे जाँर गुण आँखि झरे;

ताँर मुख देखि, सबे हओ हे सुखी, तृषित मन प्राण जाँर तरे;

विचित्र शोभामय, निर्मल, प्रकृति,

वर्णिते से रूप वचन हरे,

भजन साधन ताँर, करो रे निरन्तर,

चिर-भिखारी होये ताँर द्वारे।।

(उसी एक पुरातन पुरुष निरंजन में चित्त का समाधान करो। वह आदि सत्य है। कारण का कारण और चराचर में प्राणरूप से व्याप्त है। उस सजीव ज्योतिर्मय, सभी के आश्रय को वही भक्त देख पाता है जो उस पर विश्वास करता है। वह अतीन्द्रिय, नित्य, चैतन्य-स्वरूप हृदय-कन्दरा में विराजमान है; ज्ञान, प्रेम, पुण्य आदि विविध गुणों से भूषित है। उसका चिन्तन करने से संताप दूर होता है। वह अनंत गुणों का आधार और प्रशान्त मूर्ति है। कोई उसको धारण नहीं कर सकता। पदाश्रित भक्त को वह दया करके दर्शन देता है, दीन-हीन समझकर उस पर कृपा करता है। यह

चिरकाल से क्षमा करनेवाला, कल्याणदाता, दुःखसागर में समीप ही सहायक है; वह परम न्यायी पाप-पुण्य (कर्म) के अनुसार फल देता है। प्रेममय दयासागर, कृपानिधि के गुणों को सुनने से आँसू बहने लगते हैं। जिसके लिये मन और प्राण तृषित हैं, उसका मुँह देखकर सब लोग सुखी हो जाओ। वह विचित्र शोभामय, निर्मल प्रकृति है। उसके रूप का वर्णन करने में वाणी असमर्थ है। उसके द्वार पर सदा भिखारी बने रहकर उसका भजन-साधन निरंतर करते रहो।)

ब्रह्म-संगीत के इस गीत के दो-एक पद गाते-गाते वे समाधिस्थ हो गये। ठाकुर का वह गाना अलग ही प्रकार का अद्भुत गम्भीर स्वर सुनकर मेरे भीतर अपने आप इतने वेग से नाम होने लगा कि मैं बिल्कुल अवसन्न हो गया। थोड़ी देर में मेरे हाथ-पैर, सिर मानो खींचकर पेट के भीतर सिमटने लगे। मैं समझ रहा था कि, उस समय वह अस्वाभाविक क्रिया मेरे प्रत्येक अंग में हो रही है, फिर भी मैं उसे किसी तरह रोक नहीं पाया। शिरा, धमनी और अंग-प्रत्यंगों की मांसपेशियाँ मरोड़कर, ऐसा लगा कि, मानो मुझे बिल्कुल गोल गठरी सा बना डाला। भीतर-बाहर केवल नाम ही नाम सुनाई देने लगा। शरीर में एक प्रकार की अव्यक्त यन्त्रणा होने लगी, किन्तु उसके दूर करने की एक भी चेष्टा न करने पर थोड़ी देर में मेरा देह का ज्ञान भी विलुप्त हो गया। मैं उस समय कहाँ, किस दशा में कैसा था- यह ठाकुर ही जानें। पता नहीं, मेरी यह हालत कब तक रही। फिर धीरे-धीरे नाम का वेग घटने लगा। हाथ-पैरों को धीरेधीरे सीधे करके मैं बैठ गया। दोपहर को सब ठाकुर को बताकर मैंने पूछा-'ऐसा क्यों हो गया?'

ठाकुर ने कहा-**हाँ, वैसा ही हो जाता है। श्वास-प्रश्वास के साथ नाम की क्रिया होने पर जब नाम प्रत्येक शिरा में होने लगता है तब हाथ, पैर, नाक, कान, आँखें सभी अंग प्रत्यंगों को भीतर की ओर खींच लेता है। उस दशा के आरम्भ से सावधान न रहने से और नाम उस उस समय बिल्कुल बन्द कर देने से बड़ी कठिनाई हो जाती है। उस दशा में हाथ-पैर सभी बिल्कल पेट के भीतर चले जा सकते हैं। फिर दूसरी अवस्था भी होती है। जब नाम की क्रिया अस्थि, मांस, मज्जा प्रत्येक अंग-प्रत्यंग में हुआ करती है तब हाथ, पैर, घुटने आदि शरीर के सभी जोड़ खुलकर अलग-अलग हो जाते हैं; हाथ-पैर लम्बे हो जाते हैं। वैसा होने पर न केवल हाथ-पैर ही बल्कि मस्तक तक शरीर से टूटकर अलग हो जाता है। फिर धीरे-धीर ठीक स्थान पर आकर जुड़ जाता। सिर्फ कहानी मत समझ लेना, मैं अपनी आँखों देख चुका है।**

प्रश्न-'एक ही नाम से शरीर के भीतर परस्पर विरुद्ध दशाएँ कैसे होती है?'

उत्तर-**नाम एक-एक प्रकार से चलकर देह में भिन्न-भिन्न दशाएँ उत्पन्न कर देता है।**

प्रश्न-'नाम करते-करते कभी-कभी शरीर में बेहद जलन क्यों होती है?'

ठाकुर ने कहा-यह जलन है? यदि ठीक नाम करते हो तो जलन क्या चीज है जान सकोगे। प्राचीन काल में ऋषियों के समय में तुषानल का प्रचलन था। देह को शुद्ध करने के लिए वे किसी-किसी को तुषानल में शुद्ध कर लेते थे। इस युग में तो वह हो नहीं सकता।

शरीर भी तो वैसा नहीं है। जब श्वास-प्रश्वास के साथ नाम होने लगता है तभी ऐसी जलन का आरम्भ होता है। फिर नाम के साथ-साथ यह जलन इतनी बढ़ जाती है कि ऐसा लगता है मानो शरीर के सभी अणु-परमाणु बिल्कुल जल गये। इस नामाग्नि की जलन के मारे मनुष्य पागल की तरह भागने लगता है। संन्यास लेने के पश्चात् परमहंसजी की आज्ञा से, मैं जब विन्ध्य पर्वत पर रहता था। तब मुझे ऐसी जलन हुई थी। इस जलन से बचने के लिए मैं दिन भर बदन में पतले कीचड़ का लेप लगाया करता था। एक दिन जलन के असह्य हो जाने पर मैं पर्वत पर एक कुण्ड में जाकर कूद पड़ा। उस समय एक संन्यासी ने मुझे उठा लाकर कहा-'यह क्या करते हो? इस पानी में न उतरना चाहिए। इसी समय पत्थर बन जाते। अपने बालों, दाढ़ी-मूछों को देखो। सब बिल्कुल सफेद हो गये हैं। इस पानी की यही विशेषता है।' अब संन्यासी पहाड़ में से खोजकर एक लता ले आये। उसका रस निचोड़कर उन्होंने बालों में लगा दिया। वह रस जहाँ-जहाँ पर लगा वहाँ के बाल काले हो गये। और जहाँ पर नहीं लगा यहाँ के अभी तक सफेद है। इसी से मेरे सामने के बाल सफेद हैं और दोनों ओर के तथा पीछे के काले हैं। गुरुजी के दर्शन पाकर उनको जलन का हाल बताया तो ये कहने लगे-'इस जलन से ही इतने घबरा रहे हो? अब तुम ज्वालामुखी चले जाओ। वहाँ जाकर साधन करने पर स्थान के प्रभाव से यह जलन चौगुनी बढ़ जायगी। फिर शीघ्र ही बिल्कुल शान्त हो जायगी। बस, मैं ज्वालामुखी को चला गया।

विन्ध्य पर्वत पर साधन करते समय जो जो अवस्थाएँ हुई थी उनमें से बहुत सा विवरण ठाकुर ने बतलाया। ठाकुर के मुँह से

सुनकर उन बातों को मैं पिछली डायरी में लिख चुका हूँ, इससे उनको यहाँ नहीं दुहराता।

प्रकृति के दोष वृद्धावस्था में प्रकट होना; उपदेश।

मेरे जीवन की गति के ठीक होने में अभी बहुत विलम्ब है। जबसे मैंने ठाकुर के मुँह से यह बात सुनी है, तब से मन बहुत उदास रहता है। इस बार जब घर गया तो अपने हितैषी, घनिष्ठ आत्मीय एक वृद्ध के मुँह से उनके जीवन का वृत्तान्त सुनकर, मैं सदा उसी का सोच-विचार किया करता हूँ। उन्होंने मेरे ब्रह्मचर्य की बात सुनकर कहा-'अजी अभी कुछ भी क्यों न करो, अन्त में न जाने क्या परिणाम होगा। युवावस्था में जिस प्रकार इन्द्रियों की प्रबलता हुआ करती है, उसी प्रकार सत्संग में रहने से धर्मोत्साह भी खूब बढ़ता हुआ देखा जाता है। प्रकृति की गलती युवावस्था में दबा दी जा सकती है, किन्तु वह अक्सर बुढ़ापे में उभर आती है। युवावस्था में धर्म की धुन मुझ पर सवार रहती थी, सन्ध्या -पूजा और जप-तप में ही मेरा बहुत सा समय लग जाता था। चरित्रबल भी मुझमें असाधारण था। एक बार जरुरी काम के लिए, भारी आँधी-पानी के दूसरे दिन, मैं पद्मा नदी में ही नाव की सवारी से ढाका जा रहा था। पिछली रात को बहुत सी नावें डूब गई थी। मैंने पनसुइया (एक प्रकार की लम्बी सी नाव) में से देखा कि १९-१८ वर्ष की परमा सुन्दरी निर्वस्त्र बालू पर बैठी रो रही है। उसे विपदग्रस्त समझकर मैं तुरन्त उसके पास गया। युवती ने कहा, 'कल रात को इस नदी में हमारी नाव डूब गई। पता नहीं, मेरे स्वामी

जीवित है या नहीं। मैं तो बेहोशी में इस बालू के टीले पर आ लगी हूँ। मैं बड़ी संकट में हैं, मेरी रक्षा कीजिए।' उसकी बातें सुनकर मैं रो पड़ा। अपनी आधी धोती पहनने को देकर, उसे अपनी नाव पर ले आया। जब तक मेरा काम पूरा नहीं आया, वह मेरी पनसुइया पर ३-४ दिन तक मेरे साथ ही रही। फिर मैं उसको उसके घर पहुँचा आया। उस समय साथ में और कोई नहीं था। उस समय क्षण भर के लिए भी मेरे मन में किसी प्रकार का विकार नहीं आया। उन दिनों मैं २७-२८ वर्ष का था। और आज तक जीवन में कभी कोई विशिष्ट दुष्कर्म भी मैंने नहीं किया। अब मैं ६७ वर्ष का हूँ, मेरे दाँत गिर गये हैं, बीमार हूँ, देह सुस्त है, इस निस्तेज वृद्धावस्था में भी मेरी ऐसी दुर्गति हुई है कि उस समय की याद करके दिन-रात हाय-हाय किया करता हूँ। यही सोचता हूँ कि हाय ऐसा मौका पाकर मैंने क्यों छोड़ दिया?' इसी से कहता हूँ भैया, विकट प्रलोभन में पड़कर भी किसी समय अपनी चेष्टा से भले बने रह सकते हैं; किन्तु मूलतः भले नहीं बन सकते। स्वभाव में जो दोष हैं उनको दबा देना सहज है किन्तु उनकी जड़ को उखाड़ फेंकना अपनी शक्ति से बाहर का काम है। यह तो गुरुकृपा से ही हो सकता है।'

ठाकुर को यह किस्सा सुनाया। उन्होंने कहा-भविष्य की सोचने की आवश्यकता नहीं। इस समय जो बताया जाता है, बस उसी को करते जाओ। इसीलिए युवावस्था में ही साधन करना चाहिए। अधिक उम्र होने से मन का उत्साह, उद्यम, धीरे-धीरे ठण्डा पड़ जाता है। शरीर सुस्त और रोगी हो जाता है। उस दशा में साधन-भजन करना क्या सहज है? युवावस्था ही साधन-भजन करने का उपयुक्त समय है। इस समय से खूब लगन के साथ धर्म में एक

संस्कार और रुचि उत्पन्न कर लो तो बहुत कुछ से रक्षा पाई जा सकती है। जब तक श्वास-प्रश्वास के साथ नाम का अभ्यास हो जाता तब तक निरापद भूमि की प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि भाग्य का लिखा सोलहों आने भोगना ही पड़े, स्वभाव के दोष का त्याग करना असम्भव ही हो जाय, तब तो साधन, भजन, व्रत तपस्या इन सबका अर्थ ही क्या रह गया? भगवान् की जरा सी कृपा होने से लाखों जन्मों के कर्मभोग पल भर में नष्ट हो जाते हैं, यह बिल्कुल सच बात है। उनकी कृपा ही सार वस्तु है, और बाकी कुछ भी नहीं। आर्त होकर उनकी ओर देखने से वे अवश्य कृपा करते हैं।

वर्षा के समय तर्पण; ठाकुर की कृपा।

२३ चैत्र। आज अष्टमी स्नान का दिन है। ब्रह्मपुत्र में जाकर स्नान-तर्पण करने का विचार कई दिन से कर रहा था, वह पूरा नहीं हुआ। आज अन्य दिनों की भाँति भोर को उठकर बूढीगंगा में ही स्नान करने गया। जोरों का पानी बरसने लगा। मेरे पिता की निधन-तिथि है, आज एक अंजली जल पिता को न दे पाऊँगा, यह सोचने से बड़ा कष्ट होने लगा। सुना है कि तर्पण के जल में मेघ के पानी की एक बूँद मिल जाती है तो वह जल रक्त हो जाता है। अतः नदी-किनारे जाकर थोड़ी देर तक बहुत उदास होकर बैठा रहा। अन्त में और उपाय न देख, साष्टांग होकर मैं ठाकुर से बहुत ही आर्त होकर प्रार्थना करने लगा-‘ठाकुर! वर्ष में ३६५ दिन मैं पिता को तर्पण का जल दिया करता हूँ और आज विशिष्ट दिन पर उन्हें अंजिल भर जल न दे सका! ठाकुर! दया करके थोड़ी देर के लिए वर्षा रोकिए।’ पानी लगातार एक सा बरस रहा था, यह देख मैं लाचार हो नदी में

उतरा और यहीं ब्रह्मपुत्र का आह्वान करके, प्रत्येक व्यक्ति के नाम से, मैंने १५-२० गोते लगाये। अब निकलकर देखा कि बरसात बिल्कुल बन्द हो गई है, पानी एक बूँद भी नहीं गिर रहा। देवतर्पण, ऋषितर्पण और पितृतर्पण करके अंतिम अंजलि देने के बाद ही एकाएक झोंका आया और मूसलाधार पानी बरसने लगा। यह देखकर मैं दंग रह गया। क्या यह आकस्मिक घटना है, या ठाकुर की कृपा का ही फल है, कुछ साफ समझ में नहीं आया। गंगा-किनारे विचित्र सुगंध आने से चित्त बहुत ही प्रसन्न हो गया।

दोपहर को अवसर पाकर मैंने ठाकुर से पूछा-'कभी-कभी दिन को आसन पर बैठने से, कभी गहरी रात में, फिर रास्ते में हाट-बाट में, बगीचे में, जंगल में अकस्मात् थोड़ी देर तक सुगन्ध आया करती है, फिर क्षण भर में ही उसका पता नहीं लगता। कई बार अनुसंधान करके देखा कि उन स्थानों में वैसी सुगन्ध का कोई कारण ही नहीं रहता। ऐसा क्यों होता है?

ठाकुर ने कहा-**ऐसी सुगन्ध आना बहुत अच्छा है। देवी-देवता, ऋषि-मुनि अथवा महापुरुष लोग दया करके जहाँ पर आते हैं, यहाँ उन्हीं की कृपा से उनकी देह की सुगन्ध कभी-कभी, किसी को आती है। यह सुगन्ध तरह-तरह की होती है। कभी धूपबत्ती और धूप की, कभी चन्दन-गुग्गुल की, कभी कमल की, कभी दूसरे प्रकार के सुगन्धित फूलों की, मर्तवान केले की और कटहल की सुगन्ध आती है। उस समय उनके चरणों के उद्देश्य से भक्तिपूर्वक प्रणाम करो और स्थिरता से बैठकर खूब नाम करने लगो। इससे उन्हें आनन्द प्राप्त होता है। धीरे-धीरे उनकी कृपा का और भी अनुभव होने लगता है।**

साधक का मादक सेवन; गांजे के धुएँ में दस महाविद्या-दर्शन।

आज मैंने बातचीत के सिलसिले में ठाकुर से पूछा-'साधु, फकीर और तान्त्रिक साधकों में से कई शराब और गांजा पीते हैं। इन चीजों के पीने से क्या उन लोगों को साधन में कोई विशेष प्रकार की सहायता मिलती है? गँजेड़ी साधु तो गुण्डे जैसे जान पड़ते हैं।'

ठाकुर ने कहा-**समय-समय पर गुण्डे भी तो साधु का वेश बना लेते हैं। जब मैं गयाजी में आकाशगंगा पहाड़ पर रहा करता था, तब एक दिन गुफा के भीतर से देखा कि कई आदमी, बहुत सी सामग्री लिये हुए दनादन पहाड़ पर चढ़ते चले जा रहे हैं। देखते ही मैंने उन लोगों को पहचान लिया। वे लोग पहाड़ के नीचे साधु का वेश बनाये हुए रहा करते थे। मैं रोज सवेरे उन लोगों को साष्टांग प्रणाम किया करता था। उस दिन सवेरे मैंने जाकर बाबाजी से कहा, 'बाबाजी, पहाड़ के नीचे जो लोग भस्म रमाये, तिलक लगाये और माला पहने साधु बने बैठे रहते हैं, ये साधु नहीं है। रात को मैंने उन लोगों को कुछ सामान लिये हुए पहाड़ के ऊपर जाते देखा है।' बाबाजी ने कहा, 'हाँ, ये साधु नहीं, गुण्डे हैं। दिन को साधु का वेश बनाये रहते हैं और रात को बस्ती में जा डकैती करते हैं। चोरी के माल को पहाड़ पर ले जाकर एक गुफा में रख आते हैं। यह मुझे मालूम है। उन्हें किसी तरह यह न मालूम होने देना कि तुम्हें उनका भेद मालूम हो गया है; नहीं तो कठिनाई में पड़ जाओगे। अब तक उनके साथ जैसा**

आचरण करते आये हो, वैसा ही करते रहना।’ बाबाजी की बात मानकर मैं प्रतिदिन की तरह उन लोगों को साष्टांग प्रणाम करता रहा। लोगों को देखते ही वे साधु बनकर धूनी के पास जा बैठते थे और फिर किसी के न रहने पर गाँजे की दम लगाकर गोलमाल किया करते थे। किसी साधु को गांजा पीते देखते ही मुझे ऐसा लगता था कि ये भी उन्हीं के जैसे होंगे। बचपन से ही मैं किसी को गांजा पीते देखता था तो उस पर नाराज हो जाता था।

एक दिन बुद्धगया जाते समय रास्ते में वटवृक्ष के नीचे एक तेजस्वी साधु को देखा जो भस्म एमाये हुए थे और धूनी के पास बैठे थे। पास पहुँचते ही उन्होंने बैठने के लिए मुझे आसन दिया। उनको बार-बार दम लगाते देख मैं चिढ़ सा गया। मैंने उनसे कहा, ‘इतनी दमें लगाने से चित्त को स्थिर रखकर साधन-भजन किया जा सकता है? आप इतना अधिक गाँजा क्यों पीते हैं?’ साधु ने जरा हँसकर उत्तर दिया, ‘बैठो बच्चा, देखोगे कि क्यों गाँजा पीते हैं? अच्छा।’ अब उन्होंने अपने चेले से कहा, ‘अरे, दस चिलम गांजा एक ही दफा चढ़ाओ तो।’ चेला दस चिलमों में गांजा भरकर उन पर आग रखने लगा। साधु एक-एक चिलम लेकर एक ही दम में उसे साफ करने लगे। प्रत्येक बार दम लगाने पर ये धुएँ को घोंट जाते और देर तक कुम्भक करके, आँखें बंद किए हुए स्थिर रहकर धुएँ को छोड़ने लगे। उन्होंने मुझे उस धुएँ की ओर देखते रहने के लिए अँगुली से इशारा किया। मैंने धुएँ की ओर दृष्टि की तो प्रत्येक दम के धुएँ में, कुम्भक करने के बाद छोड़ते ही, दस महाविद्याओं की एक-एक

आकृति बनते देखी। क्रम से दस दमों के धुएँ में, साधु ने मुझे दस महाविद्याओं का रूप दिखा दिया। यहाँ थोड़ी देर तक बैठकर मैं बुद्धगया चला गया।

जाड़े, गर्मी, बरसात में, कई बार खुली जगह, मैदान में, जंगल या पहाड़ पर साधुओं को रहना पड़ता है। उन स्थानों पर अनेक प्रकार के जलवायु में बीमारी हो सकती है। उससे रक्षा पाने के लिए साधुओं को गांजा, चरस और कुचला आदि नशीली वस्तुओं का सेवन करना पड़ता है।

मदिरा और गांजा आदि नशे की चीजों का एक स्वाभाविक गुण यह है कि सेवन करने से वे स्वभाव की ठीक दशा के प्रकट कर देती हैं। कई अच्छे-अच्छे तान्त्रिक साधु संन्यासी भी आत्मपरीक्षा करने के लिए, स्वभाव पर यथार्थ रूप से अधिकार हो पाया है कि नहीं, इसकी भलीभाँति जाँच-परख करने के लिए बड़े से बड़े प्रलोभन की वस्तु को दृष्टि के सामने रखकर उक्त नशे की वस्तुओं का सेवन किया करते हैं। और ये उस समय बड़ी बारीकी से सदा आत्मपरीक्षण करते हैं कि नशा करने से भीतर की दशा कैसी होती है। अच्छे साधु कभी नशे के वशीभूत नहीं होते, आवश्यकता भर के लिए उसका सेवन मात्र कर लेते हैं।

दया और सहानुभूति में साधारण नीति नहीं टिकती।

इस बार दो-तीन चोर, बहुत रात बीते भिन्न-भिन्न समय पर हमारे आश्रम में आये; किन्तु कोई सुविधा न पाकर चले गये।

आश्रम में चोरों के प्रवेश करते ही ठाकुर उनको आवाज देते हैं 'अजी हम जाग रहे हैं।' ठाकुर की उक्त बात कई दिन सुनते रहने से चोरों ने आश्रम में आना बन्द कर दिया है। यह हाल मालूम होने पर हम में से कोई-कोई यह सोच विचार करता है कि 'ठाकुर ऐसा क्यों करते हैं? चोर को तो पकड़कर दण्ड देना चाहिए। शायद चोरों पर अत्याचार हो जाय, इसी से जान पड़ता है, ठाकुर प्रतिदिन उन्हें सावधान कर देते हैं ताकि वे खिसक जायें। ठाकुर के आगे यह चर्चा छेड़ने पर उन्होंने कहा-**जहाँ पर दया और सहानुभूति होती है, वहाँ साधारण नीति नहीं बरती जाती। गाजीपुर के पौहारी (पय-आहारी) बाबा प्रायः सदा समाधि में रहते थे। सप्ताह में दो तीन दिन, थोड़ी देर के लिए, गुफा का दरवाजा खोल देते थे। उस समय बड़े-बड़े आदमी उनके दर्शन करने जाते थे। बहुत लोग कीमती चीजें भी बाबाजी को देते थे। ये चीजें बाबाजी की गुफा में ही रखी रहती थी। बाबाजी केवल पाव भर दूध पीते थे। एक दिन प्रातःकाल बाबाजी गुफा से निकल कर गंगा नहाने गये, उसी अवसर पर एक चोर बाबाजी की गुफा में घुस गया और यहाँ पर जितनी चीजें थी उनको उसने कम्बल की गठरी में बाँध लिया। इसी समय बाबाजी स्नान करके ऊपर आये। उनकी नजर पड़ते ही गठरी छोड़कर चोर भाग खड़ा हुआ। अब बाबाजी गुफा में जाकर आसन पर नहीं बैठे। उन्होंने तुरन्त उस गठरी को किसी तरह उठाकर सिर पर रखा और लाठी के सहारे से धीरे-धीरे रास्ता चलने लगे। आठ दस जगह रास्ते में विश्राम करके वे पाँच-छः घंटे में डेढ़-दो मील रास्ते को बड़ी मुश्किल से तय करके चोर के घर हाँफते-हाँफते पहुँचे। गठरी**

उतार कर उन्होंने चोर को बुलाकर कहा, 'बेटा मैं बूढ़ा आदमी हैं, मुझ पर तुमने जरा भी दया न की। इतनी बड़ी गठरी बाँध कर मेरे लिए छोड़ आये। लाठी के सहारे भी मैं अच्छी तरह नहीं चल पाता, मुझे कष्ट होता है, इतने भारी बोझ को मैं बूढ़ा आदमी भला दो मील तक लादकर ला सकता हूँ?' अब चोर बाबाजी के पैर पकड़कर रोने लगा। बाबाजी ने कहा, 'बेटा इसमें तुमने अपराध ही कौन सा किया है? अभाव के मारे कष्ट भोगते हो और मेरे पास अनावश्यक चीजें पड़ी हुई हैं। इनके मिल जाने से तुम्हें फायदा होगा। लोगे क्यों नहीं? हाँ, आशा करके बाँधकर छोड़कर न चले आते तो अच्छा होता। मैं तो बूढ़ा हूँ।' बाबाजी के इस व्यवहार से चोर में भी परिवर्तन हो गया। साधारण नीति की दृष्टि से तो इस चोर को जेल भेजना ही ठीक होता यही कहेंगे।

जरा रुककर ठाकुर ने फिर कहा-**बहुत दिन की बात है, प्रचारक रहते एक दिन मैं अधिक रात होने पर मछुवाबाजार होकर डेरे की ओर जा रहा था। मैंने फुटपाथ पर एक स्त्री देखा। यह फटी-फुटी मैली साड़ी पहने बड़ी व्यस्तता से कभी रास्ते के इस ओर, कभी उस-ताक रही थी। उसका सूखा हुआ मलिन-मुख और एक प्रकार की दीनतापूर्ण दृष्टि देखकर मेरे हृदय में धक्का सा लगा। मैंने पूछा, 'माता, इतनी रात को इस तरह क्यों खड़ी हो?' उसने उत्तर 'देखिए, तीन-चार दिन से कहीं कुछ रोजगार नहीं मिला। मैंने दो दिन से कुछ खाया नहीं है। उसकी बातें सुनकर मैं रो पड़ा। उससे कहा, 'जरा ठहरो, देखो, आज भगवान कुछ देते हैं कि नहीं।' अब मैंने ग्यारह बजे रात तक**

घूम-फिरकर, कई ब्राह्मसमाजी मित्रों से माँगकर, पाँच रुपये एकत्र किये। उनमें से आठ आने की खाने की वस्तु, ढाई रुपये की अच्छी साड़ी ओर दो रुपये नकद लेकर मैं उसके पास गया। उसको नमस्कार करके और उसके हाथ में वे सब चीजें देकर मैंने 'माँ, यह भोजन ले जाकर खाओ। आज भगवान् ने तुमको यही दिया है। और यह साड़ी पहनकर राह में खड़ी होना।' मैं नहीं जानता कि क्या करने से क्या होता है। उस दिन से उपासना में, भगवान् की कृपा का अनुभव विशेष रूप से होने लगा।

बाल पण्डित और ठाकुर।

हमारे गुरुभ्राता श्रीराधारमण बाबू के पुत्र, पाँच-सात वर्ष के बालक, अधपगले 'छोटे से पण्डित' ने बदन में धूल लपेटे नंग धड़ंग दौड़ते आकर अपने घर की एक गौ को पकड़ लिया। पण्डित ने उस गौ को ठाकुर से बारह-चौदह हाथ के फासले पर तालाब-किनारे एक पेड़ से लम्बी डोरी से बाँध दिया और आवाज देकर ठाकुर से कहा-'गोस्वामी, गौ बँधी है, देखना छूट न जाय; मैं चला।' अब पण्डित दोनों हाथों से पीछे की ओर पीटकर, खेलने के लिए भाग गया। उस समय ठाकुर गौ की ओर मुँह करके बैठ गये। और कुछ न करके, भावावेश में मग्न न होकर वे लगातार गौ की ओर देखने लगे। कोई दो बजे से लेकर साढे पाँच बजे तक उसका पता न चला। दिन डूबने से जरा पहले उस बाल पण्डित को आश्रम के भीतर होकर जाते देखकर ठाकुर ने उसको पुकार कर कहा- **पण्डित! अपनी गौ ले जाओ? मैं तभी से उसको देख रहा हूँ।**

पण्डित ने दौड़ते हुए आकर कहा 'अच्छा, गौ यहीं पर है? अच्छी बात है, लिये जाता हूँ।' वह गौ को ले गया। ठाकुर भी आसन से उठकर शौच को गये।

ठाकुर का स्वप्न; साधु का विश्वास।

गत रात्रि को तन्द्रावस्था में एक बहुत अच्छा स्वप्न देखा है। देखा, 'धर्म को प्राप्त करने के लिए अनेक स्थानों में घूम-फिरकर गेण्डारिया आश्रम आ गया हूँ। ठाकुर के सामने जाकर देखा, उनके माथे पर सुन्दर जटा है, रंग हलका ताम्रवर्ण का है, शरीर खूब लम्बा चौड़ा है? हथेली में अँगुली लगाये जप की मुद्रा में बिलकुल सीधे तने हुए, आसन पर स्थिर बैठे हैं और सामने की ओर देख रहे हैं। उन्हें अपने असाधारण साधन के प्रभाव से मानो सारे ब्रह्माण्ड की कुछ परवाह नहीं। उनसे दीक्षा लेकर मैंने कुछ समय तक अनेक स्थानों में रहकर साधन-भजन किया। अन्त में, अभी ठाकुर के दर्शन करने के लिए उनके पास आकर देखता हूँ कि वे तो अब वही पहले की तरह नहीं है। वह उग्र तेजःसम्पन्न आकृति बिल्कुल बदल गई; अब उनका दूसरा ही रूप हो गया। जटाएँ कमर तक लम्बी हो गई हैं। स्निग्धज्योतिर्मय जरा साँवले मोटे ताजे गोस्वामीजी स्थिर शान्त भाव से माधुर्य रस में डूबकर, अपनी अवस्था में विभोर होकर मानो ढुलमुल हो रहे हैं। उस चित्तमोहन रूप की ओर देखकर मैं मुग्ध हो गया। तब ठाकुर ने माथा उठाकर मेरी ओर देखकर पूछा, 'क्यों?, क्या चाहते हो? दीक्षा लोगे?' मैंने उत्तर दिया, 'हाँ, लूँगा।' ठाकुर ने कहा, 'पहले जिनसे दीक्षा ली है, उनको छोड़ना होगा। मैंने कहा, 'आपको देखकर मैं तो उस रूप को

भूल गया हूँ' तब ठाकुर ने मुझे दुबारा दीक्षा दी। नींद टूट जाने पर अभी तक ठाकुर का वह रूप पल भर के लिए भी भूल नहीं पा रहा हूँ, अन्तःकरण में मानो अपूर्व रूप की एक छाप पड़ी हुई है। अवसर पाकर एकान्त में मैंने ठाकुर को यह हाल सुनाया तो उन्होंने कहा- **इन स्वप्नों को लिख लेना चाहिए। एक मिनिट के स्वप्न में एक जन्म का भोग भी समाप्त हो सकता है। मेरे जीवन की एक दिशा को स्वप्न ने स्पष्ट कर दिया है। पहले मैं स्वप्न में देखी बातों पर विश्वास नहीं करता था, फिर सब देख-सुनकर विश्वास करना पड़ा।**

ब्राह्मधर्म के प्रचारक की अवस्था में, बहुत समय पहले, एक बार मेरा हार्ट डिजीज (हृद्रोग) बहुत बढ़ गया। दर्द होते ही मैं बेहोश हो जाता था। एक मिनट पहले तक समझ न पाता था। न जाने कब, कहाँ, किस दशा में गिर पड़ूँ या मर जाऊँ, इस आशंका से मेरी देह की रक्षा के लिए एक दरबान रखा गया था। कहीं आ-जा नहीं पाता था, इससे मुझे बुरा लगता था। ऐसा लगता कि जब कुछ काम-काज ही नहीं कर पाता, तब जीवित रहने से लाभ ही क्या? मैं उन दिनों कार्नवालिस स्ट्रीट के एक घर में रहता था। रात के पिछले पहर स्वप्न देखा, जगन्नाथ घाट पर कई साधु आए हुए हैं। उनमें से एक जटाधारी साधु भस्म रमाये, कम्बल ओढे, धूनी जलाये हुए बैठे हुए हैं। उन्होंने हाथ के इशारे से मुझे बुलाया और कहा, 'बच्चा, यहाँ आओ, दवा ले लो, बीमारी छूट जायगी।'

स्वप्न देखकर मैं जाग पड़ा, बहुत ही बेचैनी हुई, सोचा 'एक बार गंगा-किनारे जाकर देख ही क्यों न लूँ।' मैं बाहर आ गया

और चल पड़ा। गंगा-किनारे जगन्नाथ घाट पर जाकर देखा कि गंगासागर के यात्री बहुत से साधु वहाँ पर बैठे हुए हैं। स्वप्न में मैंने जिस स्थान पर साधु को देखा था, वहाँ जाने पर देखा कि उक्त साधु धूनी जलाये बैठे हुए हैं। मुझे देखकर उन्होंने बडे स्नेह से कहा, 'बैठो बच्चा, दवाई लोगे?' फिर एक डिबिया में से बहुत थोड़ी सी एक भस्म निकालकर मेरे हाथ और कहा, 'इसको पा लो, अब कभी मूर्च्छा नहीं आयेगी। हमारे पास और दवाई नहीं है। होती तो तुम्हारी बीमारी छूट जाती।' फिर उन्होंने धूनी में से भस्म मुझे देकर कहा 'कुछ दिनों तक इस भस्म को शरीर में अच्छी तरह रगड़ते रहना।' मैंने भस्म ले ली। कई दिन तक भस्म को प्रतिदिन शरीर मला। उस समय मेरे कई ब्राह्म मित्र मुझे बड़ा भारी कुसंस्कारी समझने लगे। किन्तु उस समय से न तो हृद्रोग हुआ और न बेहोशी ही। उक्त घटना के बाद से साधुओं पर मेरी खूब श्रद्धा बढ़ गयी। रास्ते में या घाट पर, कही साधुवेश को देखते ही मैं भक्ति से नमस्कार किया करता था। 'यह तो मैं जानता नहीं हैं कि किसके भीतर क्या है। फिर नमस्कार कर लेने में दोष ही क्या? दैवयोग से यह नमस्कार किसी महापुरुष को हो जाय तो बहुत कल्याण भी हो सकता है।'

मैं एक दिन मिर्जापुर स्ट्रीट होकर जा रहा था, कि एक ऊँचे से साधु को जल्दी-जल्दी आते देखा। ये गरीब के वेश में थे और दण्ड-कमण्डलु लिये हुए थे। दूर से देखकर उनको नमस्कार करने के लिए मैं 'फुटपाथ' के दूसरी ओर जाकर खड़ा हो गया। जब ये समीप आये तो मैंने हाथ जोड़कर उनको नमस्कार

किया। चलते हुए ही उन्होंने मेरे माथे पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। तब ऐसा लगा मानो किसी ने मेरे सिर पर आधा मन बर्फ रखा है। मेरा सारा शरीर ठण्डा हो गया। साथ जाने का विचार करते ही साधु ने मेरी पीठ थपथपाकर कहा 'चलो बच्चा, चलो।' अब वे तेजी से चलने लगे। मैं भी उनके पीछे पीछे चला, वे न मालूम किस तरह, किस ओर, कहाँ से ले गये, कुछ भी नहीं जानता। मानो किसी ने 'मेस्मेरिज्म' कर दिया हो। थोड़ी देर में देखा कि ईडन गार्डेन पहुँच गया हूँ। साधु ने मुझे एक पेड़ के नीचे बैठाकर बहुत उपदेश दिये। वे बारंबार कहने लगे कि बिना गुरु के कुछ नहीं होता। मैंने उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की तो कहने लगे, 'नहीं, यह नहीं हो सकता; तुम्हारे लिए तो गुरु निर्दिष्ट हैं, वे स्वयं तुम्हें समय पर ढूँढ लेंगे, व्यग्र मत होना।' फिर मैं उनका अनुसरण करने की इच्छा से उनके पीछे-पीछे चलने लगा। हावड़ा के पुल पर चलते-चलते एकाएक साधु न जाने कहाँ अदृश्य हो गये। इस घटना के पश्चात् साधुओं पर मुझे और भी अधिक श्रद्धा हो गई।

एक बार स्वप्न में देखा-भगवान् को प्राप्त करने के लिए अनेक स्थानों में घूमते-फिरते एक जगह पहुँचते ही एक साइन बोर्ड उड़ते-उड़ते मेरे सामने आ गया। साइन बोर्ड में बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था 'इस रास्ते से चलो।' लिखावट के बाद उसमें बँधी मुट्ठी का एक हाथ था, जो तर्जनी से निर्देश कर रहा था। साइन बोर्ड शून्य मार्ग में चलने लगा। हाथ मेरे आगे-आगे चला जा रहा था; मैं न जाने कितने जंगलों, पहाड़ों और दुर्गम स्थानों में, राह-बेराह चलते-चलते एक भयंकर नदी के किनारे

पहुँच गया। नदी का ओर-छोर न था। वहाँ पहुँचने पर नदी किनारे ही एक और साइन बोर्ड देखा। उसमें लिखा था 'विश्वास करनेवालों के लिए पार जाने का घाट।' फिर और न जाने क्या-क्या देखा। ऐसे स्वप्न मात्र स्वप्न नहीं है; बिल्कुल ठीक अवस्था ही किसी स्वप्न द्वारा प्रकट हो जाती है।

LITSENTS

जस स्थान पर साधु को देखा था, वहाँ

URL

जाती है।

एक महात्मा का मोची का पेशा।

आज ठाकुर ने बातचीत के सिलसिले में कहा-**एक दिन मछुवाबाजार स्ट्रीट से होकर जा रहा था कि मेरा जूता टूट गया। रास्ते में एक मोची को देखकर उसे मरम्मत करने को जूता दे दिया। किन्तु उसने कुछ मोल भाव नहीं किया। मरम्मत हो जाने पर मैंने उसे पैसे दे दिये। उसने उन पैसों में से मुझे दो पैसे वापस कर दिये। अब यह तुरन्त अपने यंत्र, सुतारी आदि औजार समेटकर वहाँ से रवाना हो गया। मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। मैं भी उसके पीछे- पीछे चलने लगा। उसने गंगा-किनारे बाबू घाट पर जाकर मरम्मत करने का सामान रास्ते के नीचे एक टूटी बक्से के भीतर छिपाकर रख दिया। फिर उसने गंगास्नान करके तिलक लगाया। सन्ध्या तर्पण आदि किया। अब वह खिदिरपुर की ओर चला। मैं भी पीछे-पीछे जाने लगा। वह एक घर के भीतर गया। मकान के दरवाजे पर पहुँचते ही एक व्यक्ति**

आया और मुझे अतिथि समझकर घर के भीतर ले गया। यहाँ जाकर मैंने देखा कि वह पहले वाला चमार तो एक महन्त है। उसके बहुत से शिष्य-सेवक थे। अखाड़े में ठाकुरजी प्रतिष्ठित थे। अच्छी धूमधाम थी। यह सब देखकर मैं अवाक् हो गया। मैंने महन्त से पूछा, 'आपके इतने शिष्य-सेवक हैं, आप स्वयं महन्त हैं, ब्राह्मण हैं, किसी चीज की कमी है नहीं, फिर आप जूतों की मरम्मत क्यों करते हैं?' मेरा प्रश्न सुनकर महन्तजी रो पड़े; हाथ जोड़कर गुरुदेव का स्मरण करके बार-बार नमस्कार करते हुए कहने लगे-'मेरे गुरुजी बड़े दयालु थे। एक दिन अतिथि को भोजन कराने के पहले ही भोजन कर लिया था, इससे उन्होंने मुझको धमकाकर कहा-'अरे तू साधु क्यों हुआ, तू तो चमार होता।' अपने गुरुदेव के उस वाक्य को वृथा न होने देने के लिए मैं उसी दिन से मोची का पेशा करके अपना निर्वाह करता हूँ। दिन भर चमार का पेशा करके अपने भोजन के लिए चार आने मिलते ही मैं चला आता हूँ। अन्तकाल में गुरुदेव ने दया करके अपनी गद्दी पर मुझे बैठा दिया है। फिर भी यथाशक्ति चमार के पेशे से, उन्हीं की सेवा करके, दिन बिता रहा हूँ। मुझे आशीर्वाद दीजिए जिससे अंतिम दिन तक मैं अपने गुरुदेव के उसी वाक्य की रक्षा करता लोक से जा सकूँ।'

इनको देखने के बाद मैंने समझा कि ऐसे वेश बदलकर महात्मा लोग जहाँ-तहाँ रह सकते हैं; बाहरी शकल-सूरत, वेश-भूषा और आचार-व्यवहार देखकर जब उनको पहचान लेना कठिन है, तब यह कैसे समझूँ कि कौन किस कोटि का है। तभी से मैं रास्ते पर पहुँचते ही स्त्री व बालक, वृद्ध, मेहतर, चमार,

डोम, कुली-मजदूर जिसे रास्ते पर सामने और दोनों ओर पाता हूँ, उसी को मन ही मन नमस्कार करता चला जाता हूँ। ऐसा करने से ये महात्मा और महापुरुष भी सामने आ जाने पर पकड़ में आ जाते हैं, जो भीड़भाड़ में, समय समय पर, छद्मवेश में घूमते फिरते हैं।

कुलगुरु, ग्रन्थगुरु, स्त्रीगुरु, सिद्धगुरु और सद्गुरु के संबंध में विविध प्रश्नोत्तर।

वास्तविक धर्म को प्राप्त करने के लिए प्रबल आकांक्षा और मन का उत्साह बहुतों के भीतर रहने पर भी आजकल उपयुक्त सद्गुरु न मिलने से उस विषय में बड़ी असुविधा होती है। जो लोग कुलगुरु का कार्य किया करते हैं, देश की दुरवस्था और समय के प्रभाव से, उनकी अब वैसी अवस्था नहीं है। वर्तमान शिक्षा और समय के प्रभाव से लोगों की मति-गति भी दूसरे प्रकार की हो गई है। सरल विश्वास के साथ अपने कुलगुरु से दीक्षा लेने पर सभी को तृप्ति नहीं होती। इसलिए कई लोग पुस्तक पढ़कर योगाभ्यास की चेष्टा करते हैं। किन्तु इससे कोई कठिनाई में पड़ जाता है। अतएव अब क्या उपाय है? इस विषय में संशय होने पर ठाकुर से पूछा कि 'कुलगुरु किसे कहते हैं। कुलगुरु से दीक्षा लेने पर आजकल लोगों को वैसा फल क्यों नहीं मिलता? इसमें किसी प्रकार के अनिष्ट की सम्भावना तो नहीं है?'

प्रश्न सुनकर ठाकुर इस प्रकार कहने लगे-**आजकल गुरु करना बड़ी कठिन समस्या का विषय हो गया है। पहले हमारे देश में जो लोग गुरु थे, वे सभी सिद्ध पुरुष थे। कुलकुण्डलिनी शक्ति**

जाग्रत् होने पर ही उन्हें कुलगुरु कहा जाता था। आजकल कुलगुरु का अर्थ लोग वंशपरम्परागत गुरु समझते हैं। आजकल जो लोग गुरु का कार्य करते हैं, पता लगाने से ज्ञात होता है कि उनके वंश में कोई न कोई सिद्ध पुरुष था। कुछ समय पहले भी सिद्ध पुरुषों के वेश में जो लोग गुरु का कार्य करते थे, ये सिद्ध न होने पर भी बड़े शास्त्रज्ञ पण्डित थे। ये ज्योतिष आदि के भी अच्छे ज्ञाता थे। कोई दीक्षा लेने की प्रार्थना करता था तो गुरु लोग उसकी जन्मपत्री लेकर जन्मलग्न से गणना करते थे; गणना के द्वारा दीक्षाप्रार्थी की प्रकृति को मालूम कर लेते थे कि वह सात्त्विक है या राजसिक अथवा तामसिक है। फिर उस व्यक्ति के देह, मन और प्रकृति के साथ किन देवता का संबंध है, वह स्थिर करते थे। उसके बाद उस व्यक्ति की प्रकृति के साथ चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह और सारे ब्रह्माण्ड तक का योग अनुकूल है या प्रतिकूल-यह भी निरूपित कर लेते थे। इसके पश्चात् जिन अक्षरों का स्मरण करने से सारा ब्रह्माण्ड, उसकी गुणानुसार प्रकृति के अधिष्ठाता देवता के अभिमुख उसे अग्रसर करने में सहायक होगा, उन्हें भी एक-एक करके गणना द्वारा मालूम कर लेते थे। अन्त में उन अक्षरों की संयोजना द्वारा मन्त्र का उद्धार करके, तभी वे शिष्य को मंत्र प्रदान करते थे और उसके अनुरूप पूजा की रीति भी बतला देते थे। इस रीति से दीक्षा होने पर गुरु की कोई सहायता न मिलने पर भी, शिष्य यदि श्रद्धापूर्वक यथाविधि मन्त्र का जप और उन क्रियाओं को करता रहे तो उसके साथ साथ ब्रह्माण्ड की एवं उस देवता की सहायता मिल जाने से इष्टवस्तु की प्राप्ति की ओर वह अग्रसर

हो सकता है। ठीक प्रकृति के अनुरूप, रीति के अनुसार दीक्षा मिलने पर, साधक यदि प्रणाली के अनुसार चेष्टा करे, तो उसका कुछ न कुछ फल अवश्य मिलेगा। इससे अनेक स्थानों में देखा जाता है कि गुरु के साधारण अवस्था में रहने पर भी शिष्य को सिद्धि मिल जाती है। आजकल ठीक इस प्रणाली से दीक्षा प्रायः नहीं दी जाती। शाक्त के घर में वैष्णव प्रकृतिवाले व्यक्ति को, गुरु आकर, वंश की रीति के अनुसार शक्ति की उपासना ही सिखा जाते हैं। वैष्णव वंश के किसी शाक्त भाव के व्यक्ति को विष्णुमन्त्र ही देकर उस वंश के अनुकूल पद्धति बतला जाते हैं। यों प्रकृति के विरुद्ध मार्ग पर चलकर साधन-भजन करने से कुछ भी लाभ होता नहीं देखा जाता। किसी तामस भाववाले को, सात्त्विक उपासना करनी हो, तो उसकी प्रकृति-शरीर तक के अणु-परमाणु का प्रलय साधित करके उनको सात्त्विक उपादानों द्वारा गठित करना पड़ता है, नहीं तो सत्त्वगुणी देवता को प्रसन्न कर पाना असम्भव है। इसी प्रकार यदि कोई सत्त्वगुणी तामस देवी-देवता की उपासना करना चाहे, तो उसे भी उक्त प्रकार से परिवर्तित होना होगा। यह कार्य सहज नहीं है। इसीलिए पन्द्रह वर्ष की उम्र में साधन लेकर अस्सी वर्ष तक जप- तप करके भी व्यक्ति किसी देव-देवी के दर्शन अथवा कृपा की प्रत्यक्षता के विषय में कुछ भी साक्ष्य नहीं दे सकता। फिर कोई-कोई बचपन में ही थोड़े दिन साधन-भजन करने पर, अपने उपास्य देव की कृपा के विषय में, स्पष्ट प्रमाण दिया करते हैं। जो लोग आज कुलगुरु का काम करते हैं वे प्रायः दूसरा और कोई विचार किये बिना ही, केवल वंश की धारा को पकड़कर,

साधन दे देते हैं, इससे बहुत अनिष्ट होता है; यही कारण है कि साधन-भजन करने पर लोग फल नहीं पाते हैं, तो उनको मन्त्र पर, क्रिया पर और देवी-देवता पर अविश्वास हो जाता है। फिर भी कुलगुरु से यथाविधि दीक्षा अथवा गुरुशक्ति की कोई सहायता न पाने पर भी और किसी अनिष्ट की वैसी आशंका नहीं है। बल्कि साधक की श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा और चेष्टा रहने से उससे लाभ ही होता है किन्तु अज्ञात-कुल-शील वाले से दीक्षा ले लेने से अनेक अवसरों पर विषम संकट हो जाता है।

प्रश्न-'आज कल कई पुस्तकों में योगाभ्यास की समस्त प्रणाली लिखी हुई मिल जाती है। उसको देखकर योगाभ्यास करने से क्या वैसा लाभ नहीं होता?'

उत्तर-**लाभ होना दूर रहा, केवल पुस्तकों के सहारे योगाभ्यास करना तो बहुत ही भयानक है। बहुत लोग तो पुस्तकों की सहायता से योगाभ्यास करने की धुन में हार्निया, कुष्ठ, मस्तिष्क के रोग और कभी-कभी दूसरे प्रकार के उग्र रोगों के पल्ले पड़कर बिल्कुल सत्यानाश कर लेते हैं। साधन-भजन की किसी भी क्रिया की कुशलता बिना जाने, केवल पुस्तक देखकर अभ्यास नहीं करना चाहिए। प्रायः सभी क्रियाओं के करने की विधि को शास्त्रकारगण संकेत में ही लिख गये हैं। उन क्रियाओं का अभ्यास करना हो तो क्रियावान् गुरु से उनको ठीक-ठीक संकेत समझ लेना चाहिए, प्रणाली से सीखना चाहिए। नहीं तो कुछ हाथ नहीं लगता।**

प्रश्न-'कुछ स्त्रियाँ भी गुरु हैं, वे दीक्षा देती हैं, सुना है कि वे सिद्ध हैं।'

उत्तर-**दिया करें। ये सिद्धा हों या महासिद्धा, ब्रह्मविद्या को प्राप्त कर लेने पर भी नारी देह कभी आचार्य नहीं हो सकती। गुरु की देह सदा पवित्र रहती है; उनकी सेवा करने, स्पर्श करने से शिष्य शुद्ध होता है। शास्त्रकार लोग किसी-किसी प्राकृतिक अनिवार्य कारण से, स्त्री शरीर स्वाभाविक अशुचि बतला गये हैं। ब्राह्मणी भी यज्ञोपवीत को नहीं धारण कर सकती; पर इस समय यदि कोई पहन ले तो क्या कर लोगे? शास्त्र की व्यवस्था और अनुशासन को जो लोग नहीं मानते परवाह नहीं करते, वे जो चाहे कर सकते हैं। उसकी बात ही क्या है?**

प्रश्न-'महापुरुषों की बात मानकर यदि कोई शास्त्रविरुद्ध कार्य करते हों तो?'

उत्तर-**महापुरुषों की बातें शास्त्रविरुद्ध नहीं होती। हाँ, शास्त्र की साधारण व्यवस्था के साथ उनका मेल नहीं भी बैठ सकता। इसी से यह कुछ शास्त्रविरुद्ध नहीं हो जायगा। 'विशेष अवस्थाओं के लिए व्यवस्था भी विशिष्ट होती है', यह शास्त्रों में लिखा है। शास्त्रविरुद्ध कार्य धर्मविरुद्ध कार्य करने को महापुरुष तो क्या स्वयं भगवान् ही कहें तो अभिमान रहते, विचार करने की बुद्धि रहते यदि कोई वैसा करेगा तो उसको तदनुसार दण्ड भी सहना पड़ेगा। भगवान् की बात मानकर ही तो धर्मराज युधिष्ठिर ने 'अश्वत्थामा हत इति गजः' कहकर प्रकारान्तर से झूठ बात ही कही थी; इससे उन्हें छुटकारा कब मिला? इसके लिए उन्हें भगवान् ने ही तो नरक के दर्शन कराये थे। ऐसे बहुत से दृष्टान्त हैं। भगवान् भी कोई क्रम पात्र तो है नहीं! शास्त्रकारों ने सभी दिखाया है।** ये बातें होने पर प्रश्न किया गया कि सिद्ध पुरुष

से दीक्षा लेने में किसी इष्ट अथवा अनिष्ट की सम्भावना तो नहीं है। इस पर ठाकुर कहने लगे-**बिना सोचे समझे 'कोई सिद्ध पुरुष' सुनते ही उसके पास जाकर दीक्षा लेना भी ठीक नहीं है। सिद्ध न जाने कितने प्रकार के होते हैं। भूतसिद्ध, प्रेतसिद्ध, किसी विशिष्ट देवी-देवता के सिद्ध और ऐश्वर्यसिद्ध होते हैं। जिसका जो संकल्प है, उसकी प्राप्ति हो जाने से यह सिद्ध हो गया। मैं जो कुछ चाहता हूँ, उस विषय में जो सिद्ध नहीं है, वे मुझे वह मार्ग कसे बतला सकेंगे और उस विषय में सहायता ही क्या करेंगे? जो जिस विषय का सिद्ध है, वह मात्र उसी मार्ग को बता सकता है। सिद्ध हो जाने से ही कोई सर्वज्ञ नहीं हो जाता। और यह भी नहीं कहा जा सकता कि सिद्ध होने से वह धर्मात्मा भी होगा। धर्म के साथ किसी प्रकार का संपर्क न रखते हुए भी कितने ही लोग कितने ही विषयों में सिद्ध हो जाते हैं! सिर्फ योगांग के अभ्यास द्वारा, ऐश्वर्य की सहायता से, कोई व्यक्ति चन्द्रलोक, सूर्यलोक और नक्षत्रलोक में सशरीर अनायास आ जा सकता था, फिर भी वह नास्तिक था। अतएव किसी सिद्ध व्यक्ति से साधन लेने से पहले अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि वह कैसा सिद्ध है। सात्त्विक स्वभाव का कोई आदमी, सिद्ध नाम सुनते ही, यदि किसी कापालिक या पिशाच सिद्ध से दीक्षा ले ले और उसकी प्रणाली से मद्य, मांस आदि लेकर तामस साधन किया करे तो, इससे उसको कौन सा लाभ होगा? स्वभाव के विरुद्ध साधन करने पर, सिद्धगुरु की सहायता मिलने से मद्य, माँस आदि लेकर तामस साधन करने पर, सिद्धगुरु की सहायता मिलने से भी लाभ तो कुछ होगा नहीं, हाँ, अनिष्ट हो जायगा।**

इसलिए दीक्षा लेने से पहले, सिद्ध पुरुष जानकर भी, नियम से उसके साथ कुछ समय तक रहना चाहिए। धीरे धीरे उसका आचार-विचार, क्रियाकर्म और साधन-भजन देखे, फिर उसकी ओर चित्त आकृष्ट हो जाय और अपने लक्ष्य के विषय में भी वह व्यक्ति सिद्ध जान पड़े, तो उससे दीक्षा ली जा सकती है। ऐसा होने पर सिद्ध गुरु की सहायता और अपनी प्रकृति के अनुकूल साधन पाकर साधना की चेष्टा से वह शीघ्र सिद्धि पा सकता है।

इस प्रकार बताकर ठाकुर चुप हो गये; उनसे फिर पूछा गया- 'सद्गुरु क्या हैं? उनकी शिक्षा की कौन सी विशेषता है? और वह दीक्षा मिलने पर कैसी अवस्था होती है?'

भावावेश में रुक-रुककर ठाकुर इस प्रकार कहने लगे-**'सद्गुरु से दीक्षा लेना बिल्कुल स्वतन्त्र प्रकार का है। वहाँ किसी समय-असमय और योग्य-अयोग्य का विचार नहीं है। वह तो उनकी कृपा पर निर्भर है। यह दीक्षा चाहे जिस अवस्था में, चाहे जहाँ, एकमात्र भगवान् की कृपा से ही हुआ करती है। भगवान् ही सद्गुरु हैं। उनके पदाश्रित भगवज्जन महापुरुष ही सद्गुरु हैं। सद्गुरु शिष्य नहीं करते, वे तो गुरु करते हैं। ये शिष्य के भीतर अपने इष्टदेव को प्रतिष्ठित करके, उन्हीं की सेवापूजा करते हैं। शिष्य की देह, उनके देवता का मंदिर है। देवमंदिर में किसी प्रकार का त्रुटि या अनाचार होने पर उसको देखकर जैसे सेवक लज्जित होता है, दुःखी होता है, वैसे ही शिष्य की किसी प्रकार की दुर्दशा देखने से, ये गुरु स्वयं, सेवा-पूजा में त्रुटि होना समझकर म्लान हो जाते हैं। सद्गुरु का दिया हुआ नाम (मन्त्र) न तो नाम है, न अक्षर है और न एक शब्द ही, इस नाम में ही**

भगवान् की अनन्त शक्ति निहित रहती है। शिष्य के भीतर इस शक्ति का संचार ही सद्गुरु की दीक्षा है। यह दीक्षा, भगवान् की कृपा से, किसी को एक बार भी प्राप्त हो जाय तो फिर उसके करने के लिए कुछ भी नहीं रह जाता। उसके जीवन का समस्त कार्य प्रत्येक श्वास-प्रश्वास उस एक गुरु के इच्छाधीन हो जाते हैं। जिस तरह भृंगकीट तिलचट्टे को पकड़ता है उसी तरह सद्गुरु शक्तिसंचार करके, दीक्षा देकर, शिष्य को धीरे-धीरे आत्मसात् कर लेते हैं। शास्त्र का वचन है-'दीक्षा ग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्।'

साधक का प्रयास ही उन्नति का सोपान है, निराशा में आश्वासन।

जीवन की अनेक प्रकार की दुरवस्था की चिन्ता करके, धर्म की प्राप्ति के विषय में बिल्कुल निराश होकर मैंने ठाकुर से कहा, 'लगता है, जब तक ब्राह्मसमाज में था तब तक अच्छा था। तब एक सत्य पर अनुराग था, धर्म में उत्साह था और सभी ओर उन्नति के लिए प्राणप्रण से चेष्टा थी। सभी ओर एक उत्तम दशा का आनन्द पाता रहा। अब वैसा इस जीवन में कुछ नहीं पा रहा हूँ। कुछ एक अवलम्बन करके दस-पाँच दिन चेष्टा करते न करते ही हैरान हो जाता हूँ, एक दोष को दूर करने जाता हूँ तो भीतर की और भी दस भूलें निकल पड़ती है। हाथ-पैर टूट से जाते हैं, मन का उत्साह ठण्डा पड़ जाता है। ऐसा क्यों होता है? सद्गुरु का आश्रय पाकर मेरी उन्नति का परिणाम क्या ऐसा हुआ?'

ठाकुर ने कहा-**जिनको यह साधन मिला है, उनमें से कई**

लोगों की प्रायः यही दशा है। मैं सब विषयों का कर्ता हूँ, अपनी उन्नति मैं स्वयं कर सकता है, जब तक यह अभिमान रहता है, तब तक मनुष्य भगवान् की ओर नहीं देखता। इस अभिमान को नष्ट करने के लिए ही, ऐसी दशा के आने की आवश्यकता होती है। मनुष्य कुछ नहीं है, वह कुछ भी नहीं कर सकता, यही भलीभाँति समझना चाहिए। नहीं तो भगवान् की ओर किसी की दृष्टि न जाएगी,उन्नति भी नहीं होगी।

यह कहकर ठाकुर थोड़ी देर तक स्थिर बैठे रहे, फिर भावावेश में झूमकर कहने लगे-**गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बार-बार संग्राम करने के लिए कहा है। यह संग्राम सभी साधकों के जीवन में आएगा। अनेक प्रकार की दुरवस्थाओं में पड़कर साधक को प्रलोभन का सामना करना पड़ेगा-युद्ध करना पड़ेगा। इस संग्राम में कभी तो साधन प्रलोभन को पछाड़ देगा और कभी प्रलोभन साधक को परास्त करेगा। इस विषय संग्राम में साधक को बहुत समय लगाना होगा। इस समय गुरु के दिये हुए नाम को ही अस्त्र बनाकर, बड़े धैर्य से, रिपुओं के साथ प्राणापण युद्ध करना पड़ता है। इस संग्राम की दशा की भाँति भयानक दशा साधक जीवन में दूसरी नहीं है। बारंबार जी-जान से चेष्टा करने पर भी साधक जब अनेक प्रकार के भयंकर प्रलोभनों और रिपुओं द्वारा बारंबार परास्त होने लगता है, तब उसका धैर्य छूट जाता है। 'साधन भजन करने से कुछ भी नहीं होता, साधन-भजन सब व्यर्थ है' ऐसा सोचकर साधक बिलकुल हाथ-पैर ढीले कर देते हैं, सुस्त हो जाते हैं, उनका भोग समाप्त होने में देर लगती है। और जो लोग बार-बार गिर जाने पर भी, बदन झाड़कर फिर**

उठ जाते हैं, संग्राम से मुँह नहीं मोड़ते, उनका भोग जल्दी समाप्त हो जाता है। जिसका जैसा स्वभाव होता है, यह वैसा ही संग्राम कर सकता है, कोई कम कोई अधिक। किन्तु अन्त में सभी को इस युद्ध में परास्त होना पड़ेगा। युद्ध में पग-पग पर परास्त होते-होते, जब बिल्कुल निस्तेज हो जायगा, हड्डी पसली टूट जाएगी, बिल्कुल चूर-चूर होकर चारों ओर अन्धकार देखने लगेगा, तब साधक समझेगा कि मेरे बल-बूते पर कुछ होने का नहीं, मैं तो बिल्कुल अधम हैं, मैं तो एक सामान्य काम भी नहीं कर सकता। तभी वह अपने को सचमुच हीन, पतित और अधम समझकर प्रबल शक्तिशाली की ओर ताकेगा; हृदय से उनका आश्रय लेगा, पूर्णतः उन्हीं पर निर्भर होकर, यथार्थ कृपा की प्रार्थना करेगा। अपनी कुछ भी क्षमता नहीं है, अपने को असार से भी असार समझकर, हृदय से भगवान् के शरणागत होते ही 'भक्तियोग' आरम्भ होता है। उस दशा में फिर साधक की अपनी किसी प्रकार की इच्छा, चेष्टा या स्वाधीनता नहीं रह जाती। सब कुछ भगवान् ही करते हैं, उसको स्पष्ट रूप से जानकर यह बिल्कुल उन्हीं की कृपा के भरोसे पर अपने को छोड़ देता है। भक्त जब अपने को। भगवान के चरणों में सम्पूर्ण रूप से उत्सर्ग कर देता है तब भगवत्कृपा से उसके आगे अनेक तत्त्व प्रकाशित होने लगते हैं। इन तत्त्वों के प्रकट होने की दशा ही 'ज्ञानयोग' है। गीता में जो कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग का विषय बतलाया गया है, उसका यही तात्पर्य है। तीव्र तपस्या, कठोर वैराग्य और प्राणपण से साधन-भजन करने पर भी वास्तविक अवस्था की प्राप्ति ही नहीं होती, बिना उनकी

कृपा के कुछ नहीं होगा, इस बात को भली भाँति समझने के लिए साधन-भजन है। अपनी चेष्टा और साध्य सभी असार है। एकमात्र उनका कृपा ही सार है।

ठाकुर कुछ देर ठहरकर फिर कहने लगे-**खूब संग्राम करो, जीवन में संग्राम के आने को भी महान् सौभाग्य समझो। बहुतों के जीवन में यह संग्राम आता ही नहीं। संग्राम का आरम्भ होते ही समझना की धर्मजीवन का सूत्रपात हो गया। जो लोग इस साधन के भीतर है, उन सबको इस संग्राम में पड़ना होगा, सभी को हृदय से समस्त रिपुओं से हार माननी होगी। अपनी यथार्थ भित्ति पर जाकर खड़ा होना होगा। एक बार अपनी जगह पर जाकर खड़े होते ही अपने को अत्यन्त हीन, पतित और कंगाल समझोगे। उस समय दीनबन्धु, पतितपावन, निर्धन के धन कहकर, प्रभु को पुकारना, साधारण सी बातों की बात या रटी हुई बात न होगी। अपनी दुरवस्था का अनुभव करके भगवान् को पुकारने पर, वह पुकार प्राणों की पुकार होगी। उस समय भगवान् भी दया करेंगे। निराश होने की बात नहीं है।**

१२९७ बं. सन् - चैत्र माह तक

तृतीय खंड समाप्त

श्री श्री गुरुदेवाय नमः।

श्री श्री सद्गुरुसंग

चतुर्थ खण्ड

(वैशाख, बंगला सन् १२९९ की डायरी)

रूप की शोभा नष्ट होने से भजन में विरक्ति।

गुरुदेव मेरे साधन भजन एवं जीवन की उन्नति के संबंध में जितना भी दिलासा क्यों न दिला रहे हों, मेरे अन्तःकरण की दुरावस्था देख मैं दिन पर दिन अत्यंत हताश हो रहा हूँ। गत वर्ष ब्रह्मचर्य ग्रहण करते समय ठाकुर ने मुझे दो नियमों के प्रति विशेष रूप से ध्यान रखकर चलने को कहा था। प्रथम तो-पैर के अँगूठे की ओर दृष्टि रखकर चलना, द्वितीय तो, प्रयोजन पड़ने पर पूछे जाने पर अत्यंत संक्षेप में उत्तर देना। इन दो नियमों में से किसी एक का भी निर्बाध रूप से पालन मुझसे अब तक न हो सका। पैर के अँगूठे की ओर दृष्टि रखकर चलने की कोशिश करते हुए काम रिपु अंशतः शांत तो हुआ लेकिन भीतर ही भीतर एक अन्य उत्पात् उत्पन्न हो रहा है। स्त्री दर्शन की स्पृहा बलवती न होते हुए भी स्त्रियाँ मुझे देखें-इस लालसा से माला तिलक द्वारा सुन्दर वेश धारण करता हूँ। ठाकुर ने उस दिन मुझसे कहा-**ब्रह्मचारी! दर्पण में मुँह देखे बिना नहीं चलता? ब्रह्मचारी को ऐसा नहीं करना चाहिए।**

मैं लज्जित होकर बोला-मुँह न देखने से तिलक कैसे लगाऊँगा?

ठाकुर ने कहा-**बायें हाथ की हथेली इस प्रकार रखकर**

उसकी ओर दृष्टि रखकर तिलक लगाया करो। क्रमशः उसमें अपना मुख देख पाओगे।

मैं ठाकुर के कहे अनुरूप अन्दाज से ललाट पर ब्राह्मणोचित त्रिपुण्ड्र और उस पर उर्ध्वपुण्ड्र ऐसा तिलक लगाने लगा, किन्तु वह ठीक प्रकार से न होने के कारण गुरुभ्रातागण मेरा उपहास करने लगे। तिलक ठीक न होने से मुख की शोभा नष्ट होगी यह सोचकर मैं सुबह से शाम तक अस्थिरता का बोध करने लगा। भीतर के ऐसे उद्वेग से मुझे साधन भजन में विरक्ति आने लगी। धीरे-धीरे मेरा नाम, ध्यान छूट गया। तब रुद्राक्ष धारण किए स्थानों में ज्वाला का अनुभव करने लगा और यह इतना बढ़ा कि बाहु के जोड़ों पर फफोलों जैसे चमड़ी निकलने लगी। मैं पीड़ा से अस्थिर हो गया।

ठाकुर से यह सब कहने पर ठाकुर ने कहा-**विधिवत् रुद्राक्ष धारण कर नियमानुसार चलने पर तमो व रजोगुण नष्ट होकर साधक विशुद्ध सत्त्वगुण में स्थिति लाभ करता है। सर्वदा नाम जप से अन्तःकरण शीतल न रख सको तो यह सब धारण नहीं करना चाहिए-रोग की उत्पत्ति होती है। अभी तुम कुछ दिन रुद्राक्ष उतार कर रख दो, तुलसी की माला धारण करो। ज्वाला कम होगी, उपकार पाओगे।**

अब मैं ऐसा ही कर रहा हूँ। रुद्राक्ष के त्याग से उज्ज्वल तेजस्वी रूप खोकर निरीह वैरागी सा हो गया हूँ। मेरा यह भद्दा रूप कोई न देख पाये इसलिए पहले से और भी नतमस्तक होकर रहता हूँ। भीतर से मृतप्राय निस्तेज हो गया हूँ। सदा लोगों की दृष्टि से बचकर रहने की इच्छा होती है। हे भगवान! केवल रूप की गरिमा लेकर पड़ा था। रुद्राक्ष उतरवाकर ठाकुर ने उसमें भी बाधा डाली। अब मैं

साधक का प्रथम कर्तव्य संयम। स्त्री संग त्याग तथा वीर्य धारण।

आश्रमवासी स्त्री पुरुष सभी मेरे वेश का परिवर्तन देखकर नाना प्रकार की बातें कर रहे हैं। सबके अज्ञात् किसी गुरुतर अपराध का ठाकुर ने यह दण्ड दिया है, ऐसा अनुमान कर कुछ लोग मेरी आलोचना भी कर रहे हैं। एक दिन अवसर पाकर इस सम्बन्ध में एक गुरुभाई ने ठाकुर से कहा-'ब्रह्मचारी के भोजन बनाते समय छोटी-छोटी लड़कियाँ उनके पास जाकर बैठती हैं। ब्रह्मचारी भी उन्हें बहुत प्यार करता है। ब्रह्मचारी आसन पर बैठा हो, तब भी लड़कियाँ उसके आसन से सटकर बैठ जाती है। ब्रह्मचारी कोई आपत्ति नहीं करता, बल्कि शायद उससे आनन्द ही पाता है। उसका इस प्रकार करना क्या ठीक है?' यह सब सुनकर मेरा हृदय जलने लगा,पर करता भी क्या। मेरा कुछ भी कह पाना सम्भव नहीं। मेरा मुँह बन्द है। ठाकुर उनकी बातें सुनकर मुझसे कुछ पूछे तक नहीं। सब कुछ स्वीकार करते हुए मुझे अनुशासनपूर्वक कहने लगे- **ब्रह्मचर्य ग्रहण करने पर स्त्री जाति से किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं रखना चाहिये। उनकी ओर देखना, उनके साथ बैठना, उनसे वार्तालाप नहीं करना चाहिए। स्त्री चाहे जो हो अत्यन्त वृद्धा हो, युवती हो या छोटी सी बच्ची ही क्यों न हो, सर्वदा उनसे दूर रहो अन्यथा यथार्थ ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं होती। स्त्री देह ऐसे उपादानों से बना है कि निर्विकार पुरुष के शरीर को भी आकर्षित करता है। यह वस्तु-गुण है। जीवन्मुक्त पुरुष जो देह**

धारण करता है, उसकी कुछ अधीनता भी उन्हें स्वीकार करनी पड़ती है। शास्त्र में भी इसके अनेक दृष्टांत हैं।

कुछ देर रुककर पुनः कहने लगे-**ब्रह्मचारी को सर्वप्रथम वीर्य धारण तथा सत्य रक्षा इन दो बातों का अभ्यास करना चाहिए। साधकावस्था में कायमनोवाक्य से स्त्री संग त्याग न करने पर वीर्य धारण नहीं होता। अज्ञातवश भी स्त्री देह का सम्पर्क हो जाने पर देह स्थित वीर्य चंचल हो जाता है। इससे ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है। वीर्यधारण न हो, तो सत्य रक्षा भी सहज नहीं हो पाती। वीर्यधारण व सत्यरक्षा के साथ-साथ धैर्य, एकाग्रता, प्रतिभा आदि गुण भी अपने आप साधक लाभ करता है। ये दो बातें एक बार हासिल कर लेने पर सारी सिद्धियाँ साधक के लिए सहज साध्य हो जाती है। सभी धर्म सम्प्रदायों में सर्वप्रथम संयम की व्यवस्था है। वीर्यधारण एवं सत्यरक्षा ही यथार्थ संयम है। ये दो बातें न प्राप्त हो तो वस्तुतः धर्मलाभ बहुत दूर समझो। धर्मार्थियों को सर्वप्रथम इन दो बातों पर विशेष ध्यान देकर चलना चाहिए। धर्म एक मामूली वस्तु नहीं है। आप्राण चेष्टा करनी पड़ती है, अन्यथा प्राप्त नहीं होता।**

माँ एवं गुरु-विषम समस्या। ठाकुर की तृप्ति।

मेरी भिक्षावृत्ति की बात सुनकर मेरी माता बड़ा कष्ट पा रही हैं। वे दिन रात रो-रोकर व्यतीत कर रही हैं। भोजन के लिए बैठकर, अन्न की ओर देखती रह जाती हैं और आँसू की धारा से वक्ष भीग जाता है। दूध पीना छोड़ दिया है। अनशन एवं आधापेट भोजन से उनका शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया है। माँ ने मुझे चावल, दाल, घी,

गुड़ आदि कुछ वस्तुएँ भेजी हैं। मैं असमंजस में पड़ा हूँ, 'स्थूल भिक्षा ग्रहण करना मेरे लिए निषिद्ध है। नित्यभिक्षा की ही ब्रह्मचर्य में व्यवस्था है। अब इन सामग्रियों को लेकर मैं क्या करूँ? एक ओर गुरुवाक्य उल्लंघन, दूसरी ओर वृद्धा, दुखिया माता के हृदय में चोट पहुँचाना, क्या करना चाहिए? यदि केवल गुरुवाक्य उल्लंघन से काम चलता तो मैं शायद ये वस्तुएँ ग्रहण करके माता को संतुष्ट करता। क्योंकि मेरी स्पष्ट धारणा है कि गुरुदेव मुझे माँ से भी अधिक प्यार करते हैं। अतः उनके वाक्य उल्लंघन में मुझे लज्जा, भय, संकोच कुछ भी नहीं आता। परन्तु व्रत उल्लंघन कैसे करूँ? यह पवित्र ब्रह्मचर्य सभी ऋषि, मुनि, योगियों की परम प्रिय सम्पदा है। इसे नष्ट करने पर पिता-माता और जितने भी घनिष्ट सम्बन्धी हैं, सभी को अल्पाधिक नरक यंत्रणा भोगनी पड़ेगी। ये सभी विचार मेरे अंदर आने लगे। मैंने हवन के लिए घी और एक दिन के लिए चावल, दाल लेकर, अवशिष्ट सारे पदार्थ ठाकुर के भंडार में अर्पित किया। अब वह ठाकुर की सेवा में लग रहा है। वे भोजन कर अन्न की प्रशंसा करने लगे।

उन्होंने कहा-**यह नए धान का चावल इतना मीठा है कि सिर्फ नमक से खाया जा सकता है। इसमें मानो घी लगा हुआ हो। यह बड़ा स्वादिष्ट और पुष्टिकारक है। यह चावल बीच-बीच में देश से मेरे लिए ले आया करो।**

ठाकुर की बातें सुनकर बड़ा आनन्द आया। माँ के हाथों का चांवल ठाकुर की सेवा में आनन्दपूर्वक लगा, इससे माँ यथार्थ ही कृतार्थ हुई।

लोभ-वश प्रसाद भोजन, जलन तथा प्रायश्चित।

गुरुदेव से भोजन के उपरांत थाल का प्रसाद बरामदे में ले जाता हूँ। स्थान पोंछकर प्रसाद मैं ही सबको बाँटता हूँ। दूसरा कोई हाथ तक नहीं लगा पाता। खाद्य वस्तु में मेरा लोभ है-अच्छी वस्तु देखकर मुँह में पानी आ जाता है। कई लोग कहते हैं प्रसाद में लोभ अच्छा है। किन्तु ठाकुर का प्रसाद विशुद्ध सत्त्वगुणयुक्त होने पर भी उसका स्थूल उपादान तो सूखा, बासी या दुर्गंधयुक्त हो सकता है। तब इसका किसी के शरीर पर विषमय फल भी हो सकता है। संभवत लोभवश तीखा, मीठा आदि सुस्वादु गुरुपाक, उत्तेजक वस्तु ग्रहण करने से ब्रह्मचर्य की हानि होगी या सबके बाँटने के बाद मेरे लिए कुछ न बचेगा, इसलिए दयालु गुरुदेव अपने हाथों से रोज़ मेरे लिए पृथक् प्रसाद रख देते हैं। जो मुझे आहार के समय लेने को कहते, किन्तु जिह्वा की लालसा के कारण मैं ऐसा न कर सका। आज स्वादिष्ट पनीर की सब्जी देखकर खाने की बड़ी इच्छा हुई। मन को समझाया-यह उत्कृष्ट वस्तु मेरे अनजाने में यदि कोई खा ले तो प्रसाद से वंचित हो जाऊँगा। फिर शास्त्रों में भी तो कहा है कि प्रसाद प्राप्त करते ही काल विचार किए बिना खा लेना चाहिए। यह सब तर्क देकर, गुरुआज्ञा उल्लंघन कर प्रसाद खा लिया। प्रसाद पाकर ठाकुर के पास बैठने में संकोच बोध होने लगा। भीतर ही एक जलन का अनुभव होने लगा, जिसने क्रमशः बढ़कर मुझे अस्थिर कर डाला। नाम में अरुचि और विरक्ति आ गई। साधन भजन छूट सा गया। सारा दिन कष्ट से छटपटाता रहा और प्रायश्चित स्वरूप

उपवासी रहा। अब कल शाम को ही भोजन करूँगा, मैंने ऐसा निश्चय किया।

लोभ संयम के उपाय। रिपु दो हैं-जिह्वा एवं उपस्थ।

अवसर पाकर ठाकुर से जाकर मैंने कहा-लोभ की यंत्रणा अब मुझसे सही नहीं जाती। अच्छी वस्तु देखते ही खाने की इच्छा होती है। आसन पर बैठकर नाम जपते समय भी अनजाने ही सुस्वादु वस्तु की कल्पना आ जाती है। नाम ध्यान कुछ भी नहीं होता। पहले मेरा यह हाल कभी भी न था। अब क्या करूँ?

ठाकुर ने कहा-**जो खाने की इच्छा हो खा लेना। जब तक न खा लोगे तो यह इच्छा जायेगी नहीं।** मैंने कहा-तब मेरे एकाहार के नियम की रक्षा कैसे होगी? न खाने पर क्या यह इच्छा नहीं जा सकती?

ठाकुर-**नहीं, खा लेना ही अच्छा है। जो नितान्त अच्छा लगे यह खा लेना। एक काम और करना-जो वस्तु अत्यंत लोभनीय लगे, उसे पास बैठाकर किसी व्यक्ति को तृप्तिपूर्वक खिला देना। उपकार होगा। नमक त्याग देने पर खाद्य वस्तु पर लोभ कम होता है। यह तो तुम कर नहीं सके। ब्रह्मचारीजी कहते थे रिपु केवल दो ही हैं-जिह्वा एवं उपस्थ। उपस्थ संयम करना सहज है, किन्तु जिह्वा संयत रखना बड़ा कठिन है। लोभ के स्थूल वस्तु के संग से क्रमशः जीव जड़त्व प्राप्त करता हैं। इसके लिए ऋषि-मुनिगण कितना ही कठोर तप करते थे। अनाहार या गिरे हुए पत्ते खाकर काल बिताया करते थे। असंयत जिह्वा द्वारा कितने**

ही पापों की सृष्टि होती है। जिह्वा वश में रखने के लिए ऋषिगण मौन रहते थे। लोगों का गुणगान, शास्त्रपाठ और भगवत् नाम कीर्तन से जिह्वा क्रमशः संयत और शुद्ध होती है।

तीर्थाटन से संयम लाभ।

सुना है विधिवत् तीर्थाटन करने से इन विषयों में संयम सहज ही अभ्यस्त हो जाता है। इस विषय में पूछने पर ठाकुर ने तीर्थाटन के नियम बताये-

तीर्थपर्यटन से विशेष कल्याण होता है। दीक्षा लेकर तीर्थ पर्यटन युवावस्था में ही करना चाहिए। नहीं तो आगे नहीं हो पाता, बाधाएँ आती हैं। पर्यटन काल में दृष्टि नीची कर, प्रत्येक पग पर इष्टमंत्र स्मरण करते हुए चलना चाहिए। रोज तीन-चार कोस या सुबह दस बजे तक चलकर किसी स्थान पर ठहरना चाहिए। यहाँ स्नान-पूजा सम्पन्न करके सुविधा हो तो किसी देवालय में प्रसाद पा सकते हो या किसी ब्राह्मण का बनाया भोजन लिया जा सकता है, किन्तु भिक्षान्न स्वयं पकाकर खाना सर्वश्रेष्ठ है। वह कभी अपवित्र नहीं होता-परम पवित्र होता है। शास्त्रों ने इसे अमृत कहा है। आहार के बाद विश्राम करके रात साधन भजन में व्यतीत करना चाहिए। पर्यटन काल में पैसे-कौड़ी साथ नहीं रखना चाहिए। कोई देना चाहे तो भी नहीं लेना चाहिए। कोई कहीं जाने की टिकिट कर दे तो ले सकते हो। साथ में जल का पात्र रखो। लकड़ी का करंग हो तो निरापद है। पर्यटन में एक कम्बल, कौपीन, बहिर्यास, जलपात्र और एक गीता रखना यथेष्ट है। किसी दल में न मिलकर, एक व्यक्ति के

साथ या अकेले चलना ही सबसे अच्छा है। साधुओं की जमात के साथ चलने पर उनके नियमों से बँध जाना पड़ता है। इसमें असुविधा होती है।

तीर्थपर्यटन काल में राह में आने वाले मंदिर, देवालय आयें तो दर्शन करते जाना चाहिए। कहीं बड़ा ही अच्छा लगे तो बैठ जाना चाहिए। कुछ समय यहीं साधन भजन करना चाहिए। पर्यटन काल में एक रात से अधिक समय तक कहीं नहीं ठहरना चाहिए। तीर्थ स्थान में पहुँचकर सर्वप्रथम तीर्थगुरु बनाने की व्यवस्था है। पंडो से तीर्थ के कर्तव्य आदि जानकर तदनुसार कार्य करना चाहिए। किसी तीर्थ स्थान में संयम से रहकर नियम निष्ठापूर्वक साधन भजन करने पर वहाँ के तीर्थ देवता की प्रसन्नता लाभ की जा सकती है। केवल नियम रक्षा के लिए तीन रात वास करने से तीर्थ महात्म्य नहीं समझा जा सकता। तीर्थयात्रा के समय कभी क्रोध नहीं करना चाहिए। क्रोध के द्वारा साधक का साधन लब्ध पुण्य नष्ट हो जाता है। हिंसा, दम्भ, परनिन्दा का तीर्थ में विषवत् त्याग करना चाहिए। चित्त प्रसन्न रखकर, सत्य का अवलम्बन कर चलना चाहिए। तीर्थ यात्रा के समय इन नियमों का सावधानीपूर्वक पालन जरुरी है। इस प्रकार सारा भारतवर्ष परिभ्रमण कर आने में बारह वर्ष लगते हैं। इससे जीवन अच्छी तरह प्रस्तुत हो जाता है। विधिपूर्वक तीर्थ पर्यटन करने पर संयम सहज ही अभ्यस्त हो जाता है और कई तरह से कल्याण होता है।

कर्तव्य पालन से वैराग्य की प्राप्ति। प्रलोभन

से उत्तीर्ण होने के उपाय।

१० से २० वैशाख। मध्याह्न में महाभारत के पाठ के बाद ठाकुर से निजन में जाकर पूछा-मेरे क्या और भी कर्म बाकी हैं?

ठाकुर ने कहा-**कर्म हुआ ही क्या है? सभी तो बाकी हैं।**

मैंने कहा-उस कर्म की बात नहीं कर रहा हूँ। आपने वृन्दावन में माता व बड़े भाईयों के प्रति कर्म की बात कही थी, मैं उसी कर्म की बात कर रहा हैं।

ठाकुर-**माँ तुम्हारी सेवा से संतुष्ट तो हुई है। किन्तु इतना ही यथेष्ट नहीं है। ये यदि दीर्घकाल रोग में कष्ट पायें तो उस समय अपने हाथों से उनकी सेवा सुश्रुषा करनी होगी। तुम्हारे बड़े भाईयों के प्रति भी अनेक कर्तव्य हैं। उनको विपत्ति और असुविधा का ख्याल हमेशा रखना होगा। सब के प्रति कर्तव्य हैं। इन कर्तव्यों का पालन करते हुए क्रमशः वैराग्य का जन्म होगा। इस वैराग्य के आने से ही खैरियत है, अन्यथा पुनः प्रसार में प्रवेश करना होगा।**

मैंने पूछा-संसार में प्रवेश कैसे? मुझे क्या विवाह करना होगा? में तो विवाह की कल्पना ही नहीं करता।

ठाकुर-**अभी तुम्हारी यह अवस्था नहीं आई है। भविष्य में वही परीक्षा आने वाली है। तब यदि स्त्री संग का विष्ठावत् सोच सको, स्त्री सहवास नितान्त अपवित्र, घृणित और जघन्य कर्म समझ सको तभी याद है। नहीं तो कोई उपाय नहीं है। भविष्य में अनेक परीक्षाएँ आयेंगी। तब ठीक रह सको तभी रक्षा पा सकोगे। विषय वासना रहने पर उसी स्थान में बद्ध हो जाना**

पड़ता है। बिना वैराग्य आये क्या ठीक रहना सम्भव है?

मैने पूछा-भविष्य में जिन परीक्षा, प्रलोभनों में पडूँगा उनसे किन उपायों में उत्तीर्ण हो सकूँगा?

ठाकुर-**उत्तीर्ण होने का एक ही उपाय है, श्वास-प्रश्वास में नाम-जप। उस समय नाम में ठीक रह सको तो सब बन जाएगा। नाम में रुचि हो जाए तो कोई प्रलोभन या परीक्षा कुछ नहीं कर पायेगा। नाम में रुचि न होने तक ही विपत्ति की आशंका है। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करते-करते ही नाम में रुचि का जन्म होता है। फिर कोई कठिनाई नहीं होती।**

संकल्प सिद्धि का उपाय-सत्य रक्षा व वीर्यधारण।

पहली वैशाख की तिथि-प्रातः मन ही मन प्रतिज्ञा करने लगा कि इस वर्ष नियम निष्ठापूर्वक ठाकुर के आदेश का यथावत् पालन करके चलूँगा। परन्तु दो-चार दिन बीतने पर देखता हूँ मेरे सभी संकल्प व्यर्थ हो गये। प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में नाम जप करूँगा सोचकर आसन से उठता हूँ। साधन करते समय दो-चार घड़ी जाते ही देखता हूँ कि मन कहाँ न कहीं चला गया-सब भूल जाता हूँ। प्राणायाम कुंभक योग से सारा दिन नाम करूँगा ऐसा संकल्प करके खूब दृढतापूर्वक लगता तो हूँ--दो-चार घंटे बाद ही देखता हूँ कि मन कल्पना राज्य में यथेच्छा विचरण कर रहा है। दो-तीन घंटा विश्राम के बाद सारी रात जागकर नाम-जप करूँगा, ऐसी प्रतिज्ञा की थी, किन्तु न जाने कहाँ से अत्यधिक नींद आकर मुझे वशीभूत कर लेती है। जब भी किसी बात पर दृढता अवलम्बन करना चाहूँ

तभी उसमें अधिक शिथिलता अनजाने ही आ जाती है। ऐसा क्यों हो रही है, ठाकुर से पूछने की तीव्र इच्छा होती है।

ठाकुर सारी रात एक आसन में बैठे रहते हैं और चार बजे केवल आधे घंटे के लिए विश्राम करते हैं। तब भी उन्हें नींद आती है कि नहीं कहना कठिन है। रात साढ़े तीन बजे वे आम्र वृक्ष के नीचे आकर उच्च स्वर में हरिध्वनि करते हैं। ठाकुर को इस समय अकेले पाकर मैंने मन की दुर्दशा की बात पूछी-मन की एकाग्रता, साधना में दृढ़ता कैसे आयेगी? निद्रा भी अत्यंत बढ़ गई है। साधन भजन नहीं हो रहा है, क्या करूँ?

ठाकुर ने कहा-**उपाय वही एक ही है, वीर्य स्थिर हो जाए तो सब कुछ सहज हो जायेगा। ऐसा न हो, तब तक कुछ भी ठीक नहीं होता। वीर्यधारण और सत्यरक्षा--ये दो बातें अगर ठीक से पालन कर सको, तो एक दिन भगवान की कृपा निश्चित लाभ करोगे। सत्य प्रतिपालन के लिए सत्य बोलना, सत्य चिन्ता और सत्य व्यवहार करना चाहिए। बिना पूछे जाने तक बात नहीं करना चाहिए। पूछे जाने पर सत्य धारणा के अनुसार आधे घंटे तक बोलना दोषनीय नहीं है। खुद होकर बोलना बिल्कुल कम कर दो। वीर्यधारण भी सहज नहीं है। कितने ही प्रकार से वीर्य क्षय होता है। पेशाब करते समय जैसा कहा है करना, नहीं तो धारण नहीं कर पाओगे। कोशिश करते रहो, धीरे-धीरे सब हो जायेगा।**

कुछ ठहर कर फिर बोले-**इधर के लड़कों में पश्चिम के देश की अपेक्षा कुअभ्यास अधिक हैं। इस विषय में लड़कों को शिक्षा नहीं दी जाती, इसी से लड़के बिगड़ते हैं। बचपन से कुअभ्यास**

होने लगते हैं। पिता-माता जैसे अभिभावकगण सब विषयों की शिक्षा देते हैं पर जिससे शरीर और मन का कल्याण हो, ऐसे विषय में शिक्षा देने में शर्माते हैं। शिक्षा देना दूर रहा कुदृष्टांत ही दिखाते हैं। बच्चों को एक कमरे में रख स्त्री, पुरुष पृथक् कमरे में रहते हैं। बचपन से मौका पाकर बच्चे गलत दिशा में जाते है। दिनों दिन जैसा हो रहा है, इससे लगता है कि कुछ ही दिनों में विकट अवस्था आ जायेगी।

इतना कहकर ठाकुर ने कुछ घटनाएँ बताई। मैंने कहा-**कोई मुझे विद्वेषपूर्वक झूठा दोषारोपण करे तो मैं सह नहीं सकता।**

ठाकुर बोले-जवाब देकर भी क्या लाभ? झगड़ा बढ़ेगा, इससे खुद की ही हानि होगी। यह सब विचार करके चलना चाहिए।

स्वास्थ्य लाभ का उपाय। विभिन्न माला धारण की उपकारिता। रुद्राक्ष धारण का आदेश।

आज बादल छाये रहने के कारण समय का अनुमान नहीं लगा पाया। सूर्य डूब रहा है ऐसा अनुमान करके सोचा कि रोज ठाकुर चार बजे 'ब्रह्मचारी भोजन पकाने जाओ' कहते हैं। आज शायद भूल गये होंगे। अतः मैं भोजन पकाकर आहार सम्पन्न करके ठाकुर के पास जा बैठा। थोड़ी ही देर में ठाकुर ने कहा-**ब्रह्मचारी भोजन पकाने नहीं जाओगे?** मैंने कहा-समय का अनुमान नहीं लगा पाया अतः भोजन पकाकर, ग्रहण करके आया हूँ।

ठाकुर ने कहा-**संन्यासी लोग आकाश की तरफ देखकर समय का अंदाज लगा लेते हैं। हम लोगों के लिए बिना घड़ी देखे**

समय जानना कठिन होता है। भोजन का समय तथा परिमाण सदा ठीक रखना, ये दो बातें ठीक रखो तो स्वास्थ्य ठीक रहेगा। आज ठाकुर के गले में प्रवाल की माला देखकर मैंने पूछा-प्रवाल माला धारण करने की क्या उपयोगिता है?

ठाकुर ने कहा-**शरीर ठण्डा रहता है। मैंने कहा-तुलसी माला धारण करने से भी तो शरीर ठण्डा रहता है। यह भी क्या उसी की तरह है?**

ठाकुर ने कहा-**तुलसी माला से शरीर ठण्डा तथा मन सात्त्विक होता है। प्रवाल पित्त नष्ट कर शरीर को शीतल करता है और मन पर भी कुछ क्रिया करता है।**

पद्मबीज और स्फटिक का गुण पूछने पर ठाकुर ने कहा-**पद्मबीज धारण करने पर मन प्रफुलित रहता है। स्फटिक तेज और शक्ति की वृद्धि करता है। इसलिए शाक्तगण स्फटिक का उपयोग करते हैं। अच्छे फकीरों में भी इसका उपयोग देखा गया है। कई लोग स्फटिक माला से जप करते हैं।**

रुद्राक्ष त्याग करने पर मेरी दशा की बात ठाकुर से कहने पर वे बोले-तुलसी से उग्रभाव नष्ट होता है तथा स्वभाव नम्र व विनयी होता है। रुद्राक्ष उत्साह, उद्यम और तेज की वृद्धि करता है और शरीर गर्म रखता है। कल से तुम पूर्ववत् रुद्राक्ष धारण करो। तुम्हारा शरीर रुद्राक्ष का तेज धारण नहीं कर पा रहा था, इसलिए उतारकर रखने को कहा था। अब उसे पुनः नियमपूर्वक धारण करो। ठाकुर की बात सुनकर बड़ा आनन्द आया। कब दिन समाप्त हो, प्रतीक्षा करने लगा।

स्वप्न-क्रोध से पतन।

कल रात एक स्वप्न देखा-ठाकुर के साथ एक घने वन में प्रवेश कर रहा हूँ। श्रीधर और श्यामाकांत पंडितजी भी साथ हैं। ठाकुर ने कहा-**यह साधन जिसने भी पाया है वे सभी भाग्यवान् हैं, सभी मोक्ष लाभ करेंगे।** उन्होंने कहा-**पहले तुम संन्यासी थे। क्रोध से पतित हुए हो। द्वादश वर्ष ब्रह्मचर्य पालन करने पर पुनः पूर्वावस्था प्राप्त करोगे।**

यह सुनकर मेरी नींद टूट गई। मौका पाकर ठाकुर से स्वप्न कह सुनाया। ठाकुर ने सिर हिलाकर सम्मति प्रदान की और स्वप्न की यथार्थता को स्वीकारा तथा लिखकर रखने को कहा।

दीक्षा-कालीन उपदेश। परमहंसजी का आदेश।

१८ वैशाख। आज अक्षय तृतीया है। बहुतों को साधन (दीक्षा) मिलने वाला है। सुबह से दीक्षाप्रार्थीगण उपस्थित होने लगे। मेरे छोटे भाई रोहिणी की भी दीक्षा ग्रहण की बात थी। फिन्तु बड़े भ्राता के पुत्र रजनीकांत का आज विवाह है। अतः रोहिणी न आ पायेगा। मेरे मन में कष्ट होने लगा। दीक्षा दान के पूर्व ठाकुर पूछने लगे-**साधन प्रार्थी सब आ गये हैं?**

एक गुरुभाई ने कहा-ब्रह्मचारी का भाई रोहिणी नहीं आया है। ठाकुर ने कहा-**वह कैसे आयेगा? उसकी दीक्षा बाद में होगी।**

इसके बाद कमरा लोगों से भर गया। ठाकुर ने आसन ग्रहण किया। कुछ समय ध्यानमग्न रहकर दीक्षार्थियों से कहने लगे-

१. सर्वदा सत्य का प्रतिपालन करो। मन में जो यथार्थ प्रतीति होगी, उसे सत्य मानकर ग्रहण करना होगा। सत्यरक्षा करने के लिए मिथ्या कल्पना, वृथाचिन्ता का परित्याग करना होगा, अन्यथा सत्य नहीं बोला जा सकता। बिना पूछे जाने पर बात नहीं करना चाहिये। सदा मितभाषी बने रहो। किसी की निन्दा न करो। परनिन्दा महापाप है, नरहत्या से भी बड़ा पाप है।

३. वीर्य धारण करोगे। यद्यपि यह शारीरिक तप है तथापि इसका विशेष प्रयोजन है। वीर्य रक्षा बिना सत्य प्रतिपालन नहीं हो पाता। इनसे साधन में विशेष सहायता मिलती है। गृहस्थ लोग शास्त्रानुसार ऋतुकाल में स्त्री सहवास कर सकते हैं। बिना कारण वीर्य नष्ट करनेवाले पितृ-मातृघाती, आत्मघाती तथा ब्रह्मघाती होते हैं। यह शरीर पिता-माता के वीर्य-शोणित से उत्पन्न है। केवल पितृऋण से उन्मुक्त होने के लिए ही वीर्य त्याग कर्तव्य है। संन्यासीगण किसी भी प्रकार वीर्य नष्ट न करे। वीर्य रक्षा द्वारा मन की एकाग्रता, शरीर का स्वास्थ्य प्राप्त होता है। वीर्यरक्षा बिना साधन में उत्साह नहीं रह जाता। धन की उपकारिता भी अनुभव नहीं की जा सकती।

३. श्वास-प्रश्वास में नाम करने का प्रयत्न करो। यही हमारा साधन है। प्रत्येक श्वास-प्रश्वास जैसे लेते और छोड़ते हैं उस ओर ध्यान रखकर सदा नाम-जप करो।

एकाएक यह सब नहीं होता। बारम्बार चेष्टा द्वारा लगे रहकर इन बातों पर स्थिर रहना होगा। चेष्टा रहे तो कभी न कभी यह सब होगा ही। साधन की विधियाँ बताई गई। अब निषेध बताया

जाता है-

४. मांस, जूठा आहार (उच्छिष्ट), मादक द्रव्य पूर्णतः त्यागना होगा। कठिन रोग में चिकित्सक के कहने पर केवल औषध रूप में मांस या मादक लिया जा सकता है। प्रयोजन पूर्ण होते ही पुनः छोड़ देना होगा। मत्स्य-आहार के बारे में निषेध या विधि नहीं है। जिसकी जैसी इच्छा। उच्छिष्ट सदा त्याज्य है। माता पिता का भुक्तावशिष्ट जूठा नहीं कहलाता। उसे प्रसाद के रूप में ग्रहण करो तो उपकार होगा। उच्छिष्ट ज्ञान हो तो वह त्याज्य है। पाँच वर्ष से अधिक आयु के बालक का जूठन भी उच्छिष्ट है। जिन शिशुओं को भले-बुरे का ज्ञान ही नहीं हो पाया, उनके उच्छिष्ट से अनिष्ट नहीं होता।

५. किसी भी दल या सम्प्रदाय में बद्ध मत होना। जहाँ भी ईश्वर का नाम था धर्मानुष्ठान हो वहीं भक्तिपूर्वक नमन करना चाहिए। सभी धर्मार्थियों का आदर करो। किसी सम्प्रदाय का अनादर मत करो। हमारा कोई सम्प्रदाय या दल नहीं है।

६. स्त्री जाति से सदा रावधान रहना चाहिए। उनके साथ एक कमरे में साधन मत करो। यदि स्थानाभाव हो तो एक पर्दे से आड़ कर लेना चाहिए। निर्जन में किसी स्त्री के साथ मत बैठना।

७. यथा साध्य परोपकार करो। गृहस्थी लोग आदरसहित अतिथि सत्कार करें। गृहस्थ को पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष-लता सभी को तृप्त करना चाहिए। किसी प्रकार हिंसा मत करो। एक पत्ता भी बिना प्रयोजन के मत तोड़ो। किसी के मन में अकारण दुःख मत पहुँचाओ। जो यहाँ दीक्षा लेने आये हैं, केवल उन्हीं के लिए ये सब बातें नहीं है। इहलोक, परलोक जहाँ भी

इस साधन के व्यक्ति हैं, सभी के लिए परमहंसजी ने ये सब आदेश दिये हैं।

इन आदेशों के देने के बाद ठाकुर **'जयगुरु, जयगुरु'** कहकर ध्यानमग्न हो गए। बाद में दीक्षामंत्र दान किए।

इस समय गुरुभाईयों में नानाप्रकार की अवस्थाएँ प्रकट होने लगीं। कमरे के भीतर व बाहर रोने, हँसने व आनंद की तरंगें उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। ठाकुर क्रमशः सबको संयत करके ध्यानमग्न हो गए। गुरुभाई उन्हें साष्टांग प्रणाम करके बाहर आए। आश्रम स्त्री, पुरुषों से भरा हुआ है। सभी आनंदमग्न है।

परोसने में वैषम्य-ठाकुर की विरक्ति।

आज आश्रम में महोत्सव है। सुस्वादु खाद्य पदार्थों से ठाकुर के भोग के आयोजन को देखकर मेरा अन्तःकरण शुष्क तथा मुख मलिन हो जाता है। नित्य उत्कृष्ट वस्तुएँ अपने हाथों से सबको परोसकर खिलाता हूँ, किन्तु स्वयं थोडा भी नहीं खा पाता। लोभ की ज्वाला से जल मरता हूँ, पर अन्तस् की ज्वाला किसी से कही भी नहीं जा सकती। सभी मेरे ब्रह्मचर्य के विरोधी हैं। आज गुरुभाईयों को लेकर जब ठाकुर भोजन करने बैठे, सभी वस्तुएँ ठाकुर को मैंने कुछ अधिक परोसी थी।

ठाकुर इससे असंतुष्ट होकर, सब के सामने ही मुझसे बोले- **ब्रह्मचारी! प्रसाद पाने की आशा से अधिक मात्रा में वस्तु देने पर वह उच्छिष्ट वस्तु देना ही होता है।**

ठाकुर की बात सुनकर कोई-कोई गुरुभाई मुझे रोषपूर्वक देखने लगे एवं कोई व्यंगपूर्वक हँसने लगे। हाय! उच्छिष्ट पदार्थ ठाकुर को

दे रहा हूँ, यह सोचकर मन ही मन ठाकुर से क्षमा याचना करने लगा।

इसके पहले भी मुझे ठाकुर एक बार परोसने की विषमता के लिए कठोर अनुशासित कर चुके थे। एक पंक्ति में भोजन करने वालों के लिए परोसने में वैषम्य नहीं करना चाहिए। यह साधारण नीति है, किन्तु ठाकुर के लिए यह नीति मानकर मैं नहीं चल सकता। शिष्यों की पंक्ति में गुरु की विशेषता तो रहेगी ही, यह दोषनीय नहीं है। फिर प्रसाद रखने के कारण ठाकुर कम भोजन करें, यह विचार भी सदा आ जाता है।

आहार के बाद ठाकुर ने रोज की तरह अपने हाथों से सुस्वादु प्रसाद रख दिया। यह सौभाग्य किसका हो सकता है। गुरुतर अपराध का लघु दण्ड देकर ठाकुर स्वयं असीम दया करते हैं-यह देखकर रोना आ जाता है। मैं प्रतिदिन ठाकुर को भोजन परोसता हूँ, पर जैसे भक्ति गद्गद् होकर देना चाहिए, वैसा एक भी दिन नहीं दे पाता। ठाकुर फिर भी इस अधम के हाथों से ही भोजन क्यों ग्रहण करते है, समझ नहीं आता। आज भी लोभवश मध्याह्न में ठाकुर का प्रसाद पाया। तुरंत भीषण जलन होने लगी। हाय भाग्य! मैं गुरुभाईयों को प्रसाद बाँटता हूँ और ये परमानंद लाभ करते हैं। परन्तु मुझे ठाकुर अपने हाथों से प्रसाद देते हैं-उसे पाकर सारा दिन जलता रहता हूँ, न साधन होता है, न नाम चलता है।

काम, क्रोध, लोभ नरक के द्वार स्वरूप।

अवसर पाकर ठाकुर से पूछा-प्रसाद पाकर भी मुझे जलन क्यों होती है?

ठाकुर ने कहा-**निर्दिष्ट समय में एक बार आहार तुम्हारा नियम है। नियम मानकर ही चलो, तो ऐसा नहीं होगा। नियम की रक्षा करनी होगी।**

मैंने कहा-मैं लोभ रोक नहीं पाता। मेरा यह लोभ क्या नहीं जायेगा?

ठाकुर-काम, क्रोध, लोभ आदि रिपुओं से पूरी तरह रक्षा पाना थोड़ा कठिन है। इसके लिए ऋषि-मुनिगण कितना कुछ कर गए हैं। कठोर तप और साधन भजन द्वारा ज़रा सी उन्नति होते ही रिपुदल आकर साधक पर आक्रमण करते हैं। नाना प्रकार की दुरावस्था और प्रलोभन में डालकर सर्वनाश करते हैं। विश्वामित्र मुनि तप द्वारा इतनी शक्ति अर्जित करके भी काम के हाथों निस्तार न पा सके। पतित होना पड़ा। बहुत प्रयत्न करके काम को दमन करते ही क्रोध आकर आक्रमण करने लगा। सृष्टि, स्थिति, प्रलय का अधिकार पाकर भी विश्वामित्र दुर्जेय काम से परास्त होने लगे। उनका तपोबल नष्ट होने लगा। तब निरूपाय होकर ये लोकसंग त्यागकर मौन हुए। तीव्र तपस्या द्वारा पुनः पूर्वावस्था प्राप्त कर लिए। इस समय लोभ का उत्पात आरंभ हुआ। विश्वामित्र ने आहार का त्याग किया। काम, क्रोध, लोभ नरक के द्वार स्वरूप हैं। एक मात्र भगवान् के भजन द्वारा इनका मुख मोड़ दिया जा सके तभी निस्तार है। तब ये भजन के सहायक बन्धु हो जाते हैं। श्वास-प्रश्वास में नाम करने से क्रमशः इनके उत्पातों से रक्षा पाई जा सकती है। ऐसा सहज उपाय दूसरा नहीं है।

इष्टमंत्र गुरु से भी नहीं कहना चाहिये।

(२० से २४ वैशाख) कुछ दिनों से साधन भजन में मन नहीं लग रहा है। सदा माँ की याद आ रही है। घर जाने की इच्छा हो रही है। एकाएक ऐसा क्यों हो रहा है, समझ नहीं पा रहा हूँ। दोपहर को छोटे दादा रोहिणी को साथ लेकर आए। उनसे सुना कि माँ मेरे लिए रो-धो रही हैं। समझ गया इसीलिए मेरी अस्थिरता हो रही थी। माँ को शांत करके उनकी चरणधूलि लिए बिना चित्तस्थिर न होगा। बारम्बार माँ के लिए मन रो उठा।।

आज रोहिणी की दीक्षा हुई। सत्य रक्षा और वीर्यधारण पर ठाकुर ने विशेष रूप से कहा। (ऐसा उन्होंने कभी नहीं कहा।) ठाकुर ने कहा-**वीर्यधारण और सत्यरक्षा जब तक न हो जाये, तब तक साधन का फल अनुभव न कर पाओगे। साधन में यथार्थ उपकार पाना चाहो तो इनकी रक्षा करके चलना ही पड़ेगा।**

गृहस्थ वैध भोग द्वारा कैसे कर्म समाप्त करें, इस विषय पर ठाकुर ने विस्तारपूर्वक कहा-**गृहस्थ ऋतुगामी हों, शास्त्र-सम्मत विधि से स्त्रीसंग करें। नशीली वस्तु, उच्छिष्ट एवं मांसाहार साधन शक्ति को एकदम दबाये रखते हैं। प्रकाशित होने ही नहीं देते। अतः यह सब पूर्णतः त्याग देना चाहिए। इष्टमंत्र किसी से न कहना, यहाँ तक कि गुरु भी पूछे तो नहीं कहना चाहिए।** दीक्षाकाल में सब लोगों को जो उपदेश देते हैं, वह सब रोहिणी को भी दिया। आज गुरुदेव ने कृपा करके मेरे सभी भाईयों का भार ग्रहण किया, आज मैं निश्चिंत हूँ।

ठाकुर की असाधारण अनुभूति।

दोपहर को पाठ के बाद ठाकुर के पास जा बैठा। ठाकुर

ध्यानमग्न थे। अचानक सिर उठाकर बोले-**जगबन्धु कटार लेकर बेर का झाड़ काटने निकले हैं। शीघ्र जाकर बोलो कि वे जहाँ से काटने की सोच रहे हैं उससे डेढ़ हाथ ऊपर से काटें।** मैं शीघ्र बाहर जाकर देखता हैं सचमुच जगबन्धु पश्चिम की ओर से कटार लिए आ रहे हैं। मैंने पूछा पेड़ कहाँ से काटोगे? उनके बताने पर मैंने कहा-ठाकुर उससे डेढ हाथ ऊपर से काटने को कह रहे हैं। उन्होंने ऐसा ही किया। जिससे वृक्ष की दो शाखाएँ बच गई और पेड़ बच गया।

ठाकुर कल पाठ सुनते हुए मुझसे बोले-**ब्रह्मचारी, कटहल के पौधे को बकरी चर रही है, उसे सात ग्रास खा लेने देना फिर भगा देना।** मैं कटहल के पौधे के पास पहुँचकर देखता है, सचमुच बकरी पत्ता चबा रही है। उसे सात पत्ते खाने दिया फिर भगा दिया।

ठाकुर के पास आकर मैंने पूछा-आपने बकरी को सात पत्ते खाने देने को क्यों कहा? इससे तो पौधे की हानि हुई।

ठाकुर ने कहा-**जिसका जो खाद्य है, यदि खाना शुरु कर दे तो सात ग्रास खा लेने देना चाहिए, फिर बाधा डालना चाहिए।**

ठाकुर कहाँ हैं और कटहल का पेड़ कहाँ? ठाकुर कैसे यह जान सके यह पूछने की इच्छा हुई। उस दिन ब्राह्म धर्म प्रचारक श्रीनगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय को ठाकुर ने जगबन्धुजी द्वारा कुछ प्रयोजनीय प्रश्नों के उत्तर एक पत्र में लिखवा भेजा। उनका पत्र ठाकुर के पास बाद में पहुँचा। बाद में पता लगा कि यदि चिट्ठी पाकर प्रश्नों का उत्तर देते तो नगेन्द्रबाबू यथासमय यह नहीं पा सकते। ठाकुर की दूरदृष्टि तथा अनुभव सदा देखकर ऐसा अभ्यस्त हो चुका हूँ कि यह सब देखकर अब आश्चर्य नहीं होता।

माताजी पर विरक्ति-उनका प्रसाद पाने को ठाकुर का आदेश।

१० से २० वैशाख। छोटे दादा रोहिणी को लेकर घर लौट गए। रोहिणी का विवाह है। मुझे बारम्बार घर जाने को कहा। माँ मेरे लिए बहुत दुःखी हो रही हैं। छोटे दादा ने कहा कि विवाह में आए मेहमानों से मेरी आलोचना सुनकर माँ दुःखी हो रही हैं। वे रोती हैं और गोसाईंजी को गाली देती हैं। यह सुनकर मुझे माँ पर गुस्सा आया कि मैं माँ का मुँह भी न देखूँगा। ऐसा मन में सोचा।

दोपहर को आहार के बाद ठाकुर के पास नित्य की तरह जाकर बैठा। मन बड़ा चंचल था। घर जाने की इच्छा भी थी, पर माँ पर क्रोध भी आ रहा था। इस समय घर जाने पर ब्रह्मचर्य के नियमों की रक्षा कर पाने में भी यथेष्ठ संदेह था। इस दशा में में क्या करूँ। मन ही मन में सोचने लगा। ठाकुर यदि इस विषय में कुछ कह दें तो निश्चिंत हो जाऊँ। इसी समय ठाकुर ने पूछा-**क्यों ब्रह्मचारी घर में विवाह है। तुम्हारे जाने के लिए निमंत्रण पत्र नहीं आया?** मैंने कहा-पत्र ही क्यों लोग भी छ:-सात बार आ चुके हैं।

ठाकुर ने कहा-**तो फिर घर क्यों नहीं गए?** मैंने कहा-इस समय घर में आत्मीय स्वजन कई स्त्री-पुरुष आये हुए हैं। उनके पास सिर झुकाए, बिना बात किए रहना संभव नहीं है। ब्रह्मचर्य के नियम का पालन कर चलना वहाँ कठिन होगा। इसीलिए इतने दिनों तक घर नहीं गया।

ठाकुर-**न जाकर बड़ा अच्छा किया तुमने। विवाह निपट जाए तब एक बार घर जाना। घर जाकर भिक्षा मत करना, माता का**

प्रसाद पाना। उन्होंने इसके बाद हमारे विवाह के नियम आदि के बारे में कुछ पूछा। हँसकर यह भी पूछा कि कितने रुपये दहेज लिए। ठाकुर की बातें सुनकर मन शीतल हो गया।

सद्गुरु का आश्रय ग्रहण करना ही सम्पूर्ण निरापद है।

ठाकुर से पूछा-दीर्घकाल कठोर तप करके उन्नत अवस्था लाभ करके भी साधारण अपराध से पतित होना पड़ता है। तो क्या कोई निरापद स्थान नहीं है?

ठाकुर-**सद्गुरु का आश्रय जिन्होंने पाया है वे ही निरापद हैं। सद्गुरु का आश्रय पाकर कोई भय नहीं रह जाता।** मैंने पूछा-तो क्या यह सब महात्मा, ऋषिमुनिगण सद्गुरुलाभ नहीं किये थे?

ठाकुर-**सद्गुरु लाभ करना क्या इतना सहज है? कई जन्म सिद्धि लाभ करके एकमात्र भगवान की कृपा से सद्गुरुलाभ हो पाता है। सद्गुरु लाभ हो जाने पर ये किसी भी अवस्था से पतित नहीं होते। परन्तु कर्म काटने के लिए कुछ काल तक उनकी अवस्था दबाये रखना प्रयोजनीय हो सकता है। नष्ट कभी कुछ नहीं होता। सद्गुरु प्राप्ति के बाद कोई भी अवस्था लाभ हो, यह चिरस्थायी होती है। सद्गुरु लाभ होते ही शिष्य पूर्णतः निरापद होते हैं।**

मैंने पूछा-सद्गुरु के पास दीक्षा लेकर भी कोई व्यक्ति यदि अन्यत्र दीक्षा ले और सद्गुरु साधन त्याग दे तो क्या सद्गुरु भी उसे त्याग देते हैं?

ठाकुर-**ऐसा क्या कभी हो सकता है? कर्म भोग समाप्त करने**

के लिए कुछ काल तक इधर-उधर घुमा फिराकर ले आते हैं। तीन जन्मों में निश्चय ही कर्मशेष करवा लेते हैं।

अहिंसा, सत्य, इन्द्रिय-निग्रह साधन है।

थोड़ी देर बाद ठाकुर खुद ही सबसे कहने लगे-**हमारा यह साधन पहले गृहस्थों के बीच न था। इस बार ही गृहस्थ पहली बार यह साधन लाभ कर रहे हैं। योगी, ऋषि, संन्यासियों के बीच ही इसका प्रचलन था। इच्छा करने पर ही इसे कोई नहीं पा सकता। वर्तमान समय में संसार की दुरावस्था देखकर कुछ महात्माओं ने जीवकल्याण के लिए संसारी लोगों के बीच, प्रार्थी होने पर, यह दुर्लभ साधन निर्विवाद रूप से प्रदान किया। जिन्हें यह साधन मिला है, ये नियमपूर्वक यह साधन नहीं कर रहे हैं। अब तक कोई भी प्रस्तुत नहीं हुआ। अतः कुछ काल तक उनकी दशा देखेंगे। जिन्हें आज्ञा दी गई है, केवल वे ही साधन पायेंगे। इस वर्ष नया कोई साधन न पायेगा। अभी यही आदेश हुआ है। साधन लेकर यदि कुछ न करो, तो साधन लेना ही क्यों? वृथा मुनि-ऋषियों का परम प्रिय पवित्र साधन कलुषित करना मात्र होता है। किसी की साधन में निष्ठा नहीं। हमारे साधन में अधिक नहीं केवल तीन बातें हैं। जो इन तीनों की रक्षा करें, ये ही साधन कर रहे हैं-अहिंसा, सत्य तथा इन्द्रिय निग्रह। ये तीन ही अपने साधन हैं। यदि कोई ईश्वर को न माने, नाम साधन न करे, किन्तु इन तीन गुणों का अवलम्बन करे तो मैं उसे धार्मिक मानूँगा। आस्तिक हो या नास्तिक ये तीन गुण होना जरूरी है। फिर प्रेम भक्ति की बात, यह दूसरी है। ये गुण**

रहे तो प्रेमभक्ति लाभ अवश्य होगा। उसके लिए चेष्टा नहीं करनी होगी। मनुष्य का कर्तव्य इन तीनों को प्राप्त करते ही हो जाता है। इनमें से एक गुण भी शिथिल हो, तो चाहे संकीर्तन में भाव उच्छवास हो, या नाम में अश्रुपात हो-कुछ नहीं होने का।

चन्द्रग्रहण संकीर्तन-भाव में कपटता-ठाकुर का अनुशासन।
(३० वैशाख बुधवार)

३० वैशाख। आज चन्द्रग्रहण है-आश्रम जनपूर्ण हो गया है। शाम तक शहर से बहुत से गुरुभाई आकर आश्रम में उपस्थित हुए हैं। विभिन्न स्थानों से दलों में मिलकर वे ठाकुर के प्रसंग कहते हुए आनंदित हो रहे हैं। रात प्रायः दो बजे ठाकुर बाहर आये। मंदिर के प्रांगण में उपस्थित होकर उन्होंने कहा-**आज इस शुभ क्षण में कितने ही देवी-देवता, ऋषि-मुनिगण पधारे हैं। वे आनंद मना रहे हैं। तुम लोग भी संकीर्तन करो।**

ठाकुर का कहना था कि मृदंग और करताल बज उठे। चारों ओर से गुरुभाईगण ठाकुर को घेरकर संकीर्तन करने लगे। बीच में ठाकुर हाथ जोड़कर स्थिर भाव से खड़े थे। एक व्यक्ति अंगभंगिमा करते हुए नृत्य कर रहा था। यह सब हमें अच्छा नहीं लग रहा था, बल्कि असंतोष हो रहा था। ठाकुर ने कहा-**कपट मत करो। कपट मत करो।** बार-बार ऐसा कहने लगे। वह व्यक्ति और भी भावोन्माद दिखाने लगा। तब पीछे से ठाकुर उसकी गर्दन पकड़कर रास्ते की ओर दौड़ पड़े तथा कीर्तन स्थल से उसे बाहर ढकेलकर कहा-यहाँ भाव दिखाने आये हो। भाव के नाम पर चोरी? धर्म के नाम पर

कपट? व्यक्ति पीछे मुड़कर न देखा, भाग निकला।

ठाकुर पुनः कीर्तन स्थल पर उच्च स्वर में हरिध्वनि करने लगे। मस्तक के ऊपर दाहिना हाथ उठाकर बारंबार घुमाते हुए **जय शचीनंदन! जय शचीनंदन!** कहने लगे। गुरुभाई लोग ठाकुर को देखकर मतवाले से हो गए। वे मण्डलाकार होकर ठाकुर के चारों ओर नृत्य करके घूमने लगे। उच्च संकीर्तन के भाव उद्दीपक स्वर में, मृदंग करताल की ध्वनि से सभी सुधबुध खो बैठे। दर्शकों में भाव अतिरेक से आनंद कोलाहल आरंभ हुआ। महिलाएँ बार-बार शंखनाद और मंगल ध्वनि से आश्रम को कंपित करने लगीं। राहू ग्रस्त चन्द्र की ओर देखकर ठाकुर उद्दाम नृत्य आरंभ कर दिए। योद्धा की तरह वाहवाही देते हुए, उच्च हरिध्वनि के साथ कूदने लगे। थोड़ी देर बाद चंद्रमा की ओर उंगली दिखाकर ठाकुर काँपने लगे और शीघ्र ही संज्ञाहीन होकर गिर पड़े। आकाश में तारे उज्ज्वल रूप से चमक उठे। जाने ठाकुर को किस रूप में देखकर गुरुभाईलोग विक्षिप्त से हो उठे। उन्होंने–'हरिहराय नम कृष्ण यादवाय नमः' का उच्च स्वर में गान आरंभ किया। वे ठाकुर की प्रदक्षिणा करते हुए विचित्र नृत्य करने लगे। इस प्रकार काफी समय बीत चुका। राहू मुक्त चंद्र शुभज्योति फैलाता हुआ प्रकाशित हुआ। ठाकुर भी **हरि बोल! हरि बोल!** कहते हुए उठ बैठे। गुरुभ्राता भी धीरे-धीरे संकीर्तन समाप्त कर ठाकुर को साष्टांग प्रणाम करने लगे। कुछ देर विश्राम के बाद वे अपने-अपने घर चले गए। साधन प्रार्थी एक व्यक्ति आश्रम में प्रतीक्षा कर रहा था। ग्रहण के बाद ठाकुर ने उसे मंदिर के बरामदे में बुलाकर दीक्षा प्रदान की। ग्रहण के बाद वे आम्रवृक्ष के नीचे जा बैठे। शेष रात्रि ठाकुर के साथ बिताकर बड़ा

आनंद आया। भोर होते ही ठाकुर शौचादि सम्पन्न करके पूर्व दिशा के कमरे में अपने आसन पर जा बैठे। मैं भी प्रणाम करके अनुमति लेकर घर की ओर रवाना हुआ।

नदी में तूफान-दैवयोग से रक्षा।

बूढ़ी गंगा में तट पर स्नान तर्पण सम्पन्न किया। बीच नदी में नाव को इशारा करते ही माझीगण तट पर आए एवं मुझे नाव पर चढ़ा लिया। साधुवेश देख नाव में सभी ने आदरपूर्वक बिठाया। कुछ घंटों में हम धलेश्वरी के तट पर पहुँचे। तभी अचानक काले बादल आकाश में छा गये। चारों ओर अँधेरा छा गया। सामने नदी की भयानकता देख सभी विपत्ति की आशंका से विचलित हो उठे। वे माँझियों को यात्रा के लिए निषेध करने लगे। 'मीरेर वेग' के माझीगण आँधी तूफान की परवाह नहीं करते। वे पाल लगाकर मस्त चलने लगे। बीच नदी में पहुँचते ही घोर घटा, मेघ गर्जन एवं वर्षा से चारों ओर धुँधला हो गया। नदी में बड़ी लहरें उठने लगी और नाव डगमगाने लगी, अकस्मात-तूफान और भी बढ़ने लगा। मांझीगण पाल उतार न सके। वे असहाय होकर चिल्लाने लगे। मैं एकान्त मन से श्रीगुरुदेव के अभय चरणों का स्मरण करने लगा। ऐसा लगा ठाकुर स्थिर दृष्टि से मेरी ओर देख रहे हैं। तभी उल्लास से चीख कर मैं सबसे कहने लगा-कोई डर नहीं ठाकुर अवश्य हमारी रक्षा करेंगे। तभी आँधी के वेग से पाल दो टुकड़ों में फट गया। नाव भी सीधा होकर तीव्र वेग से पार की ओर बढ़ चली। अद्भुत तरीके से नाव तट पर जा लगी। आँधी वर्षा भी रुक गई।पार का घाट सिराजदीघा अब भी काफी दूर था। भट्टाचार्य ब्राह्मण गण आज की

यात्रा अशुभ है, पक्षांत में मरण निश्चित है आदि तर्क देने लगे। अंत में साधु बाबा नौका पर थे इसलिए रक्षा पा सके, उन्होंने ऐसा निष्कर्ष निकाला। मांझी लोगों ने किसी भी प्रकार मुझसे किराया न लिया। प्रायः दिन के डेढ़ बजे नाव सिराजदीघा जा पहुँची।

पुनः महा दुर्लक्षण आरंभ हुए। आकाश में काले बादल गरजने और बिजली चमकने लगी। सबने दुकानों में आश्रय लिया और मुझे घर जाने को मना किया। मैने सम्मुख उज्ज्वल शुभ्र ज्योति देखी और निर्भय हो रवाना हुआ। वर्षा होने ही वाली थी ऐसी दशा में लगभग डेढ़ घंटा चलकर घर पहुँचा। माँ की पदधूलि मस्तक पर लगाकर सारी थकान दूर किया। दो तीन मिनटों में मूसलाधार पानी बरसना आरंभ हुआ। एकमात्र ठाकुर की कृपा से मृत्यु के मुख से बच पाया, यह स्पष्ट समझकर घटना को संक्षेप में लिख रखता हूँ।

घर में उपस्थिति-माँ का आशीर्वाद।

घर में मंझले दादा और छोटे दादा को प्रणाम कर अपने भजन कुटीर में प्रवेश किया। निर्दिष्ट स्थान पर आसन लगाकर एकाग्र चित्त से नाम जप करने लगा। विवाह उपलक्ष्य में आए लोगों से घर परिपूर्ण था। आत्मीय जन झुण्डों में आकर मुझे देख जाते। मैं मौन रहा। बाद में माताजी की आज्ञा से कई व्यंजनों से उनका प्रसाद पाया। भोजन के समय का ठिकाना न रहा। परन्तु मन प्रफुल्ल और नाम सरस रूप से अपने आप ही चलने लगा। यह सब ठाकुर की कृपा है समझ गया। जय गुरुदेव!

घर में पहले कुछ दिन अच्छा लगा। शेष रात्रि को उठकर शौचादि, स्नान संपन्न कर जप, पाठ, हवन आदि नियम से करता

था। तब माँ चिवड़ा तलकर, नारियल किसा हुआ, घी, शक्कर मिलाकर लाकर मुझे सामने बैठकर खिलाती। कभी भिगोए हुए चावल को पीस उसमें दूध, नारियल किसा हुआ और उसमें शक्कर मिलाकर खिलाती। माँ जानती थी ये दो वस्तुएँ मेरी प्रिय है। भजन कुटीर में रहने पर स्त्रियाँ मेरे पास आने का अवसर पाएँगी, इस आशंका से जलपान के बाद बाहर के आम्रवृक्ष के नीचे जा बैठता था। दोपहर को तेज धूप होते तक वहाँ रहकर भजन कुटीर में लौटता था। तब छोटेदादा मुझे एक कच्चे नारियल का पानी पिलाते और पास बैठे रहते। उनके असाधारण प्रेम और स्नेहदृष्टि से मेरा मन शीतल हो जाता। ठाकुर का अभाव अंशतः पूरा होता। कब मुझे क्या जरुरत पडे, वे इसी चिन्ता में व्यस्त रहते। उनके सेवाभाव को देख अवाक हो जाता और अपने को धिक्कारता था। शाम को माँ का दो ग्रास प्रसाद लेकर, स्वपाक आहार करता था। आहार के बाद अपने कमरे में बैठकर विश्राम करता, तब आत्मीय बंधु, ग्रामवासी नर-नारी आकर मुझसे मुलाकात करते थे। सिर झुकाकर ही उनकी बातों का उत्तर देता। सब संतुष्ट होकर चले जाते। पहले ऐसे ही आनन्दपूर्वक कुछ दिन बीते। बाद में दुर्दशा शुरु हुई।

कल सुबह नित्यकर्म से निपट, आसन पर जा बैठा। एकाएक मन चंचल हो उठा। बहुत चेष्टा करके भी नाम न कर पाया। आसन से उठकर बाहर आया। मैदानों में घूमते हुए प्राय दस बजे छकी के बाड़ी के जंगल में जा घुसा। शाम पाँच बजे तक यहाँ रहकर घर लौटा। स्वपाक भोजन कर आसन गृह में प्रवेश किया। नाम शून्य अवस्था में रहना कितना कष्टकर है, यह अनुभव हुआ। रारा रात

यंत्रणा एवं अनिद्रा में छटपटाता रहा। आज नित्य क्रिया के बाद ढाका रवाना होने के लिए प्रस्तुत हुआ। माँ ने कई प्रकार की वस्तुएँ प्रेमपूर्वक खिलाई। माँ ने कहा-'तुझे जहाँ शांति मिले वहीं रह। कभी-कभी तुझे देखने की इच्छा होती है। बीच-बीच में आकर मिल जाया कर। मैंने जो वस्तुएँ तुझे भेजी थी, वह सब तूने नहीं ग्रहण किया सुनकर बड़ा ही दुःख हुआ था इसलिए तेरे गोसाईं को गाली दी थी। मन का कष्ट गोसाईं ही समझ पाए हैं। वे मेरा अपराध भी क्षमा करेंगे। माँ की बातें सुनकर मन शीतल हो गया। अल्पाहार के बाद माँ की चरण धूलि लेकर सिराजदीघा रवाना हुआ। बहुत दूर तक छोटे दादा मेरे साथ आये। शाम पाँच बजे गेन्डरिया आश्रम पहुँचा। ठाकुर को देखते ही सारा अवसाद दूर हो गया और उत्साह, आनन्द मन में भर आया।

घी ग्रहण कर ठाकुर की कृपा।

थेलियाँ रखकर ठाकुर के पास बैठा हूँ कि फुतुबुडी एक कटोरी लेकर आई और मेरे सामने रखकर कहा-**ब्रह्मचारी!-बढिया घी लाए हो मुझे थोड़ा दो।** मैं उत्कृष्ट घी ठाकुर के लिए लाया था। पहले कैसे कुतु को दूँ, यह मन में सोचते हुए घी निकालने लगा, यह देखकर ठाकुर बालकों के समान हँसते हुए हथेली सामने कर कहने लगे-**ब्रह्मचारी! मेरे लिए नहीं लाये? मुझे भी थोड़ा दो।** मैंने ठाकुर के हाथ में घी डाल दिया वे पी गए और हाथ चाटते हुए घी की बड़ी तारीफ करने लगे; बोले-**विक्रमपुर का घी बड़ा उत्कृष्ट है-शांतिपुर के मलाई से बने घी के समान। घर में रखो तो बाहर से ही सुगंध आने लगती है। स्वाद भी खीर के समान है।** ठाकुर के लिये लाई

वस्तु किसी को देने के पूर्व उन्होंने ही आग्रहपूर्वक माँग लिया, यह देखकर बड़ा आनंद आया।

धर्म ग्रन्थ पाठ की प्रणाली।

ठाकुर के आदेश अनुसार आज महाभारत का मोक्ष पर्व पढ़ना आरंभ किया। सुनने के बाद ठाकुर ने कहा-**महाभारत महासमुद्र है! इसमें कहाँ क्या है, यह केवल पढ़ने मात्र से कोई याद नहीं रख सकता। पढ़ते समय इन ग्रन्थों से अच्छी बाते छाँट लेनी चाहिए। फिर मूल ग्रन्थ से ये श्लोक याद कर लेना चाहिए।**

थोड़ी देर रुक कर बोले-**मनुष्य यदि हिंसा शून्य हो सके, मन से हिंसा बिल्कुल दूर हो जाय। तो कोई भी प्राणी उससे हिंसा नहीं करता। घने वन में शेर, भालुओं के बीच अनायास निरापद हो घूमफिर सकता है। पहाड़ पर्वतों पर जो महात्मागण रहते हैं, मन में हिंसा का त्याग करके ही स्वच्छन्द रूप से रहते हैं। अहिंसा, सत्य और वीर्यरक्षा ये तीन यथार्थ धर्म हैं। ये तीन आ जाय तो सब अपने आप होने लगता है।** ठाकुर काफी देर तक उपदेश देते रहे।

तुम्हारा कार्य तुम करो-हिंसा अनिवार्य।

दोपहर को महाभारत पाठ के बाद ठाकुर के सामने हम लोग एकाग्र चित्त हो बैठे है। एकाएक एक बिल्ली ने एक आरजिना साँप को पकड़ा। साँप बिल्ली के मुँह में छटपटा रहा था। सभी को देख कष्ट हुआ। मैं साँप को छुड़ाने आसन से उठ पड़ा। ठाकुर ने तभी हाथ के इशारे से मुझे बैठने को कहा और बोले-**बैठो! अचानक कुछ नहीं कर बैठना चाहिये। तुम स्थिर बैठो, अपना काम करो।**

यह काम तुम्हारा नहीं। उसे देखनेवाले एक और हैं। उनकी इच्छा बिना एक तिनका नहीं हिलता तो कोई किसी का वध कैसे कर सकेगा? किसकी कब किस प्रकार मृत्यु होगी, यह तो उन्होंने ही तय कर रखा है। बिल्ली ने अपना विधि निर्दिष्ट आहार मुँह में लिया तो तुम उसे छुड़ाने को व्यस्त क्यों होते हो? रही जीव हत्या की यात, वह कौन नहीं करता। जीवन धारण करने के लिए ही तो जीव हत्या अनिवार्य हो जाती है। वृक्ष, लता, उभिज्जों में जीवन है। सुख-दुःख, रोग-शोक, दर्शन, श्रवण, स्पर्श सभी अनुभूतियाँ मानव जैसी ही हैं। वर्तमान दर्शन विज्ञान चाहे जो सिद्धांत क्यों न कहे, यह बात यथार्थ है। यदि कभी वह अवस्था आई तो सब समझोगे। प्रत्येक श्वास-प्रश्वास लेते, पलक झपकते असंख्य प्राणियों का वध हो जाता है इसे कैसे रोकोगे। वृक्ष-लता की हिंसा से तो हम जीवन धारण करते हैं। सर्वत्र हिंसा है। फिर किसी एक के आहार में दूसरे बाधा क्यों डालें। यह भगवान का ही विधान है। उनकी इच्छा और व्यवस्था के अनुसार ही सब हो रहा है। मन शांत कर भगवान के कार्य स्थिर भाव से सर्वत्र दर्शन करो। उनकी इच्छा बिना कुछ नहीं होता।

आग्रह पूर्वक अतिथि सेवा से ठाकुर की कृपावृष्टि।

प्रायः रात ग्यारह बजे प्रेमानंद भारतीजी कुछ साधुओं के साथ आश्रम में आए। सभी बंगाली सुशिक्षित बी.ए., एम.ए., थे। कोई-कोई सरकारी उच्च पदस्थ कर्मचारी थे। ठाकुर ने मुझे बुलाकर उनके

लिए भोजन बनाने को कहा। मैं उत्साहपूर्वक भोजन बनाने चला। भंडार-गृह जाकर देखा कुछ भी न था। थोड़ा चावल, दाल, नमक मिर्च पड़ी थी। सादी दाल बनाकर नमक मिर्च डाल दिया। अश्विनी को दाल चखाया। वह मुँह में डालते ही कह उठा-बाबा रे! इतना नमक, कोई मुँह में न दे पाएगा। मेरे सिर पर मानो बिजली गिरी। काफी पानी मिलाने पर भी नमक कम न हुआ। इधर रात के ढाई भी बज चुके थे। भूखे साधुगण प्रतीक्षा कर रहे हैं। क्या करूँ? निरूपाय हो एकाग्र चित्त हो ठाकुर का स्मरण करने लगा। प्रार्थना करने लगा ताकि-अतिथिवृंद तृप्तिपूर्वक भोजन करें। साधुओं को भोजन के लिए बुलाया। ठाकुर का स्मरण कर परोसने लगा। साधुगण दाल के स्वाद, सुगंध की खूब प्रशंसा करते हुए तृप्तिपूर्वक भोजन समाप्त किए। बची हुई दाल खाकर गुरुभाईलोग कहने लगे ऐसी स्वादिष्ट दाल आश्रम में कभी नहीं बनी। समझ गया ठाकुर की प्रत्यक्ष कृपा। उन्होने दया करके मेरी प्रार्थना सुन ली थी।

महासंकीर्तन में प्रेमानंद की शक्ति प्रार्थना, भाव का स्त्रोत मेरी शुष्कता। जीवात्मा अनंत उन्नतिशील। पाप पुण्य संस्कार मात्र। साधन से संस्कार मुक्ति।

प्रेमानंद भारती (सुरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय) ये मेरे विशेष परिचित बन्धु थे। गप एण्ड गॉसिप पत्रिका के संपादक थे। फैजाबाद में लगभग हर समय मेरे साथ रहते थे। साधन प्रार्थी होने पर ब्रह्मानंद भारती के पास दीक्षा लेने को कहा था। तब से वे इसी

प्रकार हैं। नीलानंद, शिवानंद आदि रामकृष्ण परमहंसजी के कृपापात्र हैं। सभी अच्छे घरों के हैं। धर्मानुराग से गृहस्थाश्रम त्याग कर उदासीन भाव से देश में हर जगह संकीर्तन करते घूमते हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त कुछ वैष्णव संन्यासी आश्रम में आए हैं यह खबर शहर में तेजी से फैल गई। दलों में लोग आकर साधु दर्शन करने लगे। आज संकीर्तन का विपुल आयोजन ले कई सभ्य व्यक्ति आश्रम आए। यथासमय मंदिर प्रांगण में मृदंग करताल बज उठे। ठाकुर कीर्तनस्थल में आकर साष्टांग प्रणाम कर खड़े हुए। भक्तवृंद ने चारों ओर ताली बजाते हुए उच्च संकीर्तन शुरु किया। संन्यासीगण ठाकुर को घेर नृत्य करने लगे। ठाकुर अपलक हाथ जोड़े सामने देखते रहे। उनके स्थिर शरीर का अंग-प्रत्यंग काँपने लगा। थोड़ी देर में उनकी आकृति बदल गई। वे **जय शचीनंदन! जय शचीनंदन!** कहकर आगे बढ़े और ठिठककर रुक गए। दाहिना हाथ ऊपर उठाकर उच्च स्वर में हरिध्वनि देने लगे। गुरुभाईगण भावावेश से उन्मत्त हो ठाकुर की प्रदक्षिणा करते हुए नृत्य करने लगे। ठाकुर उद्दाम नृत्य करने लगे और आँगन में घूमने लगे, विस्मित दर्शकमंडली उन्हें देखती रही। मृदंग करताल की झंकार सबके हृदय को नचा देती थी। बारंबार हरिध्वनि से भावस्रोत उमड़ने लगा। ठाकुर को देख कई गुरुभाई मूर्च्छित हो गए। ठाकुर के साथ मानो आश्रम की वृक्ष-लताएं भी नृत्य कर रही हों। न जाने किस शक्ति से आज सब एकाकार हो गए। स्त्री-पुरुष में भी भेद न रहा, सभी मतवाले हो गए। भाव विचित्र सौंदर्य से सभी का चित्त अभिभूत हो गया। ठाकुर अचेत हो गए। संकीर्तन रुका। थोड़ी देर में ठाकुर उठ बैठे। भारती महोदय उनके चरणों में पड़े कातरतापूर्वक

रोते हुए-शक्ति दो, शक्ति दो कहने लगे। ठाकुर ने उनके मस्तक पर हाथ फेर कर शांत किया।

आज महाभाव स्त्रोत में कितने ही तैरे, कितने डूबे। किन्तु मैंने केवल तट की गर्म रेत पर खड़े रहकर ही, सबको आनंद सागर में डुबकी लगाते देखा। इस बाढ़ की एक बूँद का स्पर्श तक न कर पाया। एक पल के लिए ठंडी हवा मेरे शरीर में न लगी। सोचा-हाय! मेरी यह क्या दशा हुई। दिनोदिन जैसे सूखी लकड़ी सा होता जा रहा हूँ। संकीर्तन में कभी मुझे भी भाव आता था, परन्तु जबसे ब्रह्मचर्य ग्रहण किया है, वह एकदम विलुप्त हो गया है। संकीर्तन के आनंद में अब स्पृहा न रही। अब तीव्र वैराग्य कठोर नियम पालन में ही तृप्ति मिलती है। ठाकुर ने कहा था-अहिंसा, सत्य तथा इन्द्रिय निग्रह ये तीन ही मानव के यथार्थ धर्म हैं। ये प्राप्त न हों तो किसी भी उच्च अवस्था का अधिकारी नहीं बना जा सकता। प्राणभर चेष्टा कर विचार बुद्धि द्वारा थोड़ा संयत होने की कोशिश मात्र कर रहा हूँ-कि यथार्थ धर्म का आभास अब तक स्वभाव में ढूँढकर नहीं पाता। मेरी प्रकृति संपूर्ण धर्म विरोधी है। विचार का धर्म छोड़, कब स्वभाव का धर्म लाभ कर पाऊँगा। संकीर्तन का आनंद सामयिक, अल्पकालीन होते हुए भी, यह जिन्हें प्राप्त हो वे विशेष भाग्यवान और उत्कृष्ट जीव हैं। मेरी तुलना में वे हजारों गुना श्रेष्ठ है। भगवान के नाम से जिनके आँसू निकलें, भगवान के गुण-कीर्तन में जो अपने को भूल जाएँ वे साधारण जन नहीं। वे स्वेच्छाचारी या दुराचारी क्यों न हों, मेरे प्रणम्य हैं।

‘अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।’

हाय मैं सभी ओर से ठाकुर की कृपा से वंचित हूँ। मन में बड़ा कष्ट हुआ। अवसर पा ठाकुर से पूछा-मेरी किसी ओर से कोई भी उन्नति नहीं हो रही है-क्यों?

ठाकुर-**उन्नति सभी की हो रही है। भगवान के राज्य में कोई भी वस्तु एक अवस्था में नहीं रहती। उन्नति हो ही रही है, यह निश्चित जानो।**

मैं कुछ उत्तेजित स्वर में जिद करता हुआ बोला-कैसे समझूँ उन्नति हो रही है। पहले जो सब पापकार्य नहीं करता था, अब वह करता हूँ। पहले जिन कल्पना और चिन्ताओं को घोर अपराध मानता था, उन सबमें अब सुख मिलता है। इस प्रकार सब ओर से अवनति देख रहा हूँ।

ठाकुर ने कहा-**इससे उन्नति की बाधा नहीं होती। अवनति भी नहीं होती, यह सब बाह्य बातें हैं। आत्मा की उन्नति हर दिन हर घड़ी हो रही है। अभी जिसे पाप-पुण्य कहते हो, वे सब संस्कार हैं। वस्तुतः यह सब कुछ नहीं। यह पाप है, यह पुण्य है, यह सुख, यह दुःख इन संस्कारों में आबद्ध होकर हम दुःख पाते और उन्नति नहीं देख पाते हैं। वृक्ष जैसे अपने आप बढ़ता है जीवात्मा भी उसी प्रकार हमारे कार्य, कर्म, इच्छा, अनिच्छा की अपेक्षा न रख उन्नति करती जा रही है। वृक्ष को कीड़े लग सकते हैं या डालें काटी जा सकती है, तो भी उसकी वृद्धि रुकती नहीं। पाप-पुण्य केवल संस्कारमात्र है। इसलिए मन दुःखी करना, अशांति भोगना ठीक नहीं। स्वभाव जो करवा ले करवा लेने दो, जो होना है, हो जाये। देखते जाओ, अशांति क्यों भोगते हो? जो भी करो, यह निश्चित जानो आत्मा की क्रमशः**

उन्नति ही हो रही है। सदा विचारपूर्वक चलो। भीतर जो संस्कार हैं, उनका स्फुरण होगा ही किंतु इससे आत्मा की उन्नति नहीं हो रही है, ऐसा मत सोचो। विचार, शम, संतोष द्वारा आत्मा की उन्नति उपलब्ध की जा सकती है। काम, क्रोधादि आत्मा को स्पर्श नहीं कर सकते। आत्मा अनंत उन्नतिशील है।

मैंने कहा-आत्मा की उन्नति-अवनति से मुझे क्या लाभ, यदि वह मुझे समझ न आए। अभी मेरी उन्नति तो मेरे लिए दूसरों की उन्नति के समान ही रही। मुझे जब तक कष्ट होता हो, त्रिताप ज्वाला दूर न हो तब तक मैं अपनी उन्नति नहीं मानता।

अरे नहीं-ठीक हो गया है।

कुछ समय तक श्रीधर मेरे पास बैठा ठाकुर की बातें सुन रहा था। मेरी बात समाप्त होते ही श्रीधर खूब हँसकर बोले-अरे नहीं, वह सब-कुछ नहीं है। ठीक हो गया है। सुनकर ठाकुर हँसकर बोले-**क्यों श्रीधर क्या कह रहे हो?** श्रीधर ने कहा-हमारे देश में एक कविराज वैद्य थे। वे नाई जाति के थे। एक दिन एक बुखार से पीड़ित रोगी को देखकर उन्होंने कहा-कुछ नहीं है, दवा लो और पिलाओ। तीन दिन में रोग ठीक हो जाएगा। चौथे दिन आरोग्य स्नान करवाऊँगा। सारी तैयारी रखना। रोगी औषधि लेता रहा पर रोग बढ़कर विकार का रूप ले लिया। चौथे दिन रोना-धोना शुरु हो गया। इस समय वैद्य बाहर से आकर पूछने लगे-तैयारी हो गई है न, आज आरोग्य-स्नान कराऊँगा। सबने उन्हें रोगी के पास बैठाया। रोगी अनाप-शनाप बक रहा था। कभी चेतना लौटने पर चिल्ला भी रहा था। वैद्य कुछ

ध्यान न देकर हाथ पकड़कर खींचते हुए कहने लगा-अरे नहीं ठीक हो गया है, उठो आरोग्य-स्नान करवा दूँ। रोगी जितना कहता जाता कि कष्ट सहा नहीं जाता। वैद्यजी कहते-सब कुछ ठीक हो गया है, उठो आरोग्य-स्नान करो। यह सुनकर ठाकुर खूब हँसे। फिर बोले-**सुख-दुःख, पाप-पुण्य सभी संस्कार हैं। संस्कार मिथ्या हैं। विचारपूर्वक यह समझकर शांत होने की कोशिश करो।** ठाकुर की बातें सुनकर सोचने लगा-यह बड़ी विचित्र बात है। संस्कार से ही भोग की उत्पत्ति होती है। भोग आरंभ होने पर भले ही विचार द्वारा शांत हो सकें, परन्तु भोग आरंभ के पूर्व ही संस्कार की खोज कैसे करूँ? अज्ञात संस्कार की शांति भी किस प्रकार करूँ। ठाकुर से पूछा-भोग जिन संस्कारों से उत्पन्न होता है-ऐसे अज्ञात संस्कार कैसे छुड़ाये जा सकते हैं?

ठाकुर ने कहा-**स्वभाव में जिसका जो संस्कार है, वह उसका प्रकट होगा ही। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप से देह-मन निर्मल होता तथा चित्त शुद्ध होता है। तब दैहिक, मानसिक कोई संस्कार नहीं रह पाता।**

संकीर्तन में भारतीजी की बाह्य चेतना प्राप्ति।

एकरामपुर में बिहारी मालाकार की ठाकुरबाड़ी में कीर्तन उत्सव चल रहा है। प्रेमानंद आदि साधुगण भी वहाँ आये हैं। आश्रम से भी कोई कोई गुरुभाई गए है। आज ठाकुर के पास आकर किसी ने कहा-भारतीजी बारह-चौदह घंटे से अचेत पड़े हैं। यह देखकर सभी व्यग्र हो रहे है। क्या करना चाहिए? ठाकुर बोले-**संकीर्तन करो, चेतना लौट आयेगी।** ठाकुर के कहने पर संकीर्तन करते ही उनकी

चेतना लौटी। भारतीजी आश्रम आये। हम सब उन साधुओं के साथ आनंदपूर्वक हैं। बाहर के कुछ लोग आश्रम में रहने से प्राणायाम करने में असुविधा हो रही है। परन्तु आये हुए साधुओं को, जब तक रहें, आदरपूर्वक रखने का ठाकुर ने आदेश दिया है।

आकाशवृत्ति रक्षा का ठाकुर का आदेश। गुरुभ्राताओं की अभद्र-आलोचना। ठाकुर का सबके साथ भोजन करना।

किसी दिन भंडार शून्य होने पर कुछ भी उधार लेकर सौदा करने का उपाय नहीं है। ठाकुर असंतुष्ट होकर कहते हैं-**मेरी तो आकाशवृत्ति है। भगवान जिस दिन जैसा जुटायें, मैं उसी में संतुष्ट रहता हूँ। कुछ न मिले तो भी उनकी कृपा मानता हूँ। आप लोग कभी आश्रम के लिए ऋण मत लेवें। शिशु, रोगी, गर्भवती और अशक्त वृद्ध के लिए ऋण लिया जा सकता है। मेरे साथ जो लोग हैं उन्हें इस नियम का विशेष रूप से ध्यान रखकर चलना चाहिए।**

ठाकुर का अनुशासन सुन गुरुभ्राताओं में कुछ बड़े दुःखी और उद्विग्न हो उठे। कुछ दिनों से वे अतृप्तिकारी भोजन का कष्ट न सह पाने से बड़ी ही विरक्तिपूर्ण आलोचना करने लगे हैं और वे यह विष ठाकुर के पवित्र अंग पर छिड़क रहे है। ठाकुर निर्जन में आहार करते हैं। उनके आहार के समय घर का द्वार बन्द रहता है। योगजीवन तथा कुतुबुडी, ठाकुर एवं मंदिर का प्रसाद पाते हैं। नानी माँ और शांतिसुधा भी कब क्या आहार करती है, कोई नहीं देख पाता। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि गोसाईं व उनके परिवार का

आहार एक तरह का तथा आश्रमवासियों का आहार दूसरी तरह का होता है। ठाकुर के पैसे से कोई नहीं खाता और न तो योगजीवन कमाकर रूपये लाता है। आश्रम व्यय के लिए गुरुभाई लोग जो कुछ देते हैं उस पर आश्रम के सभी का समान अधिकार है। ये रूपये लेकर नानी माँ अपनी इच्छानुसार खर्च क्यों करती है? यह सब विवाद लेकर ठाकुर के अनजाने में किसी व्यक्ति से नानी माँ की बहस भी हो चुकी है। इसके बाद ठाकुर एक दिन योगजीवन को बुलाकर बोले-**योगजीवन सबके साथ बरामदे में मुझे भोजन देना।** तब से दक्षिण के बरामदे में ठाकुर दोपहर का भोजन करते हैं। मैं दोपहर का भोजन नहीं करता इसलिए परोसने का भार मुझ पर ही है।

भोजन दर्शन से देवी-देवताओं का आनंद।

आहार के समय सबके साथ ठाकुर को परोसना जितना असुविधाजनक है, सबके साथ बैठकर ठाकुर का भोजन करना भी उतना ही असुविधाजनक है। मुट्ठी भर अन्न ग्रहण करने में ठाकुर को आधा घंटा लग जाता है। भोजन का कौर मुँह में लेते ही कभी वे ध्यानमग्न हो जाते हैं, मुँह का अन्न मुँह में ही रह जाता है। समय-समय पर कुछ कहते हैं पर समझ में नहीं आता। आज भोजन करते समय सामने द्वार से उत्तर की ओर आकाश की तरफ काफी देर अपलक देखते रहे, फिर कहा-**अहा! क्या सुन्दर! क्या सुन्दर!** कहकर आँखें पोंछकर, धीरे-धीरे आहार करने लगे। पूछने पर बोले-**ये जो सब आये थे, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, काली, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती और कितने ही देवी देवता, ऋषि, मुनि आये थे।**

देखकर वे बड़े आनंदित हुए। मैंने पूछा-क्या देखकर आनंदित हुए? ठाकुर-**तुम लोगों का आहार देखकर कितने आनंदित हुए।**

हमारा लक्ष्य।

मैंने विस्मयपूर्वक पूछा-हमारा आहार देखकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव खुश हुए?

ठाकुर बोले-**तो न होंगे? तुम लोग क्या साधारण हो? तुम्हारे जो लक्ष्य है, उनके चारों ओर कितने ही योगी, ऋषि, देव-देवी, कितने ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव हैं। इस अनन्त उन्नति के पथ में कोटि ब्रह्मांड, कोटि वैकुण्ठलोक बिन्दु के समान हैं, कुछ भी नहीं। हम जिन्हें चाहते है, कोटि अवतार, भक्त और पार्षदगण उनके चारों ओर घूम रहे हैं। वे अन्तहीन महान पुराण पुरुष ही हमारे लक्ष्य हैं। हम उसी ओर अविराम चलेंगे। सर्वत्र हमारा निमंत्रण होगा। आनंद मनायेंगे पर रुकेंगे कहीं भी नही। किसी निन्दा-प्रशंसा में नहीं पड़ेंगे। पार्षद हो या नहीं उससे क्या? कितने ही इन्द्र आये-गये एवं आयेंगे-जायेंगे? इस पथ पर बद्ध होना ही विपत्तिजनक है। कहीं बद्ध न होना।** थोड़ा रुककर फिर बोले-**इस साधन पथ पर चलने से भगवान की अनन्त विभूतियाँ, सभी लीलाएँ क्रमशः प्रकट होंगी। नाव में चलने के समान दोनों ओर कितने ही सुन्दर दर्शन पाओगे। सर्वत्र श्रद्धाभक्ति से प्रणाम करो पर आसक्त कहीं न होना। आसक्त होते ही बद्ध हो जाओगे। अग्रसर न होने पर नए-नए दर्शन नहीं होते। नई अवस्था की भी प्राप्ति नहीं होती।**

ठाकुर की बातें सुनकर सभी अवाक् रह गए, मैं बड़ी उलझन में

पड़ गया। सबके भोजन के बाद स्थिर होकर सोचने लगा-ठाकुर ने यह क्या कहा? ठाकुर के कहने से तो लगता है कि सारी विभूति के प्रकाश एवं अन्तर्धान के अतीत, नाम के प्रतिपाद्य, अज्ञात् महान पुरुष ही हमारे लक्ष्य हैं। नियत अविराम गति से नाम में स्थिति ही हमारी अवस्था है, इसीलिए किसी अवस्था की बात पूछने पर ठाकुर पहले उपदेश देते, बाद में यही कहते हैं-**श्वास-प्रश्वास में नाम जपो, नाम से ही सब का मिलेगा।**

साधन में मेरा प्रयत्न और विफलता।

१७-२५ ज्येष्ठ। देखता हूँ मेरी चेष्टा से कुछ भी न होगा। ठाकुर के आदेश पालन की यथासाध्य कोशिश करके भी कृतकृत्य न हो पाया। जितने उत्साहसहित किसी विषय में नियुक्त होता हूँ-उतना ही हताश होता जाता हूँ। ठाकुर का एक भी आदेश ठीक से पालन नहीं कर पा रहा हूँ। वे मुझे सदा ही पैर के अँगूठे की तरफ दृष्टि रखने को कहते हैं। अब तक तो वैसा करता था, पर कुछ समय से इस ओर ध्यान नहीं दे पा रहा। जितनी दृढ़ता से इस ओर लगता हूँ न जाने क्यों असफल हो जाता हूँ। सभी विषयों में यही हाल है। वाक् संयम के लिए सालभर यथासाध्य प्रयास करता आया हूँ। अब तक ठीक था,पर कुछ समय से बड़ी शिथिलता आ गई है। आसन से उठकर रोज संकल्प करता हूँ कि आज कोई भी बात नहीं करूँगा। पर आश्चर्य की बात दो-एक घंटे में प्रतिज्ञा भंग हो जाती है। अचानक या अनजाने में ऐसा होता है, यह बात नहीं है। जानकर भी बोलने की अदम्य प्रवृत्ति रोकी नहीं जाती। आदत से लाचार हूँ। एक शब्द बोलकर ही तुरंत चुप हो जाता हूँ और पछताता हूँ। मन

ही मन फिर प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब न बोलूँगा पर फिर बोल डालता हूँ। हर घंटे कोशिश करता और असफल होता हूँ। इस प्रकार बार-बार देखकर, भुगतकर लगता है-ऐसा क्यों होता है? मेरी इच्छा से जब कुछ नहीं होता, तब अवश्य मेरी इच्छा के ऊपर एक और इच्छा है जो मुझसे बलशाली है। अब भीतर से यही भाव आ रहा है कि एकान्त मन से कातर हो ठाकुर के श्रीचरणों का आश्रय न लेने पर, उनके कृपा करके शक्ति न देने पर-मेरा साधन भजन, संयम का प्रयत्न तथा उनके आदेश का पालन करना कदापि संभव न होगा। गुरुदेव! एक बार कृपा करो।

जिह्वा की लालसा से असह्य यंत्रणा।

अब मैं निरूपाय हो गया हूँ। लोभ संवरण न कर सका। ठाकुर ने इतने समय तक उनके आदेशानुसार चलने में मुझ पर यथेष्ट कृपा बरसाई। सारे दिन जल तक ग्रहण न कर केवल अपराह्न पाँच बजे डेढ़ छटाँक चावल-दाल उबालकर खाता था। पर कोई कष्ट नहीं हुआ। आहार की कठोरता से मेरे शरीर की अधिक स्फूर्ति और मन का उत्साह बढ़ता जाता था। पर हाय! कुछ काल से मेरी यह क्या दर्दशा हुई? 'मुझमें लोभ नहीं' इस प्रकार की भ्रांत धारणा के वशीभूत होकर संयम में शिथिलता आ गई। 'इससे मेरा क्या बिगड़ेगा' ऐसी धारणा से गुरुवाक्य उल्लंघन करके तुच्छ स्वादिष्ट वस्तु का रसास्वादन करने से इस विपत्ति में पड़ गया। ठाकुर ने कहा था-**आहार के समय ही भोजन करना।** ठाकुर के इस आदेश के बावजूद भी, प्रसाद ग्रहण में दोष नहीं, यह शास्त्र की विधि मानकर, जब-तब प्रसाद पाने लगा। अब तो देखता हूँ छोटे बालक

भी जिन खाद्य पदार्थों पर लोभ न करे, उन पर भी मैं लोभ संवरण नहीं कर पाता। सरलता से न मिले तो चुराकर खाने की इच्छा होती है। अपनी दुर्दशा पर लज्जित होकर भी स्पृहा नहीं छोड़ पाता। कृपाप्राप्त अवस्था को स्वउपार्जित समझने पर जो दुर्दशा होती है, वही मेरी दशा हुई। लोभ रोकने की चेष्टा एकदम नहीं आ रही है। इच्छा भी नहीं होती। अब आगे की अवस्था सोचकर जला जा रहा हूँ। सोचा एक बार फिर प्राणभर कोशिश करके देखूँ। यथासाध्य प्रयास करके भी यदि मेरी मति विपरीत ही चली तो प्रारब्ध के अधीन हो रहा है ऐसा सोचकर ठाकुर की ओर ताकता पड़ा रहूँगा। यदि ठाकुर की इच्छा से मेरी चेष्टा विफल हुई तो भी दुःख किस बात का? बल्कि बुद्धि को उसी के अनुगामी करके, निश्चिंत होकर, आनंद मनाऊँगा। गुरुदेव! कुछ समझ नहीं आ रहा, दया करके शुभमति एवं शक्ति दो। मेरी रक्षा करो। तुम्हारी इच्छा बिना कुछ भी नहीं होने का। हर दशा में मुझे स्पष्ट यही समझा दो। मैं निश्चिंत होकर तुम्हारी ओर देखता बैठा रहूँ। ठाकुर! मुझसे अब नहीं होता।

गुरुवाक्य पर विचारबुद्धि।

गुरुदेव मुझे पग-पग पर दिखा रहे है कि कोई भी अच्छी अवस्था अपनी चेष्टा से नहीं पायी जा सकती। गुरुप्रदत्त कोई अवस्था की रक्षा करना भी स्वयं के लिए कठिन है। यह देख-सुन और समझकर भी मैं अपना कर्तृत्व अभिमान थोडा भी कम नहीं कर पाया। नाना अवस्थाओं में डालकर दयालु गुरुदेव मेरी यथार्थ प्रकृति मुझे दिखा रहे हैं। अब मेरे असंयत मन की मलिनता,

कुत्सित चरित्र की कलुषता तथा स्वभाव की नीचता ही अस्तित्व की भित्ति मालूम होने लगी। प्रवृत्तियाँ गुरुदेव की इच्छा के प्रतिकूल जा रही हैं। प्रतिकार का कोई उपाय नहीं पा रहा हूँ। कोई किनारा भी नहीं सूझ रहा है। अब तक रात को अँधेरे अकेले कमरे में भी पैर के अँगूठे की ओर दृष्टि रहती थी। अचानक जागने पर गर्दन झुकी हुई पाता था एवं दृष्टि पैरों की ओर होती थी। आज मेरी वह अवस्था कहाँ गई? गुरुदेव के आदेश पर बुद्धि का प्रयोग न कर अक्षरशः जब तक निर्विचार होकर उसका पालन करता रहा, तब तक उनकी कृपा से सहज ही सफल होता रहा। परन्तु आदेश या वाक्य के तात्पर्य को अपनी बुद्धि से समझने लगा तो सदा पैर के अँगूठे की ओर देखने का उद्देश्य स्त्री जाति का दर्शन न करना-यह सिद्धांत ठहरा लिया। गुरुवाक्य अक्षरशः पालन करना और उसके अभिप्राय समझकर तदनुसार कार्य करना इन दोनों में अंतर नहीं-यह बुद्धि जैसे ही मुझमें उत्पन्न हुई, तभी से मेरे सर्वनाश की सूचना हुई। स्त्री दर्शन न करना ही उद्देश्य है, अतः पैर के अँगूठे या पैर की ओर देखना एक ही बात है, ऐसा सोचकर कुछ दृष्टि विस्तार कर गया। यह आगे चलकर स्त्रियों के पैरों तक जा पड़ा। अब पैर देखने पर शरीर, मुख देखने की इच्छा या कल्पना आ गई। अब इसी ध्यान में मेरा दिन बीतता है। कुप्रवृत्ति के विरुद्ध चेष्टा असंभव हो गई है। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से गुरुदेव के सहज वाक्य का तात्पर्य खोजने का अनर्थ मैंने कर डाला। गुरुदेव! अब मेरा क्या उपाय होगा?

अवसर पाकर सुविधानुसार ठाकुर से जा बोला-आपने पैर के अँगूठे की ओर सर्वदा दृष्टि रखकर चलने को कहा था। मैंने इसका

तात्पर्य स्त्री-दर्शन न करना लगाया एवं अँगूठे से पैर तथा जमीन की ओर देखकर चलने लगा। देह मन स्वच्छ और शुद्ध करने के लिए निश्चित समय में एक ही परिमाण में स्वपाक आहार करने को कहा है। ऐसा सोचकर किसी का बिना माँगे दिया हुआ लघुपथ्य खाद्य वस्तु भी ग्रहण करने लगा हूँ। मेरी बात पूरी होने के पहले ही ठाकुर कहने लगे-**इसी से तो गोलमाल में पड़ गये हो। ठीक गुरुवाक्य के अनुसार ही चलना चाहिए। गुरुवाक्य का अर्थ समझना क्या सरल है? गुरुवाक्य के अनुसार चलते-चलते क्रमशः उसका यथार्थ तात्पर्य समझ में आता है।**

ठाकुर की बात सुनकर सोचा-गुरुगीता में तो पढ़ा है। मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं-सारे मंत्र या शक्ति का मूल गुरु का वाक्य अर्थात गुरुशक्ति है। गुरुवाक्य मानकर चलने पर साक्षात् गुरु एवं गुरुशक्ति के साथ संबंध रखा जा सकता है। स्वयं विचार, बुद्धि, कल्पना या अनुमान द्वारा एक अर्थ ठीक करके चलने पर साक्षात् गुरुसे संबंध नहीं रह पाता। गुरुवाक्य ही सार है।

गायत्री महात्म्य। ठाकुर का दुर्दैवयोग। आसन ही निरापद।

बड़े सबेरे जाकर बूढ़ी गंगा में स्नान-तर्पण कर आता हूँ। फिर अपने आसन पर आकर होम, पाठ समाप्त करके नाम-जप तथा गायत्री जप करता हूँ। ठाकुर ने गायत्री जप बढ़ाने को कहा है। गायत्री जप से ब्रह्मण्य तेज लाभ होता है। सोचा ब्रह्मण्य तेज से मेरा क्या प्रयोजन? ठाकुर से पूछा-श्वासप्रश्वास में इष्ट नाम जप से ही तो अधिक उपकार होता है। फिर केवल वही करने से नहीं चलेगा?

ठाकुर ने कहा-**गायत्री जप भी करो। श्वास-प्रश्वास में नाम जप से जो उपकार होता है, गायत्री जप से भी वही होगा। ब्राह्मण का गायत्री जप परम कर्तव्य है।** मैंने गायत्री जप की संख्या बढ़ा ली। सुबह नौ से ग्यारह बजे तक ठाकुर के पास बैठता हूँ। ठाकुर इस समय ग्रन्थ साहब तथा भागवत् आदि पाठ करते हैं। ग्यारह बजे के बाद शौचादि से निवृत्त होकर कुएँ के जल से स्नान करके आसन पर आते हैं। तिलक धारण करके, बड़े कमरे में सबके साथ भोजन करते हैं। भोजन के बाद आम्रवृक्ष के तले आसन लगाते हैं। शाम तक वहीं बैठते हैं। एक बजे से तीन बजे तक मैं महाभारत पाठ करके सुनाता हैं। फिर पाँच बजे तक ठाकुर के पास बैठकर नाम जप करता हूँ। भिक्षा लेकर भोजन बनाने और आहार में मुझे डेढ़ घंटे का समय लग जाता है।

ठाकुर ने मुझसे कई बार कहा है-**साधन के लिए रात का समय ही उपयुक्त है।** किन्तु अनेक कोशिश के बाद भी वह न कर पाया। श्रीधर सताये तभी रात जगना हो सकता है और नाम करता हूँ, अन्यथा नहीं। आज समाधिमग्न हो ठाकुर ने विचित्र बात कही, जिसे सुनकर सभी का हृदय काँप उठा। न जाने भाग्य में क्या लिखा है? आगामी दस आषाढ़ से ठाकुर के जीवन संकट की आशंका है। शरीर की रक्षा की संभावना कम है। ठाकुर को सदा आसन पर रहने को महापुरुषों ने कहा है। ऐसा करने पर महापुरुषगण उनकी रक्षा करने का प्रयत्न करेंगे। आसन पर ठाकुर के न रहने पर उनका कोई हाथ न होगा।

ठाकुर ने कहा-**प्रकृति की गति से जो होता है, हो जाए, इस विषय में मैं कोई इच्छा नहीं रखता।** ठाकुर की बात सुनकर बड़ा

कष्ट हो रहा है। सदा उनके पास रहने की कोशिश करने लगा। रात ग्यारह बजे तक अनेक गुरुभाई ठाकुर के पास बैठे रहते हैं। जगह न होने के कारण योगजीवन ठाकुर के पास पूर्व दिशा में सोता है। अभी तो ठाकुर का शरीर स्वस्थ ही जान पड़ रहा है।

ठाकुर के वैषम्य भाव की कल्पना से पण्डित महाशय का आश्रम त्याग।

कुछ दिनों से श्रीधर तथा पंडित महोदय को बुखार था। ठाकुर रोज उनकी हालचाल पूछते थे। एक दिन श्रीधर प्रबल ज्वर से क्लेश सूचक आवाज निकालने लगा। यह सुनकर ठाकुर जाकर उनका हाथ देख आए। पण्डित महोदय के ज्वर की दशा भी एक ही जैसे थी। यह जानकर भी उनसे ठाकुर ने कुछ न पूछा। इससे पण्डितजी के अभिमान को ठेस पहुँची। 'ठाकुर का विषमतापूर्ण व्यवहार है; अतः अब वे यहाँ नहीं रहेंगे।' ऐसा सोचकर ज्वर छूटते ही आश्रम छोड़कर चले गए। विश्वास महाशय भी आश्रम का कष्ट एवं बार-बार अभिमान पर चोट एवं ठाकुर का आचरण न सह सकने के कारण पण्डित महोदय के साथ चल पड़े। सुना है राह में बड़े ही दुर्भोग भोगते हुए वे रघुवर बाबा के आश्रम में पहुँचे। अब वे वहीं रहेंगे, बाबाजी बड़े सेवापरायण हैं अतः कोई कष्ट नहीं होगा। वे इनका पर्वत पर रहकर साधन भजन करने की सभी सुविधाएँ कर देंगे, ऐसा सबने कहा।

उनके बारे में ठाकुर ने कहा-**वे यदि संग त्यागकर, किसी की सेवा न लेकर, उदासीन भाव से रहें, साधन भजन करें-तो अब एक अच्छी अवस्था प्राप्त करेंगे। परन्तु यदि दोनों एक साथ और**

दूसरों की सेवा लें तो ऐसा नहीं हो सकेगा।

साधन करो। गुरुपर निर्भरता अभी बहुत दूर।

२६ ज्येष्ठ। मध्याह्न भोजन के बाद ठाकुर आम के पेड़ के नीचे गए। आज बड़ी गर्मी है। महाभारत पाठ के बाद ठाकुर को पंखा झलने लगा। कुछ देर ध्यानमग्न रहकर वे मुझसे बोले-**लोगों की भीड़ में साधन नहीं होता। अतः तुम भजन कुटीर बनाना चाहते थे। अब देखो आश्रम काफी निर्जन हो गया है। अब दिन-रात खूब साधन करो। साधन के विषय में किसी से कुछ न कहना। किसी से साधन विरोधी बातें भी मत सुनना। किसी ओर न देख अपना काम दृढ़तापूर्वक करते जाओ। अब से अच्छी तरह तितिक्षा का अभ्यास करो। उपकार पाओगे। एक ही बार आहार करना। आहार की मात्रा व समय नियत रखना। ऐसा करने से कोई बीमारी नहीं होगी। एक ही सब्जी से चावल (भात) की आदत पड़ जाए तब केवल उबली सब्जी, फिर नमक से भात खाने का अभ्यास करना। फिर नमक का भी त्याग करना। फिर पानी से ही रोटी खा सकते हो। आहार के विषय में खूब संयत रहना। मन के अधिकांश विकार, चंचलता और अस्थिरता शरीर के कारण ही होते हैं। जैसा आहार लो वैसा रक्त बनता है। उसी के अनुसार मन होता है। सिर्फ जल और भात खाकर देखना शरीर और मन कितना स्वस्थ्य रहता है। आहार की मात्रा व समय को नियत रखना भी सहज नहीं है। समय नियत रहे तो मात्रा में गड़बड़ हो जाती है। तीर्थ भ्रमण काल में कहाँ क्या जुटता है, कोई नहीं कह सकता। अधिक मिले तो परिमाण**

अनुसार ले सकते हो किन्तु कम मिलने पर कठिनाई होती है। तीर्थ पर्यटन में जमात के साथ रहने में एक अच्छी बात यह है कि राह में कई प्रलोभनों और भय से रक्षा मिल सकती है। जमात के साधुओं के साधन-भजन, आचार-व्यवहार के विरुद्ध कुछ नहीं कहना चाहिए। जो भजन स्थान में अशांति करे वह वहाँ टिक नहीं पाता, हट जाना पड़ता है। साधन न करके केवल 'गुरुकरेंगे' 'गुरुकरेंगें' बोलने से कुछ नहीं होने का। गुरु पर विश्वास है, ऐसा साधन-प्राप्त लोगों में अब तक मैं किसी को नहीं देखता। गुरु पर विश्वास क्या सहज है? जो गुरु पर विश्वास करता है, वह सृष्टि, स्थिति, प्रलय भी इच्छा मात्र से कर सकता है। जब तक अहंकार है, पुरुषाकार है तब तक गुरु करेंगे कहने से नहीं चलेगा। खुद श्रम करो, स्वयं न खटोगे तो कुछ नहीं होने का। कोई साध्य अनुसार यत्न करे, तो गुरु सहायता अवश्य करते हैं। गुरुवाक्य ही गुरु है। गुरु जो कह दें वही करने से गुरुकृपा प्राप्त की जा सकती है।

श्वास-प्रश्वास में नाम जपो तो महात्मागण तुम्हें मुक्ति दिलाने के उत्तरदायी होंगे। उनके आदेशानुसार कुछ न करो तो क्या हो सकता है? खूब साधन करो-श्वास-प्रश्वास में नाम जपो तो सब कुछ प्राप्त होगा। कोई अभाव न रह पायेगा।

ठाकुर के देहत्याग के बाद किस प्रकार चलूँगा? नाना प्रश्न व उपदेश।

२७ से २९ ज्येष्ठ। आज दोपहर ठाकुर आम के पेड़ के नीचे नहीं गए। पूर्व दिशा के अपने कमरे के आसन में ही बैठे रहे। महाभारत

पाठ के बाद मूसलाधार वर्षा हुई। निर्जन पाकर ठाकुर से पूछा-आप कब देह छोड़ दें कुछ भी निश्चित नहीं है। उसके बाद क्या करूँगा। बिल्कुल अकेला हो जाऊँगा। क्या होगा कौन जाने? उस दिन रात को आपने कहा था-काम भाव रहे तो विवाह करके भोग काट लेना ही अच्छा है। पहले तीन बार आपने कहा है-तुम्हें अब और गृहस्थ नहीं बनना पडेगा। आपका वह वाक्य क्या असत्य होगा।

ठाकुर ने कहा-**क्यों तुम्हें क्या विवाह करने की इच्छा है?**

मैंने कहा-यह बात सुनने से भी मुझे डर लगता है। ऐसी इच्छा मेरी बिल्कुल नहीं है, परन्तु जब काम भाव है तो सामयिक उत्तेजना में कुइच्छा एकदम नहीं होती ऐसी बात नहीं है। स्त्री संग में मेरी अश्रद्धा ही है।

ठाकुर-**नहीं, अब तुम्हें गृहस्थ नहीं होना होगा। यह सामयिक उत्तेजना या इच्छा कुछ नहीं है, यह सब छूट जायेगा। स्त्री संग में अश्रद्धा रहे तो कोई डर नहीं है। मेरे देहत्याग होने से क्या हुआ? जो कुछ कहा गया है, करो तो कोई अभावबोध नहीं रहेगा। ये सब बातें याद रखना बस। तीन वर्ष पानी-भात खाने का अभ्यास हो जाने पर केवल उबली शाक खाना। ब्रह्मचर्य में सत्य, अहिंसा एवं वीर्यधारण ही प्रधान साधन है। खूब नाम करो। छः वर्ष ब्रह्मचर्य पालन करने पर मन की गति किधर जाती है समझ पाओगे। यदि विवाह करने की इच्छा न हो तो गेरुआ वस्त्र और कौपीन धारणकर तीर्थ भ्रमण करना। जगन्नाथपुरी से क्रमशः चारों धाम जाना। किसी से अर्थयाचना न करना। इस विषय में खूब सावधान रहना। घाट पर पहुँचकर माझी से प्रार्थना करना कि वो पार कर दे। न करे तो वहीं बैठे रहना। तीर्थ**

पर्यटन की तीव्र इच्छा न हो तो जहाँ तक हो सके वहीं तक जाना। तीर्थ में जाकर संकल्प करके श्राद्ध तर्पण नहीं करना। केवल नित्य क्रिया करना, विग्रह दर्शन, साधुसंग, स्नानादि करना। जब तक रहो हवन न त्यागना। दूसरी मालाएँ रखो न रखो, रुद्राक्ष चिरकाल धारण करना। उपवीत कभी त्याग न करना। तीर्थ भ्रमण हो जाए तो एक स्थान पर आसन लगाकर बैठ जाना। काशी अच्छा है। ब्रह्मचर्य में जैसे सत्य, अहिंसा, वीर्यधारण प्रधान साधन हैं, संन्यास में भी वैसे वासना त्याग, सर्वदा भगवान का स्मरण उद्देश्य है। वासना त्याग कर सके तो इस बार छूट जाओगे। निन्दा-प्रशंसा जब मन को स्पर्श भी न करे तब समझो कि वासना नष्ट हुई। ये सब बातें याद रखकर चलना तो कोई विघ्न न आयेगा।

मैंने पूछा-चिरकाल क्या मुझे भिक्षा करके ही खाना होगा?

ठाकुर-**भिक्षा की कोई बात नहीं। बिना माँगे जो मिले वही लेना। शारीरिक श्रम के लिए भिक्षा का नियम है। एक स्थान पर बैठे रहकर जिसने जो दिया लेने में दोष नहीं है। कामिनी-कांचन के बारे में खूब सावधान रहना। आत्मीय हो या दूसरी, स्त्रियों को पास आने मत देना। अपने पास रुपये मत रखना। ये बातें स्मरण रखना। धन और स्त्री-यही बड़े भयानक है।**

प्रश्न-स्त्री जाति पर आसक्ति और धन पर आसक्ति इसमें अधिक हानिकारक कौन है?

ठाकुर थोड़ा रुककर बोले-**आसक्ति सर्वत्र अनिष्टकर है। परन्तु स्त्री जाति की आसक्ति की तुलना में अर्थ की आसक्ति अधिक अनिष्टकारी है। संभोग से स्त्री पर आसक्ति कम हो सकती है।**

वह ऐसे भी काटा जा सकता है। परन्तु अर्थ की आसक्ति जन्म ले तो काटना बड़ा ही कठिन है। अर्थ जितना पाओ तृप्ति नहीं होती। जितना मिले और पाने की इच्छा होती है।

ब्रह्मचर्य सफल हुआ कब समझूँगा? तीर्थ का प्रयोजन कब तक? ठाकुर के अन्तर्धान के बाद किस प्रकार चलने से उनके दर्शन मिलेंगे?

३० ज्येष्ठ शनिवार। आज भी ठाकुर दोपहर को अपने कमरे के आसन पर रहे। दोपहर को उनके पास कोई नहीं रहता। कभी शांतिसुधा, कुतुबुड़ी, नानी माँ और गेण्डारिया की औरतें आकर कुछ देर बैठकर चली जाती हैं। ठाकुर से पूछा-मेरा ब्रह्मचर्य सफल हुआ कैसे समझूँगा? ठाकुर ने कहा-**स्त्री-संग विषयक कल्पना भी जब एकदम नहीं आएगी। स्त्री संग जब नितांत घृणित कार्य मालूम होगा, तब जानना ब्रह्मचर्य ठीक हुआ।** 'यह अवस्था यदि मुझे दस वर्ष पूर्व ही प्राप्त हो जाये तो क्या मैं संन्यास ग्रहण कर सकूँगा?' ठाकुर से यह पूछने पर उन्होंने कहा-**हाँ तब कर सकोगे।** मैंने पूछा-भिक्षा में सदा आतप चावल मिलने की संभावनाएँ नहीं होती। तब उसना चावल मिले तो क्या लिया जा सकता है?

ठाकुर बोले-**भिक्षान्न में दोष नहीं रहता। वह सदा पवित्र रहता है, जो मिले ले लेना।** मैंने पूछा-मुझे चिरकाल हवन करने को कहा है परन्तु यदि हवन की सुविधा न हो बेल पत्ता न मिले तो?

ठाकुर ने कहा-**हवन की सुविधा न हुई तो क्या कर सकते हो? तब न करो तो हानि नहीं होगी। घी, बेलपत्ता न जुटे तो**

कोई भी फल-फूल, पत्ता या पवित्र खाद्य, मंत्र पढ़कर अग्नि में आहुति देना। अग्नि जलाकर किसी भी वस्तु से हवन करना। प्रतिदिन अग्निसेवा जरूरी है। मैंने कहा-तीर्थ पर्यटन से क्या लाभ है? इसका प्रयोजन पूर्ण हुआ कब समझूँगा?

ठाकुर ने कहा-**जब तीर्थ पर्यटन की प्रवृत्ति न रह जाए, जब स्वयं का हृदय ही पवित्र तीर्थ सा लगे तब तीर्थ पर्यटन का प्रयोजन नहीं रह जाता। तब किसी भी स्थान पर बैठ जाओ।** मैंने पूछा-आपने तीर्थ पर्यटन के बाद काशी में रहने को कहा है। यदि मैं पर्वत पर रहना चाहूँ तो? ठाकुर-**तब तो बहुत ही अच्छा हो। तुम्हारी उम्र में यदि मैं यह साधन पा जाता तो क्या यहाँ रहता? अवश्य ही किसी पहाड़-पर्वत पर जाकर रहता। पर अब वह नहीं होने का। पहाड़ पर रहना है तो ग्रीष्म में बद्रिकाश्रम और शीत में ऋषिकेश में रहना। इन स्थानों में आहार की असुविधा नहीं है। पहाड़ पर काफी आहार जुट जाता है। कई प्रकार के सुस्वादु फल हैं जिन्हें खाकर अनायास रहा जा सकता है। इसके अलावा कई बौद्ध मठ है। ये बड़े दयावान है, खूब अतिथि सेवा करते हैं। इन स्थानों में रहने की असुविधा नहीं है।** ठाकुर की बातें सुनकर मैंने कहा-कई दिनों से आपको एक बात पूछूगा सोचता हूँ पर साहस नहीं जुटा पाता।

ठाकुर ने कहा-**क्यों बोलो न।** मैंने कहा-इसके बाद किस प्रकार चलने से आपको देख पाऊँगा। कैसे आपका अभाव मुझे कभी न खलेगा। यही जानने की इच्छा होती है। तब मैं क्या करूँगा सोच भी नहीं पाता। ठाकुर ने कहा-**देह त्याग होने से क्या हुआ? तुम्हें जो कहा गया है वह करो अभाव न रहेगा। तब तो बल्कि बार-बार,**

जहाँ तहाँ, सर्वदा देख पाओगे। ठाकुर से कातर होकर बोला-मैं कुछ नहीं चाहता मुक्ति क्या है नहीं चाहता, न जानता हूँ। उसके लिए मेरी रुचि नहीं है। आपका अभाव मुझे न सहना पड़े सिर्फ यही चाहता हूँ। आपका आदेश पालन कर सकूँगा कि नहीं यह भी नहीं जानता, परन्तु प्रयत्न अवश्य करूँगा। यदि इच्छापूर्वक या आलस्यवश आदेश मानकर न चलूँ तो चाहे जितनी सजा मुझे दीजिएगा, किन्तु ठीक तरह से चल पाऊँ या कम से कम कोशिश ही कर सकूँ तो भी आप मुझ पर कृपा कीजिएगा।

ठाकुर-**हाँ ऐसा ही होगा। सको न सको, प्रयत्न करने से ही चलेगा। तभी अभाव न रहेगा यह निश्चित जानो।** मैंने पूछा-सुना है मायिक रूप भी दिखते हैं। तब असली रूप एवं मायिक रूप को कैसे पहचानूँगा?

ठाकुर-**जो भी दर्शन हो तब उसका विशेष सम्मान, भक्ति करना। दर्शन के समय कुछ मन में मत लाना। खूब भक्ति करना, कोई संदेह मन में नहीं लाना। किसी के पास कुछ प्रार्थना मत करना। ये स्वयं ही जो करें वही अच्छा। प्रार्थना करने पर अनिष्ट होता है, यह बात याद रखना।**

मेरे पाप से ठाकुर के पीठ पर बेंत की मार।

१ आषाढ़ तक। नाना झंझटों में आज प्रातः बूढी गंगा में स्नान न कर पाया। सुबह आठ बजे सनातन महोदय के बगीचे के तालाब में नहाने गया। घाट पर वस्त्र रखकर गले तक पानी में जाकर डुबकी लगाकर ज्यों ही उठा, दूसरे पार में तीन सुन्दर युवतियाँ दीख पड़ीं जो सभी समवयस्का थीं। उन्हें देखकर न जाने क्या हो गया।

चौंककर आँख फिराना भूल गया। युवतियाँ चंचलतापूर्वक अंग हिलाकर, वस्त्र हिलाकर बार-बार मुझे देख रही थीं। उनके असाधारण रूप सौंदर्य तथा अंग सौष्ठव देखकर क्षण भर में मैं मोहित हो गया। मेरा हृदय धड़कने लगा। बड़ी कठिनाई से भ्रान्त चित्त को संयत करके शीघ्र आश्रम लौट आया। नित्य कर्म सम्पादित करके लगभग दस बजे ठाकुर के पास जाकर बैठा। ठाकुर ध्यानस्थ थे। धीरे-धीरे स्वयं ही बोलने लगे-**गया के पर्वत पर चार ब्रह्मचारी, सभी पर्वत पर चढ़ रहे है। पैर के अंगूठे पर दृष्टि है। पीछे एक व्यक्ति हाथों में बेत लिए है। ब्रह्मचारी की दृष्टि पैर के अंगूठे से हटते ही चटपट बेंत पड़ती है।**

पूछने पर वे बोले-**ये चतु:सन सनकादि ऋषि योगशिक्षा के प्रथम प्रवर्तक, योग शिक्षा देते है। जो शिक्षा देते है, स्वयं न करने पर बेंत खाते हैं। शिष्य न करे तो भी बेंत खाते हैं। पीछे से नारद बेंत मारते हैं। गुरु होना क्या भयानक है। बाबा! मैं किसी का गुरु नहीं हूँ। परमहंसजी ही गुरु हैं। उन्हें कौन बेंत मारेगा। वे ब्रह्म से युक्त स्वयं ब्रह्म है। वे ही सब करते हैं, मैं कुछ भी नहीं करता। वे ही सब कुछ हैं। वे सब देख रहे हैं। जो, जो कुछ कर रहा है सब देख रहे है। अच्छा-बुरा सब कुछ, बचने का रास्ता ही नहीं है। गुरु सब जानते है, सावधान।** ठाकुर की बातें सुनकर अचम्भा हुआ। लज्जा और त्रास से बड़ा क्लेश भी हुआ। ध्यान भंग होते ही गुरुदेव से पूछा-शिष्य के अपराध से गुरु को बेंत खानी पड़ती है?

ठाकुर ने मेरी बात का उत्तर न देकर, पीठ की ओर इशारा करके देखने को कहा, और ममतापूर्ण स्निग्ध दृष्टि से देखने लगे।

मैंने बैठे ही बाजू से देखा-जो देखा अब रहा न गया। ठाकुर ने मुझे कोई दण्ड नहीं दिया। शासनपूर्वक वाक्य तक न कहा, यहाँ तक मेरे गुरुत्वपूर्ण अपराध के विषय में सब कुछ जानते है, इसका आभास तक न होने दिया। शिष्य के उत्कट अपराध का भोग गुरु चुपचाप भोग ले शिष्य के लिए यह कैसी सजा है? यह भुक्तभोगी ही जान सकता है। असह्य यातना से सारा दिन छटपटाता रहा।

शिष्य को अभयदान। तुम्हारे बदले में भोगूँगा।

ठाकुर की अद्भुत दया और असाधारण सहानुभूति के फलस्वरूप एक सम्पन्न गुरुभाई का अभूतपूर्व परिवर्तन देखकर विस्मित हो गया। वह गुरुभाई बडा निर्भीक बड़ा हठी और सरल प्रकृति का था। उसने एक दिन मन में दुःख होने से क्षोभपूर्वक अत्यंत उत्तेजित दशा में आकर सबके सामने ठाकुर से कहा-गोसाईं, आपका यह साधन आप लौटा लो। में यह साधन न कर सकूँगा।।

ठाकुर हँसकर बोले-**क्यों क्या हुआ?** गुरुभाई-होगा क्या? यह साधन क्या हम सब कर सकते हैं? हमारे लड़के-लड़कियाँ घर संसार, समाज है। दस बड़े लोगों के साथ सद्भाव और आत्मीयता रखकर चलना पड़ता है। हम क्या साधन के नियम मानकर चल सकेंगे? ठाकुर-**केवल मांस, मदिरा, उच्छिष्ट मात्र खाना ही तो निषिद्ध है इसके अलावा और क्या नियम है। क्या यह सब लिए बिना नहीं रहा जाता?**

गुरुभाई-महाशय! चिरकाल से मदिरा,मांस खाता आया हूँ। यह

सब छोड़ दूँ तो खाऊँ क्या? आजकल सभ्यता बचाकर चलना हो तो यह सब खाना ही पड़ता है। घर में तो उच्छिष्ट मानकर चलना संभव नहीं हो पाता फिर बाहर समाज में उच्छिष्ट विचार कर चलना असंभव है।

ठाकुर-**अच्छा थोड़ी कोशिश करना फिर भी न कर सको तो क्या किया जायेगा?**

गुरुभाई-जी यह बात न कहें। आपके पास झूठ नहीं कह सकता। इस विषय में मेरी बिल्कुल चेष्टा नहीं है, करूँ कहाँ से।

ठाकुर-**अच्छा नाम तो कर सकते हो। उसी से बन जाएगा।** गुरुभाई-गोसाईं, नाम क्या करूँ, वह तो याद ही नहीं रहता।

ठाकुर-**अच्छा तुम एक काम करना उस समय मुझे स्मरण करना। और याद रखना तुम जो भी अपराध करो उसका दण्ड़ मुझे भोगना पड़ेगा। तुम्हारे अपराध के लिए अब तुम्हें भोगना नहीं पड़ेगा।** ठाकुर गद्गद् होकर सजल नेत्रों से उसे देखने लगे। तब गुरुभाई कैसा बदल सा गया। उसका सारा शरीर थरथर काँपने लगा। वह ठाकुर के पैरों पर गिरकर चिल्लाते हुए रोने लगा और लोटते हुए कहने लगा-प्रभु मेरे लिए आप भुगतेंगे? मेरे प्राण चले जाएं पर आज से आपके आदेश का उल्लंघन न करूँगा। ऐसा कहकर व्याकुल होकर रोते-रोते चला गया। अब उसमें अद्भुत् परिवर्तन देखा गया है। ठाकुर की बातें गुरुभाईयों से करते हुए वह आँसू से भीग जाता है, और पछताकर कहता है, ठाकुर मुझे साँड की तरह छोड़ दिये, और मेरे अपराधों की सजा स्वयं भोगते हैं। मेरे प्रति उनकी इस दया की कोई सीमा नहीं है।

आँधी वर्षा में आसन स्थिर।

मध्याह के आहार के बाद ठाकुर आम के पेड़ के नीचे जाकर बैठे। थोड़ी देर में चारों ओर बादल छा गया। आँधी-तूफान के साथ मूसलाधार वर्षा शुरू हुई। ठाकुर ध्यानमग्न ही रहे। श्रीधर तथा अश्विनी के साथ ठाकुर के सर पर दोनों ओर से छाता पकड़ा रहा। पर वर्षा से ठाकुर को बचा न पाया। हम सभी भीग गए। लगभग एक बजे ठाकुर आसन से उठे। पानी की धार व कीचड़ में आसन को उलटकर पैरों से रगड़ने लगे। फिर कपड़े बदलकर शरीर स्वच्छ करके पूर्व के कमरे में अपने आसन पर जा बैठे। मैंने कहा-वर्षा शुरु होने से पूर्व ही कमरे में आ जाते तो इस प्रकार भीगना न पड़ता। मृगचर्म भी नष्ट न होता।

ठाकुर बोले-**आसन पर बैठने से क्या हर समय उठा जा सकता है। कितनी अद्भुत अवस्थाएँ आती हैं। नए नए तत्त्व प्रकट होते हैं। तब आसन छोड़ो तो वह अवस्था खोनी पड़ती है। इसीलिए मृत्यु स्वीकार करके भी महात्मागण आसन नहीं छोड़ते, आसन पर स्थिर रहते हैं।**

कृष्ण मृग के उत्कृष्ट मृगचर्म के आसन को ठाकुर ने नष्ट कर डाला। इससे बड़ा दुःख हुआ। इसे बूढ़ी गंगा में विसर्जित कर आया। आज ठाकुर काफी देर तक वर्षा में भीगते रहे। रह-रहकर वर्षा होती रही।

ठाकुर के भजन स्थल आम्रवृक्ष से मधु वर्षा।

आज आकाश साफ है। जरा भी मेघ नहीं है, तेज धूप है। दोपहर को ठाकुर आम्रवृक्ष के नीचे जा बैठे, महाभारत सुनकर लगभग दो

बजे ठाकुर ने कहा-**आम्रवृक्ष से मधु टपक रहा है। देख पा रहे हो?**

मैं सिर झुकाए रहता हूँ इसलिए कुछ देखा नहीं था। ठाकुर के कहते ही जरा सा सिर उठाकर देखता हूँ, आम के पेड़ के पत्तों से अविश्रांत रूप से ओस की तरह कुछ टपक रहा है। आम के वृक्ष के नीचे के सूखे पत्ते, तृण, तुलसी वृक्ष सभी तैलयुक्त से हो गए हैं। मंदिर के पूर्वी तथा उत्तरी बरामदे में बूँद-बूँद मधु पड़ने से स्थान भीग गया है और उन पर बहुत सी चीटियाँ झूम रही हैं, वृक्ष के पत्तों पर असंख्य मधुमक्खियाँ झूम रही हैं। सुन्दर सुगन्ध से मन प्रफुल्लित हो रहा है।

ठाकुर ने कहा-**क्यों मधु ही है या नहीं,समझ पा रहे हो?** इसी समय श्रीधर और अश्विनी आ पहुँचे। दो तीन पत्ते चाटकर बोले-अरे वाह! यह तो बड़ा ही मीठा है। मधु ही तो है। मुझे विश्वास नहीं हुआ। मैंने पेड़ की निचली डाल से दो पत्ते तोड़ लिए।

ठाकुर सिहर उठे और बोले-**उह! क्या कर रहे हो? ऐसे पत्ते तोड़े जाते हैं?** मैंने देखा पत्ते पर तरल चिपचिपा पदार्थ लगा हुआ है। चाटकर देखा खूब मीठा था। आश्रम के दस-बारह लोगों ने भी पत्ते चखे। आम के वृक्ष के मधु का स्वाद पाकर सभी आश्चर्य चकित हो गए।

ठाकुर से पूछा-आम के वृक्ष से ऐसे मधु कैसे टपकता है?

ठाकुर-**केवल आम से क्यों किसी भी वृक्ष के नीचे निष्ठापूर्वक दीर्घकाल तक हवन यज्ञ, साधन-भजन, तपस्या की जाय या महापुरुषों का आसन रहे तो वे वृक्ष मधुमय हो जाते हैं। समय-समय पर इन वृक्षों से मधु टपकता है। खूब भक्ति सहित पूजा करने पर जल भी मधुमय हो जाता है। शांतिपुर में गंगाजल में**

मधु का कीट देखकर संदेह हुआ था। जल पीकर देख मीठा तथा मधुर गंध है। कई पुराने नीम तथा इमली के वृक्षों से झरने के समान मधु झरते देखा हैं। कमण्डल भरकर पान भी किया है। बाद में अनुसंधान से जान पाया कि उस वृक्ष के नीचे किसी सिद्ध महापुरुष का आसन था।

यह कहकर ठाकुर यह वेद की वाणी कहने लगे-**ॐ मधुवाताऋतायते, मधु क्षरन्ति सिद्धवः।। माध्वीर्ण सन्तोषधीः।। ॐ मधुनक्तमूतोषसो मधुमत् पार्थिव रजः।। मधुवदौरस्तु नः पिता।। ॐ मधु मान्नो वनस्पतिर्म्मधुमां अस्तु सूर्य:।। माध्वीर्गावो भवन्तु नः।।ॐ मधु, ॐ मधु,ॐ मधु।।**

'वायु मधु वहन करें। समुद्र सकल मधुक्षरण करें। हमारे धान्य औषधि सकल मधुपूर्ण फसल प्रदान करें रात्रि मधुरूप हो। ऊषा मधुयुक्त हो। पृथ्वी की सारी धूलि मधुपूर्ण हो। आकाश मधुमय हो। हमारे पितृगण मधुयुक्त हों। हमारे वनस्पति मधुयुक्त फल उत्पन्न करें। हमारी गायें मधुमय दुग्धवती हों। ॐ मधु ॐ मधु ॐ मधु।।'

कई दिनों पहले सुना था कि आसन के वृक्ष पर कई देवी-देवताओं के चित्र उभरते है। सोचता था, यह सब भावुकता की बातें है। आज ठाकुर के पास खड़ा होकर वृक्ष को अच्छी तरह देखा गोलाकार,स्थूल, प्राचीन वृक्ष पाँच हाथ ऊपर से सरल रूप से चारों ओर बराबर फैला है। उसकी शाखा-प्रशाखा, पत्ते, डाल सभी सजीव, सुन्दर तथा सतेज है। उसकी छाल पर कई जगह से उभरकर ॐकार या विशिष्ट मूर्ति बन गई है। थोड़ी देर बैठने पर शरीर शीतल और मन प्रफुल्लित हो उठता है। चाहे ग्रीष्म की तपती भरी दोपहर क्यों न हो। इसके नीचे सदा शीतल छाया रहती

है। इस वृक्ष से लगा हुआ पूर्व दिशा में ठाकुर का आश्रम है। उत्तर दक्षिण में सुन्दर, आँखों को प्रिय लगनेवाली तुलसी के घने वृक्ष हैं। सामने धूनी का कुण्ड है। आसन से पंद्रह बीस हाथ दूर दक्षिण में स्वच्छ पुष्करिणी रहने से वायु की गति भी स्वच्छन्द है। पूर्व दिशा से आँगन के किनारे काँटे व लता से बनी बाड़ है। देखने में बड़ी सुन्दर है। सारा दिन पक्षियों के कलरव के अलावा कुछ सुनाई नहीं पड़ता। अपराह्न को गुरुभाई लोग एवं दर्शनार्थीगण के आने पर ठाकुर से धर्मचर्चा होती है। ऐसा मधुमय वृक्ष मैंने जीवन में कभी नहीं देखा। सारे पत्ते मानो पानी से धुले हों। अनवरत ओस के समान मधु टपक रहा है, यह अपूर्व दृश्य है।

कुस्वप्न-इसका कारण।

८ आषाढ़। कल मैंने विकट रात व्यतीत की। दो बार दुःस्वप्न ने मुझे कातर और कलुषित कर दिया। शरीर निस्तेज और अवसन्न तथा मन अवसाद और उद्वेग पूर्ण हो गया। किसी तरह स्नान, तर्पण, नित्यक्रिया आदि सम्पन्न कर पाया। ठाकुर के पास जाने की इच्छा न हुई। सिर के दर्द से अस्थिर हो उठा। आसन पर बैठकर सोचने लगा-इस बीच मैंने क्या अनियम किया कि मेरी यह दुर्दशा हुई। मीठा खाना निषिद्ध है, तो भी मैंने परसो लोभ में पड़कर आम और कटहल खा लिया था। कल आँधी वर्षा में समय का अंदाज न पाने से भोजन बनाकर रात को ग्रहण किया। एक और अनजाने ही अपराध बन गया है। कल तीन बजे कुछ सभ्रांत घर की शिक्षित महिलाएँ दर्शनार्थ आई थी, उनमें से दो तीन मेरी परिचित थीं। उनमें से एक तो मैं संसार त्यागकर कठोर वैराग्य और संन्यास का

पथ अवलम्बन कर रहा हूँ, सुनकर आत्महत्या का प्रयास भी कर चुकी है। सुना है, वे मुझे काफी देर तक अपलक देखती रहीं। मैं तो नतमस्तक था सो कुछ जान न पाया। किन्तु उनकी भावदूषित दृष्टि मेरे अन्तःकरण का दोष भाव जगा गई, जिसका यह दुष्परिणाम है।

ठाकुर के श्रीअंग से पद्मगंध एवं मधुक्षरण।

आज ठाकुर का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, वे आमवृक्ष के नीचे नहीं गए। मैं सिरदर्द लेकर उनके कमरे में गया। उन्हें ध्यानमग्न देखकर सोचा कि आज महाभारत न पढ़ने को कहें, तो बच जाऊँ। ठाकुर थोड़ी देर बाद सिर उठाकर बोले-देखो तो मेरे सिर में बहुत चींटियाँ काट रही हैं। रोज महाभारत के बाद उनका सिर देखता हूँ और ढेर सी जूँ और खटमल जटाओं से निकालता हूँ। सोचा चींटियाँ नहीं वे ही काट रही होंगी। जटा छूकर देखता हूँ सारी जटा ऐसी गीली है मानो खूब तेल लगा दिया हो। गर्दन व कान के पास चींटियाँ झूम रही थी। रोज ही जटा को गीली देखकर पसीने से भीगने की बात समझता था किन्तु आज पूर्णतः गीला देखकर ठाकुर से पूछा-सारा सिर गीला है और सुन्दर सुगन्ध आ रही है।

ठाकुर-**कैसी गंध?**

मैंने कहा-पद्म के समान।

ठाकुर-**ऐसा ही होगा। उसी गंध से चींटियाँ आ रही होंगी।**

ठाकुर के सिर का स्पर्श करते ही मेरा सिरदर्द गायब हो गया। शरीर स्वस्थ, मन प्रफुल्लित हो उठा और सरस भाव से नाम अपने आप चलने लगा। विस्मित होकर ठाकुर को छोड़कर दूर जा बैठा। और कई बातें सोचने लगा। ठाकुर फिर से जटा साफ करने

बोले। मैंने जटा साफ करते हुए पूछा-जटाओं की जड़ में कुछ पतला मोम सा जमा हुआ देख रहा हूँ, चिपका रहता है निकलता नहीं।

ठाकुर-**जो कहते हो वही मोम होगा। जमकर ऐसा बन गया है।**

मैंने कहा-कुछ दिन से देख रहा हूँ आपका सिर सदा पसीने से गीला रहता है।

ठाकुर-**पसीना नहीं। पसीना तो सूख जाता। पसीना क्या जमकर मोम बनता है? रोज देखकर भी समझ नहीं पाते, यह मधु है।**

मैं-क्या मनुष्य के शरीर से भी मधु टपकता है?

ठाकुर-**हाँ जैसा वृक्ष में देखा था वैसे ही।** कुछ रुककर बोले-**वृक्ष के नीचे बैठना अब सुविधाजनक नहीं होगा। कितनी ही चीटियाँ, मधुमक्खियाँ सिर पर आकर गिरती हैं। अब कमरे में रहना ही ठीक होगा।**

कुछ दिन हुए ठाकुर के शरीर पर सदा बूँद-बूँद पसीने सा देखता हूँ, पर जोरों से पंखा झलने पर भी सूखता नहीं। तब संदेह होता है, पर पूछने का साहस नहीं कर पाता। बीच-बीच में स्वयं ठाकुर गीले गमछे से पोंछ लेते हैं। पीठ तक हाथ नहीं पहुँचता तो मैं पोंछ देता हूँ। खूब तेल लगाकर नहाने पर शरीर जैसा दिखे, वैसा ही ठाकुर का शरीर दिखता है। मनुष्य देह से मधु पसीने की तरह निकलता हो यह तो न कभी देखा है न सुना है, और न किसी पुस्तक में पढ़ा है। ठाकुर का सब कुछ अद्भुत ही देखता हूँ। स्निग्ध, सुन्दर, सुगंध से घर सुगंधित हुआ रहता है। मधुमक्खियाँ, तितलियाँ आदि कमरे में आकर ठाकुर के के सिर पर चक्कर

काटतीं हैं और पंखे की चोट से बाहर भाग जाती हैं। असंख्य चीटियाँ भी झूमती हैं। देखते ही झाड़कर निकालता हूँ। ठाकुर नतमस्तक हो ध्यानमग्न रहते हैं। आँखों से अविरल अश्रु धारा बह निकलती है और उनका वक्ष भीग जाता है। श्वास-प्रश्वास के साथ ध्यानरत दशा में ठाकुर का मस्तक बायीं ओर झुक जाता है। आठ दस मिनट रहकर फिर उठते हैं यही क्रम जारी रहता है। इस प्रकार से चार बजे तक समय बीतता है। इस समय ठाकुर की जो अवस्थाएँ देखता हूँ वह सब व्यक्त नहीं कर सकता। उनकी असीम कृपा से देखता और धन्य होता जा रहा हूँ।

स्वप्नदोष का कारण-उपदेश।

ठाकुर ध्यानमग्न थे। उनके सिर उठाते ही मैंने अपनी दुर्दशा की बात कही।

ठाकुर-**कितनी बार कहा है इससे कोई हानि नहीं होगी। अनर्थक सोचकर कष्ट पाते हो। जानबूझकर वीर्य नष्ट करो तभी अपराध होता है और अनिष्ट भी होता है।**

मैंने कहा ब्रह्मचर्य में वीर्यधारण ही प्रधान साधन है, वह नष्ट हो तो कष्ट होता है।

ठाकुर-**स्वप्न दोष जैसा तुम्हारा होता है उससे वीर्यधारण की क्षति नहीं होती। वीर्यधारण ठीक ही हो रहा है।**

मैं-ऐसा होने पर शरीर अस्वस्थ, निस्तेज और अवसन्न हो जाता है। मन में स्फूर्ति नहीं रहती। साधन नहीं कर पाता। आपके पास भी आने की इच्छा नहीं होती। मुझे स्वप्नदोष क्यों होता है?

ठाकुर-**यह सब अनेक कारणों से होता है। उपाय भी सहज**

नहीं है। साधारण नियम तो मानकर चल ही सकते हो। रसास्वादन का लोभ छोड़ दो।

मैंने कहा-प्रयत्न तो कम नहीं करता। हैरान हो गया, अब मैं हार गया हूँ।

ठाकुर-**ऐसा कुछ नहीं। हैरान होकर भी कोशिश करते जाना होगा। यह एक दो दिन का काम नहीं है। यह ब्रह्मचर्य पहले ऋषिकुमारगण छत्तीसवर्ष किया करते थे। कोई बारह वर्ष भी करते थे। किन्तु छह वर्ष पहले कभी ठीक नहीं होता। तुम भी प्रयत्न करो, एकाएक न होगा, क्रमशः सब होगा। काम, क्रोध, लोभ सब अपने आप छूटेंगे, यह तो ठीक है। पर चुपचाप बैठने से काम नहीं चलेगा। अभ्यास करना होगा। खूब अभ्यास करो।** थोड़ा रुककर फिर बोले-**जिस पथ पर चल रहे हो आहार का नियम न रखकर चलोगे तो हानि होगी। आहार का परिमाण एक सा रहे और समय भी परिवर्तित न हो। इन दोनों का अनियम होने पर शरीर अस्वस्थ होगा ही। अपने नियम के आगे किसी का भी अनुरोध या विनती न सुनो। किसी भी प्रकार का मीठा तुम्हारे लिए अहितकर है उसका विषवत् त्याग करो।**

ठाकुर की बातें सुनकर समझ गया। मेरे स्वेच्छाकृत अनियमों का उल्लेख करके कहते तो शायद सह न पाता किन्तु मेरी त्रुटियों के बारे में अनजान बनकर सारी प्रयोजनीय बातें कह गए, मैं बड़ा लज्जित हुआ।

आत्मदर्शन-छाया दर्शन-ज्योतिदर्शन।

१० आषाढ़। रात्रि के शेष भाग में देखा, आज्ञा चक्र में मन केन्द्रित

कर नाम कर रहा हूँ। अचानक झिलमिलाता अपना ही रूप प्रकट हो गया। ठीक जैसे दर्पण में अपना मुँह स्वयं देख रहा हूँ। शुभ्रवर्ण, मुण्डित मस्तक, शिखाधारी ब्राह्मण मेरी ओर देख रहे हैं-ऐसा स्पष्ट देखा। देखते ही में आनंद विह्वल हो गया। कुछ देर बाद मुझे बाह्य ज्ञान हुआ, जाग उठा। सारा दिन चित्त प्रफुल्लित व सरस रहा। दोपहर को मौका पाकर ठाकुर को सब कह सुनाया।

ठाकुर-**ऐसा दर्शन पाना अच्छा है। जब जाग्रत अवस्था में ऐसा दर्शन हो तभी ठीक हुआ समझो। इसे आत्मदर्शन कहते हैं। काम-क्रोध के रहते जो आत्मदर्शन होते हैं। वे स्थायी नहीं होते। समय-समय पर केवल दर्शन होते हैं। रिपु सकल के दमन के बाद जो आत्मदर्शन हों, वह छूटता नहीं, स्थायी होता है।**

मैंने पूछा-काली अस्पष्ट छाया के समान, अँगूठे के आकार की, मनुष्य की आकृति, सर्वथा इधर-उधर देख पाता हूँ। वह भी क्या ऐसा ही है।

ठाकुर-**नहीं वह ऐसा नहीं, वह भिन्न है। आत्मदर्शन नहीं हैं।**

मैं-हवन की अग्नि में गेरुआ पहने अँगूठे के समान मनुष्य आकृति देखता हूँ।

ठाकुर-**हाँ, जितना चित्त शुद्ध होगा, स्पष्ट देख पाओगे।**

मैं-उज्ज्वल शुभ्र ज्योति सदा आँखों में लगी रहती है। कभी-कभी अत्यंत उज्ज्वल देखता हूँ। फिर कभी म्लान भी हो जाती है, ऐसा क्यों?

ठाकुर-**चित्त जितना शुद्ध व पवित्र होगा, ज्योति उतनी ही उज्ज्वल दिखेगी। चित्त मलिन या अपवित्र होने पर ज्योति अस्पष्ट होकर क्रमशः अदृश्य हो जाती है। चित्त शुद्धि के साथ**

उज्ज्वल होकर क्रमशः नाना प्रकार की ज्योति दिखाई देती है। मैंने कहा-कुछ दिनों से बात करने जाऊँ तो मन में विचार आता है कि सत्य कह रहा हूँ या नहीं। वैसे ही बात करने में बाधा पड़ती है और सोचकर बात करने के कारण, बातें कम करता हूँ।

ठाकुर-**यही तो प्रणाली है। एक दिन में सब कुछ नहीं होता। प्रणाली से चलो, समय पर अवस्था प्राप्त होगी। राह चलते हुए गन्तव्य के लिए उद्विग्न होकर क्या लाभ? एक ही दिन में सत्यवादी नहीं बना जा सकता। यह क्या इतना सहज है? बात करते समय इसी प्रकार विचार आने पर ही सच बोला जा सकता है। यही विधि है। किसी अवस्था को प्राप्त करने के लिए व्यग्र मत हो। प्रणाली अनुसार चलो, तुम्हारा कर्तव्य यही है। अवस्था, जब होने की होगी, उसके लिए उद्वेग निरर्थक है, काम करते जाओ बस।**

अवस्था लाभ या ठाकुर की सेवा-एक ही बात है।

ठाकुर की बात सुनकर दुविधा में पड़ गया। ठाकुर उत्साह, उद्यम सहित आप्राण साधन भजन तथा नियम पालन करते जाने को कहते हैं। किन्तु किसी अवस्था की प्राप्ति करने की कल्पना करने को मना करते हैं। उद्देश्य शून्य होने पर कार्य में उत्साह कैसे आयेगा? फल के लिए ही तो कर्म करता हूँ। ठाकुर कहते हैं- **अवस्था लाभ साधन सापेक्ष नहीं है, कृपा सापेक्ष है।** अप्राकृतिक अवस्था गुरुदेव के हाथों है। वे जब चाहेंगे कृपा कर तभी देंगे। अन्यथा हजार साधन भजन करके उसे नहीं पा सकते। ठाकुर स्वयं

फलदाता हैं, दयालु हैं, महासामर्थ्यवान हैं। अतः मैं यह आशा सदा कर सकता हूँ कि वे किसी भी क्षण मुझ पर कृपा कर सकते हैं। ठाकुर का आदेश मानकर सारे काम करता जाऊँ, पर कोई शुभ आकांक्षा उनसे न करूँ यह कैसे सम्भव है? ठाकुर का अभिप्राय कुछ समझ में नहीं आता। लगता है, ठाकुर के आदेश से साधन भजन-नियम पालन करना मेरा कर्तव्य है, उसी प्रकार सब उत्कृष्ट अवस्थाएँ प्रदान करना ठाकुर का काम है। मेरे कर्तव्य में तो पग-पग पर शिथिलता तथा अक्षमता आ सकती है, किन्तु ठाकुर के कार्य में कभी बिन्दु मात्र हेर-फेर नहीं हो सकता, क्योंकि वे महासमर्थी हैं। ठाकुर मुझे कोई अवस्था दें या मेरे लिए कुछ करें यह एक ही बात है। मुझ पर कृपा करने का अर्थ है, मेरी सेवा करना। यदि ऐसी बात है तो प्राण जाए तो भी ठाकुर कृपा करो, ऐसी अवस्था दो-यह प्रार्थना नहीं करूँगा। ऐसा चाहना भी गुरुत्वपूर्ण अपराध जान पड़ा। शायद इसीलिए अनुगत भक्तजन कभी किसी फल की आकांक्षा न करके केवल आदेश पालन और सेवा में ही परमानंद लाभ करते हैं तथा परितृप्त रहते हैं।

स्वप्न में गुरुरूप में आदेश भी असत्य हो सकते हैं।

गत दिवस ठाकुर की बात सुनकर भीतर ही भीतर उद्विग्न हो रहा हूँ। साधन-भजन, नियम पालन से ही मेरा संबंध है। उसके फलाफल में मेरा जब कोई हाथ नहीं है। तब अवस्था प्राप्ति के लोभ से हो या अनुरागवश-काम होना चाहिए। मेरा संबंध काम से है। अवस्था प्राप्ति के लिए साधन करने से अनिष्ट की आशंका है,

ठाकुर ने ऐसा क्यों कहा? पाठ समाप्त करके ठाकुर से पूछा- अवस्था प्राप्ति की प्रत्याशा तो गुरु पर ही निर्भर है, फिर अनिष्ट की आशंका कैसी?

ठाकुर-**यह सब क्या सहज है? तुम एक अवस्था पाने के लिए बहुत दिनों से यथाशक्ति यत्न कर रहे हो, परंतु कुछ नहीं हो रहा है। तब एक साधु आकर कहे-ऐसा करो तो हो जाएगा। तब वह न करना क्या सरल बात है। ऐसा प्रलोभन कोई नहीं टाल सकता। ऐसा करके कई लोग विपत्ति में भी पड़ते हैं। स्वप्न में भी ऐसे प्रलोभन आते हैं।** मैं-स्वप्न में देखूँ कि गुरु आकर आदेश या उपदेश दे गए तो वह भी असत्य हो सकता है? ठाकुर-**हाँ हो सकता है। गुरु रूप लेकर कोई भी परीक्षा ले सकता है।** मैं-फिर वह गुरु का आदेश सच या झूठ है, कैसे समझूँगा?

ठाकुर-**नाम करते हुए यदि रूप अदृश्य हो जाए तो जान लो यह ठीक नहीं था। नाम करने पर भी ठीक रहे तो जानो यह सत्य है। नाम करने पर माया या असत्य टिक नहीं सकता।** मैंने पूछा-यदि स्वप्न में नाम करने का स्मरण न रहे तो क्या करेंगे, यथार्थ गुरु कैसे समझ पायेंगे?

ठाकुर-**गुरु से पूछ लेना चाहिए। न हो सके तो संदेह आने पर ऐसे उपदेशों का पालन या अनुसरण न किया करें। प्रथमतः गुरु स्वप्न में आदेश करें या उपदेश दें तो उसमें मन में किसी प्रकार संदेह उदित ही न होगा।**

बर्रे का काटना। हिंसाजनित अपराध खंडन्। दो हिंसा की स्मृति। किसी के मन में आघात

पहुँचाना भी हिंसा है।

दोपहर को ठाकुर के भोजन के समय परोसने के बाद दरवाजे के पास खड़ा हुआ कि एक बर्रा आकर मेरे बाएँ हाथ में काट दिया। विषैला छोटा सा बर्रा, परन्तु लगा कि जलती हुई लोहे की सींक हाथ में घुस गई हो। मैं पीड़ा से अस्थिर हो उठा। बरामदे में हाथ पटककर मलने लगा। बड़ी कठिनाई से जरा शांत हुआ। ठाकुर के भोजन के बाद जैसे ही महाभारत लेकर बैठा और एक बर्रा आकर हाथ के उसी स्थान पर बैठा और डंक मारकर चला गया। देखते ही देखते हाथ फूलकर सुन्न हो गया। थोड़ी देर बाद महाभारत पढ़ना शुरू किया कि फिर एक बर्रा आकर उसी स्थान पर मंडराने लगा, और हाथ पर बैठने की कोशिश करने लगा। इस घटना से विस्मित हो मैंने ठाकुर से सारी बात कही।

ठाकुर ने पूछा-**बर्रों के प्रति कोई अत्याचार किया है क्या?** मैंने कहा-नहीं।

ठाकुर-**भगवान सर्वत्र है। हिंसा नहीं करनी चाहिये। किसी प्राणी को कष्ट नहीं देना चाहिए। मनुष्य ऐसा नहीं कर पाता, पर कोशिश तो करनी चाहिए। आज तुम अवश्य किसी प्राणी की हत्या किये हो। कुछ जीवों को कष्ट दिया होगा। तभी भगवान बर्रे के द्वारा जानकारी दिला रहे हैं।** ठाकुर की बातें सुनकर स्मरण हो आया आज कुछ प्राणियों की हत्या कर डाला था। ठाकुर से कहा-आज असंख्य चीटियाँ आसन पर चढ़ रही थीं। उन्हें एक-एक उठाकर फेंकना कठिन था, अतः झाड़ू द्वारा गुस्से में सबको झाड़ भगाया। उसी में कई मर गई। आपके आहार के समय भी शक्कर

साफ करते हुए कई चींटियों के हाथ पैर टूट गए।

ठाकुर-**खैर, ईश्वर की बड़ी दया है जो तुम्हारा दोष देखकर उन्होंने यह शिक्षा दी। बारबार एक ही स्थान पर न काटने से तुम्हारा मनोयोग न हो पाता। तुम्हारे अब तक हिंसाजनित सभी अपराध कट गए।** मैने ठाकुर से कहा-शिशुकाल में एक दिन पानी बरसने से छल्ले के नीचे जमे हर पानी में एक केंचुआ देखा था, जो पानी से निकलने का यत्न कर रहा था पर निकल नहीं पा रहा था। मैंने उसे एक तिनके से निकाला। थोड़ी देर बाद जाकर देखता हूँ कि केंचुए को असंख्य लाल चीटियाँ जकड़कर काट रही हैं और वह छटपटा रहा है। देखकर मैंने सोचा कि मैं उसे जल से न निकालता तो चीटियाँ तो उसे न काटती। फिर उसे जल में डाला तो कई चीटियाँ डूबने और तैरने लगी। एक-एक उन्हें निकाला तो कुछ ने मुझे काट खाया और मैं जलन से छटपटा उठा। उस केंचुए की यातना का दृश्य अभी भी भूल नहीं पाता। बचपन में मित्रों के साथ कितनी मछलियाँ, कछुआ, पकड़ा और मारा करता था। एक और बड़ा भयानक अपराध किया था जो अब भी याद है, नहीं भूल पाता। मेरी माता भोजन करने वैठी थीं, एक बिल्ली बहुत तंग कर रही थी। भगाने की काफी कोशिश करने पर भी न भागी, तब एक मोटी लकड़ी से दे मारा। लकड़ी बिल्ली की गरदन पर पड़ी। तभी बिल्ली गिर पड़ी। उसके नाक से खून निकलने लगा। वह गर्भवती थी उसके पेट में बच्चे भी हिलने लगे, बड़ा कष्ट हुआ। तभी पुरोहित बुलाकर बिल्ली के वजन का नमक देकर प्रायश्चित किया। जानबूझकर फिर जीवन में जीव हत्या किया हो ऐसा स्मरण नहीं आता। ठाकुर सुनकर सिहर उठे एवं मुझे रोककर उन्होंने कहा-

और! तुमने बड़ा ही अनुचित कार्य किया था। ओह! क्या भयानक! खैर तुम्हें उसके लिए और सजा नहीं भोगनी पड़ेगी। आज बर्रे के काटने से सब अपराध की सजा मिल गई। आज तक तुमसे जितनी हिंसा हुई थी, सब नष्ट हो गए। कोई पाप न रहा। अब से खूब सावधान रहना। कभी हिंसा न करना। वृथा वृक्ष का पत्ता भी न तोड़ना। किसी के मन में कष्ट न पहुँचाना। कटु वाक्य से किसी के हृदय में आघात पहुँचाना भी प्राणी हिंसा के समान पाप है-यह याद रखना।

आड़ में रहकर ठाकुर की कृपा-प्रत्यक्ष अनुभूति। दैनिक पाप मोचन के लिए पंचसूना का उपदेश।

मैं आश्चर्यचकित हो गया कि ठाकुर के कहते ही शरीर हल्का लगने लगा मानो कोई बोझ उतर गया हो। चित्त में प्रफुल्लता तथा मन में अपूर्व आनंद अनुभव हुआ। ठाकुर की असीम दया देखकर विस्मित हुआ। रोज जाने-अनजाने कितने ही प्राणियों के वध या क्लेश का कारण बनता हूँ। सारे जीवन में सत्कर्म एवं पुण्य के फलस्वरूप भी एक दिन के दुष्कर्म या अपराध मिट नहीं पाएंगे। मात्र दो एक बर्रे के काटने से कितना सा प्रायश्चित या पाप का दंड हो सकता है। हजार बिच्छुओं के दंशन से भी प्राणी के अंग-भंग के कष्ट की तुलना नहीं की जा सकती। ठाकुर स्वंय आड़ में रहकर बर्रे के काटने के बहाने मुझपर कृपा कर दिए, मैं स्पष्ट समझ गया। काफी समय पहले बर्रे ने काटा था। तब से खूब शारीरिक कष्ट और मानसिक उद्वेग पा रहा था। ठाकुर की बातें सुनते ही सब कुछ शांत

हो गया। देह मन में आनंद की लहर उठने लगीं। यह कल्पना या कोई भावुकता नहीं, मेरे शंकाकुल चित्त की प्रत्यक्ष अनुभूति है। ठाकुर की बातों में इतना बल, उनके हृदय में इतनी दया है। मैंने जब उनका आश्रय पा लिया तो मेरे समान सौभाग्यशाली कौन है? मुझे चिंता किस बात की? उनसे पूछा-सभी पापों का भोग यदि मनुष्य को भोगना पड़े तो एक दिन का भोग एक जन्म में भी समाप्त न होगा फिर क्या उपाय है?

ठाकुर-**उपाय सभी ऋषि-मुनिगण बताकर गए हैं। रोज पंचयज्ञ व पंचसूना करने से, पंचसूना से होने वाले पाप का दैनिक प्रायश्चित होता है। देह पवित्र व चित्त निर्मल होता है।** पंचसूना किसे कहते हैं पूछने पर उन्होंने कहा-**चूल्हा, पानी का घड़ा, ओखली, झाड़ू तथा सिलबट्टा-इन पाँचों से जीव हत्या अनिवार्य रूप से हो जाती है, अतः इन पाँचों की प्रतिदिन पूजा करनी चाहिए। चूल्हा लीपकर, ओखली घड़े साफ कर, सिलबट्टा आदि धोकर उन्हें फूल, चंदन जल चढ़ाकर नमस्कार करना चाहिए। यह हर गृहस्थ का नित्य कर्तव्य है। उन्हें पंचयज्ञ भी रोज करना चाहिए। यह सब लुप्त हो जाने से ही सारे अनर्थ हो रहे हैं। इस विषय पर ठाकुर काफी देर तक बोलते रहे।**

ठाकुर की दिनचर्या। दुर्दैव का कटना। कुतु द्वारा आरती। संकीर्तन।

आषाढ़ माह आरंभ होते ही हम सबके अन्तःकरण में आतंक छा गया। कब ठाकुर को क्या हो जाए। ठाकुर सुबह कुटीर में, दोपहर को आम के पेड़ के नीचे तथा शाम को पूर्व के कमरे में

आसन लगाते हैं। दोपहर को वर्षा की संभावना हो तो आम के वृक्ष के नीचे न जाकर कमरे में ही रहते हैं। सुबह चाय पीकर श्री चैतन्य चरितामृत आदि ग्रन्थों का पाठ करते हैं। साढे नौ बजे तक कई गुरुभाई ठाकुर के पास बैठकर वह सब सुनते हैं। ग्रन्थ साहब तथा श्रीमद् भागवत पाठ के बाद ठाकुर ग्यारह बजे नित्य कर्मों से निवृत्त होते हैं। श्रीधर कुएँ से पानी भर लाते और वस्त्रादि धोते हैं। श्रीधर जिस दिन न कर पाए तो यह कार्य मैं करता हूँ। पण्डित महाशय व नव कुमार जी के आश्रम त्यागने के बाद से ठाकुर को पुनः पूर्व के कमरे में ही भोजन दिया जाता है। बारह बजे तिलक धारण करके ठाकुर आहार करते हैं। दोपहर तीन बजे तक उनके पास कोई नहीं रहता, गुरुभाई लोग अपने कार्यस्थल पर चले जाते हैं। आश्रमवासी गुरुभाईगण आहार करके अपने-अपने स्थान पर विश्राम करते हैं। मुहल्ले तथा शहर की महिलाएँ और गुरुभगिनीगण भी आकर ठाकुर का दर्शन कर जाती हैं। दोपहर दो बजे के बीच महाभारत पाठ हो जाता है। तब मैं ठाकुर की जटाएँ साफ करता हूँ तथा पंखा झलता हूँ। शाम पाँच बजे तक ठाकुर समाधि रहते हैं। आज दोपहर लगभग एक बजे ठाकुर का शरीर एकदम स्थिर और अचल रहा। श्वास-प्रश्वास का नामोनिशान तक नहीं था। मैं पाठ बन्दकर पंखा झलने लगा। तीन बजे ठाकुर कुछ सिर उठाकर बोलने लगे-**वे सब आकर मुझे काफी दूर ले गए थे। परमहंसजी से उन्होंने कहा-अभी इन्हें कुछ काल तक देह में रहना होगा। बहुत काम करना बाकी है। यह कहकर उन्होंने मुझे पुनः देह में प्रविष्ट करा दिया।** ठाकुर की बात सुनकर कुछ निश्चिंत हुआ तथा तीव्र उद्वेग की शांति हुई। ठाकुर से पूछा-कौन लोग आकर आपको ले गए थे? कहाँ ले

गए थे? ठाकुर-**कितने ही देवी-देवता और ऋषि-मुनि पधारे थे। किसी एक निर्दिष्ट स्थान में नहीं था। कितने ही पर्वत, सुन्दर स्थलों में घूमा फिरा।**

शाम को कई लोग आश्रम में पधारे। ठाकुर को कुछ कहने का अवसर ही न मिला। ठाकुर शाम से कुछ पहले आसन से उठकर शौच के लिए गए। फिर दूसरे दिनों की भाँति मंदिर के सामने जा खड़े हुए। कुतुबुड़ी शंख घंटा बजाकर धूप तथा पंचदीप लेकर रोज की भाँति माता ठाकुरानी की आरती उतारने लगी। तभी महासंकीर्तन आरंभ हुआ। प्रतिदिन संकीर्तन में गुरुभाई-बहनों का अदभुत भावावेश दिखाई पड़ता है। लिखने में भी संकोच होता है। कुछ भी प्रकाशित नहीं किया जा सकता। अल्पवयस्का, लज्जाशीला कुलवधुएँ भी गुरुजनों के सामने अपने को सम्भाल नहीं पाती। भावोन्माद की दशा में नृत्य करते हुए जनसमूह के बीच ठाकुर के सामने आ जाती हैं। सभी मतवाले से हो जाते हैं और भेदज्ञान नहीं रह जाता।

साधन की अवस्था। प्रत्यक्ष अनुभूति। अपनी उन्नति न देखना भी अकृतज्ञता है।

ठाकुर की कृपा से आषाढ़ माह अच्छा ही बीता। नाम करने में भीतर भीषण शुष्कता तथा बड़ी जलन होती थी-जो अब न रही। ठाकुर की कृपा से नाम में अब आनंद पाता हूँ। स्थिर भाव से सुषुम्ना में नाम करते हुए मन भीतर की ओर आकर्षित हो जाता है। बाह्य-ज्ञान प्रायः लुप्त ही हो जाता है। उत्तरोत्तर नाम के आनंद में मग्न और मुग्ध हो जाता हूँ। सभी स्मृतियों का लोप हो जाता है।

नाम ही मेरा अस्तित्व है, ऐसा अनुभव होता है। अत्युज्ज्वल ज्योति-दर्शन के नूतनतत्त्व में भी चित्त आकर्षित नहीं होता। नाम के सिवा सभी तन्मयता के विरोधी मालूम होते हैं एवं उनसे हरेक नाम में अपना अस्तित्व मिला देने में विघ्न मालूम पड़ता है। नाम मैं करता हूँ या कोई दूसरी शक्ति कराती है, यह भी नहीं समझ पाता। स्वभावतः नाम स्वयमेव होता रहता है। मैं मात्र उसका श्रवण करता हूँ, ऐसा अनुभव होता है। नाम जप के समय अर्थ-ध्यान या तात्पर्य की ओर स्मरण रखने की इच्छा भी नहीं होती। नाम केवल अक्षर या शब्द नहीं है, शक्तियुक्त, सारवान तत्त्व है, ऐसा लगता है। बीज संयुक्त या पूरा अथवा एक अक्षर स्मरण करने पर भी एक सा ही बोध होता है। ठाकुर ने गायत्री जप की संख्या बढ़ाने को कहा है। इससे उपकार भी पा रहा हूँ। गायत्री व इष्टमंत्र को एक सा ही कार्य करते देखता हूँ। गीता तथा चण्डीपाठ रोज करता हूँ। संस्कृत नहीं जानता अतएव अर्थ नहीं समझता। न तो समझने की रुचि होती है, केवल पढ़ जाता हूँ। ठाकुर ने कहा है-**श्रीमद् भागवत के द्वादश स्कन्ध भगवान के द्वादश अंग है। ऋषि प्रणीत सभी शास्त्र भगवान के रूप की वर्णना है।** ठाकुर की यह बात सुनने के बाद लगता है-शास्त्रों में सत्यस्वरूप भगवान की वर्णना है। मैं चिद्-घन-सत्यस्वरूप भगवान के किसी अंग का स्तवन कर रहा हूँ, इसी से पाठ के साथ ही इष्टमूर्ति ध्यान में प्रकट हो जाती है। संचारी भाव के आधिक्य से सारे श्लोक मंत्र जान पड़ते हैं। समझूँ या न समझूँ, इन ऋषि वाक्यों के श्रवण मात्र से अन्तःकरण शीतल हो जाता है और मन में विमल आनंद का अनुभव करता हूँ। ऋषि वाक्य के अर्थ और तात्पर्य को लेकर अशांति और बड़े मतभेद हुए हैं। किन्तु दयालु

ठाकुर मुझ भाषा ज्ञान शून्य व्यक्ति को शब्द मात्र के श्रवण से ही तृप्ति दान कर रहे हैं। मलिन अन्तस् में शास्त्रोक्त सदाचार के लिए आकर्षण भी मुझमें नहीं है, तथापि इष्ट मंत्र के अंकुर फूटने के लिए यह अत्यंत प्रयोजनीय लगता है। इतने दिनों तक काम के उत्पात् से साधन भजन में विघ्न पड़ता था। अब लोभ को उससे भी अधिक अहितकारी जान रहा हूँ। ठाकुर से जाकर सब कुछ कह डाला।

ठाकुर ने कहा-**अपने भीतर के दोषों को जिस प्रकार देखते हो, उसी प्रकार अपनी उन्नति भी कितनी हुई देखा करो। अपनी यथार्थ उन्नति न देखना भगवान के प्रति अकृतज्ञता होती है। इससे साधन भजन में भी उत्साह नहीं रह जाता और अविश्वास आ जाता है। सदा यह विचार करके चलना चाहिए।**

मैंने कहा-अपनी उन्नति देखना तो अनिष्टकारी होता है।

ठाकुर-**नहीं नहीं, यह बिना देखे काम कैसे चलेगा। अभिमान अनिष्टजनक है। रिपु के हाथ मनुष्य यदि एक ही दिन में मुक्ति पा भी ले तो क्या लाभ? एक उत्तम वस्तु को न पाकर वह रहेगा क्या लेकर, वह पागल हो जाएगा।**

ठाकुर से आज बहुत देर तक बातचीत हुई, बड़ी तृप्ति मिली।

ठाकुर की जटा छिन्न करने का प्रयास-न्यास चाहने पर नस देना। अद्भुत् काण्ड-चौबीस तत्त्वों का न्यास करने का आदेश।

श्रावण १२९५।महाभारत-पाठ काल में ठाकुर एक अमृत पान के नशे में विभोर से हो जाते हैं। आज ठाकुर को अत्यंत भाव-विभोर

देखकर महाभारत पाठ संक्षेप में सम्पन्न किया। धीरे-धीरे ठाकुर की जटाएँ साफ करने लगा। भावावेश में ही ठाकुर बोले-**आज जटा खोलने की जरूरत नहीं है।**

मैंने कहा-आपने क्या कहा मैं समझा नहीं।

ठाकुर मेरी बात सुनकर धीरे से सिर उठाकर-**देखते नहीं हो कितने उत्पाती हैं, मेरी जटा उखाड़ना चाहते हैं। बारम्बार मना करने पर भी नहीं सुनते। एक बार छूट दी जाए तो क्या बच पाऊँगा। सारी जटाएँ उखाड़ लेंगे।**

मैंने पूछा-कैसे कर पाएंगे मैं जो हूँ।

ठाकुर-**अरे तुम्हारे द्वारा ही उखड़वाएंगे। जब भी मुझे नशा सा लगता है। ये सब आकर खींचातानी करते हैं। जरा ढिलाई दो तो मुश्किल कर देंगे। कितने ही काण्ड करते हैं।** इतना कहते हुए ठाकुर फिर से तल्लीन हो गए। मैं थोड़ी देर बाद अपने आसन पर जा बैठा। थोड़ी देर बाद ठाकुर सिर ऊँचा उठाकर मेरे सामने हाथ फैलाकर, तन्मय अवस्था में ही अस्पष्ट स्वर में बोले-न्यास दो! न्यास दो। इतना कहकर पुनः ध्यानमग्न हो गए। मैं आसन से उठा पानी बरस रहा था। दौड़कर लोहे के पुल के पास से एक डिबिया मछलीपट्टनम नस खरीद लाया। ठाकुर के पास आकर देखा वे उसी दशा में मेरे आसन के आगे हाथ फैलाए चेतनाहीन से पड़े हैं।

थोड़ी देर बाद सिर उठाकर बोले-**दिया नहीं। न्यास दो!** मैंने थोड़ी सी नस डिबिया से निकालकर उनके हाथ पर उड़ेल दिया। हाथ में नस लेकर ठाकुर पूर्ववत् ध्यान मग्न रहे।

जरा सा सिर उठाते ही मैंने कहा-नस आपके हाथ में दे दिया है,

जरा नाक में खींचकर देखें कैसा है?

ठाकुर मग्नावस्था में ही उंगलियों से नस दवाकर नाक में खींच लिए। नस का नाक में प्रवेश करते ही छींक पर छींक आने लगी। ठाकुर का भाव मानो छूट गया। दस बारह बार छींके आते ही ठाकुर सीधे होकर बैठे और मुझसे पूछा-**तुमने मुझे यह क्या दिया?**

मैंने कहा-आपने नस माँगा इसलिए लाकर दिया। मेरी बात सुनते ही ठाकुर उच्च स्वर में ठहाके लगाकर हँसने लगे, उनकी हँसी क्रमशः बढती ही गई। मैं बुद्धू जैसे कुछ न समझकर भी उनके साथ हँसने लगा। हँसते-हँसते पेट पर बल पड़ गए। बड़ी मुश्किल से हँसी रुकी।

ठाकुर से पूछा-आप हँस क्यों रहे थे? ठाकुर कुछ कहना चाहकर भी कुछ कह न सके। उन्हें फिर से हँसी आने लगी।

कुछ सम्भलकर बोले-**अच्छा तुम्हें न्यास देने को कहा और तुमने नस लाकर दे दिया। तुमने कुछ सुना नहीं। अभी-अभी कहकर गए, कुलदा का न्यास है-तुम उसे माँग लो। तुम भी अच्छे बुद्धू हो।** मैंने कहा-आपने तो देखसुनकर नाक में नस खींच लिया और मैं बुद्धू बना। यह न्यास है क्या? मैं तो नस समझकर पुल के पास से नस खरीद लाया।।

ठाकुर-**न्यास नहीं जानते? अंग न्यास, करांगन्यास यह सब तुम्हारा है, वह मांग लेने को कह गए।** मैंने कहा-कौन कह गए? मेरे पास तो कुछ भी नहीं है।

ठाकुर-**हाँ तुम्हारे लिए है। अभी अभी परमहंसजी आए थे, कह कर गए।** इतना कहकर उन्होंने श्रीमद् भागवत लाने की आज्ञा दी। मैं लेकर उनके पास आया तो ठाकुर ने मुझे एकादश स्कन्ध

का तृतीय अध्याय पढ़ने को कहा। मैंने पढ़ा।

ठाकुर ने कहा-**अर्पण को न्यास कहते हैं। तुम प्रतिदिन इस प्रकार न्यास करना।** मैंने कहा-पढकर कुछ भी नहीं समझा क्या करना होगा?

तब ठाकुर उस अध्याय के अंतिम कुछ श्लोकों का अर्थ समझाकर-**वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, नासिका, जिह्वा, आँख, त्वचा, कर्ण, क्षिति, अप, तेज, मरुत, व्योम, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द एवं मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, इन चौबीस तत्त्वों का न्यास किस प्रकार करना चाहिए, स्पष्ट समझाकर बोले-न्यास करके अपने को तन्मय रूप से ध्यान करना। उसी भाव में रहने की कोशिश करना।** आगामी कल से इस प्रकार न्यास का आदेश मिला। सभी कार्यों के पूर्व इस प्रकार न्यास प्रतिदिन, आजीवन करना होगा, ऐसा ठाकुर ने कहा।

मैंने ठाकुर से पूछा-इस प्रकार न्यास करने से होता क्या है?

ठाकुर-**करते-करते क्रमशः जान जाओगे।** ठाकुर की असाधारण कृपा पाकर बड़ा आनंद आया। थोड़ी देर बाद ठाकुर स्वयं ही कहने लगे-**यह सब आजकल कोई नहीं जानता, न तो करता है। कोई श्रद्धापूर्वक करता नहीं अतः जाननेवाले भी शिक्षा नहीं देते। इन सबके करने की क्या उपयोगिता है, करके ही तो जाना जा सकता है। शिक्षा देने के तो कितने ही विषय हैं। सभी लुप्त होते जा रहे हैं। एक भी व्यक्ति यदि श्रद्धापूर्वक करता तो सिखाने की कितनी ही बातें हैं। बड़ा दुःख होता है कि यह सब सिखाने के लिए कोई उपयुक्त पात्र न मिला।**

यह कहकर थोड़ी देर में वे समाधिमग्न हो गए। मैंने मन ही मन

ठाकुर से प्रार्थना की-ठाकुर! तुम्हारी जो इच्छा हो, दया करके मुझे शिक्षा देना, मैं आप्राण यत्न करूँगा। श्रीमद् भागवत पढ़कर ठाकुर की बातें सुनकर यहीं समझ पाया कि यथारीति न्यास किया जाए तो अपने मंत्र का तात्पर्य और साधन का लक्ष्य अतिसहज प्राप्त होता है।

इसके पूर्व और दो दिन ठाकुर ने मुझे इन अध्यायों का पाठ करने को कहा था, तब मैं इसका तात्पर्य समझ न पाया था। अब यह लगता है यह विधि मुझे देंगे यह पूर्व निश्चित था। उनकी कृपा या सहानुभूति मेरी अवस्था की प्रतीक्षा नहीं करती। धन्य गुरुदेव! तुम्हारा आश्रय प्राप्त करके ही कृतार्थ हो गया-यही समझाने के लिए यह सब साधन प्रणाली है और कुछ भी नहीं।

नमस्कार की विधि तथा निषेध।

आज मध्याह्न को ठाकुर पूर्व दिशा के कमरे में स्थिर बैठे हैं। एक गुरुभाई ने आकर ठाकुर के सम्मुख साष्टांग प्रणाम किया और चला गया। ठाकुर कुछ चौंक से उठे और बोले-**यह क्या? साष्टांग होकर पड़े तो क्या नमस्कार हो गया। इनको कोई ज्ञान ही नहीं। नमस्कार यदि भाव सहित करें तो दोनों का लाभ होता है। ऐसा न करने पर जिन्हें करे और जो करे, दोनों की हानि होती है।**

मैंने कहा-नमस्कार मैं किसी को नहीं कर पाता। किन्तु स्वप्न में मैंने देखा यहाँ आपको खूब भावपूर्ण नमस्कार कर रहा हूँ और आप आशीर्वाद दे रहे हैं।

ठाकुर-**ऐसा देख पाना अच्छा है। श्रद्धा न हो तो नमस्कार न किया करो। भाव सहित करो तो उपकार पाओगे। नाम करो,**

नाम से ही सब कुछ हो जाता है। नाम जपना सबसे बड़ी सेवा है। जो नाम जप करता है, यह सर्वोत्कृष्ट तथा यथार्थ सेवा करता है।

स्वप्न-संसार रूपी शिशु को दूर फेंकना होगा।

ठाकुर से जाकर कहा-आज एक स्वप्न देखकर मन न जाने कैसा हो गया है। उसका अर्थ कुछ भी समझ नहीं पा रहा हूँ।

ठाकुर-**क्यों तुम तो अच्छे-अच्छे स्वप्न देखा करते हो। क्या देखा?**

मैंने स्वप्न वृत्तांत कह सुनाया-मैं कहीं जाने को उद्यत होकर बाहर निकला। कुछ ही दूर जाकर देखा आप चौराहे पर खड़े हैं। चारों रास्ते में से एक रास्ता दिखाकर आपने कहा-इस रास्ते से सीधे चले जाओ ठीक जगह पहुँच जाओगे। मैं चल पड़ा। कुछ दूर जाने पर ही एक भीषण बाघ के दहाड़ने की आवाज सुनकर रुक गया। निरूपाय होकर रास्ते के किनारे अहाते की दीवार पर चढ़ गया। बाघ अन्य शिकार के पीछे दौड़ता हुआ भाग गया। मुझे देख न पाया। मैंने उतरकर देखा पीछे ही आप खड़े हैं और कह रहे हैं-कोई भय नहीं, कोई भय नहीं! और आप चले गए। मैंने सामने प्रशस्त और स्वच्छ रास्ता देखा और उस पर चलने लगा। थोड़ी दूर जाकर देखता हूँ एक असहाय सुन्दर शिशु मेरी गोद में चढ़ने के लिए हाथ बढ़ा रहा है। मुझे बड़ी दया आ गई, मैंने उसे कंधे पर उठा लिया। थोड़ी ही देर में देखा एक और विशाल बाघ दहाड़ता और कूदता हुआ हमें निशाना बना रहा है। बच्चे के लिए चिन्तित होकर उससे

लिपटा रहा। बाघ मेरे सामने पंजा फैलाए आक्रमण करने के लिए ताक लगा रहा था। भयानक विपत्ति देखकर मैंने बच्चे को पीछे ढकेलकर फेंक दिया। मैं बाघ की ओर अपलक देखते हुए नाम करने लगा। बाघ अत्यंत क्रुद्ध होकर उठता, बैठता दहाड़ता हुआ आक्रमण का यत्न करता रहा। मैं ठाकुर को स्मरण करता हुआ तेजी से नाम करने लगा। मेरी दृष्टि पड़ने से बाघ क्रमशः छोटा होने लगा और देखते ही देखते बिल्ली बन गया। उसे एक-दो बार मार पड़ते ही मर गया। बस मेरी नींद खुल गई। इस स्वप्न का क्या अर्थ है, मैं समझ नहीं पाया।

सुनकर ठाकुर बोले-**ठीक ही तो देखा है। अति सत्य-ऐसा ही होता है। स्वप्न लिखकर रखना। उस शिशु को फेंक न देते तो बाघ तुम्हें खा जाता। शिशु संसार है, जो स्नेही शिशु का रूप लिया हुआ है। उसे कांधे पर लिए चल रहे थे। वह बाघ संसारियों का नाश करता है। उस प्रकार की दृष्टि से बाघ भी बिल्ली बन जाती है यह सत्य है। तीव्र वैराग्य न हो तो संसार नहीं छोड़ता। सावधान!**

महापुरुषों का कल्पनातीत दारुण भोग

आज मग्नावस्था में ठाकुर अचानक बोल उठे-**उफ! कितना कष्ट है! क्या ही कष्ट है! देखा नहीं जाता! माता पिता पर इतना अत्याचार! क्या भयानक है! सारे संसार में धर्म की ग्लानि है, भगवान! अब यहाँ नहीं रहना चाहता। अब अंत करो, मुझे हटा लो, अब नहीं देखा जाता। उफ!** कुछ देर बाद ठाकुर सचेत हुए। आँख मुँह पोंछकर स्थिर होकर बैठे। मैंने पूछा-संसार की दुरवस्था

देखकर महात्मागण भी कष्ट पाते हैं?

ठाकुर-**महात्मागण कष्ट नहीं पाते तो और कौन पाता है? यह सब देख उन्हें जैसा कष्ट होता है दूसरे उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। संसारी लोग उसका एक आना भी नहीं भोगते। इसी कारण महात्मागण चले जाते हैं। यह सब देखकर सहन नहीं कर पाते। आँख पड़ ही जाती है बिना देखे भी नहीं चलता। संसार पाप से पूर्ण हो गया है। धर्म लुप्त हुआ जा रहा है।** मैंने पूछा-संसार छोड़कर जाने से ही क्या यह उनकी आँखों में न पडेगा?

ठाकुर-**यह संसार छोड़कर जाने पर यहाँ की दशा देखने वे क्यों आएंगे? जहाँ रहेंगे वह की अवस्था देखेंगे।**

सहानुभूतिवश महात्मागण संसारियों का क्लेश भोगते हैं, यह सुनकर आश्चर्य हुआ। सोचा क्लेशभोग ही करना है तो महात्मा बनकर क्या लाभ? क्लेश-नाश के लिए ही तो भगवान का आश्रय ग्रहण करते हैं। हमसे महात्मागण किस बात में सुखी हैं, यह ठाकुर से पूछूँगा यह सोचने पर याद आया-आनंद और ताप का अर्थ बताकर उन्होंने कहा था-**सुख-दुःख, आनंद-निरानंद परस्पर विरोधी होते हुए भी एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। जिसे जितना दुःख बोध है उसे उतनी ही सुख की अनुभूति भी होती है। जिसके विच्छेद में जितना क्लेश है, मिलन में उतना ही आनंद है। क्लेश की धारणा न होने पर आनंद का अनुभव ही कैसे होगा। दृश्य वस्तु धारणा से वंचित, जन्मान्ध व्यक्ति कभी दर्शन सुख या दर्शन के अभाव में दुःख नहीं जान पाता। भगवत् पदाश्रित जीवन-मुक्त पुरुष भी सुख-दुःख, आनंद-निरानंद के अतीत होते**

हैं। वे इच्छा करके सुख-दुःख आदि स्वीकार करते हैं। फिर प्रत्याहार भी उनके इच्छाधीन है। किन्तु साधारण व्यक्ति के लिए ऐसा नहीं है। क्योंकि वे बद्ध हैं एवं महात्मागण मुक्त हैं। जो माया और प्रारब्ध के अधीन हैं, छोटे या बड़े क्यों न हों सुख-दुःख, आनंद-निरानंद सबके लिए एक प्रकार ही है।

मैंने ठाकुर से कहा-इस बीच स्वप्न में गुरुगीता पढ़कर प्रणाम मंत्र पाठ करके नींद खुली। और एक दिन भगवत् गीता पाठ करते-करते नींद खुली। कभी-कभी नींद में प्राणायाम और कुंभक आदि भी होते हैं।

ठाकुर-**ऐसा होना खूब अच्छा है। दिन के नित्य कृत्यादि जब रात के नींद में भी होते रहें। तभी सब ठीक हुआ जानो। इससे कामना-वासना नष्ट हो जाती है। निद्रा में क्रमशः नाम होगा। यह सब प्रकट नहीं करना चाहिए-नष्ट हो जाते हैं।**

तृतीय वर्ष चार वर्ष के लिए ब्रह्मचर्य दान। छह वर्ष में ही पूर्ण होगा।

२० श्रावण शुक्ला दशमी। आज प्रातः स्नान कर नया उपवीत एवं स्फटिक की माला लेकर ठाकुर के पास मंदिर के सामने पहुँचा और कहा-कल मेरा ब्रह्मचर्य का दूसरा वर्ष पूर्ण हो गया।

ठाकुर-**अच्छा! अब क्या चाहते हो?**

मैं-आप जो कहें, यदि ब्रह्मचर्य दें तो वही करूँगा।

ठाकुर-**ब्रह्मचर्य जो दिया है वही करो। जो नियम बता दिया है, अब उत्साह पूर्वक वही पालन करो। ब्रह्मचर्य दीर्घकाल न करने से कुछ ठीक नहीं होता। बारह वर्ष पूर्व ब्रह्मचर्य पूर्ण नहीं**

होता। तुम्हें नौ वर्ष कहा था, पर अब देखता हूँ उतना समय नहीं लगेगा। इस प्रकार चलते हुए छह वर्ष में ही तुम्हारा ब्रह्मचर्य पूर्ण होगा। दो वर्ष बीत गए हैं, अब चार वर्षों के लिए ग्रहण करो। छह वर्ष पूर्ण हो जाएँ तब मुझसे कहना। तब चाहो तो संन्यास ले सकते हो। छः वर्ष ब्रह्मचर्य पालन करने से अन्य सभी साधन स्पर्श मात्र करते ही पूर्ण हो जाएंगे। विशेष यत्न न करना होगा। ब्रह्मचर्य सभी साधनों की नींव है। ठीक-ठीक हो जाए तो कोई उत्पात नहीं रह जाता। छहों रिपु संयत हो जाए तो बस! काम क्रोधादि रिपुओं को खूब वश में रखो। इन्द्रिय संयम ब्रह्मचर्य का साधन है। किसी रिपु की उत्तेजना कम हो जाय तो किसी से मत कहो। फिर वह अवस्था नहीं रह जाती, नष्ट हो जाती है। काम से क्रोध अधिक भयानक है। काम निर्जन-स्वजन, स्थानास्थान, पात्रापात्र, स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य सोचकर कार्य करता है किन्तु क्रोध में यह विचार नहीं रहता। जहाँ-तहाँ किसी भी अवस्था में मूर्ति धारण कर लेता है। इसी से क्रोध को चाण्डाल कहा गया है। क्रोध उत्पन्न होते ही साधक पतित हो जाता है। क्रोध का एकदम दमन करने की कोशिश करो। लोभ की चिंता न करो वह ठीक हो जाएगा। एक साथ सब नहीं होने का। नियम मानकर चलो धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा। अब से अध्ययन कम कर दो। गुरुगीता और भगवद्गीता का एक-एक अध्याय रोज पढ़ा करो। रोज गीता का एक श्लोक याद करना। सदा नाम जप करो, नाम में डूबे रहो। नाम में यदि अवसाद आये तो पाठ करो। अधिक पाठ का निषेध है इससे शुष्कता आती है। यह सब तुम्हें पहले बताऊँगा सोचा था। नाम में रुचि उत्पन्न

हो जाए तो कुछ करने की आवश्यकता नहीं। नाम लेकर पड़े रहने से ही चलता है।

आहार का नियम पूर्ववत् ही रहेगा। परंतु अब से दूसरों की पकाई वस्तु ग्रहण नहीं करोगे। ब्राह्मण के घर छोड़ भिक्षा भी मत करना। इस साधन के व्यक्ति, चाहे वे किसी भी जाति के हों, उनसे भिक्षा ले सकते हो। धन कभी किसी से नहीं मांगना। अर्थ का संसर्ग त्याग दो। दूसरे लोग जैसे हैं, अपने भाईयों को भी वैसा ही मानकर चलो। विशेष कुछ मत मानना। स्वयं के लिए कोई वस्तु संचय करके मत रखना। ब्रह्मचर्य के ये नियम पालन करके चलो और चार वर्ष चलो, तो सब ठीक हो जाएगा। बाद में जो करना होगा समय पर कहा जाएगा। ठाकुर की बातें समाप्त होने पर स्फटिक की माला एवं जनेऊ उनके हाथों में दिया। दो तीन मिनट तक वे उसे पकड़े रहे फिर मुझे देते हुए उन्होंने कहा-**यह लो धारण करो।**

मैंने ठाकुर को प्रणाम किया और स्फटिक की माला और जनेऊ धारण किया। मुझ पर ठाकुर की असीम कृपा देखकर आश्चर्यचकित हो गया। प्रथम वर्ष अन्त होने पर ठाकुर ने संतुष्ट होकर कहा था-**ब्रह्मचर्य कम से कम बारह वर्ष करना चाहिए परन्तु ऐसे चलने से नौ वर्ष में ही होगा। पर अभी एक वर्ष के लिए ही लो।** दूसरा साल पूर्ण होने पर अब ठाकुर ने कहा-**तुम्हें नौ वर्ष नहीं करना पड़ेगा। छह वर्ष में ही पूर्ण हो जायेगा। अतः चार वर्ष के लिए ही लो।**

गुरु पर एकनिष्ठा ही ब्रह्मचर्य का एकमात्र प्रयोजन एवं सर्वप्रधान लक्षण है। एकाग्र मन से ठाकुर के चरणों में यही प्रार्थना करता हूँ कि

यदि वे मेरे ब्रह्मचर्य से संतुष्ट हों एवं कृपा करें तो मेरे अंतस् में उनके श्रीचरणों के सिवा कुछ में भी आनंद, आकर्षण या आराम न हो। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य ही इस जीवन का अवलम्बन हो। मुझे यह प्रतीत होता है कि सर्वगुण के आधार सद्गुरु की उपासना ही सार है। अतः विशिष्ट सीमाबद्ध जीव अनन्त एवं असीम का ध्यान तथा धारणा करे, यह मिथ्या कल्पना मात्र है। अपने स्वतंत्र पृथक् अस्तित्व के बोध से ही मैं असीम अनंत को अंतःविशिष्ट बना देता हूँ। मैं क्षुद्र हूँ, चुल्लू भर पानी से ही यदि मेरी प्यास मिट जाए तो मुझे सागर सोखने का प्रयास करने का क्या प्रयोजन? अन्तस् की तृप्ति ही जीव का एकमात्र लक्ष्य है, तो वह लघु हो या बृहद् एक ही बात है। सारी वासनाओं की निवृत्ति का अर्थ भी अपने अस्तित्व मात्र की अनुभूति से परितृप्ति-यही समझ पा रहा हूँ। भगवान किसे कहते हैं, मैं नहीं जानता। लोगों के मुख से सुनकर अज्ञात् वस्तु के लिए लालसा उत्पन्न भी नहीं हो रही है। गुरुदेव! दया करो! तुम्हारे शांतिमय चरणों में चित्त संलग्न करने के लिए सारी वासनाओं का अन्त हो एवं चिरशांति प्राप्त कर सकूँ।

माता ठाकुरानी का झूलन, चण्डी पाठ से पूजा।

२४ श्रावण रविवार। आज दोपहर को भोजन के बाद ठाकुर ने कहा-**आहा! क्या सुन्दर! क्या शोभा हुई है! झूले के सिंहासन में बैठी भगवती झूल रही हैं।** मैं-कहाँ भगवती झूल रही हैं?

ठाकुर-**वह कैसे कहा जा सकता है। आँखों के सामने जो दिखा देख लिया। शायद ढाका में ही हो।** मैं-ढाका में तो कभी

ऐसा झूलन नहीं देखा सुना। माँ को झूले में बिठाया जाए तो कैसा रहेगा? वे ही तो हमारी आद्याशक्ति भगवती हैं। क्या केवल चण्डी पाठ करने से उनकी पूजा नहीं होगी?

ठाकुर ने कहा-**हाँ ऐसा करने से ही होगा। परन्तु चण्डी पाठ करेगा कौन? तुम मंदिर में रोज थोड़ा-थोड़ा चण्डीपाठ कर सकोगे रोज नित्यकृत्यादि के पूर्व ही पाठ करना होगा। रोज एक अध्याय पढ़ना।** आगामी कल से माता ठाकुरानी के मंदिर में रोज चण्डी पाठ करूँगा ऐसा निश्चित किया।

(श्रावण पूर्णिमा २५ श्रावण)

आज सुबह से बच्चों के मन में बड़ा उत्साह है। झूला सजाकर माँ को उसमें बिठाने की सबकी आकांक्षा है। उन्होंने भाँति-भाँति के सुन्दर फूल, पत्तों से मंदिर और दक्षिण का बरामदा खूब सजाया। फिर एक झूले पर राधाकृष्ण तथा ठाकुर के साथ माता ठाकुरानी की प्रतिष्ठा कर उन्हें झुलाने लगे। बड़ी सुन्दर शोभा थी। ठाकुर भी देखकर प्रसन्न हुए। बच्चों की इस सदीच्छा और उत्साह की प्रशंसा करने लगे। मंदिर प्रांगण में बहुत से लोग इकट्ठे हुए। शाम को गुरुभाईगण झूलन कीर्तन प्रारंभ किये। तीन घंटे तक कीर्तन का आनंद ले हरिलूट का प्रसाद लेकर सब अपने-अपने घर को गए।

आमवृक्ष की शिकायत-शरीर में कील ठोक दिया है।

२६ श्रावण ८ अगस्त १८९२। सुबह आसन से उठने से पहले ठाकुर बोले-**ओह! आम का पेड़ बड़ा कष्ट पा रहा है। मुझसे आकर वृक्ष ने कहा-मेरे वक्ष पर कील ठोक रखा है। यंत्रणा से सारी रात सो**

न सका। ठाकुर की बात सुनकर गुरुभाई लोग जाकर देखते हैं कि आम के वृक्ष में ठाकुर के आसन के ऊपर चन्दोवा टाँगने के लिए बच्चों ने कील ठोका था। रक्त के समान लाल रस उससे टपक रहा है। ठाकुर के आदेश से तभी कील उखाड़ दिया गया। ठाकुर रोज सुबह आसन से उठकर पक्षियों को चावल देते और वृक्षलताओं की खोजखबर लेते हैं। ये सब उनसे बातें करते हैं। अपनी सीमा में ये भी मनुष्य की तरह सभी विषयों में प्रयोजन के प्रति अनुभवशील हैं। मनुष्य, पशु, कीट-पतंगों के देह रक्षण और पोषण के लिए पंचेन्द्रिय से जैसे भगवान ने चैतन्य संयुक्त किया है, उसी प्रकार वृक्षलता स्थावर-जंगम की पुष्टि साधन के लिए उनके प्रयोजन अनुसार इन्द्रियों में यथायोग्य उन्होंने चैतन्य संयुक्त कर रखा है। अद्भुत है भगवान का सृष्टि कौशल।

भोजन आरंभ के पूर्व ठाकुर का श्रीहस्त-मुझे एक ग्रास दो।

आज आकाश में बादल छाये हुए हैं। ठाकुर पूर्व के कमरे में ही रहे। पाँच बजे तक नित्य की तरह उनके पास रहकर, भोजन बनाने आया। चावल-दाल, नमक-मिर्च, घी एक साथ चूल्हे पर चढ़ाकर खिचड़ी पकाई। ठाकुर ने कहा है कि-**जैसे ही भोजन पक जाए परोसकर निवेदन करना और आहार आरंभ करना।** मैंने चूल्हे से खिचड़ी उतारी, केले के पत्ते में डाला और ठाकुर को निवेदन करके नमस्कार किया। गरम खिचड़ी को जरा हिला रहा था कि बाहर बेड़े के बीच से सरसराता हुआ ठाकुर का हाथ पत्तल के आगे आकर रुका। ठाकुर बोले-**ब्रह्मचारी! तुम्हारा पकाया अन्न मुझे**

भी एक ग्रास दो, मैं खाऊँगा। मैंने तुरंत खिचड़ी उनके हाथ में दी। और भी देने के लिए रुका रहा। ठाकुर खाते-खाते बोले-**क्या सुन्दर स्वाद है। तुम्हारे समान स्वादिष्ट अन्न इस देश में कोई नहीं खाता। अब प्रतीक्षा मत करो। प्रसाद पा लो।** मैंने भी आदेशानुसार प्रसाद पाना आरंभ किया। ठाकुर के हाथ में पानी भी न डाला। ठाकुर आँगन में खड़े शांतिसुधा, कुतुबुड़ी आदि से बोले-**तुम लोग एक-एक करके ब्रह्मचारी से रोज उसका पकाया अन्न एक ग्रास खाकर देखना। क्या ही अपूर्व स्वाद है।** मुझसे बोले-**तुम्हारा आहार निर्दिष्ट परिणाम का है अतः एक ग्रास से अधिक न देना। रोज केवल एक ग्रास देना।**

आहार के समय ठाकुर की दया का स्मरण करके रोना आ गया। अचानक आकर मुझ दुराचारी, पापी पर क्यों इतनी कृपा की? चार पाँच सेकेन्ड देर से ठाकुर माँगते तो मैं क्या करता? मैं कब खाता हूँ, कोई किसी प्रकार नहीं देख पाता। ठाकुर का सब कुछ आश्चर्यमय है। यह सब देखकर भी मन गुरुमुखी न हुआ। दुर्दशा इसे ही कहते हैं।

अपनी आयु स्पष्ट दर्शन।

मंगलवार २६ श्रावण। आज महाभारत पाठ के बाद आम्र वृक्ष के नीचे ठाकुर के पास जा बैठा और नाम करने श्रावण लगा। मन नाम में डूब गया। आँखे बन्द थी स्वप्न के समान देखा एक काला साईन बोर्ड आकाश मार्ग से ठाकुर के पास होकर मेरे सामने आकर रुका। उसमें एक हाथ की तर्जनी के संकेत से उज्ज्वल स्वर्णाक्षर में ये निर्देशन थे-प्राणायाम तथा कुंभक योग से तुम्हारी आयु ..... वर्ष है।

देखते ही साइन बोर्ड अदृश्य हो गया। तभी मेरी चेतना लौटी। ठाकुर से यह कह सुनाया। ठाकुर बोले-**जो देखा सो अच्छा है। पर जो देखा ठीक देखा होगा यह कहा नहीं जा सकता, हो भी सकता है, किसी कारणवश नहीं भी हो सकता है। प्रस्तुत तो सदा रहना ही चाहिए।** ठाकुर की बातों से लगा। मृत्यु का निश्चित समय है, मात्र यही देखा। ठाकुर की इच्छा जब तक हुई वे संसार में रख सकते हैं।

ठाकुर की जटा देखना। प्राण धारण के लिए जीव हिंसा अनिवार्य।

मध्याह्न पाठ के बाद कुछ देर ठाकुर की जटा की देखभाल करता हूँ। सामने की बड़ी जटा के गुच्छे में कई खटमल इकट्ठे हुए हैं। एक-एक करके उठाऊँ तो बाकी सब भाग जाएंगे और जटा में छुप जाएंगे। अतः वृथा प्रयास न करके सबको एक साथ रगड़ देता हूँ। जूँ-खटमल जो भी चल रहे हों वहीं उन्हें पकड़ पाता हूँ। खून चूसकर वे ऐसे पुष्ट हो जाते हैं कि छूते ही पिचक जाते हैं। रोज जीव हत्या करता हूँ। क्या करूँ उपाय भी तो नहीं है। सोचता हूँ शरीर में जो असंख्य जीवाणु व कीटाणु हैं, औषधि प्रयोग से उन्हें मारे बिना रोग की शांति नहीं होती। देह की व्याधि के दमन के लिए प्राणीवध अवश्यम्भावी है। हिंसा, द्वेष या अवज्ञा प्रेरित न होने के कारण अन्तस् को स्पर्श नहीं करता। पाप बोध भी नहीं होता बल्कि रोग छूटने पर मन में आनंद ही आता है। जटा साफ करते समय ठाकुर ध्यानमग्न रहते हैं। मेरे कार्य में ध्यान न जाना ही संभव है। किन्तु जैसे ही उन्हें रगड़ देता हूँ, बीच-बीच में ठाकुर हरिबोल! हरिबोल!

कहकर उठ जाते हैं। ठाकुर सीधे बैठे हों तो पीछे या बायीं ओर से घुटने के बल बैठकर जटा साफ करता हूँ।

हुक्का तोड़ना। तम्बाकू त्याग। ठाकुर का तम्बाकू सेवन।

कल ठाकुर मेरे मुख से गन्ध पाकर बोले-**तम्बाखू पीकर आये हो? बड़ी दुर्गन्ध है।** ठाकुर की बात सुनकर शर्म और दुःख से चुपचाप आसन पर बैठा रहा। निश्चय किया कि कल से धूम्रपान नहीं करूँगा। अन्यथा ठाकुर के श्रीअंग की सेवा न करूँगा। आज सुबह आसन से उठा-हुक्का धोकर लाया फूल जल चढ़ाकर उसकी पूजा की, नमस्कार किया। फिर हुक्के पर जोर से आघात करके उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। ठाकुर के चाय पीते समय गुरुभाईयों ने इस बात को लेकर हँसी मजाक किया। तम्बाकू न पीने से मुझे बड़ा कष्ट होने लगा।

कुछ देर बाद ठाकुर ने मुझे बुलाकर पूछा-**क्यों तुमने हुक्का तोड़ दिया है? मुख से तम्बाकू की गन्ध आती थी इसीलिए? जब जटा साफ करो तो मुँह धो लिया करो तब गन्ध नहीं रहेगा या सुगंधित तम्बाकू भी पी सकते हो, उसमें दुर्गन्ध नहीं रहेगी। तम्बाकू न पीने से कष्ट होता है तो पी क्यों नहीं लेते। इसमें निषेध नहीं है, जाओ जाकर थोड़ा तम्बाकू पीकर आओ।**

दूसरे गुरुभाईयों से बोले-**एक हुक्का मिलता तो मैं भी तम्बाकू पीता।** सुनते ही दो तीन गुरुभाई दौड़ पड़े। पटुआटुली तथा इस्लामपुर घूमकर सुगंधित तम्बाकू तथा एक हुक्का ले आये। हुक्का तैयार करके ठाकुर को दिया। एक दो बार खींचकर ही ठाकुर

खूब खाँसने लगे और बेचैन होकर बोले-**बापरे, यह लो, भगवान बचाए,** ऐसा कहकर हुक्का सामने रख दिया। जगबन्धुबाबू उसे प्रसाद समझकर अपने लिए ले गए। इस पर गुरुभाईयों में जरा कहासुनी भी हो गई।

ठाकुर से पूछा-आप पहले तम्बाकू पीते थे?

ठाकुर-**हाँ मैं पहले तम्बाकू पीता था, किसी को तम्बाकू पीता देखकर पीने की इच्छा होती थी। कलकत्ते में एक दिन राह चलते-चलते एक रईस आदमी के घर के द्वार पर दरबान को हुक्का पीते देखकर बड़ी इच्छा हुई। उसका पीना खत्म होते ही मैंने हाथ बढ़ाया। उस हिन्दीभाषी दरबान ने मुझे खूब गाली देकर भगा दिया। बड़ा ही अपमान बोध हुआ। मैंने सोचा-मैं अद्वैतवंश का गोस्वामी, थोड़ी तम्बाकू के लिए एक दरबान से इतनी गाली पड़ी। अब कभी तम्बाकू नहीं पीऊँगा। तब से तम्बाकू नहीं लिया। जाति तथा वंश का अभिमान कभी-कभी मनुष्य के हित की रक्षा करते हैं।** थोड़ा रुककर ठाकुर बोले-**शारीरिक श्रम करने वालों को तम्बाकू का प्रयोजन पड़ता है। कई लोगों को इसकी उपकारिता भी मिलती है। रमता साधुगण ऐसा कुछ लिए बिना नहीं रह पाते, उनमें से कई तो गाँजा, चरस, तम्बाकू लेते हैं।**

पूर्वजन्म में निष्फल ब्रह्मचर्य-ठाकुर का सारभूत् उपदेश-साधन भजन जागरूक रहने के लिए है-कृपा ही सार है।

आज दोपहर को अवसर पाकर ठाकुर से पूछा-क्या मैंने पूर्व

जन्म में सद्गुरु का आश्रय पाया था?

ठाकुर-**हाँ पिछली बार भी सद्गुरु का आश्रय प्राप्त हुआ** था।

मैं-क्या पिछले जन्म में भी मुझे ब्रह्मचर्य पालन करना पड़ा था?

ठाकुर-**हाँ, लेकिन वह कुछ भी नहीं हो पाया था।**

मैं-उस दिन स्वप्न में आपने कहा था, दस वर्ष ब्रह्मचर्य रखो तो संन्यास की अवस्था प्राप्त कर लोगे।

ठाकुर-**स्वप्न में जो कहा जाता है, उसका अर्थ सर्वदा समझ में नहीं आता। दस वर्ष का तात्पर्य कितना समय होगा, यह भी कुछ कहा नहीं जा सकता।**

ठाकुर की बातें सुनकर सिर चकरा गया। सोचा यह तो सर्वनाश हुआ। पिछले जन्म में सद्गुरु का आश्रय पाकर भी, ब्रह्मचर्य ग्रहण करके भी, भ्रष्ट हुआ। प्रवृत्ति के प्रतिकूल क्या मैंने कोई भी साधन भजन नहीं किया होगा? या फिर प्रारब्ध इतना बलवान था कि ठाकुर मुझे बचा न सके। इस जन्म में फिर ब्रह्मचर्य क्यों दिया? ऋषि-मुनियों के कलेजे का धन, परम पवित्र ब्रह्मचर्य क्या इस बार भी मुझसे कलंकित होगा? दो वर्ष यथासाध्य ब्रह्मचर्य पालन करके भी इन्द्रिय चंचलता तथा दैहिक विकार शांत न हो सके। मन की मलिनता तो दूर की बात है। कठोर वैराग्य या तीव्र साधन-भजन मेरे सामर्थ्य में नहीं है। प्रारब्ध कटे भी तो कैसे? सुनता हूँ ठाकुर की कृपा से सब कुछ हो सकता है। पर ठाकुर की कृपा पर भरोसा या निर्भरता मुझमें है कहाँ? मन में यथार्थ व्याकुलता के न आने तक निर्भरता या भरोसा तो व्यर्थ बातें हैं। उत्कट रोग से पीड़ित रोगी निरुपाय होकर जैसे चिकित्सक से आरोग्य की आकांक्षा करता है, क्या एक बार भी उस भाव से मैं ठाकुर की ओर देख सका? मेरे

ठाकुर परमदयालु, महासामर्थ्यवान और मेरे विशेष हिताकांक्षी हैं, यह विश्वास अगर हो जाए तो चिंता किस बात की? आनंदपूर्वक गाता-बजाता फिरता-साँप बाघ भी खाए तो मरण न आ पाये-मेरे गोसाई मुझे चिरंजीवी बना गये हैं। इन भावों के आने से बड़ा कष्ट सा होने लगा और रोना रोक न पाया। प्रार्थना करने लगा-ठाकुर रक्षा करो! ठाकुर रक्षा करो!

ठाकुर समाधिमग्न थे, सिर उठाकर अस्पष्ट स्वर में धीरे-धीरे कहने लगे-**भगवान की कृपा ही सार है और बाकी कुछ भी नहीं। साधन भजन जागरूक रहने के लिए है। ताकि उनकी कृपा आये तो धारण कर सको। साधन भजन करके उन्हें पा सके यह साध्य किसमें है? कुछ रुककर बोले-लोग अपनी तृप्ति के लिए साधन भजन करते हैं। मनुष्य को जैसे भूख-प्यास लगती है, तब अन्न न मिले तो कष्ट होता है। भगवान का नाम बिना लिये, उनकी पूजा अर्चना भी बिना किये नहीं रहा जा सकता। कर्म न समाप्त हो तो उन्हें नहीं पाया जा सकता-यह तो ठीक है। कर्म समाप्त होने में लगता ही क्या है? उनकी कृपा हो जाए तो मुहूर्त भर में सारे प्रारब्ध कट जाएँ। महारानी जब साम्राज्ञी बनीं तो उनकी एकमात्र आज्ञा से सैकड़ों लोगों की दीर्घकाल की कैद खत्म हो गई। वैसे ही भगवान की कृपा है, वे चाहे तो सारे कर्म, सारे प्रारब्ध पल में कट जाएँ। उनकी कृपा ही सार है और बाकी सब कुछ भी नहीं। कातर होकर उनकी ओर देखते रहो, उनकी कृपा ही सार है।**

न्यास की उपकारिता-अनुभूति परमानंद।

३० श्रावण शनिवार। कुछ दिन से ठाकुर ने मुझे चौबीस तत्त्वों के न्यास करने का आदेश दिया है। उनके आदेश और उपदेश के अनुसार न्यास करके देख रहा हूँ कि यह एक अपूर्व वस्तु है। अपने अंग-प्रत्यंग का न्यास करते समय उनके आधार स्थल पर श्रीश्रीगुरुदेव के अंग-प्रत्यंग स्वतः ही उदित हो जाते हैं। नाम करते ही वह रूप स्पष्ट होता जाता है। चित्त उसमें निमग्न हो जाता है। तब नाम का भी उसमें लय हो जाता है। ठाकुर की स्मृति के सिवा और कुछ भी नहीं रह जाता। एक तत्त्व को छोड़कर दूसरे तत्त्व में मन लगाना बड़ा अरुचिकर व कष्टदायक लगता है। वाक्, पाणि, पायु, पाद, उपस्थ, चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वचा, क्षिति, अप, तेज, मरुत्, व्योम, शब्द, रस, रूप, गंध, स्पर्श, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इन्हें इष्टमंत्र से न्यास करके इष्टदेव का दर्शन मात्र ही करता हूँ। इस समय अपना अस्तित्व बोध एकमात्र दर्शन की अनुभूति-नाम संयुक्त इष्ट मूर्ति में संलग्न होने से, नाम-नामी-नामकारी एक हो जाते हैं, पृथक् बोध नहीं रह जाता। परमानंद लाभ करता हूँ। सारा दिन ऐसे ही न्यास में व्यतीत करने की इच्छा होती है। कभी-कभी फूल-चंदन, तुलसी से अंगों की पूजा करने की इच्छा होती है। ठाकुर से इस विषय पर पूछने पर उन्होंने कहा-**जो भी करो मन ही मन करना अच्छा है। बाहर यह सब करना अच्छा नहीं है। न्यास का समय निर्दिष्ट रखना। नित्य क्रियादि करने के पूर्व न्यास करना चाहिए। न्यास की भावना सदा अन्तःकरण में रखनी चाहिए।**

मनसापूजा। इष्ट मंत्र से तैंतीस करोड़ देवी-

देवताओं की पूजा होती है।

१-७ भाद्रपद १२९९। आज नित्य कृत्य सम्पन्न कर ठाकुर के पास जाकर बैठा। श्री कुंजघोष की बूढी सास जी ने आकर ठाकुर से पूछा-आज मनसा देवी की पूजा है। पुरोहित कहाँ से लाऊँ?

ठाकुर ने कहा-**क्यों? ब्रह्मचारी जाकर पूजा कर आयेगा।**

वृद्धा चली गई तो ठाकुर से मैंने पूछा-आपने कह तो दिया मनसा पूजा कर दूँगा। पर मैं तो मनसा पूजा की विधि कुछ भी नहीं जानता।।

ठाकुर-**अपने इष्टमंत्र द्वारा पूजा करना। इसी नाम से तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं की पूजा की जा सकती है।**

मैं ठाकुर की आज्ञा से दोपहर एक बजे कुंजबाबू के घर मनसा पूजा करने के लिए गया। पश्चिम के कमरे में पूजा का आयोजन देखकर चित्त प्रफुल्लित हो उठा। मैं पूजा में बैठा। कुंजबाबू पूजा का आयोजन देखकर जरा नाराज होकर बोले-वे इन सब पूजा-पाठ की आवश्यकता महसूस नहीं करते। तथा जिस किसी के द्वारा पूजा करा लेना भी ठीक नहीं है। कुंजबाबू की इस अवज्ञापूर्ण बात से मुझे जरा बुरा लगा। मैंने इष्टमंत्र द्वारा देवी का आह्वान किया और उसमें अपने ही इष्टदेव की पूजा की। दक्षिणा न लेने का ठाकुर का आदेश था। अतः मैं पूजा के बाद सीधे आश्रम लौट आया और ठाकुर के पास बैठा। ठाकुर के पूछने पर पूजा के बारे में सब बताया।

ठाकुर बोले-**गृहस्थों के घर ऐसे पूजा व्रत आदि का विशेष प्रयोजन है। इसी से धर्म जाग्रत रहता है।** दोपहर को कुंजबाबू लज्जित भाव से आकर मुझसे बोले-देखिये आपके पूजा करके

आने के बाद से कमरे में अद्भुत सुगंध छा गई है। कमरे में घुसते ही शरीर-मन शीतल हो जाता है। कई बार जाकर देखा, कमरे में दिन भर वही सुगंध रही। ऐसी सुगंध मैंने पहले कभी नहीं पाई थी। मनसा देवी मानो साक्षात् आविर्भूत हुई हों। ऐसा स्पष्ट बोध हो रहा है। यह बड़ा ही आश्चर्य है।

कुंजबाबू की बातें सुनकर हर्षित हुआ। मन में जो दुःख था वह मिट गया, लगा सभी ठाकुर की कृपा है। जहाँ ठाकुर की पूजा हुई हो, वहाँ साधारण लोग न सही, ठाकुर के अनन्य भक्त अवश्य ही आकृष्ट होकर रहेंगे। कुछ न कुछ विशेषता का अनुभव करेंगे। मेरी पूजा ठीक हुई। कुंज महाशय के परिवर्तन से यही सिद्ध हुआ। ठाकुर ने कृपा करके मेरी पूजा ग्रहण की। यह सोचकर बड़ा हर्ष हुआ। ठाकुर कृपा करो सर्वत्र तुम्हें प्रतिष्ठित करके पूजा करूँ तथा धन्य हो जाऊँ।

ठाकुर की दम्भोक्ति-जनेऊ नहीं है? सूक्ष्म देह में महापुरुष का कार्य।

हमारे आश्रम से थोड़ी दूर बड़े तालाब के पूर्वी तट पर आशानंद बाऊल ने एक अखाडा बनाया है। वह प्रायः ही ठाकुर के पास आता है। ठाकुर के पास बहुत से लोगों को देखने पर वह अपना अलौकिकत्व प्रचार करने लगता है। स्वयं ही कई तत्त्व की बातों का उपदेश देने लगता है। जो ठाकुर के मुख की वाणी सुनने की इच्छा से आते हैं, वे इनके इस आचरण से तंग आकर उठ जाते हैं। एकान्त में कल दोपहर को उसने ठाकुर से पूछा-गोसाईं, मुझे देखकर कुछ समझ पाते हो?

ठाकुर-**क्या समझे?**

आशानंद-आपमें तो दृष्टिशक्ति है। आपने तत्त्वज्ञान भी लाभ किया है। अच्छा मेरी ओर जरा सूक्ष्म दृष्टि से देखिए भला।

ठाकुर-**कहाँ, मुझे तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है?**

आशानंद-कुछ नहीं समझ पा रहे हो? तो अभी आपकी दृष्टि उतनी स्वच्छ नहीं हुई है। जरा सोचिए मेरे आठ-दस हजार शिष्य जो मुझे अवतार कहते हैं, क्या केवल भावुकतावश कहते हैं? ऐसी बात नहीं है। वे वस्तुतः मुझमें वैसी विभूतियाँ देखते हैं। अतः ऐसा कहे बिना नहीं रह पाते। शास्त्र में कल्कि अवतार के जो लक्षण बताए हैं, उनसे मेरा अक्षरशः मेल है।

ठाकुर-**किन लक्षणों से मेल है?**

आशानंद-किसी से कहना मत। आपको प्रत्यक्ष प्रमाण दिखाता हूँ, यह देखिए-कहकर उन्होंने नाक के पास एक तिल दिखाया और कहा-है न प्रत्यक्ष प्रमाण? आपने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। मैं आशानंद की भाव-भंगिमा देखकर हँसी रोक न पाया। ठाकुर ने भी कुछ बोले बिना आँखें बन्द कर ली। आशानंद अपने डेरे में वापिस चला गया।

आजकल अवतारों की भरमार है। कई लोग 'अवतारत्व' का 'सर्टीफिकेट लेने गोसाईं के पास आते हैं। बाद में निराश होकर गाली देते हुए चले जाते हैं। आज पाँच बजे आशानंद के एक शिष्य ठाकुर के पास आये। पूर्व दिशा में कमरे में कई लोगों के बीच आकर बैठे तथा आशानंद की अद्भुत् शक्ति का वर्णन करने लगे। फिर ठाकुर से बोले-शहर में अब नहीं चल पाता, सबको गुण मालूम पड़ गया है, इसलिए अब साधु बनकर जंगल में आ बैठे हैं। अद्वैत वंश के

कुलांगार। जनेऊ फेंककर जातिभ्रष्ट होकर अब कितनों का सर्वनाश कर रहे हैं। ब्राह्मणों को भी दीक्षा दे रहे हैं। किस गोसाईं ने कब जनेऊ उतार फेंका है? उसकी बात सुन सब अवाक् रह गए। ठाकुर भी आँखें बन्द किए थे, अचानक अत्यंत तेजस्वितापूर्वक उच्च स्वर में बोल उठे-**क्या जनेऊ नहीं है। दस बीस जनेऊ अभी निकाल सकता हूँ। तू कैसे देख पाएगा, तू तो अंधा है।**

उनकी बात समाप्त होते ही वहाँ उपस्थित यदु बाबू जोर से चिल्लाकर, कूद कर उठ पडे। बोले-अरे यह क्या! अरे यह क्या! इतना कहकर वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। सब उनकी ओर ध्यान देने लगे। अवसर पाकर वह व्यक्ति भाग निकला। संज्ञा लौटने पर यदु बाबू किसी से कुछ न कहकर अपने घर चले गए।

आज दोपहर महाभारत के पाठ के बाद मैंने ठाकुर से कहा-कल उस व्यक्ति ने आपको गाली दी, अंत में डरकर भाग गया, नहीं तो हममें से किसी के हाथों मार खा जाता। आपको पहले कभी इस तरह दंभपूर्वक डाँटते धमकाते नहीं देखा था।

ठाकुर-**क्या मैंने धमकाया था? कहाँ? मुझे तो कुछ भी याद नहीं।**

मैंने कहा-दस बीस जनेऊ अभी निकाल सकता हूँ। तेरी आँख नहीं है, अंधे देखेगा कैसे। यह सब खूब जोरों से आपने सुनाया था।

मेरी बातें विस्मयपूर्वक सुनकर बोले-**क्या कहते हो, मैंने ऐसा कहा था? मैंने तो ऐसा नहीं कहा।** मैंने कहा-आपने ही तो कहा, आप का ही कंठ स्वर हमने सुना।

ठाकुर-**मेरे मुँह से ये बातें निकली होंगी, मुझे याद ही नहीं। परन्तु एक ब्राह्मण मेरे पास खड़े हो ऐसा ही कुछ कह रहे थे।**

कहकर ही वे चले गए। तुम सबने देखा नहीं। थोड़ा रुककर बोले-आश्चर्य है। महात्माओं के द्वारा क्या-क्या घटनाएँ होती हैं। भगवान के आश्रित जनों पर जरा भी अत्याचार, अपमान वे नहीं सह सकते। कई बार जो महापुरुषों द्वारा शासन होता है, वह ऐसा ही होता है। वस्तुतः वे स्वयं कुछ नहीं करते।

आज यदुबाबू ने आश्रम आकर सब के पास कहा-महापुरुषों का सब कुछ अद्भुत है। वह व्यक्ति जब गोसाईं को गाली दे रहा था, एक गौर वर्ण, पवित्र तेजस्वी ब्राह्मण गोसाईं के दाहिनी ओर खड़े होकर खूब धमकाकर कहने लगे-'जनेऊ नहीं है तू देखेगा कैसे? तू तो अन्धा है।' यह देखकर मुझे न जाने क्या हो गया। ब्राह्मण उसी समय वहाँ से चले गये। यदुबाबू की बातें सुन अवाक् हुआ। यह उनके मुँह से न सुनता तो शायद मेरे मन का सन्देह दूर न होता। हाय रे भाग्य!

ठाकुर के मुख से छोटे दादा की बातें-पिता का चरित्र।

तांत्रिक साधना बड़ी ही कठिन है। आज महाभारत का पाठ करके बैठा। ठाकुर स्वयं ही छोटे दादा की अस्वस्थता की बात पूछे। मैंने कहा-छोटे दादा पढ़ाई के समय से ही कफ, वायु से पीड़ित हो, पढ़ाई छोड़कर दो वर्ष हुए घर में हैं। काफी चिकित्सा हुई पर कोई लाभ न हुआ, अब भी उसी रोग से कभी-कभी कष्ट पाते हैं।

ठाकुर-**शारदा एक विशेष व्यक्ति है। ओह! ऐसे व्यक्ति भी फिर संसार में आते हैं। बड़ा ही सुन्दर। ऐसा हृदय देखा नहीं जाता। कोई दाँव-पेंच नहीं, भीतर-बाहर एक है। उसकी सेवा**

भावना भी अद्भुत है। साधारण की तरह नहीं। उसकी प्रकृति ही बड़ी सुन्दर है।

ठाकुर ने मेरे पिताजी की बात भी पूछी। मैं विशेष कुछ नहीं जानता अतः संक्षेप में बताया। मेरी चार-पाँच वर्ष की उम्र में पिताजी ने पित्तशूल से कलकत्ते के गंगातट पर देह त्याग किया था। वे बड़े सुपुरुष थे। साधन भजन में दिन बिताते थे। परिवार का पालन पोषण कर, बाकी धन लोकहित में व्यय करते थे। संचय तो दूर रहा, मृत्यु के बाद ऋण ही यथेष्ट था। बेलपुकुर के रजनीकांत भट्टाचार्य नामक तांत्रिक सिद्ध महात्मा इनके गुरु थे। घर में रहकर रीति अनुरूप साधन भजन नहीं होता, यह सोच वे गृह त्यागकर चले गए थे। पिताजी के गुरुदेव नाना स्थानों में ढूँढकर उन्हें घर ले आए। तांत्रिक साधना में काली लड़की का प्रयोजन होता है सो अधिक उम्र में उन्होंने फिर से विवाह किया था। वे कभी शराब नहीं पीते थे। किन्तु महाशंख की माला के लिए उपयोग में लाते थे। कई बार सारी रात उसी माला में जप करते थे। वे अत्यंत चरित्रवान थे। मुहल्ले के वयोवृद्धों तथा घर के लोगों के मुख से सुनता हूँ, कि वे कभी क्रोध नहीं करते थे। यह उनके जीवन की विशेषता थी।

ठाकुर-**तुम्हारी वह विमाता अभी नहीं है क्या?** मैंने कहा-नहीं मेरे छोटे भाई रोहिणी को छः माह का रखकर ही वे चल बसीं।

ठाकुर-**हाँ, पुत्र हुआ इसीलिए उनकी मृत्यु हो गई। यह तांत्रिक साधना बड़ी ही कठिन है। आजकल इसमें सफल होते बहुत कम लोगों को देखा जाता है।**

हठकारिता से रोगवृद्धि-दुग्धपान की

व्यवस्था।

कुछ दिन हुए मेरे शरीर की अस्वस्थता बढ़ गई है। रोग का कारण पता नहीं हो पा रहा है। शायद आहार की अत्यंत कमी ही उसका कारण हो। सुबह एक बार थोड़ी सी चाय पीता हूँ। शाम को नमक से चावल पकाकर खा लेता हूँ। अन्न की मात्रा कम करके पानी की मात्रा बढ़ाता जा रहा हूँ, किन्तु शरीर बड़ा दुर्बल लगता है। एक स्थिति में रखने पर थोड़ी देर में हाथ पैर में झुनझुनी आ जाती है। अपने आप जोड़ों में दर्द होता और ऐंठने लगता है। साधन-भजन में भी वैसा उत्साह न रह गया। चलने-फिरने में भी कष्ट हो रहा है। अब क्या करूँ समझ नहीं आता। ठाकुर को जाकर सब कुछ बताया।

ठाकुर बोले-**पहले ही तुम्हें बताया था कि अभ्यास खूब धीरे-धीरे करना चाहिए। जल्दबाजी में कोई काम सफल नहीं होता, विघ्न आता है। जल-भात खाना छोड़ दो। खिचड़ी में सब्जियाँ उबाल कर लो। घी जरा अधिक मात्रा में लिया करो। रोज पाव भर दूध लिया करो। अस्वस्थता दूर हो जाएगी।** मैंने बहुत दिनों से दूध छोड़ा है, अतः दूध लेने में आनाकानी करने लगा। ठाकुर ने कहा-**नहीं अभी कुछ दिन दूध पीना ही पड़ेगा। सोने से पहले एक बार उबला हुआ दूध पी लिया करो।**

ठाकुर की यह दूध पीने की व्यवस्था मेरे हठकारिता का दण्ड ही है। दूध कहाँ से मिले-इस चिंता में आश्रम से बाहर निकला। रास्ते में निकलते ही एक व्यक्ति से मिलकर पूछा-यहाँ दूध कहाँ से मिलेगा, बता सकेंगे? उसने कहा-आपको कितना दूध चाहिये?

शाम को एक पाव दूध, मैं आठ सेर के भाव से दे सकता हूँ। आपके आश्रम के पास ही मेरा घर है। मैं आपके सामने गाय दुह दूँगा। राधारमण बाबू के पश्चिम दिशा के बगीचे में इस व्यक्ति का घर है, सो देख आया। आश्चर्य है ठाकुर की कृपा। आज्ञा देने के पहले ही उन्होंने सारी व्यवस्था कर रखी है।

जूठी बटलोही किसने मांजी?

सूर्यास्त के पूर्व भोजन न पका सकूँ तो उस दिन मेरा भोजन नहीं हो पाता। नाना प्रकार के कार्यों में पकाने का समय बीत जाता देखकर चिंतित हुआ। भूख लगी थी, सो पकाने चला। तभी स्मरण हुआ,कल मैंने बटलोही मांजकर नहीं रखी थी। आज मांजूँगा सोचकर बरामदे के कोने रख छोड़ा था। पर अब तो शाम हो रही है। बर्तन मांजकर ठीक समय पर खाना पका पाना असंभव जान पड़ा। फिर भी बर्तन मांजकर आऊँ सोचकर गया, तो देखता हूँ कि उसे कोई मांजकर रखा है। मैं तो अवाक् रह गया। एक-एक करके प्रत्येक से पूछा-मेरी बटलोही किसने मांजी? परंतु पाया कि उसे किसी ने नहीं मांजा था। समय बीत जाने पर भी शायद भोजन करना ही ठाकुर की इच्छा है, ऐसा अनुमान करके खिचड़ी पकाकर संतोषपूर्वक आहार किया। सारी रात इसी चिंता में कट गई कि उतने सुंदर तरीके से बटलोही मांजकर कौन रखा? साधारण विषयों में बार-बार ठाकुर की असीम कृपा प्रत्यक्ष रूप से पाकर अवाक् हो जाता हूँ और बुद्धू सा बन जाता हूँ। फिर भी यह अविश्वासी मन ठाकुर पर विश्वास नहीं कर पाता।

संकल्प मात्र से वस्तु लाभ-अविश्वासी मन।

आज सुबह से खूब वर्षा हो रही है। होम पाठ आदि समाप्त कर आसन पर बैठा हूँ। सोचने लगा-अभी इस समय घर में होता, तो भुने हुए चावल खाता। पाँच सात मिनट बीतते ही श्रीविधु घोष की कन्या दामिनी ने एक कटोरे में गर्म भुने हुए चावल, मिर्च तथा कटहल के भुने हुए बीज मेरे सामने रखकर कहा-माँ ने आपके लिए भेजा है। एक दिन और भोजन के पहले केला खाने का मन हुआ, तभी फणीभूषणजी ने पाँच केले लाकर देते हुए कहा-नानी माँ ने आपके लिए दिया है। इन सबको ठाकुर की कृपा छोड़कर नानी माँ के असाधारण स्नेह की बात समझ लिया था। परसों सुबह की बात है-पानी बरस रहा है। घर से बाहर निकलना कठिन है। आसन पर बैठकर सोचने लगा-ठाकुर, इस समय गर्मागर्म चाय मिलती तो बड़ा आराम मिलता। पाँच मिनट बाद देखता हूँ कि घोष महाशय भीगते हुए आकर बोले-आपकी तबियत तो खराब नहीं है। गोस्वामीजी ने यह चाय और मोहनभोग आपके लिए भेजा है। ठाकुर की इस दया की बात को छोड़कर सोचा कि शायद पानी बरस रहा है, सो चाय अधिक बन गई होगी। मैं चाय पसंद करता हूँ इसी से ठाकुर ने भेजा है। हाय भाग्य! बिन्दु मात्र विश्वास का कारण पाकर भी उसे पकड़ सकूँ, यह न हो पाया, उल्टे कल्पना द्वारा सत्य को भी मिथ्या कारण बनाकर, इस उद्दण्ड मन को समझा देता हूँ।

विग्रह बिहारीलालजी को प्रसाद के लिए कहना।

६ भाद्र रविवार। कल रात बातों ही बातों में शांतिसुधा ने ठाकुर से कहा-बाबा, सनातन बाबू के अड्डे में बिहारीलालजी प्रतिष्ठित हैं।

उनका प्रसाद पाने की इच्छा हो रही है।

ठाकुर-**क्या प्रसाद पाना चाहती हो, बोलो।**

शांति-बढ़िया मालपुआ का प्रसाद।

ठाकुर-**अच्छा, मैंने बिहारीलाल से तेरी बात कह दी है। कल जगबंधु जाकर प्रसाद अवश्य ले आये।**

आज सुबह साढ़े दस बजे जगबंधुजी ने जाकर उस अड्डे में हमारे आश्रम के नाम से प्रसाद माँगा। सुना है पुजारीजी ने खूब आदर सहित ढेर सा मालपुआ प्रसाद देकर कहा-हमारे यहाँ नित्य अन्नभोग होता है किन्तु आज सुबह अचानक एक धनी व्यक्ति ने आकर बहुत सारा मालपुआ भोग चढ़ाया है। आश्रम के हम सभी ने वही प्रसाद पाया। शांतिसुधा बोली-ऐसा स्वादिष्ट मालपुआ कभी खाया हो, याद नहीं आता। ठाकुर का सबकुछ अद्भुत है। इन सबका क्या कारण या हेतु बताऊँ। विश्वास नहीं है, अतः आकस्मिक घटना कहकर ही मन को समझाता हूँ।

हाँ, तुम्हारी लीला भी नित्य है। तपस्या का उपदेश। श्यामभाषा।

आज धूप बड़ी तेज है, बड़ी गर्मी पड़ रही है। दोपहर को ठाकुर बोले-**कमरे का दरवाजा बन्द कर दो**। मैं आसन से उठकर दरवाजा बन्द करने ही वाला था कि बोले-**जरा ठहरो, जरा देख लूँ। क्या सुन्दर पर्वत है हिमालय दिखाई पड़ रहा है-सोने के समान शिखर, क्या ही सुन्दर।** देखते-देखते उन्होंने आँखें बन्द कर लीं। मैंने द्वार बन्द किया और आसन आकर उन्हें पंखा झलने लगा। कुछ देर बाद ठाकुर भावावेश में कहने लगे-**हाँ, हाँ तुम्हारी**

भी, तुम्हारी भी लीला नित्य है। कहकर दुर्गास्तुति करने लगे और समाधिमग्न हो गए। उनके चेतना लौटने पर मैंने पूछा-तुम्हारी लीला नित्य है, किससे कह रहे थे?

ठाकुर-**भगवती दुर्गा आई थीं। कहने लगी तुम सिर्फ कृष्ण की ही लीला को नित्य कहते हो। क्यों मेरी लीला नित्य नहीं है। देखो तो सही। इतना कहकर वे पुत्र, कन्या सहित आश्चर्यमय लीलाएँ प्रकट करने लगीं, बहुत ही सुन्दर। इसीलिए उन्हें कहा था, तुम्हारी भी लीला नित्य है।**

इसके बाद वे स्वतः ही कहने लगे-**योग बड़ी कठिन बात है। हमारा यह पथ योग भी नहीं कहलाता, उससे भी श्रेष्ठ है। विष्णु के नाभिपद्म से उत्पन्न होकर ब्रह्मा ने जो सर्वप्रथम साधन किया था, 'तप-तप' यह सुनकर उन्होंने जिस प्रकार तत्त्व ज्ञान के लिए यत्न किया था, हमारा भी साधन वैसा ही है। हमारे साधन में सबकुछ भीतर की ही क्रिया है, बाहर कुछ भी नहीं। थोड़ा रुककर बोले-सर्वदा शम, संतोष, विचार तथा सत्संग चाहिये।**

१-मन की साम्य अवस्था शम कहलाती है। निन्दा-प्रशंसा, मान-अपमान, सुख-दुःख, इष्ट-अनिष्ट, सभी अवस्थाओं में मन एक ही प्रकार अचल, अटल रहेगा। बाहर यम-नियम के अभ्यास तथा भीतरी वैराग्य से यह सफल होगा।

२-सदा संतुष्ट चित्त रहो। किसी भी कारण से मन में उद्वेग या अशांति प्रवेश न करे। इसलिए सदा सावधान रहो। अशांति नरक है। चित्त प्रफुल्ल न रहे तो कोई भी काम नहीं बनता।

३-सभी अवस्थाओं में सदा अच्छा-बुरा, सत्-असत् का विचार

होना चाहिये। बातचीत कामकाज कुछ भी सदुद्देश्य के बिना, प्रयोजन के बिना नहीं करना चाहिये। **भगवान को लक्ष्य बनाकर जो भी करो, वह सत् तथा उन्हें छोड़कर जो भी करो, वह असत् है। प्रत्येक कार्य में ऐसा विचार करके चलने से चिन्ता ही नहीं रह जाती। इसी से सब मिल जाता है।**

४-प्रतिदिन कुछ समय के लिए सत्संग करना चाहिये। भगवान सत् है, भगवत् संग ही सत्संग है। भगवान के आश्रित साधु-संत का संग भी सत्संग है। वे कैसे समय व्यतीत करते हैं, उनके कार्यकलाप, आचरण किस प्रकार हैं, यह सब श्रद्धा सहित देखना चाहिये। प्रयोजन हो तो उनसे सत्प्रसंग की बातें करो। रोज कुछ समय तक धर्मग्रन्थ का पाठ करो। ऋषि प्रणीत शास्त्र-पुराण पाठ करना भी सत्संग है। अतः इससे ऋषियों का संग करना होता है। इनके साथ और चार नियमों की रक्षा करना कर्तव्य है-स्वाध्याय, तपस्या, शौच तथा दान।

१-स्वाध्याय केवल अध्ययन नहीं है। गुरुप्रदत्त इष्टमंत्र का श्वास-प्रश्वास में जप ही वस्तुतः स्वाध्याय है। नाम करते-करते अवसाद आ जाये तो कुछ देर तक धर्मग्रन्थ पाठ कर लिया करो।

२-तप का अभ्यास भी अभी से खूब करो। शारीरिक, मानसिक तथा अध्यात्मिक जितने प्रकार के ताप हैं, किसी से तुम्हारा चित्त विचलित न हो। त्रिताप की ज्वाला बड़ी ज्वाला है। शीत-उष्ण, सुख-दुःख, मान-अपमान, निन्दा-प्रशंसा आदि में मन की अवस्था एक जैसी रहे। धीरे-धीरे यही अभ्यास करो। सभी अवस्था में धैर्य ही तपस्या है।

३-शुचि का अर्थ है, हर दशा में, भीतर व बाहर की पवित्रता।

बाहर जैसे पवित्र रहोगे, मन को भी निर्मल रखने का यत्न करोगे। बाह्य पवित्रता विशेष प्रयोजनीय है, शरीर पवित्र न हो तो अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता। चित्त शुद्ध न हो तो 'नाम' में यथार्थ रुचि, भगवान में श्रद्धा-भक्ति नहीं होती।

४-प्रतिदिन कुछ दान करना चाहिये। दया, सहानुभूति से ही वास्तविक दान होता है। प्रतिदिन किसी न किसी के कष्ट दूर करने का यत्न करोगे। कुछ न कर सको तो दो मीठे बोल बोलना, यह भी दान है। प्रतिदिन इन विषयों में ध्यान देकर चलो तो कोई चिंता की बात न रह जाएगी। ठाकुर अक्सर मग्न होकर कितना कुछ कहते हैं, समझ नहीं पाता। वह न तो हिन्दी है, न फारसी, न संस्कृत है, न अंग्रेजी। परिचित कोई भाषा ही नहीं है, जो पहले सुना हो। कुछ तो संस्कृत से मिलता जुलता है। समाधि भंग होने पर ठाकुर से पूछा- समाधि की दशा में आपके मुँह से कितनी ही सुन्दर बातें निकलती हैं। पर कौन सी भाषा है, कुछ समझ नहीं पाता। ठाकुर-ओह! तुमने सुना है? समझोगे कैसे? वह पृथ्वी की भाषा नहीं है। गोलोक की श्याम भाषा है। उसी भाषा में वहाँ वार्तालाप होता है। संस्कृत देवभाषा है।

विवाह का प्रलोभन। सावधान!
प्रार्थना करते ही वह स्वीकृत हो जायेगा।

९ भाद्रपद बुधवार। मैं अच्छे झंझट में पड़ गया। विगत वैशाख से योगजीवन मेरे पीछे पड़ा है, और कुतु से विवाह करने का आग्रह कर रहा है। उस दिन ठाकुर के सामने ठाकुर की माताजी भी मुझसे बोलीं-कुलदा, तुम कुतु से विवाह करो तुम्हारा कल्याण होगा। मेरी

बात मानो, विवाह करने से क्या धर्म प्राप्ति नहीं होती? तुम्हारे गोसाईं ने भी तो विवाह किया है क्या उन्हें धर्मप्राप्ति नहीं हुई। यह सुनकर लज्जित और निरुत्तर होकर सिर झुकाए बैठा रहा। योगजीवन ने भी कहा-तुम कुतु से विवाह करो, माँ की भी यही इच्छा थी। उससे विवाह कर तुम्हें धर्म में हानि न होगी, बल्कि सहायता होगी। ऐसी असामान्य लड़की संसार में है या नहीं, संदेह है। भगवान की विशेष कृपा उस पर है। उसे देखकर मैं आश्चर्यान्वित होता हूँ। तुम्हारे ब्रह्मचर्य में भी बाधा न होगी। तुम जैसे ब्रह्मचारी हो, कुतु भी ब्रह्मचारिणी रहकर तुम्हारी सहधर्मिणी बनेगी। उसे लेकर तुम्हें गृहस्थी नहीं करनी पड़ेगी। सदैव हमारे साथ इसी आश्रम में ही रहना। फिर गोसाईंजी ने तो तुम्हें सारे जीवन के लिए ब्रह्मचर्य नहीं दिया है, निर्दिष्ट काल में व्रत का उद्यापन करके, कुतु से विवाह करो।

अब तो मेरा आश्रम में टिकना कठिन हो गया है। कुतु भी बच्ची नहीं है। लोगों से सुनकर उसका भी मेरे प्रति संकोच बढ़ गया है। योगजीवन की बातें बारबार सुनते हुए मेरा चित्त भी चंचल हो उठता है। मैंने तो ब्रह्मचर्य ग्रहण करके चिरकुमार रहकर एकमात्र भगवान को लक्ष्य मानकर चलने का निश्चय किया है। यह क्या उत्पात शुरू हुआ। सच है कि कुतु के गुणों की तुलना नहीं हो सकती। उसके सद्गुणों के अणुमात्र भी मेरे जीवन भर की साधन-भजन तपस्या से प्राप्त करना संभव नहीं। जिनके प्रसाद का कण पाने से मैं अपने को कृतार्थ मानता हूँ, उन्हीं के श्रीअंग के सारभूत वीर्यसंभूता कुतु है। उसके सत्संग से जीवन पवित्र व धन्य होगा, इसमें संदेह नहीं। किन्तु ठाकुर के प्रति मेरी एकनिष्ठा कैसे रहेगी? एकमात्र ठाकुर के

अलावा अन्य किसी भी पवित्र वस्तु के प्रति मेरा चित्त आकृष्ट हो तो वह मेरे लक्ष्य प्राप्ति की बाधा है, अतः महाअनिष्टकर है। अखण्ड ब्रह्मचर्य का उपलक्ष्य करके, दयालु ठाकुर की कृपा से यदि एकमात्र उनके श्रीचरणों में चित्त लगा सका तो गंगा, यमुना, लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवियाँ भी मेरा सान्निध्य चाहेंगी। ठाकुर ने कुछ दिन पूर्व कहा था-**भविष्य में तुम्हारे सामने विवाह का प्रलोभन है। तब उसे काकविष्ठा के समान त्याग सको तो ठीक है।**

ठाकुर के भविष्यवाणी का तात्पर्य मेरी वर्तमान अवस्था है, मैं समझ गया। आहार, निद्रा, मैथुन, संयम केवल देह के अविकार अवस्था प्राप्त करने के लिए हैं। मैथुन वर्जित, अनासक्त रूप से यदि यह विवाह हो तो मैं सब ओर से लाभान्वित रहूँगा। अतः सर्वप्रथम ठाकुर के चरणों में उर्ध्वरेता अवस्था के लिए प्रार्थना करता हूँ। ऐसा संकल्प कर साढ़े नौ बजे दक्षिण के कमरे में अपने आसन पर एकाग्रचित्त होकर नाम करने लगा एवं ठाकुर से प्रार्थना करने लगा- किसमें मेरा यथार्थ हित या अहित है मैं नहीं समझता, फिर भी कठिन कष्ट में पड़कर तुम्हारी ओर निहारता हूँ। दया करके मुझे उर्ध्वरेता कर दो। इसके बिना मेरा कोई उपाय नहीं है। काम के आकर्षण में यदि चित्त कामिनी में आसक्त रहा तो संपूर्ण मन प्राण तुम्हें कैसे दे पाऊँगा? कृपा करके मुझे उर्ध्वरेता कर दो और तुममें ही एकनिष्ठ कर दो। मेरी और कोई आकांक्षा नहीं है।

ऐसी प्रार्थना करता हुआ रो पड़ा। तभी पूर्व के कमरे से ठाकुर उच्च स्वर से मुझे पुकारने लगे। सुनते ही उनके पास दौड़कर पहुँचा। द्वार के सामने जाते ही ठाकुर ने डाँटकर मुझसे कहा- **ब्रह्मचारी खूब सावधान! प्रार्थना करते ही वह स्वीकृत हो**

जायेगी। किसमें भला-बुरा है, जब नहीं समझते तब प्रार्थना करने में भी सावधान रहा करो। यह कहकर ठाकुर पुनः भागवत् पाठ करने लगे। मैं अपने आसन पर लौट आया, सोचा यह क्या हुआ? ठाकुर ने मुझे क्यों डाँटा? आत्मा के परमकल्याण के लिए ही ठाकुर से प्रार्थना कर रहा था। मेरा तो सिर चकरा गया। बाद में धीरे-धीरे स्थिर होकर बैठा और नाम जप करने लगा। थोड़ी देर बाद लगा हाय भाग्य! ठाकुर के वाक्य तथा व्यवहार में श्रद्धा तथा निर्भरता नहीं है, तभी तो ऐसी प्रार्थना कर रहा था। माँ की गोद में बच्चा दूध पीते-पीते हौव्वा के डर से चिल्लाए तो माँ क्या जरा डाँटेंगी भी नहीं? ठाकुर, प्रार्थना करके सच में मैंने अपराध किया था। कृपा करके मुझे क्षमा कर दो।

दादा के पास जाने की अचानक अस्थिरता- ठाकुर का आदेश।

११ भाद्रपद शुक्रवार। दूसरे दिनों के समान शेष रात्रि को उठकर न्यास समापन करके स्नान, तर्पण समापन किया। हवन करके आसन पर बैठकर नाम करते करते अचानक बड़े दादा की खूब याद आई। दादा को देखने की बड़ी व्याकुलता होने लगी। इसका कोई कारण भी न था। लेकिन ऐसा अस्थिर हो गया कि आज ही दादा के पास रवाना होने की इच्छा होने लगी। दादा कभी मुझे अपने पास आने को नहीं कहते। ठाकुर ने कभी इस विषय में कुछ नहीं कहा। ठाकुर के पास जैसे आनंद और आराम से हूँ, संसार में किसी स्थान में उसकी एक बूँद भी नहीं मिल सकती। फिर मेरी यह दुर्मति क्यों हुई?

सुना है यथारीति तीर्थवास से, यम-नियम के दुर्भेद्य बेड़े में रहकर भगवत् भजन करने से अथवा सद्गुरु के अविच्छेद संग से उत्कट प्रारब्ध क्षय होता है। शायद मेरे प्रारब्ध के अधिष्ठात्री देवी-देवतागण उनके इस भोग क्षेत्र मेरे देह को, गुरु संग हेतु हाथों से जाते देखकर दुःखी हो रहे हों। इसी से भोग शेष करने से पहले, अबाध गति दुष्टा सरस्वती को मेरी राशि में भेजकर गुरु संग से विच्छेद की मति उपजा रहे हैं, या फिर सर्व नियंता गुरुदेव ही मेरे किसी कल्याणार्थ अचानक ऐसा भाव मन में संचारित कर रहे हैं। कुछ भी ठीक न कर पाया। सो ठाकुर के पास पहुँचा। देखा वे ध्यान मग्न हैं। थोड़ी देर में उन्होंने मेरी ओर देखा। मैंने कहा-आज आसन में दूसरे दिनों की भाँति नाम जप कर रहा था कि अचानक दादा की बड़ी याद आई, मन चंचल हो उठा। नित्य कर्म भी ठीक से न कर पाया। ऐसा क्यों हुआ। कई बार विपथ में ले जाने हेतु शैतान भी दुर्मति पैदा करते हैं। आपका संग छुड़ाने के लिए क्या यह उनका काम है? या यह आपकी इच्छा है, इसलिए ऐसा हो रहा है।

ठाकुर-**हाँ तुम्हारे दादा अयोध्या में अच्छा सत्संग कर पाते थे। अभी जहाँ हैं वहाँ सत्संग का बड़ा अभाव है। अभी कुछ दिन तुम उनके पास जाकर रहो, तो उनका बड़ा उपकार होगा। उनके प्रति तुम्हारा कर्तव्य भी पूरा हो जायेगा। कुछ दिन जाकर दादा के पास रह आओ। शीघ्र ही वहाँ जाना प्रयोजनीय है।**

गुरु का यह देह अनित्य है। छाया से ही काया पायी जा सकती है।

दादा के पास अविलम्ब जाने का ठाकुर का आदेश पाकर बड़ा

कष्ट हुआ। मैंने कहा-आप जो कहेंगे, वही करूँगा, परंतु आपको छोड़कर कहीं जाकर रहने की इच्छा नहीं होती। रह भी नहीं सकता बड़ा कष्ट होता है।

ठाकुर-**ऐसा होना भी ठीक नहीं। यह भी माया है, बद्ध हो जाना है। जो गुरु हैं, वह यह देह नहीं। देह के भीतर कुछ और है, जो जड़ नहीं।**

मैंने कहा-यह तो विचित्र बात हुई। यह देह गुरु नहीं तो और कौन है? इस देह के भीतर क्या है क्या नहीं, मैं तो नहीं देख पाता और न जानता ही हूँ। गुरु का देह जड़ नहीं नित्य ही है यही तो सुना है-अतः इसी का ध्यान करता हूँ। यह यदि कुछ नहीं है तो सब कुछ वृथा हुआ।

ठाकुर-**वृथा नहीं है। गुरु का जो देह नित्य है, वह यह देह नहीं। इस देह के भीतर ठीक इसी रूप का एक और देह है। वही सच्चिदानंद नित्य रूप है। यह देह जो देखते हो उसकी छाया है। जैसे दर्पण में चेहरा देखो मुख के समान ही छाया पड़ेगी। जो वस्तु नहीं केवल इसकी छाया है। यह देह भी उसी प्रकार है। इस छाया के द्वारा ही काया को पकड़ पाते हो, और कोई अन्य उपाय नहीं है। इसी रूप के ध्यान से वह सच्चिदानंद रूप दिखेगा। छाया बिना काया पाओगे भी तो कैसे?**

मैंने पूछा-देहधारी छाया का तो परिवर्तन समय-समय पर होता है। भीतर के अपरिवर्तनीय नित्य रूप को इस चंचल छाया द्वारा कैसे पा सकते हैं? फिर किस छाया का ध्यान करें?

ठाकुर-**जो पहले देखा है।**

मैंने कहा-पहले बाद में नहीं समझता, जब जो अच्छा लगता है,

मैं उसी का ध्यान करता हूँ।

ठाकुर-**हाँ! उससे भी काम बनेगा। सभी नित्य हैं।**

मैंने पूछा-आपका संग छोड़कर जाने पर मेरी विपत्ति की आशंका किन किन विषयों में है? किन बातों से सावधान रहूँ?

ठाकुर-**अपने दैनिक कृत्य यदि नियमपूर्वक करते रहो तो कोई डर नहीं। कहीं भी रहो कोई अनिष्ट न होगा। नित्य कर्म बन्द होने पर ही विपदा की संभावना है। और एक बात ध्यान रखना संग के द्वारा कई बार हानि तथा भयानक प्रलोभन आते हैं। शायद कोई कहे-इस प्रकार चलो तो यह अवस्था पा सकोगे। मेरे पास दीक्षा लो, एक घंटे में उर्ध्वरेता कर दूँगा। उर्ध्वरेता होने की तुम्हारी लालसा भी है। ऐसी बातों में फँसो तो सर्वनाश जानो। इन प्रलोभनों से बचना सरल नहीं है। बड़े-बड़े साधक इसमें पड़कर नष्ट हो जाते हैं। एकाएक कुछ पाना चाहो तो विपत्ति है। अपना काम धीरे-धीरे करते जाओ, किसी को देखने की जरुरत नहीं। प्रयोजन पड़ने पर सब कुछ यहीं से होगा। किसी से कुछ पाने के लिए साधु संग मत करना। एक बात और, दृष्टि सदा नीचे रखना। साधना की बातें किसी से न बताना। ब्रह्मचर्य के नियमों का पक्के रूप से पालन करना। कभी शिथिल मत होना, तो निरापद रहोगे।**

ठाकुर के सभी आदेश कल्याणकारी। कुरेद कर प्रश्न करने से विपत्ति।

कल ठाकुर की बातें सुनकर मन उद्विग्न हो उठा। दयालु ठाकुर का देव-दुर्लभ संग छोड़कर सुदूर बस्ती में जाने की दुर्मति मेरी क्यों

हुई? मेरे ठाकुर को छोड़कर कैसे दिन काटूँगा। मेरे लिए जो कल्याणप्रद है, ठाकुर वही व्यवस्था कर रहे हैं, अतएव विरोध भी नहीं कर सकता। फोड़े के पक जाने पर जैसे सुचिकित्सक अस्त्रोपचार करने के लिए रोगी के कातरतापूर्ण निषेध भी नहीं सुनते, रोने चिल्लाने से और भी पीड़ादायक पुलटिस द्वारा उसे फोड़ने की व्यवस्था करते हैं। अब मेरे निषेध करने पर शायद ठाकुर भी ऐसी ही व्यवस्था करेंगे। कड़वी दवा ठीक-ठीक लेने पर रोग ठीक होने की निश्चित धारणा होते हुए भी जैसे रोगी की उसमें अरुचि होती है, मेरी दशा भी अभी वैसी ही है। नाना चिन्ता तथा तर्कों के बाद जरा सा चित्त स्थिर कर ठाकुर के पास गया। ठाकुर खुद ही बोले-**घर जाकर माँ से मिलकर, शीघ्र ही पश्चिम की ओर यात्रा करो। जहाँ भी रहो चण्डीपाठ, हवन नियमित रूप से करना। ब्राह्मण को नित्य अग्निसेवा करनी चाहिये। आभिचारिक क्रिया के अनर्थ किए जाने के लिए भी इस शांति स्वस्त्यन से निवृत्ति हो सकेगी। श्वेत कनेर, श्वेत सरसों तथा श्वेत गोलमिर्च द्वारा आहुति देनी होती है।**

मैंने पूछा-दादा के पास रहते समय भी क्या मुझे भिक्षा करनी पड़ेगी?

ठाकुर-**केवल भिक्षा ही क्यों, सभी कृत्य करना पड़ेगा। कहीं भी क्यों न रहो, किसी भी नियम की छूट न होगी। सबका पालन करके चलना पड़ेगा।**

मैंने पूछा-दादा के पास कितने दिनों आड़ भिक्षा ले पाऊँगा?

ठाकुर-**जिस दिन और कहीं भिक्षा नहीं मिलेगी उस दिन**

दादा के पास भिक्षा लेना।

मैंने पूछा-भिक्षा ब्राह्मण के घर ही करूँगा या अन्य घरों में भी कर सकता हूँ।

ठाकुर-**भिक्षान्न सदा पवित्र है। सर्वत्र कर सकते हो। किन्तु तुम्हारे लिए ऐसा ठीक न होगा। तुम स्वपाक भोजन ही करना। अपना पकाया भोजन सर्वश्रेष्ट होता है।**

मैंने पूछा-देवालय में देवता का भोग ग्रहण किया जा सकता है?

ठाकुर-**अच्छे ब्राह्मण द्वारा अन्न पकाकर भोग दिया जाए, तो प्रसाद पा सकते हो।** मैंने ठाकुर से और अधिक कुछ पूछना उचित नहीं समझा। डर था कि किस बात पर फिर क्या आदेश कर देंगे और में बड़ी कठिनाई में पड़ जाऊँगा। एक दिन सत्य कुमार गुहठाकुरता मेरे गुरुभाई ने आकर ठाकुर से कहा-प्राणायाम नहीं कर पाता बडा कष्ट होता है, क्या करूँ? ठाकुर ने कहा-**कष्ट हो तो मत किया करो।**

सत्यकुमार ने पुनः कुरेदकर पूछा-प्राणायाम न करने से क्या कोई अनिष्ट होगा? ठाकुर ने कुछ असंतुष्ट होते हुए उत्तर दिया-**फिर से लौटकर आना पड़ेगा।** दुर्बुद्धिवश दोबारा यदि प्रश्न न करता तो ठाकुर के मुख से यह दण्ड विधान तो न पाता। मैं चुपचाप नाम करने लगा। आज ही दादा को लिख भेजा कि मैं शीघ्र ही बस्ती आ रहा हूँ। मेरे मार्ग व्यय हेतु छोटेदादा के पास कलकत्ते में रूपये भेज दीजिए।

भीषण पद्मानदी। मार्ग में ठाकुर की कृपा।

प्रातः ठाकुर के श्रीचरणों में प्रणाम करके घर के लिए रवाना

हुआ। दोपहर को घर पहुँचा। मातृ देवी के दर्शन कर बड़ा आराम मिला। माँ की संतुष्टि के लिए सात-आठ दिन घर पर रहा। माँ के पास भोजन का नियम न रखा। वे जब जो देतीं, उनके संतोष के लिए खा लेता। इससे मेरी कोई हानि भी नहीं हुई बल्कि साधन में स्फूर्ति और उत्साह भी बढ़ने लगा। माँ ने संतुष्ट होकर मुझे दादा के पास जाने की आज्ञा दी। बंगला की चैबीस तारीख को मेरी पश्चिम की यात्रा प्रारंभ हुई। स्टीमर से ग्वालन्द पहुँचने के लिए पहले घर से चार-पाँच कोस दूर भाग्यकुल स्टेशन नाव द्वारा पहुँचा। पद्मानदी का रूप देखकर आतंक हुआ। मानो रक्त की नदी हो। उत्ताल तरंगों वाली तीव्रगामी नदी न जाने सरसराती कहाँ दौड़ रही है। जीवन में पद्मानदी का ऐसा भीषण रूप कभी नहीं देखा था। इस पार से उस पार कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता, नदी मानो आसमान को छू गई हो। स्टीमर में चढ़ने के पहले बोरिया बिस्तर लेकर बड़ी कठिनाई हो रही थी। मजदूर या कुली नहीं मिला। ठीक उसी समय दो संभ्रांत व्यक्ति आये एवं उन्होंने खुद पहल कर मेरा माल स्टीमर पर रख दिया और टिकिट भी काट दिया। मैं स्टीमर में आसन लगाकर नाम करने लगा। स्टीमर थोड़ी देर चलने के बाद हो-हल्ला सुनाई पड़ा। सुना कि तीन व्यक्ति पद्मानदी में बहे जा रहे हैं। सारेंग ने स्टीमर रोका। छोटी नावें भेजकर काफी कोशिश के बाद उन तीनों को बचा लिया गया। सुना कि उनके साथ तीन और भी व्यक्ति थे। परंतु उनकी कोई खोजखबर तक न मिल पाई। शाम से वह स्टीमर ग्वालन्द पहुँचा। एक व्यक्ति ने मेरा सामान उठाया और कहा-आप ब्राह्मण हैं मैं कायस्थ, मेरे रहते आप कुली को पैसा क्यों देंगे। ऐसा कहकर उसने सामान ट्रेन में रख दिया। सुबह सियालदह स्टेशन

पहुँचा। छोटे दादा मछुआबाजार या झामापुर कहाँ रहते हैं, कुछ याद नहीं केवल मकान का नम्बर बारह है, इतना ही याद है। कुली के सिर पर सामान चढ़ाकर शहर की ओर चला। ऐसा लगने लगा जैसे ठाकुर आगे-आगे चल रहे हैं और में पीछे-पीछे चल रहा हूँ। थोड़ी देर चलकर हम मछुआ बाजार तथा अमहर्स्ट स्ट्रीट के संगम स्थल पर पहुँचे। कुली जरा आगे था, वह चौराहे पर पहुँचकर मुझसे पूछा-बाबू किधर चलूँ। मैं चौंक उठा। सामने देखता हूँ तीन रास्ते हैं। किस ओर जाऊँ, सोच ही रहा था कि रास्ते के दूसरी ओर से छोटे दादा ने आवाज लगाई-कुलदा आओ, इधर आओ, घर चलें। मैं उनके साथ बारह नम्बर झामापुकुर निवास में जा पहुँचा। तब सभी सो रहे थे। अनजान स्थान में चौराहे पर चलते हुए अकस्मात् ऐसे छोटे दादा को पाकर विस्मित हुआ। यह ठाकुर की प्रत्यक्ष कृपा है, सोचकर दिन भर विभोर रहा। कुंजबिहारी गुहा, महेन्द्रनाथ मित्र, अचिन्त्यबाबू आदि गुरुभाईयों से मिलकर बड़ा आनंद आया।

अतिअद्भुत् अनुभूति व नाम का आकर्षण। विरह में ही अविछिन्न संग।

बड़े सबेरे गंगा स्नान कर, घर आकर नीचे के निर्जन कक्ष में आसन लगाया। न्यास, होम, पाठ और गायत्री जप में ग्यारह बज गए। स्वल्पाहार के बाद फिर आसन पर बैठा। शाम चार बजे तक मेरा समय किस प्रकार बीत जाता है, व्यक्त नहीं कर सकता। नाम करते-करते बाहरी चेतना विलुप्त सी हो जाती है। ठाकुर सामने हैं-यह स्पष्ट अनुभव होता है और मैं विह्वल हो जाता हूँ। ठाकुर के प्रति अंग-प्रत्यंग, हाथ मुँह हिलाना, आँख की दृष्टि आदि सुस्पष्ट प्रत्यक्ष

कर रहा हूँ। अविरल अश्रुधारा से वक्ष और वस्त्र भीग जाते हैं। कोई गुरुभाई आकर बुलावें तो उन्हें उत्तर देने की शक्ति नहीं रह जाती। नाम के साथ चित्त संलग्न होते ही, देह के अभ्यंतर के न जाने किस स्थान में ठाकुर मुझे ले जाते हैं, समझ नहीं पाता। वहाँ से बाहर आने में कष्ट होता है और उत्तर देने में देर लग जाती है। बातचीत, चलने-फिरने में सर्वदा सर्वत्र ठाकुर के अनुपम रूप की स्मृति सर्वदा एक जैसी बनी रहती है। वह इतना स्वभाविक है कि मैं किसी भी पल भूल नहीं पाता। अब लगता है कि ठाकुर के पास नित्य रहने की अपेक्षा दूर रहकर इस प्रकार उनका संग तो और भी मधुर है। सर्वदा ठाकुर के सामने रहकर सान्निध्य से मन शीतल तो रहता है। इसी प्रभाव से चित्त उद्वेगशून्य होने के कारण अविच्छिन्न संग की उत्सुकता भी निवृत्त होती है। तब मन उन्हीं में निविष्ट न रहकर स्वभाववश अन्यत्र विचरण करता है। अतः संग रहकर भी विच्छेद भोगना पड़ता है। ठाकुर के रूपगुण तथा कार्य में चित्त लगा रहे तो ही यथार्थतः उनका संग पाना होता है। यह संग उनकी स्मृति में, विच्छेद की दशा में अधिक होता है। ऊपर से ठाकुर के पास रहने से बाहरी अनुभूति की अपेक्षा उनकी मधुरता अधिक है। दूर रहने पर केवल उनमें चित्त लीन रहने से माधुर्य की अनुभूति अतुलनीय हैं। गुरुदेव! तुम्हारा संग न छोड़ना चाहता था, क्या इसीलिए तुम्हारे विरह की यह अपूर्व माधुरी मुझे समझा रहे हो?

पुरुषाकार पर भरोसा। कृपा के दान की अवज्ञा करने का परिणाम।

तीन दिन, तीन रात इस अनुभूति में डूबा रहा। चौथे दिन यह

सोचने लगा कि यह अवस्था तो मेरी स्वभाविक हो चली है। इसके संभोग में सदा मतवाला न रहकर पुरुषाकर द्वारा अब और उन्नति का साधन करना होगा। श्वास-प्रश्वास में नाम जप ही क्रमशः उन्नति लाभ का एकमात्र उपाय है। अतः अब अनन्य भाव से वही करूँगा। ऐसा करते हुए सहज ही ठाकुर के श्रीअंग का स्पर्श-अनुभव भी होगा। ऐसा निश्चय करके मैं-रूप के तन्मयता से चित्त को यत्नपूर्वक हटाकर केवल श्वास-प्रश्वास में नाम जप में लगाने लगा। इससे रूप म्लान होकर क्रमशः अदृश्य हो गया। अब शुष्क नाम से श्वास-प्रश्वास भी चंचल होने लगा और मन अस्थिर होने लगा। श्वास या नाम किसी में चित्त न लगा सका। साधनहीन होकर मुझे चारों ओर शून्य नजर आने लगा। भीतर के ज्वलन से अस्थिर हो उठा। अनेक साधन भजन व तपस्या का फल जिसके पास फटक नहीं सकते, ठाकुर के उस दुर्लभ कृपा के दान को पाकर भी मैंने खो दिया। ठाकुर ने कहा था-भगवान की कृपा अवतीर्ण हो तो कृतज्ञता सहित, कातरता पूर्ण उन्हीं की ओर ताकते रहना चाहिए। तभी वह टिक पाती है। हाय! स्वयं कुबुद्धिवश सहज पथ को न पकड़कर, यह मैंने क्या किया? पुरुषाकार से उनकी कृपा का स्त्रोत बढाने चला था, अब स्वयं ही संकट में पड़ गया। अब तो मेरा सब कुछ लुट गया। दयालु ठाकुर मुझे ऐसे ही दग्ध करके पुनः अपने चरणों में जगह दो।

श्रद्धा का भिक्षान्न अमृत। खिचड़ी में नारियल के टुकड़े।

कलकत्ता पहुँचा। पहले दिन तो कुंज तथा छोटे दादा ने भोजन

बनाने की तैयारी कर दी। दूसरे दिन अचिन्त्य दादा के घर भिक्षा की व्यवस्था हुई। मूँगदाल की खिचड़ी चूल्हे पर रखकर, मैं उनसे ठाकुर की बातें करने लगा। कुछ देर बाद खिचड़ी के जलने की गंध आने लगी। कमरे में धुँआ छा गया। खिचड़ी जलती देख अचिन्त्य दादा दुःखी होकर-सर्वनाश हो गया, कहने लगे। मैंने खिचड़ी उतारी ठाकुर को भोग लगाया। होम के बाद उन्हें थोड़ा प्रसाद पाने को कहा। और भी कुछ लोगों ने प्रसाद लिया। आश्चर्य की बात है कि पात्र में खिचड़ी डालते ही अत्यंत सुगंध निकलने लगी। सारा घर उसी सुगंध से सुवासित हो उठा। खिचड़ी का अपूर्व स्वाद पाकर अचिन्त्य दादा रोने लगे। श्रद्धा का दान कभी व्यर्थ नहीं जाता। श्रद्धा से दी गई भिक्षा अमृत होती है, यह स्पष्ट जानकर, वड़ा आनंद आया। आहार करके वड़ी तृप्ति मिली।

फिर एक दिन महेन्द्र दादा के यहाँ भिक्षा लिया। वे बड़े आनंदित हुए। चावल, दाल, नमक, घी, आलू आदि लाकर बड़े उत्साह से भोजन की तैयारी कर दिये। चूल्हा जलाकर मैंने खिचड़ी पकाई। महेन्द्र दादा ने पूछा-तुम्हें और कुछ चाहिये? मैने कहा-जो चाहूँ वह अब नहीं मिल सकता। खिचड़ी में नारियल के टुकड़े पड़ते तो बड़ा ही स्वाद आता। महेन्द्र दादा ने कहा-पहले क्यों नहीं बताया? अब तो खिचड़ी पक गई है। खिचड़ी उतार कर भोग लगाया। होम आदि के बाद आहार करने बैठा। थोड़ा महेन्द्रबाबू को भी दिया। ठाकुर की अद्भुत लीला-विचित्र उनकी महिमा। प्रत्येक ग्रास में खिचड़ी के साथ नारियल के टुकड़े पाने लगा। मैं और महेन्द्रदादा दोनों अवाक् रह गए। यह कैसे हुआ कुछ समझ नहीं पाया। दुर्बोध्य विषय को बुद्धि द्वारा समझने की इच्छा भी नहीं रही। प्रत्येक ग्रास के साथ

आनंद स्फूर्ति बढ़ने लगी। नाम अपने आप सरस होकर चलने लगा। मेरे मुख से ठाकुर ही आहार कर रहे हैं ऐसा बोध होने लगा। आहार करने में एक घंटा लग गया। धन्य हैं गुरुदेव!

बस्ती जाने तथा मार्ग व्यय की बात लिखकर दादा को पत्र दिया था। दादा ने मुझे सजनी के साथ जाने को लिखा। सजनी के स्कूल की छुट्टियाँ होने में अभी देर हैं। यहाँ मेरे रहने की सुविधा नहीं है। अतः भागलपुर जाने के लिए मन अस्थिर हो उठा, पर इसका कारण नहीं जानता। कल ही भागलपुर रवाना होऊँगा,मैंने ऐसा निश्चय कर लिया।

प्रेत का आर्तनाद। फकीर का वाहन। अद्भुतु वृक्ष। साहब के द्वारा प्रतिष्ठित कालीमूर्ति। (१ से ४ आश्विन)

हावड़ा से ट्रेन द्वारा रात एक बजे भागलपुर पहुँचा। एक कुली को लेकर खंजरपुर के पुलिनपुरी चला। आज बडा अंधकार है। थोड़ी दूर चलकर मशाई के चौक पहुँचा। विस्तृत मैदान के बीच रास्ता है, दोनों ओर बड़े-बड़े वृक्ष हैं। अस्पताल के विपरीत दिशा में पहुँचते ही अत्यंत क्लेशसूचक शब्द सुनकर चौंक उठा। चारों ओर देखने लगा। चारों ओर जनहीन अंधकारमय वातावरण था। मेरे पास ही दस बारह हाथ की दूरी पर, वृक्ष से आवाज आ रही थी, मानो कोई उत्कट रोग से पीड़ित व्यक्ति कराह रहा हो। कभी-कभी यह आवाज स्पष्ट आने लगी। सुनकर साथ का कुली दमसाधे दौड़कर भाग गया। मैं नाम करते-करते स्वाभाविक गति से ही चलने लगा। दो-तीन मिनट तक ध्वनि मेरे पीछे-पीछे आती रही, फिर

अचानक बंद हुई।

कुली ने मुझसे कहा-बाबा इन वृक्षों में कभी बहुतों को फाँसी हुई थी। ये स्थान बड़े भयंकर हैं। यहाँ से गुजरते समय ऐसी आवाज मैं कई बार सुन चुका हूँ। मैंने सोचा-अस्पताल का कोई रोगी मृत्यु के बाद इस वृक्ष पर आश्रय लिया होगा। ऐसा स्पष्ट प्रेत का आर्तनाद मैंने पहले कभी नहीं सुना।

भागलपुर पहुँचकर महाविष्णु बाबू के साथ बड़े आनंद से दिन बीतने लगे। एक दिन उनके साथ मेला देखने कर्णगढ़ गया। यही कर्णगढ कलिंगाधिपति दाता कर्ण की राजधानी मानी जाती है। बड़ा विस्तृत उच्च भूखण्ड, पोखरों द्वारा घिरा हुआ है। स्थान को देखकर मन उदास सा हो गया। कुछ देर वहाँ बैठकर सरकारी उद्यान गया। उद्यान में एक पुराना बड़ा भारी वृक्ष देखा, जिसके तने की परिधि दस बारह हाथ होगी। वृक्ष का नाम कोई नहीं जानता। अचरज की बात यह है कि इसके एक पतली सी डाल को हिलाने पर सारा वृक्ष जोरों से हिल उठता है। जनश्रुति है, कि कोई विख्यात, सिद्ध फकीर पहाड़ से इस वृक्ष पर चढ़कर यहाँ आये थे। तब से यह वृक्ष यहीं है। घर लौटते समय एक काली मंदिर देखा। सुना है, कोई अंग्रेज साहब ने काली माता की अलौकिक महिमा देखकर इस मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई। तब से इनकी सेवापूजा होती आ रही है। जिसकी स्थायी व्यवस्था करके, साहब विलायत चले गए। चार-पाँच दिन भागलपुर रहकर बस्ती जाने को व्याकुल हो उठा। दादा चाहें न चाहें, ठाकुर की आज्ञा पालन के लिए मुझे बस्ती जाना ही पड़ेगा। भागलपुर में रोज भिक्षा करता रहा। नित्य के कृत्यादि में कोई भी विघ्न नहीं आया।

कुसमय में यात्रा से दुर्भाग। पग-पग पर ठाकुर की दया, परवर्ती आदेश ही बलवान्।

घोर अमावस्या की रात्रि को भागलपुर से बस्ती के लिए रवाना हुआ। कुसमय यात्रा का दुष्परिणाम मिलने में देर न हुई। स्टेशन पहुँचने के आधे रास्ते में ही गाडी अचल हो गई। जनशून्य गहन अंधकार में, बीच मैदान में बड़ा संकट आ पड़ा। ठाकुर की कृपा बिना इस विपत्ति से छूटने का कोई उपाय नहीं। यह सोचकर चिंतातुर हुआ। कुछ ही देर में एक खाली गाड़ी स्टेशन की ओर जाता देख, उस पर जा बैठा। इस गाड़ी द्वारा ट्रेन छूटने के चार-पाँच मिनट पहले ही स्टेशन पहुँच पाया। दौड़कर ट्रेन पर चढ़ा। सारा रास्ता कभी खड़े, कभी बैठे रहकर दूसरे दिन सुबह नौ बजे बाँकीपुर पहुँचा। वहाँ गुरुभाई ब्रजेन्द्र बाबू के घर कुँज ठाकुरता आकर मेरी प्रतीक्षा करेंगे, ऐसा कहा था। उनकी खोज में अनजान पथ में तीन-चार मील धूप में घूमते हुए ब्रजेन्द्रजी के घर पहुँचा। भाग्यचक्र से कुंज भी न मिला, ब्रजेन्द्रबाबू भी जगन्नाथपुरी गए हुए थे। फिर धूप में चलकर स्टेशन पहुँचा। भूख और प्यास से शरीर निस्तेज हुआ जा रहा था। मुसाफिरखाने में एक कोने में पड़ा था कि एक हिन्दीभाषी व्यक्ति ने कहा-बाबा! हम थोड़ा अच्छा दूध ले आये हैं। गरम-गरम पी लो। ठंडा पानी भी है। यह कहकर उसने मुझे एक संदेश दिया। करीब आधा सेर दूध और स्वच्छ शीतल जल पीकर मेरे प्राण बच गए। बस्ती की टिकट लेकर यथासमय ट्रेन पर चढ़ा। दिघाघाट में उतरकर स्टीमर से चलकर शाम को पालिजा-घाट पहुँचा। अधिक रात को बस्ती की गाड़ी आई, चढ़कर मैं

निश्चिंत हुआ। एक व्यक्ति ने मेरा साधु वेश देखकर मुझे कुछ देना चाहा। मैंने कहा-'मैं पैसे नहीं लेता।' इससे उसकी श्रद्धा और भी बढ़ गई। बेंच पर मुट्ठीभर चिल्हर पैसे रखकर कहा-ये आपके रहे। भूख लगे तो कुछ खा लीजिएगा। कुछ स्टेशन गुजरते ही मुझे बड़ी भूख लगी। कुछ अच्छी वस्तुएँ खरीदकर खाया। काफी देर बाद बस्ती पहुँचा। कुली के सिर पर माल रखवाकर दादा के घर पहुँचा। दादा ने मुझे देखकर पूछा-सुना है तुम तो भिक्षा करके खाते हो? मेरे यहाँ यह सब नहीं चलेगा। इसीलिए मैंने मार्गव्यय नहीं भेजा। थोड़ी देर बातचीत करके दादा अस्पताल चले गए। मैं उद्विग्न होकर सोचने लगा-अब क्या करें? भिक्षा द्वारा प्राप्त वस्तु के द्वारा स्वपाक आहार ही ठाकुर का मेरे प्रति आदेश है। फिर दादा के पास रहना यह भी ठाकुर का आदेश है। भिक्षा करूँ तो दादा अपने पास रहने नहीं देंगे। एक करूँ तो दूसरे का उल्लंघन होता है। ऐसी दशा में मेरा क्या कर्तव्य है? दादा को छोड़कर चला जाऊँ, तो मार्ग का कष्ट, कई अनियम, ठाकुर का दुर्लभ संग त्यागकर इतनी दूर आना, सब कुछ निरर्थक होगा। किसी भी तरह दादा के साथ रहने में ही सार्थकता है। पूर्व की अपेक्षा परवर्ती आदेश ही बलवान है अतएव भिक्षावृत्ति छोड़कर भी दादा के साथ रहूँगा, मैंने ऐसा निश्चय किया।

दादा का पाँच पैसा घूस लेने का स्वप्न सत्य-प्रायश्चित्।

बस्ती अस्पताल बड़े रास्ते के किनारे विशाल मैदान पर है। आसपास कोई लोकालय भी नहीं है। शहर काफी दूर है। दादा का निवास स्थल सुविधाजनक नहीं है। बाहर खपरे का एक लम्बा

कमरा, उससे लगी दो छोटी कोठरियाँ। भीतर तीन चार पक्के कमरे हैं। पर वे उतने स्वास्थ्यकर नहीं। मैंने बाहर के छोटे कमरे में ही आसन लगाया। मेरा बस्ती आने का कारण सुनकर दादा संतुष्ट हुए। अस्पताल का काम समाप्त करके शेष समय वे मेरे साथ ही व्यतीत करते। ठाकुर के प्रसंग सुनने में उन्हें बड़ा आनंद आता। एक दिन उन्होंने पूछा-मेरे स्वप्न के बारे में गोसाईंजी से पूछने को कहा था। स्वप्न सुनकर ठाकुर ने क्या कहा? मैंने कहा-स्वप्न को आपने विस्तारपूर्वक नहीं लिखा था।

दादा-विस्तारित क्या? रात के अंतिम भाग में देखा एक ब्राह्मण ने आकर मुझसे कहा-तुमने पाँच पैसे घूस लिया है। स्वप्न देखते ही नींद खुल गई। सारा दिन उद्विग्न रहा। मैंने घूस लिया? यह कैसी बात है! जीवन में कभी किसी से एक कौड़ी नहीं लिया। यदि रिश्वत लेता तो आज राजा बन सकता था। उस दिन एक राजा चालीस हजार रूपये पैरों के पास रखकर रोने लगा-ताकि सत्य को छुपाकर रिपोर्ट लिखूँ। ऐसा करने पर एक लड़की भी आत्महत्या न करती। यह जानकर भी मैं ऐसा न कर पाया। एक पैसे का पान तक कोई मेरे घर नहीं दे पाता। फिर मैंने कैसे घूस लिया?

मैंने कहा-ठाकुर आपकी चिट्ठी पाकर बोले-**स्वप्न यथार्थ है, किस दिन, किस समय घूस लिया है, तिथि व नक्षत्र सहित बताया जा सकता है। दादा को लिख दो, किसी देवालय में भोग या साधु एवं दरिद्रों की सेवा के लिए कुछ दान करें। तभी इस अपराध का प्रायश्चित हो जायेगा।** आपको यह सब लिखा था। आपने क्या वैसा किया?

दादा-अब तक नहीं कर पाया। यहाँ देवालय भी नहीं है। नानक

शाही का अड्डा है, वहीं पाँच रूपये दे आऊँगा।

महात्मा गोविन्ददासजी का विस्मयकारी कार्य।

दूसरे का उत्कट भोग ग्रहण करना।

मैंने पूछा-साधु गोविन्ददासजी की बातें आपने लिखी थीं, वे कौन हैं?

दादा-वे उदासीन महात्मा हैं, मेरी रक्षा करने ही वे यहाँ आये थे। लोकसंग यहाँ नहीं है। सदा अकेले रहना पड़ता है, इसलिए एक साधु को अपने साथ रखता था। साधु बड़े शक्तिशाली थे। कामकाज हो जाने पर मैं उन्हीं के साथ रहता था। उनके हाथ-पैर दबाता और पंखा झलता था। घर में पैसे भेजकर वेतन के बाकी रूपये उन्हीं के हाथों दिया करता था। वे जैसा कहते वैसा ही खर्च करता था। दिन पर दिन उन पर ऐसा आकर्षित हो गया कि उन्हें छोडकर रहने की इच्छा भी नहीं होती थी। साधन भजन लगभग छोड़ दिया था। कोई उपकार न मिलता तो भी वे बड़े भले लगते थे। उन्होंने मुझे मोहित कर रखा था। इसी समय एक दिन गोविन्ददासजी आ पहुँचे। उनके आते ही साधु चला गया। शायद गोविन्ददासजी ने उन्हें हटा दिया। अब गोविन्ददासजी के साथ आनंदपूर्वक रहने लगा। ये जिससे गुरु तथा साधन भजन में निष्ठा बढे, ऐसा उपदेश दिया करते थे। बड़े दयालु थे। किसी का कष्ट देखकर अधीर हो जाते थे। एक दिन एक बूढा,लंगड़ा ब्राह्मण मेरे पास भिक्षा के लिए आ रहा था। उसे देखकर वे दुःखपूर्वक बोले-आहा! इस गरीब ब्राह्मण के सामने भीषण प्रारब्ध का भोग है। इसमें पड़ने पर इसका बाकी जीवन क्लेश में ही बीतेगा।

जीवन में फिर आत्मकल्याण का कोई कर्म न कर पायेगा। ऐसी बातें हो रही थी कि वह मेरे पास आकर भिक्षा माँगने लगा। गोविन्ददासजी ने मुझे कुछ समय के लिए भीतर जाने को कहा। ब्राह्मण भिक्षा के लिए चिल्लाने लगा। गोविन्ददासजी ने भिखारी को गाली देते हुए कहा-अरे! साले! काहे माँगने आया है, मजदूरी नहीं कर सकता? ब्राह्मण-तुम्हारे पास नहीं माँग रहा हूँ। गोविन्ददास-अरे साले, लुच्चे, तुम्हारे बाप के पास माँगते हो? ब्राह्मण-तू तो बड़ा साधु बनके बैठा है, चुप रह गाली मत दे।

गोविन्ददास तुरंत ही, निकल साला-निकल, कहकर एक मोटी लाठी से उसे पीटने लगे। ऐसा मारा कि उसका एक हाथ टूट गया। तब गोविन्ददासजी ने मुझे बुलाकर उसे अस्पताल ले जाकर उसका इलाज करने को कहा। आघात अत्यंत अधिक था सो मैंने रिपोर्ट लिखवाई-मामला चला।

गोविन्ददासजी ने कहा-'बाबू साहब! अब हम दो तीन बरस के लिए जेलखाना जाते हैं। उससे क्या? ब्राह्मण तो बच गया।' गोविन्ददासजी को दो वर्ष का सश्रम कारावास हो गया।

मैंने दादा को कहा–ठाकुर से गोविन्ददासजी की बातें सुनकर ढाका के कुछ संभ्रांत लोगों ने उनके कष्ट दूर करने का प्रयास और अनुरोध किया था। इससे कुछ काम भी बना था। गोविन्ददासजी कुछ दिन पूर्व काशी के जेल में थे। गोविन्ददास जी की बातें करके ठाकुर कहा करते थे-**गोविन्ददास यथार्थ ही महात्मा है। भिखारी ब्राह्मण का उत्कट प्रारब्ध काटने के लिए ही उन्होंने उसे प्रहार किया था एवं उसका भोग लेकर स्वयं जेल गए।** महात्मा लोगों के कार्य का गूढ रहस्य समझ पाना बड़ा कठिन है।

अप्राकृतिक आरती की सुगंध।

२५श्रावण रविवार। कल महाष्टमी में निर्जला उपवास रहकर जप, होम, चण्डीपाठ में सारा दिन बीता। आज नवमी का दिन भी साधन-भजन में बड़े आनंद से बीता। शाम को भोजन के बाद दादा के साथ आँगन में बैठकर ठाकुर की बातें कर रहा था, कि अचानक अलौकिक आरती की दिव्य सुगंध आने लगी। मानो पास ही माता की धूप, अगर, चन्दन, गुग्गुल से सुन्दर आरती हो रही हो। यह सुगंध कहाँ से आ रही है जानने की उत्सुकता में मैं और दादा काफी ढूँढकर कुछ भी न देख पाये। अस्पताल के तीनों ओर विशाल सुनसान मैदान और एक ओर सड़क है जिसके पास कोई नहीं रहता। सुगंध खूब तेज होने लगी। परम पवित्र सुगंध को माता का प्रसाद मानकर हमने जी भर कर घ्राण किया। कम से कम डेढ घण्टे तक यह सुगंध हमें मुग्ध करती रही। लगता था मानो ठाकुर पास ही बैठे हैं। दादा भी इस सुगंध से मुग्ध हुए दो घंटे तक विस्मयपूर्वक एक से बैठे रहे।

भिक्षा करने की दादा की अनुमति।

बस्ती आकर कुछ दिन भिक्षा बन्द थी। रोज भोजन के समय रोना आ जाता था। ठाकुर से अपनी दशा बताकर कातर होकर प्रार्थना करता था। भिक्षा बन्द होने पर आहार में तृप्ति या उत्साह भी न रहा और मन में शांति भी नहीं है। इसी दुःख में दिनरात काटता हूँ। बातों ही बातों में दादा बोले-अच्छा तुम भिक्षा क्यों करते हो? भिक्षा से क्या लाभ है? मैंने कहा-लाभ-हानि तो ठाकुर जानें, पर मैं तो देखता हूँ कि भिक्षान्न में जो तृप्ति है, वह घर के अन्न में

नहीं। घर के अन्न में उत्साह या उद्यम तो बुझ सा जा रहा है। मन में सदा एक उद्वेग सा लगा रहता है। दादा थोड़ी देर चुप रहकर बोले- तो फिर आज से भिक्षा करना प्रारंभ कर दो। गुरु का आदेश तो पालन करना ही पड़ेगा। परन्तु तुम शहर में भिक्षा मत करना।

सद्ब्राह्मण के हाथों प्रथम भिक्षा।

मैं शहर से दूर तीन चार मील जाकर गाँव में भिक्षा करूँगा, ऐसा निश्चय कर लिया। इसमें मुझे कष्ट के बजाय आनंद ही आ रहा है। एकादशी के दिन जलग्रहण नहीं किया। द्वादशी में पूड़ी खाया। आज त्रयोदशी को ठाकुर का नाम लेकर लोटा ले घर से बाहर निकला। जीवन में अपरिचित के घर आज तक भिक्षा नहीं लिया था। आज पहली बार जा रहा हूँ। बुद्धदेव की बातें ध्यान आने लगीं। गुरुदेव ही बुद्ध के रूप में मेरे आगे-आगे चल रहे हैं ऐसा विचार मेरे मन में आया। मैंने बार-बार उन्हें प्रणाम किया। बुद्ध के रूप में गुरुदेव एकबार आकर यहाँ तीव्र वैराग्य का दृष्टांत दे चुके हैं। यह याद करके मन उदास हो गया। भिक्षा के लिए घूमते हुए एक गृहस्थ के घर पहुँचा। वे मुझसे पूछने लगे-बाबा क्या चाहिये? मैंने कहा-आप सबका आहार हो गया है? वे बोले-दोपहर का भोजन सभी पा चुके हैं। मैंने कहा-तो। फिर मुझे भिक्षा दीजिए। उन्होंने भक्तिपूर्वक पूछा- आप लोग कितने लोग हैं? मैंने कहा-मैं अकेला हूँ। वृद्ध ब्राह्मण खूब श्रद्धा सहित खूब सारा चावल, आलू, नमक आदि लाकर दिया। अपने लिये थोड़ा सा लेकर शेष मैंने लौटा दिया। भिक्षान्न आहार पाकर आज बड़ी तृप्ति हुई। यद्यपि चावल यदि चुनता तो कुछ भी न बचता तथापि एक अपूर्व स्वाद उसके पकने के बाद आया। मन में

आशा हुई कि प्रथम दिन सद्ब्राह्मण के हाथों श्रद्धा का अन्न इस अनजाने स्थान में मिला तो सम्भवतः रोज ही ऐसा मिले।

भिक्षा में ताड़ना व आदर।

(२० आश्विन शुक्रवार)

ठाकुर की क्या इच्छा है, मैं समझ नहीं पाता। दो कोस चलकर भिक्षा के लिए एक कसाई के घर पहुँचा। उस स्थान को त्यागकर घूमते हुए एक मेहतर के घर पहुँचा। परिचय पाकर वहाँ से भी चला गया। दूसरे गाँव के एक गृहस्थ के घर पहुँचा तो वे हाथ में डंडा लेकर मुझे भगाने दौड़े। में भाग निकला। तीन घर में यत्न करके खाली हाथ घर लौटा। दादा के घर ही भिक्षा ग्रहण किया। दादा ने मेरे भिक्षा की दुर्दशा सुनकर पुरानी बस्ती के बाजार में भिक्षा ग्रहण करने को कहा। बाजार में रोज भिक्षा में उत्कृष्ठ वस्तुएँ मिलने लगीं। में प्रयोजन से अधिक नहीं लेता देखकर सभी ने मुझे महात्मा समझ लिया। मिठाई, दूध, रबड़ी, सब्जी काफी मात्रा में देने लगे। रोज जरूरत के लिए थोड़ा सा लेकर मैं शेष लौटा दिया करता था। इससे जनसाधारण की श्रद्धा और बढ़ने लगी। मैं कब आऊँगा यह सोचकर लोग प्रतीक्षा करने लगते। यह सब देखकर मैं बीच-बीच में गाँव में भिक्षा करने चला जाता। बस्ती आकर भिक्षान्न ग्रहण करके आनंद, स्फूर्ति तथा जैसी तृप्ति मिली, ऐसी पहले कभी नहीं मिली। जय गुरुदेव!

पर्यटन काल में साधन में तन्मयता।

भिक्षा के माध्यम ठाकुर मुझे पर्यटन की उपयोगिता स्पष्ट समझा रहे हैं। पर्यटन काल में श्वास-प्रश्वास की गति स्वाभाविक ही

स्थूल तथा दीर्घ होती है। मन को उसमें लगाना सहज होता है। आसन में स्थिर बैठने पर स्वाभाविक श्वसन का अनुगामी होना बड़ा कठिन है। कारण यह है कि शरीर के अभ्यास के कारण मन विक्षिप्त तथा नित्य ही अन्य विषयों में आकर्षित होता है। किन्तु भ्रमणकाल में सर्वांग की चेष्टा चलने में लगे रहने से, चैतन्य श्वास-प्रश्वास में संयुक्त हो पाता है। तब तन्मयता से नाम को उसमें मिला देने में सहायता मिलती है। शायद परिव्राजक साधु-संन्यासी, परमहंसगण साधन के इस असाधारण सहायता की प्राप्ति के लिए ही सदा पर्यटन किया करते हैं। आहार निद्रा के अलावा वे कहीं एक स्थान पर अधिक समय तक नहीं ठहरते। इतने दिनों तक मैं सोचता था कि दिन भर घूमने फिरने से उनका साधन भजन कब होता होगा? ठाकुर ने मेरा यह भ्रम दूर कर दिया।

ऊपरी शक्ति का अनुभव। प्रेत का उपद्रव।

रात को नाम करते-करते सो गया। नींद खुली तो लगा कोई खाट सहित मुझे हिला रहा है। कभी-कभी ऐसे झकझोरने से नींद खुल जाया करती है। यह क्रम एक मिनट या उससे अधिक भी चलता। सिर से पैर तक काँपने लगता हूँ और चाहकर भी स्थिर नहीं हो पाता। इस समय नाम अपने आप खूब चलने लगता है। झटके में निद्रा भंग होने पर देखता हूँ कि भीतर ही भीतर तेजी से नाम चल रहा है। इसका कोई कारण नहीं समझ पाता। लगता है कोई शक्तिशाली फकीर मेरे हितार्थ ऐसा कर रहे हैं। गेण्डारिया में ठाकुर के पास बैठकर नाम करते समय कभी-कभी ऐसे झटके आने से आसन तक सारा शरीर काँप उठता था। ठाकुर से बताने पर

उन्होंने कहा-'ऐसा होना अच्छा है।' अतएव इससे भयभीत न होकर मैं आनंदित होता था। दादा को यह घटना बताने पर दादा बोले-अस्पताल में रहते हुए कई बार प्रेत का उपद्रव देख पाता हूँ। फैजाबाद अस्पताल में एक रोगी लम्बे समय बीमार रहकर मर गया। उसके बिस्तर पर दूसरा रोगी आया पर वह दो-तीन दिन रहकर चला गया। इस प्रकार कई रोगी आए और चले गए। सभी कोई न कोई बहाना बनाकर भाग जाते। उस बिस्तर पर जो रहता प्रेत आकर उस पर उपद्रव करने लगता। प्रेत कहता-तू मेरे बिस्तर पर क्यों लेटा है, मैं तेरी जान ले लूँगा। ऐसा कहकर वह छाती पर चढ़ जाता और गला दबाने लगता। जागते रहने पर कुछ नहीं कर पाता। सिर्फ सो जाने पर ही ऐसा उपद्रव करता। मैंने सबसे कह दिया एक बार परीक्षा करके देखूँगा। नये रोगी के आने पर उसे कुछ मत बताना। एक जवान आदमी उस बिस्तर पर आया। रोग मुक्त न होने तक वह यहीं रहेगा, ऐसी सम्मति भी दिया। मैंने उसकी सारी व्यवस्था कर दी। दूसरे दिन अस्पताल जाकर उससे पूछा-कैसे हो? उसने कहा बाबूजी यहाँ तो माथा गरम हो उठता है, रात को नींद नहीं आती। मैंने उसे नींद की दवा दी। दूसरे दिन फिर पूछा-रात को कैसे रहे? उसने कहा-बाबूजी मुझे छोड़ दीजिए मैं यहाँ नहीं रहूँगा। मैंने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया और भोजन देने और सेवा करने वालों को धमकाकर बोला-तुम लोग मरीज को कष्ट देते हो, अच्छी तरह देखभाल नहीं करते, तभी वह जाना चाहता है। अब ऐसी शिकायत आई तो तुम सबको भगा दूँगा। ऐसा कहकर रोगी की सारी सुव्यवस्था करवा दिया। रोगी चुप रहा। तीसरे दिन दूर से देखा रोगी खाट से उतरकर नीचे बैठा है। हाथ में लाठी व

लोटा बँधा हुआ है और एक झोले में सामान लिये जाने को प्रस्तुत है। मैं पास जाते ही बोला-बाबूजी सलाम, अब हम चले। कहकर उठ बैठा। मैंने कहा-तुम्हें यहीं रहना पड़ेगा। इस पर रोगी उत्तेजित होकर कहा-'क्या जान दे देंगे? रोज साला रात को आकर जिन्न मेरी छाती पर बैठ जाता है और मारपीट करता है और कहता है खटिया छोड़ दे नहीं तो जान ले लूँगा। मैं सारी रात नीचे बैठा रहता हूँ। अब मैं यहाँ नहीं रहूँगा।' तब डाक्टर ओ ब्राएन ने वह खाट सरयू में फेंक देने को कहा।

एक स्वप्न देखने के बाद ठाकुर के पास लौट जाने को मन छटपटाने लगा। किन्तु दादा को कहने का साहस नहीं जुटा पा रहा हूँ। दादा अवसर पाने पर पल भर भी मुझे नहीं छोड़ते। मैं चला जाऊँ तो दादा बड़े निसंग हो जायेंगे। दादा कभी स्वयं जाने कहेंगे, ऐसा लगता नहीं है। इस संकट में ठाकुर कुछ व्यवस्था करें तभी कुछ हो पाएगा। इसके सिवाय कोई उपाय नहीं।

बस्ती त्याग, अयोध्या में हा राम! उदासीन भाव।

मेरे भांजे श्री सुरेन्द्र के पत्र से जान पाया कि उनके निवास स्थल भागलपुर में पुनः आभिचारिक क्रिया के फलस्वरूप नाना प्रकार के उत्पात आरंभ हुए हैं। उनका विश्वास है कि मेरे भागलपुर रहने पर यह जादूगरी कोई नुकसान न पहुँचा पाएगी। दादा भी मुझे भागलपुर भेजने को तत्पर हुए। अकस्मात् मेरी इस प्रकार बस्ती त्यागने की सुविधा हो गई, मैं तैयार हुआ।

(१ कार्तिक रविवार)

बस्ती में दादा के साथ बड़े आनंदपूर्वक था। साधन-भजन में दीर्घकाल तक ऐसी सुन्दर अवस्था प्राप्त नहीं कर पाया। ठाकुर मेरे साथ सदा हैं, यह भाव सदा जागृत रहता है। ठाकुर को स्मरण करने पर आँखें भर आती हैं। नाम से उनकी स्मृति उज्ज्वल हो उठती हैं। पास की अपेक्षा दूर रहकर ठाकुर के ध्यान में अधिक आनंद आता है, यह स्पष्ट उपलब्ध कर पाया। श्रीराम की लीला भूमि अयोध्या दर्शन कर मैंने भागलपुर जाने का निश्चय किया। दादा को अकेला छोड़ने में मन में कष्ट हो रहा था। इसी समय स्वर्गीय माधोदासजी के शिष्य साधु कन्हैयालालजी फैजाबाद से दादा को देखने आये। उनके साथ दादा आनंदपूर्वक रहेंगे सोचकर, निश्चिंत मन हो, सुअवसर पाकर मैं भागलपुर रवाना हुआ। साढे नौ बजे ट्रेन से चलकर, दोपहर को सरयूतीर के लकड़मण्डी घाट पर उतरा। राह में भूख-प्यास से अवसन्न हो गया। एक ब्राह्मण ने आकर पूछा-बाबाजी कुछ खायेगे, पूड़ी,कचौड़ी, लड्डू कुछ ला दूँ? मैंने कहा-नहीं बाजार की ऐसी वस्तुएँ मैं नहीं खाता। अयोध्या जाकर हनुमानजी का प्रसाद पाऊँगा। तब वह सज्जन मिट्टी की हंडी से बढिया बरफी निकालकर मेरे सामने रखते हुए बोले-यह प्रसाद हनुमानजी ने आपके लिए ही भेजा है। उन्हें भोग चढाकर, प्रसाद लेकर अभी मैं घर जा रहा हूँ। आप निश्चित होकर प्रसाद पाइये। हनुमानजी को नमन कर बरफी खाया, सरयू का शीतल जल जी भरकर पीया। भक्तराज हनुमान जी की कृपा का स्मरण कर आँखें भर आई। सरयू के वक्ष पर विशाल भूखण्ड देखकर मन में कष्ट हुआ। सरयू को प्रणाम कर भूखण्ड पर से चल पड़ा। ठाकुर ने कहा था-श्रीराम की अयोध्या अब सरयू के गर्भ में है। चलते हुए लगा कि

यह वही स्थान है जहाँ श्रीराम की लीलाभूमि थी। अप्राकृतिक अयोध्याधाम। कहाँ है राम! यह सोचते ही मन उदास हो गया। एक शोक का वेग भीतर से आने लगा और हा राम! हा राम! शब्द बारंबार उठने लगा। मैं रोते हुए चला। सरयू की रेत देह पर मलकर श्रीराम को बारंबार प्रणाम करने लगा। तभी पुण्य सलिला सरयू के स्वच्छ शुभ्र अभ्रक के समान रेत में नव दूर्वादल श्रीरामचन्द्र की अंग-द्युति प्रकट हुई। भूखंड के चारों ओर वही स्निग्ध हरी ज्योति झिलमिलाने लगी। ऐसी ज्योति मैंने कभी नहीं देखी थी। मेरे भीतर क्या हुआ में व्यक्त नहीं कर पाऊँगा। हा राम! हा लक्ष्मण! आज तुम कहाँ हो? ऐसा विचार मन में आते ही हृदय विदीर्ण होने लगा। एक व्यक्ति गाना गा रहा था-राम आज भी अयोध्या के वनों में, सरयू के तट पर, धनुषबाण हाथों में लिए, सीता और लक्ष्मण के साथ विचरण कर रहे हैं। गीत सुनकर मन शीतल हो गया। नाव द्वारा सरयू पारकर अयोध्या पहुँचा। देखा अयोध्या इतना बड़ा शहर है किन्तु नीरव, शांत तथा निस्तब्ध, कहीं कोई आवाज नहीं। सभी मानो राम के विरह में मुरझाये तथा अवसन्न हों।

काशी में पण्डे का उपद्रव। ठाकुर का शासन पूर्ण वाक्य स्मरण होना ताराकांत दादा का घर।

अयोध्या में कुछ देर घूमा फिरा। मन उदास रहा। तब काशी जाने के लिए रानूपाली स्टेशन पहुँचा। स्टेशन मास्टर दादा के मित्र थे। उनसे परिचय होते ही मुझे आदरपूर्वक घर ले गए। उन्होंने कई

सुन्दर पदार्थों से मुझे आहार कराया एवं ठीक समय पर काशी की गाड़ी में मुझे चढ़ा दिया। मेरे डब्बे में और कोई यात्री नहीं था।

अतः रात बड़े आराम से बीती। रात के अंत में राजघाट स्टेशन पर उतरा। गंगा में स्नान तर्पण करने के लिए मणिकर्णिका घाट पर पहुँचा। स्नान तर्पण होते ही पण्डे व गंगापुत्रों ने मुझे श्राद्ध करने के लिए तंग करना शुरू किया। मैं नहीं करेगा जानकर वे मेरे झोले व कम्बल को लेकर खींचातानी करने लगे। उनके अत्याचार से में अधीर हो उठा। सोचा ठाकुर ने मुझे यदि कोई शक्ति दी होती तो अभी इनके अत्याचार का उपयुक्त बदला चुकाता। एक बार ठाकुर ने मुझसे कहा था-**अभी यदि तुम्हें योगैश्वर्य प्राप्त हो जाये तो संसार को तहस-नहस कर बैठोगे।** ठाकुर की बात तब मुझे ठीक नहीं लगी थी। सोचा था ठाकुर क्या मुझे इतना ही नीच या हीन समझते हैं। लेकिन आज दयालु ठाकुर ने मेरा संशय दूर कर दिया। अभिमान चूर्ण हो गया। मैं खूब क्रोधभरी दृष्टि से उन पण्डों की तरफ एकटक देखने लगा। सहसा एक पण्डा भयभीत होकर मुझसे कहने लगा-बाबाजी क्रोध न करें। तीर्थ कार्य की रक्षा तो आप लोगों को ही करना है। आप यदि न करें तो साधारण व्यक्ति हमारी क्या मर्यादा करेंगे? यह सुनकर मैं लज्जित हुआ। उस पण्डे के पैर छूकर प्रणाम किया। फिर कुली न रहने के कारण खुद ही सामान लेकर केदार घाट चला। राह में कुली मिल गया। ताराकांत दादा का घर बहुत देर ढूँढने पर भी न मिला। अंत में हताश होकर थककर मैं एक घर के द्वार पर बैठ गया। सामान रखवाकर कुली को विदा किया। आश्चर्य है गुरुदेव की दया। उसी घर की एक लड़की ने मुझे देखा और घर में खबर देते ही ताराकांत दादा की पत्नी आदरपूर्वक मुझे घर के भीतर ले गई। घर में कोई पुरुष न था। ताराकांत दादा कुछ दिनों पूर्व गया गए थे। मैंने तिमंजिले के निर्जन कक्ष में आसन

लगाया। नित्यकृत्यादि कर लेने के बाद सोचने लगा-अब क्या करूँ? इस पुरुष विहीन घर में युवती-स्त्री है-यहाँ रहना मेरे लिए कैसे संभव है। ताराकांत दादा शाम तक न लौटे तो आज ही भागलपुर रवाना हो जाऊँगा। ठाकुर की व्यवस्था ही चमत्कार है। ठीक दोपहर ग्यारह बजे ताराकांत दादा आ गए। उनके स्नेह और आतिथ्य में काशी में आनंदपूर्वक कुछ दिन रहा।

पूर्णानन्द स्वामी। केदारेश्वर दर्शन। साधु का आदेश-चले जाइये भागलपुर।

सुना है, ब्राह्मसमाज के उपाचार्य श्री रामकुमार विद्यारत्नजी ने पूर्व संस्कार त्याग दिया है और तांत्रिक साधन का मार्ग अपनाया है। अभी उनका नाम ब्रह्मानंद स्वामी है। काकिनिया के छत्र में उनके दर्शनार्थ गया। उन्होंने परम आदरसहित मुझे अपने आसन पर बिठाना चाहा। उनके शिष्य पास हैं, देखकर मैं आसन को नमस्कार कर दूसरे आसन पर जा बैठा। देखा, स्वामीजी का यथाविधि निःशब्द प्राणायाम हो रहा है। महात्मा पूर्णानंद स्वामी को भी देखने की इच्छा हुई। उनके घर के पास पहुँचकर देखा, वे खूब क्रोधित हो किसी व्यक्ति को गाली दे रहे हैं। मैं दूर से उन्हें प्रणाम करके चल पड़ा। महात्माओं का क्रियाकलाप समझ पाना दुरुह है। अपने संस्कार के अनुरूप विचार करके हम अपराधी ही बन सकते हैं। सोच लिया काशी में अब और साधु दर्शन न करूँगा। अपने ठाकुर की निर्विकार मूर्ति ही जीभरकर देखूँगा। प्रातः गंगास्नान कर केदार मंदिर में प्रवेश किया। तभी सारा शरीर अवसन्न हो गया। केदार के स्पर्श से ठाकुर का ही स्पर्श प्रतीत हुआ। मन प्राण की क्या दशा

हुई, यह वर्णनातीत है। परमदयालु ठाकुर चिरकाल से ही प्रेम के धन हैं। भक्त यहाँ यथार्थ ही उन्हें प्रेम और आदर कर रहे हैं। पतित, दुराचारी को भी सामान्य पुष्पाजंलि मात्र लेकर, प्रसन्न होकर वे दुर्लभ मुक्ति प्रदान करते हैं। जय शिव केदार! जय ठाकुर! भक्तों की सेवापूजा तथा प्रेम में तुम सदा सुखी रहो। मैं दुर्जन दूर से ही देखकर कृतार्थ होता रहूँ। आज एक अच्छे उदासीन साधुबाबा मुझे देखते ही बोले-'आप क्यों अब तक काशी में रुके हैं। तुरंत चले जाइये भागलपुर।' श्वेत सरसों, श्वेत गोल मिर्च भी इन्होंने ही जुटाने की बात कही। मैं यह सब लेकर भागलपुर के लिए रवाना हुआ।

दानापुर में मेरी गिरफ्तारी का आयोजन।

दोपहर को राजघाट स्टेशन आकर ट्रेन पर चढ़ा। मुगलसराय में ट्रेन बदलनी पड़ी। खूब भीड़ थी। मुश्किल से थोडी जगह मिली। रेलवे के एक बड़े साहब कुछ देर मुझे देखकर बोले-तुम साधु हो, यहाँ कष्ट हो रहा है, मेरे साथ आओ, मैं अच्छी जगह दिला रहा हूँ। मैं उनके साथ चला। साहब मुझे द्वितीय श्रेणी के निर्जन कमरे में बिठाकर काफी देर तक वार्तालाप करते रहे। दो तीन स्टेशन बाद ही वे मुझे देखकर जाते रहे। दानापुर आने के कुछ पूर्व फिर उन्हें देख न पाया। मेरा कमरा भी बाहर से तालाबंद हो चुका था, मन में बड़ा संदेह आया। दानापुर आते ही देखा स्टेशन पर कुछ गोरे सिपाही शस्त्र लिए खड़े हैं। कुछ ही देर में वे मेरे कमरे में आकर लाईन से खड़े हो गए। एक मिलिट्री के साहब डायरी में मेरा नाम, धाम परिचय पूछकर लिखने लगे। लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी और वे आपस में मेरी गिरफ्तारी की बात कहने लगे। मैं तो कातर होकर

ठाकुर को स्मरण करने लगा। तभी एक चपरासी ने आकर एक तार वार्ता साहब के हाथों में दिया। साहब उसे पढ़कर मुझे सलाम किए तथा अपने दल सहित चल दिए। यह सब क्यों हुआ कुछ समझ न पाया।

इसके बाद जब दादा से पुनः भेंट हुई तो उन्होंने कहा-तुम्हारे जाने के बाद अचानक सिविल सर्जन आये। रात आठ बजे तक रोगी की बातचीत करते हुए हमारे परिवार के बारे में पूछने लगे। हम कितने भाई हैं, कहाँ रहते हैं, तुम क्या करते हो, साधु क्यों बने, कब यहाँ से गए आदि सब पूछा। शायद तुम्हारे विषय में जानने के लिए ही सिविल सर्जन ने तार भेजा था। बाद में वे ही तार भेजकर तुम्हें छुड़वाये। रशिया के भारत आक्रमण की अफवाह उड़ी थी। शायद तुम्हें रशियन स्पाई समझा होगा।

पुनः वही प्रेत का आर्तनाद। प्रत्यक्ष कर भी विश्वास उत्पन्न नहीं होता।

७ कार्तिक अमावस्या। रात को भागलपुर पहुँचा। भाग्यक्रम से पिछली बार जिस कुली को ले गया था, इस बार भी वही मिला। खंजरपुर जाने की राह में एक वृद्ध ब्राहण का साथ मिला। उस बार जिस जगह प्रेत का चीत्कार सुना था इस बार भी उसी स्थान पर पहुँचा। कुली ने कहा-बाबा पिछली बार की बात याद है न? मैंने कहा-है, पर कोई डर की बात नहीं चलते चलो। जैसे ही उस वृक्ष के नीचे पहुँचे, वही प्रेत का हृदयविदारक रुदन आरंभ हुआ। भीषण क्लेशसूचक चीख सुनकर कुली और ब्राह्मण तो दौड़कर भाग गए। कुछ दूर अंधेरे में होकर खाकर गिर पड़े। में ऊपर ताककर बोला-

कौन हो? क्यों चीख रहे हो? घने अंधेरे में कुछ भी दिखाई न पड़ा। मुझसे बारह चौदह हाथ दूर ही मानो कोई उत्कट व्याधि की असह्य पीड़ा से चिल्ला रहा है। मेरे पीछे थोड़ी दूर तक ध्वनि चली फिर शांत हो गई। ब्राह्मण बोला-महाराज! मैं राजा सूर्यनारायण का गुमाश्ता हूँ। गहरी रात को इस राह पर चलता हुआ और भी कई बार यह सब सुन चुका है। यह प्रेत किसी का भी बुरा नहीं करता। परंतु यहाँ कईयों ने यह आवाज सुनी है। यह सुनकर में सोचने लगा-ओह! प्रेत यंत्रणा क्या ही भयानक है। इहलोक-परलोक के बीच के आवरण को भेदकर भी यह हमें सुनाई पड़ रही है। ठाकुर के पास इसकी शांति के लिए प्रार्थना करने लगा। इस विषय में अपने संस्कार देखकर आश्चर्यान्वित हुआ। प्रेत की चीख सुनकर भी परलोक का निश्चित ज्ञान नहीं हो पा रहा है। अब देखता हूँ प्रत्यक्ष का कोई मूल्य ही नहीं है ठीक दिक्भ्रम की भाँति। पूर्व से सूर्योदय होता देखकर भी यदि पश्चिम का भान हो तो उसका क्या उपाय है? रात एक बजे पुलिनपुरी पहुँचा।

यथार्थ दयापूर्ण सेवा-पाठ बंद कर ठाकुर का पंखा झलना।

घर में अश्विनी बाबू, महाविष्णु बाबू तथा छोटे दादा को देखकर बड़ा हर्षित हुआ। अंधेरे में लम्बा रास्ता चलकर बड़ी थकान लग रही थी। हाथ मुँह धोकर जैसे ही बरामदे में बैठा, छोटे दादा मेरा हुक्का लेकर तम्बाकू भर लाए एवं मेरे आसन के पास रख दिए। आसक्ति की वस्तु पाकर बड़ा ही आराम मिला। छोटे दादा का यह कार्य देखकर मैं अवाक् और मोहित हो गया। मैं छोटा भाई हूँ,

उनके सामने मैंने कभी तम्बाकू नहीं ली। मेरे आराम के लिए निःसंकोच सबके सामने तम्बाकू लाकर रख दिया। छोटे-छोटे कामों में भी मनुष्य की यथार्थ प्रकृति स्पष्ट समझी जा सकती है। अहा! कब ठाकुर मुझे भी छोटे दादा के समान दया तथा सहानुभूति देकर कृतार्थ करेंगे।

उस दिन गुरुभाई महेन्द्र मित्रजी बोले-'एक बार ग्रीष्म में गोसाईंजी के पास गया था। दोपहर को आहार करके वे भागवत् पाठ करते थे। मैं पास बैठकर सुनता था। एक दिन बड़ी गर्मी पड़ने से मैं भागवत् सुनते-सुनते सो गया। मेरा शरीर पसीने से तर हो गया। गोसाईंजी पाठ बन्द करके एक पंखा लेकर मुझे झलने लगे। अचानक मेरी नींद खुली तो देखा वे मुझे पंखा झल रहे थे। कोई बात न करके नींद का बहाना करके में मुड़कर सोया रहा। सोचा कर रहे हैं तो करे ऐसा सौभाग्य जब तक है, मैं पा लूँ। ऐसा सौभाग्य किसका हो सकता है? थोड़ी देर में पसीना सूख गया शरीर ठण्डा हो गया। गोसाईंजी ने फिर से पाठ शुरू किया और मैं भी उठकर बैठा। इस साधारण घटना से प्रतीत होता है कि गोसाईंजी की हमारे प्रति कितनी ममता है। दया तथा सहानुभूति से जो सेवा की जाए वहीं यथार्थ सेवा आर हमदर्दी की सेवा है। ठाकुर दया करो, हृदय में दया और प्रेम देकर अपना यथार्थ सेवक बना लो।

नाम का अर्थरूप। नाम में अतिउज्ज्वल कृष्ण ज्योति।

भागलपुर में ठाकुर ने मुझे बड़े ही आनंद में रखा है। खूब सबेरे गंगा स्नान कर आसन पर बैठता हूँ। ऐसे ही ग्यारह बजे जाते हैं।

पुनः बारह से पाँच बजे तक आसन पर बैठता हूँ। रात को नींद न आने तक नाम, गान, सत्प्रसंग में समय बीतता है। श्वास-प्रश्वास में नाम करना कठिन लगता है। स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास में चित्त लगाते ही श्वास रोध हो जाता है। कई बार अपने आप कुंभक हो जाता है। कुंभक में श्वास-प्रश्वास के साथ कोई सम्पर्क न रहने से मन नाम में एकाग्र हो पाता है। तब नाम एक जीवंत शक्ति है ऐसा बोध होता है। नाम करते हुए अपने आप ठाकुर का रूप उदित हो जाता है। अब तो देखता हूँ नाम के साथ रूप संलग्न है। नाम रूप को ही प्रकाशित करता है। 'लोटा' कहने पर जसे 'लो' तथा 'टा' ऐसा न सोचकर 'लोटा' शब्द पर ही ध्यान देते हैं और यह शब्द बोलते जसे लोटा नामक वस्तु का आकार मन में आ जाता है। ठीक उसी प्रकार नाम के स्मरण मात्र से ठाकुर को देख पाता हूँ। रूप बिना नाम अब नहीं होता। श्वास-प्रश्वास के अनुरूप अब नाम नहीं होता बल्कि नाम की शक्ति का अनुसरण श्वास-प्रश्वास करता है। नाम से जैसे रूप प्रकट होता है, नाम से ही वैसे उसका सौंदर्य और उज्ज्वलता बढ़ती है। अन्त में ठाकुर के संग लाभ होने से घनिष्टता और प्रेमभाव बढ़ता है। देह के संस्कारवश यह प्रेम अविच्छेद्य संबंध में परिणित होता है। दयामय ठाकुर अपने असीम कृपा से शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर भावों का अन्तःकरण में संचार कर, एक-एक कर सबका माधुर्य संभोग कराते हैं। अब तो सर्वनियंता सर्वशक्तिमान ठाकुर के अशेष गुणों का कुछ भी मन में नहीं आता। केवल यही प्रतीत होता है कि वे मुझसे प्यार करते हैं-मैं उन्हीं का हूँ-वे मेरे हैं। कुछ दिनों से सघन कृष्णज्योति क्षण-क्षण में प्रकट होकर मुझे भावाविष्ट और मोहित कर रही है।

सभी ज्योतियों की अपेक्षा इसकी मोहिनी शक्ति अधिक है। शीघ्र ठाकुर के पास जाने को हृदय अस्थिर हो उठा।

जह्नु मुनि का आश्रम। फकीर दर्शन।

महाविष्णुजी बोले–यहाँ से कुछेक स्टेशन पश्चिम की ओर जाने पर सुल्तानगंज है, जहाँ जह्नुमुनि का आश्रम है। इसी स्थान से जाह्नवी की उत्पत्ति हुई। यह सुनकर सुल्तानगंज जाने की इच्छा हुई। घर के सभी साथ चले। स्कूल के एक सब इंस्पेक्टर का घर सुल्तानगंज में है। वे आदरपूर्वक हमें घर लेकर चले। उनके घर कुछ देर विश्राम कर गंगातट पर जा पहुंचा। स्रोतवती गंगा के विशाल वक्ष पर एक मंदिर आकार का पर्वत देखा। नाव द्वारा वहाँ पहुँचा। चारों ओर देखा प्रत्येक पत्थर पर देवी-देवताओं की मूर्ति खुदी है। सारा पर्वत मूर्ति की श्रृंखला से बना हुआ है। मूर्तियाँ युगों की प्राचीन हैं किन्तु इतनी स्पष्ट तथा सुंदर हैं कि एक को देखो तो दूसरी की ओर देखने का अवसर ही नहीं मिलता। गंगा की स्वाभाविक धारा यहाँ अधिक विस्तृत होकर पुनः स्वाभाविक गति से प्रवाहित हो रही है। सुना है पुराणों में है कि-भगीरथ की तपस्या और प्रार्थना से दयावशीभूत हो गंगा सगर के कुल के उद्धार के लिए सागर संगम की ओर चली। मार्ग में जह्नुमुनि ने प्रार्थना की कि-'माता मेरे आश्रम के एक ओर से बहती चली जाओ। मेरा आश्रम नष्ट न हो पाये।' गंगा ने अनसुनी कर दी और आश्रम की ओर बहने लगी। तब जह्नुमुनि जो महायोगी थे एक चुल्लू में गंगा को लेकर पी गए। गंगा की धारा भी लुप्त हो गई और उनकी शक्ति न रही। यह देख भगीरथ ने मुनि के चरणों में शरण लिया और अपने पितरों की

मुक्ति के लिए गंगा की मुक्ति की प्रार्थना की। उनकी स्तुति से संतुष्ट होकर योगीश्वर जह्नु ने घुटना या जह्नु छेदकर गंगा को निकाला। तब से गंगा जह्नुसुता जाह्नवी के नाम से विख्यात हुई, श्रद्धापूर्वक आश्रम की प्रदक्षिणा करती हुई भगीरथ के शंखनाद का अनुसरण करने लगी।

स्थान इतना मनोरम और भजन योग्य है, कि छोड़कर जाने की इच्छा न हुई। ऐसी इच्छा हुई कि शेष जीवन यहीं रह जाऊँ। गंगा स्नान कर, जह्नु मुनि को प्रणाम कर, पुण्यक्षेत्र में दण्डवत् किया। पहाड के ऊपर छोटी-छोटी गुफाएँ हैं। उनमें से एक के सामने बैठकर नाम करने लगा। बड़ा आनंद आया। शाम को चार बजे गंगा पार कर तट पर आया। गंगा तट के वन के भीतर एक पुराना मस्जिद देख पाया। इस मस्जिद में पहले कितनी ही ईश्वर की प्रार्थनाएँ हुई होंगी यह सोचने लगा। द्वार पर जाकर देखा एक दीर्घकाय, दुबले, दीन, हीन, कंगाल की भाँति केवल लँगोटी लगाए एक फकीर, एक कोने में चुपचाप बैठे हैं। मैंने सोचा हमारे दल सहित जाने पर उनकी साधना में बाधा पडेगी। लेकिन वे मग्न थे। उन्होंने कोई ध्यान ही न दिया। फकीर साहब कौन सी वस्तु पाकर इस निर्जन वन में, गंदे टूटे-फूटे मस्जिद में एकाकी पड़े हैं, सोचकर मेरा मन न जाने कैसा हो गया। ठाकुर कब मैं भी दिनरात एकान्त में तुम्हें लेकर इसी प्रकार आनंद में डूबा रहूँगा। सब-इंस्पेक्टर महाशय के आतिथ्य से संतुष्ट होकर रात को भागलपुर पहुँचा।

मनोरमा की अद्भुत गुरुनिष्ठा।

गुरुभाई श्री मनोरंजन गुहठाकुरता कुछ दिनों हुए भागलपुर आए

हैं। उनकी पत्नी मनोरमा से मिलने गया। भगवान गुरुदेव मनोरमा के भीतर से गुरुशक्ति तथा गुरुनिष्ठा का असाधारण दृष्टांत दिखा रहे हैं, जो कि दुर्लभ है। वर्तमान युग में न तो ऐसा देखा है न ही सुना है। मनोरंजन बाबू उद्यमी तथा प्रसिद्ध ब्राह्म-प्रचारक थे। ठाकुर से दीक्षा लेकर उनका वह उत्साह दिनों-दिन जाता रहा। अब शांत-एकांत में साधन भजन में ही समय गुजारते हैं। परिवार में पाँच-सात बच्चे स्त्री एवं स्वयं और भी दो-चार लोग हैं। कैसे इनका खर्च चलता है कौन जाने? मनोरंजन बाबू से सुना कि ठाकुर ने आदेश दिया-**भागलपुर चले जाओ। वहाँ रहकर कुछ काल रहो।** श्रीमती मनोरमा तुरंत भागलपुर जाने को प्रस्तुत हुई। इधर हाथ में रूपये-पैसे नहीं थे। रेलभाड़ा के लिए मनोरंजन बाबू चिंतित हुए। मनोरमा बोलीं-ठाकुर ने मुझे भागलपुर जाने को कहा है मैं तो जाऊँगी ही। हावड़ा स्टेशन जाकर गाड़ी छूटते तक प्रतीक्षा करूँगी। ठाकुर यदि रेलगाड़ी में जाने की व्यवस्था कर दें तो अच्छा नहीं तो रेल लाईन के किनारे-किनारे चलते रहेंगे। बच्चों को तुम साथ लेकर जा सको तो जाओगे, नहीं तो रहोगे।

सती मनोरमा दाता कालीकुमार की कन्या है। इन्होंने कभी झूठ नहीं बोला। उनके मन में मिथ्या संकल्प भी नहीं आता। वे निश्चित पैदल यात्रा करेंगी जानकर मनोरंजन बाबू बच्ची के हाथ का कड़ा गिरवी रखकर कुछ रुपये ले आये। कलकत्ते का वास समाप्त कर सबके साथ भागलपुर के लिए हावड़ा स्टेशन पहुँच गए। परंतु जितने रुपये थे उनसे माल और बच्चों सहित भागलपुर पहुँच पाना संभव न था। वे बड़े ही चिंतित हुए। ट्रेन छूटने ही वाली थी कि एक व्यक्ति ने आकर किसी संभ्रति व्यक्ति का नाम लिया और कहा कि

उन्होंने ये रुपए आपको कपड़े खरीदने के लिए दिए हैं। इन रुपयों की सहायता से वे भागलपुर आ पहुँचे। यहाँ आकर वे अपने पुराने परिचित ब्राह्म श्री वामनदासजी के घर ठहरे। अब नया मकान किराये पर लेकर रहते हैं। हाथ में रुपए-पैसे कुछ है नहीं। कैसे खाते-पीते हैं। अपरिचित स्थान में बाल-बच्चों के साथ हैं, इसकी कल्पना भी नहीं कर पाता। कभी आधा पेट कभी बिना आहार के भी दिन कटता है। सुना है एक दिन घर में कुछ खाने को न रहने पर बच्चे पेट पर हाथ फेरते हुए माँ से बोले-माँ बड़ी भूख लगी है। माँ ने शीघ्र ही गोसाईंजी के चित्र को दिखाकर कहा-'बेटे गोसाईंजी तुम्हें बहुत चाहते हैं। उन्हीं के पास खाने की माँग करो।' बच्चे भी अद्भुत हैं। माता-पिता की प्रकृति के अनुरूप ही। वे आपस में बोले-चलो गोसाईं को हम गाना सुनाएँ, उन्हें संकीर्तन बहुत पसंद हैं। वे ताली बजाकर गाने लगे। थोड़ी ही देर में द्वार पर दस्तक हुई। बाहर से कोई जोर से बोला-बाबूजी दरवाजा खोलिए। द्वार खोलकर देखा गया बोझा ढोने वाले काँवरों में भरकर घी, चावल, आटा, दाल, सब्जियाँ, मसाले आदि लाकर रख गये। यह सब किसने भेजा पूछने पर उन्होंने कहा-बाबूजी आ रहे है। परंतु काफी प्रतीक्षा करने के बाद भी कोई न आया। किन बाबूजी ने यह सब भेजा कुछ पता न चला। ऐसी घटनाएँ उनके यहाँ नित्य होने लगीं। मैं शीघ्र ढाका जाऊँगा। सुनकर मनोरमा देवी ने मुझसे कहा-'गोसाईंजी से कहियेगा। ये हमें जैसे रखें, संतुष्ट रहकर उनकी ही ओर दृष्टि रख सकूँ, उन्हें कभी न भूलूँ, बस इतना ही आशीर्वाद दें।' उनकी बातें सुनकर मैं अवाक् रह गया। गुरु के प्रति कितना विश्वास और निर्भरता रहे तो कोई बाल-बच्चों सहित इस दशा में निश्चिंत होकर रह सकता है। मैं

तो सोच भी नहीं सकता। इन लोगों के संग लाभ से धन्य हो गया।

आभिचारिक क्रिया के संकट उद्धार के लिए शांति हवन का संकल्प।

मेरे बहनोई मथुर बाबू परदेस से आकर मुझे घर में देखकर बड़े संतुष्ट हुए। उनके मुख से एक दुःखद घटना सुनकर बड़ा कष्ट हुआ। ये शिक्षा विभाग के उच्च पदस्थ कर्मचारी हैं। अत्यंत सरल विश्वासी और निष्कपट व्यक्ति हैं। बड़े परिवार और बच्चों की देखभाल के लिए उन्होंने एक आत्मीया महिला को घर पर लाकर रखा था। पहले तो वह स्त्री मेरी बहन का सम्मान करती थी। लेकिन बाद में उसके बिना घर नहीं चलता यह भाव दिखाकर बराबरी करने लगी। फिर विरोध भी करने लगी। उसने मेरी बहन को शीघ्र हटाना चाहा। वह सोचने लगी, मेरी बहन के न होने पर गृहस्थी की सर्वेसर्वा बन जायेगी। अतः चुपचाप उसने दक्ष अभिचारी द्वारा कुछ क्रियाएँ करके मेरी बहन के प्राण लेने का उपक्रम किया। इसके एक सप्ताह के भीतर ही बिना कारण रक्तस्राव से मेरी बहन की मृत्यु हो गई। अब बहन के पुत्र ने घर का सारा भार सम्भाल लिया है। अब उस स्त्री की कुछ नहीं चलती। अतएव वह भांजे को भी मार डालने का अनुष्ठान करा रही है। कुछ दिन हुए सुबह बाहर निकलने पर द्वार पर मथुर बाबू ने देखा एक घट में नारियल, आम की शाखा, सिंदूर से कुछ यंत्र तथा देवी मूर्ति अंकित रखी थी। कलश के सामने जला हुआ झाड़ू, मिट्टी के बर्तनों में राख, पान सुपारी बिखरे पड़े थे। यही दृश्य बहन की मृत्यु के पाँच सात दिन पूर्व भी देखा गया था। अतः सभी बड़े भयभीत हुए और मुझे दादा के पास से आने के लिए तार

भेजा। यह सब सुनकर क्या करना चाहिये, मैं सोचने लगा।

बस्ती में मेरे भांजे सुरेन्द्र ने भी पत्र में यह सब लिखा था। दादा के पास सुनकर तभी मैंने निश्चय किया था कि भागलपुर जाकर हवन, चण्डीपाठ द्वारा शांति स्वस्त्ययन करके संकट की शांति करूँगा। मथुर बाबू को निश्चिंत रहने को कहा। आगामी चतुर्दशी तिथि को हवन करने का निश्चय किया। गोबर से कमरा लीपपोत कर स्वच्छ करके यज्ञ कुण्ड बनाकर रखा। बरगद, बेल और पीपल की लकड़ियाँ भी काफी मात्रा में जुटाया गया। शुभ मुहूर्त के लिए साग्रह दिन गिनने लगा। मथुर बाबू की विपदा शांति के लिए मेरा संकल्पपूर्वक अनुष्ठान करना उचित होगा कि नहीं यह विचार मन में आने लगा। स्वयं के लिए संकल्पपूर्वक कार्य करने को ठाकुर निषेध करते हैं किन्तु आर्त जनों के संकट दूर करने के लिए शास्त्रोक्त विधि से कार्य करने में उत्साह ही देते हैं। संसार के अनेक लोग भगवान को भूले हुए हैं, ठाकुर के शरणागत हुए बिना उनका कल्याण कैसे होगा। शायद जीवोद्धार के लिए ही मंगलमय परमेश्वर उन्हें नाना प्रकार के संकट और विपत्ति में डालकर उन्हें स्मरण करने को बाध्य करते हैं। यदि धर्म और मोक्ष के लिए नहीं तो अर्थ और काम के लिए ही भगवान को क्यों न पुकारें। प्रार्थना ही करना है तो जिस वस्तु से हमें क्लेश हो उसी के लिए निवेदन करें तो ठाकुर का स्मरण तो कर पायेंगे। महापुरुष कहते हैं किसी भी भाव से भगवान का नाम करने से कल्याण होता है। चाहे श्रद्धा से हो या अश्रद्धा से। शास्त्रों में प्रमाण है कि शत्रुभाव से भी स्मरण करने पर जीव उद्धार पाता है। अब यह सच है कि संकल्पित कार्य सफल होने पर विपदग्रस्त व्यक्ति के मन में स्वतः श्रद्धा का उदय होगा।

स्वार्थ के लिए आश्रय लेकर भी जीव उनकी कृपा से परमार्थ लाभ करता है। अतएव मेरे किसी भी कार्य से यदि कोई मेरे ठाकुर के प्रति श्रद्धावान हो तो मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। इन विवेचनाओं से शांतिस्वस्त्ययन कार्य करूँगा-ऐसा निश्चय कर लिया।

सर्व विपदा की शांति हवन। अपराधी का हृदय काँपना।

आज प्रातः गंगा स्नान करके पूर्व के कमरे में प्रवेश किया। घर के सभी होम देखने हॉल में आकर बैठे। मैंने अपने आसन पर बैठकर एकाग्र चित्त से न्यास सम्पन्न किया। इसी बीच फूल, धूप, चंदन, तुलसी, नैवैद्य आदि पूजा की सामग्रियाँ आ गई। सहस्त्र त्रिदल बेल पत्र, श्वेत कनेर, सफेद राई, आहूति की सामग्री भी कुण्ड के सामने रख लिया। चण्डी पाठ के पूर्व मथुर बाबू से पूछा-किस संकल्प से होम चण्डी पाठ करूँ? वे बोले-मैंने तो किसी का बुरा नहीं किया। बिना दोष के जो मेरा सर्वनाश करने की चेष्टा कर रहा है। उसका ही सर्वनाश हो। मैंने कहा-ऐसा संकल्प में नहीं कर सकूँगा। केवल आत्मरक्षा के लिए, सर्वविपदा शांति के लिए संकल्प का कार्य कर सकता हूँ। मथुर बाबू इसी में राजी हुए। मैंने अर्गलास्तोत्र से लेकर सम्पूर्ण चण्डीपाठ आद्योपांत किया। बडे हवन कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित कर एकाग्र मन से ठाकुर का आह्वान करने लगा। फिर विधिपूर्वक गाय के घी में बेल पत्र डुबोकर मंत्रोपचार सहित अग्नि में सहस्त्र आहुतियाँ दीं। शांति हेतु श्वेत कनेर की भी एक सौ आठ आहुतियाँ दीं। पूर्णाहुति देकर शाम पाँच बजे आसन से उठा। चतुर्दशी तथा अमावस्या में ऐसी ही विधि से होम

व पाठ किया। आश्चर्य की बात है कि ऐसा करने पर इन दोनों दिन वह स्त्री घर पर टिक न सकी। पास ही हरदास बाबू के घर जाकर दिन भर रही और सबके पूछने पर कहने लगी-ब्रह्मचारी क्या कर रहे हैं और क्यों कर रहे हैं नहीं मालूम। इन कार्यों से मुझे डर सा लगता है मैं घर पर नहीं रह सकती। होम के धुएँ की सुगन्ध भी नहीं सह सकती। यह सब सुनकर मैं जान गया कि उसका संकट निकट है। अतः मुझे शीघ्र भागलपुर त्यागकर जाना चाहिए। मंगलमय ठाकुर तुम्हारी इच्छा की जय हो!

हवन का अचूक फल-अपराधी की अद्भुत् मृत्यु।

७ अग्रहायन सोमवार। शांति स्वस्त्ययन के बाद भागलपुर रहने की इच्छा न हुई। कलकत्ता पहुँचकर कुछ दिन गुरुभाईयों के साथ आनंदपूर्वक बिताया। भागलपुर से एक पत्र आया जिसमें लिखा था-मथुर बाबू के घर की वह स्त्री मर गई। दो दिन हैजा से पीड़ित और ज्वर से पीड़ित रही। एक दिन पारस में एक विशाल दीर्घाकृति कालपुरुष के भीषण रूप को देखा। जिसने कहा-मैं तुम्हें लेने आया हूँ। स्त्री 'मर गई' 'मर गई' कहकर चीखती हुई दौड़ी और बेहोश हो गई। इसके बाद भीषण दस्त और ज्वर की यंत्रणा भोगते हुए तीसरे दिन मर गई। खबर सुनकर मेरा हृदय काँप उठा। सोचा क्या मैं ही उसकी मृत्यु का कारण बना। कुछ अच्छा न लगा मैं अस्थिर हो गया।

ठाकुर के पास उपस्थिति।

११ अग्रहायन शुक्रवार। दिन ढलते गेण्डारिया पहुँचकर आम के पेड़

के नीचे ठाकुर का दर्शन किया और साष्टाँग प्रणाम किया। ठाकुर मुझे देखकर आनंदित हुए। थोड़ी देर विश्राम करके भण्डार से वस्तु लेकर पकाने को बोले। मैंने दक्षिण के कमरे में आसन लगाया। श्रीधर, श्यामाकांत पण्डित, योगजीवन, जगबन्धुजी, विधुघोष और अश्विनी आदि से मिलकर बड़ा आनंद आया। शाम को चावल में सब्जी उबालकर तृप्तिपूर्वक भोजन किया। संध्या को कुतुबुडी शंख ध्वनि कर मंदिर में आरती करने लगी। ठाकुर आरती दर्शन कर पूर्व के कमरे में आये। सब गुरुभाई मिलकर संकीर्तन आरंभ किए। मैं थकान के कारण अधिक देर योगदान न दे सका,अपने आसन पर विश्राम करने लगा।

आत्मरक्षा का प्रयास-इस मृत्यु से तुम्हारा क्या अपराध है? इंगित से स्पष्ट बात समझाना।

११ से १४ अग्रहायन। प्रातः बूढ़ी गंगा में स्नान तर्पण सम्पन्न करके मैं आसन पर आया। न्यास, प्राणायाम, हवन, चण्डीपाठ आदि समाप्त करके ठाकुर के पास बैठा। गत बीसवीं कार्तिक रासपूर्णिमा (चन्द्रग्रहण) के बाद ठाकुर ने मौन व्रत लिया। ठाकुर मौन क्यों हुए यह जानने की इच्छा हुई। ठाकुर ने जानकारी दी कि परमहंसजी के आदेश से वे मौन हुए हैं। उन्होंने छः माह मौन रखने को कहा है। सुनकर मन में कष्ट हुआ कि छः माह ठाकुर की बातें न सुनकर कैसे रह पाऊँगा? ठाकुर एक बजे तक पाठ करके शौचादि गए। मैं अपने आसन पर आया। ठाकुर के आहार के बाद लगभग ढाई बजे तक उनके पास बैठा। वे मुझे रोज अपने पास भागवत् पाठ करने को कहते हैं। लगभग दो घंटे तक भागवत् पाठ किया। उन्होंने इन कुछ

माहों में भागलपुर और बस्ती में कैसे रहा-सब कुछ जानना चाहा। मैंने भागलपुर की दुर्घटना का सविस्तार वर्णन किया। पूछा-कि उस स्त्री की मृत्यु का कारण क्या मैं ही हूँ। इसमें क्या मेरा अपराध हुआ? ठाकुर अस्फुट शब्दों में बोले-**तुम्हारा क्या अपराध है? तुम तो किसी के अहित या बुरे उद्देश्य से कुछ नहीं किये। आत्मरक्षा के लिए सर्वविपदा शांति संकल्प शास्त्रोक्त विधि अनुसार कार्य किया है। तुम्हारी क्रिया की अमोघ शक्ति को परास्त कर सके, अभिचारिक शक्ति में साध्य नहीं है। अतः वह पलटकर प्रयोगकारी पर पड़ी। इसमें तुम क्या कर सकते हो?**

ठाकुर ने मुझे दोनों हाथ की अनामिका उंगली में कुशा की अँगूठी पहनने को कहा। उपवीत धारण कर दाहिने हाथ पर बायाँ हाथ रखकर हवन करने को कहते हैं। आश्चर्य होकर देखता जा रहा हूँ। कि ठाकुर अपूर्व उपाय से, इशारे तथा कण्ठ व तालु से एक अस्पष्ट शब्द निकालकर उसी की सहायता से मन का जो भाव व्यक्त करते है-मैं उनकी कृपा से स्पष्ट समझ लेता हूँ। कभी हथेली, स्लेट या जमीन पर लिखकर भी प्रयोजन की बातें बताते हैं। प्रश्नों के उत्तर भी इसी प्रकार देते हैं।

अब की बार आकर ठाकुर की माता, हमारी दादीमाँ को अत्यंत कष्ट पाते देख रहा हूँ। रोज ही ज्वर आता है और रात भर खाँसती रहती हैं। रात भर गाली देती, चिल्लाती खाँसती और कभी गाना गाती और न जाने अपने मन में क्या-क्या बोलती रहती हैं। रात भर यह सब करती रहती हैं, लेकिन दिन को कहाँ रहती हैं और कैसी रहती हैं, जानना संभव नहीं हो पाता। कभी गेण्डारिया के वन में, कभी मुसलमानों के घर, तो कभी तालाब के किनारे चुपचाप बैठी

रहती हैं। कभी तो सारे दिन रात नहीं मिलती। ठाकुर के कमरे में योगजीवन रहता है। कभी-कभी श्रीधर धूनी तापने आ जाया करता है। ठाकुर माता को लेकर कैसे रात व्यतीत करते हैं, समझ नहीं पाता। खोज खबर लेनेवाला भी कोई नहीं है। ठाकुर ने अपने पास मुझे रहने को कहा। आहार के बाद रात दस बजे तक विश्राम करके मैं उनके कमरे में जाता हूँ और भोर होते तक उन्मादी दादीमाँ के मनमुताबिक आज्ञाओं का पालन करता जाता हूँ। रात भर धूनी जलाए रखना पड़ता है। ठाकुर रात बारह बजे और साढे तीन बजे मुँह हाथ धोने बाहर जाया करते हैं। इस समय एक व्यक्ति का उनके साथ रहना जरूरी होता है।

ठाकुर के सिर पर सर्पफण। विषधर का अमृत दान। सर्प को दादीमाँ की फटकार।

दादीमाँ ठाकुर के कमरे में ही रहने लगीं हैं। उनकी व्याधि और भी बढ़ गई है। उनके कुटीर में प्रवेश करते ही साँकल लगा देना पड़ता है। आज कलकत्ते से नानीमाँ भी आ गई हैं। जगबन्धुजी से उनकी कुछ कहासुनी हो गई जो रात साढ़े नौ बजे तक नहीं रुकी। कुंजघोष महाशय उनके घर से कुछ खाद्य पदार्थ ठाकुर के लिए ले आए। लेकिन संकेत द्वारा ठाकुर ने कहा-कि वे कुछ नहीं खाएंगे। हम लोगों ने अनुमान लगा लिया कि आश्रम में अशांति, विरोध के कारण ही वे आहार नहीं कर रहे हैं। गुरुभाई लोग आहार करके अपने-अपने आसन पर जाकर विश्राम करने लगे। ठाकुर ने मुझे भी बिस्तर लगाने की आज्ञा दी। रात लगभग दस बजे ठाकुर अचानक उठकर खड़े हुए। आसन कम्बल लेकर वे आम के पेड़ के नीचे गए

और धूनी जलाने को कहा। घर की धूनी लेकर मैं बाहर आया। ठाकुर कड़कती ठण्ड में बाहर आसन लगायेंगे यह सुनकर सभी गुरुभाई चिंतित हो उठे। वे सोचने लगे आश्रम में झगड़ा विवाद ही इसका कारण है। ठाकुर ने थोड़ी देर बाद सबको बुलाकर जानकारी दी और कहा-**आज दादीमाँ का जीवन संकट में है। श्यामसुंदरजी अभी कह गए। आज की रात टिक गईं तो कुछ दिन और रहेंगी। श्यामसुन्दरजी ने उन्हें माता के पास आम के पेड़ के नीचे रहने को कहा इसीलिए वे आ गए हैं।** योगजीवन विधुबाबू भी उनके पास रहना चाहते थे। लेकिन ठाकुर मना करते हुए बोले-**नहीं ब्रह्मचारी यहाँ रहेगा।** मैं अपना आसन लेकर ठाकुर के पास धूनी के किनारे बैठा और परमानंद से नाम करते हुए समय काटने लगा। रात लगभग बारह बजे ठाकुर ने आहार माँगा। जो कुछ था मैंने लाकर दिया। रात को दो बजे ठाकुर ने दादी माँ कैसी हैं, देख आने को कहा। आसन कुटीर में जाकर देखा दादीमाँ संज्ञाशून्य पड़ी हैं। काफी देर उनके हाथपैर दबाकर पुनः आसन पर लौटा। रात तीन बजे एक भयानक दृश्य देखकर मैं चौंक उठा। एक काला साँप ठाकुर के शरीर की बायीं ओर से चढ़कर उनके मस्तक पर फन फैलाए बैठा रहा। फिर चुपचाप दाहिने ओर से उतरकर चला गया। ठाकुर ने कहा-**ये आसन का जात सर्प है। सुविधा पाते ही आ जाते हैं। जटा से चढ़कर मस्तक पर फन फैलाए कुछ देर रहते फिर चले जाते हैं।** यह कहकर ठाकुर कमण्डल से जल पीने लगे।

मैंने टोका-यह जल पी रहे हैं? अभी सर्प ने मुँह मारा था। ठाकुर ने कहा-**सर्पराज ने कमण्डल के जल में अमृत दिया है। तुम थोड़ा पीकर देखोगे?**

यह कहकर उन्होंने मेरी हथेली पर थोड़ा सा जल डाल दिया। मैंने पीकर देखा मीठा नारियल सा पानी एवं सुगंधित जल। इसे पीते ही चित्त प्रफुल्लित होकर, सरसतापूर्वक नाम अपने आप चलने लगा।

ठाकुर ने कहा-**सर्प माँ के पास भी गया था। अब की बार माँ बच गई, संकट टल गया।**

मैंने पूछा-सर्प आपकी जटा पर फन फैलाए कई बार फुफकार मारता था ऐसा क्यों, यह क्यों आपके शरीर और सिर पर चढ़ता है?

ठाकुर-**जब सुषुम्ना में स्वभाविक प्राणायाम होता है तो एक प्रकार का सुन्दर शब्द निकलता है। सर्प यह ध्वनि सुनकर आनंदित होता है। घर में कहीं भी सर्प रहे, यह ध्वनि सुन लेता है और ध्वनि का अनुसरण करके शरीर, कन्धे माथे पर चढ़ बैठता है। नाक व कपाल पर स्थिर बैठकर यह ध्वनि सुनता है और कभी-कभी अपनी फुफकार की ध्वनि भी उसके साथ मिलाकर खुश होता है। महादेव के शरीर पर सर्प है, यह अस्वाभाविक नहीं। वैसी तीव्र साधना चले तो तुम लोगों के शरीर पर भी सर्प चढ़ सकता है। यह सर्प कभी किसी का अहित नहीं करता बल्कि इनके द्वारा सहायता ही मिलती है। ये फुफकार नहीं मारते सीटी सी बजाते हैं।**

मेरे प्रति ठाकुर की विशेष कृपा है जो मौन रहकर भी दो चार बातें उनके श्रीमुख से सुन पाता हैं। सर्प विषधर है, परंतु उसके मुख में अमृत! यह सामने न देखता तो शायद कभी विश्वास न कर पाता। जो स्वाभाविक है वह ज्ञान और अनुभव के अभाव में, अद्भुत्,

आश्चर्य तथा असंभव सा लगता है।

भोर को दादीमाँ ठाकुर से आकर बोली-तेरे आसन का सर्प रात को बड़ा तंग कर रहा था। बारबार पास आकर फुफकार मारता और फन फैलाए बैठे रहता था। चले जाने को कहती तो बात नहीं मानता था। फिर तो मैंने एक थप्पड़ जड़ दिया तब चला गया। दादीमाँ की बात सुनकर हैरान रह गया।

कोई गुरुनिष्ठा नष्ट करे, तो प्रतिविधान करना कर्तव्य है।

१७ अग्रहायन, १ दिसम्बर १८९२। श्री महेन्द्रमित्रजी ने बातों ही बातों में ठाकुर से कह दिया-'इस बार ब्रह्मचारी काशी मानिकतला की माताजी के साथ खूब झगड़ आया है।'

ठाकुर ने मुझसे पूछा-**झगड़ा कैसे और क्यों हुआ?**

मैंने संक्षेप में उत्तर दिया-माताजी की अवस्था असाधारण है। दिन रात समाधिमग्न रहती हैं। अनेक नए तत्त्वों की बातें बताती हैं। यह सब सुनकर उन्हें देखने का कौतुहल हुआ। मित्रों के साथ उनके दर्शन के लिए गया। जाकर सुना, वे समाधिमग्न हैं, लगभग एक घंटे बाद क्लेशसूचक आवाज निकालकर उन्होंने चैतन्य लाभ किया। बिना संवाद या परिचय के ही हमें पास बुलवा भेजीं। जाकर बैठते ही हमारे परिवार के बारे में नाना प्रकार के प्रश्न पूछती रहीं। दस पंद्रह मिनट के बाद मैंने तंग आकर कहा-आपसे यह सब कहने सुनने में नहीं आया हूँ। तब कुछ धर्मोपदेश देने लगीं। सर्वप्रथम बोलीं-यह धर्म की वेषभूषा त्याग दो। नीलकंठ वेश माला, तिलक, मैंने गुरु के आदेश से धारण किया है, कहने पर भी यह सब उतार

फेंकने को कहती रहीं। यह सब धर्म का वेश कुछ भी नहीं है, इससे उपकार नहीं बल्कि हानि होती है। अहंकार बढ़ता है आदि बार-बार कहने लगीं। गुरुप्रदत्त वस्तु की अवज्ञा देखकर मैं अधीर हो उठा और जो मुँह में आया कहने लगा। तब वे बोलीं-मैं तेरी माँ हूँ, पुत्र होकर ऐसा कहता है, मैंने कहा-मेरी माँ के समान होने में अभी आपको देर है। मुँह से पुत्र कहकर ही क्या माँ बना जा सकता है। वे बोलीं-तेरे गुरुजी 'बिजली' भी तो मुझे माँ कहते हैं। मैंने तो सियार, कुत्ते, बिल्ली को भी माँ कहते हैं और स्तुति करते हैं। परंतु हम तो उन्हें सियार, कुत्ते ही कहते हैं। इस प्रकार न जाने क्या-क्या कठोर बातें कह डाली। क्या करता? फिर अंत में वे बोलीं-मैं तो तेरी परीक्षा लेने के लिए ऐसा कह रही थी। मैंने कहा-आपका साहस कम नहीं है। सद्गुरुआश्रितजनों की परीक्षा लेने चली हैं। आपका साध्य ही क्या है, आपने जरा सोचा नहीं?

ठाकुर-**सबके पास विनयी होना चाहिए। सबको खूब श्रद्धा भक्ति किया करो। पर तुमने जो कहा यह सब सुनना भी माताजी के लिए प्रयोजनीय था। भगवान ही तुम्हारे मुख से यह सब कहलाए। कोई गुरुप्रदत्त वस्तु पर या साधन भजन पर अवज्ञा करे, तिलक माला लेकर छेड़छाड़ करे, गुरुनिष्ठा नष्ट करना चाहे तो वज्र की तरह कठोर होकर उसका प्रतिविधान करना चाहिए। अन्यथा अपना आचरण फूल जैसा कोमल रखो, यह ऋषि वाक्य है।**

श्रीधर की गुरुनिष्ठा। उसका अमानुषिक काण्ड।

ब्रह्मचारी को ताड़ना। कुत्ते का वमन भक्षण।

ठाकुर के पास कुछ देर रहकर अपने आसन के पास लौट आया। श्रीधर बोले-भाई ब्रह्मचारी, तुम तो माताजी से सभ्यतापूर्वक झगड़े। मैं तो गँवार खेतीहर ठहरा। गुस्सा आ गया तो सभ्य भाषा मुँह में नहीं आती। अब की बारोदी के ब्रह्मचारी को जली-कटी जो मन में आया सुना आया हूँ।

मैंने पूछा-क्यों क्या हुआ था?

श्रीधर बोले-अरे भाई इस बार न जाने किस बुरे क्षण में उनके पास गया था। सारा दिन मुहल्ले में घूमता हुआ शाम को ब्रह्मचारी के पास जाता था। वे मुझे बहुत प्यार करते थे। एक दिन बहुत से लोग बैठे थे, उनके सामने बोले-अरे इतने दिन गोसाईं के पास रहकर तूने क्या पाया? जो खुद अंधा है वह दूसरों को क्या राह दिखायेगा? अंधे गुरु का संग छोड़ दे। छह माह मेरे पास रह। तुझे मैं ब्रह्मज्ञान दूँगा। उर्ध्वरेता कर दूँगा। उस दिन पहले से ही मेरा दिमाग जरा गर्म था, उस पर यह सब बातें सुनकर तो आग ही लग गई। मैं सातवें आसमान पर चढ़ गया। मैं चुप न रह सका। कूदकर द्वार पर जा खड़ा हुआ और खूब चिल्ला-चिल्लाकर बोला-अरे साला ब्रह्मचारी! साले का बेटा साला ब्रह्मचारी! तू महात्मा है? मेरे गुरुको अंधा बोलता है? वे कुछ नहीं कर सकते और तुम मुझे ब्रह्मज्ञान दोगे। उर्ध्वरेता कर दोगे। अरे तेरे जैसे कितने ही ब्रह्मचारी मेरे एक बाल में लटक रहे हैं। ऐसा कहकर मैंने कपड़े कौपीन, सब उतारकर उन पर दे मारा। ब्रह्मचारी दौड़कर आये और मुझे सीने से लगा लिया। उन्होंने कहा-ठीक बोला! ठीक बोला! तेरी अवस्था देखकर

मुझे बड़ा ही आनंद आया। शांत हो जा। तभी एक कुत्ता ब्रह्मचारी के द्वार पर वमन कर रहा था। ब्रह्मचारी ने कहा-अच्छा तुझे तो ब्रह्मज्ञान हो गया है न? इसे खा ले भला। मैं वह खाने लगा। तब ब्रह्मचारी ने मुझे प्यार करते हुए, भजलेराम से कुछ अच्छी खाद्य वस्तुएँ लाने को कहा। वह उत्कृष्ट वस्तुएँ लेकर आया तो ब्रह्मचारी बोले-आ तू भी खा मैं भी खाऊँ, तुझे यथार्थ ब्रह्मज्ञान हुआ है, गुरुनिष्ठा उत्पन्न हो तो कुछ भी बाकी नहीं रह जाता।

मैने पूछा-भाई इस कुत्ते के वमन भक्षण की बात तो मैंने सुनी थी। पर यह तुमने खाया कैसे? श्रीधर बोले-अरे राम राम! उल्टी कोई खा सकता है। मैंने तो देखा वहाँ बढ़िया खीर और चिवड़ा रखा है और खाने में भी अपूर्व स्वाद पाया। क्या यह सब गोसाईं की कृपा बिना हो सकता है? श्रीधर के मुँह से यह सब सुन अवाक् रह गया। धन्य गुरुदेव! सर्वत्र तुम्हारे आश्रितजनों की जय जयकार हो।

ब्रह्मदैत्य का माला चुराना। आँगन में माला मिलना-बड़ा ही आश्चर्य।

२० से २५ अग्रहायन। अब गेण्डारिया आकर ठाकुर को दोपहर के शौच और स्नान के लिए कुएँ से जल मैं ही लाकर देता हूँ। आज स्नान का जल कुएँ से खींचने लगा। ठाकुर शौचालय गए थे। दो-तीन मिनटों बाद आकर मेरे हाथ में माला देकर बोले-**प्रवाल की माला खींच तानकर तोड़ डाला है।। कुछ दाने ले भी गया है।** मैंने पूछा-आपकी माला किसने तोड़ दी?

ठाकुर ऊपर की ओर हाथ दिखाकर क्या दिखाये मैं कुछ समझ न पाया। इशारे से बोले-**रुद्राक्ष की हाथ में बंधी माला भी**

एक बार ले लिया था। तब मैं समझ गया इस बार यह काम ब्रह्मदैत्य का है। मैंने सोचा-शायद जटा में उलझकर माला टूट गई होगी, तो ठाकुर ने अनुमान लगाया होगा कि ब्रह्मदैत्य ने तोड़ दिया। शायद शौचालय में ढूँढने पर बाकी माला मिल जाए। ठाकुर के शौच से निकलने पर मैंने पूछा-बाकी मालाएं शायद वहीं मिल जाएं, एक बार ढूँढकर देखूँ? ठाकुर ने कहा-**हाँ, हाँ देख सकते हो, एकाध मिल जाए, शेष तो वह ले ही गया है।** बहुत ढूँढने पर एक ही दाना मिल पाया। ठाकुर के आदेशानुसार वह सब मैंने नानीमाँ को दे दिया। कोई माँग न ले इसीलिए नानीमाँ ने उसे संदूक में बंद करके रख लिया।

आज चार-पाँच दिन हुए ठाकुर की माला ब्रह्मदैत्य ने तोड़ दी है। आज दोपहर के स्नान के बाद बारह बजे आँगन के बीच ठाकुर अपनी खड़ाऊँ से ठोककर कुछ इशारा किए-**यह स्थान है जहाँ ब्रह्मदैत्य माला रख गया है। खोदो तो मिल जाएगा।** मैं उस स्थान पर चिन्ह लगाकर खोदने के लिए तुरंत कुदाल लाने चला। ठाकुर अपने कमरे में चले गए।

ठाकुर की बात सुनकर सभी को उत्सुकता हुई। मैंने जमीन खोदना शुरू किया। काफी कठोर जमीन कुछ मिनटों तक खोदता रहा। करीब आठ-नौ इंच खुदाई के बाद देखा सारे प्रवाल के दाने इकट्ठे रखे हैं। जहाँ दाने मिले वहाँ की जमीन भी अत्यंत कठोर थी। नानीमाँ को दिये दाने भी देखना चाहा। वे भी यथावत् संदूक में रखे हुए थे। आश्चर्य की बात है, चार कमरों के बीच खुला आँगन, जिसपर दिनभर लोगों का आना-जाना लगा रहता है इतनी कठोर जमीन के काफी नीचे माला कैसे आई, कुछ भी समझ नहीं पाया।

अविश्वासी मन है। ठाकुर से मैंने कुछ नहीं पूछा। यह सब देख सुनकर ठाकुर पर रत्तीभर भी विश्वास बढ़ गया हो ऐसी बात नहीं। विश्वास, प्रत्यक्ष देखने पर भी निर्भर नहीं है। जमीन से निकाले गए प्रवाल के दाने भी नानीमाँ को दे आया, सिर्फ पाँच प्रवाल रुद्राक्ष के बीच गूँथकर धारण करने के लिए अपने पास रखा। ठाकुर ने बताया कि वे अब प्रवाल धारण नहीं करेंगे।

स्वप्न-ठाकुर की गोद में नीला कौआ। शक्ति संचार से अवस्था। पाद स्पर्श से देह अमृतमय।

२७ अग्रहायन रविवार। आज श्रीमद्भागवत् पाठ के बाद ठाकुर मुझसे अस्पष्ट स्वर में पूछे-**तुम तो प्रायः अच्छे-अच्छे स्वप्न देखा करते हो। यहाँ से जाने के बाद कुछ देखा है?**

मैंने कहा-कुछ एक सुन्दर स्वप्न देखा है। बस्ती में एक दिन देखा-कई स्थान घूमकर गेण्डारिया पहुँचा। एक साधु ने कहा-भाई ऐसी बुद्धि क्यों हुई? वृथा क्यों काशी-वृन्दावन भटकते हो, गेण्डारिया में रहो। जहाँ गुरु हैं वहाँ सारे तीर्थ हैं। मैंने कहा-केवल अनुमान करके तृप्त नहीं रह सकता, प्रत्यक्ष जानना आवश्यक है। सभी तीर्थों का स्थान महत्व तो है। गेण्डारिया में वैसा कुछ है? मेरे ठाकुर सर्वशक्तिमान, सद्गुरुभगवान हैं-यह तो केवल अनुमान से कहता हूँ। प्रत्यक्ष प्रमाण तो कुछ नहीं पाता। उन्होंने कहा-अच्छा तुम भूमि की ओर देखते हुए अपने ठाकुर के पास जाओ तो सही। मैंने उनके कहे अनुसार जमीन पर दृष्टि रखकर जाना शुरु किया। देखा नीली ज्योति के अत्यंत स्वच्छ सुन्दर बुलबुले जमीन में सर्वत्र फैले हैं। असंख्य तारों की भाँति ज्योतिर्बिन्दु भूमि से उभरकर,

नीली ज्योति विकीर्ण करते हुए विलीन हो रहे हैं। यह सब देख गेण्डारिया सभी तीर्थों से श्रेष्ठ लगने लगा। आपके पास जाकर देखा आप कमरे में ध्यानमग्न हैं। मैं आपके पास आसन पर बैठा। आप सिर उठाकर सस्नेह दृष्टि से मुझे ताकने लगे। तभी एक कौआ उड़कर आपके पास जा बैठा। आपने उसे सीने से लगा लिया। यह कौआ देखते ही देखते उज्ज्वल नीलवर्ण का हो गया। आप उसे गोद में लेकर पीछे फूँक मारते ही आपके अंदर के भाव तथा अवस्थाएँ कौए में संचारित होने लगीं। उन्हें कौआ सुमधुर स्वर में प्रकट करने लगा। तब उसे गोद से उतारकर आपने कहा-**अब ठीक हो गया है, अब जहाँ चाहे चले जाओ।** वह पक्षी दो-तीन फुट दूर जाकर ही आपकी ओर ताकने लगा। आपने मुझसे कहा-**एक बड़ा अखबार बेड़े में टाँग दो।** मैंने एक बड़ा अखबार बेड़े में लगा दिया। तब आप उस कागज को दिखाकर से बोले-**वह देख ब्रह्मा! वह देख विष्णु! वह देख शिव! वह देख काली! वह देख दुर्गा!** असंख्य देवी-देवताओं का नाम करते गए और उन सबके दर्शन कर पक्षी आनंद से नाचने लगा। उस अपूर्व नृत्य को देखते हुए मेरी नींद खुल गई। जागकर भी मैं सोया हूँ या जागृत, कुछ जान नहीं पा रहा था। सारे दिन स्वप्न का यह दृश्य आँखों में झूलता रहा। स्वप्न सुनकर ठाकुर सिर हिलाकर सहमतिपूर्वक हँसने लगे। फिर बोले-**बड़ा अच्छा स्वप्न है, लिखकर रखना।**

दूसरा स्वप्न-गुरुभाईयों ने आपके साथ संकीर्तन शुरु किया। सैकड़ों मृदंग करताल एक साथ बज उठे। हजारों लोगों के कीर्तन और हुंकार से चारों दिशाएँ काँपने लगीं। आप कीर्तन के बीच में भावोन्मत्त होकर दौड़ने लगे। यह देखकर सभी किंकर्तव्यविमूढ से

हो गए। पहले आपको पकड़ते हुए कई गुरुभाई गिर पड़े। मैं शुष्क काष्ठ की भाँति नीरस संकीर्तन के बाहर खड़ा रहा। अपनी दुर्दशा पर दुःखी होता रहा। सबको महाभाव में विह्वल देखकर अपने को धिक्कारने लगा। मुझसे घृणित और जघन्य कोई नहीं ऐसा सोचकर रोने लगा। निरुपाय होकर मैं-निताई! कहाँ हो पतित पावन निताई! कहकर व्याकुल होकर पुकारने लगा। यह ध्वनि आपके कानों तक पहुँची और आप दौड़कर आये। मुझे पकड़कर दोनों हाथों से ऊपर उठाकर जोर से जमीन में पटक दिया। मेरी हड्डी पसली टूट गई। आप उच्च हरिध्वनि करते हुए, उस चूर्ण-विचूर्ण देह पर चढ़कर नृत्य करने लगे। आप एक बार बाएँ तथा एक बार दाहिने पैर पर भार डालकर मेरे सर्वांग को रौंदने लगे। मेरे रोम-रोम से सफेद साबुन के फेन के समान रस पिचककर निकलने लगा। आप उसे अमृत कहकर चारों ओर छिडकने लगे। तभी चारों ओर आनंद का क्रंदन होने लगा। यही ध्वनि सुनकर मैं जाग पड़ा। यह स्वप्न सुनकर ठाकुर सिर झुकाए सिसक-सिसककर रोने लगे। वही स्मृति हृदय में बनाए रखने के लिए यह स्वप्न लिख लिया।

तृतीय स्वप्न-तीन-चार दिन हुए देखा, गुरुभाई लोग कमरे में आये हैं। आपके साथ रात बिताने के लिए वे अपने-अपने आसन पर जा बैठे। स्थान का अभाव देखकर कहाँ बैठें सोचते हुए मैंने आपको साष्टांग प्रणाम किया। आप मेरे सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद देते हुए बोले-'तुम्हारा स्थान मेरे पैरों के नीचे है। किसी की बात सुनकर कभी भी तुम यह स्थान छोड़कर कहीं मत जाना।' तभी दादीमाँ के काम से आपने मुझे ताली बजाकर जगा दिया। यह स्वप्न क्या सच है, इसका क्या तात्पर्य है।? ठाकुर इशारे से बोले-

यह सब कहना नहीं चाहिये। लिखकर रख देना चाहिये। बाद में समझोगे। कुछ स्वप्न ठाकुर से और भी कह सुनाया। उन्हें यहाँ व्यक्त करने की इच्छा नहीं है।

दादी माँ की सेवा।

दादीमाँ को लेकर हम बड़े संकट में पड़े हैं। दिनोंदिन उनकी उन्मत्तता बढ़ रही है लगा रहता है। रात भर खाँसती रहती हैं। सारे बदन और गाँठों में दर्द है। सेवा करनेवाला भी कोई नहीं है। परिवार या मुहल्ले का कोई पास नहीं फटकता। योगजीवन कभी सेवा नहीं कर पाता भाग खड़ा होता है। श्रीधर भी वातज्वर से अक्सर पीड़ित रहता है। ठाकुर मौन रहकर रातभर दादी का उत्पात, अत्याचार कैसे सहते हैं, कौन जाने? ठाकुर ने कृपा करके कुछ दिनों से मुझपर सेवा का भार सौंपा है। शाम को दो घंटे विश्राम करके ठाकुर के कमरे में आसन लेकर आ जाता हूँ। ठाकुर की कृपा से सारी रात उनकी सेवा प्रफुल्लचित्त से करता हूँ। रात नौ बजे के बाद से उनका ज्वर खाँसी तथा दर्द बढ़ता जाता है। लगभग सारी रात पुराना घी शरीर और पैरों में मालिश करना पड़ता है। दादीमाँ कभी चिल्लाती, कभी गालियाँ देती तो कभी गाती हुई, रात बिताती हैं। रात भर धूनी जलाकर सेंक देना पड़ता है। अदरक का रस, शहद भी रात को तीन-चार बार देना पड़ता है। वायु का प्रकोप बढ़ने पर हर घंटे में कितने ही मर्जी माफिक आज्ञा देती रहती हैं। तुरंत पालन न करो तो बस चौदह पीढ़ी को बखान देंगी। इस समय निरुपाय देखकर मैं भाग जाता हूँ और बरामदे में कुछ देर बैठा रहता हूँ। पीला कफ सारे कमरे में थूकती हैं। जिसे रात को दो-तीन

बार साफ करना पड़ता है। रात बीतते ही सुबह कहती हैं-'जा खाना बनाने जा' और मुझे हँकाल देती हैं। सूर्योदय होते ही उनके लिए गर्मदाल, भात, सब्जी तैयार करके लाना पड़ता है। भोजन दो-तीन लोगों के लायक न हो तो खैर नहीं। पसंद का खाना न बना तो भी कहेंगी-'यह क्या तेरे बाप का सिर पकाया है,' कहकर खूब गाली देतीं। सुबह होते ही आहार करने बैठेंगी तब मुहल्ले की कुछ औरतें भी आ बैठेंगी। दादीमाँ उन्हें प्रसाद देती हैं। ठण्ड में गर्मागर्म प्रसाद पाकर वे भी खुश होती हैं। भोजन समाप्त होने तक मैं हिल नहीं पाता। मेरे ठाकुर ही दादीमाँ के देह में रहकर मेरी सेवा ले रहे हैं। यह भाव नियत रहता तभी मैं स्थिर रहकर यह सब कर पाता हूँ। ठाकुर भी, 'मेरा यह भाव सत्य है, यह स्पष्ट समझा देते हैं।' ठाकुर की कृपा प्रत्यक्ष पाकर सेवा में मेरा उत्साह नित्यप्रति बढ़ रहा है। मैं दिन के अंत में एक बार एक साथ सब पकाकर खाता हूँ। इस कारण दादीमाँ मुझपर रुष्ट होकर कहती हैं-'तू जैसा भरपेट नहीं खाता, अच्छी चीजें कभी नहीं खाता, महाप्राणी को कष्ट देता है, मृत्युकाल में महाप्राणी तेरे मुँह में लात मारकर चला जाएगा। ब्राह्मण का बेटा दिनभर उपवास ही रहता है, इससे मेरे बेटे का अशुभ होगा। जा, भाग जा आश्रम से।' दादीमाँ की ऐसी गाली मुझे मीठी लगती। कभी तो सिर पर हाथ फेरकर खूब आशीर्वाद देतीं।

नानीमाँ का दादीमाँ से अपूर्व झगड़ा-पुनः प्यार भी।

मानो दादीमाँ और नानीमाँ में तो साँप और नेवले का संबंध है। नानीमाँ को देखते ही दादीमाँ कोई न कोई कारण लेकर झगड़

पड़तीं, कहतीं-'लड़की तो मर गई है, अब यहाँ क्यों रहती हो? अब सास दामाद से क्या संबंध रह गया है? तुमको अब यहाँ गृहस्थी सम्भालने की जरूरत नहीं। मैं अपने बेटे का फिर से ब्याह दूँगी।' नानीमाँ के कामकाज में इस कमरे से उस कमरे में आते-जाते समय दादीमाँ उनसे यह सब कहती रहती। जब झगड़ा जम ही जाता और वे नानीमाँ के पास कमजोर पड़ जातीं, तब दूर जाकर कान में अँगुली डालकर आँखें मूँदकर बैठ जाती। नानीमाँ चुप हुई कि फिर दो चार बातें सुना देतीं। नानीमाँ फिर चिढ़ जातीं। परंतु आश्चर्य की बात है कि नानीमाँ के भोजन के पूर्व दादीमाँ आश्रम से बाहर निकलकर, मुहल्ले से खीर, मिठाई, दही, केला आदि लाकर प्यार से उन्हें देकर कहतीं-'समधिन झगड़े के समय झगड़ा पर खाने के समय नहीं। यह लो यह सब अच्छी तरह खा लो। आहा! तुम्हारा दुःख कौन समझेगा? सबके होते भी तुम्हारा कोई नहीं। मैं तो पागल हूँ, मेरी बातों का बुरा मत मानना'-आदि कई बातें कहतीं।

नीलकंठ वेश की मर्यादा।

आज दस बजे नित्य कृत्यादि सम्पन्न कर घर से बाहर निकला तो दादीमाँ मुझे देखकर जल भुन गई। गुस्से में एक झाड़ू हाथ में लेकर बोलीं-'पुत्र होकर बाप का रूप लिया है। दुर्गा तेरे पीछे चलती हैं। दूर हो जा, भाग जा, आश्रम से निकल जा, तुझे मैं झाड़ू मारकर भगाऊँगी।' उन्हें आता देख मैंने निरुपाय होकर दौड़ लगाया। इस-उसके घर भागकर दादीमाँ से बच पाया। दोपहर को ठाकुर से मैंने पूछा-दादीमाँ ने आज मुझे भगाते हुए कहा-'बेटा होकर बाप का रूप लिया, दुर्गा पीछे चलती हैं तो यह क्या उनका पागलपन था?'

ठाकुर-**माँ ठीक ही कहती हैं, भगवती तुम्हारे पीछे-पीछे चलती हैं।**

मैंने कहा-क्यों कोई गलती होगी तो मेरी गरदन मरोड़ देंगी, इसलिए?

ठाकुर-**नहीं, नीलकंठ वेश की मर्यादा देने के लिए।**

ठाकुर की बातें सुनकर मैं रो पड़ा। माता को स्मरण कर बारंबार प्रणाम किया। ऋषि-मुनि-वंदिता, सर्वशक्ति की नियंता, भगवती योगमाया दया करके इस दुराचारी के पीछे पीछे चलती हैं! यह सोचते हुए मेरी क्या दशा हुई मैं बता नहीं सकता। माँ का अपूर्व चरित्र चण्डी पाठ-छोड़कर माँ को स्मरण भी नहीं करता, तो भी माँ कितनी दयामयी हैं।

दादीमाँ के उत्पातों की आलोचना सुनकर भी दादीमाँ स्थिर रहती हैं। फिर अपने को बताकर खुद को गाली देने लगती हैं। यह सब सुनकर मैं अवाक् रह जाता हूँ कि निन्दा प्रशंसा हृदय को स्पर्श भी नहीं करता। इस अवस्था की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पागलपन को छोड़, दादीमाँ की प्रकृति अत्यंत दुर्लभ है। महाअपराधी के कष्ट देखकर भी वे दुःखी हो जाती हैं। अपूर्व सहानुभुति उनके जीवन की विशिष्टता है।

विविध चक्रदर्शन, उनमें ज्योतिर्मय त्रिभंगाकृति। शालग्राम-पूजा का आदेश।

कुछ दिन हुए ठाकुर आहार करके आम्र वृक्ष के नीचे बैठते हैं। मैं सामने धूनी जला देता हूँ। लगभग साढ़े चार बजे तक एकान्त में ही रहते हैं। एक घन्टा श्रीमद्भागवत् पाठ करता हूँ फिर स्वाभाविक

प्राणायाम सहित नाम जप करने में बड़ा आनंद आता है। कुछ दिनों से नाम करते समय विविध चक्रों के दर्शन हो रहे हैं। ये चक्र या यंत्र शुभ्र विद्युत आलोक की भाँति चौकोन, षटकोण, अष्टकोण तथा द्वादशकोण भी दिखाई देते हैं। इन सबके बीच एक प्रकार की अद्भुत ज्योति कुछ पल के लिए विकसित होकर पुनः विलीन हो जाती है। शायद उनके केन्द्र स्थल पर दृष्टि स्थिर हो तो यह चंचल, अस्पष्ट ज्योति भी स्वरूप लेकर, निश्चल होगी। ठाकुर ने कहा है-**प्रत्येक चक्र के बीच उसके अधिष्ठात्री देवी-देवता अवस्थान करते हैं।** इस ज्योति से भी देवी देवता प्रकट होंगे, ऐसा मुझे लगने लगा। यह अनजाने, अनसुने, अनदेखे वस्तु अचानक ही प्रकट हो रहे हैं, तो फिर अनुसंधान की क्या आवश्यकता? ठाकुर की कृपा से जो होना है होगा।

नाम करते करते दृष्टि पड़ी तो देखा ठाकुर के मस्तक के ऊपर शून्य में नीलाभ कृष्ण चक्र वेष्ठित अनुपम ॐकारमूर्ति। उसके आदि, मध्य और अंत में ज्योति इतनी ही उज्ज्वल है कि उसकी छटा से तिर्यक रूप से संयुक्त हो, एक त्रिभंग आकृति धारण किये है। देखते-देखते वह आकाश में विलीन हो गया। फिर देखना चाहा, परंतु ठाकुर को देखने पर वह इच्छा न रह गई। ठाकुर से पूछा-मैंने यह क्या देखा? ऐसा दर्शन क्यों हुआ?

ठाकुर अस्पष्ट स्वर में बोले-**तुम शालग्राम पूजा करो। विशेष उपकार पाओगे।**

मैं सुनकर अवाक् रह गया। सोचा-अब एक और नया काम बढ़ गया। ठाकुर से पूछा-शालग्राम पूजा करने को तो कह रहे हैं। मैं वह कैसे करूँगा।

ठाकुर-**शास्त्र व्यवस्था के अनुसार पूजा करो।**

मैंने कहा-भगवान के द्विभुज, मुरलीधर, चतुर्भुज, अष्टभुज किसी भी रूप को सोच नहीं पाता और न तो उन पर मेरा आकर्षण ही है। मैं भगवान का जो रूप प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। उन्हीं का शालग्राम या किसी भी स्थान पर ध्यान करूँगा।

ठाकुर-**तुम वैसा ही करना।** मुझसे ठाकुर ने भागवत् के एकादश स्कन्ध के तृतीय अध्याय के अंतिम कुछ श्लोक पढ़ने को बोले। चौबीस तत्त्व के न्यास के बाद शालग्राम की पूजा-विधि भी मुझे समझाई। श्लोकों का अनुवाद इस प्रकार है-

(४७) जो व्यक्ति सहसा हृदयग्रन्थि छेदन करने की अभिलाषा रखता है, वह वेद विधान सहित तंत्रोक्त विधि समन्वय कर तद्नुसार केशव परिचर्या करे।

(४८) आचार्य का अनुग्रह पाकर, उनसे आगम अर्थ अवगत होकर, स्वयं के अभिमत के अनुसार महापुरुषों की मूर्ति विशेष की अर्चना करे।

(४९) शुद्ध चित्त से मूर्ति विशेष के सामने बैठकर प्राणायाम तथा भूत शुद्धि द्वारा देह का संशोधन कर, न्यास आदि द्वारा रक्षा विधान करके हरि की अर्चना करे।

(५०) अर्चना के पहले यथालब्ध उपचारों के साथ यंत्रादि शोधन द्वारा, पुष्पादि द्रव्य-सम्मार्जनादि द्वारा भूमि-अव्यग्रता द्वारा आत्मा, अनुलेपन द्वारा निजदेह को अर्चना कार्य के योग्य बनाकर आसन पर जल प्रेक्षण करे।

(५१) पाद्यादि कल्पनापूर्वक सम्मुख स्थापन करके, समाहित चित्त से अंगन्यास, करन्यास करके मूलमंत्र योग से अर्चना करे।

(५२) सांगोपांग व पार्षद सहित अभिमत उस मूर्ति को अपने मंत्र द्वारा पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान वस्त्राभूषण-

(५३) गन्ध, माला, दूर्वा, पुष्प, धूप, दीप तथा नाना उपहार देकर पूजा कर विधिवत स्तवन कर हरि को नमस्कार करे।

(५४) अपने आपको तन्मयतापूर्वक ध्यान करके हरि की मूर्ति की पूजा करे। फिर मस्तक पर निर्माल्य सत्कारपूर्वक देवता की मूर्ति की पूजा समापन करे।

(५५) जो व्यक्ति इस प्रकार तांत्रिक कर्मयोग अनुसार अग्नि, सूर्य, जल, अतिथि अथवा अपने हृदय में आत्मभाव से ईश्वर की अर्चना करे, वह शीघ्र ही मुक्ति लाभ करता है।

तापने के लिए धूनी नहीं होती। धूनी निर्वाण।

३-४ पौष। ठाकुर रात तीन बजे बाहर जाते हैं। धूनी के पास घड़े में जल रखता हूँ जो गर्म हो जाता है। वही गर्म जल ठाकुर को मुँह हाथ धोने के लिए देता हूँ। आज दादीमाँ की अस्वस्थता बढ़ गई। सीने में दर्द और शिथिलता भी बढ़ गई। मैं धूनी के पास सो रहा था। श्रीधर भी पास आ बैठे। रात तीन बजे ठाकुर उठे। मैंने सोए हुए अवस्था में ही ठाकुर की खड़ाऊँ आसन के पास रख दिया। श्रीधर को घड़े से लोटे में पानी निकालकर देने को कहा। पर श्रीधर ने ध्यान नहीं दिया। ठाकुर भी इंगित से जल माँग रहे थे। श्रीधर ने थोड़ा सा जल लोटे में दिया और धूनी तापने लगा। ठाकुर जल न पाते तक खडे रहे। श्रीधर का दिमाग गर्म रहता है। परंतु मुझसे ठाकुर के काम में इस प्रकार अवहेलना न सही गई। श्रीधर से असंतुष्ट होकर मैंने कहा-हटकर भजन करो, धूनी तापो। यह सब

फालतू काम तुम्हारे लिए नहीं है। ठाकुर को जल भरा लोटा देते ही उन्होंने धूनी में उसे उड़ेल दिया। धूनी बुझ गई। मैंने फिर से पानी दिया तब ठाकुर बाहर गए। मेरा मन दुःखी हो गया। मैंने सोचा श्रीधर पर नाराज होने का आचरण देखकर ठाकुर दुःखी हुए होंगे। तभी उन्होंने धूनी में पानी डाल दिया। ठाकुर कमरे में आकर बोले- **उस समय एक महात्मा मेरे पास खड़े थे। उन्होंने कहा-यहाँ धूनी तापने के लिए नहीं रखना चाहिए, धूनी बुझा दो।** यह सुनकर मैंने धूनी में पानी डाल दिया था। पहले भी एक बार कहा था पर मेरे ध्यान से उतर गया। अभी इस धूनी कुण्ड को तोड़ डालो। ठाकुर की बात सुनकर तभी धूनी कुण्ड को तोड़ डाला गया।

धूनी साधन बड़ा ही उत्कृष्ट-चिमटा, कमंडल, त्रिशूल धारण का अधिकार।

दोपहर को दूसरे दिनों की भाँति ठाकुर के आसन के सामने आम के पेड़ के नीचे धूनी जलाकर रखा था। भागवत् पाठ के बाद ठाकुर से पूछा-साधु संत आसन के सामने धूनी क्यों रखते हैं? मैं सोचता था ठण्ड से बचने के लिए या गांजा चरस पीने के लिए रखते होंगे। कल रात को आपकी बात सुनकर लगा कि धूनी रखने का कोई और भी तात्पर्य है। साधुगण धूनी क्यों रखते हैं?

ठाकुर कुछ अस्पष्ट स्वर में या कभी लिखकर बोले-**धूनी का साधन है। अग्नि ईष्टनाम है, यह ध्यान रखकर काम क्रोधादि ईंधन की आहूति देते हैं। धूनी की अग्नि की ओर दृष्टि रखकर खूब तेज सहित नाम जप करते और इच्छा शक्ति द्वारा अग्नि की तेजी बढ़ाते रहते हैं। कुन्दों को वे काम, क्रोध की कल्पना**

करके नाम की अग्नि में जलाने की कल्पना करते हैं। एक कुन्दा भस्म न हो जाए तब तक आसन नहीं त्यागते, अविराम नाम जप करते रहते हैं। एक-एक कुन्दे को जला डालने पर उनके आनन्द की सीमा नहीं रह जाती। प्रतिस्पर्धापूर्वक एक दूसरे को हमने दो मन का कुन्दा फूँक दिया, हमने तीन मन भस्म कर दिए, इस प्रकार कहते हैं। धूनी केवल आग तापने के लिए नहीं, धूनी की साधना बड़ी उत्कृष्ट है।

मैंने पूछा-साधु जो चिमटा, कमण्डल, त्रिशूल आदि धारण करते हैं क्या उनकी भी साधना है? धूनी को झाड़ने के लिए चिमटा, वन्य जन्तुओं को भगाने के लिए त्रिशूल और जल पीने के लिए कमण्डल रखते हैं-मैं ऐसा ही सोचता हूँ।

ठाकुर-**साधुओं को यह सब एक-एक परीक्षा उत्तीर्ण करके ग्रहण करना पड़ता है। जिह्वा संयत होने पर चिमटा धारण का अधिकार होता है। चिमटा धारण करने के पहले वाक् संयम करना पड़ता है। कमण्डल धारण करने का भी अधिकार है। उसमें निर्मल ठण्डा जल सामने रखकर साधक उसकी शीतलता, स्थिरता तथा साम्य भाव के साथ मन का योग रखकर भगवान का नाम करते हैं। उनका अन्तःकरण सदा शीतल रहेगा, किसी प्रकार उत्तप्त न होगा। चित्त सदा अविकृत तथा साम्य भाव पूर्ण रहेगा। सत्त्व, रज, तम-ये तीनों गुण जिनके वश में हो वे ही त्रिशूल धारण के यथार्थ अधिकारी हैं।**

स्वप्न-ठाकुर की कटी जटा लेकर रुदन।

रात को दादीमाँ की अस्वस्थता और बढ़ने लगी। दो बार शौच

ले गया। पुराना घी भी बहुत देर तक मालिश करते रहा। मेरा शरीर थक गया। दादीमाँ के सेंक के लिए कमरे में आग रखी जाती थी। उसे सामने रखकर ठाकुर के चरणों के पास सो गया। ठाकुर मुझे छाती से लगाये हुए हैं ऐसा अनुभव करते हुए सोया रहा। रात तीन बजे रोता हुआ जाग पड़ा। क्या स्वप्न देखा ठाकुर ने पूछा। मैंने कहा-संध्या के कुछ पूर्व इस कक्ष में प्रवेश कर देखा कमरे में कोई नहीं है। आपने केवल तीन जटा की लटें रखकर बाकी जटाएँ काट डालीं। मैं रोज उनकी पूजा करूँगा सोचकर उठा लाया। उसी समय कुंज घोष ने भी आकर एक जटा माँगी। मैंने उसे एक जटा दी। जटा का स्पर्श करते ही हमें न जाने क्या हुआ खूब जोर से रोना आ गया। एक दूसरे को लिपटकर नाचते हुए कभी भीतर कभी बाहर आने जाने लगे। और मुझे क्या हुआ कौन जाने-गौरांग कहते नेत्र बहते हैं-यह गाने लगा। इसी समय आपने ताली बजाकर मुझे जगाया। ठाकुर यह सब सुनकर थोड़ा हँसे। परंतु कुछ नहीं बोले।

ग्वालिन का दही देना। आकांक्षा पूर्ण होने लगे तो ही सर्वनाश है।

न्यास करने के बाद ठाकुर के आदेशानुसार मैं होमाग्नि में पूजा करता हूँ। पूजा के उपकरण संग्रह करने और विधिवत पूजा करने में बड़ा आनंद पाता हूँ। आज अच्छा सा एक बेल मिला। पना बनाकर ठाकुर को भोग लगाने की इच्छा हुई। दही डालकर पना बनाने से ठाकुर पसंद करते हैं। परंतु मठा मिलेगा कहाँ से? यह सोचने लगा। थोड़ी ही देर में एक ग्वालिन ने आवाज लगाई-'दही लो।' मैंने जाकर पूछा-मही है? उसने कहा-कितना चाहिए? मैंने कहा-आधा सेर।

लेकिन बर्तन लाते हुए सोचा-पैसे तो है नहीं, उससे जाकर बोला-पैसे नहीं है रहने दो नहीं लूँगा। ग्वालिन चली गई। थोड़ी ही देर में लौटकर आकर बोली-गोसाईं पात्र दो। मैं आपसे पैसे नहीं लूँगी। जितना चाहे दही ले लीजिए। मेरे संकोच करने पर बोली-आप दही न लेंगे तो मैं यही सब फेंक दूँगी। बाध्य होकर बर्तन लाया। डेढ़ सेर दही देकर ग्वालिन संतुष्ट होकर चली गई। मैंने सोचा-ज्यों ही मेरे मन में हुई ठाकुर ने मठा जुटा दिया। ठाकुर की कृपा के दान को ठुकराने पर मैं अपराधी होऊँगा। अतः इसे साग्रह लेना चाहिए। मैंने बहुत सा बेल का पना बनाकर भोग लगाया। सभी प्रसाद पाकर तृप्त हुए।

ठाकुर ने कहा था-**ब्रह्मचारी प्रार्थना करते ही वह मंजूर होगी! सावधान!** तब से मैं अच्छी बुरी कोई भी प्रार्थना नहीं करता। अब देखता हूँ मन में कोई आकांक्षा उठे तो ठाकुर तुरंत पूरी कर देते हैं। प्रार्थना करूँ या नहीं इसकी प्रतीक्षा भी नहीं करते। इससे एक ओर आनंद भी आता है। दूसरी ओर उद्वेग भी हो रहा है। मन तो बहिर्मुख है। नित्य नूतन वस्तु पाने में आनंद पाता है। ठाकुर मुझे यह आनंद देने में मनचाही वस्तु जुटाते रहे, तो सर्वनाश होने में देर क्या? परमार्थ को भूलकर दिनोंदिन विषय में लिप्त होता जाऊँगा। मंगलमय ठाकुर! तुम क्या करना चाहते हो कुछ नहीं समझता। अभी यहीं समझ रहा हूँ कि सर्वत्र तुम्हारा ही हाथ है। यह स्पष्ट देख पाऊँ तभी निश्चिंत हो सकूँगा। ऐसा न होने तक वासना कामना की भी निवृत्ति नहीं होगी। परम शांति का उपाय भी नहीं।

मानस पूजा। ठाकुर की सहानुभुति। ठाकुर

का खेल-उपदेश। अर्थ में अनर्थ-यीशु और कृष्ण एक ही हैं।

आज पूजा में बड़ा आनंद मिला। ठाकुर के पास भागवत् पाठ के समय रो पड़ा। रुक-रुक कर पाठ समाप्त किया। नाम में बड़ा ही सुन्दर भाव आया। नाम केवल अक्षर नहीं। नाम सर्वशक्ति समन्वित बीज है। श्रद्धा भक्ति के साथ नाम की उपासना करने पर, इच्छानुसार नाम को किसी भी रूप, गुण, आकार में परिणत किया जा सकता है। मैं नाम को फूल, तुलसी, चन्दन की कल्पना कर बारंबार ठाकुर के चरणों में अर्पित करने लगा। खूब तीव्रता से नाम जप कर ऐसे ही ठाकुर को चन्दन सहित तुलसी से ढँक दिया, ठाकुर ध्यानमग्न रहे। बीच-बीच में चौंककर मेरी ओर तिरछी दृष्टि से ताकते मन्द-मन्द मुस्कुराते और सिर हिलाकर सहमतिपूर्वक मेरा आनंद बढ़ाने लगे। इस प्रकार काफी समय बीत गया।

आहार के बाद शाम को ठाकुर के कमरे में वठकर अपने आसन पर नाम जप करने लगा। ठाकुर को आज बडा प्रफुल्लित देखा। ठाकुर अपने कक्ष में प्रविष्ट होते ही कई प्रकार का अभिनय करने लगे। कभी तो लाठी टेककर लंगड़े-बूढ़े की तरह चलते फिर कभी लाठी रखकर घुटने के बल बच्चों की तरह सारे कमरे में चलते। कभी तो हाथ फैलाकर खाने की चीज माँगते और शिशुवत् हठ करते। ठाकुर के अभिनय और खेल देखकर मन में बड़ा आनंद आया। ठाकुर आसन पर बैठे। उन्हें ग्वालिनवाली घटना कह सुनाया।

ठाकुर ने कहा-**अर्थ संचय न करो तो कभी कोई अभाव नहीं**

रह जाएगा। भगवान ही सब चला लेंगे। ब्रह्मचर्य आश्रम में अर्थसंचय तो दूर, उसका स्पर्श भी नहीं करना चाहिए। यदि इस प्रकार रहो तो अपने आप जो कुछ प्रयोजन हो, जुटता जाएगा। कोई अभाव न रहेगा। अर्थ संचय करने पर धर्म नहीं होता। अर्थ ऐसा बाँध देता है कि ध्यान धारणा के समय भी अर्थ चिंता ही आती है। इससे सबकुछ नष्ट हो जाता है। हाथ में जो भी आए तभी खर्च कर देना चाहिए। तो फिर ऊपरवाला फिर देगा। जो मिले दोनों हाथों से खुलकर बाँट दो। देखना, अशेष आता जाएगा। अर्थ हाथ में रहते भगवान पर निर्भरता नहीं आ पाती। तुम्हें पचास रूपयों ने बाँध रखा है। प्रयोजनीय विषयों पर या गरीबों पर खर्च कर डालो। ब्रह्मचर्य आश्रम में अर्थसंचय निषिद्ध है। ठाकुर कुछ देर ध्यान में रहकर फिर से बोले-**यीशु व कृष्ण एक ही हैं जरा भी भिन्न नहीं। जिनके सामने यह तत्त्व प्रकट न हुआ हो वे ही भेद बुद्धि से भिन्न देखते हैं। वस्तुतः एक ही व्यक्ति के दो नाम हो। यीशु का क्रॉस, कृष्ण की चूड़ा, तथा महादेवजी के त्रिशूल इन तीनों से मिलकर ही ॐकार बना है।**

सेवाभिमान से नरक भोग।

दादीमाँ की सेवा आनंद उत्साह से कुछ समय से करता आ रहा हूँ। पर अब भय होता है, कहीं सेवा अपराध में न पड़ जाऊँ। रात को दस बजे तथा तीन बजे उन्हें शौच ले जाना पड़ता है। पुराना घी मालिश कर सेंक देना पड़ता है। वात की पीड़ा और भीषण दुर्बलता से चल नहीं पातीं। आग जलाकर सेंकने की तैयारी कर रहा था कि एक चिंगारी जाकर दादीमाँ के पैर पर पड़ी, वे

'जला डाला, जलाकर मार डाला' कहकर चीख उठीं। ठाकुर भी मुख से क्लेशसूचक शब्द निकालने लगे। मेरा हृदय काँप उठा। चिंगारी लगते ही बुझ गई तो भी दादीमाँ खूब चिल्लाईं। मैं अब सेंक न दूँगा, ऐसा सोच लिया। महेन्द्रबाबू बार-बार सेंक के लिए कहते रहे, पर मैं चुप बैठा रहा। ठाकुर ने इशारे से कहा-जरूरत नहीं है। मैं वड़ा लज्जित हुआ। शायद मेरे मनोभाव को जानकर ही ठाकुर ने ऐसा कहा। ठाकुर पहले भी कह चुके हैं कि श्रद्धा-भक्ति सहित अनुगत होकर सेवा करने में जो महान कल्याण सहज ही साधित होता है, बहुत काल तक साधन भजन में भी वह प्राप्त नहीं हो पाता। अभिमान नष्ट कर 'तृणादपि सुनीचेन' भाव मन में लाकर ही सेवा करनी चाहिए। मैं तो देखता हूँ सेवा में दिन-दिन मेरा अभिमान ही बढ़ता है। आशंका हुई कि रन्तिदेव की भाँति सेवा के परिणाम स्वरूप मेरी अधोगति न हो। ठाकुर ने कहा था-**रन्तिदेव यौवन में राजप्राप्ति के बाद से वृद्धावस्था तक, कई प्रकार के उपचारों से राजभोग तैयार करवाकर, एक लाख ब्राह्मणों को भोजन करवाते थे। एक दिन अचानक दुर्वासा मनि आए और भोजन माँगा। राजा उन्हें आसन देकर भोजन कराने बैठाये। मुनि बैठे एवं आचमन कर भोजन करने लगे। अन्न में एक केश देखकर ऋषि उसे त्यागकर उठ खड़े हुए और क्रुद्ध होकर बोले-रोज लाख ब्राह्मण भोजन कराने से अभिमान आ गया है। ब्राह्मण क्या खाते हैं एक बार देख भी नहीं पाते। इतनी अवज्ञा और अश्रद्धा? जाओ नरकस्थ हो जाओ। जिस सेवा से जीव का अभिमान नाश होकर परमपद मिलता है, उसी सेवा से अभिमान बढ़कर नरक भोगना पड़ सकता है।** मेरे ठाकुर

परमदयालु हैं कभी सेवाअपराध नहीं लेते अन्यथा न जाने कैसी दुर्गति होती।

भोजन कर सुबह प्यार करते हुए दादीमाँ ने कहा-'कई बार तुम्हें कितना कुछ बोल जाती हूँ। तुम मेरी बात का बुरा न माना करो। जानते तो हो रोग के मारे मेरी मति मारी गई है।' दादीमाँ के स्नेह वाक्य सुनकर मेरा हृदय सरस हो उठा।

ठाकुर सदाशिव। सारे अंग में भस्म लगा। धूनी की विभूति का अद्भुत गुण। सूक्ष्म रूप दर्शन के उपाय।

दादीमाँ के भोजन के बाद आठ बजे स्नान कर लिया। फिर दूब, फूल, तुलसी, चंदन लेकर आसन पर बैठा। न्यास, होम, पूजा तथा पाठ समाप्त करने में लगभग दो बज गए। फिर ठाकुर के पास भागवत् लेकर गया। ठाकुर आज सारे अंग में भस्म लगाकर आम के पेड़ के नीचे धूनी के सामने बैठे हैं। यह देखकर बड़ा आनंद आया। ठाकुर को भस्म लगाये देखने की मेरी पहले से ही इच्छा थी जो मैं नानीमाँ से भी कह चुका था। भागवत् पढ़ना समाप्त करके नाम जप करने लगा और ठाकुर साक्षात् सदाशिव हैं, प्रत्यक्ष देखने लगा। मन में ऐसा विचार आया कि कोटि शिव, ब्रह्मण्ड के विपुल ऐश्वर्यादि विभूति के रूप में ठाकुर के श्रीअंग के प्रत्येक रोम में आश्रय ग्रहण किये हुए हैं। मैं इष्टमंत्र जप करता हुआ वह गंगाजल एवं बेलपत्र हैं, ऐसा ध्यान कर उन्हें ठाकुर के श्रीचरणों में अंजली देने लगा। अति आनंद से अश्रु निकलने लगे। ठाकुर की ओर अधिक देर देख न सका। एकाग्र मन से देह के भीतर ही मणिपुर में ठाकुर को बैठाकर

मन की साध पूरी करने के लिए पूजा करने लगा। ठाकुर कभी-कभी हँसते हुए मेरी ओर ताकने लगे। कुछ घंटे कैसे आनंदपूर्वक बीत गए बता नहीं सकता। भोजन पकाने उठने से पहले ठाकुर से पूछा-साधु लोग अंग में भस्म क्यों लगाते हैं?

ठाकुर-**धूनी में साधुगण हवन करते हैं और प्रसाद के रूप में भस्म सारे अंग में लगाकर, इसी भाव से विभोर हो जाते हैं। अच्छे से भस्म लगाने से रोमछिद्र बन्द हो जाने के कारण शीत, ग्रीष्म, वर्षा में शरीर का ताप एक सा रहता है, कोई बीमारी नहीं होती। पर्वतों पर कुछ ऐसे वृक्ष हैं जिनका भस्म लगालो तो तुम्हें दूसरे लोग देख नहीं पायेंगे। इस प्रकार हिंसक जीव-जंतुओं के बीच निर्बाध आना-जाना किया जा सकता है।**

मैंने पूछा-मनुष्य पास रहने पर दिखाई नहीं देगा, ऐसा भी कभी हो सकता है?

ठाकुर-**क्यों नहीं अवश्य हो सकता है। वस्तु का जब प्रतिबिम्ब पड़ेगा तभी तो वह दिखाई देगा। उस भस्म के गुण से मनुष्य की आँखें प्रतिबिम्ब ग्रहण नहीं कर पातीं। सभी वस्तुओं का मानव आँख में प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। प्रेत का रूप क्या सब देख पाते हैं? परन्तु कुत्ते वह देख लेते हैं। कभी ध्यान दिया होगा, अन्धेरी रात को कुत्ते आकाश की तरफ मुँह करके कभी कूदता तो कभी दौड़ता और चिल्लाता रहता है।**

मैंने पूछा-हमारी दृष्टि शक्ति क्या वैसी नहीं हो सकती?

ठाकुर-**हाँ क्यों नहीं? छह माह शाम से भोर तक प्रकाश न देखकर, यदि जागते रह सको तो क्रमशः ऐसी दृष्टि शक्ति होगी कि सूक्ष्म देह भी अनायास ही देख पाओगे। विधिवत् दृष्टिसाधन**

करने पर भी ऐसा हो सकता है।

ठाकुर की बातें समझा। किन्तु स्थूल वस्तु सामने रहने पर भी नहीं दिखेगी। यह तो बड़ा विस्मयकारी है। मैं धारणा नहीं कर पाया। ठाकुर की बातों में दुविधा उत्पन्न हो गई। मन में दृष्टांत ढूँढने लगा, वायु वस्तु है पर हम उसका रूप नहीं देख पाते। स्वच्छ जल निराधार हो तो उसका रूप भी स्पष्ट आँखों में नहीं पड़ता। पर स्थूल वस्तु सामने हो और दिखाई न दे ऐसा दृष्टांत नहीं मिलता। ठाकुर की कृपा से चण्डी का एक श्लोक याद आ गया। 'दिवान्धाः प्राणिनः केचिद् रात्रा वध्नास्तथा परे। केचिद् दिवा तथा रात्रौ प्राणिनन्तुल्यदृष्टयः।।' कोई प्राणी दिन को नहीं देख पाता, कोई रात को। कोई दिन को देखता है, रात को नहीं देख पाता। पर कोई-कोई प्राणी दिन व रात को समान रूप से देख पाते हैं। मुझे लगा यद्यपि सभी जीवों की दर्शन की क्रिया आँख से होती है तथापि भगवान ने आँखों को ऐसे उपादानों से निर्मित किया है कि प्रखर सूर्य आलोक में भी किसी-किसी की दृष्टि शक्ति अवरुद्ध हो जाती है। उन्हें दिवालोक में रूप दृष्टिगोचर नहीं होते। फिर किसी की दृष्टिशक्ति तो आलोक-अंधकार किसी की भी अपेक्षा नहीं रखती। वे दिन-रात में एक ही समान रूप देखते हैं। हमारे समान प्रकाश या अंधकार के रूप उनकी आँखें ग्रहण नहीं करती। जब ऐसे दृष्टांत हैं तो वस्तु विशेष का प्रतिबिम्ब हमारी आँखें ग्रहण न करें, इसमें आश्चर्य क्या? इस प्रकार मन को समझाकर दुविधा दूर किया।

मैने कहा-लकडी का ऐसा गुण है कि भस्म लगाने से दिखाई नहीं पड़ेगा। ऐसा तो कभी नहीं सुना।

ठाकुर-**सुनोगे कैसे? दर्शन विज्ञान में पाया ही कितना है,**

क्या जानता है? यह देखो यह लकड़ी जब पुरानी होकर घुन लग जाएगी। इसमें एक प्रकार का कीट उत्पन्न होगा। जिससे लकड़ी में छेद-छेद हो जाएंगे। जब यह आग में जले तो भीतर के कीट निकलकर आग को खाने लगते हैं। न कोई लकड़ी मिले तो बताऊँगा। खुद ही परखकर देखना। अग्निभुक् जीव भी होते हैं। वर्तमान विज्ञान क्या यह मानेगा? ठाकुर की बात सुनकर लगा कि ऐसी लकड़ी तो दुर्लभ नहीं, एक बार खुद ही परीक्षा करके देखूँगा।

गुरुसेवा की बाधा। गुरुभाईयों में झगड़ा।

११ पौष, २५ दिसम्बर १८९२। देखता हूँ, गुरु की सेवा में जो लोग लगे रहें उनके दुर्भाग की सीमा नहीं। गुरुशिष्य की साझा सम्पत्ति है, सबके मन में यही धारणा है। गुरु के पास सभी समान है। लेकिन कोई गुरु की सेवा में रहकर जरा घनिष्ठ हो जाए तो दूसरे गुरुभाई लोग यह सह नहीं सकते, ईर्ष्यान्वित होते हैं। वे इस सेवक गुरुभाई की थोड़ी सी त्रुटि पाकर उसे बढ़ा-चढ़ाकर गुरु के पास बताते हैं। गुरु जरा असंतुष्ट हो जाएँ तो अपने को कृतार्थ समझते हैं। रात जागने और निरंतर परिश्रम से मेरा शरीर क्लांत हो गया है। कल रात वेदना के कारण शाम को ही सो गया। दादीमाँ की सेवा ठीक नहीं कर पाया। ठाकुर ने मुझे कुछ दिन घर जाकर माँ के पास रहने को कहा है। मैंने शीघ्र ही घर जाने का निश्चय किया। मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है सुनकर गुरुभाई ठाकुर के सामने ही मुझसे बोले- महाशय आप ब्रह्मचर्य लिये हैं, तथापि आप अस्वस्थ्य क्यों रहते हैं? ब्रह्मचर्य के नियमों की रक्षाकर चलने पर क्या कोई बीमारी हो

सकती है? ठीक से नहीं चल पाते तो ब्रह्मचर्य छोड़ दीजिए और हम सबके समान ही रहिये न। इससे तो ठाकुर का ही कलंक होता है। गुरुभाईयों के निरर्थक आगे बढ़कर मुझपर आक्षेप करने से बड़ा कष्ट हुआ। सोचा एक बार इन्हें असली बात बताकर मुँह सदा के लिए बन्द ही कर दूँ। फिर कभी ठाकुर के पास मेरे लिए ऐसा कुछ न बोल सकें। ऐसा सोचकर मैंने कहा-ठाकुर से स्पष्ट रूप से यह शर्त करके-कि यदि वे मुझे ब्रह्मचर्य देकर उसमें अटल रख सकें, तो ही यह मुझे दें-मैंने ब्रह्मचर्य लिया है। अब यदि व्रतभंग भी होता है, तो इसमें स्वयं ठाकुर की ही त्रुटि है। अतः आप यह सब उन्हें ही कहें। मेरी बात सुनकर ठाकुर हँस दिए और सिर हिलाकर सहमति प्रकट किए। गुरुभाई लोग लज्जित और अवाक् रह गए। कुछ देर बाद फिर वे बोले-सुबह आप सुंदर-सुंदर फूलों को तोड़कर पौधों की शोभा नष्ट करते हैं। ऐसा करने से पौधों को कष्ट नहीं होता?

मैंने कहा-हमारे लिए तोड़ते तो सच में पौधों को कष्ट ही होता। ठाकुर के चरणों में देने के लिए तोडता हैं, इससे पौधों को आनंद ही आता है। पौधों के पास खड़े होते ही लगता है कि वे इसी आशा से मेरी ओर देख रहे हैं कि फूलों को तोड़कर ठाकुर के चरणों में दूँ। जिन्हें नहीं तोड़ता वे निराश और दुःखी से जान पड़ते हैं।

एक गुरुभाई ने कहा-यह सब भावुकता छोड़िये। हिंसा द्वारा कभी पूजा हो सकती है।

मैंने कहा-हिंसा कार्य में नहीं भाव में होता है। फूल तोड़ने की बात क्या! ठाकुर यदि खुश हों, यह जान सकूँ तो अनायास ही आनंदसहित सिर काटकर उनके चरणों में दे सकता हूँ। ठाकुर फूल पाकर आनंदित होंगे और वृक्ष भी कृतार्थ होगा, फूल तोड़ते समय

मेरे मन में यही भाव होता है। फूल, तुलसी, दूब से पूजा की विधि तो ऋषियों द्वारा बनाई हुई है। हमारी बनाई हुई नहीं। इन सब आलोचनाओं के समय ठाकुर ध्यानमग्न रहे।

शालग्राम के लिए चिंता।

ठाकुर ने मुझे लक्षण युक्त शालग्राम की पूजा करने को कहा है। कैसे यह शालग्राम मिल पायेगा मैं नहीं जानता। ठाकुर ने कहा था- **अयोध्या में एक मंदिर में हजारों शालग्राम हैं। यत्न करने पर मिल सकता है।** मैंने दादा को लिखा भी था परंतु अब तक लक्ष्मीनारायण चक्र उन्हें नहीं मिल पाया। ठाकुर के आदेश के बाद शालग्राम शिला की पूजा की आकांक्षा दिनोंदिन बढ़ रही है। फूलचंदन से अग्निपूजा में अब तृप्ति नहीं होती। साक्षात् ठाकुर को फूल, चंदन, बेलपत्र, तुलसी से पूजा करना मेरे भाग्य में शायद कभी नहीं होगा। ठाकुर ही बाधा देंगे। उनके आदेश से उनके ही अभिन्न रूप सुलक्षण युक्त शालग्राम शिला की स्वच्छंदतापूर्वक अपने मन में पूजा करके कब धन्य हो पाऊँगा, नहीं जानता। ठाकुर कृपा करके कब मुझे सुन्दर शिला जुटा देंगे?

ठाकुर की पूजा। पाना चाहते हो या देना चाहते हो?

आज लगभग दस बजे एक श्रद्धावान् गुरुभाई पूर्व के कमरे में ठाकुर को अकेला पाकर, पूजा करने हेतु उपस्थित हुए। ठाकुर ध्यानमग्न थे। अचानक आँखें खोलते ही उस भाग्यवान गुरुभ्राता ने फूल, चंदन, तुलसी लेकर ठाकुर के चरणों में अर्पित किया और साष्टांग प्रणाम किया। मैंने सोचा यह सुअवसर मैं क्यों गवाऊँ? शीघ्र

ही तुलसी, दूब, फूल लेकर ठाकुर की बाँयीं ओर खड़ा हो गया। मुझे रोना आया कि मैंने ऐसा क्या पुण्य किया है कि आज ठाकुर के श्रीचरणों की पूजा कर पाऊँगा। ठाकुर इसी समय मेरी तरफ देखकर धीरे से बोले-**क्या पूजा करना है? अच्छा तो करो। यदि कुछ पाना चाहो तो चरणों में दो। और मुझे कुछ देना चाहो तो मेरे मस्तक पर दो।** इतना कहकर मस्तक आगे बढ़ा दिया। मैंने मन में सोचा-ठाकुर से क्या माँगू? जिनसे उत्कृष्ट वस्तु भगवान के भण्डार में नहीं है, वह अतुलनीय सर्वश्रेष्ठ और मनोरम वस्तु तो स्वयं ठाकुर ने मुझे कृपापूर्वक दे दी है। अखिल विश्व ब्रह्माण्ड के अधिपति मेरे प्रभु आज मुझसे कुछ पाने के लिए मस्तक बढ़ा रहे हैं। हाय! मैं दीन-हीन, अधम उन्हें क्या दे सकता हूँ? मेरे पास है ही क्या? मन ही मन प्रार्थना किया। 'ठाकुर! जन्म जन्मान्तर से यदि मेरी कोई सुकृति हो, तुम्हारे संग लाभ, साधन भजन सेवा कुछ फल तुमने दिया है और दोगे-वह सब कुछ मैं तुम्हें प्रदान करता हूँ। कृपा करके ग्रहण करो।' ऐसा कहकर हाथों से पुष्पांजली वक्ष में रखकर ठाकुर के मस्तक पर अर्पित कर दिया। उन्हें साष्टांग प्रणाम कर उनके पास बैठा। ठाकुर स्नेह स्निग्ध दृष्टि से मुझे देखते हुए आँखें बन्द कर लिए। जय गुरुदेव!

भोग के पहले प्रसाद। मँझले दादा के संबंध में ठाकुर की बातें।

१४ से १७ पौष, ३१ दिसम्बर तक। मँझले दादा ढाका से आए हैं, आज घर चले जाएंगे। मुझसे घर चलने को कह रहे हैं। सुबह दादीमाँ का भोजन बनाकर मैं तैयार हो गया। मँझले दादा ठाकुर का

दर्शन करने आये हैं। ठाकुर को प्रणाम करके वे एक ओर बैठ गए। इसी समय ठाकुर के लिए चाय आई। ठाकुर ने मँझले दादा को भी चाय देने को कहा। मँझले दादा ठाकुर के प्रसाद पाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। निवेदन करके ठाकुर ने ज्यों ही कटोरी में चाय डाली मँझले दादा ने कटोरा बढ़ा दिया। ठाकुर चाय मुँह में न लेकर मँझले दादा की कटोरी में डाल दिए, इस पर उन्हें बड़ा संकोच हुआ। ठाकुर ने उन्हें चाय पीने को कहा। बातों ही बातों में ठाकुर ने कहा-**बम्बई की छपी एक योगवाशिष्ट रामायण लाकर पढ़ियेगा।** मँझले दादा चले गए तो ठाकुर ने कहा-**तुम्हारे मँझले दादा गोपनीय रहने वाले, बुद्धिमान व्यक्ति हैं। वैराग्य प्रधान प्रकृति है, केवल विश्वास के अभाव में बँधे हुए हैं। एक बूँद भी विश्वास पा जाएं तो कहाँ चले जाएंगे, पता न चलेगा। तुम चारों भाई इस बार परामर्श करके ही आये हो। प्रकृति हरेक की अलग-अलग है। किन्तु औसतन सभी एक जैसे हो।**

अयाचित दान-कचौड़ी, अदरख, चने।

ठाकुर की अनुमति लेकर मँझले दादा के साथ घर के लिए रवाना हो गया। नदी तट पर पहुँचकर मँझले दादा नाव किराये पर लेकर मुझे वहाँ बैठाकर शहर किसी काम से गए। मुझे मेरी बहन की याद आई, उसने मुझसे खस्ता, कचौड़ी खाने की माँग की थी। मेरे पास केवल दो पैसे थे। वही लेकर बंगला बाजार के मिठाई की दुकान पहुँचा और कहा-इन पैसों से जितने कचौड़ी आएँ दे दीजिए। दुकानदार ने पूछा-और कुछ नहीं लेंगे? मैंने कहा-नहीं पैसे नहीं हैं। उसने कुछ बिना कहे एक टोकरी में कछ इमरती, रसगुल्ले और

दस कचौड़ियाँ देकर कहा-कृपया इन्हें घर ले जाइये, मैं पैसे न लूँगा। इस अयाचित दान को ठाकुर की इच्छा और प्रसाद मानकर ले लिया। नाव पर आकर स्नान, तर्पण करके बैठा। बड़ी प्यास लगी थी। आश्रम से कुछ भीगे चने और अदरक खाकर निकलता तो ठीक रहता। ऐसा सोच ही रहा हूँ कि मेरे एक बाल्यबंधु ललित मोहन गांगुली ने पास आकर कहा-भाई घर जा रहे हो? अच्छा मेरे भजन कुटीर को एक बार देखना ही पड़ेगा। यह कहकर नदी तट पर अपने घर हठपूर्वक ले गया। तब वह कुछ अदरक, भीगे चने तथा कुछ गुड सामने रखकर बोला-भाई घर जाते दिन ढल जाएगा, थोड़ा सा जलपान कर लो। बड़ी ही तृप्ति से उसकी श्रद्धा का दान ग्रहण कर नाव पर लौटा। बारंबार सोचने लगा कि कब मुझे क्या प्रयोजन हो या क्या इच्छा हो, मैं कुछ भी नहीं जानता। परंतु ठाकुर मेरे सारे अभाव एवं आकांक्षा पूर्ण करने की व्यवस्था पूर्व ही कर रखते हैं। बड़े आश्चर्य की बात है। कई दिनों बाद मुहल्ले के वृद्धजनों की चरणधूलि लेकर बड़ा आनंद आया। सभी ने प्रसन्नचित्त होकर आशीर्वाद दिया। चित्त प्रफुल्लित रखने के लिए वृद्धजनों की पदधूलि लेनी चाहिए यह बात सुनी थी। आज यथार्थ अनुभव भी किया।

स्वप्न में शालग्राम और गोपाल पूजा।

घर आकर दो सुंदर स्वप्न देखा मध्य रात्रि को देखा एक सुंदर शालग्राम में ठाकुर का ध्यान कर फूल, तुलसी, दूब, चंदन, से विधिवत् सजाया। पूजा संपन्न करते ही नींद खुल गई। कुछ देर तक भाव-विभोर रहा। उसके दूसरे दिन देखा-घर के गोपालजी की

भक्तिसहित पूजा कर रहा हूँ। तब ठाकुरजी का सिंहासन काँपने लगा। सिहांसन के एक-एक पहिये शून्य मार्ग में उठने लगे। केवल एक ही पहिया भूमि से लगा रहा। सोचा शायद गोपालजी गोलोक चले। देखा गोपाल दो-तीन माह के शिशु के समान चित्त होकर लेटे हाथ-पैर हिला रहे हैं और खेल रहे हैं। मेरे जरा गौर करते ही वे सिंहासन से जमीन पर उतरे और भागने लगे। मैं भी पीछे-पीछे दौड़ा इतने में मेरी नींद खुल गई। इन गोपालजी की आकृति कुछ-कुछ दाऊजी के समान थी।

मनोमुखी होकर चलने का फल। गुरुसंग का प्रभाव।

ठाकुर का संग छोड़कर घर आने पर हर बार साधन भजन का उत्साह ठंडा पड़ जाता है। नित्य कृत्य के नियमों से बँधा रहता हूँ। अतः बाहरी तौर पर रक्षा पाते हुए भी भीतर न जाने कैसा हो जाता हूँ। घर में सत्संग का बड़ा अभाव है। विषयी लोगों तथा स्त्रियों का साथ भी नहीं छूट पाता। नाना वार्तालाप कल्पना तथा वासना से चित्त कलुषित न हो, इसके लिए सदा सतर्क रहता हूँ। यद्यपि अपना भाव ही अपनी रक्षा या विनाश करता है, यह बात ठीक है, परंतु कई बार देखता हूँ दूसरों का भाव भी चित्त को चंचल व विक्षिप्त कर डालता है। सदा सब ओर नजर रखकर सतर्क रहना सहज नहीं। इतने दिन सद्गुरुसंग करके, साधन भजन करके भी इतना डरे-डरे रहना पड़े तो मेरा हुआ ही क्या है? भेड़-बकरियों के डर से यदि मुझे डंडा हाथ में लिए रहना पड़े तो अब तक ठाकुर ने क्या किया है? ठाकुर के आदेश मानकर केवल अपनी प्रकृतिवश

चलने से क्या होता है, देखना चाहता हूँ। आहार का नियम तो तोड़ दिया। जब जो कुछ मिलता खा लिया करता। अधिक मिर्च, मीठा, घी, दूध कुछ भी न स्त्रियों से बातचीत करता और मिलता भी रहा। इस प्रकार कुछ दिनों से मेरा क्या अधोपतन हुआ। वह अच्छी तरह समझ रहा हूँ। अब स्पष्ट समझ गया कि साधन की पहली अवस्था में सद्गुरु का संग या साधुसंग के बिना चित्त स्थिर या निर्मल नहीं रह सकता। चार पाँच दिन घर में काटकर शीघ्र ही ढाका चला आया। ठाकुर के दर्शन मात्र से ऐसा लगा मानो तप्त, शुष्क, मलमूत्र से सना अपवित्र देह गंगास्नान से शुद्ध, निर्मल तथा शीतल हो गया हो। हे ठाकुर! इसी प्रकार ऊपर उठाकर तथा नीचे गिराकर अपनी महत्ता न समझाओ तो तुम्हें कौन जान पाएगा। आश्रम आकर दादीमाँ की सेवा में लग गया। घर में कुछ दिन किस दुर्भाग में काटा ठाकुर से बताना चाहता था। बड़े दिन की छुट्टी में चारों ओर से कई गुरुभाई आए हैं। भक्त गुरुभाईयों के सम्मेलन से आश्रम में मानो उत्सव लगा हो। शहर से भी सैकड़ों लोग आकर ठाकुर से सदालाप करके तृप्त होते हैं। आश्रम में सदा चहल-पहल लगी रहती है।

वीर्यधारण का उपाय तथा उपकारिता। उर्ध्वरेता होने का उपाय तथा फल। नास्ति प्राणायामात् बलम्।

१८ पौष १ जनवरी १८६३। दोपहर को भोजन के बाद गुरुभाईगण आम के पेड़ के नीचे ठाकुर के पास आकर बैठे। उनमें यह बातचीत हो रही थी कि वीर्यधारण न करो तो इस साधन की उपकारिता की सहज उपलब्धि नहीं होती। उन्होंने इस विषय में ठाकुर से पूछा-

गृही के लिए वीर्यरक्षा का सहज उपाय क्या है? एवं उसका उपकार ही क्या है? उर्ध्वरेता हुए बिना क्या जीव का उद्धार नहीं होता?

ठाकुर कभी अस्फुट स्वर में या लिखकर उन्हें उत्तर देते- **वीर्यधारण की ओर ध्यान देकर ही चलना पड़ेगा। एकदम बन्द रखना उचित न होगा? क्योंकि गृहस्थ के लिए भिन्न व्यवस्था है। जो विवाहित हैं उन्हें दो तीन संतान हो जाने पर वीर्यरक्षा की चेष्टा करनी चाहिए। केवल पुरुष की ही इच्छा होने पर नहीं होगा, इस कार्य में स्त्री-पुरुष दोनों का सहयोग चाहिए। स्त्री की इच्छा न हो तो पुरुष समर्थ न होगा। वीर्य रक्षा द्वारा शरीर निरोग तथा मन स्वस्थ रहता है। यदि किसी कारण वीर्य रक्षा न हो पाए तो इससे मुक्ति की बाधा नहीं होती, किन्तु साधन पथ में विघ्न उपस्थित होता है। अतः रक्षा नितान्त प्रयोजनीय है। प्राणायाम तथा वीर्यरक्षा से शरीर मन सबल तथा सुस्थिर होता हैं। वीर्यरक्षा का यत्न करो, किन्तु अपनी चेष्टा से न हो सके तो बाहरी औषधि आदि उपायों से निवारण की कोशिश भी नहीं करनी चाहिए। पृथक् शयन की व्यवस्था है। वीर्य की गति उर्ध्वदिशा में करने के लिए एक प्रकार की साधना है। उसमें मेरुदण्ड के दोनों ओर आरे से काटने की तरह काटकर रास्ता बनता है। बड़ा कष्टकर है, अर्थात यह प्रणाली उतनी अच्छी नहीं। असह्य वज्रोली वेदना होती है, सही नहीं जाती। एकबार वह प्रणाली अपनाने पर छोड़ते भी नहीं बनता। इसलिए अधिकांश साधक इस वज्रोली प्रणाली के पक्षपाती नहीं हैं। सहज उपाय है-मूत्र त्यागते समय एक साथ न छोड़कर धीरे-धीरे खींचकर रखते हुए करो। स्त्री सहवास के समय भी वीर्य**

एक साथ न छोड़कर धीरे धीरे खींचकर रखते हुए करो। गृहस्थों को ऋतुस्नान के बाद पंद्रह दिन तक प्रशस्त समय है, इनमें भी अष्टमी, नवमी, एकादशी, द्वादशी, चतुर्दशी तथा पक्षांत की तिथियाँ छोड़ समय है, इन नियमों को मानकर चलना चाहिए। ऐसा करते हुए एक सूक्ष्म नाड़ी के भीतर से उभय रेत ऊपर की ओर गमन करता है। यह बड़े सावधानीपूर्वक करना चाहिए। इस 'सहजौली' विधि से सहज ही सफल हुआ जा सकता है। वीर्यरक्षा तथा सत्यरक्षा सम्यक् रूप से छः माह करने पर कोई वाक् सिद्ध अवश्य हो सकता है। प्रकृति में जो है, उसका बलपूर्वक कोई नहीं निवारण कर सकता। कितने इन्द्र, चन्द्र, ब्रह्मा तक परास्त हो गए हैं। केवल भगवान के शरणापन्न होकर नाम जप करते रहने पर सहज ही प्रवृत्ति का दमन हो सकता है। बाहरी उपाय कुछ नहीं नाम जप करते-करते अपने आप सब चला जाएगा। वास्तविक साधना तो श्वास-प्रश्वास में नाम जप है। यह अभ्यस्त हो जाय तो प्राणायाम भी स्वाभाविक हो जाता है। वीर्य भी स्थिर हो जाता है। प्राणायाम के तीन अंग पूरक, रेचक तथा कुंभक हैं। कुंभक सर्वश्रेष्ठ अंग हैं। प्रतिदिन नियमित रूप से कुंभक करने पर दीर्घ जीवन प्राप्त किया जा सकता है। सभी शारीरिक व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। कुंभक के साथ वीर्यधारण होने पर देह देवमंदिर बनकर रोग-शोक शून्य हो जाता है। श्वास-प्रश्वास में नाम जप सर्वश्रेष्ठ साधन हैं। उसके साथ प्राणायामादि भी करना चाहिये। श्वास-प्रश्वास में नाम साधन में पहले-पहले श्वास-प्रश्वास में ध्यान रखकर ही नाम करना चाहिए। क्रमशः मेरुदण्ड से जो श्वास चलता है उससे परिचय होता है। फिर

उसके साथ नामजप करते हुए सहज ही सारी आशाएँ पूर्ण हो जाती हैं। सोकर, खड़े होकर, चलते-चलते, कभी भी प्राणायाम नहीं करना चाहिए। प्राणायाम का निश्चित समय रखना अच्छा है। रात्रि का शेष भाग प्राणायाम का उत्कृष्ट समय है। पहले आधे घंटे से अधिक प्राणायाम करने की आवश्यकता नहीं है। क्रमशः वृद्धि करना चाहिये। लगातार आधे घंटे न कर सको तो रुक-रुककर करो। करते समय बाधा आये तो अवसर समय करके वह अवधि पूरी कर लेनी चाहिये। प्राणायाम मुँह खोले और बन्द किये भी कर सकते हो। प्राणायाम के साथ खूब नामजप करते रहो, नाम कभी बन्द न करो। ध्वनि थोड़ी कोई सुन ले तो हानि नहीं पर उच्च ध्वनि सुननेवाले को हानि हो सकती है। किसी का न सुन पाना ही अच्छा है। शिशु या बालक के पास भी प्राणायाम न करो। गुरु उपदेश के-देख या सुनकर यह सब करने जाना संकट का कारण बनता है। जन्म या मृत्यु के अशौच से करने में कोई बाधा नहीं। खाली पेट, भूख लगने पर, पेट फूलने पर, सिर दर्द में या किसी रोग में-प्राणायाम नहीं करना चाहिये, तब करने पर कष्ट हो तो प्राणायाम मत करो। कुंभक न हो तब तक योनिमुद्रा करने से हानि होती है। प्राणायाम से देह निरोग होता है। इन्द्रिय-चंचलता दूर होती है, मन स्थिर होता है, अंतरिक्ष में विचरण की क्षमता आ जाती है, दिव्यज्ञान और परमार्थ शक्ति प्रबुद्ध होती है। ऋषियों ने कहा है-'नास्ति, प्राणायामात् बलम्' पातंजल दर्शन व्यास भाष्य में लिखा है-'तथाचोक्तं तपो न परं प्राणायामात् ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्येति।' शास्त्र में कहा है। प्राणायाम से उत्कृष्ट तप नहीं है

इससे चित्त की मलिनता धुलकर, ज्ञान का प्रकाश बढ़ता है।

जिनको स्वप्नदोष होता है, वे सोते समय ईश्वर के मातृवाचक शब्द बेल या तुलसी पत्ते में लिखकर सिरहाने रखकर सोवे। जब तक नींद न आ जाए जप करते रहें। अपनी इच्छा से कछ न करके गुरु जैसा कहे वैसा यथासाध्य करना कर्तव्य है।

योग का एक अंग है प्रत्याहार। प्रत्याहार का अर्थ है मन दूसरी ओर भागे तो उसे लौटा लाना। नाम जप के साथ जो अवस्था मिले या दर्शन हो उसे धारण किये रहना धारणा है। एकाएक अवस्था नहीं खुल जाती। क्रम से सब लाभ होता है। दृष्टि साधन से मन स्थिर होता है। विधिवत् वृक्ष, आकाश, जल, अग्नि की ओर दृष्टि रखकर दृष्टि साधन करना चाहिये। आत्मा प्रस्तुत हो तब भगवत दर्शन प्रारंभ होता है। फिर संशय नहीं रह जाता। काम, क्रोध, वासना, कामना कुछ नहीं रह जाती। ईश्वर दर्शन के पूर्व महापुरुष तथा देवी-देवताओं के दर्शन होते हैं। इससे हृदय का कोई परिवर्तन नहीं होता। कुलदेवता या जो जिस देवता को चाहता है पहले वे ही दर्शन देते हैं। वेद, पुराण कैसे बने, सृष्टि कैसे बनी, यह सब प्रकट होते हुए माया चली जाती है। तब सब कुछ ब्रह्ममय हो जाता है। क्रमशः भगवत् लीला दिखाई पड़ती है। भगवान ही चरम लक्ष्य है।

उर्ध्वरेता होने पर लाभ से हानि ही अधिक होती है। उर्ध्वरेता होने पर एक अपूर्व आनंद मिलता है, वह बड़ा असाधारण है, स्त्री संग के सुख से हजारों गुना अधिक। पर यह भी शारीरिक आनंद है, इसे लाभकर साधक लक्ष्य भूल सकता है, सोचता है यही ब्रह्मानंद है। यहीं कई लोग बंध जाते हैं।

दुर्वासा मुनि उर्ध्वरेता थे। उनकी अलौकिक शक्तियाँ भी थीं। वे किसी की परवाह नहीं करते थे। अन्त में अपराधी होकर सब नष्ट हो गया। उर्ध्वरेता न होना ही अच्छा है। इसके बिना भगवान नहीं मिलते ऐसी बात नहीं है। कोई यदि दस बार स्त्री संग करे, पर उसमें श्रद्धा भक्ति है तो भगवान को लाभ कर सकता है, उसकी हानि न होगी। परंतु कोई उर्ध्वरेता यदि अहंकारी है तो उसका कुछ भी न होगा।

धर्म के आकार में मनोमुखी कुबुद्धि व परिणाम।

२८ पौष बृहस्पतिवार। कुछ दिनो से मैं यंत्रणा से छटपटा रहा हूँ। अब ठाकुर की उपदेश वाणी सुनकर अन्तःकरण और जलने लगा। मैं अस्थिर होकर सोचने लगा-हाय, हाय क्या ही सर्वनाश किया है। अपनी भ्रांत बुद्धि से ठाकुर की बातें ठीक से न समझकर विपथ में चला। अब अभ्यस्त दोष दूर करना दुष्कर है। देखता हूँ कि विचार बुद्धि से सोचा था विधिवत् चलना ही साधन है। इस साधन से हमें क्या लाभ? लाभ हानि सभी तो गुरु के हाथों में है। प्रयत्न से जब कुछ नहीं होता गुरुकृपा से ही सब कुछ होता है। तो वृथा कष्टपूर्वक कठोर साधन-भजन करने से क्या प्रयोजन? बल्कि देखता हूँ तीव्र साधन में अनिष्ट ही होता है। ठाकुर की कृपा से कोई अच्छी अवस्था मिलने पर साधक सोचेंगे यह उनके प्रयास का ही फल है। भगवान की कृपा का दान भी वह कृतज्ञ होकर ग्रहण नहीं कर पाता। फलतः उसे गुरुस्थान में अपराधी होना पड़ता है। अतएव बिना साधन भजन किये, प्रयत्न किए यदि मुझे कोई अवस्था प्राप्त

हो तो उसे ही तो मैं गुरुदेव की मानकर सहज रूप से लूँगा। इस प्रकार धर्म के आकार में मनोमुखी, असत्य स्वेच्छाधारी बुद्धि उत्पन्न होकर मन को डाँवाडोल करने लगी। मैं पुरुषाकार मूलक कष्टकर संयम, अभ्यास क्रमशः त्याग देने को प्रवृत्त हुआ।

अब देखता हूँ हित के बदले विपरीत कर बैठा हूँ। आहार का नियम छोड़कर लोभी, रोगी बन गया हूँ। पैर के अँगूठे में दृष्टि न रखकर स्त्रियों को देखकर निस्तेज काम रिपु फिर जाग रहा है। वाक् संयम का नियम छोड़ वाचाल और अभिमानी हो गया हैं। साधन भजन में आग्रह न रखने से प्रति श्वास में नाम जप, कुंभक की चेष्टा भी नहीं रही। इससे मन की स्थिरता तथा चित्त की प्रफुल्लता खो चुका हूँ। सोचा था वाक् संयम, वीर्यरक्षा से उर्ध्वरेता या वासिद्धि ही तो हो सकते हैं? उससे क्या लाभ? श्वास-प्रश्वास में नाम जपकर भी पूर्ण न हो सकूँगा। यह सब गुरुकृपा से संभव है, तो वृथा कष्टपूर्वक साधन भजन कर उत्कट क्लेश क्यों पाना? जीवन का एकमात्र लक्ष्य ठाकुर के प्रति प्रेम, एकान्त अपनत्व तथा उनका अविच्छन्न संगलाभ ही निश्चित किया था, किन्तु कुग्रह में पड़कर मेरी यह दुर्मति क्यों हुई, ऐसा विपर्यय क्यों हुआ? जिन्हें चाहता हूँ, जिन्हें अपना बना लेना चाहता हूँ, उनकी ही आज्ञा उल्लंघनकारी क्यों बना? जिन्हें यथार्थ चाहता हूँ उनकी तृप्ति के लिए क्या नहीं कर सकता? आनंदपूर्वक ठाकुर के आदेश पालन ही तो उनके प्रति प्रीति का निदर्शन होगा। ठाकुर के आदेश का तात्पर्य समझने का प्रयत्न न कर निर्विकार हो उसके पालन में आनंद पाना मेरा कर्तव्य होना चाहिये। कुबुद्धि वश उनका आदेश उल्लंघन कर मैंने अपना सर्वनाश कर लिया है। अब क्या उपाय होगा सोचकर अधीर हो

उठा।

धर्म बुद्धि में अधर्म में क्यों पड़ जाता हूँ? अब क्या उपाय है?

आज कुछ गुरुभाईयों से वार्तालाप कर जान पाया कि उनकी भी यही दशा हुई। हम सबने ठाकुर के पास जाकर अन्तःकरण की दशा बताकर पूछा-धर्म छोड़ तो कुछ नहीं चाहते फिर विपर्यय क्यों होता है? धर्म बुद्धि से अधर्म करके जो जलन भोग रहे हैं उसे किस उपाय से दूर करें?

ठाकुर ने उत्तर दिया-**बाहर जैसे ग्रहों का प्रभाव है, भीतर भी उसी प्रकार है। जो साधन भजन करते हैं, वे समय-समय पर इस बात का अनुभव करते हैं। पूर्व काल के साधकगण इसे इन्द्रदेव का अत्याचार कहते हैं। मुसलमान, ईसाई इसे ही शैतान कहा करते हैं। इससे किसी का छुटकारा नहीं। केवल महादेव, शुकदेव, ब्रह्मदेव तथा हरिदास ठाकुर ही रक्षा पा सके थे। पहले काम, क्रोध के रूप में, फिर वासना कामना के रूप में, उसमें भी न हो तो धर्म रूप में आकर साधक का सर्वनाश करते हैं। इसकी एक ही औषधि है-धैर्यपूर्वक पड़े रहकर श्वास-प्रश्वास में नाम जप करते जाना। रोग की औषधि खाते-खाते उसमें अरुचि हो जाती है कष्ट होता है फिर भी औषधि लेनी ही पड़ती है क्योंकि दूसरा उपाय नहीं है। साधन भी उसी प्रकार करना ही पड़ता है। पूर्व जन्मों में जो कर्म किया गया है। उनसे फल भोगकर मुक्ति पाने के लिए कई जन्म जन्मांतर फिरना पड़ता है। भगवान के नाम के गुण से सहज ही मुक्ति मिलती है। विघ्न यही**

है कि नाम में रूचि नहीं आती। चारों ओर दुःख कष्ट है। अग्नि कुण्ड में रहकर नाम करना होगा। प्रह्लाद चरित्र इसका ज्वलंत उदाहरण है। आहार में विष, अग्नि में फेंकना, हाथी के पैरों के नीचे डालना, सभी विपक्षी, अस्त्राघात-केवल एक सहारा हरिनाम। अन्त में जय प्रह्लाद की ही हुई। भगवान नरसिंह रूप में प्रकट होकर उनकी रक्षा किये। इस साधन मार्ग में भी उसी ज्वाला यंत्रणा के भीतर से जाना होगा। यह सब अग्नि परीक्षा है। इसमें जितना जलोगे, शुद्ध हो जाओगे। ये नाना प्रकार से साधक के प्रवृत्ति व संस्कार के अनुरूप आते हैं। मैं भी यंत्रणा में आत्महत्या करने गया था। परमहंसजी ने रक्षा की। जन्म जन्मांतर के संचित पाप दग्ध करने में अनेक अग्नि की आवश्यकता है। यह यंत्रणा ही मुक्ति का हेतु है। यह जिसे हो वह कृत्रिम धर्म का भान नहीं कर सकता। पाप होते हुए भी यदि धर्म में आनंद हो तो विडम्बना ही है। जैसे रोगी कुपथ्य खाकर सुखी हो। पहले यंत्रणा में सूखकर निरस होवोगे। एक बिन्दु विषय रस रहते भी ब्रह्मानंद नहीं आता। इन यंत्रणा में कई सूक्ष्मतत्त्व हैं। समय पर सब प्रकट होवेंगे, तब समझोगे। अभी श्वास-प्रश्वास में नाम जप करो। उसी से सारे कष्टों का अवसान होगा।

प्रश्न-कितने समय तक हमें यंत्रणा भोगनी पड़ेगी?

ठाकुर-यह कहा नहीं जा सकता। मुझे तो अभी भी परीक्षा करने आते हैं। उस दिन अचानक देखा कमरे में चार स्त्रियाँ है, मुझे वे नाना प्रकार से परीक्षा करने लगी। जब किसी प्रकार से सफल न हो सकीं तो दो कलश में मोहरें रखकर बोलीं-आप यह ग्रहण कीजिए। मैंने कहा-इससे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। तब वे

बोलीं-हमें शिष्या बना लो। मैंने कहा-तुम कौन हो? वे बोली-हम पतिता नारियाँ हैं। हमारा उद्धार कीजिए। मैंने कहा-सिर के बाल मुँड़वाकर, अलंकार त्यागकर, छिन्न वस्त्र पहनकर आओ। यह सुनकर वे हँसकर बोलीं-कितने समय तक हमारी चरण सेवा किए अब पहचान भी नहीं रहे हो? अच्छी बात है, तुम्हारा कल्याण हो। हम माया की दासियाँ हैं। हमें आशीर्वाद दो। यह कहकर वे चली गईं।

अल्पवयस्क गुरुभ्राता नरेन्द्र के प्रश्नों का ठाकुर द्वारा प्रत्युत्तर।

बानरीपारा निवासी जमींदार श्रीनारायण घोष के नाबालिग पुत्र, अद्भुत प्रतिभासम्पन्न हमारे गुरुभाई नरेन्द्रनाथ घोष के कुछ जटिल प्रश्नों का ठाकुर ने प्रत्युत्तर दिया।

प्रश्न-हम लोगों का क्या त्राण होगा?

उ.-**हाँ, हाँ होगा।**

प्रश्न-आपको यदि हम स्मरण करें तो क्या आप जान पाते हैं?

उ.-**हाँ, हाँ।**

प्रश्न-पहले जितनी बार स्मरण किया है वह सुन पाए थे?

उ.-**हाँ।**

प्रश्न-गुरु क्या सर्वत्र है?

उ.-**हाँ।**

प्रश्न-तब आप सर्वदा ही हमारे पास रहते हैं?

उ.-**हाँ।** थोड़ा हँसकर बोले-**नाम करते रहो, जब आँख खुल जाएगी तब सब कुछ समझ जाओगे।**

प्रश्न-आपके पास साधन लेकर क्या रिपुओं की उत्तेजना बढ़ती है?

उ.-**हाँ, साधन लेकर रिपु की उत्तेजना बढ़ती है। जैसे निर्वाण के पहले आग की है। बढ़कर चिरकाल के लिए बुझ जाती है।**

प्रश्न-रिपुगण उत्तेजित होने पर क्या उपाय है?

उ.-**रिपुओं की उत्तेजना में पड़ने पर नाम की उत्तेजना भी बढ़ा देना चाहिए।**

प्रश्न-भगवद्भक्त एवं जो उनके शरीर में लीन हो जाएँ इन दोनों में क्या अंतर है?

उ.-**भक्तजन लीन हो जानेवालों की अपेक्षा श्रेष्ठ, अतुलनीय आनन्द के अधिकारी होते हैं।**

प्रश्न-महाप्रभु के भक्तगण क्या सभी सिद्ध पुरुष थे?

उ.-**हाँ।**

प्रश्न-उनके कई हजार भक्त थे सभी सिद्ध थे-यह कैसे?

उ.-**हाँ, वे भगवान के प्रत्येक अवतार काल में साथ-साथ आते हैं। ऐसा सभी कालों में चलेगा।**

प्रश्न-(अभय बाबू) नरोत्तम ठाकुर ने उन्हें नित्य सिद्ध कहा है। यह क्या है?

उ.-**हाँ, यह भी सुसत्य है जानो।**

प्रश्न-महाप्रभु क्या स्वयं भगवान अवतीर्ण हुए थे?

उ.-**हाँ।**

प्रश्न-जो अनन्त ब्रह्माण्ड के एक मात्र ईश्वर हैं वे ही स्वयं पृथ्वी पर नवद्वीप में मानव रूप में अवतीर्ण हुए थे?

उ.-**हाँ। योगमाया का अवलम्बन लेकर अवतीर्ण हुए थे। स्वयं भगवान के लिए संभव है कि एक साथ कोटि ब्रह्मांड में अवतीर्ण होकर लीला करें-जीव इसे क्या समझेगा?**

प्रश्न-नित्यानंद क्या हैं?

उ.-**अंशावतार, बलराम।**

प्रश्न-अद्वैत आचार्य?

उ.-**अंशावतार-महाविष्णु।**

प्रश्न-बुद्धदेव क्या स्वयं भगवान अवतीर्ण हुए थे?

उ.-**हाँ।**

प्रश्न-यीशु मछली माँस क्यों खाते थे?

उ.-**तत्कालीन लोगों में माँस, मछली खाना प्रकृतिगत था, अतः वे भी इस सम्बन्ध में मानववत् आचरण कर, खाते थे।**

प्रश्न-वे कौन थे?

उ.-**स्वयं ईश्वर अवतीर्ण हुए थे।**

प्रश्न-सब तो यह बात विश्वास नहीं करते?

उ.-**विश्वास भले न करें, जो वास्तविक बात है, वही बोलो।** (यह भाव दर्शाने लगे।)

प्रश्न-आप सबके सामने बोल सकते हैं कि भगवान, बुद्ध, यीशु और चैतन्य महाप्रभु का रूप धारण कर अवतीर्ण हुए थे?

उ.-**स्वच्छन्दतापूर्वक।**

प्रश्न-राम, कृष्ण आदि के रूप में जैसे पुस्तकों में व्यक्त है, सब सही है या रूपक?

उ.-**नहीं, नहीं-सब सही है, ठीक है।**

प्रश्न-भगवान जितनी बार अवतार ग्रहण किए हैं उनमें शायद

चैतन्य लीला श्रेष्ठ है, क्योंकि तब दो अंशावतार तथा स्वयं अवतीर्ण हुए।

उ.-**हाँ, ऐसी लीला और नहीं हुई।**

प्रश्न-अधिक हुआ ही क्या? केवल भारत के अल्प स्थानों में ही तो मात्र प्रेमभक्ति वितरित कर पाए थे।

उ.-**नहीं, उस लीला का अन्त नहीं हुआ। वे तो कुछ दिन धरती पर रहकर मानो झाँककर अन्तर्धान हुए है। देखते नहीं ईसाई सम्प्रदायों में भी मृदंग बज रहा है। एक दिन ऐसा आयेगा जब सर्वत्र मृदंगमय हो जायेगा।**

प्रश्न-कलियुग में भगवान जितनी बार अवतीर्ण हुए, अन्य युगों में तो उतनी बार नहीं हुए?

उ.-**कलियुग में अनेक अवतार हुए। और भी होंगे।**

प्रश्न-वर्तमान समय क्या कलियुग है?

उ.-**हाँ।**

प्रश्न-कलियुग में अवतार का क्या कोई वर्ण निर्णय है?

उ.-**नहीं ऐसा कुछ नहीं है।**

प्रश्न-कलियुग तो धन्य हो गया?

उ.-**हाँ, हाँ।**

ठाकुर बोले-**अवतार तीन प्रकार के हैं-पूर्णावतार (अवतीर्ण) अंशावतार तथा शक्त्यावतार।।**

प्रश्न-जिनमें ईश्वरीय शक्ति का प्रकाश होता है, क्या वे ही शक्त्यावतार हैं?

उ.-**हाँ।**

प्रश्न-हमारे हृदय में यदि ईश्वर की शक्ति की अनुभूति हुई तो क्या

हम भी शक्त्यावतार हुए?

उ.-**हाँ-**(हँसकर उपहासपूर्वक बोले)-**सारे अवतार ही तो हो।**

प्रश्न-सौभाग्य क्रम में किसी महात्मा के हृदय में भगवान का प्रकाश हो, तो क्या उन्हें अंशावतार कहा जा सकता है?

उ.-**हाँ ऐसा हो सकता है।**

प्रश्न-वे श्रेष्ठ हैं या निताई (नित्यानंद) अद्वैत श्रेष्ठ हैं?

उ.-**निताई, अद्वैत भगवान के अंग हैं। ये आदिकाल से उनमें हैं।**

प्रभु बोले-**नानक अंशावतार थे।**

प्रश्न-मुहम्मद क्या थे?

उ.-**वे एक महापुरुष थे।**

प्रश्न-क्या खुदा के दोस्त थे?

उ.-**हाँ थे, पर उससे क्या?**

प्रश्न-काली, दुर्गा रूपक हैं या ऐसे ही रूप हैं?

उ.-**नहीं, नहीं! वे सब ठीक-ठीक हैं।**

प्रश्न-वे क्या हैं?

उ.-**वे सब वे ही हैं।**

प्रश्न-वह कैसे?

उ.-**ईश्वर के अनन्त भाव।**

प्रश्न-(अभय बाबू) आपने कहा था हजारों कृष्ण दिखाई दिए थे, यह क्या सत्य है?

उ.-**हाँ यह सत्य ही जानो।**

प्रश्न-कई लोग कहते हैं कि अन्य साधु महात्माओं की सेवा करने या उनका संग करने का क्या प्रयोजन? गुरु की भक्ति करने

पर ही सब होता है-वह कैसे?

उ.-**जो दूसरे साधुओं की भक्ति करना नहीं जानते वे गुरु की भी भक्ति करना नहीं जानते।**

प्रश्न-आप क्या, जिसका जैसा विश्वास है उसे उसी के अनुरूप कहा करते हैं?

उ.-**नहीं, ऐसा नहीं। ज्वर रोग में कुनैन सेवनीय है किन्तु आँव में वह विषवत् होगा।**

प्रश्न-जो वास्तविक है वही कहते हैं?

उ.-**हाँ। प्रश्न-गोसाईं! प्रेमभक्ति लाभ कैसे होगा?**

उ.-**प्रेमभक्ति सहज नहीं है। यह कोई किसी को दे नहीं सकता। किसी-किसी को सौभाग्य क्रम से लाभ होता है। अभी पढ़ो, विवाह करो, अर्थ कमाओ फिर सौभाग्य होने पर तुम्हें प्रेम भक्ति लाभ होगा।**

उन्होंने फिर कहा-**तुम्हारे लिए पितृपूजा तथा पितृ आज्ञा पालन करने से ही सब हो जाएगा।**

प्रश्न-प्रेमभक्ति कोई किसी को दे नहीं सकता?

उ.-**नहीं।**

प्रश्न-फिर, नित्यानन्द प्रभु ने तो प्रेम वितरण किया था?

उ.-**हाँ, वे ही कर सकते हैं।**

प्रश्न-वे अभी कहाँ हैं?

उ.-**सर्वत्र।**

प्रश्न-अद्वैत प्रभु?

उ.-**सर्वत्र।**

प्रश्न-महाप्रभु?

उ.-**सर्वमय।**

प्रश्न-शंकराचार्य मुक्त पुरुष थे?

उ.-**हाँ, शिव के अंशावतार थे।**

प्रश्न-क्या वे भगवान में लीन हो गए?

उ.-**नहीं।**

प्रश्न-भगवान जब अवतीर्ण होते हैं तब लगता है वे मनुष्य की तरह कितनी कष्ट और यातना भोग रहे हैं, मनुष्य की भाँति आचरण करते हैं-यह कैसे?

उ.-**मनुष्य की प्रकृति के अनुसार नहीं चलेंगे तो मनुष्य को पकड़ ही कैसे पाएंगे।**

प्रश्न-नित्यानन्द और अद्वैताचार्य में कौन श्रेष्ठ है?

उ.-**कोई छोटा बड़ा नहीं, दोनों समान हैं।**

प्रश्न-शंकराचार्य को तो और जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ेगा?

उ.-**कोई नहीं जानता, भगवान का आदेश होने पर हो भी सकता है।**

प्रश्न-गोसाईं, मैं एक वर चाहता हूँ।

उ,-**क्या वर?**

प्रश्न-आप पर कभी मेरी भक्ति व विश्वास टल न जाय और आप वास्तव में क्या हैं, यह समझ पाऊँ।

उ.-**हाँ तथास्तु।**

प्रश्न-विश्वास भक्ति डिग तो नहीं जायेगी?

उ.-**नहीं।**

प्रश्न-मछली खाऊँ या नहीं?

उ.-**अपराध जान पड़े तो मत खाओ।**

प्रश्न-मेरे, मछली खाने के संबंध में क्या करूँ?

उ.-**तुम्हारी जी इच्छा।**

प्रश्न-मेरी तो न खाने की इच्छा है, किन्तु घर में गुरु-जन असंतुष्ट होंगे इसलिए त्याग नहीं पा रहा हूँ।

उ.-**उनके पास विनीत होकर, पैर पकड़कर प्रार्थना करना कि वे मछली छोड़ने की अनुमति दें।**

प्रश्न-आप हमारे देश की ओर नहीं जाएंगे?

उ.-**भगवान ले जायँ तो जाऊँगा।**

प्रभु बोले- **'गान करो'**-गाने को बोले। वह गीत गाने लगा।

प्रभु बोले-**हरिबोल! हरिबोल!** सब हरिबोल कहने लगे। प्रभु नृत्य करने लगे। प्रभो, तुममें मेरी भक्ति, विश्वास रहे। प्रभु! इस अधम को क्या अपने चरणों में स्थान दोगे? इस जघन्य को तुम्हारे भक्तवृन्द का दास बना दो व उनके प्रेम का पात्र कर लो। जय प्रभु! करुणा के अवतार।

जय जय श्री गुरु प्रेम कल्प तरु।

अदभुत् जाको प्रयास।

हिय अगुआन तिमिर ज्ञान समुद्र।

सुचन्द्र किरण से करो नाश।

प्रभु बोले-**नाम जप करते रहो-नाम करते हुए कितना कुछ देखोगे, सुनोगे उनकी ओर ध्यान न देकर नाम करते रहो।**

प्रश्न-गोसाईं! मेरा अहंकार नाश करने के लिये ही क्या आपने पहले साधन नहीं पाओगे कहा था?

उ.-**हाँ।**

प्रभु बोले-**'ॐ हरि' भावावेश में अचेत होने पर यह नाम**

सुनाना चाहिये।

माता का निर्वसन हो नृत्य। गोसाईंजी का आनंद।

श्रद्धेय गुरुभ्राता श्रीअभय नारायणजी छुट्टी में गेण्डारिया आश्रम आये। वे कलकत्ते में कईयों के पास ठाकुर के असाधारण गुण तथा अलौकिक अवस्थाओं के बारे में सुन चुके थे। अतः उनमें ठाकुर की परीक्षा लेने का कौतूहल उत्पन्न हुआ था। आश्रम जाकर वे ठाकुर के पास आम के वृक्ष के नीचे जा बैठे। क्रमशः शहर के बहुत से गणमान्य, उच्चपदस्थ लोगों से आम के वृक्ष का तल खचाखच भर गया। ठाकुर कभी-कभी अस्पष्ट स्वर से तो कभी लिखकर उनसे धर्मप्रसंग की नाना प्रकार की बातें करने लगे। आज आम के पेड़ के नीचे ठाकुर के पास बहुत से लोगों को देखकर पगली दादीमाँ बड़ी हर्षित हुईं। वे दौड़कर ठाकुर के पास पहुँची और पहनी साड़ी सिरपर लपेटकर नग्न होकर गीत गाने और नृत्य करने लगीं। ठाकुर भी सजल नेत्र, हर्षोल्लास से नृत्य के ताल में चुटकी बजाकर आनंदसहित-आहा! आहा! कहने लगे। दादीमाँ जब तक नाचती रहीं, ठाकुर भक्तिभाव से विभोर, गद्गद् हो उनका आनंद बढ़ाते रहे। कुछ देर नृत्य करके दादीमाँ आश्रम के दक्षिण की ओर तालाब के किनारे चली गई। यह दृश्य देखकर सभी अवाक् रह गए। बाद में हरिनारायण बाबू ने कहा-'इस घटना को देखकर मैं गोसाई को पहचान गया। कोई संशय न रहा तथा परीक्षा करने की अब प्रवृत्ति भी न रही। साधारण मनुष्य क्या ऐसा कर सकता है?'

श्रद्धा व गुरुकरण के विषय में प्रश्न। धर्म की

बाधा।

गुरुभ्रातागण ठाकुर से श्रद्धा, गुरुकरण तथा धर्मजीवन प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा या अनिष्टकर क्या है-पूछने लगे। ठाकुर लिखकर या अस्पष्ट स्वर में उनका उत्तर देने लगे।

ठाकुर-**मुक्तपुरुषों को सहज ही नहीं पहचाना जा सकता। मुक्तपुरुषों के भाव, भाषा अत्यंत गंभीर होती है। कभी-कभी तो अश्लील भाषा का भी प्रयोग करते हैं। आचरण भी कभी ऐसा करेंगे कि साधारण व्यक्ति पहचान न सके अतएव श्रद्धा भी न करें। शास्त्र में कहा है-जिनमें श्रद्धा का विकास नहीं हुआ हो वे धर्म के लिए कई गुरुओं का आश्रय ले सकते हैं। जैसे मधुमक्खी एक पुष्प से दूसरे पुष्प में जाती है। इससे यथार्थ धर्म की प्राप्ति नहीं होती। समय आने पर अपने आप श्रद्धा का विकास होता है, तब मन एक स्थान पर स्थिर होता है। यह तंत्र का मत है। उपनिषद् का मत यह है कि जबतक श्रद्धा उत्पन्न न हो तब तक गुरुकरण नहीं करना चाहिये।**

श्रद्धा होने पर पैतृक गुरु के पास दीक्षा ली जा सकती है किन्तु पैतृक गुरु के पास दीक्षा लेनी ही पड़ेगी ऐसा शास्त्र में कहीं नहीं लिखा है। कुल गुरु के पास दीक्षा लो-यह व्यवस्था भी है। किन्तु कुलगुरु का अर्थ पैतृक गुरु नहीं है। जिनकी कुलकुण्डलिनी शक्ति जागृत हुई हो वे ही कुलगुरु हैं। शास्त्रों में है कि शिष्य गुरु को तथा गुरु शिष्य को एक वर्ष तक परीक्षा करके देखे। यदि दोनों शास्त्रोक्त लक्षण युक्त हों तभी दीक्षा दी जाए। अपात्र से दीक्षा लेने या अपात्र को दीक्षा देने से कोई लाभ नहीं होता। मनु ने मंत्रदाता गुरु के बारे

में कुछ नहीं कहा। जो वेद पढ़ाते हैं, उन आचार्य गुरु के सम्बन्ध में ही कहा है। वेद उपनिषद में जो है वह केवल ब्राह्मणों के लिए है। मंत्रदाता गुरु के विषय में तंत्र, सनतकुमार संहिता, गौतम संहिता तथा नारद पांचरात्रादि ग्रंथों में है।

यदि स्त्री गुरु से दीक्षा लेनी हो तो उसी गुरु वंश के किसी पुरुष को उपगुरु बनाकर, उनसे सब पूजा पद्धति सीखकर, पुरश्चरण करने पर उपकार मिलता है। यह देशाचार है, शास्त्र का विधान नहीं है। आजकल शास्त्र अनुरूप दीक्षा नहीं होती। सद्गुरु दीक्षा लेने में कोई विचार नहीं करना पडता। तिथि, क्षण कुछ भी नहीं देखना पड़ता। कोई लक्षण देखकर सद्गुरु पहचाने भी नहीं जा सकते। कई जन्मों के साधन भजन तथा भगवत् कृपा से समय आने पर सद्गुरु पहचाने जा सकते हैं। गुरु लाभ न हो तो भी विधिवत् व्यवस्था मानकर चलना चाहिये। शास्त्र के अनुरूप चलने पर धोखा नहीं होता।

गुरु पर विश्वास होते ही धर्म लाभ होता है। पर यह तो सहज ही नहीं हो पाता। धर्म साधन करके अर्थात् गुरु जो कहें वैसा ही करते-करते क्रमशः विश्वास का जन्म होता है। जितने दिनों तक हृदय में संशय है उतने दिनों तक उसकी क्रिया होगी ही। जैसे काम, क्रोध, लोभ अन्तस् में रहते उसे अतिक्रमण नहीं किया जा सकता, संशय भी उसी प्रकार है। यह भी आत्मा की अवस्था है। एक मात्र नाम-जप द्वारा ही आत्मा के सब संशय तथा पाप नष्ट हो जाते हैं। तब विश्वास अपने आप आयेगा। प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में नाम जप करना ही एकमात्र उपाय है।

जो जिस भाव से धर्मलाभ कर रहा है, करे-मैं किसी की

निंदा नहीं करूँगा। बल्कि प्रशंसनीय कुछ हो तो प्रशंसा ही करूँगा। भगवान कर्ता हैं, वे किसका किस तरह से उद्धार करेंगे मैं क्या जानूँ? ऐसा सोचकर चुप रहना ही अच्छा है। धर्मार्थियों के लिए किसी के किसी विषय को लेकर परिहास करना ठीक नहीं। परनिन्दा सदा त्याज्य है। प्रत्येक में कुछ न कुछ गुण हैं। दोष की आलोचना करने से आत्मा मलिन होती है। दोष त्यागकर गुण का अंश ग्रहण करना चाहिये। इससे हृदय विशुद्ध होता है। दूसरों को, किसी के सामने हेय बताने के लिए कुछ कहना ही परनिन्दा है। विद्वेषपूर्वक सत्यवचन कहना भी परनिन्दा है। जो किसी के उपकार के लिए कहा जाए, वह परनिन्दा नहीं होती। जैसे पिता दोष की बातें बालक को बताते हों। किसी का दोष बताना हो तो केवल उसके उपकार की बात ध्यान रखकर ही बताना चाहिये। किसी के हृदय में चोट न पहुँचे इस प्रकार बोलना चाहिये। धर्मजीवन प्राप्त करने में परनिन्दा जैसे अनिष्टकारी तो काम, क्रोध आदि कोई नहीं है।

शराबी के आनंद में ठाकुर का आनंद।

भागवत् पाठ के बाद दोपहर लगभग साढे तीन बजे एक मध्यमवर्गीय व्यक्ति शराब पीकर नशे में लडखडाता हुआ आकर बोला-‘साधु दर्शन करने आया हूँ। कहाँ हैं साधु?’ बार बार ऐसा कहने लगा। हम उसे आश्रम से भगा न दें इसीलिए ऐसा कहता था। ठाकुर के कहने पर हम उसे ठाकुर के पास ठाकुर के कमरे में ले गए। ठाकुर को देखकर वह बड़ा ही हर्षित हुआ और हाथ मुँह हिलाकर कितनी ही बातें करने लगा। ठाकुर भी मन्द-मन्द

मुस्कुराते हुए हामी भरने और उसका आनंद बढ़ाने लगे। अब वह ठाकुर के आसन के समीप बैठकर बातें करने लगा। कभी हँसते हुए ठाकुर की गोद में गिर पडता ठाकुर स्नेहपूर्वक उसके सिर पर हाथ फेरने लगे। यह सब देखकर हमारा हृदय क्रोध से जलने लगा। पर करें भी तो क्या? ठाकुर उसे लेकर आनंदित हो रहे हैं। हम कुछ कह भी नहीं सकते। अन्त में शराबी जांघ और आसन पर उल्टी करने लगा। यह देखकर ठाकुर की अनुमति की प्रतीक्षा किए बिना मैंने उसे खींचकर उठाया और बाहर रास्ते में छोड़ आया। ठाकुर से मैंने कहा-मद्यपायी शराबियों को तो डाँटना चाहिये, उसे लेकर आप इतना आनंदित क्यों हो रहे थे?

ठाकुर मेरी ओर सजल नेत्रों से देखकर अस्पष्ट स्वर में बोले-**संसार जला जा रहा है। सबका मुख विषादपूर्ण है। किसी के मुख में हँसी या हृदय में आनंद नहीं है। शराबी को भी यदि हृदय खोलकर हँसते देखूँ, जरा आनंदित देखूँ तो बड़ा आराम मिलता है, आनंद आता है।** एक गुरुभ्राता ने पूछा-शराबी को बढ़ावा देना या नशेबाज को दान देना क्या उचित है? ठाकुर-**जो नशेबाज है नशा न करने पर असह्य यंत्रणा पाते हैं। उन्हें कोई कुछ न दे तो चोरी करेंगे। भगवान भी क्या करते हैं? वे ही शराबी को शराब व वेश्या को उपपति जुटाते हैं।**

भक्ति कैसी होती है? ज्ञान द्वारा क्या भगवान को प्राप्त कर सकते हैं?

कुछ व्यक्ति आकर ठाकुर से पूछे-भक्ति किस प्रकार होती है? हमें भक्ति क्यों नहीं आती?

ठाकुर-अपने को अभक्त, दीन, हीन कंगाल मानकर यदि भगवान के चरणों में पड़े रहो तो भक्तिदेवी अवश्य कृपा करेंगी। किन्तु जहाँ मैं भक्त हूँ यह अभिमान है, वहाँ भक्तिदेवी नहीं जाती। जिससे भगवान का भजन किया जाये वही भक्ति है। साधकगण इस भक्ति को वैधी और अहैतुकी ऐसे दो भागों में बाँटते हैं। वैधी भक्ति चार प्रकार की है-आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी तथा ज्ञानी। अभक्ति, शुष्कता, पाप-ताप आदि जब हृदय को कातर कर डालते हैं-भगवान का नाम लेने में भी अविश्वास आ जाता है, उस समय दीन हीन कंगाल की भाँति हाथ जोड़कर उनकी ओर ताकते रहना, उनका नाम लेना-यही वास्तविक रूप में आर्त भजन है। शुष्कता में या अविश्वासपूर्वक नाम लेने पर भी वह व्यर्थ नहीं जाता। कड़वी दवा अनिच्छा से पीने पर भी रोग की शांति होती है। भगवान के नाम से पातकी उद्धार होता है। यह उसका वस्तुगुण है। द्रव्यगुण किसी बात की प्रतीक्षा नहीं करता। आग में हाथ डालो तो वह जलेगा ही। अनन्त ब्रह्माण्ड की सृष्टि करनेवाले भगवान कैसे सुश्रृंखला पूर्वक, यथा नियम उसे चला रहे हैं, सोचने में भी आश्चर्य होता है। प्रत्येक पदार्थ में दृष्टि डालो तो सभी के तत्त्व असीम लगते हैं। सबका नियम है, व्यवस्था तथा प्रयोजन भी है। हम जरा सी आंधी, तूफान, गर्मी, वर्षा की अधिकता देखते ही सृष्टिकर्ता का अतिक्रमण कर विचार करने लगते हैं और असंतोष प्रकट करते हैं। इसके मूल में अविश्वास तथा अविश्वास के मूल में स्वार्थ, परनिन्दा, हिंसा, द्वेष है। इसी से सारी दुर्गतियों की शुरुआत होती है। अतः धार्मिक व्यक्ति का प्रधान लक्षण है कि वे प्राण

जाने पर भी परनिन्दा नहीं करते। आत्मप्रशंसा भी विषतुल्य समझते हैं। हिंसा उनके हृदय में स्थान नहीं पाता। भगवान के कार्यों में अविश्वास हो तो ही असंतोष है। मनुष्य के ज्ञान द्वारा केवल सृष्ट वस्तु का ही विचार किया जा सकता है। भगवत् तत्त्व मानवीय ज्ञान के अधीन नहीं होता। इसी से ऋषियों ने ज्ञान को पराविद्या तथा अपराविद्या दो भागों से विभाजित किया है।

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।
अस्तीति ब्रुवतो हन्यत्र कथं तदुपलभ्यते॥

वाणी, मन या चक्षु-इन्द्रियों द्वारा उस आत्मा की उपलब्धि नहीं की जा सकती। केवल मात्र आत्मनिष्ठ गुरु से ही इन्हें प्राप्त किया जा सकता है। इसके अलावा अन्यत्र इन्हें पाया नहीं जा सकता। मनुष्य तुच्छ कीट है। उसका यह अहंकार कि वह भूमा ईश्वर को जानेगा? कभी नहीं। मनुष्य के ज्ञान द्वारा ईश्वर को जानना तो दूर की बात, अपने शरीर को छोड़, आत्मा तक को नहीं जाना जा सकता।

माताजी की पोथी का श्रोता मैं।

माताजी आँवला द्वादशी का व्रत करेंगी। उनके आदेश तथा ठाकुर की सहमति से घर जा पहुँचा। मँझले दादा तथा छोटे दादा भी शीघ्र घर आएंगे। व्रत का अनुष्ठान सहज नहीं। खूब समारोह चलने लगा। हमारे सभी आत्मीय बंधु नाना स्थलों से आने लगे। घर लोगों से परिपूर्ण हो गया, जिनमें स्त्रियाँ अधिक थी। पौष मकर संक्रांति के दिन से पोथी का पाठ प्रारंभ होगा। श्रोता कौन होगा, अभी तय नहीं हो पाया। श्रीमद्भागवत् के दशम स्कन्ध अथवा

रामायण महाभारत के अंश विशेष का पाठ करने की अपेक्षा संपूर्ण ग्रन्थ पढ़ना अच्छा होगा सोचकर, मैंने आध्यात्म रामायण पाठ का प्रस्ताव रखा। माँ तथा सभी सम्मत हुए। श्रोता कौन होगा इस बात पर बहस होने लगी। माँ की इच्छा थी ताऊजी श्रोता बनें। परंतु मैंने आपत्ति उठाई क्योंकि वे अत्यंत वृद्ध हो गए हैं। श्रोता को व्रतधारी का प्रतिनिधि बनकर संयम सहित ग्रंथ का श्रवण करना होता है। उसे श्रवण का फल नहीं मिलता, वह व्रती को प्राप्त होता है। अतः उन्हें प्रतिनिधि बनाकर श्रवण के फल से वंचित करने की भी मेरी इच्छा नहीं हुई। सबकी सम्मति से मैं ही श्रोता बनूँ, ऐसा निश्चय किया गया।

धर्म की आड़ में विपरीत बुद्धि। स्वप्न-दुर्दशा।

कुछ दिनों से धर्म की आड़ में विपरीत बुद्धि ने मुझे विपदग्रस्त कर दिया है। सोचा था, गुरुदेव की कृपा से सारी अवस्थाएँ प्राप्त होंगी। अतः सब छोड़कर उनका कृपाप्रार्थी होकर एक कातर होकर पड़े रहना ही अपना कर्तव्य मान लिया था। जो सब कार्यों के नियंता हैं, उनके अस्वीकार कर अपनी कोशिश द्वारा किसी अवस्था को पाने के लिए साधन भजन करना गुरुद्रोह के सिवा और क्या है? कुछ दिनों से इस बुद्धि के कारण ठाकुर के प्रिय आदेशों के पालन के प्रति भी उदासीन हो गया हूँ एवं साधनभजन, तपस्या, संयम आदि छोड़कर संकट में पड़ गया हूँ। ठाकुर के आदेशासानुसार चलकर जो अपूर्व अवस्थाएँ मिली थीं। उनके आदेश उल्लंघन से वे सब खो चुका हैं। किन्तु मेरी अवस्था जितनी भी दीनहीन क्यों न हो ठाकुर की कृपा से प्राप्त एक अवस्था को

देखकर अपने को असाधारण भाग्यवान समझता था। भजनशील साधननिष्ठ गुरुभाईगण जिस काम रिपु से हाहाकार कर रहे हैं, उसका अणुमात्र भी मेरे देह में नहीं है। यहाँ तक कि कभी मुझे वह स्पर्श कर सकेगा ऐसा मन में नहीं आता। अतएव नित्य यह धारणा मेरे मन में बद्धमूल हो रही है कि कई दुरावस्थाओं के बावजूद भी ठाकुर ने मुझे अन्य गुरुभाईयों से श्रेष्ठ बना रखा है। ठाकुर मुझे बारम्बार कहते थे-**इन अवस्थाओं के बारे में कभी कहीं कुछ प्रकट न करना। प्रकट हो जाने पर नष्ट हो जाती हैं।** पर गुरुभाईयों के साथ बातचीत के दौरान यह स्मरण न रहा। कभी तो यह भी सोचा कि जो मूलतः नष्ट हो गया हो,वह फिर उत्पन्न कैसे होगा? फलतः कई लोगों से अपने आत्मदंभ की बात का परिचय दे चुका हूँ। गुरुवाक्य की अवहेलना और अहंकारवश उनके कृपा के दान को स्वउपार्जित सम्पत्ति समझना-इन दो गुरुत्वपूर्ण अपराधों में ठाकुर मुझे बढ़ावा भी कैसे देते? इसीलिए दयालु ठाकुर ने आश्चर्यपूर्ण तरीके से मेरी दुरावस्था मुझे समझा दिया। इस बीच एक दिन स्वप्न में देखा की कुछ सुन्दर युवतियाँ मेरी ओर हँसती हुई अग्रसर हो रही हैं तथा सम्मुख आकर पास से चली जा रही हैं। आश्चर्य की बात है कि स्वप्न की अलीक छाया का इतना दृढ प्रभाव रहा कि मेरे चित्त को एकदम आच्छन्न कर लिया। मन से यह किसी तरह हटा न पाया। दूसरे दिन इससे भी मनोरम दृश्य देखकर मुग्ध हो गया। अब तो यही मेरा स्मरण, मनन तथा संभोग का विषय बन गया है। घर में रहकर इस दुःसह दुर्दशा के फलस्वरूप दिन रात पश्चात्ताप की आग में जलने लगा, तथा एकाग्र मन से ठाकुर से कहने लगा-ठाकुर अब मैं किस उपाय से रक्षा पाऊँ? मेरे पाप का

प्रायश्चित क्या है?

स्वप्न में आदेश।

अट्ठाईस पौष की रात को स्वप्न देखा। मेरी दीक्षा के समय ठाकुर को जैसा देखा था वैसे ही मूर्ति तेजपुंज कलेवर, दीर्घकाय, मुण्डित मस्तक गुरुदेव मेरे सामने खड़े हैं-कुछ मुस्कुराते हुए मेरी ओर ताकते हैं। उन्हें प्रणाम करते ही जाग गया। थोड़ी देर बाद फिर नींद आ गई। तब सुना-**वाक्य द्वारा जिह्वा उच्छिष्ट होती है, मौन रहो।** सुबह उठकर सोचा-यह मैंने क्या सुना? ऐसा क्यों सुना? वाक्य द्वारा जिह्वा उच्छिष्ट होती है यह बात सुन्दर भी है और नई भी। इसका अर्थ क्या है? विषय आलोचना, मिथ्यालाप तथा दोष आलोचना से जिह्वा दूषित हो सकती है। इसके अतिरिक्त वाक्य का और क्या दोष हो सकता है। स्वप्न देखकर एक आश्चर्य घटना यह भी देख रहा हूँ कि गुरुदेव का स्वप्न दिखा हुआ रूप मेरे स्मृति पथ पर प्रत्यक्ष प्रकाशमान था। पहले का रूप अन्तर्हित होकर स्वप्न दृष्ट रूप ही आँखों पर आ रहा है। ठाकुर का वर्तमान रूप किसी तरह मन में नहीं ला पा रहा हूँ। स्वप्न में सुने हुए वाक्य तथा रूपांतर का तात्पर्य क्या है सोचने लगा। मन में आया-सद्गुरु और महापुरुषों का वाक्य, तात्पर्य हमारे व्याकरण अभिधान और पार्थिव विद्या बुद्धि द्वारा बोधगम्य नहीं है। महापुरुषण जिन पर कृपा करें वही उसका यथार्थ तात्पर्य समझेगा। कारण यह है कि महापुरुषों के कार्य व चेष्टा कभी निरर्थक नहीं होते। वे जिसे जो समझाना चाहें उनकी ही कृपा से वह व्यक्ति वही समझेगा। स्वप्न देखकर मुझे बारम्बार यह लग रहा है कि ठाकुर की इच्छा है कि मैं मौन रहूँ तथा

पाप के प्रायश्चित स्वरूप मस्तक मुड़वा लूँ। संयत होकर ठाकुर के उस उज्ज्वल तमनाशक, पावन मूर्ति के ध्यान में तन्मय हो रहूँ। यह निश्चय कर दूसरे दिन मस्तक मुंडन कर स्नान करके मौन व्रत ग्रहण किया। एकांत में भजन कुटीर में रहकर बार-बार ठाकुर का वर्तमान स्निग्ध रूप स्मृति में लाने की चेष्टा करता रहा, पर न ला सका। पाँच-छह घंटे कोशिश कर हैरान रह गया। सिरदर्द करने लगा। हृदय में तीव्र ज्वलन और हाहाकार लेकर समय काटने लगा। पुनः-पुनः ठाकुर का वह मुण्डित मस्तक रूप ही चित्त में उदित होने लगा। अन्त में उसी के ध्यान में मन लगाया।

आगन्तुक आत्मीयों ने सोचा था-मेरे साथ वार्तालाप कर आनंद पायेंगे। मुझे मौन देखकर वे बड़े दुःखी हुए। मुझे भी कष्ट हुआ पर क्या करूँ। ठाकुर का अभिप्राय मानकर मौन रहना ही स्थिर कर लिया है। माताजी ने मेरे इस कार्य में कोई बाधा न डाली।

व्रत सम्पूर्ण। माँ के प्रति ठाकुर की कृपा।

२९ पौष से १७ माघ तक। २९ पौष को मकर संक्रांति के दिन से आँवला द्वादशी व्रत आरंभ हुआ। ये सत्रह, अट्ठारह दिन कैसे बीत गए, न समझ पाया। कई लोगों के आने से मानो महोत्सव का समारोह चल रहा है। उस पर श्रीपंचमी, माघी सप्तमी, भीमाष्टमी आदि पुनीत तिथियों के आने से सबके मन में अत्यंत आनंद धारा प्रवाहित हो रही है। मुहल्ले तथा पास के ग्रामों से ब्राह्मण तथा सज्जन रोज दोपहर को ग्रन्थ सुनने आते हैं। ग्राम के सभी स्त्री पुरुष रामायण सुनकर तृप्ति पाते हैं। शुद्ध सदाचारी ब्राह्मण के मुख से भक्तिभाव पूर्ण रामायण की व्याख्या सुनकर मुझे जो आनंद

मिलता है, व्यक्त नहीं कर सकता। भगवत् प्रसंग की मधुरता में मुग्ध होकर मैंने ये दिन काटे। आज माताजी का व्रत पूर्ण होगा। सुबह से ही सब उत्साह सहित अपने अपने कार्य में जुट गए। बाहर के आँगन में यथासमय सारी व्रत की सामग्री लाकर रख दी। पवित्र वेदी पर शालग्राम स्थापित कर वृद्ध पुरोहित पूजा में बैठे। शंख, घंटे, घड़ियाल व महिलाएँ मंगलध्वनि करने लगीं। धूप, गुग्गुल, चंदन आदि की सुगंध से घर भर गया। मेरी माँ शालग्राम की ओर दीनतापूर्वक देखते हुए मंत्रोच्चार करती रहीं। दर्शक मण्डली चारों ओर से व्रत पूजा देखती रही। सात्त्विक भाव से सबका चित्त प्रफुल्लित हो उठा। ऐसा लगा मानो व्रत की अधिष्ठात्री देवी व्रत स्थल में उपस्थित होकर माँ को प्रसन्न हो आशीर्वाद दे रही हैं। अखिल ब्रह्माण्ड के राजराजेश्वर दयामय भगवान, भक्त के सामान्य उपहार ग्रहण के लिए लालायित एवं उत्सुक होते हैं, ऐसा स्मरण करके मुझे रोना आ गया। मैं साष्टांग होकर मन ही मन प्रार्थना करने लगा-'ठाकुर मेरी माँ को कृपा करके अपने चरणों में स्थान दो।' व्रत यथासमय सम्पन्न हुआ। माताजी व्रतफल भगवान, के चिरशरण अभय चरणों में समर्पित कर कृतार्थ हुईं।

मुहल्ले तथा पास के पाँच-छः ग्रामों से ब्राह्मण, कायस्थों को आदरपूर्वक भोजन कराया गया। संध्या तक दलों में आकर लोग भोजन कर तृप्त हुए एवं मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हुए घर गए। दोपहर को ग्रन्थ पाठ आरंभ हुआ। कुछ समय पहले मौसी माँ ने आकर कहा-'अरे रात को स्वप्न देखा कि तेरा मौन भंग हो गया है और तू बातें कर रहा है।' इन बातों पर आस्था प्रकट न करके मैं पाठ सुनने लगा। अन्त में पाठक महाराज लंका से श्रीरामचन्द्रजी को सिंहासन

आरूढ़ कर पाठ समापन करने लगे। मैंने सोचा-ऐसा करना बड़ा ही असंगत होगा। अतः बाध्य होकर मौन भंग करके मैंने कहा-वैकुण्ठेश्वर को मर्त्य भूमि अयोध्या में लाकर राजा बनाकर रख देने पर भी निर्वासन दण्ड देने के तुल्य होगा। पाठक महोदय मेरा अभिप्राय समझ गए। श्रीरामचंद्रजी को वैकुण्ठ ले जाकर पुनः सिंहासन पर स्थापित कर, जय ध्वनि देते हुए ग्रन्थ समापन किया। मैंने भी माताजी की अनुमति से श्रवण का फल ठाकुर के श्रीचरणों में समर्पण किया और धन्य हुआ।

रामायण श्रवण से विविध संचारी भाव।

इन सत्रह, अठारह दिनों तक रामायण श्रवण-काल में ठाकुर कितनी कृपा करते रहे यह व्यक्त करने की भाषा नहीं है। पाठ आरंभ के पूर्व श्री श्री गुरुदेव को एकाग्रमन से स्मरण कर, उनकी ही अतीत लीला का श्रवण करने के लिए आह्वान करता था। मन में आता था कि वे शालग्राम में अधिष्ठित हो अपने निर्मल, अपूर्व चरित्र आख्यान श्रवण का श्रुतिसुख पा रहे हैं। ठाकुर के नवदूर्वादल श्याम अनुपम राम कलेवर का ध्यान करके मेरा चित्त उनके चरणों में संलग्न हो जाता। इस समय दयालु ठाकुर मेरे भीतर नाना प्रकार के भावों का संचार करते थे। कभी ऋषियों, कभी भक्तराज हनुमान, कभी लक्ष्मण, कभी कौशल्या, तो कभी सीता का भाव संचार कर मुग्ध तथा विभोर कर डालते थे। बाहर की स्मृति लुप्त होकर इसी भाव में मग्न रहता था। पाठ आरंभ से समापन तक तेल की धार के समान आँसू बहते थे।

बहुओं का गेण्डारिया जाना तथा दीक्षा।

ठाकुर के उपदेश।

२१ माघ बृहस्पतिवार। सुबह उठकर ढाका यात्रा करने की तैयारी करने लगा। मँझली बहुरानी आसन्न प्रसवा हैं। गर्भ नौ माह का हो चुका है। वे मेरे साथ ढाका अपने माता-पिता के पास जाएंगी। मैंने सोचा इसी अवसर पर छोटे दादा तथा रोहिणी की स्त्री भी चले तो अच्छा हो। इनकी दीक्षा ठाकुर के पास हो जाए तो निश्चिंत हो जाऊँ। अभिभावकगण सभी ठाकुर से दीक्षा लेने के विरोधी हैं। जान पायें तो कदापि ढाका न जाने देंगे। कारण पूछने पर बिना बताये भी नहीं रह सकूँगा। अतः इस अवस्था में उन्हें छुपाकर या जर्बदस्ती ले जाने के अलावा कोई उपाय नहीं है। यह सोचकर पालकीवालों को पालकी लाने को कहा। काकाजी लोग सुनें तो उन्हें धमकाकर वापस भेज दिया। इस बात को लेकर मुहल्ले के मुख्य जनों तथा अभिभावकों से मेरा जमकर झगड़ा हुआ। अन्त में भोजन के बाद जब वे विश्राम कर रहे थे, पालकी और वाहकों को बुलाकर बहुओं को लेकर शीघ्र ही सेराजदीघा जा पहुँचा। वहाँ एक बड़ी नाव किराये पर लेकर छोटे दादा व बहुओं को साथ लेकर ढाका रवाना हो गया। सारी रात अच्छी नींद लेकर प्रातः ढाका कलघाट पहुँचे। मँझली बहुरानी का शरीर अत्यंत कातर हो गया। वे वेदना से अस्थिर हो गईं। अब मैं विपत्ति में पड़ा, सोचा इस अवस्था में कहाँ जाऊँ? उनके पित्रालय ले जाने पर गेण्डारिया आना न होगा। इधर अवस्था ऐसी कि प्रसव में देर नहीं। क्या करूँ , कहाँ जाऊँ? बड़ा विपन्न हो कातरतापूर्वक ठाकुर का स्मरण करने लगा।

माताजी ने व्रत समापन की प्रणामी दस रूपये तथा दही, खीर

आदि ठाकुर के लिए भेजा था। छोटे दादा के हाथों वह सब आश्रम भेज दिया तथा ठाकुर से यह बताने को कहा कि इस अवस्था में बहुओं को दीक्षा दिलाने लाकर नाव पर रुका हूँ। मैं बहुओं को लेकर नाव में स्थिर बैठा रहा। दीक्षाप्रार्थियों को एकाएक दीक्षा नहीं मिलती। पहले वे प्रार्थी होते हैं फिर ठाकुर की दयापूर्वक सम्मति मिलने पर निर्दिष्ट तिथि में दीक्षा मिल पाती है। यह साधारण नियम है। लेकिन मैंने ठाकुर को इस विषय में जरा भी जानकारी नहीं दी और न तो उनके अभिप्राय या आदेश की प्रतीक्षा की तथा इन्हें दीक्षा के लिए ले आया। ठाकुर क्या कहेंगे नहीं जानता। बड़ी ही दुश्चिन्ता और भय होने लगा। एकाग्र मन से ठाकुर को मन की आकांक्षा निवेदन करने लगा। इधर छोटे दादा के ठाकुर से सब कुछ बताने पर वे व्यग्र होकर बोले-**जाओ, शीघ्र उन्हें आश्रम ले आओ विलम्ब न करो। अभी उनकी दीक्षा होगी।** छोटे दादा के आकर यह खबर देते ही मैं सबको लेकर आश्रम जा पहुँचा।

ठाकुर तब चाय पी रहे थे। मुझे देखकर बोले-**क्या तुम आसन्नप्रसवा बहु को दीक्षा दिलाने ले आये हो? तुम नहीं जानते, इस अवस्था में दीक्षा नहीं होती?**

मैंने कहा-जानता हूँ, किन्तु आप गर्भस्थ संतान को भी शक्ति संचार करेंगे इसी आशा से उन्हें इस अवस्था में ले आया।

ठाकुर थोड़ा हँसकर बोले-बहुओं को तैयार रहने को बोलो। मैं चाय पी लूँ अभी दीक्षा होगी। बहुएँ तैयार थीं। चाय पीकर ठाकुर अपने कुटीर में जा बैठे। बहुओं को उनके सामने बैठाया गया। स्थानाभाव से कमरे में और कोई न रह पाया, केवल मुझे ठाकुर ने उनकी बायीं ओर बैठने का आदेश दिया। ठाकुर कुछ देर गुरुॐ

गुरुॐ। कहकर चुप रहे। फिर उपदेश देने लगे।

(उपदेशों का संक्षिप्त सारांश)

१. सत्य बोलोगे, मिथ्या कभी न बोलना।

२. सर्वजीवों पर दया करना। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्ष, लता सबके प्रति दयाभाव रखोगे।

३. पिता माता प्रत्यक्ष देवता हैं। राम एवं कृष्ण की भाँति उनकी पूजा करनी चाहिये। तब सहज ही भगवान को प्राप्त किया जा सकता है। उन्हें खूब श्रद्धा भक्ति किया करो। सदा उनके आज्ञाकारी होकर चलो।

४. अतिथि सेवा करोगे। आहार आदि से सेवा न कर सको तो आसन पर बिठाकर एक गिलास जल और दो मीठे बोल कहकर उन्हें विदा करो। अतिथि रुष्ट होकर घर से न जा पाएँ, इसका ध्यान रखना चाहिये।

५. परमेश्वर स्त्री व पुरुष ऐसे दो भागों में विभक्त हैं। पुरुष में नारायण और स्त्री में लक्ष्मी रूप में विद्यमान हैं। यह भाव या कल्पना नहीं सत्य है। परस्पर इसी भाव से श्रद्धा भक्ति रखना चाहिये। इस भाव से चलने पर वह परिवार ऋषि परिवार हो जाता है, अशांति परिवार में प्रवेश नहीं करती।

६. परनिन्दा नहीं करोगे। विद्वेषपूर्वक किसी की मर्यादा नष्ट करने का प्रयास ही निन्दा वाक्य द्वारा, कार्य या उपहास द्वारा, यहाँ तक कि दीर्घश्वास छोड़कर भी निन्दा की जा सकती है। निन्दा नरहत्या से भी बड़ा पाप है।

७. मांसाहार तथा उच्छिष्ट आहार का निषेध है। मत्स्य आहार याने मछली खाने का निषेध नहीं है। किन्तु मत्स्य आहार से हानि

होती है। साधन पथ में उन्नति के साथ ही मत्स्य आहार त्याग देना पड़ता है। जब तक मत्स्य खाने की प्रवृत्ति है जबर्दस्ती छोड़ने का प्रयोजन नहीं है। **पिता, माता, सास, ससुर, पति तथा बड़े भाई का भोजन उच्छिष्ट नहीं होता, वह प्रसाद है।** इसके अलावा दूसरों की जूठन विषवत् त्याग दो।

८. गुरु जो मंत्र दें, वह कहीं प्रकट नहीं करना चाहिये। प्रकट करने पर उसकी शक्ति का ह्रास हो जाता है। जमीन के नीचे जैसे बीज रहता है, इष्टमंत्र को वैसे ही हृदय में गोपनीय रखना चाहिये, दूसरे न जान पाएँ।

बड़े दादा, छोटे दादा ने जो नाम पाया था बहुओं को भी वही नाम मिला। लगभग नौ बजे दीक्षा सम्पन्न हुई। मँझली बहुरानी खूब अच्छा प्राणायाम कर सकी। दीक्षा के बाद उनकी दशा और भी कष्टपूर्ण हो गई। वे मायके जाने के लिए अधीर हो उठीं। किन्तु नानीमाँ ने उन्हें आहार किये बिना न जाने दिया। लगभग तीन बजे दोपहर को सब लक्ष्मीबाजार उनके पित्रालय चले गए। मैं भी निश्चिंत हुआ।

शालग्राम तथा धातु निर्मित मूर्ति। महापुरुषों का विचरण काल। उनकी कृपा प्राप्ति का उपाय।

ठाकुर के मुझे शालग्राम शिला की पूजा का आदेश देने के बाद से दिनोंदिन मेरी उत्कंठा बढ़ने लगी। पहले तो कभी शालग्राम की कल्पना भी नहीं करता था। अयोध्या से मेरे लिए शालग्राम के बदले लक्ष्मीनारायण की मूर्ति आ गई है। इसे देखकर मेरा दिमाग जल उठा। ठाकुर से जाकर उसे दिखाते हुए कहा-दादा के मित्रों ने

लक्ष्मीनारायण चक्र के बदले, न समझ कर लक्ष्मीनारायण की मूर्ति भेज दी है।

ठाकुर ने कहा-**तुम्हारी यदि इच्छा हो तो इनकी भी पूजा कर सकते हो।**

मैंने सीधे कह दिया-मेरी मूर्तिपूजा करने की कोई इच्छा नहीं है।

ठाकुर-**ठीक है पीतल या धातु निर्मित मूर्तिपूजा मत करो। सुलक्षण युक्त शालग्राम जो स्वाभाविक मूर्ति है-पूजा करना। इधर-उधर यत्न पूर्वक ढूँढने पर तो मिलेगा।**

मैंने कहा-भगवान की पूजा जिस शिला में करूँगा वह यदि सुन्दर न हो तो लक्षणयुक्त होने पर भी पूजा करके तृप्ति न पा सकूँगा। अतः ऐसी शिला की पूजा नहीं करूँगा।

ठाकुर-**नहीं, नहीं। तुम लक्षणयुक्त सुन्दर शिला ही पाओगे। उनकी ही पूजा करना।**

एक गुरुभाई ने ठाकुर से पूछा-मेरी इच्छा राधाकृष्ण की मूर्ति रखने की है। क्या में सकता हूँ?

ठाकुर-**हाँ क्यों नहीं, पर इन सबकी पूजा किए बिना नहीं रखना चाहिये। सेवा, पूजा, भोग आदि की व्यवस्था करके ही मूर्तियाँ रखनी चाहिये। ऐसा न कर सको तो न रखो।**

प्रश्न-किस समय साधन करने पर महापुरुषों की कृपा मिल सकती है या अनुभव की सकती है।

ठाकुर-**महापुरुष रात को एक बजे के बाद निकलते हैं। एक बजे से चार बजे तक विचरण करते हैं। एक निश्चित स्थान पर, निर्दिष्ट समय में कुछ देर नाम करो तो महापुरुषों की कृपा समझ में आती है। कुछ बार प्राणायाम करके स्थिर होकर बैठकर नाम**

करना चाहिये। बिस्तर में मच्छरदानी के भीतर बैठकर नाम करने से भी चलता है, कोई हानि नहीं होती। नाम करते समय महापुरुषगण सामने आकर खड़े होते और सहायता करते हैं। तब उनके देह की सुगंध पाई जाती है। कभी धूप, गुग्गुल, राल, चंदन या हवन के धुएँ की सुगन्ध, तो कभी गाँजा, लोहबान और फूलों की सुगन्ध मिलती है। कभी-कभी उनके दर्शन या वाणी सुनकर उन्हें जाना जा सकता है। नानाप्रकार से महापुरुष लोग कृपा करते तथा अपना परिचय देते हैं।

दीक्षा ग्रहण के पूर्व कर्तव्य।

किसी व्यक्ति के दीक्षा ग्रहण के लिए अधीर होने की बात कहने पर ठाकुर ने कहा-**यदि साधन के लिए चित्त वस्तुतः व्याकुल हो तो ही दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। अन्यथा किसी से सुनकर इच्छा हो तो लेना ठीक नहीं। सामान्य वस्तु क्रय करने में भी कितनी ही बात देख-सुनकर लेना पड़ता है। जो साधन ग्रहण करेंगे उन्हें शास्त्र सदाचार सम्मत है कि नहीं यह विशेष रूप से अवगत होकर दीक्षा लेनी चाहिये। उसे कुछ काल तक जिनसे साधन लेना है, उनके साथ रहना चाहिये। साधन ग्रहण के पूर्व गुरु पर जितना अविश्वास आये कोई हानि नहीं किन्तु साधन लेने के बाद एक घटना पर भी गुरु पर संदेह हो, तो विशेष हानि होती है। अतः विशेष रूप से खोजबीन करके, जानबूझकर तब दीक्षा लेनी चाहिये।**

ठाकुर का आदेश समझ पाना कठिन। इस विषय में नाना प्रश्नोत्तर।

माताजी के व्रत के उपलक्ष्य में जाकर सत्रह दिन जो मौन था। वह बार-बार स्मरण होने लगा। चित्त तब नियत ही अन्तर्मुखी हुआ करता था। सदा नाम में लीन रहता। ठाकुर की स्मृति सदा अन्तस् में जाग्रत रहती थी। मौन होने पर पुनः ऐसी अवस्था प्राप्त होगी सोचकर मैंने मौन होना चाहा। कुछ दिन पूर्व से श्रीधर भी मौन है। उनसे पूछा-'भाई मौन क्यो हो? ठाकुर ने क्या तुम्हें आदेश दिया है?' श्रीधर ने लिखकर उत्तर दिया-'भाई वाक्य ही अनर्थ का मूल है। वाक्य द्वारा कईयों के हृदय में बड़ा आघात पहुँचाकर महापाप संचित कर चुका हूँ। वाक्य न कहना ही इसका प्रायश्चित है। यह सोचकर मैं खुद ही मौन हुआ हूँ, गोसाईं का आदेश नहीं है।' श्रीधर की बाते मन को छू गई और मैं भी मौन हुआ।

ठाकुर जब मुझसे कुछ पूछते तो उन्हें इशारे से या उन्हीं की भाँति अस्फुट स्वर में उत्तर देता था। दो चार बार ऐसा करते ही ठाकुर ने तंग आकर मुझसे पूछा-**यह क्या, तुम ऐसा क्यों कर रहे हो? तुम क्या मौन हुए हो?** मैंने सिर हिलाकर बताया-हाँ।

ठाकुर बोले-**मौन क्यों हुए हो?** मैंने कहा-आपने कहा था वाक्य द्वारा जिह्वा उच्छिष्ट होती है, मौन रहो।

ठाकुर बोले-**मैंने कहा था? वह कैसे?** मैने कहा-जब घर पर था। तब स्वप्न में आकर आपने ऐसा मुझसे कहा था। अतः वहाँ भी सत्रह दिन मौन रहा, फिर मौन भंग हुआ। अब फिर मौन।

ठाकुर-**स्वप्न में मैने कहा था? तुमने क्या मेरा यही स्वरूप देखा था?** मैंने कहा-आपका यह स्वरूप तो नहीं लेकिन स्पष्ट आपकी ही बातें सुनी थी। मेरी यह दृढ धारणा है कि वह सब आपने ही कहा था। ठाकुर-**जिनने कहा था, उनका रूप कैसा देखा था?**

क्या मुझे ही देखा था?

मैंने कहा-शुद्ध, शांत, तेजपुंज कलेवर एक ब्राह्मण को देखने पर लगा यह आप ही है।

ठाकुर-**मैं नहीं, तुम्हारी ही प्रकृति, तुम्हारे ही भीतर का रूप, तुम्हारे पास प्रकट होकर यह सब कह गया।**

ठाकुर की बातें सुनकर अवाक् रह गया। सोचा-हाय! हाय! मेरी प्रकृति मेरे सामने ठाकुर का भाव लेकर आई और मुझे विपथगामी कर गई। अब और क्या उपाय है? मैं ही यदि अपने को इष्ट कहकर अनिष्ट पथ पर चलाऊँ तो मेरी रक्षा कौन करेगा? कुछ देर बाद ठाकुर से पूछा-तब तो बड़ी विपत्ति की बात है। स्वप्न में आपका आदेश यथार्थ आपका है या नहीं कैसे समझ पाऊँगा?

ठाकुर-**स्वप्न में मेरा वर्तमान रूप देखकर आदेश पाने पर वह मेरा आदेश समझना। फिर भी गुरु जब तक जीवित हैं, उनसे पूछे बिना उनका अनुसरण नहीं करना चाहिये। कभी-कभी गोलमाल हो सकता है।**

ठाकुर की बातें सुनकर जान पाया कि उनके दर्शन उनकी वाणी समझा लेना ठीक नहीं। आशानन्द बाऊल के एक शिष्य को उस दिन जिसने भी धमकाया-उन महापुरुष का कंठ स्वर भी तो ठाकुर के समान था। सारी बात सुनने से पहले ठाकुर ने नहीं कहा होगा, ऐसा किसी ने नहीं सोचा। अतएव ठाकुर को न देखकर केवल वाणी सुनकर उस विषय में निशंक नहीं हुआ जा सकता।

ठाकुर ने कहा-**वीर्यरक्षा न होते तक मौन होना ठीक नहीं, इस अवस्था में मौन होने पर दिमाग फिर जाता है। किसी-किसी को पथरी रोग भी हो जाता है। मौन न होकर वाक् संयम करो,**

प्रतिष्ठा या अनुकरण करने में कई लोग मरते हैं। ठाकुर की बात सुनकर बड़ा लज्जित हो गया।

नृत्यगोपाल गोस्वामी द्वारा ठाकुर की परीक्षा।

२६ से ३०माघ तक। श्री नृत्यगोपाल गोरवामी की एक बात सुनकर बड़ा आनंद आया। सुबह साढ़े सात बजे ठाकुर चाय पीते हैं। उस समय नृत्यगोपाल (नेपाल गोसाईं) गेण्डारिया आश्रम आकर आम्र वृक्ष के नीचे ध्यान में बैठे रहे। फिर बोले-'मैने एकाग्र मन से प्रार्थना की थी कि गोसाईं तुम यदि रामकृष्ण परमहंस से अभेद हो तो कृपा करके मुझे प्रत्यक्ष रूप से उसका परिचय दो। गोसाईं चाय पीकर कभी आसन से नहीं उठते। किन्तु उस समय चाय पीकर धीरे-धीरे आम के वृक्ष के नीचे आये और मेरे सिर पर अपने चरण रख दिये। फिर एक भी बात न कहकर अपने आसन पर लौट गए। इसी घटना से आकृष्ट होकर मैंने उनसे दीक्षा ग्रहण की।' नेपाल गोसाई रामकृष्ण परमहंसदेव के बड़े ही कृपापात्र थे।

ठाकुर का पत्र-दूर रहना ही सार है।

कलकत्ते के साधारण ब्राह्म समाज में आचार्य नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय को लेकर गोलमाल चल रहा है। उनके व्यक्तिगत व धर्मगत अनुष्ठानों की आलोचनाएं हो रही है। ब्राह्मजनों में कई तो उनका दृष्टांत भी दूषित मान रहे हैं। अतएव उन्हें भी ठाकुर के समान ही आचार्य पद पर नहीं रखना चाहते। ब्राह्मसमाज ने उनसे कुछ प्रश्न पूछा और शीघ्र ही नियत तिथि के भीतर उनके उत्तर की माँग की है। नगेन्द्र बाबू ने इस विषय में एक पत्र लिखकर ठाकुर से

सलाह माँगी है। घटनाक्रम से यह पत्र ठाकुर के पास विलम्ब से पहुँचा। परन्तु पत्र पढ़कर देखा गया कि कुछ दिन पहले ही ठाकुर ने स्वयं प्रवृत्त होकर कुछ उत्तर अक्षरतः लिखकर नगेन्द्रबाबू का भेज दिया था, जिन्हें पत्र में उन्होंने गोसाईं से पूछा था। यदि पहले गोसाईं न लिखते तो यह पत्र नगेन्द्र बाबू को समय पर न मिल पाता। यह घटना देखकर हम सब बहुत विस्मित हुए।

ब्राह्म समाज के सम्पादक ने अब ठाकुर को जनरल कमेटी के सभासद होने का अनुरोध किया और पत्र लिखा है। ठाकुर ने अपनी असम्मति ज्ञापनकर पत्र का उत्तर दिया। यथा-**वे किसी साम्प्रदायिक धर्म में नहीं है। जो सत्य है, वही जानना होगा। अतः तिलक, माला, योग, यज्ञ, जटाजूट, भस्म, व्रत किसी की भी अवज्ञा नहीं की जा सकती। इसलिए वे सभी दलों में योगदान कर सकते है। साधारण सत्य वस्तु जानने में कितनी ही शिक्षा प्रयोजनीय होती है। अभी वे मौन हैं। तीर्थ भ्रमण करते हैं। सर्वभूत में भगवान की अधिष्ठित देख, प्रतिमा के सामने प्रणाम करते हैं। यह भी विश्वास करते है कि भगवान विशेष प्रयोजन पड़ने पर अवतीर्ण भी होते हैं। इन्हीं कारणों से ब्राह्म समाज ने उनका त्याग किया है। अतः उनका कहना है कि उनका दूर रहना ही उचित है और यही उनकी बात का सारांश है।**

भावुकता में ठाकुर की डाँट।

एक गुरुभ्राता ने ठाकुर से पूछा-अन्दर से चिन्ता, संशय, सन्देह कैसे दूर होगा?

ठाकुर-**जो नाम मिला है उसी से सब कुछ हो जायेगा। श्वास-प्रश्वास में नाम जप करो।**

गुरुभ्राता-वह क्या आपकी कृपा बिना होगा? मेरी क्या क्षमता है?

ठाकुर-**यह सब भावुकता छोड़ दो। इससे कोई भलाई नहीं होगी। अधिक भक्ति दिखाने पर खुद की ही हानि होगी। कृपा की बात तो दूर है अभी कृपा समझने की शक्ति भी नहीं हुई है। जब तक मान-अपमान, सुख-दुःख, काम-क्रोध है, तब तक स्वयं यत्न भी करना पड़ेगा। इसी प्रयास का नाम साधन है, नाम जप करना। मैं नहीं कर सकता, यह तो केवल भावुकता है। जब तक मनुष्य की स्वयं की इच्छा तथा क्षमता है तब तक कृपा की बात नहीं हो सकती। स्वयं परिश्रम करना पड़ेगा नहीं तो कुछ न होगा।**

भगवान में चित्त समर्पण, अचला भक्ति कैसे प्राप्त होती है।

एक गुरुभ्राता ने ठाकुर से कहा-अविश्वास, संदेह से तो सदा कष्ट पा रहा हूँ। भगवान चरणों में चित्त समर्पण तथा अचला भक्ति किस प्रकार होगी? ठाकुर ने कभी इंगित से तो कभी लिखकर बताया-**श्रीमद्भागवत्, गीता, भक्तमाल आदि ग्रन्थ श्रद्धापूर्वक पाठ करने से पूर्वजन्म की सुकृति अनुसार शीघ्र विश्वास उत्पन्न होता है। श्रद्धापूर्वक शास्त्र पाठ करने पर तथा साधु संग करने पर पूर्वजन्म की सुकृति से भगवत् भजन में प्राणी की व्याकुलता आती है। इस समय सदगुरु का आश्रय लेकर, उनके उपदेश**

मानकर, निष्कपट हो साधन-भजन करने पर, भगवान कृपा करके साधक को अपना दास बना लेते हैं और दर्शन देते हैं। सारी सुन्दर वस्तुओं के जो सृष्टिकर्ता हैं उनके एक अंग के दर्शन पा लेने पर भी मनुष्य उन्हें छोड़ नहीं सकता। ऋषियों ने कहा है-प्रथमतः, ब्रह्मज्ञान-सर्वत्र उनको प्रत्यक्ष अनुभव करना। द्वितीय अवस्था योग-आत्मा में परमात्मा की उपलब्धि। तृतीय अवस्था भगवत् सम्बन्ध-पूजा, अर्चना। इस अवस्था में उनके दर्शन होते हैं। एक बार दर्शन मिलने पर-

भिद्यते हृदयग्रंथिः छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

यदि मैं ज्ञानी, धार्मिक, साधु, भक्त हूँ-ऐसा अभिमान आये और चारों ओर से लोग इस प्रकार सम्मान प्रदर्शित करते रहे तब यदि मेरा अन्तःकरण धर्महीन, असाधु, अज्ञान और अभक्त रहे तो पूर्ण सम्मान रक्षा करने की खातिर मनुष्य घोर पाप में डूब जाता है। अतः लोगों के सामने जितना हीन, मलिन रूप परिचित हो उतना ही मंगल जानो। इस विपत्ति से रक्षा हेतु ऋषियों ने चार उपाय बताये हैं-(१) स्वाध्याय (धर्मग्रन्थ पाठ व नाम जप) (२) सत्संग (३) विचार-(सर्वदा अपनी परीक्षा करनी होगी। आत्मप्रशंसा अच्छी लगे और परनिन्दा में सुख मिले तो अपने को नरकगामी या धर्मभ्रष्ट मानना पड़ेगा) (४) दान-दान शब्द का अर्थ दया बताया गया है। किसी के हृदय में कष्ट न देना। किसी के शरीर या मन में, वाक्य या व्यवहार से कोई क्लेश देने से दया नहीं रह जाती। पशु-पक्षी, कीट-पतंग, मनुष्य सभी जीवों पर दया रखना कर्तव्य है। इन स्वाध्याय, सत्संग,

विचार तथा दान का साधन प्रतिदिन करना चाहिये। इसके साथ कर्मेन्द्रिय को भी अनुशासित करने का अभ्यास करना प्रयोजनीय कहा गया है। इन उपायों से सहज ही कामना-वासना निवृत्त होती है।

धर्मलाभ का सहज उपाय-नित्य कृत्य की व्यवस्था।

एक गुरुभ्राता ने ठाकुर से पूछा-मैं तो कुछ भी नहीं कर सकता। धर्मलाभ कैसे होगा?

ठाकुर-**जीवन को एक निर्दिष्ट नियम में अभ्यस्त कर लेना चाहिये। प्रतिदिन थोड़े समय के लिए साधन करना अवश्य कर्तव्य है। अच्छा न लगे तो भी औषधि निगलने की भाँति करो, क्रमशः रुचि आयेगी। प्रातःकाल उठकर स्नान करके एक घंटा प्राणायाम, नामजप आदि करो। फिर एक घंटा धर्मग्रन्थ पाठ एवं पशु-पक्षी, वृक्ष-लता, कीट-पतंगों की सेवा। पास दुःखी व्यक्ति हों तो उनकी देखरेख करो। आहार के बाद सोना ठीक नहीं, दिवानिद्रा से बुद्धि-नाश और आयु क्षीण होती है। थोड़ा विश्राम करके अध्ययन करना चाहिये। दोपहर के बाद जरा भ्रमण, संध्या को नाम गान, प्राणायाम तथा नामजप आदि। इसके बाद परिमित आहार करके शयन करो। यह अभ्यस्त हो जाए तो धर्मलाभ सहज ही होगा।**

कुअभ्यास से विषफल।

बहुत दिनों से जो कार्य किया जाए उसका फल भी दीर्घकाल रहता है। अनियम से चलकर जो बुरे अभ्यास आ गये हैं, अब यत्न

करके भी उन्हें नहीं छोड़ पाता। कुअभ्यास के कार्य आदि तो मेरे स्वभाव बन गए हैं। रोज संकल्प करता हुआ शैया से उठता हूँ कि आज इस प्रकार चलूँगा, पर दो एक घंटे बाद ही देखता हूँ फिर सब बिगड़ गया। कब कैसे संकल्प विरोधी कार्य कर डालता हूँ समझ नहीं पाता। धीरे-धीरे आहार का अनियम कर लोभ भी इतना बढ़ गया है कि अब सम्भाल नहीं पाता। लोभ ने तो और स्वेच्छाचारों की अपेक्षा मेरे स्वभाव को और भी अधिक कलुषित कर दिया है। अब दृष्टि भी पूर्व की तरह पैर के अँगूठे पर स्थिर नहीं रहती, चंचल हो गई है। अब यह भरोसा भी नहीं कि कभी पैर के अंगूठे पर दृष्टि आबद्ध रख पाऊँगा। वाक् संयम की बात क्या कहूँ? जैसा ठाकुर के आदेश के बिना असाधारण फल पाने की आशा से हठ किया था, अब ठाकुर सूद सहित मूल का फल भोग करवा रहे है। वाक् संयम के बिना मन सदा बहिर्मुख है, भीतर की ओर दृष्टि नहीं है। पग-पग पर सत्य से भ्रष्ट हो रहा हूँ। नाम कहाँ छूट गया है, प्राणायाम कुंभक यथारीति न करने से श्वास-प्रश्वास अपरिमित, लघु व दीर्घ हो गया है। फलतः वीर्य भी स्थिर नहीं है, चंचल हो गया है। सिंह के साथ सियार, कुत्तों का संग्राम जैसा-मेरा संग्राम भी वैसा ही हो रहा है। हाय! अब क्या करूँ? ठाकुर का एक भी आदेश पालन न कर सका।

ठाकुर के आदेशानुसार कार्य क्यों नहीं होता? वे गढ़ते व तोड़ते भी हैं।

ठाकुर के आदेश पालन में बारम्बार विफल होने पर मन में सन्देह उठा ऐसा क्यों होता है? ठाकुर के आदेश अनुसार चलने

की कोशिश तो करता हूँ परन्तु मुझे कौन बाधा देता है। सद्गुरु तो साक्षात् भगवान हैं, उनके वाक्य और शक्ति एक ही हैं। उनके वाक्य अनुलंघनीय तथा उसकी शक्ति अमोघ है। अखिल विश्व ब्रह्माण्ड की सृष्टि, स्थिति, प्रलय जिनकी इच्छा मात्र से होता है। उनके आदेश को तो प्रयोग मात्र ही सिद्ध होना चाहिये। पर मुझमें ऐसा क्यों नहीं होता। गुरुवाक्य से मेरी इच्छा का विरोध नहीं तो भी सफलता का बाधक कौन होता है? ऐसा शक्तिशाली है ही कौन? इस विषय में सन्देह उत्पन्न हुआ। निपटारे के लिए ठाकुर से पूछा। आज उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। अंत में मन में आया कि कुछ दिनों पूर्व ठाकुर से पूछा था-यत्न करके भी आदेशानुसार क्यों नहीं चल पाता। ठाकुर ने जो उत्तर दिया था उसी से मेरे इस प्रश्न का निर्णय भी मिल गया। ठाकुर ने कहा था-**मैं जो कहूँ वही यदि कर लो तब तो सिद्ध ही हो गए। कितनी बार कहूँ-जहाँ तक कर सको करते जाओ जो न कर सको उसके लिए दुःखी मत होओ। मन में जानो ऐसी कोई शक्ति तुम्हें चालित कर रही है जिसमें तुम्हारा कोई हाथ नहीं, कोई अपराध भी नहीं।**

फिर ठाकुर से उस दिन मैंने पूछा-आपके आदेशानुसार न्यास करने पर तो समस्त देह मन भगवान को अर्पित करना हो जाता है। उसके बाद भी जो अनियम अपराध हो जाएं वह भी क्या वास्तव में मैं ही करता हूँ?

ठाकुर-**नहीं वह सब तुम नहीं करते।**

ठाकुर की बातों से समझता हूँ कि आदेश करते भी वे ही हैं और तोड़ते भी वे हैं। केवल कर्तृत्व के अभिमान से मैं संस्कारवश कष्ट पाता हूँ। किन्तु इसी कष्ट भोग से मेरे ढेरों प्रारब्ध क्रमशः क्षय

होते जा रहे हैं।

ठाकुर ने कहा था-**गुरु से सम्बन्ध रखकर चलने पर तुम लोगों के सारे कर्म शंख के आरे की भाँति उठते-पड़ते (दोनों ओर से) कटेंगे।**

गुरु में एक निष्ठा, दुर्लभ।

ठाकुर कितना भी दिलासा देते रहें, कुछ दिनों से मन बड़ा उदास है। सदा लगता है कि इतने दिनों से क्या किया? घर बार छोड़कर आत्मीयबंधुओं को रुलाकर धर्म का नाम लेकर घर से निकल आया। परंतु एक भी अवस्था या किसी बात की सच्चाई का प्रमाण अब तक न दे सका। भगवान गुरुदेव ने मेरे सभी कठिन कर्तव्य मिटाकर अपने शांतिमय चरणों में आश्रय दिया है तथा अपनी देवदुर्लभ सेवा का अधिकार देकर निरन्तर अपने संग रखा है। उनके साथ नित्य सम्बन्ध सदा के लिये बन जाए, उसका पता भी बता दिया है। किन्तु एक बार भी उनके आदेश का पालन करने में वस्तुतः यत्नशील मैं न हो सका। लगभग तीन वर्ष ब्रह्मचर्य लेकर, कितनी ही अवस्थाएँ भोग चुका हूँ। इस दौरान कभी साधन में उत्साह, कभी निरुत्साह, कभी दृढ़ता, कभी शिथिलता-इस प्रकार दिन बीतते जा रहे हैं। ठाकुर के कई आदेशों में से एक का भी स्थिर रूप से पालन नहीं कर पा रहा हूँ। हाय! मेरी क्या दशा होगी? सुना है-कठोर साधन, भजन, तपस्या व बहुत जन्म की सुकृति के बल पर सद्गुरुकी कृपा मिलती है? पतितपावन दयामय प्रभु की अयाचित कृपा मैंने सहज ही पा ली है। पर उससे मेरा क्या हुआ? ठाकुर ने मानो बन्दर के गले मोती की माला पहनाई हो। वस्तु का

महात्म्य मैं कुछ भी न जान सका। श्रीमद्भागवत् में सुना है-

'कोटि जीवों में एक ब्रह्मज्ञानी, कोटि ब्रह्मज्ञानियों में एक तत्त्वज्ञ, कोटि तत्त्वज्ञों में एक कृष्ण भक्त होता है, किन्तु गुरु में एकनिष्ठता सुदुर्लभ है।'

सद्गुरु आश्रय प्राप्त करने पर उनमें एकान्तिक निष्ठा लाभ का अधिकार उत्पन्न होता है। सद्गुरु-आश्रित जनों का एकमात्र कर्तव्य है उनका आदेश पालन करना। उनमें एकान्तिक निष्ठा ही इनके लिए चरम कल्याण, श्रेष्ठ उत्कर्ष और एकमात्र लक्ष्य है। सुना है, निर्विचार हो गुरुवाक्य मानकर क्रमशः गुरु में एकान्तिक निष्ठा जन्म लेती है। किन्तु मेरी ऐसी मति हुई कहाँ? गुरुदेव के किसी एक आदेश को मान कुछ दिन चलने पर, आशानुरूप फल अविलम्ब ही न मिले तो तुरन्त संदिग्ध, चंचल तथा हताश हो जाता हूँ। कुबुद्धिवश मति फिर जाती और ठाकुर की कृपा वाणी पर दोषारोपण करता हूँ। हाय! हाय! ठाकुर के आदेश पालन में मेरी अचला आकांक्षा न हुई। उनके प्रति थोड़ी भी निर्भरता या निष्ठा न हुई। अब मेरे कल्याण की आशा कहाँ?

तीन वर्ष ब्रह्मचर्य की विशेष विशेष नियमावली

ब्रह्मचर्य के समस्त विधि नियम एकमात्र गुरुमें एकान्तिक निष्ठा प्राप्त करने के लिए ही है लेकिन अब तक उनमें से किसी की मैं अक्षुण्ण रूप से रक्षा न कर पाया। प्रथम वर्ष ब्रह्मचर्य के नियम इस प्रकार थे-

१) प्रतिदिन ब्रह्ममूहूर्त में उठकर कुछ देर साधन करोगे। फिर

शुद्ध होकर आसन पर बैठकर नित्य कृत्य करोगे। गीता का एक अध्याय पाठ करोगे।

२) स्वपाक आहार करोगे। आहार में कोई अनाचार न हो इस ओर ध्यान रखना होगा। दिन रात में एक बार ही आहार करोगे। आहार की मात्रा व समय भी निश्चित रहे। अधिक मीठा, तीखा, खट्टा, नमकीन सदा त्याग दोगे। मीठा, खट्टा खाने से काम, तीखा चटपटा खाने से क्रोध, नमक खाने से लोभ तथा गाय के दूध के बने पदार्थों से मोह की वृद्धि होती है। इन उत्तेजक वस्तुओं को त्याग दो।।

३) साधारण वस्त्र पहनोगे। साधारण शैया में सोओगे। दिवानिद्रा त्याग दोगे।

४) किसी की निन्दा न करोगे और न ही सुनोगे। किसी को कष्ट न दोगे। सबको संतुष्ट रखोगे। मनुष्य, वृक्ष, लता, पशु-पक्षी की यथासाध्य सेवा करोगे।

५) यह सब कार्य विचारपूर्वक करो। सत्य बोलो, सत्य आचरण करो, सत्य चिन्तन करो। खूब कम बात करोगे।

६) युवती स्त्री को स्पर्श न करोगे।

७) गोपनीयतापूर्वक साधन करोगे। पवित्र आसन पर बैठना। अपने कार्य में निष्ठा रखना।

थम वर्ष ब्रह्मचर्य में ठाकुर के ये आदेश थे। द्वितीय वर्ष के विशेष आदेश इस प्रकार हैं-

(१) छोटी-बड़ी किसी भी आयु की स्त्रीजाति की ओर न देखना। उनके साथ एक आसन पर न बैठना। स्त्री जाति से किसी प्रकार संपर्क ही न रखना।

(२) सर्वदा मस्तक नीचे रखना। दृष्टि पैर के अंगूठे की ओर रखना। कुछ काल दृष्टि स्थिर रख सको तो दृष्टि शक्ति खुल जाएगी। जिधर भी देखोगे सभी वस्तुएँ दृष्टिगोचर होंगी। जमीन, जल, आकाश सब भेदकर दृष्टि चलेगी।

(३) वाक् संयम रखोगे। बिना पूछे जाने तक बात नहीं करना। पूछने पर प्रयोजनीय उत्तर मात्र दोगे। उत्तर देते समय खूब विवेचनापूर्वक संक्षेप में उत्तर दोगे।

(४) अपराह्न चार बजे के बाद स्वपाक आहार करोगे। किसी का पकाया अन्न दाल, सब्जी आदि सखड़ी वस्तुएँ नहीं खाओगे। एक बार ही भोजन करोगे। अन्य समय में भूख लगे तो कुछ जलपान कर लेना। परंतु बाजार की मिठाई, मुर्रा, चिवड़ा, लाई, सत्तू आदि न खाना।

(५) प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में सदा कुंभक योग से नाम करते जाना। एक भी श्वास वृथा न जाए। चक्र में मन स्थिर रखने की चेष्टा करना।

(६) रोज हवन करोगे। कम से कम ढाई सौ बार गायत्री जप करोगे। सुबह श्रीमद्भगवत् गीता, गुरुगीता पाठ करना। दोपहर को महाभारत पाठ करना। शाम के बाद रात दस, ग्यारह बजे तक सोकर, रात भर साधन करके काटना।

(७) भिक्षान्न आहार करोगे। तीन घरों में भिक्षा करोगे। भिक्षान्न सदा पवित्र होता है। एक साथ सब पकाओगे। संचय नहीं करोगे।।

इस बार ब्रह्मचर्य के मूल उपदेश-

(१) क्रोध दुर्जेय रिपु है-स्वजन निर्जन का विचार नहीं रखता। क्रोध जन्म ले तो पूर्व जन्म की तपस्या का फल भी नष्ट होता है,

मनुष्य चांडाल बन जाता है। क्रोध संयम की चेष्टा करोगे।

(२) गीता के दो श्लोक रोज कण्ठस्थ करोगे। पाठ कम करके नाम जप बढ़ाओगे। नाम करते हुए अवसाद मालूम हो तब अध्ययन करना।

(३) किसी के द्वारा आग में पकाई हुई वस्तु न खाना। केवल ब्राह्मण के घर भिक्षा लेना। गुरुभाईयों के घर भिक्षा ले सकते हो उसमें कोई विचार न करना पड़ेगा।

(४) अर्थ की याचना किसी से मत करना। इस विषय में सहोदर भाईयों को भी दूसरों के समान समझना। अर्थ या कोई वस्तु का संचय न करना।

(५) वाक् संयम करना। किसी का प्रतिवाद नहीं करोगे। वीर्यधारण तथा सत्य रक्षा करना। पैर के अंगूठे की ओर दृष्टि रखना। श्वास-प्रश्वास में नाम जप करो।

(६) रोज सूर्योदय के बाद सहस बार गायत्री जप करो। जैसा बताया गया है रोज न्यास तथा विधिपूर्वक पूजा करोगे। श्रीमद्भागवत्, गीता एवं गुरुगीता पाठ करो।

ठाकुर एक दिन रात को कहने लगे-**मेरी दो ही बातें मानकर चलो तो सबकुछ लाभ हो जाएगा-सत्यरक्षा और वीर्यधारण। इनका प्रतिपालन करने पर भगवान की कृपा प्राप्त करोगे। सत्य बोलने पर वाक् संयम हो ही जाएगा। पैर के अंगूठे की ओर दृष्टि रखने पर अपने आप वीर्य स्थिर हो जाएगा।**

गुरुशिष्य देवासुर संग्राम। मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यम्।

ठाकुर के इतने आदेशों में दो-चार का भी आज तक यथावत् पालन न कर सका। अनिवार्य कारणों से ही आदेश उल्लंघन करने को बाध्य हुआ, ऐसी बात नहीं है, कुछ काल किसी आदेश के पालन करने पर जैसे ही कोई अच्छी अवस्था मिलती है, उस पर ऐसा मुग्ध हो जाता हूँ कि फिर अन्य आदेशों की रक्षा करने की ओर ध्यान नहीं रहता। मन लगाने पर सोचता हूँ कि कोई भी अवस्था ठाकुर के कृपा बिना नहीं मिलती। लेकिन ठाकुर की कृपा अहैतुकी है। वह किसी साधन, भजन, तपस्या की प्रतीक्षा या परवाह नहीं करती। सर्वनियन्ता ठाकुर ने, जिससे उनकी कृपा पर साधक की दृष्टि न पड़े, इसीलिए साधन भजन तपस्या को कुशलतापूर्वक निमित्त बना रखा है। ठाकुर पर विश्वास भक्ति एक बार हो तो भी कुछ समय बाद वह नहीं रह जाती, ऐसा क्यों होता है-ठाकुर से पूछने पर वे बोले-**तुम लोगों की चेष्टा होगी बारम्बार गढ़ने की और स्थापना करने की। और मेरी चेष्टा होगी उसे तोड़ने की।** अब देखता हूँ इसी प्रकार सारा जीवन गुरु-शिष्य का देवासुर संग्राम चल रहा है। कभी हाथ पैर टूट जाने पर निराश होकर उनका आधिपत्य स्वीकार कर लेता हूँ। फिर नियम पालन में कुछ सफलता पाते ही, फल लाभ में अपने को प्रधान मानकर अभिमानवश दम्भ करता हूँ। इसी अहंकार के बाद ठाकुर कृपा करके अपना कर्तृत्व समझाकर दण्ड की व्यवस्था कर देते हैं। जब तक मनसा-वाचा-कर्मणा ठाकुर के पास होकर शरणापन्न न हो सकें, उन्हें ही एकमात्र शरणस्थल या कर्ता न स्वीकार कर लूँ, तब तक इसके आघात से रक्षा का कोई उपाय नहीं है। किसी नियम के पालन का यत्न करके कोई स्थायी फल नहीं होता, यदि वह गुरु के

मुख से आदेश या उपदेश के रूप में न निकले हों। स्वयं देवाधिदेव महादेव ने कहा है-मंत्रमुलं गुरोर्वाक्यम्। जिस मंत्र के स्मरण से जीव का उद्धार हो जाता है उसके मूल में गुरु का वाक्य है। आदेश, उपदेश मंत्र सबके मूल में गुरु का ही वाक्य और जीवनी शक्ति है। श्री गुरु के मुख से नि:सृत न होने पर मंत्र में जीवोद्धार की शक्ति संचारित नहीं होती। गुरुवाक्य ही गुरुशक्ति है। गुरु का वाक्य मानते रहने पर गुरु से सम्पूर्ण योग बना रहता है। शिष्य के पास गुरुवाक्य में छोटा-बड़ा या कम अधिक का भेदभाव नहीं रहता। सभी सर्वशक्तिसम्पन्न तथा समान फलदायी होते हैं। सद्गुरुवाक्य ही सार है। उनके वाक्यों में कभी हेरफेर नहीं होता। इस नराधम को कृपा करके ठाकुर बहुत आशा दिलाते रहते हैं। यही भरोसा है। विश्वगुरु, ऋषियों ने भी उर्ध्वबाहु होकर कहा है-

उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे।
विकसति यदि पद्मः पर्वतानां शिखाग्रे॥
प्रचलति यदि मेरू: शीततां याति वह्निः।
न चलति खलु वाक्यं सज्जनानां कदाचित्॥

यदि पश्चिम आकाश से सूर्योदय हो, गिरिशिखर पर कमल खिले, पर्वत चले और अग्नि शीतल हो-यह सब संभव है किन्तु सज्जन के वाक्य या वचनों का हेरफेर नहीं होता। सज्जन अर्थात् भगवज्जन। सद्गुरु के वचन कभी मिथ्या नहीं होते, यह विश्वास आ जाए तो सब हो जाए। भगवान गुरुकृपा करके ऐसी शुभमति प्रदान करें कि उनके वाक्यों में कभी दुविधा या संशय उत्पन्न न हो। अब से पुनः ब्रह्मचर्य के नियमादि उत्साहसहित यथारीति पालन करूँगा, ऐसा निश्चय किया। इसके लिए मुझे लोक समाज छोड़ना

पड़े, ठाकुर का संग छोड़ना पड़े, पर्वत पर जाना पड़े तो भी मैं अवश्य जाऊँगा।

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः-श्रीगुरु के ध्यान को कल्पना नहीं कहा जाता।

ठाकुर ने कहा है-**हमारे इस साधन में किसी प्रकार की कल्पना नहीं है। भगवान के रूप अनंत हैं। किसके सामने किस रूप में कब प्रकट होंगे कौन कह सकता है। भगवान का नाम जप करो। नाम करते जिस रूप में वे प्रकट हों उसे पकड़कर चलो। पहले से किसी रूप की कल्पना नहीं करना चाहिये।**

फिर उन्होंने यह भी कहा-**भगवान के रूपों का कोई अन्त नहीं। किसके सामने कब कौन से में प्रकट होंगे कोई नहीं बता सकता। जब जिस रूप में प्रकट हों सदा भक्ति करो। किन्तु किसी भी रूप में बंध मत जाना। नाम जप करते हुए उनके अनंत रूप प्रकट होंगे। केवल एक ही रूप लेकर चलने से क्यों चलेगा?**

ध्यान के बारे में पूछने पर सबसे अंत में उन्होंने कहा-**भगवान को कौन देख पाता है? गुरु ही भगवान हैं। नाम करते हुए गुरु के भीतर से ही भगवान के अनन्त रूप, अनन्त विभूतियाँ प्रकट होती रहती हैं।**

ठाकुर की बातों से यही समझा कि यदि ध्यान करना है तो गुरुमूर्ति का ध्यान करना चाहिये। कारण यह है कि गुरु के भीतर से

ही भगवान के अनन्त रूपों का प्राकट्य होता है। इसीलिए भगवान सदाशिव ने कहा है-ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः। जब यह प्रत्यक्ष देखता हूँ कि नाम जप करते श्री गुरुरूप अपने आप प्रस्फुटित हो उठता है, वह हटाया नहीं जा सकता। अतएव मैं गुरु के सच्चिदानन्द रूप का ही ध्यान करता हूँ। अक्सर कई गुरुभ्रातागण मुझे कहते हैं-'तुम कल्पना की उपासना करते हो। गुरु के रूप का ध्यान करना भी कल्पना है क्योंकि गुरु का रूप भी एक जैसा नहीं रहता, परिवर्तनशील है, अतः अनित्य है।' गुरुभाईयों की बात सुनकर मन में खटका लगा। मैंने ठाकुर से जाकर पूछा-सारे विश्व ब्रह्माण्ड में तो भगवान पूर्ण रूप से छाये हुए हैं। प्रत्येक अणु परमाणु में भी क्या वे पूर्ण रूप में हैं।

ठाकुर-**हाँ, प्रत्येक अणु, परमाणु में वे पूर्ण रूप से अवस्थान कर रहे हैं। पूर्ण का अंश भी पूर्ण होता है। यथा-**

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

ब्रह्म पूर्ण है, यह कार्यात्मक ब्रह्म भी पूर्ण है। पूर्ण ब्रह्म से इस जगत् का प्रकाश हुआ। महाप्रलय में सारा जगत् उसी पूर्ण ब्रह्म में विलीन हो जाता है तब भी केवल पूर्ण ब्रह्म ही अवशिष्ट रह जाते हैं।

मैंने कहा-तब तो सारा विश्व ब्रह्माण्ड ही प्रत्येक अणु-परमाणु में है।

ठाकुर-**हाँ, प्रत्येक अणु-परमाणु में भगवान हैं। उनमें सबकुछ विद्यमान हैं।**

मैं-तो मेरे नखाग्र में भगवान का पूर्णतः अधिष्ठान है, अतः

कलकत्ता शहर भी है ऐसा सोचना क्या मिथ्या कल्पना होगी?

ठाकुर-**इसे कल्पना नहीं कहते।**

मैं-सब कुछ तो परिवर्तशील है, पहले गुरु का एक तरह का रूप देखा था अब दूसरी तरह का देख रहा हूँ। अब यदि पहले रूप का ध्यान करूँ तो क्या वह कल्पना होगी?

ठाकुर-**प्रतिदिन के प्रतिक्षण के सब रूपों में भगवान नित्य रूप में हैं। ऐसा ध्यान कल्पना नहीं होगा। असत्य की ही कल्पना होती है। जिसका अस्तित्व ही न हो, या जो कभी हुआ ही न हो जैसे-आकाशकुसुम, अश्व का अण्डा। सत्य वस्तु की चिंता को ध्यान कहते हैं वह कल्पना नहीं है।**

ठाकुर की बातें सुनकर निश्चिंत हुआ। अब कुछ पूछने का साहस न हुआ। कब क्या कहते क्या कह डालूँ और संकट में पड़ जाऊँ। मन ही मन प्रश्न उठा। सद्गुरु तो अवश्य ही भगवान हैं। तो क्या 'रामा-श्यामा' के गुरु को भी भगवान सोचना होगा? इस प्रश्न को ठाकुर से न पूछना चाहा क्योंकि मेरे लिए यह अनावश्यक है, इसका उत्तर पहले ठाकुर कई बार सुना चुके हैं।

ठाकुर ने कहा था-**अग्नि सर्वत्र है पर उसे कोई नहीं पाता, न तो उससे काम हो पाता है। अग्नि की आवश्यकता पड़े तो जहाँ उसका विशेष प्रकाश है जैसे चूल्हा, दीपक आदि से ही अग्नि लेनी पड़ती है। उसी प्रकार भगवान सर्वत्र, सर्वव्यापी हैं पर उन्हें पाने के लिए विशेष स्थानों में ही उनकी उपासना करनी होगी। ऋषियों ने आठ स्थान बताये हैं-गुरु, सूर्य, शालग्राम, अग्नि, जल, आत्मा, पिता, माता तथा स्त्रियों के लिए पति। चकमक पत्थर को लोहे से घिसने पर सहज ही आग निकलती है। उसी**

प्रकार इन स्थानों में भगवत् ध्यान से इष्ट वस्तु सहज ही प्राप्त होती है। पिता, माता, पति जैसे भी हों प्रत्यक्ष देवता मानकर उनकी सेवा पूजा करनी चाहिये। हर कार्य में उनके अनुगामी होकर चलना चाहिये। गुरु के विषय में शिष्य को भी उसी प्रकार से चलना चाहिये। भगवद्ज्ञान से गुरु की सेवा-पूजा करना चाहिये। निर्विचार होकर उनके आदेशों का पालन करना चाहिये। भगवान को प्राप्त करने के लिए इससे सरल उपाय और कोई नहीं है। यही ऋषियों की व्यवस्था है।

गुरु जैसे भी हों उनकी सेवा-पूजा निष्कपट होकर करने और निर्विचार होकर आदेश पालन करने पर शिष्यों ने सिद्धि प्राप्त की है। इस देश में इसके दृष्टांत विरल नहीं। पति जैसा भी हो स्त्री के पतिव्रता होने पर उसका जीवन असाधारण तथा समस्त स्त्री जाति के लिए आदर्श हो जाता है।

दृष्टिसाधन, पंचभूत एवं ज्योति सारुप्य-नाम साधन।

१५ से ३० फाल्गुन। मध्याह्न को आम के पेड़ के नीचे भागवत्पाठ के बाद ठाकुर के पास बैठकर बड़ा ही आनन्द पाता हूँ। समय कैसे बीत जाता है नहीं जान पाता। ठाकुर ध्यानमग्न रहते हैं। ठाकुर की स्निग्ध, पवित्र, मनोहर मूर्ति अन्तःकरण में रखकर नाम करता हूँ। इस समय प्रत्येक नाम एक सारवान् वस्तु प्रतीत होती है। नाम स्मरण के साथ ठाकुर का रूप अधिकतर उज्ज्वल और मनोहर लगता है, उत्तरोत्तर माधुर्य बढ़ता ही जाता है। आजकल रोज नाना प्रकार के चक्रदर्शन हो रहे हैं। किस सूत्र को लेकर ये उत्पन्न होते

हैं, मैं नहीं जान पाता, अतिउज्ज्वल विद्युत के समान शुभ्र तार से ये अंकित होते हैं। ये चक्र त्रिकोण, चतुष्कोण, षट्कोण, अष्टकोण या द्वादशकोण भी देख पाता हूँ। इन सबका केन्द्रबिन्दु गहरे कृष्ण वर्ण का है। आँख बन्द कर या खोलकर एक ही प्रकार से दर्शन होते हैं। यह दृष्टि साधन का फल है या नाम का परिणाम, मैं समझ नहीं पाता। एक ही तत्त्व पर दृष्टि साधन के फलस्वरूप कई रंग के अपूर्व ज्योति दर्शन हो रहे हैं। दृष्टि साधन के सम्बन्ध में ठाकुर से कुछ पूछने की इच्छा हुई। मौका पाते ही ठाकुर से पूछा-सुना है पंचतत्त्व में दृष्टिसाधन करना चाहिये। किस अवस्था में एक के बाद दूसरा पकड़ना चाहिये?

ठाकुर-**गुरु आदेश बिना यह सब कुछ कभी नहीं करना चाहिये, विशेष विपत्ति की आशंका होती है। दृष्टि साधन पहले वृक्ष पर-एक घंटा तक किसी बिन्दु पर बिना पलक झपके बिना अश्रु गिराये देख सको तब आकाश पर अभ्यास करो। आकाश के किसी स्थान पर दृष्टि स्थिर रखकर आधा घंटा देख सको तब जलस्रोत में एक घंटे तक देखने का अभ्यास करो। फिर कम से कम दो घंटा घी के जलते दीपक की लौ पर दृष्टि रखो, जहाँ हवा न आ रही हो। दीपशिखा में अभ्यास हो जाने पर सूर्य पर दृष्टि आरंभ करते हैं। सूर्योदय से दोपहर एक प्रहर तक सूर्य पर दृष्टि रखते हैं। सम्पूर्ण वीर्य धारण न होते तक सूर्य पर दृष्टि साधन नहीं करना चाहिये, हानि होती है। यह गृहस्थों के लिए निषिद्ध ही है।** इस प्रश्न में ठाकुर मुझे दृष्टि साधन का क्रम व प्रणाली स्पष्टतः समझाते हुए बोले-**खूब सावधानीपूर्वक गुरु के पास संकेत जानकर तभी त्राटक साधन करना चाहिये।**

मैंने कहा-कौन से तत्त्व की किस प्रकार की ज्योति होती है? एक ही तत्त्व में कई प्रकार की ज्योति दिखाई पड़ती है? ठाकुर-**क्षिति की पीतवर्ण, अप की शुभ्रवर्ण, तेज की लाल, मरुत की नीली तथा व्योम की ज्योति गाढे कृष्णयुक्त नीलवर्ण की होती है।**

मैंने पूछा-कौन सी ज्योति कौन से गुण की होती है, कौन सा सर्वश्रेष्ठ है?

ठाकुर-**अपज्योति-शुभ्रवर्ण-सात्त्विक सर्वश्रेष्ठ है। तेज की ज्योति लाल-रजोगुणी है। मरुत की नीली ज्योति-रजःसत्त्व। व्योम की-तमःसत्त्व। किसी एक भूत तत्त्व पर दृष्टि साधन करने पर सभी ज्योति क्रमशः दृष्टिगोचर होती हैं।**

मैंने कहा-क्या नाम जप करते हुए ऐसी अवस्था आती है कि देह के अणु-परमाण भी नाम करने लगते है? एक रूप चिंतन करते-करते भी क्या इसी प्रकार होता है?

ठाकुर-**नाम करते-करते ऐसी एक अवस्था होती है कि शरीर का प्रत्येक रक्तबिन्दु, अणु-परमाणु नाम करता है। यह कल्पना नहीं प्रत्यक्ष सत्य है। इस अवस्था में महापुरुष देह को वस्त्राच्छादित रखते या भस्म लगाये रहते हैं। जैसा ध्यान किया जाता है-क्रमशः देह उसी रूप का हो जाता है।** मैंने कहा-बाहर के किसी अनुष्ठान से वीर्यपात बंद करने का उपाय नहीं है?।

ठाकुर-**सदा योनिमुद्रा करके बैठा जाए तो वीर्यपात बन्द हो जाता है।**

मैंने कहा-यह साधन जो पा चुके हैं वे सभी क्या दृष्टि साधन और योनिमुद्रा कर सकते हैं?

ठाकुर-**हाँ, जरूर कर सकते हैं।**

ऐसा दिन नहीं रहेगा।

आसन कुटीर में जाकर जब भी बैठता हूँ, दीवार पर ठाकुर के हस्तलिखित उपदेश-**'ऐसा दिन नहीं रहेगा'** पर दृष्टि पड़ती है, लगता है यह ठाकुर ने मेरे लिए ही लिखा है। शायद ये शुभ दिन मेरे भाग्य में अधिक दिन नहीं है। स्वयं भगवान गुरु रूप लेकर हमारे साथ मनुष्य की भाँति हैं। उनका नित्य संग पाकर भी दुर्भाग्य से उन्हें पहचान न पाया। जिनका संग ऋषि, मुनि, देवी, देवता पल भर पाने के लिए लालायित रहते हैं, मैं सदा उनके साथ रहते हुए भी उनका आदर, सत्कार या मर्यादा न कर पाया। भगवान कितनी ही बार अवतीर्ण हुए पर उनकी मर्त्यलीला समाप्त हुए बिना कोई भी उन्हें न जान पाया। अन्तर्धान के बाद उनके भक्तजन 'हाय क्या वस्तु खोया' ऐसा कहते हुए रोते और हाहाकार करते हुए दिन काटते हैं। अब मेरे भाग्य में भी ऐसा ही है। अभी मेरा कितना सुखद समय जा रहा है। ठाकुर का दुर्लभ संग कब तक पाऊँगा? कर्मचक्र से न जाने कब कहाँ जा पड़ूँ। कुछ निश्चित नहीं है, अतएव समय रहते ठाकुर को जीभर कर देख लूँ, ऐसा भाव मन में आते ही व्याकुल हो उठा और रोना आ गया, मैं रोक न सका। ठाकुर के सामने जोरों से रोने लगा। एकाग्र मन से ठाकुर के चरणों में प्रार्थना करने लगा-ठाकुर तुम पर एकान्त प्रेम दो, तुम्हारा अविच्छिन्न संग पा सकूँ, कृपा करके केवल यह आकांक्षा पूर्ण कर दो। इस समय देखा ठाकुर ध्यानमग्न हैं, उनका प्रफुल्लित मुख रक्तिम हो रहा है। और अश्रुधारा अविरल गालों पर बहती जा रही है। बीच-बीच में वे

सिर उठाते और फिर तल्लीन हो जाते हैं। रह रहकर अंग प्रत्यंग काँप उठते हैं। थोड़ी देर बाद उनकी बाहरी चेतना लौट आई। मैं भी समय हुआ देखकर भोजन पकाने चला।

श्रीधर के साथ झगड़ा-भागवत् पर स्याही का दाग। पर्वत पर जाने का आदेश।

सुबह नित्य कृत्यादि सम्पन्न कर आसन पर स्थिर होकर बैठा। आज श्रीधर मेरी राशि पर सवार हुए। आँखें बन्द देखकर धीरे-धीरे सामने आकर, घी की शीशी उठाकर जलती होम की अग्नि में सारा घी उड़ेल दिया। घी पाकर आग जोर से जलने लगी। मैंने आँख खोलकर देखा-श्रीधर मुझे देखते ही चंचलतापूर्वक घी की शीशी और हिलाने लगा। मैंने पूछा-यह क्या करते हो? यह कहकर घी की शीशी खींच लिया। श्रीधर ने कहा-'देख यह आग देख' यह कहते हुए अपने आसन पर जा बैठा। मेरे पन्द्रह दिनों का घी कुछ ही सैकेन्ड में समाप्त कर दिया यह देखकर दिमाग जल उठा। मैंने कहा-यह क्या किया, हाथ मरोड़ दूँ? बड़ा ही साहस है। श्रीधर बोला-क्यों भाई! क्या दोष किया जो हाथ तोड़ोगे? मैं-दोष और किसे कहते हैं? बहुत बड़ा दोष किया। मुझसे न पूछकर मेरा घी अग्नि में डाल दिया, किस बुद्धि से?

श्रीधर-कहता तो तुम क्या दे सकते? अग्निदेव को घी खिलाया इसमें दोष कैसा?

मैं-मेरे इतने परिश्रम से जुटाया हुआ असली घी तुमने जला दिया, यह दोष नहीं?

श्रीधर-अजी! स्वार्थबुद्धि से कुछ करो तो ही दोष है, तुम स्वार्थ

के लिए होम करते हो और आग में घी डालते हो। मेरा निःस्वार्थ भाव है मैंने वैसा नहीं किया।

अब मैं श्रीधर की बातें न सह सका और बोल पड़ा-भला चाहते हो तो अब चुप हो जाओ नहीं तो मार खाओगे, और हाथों हाथ निःस्वार्थ फल पा जाओगे।

श्रीधर-अच्छा लो, यह चुप हुआ। कहकर आँखे बन्द कर लिया। श्रीधर की अवज्ञा और उपेक्षा देखकर बड़ा क्रोध आया। मैंने मारने के लिए जैसे ही हाथ बढाया स्याही की दवात पर हाथ लगा और वह आसन तथा श्रीमदभागवत् के पन्नों पर जा गिरी। यथासाध्य उन्हें पोंछकर रखा। सुन्दर भागवत् की दुर्दशा देखकर मन में बड़ा कष्ट हुआ। दोपहर एक बजे दूसरे दिनों की भाँति भागवत्पाठ के लिए ठाकुर के पास पहुँचा। वे आज कुटीर में बैठे हैं। मेरे घुसते ही उन्होंने पूछा-**यह क्या?** मैंने कहा-दवात गिर गई, सो स्याही लग गई है।

ठाकुर मानो दुःखी होकर बोले-**भागवत् में स्याही का दाग।** कुछ और पूछे इस डर से मैं चुप रहा, स्याही कैसे गिरी कुछ न बताया। ठीक समय पाठ समाप्त कर ठाकुर के पास बैठा पंखा झलता रहा। गुरुभाईलोग ठाकुर से बातचीत करने लगे।

स्वामी हरिमोहन पर कटाक्ष करने से ठाकुर का असंतोष तथा डाँटना।

ठाकुर गुरुभाईयों से बातचीत करते हुए किसकी साधना में कौन सी बाधा है, बताने लगे। उसी समय मेरे विषय में उन्होंने कहा-इसमें प्रतिष्ठा का भाव है। यह न रहता तो अब तक सुन्दर

अवस्था प्राप्त करता। सबके सामने ऐसा बोलने पर मैं बड़ा लज्जित हुआ, कष्ट भी हुआ सोचा-ठाकुर मुझमें क्या प्रतिष्ठा का भाव देख पाए। मैं तो कुछ नहीं समझ पाता। प्रतिष्ठा पाने के लिए कुछ करता हूँ ऐसा स्मरण नहीं आता। सम्भवतः मेरे भीतर प्रतिष्ठा का भाव न आये इसीलिए ठाकुर ने पहले ही सतर्क कर दिया। पर दूसरे ही क्षण यह सोचा कि यदि प्रतिष्ठा का भाव मुझमें न हो तो गुरुभाईयों के सामने कहने पर मैं लज्जित और दुःखी क्यों हो रहा हूँ। ठाकुर से पूछा-इस प्रतिष्ठा के भाव का कैसे त्याग कर सकूँगा?

ठाकुर-**तुम ही क्या? बड़े-बड़े कितने ही लोग प्रतिष्ठा का भाव नहीं छोड़ पाते। श्वास-प्रश्वास में नाम जप करो। इसी से सारे दोष कट जाएंगे। प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा-प्रतिष्ठा का भाव एक रोग है। यह बात सदा याद रखना। थोड़ी देर रुककर फिर बोले-तुम कुछ दिन पश्चिम की ओर जाकर रहो ना। उपकार पाओगे।**

मैंने कहा-आपका संग छोड़कर कहीं जाने की मुझे इच्छा नहीं होती। स्वामी हरिमोहन की तरह एकबार आना और फिर जाना-ऐसा वैराग्य करके लाभ ही क्या?

ठाकुर मेरी बात सुनकर, हरिमोहन पर कटाक्ष सुनकर, खूब असंतुष्ट हुए और धमकाकर बोले-**स्वामीजी को सामान्य मत समझो, तुम्हें भी उनकी तरह कई बार आना-जाना पड़ेगा। वैराग्य प्राप्त कर शांत अवस्था पाने में अभी बहुत देर है। फिर भागवत् दिखाकर बोले-यह स्याही का दाग छुड़ाने में काफी समय लगेगा, अभी हुआ ही क्या है?**

ठाकुर के मुख से यह सब सुनकर भयभीत हो गया। कुछ न कहकर शंकित और विषण्ण मन से चुप ही रहा। ठाकुर कहने लगे-

सदा विचार करके चलोगे। जिसमें अभिमान हो ऐसा कुछ भी न करोगे। कभी किसी विषय में अनुकरण न करना। प्रत्येक वस्तु ग्रहण, रक्षण तथा त्याग विचारपूर्वक करोगे। जिसका उद्देश्य भगवान नहीं है वह चाहे कुछ भी हो दूर हटा देना। जिससे प्रतिष्ठा मिले उसे त्याग दो। जो उनके उद्देश्य से हो, सारा विश्व ब्रह्माण्ड ध्वंस होने पर भी उसे मत छोड़ो। जटा, माला, तिलक जो धर्मोद्देश्य से रखा जाता है यदि उससे भी अभिमान उत्पन्न हो, प्रतिष्ठा का कारण बने तो तुरंत दूर कर दो। इस विषय में नियत दृष्टि न रखो तो कोई पार नहीं। जितने भी प्रकार के अभिमान है उनमें धर्म का अभिमान सबसे गुरुतर पाप है। सावधान रहना। साधन, भजन, तपस्या, अध्ययन, बातचीत, वेषभूषा किसी विषय में अभिमान या प्रतिष्ठा का भाव आये- भीषण रोग जानकर तुरंत यह त्याग दो। कुछ देर बाद पुनः ठाकुर ने कहा--अभी पश्चिम के किसी एथान पर रहकर साधन भजन करो। काशी या चित्रकूट में रहो, उपकार पाओगे।

मैं-पश्चिम में किसी भी स्थान पर रहने से चलेगा?

ठाकुर-**हाँ। दो-चार माह प्रत्येक स्थान पर स्वतंत्र रूप से साधन भजन करने से उपकार होगा। ऐसा ही करो।**

मैंने कहा-मेरे कल्याणार्थ जहाँ भी जाने को कहेंगे, जाऊँगा। लेकिन मुझे आपके पास ही रहने की इच्छा होती है। मेरी धारणा है, कि आपके पास रहने से अधिक उपकार होगा।

ठाकुर-**ऐसी बात नहीं। अब पास रहने की बजाय दूर रहने पर अधिक लाभ होगा। पास, दूर में कुछ भी अंतर नहीं।**

ठाकुर की बातों के बाद मैंने पश्चिम जाने का निश्चय कर लिया।

स्याही के दाग में चण्डी पर्वत। विस्मयकर चित्र-ईश्वरीय विधान।

सुबह उठकर जैसे-तैसे नित्य कृत्यों को निपटाया। हृदय में बड़ा कष्ट होने लगा। इतने दिन साथ रखकर ठाकुर मुझे निर्वासन दे रहे हैं। दुःखी मन से काफी देर तक आसन पर पड़ा रहा। मध्याह्न को यथासमय ठाकुर के पास गया और एक ही अध्याय भागवत पाठ कर पाया। मैं खूब रोया। ठाकुर मग्न बैठे थे। कुछ देर बाद धीरे-धीरे आँखें खोलकर मेरी ओर स्नेहपूर्वक देखते हुए बोले-**अपना भागवत जरा मुझे दो तो।**

मेरे देने पर ठाकुर भागवत में उस स्याही के निशान पर एकटक देखने लगे। फिर बोले-**देखो क्या ही सुंदर पर्वत है। कल तो ऐसा नहीं देखा। सुन्दर! एक पर्वत का चित्र बन गया है। बड़ा ही सुन्दर है। पहाड़ के नीचे नदी बह रही है और शिखर पर एक सुन्दर मंदिर बना है। मंदिर की ध्वजा भी स्पष्ट दिख रही है।** कुछ देर चित्र की ओर देखते रहे फिर कुंजबाबू से बोले-**देखो क्या ही सुंदर पर्वत का चित्र है।** सभी देखकर आश्चर्य चकित हुए।

ठाकुर ने कहा-**जहाँ भी ऐसा पर्वत देखोगे वहीं आसन लगा लेना। अभी जैसे चल रहे हो, उसी प्रकार चलना, किसी की बातों से विचलित न होना।**

कुंजबाबू-वास्तव में क्या ऐसा कोई पर्वत है?

ठाकुर-**हाँ ठीक ऐसा ही पर्वत है। कल तो नहीं देखा था आज ही यह पर्वत का चित्र देखा हैं। आश्चर्य की बात है।**

कुंजबाबू-ऐसा पर्वत कहाँ है?

ठाकुर-**ढूँढ़कर देखो तो मिल जाएगा।**

कुंजबाबू-भारत में हजारों पर्वत हैं, छोटी उम्र का लड़का कहाँ ढूँढता फिरेगा? ढूँढने में ही कितना समय लग जाएगा, ऐसा पर्वत कहाँ है कृपया बता दीजिए।

आश्रम के सभी गुरुभाईयों ने मेरे लिए ठाकुर से अनुरोध किया। ठाकुर पर्वत कहाँ है, पर्वत का क्या नाम है, सहज ही नहीं बताना चाह रहे थे। बहुत ही विनती और अनुरोध करने पर बोले-**हरिद्वार में चण्डी पहाड़। इस पर्वत पर उसे जाना ही होगा। इसीलिए यह चित्र उभरा है। जाकर उपकार ही होगा। देखो किस सूत्र से क्या कार्य बनता है।** मैं यह सब सुनकर अवाक् रह गया। ईश्वरीय विधान मानकर मन का क्लेश कुछ दूर हुआ और पर्वत पर जाने का उत्साह जुटा पाया।

ठाकुर ने कहा-**अभी वहाँ ठण्ड है। इस माह के बाद जाना।** माताजी से अनुमति लेने ठाकुर ने मुझे घर जाने को कहा।

पर्वत पर जाने की माता की अनुमति व आशीर्वाद। माताजी की अनुमति लेने मैं घर आया। मौका पाकर माँ से सब कह सुनाया। माँ ने कहा-इस कम उम्र में पर्वत पर अकेला कैसे रहेगा? गोसाईं तुझे अपने साथ रखेंगे सोचकर उनके हाथों तुझे सौंपा था। अब इस उम्र में साथ छोड़कर तुझे अकेले पर्वत पर भेज रहे हैं? मैंने कहा-मैं यथार्थ धर्मलाभ करूँ इस आकांक्षा से जब तुमने मुझे उनके चरणों में अर्पित किया है तो जहाँ जाकर रहने से मेरा कल्याण होगा, ठाकुर वही व्यवस्था तो करेंगे। ठाकुर मुझे कभी संगच्युत नहीं करेंगे जहाँ भी रहूँ सदा साथ-साथ रहेंगे। अब प्रसन्न होकर संतुष्ट भाव से तुम भी आज्ञा दे दो नहीं तो मेरा इधर उधर दोनों ही बेकार हो

जाएगा। माँ ने कहा-नहीं-नहीं, गोसाईं जब बोले हैं तो गुरुवाक्य पालन करना ही पड़ेगा। जाना तो पड़ेगा। पर छोटा है अकेला पर्वत पर कैसे रहेगा, यह सोचकर कष्ट पा रही हूँ। मैंने कहा-पर्वत पर मुझे कोई कष्ट नहीं होगा। मेरी सब व्यवस्था गोसाईंजी कर रखे हैं। पास ही जनसमुदाय है भिक्षा की असुविधा न होगी। आहार भी काफी जुटेगा, कोई चिन्ता मत करो।

माँ-अच्छा वहाँ कैसे रहता है बीच-बीच में पत्र लिखा करना। गोसाईं जैसे कहते हैं वैसे ही चलना। मेरा आशीर्वाद है तेरी मनोकामना पूर्ण हो।

माताजी की अनुमति पाकर मैं ढाका रवाना हुआ। घर में रोना-धोना होते ही माँ ने सबको धमकाकर चुप कराया और कहा-किसी के जाते समय आँसू नहीं गिराना चाहिये, अशुभ होता है।

मदनोत्सव में महाविष्णुजी का संकीर्तन-ठाकुर का आनंद। दीक्षा।

गेण्डारिया आकर देखा, आश्रम लोगों से परिपूर्ण हैं। बंगाल के कई जिलों से गुरुभाईलोग ठाकुर के दर्शनार्थ आये हैं। उत्साह तथा आनंद से सबका मुख प्रफुल्लित है। संसार की यंत्रणा और दुःख भूलकर सभी ठाकुर के साथ आनन्द मना रहे हैं। गेण्डारिया के लड़कों ने इस बार माता ठाकुरानी का मंदिर फूल पत्तों से सजाया। माँ को विविध प्रकार से सजाकर वे आनन्द मना रहे हैं। ठाकुर भी उनका उत्साह बढ़ाते हैं। अपराह्न को शहर से बहुत लोग ठाकुर का दर्शन करने आये। शाम के पहले संकीर्तन आरंभ हुआ। पर न जाने क्यों ठीक जमा नहीं। कभी-कभी ठाकुर भी अटपटापन प्रकट करने

लगे। तभी भागलपुर से महाविष्णु यती आकर पहुँचे। वे मेरे आसन के पास बिस्तर, सामान पटककर आम के पेड़ के नीचे कीर्तन स्थल पर उपस्थित हुए। कुटीर द्वार पर ठाकुर को साष्टांग प्रणाम करके हाथ जोड़े खड़े रहे। ठाकुर को सतृष्ण नेत्रों से दर्शन करने लगे। दो-तीन मिनट बाद मौका देख महाविष्णुबाबू स्वरचित मदनोत्सव के गीत गाने लगे। ठाकुर गीत का प्रथम चरण सुनते ही आसन से कूद पड़े और **'जय राधे! जय राधे!'** कहने लगे और आम के पेड़ के नीचे आकर नृत्य करने लगे। उनके मधुर नृत्य को देखकर सबके मन में आनन्द और उत्साह भर गया। गुरुभ्रातागण ताली बजाकर नृत्य करते हुए ठाकुर को घेरकर विष्णुबाबू के साथ गाने लगे-चलो री वृन्दे श्री गोविन्दे.............. आज ठाकुर मधुर भाव से मतवाले होकर अपूर्व नृत्य करने लगे। विविध प्रकार से अंग हिलाते देख दर्शक-मण्डली मुग्ध हो गई। इस समय ठाकुर एक एक बार विष्णुबाबू को सीने से लगाते जाते थे। चारों ओर से रोने की आवाज सुनाई पड़ती थी। देखते ही देखते कई लोग अचेत होकर गिर पड़े। कोई-कोई मानो तीव्र पीड़ा से हाथ-पैर पटकने लगे। ठाकुर बारम्बार हाथ हिलाकर-**गाओ, गाओ मधुर स्वर में गाओ**-कहने लगे। विष्णुबाबू नृत्य करते हुए मधुर स्वर में गाने लगे-आज होली खेले श्याम................. इसी समय चारों ओर से गुलाल, कुमकुम उड़ने लगा। ठाकुर के पदाश्रित सभी हर्षित होकर ठाकुर के श्रीअंग में गुलाल डालने लगे। ठाकुर **जय राधे श्री राधे** कहकर ढेर सा गुलाल सब पर डालने लगे। मदनोत्सव के मधुर कीर्तन में आज सभी मतवाले हो गए। रात ग्यारह बजे ऐसे ही आनन्द के बाद ठाकुर आसन पर लौटे। कुछ देर विश्राम करके पूछा-**आज किसने गाया?**

मैंने कहा-महाविष्णुबाबू भागलपुर से दीक्षाप्रार्थी होकर आये हैं, आज वे ही गान कर रहे थे।

ठाकुर खूब संतुष्ट होकर बोले-**कल ही उनकी दीक्षा होगी, बता दो।**

मैं महाविष्णुबाबू को दीक्षा की बात बता आया और रात बारह बजे एकरामपुर पहुँचा। सजनी के घर जाकर उसे सुबह गेण्डारिया आश्रम आने को कहा। सजनी की दीक्षा के लिए उतावला हूँ।

प्रातः होते ही सजनी आश्रम आया। ठाकुर से उसकी दीक्षा की बात पूछते ही उन्होंने पूछा-**तुम्हारे दादा की अनुमति है? अभिभावक की अनुमति बिना तो नहीं होता।**

मैंने कहा-दादा इससे आनन्दित ही होगें। अभी उनकी अनुमति कैसे ले?

ठाकुर-खैर, तुम भी तो उसके अभिभावक हो तुम्हारी अनुमति से ही होगा। महाविष्णु बाबू के साथ ही सजनी की दीक्षा होगी, ऐसा ठाकुर ने कहा। सजनीकांत तथा महाविष्णु बाबू नदी में नहाने गये। ठाकुर चाय पीकर बार-बार उनकी बात पूछने लगे।

मैंने कहा-चाय के बाद दीक्षा होगी सुनकर शायद वे निश्चिंत है।

ठाकुर ने कहा-**दीक्षा का एक शुभ मूहूर्त होता है, उसके व्यतीत हो जाने पर ठीक नहीं होता।** यह सुनकर हम सब दौड़े और उन्हें ले आये। सुबह ९ बजे दीक्षा हुई। साधारणतः जो नाम दिया जाता है, उन्हें वह नाम नहीं मिला। सजनी ने जो नाम पाया वह हमारे परिवार के किसी ने नहीं पाया। अब तक हमारे परिवार में तीन नाम दिये गये। सजनी की दीक्षा के बाद मैं निश्चिंत हुआ।

महाविष्णु बाबू से कलह। संध्या करने को ठाकुर का आदेश।

दोपहर को भागवत पाठ के बाद ठाकुर के पास जा कर बैठा। महाविष्णु बाबू भी आये। नाना प्रसंगों में ठाकुर से उन्होंने पूछा-ये ब्राह्मण संतान है पर कोई संध्यादि क्यों नहीं करते? क्या आपने निषेध किया है? लोग इस संबंध में नाना प्रकार की आलोचना करते है। सुनकर दुःख होता है। उन्हें कुछ भी नहीं कह सकता क्योंकि लोग कहते है-इन सबसे हमारा कोई प्रयोजन नहीं, ठाकुर ने संध्या करने को नहीं कहा है।

ठाकुर-**क्यों साधन देने के पहले यह तो कह देता हूँ कि देशगत, कुलगत, समाजगत रीति नीतियों का पालन करके, आचार पद्धति मानकर साधन पथ पर चलोगे। वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करके चलना चाहिए। सदा कहता तो हूँ पर ये न मानें तो क्या कर सकता हूँ? कहता हूँ पर कहे अनुसार चलता कौन है?**

मैं संध्या नहीं करता इस विषय पर भागलपुर के विष्णु बाबू बहस करते रहे। ब्रह्मचर्य ग्रहण करके संध्या न करना अत्यंत अपराध है, कहकर सावधान करते रहे। अब ठाकुर की बातों से बल पाकर उन्होंने मुझे धर दबोचा। उन्होंने कहा-क्यों ब्रह्मचारी! तुम संध्या क्यों नहीं करते? ठाकुर ने तो तुम्हें निषेध नहीं किया है।

ठाकुर के सामने इस बात से में बड़ी उलझन में पड़ गया। उनका मुँह बंद करने के लिए तर्क शुरू किया। संध्या करता हूँ या नहीं तुम कैसे जाने? संध्या मंत्र ही है, उसका मूल है सद्गुरु के वाक्य। ठाकुर के आदेशानुसार चलने का प्रयास करता हूँ और तुम

कहते हो संध्या नहीं करता।

विष्णु बाबू-तुम्हारे उपनयन के समय जो वैदिक उपदेश दिए गए थे, वह सब तुम पालन करते हो?

मैं-उस दीक्षा को मैं दीक्षा नहीं मानता। ब्राह्मसमाज में प्रवेश करके तो मैंने सब त्याग ही दिया था। इसीलिए फिर ब्रह्मचर्य लिया। इसमें जो जो आदेश मिले हैं यथासाध्य प्रतिपालन करने का यत्न करता हूँ। तुम कहते हो संध्या नहीं करता। तुम तो बड़े भयानक व्यक्ति हो?

हमारे कलह को शांत करते हुए ठाकुर ने कहा-**उपवीत होने पर संध्या करना चाहिये। संध्या ब्राह्मण का अवश्य कर्तव्य तथा नित्य कर्म है। प्रतिदिन संध्या करो उपकार पाओगे।** ठाकुर की बात सुनकर मेरा तो दिमाग घूम सा गया।

मैंने कहा-संध्या आदि मैं नहीं कर पाऊँगा, जो जो कहा है वही ठीक से नहीं कर पाता और फिर संध्या। महाविष्णु-अजी संध्या न करने से पाप होता है। संध्या करने से इतना डरते क्यों हो?

मैंने कहा-तुम चुप रहो। पाप-पुण्य की परवाह मैं नहीं करता। इसका विचार करने वाले कर्ता कोई और हैं। गायत्री जप से सब कुछ होता है, समझे?

ठाकुर ने कहा-**नहीं नहीं, तुम संध्या करो, इससे उपकार पाओगे। सिर्फ गायत्री जप से ठीक नहीं होता।**

मैं-हाँ जितना बोझ हो सके मेरे ही ऊपर लादते जाइये। जो सब नित्यकृत्यादि से मुझे बांध दिया है उन्हें पूरा ठीक-ठीक करने में रात बीतते ही शुरू करूँ तो दोपहर, ढाई पहर बीत जाता है। उसके ऊपर संध्या करने से मेरा हाल बुरा हो जाएगा। आदेश हो तो करना

ही पड़ेगा। वह सब मुझे और न कहें।

ठाकुर-**ब्राह्मण के लिए संध्या का नितांत प्रयोजन है। संध्यादि करो उपकार पाओगे।**

मैं-उस समय इष्ट मंत्र जप करने से तो और भी अधिक उपकार होगा।

ठाकुर-**संध्या करने पर इष्टनाम जप का ही फल होगा।**

मैं-संध्या करने से इष्ट नाम करने का फल ही जब होगा। तो इष्टनाम जप करने से नहीं चलेगा? संध्या का क्या प्रयोजन है?

ठाकुर-**प्रयोजन है। हमारे साधन में शीघ्र उन्नति नहीं दिखती, उसका कारण है क्षेत्र नष्ट हो गए हैं। ऋषियों के समय आश्रम के अनुकूल नित्य कर्म अनुष्ठान करके क्षेत्र को एकदम पवित्र बना लिया जाता था। तब ये परमहंस धर्म ग्रहण करते थे। अतः फल भी शीघ्र प्राप्त होता था।**

ठाकुर की बातें सुनकर भाग्य का भोग मानकर चुप रहा। निर्जन पाकर ठाकुर से पूछा-कई लोग कहते हैं गुरु स्वयं होकर जो कहें वही उनका आदेश है। लोगों की बातें सुनकर जो कहें वह उनका यथार्थ आदेश नहीं होता। आपने मुझे सहस्त्रबार गायत्री जप करने को कहा है, मैं वही करता। मुझे लगता है कि विष्णुबाबू की बातों में सहमति देने के लिए ही आपने यह सब कहा। जिसके लिए जो नितान्त कर्तव्य है, वह सब आप दीक्षाकाल में ही कह देते हैं। दीक्षा के समय तो आपने संध्या की बात नहीं कही थी।

ठाकुर कुछ असंतुष्ट होकर बोले-**खाकर मुँह धोओगे, शौच करोगे, सभी बातें क्या दीक्षा के समय बोलना पड़ेगा? जो अवश्य कर्तव्य तथा नित्यकर्म हैं वह सब तो करोगे। प्रत्येक का**

नाम न गिनाओ तो नहीं करोगे? शास्त्र सदाचार मानकर चलोगे यह तो कहा ही जाता है। मैं आगे कुछ न कह सका। ठाकुर का आदेश मानकर संध्या करने की सोच लिया। मैं-संध्या न करने से क्या कुछ न होगा? हममे से कितने हैं जो संध्या करते हैं?

ठाकुर-**सबका व्रत भिन्न-भिन्न होता है। जो गृहस्थ हैं उनका एक तरह का और जो सारा जीवन धर्म लेकर रहेंगे उनका अन्य तरह का होगा। तुम्हें धर्म लेकर ही जीवन-यापन करना होगा। अतएव नित्य कर्म में से कुछ भी छोड़ना नहीं चलेगा। संध्या करने में कोई कष्ट नहीं। कुछ दिन जरा अभ्यास कर लो। बाद में उससे आराम और उपकार ही पाओगे।**

मैंने कहा-अब तक मैं समझ नहीं पाया था। अब लगता है आप संध्या की व्यवस्था करके मुझपर विशेष कृपा ही कर रहे हैं। अविच्छिन्न रूप से श्वास-प्रश्वास से नाम करना अत्यंत कठिन है। बहुत कोशिश करके भी देखा है नहीं हो पाता। पूजा, अर्चना, होम, पाठ आदि विभिन्न कार्यों में अनायास ही दिन बीत जाता है। इन कार्यों में समय काटना और श्वास-प्रश्वास में नामजप का फल यदि वस्तुतः एक ही है तो इन कार्यों के जरिये मुझपर कृपा ही किया है।

ठाकुर-**हाँ जो कहता हूँ करो। संध्या, होम, गायत्री, पाठ आदि करने पर तुम्हें नाम जप के समान ही उपकार होगा।**

मैं-संध्या में तो नाना प्रकार के रूप का ध्यान करना पड़ता है। मैं चतुर्भुज, रक्तवर्ण, श्वेतवर्ण आदि का ध्यान नहीं कर पाऊँगा। यह सब मुझे नहीं भाता। मैं इष्टदेव को अन्तस् में रखकर संध्या मंत्र उच्चारण मात्र करता जाऊँगा। यह सब मेरे ठाकुर की स्तुति और रूप वर्णना है ऐसा सोचूँगा। ऐसा करने पर नहीं चलेगा?

ठाकुर-**हाँ वही करो उससे ही होगा।** मैं-शालग्राम तो नहीं मिले। मिले तो कैसे अभिषेक, पूजा करूँगा?

ठाकुर-**गायत्री जप से अभिषेक व शास्त्रोक्त प्रणाली से पूजा करना। शालग्राम पूजा पद्धति की किताब खरीदने को मिलती है।** मैं-शालग्राम सदा साथ रखना होगा या निश्चित स्थान पर रख दूँगा?

ठाकुर-**-शालग्राम सदा साथ रखना होगा। छोटा कंठ शालग्राम मिलता है। उसे डब्बे में लेकर साथ ही रखना चाहिये। साधु लोग उसे कण्ठ में लटकाए रखते हैं।** मैं-सुना है अब मेरी बहुत परीक्षाएँ आने वाली हैं। चिमटे की मार खिलाने के लिए दूर क्यों भेज रहे हैं? आप साथ रखकर भी तो मार सकते हैं। और मैं क्या परीक्षा देने योग्य हुआ हूँ, जो मेरी परीक्षा ले रहे हैं?

ठाकुर-**आसन पर स्थिर रहना, कोई डर नहीं। साधु संतों से तर्क विवाद या कलह करने पर ही चिमटे की मार खानी पड़ती है।** मैं-पर्वत पर रहने की असुविधा हो तो पर्वत के किनारे रह सकता हैं या नहीं?

ठाकुर-**हाँ क्यों नहीं? हरिद्वार जाकर जहाँ अच्छा लगे वहीं रहना। उसे ही पर्वत पर वास माना जाएगा।** मैं-आपको देखने की तीव्र इच्छा होगी तो क्या करूँगा?

ठाकुर-**जब वैसी खूब इच्छा होगी तो चले आना। बीच-बीच में पत्र लिखना।** मैं-हरिद्वार जाने का व्यय क्या यहीं से संग्रह करूँगा?

ठाकुर-**नहीं। ग्वालन्द तक का किराया यहाँ से ले जाना, आगे सब रास्ते में जुट जाएगा।** ठाकुर की बात सुनकर निश्चिंत हुआ। हरिद्वार जाने के लिए अधीरता होने लगी।

अभय कवच लाभ। ठाकुर का आशीर्वाद-भय नहीं है।

२९ फाल्गुन शनिवार। आज रात बीतते ही हरिद्वार रवाना होने का निश्चय कर ठाकुर से जाकर बताया। ठाकुर ने खूब आनन्द सहित अनुमति और आशीर्वाद दिया। एक अच्छा स्वप्न देखा। ठाकुर से बताने पर उन्होंने सुनना चाहा।

मैंने कहा-पर्वत पर जाने के लिए तैयार होकर ज्यों ही आपको प्रणाम किया आपने एक धागे को मेरी दाहिनी भुजा में बाँधकर कहा-**तुम्हें यह अभय कवच दे रहा हूँ। पर्वत पर जहाँ चाहो रहो-कोई डर नहीं है।** आपकी वाणी सुनकर मैं जाग उठा। स्वप्न वृत्तांत सुनकर ठाकुर संतुष्ट होकर बोले-सुन्दर स्वप्न देखा है। अब निश्चिंत होकर जाओ, कोई डर नहीं है।

ग्वालंद में सिपाही का पीछा करना। कुली डिपो में बन्द रहना। ठाकुर की अद्भुत् व्यवस्था।

आज सारा दिन ठाकुर के पास बैठा रहा। रह-रहकर ठाकुर स्नेह व ममतापूर्ण दृष्टि से मुझे देखकर मुग्ध करने लगे। आज सारा दिन मैं रोता रहा। आहार के बाद रात को ग्यारह बजे दक्षिण के कमरे में सो गया। रात बीतने पर ठाकुर ने योगजीवन को भेजकर मुझे जगाया। उनके बुलाने पर जाग गया। शौचादि सम्पन्न कर ठाकुर के श्रीचरणों में प्रणाम करके दोलाईगंज स्टेशन के लिए रवाना हुआ। चार-पाँच गुरुभाई भी मेरे साथ स्टेशन तक गए। आश्रम का कुत्ता केलो भी बार-बार पैरों पर लोटने लगा। केलो

स्टेशन तक गया और गाड़ी चढ़ने पर खूब चिल्लाने लगा। सुबह नारायणगंज पहुँचकर ग्वालन्द के लिए स्टीमर पर चढ़ा। शाम को ग्वालन्द पहुँचा। स्टेशन पर सामान लेकर उतरकर सोचने लगा-अब कहाँ जाऊँ? अब आसन, कंबल, लोटा, थैली लेकर पाँच मिनट भी चलने की क्षमता न रही। स्टेशन के पास बड़े मैदान में एक विशाल वृक्ष देखकर उसी के नीचे आसन लगाकर बैठा। और जाऊँ तो जाऊँ कहाँ? हाथ में पैसे भी नहीं, कुली की सहायता भी नहीं ले सकता। निरुपाय हो ठाकुर को स्मरण करने लगा। रात नौ बजे एक विशालकाय हिन्दीभाषी सिपाही ने मुझसे धमकाकर पूछा-कौन है रे? कितना माल चोरी किया? मैं उसकी बात का कोई जवाब न देकर चुप रहा। उसने कहा-चल मेरे साथ मैं सामान कंधे पर लादकर उसके साथ कुली डिपो में जा पहुँचा। सिपाही मुझे कमरे के बरामदे में बिठाकर चला गया। आधे घंटे बाद एक बाबू ने आकर मेरा नाम, परिचय पूछा। फिर उन्होंने कहा-मेरे साथ आईये। एक कुली मेरा सामान लेकर उनके साथ चला। बाबू के साथ उनके घर में प्रवेश करते ही उन्होंने अपनी पत्नी को आवाज देकर कहा-देखो मैं तुम्हारे लिए एक अच्छा कुली पकड़कर लाया हूँ। दूर से देखकर ही उनकी स्त्री दौड़कर आई और मेरे चरण छूकर प्रणाम करती हुई बोली-यह क्या दादा! आप यहाँ कैसे? मुझे पहचाना नहीं? मैं आपकी बहन प्रवासिनी हूँ। मैं अपनी फुफेरी बहन प्रवासिनी को देखकर आश्चर्य चकित हुआ। प्रवासिनी ने उत्साह सहित मेरे रहने की और भोजन पकाने की व्यवस्था कर दी। खिचड़ी बनाकर भोजन कर, कुछ देर बातचीत के बाद थका मांदा मैं सो गया। दूसरे दिन सारी बातें सुनकर बहन ने अपने पति से कहा-दादा के हाथ में

पैसे नहीं हैं। ये आराम से कलकत्ते तक जा सकें ऐसा बन्दोबस्त कर दीजिए। बहनोई ने मुझे इन्टरक्लास का टिकिट काटकर गाड़ी में बैठा दिया। मैं आराम से प्रातः सियालदह स्टेशन उतरकर भाँजे के घर जा पहुँचा। छोटे दादा भी वहीं रहते थे। मुझे तीन-चार दिन कलकत्ते में रुकना पड़ा।

कलकत्ते में कुछ दिन गुरुभाईयों के साथ परमानंद में बीता। दस बजे तक आसन के कृत्यादि सम्पन्न करके श्री अभय नारायण राय के घर जाया करता था। अपराह्न चार बजे तक अकेला रहकर भिक्षा के लिए निकलता। रात को भानजे के घर रहता था।

तारकनाथ दर्शन। विपत्ति। आश्चर्यपूर्वक गया पहुँचना।

१ चैत्र सोमवार। भोले बाबा तारकनाथ को देखने के लिए मन अधीर हो उठा। मैंने तारकेश्वर जाने का निश्चय कर लिया। मेरा अभिप्राय जानकर छोटे दादा तारकेश्वर की टिकट काट दिए। शाम को तारकेश्वर पहुँचा। कहाँ जाऊँ, कहाँ रहूँगा कुछ ठीक नहीं था। जरा चिन्तित हुआ। तारकेश्वर मंदिर के पास ही कहीं पड़ा रहूँगा सोचा और गाड़ी से उतरा। स्टेशन से बाहर आते ही एक व्यक्तिने कहा-बाबाजी आपसे स्टेशन मास्टर ने अनुरोध किया है कि आप उन्हें जाकर दर्शन देवें। मैं उसके साथ स्टेशन मास्टर के कमरे में पहुँचा। वे मुझे आदरपूर्वक बैठाकर धर्मालाप करने लगे और परम संतुष्ट हुए। रात दस बजे गरम दूध व ढेर सी मिठाईयाँ लाकर दिए। आहार के बाद द्वितीय श्रेणी के एक डब्बे में रहने की व्यवस्था कर दिए। रात को आराम से सोकर सुबह स्टेशन मास्टर के ही एक

आदमी के साथ मंदिर गया। सौभाग्य से आरती दर्शन हुए। स्नान कर तारकनाथ की पूजा करूँगा, सोचा व तालाब के किनारे जा बैठा। थोड़े समय में ही महामाया का प्रभाव देखा। 'नमस्तस्यै नमस्तस्यै' कहकर, तर्पण समापन कर मंदिर चला। तारकनाथ की जल और बेल पत्ते से जी भर कर पूजा किया। मंदिर से निकलकर सोचने लगा अब कहाँ जाऊँ। ठीक तभी एक संभ्रात व्यक्ति मुझसे आकर बोला-बाबाजी कृपया मेरे घर चलिये। मैं उसके साथ उसके घर गया। वे हवन का आयोजन करके, विविध प्रकार फल मिठाईयाँ तथा दूध ले आए। तृप्तिपूर्वक आहार कर स्टेशन आया। किसी तरह अब रानीगंज पहुँच सँकू तो गुरुभाई श्री देवेन्द्रनाथ सामन्त से मुलाकात होगी, उनसे हरिद्वार तक का किराया मिलेगा इस आशा से रानीगंज जाने की इच्छा रही। वैद्यनाथ जाने की इच्छा जानकर स्टेशन मास्टर खुद प्रवृत्त होकर बिना माँगे वैद्यनाथ की टिकट कटवा दिए। मैं वैद्यनाथ रवाना हुआ। रात नौ बजे रानीगंज स्टेशन पहुँचा। गुरुभाई देवेन्द्र सामन्त यहाँ रहते हैं समझकर स्टेशन पर उतर गया। उनका घर खाँरसूली बाजार में है। दो-तीन लोगों से पूछने पर मालूम हुआ कि उनका घर यहाँ से एक कोस दूरी पर है, उन्होंने कहा, 'इस पथ से चले जाइए।' मैं आसन थैला लेकर अंधेरी रात में उस रास्ते पर अकेले चला। काफी पथ चलकर हैरान हो गया। तब एक सभ्य व्यक्ति के बरामदे में सामान रख, आराम करने लगा। मैंने उन्हें देवेन्द्र बाबू का पता पूछते हुए अपना परिचय दिया। वे बड़े आदरपूर्वक घर में ले जाकर बैठाकर बोले, यही घर देवेन्द्र बाबू का है। देवेन्द्र दादा मेरा पत्र पाकर भी विशेष काम पड़ने पर वर्धमान गये है एवं चार-पाँच दिन वहाँ रहेगें। सुनकर तो मेरे सिर पर

मानो वज्र गिरा। देवन्द्र दादा से मिल पाता तो अनायास ही हरिद्वार तक जाने की सुव्यवस्था होगी, इसी भरोसे पर यहाँ आया था, परन्तु हाय! यह क्या सर्वनाश हुआ स्टेशन तक जाने का भी उपाय नहीं है अब कहाँ जाऊँ? सारी रात दुश्चिंता और अनिद्रा में कट गई। गुमास्ता ने मेरा खूब आदर-सत्कार किया। प्रात: स्नान कर यथाविधि होम पाठ, न्यासादि किया। कुछ व्यक्ति मेरे ये नित्यकृत्यादि देखकर बड़े प्रसन्न हुए और प्रणामी देकर पैर छूने लगे। मैने देखा मेरा गया तक जाने का किराया जुट गया। यह भी ठाकुर की दया से जुटा। हरिद्वार जाते समय आकाशगंगा पर्वत पर रघुवर बाबा से मुलाकात करके जाने को ही ठाकुर ने कहा था। यथा समय मैं स्टेशन पर आकर गया की टिकिट खरीदा और निश्चित समय रवाना हुआ।

गया में रहने की सुव्यवस्था।

५ चैत्र शुक्रवार। अधिक रात गए वास्तिकपुर स्टेशन पर उतरना पड़ा। अन्य यात्रियों के साथ स्टेशन के बरामदे में रात काटने लगा। बड़ी भूख लगी। साधु देख एक व्यक्ति ने स्वप्रेरित होकर आधा पाव पूड़ी और मिठाई खरीदकर मुझे दिया। तृप्तिपूर्वक खाकर मैं सोया रहा। सुबह गया की ट्रेन आते ही चढ़ा एवं लगभग नौ बजे गया पहुँचा। सुना है, श्रद्धेय गुरुभ्राता श्री मनोरंजन गुहठाकुरता अभी गया में हैं, किन्तु उनके घर का पता नहीं जानता। अनजान शहर में घर ढूँढकर हैरान हो गया। चानचौरा नामक स्थान पर एक बंगाली युवक को देखकर उनसे घर का पता पूछा। युवक ने मुझे परिश्रान्त देख अपने घर ले जाकर कुछ विश्राम के बाद मनोरंजन बाबू के घर

ले जाने की बात कही। थोड़ी देर में ही उनके घर पहुँचकर स्नान, संध्या, पूजा सम्पन्न किया एवं घर के सदस्यों का अपनापन प्राप्त किया। बाहर एक निर्जन कमरा मेरे लिए रखा गया था। मैं जितने दिन गया में रहूँ, इसी घर में रहूँ इसका इन्होंने विशेष रूप से आग्रह किया। मैं भी उनके प्रस्ताव पर सम्मत हुआ।

यहाँ श्री हीरालाल, मोतीलाल, कृष्णलाल और नन्दलाल बाबू सहोदर की भाँति स्नेहयुक्त आचरण करते हैं। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कायस्थ जाति के होते हुए भी इनका आचरण सदाचारी ब्राह्मण की तरह है। उनके एकाग्रचित्त हो आदर-सत्कार देखकर मैं अल्पकाल में ही मुग्ध हो गया। सदा ही मेरे पास रहकर मेरे प्रयोजनानुसार सेवा करते। मैं इस सबको अपने ठाकुर की असीम दया समझकर विस्मित और मुग्ध हो गया। निरुपाय होकर ठाकुर पर छोड़ दिया जाए तो वे किस प्रकार सुन्दर व्यवस्था करते हैं। देखते ही बनता है।

गया, आकाशगंगा पर्वत। रघुवर दास बाबा। शेष-चक्र संग्रह।

शाम को नन्दलाल बाबू के साथ आकाशगंगा पर्वत गया। सिद्ध रघुवर बाबा को प्रणाम किया। मेरा परिचय पाकर प्यार से उन्होंने मुझे बैठाया और आश्रम दिखाया। समतल भूमि पर इनका आश्रम है। गोदावरी के पथ से तीन चार मिनट चलकर उत्तर की ओर जाने पर बायीं ओर मुरली तथा दक्षिण में आकाशगंगा पर्वत है। कुछ सीढ़ियाँ चढ़कर दोनों पर्वतों के संधिस्थल पर आकाशगंगा पर्वत के पश्चिम में बाबाजी का आश्रम है। सामने महावीर जी की विशाल मूर्ति

देखकर नमन किया। मूर्ति के सामने सात-आठ हाथ चौड़ा तथा दस बारह हाथ लम्बा पक्का आंगन है। उसके पूर्व में एक बेल का झाड़ है। इस वृक्ष के नीचे आँगन से डेढ़ फुट ऊपर ६' X ४' का एक स्वच्छ पत्थर रखा है। बाबाजी ने कहा-दीक्षा प्राप्त करके भावोन्मत्त अवस्था में ठाकुर डगमगाते हुए इसी चबूतरे पर आकर बैठे। इसी पर ग्यारह दिन एवं ग्यारह रात अविच्छिन्न रूप से समाधिमग्न रहे। इस समय बाबाजी निरन्तर पास रहकर ठाकुर की देह की रक्षा करते रहे। इस पत्थर के पूर्व की ओर एक विशाल चट्टान है जिसके नीचे सुन्दर गुफा है, जो चार फुट चौड़ा और छह फुट लम्बा होगा। ठाकुर ने यहाँ कई दिन तक एकान्त में साधन की।

आश्रम के उत्तर में दो कमरे हैं। पूर्व वाला कमरा बाबाजी का भंडार तथा साथ वाला कमरा आसन कुटीर है। इसके सामने दक्षिण की ओर एक लम्बा चौडा दालान है। इससे लगा हुआ आगन्तुक साधु संन्यासियों के लिए एक बड़ा कमरा है। दक्षिण की ओर महावीरजी प्रतिष्ठित हैं। आश्रम के पश्चिम की ओर पच्चीस-तीस फुट नीचे आकाशगंगा झरना है। एक कुण्ड को जल से परिपूर्ण कर झरना कलकल शब्द से निम्न भूमि की ओर बहता है। आश्रम के दक्षिण में बेल, पूर्व में बरगद, उत्तर में पीपल तथा नीम के छत्ते की भाँति वृक्ष सारे आश्रम को ढक रखे हैं। आश्रम में बैठकर दक्षिण की ओर पूरा गया शहर, विष्णुपाद मंदिर तथा फल्गु के पार रामगया पर्वत दिखाई पड़ता है।

आश्रम के पूर्व में दो सौ फुट ऊपर जाने पर ठाकुर का दीक्षा का स्थान है। नतमस्तक रहने के कारण मेरी दृष्टि नहीं पड़ी। पहाड़ के सामने नीचे का सौंदर्य देखकर बड़ा ही आनन्द आया। बाबाजी मुझे

बेल के वृक्ष के नीचे बैठकर अनेक उपदेश देने लगे। उन्होंने कहा- हरिद्वार पर्वत पर तुम्हें जाने की जरुरत नहीं है। इसी पर्वत पर मेरे आश्रम में रहो। यहाँ रहकर निश्चिंत होकर साधन भजन करो। मैं भिक्षा करके तुम्हें खिलाऊँगा। मैं ही तुम्हें यहाँ लाया हूँ। तुम्हारे गुरुजी को मैं ही सारे संवाद देता हूँ। ऐसा करने पर वे संतुष्ट ही होंगे। मैंने कहा-मुझे साक्षात् उन्होंने जो आदेश दिया है, उसके परवर्ती आदेश पाते तक मैं वही करूँगा। हरिद्वार जाने का मैंने निश्चय किया है। बाबाजी बोले-अच्छा, अभी तुम जाओ मैं फिर तुम्हें यहाँ लाऊँगा। बाबाजी के पास लक्षणयुक्त शालग्राम की माँग करने पर एक नख के परिमाण के सर्पांकित शिला चक्र दिखाकर कहा-यह बड़ा उत्कृष्ट चक्र है। इच्छा हो तो ले लो इसका नाम शेषचक्र है। इसे नेपाल के नरसिंग नदी से लाया था। उस नदी में तुलसी, चंदन, पुष्प से शालग्राम के उद्देश्य से पूजा करने पर शिला अपने आप पास आती है। वस्त्र बिछाये रहने पर उसके ऊपर आ जाती है। तब उसे ले लेना चाहिये। किसी-किसी शालग्राम के भीतर स्वर्ण रहता है। ऊपर से चिन्ह देखने से जाना जा सकता है। वहाँ के पहरेदार निकाल लेते हैं। इस चक्र को मैं स्वयं जुटाकर लाया था। दुर्लभ वस्तु इतने दिनों तक गोपनीय रखा था। बाबजी की बातें मेरे मन को स्पर्श न कर सकी। काले पत्थर के ऊपर निपुण कारीगर द्वारा सर्पाकृति अंकितकर रखा होगा-ऐसा लगता है। बाबाजी की बात मानकर शिला साथ ले आया। सिर नीचे रखने के कारण पर्वत का अपूर्व दृश्य कुछ भी न देख सका। बाबाजी को दण्डवत् प्रणाम करके नन्दबाबू के साथ घर लौटा। घर की लड़कियों ने श्रद्धा सहित भोजन पकाने की तैयारी कर दी। प्रसाद पाकर दिवस के

अन्त में आराम से सो गया।

निःसंबल मनोरंजन बाबू। फल्गु में स्नान।

७ चैत्र रविवार। गुरुभाई श्रीमनोरंजन गुहठाकुरता गुरुदेव के आदेश से सपरिवार गया में रहते हैं। श्रद्धेय श्री रेवतीबाबू, वेणीबाबू आदि गुरुभाई भी साथ हैं। एक पैसा आय नहीं है, सम्पूर्ण आकाशवृत्ति पर निर्भर हैं। अपरिचित स्थान में बहुत से सदस्य साथ हैं। ऐसे निःसंबल दशा में वे कैसे दिन बिताते हैं, सोच नहीं पाता। संसार में ऐसा कोई और है या नहीं मालूम नहीं। गया आकर अब तक उनके निवास का पता न चला। भेंट भी न हो सकी। आज उन्हें देखने की तीव्र इच्छा हुई। ठाकुर की कृपा से मनोरंजन बाबू लोगों के मुँह से मेरी बात सुनकर सुबह आठ बजे मुलाकात करने आये। उन्होंने कहा-फल्गु में पानी आ रहा है। चलिए नहा आएँ। फल्गु अन्तः सलिला नदी है, इस समय जल दिखाई नहीं देता। गर्म रेत खोदते ही भीतर अत्यंत शीतल जल गड्ढे में भर जाता है। सर्दी-ज्वर के डर से इसमें कोई नहीं नहाता। जल आया है सुनकर उनके साथ नहाने गया। ठण्डे पानी में जी भरकर नहाया और तर्पण किया। सुना है, फल्गु में नहाकर पितरों के उद्देश्य से रेत का पिण्ड दान करना चाहिये। फिर विष्णु पद में पिण्ड दान करने से पितृपुरुष उद्धार होते हैं। मैंने तीन मुट्ठी रेत लेकर पिता व पूर्वजों की तृप्ति के लिए प्रदान किया। फिर विष्णु पद जाकर उनके तृप्ति व कल्याणार्थ जल तथा तुलसी द्वारा पूजा करके, होम समापन कर घर लौटा। गर्म चाय पीकर तृप्ति मिली।।

सूक्ष्मतत्त्व-अतीन्द्रिय।

अपराह्न को मुन्सिफ, सब जज, वकील आदि सुशिक्षित व्यक्ति मुझे देखने आये। वे मुझसे पूछने लगे-महाशय विष्णुपद में पिण्डदान करने पर परलोकगत आत्मा का कल्याण होता है, इसका क्या कोई प्रमाण है? मैंने कहा-इस विषय में मैंने किसी महात्मा से पूछा था, तब उन्होंने बताया था-प्रमाण तो यथेष्ठ हैं, किन्तु प्रमाण ग्रहण करने की योग्यता हममें नहीं है। सूक्ष्म पारलौकिक तत्त्व स्थूल जगत के दृष्टांत से कैसे समझे जा सकते हैं? अतीन्द्रिय विषय इन्द्रियों से समझ पाना संभव है क्या? तब मैंने कहा-इन्द्रिय, ज्ञान के द्वार स्वरूप है। ज्ञेय ऐसा क्या होगा जो इन्द्रियों से न समझा जा सके। महात्माजी बोले-जो कभी कुछ न देख पाया हो ऐसा जन्मांध, क्या कभी कोई दृश्य वस्तु का दृष्टांत समझ पाएगा। सहस्त्र बार कहने पर भी वह धारणा न कर पाएगा। जिह्वा, नासिका, कर्ण, त्वचा के विषय समझेगा परंतु चक्षु-ग्राह्य वस्तु के बारे में तो अज्ञान ही रहेगा। इसी प्रकार भगवान के सृष्ट बहुत से विषय हैं जो षष्ठ तथा सप्तम इन्द्रियों के विकसित होने पर ही समझे जा सकते हैं। एकमात्र साधन द्वारा ही ये इन्द्रिय प्रस्फुटित होते हैं। अतीन्द्रिय अर्थात् हमारे पंचेन्द्रिय के अतीत। इसी समय एक साधु ने मेरी बात रोककर बीच में कहा-साधन द्वारा दैहिक आवरण भेद होने पर, साधक इन इन्द्रिय शक्तियों द्वारा जो साधारण के बोधगम्य नहीं है, उन पारलौकिक तत्त्वों का ज्ञान उपलब्ध करते हैं। इस बात को लेकर साधु का उन व्यक्तियों का विवाद चला और मैं भी बचा। भगवान की अनन्त सृष्टि के अनन्त ज्ञानलाभ के लिए जीवात्मा के चारों ओर अनन्त द्वार हैं। इनके होते हुए भी केवल स्थूल पंचतत्त्व का ही ज्ञान प्राप्त हो सकता है। सूक्ष्म तत्त्व में प्रवेश का अधिकार नहीं होता। आज धर्मालोचना

में सारा दिन आनंदपूर्वक बीता।

बुद्ध गया दर्शन।

फल्गु के शीतल जल में खूब देर नहाया फलतः शरीर अस्वस्थ हो गया। मनोरंजन बाबू मुझे बुद्धगया ले जाने आये। हीरालाल बाबू गाड़ी किराये पर ले आये। दोपहर एक बजे हम बुद्ध गया रवाना हुए। राह में मुझे बुखार आ गया। सिरदर्द से अधीर हो उठा। घूम-फिरकर मंदिर आदि कुछ भी न देख पाया। ये सारे मंदिर, पुष्करिणी आदि सैकड़ों वर्ष रेत में दबे थे। कुछ समय पहले सरकार ने इनका उद्धार किया। अब भी कितनी चीजें जमीन के भीतर हैं कहा नहीं जा सकता। मैं किसी तरह मंदिर दर्शन करके पीछे बोधिवृक्ष के नीचे जा बैठा। एकाग्रचित्त से भगवान बुद्ध का स्मरण करते हुए बड़ा अच्छा लगा। मंदिर परिक्रमा पथ के आगे नए मंदिर में बुद्धदेव की शांत मूर्ति देखकर अपने को कृतार्थ मानने लगा। शरीर अस्वस्थ था, सो शीघ्र घर चला आया। घर आकर प्रबल ज्वर से बिस्तर पकड़ लिया। घर के लोग डाक्टर बुलाकर इलाज कराने लगे। पाँच-सात दिनों में मैं ठीक हुआ। इस समय मोतीबाबू सदा मेरे साथ रहकर सेवा करते और ठाकुर की बातें सुनकर प्रसन्न होते। उन्होंने ठाकुर को दीक्षा प्राथी हो पत्र लिखा है, सुना है वे शीघ्र ही दीक्षा पाएंगे।

साधु के कोप से भूत का उपद्रव।

मोतीबाबू से उनके घर की एक दुर्घटना सुनकर अवाक् हो गया। एक साधु के क्रोध से इस परिवार में भूत का उपद्रव होने से परिवार के सब संकट में पड़ गए। साधु इनके घर अक्सर भिक्षा लेने आते थे। निर्बाध रूप से भिक्षा पाने पर वह एक दिन आड़ आने लगे।

इच्छानुरूप वस्तु न पाने पर नाराज होकर गाली देते। एक दिन गृहस्वामी ने इनके आचरण से असंतुष्ट होकर दरबान से कह दिया उसे बाहर निकाल दो। अब यहाँ कभी न आये। दरबान ने भी साधु को अपमानित कर घर से निकाल दिया। साधु अत्यंत क्रोधान्वित होकर कहने लगा-अरे पापी साधु को नहीं मानता? अच्छा हम भी देख लेंगे। यह कहकर उन्होंने 'नरसिंह, नरसिंह' कहकर चिमटे से द्वार पर तीन बार चोट मारी और चले गए। इसके बाद से घर में भूतप्रेत का उपद्रव आरंभ हुआ। शाम के बाद सारी खिड़कियाँ दरवाजे बन्द रहने पर भी धमाधम आवाजों के साथ खुल जाते थे। दीपक की बत्ती अपने आप बुझ जाती और घर में शून्य से ही ईंट, पत्थर धूल गिरने लगते। ऐसी अवस्था में कब तक रहें सोचकर परिवार वाले बाँकीपुर चले गए। लेकिन वहाँ भी ऐसे उपद्रव होने लगे। तब आरा के एक शक्तिशाली फकीर का पता पाकर वहाँ गए। फकीर साहब ने मंत्र पढ़कर, शंख बजाकर भूत को भगा दिया। इसके बाद से कोई उपद्रव नहीं हुआ। शून्य पथ से ईंट, पत्थर गिरना, दरवाजे खिड़कियों का बन्द हो जाना, दीपक का बुझ जाना प्रत्यक्ष घटनाएँ हैं। यह घटना सुनकर बड़ा अचम्भा हुआ। यह अलौकिक कार्य जिनके द्वारा होते हैं, साधक अपने साधन बल से उन परलोकगत आत्माओं पर आधिपत्य कर सकते हैं, शक्ति प्रयोग कर सकते हैं, यह बड़ी विस्मयकारी बात है।

ब्रजमोहन की अलौकिक दीक्षा।

पाँच, छह दिन बिस्तर पर पड़े रहकर स्वस्थ हुआ। पथ्य पाकर कुंज के पास जाने के लिए अधीर हो उठा। मेरे हाथ में पैसे कौड़ी

नहीं हैं। अतः बाबू लोगों ने आरा तक टिकिट कटवा दिया। सोलह चैत्र कुंज के पास जा पहुँचा। कुंज के ज्येष्ठ भ्राता आबकारी विभाग के इंस्पेक्टर हैं। वे मेरा खूब आदर-सत्कार करने लगे। कुंज के पास ठाकुर के प्रसंगों में बड़ा आनंद आने लगा। गेण्डारिया रहते समय कुंज के कुलपुरोहित श्री ब्रजमोहन चक्रवर्ती महाशय की दीक्षा का वृत्तांत सुनकर बड़ा आश्चर्यान्वित हुआ। कुंज से मिलकर इस घटना की जानकारी पाने की इच्छा हुई। पूछने पर कुंज ने बताया- पुरोहितजी की ठाकुर से दीक्षा लेने की बड़ी इच्छा थी। किन्तु इनकी दशा इतनी शोचनीय थी कि गेण्डारिया जाने का सामर्थ्य न था। वे व्याकुल होकर ठाकुर से प्रार्थना करने लगे। एक दिन पुरोहितजी भोजन के बाद सो गए। रात गए, 'ब्रजमोहन, ब्रजमोहन' पुकार सुनकर वे बाहर आए और देखा ठाकुर सामने खड़े हुए कह रहे हैं-'शीघ्र स्नान कर आओ अभी तुम्हारी दीक्षा होगी।' ब्रजमोहन स्नान कर आया। कपडे बदलकर ठाकुर के कहे अनुसार चण्डी मण्डप कक्ष की ओर जाने लगे। कमरे के पास पहुँचकर पुरोहितजी मुडकर देखते हैं ठाकुर नहीं हैं। व्यग्र होकर दरवाजा खोलते ही देखा ठाकुर कमरे में बैठे हैं। यथारीति सामने बैठाकर ठाकुर ने उन्हें दीक्षा प्रदान की। दीक्षा के बाद ब्रजमोहन साष्टांग प्रणाम करके उठे तो देखा ठाकुर नहीं है। वे इधर-उधर ठाकुर को ढूँढे फिर जाकर सो गये। सुबह नींद खुलते ही उन्हें रात की घटना स्मरण हो आई। बाहर द्वार पर गीले कपडे देखकर मन का संशय दूर हुआ। तुरंत गुरुभाई रामकृष्ण ठाकुरता और रजनी ठाकुरता से सारी घटना सुना आये। सुनकर उन्हें संदेह हुआ। उन्होंने ठाकुर को पत्र लिखा। उत्तर में ठाकुर ने लिखा-**घटना सत्य है, किन्तु उसे पुनः दीक्षा**

लेनी पड़ेगी।

बस्ती यात्रा। दादा का अपूर्व दीनभाव।

आरा आकर मेरा शरीर स्वस्थ न रहा। कुंज के साथ कुछ दिन व्यतीत कर काशी जाने का संकल्प किया। काशी में रामकुमार विद्यारत्न (ब्रह्मानंद स्वामी) तथा ताराकांत दादा (ब्रह्मानंद भारती) हैं। उनके यत्न से उत्तम शालग्राम जुट पायेगा तथा त्रिसंध्या विधि भी अच्छे से लिख लूँगा। आसन थैली लेकर काशी जाने को तैयार हुआ। इस समय कुंज ने कहा-अस्वस्थ शरीर में काशी जाकर अनियम से और भी बीमार पड़ोगे। पर्वत पर शीघ्र जाने में बाधा पड़ेगी। इससे तो अच्छा है, दादा के पास बस्ती जाओ। मैंने भी उसकी बात उचित जानकर बस्ती जाने का निश्चय किया। कुंज मध्यमश्रेणी की टिकिट खरीद लाया। चलती रेलगाड़ी के दोनों ओर साल के घने वनों को देखकर बड़ा आनंद आया। मैं अनुसंधान करता रहा कि ठाकुर को इनके बीच देख पाता हूँ या नहीं। दूसरे दिन सात बजे दादा के घर पहुँचा। दादा पूजा कर रहे थे। दादा के पास न जाकर मैं बरामदे में आसन लगाकर बैठा। दादा पूजा आदि समापन कर मेरे पास आये। दादा को देखकर मैं अवाक रह गया। दादा का स्थूल देह अब सूखकर हल्का हो गया है। दादा हाथ जोड़े नमस्कार करते हुए मेरे सामने आये। ऐसा प्रतीत हुआ कि दादा के चरण भूमि को मात्र स्पर्श किये हुए हैं। उन्हें देखते ही मैं दण्डवत् हुआ किन्तु दादा ने मुझे चरण स्पर्श करने नहीं दिया। मैं दादा के चारों भाई-बहनों में छोटा हूँ तथापि दादा का इस प्रकार भाव देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। दादा का चेहरा उज्ज्वल, सात्त्विक

वैष्णव की तरह है। उनकी स्नेहपूर्ण दृष्टि से मैं शीतल हो गया। दादा का यह दीनभाव मैंने पहले कभी नहीं देखा था। ठाकुर ने दादा के बारे में कहा था-**तुम्हारे दादा एकदम भोलेभाले आदमी हैं, अत्यधिक सरल हैं। संसार का कुछ भी नहीं जानते। फैजाबाद में उनके क्रियाकलाप देखकर हम अवाक् हो गए थे। एकदम बालक के समान-विश्वास अत्यंत अच्छा है।** दादा को देखकर ठाकुर की बातें स्मरण हो आई। दादा ने मुझे स्नानपूजा के बाद जलपान करके विश्राम करने को कहा। स्वयं शालग्राम का थोड़ा सा प्रसाद ग्रहण कर अस्पताल को गए।

बस्ती में स्वास्थ्य लाभ।

दादा के बैठक से लगे जिस कमरे में पहले था, इस बार भी उसी में आसन लगाया। रात बीतते ही पूर्ववत् घड़ी के अनुसार दिनचर्या बांधकर कार्य करने लगा। सुबह से तीन बजे तक ठाकुर अपने नाम ध्यान में मुग्ध किये रखते हैं। आहा! कब निर्जन पर्वत पर जाकर दिन-रात उनके मनोहर रूप में, ध्यान विभोर रह पाऊँगा। कब ठाकुर चारों ओर शून्य करके केवल अपने शांतिमय चरणों में आश्रय प्रदान करेंगे। शीघ्र पर्वत पर जाने को मन अधीर हो उठा। लेकिन शरीर को अशक्त देखकर दादा ने बाधा देते हुए कहा-कुछ दिन नियमित आहार करके शरीर को स्वस्थ करना होगा। दादा मेरे पौष्टिक आहार की सुव्यवस्था करके समय समय पर औषधि देने लगे। भिक्षा करने में असमर्थ था इसलिए वह बन्द कर दिया। छह सात दिनों तक दादा की व्यवस्था अनुसार चलकर शरीर चंगा हो गया। पर्वत के निकटवर्ती ग्रामों में चावल नहीं जुटेगा

ऐसा अनुमान कर दादा ने मुझे दाल-रोटी खाने की आदत डालने को कहा। मैंने भी वैसा ही किया। फिर धीरे-धीरे नमक रोटी खाने लगा। शरीर शीघ्र ही स्वस्थ्य और सबल हो गया। पर्वत पर ठण्ड से पुनः ज्वर न आये इसलिए दादा ने मुझे रुई का अचकन बनवा दिया तथा कंदमूल खोदने के लिए एक बड़ा चिमटा भी बनवा दिया। एक चाँदी का सुन्दर डब्बा देकर दादा ने कहा-इसमें शालग्राम को रखकर कण्ठ में धारण करना, अन्यथा चोरी चली जाएगी।

शालग्राम पूजा व त्रिसंध्या आरंभ।

रघुवर बाबाजी के पास से जो शेषचक्र पाया था अब तक वह थैले में ही था। अब जल, तुलसी, चंदन से उनकी पूजा करने लगा। वह मेरे मनपंसद सुगठित नहीं है अतः पूजा में आनंद नहीं पा रहा हूँ। संध्या करने की प्रबल इच्छा होने से रोज त्रिसंध्या करने लगा। संध्या का आचमन, आपमार्जन, अघमर्षणादि कैसे करते हैं, मैं नहीं जानता। सभी मंत्रों का तात्पर्य तो स्वयं भगवान हैं। अतः संध्या भी अपने ठाकुर के श्रीअंगों की वर्णना मात्र कर रहा हूँ। संध्या पाठ के काल में ठाकुर के प्रत्येक अंग प्रत्यंग प्रत्यक्ष होते हैं, स्पष्ट आँख में दिखाई पड़ता है। क्या ही आनंद पाता हूँ प्रकट नहीं कर पाता। अब ऐसा लगता है कि मानो सारा दिन ही ठाकुर की उपासना में बीतता है।

प्राचीन के प्रति आदर।

कुछ काल पूर्व ही फैजाबाद में दादा को खूब सुखभोग में रहते देखा। अब उनके अपूर्व वैराग्य को देखकर अवाक् हो जाता हूँ।

अयोध्या से दादा के धर्मबन्धुगण आकर उनका संगलाभ करते हैं। उनके साथ बड़े आनंद से कुछ दिन बीते। दादा के मुख से बाबू हरिसिंह की बात सुनकर अवाक् रह गया। विपुल ऐश्वर्य में रहकर भी वे जिस प्रकार दीनतापूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं, वह अद्भुत है। दादा बोले-एक दिन मैं हरिसिंह के घर गया। उसके घर के सजावट के सामान तथा घर द्वार आदि देखकर मैंने उसे अपार धनी समझा। घर के भीतर जाकर एक पुराने मिट्टी का घर देखकर मेरी पत्नी ने उनकी पत्नी से पूछा-ऐसे सुन्दर घर के भीतर यह खपरैल का घर क्यों है? वे डबडबाई आँखों से बोली-यह घर ही मेरी लक्ष्मी है। मेरे पति जब दस रूपये वेतन की नौकरी करते थे तब हम इसी घर में रहते थे। इसी घर में रहते हुए जो कुछ ऐश्वर्य बढा। अब इसे मैं क्या त्याग सकती हूँ? गर्मी, वर्षा, ठण्ड हम बारहों महीने इसी में रहते हैं। जब तक रामजी संसार में रखें इसी घर में रहेंगे। यह ऐश्वर्य जिनके भाग्य से आया है, वे ही भोगेंगे। सुना है हरिसिंह लाखों रूपयों का मालिक है। कई स्थानों पर छत्र, धर्मशालाएँ बनवा चुका है। प्रतिमाह हजारों रूपये परोपकार में व्यय करता है। राजप्रासाद की भाँति अट्टालिका बनाकर भी पुरानी कुटिया नहीं छोड़ी, स्वयं वहीं रहते हैं, ऐसा दृष्टांत विरल है।

श्वास-प्रश्वास में साधन तत्त्व।

बस्ती में कोई प्रसिद्ध देवालय या साधु हैं या नहीं पूछने पर दादा ने कहा-नानकशाहियों का एक अखाड़ा है, और भी एक दो देवालय हैं पर कोई भी उतने प्रसिद्ध नहीं। बौद्धलामा गुरु यहाँ आकर रहते, पर्यटन करके चले जाते हैं। सुना था यही बस्ती,

प्राचीन कपिलवस्तु है। यहीं राजपुत्र शाक्य सिंह गौतमबुद्ध का जन्म हुआ था। यहीं जरा, व्याधि तथा मृत्यु के दर्शन से उनमें वैराग्य का उदय हुआ था। वे त्रिताप दग्ध जीव को जलते देख, संसार का बंधन तोड़कर, अतुलनीय राजपाट, यौवन का संभोग इच्छा त्यागकर घोर वन में कठोर तप में तल्लीन हुए। छह साल अदम्य अध्यवसाय, आत्मसंयम, इन्द्रियनिग्रह नाना प्रणाली से योगाभ्यास करके भी 'सत्य तत्त्व' की उपलब्धि न हो सकी। अन्त में उन्होंने अन्तर्दृष्टि की सहायता से दुःख का मूल कारण अनुसंधान करने पर, निर्वाण का अभिनव पथ ढूँढ निकाला। परदुःख कातर, सदय हृदय बुद्धदेव ने स्वयं के निर्वाण से तृप्त न होकर जीव के कल्याणार्थ, मनोविज्ञान सम्मत अनमोल साधन प्रणाली प्रकाशित की। जिसके अनुसरण से पृथ्वी के एक तिहाई लोग मुक्ति पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। युगों से चल रहे मानव सभ्यता पर आर्यधर्म के प्रभाव को और भी विस्तारित कर रहे हैं। ठाकुर की असीम कृपा से हम सबने जो साधन प्राप्त किया है-वह कई अंशों के बौद्ध साधन से मिलता जुलता है। बुद्धदेव ने नाना प्रकार साधन प्रणालियों में देह तत्त्व अवलम्बन कर साधन पंथ में अधिक विशेषता दिखाई। बौद्ध धर्म शास्त्र त्रिपिटक तथा विशुद्ध मार्ग आदि ग्रन्थों में कई दृष्टांत हैं। अंगुत्तर निकाय में रोहिलाश्व वग्ग में उन्होंने कहा है-

'अपिचाहं आवास इमस्मिं एव व्याममत्ते कलेवरे सन्निद्धि समान के।

लोकांच पन्नपेमि लोकसमुदायंच लोक निबोधनंच प्रतिपदन्ति' इत्यादि।

साढे सात हाथ के इस शरीर में चैतन्य व मन जहाँ है, उसी

स्थान में जगत की सृष्टि, स्थिति प्रलय भी है, तथा इस संसारावर्त से परिनिर्वाण का पथ भी है।

फिर कायगतासति या देहतत्त्व अवलम्बन से साधन प्रणाली में आनापानसति या श्वास-प्रश्वास में मन संयम करके साधन करना ही प्रशस्त है। आनयति अर्थात् श्वास ग्रहण करना, पानयति अर्थात् श्वास त्याग करना समझता है। सति शब्द का संस्कृत उच्चारण स्मृति है, किन्तु स्मृति शब्द का अर्थ जो भी हो, पाली में वह प्रति निमेष, प्रतिपल, प्रतिमुहूर्त जो कुछ घट रहा है उसमें जागृत होकर मनोसंयोग किए रहना-सूचित करता है। ध्यान करने के पूर्व मन को पुनः पुनः निविष्ट करने के लिए प्रस्तुत करना पडता है। चंचलता, जड़ता, निद्रा, आलस्य आकर मन की एकाग्रता नष्ट न करे, इस ओर सचेत रहना पडेगा। बौद्धधर्म शास्त्र में बारंबार उल्लेख है, साधक अरण्य, वृक्षमूल में, किसी जनशून्य स्थान में पद्मासन में बैठे। देह सरल सीधा रखकर, नासिका के अग्रभाग में चित्त स्थिर कर, साधन या ध्येय वस्तु में मन संयोग करें। फिर विशेष धैर्यपूर्वक प्रत्येक श्वास-प्रश्वास की ओर ध्यान रखकर निम्नलिखित साधन प्रणाली से साधन प्रारंभ करें:-

१) स सतो व अस सरति सतो व पस्सति।।

वे स्मृतिशील होकर श्वास ग्रहण व प्रश्वास त्याग करते अर्थात् श्वास ग्रहण काल में स्पष्टतः अनुभूति रहे कि वे श्वास ले रहे हैं, तथा प्रश्वास त्याग के समय भी उन्हें मालूम रहता है कि प्रश्वास त्याग कर रहे हैं। इस प्रकार स्मृतिशील होकर अतीत या भविष्य की ओर दृष्टि न देकर केवल मात्र वर्तमान की ओर ध्यान रखकर श्वास लेते व प्रश्वास त्याग करते हैं।

२) दीघं वा अस्ससन्तो दीघं अस्ससामीति पजानाति,

दीघं वा पस्ससन्तो रस्सं अस्ससामीति पजानाति,

रस्सं वा पस्ससन्तो रस्सं अस्ससामीति पजानाति,

रस्सं वा पस्ससन्तो रस्सं पस्ससामिति पजानाति।।

श्वास-प्रश्वास का खिंचाव यदि लम्बा है, तो साधक दीर्घ श्वास ग्रहण तथा दीर्घ प्रश्वास त्याग रहे हैं, यह वे जानते हैं। श्वास-प्रश्वास यदि छोटा है, तो साधक ऐसा छोटा श्वास ले रहे और छोटा प्रश्वास त्याग रहे हैं, यह भी जानते हैं।

३) सब्बकाय पटिसंवेदी अस्ससामीति सिक्खति।

सब्बकाय पटिसंवेदी पस्ससामिति सिक्खति।।

वे (साधक) सर्वांग में श्वास-प्रश्वास का स्पन्दन, कंपन या गति अनुभव करते हैं। इस प्रकार श्वास ग्रहण तथा प्रश्वास त्याग करने की शिक्षा लेते हैं। यहाँ सर्वांग का अर्थ, बुद्धदेव के अनुसार नाभि से नासाग्र तक है, क्योंकि श्वास-प्रश्वास की उत्पत्ति व अन्त यहीं तक है, ऐसा निर्देश है।

४) पस्सन्भयं कायसंखारं अस्ससामीति सिक्खति,

पस्ससम्भयं कायसंखारं, पस्ससामीति सिक्खति।

श्वास-प्रश्वास में लक्ष्य रखने पर देह के संस्कार विलुप्त होंगे। इस प्रकार श्वास ग्रहण और प्रश्वास त्याग की शिक्षा लेते हैं। उक्त चार सूत्रों को लेकर प्रथम चतुष्क बना है। जिसके प्रथम में श्वासप्रश्वास चलने का ज्ञान, द्वितीय में श्वास-प्रश्वास के लघु दीर्घ होने का ज्ञान, तृतीय में सारे शरीर व्यापी श्वास-प्रश्वास के कार्य का ज्ञान, चतुर्थ में देह संस्कार त्याग से निरोध अभिमुख का ज्ञान, सूचित होता है-

५) पीति पटि संवेदी अस्ससामिति सिक्खति।।

पीति पटि संवेदी पस्सासामीति सिक्खति।

प्रत्येक श्वास-प्रश्वास ही प्रीति उन्मेषक है, इस भाव से श्वास लेने व प्रश्वास छोड़ने की शिक्षा लेते हैं।

६) सुख पटि संवेदी अस्ससामीति सिक्खति।

सुख पटि संवेदी पस्ससामीति सिक्खति।।

प्रत्येक श्वास सुख उत्पन्न कर रहा है, इस भाव से श्वास ग्रहण तथा प्रश्वास त्याग करने की शिक्षा लेते हैं।

७) चित्त संखारं पटि संवेदी अस्ससामीति सिक्खति।

चित्त संखारं पटि संवेदी पुस्ससामीति सिक्खति।

प्रत्येक श्वास प्रश्वास में चित्त संस्कार का अर्थात् उपेक्षा, वेदना इत्यादि का उन्मेष हो रहा है। इस तरह श्वास लेने और प्रश्वास छोड़ने की शिक्षा लेते हैं।

८) पस्सन्भयं चित्त संखारं अस्ससामीति सिक्खति, पस्सन्भयं चित्त संखारं पस्ससामीति सिक्खति।।

चित्त संस्कार प्रशमित, दमित, शांत तथा निरोध करते हुए, श्वास ग्रहण व प्रश्वास त्याग करने की शिक्षा लेते हैं।

पंचम से अष्टम तक चार सूत्रों को लेकर द्वितीय चतुष्क बनाया गया है। इस द्वितीय चतुष्क में कहा गया है-देह के संस्कार त्याग कर सकने पर मन अन्तर्मुखी हो जाता है, विक्षिप्तता कम हो जाती है एवं एकाग्रता बढ़ती है। इससे प्रीति, सुख आदि चित्तवृत्तियों या भावों का उदय होता है। इसके बाद इस चतुष्क के शेष भाग में इन चित्तवृत्तियों के निरोध करने की बात कही गई है। श्वास-प्रश्वास के अवलम्बन से भीतर का प्रत्येक भाव पहले जाग उठेगा। फिर उसी के द्वारा उसे समूल उत्पाटन करने की कुशलता बुद्धदेव ने बताई है।

९) चित्त पटिसंवेदी अस्ससामीति सिक्खति,

चित्त पटिसंवेदी पस्ससामीति सिक्खति।

उपरोक्त उपाय से चित्तवृत्तिहीन होने पर प्रति श्वास-प्रश्वास में वह विकसित होता है। इस वृत्तिविहीन चित्त को प्रकट करते-करते श्वास ग्रहण व प्रश्वास त्याग करने की शिक्षा लेते हैं।

१०) अभिपमोदयं चित्तं अस्ससामीति सिक्खति,

अभिपमोदयं चित्तं पस्ससामीति सिक्खति।

प्रति श्वास-प्रश्वास में चित्त अभिप्रमोदित या आनंदमय हो रहा है, इस भाव से श्वास ग्रहण व प्रश्वास त्याग की शिक्षा लेते हैं।

११) समादहं चित्तं अस्ससामीति सिक्खति,

समादहं चित्तं पस्ससामीति सिक्खति।

प्रति श्वास-प्रश्वास में चित्त साम्य भावापन्न या समाहित हो रहा है। इस भाव से चित्त को सम्यक् तथा समान भाव में स्थापित करते हुए ,समाहित या समाधियुक्त करते हुए, श्वास ग्रहण तथा प्रश्वास त्याग करने की शिक्षा लेते हैं।

१२) विमोचयं चित्तं अस्ससामीति सिक्खति,

विमोचयं चित्त पस्ससामीति सिक्खति।।

प्रति श्वास-प्रश्वास में पंचनिवारक अर्थात निर्वाण के पाँच प्रतिबन्धक अविद्या, अस्मिता, आनंद आदि पंचभावों से विमुक्त होकर शुद्ध, बुद्ध अवस्था हो रही है, ऐसे भाव से साधक श्वास ग्रहण और प्रश्वास त्याग करने की शिक्षा लेते हैं।

नवम से द्वादश तक चार सूत्र लेकर तृतीय चतुष्क बना है। इसमें विशेष रूप से कहा गया है। चित्त की वृत्ति निरोध होने पर भी, मूल चित्त रह जाता है। अतः पहले उसे और भी प्रस्फुटित कर

लेना होगा तो आनंद अवस्था प्राप्त होगी। आनंद के अतिरेक से चित्त पूर्णतः एकाग्र होगा। इस प्रकार तीक्ष्ण एकाग्रता से परीक्षा करके, चित्त के जो भी गुप्त संस्कार हों, उन्हें दूर करना होगा। सुख, प्रीति, आनंद आदि सभी निर्वाण के विरोधी हैं। उन्हें निर्मूल करके शुद्ध, बुद्ध, मुक्त अवस्था में उपनीत होना होगा।

अन्त में चतुर्थ चतुष्क में, 'आनापानीसती' अर्थात् श्वास-प्रश्वास का अवलम्बन ले, साधक के साथ विदर्शन भावना करने का उपदेश दिया है। पूर्वोक्त प्रणाली से साधन करके चित्त में जो विशुद्धि उत्पन्न होती है, वह सामयिक तथा असम्पूर्ण है। जैसे काई वाले तालाब में पत्थर फेंकने पर कुछ देर लिए काई हटती है और फिर ढक जाती है। साधन द्वारा चित्त संस्कार-रहित होने पर भी, संस्कार के मूल रह जाते हैं। सुअवसर पाते ही वे पुनः उत्पन्न होकर चित्त को आच्छादित कर लेते हैं। उसे पूर्णतः निर्मूल करना हो तो, श्वास-प्रश्वास में अनित्य, दुःखद, अनात्मा कहकर प्रत्यय उत्पन्न करना होगा। तब वैराग्य का उदय होगा। किसी अवस्था में आबद्ध रहने की इच्छा न होगी। इस प्रकार की निरोध की ओरं अग्रसर होते हुए, सभी विषय निसर्जित या परित्यक्त होंगे। तभी निर्वाण लाभ होगा।

साधक में तृतीय चतुष्क की अवस्था में पहुँचने के पहले विदर्शन की भावना का आना सम्भव नहीं। नाना कल्पना, विचार, तर्क, भूल, भ्राँति, सुख, समृद्धि आदि मन के भाव रहने से संसार चक्र बारंबार जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि की यंत्रणा भोग करना ही होगा। सत्य-मिथ्या, पाप-पुण्य, कर्तव्य-अकर्तव्य आदि बुद्धि संस्कार मात्र हैं। वस्तुतः उनका अस्तित्व ही नहीं। जिसे मैं पाप

समझता हूँ, दूसरे उसे पुण्य समझते होंगे। इन संस्कारों के वशीभूत होकर हमारे भीतर मिथ्या धारणा ने जन्म लिया है। असार, क्षणभंगुर संसार को सत्य मान रहे हैं। ज्वाला यंत्रणामय संसार को सुख का स्थान मानते हैं। सब वस्तुओं में 'मेरा-मेरा' कहकर आसक्त हो रहे हैं। अनित्य सुखद, अनात्मा जगत को नित्य, सुख परमात्मा का प्रकाशमान समझ रहे हैं। इन भ्राँतियों के दूर हुए बिना, शुद्ध-बुद्ध-मुक्त अवस्था प्राप्त न होती। उन्हें दूर करने के लिए ही तो साधन-भजन है। जैसे-वृक्ष की डालपात काटकर, फिर जड़ से काटने पर उसे गिराना या उखाड़ना सरल होता है, वैसे ही पहले बाहर के संस्कार नष्ट करके अन्तस में प्रविष्ट सारे संस्कार बाहर फेंकने पर स्वतः पूर्वोक्त विदर्शन भावना जागृत होगी। तब केवल श्वास-प्रश्वास ही अनुध्यान का विषय रह जाएगा। लेकिन यह श्वास-प्रश्वास एक सी अवस्था में स्थिर नहीं रहता। यह गतिमान तथा परिवर्तनशील है-अतः सभी अनित्य बोध होगा। इस समय श्वास प्रश्वास ही सारे दुःखों का कारण है, यह आत्मा नहीं, ऐसी प्रतीति उत्पन्न होगी। किन्तु विदर्शन भावना के स्थान पर हम पहले ही गुरुप्रदत्त अप्राकृतिक, शक्तियुक्त नाम जप करते हैं। संस्कार-रहित होने पर श्वास-प्रश्वास की एकाग्रता सम्पूर्ण रूप से निबद्ध रहती है, तब विदर्शन भावना करें या नाम जप करे वह श्वास-प्रश्वास से मिलकर एक हो जाएंगे। पहले दिखाया गया है कि विदर्शन भावना में अनित्य, दुःखद, अनात्मा ऐसी प्रतीति आती है। श्वास-प्रश्वास में लक्ष्य रखकर नाम जप करने में भी, ध्यान की चरम अवस्था में, श्वास-प्रश्वास ही नाम तथा नाम ही श्वास-प्रश्वास है, ऐसी अनुभूति होती है। नाम में कोई अर्थबोध नहीं होता। किसी रूप का संस्कार

भी नहीं जागता। स्वभावतः नाम अपने आप होता है। साधक निश्चेष्ट होकर अनुभव मात्र करता है। इस अवस्था को मैं भाषा द्वारा प्रकट नहीं। सकता। आर्य ऋषियों ने इसे 'अवांगमनश्चगोचरं' कहा है। बुद्धदेव ने इसे 'अचिन्तेयानि' व 'अचिन्तित्व्यानि' अर्थात् चिन्ता की वस्तु नहीं है या जिसकी चिन्ता न की जा सके, कहा है। वे और कहते हैं-'पतिसोतागम्मं निपुनं गम्भीरं अनुं वागरत्ता न दक्खति-तमोखंदेन आवता।' राग द्वेष या अज्ञानांध व्यक्ति सृष्टि प्रवाह के अन्तर्निहित सूक्ष्म, गंभीर सत्य को नहीं देख पाता। ज्ञानी देख पाता है, प्रकट नहीं कर पाता।

चिन्ता राज्य के अतीत तत्त्वों की उपलब्धि करना कितना दुरूह है, यह एक घटना से विशेष रूप से समझा जा सकता है। हमारे गुरुभाई श्रद्धेय मनोरंजन बाबू की स्त्री मनोरमा देवी एक साथ अड़तालिस घंटे अविच्छिन्न समाधिमग्न रहती हैं। इस विषय में पूछने पर ठाकुर ने कहा था-**'मात्र नामानन्द में मग्न हैं--अभी हुआ ही क्या है? आस्तिक्य बुद्धि का जन्म नहीं हुआ है।'** भावाभाव रहित होकर शुद्ध, बुद्ध, मुक्त अवस्था में उपनीत न होने तक, तत्त्व प्रकट नहीं होते एवं प्रकाशित होने के पहले उसके विषय में कुछ कहना बकवास मात्र होगी। अतः ईश्वर के संबंध में बुद्धदेव से पूछने पर वे मौन रहते थे। जिज्ञासु को उनके प्रदर्शित साधन पथ पर चलकर लक्ष्य में स्वयं पहुँचकर, तत्त्व प्रत्यक्ष करने का उपदेश देते थे। ठाकुर से बारंबार प्रश्न करके देखता हूँ, वे केवल कहते हैं-केवल श्वास-प्रश्वास नाम जप करो-सारी अवस्थाएँ उसी से मिलेंगी। पर क्या अवस्थाएँ प्राप्त होंगी, इसके बारे में उल्लेख नहीं करते। नाम के प्रतिपाद्य वस्तु के सम्बन्ध में भी ध्यान धारणा करने का

उपदेश नहीं देते। सहज श्वास-प्रश्वास में मन संयोग से, अति उर्वर साधन क्षेत्र में शक्तिमान गुरु ने जो बीज बोया है-अति सहज ही अंकुरित होकर फूलेगा, फलेगा सुशोभित होगा। इस विषय में नानक, कबीर, तुलसीदास ने भी साक्ष्य दिया है। उन्होंने इसी साधन का अवलम्बन किया तथा इष्ट लाभ करके कृतार्थ हुए। वर्तमान समय में इस साधन की सफलता के बारे में महात्मा गंभीरनाथजी व ठाकुर इसके ज्वलंत दृष्टांत दिखा रहे हैं। बुद्धदेव ने इसके साधन के बारे में उपदेश के प्रारंभ व अन्त में कहा है-'एकायनो अयं भिक्खवे निब्बानस्स सच्छि किरियाय, यदिदं चत्तारो सति पट्ठानो।' इत्यादि-अर्थात् निर्वाण प्राप्ति का यही एकमात्र पथ है। केवल यह कहकर भी वे चुप नहीं रहे-

'आमतं तेषं विरुद्धं येसं कायगता सति विरुद्धा।'

जो 'कायगता सति' अर्थात् श्वास-प्रश्वासादि देह तत्त्व अवलम्बन से साधन के विरोधी है निर्वाण के भी परिपंथी हैं--यही बुद्ध का चरम सिद्धांत हैं। अन्त में इस साधन के फलाफल के बारे में बुद्धदेव ने और भी कहा-'तिट्ठतु भिक्खवे आद्मासो जोहि केचि भिक्खवे, इमें चत्तारो सति पट्ठानो एवं भावेय्यं सत्ताहं।

तस्स द्विन्नं फलानं अयेतरं फलं पटि कं खं दिट्ठेव, धर्म्मे आयासति उपादिसेसे अनागामिता।'

हे भिक्षुओं, जो अर्धमास या सप्ताहकाल यह साधन करें, वे तत्त्वज्ञान लाभ करते हैं तथा देहान्त होने पर अनागामी होते हैं।

सुना है, ठाकुर ने भी कहा है-**लामा गुरुओं का आचार-व्यवहार तथा उनके साधन प्रणाली न देखने से बौद्ध धर्म समझा नहीं जा सकता। यही एकमात्र उपाय है।** गत चौबीस पौष

को गुरुभाईयों को उपदेश देते हुए ठाकुर ने कहा-**एकमात्र श्वास-प्रश्वास में नाम जप द्वारा आत्मा का समस्त पाप, संशय नष्ट हो जाता है। तब विश्वास अपने आप आयेगा। प्रति श्वास में नाम जप करना ही एकमात्र उपाय है।**

॥ॐ गुरु॥

------चतुर्थ खण्ड समाप्त------

श्री श्री गुरुदेवाय नमः।

श्री श्री सद्गुरु संग

पंचम खण्ड

(वैशाख-बंगला सन् १३०० की डायरी)

बस्ती त्याग: नीरव अयोध्या में रामनाम।

१२ से १४ वैशाख। भगवान गुरुदेव की कृपा से दादा के साथ मैंने दो-तीन सप्ताह परम आनंदपूर्वक बिताया। शरीर पहले से काफी स्वस्थ मालूम पड़ने लगा, अतः पर्वत जाने के लिए मन अधीर होने लगा। मैंने दादा से हरिद्वार जाने की अनुमति माँगी। उन्होंने हाथ जोड़कर ठाकुर को प्रणाम किया एवं प्रसन्नतापूर्वक मुझे जाने की अनुमति दे दी। महातीर्थ अयोध्या में सैकड़ों मंदिर हैं, जहाँ लक्षण युक्त मनोरम शिलाचक्र भी हैं। दादा के मित्रों के प्रयत्न से वह प्राप्त किया जा सकता है, इस आशा से मैंने अयोध्या की यात्रा की। वैशाख के प्रारंभ में एक दिन रात बारह बजे दादा से विदा लेकर, मैं बस्ती स्टेशन पहुँचा। प्रातः सरयू तीर के लकड़मण्डी घाट पर जा पहुँचा।

पुण्यसलिला सरयू के निर्मल जल में स्नान करके, शरीर शीतल और मन प्रफुल्लित हो उठा। मैंने परमानन्दपूर्वक स्नान-आह्निक समापन किया एवं जय राम कहते हुए अयोध्या में प्रवेश किया। यही उन दया के सागर श्रीरामचन्द्रजी की, अप्राकृतिक लीलाभूमि शांतिमय अयोध्या धाम है, जिसके छाया मात्र के स्पर्श से न जाने कितने योगी, ऋषि, तपस्वी कृतार्थ हुए। आज भी छद्मवेश में कितने

ही महापुरुष यहाँ रहते हैं। सुर-मुनि-वंदित इस नित्य अयोध्या धाम में कितने ही देवर्षि, महर्षिगण प्रत्यक्ष रूप से, सूक्ष्म शरीर धारण करके विचरण करते और रामनाम गान करते हैं। यह सब सोचकर मेरा हृदय भर आया। मैंने इहलोक-परलोकवासी महापुरुषों के चरणों में नमस्कार किया और रास्तों पर घूमता रहा। मैंने देखा जनपूर्ण अयोध्या नीरव एवं निस्तब्ध है। इतना बड़ा शहर है, किन्तु जन-कोलाहल जरा भी नहीं। सर्वत्र सब के मुख से राम-राम, सीताराम, जयराम आदि ही निकल रहा है। किसी के मुख में व्यर्थ की बातें नहीं। सभी बातचीत के पहले राम का नाम लेते हैं। खरीदने वाले दुकानदार से कहते हैं, राम राम-रामदाना दो, रामरस चाहिए। गाड़ी हाँकनेवाला या ग्वाला भी राम राम कहकर ही घोड़ा या गाय हाँकता है। कुछ कहने के पहले ही राम नाम लेना-ऐसा दृष्टान्त और कहीं देखने को नहीं मिलता।

हनुमानगढ़ी दर्शन में ठाकुर की स्मृति: महापुरुष दर्शन।

ठाकुर के मुख से सुना था कि **'प्राचीन अयोध्या में एक मात्र हनुमानगढ़ी स्थान है। विभिन्न पर्वों में इस स्थान पर हनुमान, विभीषण, अश्वत्थामा एवं व्यास आदि ऋषिगण आया करते हैं।'** भक्तराज महावीर की आवासभूमि, हनुमानगढ़ी देखने को मन व्याकुल हो उठा। मैं श्रीगुरुदेव के चरणों को हृदय में धारण करके हनुमानगढ़ी जा पहुँचा। अयोध्या की साधारण भूमि से यह स्थान कुछ ऊँचा है। प्रशस्त सीढ़ियों के दोनों ओर मैंने असंख्य वानरों को देखा। वे लोगों के शरीर को छूते हुए चले जाते हैं, उन्हें किसी प्रकार

का भय नहीं। मैं सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ महावीरजी के मंदिर के सम्मुख जा पहुँचा, मुझे ठाकुर का स्मरण हो आया। ठाकुर भी डगमगाते कदमों से किसी प्रकार सीढियाँ चढ़कर, लोटते हुए मंदिर तक पहुँच पाये थे। महावीरजी के दर्शन पाकर उनकी बाह्य-संज्ञा लुप्त हो गई थी। भाव-विभोर अवस्था में बहुत देर तक पड़े थे। ठाकुर की बातों का स्मरण आते ही मुझे रोना आ गया। मैंने बारंबार भक्त हनुमानजी को प्रणाम करके यह प्रार्थना की-'हे भक्तराज! तुम्हारा दर्शन कभी विफल नहीं होता। कृपा करके इस जघन्य, दुराचारी, अविश्वासी, नास्तिक को आशीर्वाद दो, ताकि तुम्हारे चरणरज का कणमात्र पाकर कृतार्थ हो सकूँ एवं अपने परम दयालु ठाकुर के श्रीचरणों की सेवा का अधिकारी बन सकूँ। उनका अविच्छिन्न संग और एकाग्र सेवा ही इस जीवन का सार हो। मैंने देखा मंदिर के विशाल प्रांगण में बहुत से लोग एकाग्रचित्त होकर रामायण पाठ सुन रहे हैं। बहुत से वानर भी श्रोताओं से सटकर सिर नीचे किये बैठे हैं, मानो वे भी पाठ सुन रहे हैं। सुन्दरकाण्ड का पाठ हो रहा है। भीड़ के बीच श्वेत बालों वाले तेजस्वी वृद्ध संन्यासी की ओर दृष्टि पड़ी, तो मैं आँखें फेर न पाया। वे तो मानो भाव में डूबे हुए, मुग्ध होकर रामायण सुन रहे हैं। उन्हें देखकर मेरे मन की क्या दशा हुई, बता नहीं सकता। ऐसा लगा मानो इस वेश में मेरे ठाकुर ही विराजमान हों। उनकी चरणधूलि लेना चाहा, किन्तु पाठ के अंत में, भीड़ में न जाने वे किधर चले गए, कुछ समझ न पाया।

वैदान्तिक पर शोक संचार।

महावीरजी को साष्टांग प्रणाम करके अयोध्या स्टेशन पहुँचा एक

टिकट लेकर फैजाबाद चल पड़ा। फैजाबाद पहुँचकर दादा के मित्र जालिम सिंह के घर पहुँचा। मुझे देखते ही उन्होंने सीने से लगा लिया। बाहर के एक अच्छे से कमरे में मेरे रहने की व्यवस्था कर दी। उन्हें देखकर मैंने विस्मय सहित पूछा-दादा आपको ऐसा क्यों देख रहा हूँ? क्या आप बीमार थे? आपकी दाढ़ी, मूँछें और बाल पक क्यों गए हैं। जालिम सिंह ने कहा-भाई यह एक आश्चर्यजनक घटना है। मेरे पुत्र की कुछ दिनों पहले मृत्यु हो गई। मेरी पत्नी पुत्र शोक से पागल सी हो गई। पर मुझे कुछ भी न हुआ। मैं सदा वेदान्त की आलोचना करता था, सो पत्नी को भी वेदान्त का उपदेश देने लगा। तीन दिन उपदेश सुनकर वह शान्त हुई, उसकी शोकाग्नि मानो बुझ गई, किन्तु साथ ही साथ मेरे अन्तस् में उसकी ज्वाला प्रविष्ट हुई। यंत्रणा से मैं छटपटाने लगा। दूसरे ही दिन मैंने देखा मेरी दाढी, मूँछें, बाल सब पक गए हैं। शोक से इतना कुछ हो सकता है, मुझे मालूम न था। उनकी ये बातें सुनकर मैं तो हैरान रह गया।

भगवान का नाम करना सहज नहीं।

जालिम सिंह के एक दयापूर्ण कार्य को देखकर बड़ा ही आनन्द आया। पोस्ट आफिस का एक डाकिया किसी अपराध के कारण काम से हटा दिया गया था। वह जालिम सिंह के पास आकर रो पड़ा, उसने कहा-'बाबू साहब मेरी नौकरी चली गई, अब क्या उपाय होगा। अब भूखा मरूँगा।' जालिम सिंह ने कहा-'अच्छा तुम रोज छः बजे से ग्यारह बजे तक फिर एक बजे से शाम छः बजे तक, यहाँ बैठकर जोर-जोर से सीताराम, सीताराम जपा करो। मैं तुम्हें रोज आठ आने दूँगा, इससे तुम पहले से तीन-चार रुपये वेतन

भी अधिक पा जाओगे।' वह व्यक्ति संतुष्ट होकर चला गया। दूसरे दिन से तीन-चार दिनों तक वह जप करता रहा। एक दिन आकर जालिम सिंह से कहा-बाबू साहब यह काम मुझसे नहीं होगा। कोई दूसरा काम हो तो बताइए, अन्यथा मैं चला जाऊँगा। वह सचमुच चला गया। एक स्थान पर बैठकर भगवान का नाम लेना क्या इतना ही कष्टकर है?

अयोध्या के आश्रम एवं देवमंदिर: हिरण्यगर्भ चक्र लाभ।

फैजाबाद के प्रसिद्ध वकील बलदेव प्रसाद एवं लालता प्रसाद आदि दादा के मित्रगण मुझसे मिलने आए। उन्होंने मुझे अयोध्या के प्रमुख बड़े मंदिर और आश्रमों में ले जाकर कई शालग्राम दिखाये। एक-एक मंदिर में सहस्त्रों शालग्रामों के दर्शन किए, किन्तु एक भी मेरे मनोनुकूल न मिला। प्राचीन मंदिरों में नाना प्रकार के आकृति वाले विभिन्न लक्षण युक्त शिलाचक्र टोकरों में भरकर रखे हैं। मैंने देखा तुलसी, चन्दन मिले हुए जल से, एक साथ उनका स्नान, भोग एवं पूजा, आरती हुआ करती है। विग्रह के सम्मुख कुछ विशेष शालग्राम रखे हुए हैं। केवल उन्हीं की विशेष साजसज्जा, पूजा, भोग का विधान है। बहुत समय से इनकी प्रतिदिन समारोहपूर्वक, नियत समय पर निर्बाध रूप से पूजा, भोग, आरती होती चली आ रही है। यह सोचने में भी आश्चर्य बोध होता है। एक-एक आश्रम में सैकड़ों, कहीं सहस्त्रों साधुओं का निवास है। सभी अपने-अपने आसन पर बैठे हुए हैं। कई एकाग्र मन हो जप कर रहे हैं। कई धूनी के सामने ध्यान मग्न है। कई रामायण पाठ में मग्न हैं, देखकर बड़ा

आनन्द आया। असंख्य लोगों के रहते हुए भी ये सब आश्रम निस्तब्ध और शांत हैं। कहीं-कहीं केवल सीताराम राम राम की ध्वनि मात्र हो रही है। सारा आश्रम भगवत् भाव से पूर्ण है, मैं देखकर बड़ा आनंदित हुआ।

किसी प्रसिद्ध मंदिर के भजनानन्दी वृद्ध महन्त ने मुझे एक शिलाचक्र देते हुए कहा-आप ग्रहण करें, इनका नाम हिरण्यगर्भ है। मैंने वह चक्र ले तो लिया, किन्तु वह मुझे पसन्द नहीं आया। निश्चय कर लिया कि अब और शिला अन्वेषण का प्रयास नहीं करूँगा। ठाकुर की बात मिथ्या होगी। सुन्दर शालग्राम शिला मुझे अवश्य प्राप्त होगी। जब तक न मिले, इन्हीं को श्रद्धापूर्वक पूजा करूँगा।

गुप्तारघाट में श्रीरामचन्द्रजी के अन्तःलीला के स्मरण से शोक का उदय।

कुछ सत्संगियों के साथ फैजाबाद के पश्चिम की ओर गुप्तार घाट पहुँचा। इस घाट का शास्त्रीय नाम है गोप्रान्तर है। अयोध्या से दो कोस दूर सरयू तट पर बना है। सुन्दर मजबूत पत्थर से बने घाट पर कलाकृतिपूर्ण कुछ मंदिर बने हुए हैं, जिनमें सीतारामजी प्रतिष्ठित हैं। अच्छे-अच्छे भजनानन्दी साधु महात्मागण आकर इस स्थान में एकान्तवास करते हैं। साधन-भजन के लिए यह स्थान बड़ा ही उपयोगी है। मैं घाट पर बैठा सरयूजी के दर्शन करने लगा। कितनी ही बातें मन में उदित होने लगी। किसी समय इस स्थान पर श्रीरामचन्द्रजी की मर्त्यलीला का अवसान हुआ था। उस समय की दुःखद, मर्मभेदी घटनाओं के मन में उदित होते ही मेरा देह-मन शिथिल हो गया। आह! स्वयं सर्वनियंता भगवान भी नियति का

अतिक्रमण नहीं करते। स्वेच्छाकृत विधान में स्वयं भी आबद्ध होकर, साधारण मनुष्य की तरह संसार की सभी यातनाएँ भोगते हैं। सुना है-विधि के विधान अनुसार क्रूरकर्मा कालपुरुष, ब्रह्मा द्वारा प्रेषित दूत के रूप में श्रीरामचन्द्रजी के पास आये। उन्होंने कहा-'विशेष प्रयोजनीय विषय पर बात करने मैं आपके पास आया हूँ। हम दोनों का वार्तालाप जो भी सुने, वह आपके द्वारा वध्य हो। यह स्वीकृति देने पर ही मैं आपसे अपना वक्तव्य कह सकूँगा।' कालपुरुष को ऋषि-प्रेषित जानकर श्रीराम सहमत हो गये। अपने चिर अनुगत एवं दृढ़संकल्प भाई लक्ष्मण को द्वार-रक्षा का भार सौंपकर, निर्जन में वे कालपुरुष की बातें सुनने लगे। इसी समय अकस्मात् अमोघ तेजस्वी ऋषि दुर्वासा लक्ष्मण के समीप आये और उन्होंने कहा-'विशेष प्रयोजन से मैं अभी श्रीराम से मिलना चाहता हूँ।' लक्ष्मणजी ने कहा-'भगवन् आपका प्रयोजन मुझे बताएँ, मैं अभी उसे सम्पन्न किये देता हूँ।' दुर्वासाजी ने कहा 'अरे नहीं, वह कदापि तुमसे पूरा नहीं होने का। मुझे राम की ही आवश्यकता है। यदि तुम राम के पास जाने में बाधा डालो तो निश्चित जानो, मैं राम सहित अयोध्या को दग्ध करके लौट जाऊँगा।' लक्ष्मणजी दुविधा में पड़ गये। सोचने लगे, यदि मैं इन्हें रोकूँ तो पूरी अयोध्या ध्वंस कर देंगे, किन्तु ऋषि आगमन की वार्ता राम से कहने पर केवल मैं ही वध्य होऊँगा। अतः यही करना ठीक है। ऋषि की सूचना देने ज्योंही लक्ष्मण राम के पास गये-कालपुरुष ने मन में सोचा 'सफल हुआ'-और वे उठकर चले गये। श्रीराम ने दुर्वासा से हाथ जोड़कर पूछा-'भगवन् आपका विशेष प्रयोजन क्या है? मुझे सम्पन्न करने का आदेश दें।' ऋषि ने कहा-'मैं बहुत दिनों का

उपवासी हूँ। मुझे भरपेट भोजन कराओ।' श्रीराम ने ऋषि को तृप्तिपूर्वक भोजन कराया। यह तुच्छ कार्य लक्ष्मण द्वारा न होने का उनका हठ भी नियति के वशीभूत हुआ जानकर, श्रीराम ने शोकाकुल हृदय से लक्ष्मण से कहा-'अपने जनों का त्याग ही साधुजनों की दृष्टि में वध के तुल्य है, अतः सत्य रक्षा के लिए आज मैं तुम्हारा त्याग करता हूँ।' श्रीराम के अनन्य भक्त लक्ष्मण, राम-विहीन जीवन को वृथा मानकर सरयू में कूद पड़े। सरयू का स्त्रोत उन्हें बहाकर इस स्थान पर ले आया। जय राम कहते हुए लक्ष्मण अन्तर्धान हो गये। भाई लक्ष्मण ने राम-राम कहते हुए देह-त्याग कर दिया, यह सुनकर श्रीराम शोक से अधीर हो उठे। उन्होंने लक्ष्मण का अनुसरण करने का निश्चय कर लिया और सरयू तट पहुँचे। अयोध्यावासी नर-नारी, पशु-पक्षी भी हाय राम! कहते हुए उनके पीछे दौड़ने लगे। राम को छोड़कर वे जीवित कैसे रहें; यह सोचकर उन्होंने भी मर्त्यधाम छोड़ने का संकल्प किया। भक्तवत्सल राम सारे अयोध्यावासियों सहित इसी स्थान में सरयू के जल में सदा के लिए विलीन एवं अदृश्य हो गए। उस समय का दृश्य सोचकर ही मन रो उठा। शोकाकुल होकर काफी देर घाट पर पड़ा रहा। शाम को जालिमसिंह के साथ घर लौटा।

भीषण स्वप्न: माता के प्रति अत्याचार।।

१५ वैशाख। रात के अंतिम प्रहर में एक भयानक स्वप्न देखकर रोते हुए जाग उठा। कितने ही प्रकार के उद्वेग मन में उठने लगे। मेरी माता परम सौभाग्यवती होते हुए भी, मेरे कारण अभागिन हो गई। माँ की दृष्टि से मिलनेवाली स्नेहधारा के कण मात्र का मूल्य सैकड़ों

जन्मों में भी नहीं चुकाया जा सकता। हाय! मैं अपनी स्नेहमयी जननी को न पहचान सका। गत रात्रि मैंने माँ पर जो भयंकर निष्ठुर व्यवहार किया, उसका स्मरण करने पर हृदय विदीर्ण हो जाता है। स्मरण मात्र से क्लेशदायी उस स्वप्न की स्मृति भी विलुप्त हो जाय, ठाकुर के श्रीचरणों में यही प्रार्थना है। इसी अभिप्राय से स्वप्न का वृत्तान्त डायरी में नहीं लिखना चाहता। इच्छा है, ठाकुर से मिलने पर स्वप्न का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कहकर, इस प्रकार का स्वप्न देखने का तात्पर्य क्या है, पूछूँगा? फैजाबाद मुझे श्मशान की भाँति लगने लगा। ऐसा लगा कि यह स्थान त्याग देने में ही भलाई है।

हरिद्वार में हर-गौरी का अनुपम ज्योति दर्शन।

१६ वैशाख। फैजाबाद में एक पल भी रुकने की इच्छा न रही। पर्वत पर जाने के लिए मन अधीर हो उठा। यथा समय स्टेशन पर जा पहुँचा और वहाँ से हरिद्वार की यात्रा प्रारंभ हुई। दूसरे दिन प्रातः लक्सर में गाड़ी बदलनी पड़ी। दो एक स्टेशन पार करते ही हरिद्वार पर्वत दिखाई पड़ने लगे। देवाधिदेव महादेव दिन-रात इस पर्वत पर ध्यानमग्न रहते, तो कभी उन्मादवत् विचरण किया करते थे। परम-आराध्या भगवती पार्वती ने भी शिवजी को पतिरूप में पाने के लिए, इसी पर्वत पर कठोर तप किया था। मैं भी एकाग्रचित्त से सद्गुरुरूपी सदाशिव का स्मरण कर बारंबार प्रणाम करने लगा। मेरा मन रो उठा। मैं शिव-पार्वती के दर्शन की इच्छा से व्याकुल हो, पर्वत की ओर ताकता रहा। ज्वालापुर पहुँचकर नील पर्वत के उच्च शिखर पर सब कुछ सुस्पष्ट देख पाया। मैंने देखा, उस पर श्वेत एवं

नीली ज्योति पल-पल झिलमिलाकर लीन होती जा रही है। ये ज्योति बिन्दु कभी खण्डाकार, कभी एकाकार हो जाते और अपूर्व ज्योति विकीर्ण कर रहे हैं। देखते ही देखते हरिद्वार स्टेशन आ गया। मैं सिर नीचे किये, निम्नदृष्टि होकर शहर की ओर बढ़ चला। मैंने देखा, स्वच्छ भूमि के आभ्यन्तर से स्वर्णवर्ण की ज्योतिबिम्ब विविध स्थानों से फूटकर चारों दिशाएँ आलोकित कर रही है।

मैंने इसे महामाया भगवती के अनुपम रूप की छटा मानकर बारंबार प्रणाम किया। मेरा चित्त प्रफुल्लित हो उठा। मैं धीरे-धीरे गंगा तट के ब्रह्मकुंड घाट पर जा पहुँचा। स्मरण हो आया कि, माता योगमाया की अस्थियाँ यहीं विसर्जित हुई थी। यहाँ स्नानादि संपन्न कर, स्थिरचित्त हो घाट पर ही एक कुटिया में बैठकर नाम जप करने लगा।

जलदान व्रत।

दोपहर लगभग दो बजे कहाँ ठहरूँ, यह सोचकर चिन्तित हुआ। एक कुली के सिर पर थैले और सामान रखवाकर कनखल में रामप्रकाश महन्त के आश्रम की ओर चल पड़ा। कड़ी धूप में, तपती रेत पर, नंगे पैर चलते हुए बड़ा कष्ट हुआ, पैर जलने लगे। किधर दौड़कर आश्रय लूँ, सोचते हुए कुछ दूरी पर देखता हूँ, रास्ते के बायीं ओर एक आश्रम के द्वार पर गेरुआ वस्त्रधारी एक वृद्ध संन्यासी जलदान करने के लिए बैठे हैं। बर्फ सा शीतल जल कई मटकों में भरा रखा है। वे थके-हारे राहगीरों को बुलाकर शीतल जल पिलाते और वृक्ष की ठंडी छाया में विश्राम करने का अनुरोध करते। ग्यारह बजे से चार बजे तक इनका यही नित्य कार्यक्रम

रहता है। संन्यासी का कार्य देखकर मैं बड़ा आनन्दित हुआ। थके-हारे, प्यासे राहगीर जब शीतल जल पीते और शीतल छाया में विश्राम करते होंगे तो उन्हें कैसी तृप्ति मिलती होगी, यही सोचने लगा। साधु का यह कार्य परम धर्म है। सैकड़ों प्यासों को जो शीतल जल देकर तृप्ति देते हैं, भगवान उनके कार्य से अवश्य आनन्द प्राप्त करते होंगे। शायद कठोर तप, नियम, यज्ञ से भी वैसा संतोष लाभ न करते हों। सदाचार-भ्रष्ट, दुराचारी व्यक्ति भी केवल जलदान व्रत का अवलम्बन करके भगवान की प्रसन्नता अर्जित कर मुक्तिपद अवश्य प्राप्त कर सकता है। संन्यासी की चरणधूलि माथे से लगाकर, मैंने हरिद्वार आने का अभिप्राय उनसे कह सुनाया। उन्होंने सन्तुष्ट होकर, आशीर्वाद देते हुए कहा-अवश्य तुम्हें सुविधा मिलेगी। भगवान हमेशा सदिच्छा पूर्ण करते ही हैं।

रामप्रकाश महन्त का आश्रय ग्रहण: मधुमक्खियों के उत्पात् से रक्षा।

साधु के पास से मैं रामप्रकाश महन्त के पास आश्रम जा पहुँचा। द्वार पर एक व्यक्ति से जाकर पूछा-स्वामीजी, मैं रामप्रकाश महन्त से मिलना चाहता हूँ, वे कहाँ है? उन्होंने कहा-क्या प्रयोजन है। कहिए मैं ही रामप्रकाश महन्त हूँ। मैंने नमस्कार करके हरिद्वार आने का कारण उनसे कह सुनाया। मैंने यह भी पूछा कि पर्वत पर रहने की व्यवस्था न होते तक, मैं आश्रम में रह सकता हूँ या नहीं। उन्होंने आदरपूर्वक रहने की अनुमति दी एवं शिष्यों को बुलाकर मुझे ऊपरी मंजिल में ले जाने को कहा। मैंने और भी आदर पाने की इच्छा से महन्तजी के परिचित एक मित्र का पत्र महन्तजी के हाथ

में दिया। उन्होंने पत्र देखा एवं फाड़ते हुए कहा-‘इन्हें मैं नहीं पहचानता। यहां कितने ही बंगाली आते-जाते हैं। उन्हें याद रखने के लिए तो मैं माता-पिता को छोड़कर साधु नहीं बना। आप मेरे पास आये हैं, आपको ही पहचानता हूँ, क्योंकि आप मेरे अतिथि हैं; अतिथि देवतास्वरूप होते हैं। यहाँ पत्र का प्रयोजन नहीं। आप इनके साथ जाइए। मैं उनके शिष्यों के साथ चला गया। महन्तजी भी पीछे-पीछे आने लगे। मेरे सामने के कुछ साधु ‘जल्दी आ जाइए’ कहकर चिल्लाए। लेकिन सीढ़ी पर पैर रखते ही कुछ मधुमक्खियाँ मुझे घेरकर, मेरे खुले अंगों पर चिपकने लगी। निरुपाय होकर मैंने एकाग्र मन से ठाकुर का स्मरण किया। महन्तजी मुझे ढकेलकर सरकाते हुए ऊपर जा पहुँचे। मैं ऊपर कमरे में जाकर देखता हूँ, महन्तजी और कुछ शिष्य-‘मर गए’ कहते हुए ‘ऊह! आह!’ करके फर्श पर छटपटा रहे हैं। प्रत्येक को पन्द्रह बीस स्थानों पर मधुमक्खियों ने काटा था। मेरे हाथ से दबकर एक मधुमक्खी ने मुझे भी जरा सा काटा था। अन्य शरीर पर गिरकर भी उड़ गयीं। काटे हुए स्थान पर भी मात्र दो-चार मिनट जलन रही। इस घटना को गुरुदेव की कृपा के सिवा और क्या कहूँ? किन्तु इस घटना से महन्त और उनके शिष्यों ने मुझे शक्तिशाली सिद्धपुरुष मान लिया। यह तो उसी कहावत जैसी हुई-आँधी से कौआ मरे, पर फकीर की करामात मानी जाय। अब रामप्रकाश महन्त मेरा खूब आदर-सत्कार करने लगे। अपने कमरे के पास ही मुझे आसन लगाने को कहा। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि चण्डी या निकटवर्ती स्थान में मेरे रहने की पूरी व्यवस्था कर देंगे। आगामी कल ही हमने चण्डी पर्वत का स्थान देखने का निश्चय किया। महंतजी ने एक

शिष्य को साथ जाने का आदेश दिया। मैंने मोटी-मोटी रोटियाँ नमक और मिर्च से खायी-क्योंकि वहाँ बनी लहसुन की दाल मुझसे नहीं खाई गयी।

चण्डी पर्वत की यात्राः गंगा का बांध

श्रीयुक्त रामप्रकाश महन्त के आश्रम में रहकर मेरा मन अस्थिर हो उठा। नित्य कर्म, पूजा आदि के लिए किसी प्रकार सुविधा यहाँ न हो पाई। महन्तजी के एक शिष्य को लेकर चण्डी पर्वत के लिए रवाना हो गया। कनखल व हरिद्वार के बीचोंबीच एक स्थान पर पहुँचकर देखा कि गंगा के इस पार से उस पार तक एक पुल है, जिसे लोग डाम कहते हैं। सरकार ने गंगा वक्ष पर सुन्दर पत्थरों से खंभो बनाकर उन पर लोहे के कपाट लगा रखा है। कपाट बंद रखने पर गंगा का जल नहर की ओर बहने लगता नहर के भरने पर जितना जल रहता है, वही गंगा के स्वाभाविक पथ में बहता है। यहाँ मात्र आठ-दस हाथ चौड़ा और दो-तीन हाथ गहरा जल रहता होगा। गंगा की यह दुर्दशा देखकर बड़ा कष्ट हुआ। पूर्वकाल में शायद कोई ऐसी कल्पना भी न कर पाता था। ऋषियों की भविष्यवाणी याद आ गई-क्वचित् छिन्ना क्वचित् भिन्ना यदा सुरतरंगिनी भविष्यति महाप्राज्ञे तदैव प्रबला कलिः।। मैं अपने आँसू रोक न पाया, रोते हुए माँ गंगा से कहने लगा-पतित उद्धारिणी आनंददायिनी माँ, यदि कभी गुरुदेव ने मुझे षडैश्वर्यशाली कर दिया तो सबसे पहले उस शक्ति को तुम्हारे बंधन मुक्त करने में प्रयुक्त करूँगा और जब तक ऐसा नहीं होता, तुम्हारा यह बंधनक्लेश मेरे हृदय में बिंधकर मुझे भी क्लेश देता रहेगा।

तपस्या स्थल का निर्देश।

बांध के पार पहुँचकर देखा, चण्डी पर्वत के मार्ग के बायीं ओर गंगातट पर एक सुन्दर आश्रम है। वहाँ एक विशाल वट वृक्ष के नीचे एक पर्णकुटी में एक साधुजी निवास करते हैं। साधु का नाम आत्मानंद है। वे हमें आग्रहपूर्वक बुलाने लगे। हम आश्रम में प्रवेश करके, बड़ के वृक्ष के नीचे बैठे। इस स्थान का सौंदर्य देखकर अवाक् रह गया। आश्रम के नीचे पश्चिम की ओर स्वच्छ सलिला पतित पावनी गंगा कल-कल नाद करती हुई बह रही है। गंगा तट पर मायापुरी, हरिद्वार, उसके पीछे बिल्वक तीर्थ एवं मनोरम बिल्वकेश्वर पहाड़ हैं। उत्तर में गंगा के विस्तृत तट के बाद हिमालय की क्रमोन्नत, गगनचुम्बी पर्वत श्रेणियाँ हैं। पूर्व की ओर आश्रम के पास ही गंगा की निर्मल नीलधारा है। उस पर नील सरस्वती का आविर्भाव स्थल, नयनाभिराम नील पर्वत की ऊँची श्रेणियाँ शोभायमान हैं। इसके सबसे ऊपर चण्डी देवी प्रतिष्ठित हैं, इसी से इसका नाम चण्डीपहाड़ पड़ा।

मेरे भागवत् ग्रन्थ पर पहाड़ का जो चित्र अंकित हो गया था, यहाँ से पहाड़ का दृश्य हूबहू उसी प्रकार है। पर्वत है। पर्वत का मनमुग्धकारी रूप देखकर ठाकुर का रूप उज्ज्वल रूप से जाग्रत् हो उठा। कुछ देर तक आँखे फेर न सका, स्थिर होकर बैठा रहा। नाम जीवंतशक्ति के रूप में अपने आप होने लगा। काफी समय तक विभोर रहा। फिर महंतजी के शिष्योंसहित चण्डी पर्वत की यात्रा को चल पड़ा। लौटते समय पुनः आने का आत्मानंद ने आग्रह किया, मैंने भी स्वीकार किया। भजन के अनुकूल ऐसा स्थान मैंने इसके

पहले कभी नहीं देखा था। इस स्थान को छोड़कर जाने में कष्ट होने लगा।

आश्रम से पर्वत देखने पर ऐसा लगता है कि केवल पाँच-सात मिनट की दूरी होगी, लेकिन चलने पर मालूम हुआ कि यह दूरी आधे कोस से कम नहीं होगी। पर्वत पर चढ़ने लगा। रास्ता बड़ा ही दुर्गम एवं दोनों ओर घने वन हैं। सुना है, इसमें असंख्य हिंसक जीव-जन्तु भी रहते हैं। कहीं-कहीं संकरे रास्ते से लगे गहरे गड्ढे भी है, जरा भी पैर फिसला तो कहाँ जा गिरूँगा पता नहीं। किसी समय जिमनास्टिक का अच्छा अभ्यास था, इसलिए पर्वत पर चढ़ने में कष्ट नहीं हुआ। मैं चण्डी पहाड़ के सर्वोच्च शिखर पर माँ चण्डी के मंदिर के सामने जा पहुँचा। देखा बहुत से दर्शनार्थियों से मंदिर भरा है। माँ की पूजा करके कई लोग लौट रहे हैं। मैं भी माँ को साष्टांग प्रणाम करके आश्रम की ओर लौट चला। नीचे उतर कर पहाड़ की तलहटी में नरमांसभक्षी सिद्ध अघोरी कामराज का आश्रम देखा। आश्रम एकदम सुनसान था। सारे पर्वत पर कहीं जन निवास नहीं है। शेर, भालुओं से भरे महावन में बिल्कुल अकेले रहना सहज शक्ति का परिचायक नहीं है।

मैं नीलधारा पार करके दामपाड़ आश्रम पहुँचा। आत्मानन्द जी ने मेरे हरिद्वार आने का अभिप्राय जानकर, इसी आश्रम में एक कुटीर में रहने को कहा। चण्डी पहाड़ पर रहना सहज नहीं है, यह भी समझा दिया। इस पर्वत पर भजन कुटीर बनाकर रहना असंभव है, क्योंकि चारों ओर नानाप्रकार के हिंसक जीव-जन्तु हैं, भिक्षा की भी असुविधा है। लगभग डेढ़ कोस जाकर हरिद्वार या कनखल से भिक्षा करनी होगी। बरसात में नीलधारा पार करने का कोई उपाय

नहीं है। बरसात के तीन-चार महीनों के लिए पहले से आहार संग्रह करके रखना होगा। कोई विपत्ति आए तो सब ओर अंधेरा, कोई भी दिखाई नहीं देता। आत्मानंद की बातों से समझ गया कि मेरा भी चण्डी पर्वत पर रहना संभव नहीं। आत्मानंद ने कहा-दादा तुम यहाँ निश्चिन्त होकर साधन-भजन करो, मैं भिक्षा करके तुम्हें खिलाऊँगा। सर्वदा तुम्हारे प्रयोजन की ओर ध्यान रखा करूँगा। मैंने भी देखा इस स्थान को छोड़कर जाने की मेरी इच्छा नहीं होती। इसके पहले इस स्थान के समान भजन के अनुकूल स्थान मैंने जीवन में दूसरा नहीं देखा। मैंने सोचा आते समय ठाकुर ने जो कहा था, उससे ऐसा नहीं समझा जा सकता कि चण्डी पहाड़ पर ही मुझे रहना होगा। उन्होंने कहा था-'इस प्रकार का पहाड़ जहाँ देखोगे वहीं आसन लगाना।' चण्डी पहाड़ अलग-अलग स्थान से अलग-अलग तरह का दिखाई पड़ता है, किन्तु स्थान से पर्वत का दृश्य भागवत् में पड़े चित्र के अनुरूप ही है। अतः शायद मेरा इसी स्थान पर रहना ठाकुर की इच्छा है।

आत्मानंद ने विशेष आग्रहपूर्वक इस आश्रम में अपने ही कुटीर में मेरे रहने की व्यवस्था की। मैं भी इस बात पर राजी होकर, रामप्रकाश महंतजी के आश्रम की ओर चल पड़ा। दामपाड़ में रहूँगा, सोचकर चित्त प्रफुल्लित हो उठा। यह स्थान सभी ओर से सुविधाजनक है। मैं अपने साथी के साथ महंतजी के आश्रम पहुँचा। मेरे मुख से पर्वत एवं दामपाड़ आश्रम की सारी बातें सुनकर महंतजी ने भी मुझे दामपाड़ में रहने को कहा। यहाँ सरलतापूर्वक शहर की सुविधाएँ मिलती है तथा साधन-भजन का ऐसा निर्जन स्थल और दूसरा नहीं है। उनका अभिमत सुनकर मैंने कल ही

दामपाड़ जाने का निश्चय कर लिया।

भजन कुटीर प्रस्तुत।

पाँच-छः दिन हुए दामपाड़ आया हूँ। एक कुटीर बनाने के लिए आत्मानंद की खुशामद भी कर रहा हूँ। आत्मानंद भी बहुत कोशिश कर रहे हैं, पर मेरे ही भाग्यदोष से मजदूर नहीं मिल रहे हैं। हरिद्वार या कनखल से दामपाड़ कोई आना ही नहीं चाहता। आत्मानंद के कमरे के ही एक ओर आसन लगाकर बैठा रहता हूँ। कमरा बहुत छोटा और सामान से भरा हुआ है। अविराम तेज हवा और धूप के का बाहर भी नहीं बैठा जाता। बड़ के वृक्ष के नीचे बैठने में बड़ा आराम मिलता है किन्तु चण्डी मंदिर दर्शनार्थियों का झुंड लगभग तीन बजे तक आता-जाता रहता है, वे लोग इसी वृक्षछाया में विश्राम करते हैं। आत्मानंद उन्हें जल पिलाकर सेवा करते हैं। यात्रीगण भी उन्हें दो चार पैसे देते जाते हैं। इसके उन्हें भी सुविधा होती है, किन्तु मुझे तो बड़ी असुविधा हो रही है। नित्यक्रियादि बंद होने से मेरे शरीर-मन में कोई स्फूर्ति न रह गई, बड़ी विरक्ति और यंत्रणा का बोध होने लगा। शरीर भी क्षीण होने लगा।

सातवें दिन भी नित्यकर्मादि की कोई सुविधा न होने से इतना कष्ट हुआ कि ठाकुर को स्मरण करके मैं रोने लगा-गुरुदेव अब निरुपाय होकर तुम्हारी ओर ताक रहा हूँ। कमरे की व्यवस्था कर दो अब अपने प्रयत्न से कुछ नहीं हुआ तो मैं फिर तुम्हारे पास लौट जाऊँगा। अब अपने प्रयत्न से कुछ नहीं होने का, यह जान गया हूँ। आश्चर्य है, गुरुदेव की कृपा! सुबह शौच-स्नान से निवृत्त होकर आते ही देखता हूँ, कैनाल के मैनेजर साहब कई मजदूर लेकर आश्रम

आ पहुँचे। आत्मानन्दजी ने बातें ही बातों में उनसे कहा था कि एक ब्रह्मचारी कमरे के अभाव में बड़ी असुविधा में हैं। मजदूर के अभाव में कमरा नहीं बन पा रहा है। यह बात याद आते ही, मैनेजर बाबू पाँच मजदूर लेकर आ पहुँचे। आत्मानंद ने मजदूरों को मेरे पसंद का कमरा बनवाने के काम में लगा दिया। आत्मानंद की बड़ी ही इच्छा थी कि उनकी कुटिया के सामने मेरा कमरा हो। इससे भजन में बाधा आएगी, जानकर मैंने एक सौ पचास हाथ दूरी पर स्थान निर्दिष्ट किया। एक पुराने, घने शीशम वृक्ष के नीचे कुटीर बनाना आरंभ हुआ। आनन्द से चित्त प्रफुल्लित हो उठा। कमरा दो-तीन दिनों में बन गया, मुझे बड़ा पसंद आया। कमरा छः फीट लम्बा और आठ फीट चौड़ा बनाया गया। आसन पर बैठकर सामने हिमालय पर्वत, बाँयी ओर गंगा व मायापुरी, दाहिनी ओर नीलधारा एवं ऊपर विशाल नीलपर्वत देखने में बड़ा ही मनोरम लगता है। जिधर भी देखो दृष्टि फेरने का मन नहीं होता। उत्तर की ओर आसन लगाकर सामने होमकुंड बनाया। आत्मानंद से अनुमति लेकर कुटीर में प्रवेश किया एवं निश्चित कालक्रम के अनुसार साधन-भजन में उत्साहपूर्वक लग गया।

भिक्षा में विपदा की आशंका: महामाया का खेल।

दामपाड़ आकर सात दिन आत्मानंद के पास ही ठहरा था। मैं भिक्षा करूँगा सुनकर, आत्मानंद ने दुःखी होकर कहा-दादा यह नहीं होगा। जब तक मेरे कमरे में हो, जो कुछ जुटेगा, वही ग्रहण करना। जब आपका कमरा तैयार हो जायेगा, तब भले भिक्षा लेकर

खाना। मैंने आत्मानंद के आश्रम में रहकर उनके विरुद्ध हठ करना उचित नहीं समझा। उसके पास-पाँच गाएँ भी हैं, खूब दूध देता है, सो मुझे आधा सेर दूध रोज देने लगे।

बड़े सबेरे स्नानादि करके कुटीर में आसन पर बैठ गया। दोपहर तीन बजे साधन-भजन में परमानन्दपूर्वक समय बीत गया। भिक्षा में जाने की तैयारी करके आत्मानंद से बताने गया। उसके पास कुछ संन्यासी बैठे थे, उन्होंने मुझसे कहा-हरिद्वार में कई सदाव्रत, धर्मशालाएँ हैं, दोपहर को भोजन के समय जाने पर दाल, रोटी मिलती है। लेकिन कच्ची भिक्षा वहाँ नहीं मिलती, न तो ऐसा देने का कोई नियम है। गृहस्थगण कच्ची भिक्षा दिया करते हैं, पर आप दोपहर के समय कहाँ जाएँगे? मैंने कहा कि मैं गृहस्थों के घर भिक्षा लूँगा, तो सुनकर सब हँस पड़े और कहने लगे तब तो हो गया। आप और जो भी करें, गृहस्थों के घर भिक्षा के लिए न जाइए। मैंने कहा-सभी जगह तो गृहस्थों से ही भिक्षा ली जाती है। सुनकर उन संन्यासियों ने कहा-वह तो हम भी जानते हैं, पर सब जगह तो मायापुरी नहीं है। यहाँ तो महामाया का विचित्र खेल है। ब्रह्मचर्य की रक्षा करना है, तो इस वेश में गृहस्थों के घर भिक्षा के लिए मत जाइए। लड़कियाँ बड़ा उत्पात करती हैं। साधु-सज्जन, सिद्ध पुरुष द्वारा पुत्र उत्पन्न होने पर वह सबल, स्वस्थ सर्वगुणसंपन्न तथा दीर्घजीवी होगा ऐसी इनकी धारणा है। अतएव साधु को पाकर, कई प्रकार से प्रलोभन दिखाकर, वे उन्हें घर के भीतर ले जाती है। पीछे रहकर कोई दरवाजा बंद कर देता है। फिर किसी प्रकार साधुओं का सर्वनाश करती हैं। मैंने कहा-गृहस्थों के घर औरतों के सिवा कोई अन्य सदस्य नहीं होता? क्या उन्हें लज्जा या भय नहीं। इस

पर संन्यासियों ने बताया कि दोपहर भोजन के बाद पण्डे घर पर नहीं रहते। यात्रियों की तलाश में बाहर जाते हैं। अपकर्म करने में अपमान, लज्जा या डर होता है, किन्तु कुप्रवृत्ति चरितार्थ करने के लिये तो वे यह सब नहीं करती। साधु द्वारा पुत्रोत्पन्न करने पर वंश का उद्धार होगा, यही उनका संस्कार है। सद्बुद्धि से जो कार्य करें, उसमें लज्जा या डर कैसा? वे तो कृतकार्य हो जाने पर गर्व का बोध करती है। जरा भी संकोच बोध नहीं करती। इनका आचरण व व्यवहार विचित्र है।

जयपुर के महाराज के गुरु, वृद्ध ब्रह्मानंद स्वामी ने कहा-बिना उपद्रव के रह सकें तो विपत्ति के स्थान में क्यों जाना? देखिये, मैं कम उम्र में उपनयन के बाद दण्ड लेकर निकल पड़ा। कुछ दिन नवद्वीप में रहकर पाठशाला में अध्ययन किया। फिर कुछ वर्ष देशभ्रमण में गुजारा। अठारह वर्ष की आयु में हरिद्वार आया। भगवान की कृपा से तभी मुझे गुरु की प्राप्ति हुई। एक निष्ठावान महात्मा से मैंने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य ग्रहण किया। उन्चास वर्ष तक उनके आदेशानुसार सदाचार रक्षा करता, साधनभजन में कालयापन करता रहा। अदम्य उत्साह से गुरु के साथ नाना स्थानों में भ्रमण करते हुए, अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करके अपने पर मुझे अखंड विश्वास हो गया था। मैं स्वाधीन रहूँगा, ऐसा सोचकर गुरुसंग त्यागकर मैं पुनः हरिद्वार आया। कुछ दिन तो ठीक चला। फिर भिक्षा के मामले में स्त्री-प्रलोभन से मेरी बद्धि नष्ट हो गई। पचास वर्ष की अवस्था में मैंने चिरकाल के लिए ब्रह्मचर्य रत्न खो दिया। मेरा सर्वनाश हो गया। तीन-चार माह तक तो मुझे ख्याल ही न रहा कि मैं क्या कर रहा हूँ। फिर सब कुछ खोकर होश आया। तब नितान्त

निरुपाय होकर गुरुजी के पास पहुँचा। गुरुदेव ने कृपा करके प्रायश्चित्त करवाकर मुझे संन्यास व्रत दिया। इसीलिए कहता हूँ, स्त्री जाति के प्रलोभन को सहज जेय मत समझो। दण्डी स्वामी की बात सुनकर मैं अवाक् रह गया। मैं दो कोस रास्ता चलकर धर्मशाला से छिलके वाली उड़द की दाल और आटा भिक्षा लेकर आश्रम लौटा। सोचता हूँ, एक छँटाक दाल व मुट्ठी भर आटे के लिए इतना परिश्रम और समय नष्ट करना भी कोई कम परीक्षा नहीं है।

स्थूल भिक्षा का प्रयोजन एवं आदेश।

प्रतिदिन डेढ़-दो कोस आने-जाने में हैरान होकर, मुट्ठीभर आटा जुटाने में बड़ी तकलीफ होने लगी। अन्य साधुओं ने भी कहा-नित्य भिक्षा यहाँ असंभव है। गंगा का जल बढ़ने पर, बांध खोल दिये जाने पर कहीं जाने का उपाय ही नहीं रह जाता। रोज भिक्षा के लिए दो घंटे नष्ट करना भी भजन के लिए एक बड़ी बाधा है। साधुओं की बात मुझे ठीक लगी। मैंने ठाकुर को यहाँ की सारी अवस्था लिखकर, स्थूल भिक्षा करूँ या नहीं, जानना चाहा। ठाकुर ने पत्र के उत्तर में मुझे स्थूल भिक्षा करने का आदेश दिया। मैंने आनन्दित मन से भिक्षा ग्रहण की। एक ही दिन में जो भिक्षा मिली वह लगभग दो तीन सप्ताह तक आराम से चल सकता है। महन्तों ने मेरे हवन के घी की व्यवस्था कर दी। भिक्षा में चावल नहीं मिलता, केवल आटा, उड़द की दाल, नमक, मिर्च आदि मिला करता है। गर्मी के दिनों में हरिद्वार और कनखल मानो आग सा लगता है। कुछ दिन नित्य भिक्षा के कारण मेरा शरीर अस्वस्थ हो गया। तेज बुखार से मैंने बिस्तर पकड़ लिया।

तन्द्रावेश में प्रसाद लाभ: ज्वर से आरोग्य।

मेरा ज्वर क्रमशः बढ़ता गया। सिर दर्द से मैं अस्थिर हो उठा। आत्मानन्द सुबह गोसेवा करके, आठ बजे भिक्षा के लिए चले जाते हैं। दोपहर को कभी-कभी आश्रम लौटते हैं, अधिकांशतः बाहर ही रहते हैं। दामपाड़ में चण्डी यात्रियों के सिवाय कोई नहीं दिखाई पड़ता। मैं बुखार की पीड़ा से छटपटाता रहता, प्यास लगने पर पानी दे,ऐसा भी कोई न था। जनहीन कुटिया में मैं बुखार से बेहोश होने लगा, सोचा अब शायद प्राण ही निकल जाएंगे। मैंने ठाकुर का स्मरण किया, कातर प्राणों से उनकी ओर ताकता हुआ कहने लगा-हे दयामय! तुमने तो मुझे अपने हाथों से अभयकवच पहनाया था न? आज देखो मेरी दशा। ठाकुर को अपना कष्ट बताकर ही मैं बेहोश हो गया। तन्द्रावस्था या बेहोशी में मैं देखता हूँ, मैं ठाकुर के पास बैठा हूँ। मुझे बड़ी प्यास लगी है। मेरे पास कुछ बढ़िया मुनक्के हैं। मैंने उन्हें ठाकुर को देने की इच्छा से उनके सामने रखा। ठाकुर ने खूब संतुष्ट होकर उन्हें ग्रहण किया। मात्र चार-पाँच स्वयं लेकर, शेष मुझे देते हुए उन्होंने कहा-यह लो, सब ले जाकर खाओ। मैंने कुछ मुनक्के योगजीवन को देकर बाकी मुँह में डाल लिये। मुनक्के खाते ही मैं जाग गया। जाग्रत् अवस्था में भी मुनक्का चबाता हुआ देखकर अवाक् रह गया। आसन पर उठ बैठा और पानी पिया। आश्चर्य तो यह है कि शरीर सम्पूर्ण स्वस्थ हो गया। ज्वर की पीड़ा तो अब सोच भी नहीं पा रहा था। शरीर स्वस्थ, हल्का और सबल लगने लगा। मैं आसन पर अपने दैनिक कार्यक्रम के अनुसार बैठने लगा। निश्चित समय पर धूनी में उड़द की दाल व रोटी, जो भिक्षा में

लाया था, बनाकर आहार किया।

हरिद्वार में नित्यकर्म।

साधन कुटीर बड़ा ही सुन्दर था। उत्तर की ओर मैंने आसन लगाया। दक्षिण और बाँयी ओर सामने बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ खोल देने पर पूरा कमरा स्वच्छ और खुला हुआ लगता है। जिधर देखो विशाल पर्वत श्रेणियों की अपूर्व शोभा दिखाई पड़ती है, परन्तु खिड़कियाँ बन्द कर दो तो पूरा कमरा अन्धेरा हो जाता है। यह स्थान अच्छी ऊँचाई पर है, इसलिए सूर्योदय से सूर्यास्त तक दिखाई पड़ सकता है। स्थान का प्रभाव कुछ ऐसा है, कि आसन पर बैठते ही चित्त अपने आप ही स्थिर हो जाता है। ध्यान में ठाकुर की स्मृति क्रमशः घनीभूत हो रही है। अविरल अश्रुपात होता हुआ सारा दिन परमानन्दपूर्वक कैसे बीत जाता है, यह कहना कठिन है। आहार के बाद भी आसन पर ही रहने की इच्छा होती है। सोने की इच्छा अब न रह गई। ठाकुर की असीम कृपा से मैं ऐसा विभोर हो गया हूँ, मानो दिन रात किसी नशे में समय बीत रहा है। लगता है ठाकुर हमेशा के लिए मुझे यहीं रखेंगे।

कई दिनों के अभ्यास के कारण रात को तीन बजे नींद खुल जाया करती है। तब मुँह हाथ धोकर आसन पर बैठ जाता हूँ। धूनी जलाकर होम करता, प्राणायाम व नाम करते हुए भोर हो जाया करती। ब्रह्ममुहूर्त में आसन से उठकर नीलधारा के तट पर बेलबाग चला जाता हूँ। यह स्थान हजारों बेलवृक्षों से पूर्ण है। वृक्ष के नीचे छोटे-छोटे बेल पड़े रहते हैं। शौच, स्नान, तर्पण करके दो बेल लेकर कुटीर लौट आता हूँ। सुबह आत्मानन्द मुझे आधा सेर दूध दे जाते

हैं। मैं उन्हें चाय बनाकर देता एवं स्वयं भी तृप्तिपूर्वक चाय पीता हूँ। दस बजे गायत्री जप, न्यास सम्पन्न करके पाठ करता हूँ। ग्यारह बजे आसन से उठकर लकड़ी चुनना, घर लीपना आदि करके बारह बजे स्नान, संध्या सम्पन्न करके बेल खाता हूँ। तीन बजे तक नाम ध्यान करता, फिर भिक्षा के लिये जाता तथा शाम तक लौट आता हूँ। धूनी की आग में छोटे लोटे में दाल चढ़ाता हूँ, सिर्फ नमक, मिर्च और पानी डालता हूँ। हाथ से थापकर टिक्कड़ बना कर धूनी में भून लेता हूँ। फिर ठाकुर को भोग लगाकर परम तृप्ति सहित प्रसाद पाता हूँ। नींद न आते तक आसन पर बैठकर नाम जप करता हूँ। फिर तीन घंटे तक अच्छी नींद आती है।

मेरी प्रार्थना से ठाकुर का विषम भोग।

कमरा मेरी रुचि के अनुसार बना। मन में सोचा, अब कोई चिन्ता नहीं। अब देह मन खाक करके साधन भजन और तपस्या करूँगा। लेकिन ठाकुर का क्या अभिप्राय है, समझ नहीं सकता। अचानक ही उत्पात आरंभ हुआ, जिससे कमरे में टिकना असंभव हो गया। स्नान करके आकर देखता हूँ कि कमरे में कई जाति के असंख्य कीट भरे पड़े हैं। मुरमुरे के समान घिनौने कीड़े इतने अधिक भरे हैं दो इंच जगह भी खाली नहीं है। सभी तरफ से कीट आसन में चढ़ने की कोशिश कर रहे हैं। कई बार झाड़ू लगाकर भी इन्हें भगा न सका। ये फिर कमरे में भर जाते और शरीर पर चढ़ते हैं। आसन में बैठकर इन्हें निकाल फेंकता। एक और भी उत्पात प्रारंभ हुआ। असंख्य मक्खियाँ आकर मुँह, कान, नाक पर भिनभिनाने लगीं। ये ऐसी भयानक हैं कि कपड़े से उड़ाने पर फिर

आकर शरीर चिपकने लगतीं। अत्यन्त अस्थिर होकर मैंने धूनी में लकड़ियाँ डालीं और खिड़कियाँ दरवाजे बंद करके कमरा अंधेरा कर दिया। इससे कोई लाभ न हुआ। मक्खियाँ तो हटी नहीं, धुँए से दम घुटने लगा। यह कैसा कष्ट है, कहा नहीं जा सकता। लेकिन इसी उत्पात के बीच एक विशेष अवस्था उपस्थित हुई। आसन पर बैठते ही एक अज्ञात् शक्ति ने चित्त को भीतर की ओर खींच लिया। मधुमय इष्टनाम स्मृतिपुष्ट होकर अपने आप जाग उठा। उसके प्रभाव से शरीर अचल सा हो गया। निमग्न होकर बैठा रहना ही चाहता था, किन्तु दुष्ट मक्खियों और कीड़ों के उत्पात से अस्थिर हो उठा। हर पंद्रह-बीस मिनट में अन्दर बाहर होते हुए, मैं अधीर हो उठा। दो दिन, दो रात इस प्रकार यत्रंणा से मैं विक्षिप्त सा हो गया। तीसरे दिन धीरज खो बैठा और रो पड़ा। ठाकुर को स्मरण करके कहने लगा-हे गुरुदेव! अब तो यह क्लेश और नहीं सहा जाता। या तुम इस उत्पात की शीघ्र शांति करो या ऐसा आशीर्वाद दो कि तुम्हारी स्नेहपूर्ण दृष्टि को अन्त:करण में रखकर, इस संसार से सदा के लिए विदा हो जाऊँ। तुम्हारे नाम और ध्यान में न डूबकर, जीवन धारण करना मेरे लिए नरक भोग है। ठाकुर दया करो। इस प्रकार प्रार्थना करते हुए नींद आ गई।

शेष रात्रि को एक स्वप्न देखकर जाग उठा। देखा गेण्डारिया आश्रम में ठाकुर अपने पूर्व दिशा के कमरे में बैठे हैं। योगजीवन, कुंज घोष आपस में हँसी-मजाक कर रहे हैं। ठाकुर की ओर कोई नहीं देख रहा है। असंख्य गंदे कीड़े ठाकुर के अंग में बिलबिला रहे हैं, हजारों मक्खियाँ चारों ओर भिनभिना रही हैं, उनके मुँह, नाक पर बैठ रही हैं। मैं यह देखकर सिहर उठा। जोरों से पंखा झलने

लगा, पर उससे एक भी मक्खी नहीं हटी। निरुपाय होकर मैं एक-एक कीड़े को निकालकर फेंकने लगा। इसी अवस्था में जाग उठा।

आसन त्यागकर बेलबाग गया। स्नानादि से निवृत्त होकर कमरे में आकर देखा, एक भी मक्खी या कीड़ा कमरे में नहीं है। मैं अवाक् होकर बाहर कीड़ों को तलाशने लगा, पर एक जगह कुछ मरे हुए कीड़ों के अलावा एक भी नजर नहीं आया। बारंबार यही सोचने लगा कि कीड़े गए कहाँ? आसन पर बैठकर यही सोचने लगा कि, कल जो ठाकुर से प्रार्थना की थी, यह इसी का फल है। मैं जो उत्कट भोग स्वयं नहीं भोगना चाहता था, ठाकुर ने मेरी प्रार्थना सुनी और वह सब अपने ऊपर ग्रहण कर लिया। स्वप्न में देखा था, कि उन गंदे कीड़े व मक्खियों का दंश स्थिर रूप से आसन पर बैठे ठाकुर किस प्रकार सह रहे हैं। यह सोचकर मेरा मन जल उठा। मैंने सोचा हाय! यह मैंने क्या किया? शीतल गंगा जल, चन्दन सहित तुलसी पत्र, गंध पुष्प जिनके युगल चरणों में अर्पण करने पर, अनंतकाल के प्रारब्ध अन्तर्हित हो जाते हैं, अपने आराम के लिए मैंने अपना भोग्य, कुत्सित, कृमि कीट, दयालु ठाकुर के श्रीअंग में छोड़ने में जरा भी दुविधा नहीं की। हाय! मैंने यह क्या किया? ठाकुर ने एक बार धमकाकर कहा था-**'ब्रह्मचारी! सावधान! प्रार्थना करने पर वह पूरी होगी ही। सावधान रहना।'** उस समय उनकी बातों का तात्पर्य नहीं समझ सका था। अब क्या करूँ? मेरा हृदय जला जा रहा है। व्याकुल होकर ठाकुर से कहने लगा-गुरुदेव तुम्हारी वाणी वृथा नहीं हो सकती। मेरी सभी प्रार्थनाएँ स्वीकार अवश्य करोगे। अभी अधीर होकर श्री चरणों में प्रार्थना करता हूँ कि मेरा भोग मुझे ही दे दो। मैं प्रसन्न मन से भोग लूँगा। आशीर्वाद दो,

कि अब कभी किसी प्रार्थना का उदय मेरे मन में न हो। ठाकुर के मुख मंडल पर कीड़े व मक्खियों की कल्पना से सारा दिन रो-रो कर काटा। यह किस प्रकार की व्यथा है, समझाया नहीं जा सकता प्रार्थना पर मुझे आत्मग्लानि होने लगी। प्रतिज्ञा कर ली कि, अब जीवन में कभी प्रार्थना नहीं करूँगा। शाम को अचानक ठाकुर की हँसमुख स्नेहदृष्टि अन्त:करण में आ पड़ी। उनके परम पवित्र, सुंदर मुख की छबि की छाप चित्त पर पड़ी। ठाकुर की असीम कृपा के बारे में सोचते-सोचते मैं अवसन्न सा हो गया! जय गुरुदेव!!

उच्छिष्ट मुख में भोजन देने पर उच्छिष्ट ही देना होता है।

मैंने एक स्वप्न देखा। ठाकुर हमारे घर आए हैं। बड़े समारोहपूर्वक उनके भोग का आयोजन हो रहा है। माँ भोजन बनाने में जुट गई हैं। ठाकुर के स्वल्पाहार के लिए थाल में कई प्रकार के सुंदर फल रखे हैं। मेरे लिये भी स्वल्पाहार थाल में रखा है। अपनी थाली बायें हाथ में लिए ठाकुर की थाली उन्हें देने लगा। ठाकुर की थाली में उत्कृष्ट वस्तुएँ देखकर मन में लोभ आया। इसी समय ठाकुर की थाली से कुछ फल नीचे जमीन पर गिर पड़े। मैंने झट उन्हें मुँह में डाल लिया और चबाते हुए ठाकुर को थाली देने लगा। फिर मन में सोचा कि ठाकुर की थाल से कुछ फल गिर गये, अतः अपनी थाल उन्हें दे दें। तभी माँ ने कहा-यह क्या? खाते हुए ठाकुर को जलपान दे रहा है, वह सब तो जूठा हो गया। मैंने कहा-मेरा दाहिना हाथ और मुँह जूठा है, परन्तु बायें हाथवाली थाली अच्छी है। माँ ने कहा-ऐसा नहीं होता। कोई भी वस्तु खाते हुए छूने पर,

उसे भी जूठा माना जाता है। वह भोग में नहीं लग सकता। सुनकर मैं जाग उठा।

स्वप्न में माताजी के उपदेश पाकर बड़ा आनंद आया। माँ की बातें सत्य हैं, यह स्पष्ट समझ पाया। मुझे ठाकुर के एक दिन की बात याद आयी। एक दिन योगजीवन आहार के अंत में मुँह न धोकर दूसरे गुरुभाई को बायें हाथ से कुछ परोस रहे थे, ठाकुर ने योगजीवन से कहा-**'खाकर उच्छिष्ट से दूसरों को भोजन देने पर वह उच्छिष्ट देना ही होता है। यह साधारण आचार भी नहीं जानता? जूठे मुँह से कोई सखड़ी वस्तु नहीं देना चाहिए।'**

साधन में योग माया की कृपा।

शरीर की अवस्था दिनोंदिन बिगड़ती जा रही है। दुर्बलता बढ़ती जा रही है। आत्मानंद के साथ भोजन के समय भी परिमाण की ओर ध्यान न देकर, खूब पेट भर खाया करता हूँ। दोनों समय आधा सेर दूध भी लेता रहा। आहार कम करने पर भूख मिटती नहीं। यहाँ भात खाना संभव नहीं। शरीर में रस संचार अधिक होता है, पेट साफ नहीं होने से शरीर अस्वस्थ हो जाता है। भिक्षा में चने का सत्तू मिलता है, उसे खाने पर तो चार पाँच दिन खाने की जरुरत नहीं पड़ती, पेट खराब हो जाता है। शरीर स्वस्थ-सबल हो तथा सभी प्रकार के आहार का अभ्यस्त हो, तभी यहाँ नित्यभिक्षा करके देह धारण करना संभव है। शरीर स्वस्थ न हो, आहार की भलीभाँति सुव्यवस्था न हो, तो साधन-भजन तो दूर की बात, प्राणरक्षा भी कठिन है। शरीर क्षीण हो, देह में यंत्रणा हो, तो मन कैसे ठीक रह सकता है? साधन-भजन करने की प्रबल इच्छा एवं

व्याकुलता दिनोंदिन बढ़ रही है, लेकिन शरीर के अवसाद के कारण कुछ नहीं बन पा रहा है। ठाकुर की कृपा से जिस दिन शरीर में कोई ग्लानि न हो, उस दिन उदय से अस्त तक सारा दिन साधन-भजन में कैसे बीत जाता है, समझ नहीं पाता, मानो आनंद में मुग्ध रहता हूँ। ऐसी अवस्था होती है कि ठाकुर का स्मरण करके निरन्तर रोता रहता हूँ। एकांत में अविरल अश्रुधारा के बीच दिन बीत जाता है। प्राकृतिक सौंदर्यपूर्ण भजन के अनेकों स्थलों में बहुत प्रयत्न करके भी जो एकाग्रता उत्पन्न नहीं हो पाती, यहाँ स्थान के महत्त्व से आसन पर बैठते ही असाधारण रूप से एकाग्रता उत्पन्न होती है। गुरुदेव का स्मरण करके नाम जप करना आरंभ करते ही इन्द्रियाँ अपने आप अन्तर्मुख हो जाती है। गुणमयी योगमाया का असाधारण गुण इस महातीर्थ में, किसी भी अवस्था में, जरा भी स्थिर होकर प्रयास करने पर स्पष्ट रूप से प्राणों में अनुभव किया जा सकता है। जय माँ आनंदमयी योगमाये! तुम्हारी कृपा अविच्छिन्न तेल की धार के समान मुझ पर बरस रही है। मुझे कृपा करके उसके बिंदुमात्र का अनुभव करने की अवस्था प्रदान करो। तुम्हारी कृपा से गुरुदेव की मनोहर लीला-दर्शन करके दिनरात मुग्ध रहूँ।

नाम व ध्यान में परमानंद प्राप्ति।

१ से ७ ज्येष्ठ सन् १३००। भगवान गुरुदेव की कृपा से मेरे भजन विरोधी बाहरी उपद्रव शीघ्र शांत हुए। एकान्त में निश्चिन्त होकर साधन-भजन की ऐसी सुविधा और सुअवसर जीवन में फिर कभी आए न आए सोचकर व्याकुल हो उठा। सदा ऐसा विचार मन में

आता है कि यह शुभ समय अधिक दिन नहीं रहेगा। मैं अविराम भगवत् ध्यान में समय बिताऊँगा, ऐसा संकल्प करके साधन भजन में लग गया। रात के अंतिम भाग में उठकर नीलधारा में स्नान-आह्निक समापन कर, कुटीर में प्रवेश करता हूँ। देहकल्प अनुसार दो-तीन बिल्वपत्र घी शक्कर के साथ सेवन करता और शीतल जल पीता हूँ। फिर धूनी जलाकर नित्य होम और गायत्री जप करता। बारह सौ छियानवे बार जपकर, उसका दशमांश घी सहित बेलपत्ते की आहुति, प्रज्वलित अग्नि में प्रदान करता हूँ। फिर डेढ़ घंटे तक न्यास करता, इस प्रकार ग्यारह बज जाते। तब घर साफ करता, सूखी लकड़ी चुनता, स्नान करके पुनः आसन पर बैठता हूँ। नाम जप और ध्यान में समय बीत जाता। इस समय दयालु ठाकुर मुझे किस अवस्था में रखते हैं, प्रकट करना मेरे लिए संभव नहीं। हरिद्वार के पर्वत, वृक्षलता सभी मानो भगवत् भाव में मग्न हैं, महामाया की असीम शक्ति के प्रभाव से अभिभूत हैं। जिधर देखता हूँ-ठाकुर की मन मुग्धकारी छवि प्रत्यक्ष प्रकाशित होकर मुझे विह्वल कर देती है। दिन के अंत में रोना आता है, कि आज के लिए यह आनंद समाप्त हुआ।

तीव्र तपस्या से भजन लोप।

सुना है, शुभ-अशुभ, सुख-दुख आदि सभी अवस्थाएँ सदा परिवर्तनशील होती हैं। ठाकुर की कृपा अनुभव करने के लिए यह दुर्लभ अवस्था कितने दिन मेरे भाग्य में है-नहीं जानता। कोई भी निश्चय नहीं कि किस दिन, किस कारण, किस दशा में यह चली जाय। अतः जितने दिन ठाकुर दया करके इस अवस्था में रखें, मन

की इच्छानुसार, मन प्राण लगाकर साधन भजन करूँ। शुभ क्षण चला न जाय, इस आशंका से दिनरात एकांत साधन में लगा रहता हूँ। योगभूमि के असाधारण प्रभाव से तीव्र तपस्या की आकांक्षा दिनोंदिन बढ़ रही है। मैंने विधिवत् कठोरता आरंभ कर दी। सूर्योदय से एक अजंली जल भी न लेकर, शाम को एकाहार करने लगा। छिलके सहित उड़द की दाल, तो कभी वृक्ष लताओं की नई पत्तियों को नमक से उबालकर एक छँटाक आटे के साथ खा लेता। इससे शरीर स्वस्थ और काफी सबल होने लगा। मन में उत्साह, उद्यम तेजस्विता और चित्त में प्रफुल्लता का अनुभव होने लगा। अब मैं उससे भी कम आटा थापकर धूनी की अग्नि में टिक्कड़ डाल देता, राख से ढँक देता। आधे घंटे में फूलकर कचौड़ी के समान हो जाने पर, नमक मिर्च से ठाकुर को भोग लगाकर प्रसाद पाता। अच्छी भूख लगने के कारण या ठाकुर की कृपा से हो-यह भोजन बड़ी तृप्ति से करता हूँ। ऐसा करके भी मेरा मन नहीं भरता।

कुछ दिन हुए शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया है। यथासमय आसन से उठकर शौच-आह्निक आदि नहीं कर पाता। गंगा का जल कलश भरकर लाने में एक मिनट की दूरी में ही हाँफ जाता हूँ। इस बीच राह में दो तीन बार विश्राम करना पड़ता है। अधिक देर आसन में नहीं बैठ सकता। काफी समय सोया रहता हूँ। भूख से पेट जलता है पर अवसाद इतना है कि हाथ-पाँव हिलाने की क्षमता नहीं। खूब रोना आता है। इतने पर भी मेरे कठोरता और तपस्या की आकांक्षा कम नहीं होती। ठाकुर ने कहा था-**'शरीरमाद्यम खलु धर्म साधनम्।'** अर्थात् सभी कर्म-धर्म से पहले शरीर की रक्षा करना चाहिए। शरीर अस्वस्थ रहने पर आह, उह करके दिन काटना पड़

रहा है। देह यंत्रणा की उपेक्षा भी तो नहीं कर पा रहा हूँ। साधन भजन कैसे करूँ? सोचा था सभी प्रकार के रसों के त्याग से शरीर के विकारों से छुटकारा पाऊँगा, लेकिन अब देखता हूँ अधिक हठ के कारण संकट में पड़ गया हूँ। साधुओं ने मेरी दशा देखकर कहा- जिससे शरीर नष्ट हो, अस्वस्थ हो जाय, जान बूझकर आप वह सब क्यों कर रहे हैं? यह तो आत्महत्या के समान है। अब मन में दुःख हो रहा है कि शरीर में क्लेश न होता तो दिनरात ठाकुर के नाम में मग्न रह पाता। स्पष्ट समझ गया कि जिन्होंने गुरु का आश्रय पाकर भी धर्म लाभ के लिए मनोमुखी होकर चलने की कोशिश की, उनकी जो दुर्दशा होती है, वही मेरी भी हुई। ठाकुर दया करो। तुम्हारा आदेश न पाकर, तुम्हारा अभिप्राय न समझकर, मुझे परमधर्म पालन भी, अधर्म मालूम पड़े। मैं दाल-सब्जी से भूख मिटने तक अच्छे से भोजन करूँगा। आत्मानंद से दूध भी मिलेगा। शरीर को स्वस्थ, सबल और निरोग बनाना ही मेरे लिए अब सारधर्म लगने लगा। मैंने संकल्प किया-आगामी कल से अतिरिक्त कृच्छता, कठोरता छोड़कर ठाकुर के आदेशानुसार ही चलूँगा।

स्वाभाविक आहार से ठाकुर की कृपा।

कल अपराह्न पाँच बजे दाल रोटी से भरपेट भोजन किया। पेट साफ हुआ, मल में रक्त गिरना, हाथ-पाँव की गाँठों में दर्द आदि सभी बंद हो गये। शरीर हल्का और स्वस्थ लगने लगा। सारे दिन नियत कार्यतालिका के अनुसार चलने में कोई कष्ट नहीं हुआ। कल आहार के पूर्व ठाकुर को निवेदन करते हुए रो पड़ा। ठाकुर से मन ही मन कहा-ठाकुर मैं नितान्त अपात्र हूँ, साधन-भजन मेरा काम

नहीं। शरीर के कष्ट के कारण कठोर नियमों को आज तिलांजलि दे रहा हूँ। कृपा करके तुम एक बार मेरी दाल, रोटी पर दृष्टि डालो। तुम्हारा प्रसाद पाकर मैं कृतार्थ हो जाऊँ। आँखें बंद कर कुछ देर ठाकुर का ध्यान करके, आँख खोलते ही देखकर आश्चर्य हुआ- दाल, रोटी पर कुछ सरसों के आकार की ज्योति बिंदु परस्पर मिलकर झिलमिला रही हैं, ज्योति नीलाभ गाढे लाल रंग की प्रतीत हुई। जब तक आहार किया, वही मनोरम ज्योति आँखों में लगी रही। सात-आठ मिनट तक इस प्रकार मनोरम दर्शन करते हुए आहार संपन्न किया। सारा दिन चित्त प्रफुल्लित रहा।

आज संध्या समय कुभंक योग से ध्यान करते समय अकस्मात् ललाट में एक ज्योति प्रकाशित हुई। थोड़ी देर में वह ज्योति और भी सुंदर तथा उज्ज्वल हो उठी। इस ज्योति का वर्ण कुछ निश्चित नहीं कह पाऊँगा। लाल, हरा, कुछ भी नहीं, किंतु सभी वर्णों ने मिलकर एक स्वतंत्र, सुंदर आभा युक्त ज्योति की सृष्टि की है। ज्योति मंडल के चारों ओर शुभ्र नीली छटा, सूर्य रश्मि की भाँति विकीर्ण होकर नभमंडल में बिखर रही है। ज्योति बिंदुओं के बीच एक नख परिमाण की अति उज्ज्वल ज्योति अत्यन्त चंचल रूप से पल-पल प्रकाशित होकर अन्तर्हित होने लगी। यह चंचल ज्योति क्या है, इसकी आकृति क्या है, कुछ निश्चित नहीं कर पा रहा हूँ। इन्द्रधनुष के सात रंगों से बाहर होने के कारण इसकी कोई तुलना भी नहीं हो सकती। ध्यान के त्याग के साथ ही ये विलीन हो गई। ज्योतियों का मनमुग्धकारी सौंदर्य ऐसा है, कि कितना भी अस्वस्थ शरीर एवं उद्वेगपूर्ण मन क्यों न हो, इनके दर्शन मात्र से चित्त प्रफुल्लित हो उठता है। बाह्य संज्ञा विलुप्त सी हो जाती है। दर्शन

की स्पृहा एवं उत्कण्ठा और भी बढ़ने लगती है। ठाकुर के पास प्रार्थना किया-गुरुदेव तुम्हारे अनन्त सौंदर्य के भण्डार में तुमसे अधिक सुंदर यदि कुछ हो भी, तो वह मेरे पास अप्रकट ही रहे, यही आशीर्वाद दो!

मेरा दैनिक कार्य।

कुछ दिन नियमपूर्वक आहार करने पर मेरा शरीर सबल और स्वस्थ हो गया। मैं पुराने दैनिक कार्यक्रम के अनुसार ही चलने लगा। प्रातःक्रिया संपन्न कर आसन पर बैठता। गायत्री जप संपन्न करके, नारायण को गंगाजल, तुलसीपत्र प्रदान करता। शालग्राम को बारह तुलसीपत्र प्रदान करने में मुझे दो घंटे लग जाते हैं। फिर गीता, चण्डी, चरितामृत ग्रन्थ पाठ में ग्यारह बज जाते। तब आसन से उठकर कमरा झाड़ता, लीपता, धूनी की लकड़ियाँ चुनता, दाल और आटा भिगोकर रखता। कलश लेकर गंगा-स्नान को जाता। पूजा के बर्तन माँजकर, स्नान करके कलश में जल भरकर लाता। बारह बजे नारायण को भोग लगाकर श्रीफल बेल का प्रसाद पाता। फिर पाँच बजे तक ठाकुर मुझे नाम में किस प्रकार तल्लीन रखते, यह मैं कह नहीं सकता। पाँच बजे के बाद आत्मानंद के कुटीर के पास, बड़ के वृक्ष के नीचे जा बैठता। चण्डी यात्रियों को साधु-संतो से वार्तालाप से बड़ा आनन्द मिलता। छः बजे आटे की टिक्कड़ और लोटे में दाल पकाकर, स्नान को जाता। स्नान संध्यादि के बाद सुंदर पका हुआ टिक्कड़ व दाल ठाकुर को भोग लगाता और परम तृप्ति से प्रसाद पाता हूँ। रात को सोते-सोते दस बज जाते हैं।

अहैतुकी ज्वलन: नित्य क्रियादि से निवृत्ति।

रात्रि के अंतिम प्रहर नीलधारा में शौचस्नान संपन्न कर आसन पर आया। आज शरीर अच्छा स्वस्थ लग रहा है। आज का दिन एकाग्र मन हो, साधन-भजन में बिताऊँगा, ऐसा सोच रहा हूँ। किंतु आसन पर बैठकर न्यास आदि आरंभ करते ही भीतर एकदम शून्य सा हो गया। ध्येय यत्न करके भी ढूँढ नहीं पाता। असुविधा देख मैंने शालग्राम की पूजा शुरु की, पर उसमें भी चित्त न लगा। पूजा संक्षिप्त रूप से संपन्न कर पाठ आरंभ किया, उसमें भी खीज सी आने लगी। तब सब छोड़कर बैठ गया, सोचने लगा आज ऐसा क्यों हुआ। कोई भी कारण समझ न पड़ा। भीतर ऐसा ज्वलन आरम्भ हुआ कि आसन पर बैठ भी न सका। अस्थिर होकर कभी कमरे में, कभी बाहर आने लगा। माथा मानो आग जैसा गर्म हो गया। ठाकुर पर बड़ा ही क्रोध आने लगा। सोचता रहा, ठाकुर, मुझे बिना किसी कारण के क्यों जला रहे हैं। यह जलन अब मैं सह नहीं पाऊँगा, इसकी निवृत्ति के लिए कुछ भी कर डालूँगा। भीतर-बाहर सभी शून्य बोध होने लगा। असह्य उद्वेग से छटपटाता हुआ आसन पर सो गया। दो-तीन घंटे ऐसा ही अस्थिर रहा। मन में आया कि संसार की ऐसी कोई भी सत् या असत् वस्तु नहीं हैं, जिसे लेकर कुछ देर मैं आराम पा सकूँ। कई प्रकार की कल्पनाएँ भी करने लगा, किंतु सभी नीरस लगने लगी। फिर मैंने निश्चय किया, अच्छा लगे या बुरा लगे, मैं निश्चित दिनचर्या के अनुसार ही काम करता चलूँ। आनंद और निरानन्द के मालिक तो एक ही हैं। वे यदि आनंद न दें तो कहाँ से आनंद पाऊँगा। मैं समयानुसार यथाविधि निश्चित दिनचर्या के अनुसार नित्य क्रियाएँ करने लगा। नित्य क्रिया करते हुए पुनः मेरा मन प्रफुल्लित हो उठा। बाकी दिन भी आराम से कटा। इतनी

यंत्रणा, जलन और शुष्कता के बीच भी 'नाम' मेरे प्रयत्न की अपेक्षा न करते हुए अपने आप चल रहा है, यही आश्चर्य की बात है।

दण्डी स्वामी के पास त्रिसंध्या का उपदेश।

आश्रम के पास ही चण्डी पर्वत जाने का रास्ता है। कई यात्री गृहस्थ एवं संन्यासी इस आश्रम में आते हैं, विश्राम करते हैं। दो दिन हुए एक नैष्ठिक, वृद्ध बह्मचारी यहाँ आकर ठहरे हैं। इधर वे 'दण्डी स्वामी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। संध्या एवं शालग्राम पूजा की पद्धति सीख लेने को ठाकुर ने कहा था। इतने दिनों तक मैं उपयुक्त व्यक्ति की प्रतीक्षा में था। दण्डी स्वामी का परिचय पाकर मैं बड़ा संतुष्ट हुआ। त्रिसंध्या व शालग्राम पूजा पद्धति के बारे में पूछने पर उन्होंने स्पष्टतः सब समझा देने की इच्छा प्रकट की। आज दोपहर बारह बजे एकांत में बैठकर, मैंने उनसे सब कुछ सीख लिया। दण्डी स्वामी ने कहा-त्रिकाल संध्या करना हो तो नैष्ठिक के लिए ब्रह्मयज्ञादि करना परम कर्तव्य है। ब्रह्मयज्ञ पाठ करके सप्तर्षि न्यास कर, चौबीस तत्त्वों का न्यास करना चाहिए। संध्या के अंत में पुनः शांतियज्ञ पाठ करना पड़ता है। तभी संध्या क्रिया यथाविधि संपन्न होती है। संध्या का कोई भी अंग संक्षिप्त करने पर सम्यक् उपकार नहीं पाया जा सकता। नित्य त्रिसंध्या यथाविधि करने पर सभी उपासना के तत्त्व उसमें उपलब्ध होते हैं। ब्रह्मण्य तेज लाभ करना हो तो संध्या ही एकमात्र उपाय है। यही सर्वश्रेष्ठ उपाय भी है। दण्डी स्वामी के पास संध्या के क्रम, प्रकरण एवं शालग्राम पूजा विधि सीख लिया। आज मध्याह्न में कोई काम नहीं हुआ। चार-पाँच बजे होम, स्तुतिपाठ करके पाँच श्लोक गीता व चण्डी का पाठ कर

श्रीमद्भागवत् को नमस्कार करके रख दिया। लकड़ी चुनकर भोजन की व्यवस्था करके स्नान किया। सायं संध्या के बाद कीर्तन करके दाल व अन्न का भोग ठाकुर को निवेदन करके, तृप्तिपूर्वक आहार किया।

बरसात में भीगना: ठाकुर पर क्षोभ।

आज भारी आंधी और वर्षा हुई। मेरी कुटिया की छत के घास फूस अभी तक ठीक तरह से जमे नहीं हैं, इसलिये कहीं-कहीं पानी टपकने लगा, फिर धारा के रूप में गिरकर मेरे आसन और फर्श को भरने लगा। कहीं भी खड़े होने का स्थान नहीं। शालग्राम की तरफ देखता हूँ-मानो वे सुखपूर्वक अपने आसन पर बैठकर मेरी दुर्दशा देखकर आनंदपूर्वक हँस रहे हों। शालग्राम के आसन के पास एक बूँद भी पानी नहीं टपका। देखकर मन में बड़ा क्षोभ सा हुआ। सोचने लगा जिनकी इच्छा से विश्व ब्रह्माण्ड में सृष्टि-स्थिति-प्रलय होता है, उन्हीं की इच्छा से आंधी-तूफान और यह उलट-पुलट हो रहा है। वे इच्छा करें तो क्या वर्षा के जल से मुझे सिर छिपाने की जगह नहीं दे सकते। असीम शक्तिशाली भगवान पूर्ण रूप से यहाँ विराजमान हैं, लेकिन मेरे दुःख के प्रति उदासीन हैं। मैंने शालग्राम से कहा- ठाकुर मुझे भिगो दिया और स्वयं आराम से बैठे मजा देख रहे हो। अच्छा अब शीघ्र बरसात बंद करो, नहीं तो तुम्हें खुले आसमान के नीचे रखकर, मैं भी तमाशा देखूँगा। स्थिर हो आसन पर बैठकर नाम जप करते-करते चित्त एकाग्र हो गया। देखा आसन पर जल टपकना बंद हो गया। फिर कमरे में भी कहीं पानी नहीं गिर रहा है, जबकि बाहर बिना रुके मूसलाधार वर्षा हो रही है, उसी से शायद

छत की घास जम गई और पानी गिरना बंद हो गया। बाहर की घटना देखकर युक्ति विचार से चाहे जो समझ लें। चैतन्ययुक्त महाशक्ति ही प्रत्येक अणु-परमाणु को चालित, वर्धित और रक्षित कर रही है। मेरे ठाकुर ने मेरा दुःख देखकर, मेरे आराम की दृष्टि से पानी बंद करवा दिया, मैं तो यही सोचता हूँ। आंधी-वर्षा पूर्व बंगाल के काल-वैशाखी आंधी के समान थी।

यह प्रलोभन है या ठाकुर की कृपा?

१८-१९ ज्येष्ठ। आज सुबह न्यास, पूजा समाप्त कर आसन पर बैठा। कनखल से एक धनी पण्डा आ पहुँचे। वे निःसन्तान हैं। कनखल और मायापुरी के बीच उन्होंने शिव साधना के लिए एक सुंदर मंदिर बनवाया है। मुझसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहने लगे-प्रभु कृपा करके मेरे शिवालय में आकर आप रहिये। मैं आपकी आवश्यक सभी सामग्री जुटा कर, दिनरात आपकी सेवा करूँगा। बगीचा, घर, देवालय एवं ठाकुर सेवा की उपयुक्त व्यवस्था करके, सभी कुछ आपको अर्पण करूँगा। आहारादि के लिए भिक्षा करने की कोई आवश्यकता न होगी। आप दिनरात निश्चिंत होकर भजनानन्द में लीन रहिएगा। मैं निःसन्तान हूँ। आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं, अपना सर्वस्व आपको देकर, मैं निश्चिन्त होना चाहता हूँ। कृपया मुझे निराश न करें।

मैंने पण्डे से कहा-मेरा भी घर द्वार सब कुछ है। अभाव में पड़कर मैं साधु नहीं बना। मेरे व्रत का नियम है, इसलिये भिक्षा करता हूँ। मेरे घर में तो, घर का अन्न दूसरे कई लोग खाते हैं। किसी मंदिर की महन्तगिरि करना मेरी वासना नहीं है। हरिद्वार,

कनखल में मेरे रहने के स्थान का अभाव नहीं हैं। मैं ही एकान्त पसन्द करता हूँ, इसलिये इस निर्जन स्थान में रहता हूँ। आप कोई और व्यक्ति ढूँढे। मैं अपना आसन हटाकर किसी दूसरे स्थान पर नहीं जा सकता। यहाँ रहने का, मेरे गुरुदेव का मुझे आदेश है। पण्डे ने कई ऐश्वर्य, सुविधाओं की बात कही, जब मेरी मति नहीं पलटी तो धीरे-धीरे निराश मन से लौट गया। सुना है, कई लोग उस मंदिर के मालिक होने के लिए प्रयत्न भी कर रहे हैं। यह महामाया की परीक्षा है या गुरुदेव की कृपा? गुरुदेव दया करो! तुम्हारे हाथ से गढ़ी हुई यह चीज किसी की अँगुली के दबाव से टूट न जाय। मेरी क्या क्षमता कि किसी प्रलोभन से अपनी रक्षा कर सकूँ।

मद्यपायी के हाथों पड़ना: ज्योतिर्मय शालग्राम।

आज आत्मानंद के पास कुछ समय तक ठहरा। आत्मानंद ने एक बोतल दिखाकर कहा-दादा तुम्हारे लिये यह उत्कृष्ट रस लाया हूँ, तुम जरा पान करो। हाथ में बोतल लेकर, शराब की गंध पाकर मैं हैरान रह गया। आत्मानंद शराब पीते हैं? मैं यदि अब उससे कहूँ -मैं शराब नहीं पीता, तो उसे शरम आएगी, अभिमान को ठेस पहुँचेगी और वह अनायास ही मुझे भगा देगा। मैंने उससे कहा-हाय राम! तुम यह दुर्गन्ध रस पीते हो, इससे तो मेरे प्राण ही चले जाएंगे। अच्छी शराब नहीं पी सकते। आत्मानंद एक और बोतल देकर बोले-यह उत्कृष्ट है, इसे पीना ही पड़ेगा। मैंने उसे हाथ में लेकर कहा-मैं देशी शराब कभी नहीं पीता। तुम ऐसा करो, जैसा पीते हो निःसंकोच पिओ। मुझे यह सब सहन नहीं होता। आत्मानंद को

बोतल लौटाने पर वह दुःखी हुआ, कहने लगा-दादा शराब तो तुम पियोगे नहीं, कम से कम दो कचौड़ी ले जाओ। मैं वह लेकर आसन पर लौट आया। खाने की सहमति दे आया हूँ, सो ग्रहण भी किया। कचौड़ियाँ खाते ही, पाँच-सात मिनटों से मेरा चित्त विक्षिप्त हो गया। मन अत्यन्त चंचल और शरीर अस्वस्थ हो गया। आज आसन पर कुछ भी नहीं कर सकूँगा। इच्छा हो या अनिच्छा, संध्या करने हेतु आसन पर जा बैठा। संध्या करते-करते ही शालग्राम की ओर देखा-वे ज्योतिर्मय हैं। शालग्राम की ओर दृष्टि रखकर संध्या करने लगा, आश्चर्य है ठाकुर की कृपा-काले पत्थर के शालग्राम के सर्वांग में श्वेत-नील मिश्रित उज्ज्वल ज्योति निकल रही है। यह देखते ही मेरा चित्त प्रफुल्लित हो उठा। शेष दिन बड़े आनंद से बीता। कचौड़ी खाकर जो सिरदर्द हो रहा था, होम के बाद वह भी ठीक हो गया। रात को आठ बजे दाल रोटी पकाकर भोग लगाया। प्रसाद पाकर बड़ी तृप्ति हुई।

शालग्राम की चोरी।

यहाँ बंदरों का बड़ा उपद्रव है, रोज बंदर मेड़ की दरार से घुसकर कुछ न कुछ नुकसान कर जाते हैं। कल घी गिराया, आज होम का पूरा घी बरबाद कर दिया। घी के लिए एक साधु को पण्डे के पास भेजा। साधु लौटकर कहने लगा, मैं अब वहाँ कभी नहीं जाऊँगा। मेरा उससे झगड़ा हो गया है। वह आपके हवन के लिए घी रखा तो है, पर मेरे हाथ में घी नहीं देता। इसी बात पर झगड़ा हो गया है। आप स्वयं जाकर ले आएँ, वह अधिक दूर भी नहीं है। आपके लौटते तक, मैं आपकी कुटिया में रहता हूँ। साधु की बात

मानकर दरवाजे की झांपी डालकर मैं कनखल चला गया। आत्मानंद भी दण्डी स्वामी के साथ स्टेशन चले गए। दण्डी स्वामी आज नर्मदा जावेंगे। कनखल जाकर पण्डे से मिला। मेरे आने का उद्देश्य जानकर उन्होंने कहा-साधु ने आपसे झूठ कहा है, घी की तो कोई बात नहीं हुई। मैं तो अवाक् रह गया। आश्रम लौटकर देखा सब ठीक ही था। कुटिया के द्वार पर रस्सी तो बंधी है, पर लकड़ी नहीं लगी है। कुछ संदेह हुआ, अंदर जाकर देखा सब ठीक ही था फिर भी कुछ सूना-सूना लग रहा था। प्यास लगी थी, सो जरा जल व मीठा भोग लगाने के लिए आसन पर बैठा। निवेदन करते समय देखा-शालग्राम नहीं हैं। मेरा तो सिर ही चकरा गया। चूहे या बंदर ले जा सकते हैं, सोचकर घर बाहर सर्वत्र ढूँढ डाला। कहीं शालग्राम नहीं मिले। बाद में देखा, शालग्राम का काले पत्थर का चार इंच घेरे वाला सुंदर आसन भी नहीं है, पूजा के बर्तन भी नहीं है। गेरुआधारी, नव परिचित साधु का भी कहीं पता नहीं चला। इसी चोरी की इच्छा से ही उसने मुझे घी लाने भेजा। हाय! अब मैं क्या करूँ? मेरे ही अपराध से दोनों शालग्राम चुरा लिए गए। चोर पर क्रोध नहीं आया, क्योंकि उसकी तुलना में मेरा अपराध और भी अधिक है।

दण्डी स्वामी से शालग्राम की विधिवत् पूजा पद्धति सीखकर भी मन में ऐसा विचार आया कि विधिवत् पूजा करने पर मैं उन्हें छोड़ नहीं पाऊँगा, जबकि ठाकुर ने कहा था-**'सुलक्षणयुक्त सुश्री शालग्राम शिला की पूजा करना।'** इस शालग्राम की आकृति मुझे बहुत पसंद न थी। महात्माओं ने हाथों से दिया सो ले आया था। मेरे भीतर सुलक्षणयुक्त शालग्राम पाने की इच्छा है, ठाकुर ने कहा था,

तो वह मुझे अवश्य मिलेगा ही। तब इन शालग्राम की विधिवत् प्रतिष्ठा करने की क्या आवश्यकता है। मेरे इस प्रकार अनादर की भावना से ही शालग्राम ने मेरा त्याग कर दिया और चले गए। शालग्राम खोकर सारा दिन छटपटाता रहा। अब मैं किसकी पूजा करूँ? इसी उद्वेग से बड़ा कष्ट होने लगा। ठाकुर क्या करेंगे, यह तो वे ही जानें, अभी मेरे भीतर तो सूना हो गया है। जैसे भी हो कल एक शालग्राम लाऊँगा, इस अनुसंधान के लिए जाने का निश्चय कर लिया। हरिद्वार और कनखल में कई पण्डे मुझे गुणीदादा कहकर आदर करते हैं, उनके पास जाकर पूछूँगा।

हरिद्वार में शालग्राम अनुसंधान।

२० से २३ ज्येष्ठ। आज प्रातः नित्य क्रियादि संपन्न करके कनखल के एक पण्डे के पास गया। मेरी अवस्था बताकर एक सुलक्षणयुक्त शालग्राम दिलाने का अनुरोध भी किया। पण्डा भला आदमी था। मुझे लेकर कई मंदिरों में घूमा। कई शालग्राम दिखाए, पर मुझे कोई भी पसंद न आया। अंत में लगभग बारह बजे कई स्थान घूमने के बाद, हम बिहारीलालजी के पास पहुँचे। वृद्ध ब्रह्मचारीजी यहाँ प्रसिद्ध हैं। मुझे देखकर न जाने उन्हें क्या हुआ, जिस भाँति आदर-सत्कार करने लगे, मुझे देखकर बड़ी लज्जा आयी। मेरी बात सुनकर उन्होंने कहा शालग्राम पाना असंभव नहीं। चाहे जितने भी लाकर दे सकता हूँ। लेकिन जैसे लक्षणयुक्त आप चाह रहे हैं, वैसा पाना कठिन है। वे मुझे आहार के लिए अनुरोध करने लगे। मैं एक बार ही आहार करता हूँ, यह जानकर कुछ बर्फी, कचौड़ी मंगवाई सो कुछ साथ लेकर, उनके साथ शालग्राम की

खोज में पुनः निकला। बहुत खोजने पर भी शालग्राम न मिला। एक वृद्ध ब्राह्मण ने कहा-कल सुबह आइएगा, मैं आपको लक्षणयुक्त शालग्राम दूँगा। उनकी बात पर भरोसा रखकर आश्रम लौटा। शालग्राम के लिए कितनी अशान्तिभोग रहा हूँ, ठाकुर ही जानते हैं। मन में विचार आया-गंगातट से एक शिला उठाकर ही पूजा करूँ।

शालग्राम संग्रह: चण्डी पहाड़ में चण्डी दर्शन रास्ता भटकने पर विपत्ति का आतंक।

सुबह नित्यक्रियादि संपन्न करके नौ बजे कनखल के उस ब्राह्मण से जा मिला। उन्होंने श्रद्धापूर्वक कई दिन तक चलने लायक आटा, चावल, घी, दाल, मिर्च का सीधा दिया। ब्राह्मण ने मुझे एक शालग्राम देते हुए कहा-लीजिए यह शालग्राम! मेरे सात पुरखों के पूजित, बड़े जाग्रत् ठाकुरजी हैं। इस शिला का नाम लक्ष्मी नृसिंह है। कुछ दिन पूजा करने पर ही इनका प्रभाव समझ पाएंगे। मैंने शालग्राम हाथ में लेकर ब्राह्मण से कहा जब तक लक्षणयुक्त शिला न प्राप्त हो जाय, मैं इनकी पूजा करूँगा। मेरी पसंद के सुश्री, सुलक्षणयुक्त, सुगोल शिला मिल जाने पर, मैं आपको यह वापस दे दूँगा, ब्राह्मण ने कहा-

आशां दत्वां न दद्यात् यः दातारं प्रतिषेधक।
स्वयं दत्वा हरेद्यस्त स पापिष्ठ ततोधिक:॥

मैंने आपको जो भी दिया, वापस नहीं ले सकता। आप भले किसी और को दे देना। मैं शालग्राम लेकर आश्रम आया। यथाविधि पूजा की, अच्छा ही लगा। शिला आयतन में बड़ी है, गोलाकृति एवं चिकनी भी नहीं है।

श्रीमत् केशवानंद स्वामी आश्रम में आए हैं। उनके साथ कई मराठी, पंजाबी स्त्री पुरुष भी हैं। सभी इनके शिष्य हैं। स्वामीजी का घर हुगली जिले में है। स्त्री परिवार का त्याग कर आए उन्हें सात आठ वर्ष हो गए। काशी के श्यामाचरण लाहिड़ीजी से दीक्षा ग्रहण कर, ब्रह्मचारी वेश में कई स्थानों का पर्यटन करते रहे। खेचरी मुद्रा में ये सिद्ध हैं। कई संभ्रात व्यक्ति इनके शिष्य हैं, कठिन दुःसाध्य रोगों की औषधि भी ये जानते हैं। इस इलाके में इसलिए उनकी विशेष प्रसिद्धि है। वे जो भी अर्थोपार्जन करते, साधुसंतों की सेवा और दीन दुःखियों के दुःख निवारण के लिए व्यय कर देते हैं। उनसे परिचय होने पर बड़ा आनंद आया। ठाकुर का परिचय पाकर उन्होंने मेरा बहुत ही आदर किया। केशवानंदजी ने निःशब्द प्राणायाम, खेचरी मुद्रा मुझे करके दिखाया। खेचरी मुद्रा इतने सहज रूप से की, देखकर अवाक् रह गया। यहाँ पहले वे दो तीन बार और भी आ चुके हैं। यहाँ के स्थान के सौंदर्य और भजन की उपयोगिता देखकर इस आश्रम को उन्होंने ब्रह्मचर्य आश्रम बनाने का संकल्प किया है। आत्मानंद के नाम से उन्होंने दो भंडारे भी दिए हैं। आत्मानंद ने उनके प्रभाव व ऐश्वर्य को देखकर, उनसे दीक्षा ली है। उन्होंने आत्मानंद को कुछ कमरे, गाय बछड़े भी प्रदान किए हैं। स्वामीजी के दो बंगाली ब्रह्मचारी शिष्य हैं, वरदानंद एवं ज्ञानानंद। सुना है, वे दोनों यहीं रहेंगे।

आज यथा समय होम, स्नान, तर्पण संपन्न करके कुटीर आया। स्वामी केशवानंदजी उनके साथ चण्डी पहाड़ जाने का अनुरोध करने लगे, स्वामीजी के साथ चण्डी पहाड़ के लिए चल पड़ा। साथ बीस पच्चीस शिष्य भी थे। हम जय माँ चण्डी कहते हुए पहाड़

चढ़ते गए। लोगों के आने जाने से रास्ता सुगम हो गया है। पहले आया था, तो पैर के अंगूठे की ओर दृष्टि रखकर चलता था। तब महंतजी के शिष्य को भी कभी-कभी ही देख पाता था। मैंने सोचा हिमालय पर कितने ही ऋषि मुनि हैं। ठाकुर की कृपा हो जाय तो अवश्य ही उनके अनायास दर्शन हो सकते हैं। ठाकुर के भी इस पर्वत पर अनायास दर्शन पा सकता हूँ। पर्वत के दोनों ओर के जंगल का सौदर्य देखकर बड़ा आनंद आया। इस पर्वत पर कई प्रकार के जीव जन्तु रह सकते हैं। मुझे लगा कि पर्वत के निचले भाग में महापुरुषों की तपस्या की गुफाएँ हैं। काफी नीचे होने के कारण ठीक से दिखाई नहीं देता। हम जिस संकीर्ण मार्ग से चल रहे हैं, उससे नीचे गहराई में ढाई सौ हाथ तक देखा तो सिर चकरा सा गया। हम पहाड़ पर चढ़ते हुए थक गए, जरा विश्राम किया, फिर माँ चण्डी के मंदिर पहुँचे।

सुना है पंजाब के श्रीरणजीत सिंह के पिता या पितामह ने विपुल व्यय करके यह मंदिर बनवाया था। मंदिर छोटा होने पर भी इसे बनाना कितना कठिन होगा, यह तो वे ही जानें। उन दिनों दो कोस दूरी से जल एवं मंदिर बनाने के उपकरण लाकर, इस दुर्गम पर्वत पर मंदिर उन्होंने किस प्रकार बनवाया होगा, सोचकर मैं हैरान रह गया। पहाड़ पर कठिनाई से चढ़कर चण्डी देवी के दर्शन करके हृदय आनंद से भर गया। सामने एक ऊँची चोटी पर माँ अन्नपूर्णा विराज रही हैं, ऐसा सुना है। उत्साहपूर्वक हम माँ अन्नपूर्णा के भी दर्शनादि करके नीचे उतरे, रास्ते में एक वृद्धा को देखकर मैं अवाक रह गया। वृद्धा की उम्र अस्सी वर्ष की होगी। सीधे खड़े होने की भी शक्ति नहीं है। घुटने के बल चौदह पंद्रह हाथ

बढ़कर बैठ जाती हैं। एक-दो हाथ खिसकते गहरी खाई में गिर पड़े तो अता-पता नहीं चल पाएगा। वृद्धा के साथ एक स्त्री है,जो हाथ पकड़ कर सँकरा पथ पार करती है। इस चाल से कितने दिनों में बुढ़िया मंदिर पहुँच पाएगी, नहीं जानता। उतरने में तो और भी संकट है। उसकी दशा देखकर मेरा हृदय रो उठा। मैंने ठाकुर से कहा-गुरुदेव तुम तो किसी का क्लेश नहीं सह सकते। इस बुढ़िया की अवस्था तो तुम देख ही रहे हो। प्राणों की आशा छोड़कर, इसके अंग प्रत्यंग तुम्हारे श्रीचरणों के दर्शन की आशा से मंदिर की ओर दौड़ रहे हैं। इसका कितना भी उत्कट प्रारब्ध हो, इस पर तुम दया करना। बुढ़िया की हालत देख इतना कष्ट हुआ कि मैं ठाकुर को कहे बिना रह ही नहीं सका। कुछ देर खड़ा उसकी ओर ताकता रहा। इस बीच स्वामीजी एवं उसके शिष्य काफी दूर चले गए। मैं निःसंग होकर भयंकर पहाड़ के पथ पर चलने लगा। किसी-किसी स्थान पर मूल मार्ग से दो-तीन मार्ग निकले हुए हैं। भाग्य क्रम से ठीक पथ छोड़कर लकड़हारों के मार्ग पर चलता हुआ और भी जनशून्य घने वन में जा पहुँचा। उस मार्ग के दोनों ओर दो मार्ग दिखे। कौन सा पथ किधर पहुँचाएगा, यह निश्चित नहीं था। मैं बड़ी ही विपत्ति में पड़ा। घने वन में वन्य पशुओं की आवाजें आ रही थीं, परन्तु कहीं कोई मनुष्य नहीं था। मैं निरुपाय और चिन्ताग्रस्त होकर पुनः जिस पथ से आया था, मंदिर की ओर लौट पड़ा। आगे जाते ही कुछ चण्डी मंदिर यात्री दीख पड़े, उनके साथ ही नीचे उतरने लगा। सिद्ध अघोरी कामराज के आश्रम का दर्शन किया। नीलधारा में स्नान करके, तीन बजे तक आश्रम आ पहुँचा।

केशवानंद स्वामी।

स्वामी केशवानंदजी का साथ दिन-ब-दिन अच्छा लगने लगा। गुरु के आदेश से भारत के नाना स्थानों का पर्यटन कर साधु संत, धर्मार्थियों की सेवा करना इनका व्रत है। अतः इनमें किसी प्रकार की सांप्रदायिकता नहीं है। किसी भी वास्तविक धर्मार्थी को देखकर, उसकी सेवा में जुट जाते हैं। कई समृद्ध, संपन्न व्यक्तियों ने इनका आश्रय ग्रहण किया है, अतः हजारों का दान भी आता है। स्वामीजी मुक्त हस्त से साधु सेवा में व्यय करते हैं। ब्रह्मचारियों पर इनका विशेष ध्यान है, ताकि वे निःसंकट हो साधना करें। लोक आवास पास हों, ऐसे स्थान दुर्लभ हैं, अतः वे दामपाड़ को ब्रह्मचारियों के लिए उत्कृष्ट निवास स्थल मानते हैं। सुना है, इस स्थान को खरीदकर आश्रम बनाने के लिए आवेदन भी स्वामीजी ने किया है। उसकी स्वीकृति भी मिल गई है। मूल्य निर्धारित होते ही क्रय कर, आश्रम बनवाना प्रारंभ कर देंगे।

मेरे साधन-भजन, दिनचर्या, क्रियाकलाप के बारे में गोपनीय रूप से अनुसंधान करके स्वामी केशवानंद मुझसे बड़े संतुष्ट हैं। मुझे देखते ही स्थायी रूप से आश्रम में आसन लगाने का आग्रह करते हैं। इस आश्रम में वरदानंद एवं ज्ञानानंद बह्मचारी भी रहेंगे। स्वामीजी ब्रह्मचर्य आश्रम बनवाकर, देखरेख एवं कर्तव्य का भार मुझे सौंपना चाहते हैं। आवश्यक व्यय वे ही वहन करेंगे। मैंने उनसे कहा-

आत्मानंद दीर्घकाल से यहाँ रहते आ रहे हैं, आप उन्हें ही यह कार्य भार क्यों नहीं सौंपते? स्वामीजी ने कहा-आप इतने दिनों

पास रहकर भी क्या उनकी प्रवृत्तियाँ नहीं समझ पाए। मैंने कहा-मैं तो तीन-चार दिनों में ही जान गया था। यहाँ मैं कुछ दिन और भी रह पाऊँगा या नहीं इसमें संदेह है। यह व्यक्ति बड़ा भजन-विरोधी है। स्वामीजी ने कहा-क्या आप पर कोई दुर्व्यवहार किया है? मैंने कहा-मेरा क्या करेगा, पर शराब पीकर, स्त्रियों के साथ रातभर मतवाला हुआ रहे, ऐसा व्यक्ति क्या ब्रह्मचर्य आश्रम में रहने योग्य है? स्वामीजी सुनकर अवाक् रह गए। मैंने उन्हें आत्मानंद के कमरे की तलाशी लेने को कहा। स्वामीजी ने ऐसा किया और दो शराब की बोतलें निकाल लाए। आत्मानंद को स्वामीजी ने बहुत डाँटा और यह भी धमकी दी कि यदि वे मेरे आदेशानुसार आचरण न करें तो उन्हें यहाँ से हटवा देंगे। केशवानंदजी ने मेरे नाम से विशाल भंडारा देकर उत्कृष्ट सामग्रियों द्वारा हरिद्वार और कनखल के साधुओं को निमंत्रित करके, प्रचुर मात्रा में तृप्तिपूर्वक खिलाया। साधुओं से मेरा परिचय करवाया। स्वामीजी ने मुझे एक जोड़ी धोती, एक सेर घी, तेल, दीपक, भोजन पकाने का पात्र लाकर दिया। ज्ञानानंद, वरदानंद को आश्रम में रखकर, अन्य शिष्यों सहित वे मेरठ की ओर चल पड़े।

साधन के प्रयास में निष्फलता: वस्तु उनके हाथ में: दाता वे ही हैं।

ज्येष्ठ माह समाप्त हो आया। यहाँ आकर मैंने सोचा था, ऋषि-मुनियों की पवित्र योगभूमि मायापुरी, हरिद्वार आया हूँ। यदि शरीर स्वस्थ रहे, मनोनुकूल निर्जन उपयुक्त स्थान मिले, कोई साधन विघ्नकारी विपत्ति न उपस्थित हो, तो मन की साध पूरी करके खूब

साधन करूँगा। ठाकुर की कृपा से स्वास्थ्य ठीक है, कुटीर भी भजन-अनुकूल है, सुंदर शीशम वृक्ष के मूल में यह निर्मित है। बाहर से कोई उपद्रव नहीं-फिर भी भजन में मन नहीं लग रहा। भजन में मन कैसे लगे? मन क्यों नहीं लगता? आदि कारण खोजने पर, कोई कारण मूलतः नहीं मिला। ठाकुर के मुख से सुना था कि साधक जीवन में अहैतुक जलन हुआ करता है, समय-समय पर वह इतना विकट हो जाता है कि असहनीय हो जाने पर, साधक आत्महत्या करने को तत्पर हो जाता है। इस जलन से सभी कामना-वासनाएँ एवं अभिमान जलकर भस्मीभूत हो जाते हैं। कुछ दिनों से देख रहा हूँ, चित्त अत्यन्त विक्षिप्त है। नाम में आनंद नहीं आता, नाम कर भी नहीं पाता। नाम करने के साथ-साथ ज्वलन और परेशानी होने से खीज उठता हूँ। अस्थिर होकर आसन छोड़कर उठ जाता और गर्म साँसे लेते हुए दिन बीतता है। कभी उत्साहपूर्वक नाम करने आसन पर बैठता हूँ, पर पाँच-सात मिनटों में मन न जाने कहाँ चला जाता है। नाम भूल जाता हूँ और बड़ी देर बाद चेतना आती है। पुनः नाम करना आरंभ करता हैं। ऐसा क्यों होता है, कुछ समझ नहीं पाता। कभी ऐसा भी होता है, कि मन अत्यन्त खिन्न है जानकर निश्चित कर लेता हूँ कि आज किसी तरह नियमित संध्या और न्यास समाप्त कर लूँगा, नाम जपादि न हो पाएगा, लेकिन आसन पर बैठते ही उठने का सामर्थ्य नहीं रह जाता। चित्त अपने आप नाम व ध्यान में अत्यन्त एकाग्र हो जाता है। सारा दिन ठाकुर कृपा करके मुझे आँसू में डुबाए रखते हैं। जरा सिर भी नहीं हिला पाता। ऐसा क्यों होता है, कुछ समझ नहीं पाता। बिना यत्न के अस्थिर चित्त, अकस्मात् स्थिर एवं प्रफुल्लित हो

उठता है। कभी उत्साह पूर्ण सरस हृदय, बिना कारण अचानक ही नीरस और शुष्क हो जाता है, हेतु कुछ भी नहीं समझ पाता। पर यह अवश्य प्रतीत होता है, कि समय-समय पर एक निरपेक्ष महाशक्ति के प्रभाव से ही यह सब घटित हो रहा है। बार-बार परिचय पाकर भी उस महाशक्ति पर पूर्ण निर्भर नहीं हो पा रहा हूँ। संग्राम करता और पराजित हो जाता हूँ। स्वयं कुछ भी नहीं करूँगा निश्चय करता हूँ, तो मन में अपने-आप भीतर ही भीतर पुनः प्रयास करने का उत्साह और उद्यम उमड़ पड़ता है, प्रयास न करने का कोई उपाय नहीं और करके भी कोई लाभ नहीं होता। ठाकुर लोभनीय वस्तु सामने रखते हैं, उसे पाने के लिए हाथ बढ़ाकर पा लेने का लोभ, उत्साह भी देते हैं और हाथ बढ़ाते ही तुरंत हटा भी लेते हैं। वस्तु उन्हीं के हाथों में है-दाता वे ही हैं। वे न देना चाहें, तो मैं कहाँ से पाऊँगा। ठाकुर मुझे लेकर यह खेल खेल रहे हैं और रुलाकर आनंद पा रहे हैं-ऐसा सोचकर भी कभी-कभी आनंद ही मिलता है। जय गुरुदेव!

विचार बुद्धि से निर्जला एकादशी भंग एवं अनुताप।

यहाँ आने पर, एक बार भी निर्जला एकादशी नहीं कर पा रहा हूँ। किसी न किसी बहाने वह भंग हो ही जाया करती है। आज अवश्य निर्जला एकादशी रखूँगा, ऐसा संकल्प करके आसन पर बैठकर नाम करने लगा। संध्या के समय शरीर अवसन्न हो गया, भूख से अस्थिर हो उठा, नाम भी बंद हो गया। दूसरे दिन इस समय भोजन भी नहीं बना पाता। उपवास तो कल है और आज उपवास

के नाम से ही शरीर अवसन्न होने लगा। यह क्या विचित्र संस्कार है। इस समय आहार की प्रवृत्ति के साथ ही यह विचार भी आ गया। सोचने लगा-इस प्रकार उपवास से लाभ ही क्या? भगवान की उपासना करने के लिए ही उपवास होता है। इस प्रकार उपवास से तो भजन में विघ्न ही पड़ रहा है। भूख से अस्थिर हो रहा हूँ, नाम ही नहीं चलता। कल सारा दिन न खाकर तो और भी उठने की शक्ति न रहेगी। सारा दिन वृथा जाएगा। एक दिन उपवास करने पर यदि दो दिन पड़े रहना हो, तो इसकी अपेक्षा भरपेट खाकर स्वस्थ शरीर से साधन-भजन करना श्रेयस्कर है। भजन विरोधी जो कुछ हो, वह कैसा भी कल्याणकारी क्यों न हो, त्याज्य और पाप ही है। यह सोचकर मैंने चाय बनाई। चाय पीकर कुछ स्वस्थ हुआ।

निर्जला एकादशी से कल्याण साधित होता है, ऐसी आस्था रहती तो मैं उसे भंग नहीं करता। पंद्रह दिनों की पापराशि दग्ध करने के लिए भगवत् विधान से दुर्लभ एकादशी जीव के भाग्य में आती है। मैं चतुर और बुद्धिमान होता, तो यह अवसर कभी नहीं खोता। ठाकुर जिससे तुम्हें आनंद मिले, ऐसी शास्त्रानुगत सुबुद्धि मुझे प्रदान करो।

उबलती दाल गिरने से जलन: प्रार्थना से निवृत्ति।

कल केवल चाय पीकर एकादशी का उपवास किया था। आज चाय और बेल का शर्बत लिया। संध्या के बाद खूब भूख लगी। इच्छा हुई दाल-चावल बनाकर भरपेट भोजन करूँ। लोभवश कुछ अधिक मात्रा में दाल धूनी पर चढ़ाया। दाल पकते ही उतारते समय

बर्तन हाथ से गिर पड़ा। उबलती दाल मेरे हाथ,पाँव, मुँह और छाती में गिरी और खूब जलन होने लगी। मैं जय गुरुदेव! जय गुरुदेव! कहकर बैठ गया। मैंने अग्निदेव से कहा-हे अग्नि! यह तुमने किस अपराध की सजा दी। भूख के मारे दाल-चावल की मात्रा कुछ अधिक लेकर, मेरे ठाकुर के आदेश का उल्लघंन कर रहा हूँ, देखकर, क्या तुमने सजा दे दी? रोज तीन बार घी बेल पत्ते की आहुति तुम्हें देता हूँ, तेज वृद्धि करता हूँ, उस तेज का मुझ पर ही प्रयोग कर बैठे। मेरे एक दिन के एकमात्र अपराध को क्षमा न कर सके। मैं जलन कैसे सहूँ। उसी समय मुझे विचार आया-अग्नि और कौन हैं, मेरे ठाकुर ही तो अग्नि स्वरूप हो मेरी आहुति लेते हैं। सारे तेज के आधार तो वे ही हैं। मैंने ठाकुर का स्मरण किया और उनसे कहने लगा-ठाकुर करो, तुम्हारी कृपा को मैंने सजा मान लिया, मेरी रक्षा करो। आश्चर्य की बात एक ही मिनट जलन अपने आप शांत हो गई।

लोभ का फल: असत् परिग्रह से अशांति।

१ आषाढ़। मेरे आहार की सभी वस्तुएँ समाप्त हो गई। रामप्रकाश महंतजी के पास भिक्षा के लिए जाने का निश्चय किया। सुना है, हरिद्वार के सबसे प्रधान महन्त, नानकपंथी स्वामी केशवानंद आज भंडारा दे रहे हैं। कनखल, हरिद्वार के समस्त साधु वहाँ आमंत्रित हैं। आत्मानंद अपने साथ वहाँ जाने का मुझे बार-बार अनुरोध भी कर रहे हैं। मैं स्थूल भिक्षा के लिए रामप्रकाश महन्त के पास जा पहुँचा। आत्मानंद साथ थे। सोचा इससे भिक्षा अधिक मिलेगी, पर हुआ उल्टा ही। उन्हें देख महंतजी ने कहा-आप आश्रमधारी

संन्यासी हैं, आपके आश्रम में बड़े-बड़े भंडारे हुआ करते हैं। एक ब्रह्मचारी को एक मुट्ठी अन्न आप नहीं दे सकते, इन्हें भिक्षा करनी पड़ती है। आत्मानंद ने कहा-भिक्षा इनका व्रत है, मेरे भंडार से वस्तुएँ लेने पर इन्हें किसी प्रकार की असुविधा न होती। लेकिन ये तो लेते ही नहीं। रामप्रकाश महंत ने अन्य बार की तरह भिक्षा नहीं दिया। आत्मानंद को देखकर वे चिढ़ गए। आत्मानंद वहाँ से मुझे नाना प्रकार की वस्तुओं का लोभ दिखाकर केशवानंदजी के भंडारे में ले चले। मैं भी इसी आशा से सदाव्रत जा पहुँचा। लेकिन भाग्य वश वहाँ कुछ कचौड़ी और लडडू ही मिल पाये। एक वस्त्र भी मिला उसे लेकर मैं आश्रम लौट आया। राह में मन अपने आप खिन्न हो उठा और क्रोध का उदय होने लगा। तेज साँस चलने लगीं, नाम बंद हो गया। मन उद्विग्न और अस्थिर हो गया। मैंने सोचा अचानक यह सब क्या हो रहा है? कारण खोजने पर मैंने देखा भंडारे की वस्तु लेने की मेरी इच्छा न थी, केवल आत्मानंद के हठ के कारण लिया। इसी अपराध से मेरी यह दुर्दशा हुई। भंडारा सज्जन महात्माओं के नाम पर भले ही प्रदत्त हो, परंतु वितरणकारी व्यक्ति के असत् भावों से कलुषित होकर, ग्रहण करनेवाले को भी प्रभावित करता है। आश्रम पहुँचते ही सब वस्तुएँ मैंने आत्मानंद को दे दी। देते ही पुनः नाम पूर्ववत् चलने लगा, चित्त प्रफुल्लित हो उठा। जय गुरुदेव! इस प्रकार शिक्षा व दया करके मुझे न सिखाएँ, तो मेरा निस्तार ही कैसे हो सकेगा?

मन्त्र शक्ति।

आज संध्या करने आसन पर बैठा। एक व्यक्ति के चिल्लाने की

आवाज सुनाई पड़ी। बाहर जाकर देखा, एक व्यक्ति को बिच्छू ने डंक मार दिया है। वह कष्ट से छटपटाता जमीन पर चीखकर लोट रहा है। आत्मानंद तो सुनकर मजाक ही करने लगे। सुना है, पहाड़ी बिच्छू के काटने पर मृत्यु भी हो सकती है। दादा ने कहा था, कि इससे अधिक यंत्रणादायी विष का अब तक आविष्कार नहीं हो पाया है। आत्मानंद के आचरण से खिन्न होकर मैंने वरदानंद से कहा। वे तभी ओझा बुलाने चले। तभी आत्मानंद भी कनखल से एक ओझा ले आए। आश्रम पहुँचकर ओझा रोगी को एक बार भली भाँति देखा, फिर दस फीट दूरी पर जाकर, किसी पत्ते का रस जमीन पर निचोड़ा, साँस रोककर कुछ करने लगा। पहले ही दम में उसने जांघ से विष घुटने तक, दूसरे दम में घुटने से तलवे तक, तीसरे व चौथे दम में पूरा विष उतार दिया। रोगी संपूर्ण स्वस्थ होने लगा। उसकी यंत्रणा समाप्त हो गई। वह उठ बैठा। आधे घंटे बाद तो वह घर चला गया। ओझा कोई संभ्रान्त व्यक्ति नहीं, बल्कि मजदूर श्रेणी का साधारण व्यक्ति था। भगवान के राज्य में कितना कुछ है। साधारण व्यक्ति के पास जो मंत्रशक्ति और विद्या है, बड़े-बड़े पंडित, वैज्ञानिक भी उसके पास नहीं पहुँच पाते।

भीषण शुष्कता में भी ठाकुर की कृपावृष्टि: शालग्राम में नील-ज्योति।

सुबह शौच स्नानादि संपन्न कर आसन पर बैठा। बहुत यत्न करके भी मन स्थिर न कर पाया। न जाने मन क्यों अपने आप खिन्न हो उठा। बहुत प्रयत्न करके भी सरस भाव न ला सका। 'नाम' एक बोझ सा लगने लगा। ध्येय वस्तु भी न पा सका। नीरस

नाम को श्वास-प्रश्वास में प्रयुक्त करते-करते हैरान हो गया। श्वास कृच्छता का बोध होने लगा। सब छोड़कर चुपचाप आसन पर बैठा रहा। ठाकुर पर बड़ा क्रोध आया। किसी कारणवश मन खिन्न या विक्षिप्त हो, तो मन को समझाया जा सकता है नहीं तो ठाकुर की इच्छा से यह सब हो रहा है, ऐसा कहे बिना और क्या उपाय है? ठाकुर पर खीज आने लगी, न जाने क्षोभ से क्या-क्या कह बैठा। इसी समय मेरी दृष्टि शालग्राम पर पड़ी। शालग्राम का रूप देखकर मोहित हो गया। देखा शिला के कलेवर में नाना स्थानों पर गाढ़ी नीली ज्योति अति उज्ज्वल रूप से, जुगनू की तरह चमकती और विलीन होती जा रही है। इस ज्योति के दर्शन करते-करते मन सरस हो उठा। नाम भी अपने आप सरस व सतेज होकर, फव्वारे की तरह उठने लगा। ठाकुर की स्मृति से चित्त विह्वल हो गया।

छाया रूप दर्शन से खेद और आतंक: प्रार्थना-दर्शन मत दो।

२ आषाढ। आज सुबह से सारा दिन साधन-भजन में बड़ा ही आनंद आता रहा। ठाकुर के स्मरण से अश्रुपात होने लगा। स्वच्छ दिन के प्रकाश में आसमान में ठाकुर की स्पष्ट छाया आज बारंबार प्रकट हुई। छाया, आकार में ठाकुर के ही समान है। क्रमशः वह घनी, स्थूल और छोटी होती गई। मैंने आँख बंद करके प्रार्थना की- ‘ठाकुर ऐसा दर्शन मत दो। छाया दर्शन से मुझे डर लगता है, कि कहीं तुम प्रकट न हो जाओ। छाया को न देखकर, बार-बार दृष्टि इधर-उधर चंचल भाव से कभी आँखें बंद करता हूँ फिर खोलता हूँ ताकि यह दर्शन न हो। तुम्हारी छाया है, जानकर भी अवहेलना कर

रहा हूँ। ठाकुर इतनी कृपा करना कि मेरे मन में तुम्हारे प्रति विश्वास, प्रेम व भक्ति उत्पन्न हो। ऐसा न हुआ तो तुम्हारा आदर कैसे करूँगा। प्रेम भक्ति के बिना तुम्हारा दर्शन जो कि देव दुर्लभ है, मुझे छायाबाजी मात्र प्रतीत होगा। समय-समय पर तुम्हारे दर्शन की इच्छा अवश्य होती है, किन्तु हित-अहित के ज्ञान से नहीं, बल्कि हृदय के स्वाभाविक आकर्षण से होती है। हृदय की वस्तु को यदि जी भरकर प्यार न कर सकूँ, परम आदर की वस्तु अगर अनादर में चली जाय, तो ऐसे दर्शन से क्या लाभ? ठाकुर, तुम्हारा आदर कर सकूँ, ऐसी अवस्था न देकर दर्शन भी मत देना। मैं कितना भी क्यों न रोऊँ, तुम उसकी अवहेलना करना। मेरी तुम्हारे चरणों में यही प्रार्थना है। प्रार्थना के साथ साथ छाया अन्तर्हित हो गई, किंतु हृदय में विमल आनंद का अनुभव होने लगा। आज सारा दिन मानो एक दूसरे ही राज्य में रहा।

लोक सेवा से साधन में स्फूर्ति।

११ आषाढ़। आज रात तीन बजे जाग गया। खूब पानी बरस रहा है। कुछ देर आसन पर बैठकर नाम जप किया, झपकी सी आने लगी तो फिर सो गया। कुछ देर बाद वर्षा के जल के छींटे पड़ने से उठ गया। मूसलाधार वर्षा हो रही है। गुरुगीता पाठ करके कुछ देर तक ध्यान किया। नीलधारा से स्नानादि संपन्न कर आसन पर लौटा। वर्षा रुक गई। पर्वत का दृश्य बड़ा ही मनोरम है। नील पहाड़ के किनारे सटकर सफेद बादलों के झुंड उड़ रहे हैं। पर्वत की शोभा देखते आँख नहीं थकती। ठाकुर का कलेवर स्मरण कर, भाव विभोर होकर उस ओर ताकता रहा। चित्त प्रफुल्लित हो उठा।

आज एकादशी निर्जला करूँगा। आहारादि की कोई झंझट नहीं, ऐसा सोचकर मन में सुबह से ही आनंद और उत्साह है। आसन पर एकाग्रचित्त हो बैठा हूँ कि आत्मानंद एक गिलास दूध लाकर कहने लगा-दादा आज बड़ी ठंड है, चाय चाहिये। मैंने कहा-मैं निर्जला एकादशी रखूँगा, तुम लोग चाय बनाकर पी लो। उसने कहा-वरदानंद, ज्ञानानंद को तो चाय बनाना नहीं आता। आत्मानंद चला गया। मैंने भी सोचा आफत टली, फिर नाम जप करने पर पहले का भाव न ला सका, शुष्कता और जलन का बोध होने लगा। मैंने सोचा अचानक यह क्या हुआ? आत्मानंद को निराश कर देने पर तो ऐसा नहीं हुआ? यह विचार आते ही आसन से उठकर आत्मानंद की कुटिया में जा पहुँचा। वहां अपने हाथ से गरमा-गरम बढ़िया चाय बनाई। आत्मानंद, ज्ञानानंद, वरदानंद को देकर शेष एक गिलास चाय ठाकुर को निवेदन करने के लिये कुटिया ले आया। चाय निवेदन करते-करते ठाकुर की याद आई और रोना आ गया। चाय पीते हुए ठाकुर की स्मृति और नाम के आनंद से विभोर हो गया, ठाकुर की वह बात भर याद आने लगी। ठाकुर ने कहा था-**'एकबार कलकत्ते ब्राह्म समाज में उपासना के समय व एवं भक्ति की भावना नहीं आ रही थी। मन सूखी लकड़ी की तरह हुआ जा रहा था। क्या करूँ कुछ ठीक नहीं कर पाया, सो रास्ते पर निकल आया। राह पर एक कुली के चरणों में साष्टांग प्रणाम करने लगा। ऐसा करने के साथ ही हृदय सरस हो उठा। तब जाकर उपासना कर पाया। उपासना अच्छी रही। एक और भी दिन, शुष्कता से कुछ अच्छा नहीं लग रहा था, उपासना में भी मन न लगा। तुरंत दरबान को चिलम में तम्बाखू भर दिया तो**

मन सरस हो उठा और उपासना भी भली भाँति सम्पन्न हुई।' सुना है, किसी कारण से किसी के मन में कष्ट पहुँचानेवाले द्वारा भगवत् उपासना नहीं होती। भगवत् भक्त के सत् आचरण पर भी भ्रम से यदि कोई मन में कष्ट पावे, तो उसी क्षण उनकी उपासना का फल नष्ट हो जाता है।

वर्षा के प्रारंभ में विषमय गंगा: स्नान से विपत्ति।

१२ आषाढ़, दामपाड़ आश्रम। आज प्रातः साढ़े तीन बजे जाग उठा। देखा मूसलाधार वर्षा हो रही है। वर्षा में भीगने के डर से आसन व सोने का स्थान अलग कर रखा है। किन्तु भाग्यक्रम से यह सब व्यर्थ रहा, बिस्तर पर पानी टपकने लगा। सारा कमरा ही भीग गया। आसन के ऊपर किसी प्रकार आच्छादन करके, मैंने धूनी जलाई। होम, संध्या, तर्पण समाप्त कर धूनी पर चाय का पानी रखा। आज बाहर जाने की इच्छा नहीं है।

कल गंगा स्नान के समय एक साधु ने मुझे पुकारते हुए कहा था-ब्रह्मचारी इस समय गंगा में स्नान न करो। अभी तो गंगा का स्पर्श भी न करना अच्छा है, स्नान करने पर संकट में पड़ जाओगे। अभी गंगा रजस्वला है। मैंने सोचा इसका दिमाग खराब है, तभी गंगा स्पर्श करने को मना कर रहा है। मैं आराम से गंगा में उतरकर स्नान कर आया। तट पर आकर शरीर पोंछते समय देखता हूँ, सारे अंग में खुजली हो रही है, भयंकर खुजली बढ़ने लगी। तब मैंने साधु से जाकर कहा-भाई तुम्हारी बात न मानकर गंगास्नान करके, मैं संकट में पड़ गया हूँ, अब क्या करूँ बताओ। साधु ने मुझे सारे

शरीर में गोबर लीपकर, नीलधारा के पास एक बाँध में स्नान करने को कहा। वैसा करने पर कुछ स्वस्थ हो पाया। वर्षा के प्रारंभ में पर्वत का सारा मैल और कई विष घुलकर गंगा में जा गिरता है और जल विषाक्त हो जाता है, जिससे कई बीमारियाँ फैलने का भी भय रहता है। मैंने कहा-हमारे देश में तो वर्षा में गंगा का जल विषाक्त नहीं होता। साधु ने सुनकर कहा-गंगा बहती हुई धूप, हवा, मिट्टी से स्वच्छ होती चली जाती है। आज भी मेरे शरीर में कुछ फफोले जैसे चकत्ते फूल रहे हैं। घुटने व गर्दन में दर्द है, टांसिल भी फूल गए हैं। अब कुछ दिनों तक बाँध के जल के सिवा चारा नहीं। स्नान-आहार के लिये उसी पर निर्भर रहना पड़ेगा। बाद में गंगा का जल बाँध में मिल जाने पर, बड़ा ही संकट होगा। तब तो अभाव में शायद यह स्थान ही छोड़ना पड़ जाय।

विक्षिप्त उद्वेगपूर्ण मन: दूसरों के कल्याण कामना से चित्त स्थिर: गायत्री जप से अष्टदलपद्म स्थित केन्द्र में नीली ज्योति के दर्शन।

सुबह अधिक ठंड में निकलने का साहस न हुआ। आसन में बैठकर नाम करने लगा। नाम में मन न लगा। जोरों की वर्षा हो रही थी, बौछारों से कमरा भीगने लगा। मैं सारे शरीर में विभूति लगाकर कंबल ओढ़कर आसन पर जा बैठा। आच्छादन देने पर भी आसन पर पानी टपकना बंद न हुआ। पहाड़ की ओर देखता रहा, कितने ही भाव मन में आने लगे। हिमालय के उच्च शिखरों पर दृष्टि पड़ते

ही ऋषि-मुनियों का स्मरण हो आया। इस घोर वर्षा में भी कितने ही ऋषि-मुनि नग्नगात्र वृक्ष के नीचे बैठे, भगवत ध्यान में विभोर हैं। मुझे रोना आ गया। मैंने मन ही मन ठाकुर से कहा-'ठाकुर कितने ही योगी वर्षा में भीगते हुए, नयन मूँदे एकाग्रचित्त हो तुम्हारे दर्शन की इच्छा से न जाने कितना क्लेश सहन कर रहे हैं। तुम्हारी कृपा का कणमात्र पाने के लिए दिन-रात ध्यानमग्न हैं। तुम कृपा करो तो सर्वप्रथम उन पर ही करना। तुम्हारा पतितोद्धारण नाम जगत् में विजयी हो। मैंने तुम्हारा सर्वमंगलमय अनुपम रूप कई बार देखा है- मैं पूर्णकाम हुआ। जिन्होंने एक भी बार तुम्हारा चिंतन किया या नाम लिया हो, उन्हें दर्शन देकर सदा के लिये कृतार्थ कर दो। तुम्हारे भक्तों का आनंद देखकर त्रिभुवन धन्य हो जाय।' इस प्रकार प्रार्थना करते हुए मुझे न जाने क्या हो गया, बता नहीं सकता। लगभग बारह बजे तक ठाकुर ने मुझे अश्रुजल में भिगोए रखा। जय गुरुदेव! बारह बजे आसन से उठकर कमरा साफ किया, लकड़ियाँ चुन लाया, नीलधारा से जल लाया, बाँध का जल ही लाया। इन कार्यों में एक घंटा लगा। एक बजे से संध्या तक आसन पर रहा। होम के बाद ठाकुर ने बड़ी कृपा की। आज्ञाचक्र में ध्यान रखकर गायत्री जप करने लगा। बहुत दिनों के अभ्यास के कारण ही अष्टदल पद्म ही प्रकाशित हुआ। स्पष्ट समझने के लिए पद्म की पंखुड़ियाँ अलग-अलग गिनना चाहा, पर ऐसा नहीं कर सका। पंखुड़ियों के चारों ओर ज्योति की उज्ज्वलता से आँखें चौंधियाने लगी। मैं पद्म के बीचोबीच आधे इंच परिमिति वाले मण्डलाकार नीले चक्र में दृष्टि रखकर नाम करने लगा। देखा चक्र से नीली ज्योति विकीर्ण होती हुई झिलमिला रही है। कभी तो यह

शुभ्रज्योतिर्मय आकार धारणकर पुनः विलीन हो रही है। संख्या पूर्ण हो जानेपर गायत्री जप छोड़ दिया, ज्योति भी विलीन हो गई। संध्या तक नामजप, ध्यान में परमानंदपूर्वक समय व्यतीत हुआ।

ज्योति दर्शन के प्रयत्न में विफलता: वर्षा के तीन माह के लिए आहार संग्रह।

१३ आषाढ़। सुबह पाँच बजे नींद खुल गई। बड़ा आनन्द आया। शरीर अस्वस्थ है, गले में, गर्दन का दर्द बढ़ गया है। इतनी ठंड में बाहर जाने का साहस न हुआ। संध्या होम, चण्डीपाठ यथाविधि किया। लगभग आठ बजे शरीर और भी अवसन्न लगने लगा। मैंने सोचा कुछ बाहरी काम करने पर अच्छा लगेगा, इसलिए आसन छोड़कर उठा। आठ बजे घर साफ कर लकड़ियाँ लाया। बर्तन लेकर नीलधारा गया। पेट साफ न हुआ, सिर में भी भारी दर्द हो रहा था। रात को मच्छर काटने से फुन्सियाँ हो गईं, जो खुजला रही थीं। बड़ी बेचैनी से आसन पर लौट आया। आसन पर कुछ ही देर में स्वस्थ होने लगा। संध्या, होम समापन करके बारह बजे ही गायत्री जप करने लगा। मैंने सोचा, कल इस समय अष्टदल कमल के दर्शन हुए थे। मन को चक्र पर स्थिर कर जप करने पर आज भी दर्शन होंगे। मैं भरपूर कुंभक करने लगा। प्रत्येक दम में बारह बार गायत्री जप करता रहा। यह क्रम चार बजे तक चला। पूरे दम से कुंभक योग से नाम ध्यान व गायत्री जप करता रहा। पर आश्चर्य की बात कि कुछ भी दर्शन नहीं हुआ। चक्र, पद्म, ज्योति की कल्पना भी न कर पाया। मैं करूँगा, ऐसा सोचकर कुछ करने जाओ तो विफलता ही हाथ लगती है। यह ठाकुर की बड़ी कृपा है, मैं केवल

कृपा का फल भोग रहा हूँ, यह समझाने के लिये ही यह ठाकुर का खेल है।

प्रायः पाँच बजे वरदानंद ने मुझे बुलाया। उसके पास पहुँचते ही उसने कहा-हमें लगभग तीन-चार माह रहने के लिये जो भी वस्तुएँ प्रयोजनीय हैं, वे सभी लाई गई हैं। कल केशवानंदजी ने एक सम्पन्न मराठी सज्जन को हमारी पूछताछ के लिये भेजा था। उन्होंने सौ रुपये देकर खाने-पीने की सुव्यवस्था करने का वरदानंद से आग्रह किया। वरदानंद ने दो-ढाई महीने के प्रयोजन के योग्य चावल, दाल, आटा, घी आदि मँगाया। आपस में वस्तुएँ बाँट कर शेष रुपए सज्जन को लौटा देने से आत्मानंद को बड़ा दुःख हुआ। उसकी तो इच्छा और भी ऐंठने की थी। वर्षा आरंभ हो चुकी है। पुल का बाँध खोल देने पर हरिद्वार, कनखल जाने का कोई भी उपाय नहीं रह जाता, नाव भी नहीं चलती। जब तक फिर पुल का मार्ग नहीं खुलता, इसी दामपाड़ में रहना पड़ेगा।

वरदानंद ने मुझसे तीन माह के उपयुक्त वस्तुएँ लेने को कहा। मैंने भी आठ-नौ सेर आटा,पाँच सेर दाल, चार सेर शक्कर, पाँच सेर घी, नमक, मिर्च आदि वस्तुएँ ग्रहण की। ठाकुर ने कृपा करके सारा बंदोबस्त कर दिया, नहीं तो अवश्य ही अन्यत्र जाना पड़ता। संचित अन्न न रहने पर, जनसंपर्क विहीन होकर, दामपाड़ में वर्षा ऋतु में रहना संभव नहीं हो पाता।

मणिपुर चक्र में ध्यान का फल: क्रोध से नाम लुप्त।

वर्षा से बड़ी झंझट हो रही है। आज भी यथा समय नींद नहीं

खुल पाई। चार बजे जागकर भी बिस्तर छोड़ने का मन नहीं हुआ। तन्द्रावेश में भी नाम चलना बंद न हुआ। साढे पाँच बजे उठकर आसन पर बैठा। संध्या, होम, चण्डीपाठ के बाद गायत्री जप किया। आठ से दस बजे तक नामजप किया। अविराम कुंभक के साथ मणिपुर चक्र में स्थिर होकर नाम करने में बड़ा आनन्द आया। ठाकुर ने कभी-कभी इस केन्द्र में नाम करने को कहा था। इस चक्र में स्थिर हो, नाम जप करने से चित्त बहुत शीघ्र एकाग्र होता है, किंतु ठाकुर का ध्यान नहीं रहता। नाम के उत्पत्ति स्थल की ओर ध्यान अनुसंधान में व्यस्त रहता है। स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास की ओर ध्यान देने पर, वह अस्वाभाविक प्रतीत होने लगता है। कुंभक करने में बड़ा आराम बोध होने लगता है। इस चक्र में ध्यान के अभ्यास से संयम भी शीघ्र किया जा सकता है। सुना है, मुग्धकरी का विकास भी इसी चक्र में ध्यान के प्रभाव से ही होता है। दस बजे आसन छोड़कर उठा। ग्यारह बजे तक स्नान, शौचादि, बर्तन साफ करके आसन पर लौटा।

संध्या संपन्न कर, तीन सौ गायत्री जप करने में बारह बज गये। एक बजे तक पूजा व न्यास में लगा रहा। इस बीच न जाने मन कब किधर दौड़ पड़ा। जब सचेत हुआ, तो देखा कि मन में आत्मानंद, वरदानंद के प्रति क्रोध का उदय हुआ है। उद्वेग और क्लेश से भीतर जला जा रहा है। मैं अल्पाहारी हूँ, इसलिये मुझे कम घी, शक्कर दिया, यही उनका अपराध था। हाय रे दुर्भाग्य! मैं कहाँ तो पर्वत पर तपस्या करने आया हूँ। स्वभाव की हीनता तो जरा भी कम नहीं हुई।

वे ही कर्ता हैं। सब कुछ उन्हीं की इच्छा से जुट रहा है।

रात के अंतिम भाग से शाम छह बजे तक अति आवश्यक क्रियाओं को छोड़, आसन पर ही बैठा रहा। नाम ध्यान में सारा दिन बड़े आनंद में बीता। जालिम सिंह ने लिखा है, कि कल वे मुझसे मिलने आएंगे, एक डब्बा अच्छी चाय भी लेते आएंगे। इधर मेरी चाय भी लगभग खत्म हो रही थी, दो तीन दिनों के लायक बची थी। उनकी बदली सहारनपुर हो गई। यहाँ अब मैं एक आश्चर्यजनक बात यह देख रहा हूँ, मुझे जब जो कुछ प्रयोजन होता है, अपने आप ही इस जनहीन क्षेत्र में भी ठीक जुटता चला जा रहा है। जबकि इसके बारे में किसी को आभास में जानकारी तक नहीं देता। ठाकुर ने कहा था-**'जरा दूर जाकर रहोगे तो भगवान की कृपा और समझ पाओगे।'** मैं हर कार्य में ठाकुर का हाथ देखकर भी कोई निश्चित धारणा नहीं बना पाता। वे कर्ता हैं, पहाड़, पर्वत, वन जंगल में भी वे राजभोग रख सकते हैं। फिर वे चाहें तो आत्मीय स्वजनों के बीच, अट्टालिका में रखकर भी दीन-दुखी बना सकते हैं। उन्हीं की इच्छामात्र से सब कुछ हो रहा है, बाकी सब कुछ असार है। ठाकुर तुम ही सर्वेसर्वा, सर्व नियंता हो, इतना समझ पाते ही तो सारी अशांति, उद्वेग और विपदा से निस्तार पा सकता हूँ।

स्त्री जाति का संग व निसंग दोनों में समान बोध ही निरापद है।

१६ आषाढ़। प्रातः शौचादि के बाद आसन पर ग्यारह बजे तक

रहा। फिर चण्डीपाठ, गुरुगीता पाठ करके आसन से उठा। आज संख्यापूर्वक दस हजार जप किया। फिर बर्तन मांजकर, स्नान, आह्निक संपन्न कर आसन पर बैठा। लगभग पाँच बजे तक आसन पर रहा। बड़ा नीरस, शुष्कता में समय बीता। निश्चय कर लिया, अच्छा लगे या बुरा, नियमित समय तक आसन का कार्य करता ही रहूँगा। अच्छा न लगा तो नहीं किया-ऐसा ठीक नहीं।

आज दोपहर तीन बजे आँखें बंद किए आसन पर बैठा हूँ, इतने में कुछ युवती स्त्रियाँ बिना मेरी अनुमति लिए कुटीर में प्रविष्ट हो गईं। 'दण्डवत् स्वामीजी' कहकर वे आसन के सामने बैठ गईं। वे मुझे दुअन्नी, चवन्नी देने लगीं। मैं रुपए पैसे नहीं लेता, कहने पर भी वे नहीं मानीं। मैंने वह सब आत्मानंद को बुलाकर दे दिया। ये स्त्रियाँ पंजाबी थीं, उनका सौष्ठव व सौंदर्य असाधारण था। धमकाकर उन्हें भगा दूँ, ऐसा मन में विचार आया, लेकिन भीतर से बाधा भी आई। मुझे लगा, दंभपूर्वक किसी पर तेज प्रकाश करके क्लेश देकर, अपनी निष्ठा-रक्षा करने से तो गुरुदेव के श्रीचरणों का स्मरण करके, विपत्ति में नाम करते रहना अधिक कल्याणकारी है। स्त्री जाति से मिलकर हँसी मजाक, बातें करके मगन रहूँ यह जैसा काम है, उनके साथ नहीं बैठूँगा, नहीं देखूँगा, न तो उनके किसी विषय में पड़ूँगा, उनसे दूर, उनका संग त्यागकर एकान्त में बैठा रहूँगा, यह भी उसी प्रकार काम ही है। प्रकार भेद मात्र हो सकता है। स्त्री जाति का संग व निःसंग दोनों ही जब समान लगे तभी निरापद है, अन्यथा कामना-वासना से निष्कृति कहाँ मिली? साधारण मनुष्य भी स्त्रियों के सान्निध्य को खास महत्त्व नहीं देता, तो मैं ही क्यों उन्हें विषधर सर्प की भाँति मानकर उनसे दूर भागूँ। जब यही

अवस्था है, तो मैं निरापद ही कहाँ हो पाया? अपनी निष्ठा रक्षा करने के लिये दूसरों पर विद्वेष की सृष्टि हुई, तो उपकार की अपेक्षा हानि ही अधिक समझना होगा।

नाम की उत्पत्ति का स्थान नाभिचक्र।

१७ आषाढ़। एक दुःस्वप्न देखकर चार बजे जाग उठा। बारह सौ जप समापन करके आसन से उठा। शौचादि के बाद आसन पर लौटा। वरदानंद एवं ईश्वरानंद के साथ चाय ग्रहण की। आज शरीर अवसन्न एवं मन निस्तेज और उत्साहशून्य है। मैंने सोचा आज आसन में सिर्फ बैठना ही सार होगा। परन्तु गुरुदेव की अपूर्व कृपा। नाम करते-करते ध्यान जम गया। उसमें एकाग्र होने पर एक नयी अवस्था का अनुभव होने लगा। मैंने देखा नाभिचक्र से नाम सूक्ष्म स्वर में स्पष्टतः अपने आप उठ रहा है। इसके साथ श्वास-प्रश्वास की वायु का कोई सम्पर्क नहीं। यह सम्पूर्ण स्वतंत्र है। इतने दिनों तक श्वास-प्रश्वास की वायु के साथ नाम करते रहने से, वह वायु से संयुक्त, वायु का ही प्रकार हो-ऐसा लगता था। परन्तु आज देखता हूँ नाम एक स्वतंत्र, अत्यन्त सूक्ष्म, किंतु कोई सारवान वस्तु है। उसका स्वरूप निर्णय करना असंभव है। मन वहाँ प्रविष्ट नहीं हो पाता। समय-समय पर देखता हूँ, कुंभक के समय आभ्यन्तर स्थित वायु ही नाम को चलाता है। आज अनुभव हो रहा है, नाम एक अत्यन्त सूक्ष्म स्वतंत्र वस्तु है, वायु बाहर की स्थूल वस्तु है। वायु के साथ संयुक्त होकर नाम वायु की चंचलता के साथ उसी प्रकार चलता है। यह भी अनुभव कर पा रहा हूँ, कि नाम का उत्पत्तिस्थल नाभिचक्र है, जहाँ प्रवेश नहीं कर पाता हूँ। गहन अज्ञात् स्थान से

वायु से युक्त होकर नाम उसी प्रकार से बाहर आता है जैसे भँवर में जलबिम्ब उठता है। अज्ञात स्थान से जप की झंकार उठती है। हम वास्तविक रूप से नाम नहीं करते, उसकी ध्वनि मात्र सुनते हैं। श्वास-प्रश्वास की वायु इसे सुनने में सहायता करती है।

त्रिसंध्या किस प्रकार करता हूँ।

१९ आषाढ। श्रीमद् ब्रह्मानंद स्वामी के पास सन्ध्या-क्रम सीखकर रोज त्रिसन्ध्या करता हूँ। संध्या उपासना के समय ठाकुर मुझे अनिवर्चनीय आनंद दे रहे हैं। प्रातः संध्या करने के पहले गायत्री, न्यास करके ठाकुर का चरणामृत ग्रहण कर, आचमन करता हूँ, फिर अपामार्जन करके 'ॐकारस्य ब्रह्म ऋषि' इस मंत्र को ठाकुर की स्तुति मानकर पाठ करता हूँ। इस समय ऐसा प्रतीत होता है। जैसे ठाकुर सामने बैठकर सब सुन रहे हैं। इसके बाद बारह बार प्राणायाम करके, 'ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः' इत्यादि मंत्रों के प्रत्येक शब्द में गुरुदेव की रूप वर्णना है, सोचकर मणिपुर चक्र में ठाकुर के जो कृष्ण वर्ण का रूप दर्शन करता हूँ, उसका ध्यान कर, कुंभक में दो बार संपूर्ण मंत्र स्मरण करता हूँ। इस प्रकार बारह बार कुंभक में चौबीस बार मंत्र पाठ करता हूँ। तदनन्तर आज्ञाचक्र में ठाकुर की जिस शुभ्रमूर्ति का दर्शन किया है, उसका ध्यान प्रत्येक कुम्भक में तीन बार मंत्र पाठ करके करता हूँ। इस प्रकार बारह बार कुंभक में कुल छत्तीस बार मंत्र पाठ हो जाता है। इस प्रकार मानस में विभिन्न चक्रों में ठाकुर को स्थापित करके मंत्रपाठ एवं ध्यान में बड़ा ही आनंद आता है। 'अपोहिष्ठेति सिन्धु द्वीप ऋषि' मंत्रपाठ कर ठाकुर सारे जल में मिले हुए हैं, सोचकर सारे अंगों में छिड़क लेता हूँ।

आचमन में ठाकुर जल सहित भीतर जा रहे हैं, सोचता हूँ। अघमर्षण मंत्र को ठाकुर की स्तुति मानकर अंजलि पूर्ण जल के साथ ठाकुर को दाहिनी नासिका से आकर्षित करके ध्यान में भीतर के पापपुरुष को इस जल में खींचकर, बायीं नासा से निष्कासित कर ठाकुर के परम पवित्र चरणों में स्थापित करता हूँ। अघमर्षण मंत्र में-जल में पापपुरुष मिल गये हैं सोचकर, तीन बार पत्थर पर फेंककर वध करना पड़ता है। मैं पहले ऐसा ही करता था, पर मुझे कष्ट होता था। पापपुरुष महाअपराधी और अनिष्टकारी होते हुए भी वध्य नहीं है। सभी भगवान का सृजन है, अतएव किसी का वध नहीं करना चाहिये। ये भी उन्हीं की लीला के सहायक हैं। इसलिए भगवान के अत्याचारी पुत्र को भी शांत भाव से उन्हीं के चरणों या गोद में अर्पण कर देता हूँ। ठाकुर का स्तवन मान कर ही 'उदत्तमित्यस्य' मंत्र पाठ करता हूँ। आज्ञाचक्र में गुरुदेव का ध्यान कर, कुंभक में एक सौ आठ बार गायत्री जप करता हूँ। शेष सभी मंत्रों को ठाकुर की ही रूप वर्णना मानकर, आवृत्ति करके ही संध्या सम्पन्न करता हूँ। संध्या आरंभ से अंत तक अक्षरशः ठाकुर के निर्देश से करता हूँ, मानस में ठाकुर के रूप को सामने रखकर मुझे जो आनन्द मिलता है, उसे मैं प्रकट नहीं कर सकता। संध्या के एक भी शब्द, एक भी मंत्र का तात्पर्य मैं नहीं जानता। चौदह शास्त्र और अठारह पुराण मेरे ठाकुर के ही अंग-प्रत्यंग का वर्णन हैं, ऐसा मानता हूँ। शास्त्र ग्रंथ पाठ, मंत्र की आवृत्ति से इष्टमूर्ति का ही विकास होता देख रहा हूँ। धन्य है गुरुदेव! कहाँ से लाकर मुझे कहाँ रखा है।

चित्त की एकाग्रता से श्वास-प्रश्वास की गति का अनुभव।

२० आषाढ़। रात को बारह बजे नींद खुल गई। अच्छी नींद नहीं आई। कभी जागकर, कभी तन्द्रावेश में नाम करते हुए सवेरा हो गया। यथाविधि संध्या, होम, न्यास पूजा समापन कर लिया। नाम में चित्त ऐसा तल्लीन रहा कि दोपहर बारह बज गये पर आसन छोड़ने की इच्छा न हुई। श्वास-प्रश्वास में नाम करते हुए चित्त इतना आविष्ट हो गया कि बाहर की स्मृति विलुप्त हो गई। इसके बाद प्राकृतिक श्वास-प्रश्वास का शब्द भी विचित्र लगने लगा। स्पष्ट अनुभव होने लगा, मानो प्रत्येक श्वास-प्रश्वास आंधी-तूफान सा हो। श्वास की गतिरोध करने की प्रबल इच्छा हुई। चित्त की एकाग्रता के साथ-साथ स्वाभाविक कुंभक होने लगा। लेकिन पंचेन्द्रियों के द्वार रुद्ध न होने पर यथार्थ कुंभक नहीं होता। समस्त इन्द्रिय छिद्रों द्वारा देह के भीतर प्रविष्ट वायु की स्वाभाविक गति के घात-प्रतिघात से कुंभक अवस्था में भी चित्त विक्षिप्त और तरंगित होता है। देखता हूँ, कुंभक काल में मन को श्वास-प्रश्वास वर्जित एकांत स्थान में अवस्थित करने पर भी, स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास ही वहाँ प्रविष्ट होने का एक मात्र पथ है। ठाकुर के मुख से सुना है कि-**'चित्त स्थिर हो जाने पर, शरीर की शिरा व धमनियों के गंगा की धारा के समान रक्तप्रवाह की कल-कल ध्वनि सुनी जा सकती है।'**

नाम व नामी एक ही हैं।

आज साधन करते समय सोचा-महापुरुषों से कई बार सुना है, नाम व नामी एक ही हैं। इसका अर्थ क्या है, नहीं समझ पाया।

इतना अवश्य समझ पाया हूँ कि प्रत्येक शब्द ही एक वस्तु का निर्देशक है। शब्द के उच्चारण के साथ ही वस्तु मानो सामने आ जाती है, जैसे जल कहने पर 'ज' एवं 'ल' ऐसा अलग-अलग कोई नहीं सोचता, बल्कि तरल पदार्थ 'जल' की ओर ही सबका ध्यान जाता है। उसी प्रकार प्रत्येक शब्द का तात्पर्य एक न एक वस्तु होती है, उसी के निर्देश के लिए शब्द होता है। लोटा, कटोरी, भात, रोटी कहते ही इन वस्तुओं का भी स्मरण हो आता है। इष्ट नाम जप में भी उसी प्रकार जोता है, इष्टनाम स्मरण मात्र से ही, उनका स्मरण हो, तो नाम जप सार्थक है। भगवान ने कहा है-

ॐ मित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरण।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमांगतिम्॥

भगवान को स्मरणपूर्वक जप की ही विशेषता बताई गई है। सोचता हूँ, नाम के साथ ही इष्टमूर्ति का स्फुरण होने पर ही नाम व नामी एक हो जाते हैं। अब इसके अलावा दूसरा कुछ नहीं समझ रहा हूँ।

शालग्राम के श्रीअंग में अद्भुत स्वेदबिंदु।

२२ आषाढ। आज सुबह गंगा तट पर एक सुंदर, काला सुगोल, चपटा प्रस्तर खंड जिसके चारों ओर जनेऊ के समान सफेद धारियाँ वेष्ठित हैं, देख पाया। देखकर बड़ा ही अच्छा लगा। मैंने सोचा ये भी तो चक्रधारी स्वाभाविक सुंदर शिला हैं, ले जाकर पूजा करने में क्या दोष है? उन्हें लाकर शालग्राम के पास ही रख दिया। आसन के नियमित कार्य में लगा हूँ। इतने में एक ब्राह्मण ने आकर एक उत्कृष्ट चाय का डब्बा और शालग्राम चक्र देते हुए कहा-बाबू

जालिम सिंह ने आपके लिये भेजा है। शालग्राम देखकर मैं बड़ा ही संतुष्ट हुआ। इतने दिनों जिनकी पूजा की, उन शालग्राम से ये अधिक सुश्री है, इनकी ही पूजा करूँगा सोचकर उन्हें भी शालग्राम के साथ ही रख दिया। गंगा से जो शिला मिली थी, उन्हें चिकना करने के लिए घी के पात्र में डुबा रखा है। पूजा हो चुकी थी, सो जालिम सिंह द्वारा भेजे गए शालग्राम की कल से पूजा करूँगा, ऐसा सोचकर रख दिया। साधन करते हुए शालग्राम से कहने लगा- आगामी कल मैं तुम्हें गंगा के पवित्र जल में विसर्जित कर दूँगा। बहुत दिनों तक तुममें मैंने अपने ठाकुर की पूजा की। ठाकुर ने कृपा करके तुम्हारे कलेवर में अपनी कई विभूतियाँ भी दिखलाईं। तुम्हारा शरीर ज्योतिर्मय अणु-परमाणुओं से बना है-यह भी मैंने देखा है। किंतु मैं क्या करूँ? मैं तो अपने ठाकुर को सर्वोत्कृष्ट स्थान में ही स्थापित करूँगा न? जालिम सिंह का भेजा हुआ शालग्राम अधिक सुंदर है। उसी में कल से ठाकुर की पूजा किया करूँगा। इतने दिनों पूजा करके भी तुम्हारे ऊपर मेरी श्रद्धा-भक्ति या आकर्षण नहीं हो पाया। भगवत् इच्छा से जब ये शालग्राम पधारे हैं, तो शायद उसी में भगवान की पूजा करना ही उनका अभिप्राय हो। इस प्रकार कहकर स्थिर होकर नाम करने लगा। लगभग ढाई घंटे बाद शालग्राम की ओर देखकर अवाक् रह गया। कमल के पत्ते में ओस की बूँदों की भाँति शालग्राम के सारे शरीर में पसीने की बूँदे उभर आई हैं, मैने तुरंत उन्हें हाथों में उठा लिया, देखा किसी बूँद से कोई भी बूँद जुड़ी नहीं है। खूब छोटे-छोटे असंख्य जल के बिन्दु शालग्राम के शरीर में कैसे आये, इसकी खोज करने लगा। सूखे आसन पर शालग्राम बैठते हैं। तुलसी का पत्र भी आधे घंटे में सूख

जाता है। ग्यारह बजे का समय, तेज धूप, कमरे के भीतर व बाहर गर्मी है, ऐसे में शालग्राम पर जलबिंदु कहाँ से आए? इनके पास ही जालिम सिंह द्वारा भेजे गए शालग्राम भी रखे हैं, पर उनपर कोई जल कण नहीं है, शायद इनके विसर्जन कर, दूसरे शालग्राम की पूजा की बात सुनकर उन्हें कष्ट हो रहा है, जिसे वे इस प्रकार प्रकट कर रहे हैं। मैंने शालग्राम को शीतल जल से धोकर, पोंछकर आसन पर रखा और कहने लगा-शालग्राम मेरा संकल्प सुनकर तुम्हें कष्ट हुआ? मैं तुम्हारा आश्रय कभी नहीं छोड़ूँगा। दूसरे शालग्राम भी जैसे हैं, वैसे ही रहेंगे। पूजा मैं तुम्हारी ही करता रहूँगा। नए शालग्राम चैतन्ययुक्त हैं, इसका प्रमाण तो नहीं मिला। यदि मिले तब देखा जायेगा।

ग्यारह बजे आसन से उठकर लकड़ी लाकर, बर्तन साफ कर, स्नान, ध्यान, संध्या संपन्न कर बारह बजे आसन पर बैठा। आसन पर बैठते ही शालग्राम को देखता हूँ मेरे पहले वाले शालग्राम तो ठीक हैं, लेकिन जालिम सिंह द्वारा भेजे गए नए शालग्राम का कलेवर पसीने से तर-बतर हो गया है। असंख्य स्वेद बिंदु उन पर उभर आई हैं। मैंने उन्हें भी गंगाजल से स्नान कराया, चंदन सहित तुलसी पत्र से उनकी पूजा की और सिंहासन पर रख दिया, अब दिन भर किसी शालग्राम को पसीना नहीं आया। इस घटना का कारण तो कुछ भी समझ नहीं आया। मेरी प्रकृति है, किसी घटना के पीछे कारण का अन्वेषण करना। कारण मिल जाने पर ही संतुष्ट हो पाता हूँ। लेकिन इन सबका कारण सोचने में विद्या, बुद्धि काम नहीं आती, केवल अवाक् होता जा रहा हूँ।

स्वामी शिवानंद एवं उनके सुलक्षण युक्त शालग्राम।

आज एक तेजस्वी, सौम्य, परम नैष्ठिक ब्रह्मचारी ने मेरे आश्रम में आकर आसन लगाया है। ब्रह्मचारी शिवानंद की आयु मुझसे कुछ अधिक है। वे महाराष्ट्र के हैं, उन्हें देखकर बड़ी श्रद्धा हुई। उनकी बातों से ज्ञात हुआ कि उनके पास भी एक सुलक्षणयुक्त शालग्राम शिला है। वे इनकी नित्यपूजा करते हैं। इन्हें गण्डकी नदी के किनारे आठ कोस स्थान घूमकर इन्होंने पाया था। एक शिला और भी थी, जिसे एक ब्रह्मचारी ने चार साल साथ रहकर सेवा द्वारा संतुष्ट करके हथिया लिया। ये उनसे भी उत्कृष्ट हैं, इसलिये इन्हें अपने पास रखते हैं। मेरे आग्रह करने पर शिवानंदजी ने मुझे भी शालग्राम का दर्शन कराया। मैं अवाक् रह गया। ऐसा सुगठित, सुन्दर, सौष्ठव पूर्ण शालग्राम अपने आप कैसे बनता है? निपुण शिल्पी भी इतना सुंदर, त्रुटिहीन रूप बना नहीं सकता। नीलाभ-कृष्णवर्ण सुगोल ये शालग्राम मानो अपने तेज से ही उज्ज्वल हुए रहते हैं। इतने चिकने कि सामने की वस्तु की परछाई भी इन पर पड़ेगी। मैने शिवानंद से कहा-आपके शालग्राम के दर्शन से मैं मुग्ध हो गया। इसी प्रकार का शालग्राम मैं कैसे पा सकता हूँ, क्या आप बता सकते हैं? शिवानंद ने कहा-जब आपका शालग्राम के प्रति इतना अनुराग है, तो आपने शालग्राम पा ही लिया समझिए। एक सप्ताह में ही इसी के अनुरूप शालग्राम मैं आपको ला दूँगा। मैंने कहा-गण्डकी नदी तो बहुत दूर है। आप किस प्रकार शालग्राम जुटा पाएंगे? यदि न मिले तो क्या करेंगे। आपके आशा वाक्य मेरे भाग्य में क्या विफल हो जाएंगे।

शिवानंदजी ने कहा-मेरा कहा असत्य न होगा। यदि न मिल पाए, तो मैं अपना ही शालग्राम आपको दे दूँगा। शिवानंद का आश्वासन पाकर बड़ा ही आनंद आया। मैंने समझ लिया कि ठाकुर मेरी आकांक्षा सोलह आने पूर्ण करेंगे। शिवानंद के यथार्थ गुणों की प्रशंसा करते हुए कुछ बातें करने पर ही उनके अन्तःकरण के सद्भाव प्रकट हो उठे। संतुष्ट होकर शिवानंद ने कहा-गुणीदादा यह जानो कि शालग्राम तुमने पा लिया है।

अद्भुत स्वप्न: ठाकुर का चरणामृत पान।

शेष रात्रि को उठकर सिर भारी लगने लगा। शरीर अवसन्न है, ज्वर आया है। मैंने सोचा भीगने के लिए ही रोगों की उत्पत्ति हुई है। जहाँ भी क्यों न रहूँ भाग्य में भोग रहे तो रोग होगा ही। आहार, चलना, फिरना, सभी प्रकार की सावधानियाँ रखनेवाले भी तो रोग भोगते ही हैं। इसके लिये नित्यक्रियाओं में बाधा क्यों डालें। प्रातः स्नान व आह्निक किया। दो-तीन घंटों में शरीर स्वस्थ लगने लगा।

रात को एक सुंदर स्वप्न देखा। उसकी स्मृति से सारा दिन आनंद और स्फूर्ति में बीता। स्वप्न इस प्रकार है-गेंडारिया आश्रम के पूर्व कमरे में गुरुभाईयों के साथ बैठा हूँ। ठाकुर का स्मरण आते ही उन्हें साष्टांग प्रणाम करने गया। ठाकुर ने कहा-**'चरणामृत पान करो।'** मैंने कहा-चरणामृत कहाँ है? मैं उठने की कोशिश में था कि ठाकुर ने मेरा सिर खींचकर अपने चरणों में रखते हुए कहा-**'अंगूठा चूसकर चरणामृत पान करो।'** मैं भी उनके अंगूठे को चूसने लगा। दूध के समान स्वादवाला रस मुँह में भरने लगा। कुछ देर तृप्तिपूर्वक पान करके मैं उठ बैठा। अवाक् होकर ठाकुर की ओर देखता रहा।

ठाकुर ने कहा-**'कैसा पान किया? चरणामृत अमृत होता है, इसमें अब कोई संदेह है?'** मैंने कहा-अभी है। संपूर्ण निःसंदेह नहीं हो पाया। ठाकुर ने मेरी बात सुनकर, पुनः मेरा सिर चरणों पर रखकर कहा-**'फिर से चूसो, खूब चूसो।'** मैंने मुँह भर-भरकर सुस्वादु, सुगंधित चरणामृत का पान किया। पान करते हुए निद्रा भंग हुई। स्वप्न का भाव सारे दिन बना रहा। इससे दिन बड़े आनंद से बीता। चरणामृत का न तो मैं गुण जानता हूँ, न कोई कल्पना की है, किंतु ठाकुर के चरणामृत पान से जो आनंद आया, उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। सारा दिन चित्त सरस व प्रफुल्लित रहा। ठाकुर की स्मृति पाँच मिनट के लिए भी विलुप्त न हुई। अहा! कब मेरा ऐसा सौभाग्य होगा कि प्रत्यक्ष ठाकुर का चरणामृत पान कर धन्य हो जाऊँगा।

रुद्राक्ष में शालग्राम के दर्शन।

२७ आषाढ। शिवानंद के शालग्राम के दर्शन के बाद से न जाने क्या हो गया है, दिन रात वे ही आँखों में बसे रहते हैं। कहीं भी किसी अवस्था में पाँच मिनट भी शालग्राम का विस्मरण नहीं हो पाता। ठाकुर का स्मरण करने पर लगता है, मेरे दयालु ठाकुर उसी शालग्राम के भीतर बैठे हुए हैं। अपने शालग्राम की पूजा करते समय भी उन्हीं की पूजा कर रहा हूँ, ऐसा आभास होता है। शालग्राम के लिए चित्त बड़ा व्याकुल हो उठा। पूजा के समय मन का आवेग सहन न कर सकने के कारण ठाकुर से कहने लगा-'गुरुदेव! दया करके मुझे स्थिर कर दो। अन्यथा मैं साधन-भजन कैसे कर पाऊँगा? एक छोटे से शिलाखण्ड के लिए मेरी इतनी आसक्ति!

गुड़िया देखकर छोटे बच्चे जैसे माता-पिता से हठ करते हैं, मुझे भी तुम्हारे पास वैसे ही हठ करने की इच्छा हो रही है। शिला का लोभ मेरे अन्तःकरण से उठा लो या फिर उसे दिलाकर मन शांत कर दो। मैं यह उद्वेग अब नहीं सह सकता। शिवानंद ने जब देने की इच्छा प्रकट की है, तो उसके मन में देने की आंतरिक प्रवृत्ति उत्पन्न कर दो। मंगलमय, तुम्हारी इच्छा के बिना कुछ नहीं होता, अतएव यह सब कुछ तुम्हारा दान मान कर आदर कर सकूँ, ऐसा आशीर्वाद दो। ऐसा कह रहा हूँ कि शिवानंद मेरी कुटिया में आ गए और कहने लगे-गुणीदादा, तुम हरिद्वार से जैसे एक चिह्न लेना चाहते हो, मैं भी तुमसे एक निशानी माँगता हूँ। मैंने कहा-क्या लेना चाहते हो? उन्होंने मेरे गले की रुद्राक्ष की माला माँगी। सुनकर मेरा दिमाग गर्म हो गया। मैंने कहा-यह माला मेरे गुरु द्वारा प्रदत्त है। तुम्हारे शालग्राम के समान सहस्त्र शालग्राम पाने के बदले, इसके एक दाने के साथ मैं सौदा नहीं कर सकता। दूसरा कुछ माँगो, मैं तुम्हें निशानी दूँगा। शिवानंद ने कहा-अच्छा ऐसा ही होगा। उनके चले जाने पर मैंने सोचा शालग्राम का पाना सहज समस्या नहीं है। रुद्राक्ष न पाने पर वे शालग्राम मुझे कभी नहीं देंगे। रुद्राक्ष पाना कठिन नहीं है, काशी से एक माला खरीदकर ठाकुर के द्वारा स्पर्श करवा लेने पर काम चल सकता है। ऐसा विचार कर स्नान के लिए आसन से उठा, माला खोलकर रखने लगा कि रुद्राक्ष की माला टूट गई, सारे दाने बिखर गए। मैं उन्हें चुनने लगा, तो देखकर स्तम्भित रह गया। उनमें से प्रत्येक दाना शिवानंद का शालग्राम दिखा। आश्चर्यचकित हुआ। इस दर्शन के क्षणों में मेरे भीतर हलचल सी मच गई। ठाकुर ने कहा था-**'हमेशा यह माला और उपवीत**

धारण संन्यास की अवस्था प्राप्त होने पर भी इनका त्याग न करना। अग्निसेवा भी आजीवन करना।’ हाय! मैं कैसा पाखंडी हूँ। साधारण शिलाखंड के बदले मैंने गुरुप्रदत्त अमूल्य वस्तु दूसरों को देने संकल्प किया। ठाकुर और कितने दिन तुम मुझे लेकर ऐसा खेल खेलोगे? तुम्हारे विनोद से मेरे प्राण निकल रहे हैं। अब मैं और शालग्राम की इच्छा नहीं रखूँगा। ठाकुर तुमने तो मेरा कोई अभाव नहीं रखा। जय गुरुदेव! तुम्हारे ये खेल मुझे सदा स्मरण रहें।

सुलक्षणयुक्त शालग्राम की प्राप्ति।

२८ आषाढ़। भगवान की कृपा से पाँच-छः हमउम्र ब्रह्मचारी आश्रम में एकत्र हुए हैं। सभी धर्म पिपासु, कठोर साधक, उत्साही हैं। वरदानंद, ज्ञानानंद भी कुछ समय से यहीं है। ईश्वरानन्द, शिवानंद, फणी दादा अब आए हैं। उनके साथ धर्मालोचना में बड़ा आनंद आता है। शालग्राम के लिए मेरे मन में आग्रह जानकर शिवानंद ने अपना शालग्राम मुझे देने के लिये अनुरोध किया, द्वादशी के दिन उन्होंने शिला देने की स्वीकृति दी। आत्मानंद ने उनकी बात पर विश्वास न करते हुए कहा-दादा तुम निश्चिन्त रहो, यह शालग्राम में अवश्य दिला दूँगा। शिवानंद की बातों से मुझे संदेह हो रहा है। उसे जरूर कोई दूसरा मतलब सूझा है, नहीं तो वचन देकर भी देर क्यों कर रहे हैं। शास्त्र में है, ‘शठेशाठ्यम समाचरेत्’-यह तो ऋषि वाक्य है। यह लंगड़ा जब स्नान करने जायेगा मैं शालग्राम छिपा लूँगा। लौटकर पूछेगा शालग्राम कहाँ है, तो जवाब दूँगा कि गंगा के मध्यभूमि में हम लोगों का साथ पाकर शालग्राम चतुर्भुज होकर स्वर्ग चले गये हैं। कुछ दिन हमारे साथ वास करने पर तुम्हें भी स्वर्ग

भेज देंगे। वह गोलमाल किया, तो उसे भी भगा दूँगा। मैंने एक बार उसे ठोका है। आत्मानंद के लिए असंभव कुछ भी नहीं सोचकर, उसे यह सब करने से मना किया।

शिवानंद ने द्वादशी के दिन शालग्राम देने को कहा है। पारण के दिन शिवानंद को साष्टांग प्रणाम करके मैंने कहा-दादा भूख लगी है, आज्ञा हो तो प्रसाद पा लें। शिवानंद ने कहा-हाँ, बेशक पा लो। मैंने सबको चाय दी। स्वयं बेल व चाय ग्रहण किया और आसन पर आकर नाम करने लगा। दोपहर एक बजे शुभ समय जानकर, मैं शिवानंद के निकट पहुँचा और शिवानंद ने आदरपूर्वक मुझे बिठाकर कहा-शालग्राम ले जाओ। मैंने कहा-केवल शालग्राम ही नहीं, तुम्हारा आशीर्वाद भी चाहिए। आशीर्वाद दो कि शालग्राम फिर तुम्हें लौटा न देना पड़े। मेरे पास कुछ और शिलाएँ हैं, उनमें से एक तुम भी लो। तुम्हारी शालग्राम पूजा में व्यवधान आए, यह भी मैं नहीं चाहता। रुद्राक्ष आदि न माँग बैठे, इसीलिए मैंने ऐसा कहा। शिवानंद इस बात पर सम्मत और संतुष्ट हुए। मैंने अपना शालग्राम उन्हें देकर उनका शालग्राम ले लिया। उन्हें एक शुद्ध वस्त्र देने की इच्छा जाहिर करने पर, वे बड़े संतुष्ट हुए।

दूसरों की प्रशंसा सुनने में अभिमान को ठेस।

२९ से ३२ आषाढ़। सुना है आज गंगा का बाँध खुलेगा। वर्षा का जल बढ़ गया है। डैम के कपाट खोल देने पर हरिद्वार, कनखल जाने का और कोई मार्ग नहीं बच रहता। इस बेलबाग की भूमि पर ही रहना पड़ेगा। वरदानंद, ईश्वरानंद आज ही अन्यत्र चले जावेंगे। फणीदादा ने आकर मुझसे कहा-भाई तुम क्या करोगे? शहर से

संपर्कहीन होकर, दो-तीन माह इस वन में कैसे रहोगे? हरिद्वार पर्वत के ऊपर मेरी गुफा है, मैं बारहों महीने वहीं रहता हूँ, तुम चाहो तो मेरे साथ रह सकते हो। एक ब्राह्मण मेरी आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करता है। वह तुम पर श्रद्धाशील होकर तुम्हारी भी व्यवस्था अवश्य करेगा। मैंने भी यहाँ रहने पर होने वाली कठिनाई सोचकर, फणीदादा की गुफा देखने की इच्छा व्यक्त की। हम दस बजे गुफा देखने चले। डैम पर पहुँचते ही देखा केशवानंदजी आ रहे हैं। उन्होंने हमें आश्रम लौट चलने को कहा। हमें अन्यत्र रहने की इच्छा है, जानकर वे समझे कि आत्मानंद के किसी बुरे आचरण से असंतुष्ट होकर, हमने ऐसा संकल्प किया होगा। हम केशवानंदजी के साथ आश्रम लौट आए। सुना है, गंगा का बाँध खोलने में दो चार दिन समय और लगेगा। तब तक निश्चिन्त होकर यहीं रहने का विचार किया। यह स्थान छोड़ने की इच्छा नहीं होती। केशवानंदजी से कई बातें हुई। वर्षा में हमें रहने और साधन-भजन करने में कोई असुविधा न हो, वे यही देखने तो आश्रम आए हैं। सोचा था हरिद्वार की गुफा में रहूँ, पर शायद ठाकुर की ऐसी इच्छा नहीं है-सो हमें केशवानंदजी के कहने पर स्थान छोड़ने का संकल्प त्याग देना पड़ा और यहीं रहने का विचार किया।

मध्याह्न को मैं आसन पर बैठा नाम जप कर रहा हूँ। केशवानंदजी अन्य ब्रह्मचारी के साथ आश्रम की शांति-व्यवस्था पर आलोचना करने लगे। उन्हें जानकारी मिली कि आत्मानंद ने कुछ मित्रों के साथ शराब पीकर कुछ दिन पहले ही सारी रात हुड़दंग मचा रखा था। उन्होंने कहा-आत्मानंद को तीन-चार दिनों के भीतर ही कहीं और भेज देंगे। स्वामीजी ने ब्रह्मचारियों से मेरी काफी

प्रशंसा की। कुछ बातें मेरे कानों में भी पहुँची, अच्छा लगा। मैं गर्वित हो उठा, सोचने लगा स्वामीजी से कहूँ-हमारा कल्याण ही आपका उद्देश्य है। हमारे दोषों का उल्लेख न करने पर, हम कैसे उनको दूर कर पाएंगे। आप तो केवल गुणगान ही करते जा रहे हैं। यह सोच ही रहा था कि स्वामीजी ने बुलवा भेजा। उन्होंने कहा-तुम सबके साधन-भजन में विघ्न न पड़े, इसलिये आत्मानंद को यहाँ से हटाना होगा। अन्य ब्रह्मचारियों के भजन निष्ठा की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा यहाँ जितने भी साधक हैं, उनमें से फणीभूषण सर्वोत्तम है। उनकी तुलना नहीं होती। स्वामीजी के मुख से ये बातें सुनकर मुझे ठेस सी लगी, माथा, उठा। स्वामीजी पर मन खीज गया, मैंने सोचा दो चार बातें सुना दूँ। सोचा, कौन उत्तम और कौन अधम है, इसको केशवानंद क्या जानेंगे? वे क्या सर्वज्ञ हैं? उनकी क्या अन्तर्दृष्टि खुल गयी है? सारा दिन साधन-भजन लेकर पड़ा रहता हूँ। फालतू बात या काम किसे कहते हैं, जानता नहीं। सद्गुरु का आश्रय प्राप्त हूँ, इतने पर भी फणीभूषण सर्वश्रेष्ठ और प्रशंसा का पात्र बन गया। अब वहाँ बैठने की इच्छा नहीं हुई। मैं अपने आसन पर लौट आया। सोचने लगा कि स्वामीजी ने न तो फणीभूषण का और न ही मेरा संग किया है, कौन श्रेष्ठ व उत्कृष्ट है, कौन निकृष्ट वे क्या जान पाएंगे, शायद भिखमंगे, पेट-सर्वस्व ब्रह्मचारियों ने स्वामीजी से मेरे किसी दोष के बारे में कहा होगा। आसन पर बैठकर भी सब पर आक्रोश बना रहा। ठाकुर का स्मरण आते ही मोह भंग हो गया। मैं सोचने लगा हाय रे भाग्य! कहाँ तो मैं इस पर्वत पर साधन-भजन करने आया हूँ। कुछ देर पहले मैंने अपना दोष बताने का अनुरोध करूँगा-सोचा था। स्वामीजी ने मेरे किसी दोष

की तो बात तक नहीं की। किसी अन्य की प्रशंसा मात्र की थी। दूसरों की प्रशंसा भी मुझसे नहीं सही गई। हृदय जल उठा और अभिमान की ज्वाला भभक उठी। मेरी प्रकृति यदि ऐसी नीच है, तो साधन-भजन तो मात्र दिखावा ही है। यह सब केवल प्रशंसा प्राप्त करने के लिये ही करता हूँ। दूसरो की प्रशंसा सुनकर ईर्ष्या करना-स्वभाव की इससे अधिक नीचता क्या हो सकती है? ठाकुर अपने परम पवित्र चरणों में इस नीच, जघन्य को तुमने किस प्रकार आश्रय दे दिया। अपने स्वभाव की हीनता पर सारा दिन पश्चात्ताप होता रहा। मैंने यह भलीभाँति समझ लिया कि दूसरों के कष्ट या दुःख में सहानुभूति दिखाकर, साथ ही कष्ट पाना या दुःख प्रकट करना फिर भी सरल है, किन्तु दूसरों की सुख-समृद्धि देखकर आनंद पाना उतना सहज नहीं, यह बड़ा ही कठिन है।

वास्तु-सर्प देखकर आतंक।

शिवानंद से शालग्राम पाकर मन बड़ा ही प्रफुल्लित हुआ। रात्रि के शेष भाग में उठकर होम, संध्या, आह्निक न्यास, पूजा, पाठ संपन्न करके बड़ा आनंद आया, मन में सोचा ठाकुर इसी प्रकार जब तक आनंद में रखें इस आसन का त्याग नहीं करूँगा। यथाविधि शालग्राम की पूजा करने की इच्छा हुई। शास्त्रोक्त विधि तो मैं नहीं जानता। अपने मनोनुकूल नाम करते हुए, तुलसी और गंगाजल अर्पण करता रहा। आश्रम के सभी से शास्त्रोक्त विधि पूछा, परन्तु प्रत्येक ने अलग-अलग पद्धति बताई, इसलिये मेरी श्रद्धा नहीं हुई। फणीदादा ने कहा-एक निष्ठावान ब्राह्मण ने जिनकी जीवन में कभी त्रिसंध्या न छूटी थी-मुझे विधिपूर्वक शालग्राम की पूजा

पद्धति सिखाई थी। परन्तु मुझे कभी पूजा करने का मौका नहीं मिला। बहुत दिन हो गए वह कागज है या नहीं, किताबों में ढूँढकर देखता हूँ, तुम ठहरो। काफी खोजबीन के बाद पुस्तक में उन्हें एक पुराने कागज में शालग्राम-पूजा पद्धति मिली। उन्होंने कहा-गुणीदादा तुम्हारे ही प्रयोजन के लिये यह कागज इतने दिनों से मेरे पास था। मैंने वह सब कण्ठस्थ कर लिया। शुभदिन में ठाकुर को शिवानंद के द्वारा प्रदत्त शालग्राम में प्रतिष्ठित करने का संकल्प किया। वरदानंद ने कहा-दादा जिस दिन शालग्राम का अभिषेक करोगे, उस दिन उन्हें भलीभाँति भोग लगाकर आश्रम के ब्रह्मचारियों को तृप्तिपूर्वक भोजन कराना। मैंने यह भार वरदानंद को ही सौंपा। जो भी खर्च होगा, सब मैं दूँगा, ऐसा उससे कहा। आगामी द्वादशी को ही ठाकुर की प्रतिष्ठा करूँगा। उस दिन मेरे ब्रह्मचर्य का नया वर्ष भी शुरू होगा।

नौ बजे आसन पर बैठा। निःशब्द प्राणायाम करके नामजप कर रहा हूँ। पीछे मेढ़ से मानो कन्धे के पास ही खटखट, फुसफुस की आवाज आ रही है। मैं आसन से उठकर बाहर आया। देखा मेढ़ की दरार से एक वृहदाकार कृष्ण सर्प भीतर आने की कोशिश कर रहा है। इसी मेढ़ पर टिककर मैं बैठा था। मेढ़ भेद करते ही वह मेरे कन्धे पर आ गिरता। मैंने वरदानंद आदि को बुलाया। आवाज सुनकर सर्प किधर अदृश्य हो गया, पता नहीं चला। आत्मानंद एवं वरदानंद ने आकर कहा-एक पुराना विषधर सर्प, इसी वृक्ष के नीचे खोह बना कर रहता है। मेढ़ के बाहर से वह गढ़ा आपके आसन के नीचे को जाता है। आप आसन पर बैठते हैं, तो सर्प के सिर पर आपको बैठना पड़ता है। इस प्रकार आपका बैठना उचित नहीं जान पड़ता।

आप आसन का स्थान परिवर्तन कीजिए। वैसे यह पुराना सर्प है, कभी किसी का अनिष्ट नहीं किया है। बहुत से लोग जानते हैं कि यहाँ वास्तु सर्प है। वास्तु सर्प का दर्शन दुर्लभ है। आप भाग्यवान हैं कि देवांशी सर्प के दर्शन मिले। इनकी बातें सुनकर आसन पर लौटा। नित्य कर्म करके ग्यारह बजे उठा। बारह बजे पुनः सुषुम्ना में ध्यान रखकर नाम करने लगा। सर्प का स्मरण आते ही प्रार्थना करने लगा-हे सर्पराज, कृपया मुझे क्षमा करें। परिचय न जानकर ही वरदानंद आदि को बुलाया और आपका अनादर किया। क्या करूँ, मेरे प्रकृतिगत संस्कार आपके आदर करने के योग्य नहीं हैं। आपके दर्शन पाने की इच्छा है, एक बार दूर से दर्शन दें, मैं कृतार्थ हो जाऊँ, एवं प्रणाम करूँ। आंखें बंदकर, एकाग्र होकर नाम जप करने लगा। अकस्मात् सामने खिड़की में सरसराहट की आवाज सुन, आँखे खोल कर देखता हूँ-वही विशालकाय कृष्णवर्ण सर्पराज कुटीर में प्रवेश करने की कोशिश कर रहे हैं। एक हाथ भीतर आ चुके हैं और विस्तृत फन फैलाकर फिस्स-फिस्स ध्वनि कर रहे हैं। मैं देखते ही कूदकर बाहर भागा और फिर ब्रह्मचारियों को पुकारा। आहट पाकर पुनः सर्प किधर चला गया। सोचता हूँ, सर्प कमरे में आने का प्रयत्न क्यों कर रहा है? क्या यह मनुष्य के शरीर की गंध पाता है या निःशब्द प्राणायाम की ध्वनि से आकृष्ट हो जाता है। कुछ समझ नहीं पाता। इस कमरे में साधन-भजन करना कठिन हो गया है। सर्प का स्मरण होते ही आतंक से प्राण निकले जा रहे हैं।

मुझे उर्ध्वरेता करने के लिये सिद्ध पुरुष का आग्रह।

आज एक पर्यटक संन्यासी चण्डी पहाड़ जाने के पथ में, हमारे आश्रम आ पहुँचे। संन्यासी को देखकर ऐसा लगा कि कोई सिद्ध पुरुष हैं। उनके साथ सभी को बड़ा आनंद मिला। हमारे अनुरोध पर वे आश्रम में रहने को राजी हो गए। हम सारा दिन काम-काज छोड़कर इनका संग करने लगे। संन्यासी की मुझ पर कृपा दृष्टि पड़ी। उन्होंने एकान्त में मुझसे कहा-'ब्रह्मचारीजी, आप मुझे बड़े अच्छे लग रहे। हैं। मैं देखता हूँ आपका देह साधन-भजन के अनुकूल और गठन सुंदर है। आपको एक दुर्लभ अवस्था प्रदान करने की इच्छा हो रही है। आपकी नाभि को पाँच-सात मिनट तक स्पर्श करने दें। उसे हिलाकर भीतर की नाड़ियों को यथावत् स्थापित कर देने पर आपके वीर्य की गति उर्ध्व दिशा की होगी। बिना प्रयास के आप उर्ध्वरेता बन जाएंगे। मैं करने को प्रस्तुत हूँ, पर क्या आप राजी हैं। मैं उनकी बातें सुनकर भी चुप रहा। उन्होंने फिर कहा-बहुत तपस्या, साधन भजन, संयम करके भी जो अवस्था दुर्लभ होती है, आप इच्छा करने पर अनायास उसे लाभ कर सकते हैं। क्या आपकी इच्छा नहीं होती? मैंने हाथ जोड़कर संन्यासी से कहा-'मेरे गुरुदेव देने में असमर्थ हैं, क्या ऐसी कोई अवस्था आप मुझे देंगे? आप केवल इतना आशीर्वाद दीजिए कि गुरु पर एकनिष्ठा बनी रहे और व्यभिचार की प्रवृत्ति न हो, और मैं कुछ नहीं चाहता।'

ठाकुर की जटा: चण्डी का रूप: सर्वदेवमयगुरु।

शेष रात्रि को जागकर संध्या करते हुए भोर हो गई। भूतापसरण,

आसनशुद्धि और कई प्रकार के न्यास करके विधिवत् गणेशादि देवताओं की पूजा की। मूल न्यास करने में काफी समय लगा। मैंने देखा है, शालग्राम के आने के बाद से रोज एक संतोषजनक वस्तु आ पहुँचती है। देखें आज ठाकुर क्या करते हैं? पूजा कर ही रहा हूँ कि छोटे दादा के द्वारा भेजी गई टसर की धोती आ पहुँची। शिवानन्द को एक शुद्ध-वस्त्र देना था, कृपा करके ठाकुर उस ऋण से आज मुक्त करेंगे। शिवानंद को वस्त्र देने पर, वे अत्यन्त संतुष्ट हुए।

आज माँ योगमाया ने मुझ पर बड़ी कृपा की। चण्डी पाठ-काल में बड़ा ही सुंदर भाव आया। काफी समय से पाठ करता आ रहा हूँ, पर माँ चण्डी पर मेरी श्रद्धा भक्ति उत्पन्न नहीं हुई। प्रीति रखना चाहता भी हूँ, पर रख नहीं पाता। मन में विचार किया कि चण्डी कौन हैं, ठाकुर के किस अंग में इनका निवास होगा। ऐसा विचार करते ही आँखो के सामने ठाकुर की जटा आ उभरी। जाने क्यों, जब भी ठाकुर की मानस में पूजा करता हूँ, सामने की जटा में श्वेतपुष्प, तुलसी नहीं चढ़ा पाता, वहाँ लाल जसवंत व बेलपात ही चढ़ाता हूँ। एक दिन स्वप्न में देखा था-ठाकुर सामने की बड़ी जटा छिन्न करके मुझे देते हुए कह रहे हैं-**'यह तुम लो।'** स्वप्न का अर्थ पूछने पर उन्होंने कहा था कि-**'जटा शक्ति का प्रतीक है, इस जटा में योगमाया या काली है।'** ठाकुर का ध्यान करने के साथ-साथ जटा का ध्यान भी आता है। जटा मुझे अच्छी लगती है। शायद माँ भगवती ने मुझ पर संतुष्ट होकर अपने इस स्थान चण्डी पर्वत पर लाकर रखा है। आज चण्डी को गुरुदेव की जटा में स्थित कर ध्यान व स्तुति करते हुए रोना आ गया। मेरे ठाकुर स्वयं

भगवान हैं। उनके प्रत्येक अंग में एक-एक देवता का निवास है। इसी देह के भीतर सृष्टि, स्थिति और प्रलय, सारा विश्व ब्रह्माण्ड विराजमान है। माँ आद्याशक्ति चण्डी, पराशक्ति-सबसे ऊपर हैं। इसीलिये ठाकुर ने उन्हें मस्तक में धारण किया है। माँ भगवती के चरणों के नीचे शिव सोये हैं। शक्ति हमारी कुलदेवी हैं, हमारे पूर्वज शाक्त हैं। जय माँ काली, जय माँ भगवती, जय माँ सिद्धेश्वरी।

देवी-देवताओं के प्रति पहले तो मेरे मन में एक अश्रद्धा सी थी। ठाकुर के अंग प्रत्यंग में एक एक देवता का अधिष्ठान है-ऐसा जान कर, अब ऐसे संस्कार ने जन्म लिया है कि किसी देवता की अवज्ञा करने की इच्छा नहीं होती। देवता ही क्यों जीव-जन्तु, कीट-पतंग सभी मेरे ठाकुर के अंगीभूत हैं। सभी की शक्ति एकमात्र भगवान ही हैं। सृष्टि के सब कुछ लेकर ही उनके श्रीअंगों की पूर्णता है। किसी को छोड़ने का कोई उपाय नहीं। ये बगीचे के पौधों के समान नहीं है, कि एक को उखाड़ने पर, दूसरे को न छूना पड़े। जैसे एक वृक्ष की शाखा-प्रशाखाएँ होती हैं, यह ठीक उसी प्रकार है। सारी सृष्टि ठाकुर के ही अवयव हैं, किसे छोटा या बड़ा कहूँ? मूलतः सभी एक हैं। जब जिस अंग के द्वारा, जिस कार्यसाधन में, जितनी शक्ति लगती है, ठाकुर ठीक उतना ही प्रयोग में लाते हैं। शरीर के अँगुली, हाथ-पाँव सबमें एक ही शक्ति का उपयोग होता है। इतने दिन मैंने बड़ा अपराध किया। कितने ही देवी-देवताओं, साधु-महात्माओं, ऋषि-मुनियों की अवहेलना की है। मैं एकमात्र गुरु के अधीन हूँ, अतः और किसी की परवाह नहीं करता था, बड़ा ही अज्ञानी था। मैं जिन्हें गुरु कहता हूँ, इन सभी को लेकर तो उनका स्वरूप है। सर्वदेवमय गुरु, जय गुरुदेव तुम्हीं सब हो। तुम्हीं सब कुछ हो।

तृतीय वर्ष के ब्रह्मचर्य की समाप्ति: कण्ठ शालग्राम।

हरिद्वार, कनखल, ऋषिकेश, लक्ष्मण झूला आदि स्थानों में मेरा नाम गुणीदादा, ब्रह्मचारी के नाम से प्रचारित हो गया है। पूर्वांचल में मंत्र, गुण, ऐश्वर्य आदि का स्थान-कामाख्या मेरा जन्म स्थान है, इसलिये कई लोगों की धारणा है, कि मैं नाना प्रकार मंत्र-तंत्र जानता हूँ। ऋषिकेश के कुछ साधु आकर मुझसे कहने लगे-ब्रह्मचारी, ऋषिकेश से आपके पास आए हैं, कुछ गुण बताइए। मच्छर बड़ा तंग करते हैं, आसन पर बैठने नहीं देते। खूब काटते हैं। मैंने साधुओं से कहा-मैं कुछ नहीं जानता। बहुत समझाने पर तब जाकर वे समझे। दर्शनार्थीगण भी आकर मुझे महागुणी मानकर कई बातें पूछा करते हैं। आत्मानंद मुझे महापुरुष के नाम से प्रचारित कर दर्शनार्थियों को आकर्षित करता और उनके पैसे भी लेता है। उस पैसे से शराब पीकर धुत्त रहता है, साधन-भजन में बड़ा विघ्नकारी हो उठा है। अब शायद यह स्थान मुझे छोड़ना ही पड़ेगा।

गत वर्ष ठाकुर ने मुझे पुनः दो वर्ष के लिये ब्रह्मचर्य दिया था। आज उसका एक वर्ष पूर्ण हुआ। आगामी कल से ब्रह्मचर्य का चौथा वर्ष प्रारंभ होगा। कल ही शालग्राम का अभिषेक करने की इच्छा है। ठाकुर का आह्वान शालग्राम में करके विधिवत् पूजा करूँगा। शालग्राम में अपने इष्ट की पूजा ही संभवतः आगामी वर्ष के ब्रह्मचर्य का प्रधान अनुष्ठान होगा। ये कण्ठ शालग्राम हैं, पूजा समापन के बाद ही कण्ठ में झुलाए रखना पड़ता है। ठाकुर ने मुझे कण्ठ शालग्राम की ही बात कही थी। शालग्राम का आयतन एक कंचे के

बराबर है। दादा ने शालग्राम रखने की एक चांदी की डिबिया बनवा दी थी ये शालग्राम उसमें भलीभाँति रह सकते हैं। शालग्राम कण्ठ में ही रहेंगे।

कण्ठ शालग्राम का अभिषेक एवं पूजा।

आज मेरे शालग्राम की प्रतिष्ठा होगी। खूब सबेरे उठकर स्नानादि संपन्न कर, तर्पण कर लिया। आसन पर बैठकर आसनशुद्धि के बाद अंगन्यास, करांगन्यास, व्यापकन्यास एवं चतुर्विंशन्यास समाप्त किया। प्राणायाम और कुंभक द्वारा भूतशुद्धि की। तुलसी, चंदन से शालग्राम की पूजा के लिए तैयार हुआ। पंचगव्य से शोधन कर, पंचामृत से शालग्राम को स्नान कराया। फिर सुंगधित वारि से धोकर, सिंहासन पर तुलसी के पत्र पर रख कर, शालग्राम की स्थापना की। ठाकुर का स्मरण कर मैंने उनसे प्रार्थना की-ठाकुर तुमने आज तक मेरी किसी आकांक्षा को अपूर्ण नहीं रखा। मैंने तुम्हारी आशातीत कृपा प्राप्त की। शालग्राम पूजा की इच्छा भी तुम्हीं ने जगाई। तुम्हारी ही कृपा से, तुम्हारे कहे अनुकूल शालग्राम की प्राप्ति भी मुझे हो गई। अब कृपा करके तुम शालग्राम के अणु-परमाणु में अवस्थान करो, शालग्राम तुम्हारा ही कलेवर हो। मैंने कभी किसी देवी-देवता को नहीं जाना और न ही भगवान को जाना है। मेरी शांति, सुख, चैन, आराम और आनंद के एकमात्र आधार तुम ही हो। मैं क्षुद्र हूँ, तुच्छ हूँ-केवल तुम्हारी एक अंजुली जल पाकर ही तृप्त हो जाता हूँ। तुम्हारे नदी-नद व समुद्र आदि से मेरा क्या प्रयोजन? मैं तो बस इतना ही चाहता हूँ कि तुम आशीर्वाद दो-जब मैं शालग्राम की पूजा करूँ, तो ऐसे करूँ कि तुम्हें

आनंद मिले, ऐसी प्रार्थना करते हुए शालग्राम को मस्तक पर धारण कर उठ खड़ा हुआ, फिर उन्हें हृदय से लगाया। ठाकुर को स्मरण करते हुए आँसू से भीगने लगा। स्पष्ट प्रतीत होने लगा कि ठाकुर शालग्राम में प्रवेश कर रहे हैं। ठाकुर ने अपनी कृपा का असाधारण परिचय दिया। शालग्राम को उठाने में कठिनाई हुई, वे भारी लगने लगे। मैने उन्हें आसन पर ही रख दिया। इस विषय में सोचकर विस्मय होने लगा। अब मैंने नारायण पूजा प्रांरभ की। इष्ट मंत्र के संयोग से एक सौ आठ गायत्री मंत्र करते हुए तुलसी पत्र ठाकुर के अंग प्रत्यंगों में अर्पण करने लगा। इस प्रकार तुलसी अर्पण करने में तीन बज गये। ठाकुर की कृपा से तैलधारावत् अविराम अश्रुपात होता रहा। पूजा समाप्त होते ही वरदानंद ढेर सारी पूड़ी, सब्जी, खीर, मोहन भोग लेकर आ पहुँचा। ये वस्तुएँ ठाकुर को निवेदन करके बड़ा आनंद आया। सबने तृप्तिपूर्वक भोजन किया। एक सद् ब्राह्मण को अच्छे वस्त्र द्वारा एक सीधा अर्पण किया। सभी ने आनंदित होकर मुझे आशीर्वाद दिया। कंठ शालग्राम की पूजा संपन्न होने पर, डिबिया में बंद करके गले में लटका लिया। ठाकुर को हृदय में धारण किया हूँ, इस सुखद स्मृति से सारा दिन आनंद में बीता।

ठाकुर के पास जाने के लिए पत्र: मेरा विचार।

९ श्रावण। आज सुबह दो पत्र मिले। दोनों गेण्डारिया आश्रम से आए थे। एक में गुरुभाई ने लिखा था-गोसाईंजी ने कहा है-'जब तक वहाँ रहने की इच्छा हो रहना, केवल लज्जावश रहना पड़ेगा, ऐसा सोचकर रहने की आवश्यकता नहीं। ऐसा लगे तो चले आना। जब

तक आनंद का स्फुरण हो तब तक ही रहना।' पत्र पढ़कर लगा इसके लिखने में कोई चतुराई है। दूसरे पत्र में योगजीवन ने लिखा है, कल रात बाबा ने मुझसे कहा-'ब्रह्मचारी को हरिद्वार से आने को लिखो।' उन्हीं के कथनानुसार लिख रहा हूँ। योगजीवन का पत्र पढ़कर बड़ा आनंद आया। ठाकुर के संग करने के अयोग्य होने पर भी मुझे ठाकुर फिर बुला रहे हैं। सोचते ही आँखों में आँसू आ गए। शीघ्र ही गेण्डारिया रवाना होने का संकल्प किया। आसन पर बैठकर नाम करते ही मन बदल गया। मैंने सोचा-जब ठाकुर की अनंत आकाशव्यापी छाया-आकृति घनीभूत, छोटी, स्पष्ट और स्वच्छ होने लगती है, तब मैं इधर-उधर आँखें फेरकर उसका अनादर करके प्रार्थना करता हूँ कि जब तक आदर की वस्तु का आदर न कर सकूँ, कृपा करके मुझे दर्शन न दो। तुम्हारी कृपा से कभी प्रेम, भक्ति, विश्वास मुझमें आए, तुम्हारे प्रति एकान्त अनुराग उत्पन्न हो-तब तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे करवाकर आनंद पाना। तभी अपने भुवनमोहन, नयन मुग्धकारी रूप का दर्शन देना, अन्यथा तुम्हारी स्मृति लेकर ही जीवन समाप्त हो जाय, ऐसा आशीर्वाद दो। अब यदि ठाकुर कृपा करके विश्वास, प्रेम भक्ति प्रदान न करें तो ठाकुर का दर्शन पाना तो दर्शन ही नहीं। अतः उनके निकट जाकर क्या करूँगा? ठाकुर के नाम ध्यान में परमानंदपूर्वक सारा दिन बीता। नारायण शिला की ओर देखकर मन शीतल हो जाता है, चित्त सरस और प्रफुल्लित हो उठता है। संध्या होम के बाद धूनी में दाल-रोटी पकाकर भोग लगाया। प्रसाद पाकर बड़ी तृप्ति हुई।

ठाकुर के नाम ध्यान में नित्य नूतन अवस्था।

ठाकुर ने मुझे इच्छानुरूप शालग्राम जुटा दिया है। वे मुझे किस आनंद में रखे हुए हैं, बता नहीं सकता। प्रातः से रात्रि तक कार्यक्रम निर्दिष्ट समय में संपन्न होते जाते हैं। होम, न्यास, पूजा, तर्पण, संध्या, पाठ प्रत्येक कार्य में ठाकुर मुझ पर विशेष रूप से कृपा कर रहे हैं। एक कार्य अनुष्ठान करके जब आनंद से विभोर हो उठता हूँ, तो दूसरा कार्य करने में मुझे कष्ट नहीं होता। आहार में एक स्वादिष्ट वस्तु के बाद दूसरी वस्तु ग्रहण करने के समान लगता है। प्रत्येक कार्य का लक्ष्य तो ठाकुर ही हैं, प्रत्येक कार्य उनके संबंध से मधुमय हो जाता है। प्रतिदिन लगता है, न जाने ठाकुर कितने दिन इस आनंद में रखें। ठाकुर का नाम एक ही एवं ध्यान भी एक ही है, किन्तु उससे नित्य नूतन भावों का उद्गम और आनंद अनुभव हो रहा है। ठाकुर की अद्भुत् कृपा है कि निद्रावस्था में भी ठाकुर की तुलसी, चंदन से पूजा करता हुआ जाग पड़ता हूँ। नींद में क्रम से नित्य क्रियाएँ भी ठीक-ठीक करता जाता हूँ। ठाकुर जब तक इस अवस्था में रखें यहीं रहूँगा, गेण्डारिया जाने का प्रयोजन नहीं। साधन-भजन के उपद्रवों से बचकर चलने का उपाय इस स्थान में है। अतः महामाया का आश्रय क्यों त्यागूँ? जब से शालग्राम पधारे हैं, नित्य पर्याप्त मात्रा में अच्छी खाद्य वस्तुएँ आ रही हैं। ये जहाँ रहे-विपुल ऐश्वर्य लाभ होता है, यह तो बड़ी ही विपत्ति है।

महामाया का शासन: पुनः ठाकुर के आदेश का पत्र विचित्र समस्या: आसन उठा लेने पर

मन उचाट।

भगवती महामाया अब मुझे अपनी दुर्भेद्य भूलभुलैया में डालकर, भटकाकर तमाशा देख रही हैं। कभी-कभी उनके विषम चक्र को देखकर बड़े भ्रम में पड़ जाता हूँ, चारों ओर अंधेरा दिखाई पड़ने लगता है। कभी-कभी तो अपना अस्तित्व ही खो बैठता हूँ। किस प्रकार इस विपत्ति से रक्षा पाऊँ नहीं जान पाता।

पंजाब की किसी संभ्रांत परिवार की अत्यन्त रुपवती युवती जिसकी उम्र बीस-बाइस वर्ष की होगी, हमारे आश्रम में आकर रुकी है। उनके पति अभी-अभी साधु बनकर चले गए हैं। उन्हीं की खोज विक्षिप्त सी होकर यह लड़की अकेली हरिद्वार आई है। हरिद्वार चण्डी दर्शन के लिए एक बार उनके पति अवश्य यहाँ आएंगे, इसी आशा से वे यहाँ रुकी है। यहाँ रहकर अनुसंधान करना सरल होगा, अतः रो-धोकर आत्मानंद, वरदानंद से ठहरने की अनुमति प्राप्त कर ली है। मेरे तीव्र विरोध करने पर आत्मानंद शास्त्र की दुहाई देकर कहा-दादा आत्मदान करके भी विपन्न की रक्षा करना चाहिए। आश्रय माँगने पर किसी का त्याग नहीं करना चाहिए। आश्रम में बहुतों की सम्मति जानकर मैंने झंझट में नहीं पड़ना चाहा। 'चाचा अपने प्राण बचा' सोचकर कुटिया चला आया। अब तो और भी उत्पात होने लगा। मेरी कुटिया से कुछ दूर एक सुनसान कमरे में उस स्त्री के ठहरने की व्यवस्था हुई। आत्मानंद ने कहा-अरे तीन-चार दिन यहाँ ठहर, तेरा आदमी कहीं भी रहे उसे ला दूँगा, वह यम के पास भी गया हो तो खींच लाऊँगा। मैं बहुत सी सिद्धियाँ जानता हूँ। फिर गुणीदादा एक गुण बता देंगे तो तेरा पति

सदैव तेरे साथ रहेगा। पर गुणी दादा जरा क्रोधी हैं, उन्हें प्रसन्न करने का यत्न करना। आत्मानंद जानता है कि मैं आपत्ति न करूँ तो वह चाहे जब तक इसे आश्रम में रख सकता है। वह भी आत्मानंद के अभिप्राय जानकर कई प्रकार से मुझे संतुष्ट करने के लिए निपुणता और चतुराई बरत रही है। मैं उसे हटाने के लिए आश्रमवासियों से हठ करने लगा, पर किसी ने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया। कुछ दिन हुये उनके पति भी आ गए हैं। 'अपनी पत्नी को लेकर जाओ' कहने पर टालता जाता है। मैंने जब जरा जोर देकर कहा तो उसने स्पष्ट कह दिया-'आश्रम छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा। जब तक जी चाहे आश्रम में ही रहूँगा।' मैं बड़े संकट में पड़ा। मैं समझ गया कि आत्मानंद आदि ही, उसे आश्रम में रुकने का प्रश्रय दे रहे हैं, उत्साहित कर रहे हैं। एक दिन खूब झगड़ा हुआ। मैंने कैनाल के मैनेजर से कहा-देखिये मैं बड़ी विपत्ति में फँस गया हूँ। इसीलिये आपके पास आया हूँ। भगवान का नाम लेने के लिये दामपाड़ में कुटिया बनाकर रहता हूँ। अब तक बड़े आराम से रहा। पर अब एक पंजाबी व्यक्ति अपनी स्त्री के साथ आश्रम में आ डटा है। उसे विपन्न जानकर पहले आश्रय दिया गया, तो अब अन्यत्र जाना ही नहीं चाहता। उसने धमकाया है-फौजदारी करूँगा पर आश्रम नहीं छोडूँगा। ऐसी अवस्था में आप लोग कोई व्यवस्था करें ताकि मैं निरापद होकर साधन-भजन कर सकूँ। मैनेजर बाबू सारा वृत्तांत सुनकर दो चपरासियों को लेकर आश्रम पहुँचे। उन्होंने बलपूर्वक पंजाबी दम्पत्ति को आश्रम से भगा दिया। उसका अभिप्राय बदला लेना था। शाम के बाद जोरों से आंधी और वर्षा होने लगी। खुले आसमान के नीचे इतनी वर्षा में व्यक्ति कहाँ होगा,

सोचकर खोजने पर वह न मिला, मैंने सोचा था, इस दुःसमय में उन्हें आश्रम ले आऊँगा पर वे मिले ही नहीं।

आज नित्यक्रिया के बाद बर्तन मांजने, लकड़ी चुनने बाहर निकला तो वरदानंद ने एक कार्ड थमाते हुए कहा-देखा ब्रह्मचारी, महामाया का खेल। यह उनका स्थान है, वे ही सबका शासन करती हैं। और भी कोई शासन करे, यह उनको सहन नहीं होता। कल तुमने एक को भगाया, आज तुम्हारा ही सम्मन जारी हो गया है। मैंने पत्र पढ़ा-गुरुभ्राता ने लिखा है, ठाकुर ने कहा है-**'ब्रह्मचारी ढाका चले आयें।'** तुम पत्र पढ़कर ही ढाका रवाना हो जाओ। तुम्हें बाकी जानकारी ढाका आने पर ही मिल जायगी। पुनः लिखा है, आने में विलम्ब न करना। गुरुभाई के पत्र को पढ़कर मैं अवाक् रह गया। इस प्रकार पत्र लिखने का कारण सोचने लगा। इसके पूर्व पत्र पाकर मन में दुविधा आई थी। ठाकुर का यथार्थ अभिप्राय समझ नहीं पाया। मेरे मन का भाव जानकर ही ठाकुर ने पुनः स्पष्ट पत्र भेजा है, जिसमें ढाका लौट जाने का आदेश है।

ठाकुर के आदेश पत्र को पाकर मैं समस्या में पड़ गया। गेण्डारिया जाने की बात से हृदय काँप उठा क्योंकि पहाड़ आते समय ठाकुर ने अन्य गुरुभाईयों से कहा था-**'ब्रह्मचारी का इस बार या तो इस पार या उस पार। हरिद्वार जाकर ठीक-ठीक चल सके तो सच्चा ब्रह्मचारी होकर संन्यासी बनेगा। नहीं तो गृहस्थी करनी पड़ेगी।'** अब गेण्डारिया लौटने पर ठाकुर मुझे गृहस्थ होने को कह देगें या संन्यास देंगे, मैं नहीं जानता। जो भी हो, अभी तो फिलहाल मुझे हरिद्वार छोड़कर जाने की विशेष इच्छा नहीं हो रही है। स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। अब कोई उपद्रव भी नहीं है।

साधन भजन में दिनोंदिन उत्साह, आनंद की वृद्धि हो रही है। सारा दिन ठाकुर के नाम ध्यान में परमानंद से व्यतीत होता है। सभी ओर से सुविधा देने के बाद ठाकुर वापस क्यों बुला रहे हैं, कुछ समझ नहीं पाता। भज़न का इतना उत्कृष्ट स्थल छोड़कर जाने में भी रोना आ रहा है। ठाकुर से मैंने कहा-गुरुदेव तुम किसलिए, कब, क्या करते हो समझ नहीं पाता। रोगी डाक्टर को परम हितैषी जानकर भी पके हुए फोड़े पर अस्त्रोपचार करते ही आह-उह चिल्लाता व डाक्टर को ही गाली देता है। मेरी भी बिल्कुल वही अवस्था है। यह स्थान छोड़ने की बिल्कुल इच्छा नहीं हो रही है। तुम कुछ ऐसा कर दो कि इस स्थान से मन ऊब जाय। नहीं तो स्थान त्यागना मेरे लिए कष्टकारी होगा। मन की बात ठाकुर से कह नित्यकर्म करने लगा, पर समय-समय पर ठाकुर का आदेश याद आते ही उद्विग्न हो उठता हूँ। मैं भजन में कितना भी आनंद पाऊँ पर ठाकुर के आदेश की अवहेलना कैसे करूँ? ऐसा सोचकर भी इस स्थान के प्रति आकर्षण कम न हुआ। मैंने आसन उठा लिया। बाकी नित्यकर्म शीशम वृक्ष के नीचे ही करने लगा। आसन उठाने के साथ-साथ मन उचाट और अस्थिर होने लगा। ठाकुर ने कहा था-'साधुगण आसन उठा ले तो उस स्थान पर टिक नहीं पाते। अन्यत्र जाकर आसन न लगाते तक स्थिर नहीं हो पाते।' बड़े ही उद्वेग में मेरा साधन भजन छूट गया। शीघ्र ही ढाका पहुँचने का निश्चय किया।

ऋषिकेश यात्रा: ब्रह्मकुण्ड में स्नान: भीमगौड़ा एवं सप्तस्रोत दर्शन: तपस्वी साधु।

स्थान त्यागने के लिये मैंने आसन उठा लिया। अब एक दिन भी

यहाँ रुकने की मेरी इच्छा नहीं हो रही है। गुरुदेव के पास जाऊँगा कहकर भिक्षा की-साढे छः रुपये प्राप्त हुए। अब यह स्थान त्यागा जा सकता है। इतने दिनों तक निकटवर्ती तीर्थों का दर्शन न कर पाया। यहाँ तक कि हरिद्वार के विग्रह आदि के भी दर्शन न कर पाया। दो चार दिनों में इन तीर्थों के दर्शन कर लेने की इच्छा हुई। सामान बाँधकर ऋषिकेश, लक्ष्मणझूला देखने को तैयार हुआ। खूब सवेरे आसन के अनिवार्य कार्य समाप्त करके मैंने चाय ली। उसके बाद वरदानंद आदि को साथ लेकर इक्कागाड़ी पर ऋषिकेश के लिए रवाना हुआ। पथ में ब्रह्मकुण्ड में स्नान की इच्छा से गाड़ी रुकवाई। यात्रियों के स्नान का तमाशा देखा। पंजाब की युवतियाँ प्रथा के अनुसार ही जेठ, श्वसुर, पति सबके साथ ही नग्न गात्र हो स्नान कर रही हैं। ये लडकियाँ लज्जाशीला होने पर भी परिधेय वस्त्र तट पर रखकर जल में उतरती हैं। परिचित किसी की परवाह नहीं। पुरुष उनकी ओर दृगपात भी नहीं करते। मैंने ब्रह्मकुंड में स्नान तर्पण करके ऋषिकेश की यात्रा की। मार्ग में पर्वत की गुफाएँ दिखाई पड़ी। कभी ये गुफाएँ कितने ही साधु भजनानंदी संतों का साधन स्थल रही होंगी, अभी जनशून्य है। इन्हें देखकर गुफा में रहने की लालसा होने लगी। कुछ दूर चलकर भीमगौड़ा पहुँचे, जहाँ प्रबल प्रतापी-पराक्रमी भीम ने अपने प्रबल शक्ति प्रवाह से भागीरथी गंगा का प्रवाह अवरुद्ध किया था। भीम का शांत और नयनाभिराम रूप देखकर मन प्रफुल्लित हो उठा। भीम के मंदिर के सामने तालाब में गंगा का जल एक नल से आकर दूसरी ओर से लगातार निकलता जा रहा है। सुना है, सरकार ने डेढ़ लाख रुपए व्यय करके यह व्यवस्था की है। यह स्थान बड़ा मनोरम है। यहाँ से हम

सप्तस्रोत चले। वहाँ जाने का रास्ता दुर्गम है, पर मन के उत्साह, आनंद से पथ का क्लेश कुछ अनुभव न हुआ। पतित पावनी गंगा भगीरथ के पीछे-पीछे आते समय, यहीं सप्तऋषियों का आश्रम देखकर, ऋषियों की मर्यादा के लिए सात धाराओं में बँट गई थी। सातों ऋषि के आश्रम की परिक्रमा करके पुनः एक धारा बनकर प्रवाहित हुई। सात स्रोतों में से चार स्रोत ही मैं देख पाया। उनके संगम पर स्नान करके, संध्या करके, देव, ऋषि एवं पितृ तर्पण किया। गंगा के ऊपर पर्वत पर कुछ साधुओं को कुटिया में रहते देखा। उनमें से एक ब्रह्मचारी को देखकर बड़ा आनंद आया, वे सामने धूनी जलाकर नाम जप में तल्लीन हैं। एक-एक बार जप समाप्ति पर अग्नि में आहुति देते जा रहे हैं। सारा दिन मौन रहते हैं। एक अन्य जटाधारी, दुबले दीर्घाकृति साधु को गंगा के भीतर एक शिला पर ऊर्ध्वबाहु होकर, सूर्य की ओर मुख किए, तप करते देखा। ये सूर्योदय से लेकर सूर्य की गति के साथ-साथ अपलक देखते हुए सूर्यास्त पर सूर्य को साष्टांग प्रणाम करके-अपनी कुटिया को चले जाते हैं। साधुओं के कठोर तप, उद्यम और भजन निष्ठा को देखकर खुद पर ग्लानि होने लगी। साधुओं को प्रणाम कर ऋषिकेश की ओर बढ़े। सप्तस्रोत की पर्वत श्रेणी देखते ही स्मरण आया व आँसू उमड़ आए कि इन्हीं में से एक श्रेणी पर धृतराष्ट्र ने आकर तप किया था। उनकी प्रार्थना पर भगवान् वेदव्यासजी ने उन्हें वीरगति पाए कौरव वीरों का इसी स्थान में दर्शन कराया था। अंत में इसी स्थान पर धृतराष्ट्र, गांधारी और कुंती ने होमाग्नि में शरीर की आहुति दे दी और अक्षय लोक की प्राप्ति की। यहाँ धर्मात्मा विदुर ने सुदूर पर्वत पर जाकर, धर्मराज युधिष्ठिर के कलेवर में दृष्टि

द्वारा अपना तेज संचार कर देह का परित्याग किया। आज इसी सप्तस्त्रोत के साधु-संत, नर-नारी, वृक्षलता को प्रणाम कर धन्य हुआ। दिन डूबने पर ऋषिकेश पहुँचा। ऋषिकेश पहुँचकर हमने एक धर्मशाला में आश्रय ग्रहण किया। वहाँ के मैनेजर ने ऊपर के कमरे में हमें ठहराया। आराम से रात बिताकर प्रातः हम नाना दर्शनीय स्थलों को देखने चले। अपने-अपने साधन-भजन में लीन साधुओं को छोटी-छोटी कुटियाओं में देखकर बड़ा आनंद आया। ऋषिकेश की गंगा में स्नान तर्पण करके बड़ा आनंद आया। कुछ जलपान करके हम लक्ष्मणझूला चले। वहाँ साधुओं के ठहरने की व्यवस्था न थी, सो पुनः ऋषिकेश आकर हमने रात्रि व्यतीत की।

बिल्वकेश्वर पर्वत पर बिल्वकेश्वर महादेव।

प्रातः स्नान तर्पण के बाद हम हरिद्वार चले, कुछ दूर पर सती तपोवन देखा। इन स्थानों का ऐसा प्रभाव देखा कि वहाँ यदि कोई व्यक्ति केवल पड़ा ही रहे तो भी कृतार्थ हो जाय। एक निष्ठावान ब्राह्मण ने इस बारे में कहा-

हरिद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नील पर्वते।
स्नाता कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते।।

कनखल में, जहाँ माँ सती ने देह त्यागा था, दक्ष यज्ञ का वह स्थान देखा। उस घटना का स्मरण कर देवी-देवताओं, ऋषि मुनियों को नमन किया। फिर हम बिल्वकेश्वर जा पहुँचे। स्थान की असामान्य शोभा को देख मैं विस्मित हो गया। मानो तपोधन ऋषियों की तप की सुविधा के लिए ही यह स्थान निर्मित है। हरिद्वार के ऊँचे पर्वतों के बीच बिल्वकेश्वर महादेव प्रतिष्ठित हैं।

विस्तृत पर्वतों के बीच यह स्वतंत्र पर्वत सा प्रतीत होता है। एक गहरी झील द्वारा यह वेष्ठित है। झील के किनारे पर्वत की गुफाएँ हैं। दूसरी ओर घने वन और ऊँचे पर्वत हैं। सुना है झील में गंगा का प्रवाह है। बिल्वकेश्वर पर आसपास से वन्य पशु नहीं आ सकते। निर्जन, निःस्तब्ध यह स्थान प्राचीन कई वृक्षों से परिपूर्ण है। यह स्थान भजनानंदी, विरक्त, साधु-संन्यासियों की तपस्या के लिए अत्यन्त अनुकूल है। योगी-ऋषियों की तपाग्नि ने पर्वत के विभिन्न स्तरों के स्थान को अग्निमय बना रखा है, वह आँच हृदय को स्पर्श भी करने लगी। कुछ देर स्थिर होकर बैठने पर ही चित्त आविष्ट हो जाता है। बिल्वकेश्वर महादेव को प्रणाम करके हम आश्रम की ओर चल पड़े।

आज द्वादशी है, शालग्राम को कुछ भुने हुए चने निवेदन करके प्रसाद पाया। मैं चला जाऊँगा, अतः वरदानंद ने मुझे भोजन कराना चाहा। रात को सबके साथ भोजन करके तृप्त हुआ। वरदानंद, शिवानंद, फणीदादा, ईश्वरानंद इन ब्रह्मचारियों के मधुर संग में इतने दिन अच्छे बीते। ईश्वर-प्राप्ति के लिए जिन्होंने सांसारिक सुखों का विसर्जन कर दिया और उन्हीं के उद्देश्य से विभिन्न वन, पर्वतों पर घूम रहे हों, वे भी संसार में थोड़े ही हैं।

ऋषिकेश जाने से पहले आसन उठा लेने के कारण मन अस्थिर हो गया है, सोचता हूँ जितनी जल्दी हो सके यह स्थान त्याग दूँ। कभी घर में, कभी वृक्ष के नीचे, कभी गंगा तट पर बैठकर बारह हजार जप व बारह सौ गायत्री जप पूरा किया हैं। आज ही यह स्थान त्याग देने के लिए सामान बाँधकर तैयार हुआ। वरदानंद ने आकर कहा-आज तो तुम्हारा जाना नहीं होगा। आज त्रयः स्पर्श है।

क्या करूँ, कल जाने का निश्चय किया और ब्रह्मचारियों से धर्मालाप में दिन व्यतीत किया।

हरिद्वार त्याग: गंगा से आशीर्वाद प्रार्थना: ज्वालापुर की यात्रा।

२७ श्रावण। कल गंगा का जल काफी बढ़ गया है। और आठ इंच पानी चढ़ने पर पुल के तख्ते के बराबर हो जायगा। अतएव तीन-चार इंच और बढ़ते ही पुल के तख्ते उठा लिए जाएंगे। कल ही इसका उपक्रम होता देखा पर मैनेजर ने कहा है कि मुझे सूचना दिए बिना पुल नहीं खोलेंगे सो निश्चिन्त हूँ। आज यह स्थान त्याग दूँगा। घर बाहर करते हुए गंगातट पर पहुँचा। माँ गंगा को प्रणाम करके कहने लगा-माँ इतने दिनों तक तुम्हारे शीतल चरणों का आश्रय पाकर आनंदपूर्वक दिन बीत गए। अब मैं अपने गुरुदेव के पास लौट रहा हूँ। हे दयामयी माता! यह आशीर्वाद दो कि अपने गुरुदेव को सब तीर्थों का मूलाधार और उनके युगल चरणों को तीर्थों का सार समझ सकूँ एवं उनमें अनन्य भक्ति रख सकूँ। सुख-चैन, सम्पदा या आराम सब कुछ उनकी चरणों की छाया में ही प्राप्त करूँ। उनके चरणों के सिवा और किसी ओर आकृष्ट न होऊँ।

गंगा स्नान कर चार बजे आहारादि संपन्न कर, सामान लेकर स्टेशन की ओर प्रस्थान करने पर ऐसा लगा मानो घर, बाहर, वृक्ष-लतादि सभी मेरे जाने से रो रहे हैं। प्रस्थान के पहले धूप चंदन जलाकर सभी की आरती की और आशीर्वाद की प्रार्थना की। सभी वस्तुएँ मुझे सजीव लगने लगी। एक घंटे तक यह सब करके ब्रह्मचारियों का आलिगंन कर, मैं स्टेशन चला। ज्वालापुर के

स्टेशन मास्टर ने कई बार मुझसे मिलने का अनुरोध किया था। उनसे मिलने के उद्देश्य से ज्वालापुर का ही टिकट खरीदा। शाम को ज्वालापुर पहुँचा। इस रात व दूसरे दिन, स्टेशन मास्टर के घर धर्मालोचना करते हुए आनंदपूर्वक समय बीता। वहाँ से जालिम सिंह से मिलने सहारनपुर के लिए चल पड़ा। उन्होंने विशेष आग्रह किया था। तीस श्रावण सुबह नौ बजे मैं सहारनपुर पहुँचा। जालिम सिंह ने खूब आदर-सत्कारपूर्वक अपने क्वार्टर में ठहराया।

भजन के प्रतिकूल सहारनपुर: ज्वलन व यंत्रणा का कारण निर्णय।

१ से ३ भाद्रपद। सहारनपुर पहुँचने पर जालिमसिंह ने निवास स्थान के एक खुले और स्वच्छ, निर्जन कमरे में मेरे ठहरने की व्यवस्था कर दी थी। मैंने भी निश्चिन्त होकर आसन लगाया। जालिमसिंह मुझसे बड़ा ही स्नेह करते हैं, सो मुझे कुछ दिन ठहराने की इनकी इच्छा है। पर मैं तो एक दिन रहकर जान गया कि यहाँ रहना सहज नहीं है। सभी प्रकार की सुविधा होते हुए भी भजन में मन ही नहीं लगता। सुबह से शाम तक यत्न करके दस मिनट भी नहीं बैठ पा रहा हूँ। साधन छूट जाने से माथा गरम हो उठा। किसी प्रकार आसन के दैनिक कार्य संपन्न करके, बाहर घूमकर मैं समय व्यतीत करने लगा। उसमें भी चैन नहीं पाया। न जाने कैसी यातना भोग रहा हूँ। मैंने जालिम सिंह से सब कुछ स्पष्ट खोलकर कह डाला। उन्होंने भी स्वीकार किया कि साधन-विरोधी और भाव-विरोधी ऐसा स्थान उन्होंने भी कभी नहीं देखा। लगता है, दुनियादारी के सिवा यहाँ कभी कोई धर्मानुष्ठान हुआ ही न हो।

जालिम सिंह ने मुझे एक वल्कल वस्त्र दिया। कम्बल और भी कितनी ही वस्तुएँ लेने का आग्रह किया, किंतु अप्रयोजनीय समझ कर मैंने वह सब नहीं लिया। अत्यन्त आग्रह देखकर मुझे चार-पाँच दिन रुकना पड़ा। किसी दिन भी एक घंटा आसन में नहीं बैठ सका। स्थिर होकर नाम नहीं कर पाता, श्वास रुकने लगता है। ध्येय वस्तु का कोई अता-पता ही नहीं चलता। कहाँ से सारी राजसिक-तामसिक भावना आकर मन को अस्थिर कर देती हैं। चित्त मलिन सा लगता है। इन सबका कारण खोजने के लिये दृढ़तापूर्वक मैं आसन पर जा बैठा। बहुत यत्न करने पर श्वास-प्रश्वास की गति का अनुसरण कर देखता हूँ, नाभि मूल से एक प्रकार का उत्ताप उठ कर मेरुदण्ड में लग रहा है, और वहाँ एक प्रकार की ज्वाला की सृष्टि हो रही है। इसी उष्मा की भाप जाकर अस्थिर मस्तक और सारे शरीर पर फैल रही है। इसी से मन अस्थिर और विक्षिप्त सा हो गया है। काम-क्रोध आदि रिपुओं की उत्पत्ति एवं उत्तेजना शारीरिक हैं, तथापि इनका पराक्रम इतना अधिक है, कि वे सूक्ष्म से सूक्ष्म चित्त को भी आकर्षित कर लेते हैं और स्थूलता में परिवर्तित करते हैं। ठाकुर! यह सब उत्पात अब और कितने दिनों तक रहेगा।

स्वप्न में ठाकुर का अप्राकृतिक प्रसाद।

सात भाद्रपद की तिथि-मैं छः बजे सुबह फैजाबाद की यात्रा के लिए निकला। टिकट लेकर गाड़ी में बैठा। रात को कोई कष्ट न हुआ। गर्मी अधिक थी। एक वैष्णव सारी रात पंखा झलते रहे। कई बार मना करने पर भी न रुके। अपरिचित वैष्णव की मुझपर इतनी दया का कोई हेतु नहीं, सब ठाकुर की कृपा का खेल है। रात के

अंतिम भाग में एक सुंदर स्वप्न देखकर जाग उठा। स्वप्न इस प्रकार है-पश्चिम के कई स्थान घूमकर एक दिन ठाकुर के पास जा पहुँचा। योगजीवन ने मेरे लिये ठाकुर का प्रसाद रखा था, वह लाकर दिया। मैंने ठाकुर के स्वयं न कहने पर प्रसाद न लेने का निश्चय किया एवं ठाकुर के पास ही बैठा रहा। ठाकुर ने प्रसाद पाने को कहा। ठाकुर के पास बैठकर ही प्रसाद पाने लगा लेकिन आश्चर्य की बात कि प्रसाद में किसी प्रकार का आस्वाद नहीं मिल रहा था। मात्र एक मोहक सुंगध प्रसाद से निकलने लगी। शरीर-मन को स्निग्ध कर दे, ऐसे कुछ पद्मगंध के समान। वह इतना मधुर गंध है कि मोहित हो गया। यह ठाकुर के श्रीअंग की सुगंध के समान थी। चित्त आकर्षित हो गया। मैंने आग्रहपूर्वक खूब सारा प्रसाद पाया। निद्रा भंग हो गई। अन्तःकरण प्रफुल्लित हो उठा। बारंबार ठाकुर का ही स्मरण हो आया। ठाकुर ने कहा था-**'यदि यथार्थ प्रसाद पाओ तो किसी प्रकार का आस्वादन नहीं पाओगे। केवल एक प्रकार की सुगंध ही पाओगे।'**

बस्ती यात्रा।

सुबह नौ बजे फैजाबाद स्टेशन पहुँचा। स्टेशन मास्टर श्रीमहेन्द्र बाबू के साथ सारा दिन आनंदपूर्वक बीता। नित्यक्रिया में कोई बाधा नहीं पड़ी। संध्या के समय स्वपाक आहार किया। सुबह शौचादि के बाद महेन्द्र बाबू के साथ अयोध्या घाट पहुँचा। सरयू के शीतल जल में स्नान, संध्या तर्पण करके स्टेशन घाट जा पहुँचा। असंख्य लोगों की भीड़ देखकर हताश हो गया। अधिक संख्या में लोग जहाज में न चढ़े इसलिए एक व्यक्ति लाठी से उन्हें रोक रहा था। मैंने

निरुपाय होकर एक उच्च कर्मचारी से जाकर कहा-बाबू साहब मैं क्या पड़ा रहूँगा। उन्होंने कहा-आप साधु हैं, सीधे चले आइए कोई नहीं रोकेगा। लाठीवाले ने भी रास्ता छोड़ दिया। मैं बस्ती की टिकट लेकर जहाज पर चढ़ा। थोड़ी देर में लकड़मण्डी घाट आ पहुँचा। उतर कर कुछ देर रेतीली भूमि पर चलने पर ट्रेन मिली। ट्रेन में बैठकर नाम जप आरंभ किया। दस बजे बस्ती स्टेशन पहुँचा। एक सज्जन के साथ किराए पर इक्का गाड़ी लेकर अस्पताल की ओर चला। सज्जन बीच में ही उतर गए। मैं अस्पताल के कम्पाउण्ड के बाहर इक्का रुकवाकर उतरा। जलाशय देखकर वहाँ प्रयोजन से गया हूँ कि इतने में इक्कागाड़ी वाला जोरों से गाड़ी हाँकने लगा। मेरे थैले, सामान सहित भाग गया। मैं पीछे-पीछे दौड़कर हैरान हुआ पर कोई लाभ न हुआ। अंत में अस्पताल की ओर चला आया। दादा मुझे देखकर बड़े प्रसन्न हुए। इक्केवाले को पकड़ने का कोई प्रयत्न नहीं हुआ। आवश्यक वस्त्रादि दादा ने ही खरीद दिया। कंठ शालग्राम कंठ में ही थे। बड़े सामान पहले ही ज्वालापुर से दादा के नाम पार्सल कर दिया था। इसलिए सामान की चोरी होने पर असुविधा नहीं हुई। दादा के पास तीन-चार दिन रुकने का विचार था, किंतु दादा के अत्यधिक स्नेहवश अधिक दिन रुकना पड़ा।

कलकत्ते में अभयबाबू के पास ठाकुर का संवाद।

१८ भाद्रपद। बस्ती में कुछ दिन रहकर मैं कलकत्ता रवाना हुआ। मार्ग अच्छी तरह कट गया। रात दस बजे हावड़ा स्टेशन पहुँचा।

वर्षा की संभावना देखकर एक गाड़ी लेकर भान्जे के पास पहुँचा। लड़के स्कूल गए थे। मुझे खूब भूख लगी थी। भुने हुए मटर और शरबत का भोग लगाकर स्नान, आह्निक कर प्रसाद पाया, सूने घर में अच्छा नहीं लग रहा था। कोई सत्संगी मिलेगा या नहीं, यह भी नहीं जानता। पास ही श्रीअभयनारायणजी के घर चला गया। उन्होंने आदरपूर्वक मेरे रहने की व्यवस्था कर दी। नीचे एक कक्ष में मैंने आसन लगाया। अभय बाबू मेरे गुरुभ्राता, पूर्व परिचित एवं परम सुहृद, सत्संगी हैं। उनके पास कलकत्ते में कुछ दिन काटकर, ढाका जाने की सोच रहा था, लेकिन उनसे खबर मिली कि ठाकुर ढाका से कलकत्ता आकर लाखुटिया के जमींदार श्रीराखालचन्द्र रायचौधरी के इकतालीस नं. सुकिया स्ट्रीटवाले मकान में रह रहे हैं। गेण्डारिया आश्रम के लगभग सभी लोग उनके साथ हैं। मैंने पूछा-अचानक ठाकुर का ढाका से इस समय कलकत्ता आने का क्या कारण है? अभय बाबू ने बताया-गत श्रावण माह में गोसाईंजी के गले में घाव होकर, उससे खून गिरने लगा था। इसी प्रकार रामकृष्णदेव के गले में कैंसर होने से, उन्होंने भी देह त्याग दिया। गोसाईंजी के गले का घाव बढ़ न जाय इसी आशंका से चिकित्सा के लिये शिष्यगण उन्हें कलकत्ता ले आए। किसी डाक्टर, वैद्य से चिकित्सा करानी नहीं पड़ी। वे स्वयं स्वस्थ हो गए हैं। राखाल बाबू ने बड़े ही आदरपूर्वक उन्हें घर में रखा है। मैंने पूछा-घाव बिना इलाज के कैसे ठीक हो गया? अभय बाबू ने कहा-आते समय ग्वालन्द स्टीमर पर ही परलोकगत प्रसिद्ध डॉक्टर दुर्गाचरणजी ने प्रकट होकर गोसाईंजी से कहा-आपके गले का घाव साधारण ही है, कालकोचई का रस गले के घाव में लगा देने पर ठीक हो जाएगा।

गोसाईंजी ने भी कलकत्ता आकर ठीक वैसा ही किया। घाव ठीक हो गया। अब वे स्वस्थ हैं। ठाकुर सुकिया स्ट्रीट में हैं, मैं कब उनके पास जाऊँ सोचकर, अस्थिर हो उठा।

ठाकुर का दर्शन: साथ रहने की अनुमति।

दोपहर दो बजे अभय बाबू के साथ सुकिया स्ट्रीट चल पड़ा। अभय बाबू से सुना, सुकिया स्ट्रीट के अंतिम भाग में एक पोर्चवाली विशाल अट्टालिका की दूसरी मंजिल में ठाकुर रहते हैं। उन्हें आगे करके पश्चिचम की ओर लोहे की घुमावदार सीढ़ी से ऊपर पहुँचा। आहार के बाद बारह से चार बजे तक हाल के एक भाग में पर्दा डालकर ठाकुर अकेले आसन पर बैठे रहते हैं। वहीं से ठाकुर के दर्शन कर प्रणाम करते हुए, मन ही मन ठाकुर से मैंने कहा-ठाकुर पर्वत से खींचकर जब ले आए हो तो विश्वास, भक्ति प्रदान कर, शेष जीवन अपने साथ ही रखना, ऐसी मेरी आकांक्षा है। ठाकुर ध्यानमग्न थे, परन्तु स्पष्ट स्वर में 'हूँ' कहकर मेरी प्रार्थना पर सम्मति देकर उन्होंने सिर उठाकर देखा। मुझे देखकर प्रसन्न व हास्य मुख होकर स्नेहपूर्वक, इशारे से पूछा-**'अभी कहाँ से आ रहे हो? हरिद्वार से कब लौटे? आज आहार हुआ कि नहीं?'** आज मेरा आहार नहीं हुआ जानकर ठाकुर ने योगजीवन को बुलाकर कहा**-'कुछ खाने के लिये लाकर दो।'** योगजीवन ने उत्कृष्ट वस्तुएँ लाकर ठाकुर के सामने रखीं। ठाकुर के आदेशानुसार मेरे लिए मीठा तथा दिन में आहार निषिद्ध था, लेकिन ठाकुर ने अपने हाथों से सामने बिठाकर रसगुल्ला, संदेश आदि तृप्तिपूर्वक खिलाया। फिर थोड़ी देर चुप रहे। ठाकुर का इतना आदर-सत्कार पाकर भी

मैं निरुद्विग्न न हो पाया। ठाकुर की बातें स्मरण आने पर भीतर खलबली सी मच जाती है। ठाकुर ने कहा था-**'ब्रह्मचारी का अबकी बार इस पार या उसपार। हरिद्वार जाकर ठीक तरह से चल सके तो सच्चा ब्रह्मचारी बनकर संन्यास मार्ग पर चलेगा अन्यथा गृहस्थी करनी पड़ेगी।'** अब मेरे भाग्य में क्या है, कुछ नहीं जानता। मेरा पहाड़ पर रहना सार्थक हुआ या नहीं, श्रीचरणों में आश्रय देकर ठाकुर मुझे संन्यास पथ पर चलाएंगे या फिर घर गृहस्थी करने भेजेंगे-यह तो ठाकुर ही जानें। मैं यह सब सोच रहा था कि ठाकुर ने कापी पर कुछ लिखा और मुझे थमा दिया। मैंने पढ़ा-**'तुम्हें जिस उद्देश्य से पहाड़ पर भेजा था, वह सफल हुआ। अब तुम मेरे साथ या और जहाँ कहीं इच्छा हो रह सकते हो। यहाँ तुम आज ही आसन लगा सकते हो।'** ठाकुर की कृपा देखकर मेरी आँखों में आँसू आ गए। मैं ठाकुर को शालग्राम दिखाना चाहता था, मैंने कण्ठ से खोलकर शालग्राम दिखाया। ठाकुर थोड़ी देर उनकी ओर ताकते रहे फिर बोले-**'चक्र बहुत ही अच्छा है।'** मैंने आज ही सुकिया स्ट्रीट आने का निश्चय करके ठाकुर से बताया एवं प्रणाम करके अभय बाबू के साथ उनके घर लौटा। किसी तरह भात में सब्जी डालकर एकसाथ पकाकर भोग लगाया। शाम पाँच बजे प्रसाद पाकर, सामान लेकर सुकिया स्ट्रीट पहुँचा। उसी घुमावदार सीढ़ी से पोर्च की छत पर पहुँचा। घर के पश्चिम का कमरा राखाल बाबू की बैठक है। भीतर की कुर्सी, टेबल व साजसज्जा देखकर अवाक् रह गया। साथ लगा बड़ा हॉल है, जिसके एक कोने में पोर्च की तरफ के द्वार से कुछ दूर उत्तर की ओर दीवार से सटाकर ठाकुर ने आसन लगाया है। कमरे के सामने बरामदे से ही

साष्टांग होकर प्रणाम करने लगा। तुरंत ठाकुर ने 'हूँ' कहकर मुझे बुलाया। पास जाते ही उन्होंने दरवाजे के पश्चिम में उत्तर की ओर मुख करके आसन लगाने को कहा। इशारे से यह भी कहा कि दिन रात तुम यहीं रहोगे। ठाकुर की असाधारण कृपा देखकर मुझे बड़ा ही आनंद आया, मैं स्थिर होकर बैठकर नाम करने लगा।

परलोक के संबंध में बातें: गीता व भागवत् का धर्म।

आज गुरुभ्राताओं ने ठाकुर से परलोक के संबंध में पूछा-मृत्यु के बाद क्या सभी को एक ही स्थान में जाना पड़ता है? कोई भी मृत बंधु परलोक के बारे में कुछ परिचय क्यों नहीं देते?

ठाकुर ने लिखा-**'मनुष्य जब तक जीवित रहता है, परलोक जानने के लिये व्याकुल रहता है। परलोक की बातें कहता व सुनता है, किन्तु मर जाने के बाद वही व्यक्ति अपने मित्रों से आकर कोई बात कहने का यत्न नहीं करता। इससे यही सिद्ध होता है कि परलोक सबके लिये एक ही प्रकार का नहीं होता। धार्मिक, जिन्होंने नाना प्रकार की कामना करके धर्म किया है, उनका परलोक एक प्रकार का होगा। वे धार्मिक, जिन्होंने निष्काम धर्म किया है, उनका परलोक दूसरी तरह का होगा। पापी लोगों के लिए प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के परलोक की व्यवस्था है। इसलिये जो परलोक सिधार जाते हैं वे सक्षम होने पर भी धरती के लोगों से यह सब कहना प्रयोजनीय नहीं समझते। कहने पर भी कोई विश्वास नहीं करेगा।'**

प्रश्न-गीता का धर्म एवं भागवत् का धर्म क्या एक ही है। इनसे

क्या एक ही अवस्था प्राप्त होती है।

ठाकुर ने लिखा-**‘भगवद् गीता और श्रीमद् भागवत्, ये दो ग्रंथ उपनिषद् के भाष्यस्वरूप हैं। गीता एवं भागवत् की प्रणाली के अनुसार साधन करने पर ऋषियों के हृदय की बात-‘सत्यं ज्ञानमन्तं ब्रह्म’ आदि ऋषिवाक्यों की सत्यता प्रत्यक्ष होती है, इसमें संदेह नहीं। ब्रह्म के दो भाव हैः-नित्य एवं लीला। नित्यसाधन गीता द्वारा एवं लीलासाधन भागवत् द्वारा होता है। ‘ब्रह्मविद् परमाप्नोति शोकंतरति चात्मवित्। रसो ब्रह्म रसं लब्धा नन्दी भवति नान्यथा।’ ब्रह्मविद् परमपद लाभ करते हैं। आत्मविद् शोक से मुक्त होते हैं। रसस्वरूप ब्रह्म के रस लाभ करके आनंदित होते हैं। अन्य उपाय से आनंद नहीं प्राप्त होता। ब्रह्मज्ञान, योग और भगवत्तत्व, ये तीन प्रकार के साधन इसके अभ्यंतर में हैं।**

भक्ति प्रीति नहीं: भक्ति गोपनीया है।

प्रश्न: भक्ति व प्रीति सभी क्या माया है?

ठाकुर-**‘भक्ति प्रीति नहीं है। भक्ति भजन है, प्रीति आसक्ति। पुत्र को स्नेह करता हूँ, मित्र से प्रीति रखता हूँ, यह सब माया है। पुत्र की पूजा, कन्या की पूजा, स्त्री की भक्ति करता एवं पूजा करता हूँ, यह सब क्या पूजा है? भगवान के चरणों में उस भाव से पूजा करना भक्ति है। वह माया नहीं है।’**

प्रश्न:भक्ति किस प्रकार प्राप्त होती है, इसकी रक्षा किस प्रकार की जा सकती है?

ठाकुर-**‘भक्ति साध्य-साधना से नहीं आती। जिसे भक्ति भाव**

आ जाय वही धन्य है। भक्ति में विचार नहीं रह जाता। पुत्र धूल-सना हो या साफ सुथरा हो पिता उसे देखते ही तुरंत गोद में उठा लेते हैं। पुत्र होने के पहले पुत्र-स्नेह कैसा होता है, कोई समझ नहीं पाता। भक्ति अहैतुकी है, अच्छे बुरे का विचार नहीं करती। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य ये तीनों वृद्ध थे। भक्तिदेवी वृन्दावन जाकर युवती हो गई। ज्ञान और वैराग्य वृद्ध ही रह गए। भक्ति को कृपण के धन के समान गुप्त रखना चाहिए। शास्त्रकारों ने भी उसकी तुलना युवती के स्तन के की है। बालिका खुले बदन घूमती फिरती है। युवती होने पर स्तन वस्त्र द्वारा आच्छादित रखती है। स्वामी के सिवा पिता-माता, गुरुजन भी उसे नहीं देख पाते। भक्ति को भी ठीक उसी प्रकार भगवान के सिवा अन्य सभी के पास गोपनीय एवं सावधानीपूर्वक रक्षणीया जानना चाहिये। पहले-पहल जब भाव का आरंभ हुआ, जरा आँखों से पानी गिरने लगा तो सोचा कि लोग देखें। बाद में देखता हूँ इसे कैसे गोपनीय रखूँ। हृदय के एकांत कोने में इसे छुपाने की इच्छा होती है। भक्ति गोपनीया है।'

'कविराज गोस्वामी ने कहा है--प्रतिष्ठा शूकरी-विष्ठा है। लोग अँगुली दिखाएँ तो बड़ी हानि होती है। जैसे वृक्ष में फल लगने पर काली हंडी पर चूना लगाकर या फूँस के पुतले बनाकर रखवाली करते हैं, उसी प्रकार साधन की अवस्था प्राप्त होने पर बालक, उन्मत्त या पिशाचवत् आचरण लेकर रहना चाहिये। बल्कि कोई गाली दे तो अधिक उपकार होता है। भाव आदि दबाकर रखना ही अच्छा है। खूब यत्न करना होगा फिर भी न दब सके, तो उपाय नहीं। यदि कुछ भी न हो पाये तो कोई बात

नहीं, चुपचाप बैठे रहो, यह तो भी अच्छा है, किन्तु जरा कुछ हो और अहंकार आ जाय तो सर्वनाश है। कुत्तों या बंदरों को अधिक छूट दे दिया जाय तो कंधे पर आ चढ़ते हैं। आते ही अगर अनुशासित किया जाय, तो दूर जाकर बैठते हैं, कुछ दो तभी खाएंगे। प्रतिष्ठा भी ठीक उसी प्रकार है।'

संध्या के समय संकीर्तन आरंभ हुआ। संकीर्तन के आनंद में सभी मग्न हो गए। ठाकुर निर्वात दीपशिखा के समान एक ही तरह समाधिस्थ रहे। कीर्तन के अंत में ठाकुर अपने हाथों से हरिलूट का बताशा लुटाने लगे। कुछ देर तक गुरुभ्राता आनंदपूर्वक धर्म-प्रसंग करते हुए अपने-अपने घर चले गए। मैंने ठाकुर के समीप, तीन चार हाथ दूरी पर अपने आसन पर शयन करके, सुख से रात बिताई।

रात के चार बजे जागकर देखता हूँ सभी निद्रामग्न हैं। ठाकुर अपने आसन पर समाधिस्थ हैं। कल शाम आकर पानी व शौचालय कहाँ हैं, घर में किसी से पूछा न था, इसलिये मछुआ बाजार अभय बाबू के घर चला गया। वहाँ स्नानादि संपन्न करके शालग्राम के लिये फूल, तुलसी, गंगाजल आदि ले सुकिया स्ट्रीट आया। नियमित संध्या, तर्पण, न्यास करके शालग्राम की पूजा आरंभ किया। नौ बजे से तीन बजे तक शालग्राम को तुलसी अर्पण करता रहा। ठाकुर के पास शालग्राम पूजा में बड़ा ही आनन्द आया। साढ़े तीन बजे अभय बाबू के घर भिक्षान्न लेकर, भोजन पकाकर शालग्राम को भोग लगाया एवं प्रसाद पाया। शाम को सुकिया स्ट्रीट लौटकर देखता हूँ, पूरा हॉल दर्शनार्थियों से परिपूर्ण है।

ताड़ना से नहीं, प्रेम से संशोधन उचित है।

अतिथि की अवैध माँग पूर्ण करना उचित है या नहीं?

एक धनी, विद्वान् गुरुभ्राता ने पुत्र के अवज्ञापूर्ण तथा दुश्चरित्र आचरण से दुःखी होकर ठाकुर से पूछा-छोटे लड़के कुअभ्यास के शिकार हो जाये तो उन पर किस प्रकार अनुशासन रखा जाय? ठाकुर-**'क्रोधपूर्वक ताड़ना करने पर उसका फल अच्छा नहीं होता। धीर भाव से विचारक की भाँति बालकों पर अनुशासन करना चाहिये। उनके विरुद्ध शिकायत सुनने पर, विशेष रूप से अनुसंधान किये बिना, सहसा विचार नहीं कर लेना चाहिए। बच्चों को बुरी संगत से हमेशा बचाना चाहिये। कुसंगत के दोष विभिन्न पुस्तकों द्वारा दिखाने चाहिये। उस पर भी न माने तो दूसरी तरह अनुशासित करें पर प्रहार कदापि नहीं, कठोर शासन का फल अच्छा नहीं होता। यह कलि का धर्म है। काल के गुण से यह सब होगा। माता-पिता इन्हें इन कार्यों का विषमय फल दिखाया करें। वर्तमान युग में शासन से फल नहीं मिलेगा। प्रेम से उनमें संशोधन लाना होगा। माता-पिता की बातों से यदि संतान के हृदय में आघात पहुँचे, तो कई बार मृत्यु हो जाया करती है या फिर बच्चे गृहत्याग करते हैं।'**

एक गुरुभाई ने ठाकुर से पूछा-आपने गुरुज्ञान से अतिथि सेवा करने को कहा है, लेकिन अतिथि अगर शराब, गांजा या ऐसी अनुचित वस्तु का आग्रह करे तो कोई आपत्ति किया करूँ या नहीं? ठाकुर-**'अतिथि के धर्ममत में भ्रम रहे तो उसका संशोधन करके, अतिथि सेवा नहीं करना चाहिए। ऐसी स्थिति में उन्हें जो**

प्रयोजनीय अर्थात् धर्मतः जो प्रयोजनीय वस्तु हो वह प्रदान करना होगा। उसके बाद भी वे ठहरें तो उनके मत की अवैधता उन्हें समझा देना कर्तव्य है। अतिथि का अर्थ है, जो कभी पहले न आए हों एवं भूखे हों। अतिथि गुरु-तुल्य हैं, वे जो सेवन करें देने को हम बाध्य होते हैं। अतिथि का नाम-धाम मत पूछो। भूखे व्यक्ति का संशोधन करने बैठना निष्ठुरता होगी। धर्मतः प्रयोजन न हो तो केवल नशे के लिये मादक वस्तु देने को हम बाध्य नहीं हैं। बाहर की शराब तो केवल शरीर पर क्रिया करती है। यदि उससे नशा न हो, तो धर्मपथ का बाधक नहीं बनती। लेकिन काम-क्रोध आदि से बढ़कर मादक और कोई भी नहीं। इससे धर्म नष्ट होता है, भगवान से भी वंचित रहना पड़ता है। इनका जिन्होंने त्याग नहीं किया, वे सभी मादक द्रव्य सेवन करते हैं।'

संध्या-संकीर्तन के मृदंग-मंजीरे बज उठे। रात नौ बजे तक कीर्तन का आनंद लेकर गुरुभ्रातागण चले गए।

कलकत्ते में भिक्षा की असुविधा: ठाकुर के भंडार से ही भिक्षा लेने का आदेश।

आज रात्रि के अंतिम भाग में उठकर अभय बाबू के घर गया। स्नानादि संपन्न करके, फूल, तुलसी लेकर ठाकुर के पास पहुँचा। संध्या तर्पण, होम, न्यास करने में नौ बजे गए। चण्डी व गीता का पाठ ठाकुर के इतने समीप बैठकर करने में संकोच आया। विशेषतः ठाकुर जब ग्यारह बजे तक विभिन्न शास्त्र ग्रंथ पाठ करते हैं। नौ बजे से ग्यारह बजे तक गायत्री जप करके, चंदन सहित बारह तुलसी पत्र शालग्राम को अर्पण किए। तीन बजे तक नाम जप करते

हुए, ठाकुर का रूप शालग्राम में ध्यान करके तुलसी व गंगाजल ठाकुर को चढ़ाया। आहार की बड़ी ही असुविधा है, क्योंकि कलकत्ते जैसे शहर में भिक्षा की कोई सुविधा नहीं। अपरिचित स्थानों में निंदा या अवज्ञा भोगना पड़ता है, परिचितों के पास लज्जा, संकोच और अभिमान बाधक होते हैं। साढ़े तीन बजे आसन से उठकर गुरुभ्राता श्रीमहेन्द्रनाथ घोष के यहाँ भिक्षा ग्रहण कर, वहीं स्वपाक करके, प्रसाद पाया। कल फिर भिक्षा के लिये कहाँ जाऊँगा, यह चिंता उद्विग्न करने लगी। मैंने मन ही मन ठाकुर से इस भिक्षा की असुविधा की बात कही। संध्या के पूर्व ठाकुर के पास पहुँचते ही एक कागज पर कुछ लिखकर, योगजीवन से नानी माँ को पढ़कर सुनाने को कहा। योगजीवन ने वह मुझे भी पढ़कर सुनाया। लिखा था-**'ब्रह्मचारी जब तक कलकत्ते में है, उन्हें अन्यत्र भिक्षा करने का प्रयोजन नहीं है। यहीं से अपनी प्रयोजनीय वस्तुएँ ग्रहण करके पकाकर खाएँ। यहाँ की सारी वस्तुएँ भिक्षान्न ही हैं, अतएव दूसरी जगह भिक्षा निष्प्रयोजनीय है। इच्छा हुई तो कभी-कभी अन्यत्र भिक्षा कर सकते हैं। आहार की मात्रा एवं समय निश्चित न रखने पर शरीर रुग्ण हो जाएगा। शरीर अस्वस्थ होने पर साधन-भजन कुछ नहीं हो पाता, सभी नष्ट हो जाता है।'** मुझ पर ठाकुर की विशेष कृपा देखकर बड़ा आनंद आया। कल से ठाकुर के भण्डारगृह से ही एक साथ पकाने योग्य वस्तुएँ लेकर, प्रसाद ग्रहण करने का निश्चय किया।

योगजीवन द्वारा दादी माँ का श्राद्ध: ठाकुर द्वारा तीन अंजली जल-दान।

कुछ दिनों से अभय बाबू के घर भिक्षा ग्रहण करता था। वहाँ लड़कियाँ मुझे मदद पहुँचाती थीं, जैसे चूल्हा जला देतीं, पकाने के उपकरण सामने बढ़ा देतीं। अपनी आवश्यकता के अनुसार वस्तुएँ लेकर शेष मैं लौटा दिया करता था। कभी भाते सिद्ध भात (भात में ही सब्जियाँ पका लेता), कभी खिचड़ी पकाकर तृप्तिपूर्वक प्रसाद पाता था, कई गुरुभ्राताओं से यहाँ मेरी मुलाकात हुई। अभयबाबू के मुख से ठाकुर की कई बातें, लीलाएँ और कहानियाँ सुनने में बड़ा ही आनन्द आता है। मैं हरिद्वार में था, इसलिए यह सब नहीं जानता। कुछ अतीत की घटनाएँ जैसे जैसे सुनता हूँ--डायरी में लिख लेता हूँ। मैंने सुना-हमारी परमाराध्या दादी माँ स्व. स्वर्णमयी देवी ने ढाका गेट आश्रम में, ठाकुर के सामने ही, गत चैत्र माह में देह-त्याग दिया। ठाकुर संन्यासी हैं, अतः माता के श्राद्ध या पिण्डदान के अधिकारी नहीं है। पुत्र योगजीवन को लेकर वे कलकत्ता आए। मछुआ बाजार के केशव बाबू के नवविधान मंदिर के पीछे ठहरे। ग्यारहवें दिन योगजीवन को लेकर गंगातट प्रसन्न कुमार ठाकुर घाट पहुँचे। धर्मनिष्ठ, श्रद्धावान्, गुरुभ्राता श्रीअचिन्त्य कुमार चक्रवर्ती महाशय को पुरोहित बना योगजीवन द्वारा कुलप्रथा एवं शास्त्र के अनुसार श्राद्ध कार्य संपन्न करवाया। इस समय ठाकुर ने मातृदेवी के उद्देश्य से तीन अंजली जल प्रदान किया। उस समय ठाकुर ने लिखा था-**‘माता ठाकुरानी योगजीवन का श्राद्ध और मेरे प्रदत्त तीन अंजली गंगाजल को परम आग्रह सहित ग्रहण करके अत्यन्त तृप्त हुई।’**

श्राद्ध स्थल पर मुकुन्द का कीर्तन: कीर्तन में

शक्ति संचार।

इसी बीच गुरुभ्राताओं ने इस गृह के सामने की विस्तृत भूमि को साफ सुथरा करके पण्डाल लगवाकर, कीर्तन की व्यवस्था भी कर रखी थी। ठाकुर के पहुँचते ही भक्त कीर्तन गायक श्री मुकुन्द दास के मृदंग, करताल बज उठे। चारों ओर से श्रोताओं के आने से पण्डाल भर गया। शिष्यों सहित ठाकुर आए और वे साष्टांग दण्डवत् करके खड़े हो गए। ठाकुर को देखकर भक्तगण बारंबार हरिध्वनि का घोष करने लगे। ठाकुर ऊपर की ओर हाथ उठाकर भाव विभोर अवस्था में कहने लगे-**'जय शचीनंदन! जय शचीनंदन!! हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा। कलि के जीवों को भय नहीं, भय नहीं, भय नहीं है।'** ठाकुर की हृदयस्पर्शी मधुर वाणी आबाल-वृद्ध-वनिता सभी के अन्तःकरण में प्रविष्ट हो गई। सबकी आँखों से आँसू की धारा बह निकली। यह दृश्य अपूर्व था। अति श्रुति-मधुर संकीर्तन आरंभ हुआ। ठाकुर भाव विह्वल हो गए। उनका सारा अंग पृथक्- पृथक् काँपता रहा। मस्तक की जटाएँ ऊपर की ओर खड़ी हो गईं। ठाकुर आमने-सामने पीछे घूम-घूमकर उद्दाम नृत्य करने लगे। चारों ओर से जोरों की हरिध्वनि गूँजने लगी। आए हुए लोग ठाकुर की ओर आत्मविस्मृत होकर देख रहे थे। ठाकुर के गद्गद् कंठ से किए गए हरिध्वनि घोष में न जाने कौन सी महाशक्ति का संचार हुआ। दर्शक मण्डली विभिन्न स्थानों पर अभिभूत होने लगी। संकीर्तन समान उद्यम से बढ़ता ही चला। महाभाव की बाढ़ में भक्तगण और गुरुभाई दिशा-शून्य से हो गए। ठाकुर बड़ी देर नृत्य करते हुए अचानक खड़े

हो गये। चारों ओर से पुनः हरिध्वनि होने लगी। ठाकुर भूमि पर गिरकर लोटने लगे। धीरे-धीरे संकीर्तन की मधुर ध्वनि शांत हुई। कीर्तन के अंत में ठाकुर ने निमंत्रित ब्राह्मणों को स्वादिष्ट भोजन से तृप्त किया। भिखारियों को चावल, दाल, पैसे वितरित करवाया। शहर के अनेक गुरुभाई-बहन तृप्तिपूर्वक प्रसाद पाकर ठाकुर का संगलाभ करके धन्य हुए। विविध धर्मप्रसंग से सारा दिन व्यतीत हुआ।

दादी माँ की मृत्यु से कई तत्त्व प्रकट। जीवात्मा को क्षुधा-तृष्णा का भोग। श्राद्ध में ब्राह्मण भोजन की व्यवस्था क्यों?

गुरुभ्राताओं ने ठाकुर से पूछा-दादी माँ ने देह त्याग के बाद क्या किया? साधारण मनुष्यों का देह त्याग के बाद क्या होता है? ठाकुर ने लिखा-**'माताजी की मृत्यु से अनेक तत्त्व प्रकट हुए। उस दिन मृत्यु के तीन घंटे पहले से उनकी आत्मा शरीर से निकलकर कमरे में कष्टपूर्वक विचरण कर रही थी। देह को कमरे से बाहर लाने पर आत्मा ने मुक्त आसमान की ओर दृष्टि डाली। तब उनके पूर्वजों ने आकर उन्हें ग्रहण कर लिया। पूर्वजगण पुण्यात्मा को ले जाकर पितृलोक या मातृलोक में रखते हैं। वहाँ एक वर्ष तक आनंदपूर्वक रखते हैं। एक वर्ष बाद जिनका जैसा कर्म हो, उसी के अनुसार अवस्था प्राप्त करते हैं। वे इस एक वर्ष में श्राद्ध के फल भोग करते हैं। पापात्मा होने पर इस एक वर्ष में उत्कट यत्रंणा भोगते हैं। माता इस प्रकार अनेक घटनाओं की जानकारी मुझे दे रही हैं। यह मेरे लिये बड़ी आनंददायक बात**

है।'

एक ब्राह्म विचार रखने वाले गुरुभ्राता ने ठाकुर से पूछा-क्या जीवात्मा परलोक जाकर भी भूख-प्यास का भोग करती है। दुखी, दरिद्र, भिखारियों को न खिलाकर श्राद्ध में ब्राह्मणों के भोजन की व्यवस्था क्यों रखी गई है? ठाकुर ने लिखकर बताया-**'जीव के स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण इन त्रिविध देह में ही भूख प्यास है। स्थूल देह में क्षुधा, तृष्णा लगने पर, स्थूल वस्तु से ही स्थूल देह की प्रत्येक ग्रास में तृप्ति, क्षुधा-निवृत्ति और पुष्टि होती रहती है। सूक्ष्म देह में आहार की वस्तु दर्शन मात्र से ही तृप्ति एवं क्षुधा-निवृत्ति, पुष्टि होती है। कारण देह में, यह देह स्वयं कुछ नहीं कर पाता, तब कोई ब्रह्मविद् ब्राह्मण यदि खाद्य ग्रहण कर अपने जठराग्नि को आहुति दे तो उसकी तृप्ति द्वारा ही, परलोकगत कारण देह की तृप्ति, क्षुधा-निवृत्ति और पुष्टि होती है। इसीलिये श्राद्धपात्र, घृत, खीर आदि ब्राह्मण को देने की प्रथा है।'** ठाकुर ने परलोक में आत्मा की तृप्ति, पुष्टि और मुक्ति विषयक अनेक बातें कहीं।

दादी माँ के श्राद्ध के बारे में ठाकुर ने लिखा था-**'यथाविधि गया में पिंडदान करने से प्रेतात्मा की मुक्ति होती है। माताजी की मृत्यु के बाद पितृलोक एवं मातृलोक से पूर्वजगण आकर मुझसे बोले, कि ग्यारहवें दिन योगजीवन द्वारा श्राद्ध कार्य संपन्न हो। उनके नाम से द्रव्यादि दान करें। ब्राह्मणों, वैष्णवों को, दुखियों को भोजन कराये तथा दान करें। दूसरे पक्ष में गया जाकर पिंडदान करें। अन्य पक्ष में, आश्विन माह में, यथासाध्य चावल, जलपात्र, फलमूल, खाद्य वस्तु दान करें। शास्त्रानुसार**

अभी गया में पिण्डदान नहीं हो सकता। उन्माद रोग के समय जो कुछ किया था, उसका प्रायश्चित हुए बिना ही मृत्यु हुई है। अतः या तो एक वर्ष बाद कुश पुत्तलिका बनाकर श्राद्ध करना होगा या एक वर्ष बाद अन्य पखवाड़े में गया जाकर पिण्डदान करना होगा। अभी अन्न, वस्त्र, जलपान भोजनपात्र तथा खाद्य पदार्थ दान करके वैष्णव, ब्राह्मण तथा दुखियों को दान देना होगा।'

दादी माँ के देहत्याग के संबंध में ठाकुर ने और भी इस प्रकार लिखा है-**'मेरी माता ठाकुरानी विधु की गोद में दूध पी रही थी, तभी मुझे बुलाया। मैंने देखा, अब इन्हें बाहर ले जाना उचित है। बाहर ले जाकर उन्हें सुला दिया। मुख की शोभा बड़ी सुंदर थी। ऐसा लगता था, मानो सारे कष्टों से दूर, शांति प्राप्त कर रही हैं। ठीक उस समय मेरी ओर ताकने लगीं। चारों ओर हरिनाम गूँज रहा था। केलो कुत्ते ने भी उन्हें साष्टांग प्रणाम किया।'**

रामकृष्ण परमहंसदेव के उत्सव में निमंत्रण।

१९भाद्रपद मंगलवार। आज जन्माष्टमी है। रामकृष्ण परमहंसदेव के समाधि स्थान में आज समारोहपूर्वक कीर्तन एवं उत्सव का आयोजन किया गया है। गुरुभ्रातागण ठाकुर के साथ जाने के लिये तैयार हो गए हैं। मुझसे भी जाने को कहा गया। मैंने कहा-ठाकुर स्वयं न कहें तो मुझे जाने का साहस नहीं। श्री राखाल बाबू मुझसे अत्यन्त स्नेह करते हैं, अतः उन्होंने ठाकुर से पूछा-सभी तो आपके साथ कीर्तन में जाएंगे, ब्रह्मचारी नहीं जाएगा? ठाकुर ने कहा-'जाने में क्या आपत्ति है, किंतु शालग्राम की पूजा समाप्त कर

लें, फिर इच्छा हो तो जा सकते हैं।' ठाकुर की बातें सुनकर मैं समझ गया, मेरा जाना नहीं होगा। मैंने तीन बजे तक यथाविधि शालग्राम की पूजा-तुलसी व जल से की। फिर सूने घर में अच्छा नहीं लगा इसलिये अभय बाबू के घर चला गया। अभय बाबू के घर छोटे-छोटे बच्चे भी ठाकुर के कृपाप्राप्त हैं। सारे परिवार में सर्वदा ही धर्म विराजमान है। खेलते-खेलते पड़ोस के मकान की एक छोटी लड़की अभय बाबू की भतीजी राधा रानी से पूछती है-क्यों तुम्हारे गुरु तो भगवान हैं, क्या मेरे गुरु भगवान नहीं? राधारानी ने उत्तर दिया-'हाँ-हाँ, सभी के गुरु भगवान हैं, पर किसी के सोचसमझकर, किसी के सचमुच के।' उस बच्ची की उम्र छः वर्ष की होगी।

सत्यदासी की अलौकिक अवस्था एवं दीक्षा।

अभय बाबू की भानजी सत्यदासी की बातें सुनकर मैं अवाक् रह गया। सौभाग्य से पूर्वजन्म में उसे किसी पर्वतवासी महापुरुष की कृपा प्राप्त हुई थी। उन्हीं की कृपा से बालिका को समय-समय पर गुरु स्मरण हो आता है। तब बालिका फूल चन्दन लाकर गुरुजी के आसन के सम्मुख पूजा करती है। पूजा के समय कभी-कभी भक्ति भाव से उसकी बाह्य संज्ञा लुप्त हो जाती है। इस समय तीन चार घंटे समाधि-मग्न रहती हैं। संयुक्त शब्दों तक का ज्ञान नहीं है, परन्तु बालिका संस्कृत में गुरु-स्तुति करती जाती है। उस समय स्पष्ट रूप से गुरुजी के चरण चिह्न आसन पर पड़ते हैं। महापुरुष के आविर्भाव के लक्षण बारंबार स्पष्ट होने से घर के लोग आश्चर्य चकित हो जाते हैं। ठाकुर के इस घर में पधारने से चार-पाँच दिन पहले बालिका से उनके गुरुदेव ने आकर कहा-माँ, यहाँ एक

महापुरुष आने वाले हैं। तुम उनसे दीक्षा-ग्रहण करना। सत्यदासी ने कहा-आप तो हैं, फिर दूसरों से दीक्षा लेने की क्या जरुरत? तब गुरुदेव ने उससे कहा-वर्तमान युग में कई लोग इनसे दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करेंगे, यही ईश्वर का विधान है। ठाकुर चार-पाँच दिन बाद माताजी के श्राद्ध के लिये योगजीवन को लेकर इस घर में पधारे। तब सत्यदासी ने ठाकुर से गुरुदेव के आदेश की बात कही और दीक्षा की प्रार्थना की। ठाकुर ने कहा-**'तुम्हारे गुरुदेव का आदेश मेरे लिये शिरोधार्य है। शीघ्र ही तुम्हें दीक्षा दूँगा।'** ठाकुर ने शीघ्र ही सत्यदासी को साधन प्रदान किया। साधन के समय गुरुशक्ति के प्रभाव से सत्यदासी आसन से कुछ ऊपर उठकर, कमरे में शून्य में अवस्थान कर रही थी। धन्य है सत्यदासी। धन्य है गुरुदेव की असाधारण कृपा! यह कृपा ही हमारे लिये एक मात्र भरोसा है।

सत्यदासी की नाना प्रकार की अलौकिक अवस्थाओं को रोग समझकर उसके माता-पिता बारंबार गुरुदेव गोसाईंजी से उसके कल्याण की प्रार्थना करने लगे। ठाकुर ने इस पर लिखा-**"सत्यदासी को उनके माता-पिता पहचान नहीं पा रहे हैं, क्योंकि ऐसी अवस्थाएँ उन्होंने कभी देखी ही नहीं। संसार के लोग इसे पीड़ा कह रहे हैं। एक दो लोग 'पीड़ा नहीं है' कहें तो भी कोई लाभ नहीं होगा। इसे रोग कहकर महात्माओं से ठीक करने का अनुरोध करने पर इस अवस्था की अवज्ञा करना ही होगा। महात्मागण बारंबार कह तो रहे हैं, कि यह रोग नहीं है, पर इसे भी न मानना क्या अच्छा है? पीड़ा कहाँ है, क्या ज्वर है या उल्टियाँ हो रही है? पेट में दर्द है? हृदय, फेफड़े, प्लीहा, आमाशय, मूत्राशय, गर्भाशय कहीं भी कोई पीड़ा है, तो फिर**

व्यर्थ पीड़ा का नाम क्यों दे रहे हैं?"

मोहिनी बाबू की दीक्षा व अनुभूति।

सुना है इसी घर में, हुगली जिले के अन्तर्गत रणबाजपुर निवासी ब्राह्म धर्मावलम्बी, सत्यनिष्ठ, परम उत्साही श्रीमोहिनी मोहन राय ने भी ठाकुर से दीक्षा ग्रहण की। ठाकुर की उनपर असीम कृपा रही। दीक्षा के बाद मोहिनी बाबू ने जो अवस्था प्राप्त की वह बड़ी ही विचित्र है। सुनकर आनंद आया सो छोटे दादा की डायरी से संक्षेप में लिख रहा हूँ। मोहिनी बाबू ने स्वयं लिखा है-'रात एक बजे दीक्षा पाकर, दूसरे दिन सुबह जैसे ही मैं नीचे उतरने लगा, मेरे सारे शरीर में सरसराती विद्युत धारा प्रवाहित होने लगी। सारे शरीर के अणु-परमाणु में गुरु प्रदत्त नाम मधुर व मधुरतर होकर अपने-आप चलने लगा। मैं एक आनंद सागर में डूब चला। जिधर भी देखता सभी कुछ आनंद बरसाते हुए प्रतीत होता था। वृक्ष, लता, पत्ते, सारी पृथ्वी स्वर्ण वर्ण की दिखाई पड़ने लगी। मैं मधुमय हो उठा। आनंद का वेग मानो धारण नहीं कर पा रहा था। पक्षियों के बोल मानो मधु बरसा रहे थे। सभी मधुरम्-मधुरम्-मधुरम्-मधुरम्। यह अवस्था लगातार एक माह तक रही।

मोहिनी बाबू सत्यनिष्ठ, सरल, विनयी, एवं उपासना में भावप्रवण थे। इसी से ब्राह्म बंधु उन्हें धर्म प्रचारक बनाने के प्रयास में थे। मोहिनी बाबू के द्वारा ही ठाकुर की सच्ची परख होगी-यही ब्राह्मलोगों ने सोचा था। मोहिनी बाबू का संग लाभ करके वे बड़े उपकृत और संतुष्ट हुए। अब वे भी ठाकुर की तरफ आकृष्ट होने लगे। कुछ समय हुआ, उन्होंने भी ठाकुर से दीक्षा ग्रहण की है एवं

कृतार्थ हो गए हैं।

ज्ञान बाबू की दीक्षा।

सुना है, वर्धमान जिले के आनगुणा ग्राम निवासी श्रीज्ञानेन्द्र नाथ हाजरा की दीक्षा भी इसी घर में हुई थी। उनकी दीक्षा की घटना भी बड़ी सुंदर है। संसार की नाना विपत्तियों, विघ्नों में से ठाकुर किस प्रकार अपने निज-जनों को आकृष्ट करके चरणों में आश्रय देते हैं। ज्ञानबाबू ने छोटे दादा की डायरी में लिखा है, मैं उसे संक्षिप्त करके अपनी डायरी में लिख रहा हूँ। ज्ञान बाबू ने लिखा है-'मैं ब्राह्म धर्म मतावलम्बी था। उपासना करते हुए अश्रु-पुलक आदि भाव आते थे, पर कोई भी भाव स्थायी नहीं होता था। हृदय का अभाव भी नहीं मिटता था। इस बारे में मेरे आत्मीय एवं गोसाईं के शिष्य श्रीदेवेन्द्रनाथ सामन्त से चर्चा करने पर उन्होंने गोसाईं से दीक्षा लेने का भी उपदेश दिया। गोसाईंजी तब श्याम बाजार में थे। मैं देवेन्द्र दादा के संग के प्रभाव से गोसाईंजी पर इतना आकृष्ट हुआ कि कॉलेज न जाकर रोज बारह से पाँच बजे तक उन्हीं के पास बैठा रहता। देवेनदादा से गोसाईं को दीक्षा की बात पूछने को कहा। देवेन दादा के कहने पर गोसाईंजी ने कहा-**'उसका वीर्य अत्यन्त तरल हो चुका है। शीघ्र पढ़ाई छोड़कर कलकत्ता त्याग न दे, तो पागल हो जायगा।'** देवेनदादा ने पूछा-अब उनके लिए क्या कर्तव्य है तो उत्तर में गोसाईं ने कहा-**'उसके लिये अभी काशी जाकर आरती दर्शन, गंगा स्नान एवं साधु दर्शन करना कर्तव्य है।'** उसी आदेश के अनुसार मैं श्रीश्यामाचरण लाहिड़ी महाराज के एक शिष्य के साथ काशी गया। लाहिड़ी

महाशय ने कहा-'साधु दर्शन की इच्छा से आप मेरे पास आए आपको दीक्षा दूँगा। इसी अभिप्राय से गोसाईंजी ने आपको काशी भेजा है।' उनकी बात पर विश्वास करके, प्रथा अनुसार मैंने पाँच रुपए प्रणामी देकर, उनसे दीक्षा ले ली। फिर रानीगंज आकर डेढ़ माह तक प्रणाली अनुरूप साधन करता रहा। इससे अन्तःकरण के समस्त सरस भाव सूख गए। मन में बड़ी जलन सी होने लगी। ब्राह्म समाज के आचार्य नगेन्द्र बाबू ने इस समय परामर्श दिया कि गोसाईंजी से सारी अवस्था लिख दूँ। मैंने लिखा तो, पर कोई उत्तर नहीं मिला। चैत्र संक्रांति के दिन बंगला सन् १२९८ में गंगाजल में इस दीक्षा का त्याग किया। वैशाख में स्वामी भूतानंद कलकत्ता आए। उनसे गहन रात्रि में मैंने जीवन की व्याकुलता का परिचय दिया, लाहिड़ी महाशय की दीक्षा की भी बात बताई। उन्होंने कहा- 'अरे बेटा, तुम ऐसे मूर्ख हो। पाँच रुपये में योग मिल जाएगा, जो लाखों रुपए में भी नहीं मिल सकता।' गोसाईंजी से दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की तो सुनकर वे संतुष्ट हुए और उन्होंने कहा-'हो जायेगा।'

इसके बाद बैशाख में ही गोस्वामी महाराज कलकत्ता आकर अभय बाबू के घर ठहरे। देवेनदादा से खबर पाकर मैं वहाँ पहुँचा। नृसिंह चतुर्दशी के दिन सुबह चार बजे मुझे साधन मिला। साधन प्राप्ति के साथ-साथ मैंने एक विद्युत प्रवाह का भीतर ही अनुभव किया, जिसने मुझे अवसन्न सा कर दिया, अब मुझे लगा मेरे हृदय का सारा अभाव पूर्ण हो गया है। गोसाईंजी से लाहिड़ी महाशय से दीक्षा लेने की बात कहने पर उन्होंने कहा-**'तुम्हारे लिये इसका प्रयोजन था। इससे तुम्हारा कल्याण ही हुआ है।'**

सदाशिव के रूप में ठाकुर का दर्शन, अनंत भंडार।

इस घर में ठाकुर के निवास के समय शहर से कुछ गुरुभगिनी आकर मध्याह्न में ठाकुर की फूलचंदन आदि से पूजा किया करती हैं। पूजा करते हुए वे संज्ञा-शून्य हो जाती हैं। एक दिन ब्राह्म विचार वाले गुरुभाई श्रीनवकुमार विश्वास ने कौतुहलवश देखा-ठाकुर सदाशिव के रूप में बैठे हुए थे। शुभ्र ज्योति उनके शरीर से विकीर्ण हो रही थी, वे ध्यान-मग्न थे। देखते ही ये भी बम-बम कहकर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। सुना है, गुरुभगिनीगण कोई ठाकुर के चरणों में पुष्प न चढ़ा पाती थीं। मस्तक व सर्वांग में चंदन, फूल, मालाएँ चढ़ाकर सजाती थीं।

प्रतिदिन मध्याह्न के समय अभय बाबू के घर महोत्सव सा होता है। लगभग चालीस-पचास लोग प्रसाद पाते हैं। एक दिन ठाकुर के पास के बरामदे में औरतें कहने लगी-अब क्या होगा, आज तो भंडार में चावल समाप्त है। ठाकुर ने उन्हें बुलाकर कहा-**'हंडे में जाकर देखो, चावल है।'** उन औरतों ने कहा-हम अभी देखकर आए हैं। हंडे में कुछ भी नहीं है। ठाकुर ने कहा-**'अच्छा एक बार और जाकर देखो तो सही।'** ठाकुर के कहने पर उन्होंने जाकर हंडे में हाथ डालकर देखा आधे भी अधिक हंडा चावल से भरा हुआ था। अभय बाबू एवं हरिनारायण बाबू की पत्नी से सुना कि गोसाईंजी जब तक इस घर में थे, हंडे का चावल तब तक खत्म नहीं हुआ। पंद्रह दिन यहाँ रहकर ठाकुर ढाका चले गये। श्री राखाल बाबू ने तभी ठाकुर से आग्रहपूर्वक अपने गृह आने का आग्रह किया

था। गोसाईंजी ने स्वीकृति दी थी कि जब कलकत्ता आएंगे पहले उनके घर ठहरेंगे। इसलिये इस बार सुकियास्ट्रीट में हैं।

श्रीमद् रामकृष्ण परमहंसदेव की बातें।

दिन डूबने पर अभय बाबू के घर से सुकिया स्ट्रीट लौटा। थोड़ी ही देर में गुरुभाईयों सहित ठाकुर भी लौटे। परमहंसदेवजी का उत्सव बड़ी ही अच्छी तरह संपन्न हुआ। घर लौटकर सभी रामकृष्णदेव की महिमा का वर्णन करने लगे। ठाकुर ने भी कई बातें कही। ठाकुर गया में दीक्षा प्राप्ति के बाद, कलकत्ता आकर बराह नगर के मणि मलिक के घर रामकृष्ण परमहंसदेव से मिलने गये थे। इन्हें देखकर रामकृष्णदेव ने कहा-'यह क्या, मैं तो तुम्हारे गर्भ-लक्षण देख रहा हूँ।' ठाकुर ने आकाशगंगा पर्वत के दीक्षा का वर्णन सुनाया। सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुये। ठाकुर एक बार उनसे दक्षिणेश्वर में भी मिले। रामकृष्णदेव अस्वस्थ थे, सो उनके भक्तों ने ठाकुर को उनसे मिलने नहीं दिया। इस पर ताली बजाकर रामकृष्णदेव ने ठाकुर को बुलाया और इनके सामने जाते ही कहा-'अहा तुम्हें देखकर मेरा हृदय कमल खिल उठा,' और वे समाधिस्थ से हो गए। पहले भी एक बार ठाकुर पश्चिम के स्थानों में घूमकर कलकत्ता लौटे एवं दक्षिणेश्वर परमहंसदेव से जाकर मिले। उन्होंने ठाकुर से पूछा-'इतना तो घूमकर आया, कहाँ क्या देखा बता तो सुनूँ।' ठाकुर ने कहा-**'कहीं चार आने, कहीं आठ आने, कहीं बारह आने और कहीं चौदह आने, लेकिन यहाँ सोलह आने है।'** इतना सुनते ही परमहंसदेव भावाविष्ट और संज्ञाशून्य हो गए।

रामकृष्णदेव के बारे में ठाकुर ने लिखा है-**'एक दिन केशव बाबू**

को देखकर आने पर रामकृष्ण देव ने कहा-आज केशव ने मेरी पूजा की लेकिन घर का दरवाजा बंद करके, ताकि उनके लोग कहीं जान न पायें। तो उसका दरवाजा बंद ही रहेगा। केशव बाबू सर्व समक्ष उन्हें गुरु रूप में स्वीकार करते तो अब तक सभी का उद्धार हो जाता।'

इसके बाद ठाकुर ने पुनः लिखा-**"केशव बाबू की मृत्यु के एक माह पूर्व उनसे मिलने गया। देखा, उनका शरीर मृतवत् प्रभाहीन था। दुःखी होकर उन्होंने कहा-गोसाईं, जो सोचा था वह पूरा न हो सका। पथहीन घूम-घूमकर जब ऐसा लगा कि पथ का अनुसंधान मिल गया, आशा भी जगी, तभी यह पीड़ा शुरू हुई। मुझसे केशव बाबू ने कहा-सुना है तुमने नया मत अवलम्बन किया हैं? मैंने कहा-नया-पुराना नहीं समझता। भगवान को पाने के लिये ही ब्राह्मसमाज आया था। अभी तो ब्राह्मसमाज में कितने ही परिवार आ गए हैं तब तो कुछ भी न था। अतएव बाहर के विषयों को लेकर झंझट करने नहीं आया। 'भगवान को पा गया हूँ', जब तक प्रत्यक्ष यह बोध न हो तब तक लौटूँगा भी नहीं, चाहे कोई भी उपाय लेना पड़े, लूँगा। बाहर के उपाय कुछ भी नहीं। मृत्यु के समय, मैं कृतार्थ हुआ, मेरी आशा पूर्ण हुई, प्रभु तुम ही सत्य हो, यह कहकर मरूँ ऐसी आकांक्षा है, ऐसा ही आशीर्वाद दें। केशव बाबू ने कहा-इस विषय में मुझे बहुत कुछ कहना है। आरोग्य लाभ करूँ तो तुम्हें बुलाऊँगा। किंतु खेद है कि उनका निधन हो गया।"**

एँडेदह एवं सप्तग्राम में अप्राकृतिक रूप से

मंदिर के द्वार का उद्घाटन।

एक दिन ठाकुर ने परमहंसदेव से धर्मालाप करते हुये कहा-भगवान के विग्रह आदि चित्रपट आजकल भाव शुद्ध रूप से अंकित नहीं होते। सुनकर परमहंसदेव ने कहा-तुमने एँडेदह मंदिर के बरामदे में लगा चित्रपट देखा है? ठाकुर ने कहा-नहीं। इस पर उन्होंने ठाकुर से कहा-एक बार वह जरुर देख आना। बड़े भावशुद्ध रूप से अंकित है। ठाकुर ने कहा-**'आप साथ लेकर जायँ तो हो सकता है।'** तब उन्होंने साथ जाने का निश्चय करके एक दिन नियत किया। उसी दिन ठाकुर उनके साथ एँडेदह मंदिर को चले। जाकर देखा मंदिर का द्वार बंद था। बाहर से ही प्रणाम करके, ठाकुर ने समीप ही महाप्रभु के समय के एक वैष्णव की समाधि का दर्शन किया। ठाकुर भावाविष्ट होकर जमीन पर लोटने लगे। फिर किसी तरह आकर मंदिर प्रांगण के पास एक कक्ष में बैठे। उन्हें भाव-विभोर देखकर परमहंसदेव ने गाना प्रांरभ किया। ठाकुर आंगन में पड़कर लोटने लगे। कुछ देर बाद उनकी बाह्य चेतना लौटी। वे विग्रह दर्शन के लिये मंदिर द्वार के सम्मुख आए, जो अब भी बंद था। पुजारीजी ने भीतर से द्वार बंद करके, पीछे के दरवाजे से निकलकर, उस पर भी ताला लगा दिया था। ठाकुर द्वार के सामने साष्टांग होकर प्रणाम करने लगे, तभी अकस्मात् द्वार अपने आप खुल गया। सभी अवाक् रह गये। साथ के लोगों ने चारों ओर घूमकर देखा, कहीं और द्वार खुला न था। पीछे एक ही द्वार था, जिस पर भी ताला जैसा का तैसा लगा था। थोड़ी देर बाद पुजारी आकर द्वार खुला देखकर विस्मित हो गया एवं विग्रह की प्रसादी

माला लाकर रामकृष्णदेव एवं ठाकुर के गले में पहनाया। ठाकुर को परमहंसजी ने बरामदे में वह सुंदर चित्रपट दिखाया, फिर सब लौट आए। ऐसी एक घटना थईपाड़ा में हुई थी।

श्रीधर के मुख से सुना है, ठाकुर एक बार श्रीधर, महेन्द्रबाबू आदि के साथ सप्तग्राम के उद्धरण दत्त के स्थान पर, षड्भुज महाप्रभु के दर्शनार्थ गये थे। पुजारी दूर से इन्हें देखकर भीतर से दरवाजा बंद कर, बाहर आकर खड़ा हो गया। द्वार खोलने का अनुरोध करने पर, पहले सवा रुपये प्रणामी की जिद करने लगा। उसकी जिद देखकर ठाकुर ने कहा-**'तब तो दर्शन नहीं कर पायेंगे।'** कुछ और कहकर ठाकुर मंदिर के प्रांगण में साष्टांग होकर पड़े। तभी एकाएक मंदिर का द्वार अपने आप खुल गया। ठाकुर ने कहा-**'महाप्रभु द्वार के पास खड़े होकर, झाँककर हमें देख रहे हैं।'** अद्भुत रूप से द्वार खुलने पर पुजारी लज्जित और भयभीत हुआ, बारंबार ठाकुर से क्षमा माँगने लगा। महेन्द्रजी ने भी घटना को इसी प्रकार बताया।

ठाकुर को रामकृष्णदेव का शिष्यकह कर प्रचारित करनेवाले एक शिष्य को ठाकुर की डाँट।

श्रीरामकृष्णदेव की महिमा बताते हुए ठाकुर के समवयस्क एक ब्राह्मगुरुभ्राता ने हमसे कहा-ठाकुर ने जो कुछ प्राप्त किया, वह सब रामकृष्णदेव की कृपा से ही किया है। उन्हीं से ठाकुर ने दीक्षा ली है। मानससरोवर के परमहंस, जो वे कहते हैं, वह कुछ नहीं है। मैं बहुत समय से उनके साथ रहा। गया में भी साथ ही था। मानस

सरोवर के परमहंस से दीक्षा होती, तो भला मैं नहीं जान पाता। गुरुभ्राता महेन्द्रनाथ मित्रजी को यह सब सुनकर बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने सोचा परमहंसजी के भक्त के नाम से परिचित कुछ लोग गोसाईं को अपने दल का बताने के लिये ऐसा प्रचार कर ही रहे हैं, अब गोसाईंजी के शिष्य यदि ऐसा असत्यभाषण करें, तो जनसाधारण में संदेह की सृष्टि हो सकती है। अतः इस विषय पर स्पष्ट मीमांसा होनी ही चाहिये। ऐसा सोचकर उन्होंने सबके सामने ठाकुर से जाकर यह बात कह दी। ठाकुर ने उस गुरुभ्राता को बुलवाकर अत्यन्त क्षुब्ध होकर कहा-**'मानससरोवर के परमहंसजी के पास मैने दीक्षा ग्रहण नहीं की-रामकृष्ण परमहंसदेव के पास ली है, यह गलत बात आपने कहाँ से सुन ली? आप बड़े मिथ्यावादी हैं। आप अभी यहाँ से चले जाइए, मैं आपका मुँह नहीं देखना चाहता।'** सबके सामने बहुत कुछ कहकर डाँटने पर उनके अभिमान को ठेस लगी। वे मछुआ बाजार अभय बाबू के घर चले गये।

मेरे शालग्राम के बारे में ठाकुर की बातें: शालग्राम की पूजा।

२२ भाद्रपद, बुधवार। रात्रि के शेष भाग में उठकर गंगास्नान, संध्या, तर्पण संपन्न कर आने में भोर हो गया। मार्ग में आते-आते ही लगभग हजार गायत्री जप संपन्न हुआ। आज एकादशी, हरिवासर है। सारा दिन भगवान का नाम लेकर ही बिताऊँगा, ऐसा सोचकर मन आनंदित हो उठा। न्यास के बाद निर्दिष्ट संख्या जप करके, गंगाजल व तुलसीपत्र शालग्राम को अर्पण करने लगा। तीन बजे

पूजा समाप्त हुई। तीन बजे आसन से उठकर ठाकुर ने मेरा शालग्राम माँगा। मैंने शालग्राम उनके हाथों में दिया। ठाकुर उन्हें लेकर बरामदे में गये। बायीं हथेली पर रखकर एकटक देखते रहे, फिर दाहिना हाथ ऊपर उठाकर चुटकी बजाकर **'हरि बोल! हरिबोल!'** कहकर नृत्य करने लगे। थोड़ी देर बाद मुझे शालग्राम देकर आसन पर जा बैठे। थोड़ी देर में कापी पर कुछ लिखकर सबके सामने बढ़ा दिया। सभी ने पढ़ा-**'ब्रह्मचारी के शालग्राम में सूर्यमण्डल के मध्यवर्ती महाविष्णु हैं। चारों ओर क्षीर सागर है। गले में वनमाला, कानों में कुण्डल हैं।'** फिर अस्पष्ट शब्दों में उन्होंने कहा-**'भारतवर्ष में ऐसे शालग्राम और मात्र दो ही हैं, एक किसी साधु के पास और एक नर्मदा तट पर। ये क्षीरोदार्णवशायी अष्टभुज महाविष्णु हैं।'** ठाकुर ने शालग्राम की बड़ी महिमा बताई। ठाकुर ने कहा-**'ये बड़े उत्कृष्ट चक्र हैं। ऐसे चक्र दुर्लभ हैं। महाविष्णु ने इनके भीतर रहकर मुझे एक-एक करके दशावतार प्रकट करके दर्शन कराया।'**

ठाकुर की बातें सुनकर मैंने सोचा यह क्या? शालग्राम में तो मैं केवल अपने गुरुदेव की ही पूजा करता हूँ, तो फिर क्या ये ही महाविष्णु हैं? महाविष्णु तो अनंतदेव हैं, स्वयं भगवान नहीं। मन जरा उद्विग्न सा हो उठा? ठाकुर की ओर देखा तो उनका रूप अति सुंदर, गौरवर्ण हो उठा था। स्वयं गौरांग महाप्रभु ही स्वयं भगवान हैं। नित्यानंद अनंतदेव। शालग्राम में संभवतः गौरांग महाप्रभु नहीं है। गुरुदेव शायद नित्यानंद महाप्रभु ही हैं। मेरा इस प्रकार संदेह दूर करने के लिये ही ठाकुर का रूप गौरांग हो उठा है। मैंने ठाकुर का इतना सुंदर गौर रूप-इसके पहले कभी नहीं देखा था। दूसरे दिन ठाकुर इस प्रकार बैठते हैं कि मैं ठाकुर का बाँया अंग मात्र देख

पाता हूँ, किंतु आज देखता हूँ,ठाकुर मेरी ओर मुँह करके सीधे बैठे हैं। बीच-बीच में मेरी ओर सरल स्निग्ध दृष्टि से देख भी रहे हैं। ठाकुर ने कहा था-**'गुरु के नेत्रों या भ्रूद्वय के बीच दृष्टि रखना।'** ठाकुर के तिरछे रहने पर उनके ललाट या दोनों आँखे मैं नहीं देख पाता। आज मन ही मन ठाकुर को सामने से देखने की प्रार्थना किया था। शायद ठाकुर मेरी आशा पूर्ण कर रहे हैं। शालग्राम में ठाकुर की ही पूजा किया करता हूँ, विष्णु, महाविष्णु को तो मैं नहीं जानता। ठाकुर शालग्राम में रहकर मेरी पूजा ग्रहण करते हैं या नहीं, यह बात स्पष्ट जानने हेतु शालग्राम को फूल, तुलसी-ठाकुर के उद्देश्य से अर्पण करता हुआ, मन ही मन कहने लगा-ठाकुर वस्तुतः यदि तुम इनके भीतर से मेरी पूजा ग्रहण करते हो, तो यह फूल, तुलसी तुम्हें अर्पण करता हूँ, तुमने ग्रहण किया इसकी जानकारी मुझे देना। ऐसा कहते हुए, ठाकुर की तरफ देखा, उन्होंने चंचल दृष्टि से शालग्राम को देखते हुए फट से अपने पैर का अंगूठा दाहिने हाथ से पकड़कर, करंग से जल लेकर अंगूठे को दो-तीन बार धो लिया एवं शालग्राम की ओर देखते हुए आँखें बंद कर ली। मैंने ठीक उसी पैर के अंगूठे में तुलसी प्रदान किया था। मेरी आँखों में आँसू आ गए, लग रहा था मानो ठाकुर मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं।

किसी ने पूछा-विभिन्न शालग्राम पूजा से क्या एक ही फल प्राप्त होता है? शालग्राम पूजा से क्या उपकारिता मिलती है। ठाकुर ने लिखा-**'सत्व, रजः, तमः मनुष्य के ये तीन गुण हैं। इन तीन गुणों के साथ प्रत्येक शालग्राम चक्र का मेल है। जिस चक्र के साथ साधक का अधिक मेल हो उसे सम्मुख रखकर पूजा करने पर, ब्रह्मशक्ति का प्रकाश देखा जा सकता है।'**

निर्जला एकादशी के नियम एवं फल।

संध्या के कुछ पूर्व ठाकुर ने मुझसे इशारे से बातें करना आरंभ किया। मैं एकादशी निर्जला करता हूँ, जानकर वे बड़े संतुष्ट हुए। बारबार स्नेहपूर्ण दृष्टि डालकर मेरा उत्साह बढ़ाने लगे। हरिद्वार में निर्जला एकादशी प्रयत्न करके भी नहीं कर पाया, बताने पर ठाकुर ने कहा-**'इससे कोई हानि नहीं हुई।'** एक गुरुभ्राता ने पूछा-क्या एकदशी व्रत करने से यथार्थ ही कोई फल मिलता है?

ठाकुर ने कहा-**'ठीक-ठीक एकादशी पालन कर सकने से फल मिलता है। जिसमें एकादशी के पहले दिन संयम रखना पड़ता है। फिर एकादशी के दिन निर्जला उपवास रहना पड़ता है। द्वादशी के दिन पारण करना पड़ता है। शुरूआत में इस प्रकार एकादशी करने में कष्ट बोध होता है, पर बाद में अभ्यास हो जाने पर आनंद मिलता है। एकादशी की दो प्रकार की उपयोगिता है। प्रथम तो बहुत दिनों के मलेरिया आदि ज्वरों में तथा कई अन्य रोगों में लाभ मिलता है। द्वितीयतः मन के साथ शरीर एवं शरीर के साथ तिथि नक्षत्रों का योग रहने से-एकादशी में नाम, साधन, भजन करने में मन लगाया जा सकता है। एकादशी के दिन कुछ लेना ही है तो वृक्ष से फल नहीं तोड़ना चाहिये। कच्चा नारियल, नारियल अन्य फल नहीं लेना, बेल लेना भी अच्छा नहीं। बल्कि पहाड़ी खरबूजा, सिंघाड़ा लेना अच्छा है, ये अच्छे, हल्के एवं पेट साफ करनेवाले होते हैं। पानी कम पीना चाहिये। स्मार्त व वैष्णव दोनों मतों में एकादशी की व्यवस्था है। गृहस्थों को दशमी संलग्न एकादशी अर्थात् स्मार्त-**

मत से एकादशी करना चाहिये। वेशधारी वैष्णवगण द्वादशी युक्त एकादशी पालन करते हैं। शांतिपुर के गोस्वामीगण प्रथम अर्थात् स्मार्त-मत का पालन करते हैं। नित्यानंद के वंश के गोस्वामी वैष्णव मत से करते हैं।'

मुक्ति परलोक, श्राद्ध, तर्पण एवं रुग्ण अवस्था में अलौकिक दर्शनादि के विषय में प्रश्नोत्तर।

आज बहुत लोग आने से हॉल भर गया। कई लोगों ने प्रश्न पूछे। उनमें से कुछ लिखकर रखता हूँ। एक व्यक्ति ने पूछा-जो मुक्त होते हैं, वे क्या पुनः संसार में आते हैं? ठाकुर ने लिखा-**'मुक्ति कई प्रकार की होती है। स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्म से कारण देह। वासना लय होने पर स्थूल देह से मुक्ति मिलती है, किन्तु सूक्ष्म और कारण देह तो रहता है। जिन-जिन वासनाओं के फलस्वरूप सूक्ष्म देह उत्पन्न होता है, उनके लय होने पर सूक्ष्म देह का भी लय हो जाता है, किंतु कारण देह रह जाता है। समस्त वासनाओं की पूर्णतः निवृत्ति न हो जाय तब तक कारण देह बना रहता है। कारण देह का लय होने पर ही संपूर्ण मुक्ति जानना चाहिये। कारण देह का विनाश न होते तक निर्विघ्न अवस्था में नहीं पहुँचा जा सकता। एक-दो वासनाएँ रह जाने पर भी सूक्ष्म देह धारण कर जन्म लेना पड़ता है। कारण देह लय हो जाने पर वह सदा सच्चिदानंद, आनंद सागर में डूबा रहता है। वहाँ सर्वदा भगवत् लीला दर्शन होते रहते हैं। इसे ही गोलोक धाम या कैलाश कहते हैं। नाम करते-करते वस्तुतः ये सभी**

अवस्थाएँ आती हैं।'

'शास्त्रकारों ने मुक्ति लाभ के विषय में सुंदर व्यवस्था की है। गया में पिण्डदान से लोगों का कल्याण होता है। जिनका इस संबंध में कोई संस्कार ही नहीं, उन्हें सम्भवतः लाभ न भी मिले। विश्वास के अनुरूप ही फल मिलता है। गया में पिंड देने पर लाभ होता है, मैंने यह प्रत्यक्ष देखा है। चेहरा ही बदल जाता है। स्थूल देह की आहार से, सूक्ष्म देह की दृष्टि से और कारण देह की लोगों की शुभेच्छा से, पुष्टि हुआ करती है। पुष्टि का अर्थ यहाँ संतुष्टि है। गया में पिण्ड को देखकर सूक्ष्म देह की वासना निवृत्त हो जाती है। केवल शुभेच्छा प्राप्त करके कारण देह भी नाश प्राप्त करता है।'

प्रश्न-जिन्होंने भी साधन प्राप्त किया है, क्या सभी को लाभ मिल रहा है? क्या इन सभी को मुक्ति मिलेगी? ठाकुर ने लिखा-**'सभी ने उपयुक्त समय में यह साधन पाया है, इसमें संदेह नहीं। दीन, हीन, कंगाल हूँ ऐसा बोध होने पर, दीनबंधु दया करते हैं। अभिमानी दया के पात्र नहीं होते। बाहर की उन्नति ही यथार्थ उन्नति नहीं है। प्रत्येक को इस साधन की उपकारिता का किसी न किसी समय अनुभव अवश्य होगा। जन्म-जन्मान्तर की अवस्था पर यह निर्भर करता है। कार्य करो या न करो, भीतर जो बीज पड़ा है, उससे समय पर फल अवश्य प्राप्त करोगे। पहले जो पाप कार्य सहज ही कर लेते थे, अब करने में यदि भीतर से कोई बाधा दे रहा है, ऐसा महसूस हो तो समझना होगा, यह साधन की क्रिया है। उसी प्रकार पहले जो शुभ इच्छाएँ नहीं थी, अब यदि उनका उदय होने लगे तो भी**

समझना होगा-यह साधन का ही फल है। ऐसी कोई कुशलता या चमत्कार नहीं है, जिससे मुक्ति हाथोंहाथ मिल जाय।'

एक गुरुभाई ने पूछा-पितृलोक में क्या सभी को जाना पड़ता है?

ठाकुर-'जिनका कर्म है, उन्हें ही पितृलोक जाना पड़ता है।'

प्रश्न-जिन्होंने गया में पिण्ड यथाविधि प्राप्त कर लिया है, क्या उनका भी पुनः श्राद्ध करना प्रयोजनीय है?

ठाकुर-'जिन्हें गया में यथाविधि पिण्ड दिया गया है, उनका पुनः श्राद्ध करना जमीन पर पानी डालने के समान है।'

प्रश्न-फिर तर्पण को नित्यकर्म में क्यों रखा गया है?

ठाकुर-'नित्य तर्पण की बात अलग है। वह अवश्य कर्तव्य है। प्रत्येक वंश के एक पृथक् पितृदेवता रहते हैं। तर्पण करने पर उन्हें तृप्ति होती है। सभी के लिये तर्पण करने का विशेष प्रयोजन है।'

प्रश्न-मरने के बाद भूत कौन लोग बनते हैं?

ठाकुर-'बहुत दिनों तक रोग भोगते हुए एक अविश्वास सा उत्पन्न होता है। साधारणतया ये लोग ही मरकर भूतयोनि प्राप्त करते हैं।'

एक गुरुभाई को कठिन पीड़ा हुई थी। उस समय उसे कई अलौकिक अनुभूतियाँ हुई थीं। वह सब ठाकुर से कहने पर ठाकुर ने लिखा-**'पूर्व शरीर के पुराने परमाणुओं के परिवर्तन के समय नाना प्रकार की अवस्थाएँ आती हैं। उस समय किसी के देह में ज्वर-विकार, किसी देह में जलोदर, किसी को निमोनिया आदि होने लगता है। प्रलय से सृष्टि और सृष्टि से प्रलय तक जो भी**

कुछ हो प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है। वेद-पुराण, तंत्र आदि सभी शास्त्रों के तत्त्व प्रकट होते हैं। मेरे साथ भी दरभंगा एवं ढाका में इस प्रकार की घटनाएँ हुई थी। दरभंगा में तो सात डाक्टरों ने एकमत होकर कहा था कि तीन घंटों में इनकी मृत्यु हो जायेगी। उसी दिन शाम से मैं उठ बैठा और तीन दिन बाद कलकत्ता आ पहुँचा। एक बार ढाका में भी मृत्यु हो जाने की बात डॉक्टरों ने स्पष्ट कह दी थी और मैं उठकर बैठा, स्वस्थ हो गया।'

ठाकुर की ममता।

२१ भाद्रपद। सुबह चार बजे ही उठकर मुँह हाथ धोकर संध्या करने बैठा। कल निर्जला उपवास था। शरीर कमजोर सा लग रहा था। लगता है, आज गंगा स्नान जाना न हो पायगा। रोज की भाँति दस मिनट विश्राम के बाद ठाकुर उठकर अपने आसन पर बैठे। तभी जाकर आलमारी खोलकर कुछ रसगुल्ले एक पत्थर के कटोरे में लाकर देते हुए कहा-**'यह अपने शालग्राम को भोग लगाकर प्रसाद पाओ।'** ठाकुर की आलमारी में मैंने रसगुल्ले तो कल नहीं देखे थे। मेरे सो जाने के बाद शायद उन्होंने मेरे लिये मँगाकर रखा था। गोद के बच्चे को भूख लगने पर माँ जैसे किसी ओर न देखकर केवल बच्चे को खिलाने के लिए ही अस्थिर हो उठती है, ठीक उसी तरह ठाकुर मुझे रसगुल्ले खिलाने के लिए व्यग्र हो उठे। बार-बार बोलने लगे-**'शालग्राम को निवेदन करके प्रसाद पाओ ना।'** मैं बड़ी कठिनाई में पड़ा। कल निर्जला एकादशी की और आज सूर्योदय के पहले ही ठाकुर रसगुल्ला खिलाने का हठ कर रहे हैं। शायद ममतावश वे साधारण चिरंतन प्रथा भी भूल गए हैं। मैंने

कहा-अभी शौच, स्नान, शालग्राम की पूजा कुछ भी तो नहीं हुआ। ठाकुर ने सुनकर कहा-'जाओ जाओ-शौचालय जाओ।' मैं नीचे जाकर शौच स्नान से निपटकर आसन पर आया। ठाकुर के कमरे में सोए हुए गुरुभाई लोग अभी उठे नहीं थे। शालग्राम को स्नान कराया एवं तुलसी प्रदान किया और रसगुल्ले निवेदन किया, फिर मैं आनंदपूर्वक खाने लगा। ठाकुर मुझ पर स्नेह दृष्टि डालते जा रहे थे। मैंने परमानंदपूर्वक रसगुल्ले खाये। इतने में ठाकुर की चाय बनकर आ गई। मुझे भी चाय का बहुत दिनों से अभ्यास है। लेकिन यहाँ कुछ निर्दिष्ट गुरुभाई ही चाय लेते हैं, सबके लिये व्यवस्था नहीं है। मैं मन ही मन कहने लगा, ठाकुर चाय की जब व्यवस्था ही नहीं, तो चाय पीने की स्पृहा ही मन से हटा दो। इसी समय ठाकुर आपने पात्र में से एक कटोरी में चाय डालकर मुझे पीने का इशारा करने लगे। ठाकुर स्वयं प्रसाद दे रहे हैं। इसे अपना परम सौभाग्य मानकर मैंने वह ग्रहण किया। खूब आनंद सहित चाय पीने लगा। सामान्य कार्यों में भी ठाकुर की असाधारण कृपा को मैं समझ नहीं पाता, यह मेरा ही दुर्भाग्य है। एक दिन ऐसा भी आएगा जब ठाकुर के इन कार्यों का स्मरण करके रो-रोकर लोट-पोट होना पड़ेगा।

ठाकुर मध्याह्न को आहार के लिये भीतर गए। मैं भी मध्याह्न-संध्या समापन करके शालग्राम पूजा करने लगा। गुरुभ्रातागण ठाकुर से कई बातें पूछने लगे। मैं उधर ध्यान न देकर शालग्राम की पूजा करने लगा।

तत्त्वज्ञ के लक्षण: स्वप्न में तत्त्व प्रकाश के उपदेश।

कुछ गुरुभाईयों ने पूछा-क्या ज्ञान लाभ होने पर मनुष्य सुखी होता है। तत्त्वज्ञानी के क्या लक्षण हैं?

ठाकुर ने लिखा-**'एक भी तत्त्व प्रकट होने पर ही चरित्र में उसके लक्षण स्पष्ट होने लगते हैं। ऐसा व्यक्ति प्राण जाने पर भी परनिन्दा नहीं करता। अपनी प्रशंसा उसे विषतुल्य लगती है। वृक्षलता, कीट-पतंग, पशु-पक्षी सभी जीवों पर उसकी दया बनी रहती है। जिनमें जीवों पर दया नहीं, परनिंदा-आत्मप्रशंसा के भाव हैं, वे तत्त्वज्ञानी नहीं हैं। बाहर पूजा अर्चना, जप-तप करके भी यदि हिंसा की भावना नहीं गई, तो वह धर्म नहीं हुआ। अहिंसा बिना धर्म नहीं होता।'**

'कभी विचारहीन मत होना। दया करने में भी विचार होना चाहिए। अतिरिक्त दया के फलस्वरूप बड़े-बड़े साधु भी मुसीबत में पड़ गए। दया करने में योगियों को खूब विचार चाहिए। अन्यथा वे भी बड़े संकट में पड़ सकते हैं। योगी जब देखते है कि इस व्यक्ति पर इतने परिमाण में दया करने पर ही उसका वस्तुतः उपकार होगा, तभी वे दया करते हैं।'

कुछ गरुभाईयों ने अपने-अपने अच्छे स्वप्न वृत्तांत ठाकुर को कह सुनाए। सुनकर ठाकुर ने लिखा-**'सारी रात जागरण करके शेष रात्रि में जरा देर निद्रा लेने पर स्वप्न में समस्त विषय देखे जा सकते हैं। दिवानिद्रा विशेष अहितकर है। इससे बुद्धिनाश एवं साधन की हानि होती है। रात को भी अधिक निद्रा अच्छी नहीं होती। बैठकर साधन करने लगो तो कुछ ही देर में आलस्य और तंद्रा का आविर्भाव होने लगता है। उससे कुछ हानि नहीं होती। इस प्रकार बैठे-बैठे योगनिद्रा में भी कोई हानि नहीं होती।**

इस समय बहुत से तत्त्व प्रकट होते हैं, दर्शनादि भी होते हैं। हाँ, जबरदस्ती ऐसा मत करना। यदि स्वप्न में कभी कोई तत्त्व प्रकट हो तो क्या वह प्रकट करना चाहिए? कभी नहीं-ऐसा करने से जो कहता है और जो सुनता है, दोनों का ही अनिष्ट होता है। स्वप्न में कुछ आश्चर्यमय देखो या गुरु के विषय में कोई शक्ति का प्रकाश देखो तो कभी प्रकट मत करो। सभी बातें क्या बाजार में ढोल बजाकर कहते फिरोगे? जितना विश्वास करोगे उतना ही फल पाओगे। भगवान स्वयं आकर भी कहें कि मैं भगवान हूँ तो संदिग्ध आत्मा इस बात पर विश्वास नहीं कर पाती। स्वप्न की बातों पर विश्वास करते, तो अबतक सभी का उद्धार हो जाता। पहले बहुत से स्वप्न दिखाए जाते थे, देखता हूँ कोई कुछ विश्वास नहीं करता, इसलिए अब स्वप्न दिखाना ठीक नहीं समझता। विश्वास की कोई वस्तु किसी को प्राप्त हुई, उसे प्रकट कर देने पर अविश्वास आ जाएगा, फिर तो उसके लिए भोगना पड़ता है। स्वप्न की बात छोड़ो, प्रत्यक्ष देखकर भी कोई विश्वास नहीं करता। कहने पर भी विश्वास नहीं होता।'

देवी-देवता कल्पना नहीं है। साधन के सप्त सोपान: त्रिविध कर्म: उद्धार का उपाय।

ठाकुर से सबने पूछा-काली, दुर्गा यह सब केवल कल्पना मात्र हैं या सचमुच कुछ है? ठाकुर ने लिखा-**'यह सब कुछ कल्पना नहीं है। साधन की अवस्था के साथ-साथ प्रकट होते हैं। प्रत्येक साधक को तीन अवस्थाओं में से गुजरना पड़ता है-पहला ब्रह्म, दूसरा आत्मा और तीसरा भगवान। प्रथम अवस्था में साधक**

सभी ब्रह्ममय देखता है, सर्वत्र ब्रह्म स्फूर्ति होती है। द्वितीय अवस्था में वह देखता है, कि किसी अनिवर्चनीय शक्ति द्वारा ही वह चालित हो रहा है। उसके सारे अंग-प्रत्यंग उसी शक्ति से व्याप्त और चालित हो रहे हैं। उसके बाद भगवत् दर्शन की अवस्था आती है। तब ब्रह्म की लीलाओं के दर्शन होने लगते हैं। काली, दुर्गा, देवी-देवता, राम, कृष्ण अवतार सभी दृष्टि गोचर होते हैं। सभी ऋषि, मुनि, बुद्ध देव तथा साधकगण इसका प्रमाण देते हैं। यह कोरी कल्पना नहीं है।'

प्रश्न-मानव जन्म पाकर जीव किस प्रकार क्रमोन्नति प्राप्त करता है?

ठाकुर ने लिखा-**'प्रथम मानव जन्म में मनुष्य कुकी, भील आदि असभ्य, अशिक्षित, जंगली जीवन प्राप्त करता है। इस प्रकार उसके दस जन्म बीतते हैं। उसके बाद लोक समाज में जन्म ग्रहण करते हैं। इस प्रकार अनेकों जन्म लेने के बाद तत्त्व-ज्ञान का विकास होता है। विषय ज्ञान प्रथम जन्म से ही प्राप्त होता है। मनुष्य के बीच-जड़त्व, वृक्षत्व, जीवत्व, मनुष्यत्व, देवत्व, एकत्व एवं रस-ये मानव के सप्त सोपान या सप्तभूमि हैं। जैसे छोटा सा बड़ का बीज विशाल वट वृक्ष उत्पन्न कर सकता है, उसी प्रकार मनुष्य की आत्मा प्रथम सोपान से धीरे-धीरे सप्तसोपान पार करके, 'रसो वै सः' इस शब्द का सर्वदा गान करता है।'**

प्रश्न-संचित व क्रियमाण कर्म किसे कहते हैं। किस उपाय से ये सब कर्म काटकर जीवों का उद्धार संभव होता है?

ठाकुर-**'चौरासी लाख योनि भ्रमण करते हुये मनुष्य जन्म की**

प्राप्ति होती है। इस जन्म में जैसा कर्म करता है उसे प्रारब्ध, संचित, वर्तमान कहते हैं। इन तीन प्रकार के त्रिविध कर्मों को समाप्त करने में कई बार जन्म-मृत्यु होते हैं। यह तो मानव जन्म की घटना मात्र हुई। ऐसे कर्मफल भोग करते-करते स्थूल, सूक्ष्म, कारण ऐसे त्रिविध देह नष्ट हो जाय, तब हम माया से मुक्त हो पाते हैं। मनुष्य जन्म पाकर यदि भगवत् भजन-पूजन न करें तो फिर से अधोगति आरंभ होकर चौरासी लाख योनि में भटकना पड़ता है। मनुष्य जन्म पाकर यदि एक बार भगवान का नाम सुनने की तरह सुना, पुकारने की तरह पुकारा और कहने की तरह कहा जाय, तो जैसे शिशु माँ शब्द सुनता और माँ कहकर पुकारता है, तो माँ शिशु के पास दौड़कर आ जाती हैं।'

शालग्राम में ध्यान रखने का आदेश: ध्यान न रख सकने पर ठाकुर का आश्वासन।

कल शालग्राम की पूजा के समय एक बार मैंने ठाकुर से पूछा था-ध्यान कहाँ रखूँगा? ठाकुर ने कहा-**'शालग्राम में।'** इतने दिनों तक मैं नाभिमूल में ध्यान रखता आया हूँ, अब कभी-कभी इच्छा होती है, हृदय में ध्यान रखूँ। इसी की अनुमति पाने की इच्छा से ही आज ठाकुर से पूछ बैठा। शालग्राम में ध्यान रखने की बात सुनकर, आज वैसा ही यत्न किया-पर किसी भी तरह चित्त न लगा। बार-बार ही अनजाने नाभिमूल में ध्यान बैठ जाता। फिर शालग्राम में ध्यान स्थिर करने का प्रयत्न करने लगा। इस प्रकार बार-बार यत्न करके थक गया, खिन्न हो उठा। लगभग दो घंटे शालग्राम पर ध्यान रखने के यत्न में असफल होने पर, ठाकुर पर ही क्रोध आने लगा।

ध्यान, धारणा, पूजा अर्चना कुछ भी न हो पायी। लगता है मानो भीतर कोई नाड़ी फट ही जायगी। एक असहनीय खिन्नता से रोना आ गया। कभी ध्यान छोड़कर चुपचाप बैठा रहता। चुपचाप बैठकर मैंने ठाकुर के समीप ही बेकार की कल्पनाएँ करने की भी सोची। मैंने तय किया कि ठाकुर को न ध्यानकर शालग्राम में सहज ही जो कुछ सोच सकूँ वही सोचूँगा। मेरे अन्तःकरण की वस्तु ठाकुर ने जैसे ले ली-मैं भी ठाकुर को वैसे ही स्थान भ्रष्ट करूँगा। उनके स्थान पर स्त्री मूर्ति सोचूँगा। ठाकुर को शालग्राम से हटा दूँगा। फिर सोचा इतने गोलमाल की क्या जरुरत है? शालग्राम को ही पटककर चकनाचूर कर डालूँ। इस विचार से यंत्रणा से छटपटाता दाँत पीसता-हरिद्वार के उस पत्थर को हाथ में लेकर मारने को उद्यत हुआ लेकिन भीतर से ही बाधा पहुँची। तब फिर से एक बार ठाकुर से पूछना चाहा-कि हृदय या नाभिभूल में ध्यान कर सकता हूँ या नहीं। शालग्राम में ध्यान तो मेरे द्वारा नहीं होने का। उसी समय ठाकुर ने मुझ पर एक स्निग्ध दृष्टि डाली। मेरी तो आँखें लाल तथा माथा गरम हो गया था। सिर में खूब दर्द हो रहा था। ठाकुर उसी प्रकार स्नेह से ताकते हुए मुझे कुछ बोलने का मौका दे रहे थे। मैं रुआँसे स्वर में बोल पडा-बहुत यत्न करके भी शालग्राम पर ध्यान नहीं टिका पा रहा हूँ, ऐसे में मेरी पूजा भी नहीं हो पाई। आज सारा दिन विफल गया। नाभिचक्र छोड़ शालग्राम के ध्यान की कोशिश में मैं अभी जो कष्ट पा रहा हूँ, जीवन में ऐसा कष्ट कभी नहीं पाया है। ऐसा लगता है कि आपने मेरे प्राणों की कोई वस्तु छिन्न कर दी है।

ठाकुर ने कहा-**‘पहले-पहल शालग्राम में ध्यान नहीं रख**

पाओगे। शालग्राम में ध्यान करने की अवस्था बाद में आती है। अभी यदि शालग्राम में ध्यान न कर सको तो भीतर ही ध्यान करो। फिर धीरे-धीरे प्रयत्न करते करते-शालग्राम में ध्यान करने का यत्न करना, क्रमशः सब ठीक हो जायगा।' थोड़ी देर बाद ठाकुर ने लिखा-'शालग्राम की पूजा बड़ी कठिन है। कारण मूलाधार चक्र में मन स्थिर करना सहज साध्य नहीं। साधक दृष्टि-साधन एवं योगाभ्यास के बाद ही शालग्राम चक्र भेद कर पाता है, तब इस छोटे शिला-खंड से असीम ब्रह्माण्ड प्रकट होता है। तब उसके प्रत्येक परमाणु में विष्णु दर्शन होते हैं। इसी कारण से प्राचीन काल से ब्राह्मणगण शालग्राम पूजा व ध्यान करते आ रहे हैं।'

ठाकुर की बातें सुनकर स्वस्थ हुआ। देह के किसी भी चक्र में ध्यान करने की अपेक्षा शालग्राम में ध्यान करना कठिन, श्रेष्ठ और उत्कृष्ट है जानकर, शालग्राम में ही ध्यान करने की इच्छा जागृत हुई। किंतु केवल इच्छा से क्या होता है, साध्य तो नहीं है।

ठाकुर की कृपा से शालग्राम में ध्यान एवं आनंद।

२४ भाद्रपद। आज दोपहर को शालग्राम पूजा के समय विचार करने लगा ध्यान कहाँ रखूँ? शालग्राम में तो ध्यान नहीं हो पाता, किंतु वही उत्कृष्ट है। नाभिचक्र में ध्यान रखूँगा किन्तु दो चार मिनट के लिये शालग्राम पर भी दृष्टि रखा करूँगा। फिर ठाकुर जब चाहेंगे, तब ध्यान करा लेंगे। ठाकुर से मन ही मन प्रार्थना किया कि शालग्राम पर ध्यान रख सकूँ, शालग्राम को प्रणाम किया और

उनपर दृष्टि डाली। आश्चर्य है गुरुदेव की दया-ठाकुर को शालग्राम में सोचकर, जैसे ही उन पर ध्यान रखने लगा, उसमें निमग्न हो गया। ठाकुर की असीम कृपा से दूसरी ओर दृष्टि ही न डाल सका। मन शालग्राम के भीतर स्थित ठाकुर के रूप में आकृष्ट हुआ रहा, और कहीं नहीं गया। इस प्रकार तीन घंटे बीत गये। अपनी ऐसी दशा देख, मैं स्वयं ही हैरान हुआ। अब नाभिचक्र, हृदय में ध्यान रखकर देखा अच्छा न लगा। शालग्राम में ध्यान अधिक आनंददायक लगा। मैंने समझ लिया, ठाकुर ने प्रत्यक्ष रूप से कृपा की है। कल जिस ध्यान करने के यत्न में शरीर, मन अस्थिर, माथा गरम हो उठा था, आज बिना यत्न किए अनायास ही हो गया, यह क्या कम आश्चर्य की बात है। ठाकुर के चरणों में नमन कर एकाग्र मन से प्रेम व विश्वास पाने की प्रार्थना करने लगा। ठाकुर के समीप बैठकर, मुझे शालग्राम की पूजा करने में जो आनंद आ रहा है, उसे मैं व्यक्त नहीं कर सकता। पूजा के समय कभी-कभी तिरछी दृष्टि से ठाकुर जब देखते हैं, तब उनके नेत्रों की और मुख की अपूर्व शोभा का वर्णन नहीं कर सकता। कभी-कभी एक दो क्षणों के लिए आँखों पर दृष्टि पड़ जाती है, तो मैं मुग्ध हो जाता हूँ। मैं वह आवेग किसी प्रकार रोक भी पाऊँ तो आँसुओं से भीगने लगता हूँ। इस प्रकार तीन बजे तक शालग्राम पूजा के बाद भागवत् पाठ करने ही वाला था कि ठाकुर ने कहा-**'शालग्राम पूजा के बाद समाप्ति पर तुम स्तुति-पाठ नहीं करते? नमस्कार मंत्र पढ़कर शालग्राम को नमस्कार नहीं करते?'** मैंने कहा उच्च स्वर से मंत्र पाठ करने में यहाँ मुझे संकोच आता है। ठाकुर ने कहा-**'शालग्राम पूजा करके उच्च स्वर में स्तुति पाठ करना। प्रणाम मंत्र से नमस्कार करना, इसमें जरा**

भी संकोच न करना।’ शालग्राम पूजा के बाद प्रतिदिन मैं ‘नमस्ते सते ते’ इत्यादि का पाठ मन ही मन करता हूँ, परन्तु प्रणाम मंत्र रोज याद नहीं रहता। मुझे लगा ठाकुर इसीलिये संकेत दे रहे हैं। हरिद्वार जाने के पहले गेण्डारिया में ठाकुर ने अपने हाथों से प्रणाम मंत्र लिखकर हमें देते हुए कहा था-**‘रात को सोते समय, सुबह जागते ही, साधन में बैठते समय और साधन करके उठते समय भगवान को स्मरण करके यह मंत्र पढ़कर ही नमस्कार करना। भगवत् बुद्धि से जहाँ भी प्रणाम करो, इसी मंत्र से करना। भगवान के अन्तर्धान के समय सारे ब्रह्माण्ड के ऋषि-मुनि, देवी देवताओं ने इसी मंत्र से भगवान को नमस्कार किया था। ऐसा वरदान है कि इस मंत्र को पढ़कर नमस्कार करने पर वह भगवान के चरणों में पहुँचता है।’** मैंने मंत्र पढ़कर किया। मंत्र यह है-

ॐ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणत क्लेश नाशाय गोविन्दाय नमो नमः।।

चार द्वार रक्षा करने के उपाय।

अपराह्न चार बजे गुरुभ्राताओं के आने से हॉल भर गया। बाहर के भी अनेक व्यक्ति आए। उन्होंने ठाकुर से पूछा-जिन इन्द्रियों द्वारा हम सदा-सर्वदा पाप संचय करते आ रहे हैं उन्हें किस प्रकार संयत रखा जा सकता है। ठाकुर ने लिखा-

(१) जो व्यक्ति अक्षक्रीड़ा, परस्वापहरण, नीची जातियों का याजन परित्याग कर दे एवं क्रोध के वशीभूत होकर किसी पर प्रहार न करे, उनका हस्तद्वार रक्षित हुआ समझना चाहिये।

(२) जो व्यक्ति, सत्यव्रत, मितभाषी एवं अप्रमत्त हो, क्रोध, मिथ्या वाक्य कुटिलता, एवं लोकनिन्दा का परित्याग करते हों, उनका वाक् द्वार सुरक्षित है।

(३) जो व्यक्ति अतिभोजन एवं लोभ का त्याग करके, केवल देह धारण के लिये ही सामान्य आहार करते हैं तथा नित्य साधु-संग करते हैं इनका जठर द्वार रक्षित होता है।

(४) जो व्यक्ति एक पत्नी के होते हुए संभोग के लिये दूसरी पत्नी का पाणिग्रहण न करें, एवं परस्त्रीगमन न करें। अपनी पत्नी से भी ऋतुकाल के अलावा स्वस्त्रीगमन न करे तो उनके द्वारा उपस्थ द्वार की रक्षा की जा सकती है।

जो महात्मा इस प्रकार चार द्वारों की रक्षा करने में सक्षम होते हैं, उन्हें ब्रह्मविद् कहकर गणना की जाती है। जिनकी इन चार द्वारों की रक्षा न हो पाई, उनके सभी कार्य विफल होते हैं।

भिन्न-भिन्न वस्तुओं के आहार से विभिन्न रिपुओं की उत्तेजना:आहार और धर्म का संबध।

ठाकुर से पूछा गया-कौन-कौन सी वस्तु के आहार से तथा किन-किन रसों से किस-किस रिपु की वृद्धि होती है? रिपुओं से निष्कृति पाने के लिये हमें आहार आदि के विषय में किन नियमों का पालन करना चाहिये? ठाकुर ने लिखा-**'बालक शिशु काल में मलत्याग करके कभी-कभी स्वयं उसे खा लेता और आनंद से हँसता भी रहता है, किंतु माता-पिता घृणा से नाक सिकोड़ते हैं। उसी प्रकार क्रोधी यदि मिर्च, सरसों तथा पित्तवर्धक, उत्तेजक वस्तुएँ भोजन करे-कामुक व्यक्ति यदि मछली, माँस, घी, मधु**

मिठाईयाँ खाए-लोभी यदि कड़वा-अहंकारी व्यक्ति यदि अधिक खटाई-अभिमानी अधिक नमक खाये तो उसी शिशु की भाँति आहार करना होगा। ज्ञानी पुरुष उसे देखकर हैरान होंगे।'

'मछली, मांस, अधिक मिर्च, सरसों, अधिक खटाई, अधिक मीठा, मधु खीर आदि तथा मसूर, उड़द की दालें कामोद्दीपक वस्तुएँ हैं। काम-क्रोध मन की क्रियाएँ हैं। मन शारीरिक परिणति है। जिससे शरीर की उत्तेजना बढ़े ऐसी वस्तुएँ न खाना ही अच्छा है। आहार का अभ्यास एकाएक छोड़ना ठीक नहीं। अधिक मिर्च खाने वाले एकदम मिर्च न लें, तो भी पीड़ा उत्पन्न होती है। इस बारे में वैद्यशास्त्र की व्यवस्था अति उत्तम है। सुश्रुत, चरक में अभ्यस्त आहार के बारे में एवं रोग विनिश्चय ग्रंथ (जिसे निदान कहते हैं, उसकी टीका-विजय रक्षित की टीका) में अभ्यस्त पथ्यापथ्य के बारे में लिखा है। इस बारे में अन्य शास्त्रों में नहीं लिखा है। आहार के साथ धर्म का संबंध या योग है, क्योंकि शरीर व आत्मा एकत्र हैं। आहार अत्यन्त सावधानी-पूर्वक न करने पर धर्म नष्ट होता है। कोई बिल्कुल मिर्च न खाता हो, उसे मिर्च खिला दिया जाय तो सारा दिन शरीर जलेगा, धर्म साधन नहीं हो पायगा।'

किसी ने पूछा मत्स्याहार से क्या अपराध होता है। ठाकुर ने लिखा-**'जिसका जो आहार है, उससे दोष नहीं होता। किंतु यदि मेरे मन में ऐसा बोध हो कि मत्स्य व माँस खाना दोषपूर्ण है, तो उनका त्याग करना ही होगा।'**

काम-क्रोध अधर्म नहीं हैं: धर्म-अधर्म मन के

अभिप्राय के अनुसार है।

ठाकुर ने इस विषय में और भी लिखा-**'काम-क्रोध अधर्म नहीं हैं। यदि ऐसा होता तो मनुष्य की आत्मा की प्रकृति में न रहते। काम-क्रोध का अवैध व्यवहार ही पाप है। जिसकी जैसी प्रकृति वह वैसा कार्य करता है। प्रकृति की तीन अवस्थाएँ हैं-सत्त्व, रज, तम, ये तीन अवस्थाएँ जब तक विद्यमान रहेंगी, उनमें संग्राम होगा। काम-क्रोधादि का उपयोग वैध तरीके से हो, तो उसे अधर्म नहीं कह सकते। क्षत्रिय युद्ध करता है, सैकड़ों व्यक्तियों की हत्या हो जाती है, लेकिन इसकी गणना अधर्म में नहीं होती। जब तक काम-क्रोध है, उनका कभी-कभी मन में उदय होते ही निवारण का यत्न करें, तो कोई पाप नहीं। उसमें इच्छापूर्वक, आनंदसहित बढ़ावा देना पाप है। इनमें संग्राम करते समय पराजित भी हो जाओ तो भी कोई अपराध नहीं। जब तक हम त्रिगुण के अधीन हैं, तब तक बाध्य होकर उनके ही अनुसार चलना पड़ेगा। यदि भगवान के नाम का अवलम्बन रहे तो क्रमशः त्रिगुण नष्ट होकर, शुद्ध, आत्मतत्त्व प्रकट हो सकता है। धर्म-अधर्म तो मन के अभिप्राय के अनुसार होते हैं। मनुष्य समाज ने पाप-पुण्य की धारणा स्थिर की है। भगवान उसके अनुसार या उसे देखते हुए विचार नहीं करते। वे मनुष्य का हृदय या अन्तःकरण देखा करते हैं, फिर विचार करते हैं। नीम की तीन कोमल पत्तियाँ चबाकर जरा जल पी लेने पर उत्तेजना कम होती है।'**

शालग्राम आरती का आदेश: काम व प्रेम।

शाम को घड़ी देखकर ठाकुर ने मुझसे भोजन पकाने जाने को कहा। डेढ़ घंटे के भीतर चूल्हा जलाकर, भोजन पकाना, होम, आहार, कमरा धोना, बर्तन साफ करना--सभी कुछ करना है। मैंने भी जाकर नानी माँ से दाल, चावल लिया, चूल्हा जलाकर, भोजन पकाकर तृप्तिपूर्वक भोजन किया। बर्तन आदि साफ करके, यथासमय ठाकुर के पास लौट आया। रोज संध्या के समय ठाकुर मुझे शालग्राम की आरती करने को कहते हैं। मेरे पास आरती की सामग्रियाँ नहीं हैं, सो सामान्य रूप से धूप-धूनी से ही आरती किया करता हूँ। संध्या आरती के बाद संकीर्तन आरंभ हुआ। संकीर्तन समाप्ति के बाद ठाकुर ने-**"हरेर्नाम हरेर्नाम हरेनमैव केवलम्। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।। जय जय श्री कृष्ण चैतन्य जय नित्यानंद। जय अद्वैत चन्द्र जय गौर भक्त वृंद।।"** ये तीन श्लोक पाठ करके **"हरि बोल! हरि बोल! हरि बोल!"** कहकर हरि लूट का बताशा अपने हाथों से चारों ओर बिखेरने लगे। प्रसाद लेकर गुरुभाइयों ने ठाकुर के सामने सत्प्रसंग आरंभ किया। काम संबंधी अनेक प्रश्न किए गए, ठाकुर ने लिखा--**"काम शारीरिक गुणों में शामिल है। बहिर्मुख हो तो काम एवं शरीरोन्मुख न होकर अन्तर्मुख हो जाय, तो प्रेम है। तब वह आत्मा का ही अंग या आत्मा ही है। शारीरिक गुण सहज नहीं जाता। आहार संयम एकमात्र व्यवस्था है। जो विषय-कर्म में लिप्त हैं, वे इन नियमों का पालन नहीं कर पाते। किन्तु विषय-कर्म न भी हो तो भी वासना, कामना, पाप नहीं जाते।"** रात नौ बजे ठाकुर ने मुझे सो जाने को इंगित किया। ठाकुर के चरणों में

सोया रहा।

दैनिक कार्य।

४१नं0 सुकिया स्ट्रीट, कलकत्ता। इस बार आकर देखता हूँ ठाकुर सुबह चार बजे मात्र एक बार शयन करते हैं। आसन पर ठाकुर हाथ पैर फैलाकर नहीं सोते। दाहिनी ओर करवट लेकर, पैर सिकोड़ कर उठे हुए बायें पैर की जांघ व घुटने पर दाहिने पैर का तलवा रखकर एवं दाहिने हाथ पर मस्तक रखकर सोते हैं। इसी तरह सोते गेण्डारिया आश्रम में भी देखा करता था, कभी भी दूसरी तरह से सोते नहीं देखता हूँ। गेण्डारिया में ठाकुर चार बजे आधे घंटे के लिये सोते और उसी समय निद्रित हो जाते थे। ट्रेन की आवाज पाकर, ठीक साढ़े चार बजे उठकर आसन पर बैठ जाते थे। अब ठाकुर निद्रित होते हैं, ऐसा जान पडता। क्योंकि घड़ी के काँटे की तरह, ठीक दस मिनट बाद ही मंजीरा बजाकर उषा कीर्तन करने लगते हैं। ठाकुर के कीर्तन करने पर मैं नीचे चला जाता हूँ। शौच-स्नान करके जगन्नाथ घाट चला जाता, वहाँ संध्या तर्पण समापन कर लौटते समय एक सज्जन के बगीचे से शालग्राम पूजा के लिए फूल, तुलसी लाता हूँ। सात व साढ़े सात के बीच ठाकुर चाय सेवन करते, मुझे चाय की आदत है किंतु यहाँ व्यवस्था हो न हो, अतः स्वयं एक दो बूँद पीकर बाकी चाय मुझे देने लगते हैं। यह देख गुरुभाई मुश्किल में पड़े। मेरे कारण ठाकुर कम चाय पीते हैं। अतः उन्होंने मुझे स्वतः ही चाय देने का निश्चय किया। ठाकुर को चाय देकर मुझे देने में जरा भी देर हुई कि ठाकुर पुनः अपनी चाय मुझे देने लगते हैं। इससे मुझ पर कई लोग क्रुद्ध अवश्य हुए। अब मुझे भी

ठाकुर के साथ ही चाय दी जाने लगी। चाय दिलाने में ठाकुर की चतुराई देखकर बड़ा ही आनंद आया। चाय पीकर, न्यास संपन्न करके, मैं शालग्राम की पूजा आरंभ करता हूँ। फिर ठाकुर के पास ही बैठकर चैतन्य चरितामृत आदि ग्रंथ पाठ करता हूँ। फिर ठाकुर स्वयं ग्रंथ साहब आदि का पाठ करते हैं। ग्यारह बजे ठाकुर घर के भीतरी भाग में जाते हैं एवं शौच, स्नान, आहार संपन्न करते हैं। केवल नानी माँ, शांति एवं कुतुबुड़ी आहार के समय ठाकुर के पास रह पाती हैं। आहार के बाद आसन पर बैठे ठाकुर तीन-चार घंटे तक भावमग्न रहते हैं। इस समय उनके नेत्रों से तेल की धार के समान अविरल अश्रुधारा बहती रहती है। चार बजे से ही गुरुभ्राता व लोगों का आना शुरु हो जाता है। ठाकुर संकेत से इन सबसे वार्तालाप करते हैं। मेरे भोजन बनाने का समय ठाकुर कभी नहीं भूलते। घड़ी देखकर ठीक रोज याद दिलाकर कहते हैं-**'ब्रह्मचारी तुम्हारा समय हो गया, भोजन बनाने जाओ।'** मैं भीतर जाकर चूल्हा जलाकर, भोजन पकाकर भोजन करता हूँ। बर्तन साफ करने, उसके बीच होम करने में घंटे भर से ऊपर समय लगता है, इसलिये जल्दी में भात में सब्जी आदि डालकर या खिचड़ी कुछ भी पका लिया करता हूँ। कुतुबुड़ी दाल, सब्जी बनाने का आग्रह करती है। मुझे समय नहीं मिलता देखकर, चूल्हा जलाकर सारी तैयारी करके रखती है। कुतु की सहानुभूति व ममता देखकर उसपर मेरा आकर्षण बढ़ रहा है।

आहार करके ठाकुर के पास जाने में शाम हो जाती। ठाकुर शालग्राम की आरती करने को कहते। मैं धूप व त्रिदीप जलाकर, घंटा बजाकर आरती करता। आरती के बाद संध्याकीर्तन आरंभ

होता। मैं सायं संध्या करने बरामदे में चला जाता हूँ, कीर्तन डेढ़ घंटे में समाप्त होता, तब मैं अपने आसन पर आकर बैठता। रात नौ बजे ही ठाकुर संकेत से मुझे सो जाने को कहते। ठाकुर के रात्रि भोजन के पहले ही मैं सो जाता हूँ। अन्य गुरुभ्रातागण रात ग्यारह बजे तक ठाकुर का संग करके अपने घर लौटते। कई तो ठाकुर के कमरे में ही सो जाते। रात बारह बजे मैं जाग उठता और मुँह हाथ धोकर आसन पर बैठता। एक बड़ा पंखा लेकर ठाकुर को पंखा झलता। ठाकुर इस समय शौच जाते। इसी समय नाना प्रकार के वार्तालाप होते, कई प्रश्नों का समाधान होता। ठाकुर समाधि-अवस्था में स्वतः जो-जो कहते, वह सुनकर रखता हूँ। वे रात साढ़े तीन बजे थोड़ा सा मीठा व जल ग्रहण करते फिर बजे अपने आसन पर दस मिनट के लिये विश्राम करते हैं।

गुरु के संबंध में प्रश्नोत्तर।

आज मौका पाकर ठाकुर से मैंने पूछा-जिन्होंने सद्गुरु दीक्षा प्राप्त कर ली है, क्या वे भी गुणों के अधीन हैं। मेरे मन में यह धारणा थी कि सद्गुरु आश्रित व्यक्ति सदगुरु के ही आश्रित एवं अधीन हैं अन्य किसी के अधीन नहीं। ठाकुर भी यही कहेंगे, ऐसा सोचा था, किंतु मेरे प्रश्न को सुनकर ठाकुर ने लिखा-**‘हाँ सभी गुणों के अधीन हैं, गुरु के अधीन मनुष्य बहुत बाद में होता है। बहुत कम लोग ही गुरु के अधीन होते हैं।’** एक गुरुभाई ने पूछा-किस प्रकार चलने से गुरु में विश्वास उत्पन्न होता है? ठाकुर ने लिखा-**‘गुरु पर विश्वास होना अत्यन्त कठिन है। गुरु पर विश्वास हो जाय, तो कार्य सिद्ध हो गया समझो। कोई आश्चर्यजनक कार्य देखने पर विश्वास**

होगा सोचते हैं, लेकिन आश्चर्यजनक कार्य देखकर सोचते हैं, अरे इसमें इतना क्या आश्चर्य? इससे भी विशेष कुछ आश्चर्य देखा तो सोचेंगे, यह व्यक्ति जादुई कला जानता है, वही दिखा रहा है। इस प्रकार के उपायों से भी विश्वास नहीं होता। एक ही व्यक्ति बैठा है, वही खड़ा भी है, वहीं कमरे में घूमता भी है--ऐसी विविध घटनाएँ दिखाने या समझाने पर भी कोई कुछ नहीं समझता। इसलिये स्वयं साधारण व्यक्ति की तरह चलना ही ठीक है, नहीं तो गोलमाल की सृष्टि होती है। यह सब गोपनीय रखना चाहिये। खोलकर बताना ठीक नहीं। विश्वास प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है कि गुरु जैसा उपदेश देवें, उसी का आचरण करना। आचरण करते-करते जब हृदय का विकास होता है, तब जाकर विश्वास बन पाता है।'

एक व्यक्ति ने पूछा-भगवान की उपासना के लिये क्या गुरु की नितान्त आवश्यकता है? गुरु के बिना क्या तत्त्वज्ञान लाभ नहीं होता? ठाकुर ने लिखा-**'मानव जीवन में जो कुछ भी सीखना चाहें उसमें गुरु का प्रयोजन है। संसार में जो भी दर्शन करते, श्रवण करते, घ्राण-स्पर्श-आस्वादन आदि सारी इन्द्रियों द्वारा भोग करते हैं, जब इनके सभी तत्त्वों के बारे में जानना चाहें, तो इस विषय के उत्तम ज्ञाता के पास शिक्षा लेनी पड़ती है। उसी प्रकार ईश्वर है, मैं हूँ, जगत है, यह सहज ज्ञान से तो सभी जानते हैं, पर कोई सहज ज्ञान से संतुष्ट न होकर उनका कारण व उत्तर जानना चाहता हो, तो उसे तत्त्वज्ञ गुरु के पास ही शिक्षा लेनी होगी। ब्रह्मविद् के सिवा दूसरा कोई पण्डित ब्रह्मविषयक उपदेश दान का अधिकारी नहीं होता। इसीलिए**

गुरु के बिना तत्त्वज्ञान लाभ होना संभव नहीं।'

ठाकुर ने पुनः लिखा-**'हरिद्वार के कुंभ मेले में लगभग लाख साधुओं का समागम हुआ था। उनमें केवल तीन यथार्थ तत्त्वदर्शी थे। बाकी तो वेशभूषा, संप्रदाय और मतवाद लेकर ही व्यस्त थे। इनमें से एक तत्त्वज्ञानी महात्मा से पूछा-साधुगण इतनी कठोरता करने पर भी तत्त्वज्ञान लाभ क्यों नहीं कर पाते? उन्होंने कहा-बाबा, मैं तुच्छ कीट क्या बता सकता हूँ? मैंने फिर भी बड़ी व्याकुलता दर्शायी तो उन्होंने कहा-अभी कोई भगवान को नहीं चाहता। मान-मर्यादा, महन्तगिरि चाहते हैं, वही पाते हैं। धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहाया, महाजनो येन गतः स पन्थाः।।'**

प्रश्न-किस प्रकार गुरु का आश्रय ग्रहण करना चाहिये? साधारण गुरु के पास दीक्षा लेकर क्या उपकार मिलता है? उनके वाक्यों पर तो विश्वास नहीं होता।

ठाकुर-**'देववेत्ता एवं ब्रह्मज्ञानी-जिन्होंने ब्रह्म में शांति लाभ किया हो ऐसे गुरु का आश्रय लेना चाहिये। जो ब्राह्मण है, वासनाहीन है, जिनके सारे रिपु नष्ट हो गये हैं, जिनका शरीर निर्मल है, अंगहीन न हो, जिनकी श्रीकृष्ण चरणों में गरिष्ठा-भक्ति हो-ऐसे गुरु का आश्रय लो। जो वस्तुतः महाजन हैं, उनका ही आश्रय लेना होगा। लोगों के मुख से सुन लिया कि वे धर्मात्मा साधु हैं, तो उससे काम नहीं बनता। विशेषतः यथार्थ साधु कौन है, यह सुनकर नहीं समझा जा सकता। पथ चलते हुए, पूर्वजों के दर्शाए मार्ग का अनुसरण करते हुए, यथार्थ साधु से साक्षात्कार हो जाने पर ही सब तरफ से निरापद हुआ जा**

सकता है। गुरु के प्रत्येक वाक्य के साथ ही एक न एक शक्ति होती है। विश्वासपूर्वक करने पर वह अवश्य ही क्रिया करेगी। गुरु वाक्य का महत्त्व बोध होने पर भी विश्वास नहीं बैठ पाता। गुरु के प्रत्येक वाक्य पर विश्वास होना पूर्वजन्म की साधना के साथ संबंधित है। शास्त्र या ऋषि-वाक्य के विरुद्ध जो उपदेश देवें, वे आर्यऋषि-शास्त्र के मतानुसार गुरु नहीं है।'

पूछा गया-क्या गुरु के समक्ष किसी और की पूजा करनी चाहिये?

ठाकुर ने लिखा-**'गुरु की अनुमति हो तो कर सकते हैं। गुरु में ही सर्वदेवों का अधिष्ठान दर्शन हो जाय तो गुरु से पृथक् स्थान में पूजा निषिद्ध है।'**

आज बड़ी देर तक गुरु के विषय में वार्तालाप होते रहे। ठाकुर की ही पूजा शालग्राम में, ठाकुर के ही आदेश से करता हूँ अन्यथा शिव वाक्य के अनुसार तो मेरा नरक वास होना था।

गुरु सन्निहिते यस्तु पूजयेदन्य देवतां।
स याति नरके घोरे सा पूजा विफला भवेत् ॥

ठाकुर के मौन रहने के विषय में अभिमत।

२५ से ३० भाद्रपक्ष। सुकिया स्ट्रीट आकर सविस्तार डायरी लिखना मेरे लिये असंभव सा हो गया है। सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक पंद्रह मिनट भी समय नहीं निकाल पाता। शाम व रात्रि को ठाकुर के जो अनमोल उपदेश सुनता हूँ, उन्हें भी छुटपुट कागजों पर पेंसिल से लिख रखता हूँ। दिन तारीख न डाला हो तो, ठीक श्रृंखलाबद्ध तरीके से उन्हें डायरी में नहीं उतार पाता। उपदेश एवं

घटनाएँ ठीक होते हुए भी समय के बारे में कई जगह हेर-फेर होने की संभावना है। ठाकुर दोपहर को शौच, स्नान, आहार के लिए भीतर जाते हैं, तभी उन छुट्टे कागजों को एवं ठाकुर की कापी की नकल, एकान्त में उतार कर अपनी डायरी में लिखता हूँ।

परमाराध्य परमहंसजी के आदेश से ठाकुर के मौन रहने की अवधि तो कई दिन पहले ही बीत गई है फिर भी ठाकुर मौन क्यों हैं, पूछने पर ठाकुर ने लिखा-**'मौन रहना ही अच्छा लगता है। बात करने की इच्छा ही नहीं होती।'** दिन में ठाकुर सबके प्रश्नों का उत्तर सादे कापी पर पेंसिल से लिखकर देते हैं, रात को कभी अस्पष्ट शब्दों में, कभी हमारी तरह स्पष्ट शब्दों में कहते हैं, अर्थात् ठाकुर के लिखित एवं कथित उपदेश की भाषा एक सी नहीं हो पाती। ठाकुर के मुख से एक भी बात सुनकर, हम कृतार्थ हो जाते हैं। पर कुछ लोग ठाकुर के मौन अवस्था की ही आकांक्षा रखते हैं। उस दिन ब्राह्मधर्म प्रचारक श्री नरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ठाकुर की कापी पढ़कर बोले-'गोसाईंजी यदि कुछ दिन और मौन रहें, तो बड़ा ही कल्याण होगा। हम सब बहुत सी नई वस्तुएँ पा सकेंगे। गोसाईंजी मौन ही रहें तो अच्छा, यह कापी एक अमूल्य ग्रंथ बनेगी।'

शालग्राम को पसीना: शालग्राम पूजा से साधारण लोगों का विद्वेष।

२५ से ३० भाद्रपक्ष। आज चूल्हा जलाकर भोजन पकाने में देर हो गई। यथा समय ठाकुर के पास नहीं पहुँच पाऊँगा सोचकर व्यग्र हो उठा। गरमागरम खिचड़ी ही शालग्राम को भोग लगाकर तुरंत डिब्बे में उन्हें बंद कर दिया। भोग लगाकर रोज उनके सामने लगाकर

कुछ देर बैठा करता था, पर आज समय नहीं रहा। शीघ्र आहार करके ठाकुर के पास पहुँचा। ठाकुर व्यग्र होकर बोल उठे-**'शालग्राम को खोलो। भोग लगाते ही तुमने डिबिया में बंद कर दिया है। गर्मी में ठाकुरजी कष्ट पा रहे हैं। हाथ समेटे बैठे, क्लेश प्रकट कर रहे हैं। जल्दी हवा करो, यह लो पंखा।'** ऐसा कहकर ठाकुर ने पंखा मुझे दिया। डिबिया खोलकर देखता हूँ-शालग्राम के सारे अंग में ओस की बूँदों की भाँति पसीना उभर आया है। देखकर अचंभा हुआ। आँखों में आँसू आ गए। हाय! आज ठाकुर को मैंने कितना क्लेश दिया? रोते हुए पंखा झलता रहा। डॉक्टर नवीन बाबू व श्रीपति बाबू ने भी पंखा झलना शुरु किया। सात बजे तक पंखा झलते हुए ठाकुरजी का शरीर शीतल हुआ। पसीना सूख गया। तब ठाकुर ने कहा-"अब शालग्राम को डिबिया में रखो। भोग लगाकर शालग्राम की आरती करना। एक चँवर मंगा लेना, चँवर की हवा शीतल होती है। उसी से शालग्राम को हवा करना चाहिये।" दो दिन में चँवर आ गया। अब घंटे-घड़ियाल की बात कह रहे हैं। भगवान की इच्छा से एक छोटा घड़ियाल, घंटा भी अभय बाबू ने लाकर दिया। ठाकुर स्वयं आरती के समय उसे बजाया करते हैं।

आजकल शालग्राम की संध्या आरती बड़े ही धूम-धाम से होती है। ताल-ताल में मृदंग मंजीरा भी बजता है, मैं बड़े ही आनंद मग्न होकर आरती करता हूँ। इस आरती को देख कई लोग खूब आनंद, उत्साह प्रकट करते हैं, पर कुछ लोग चिढ़ते भी हैं। गुरुभाईयों में जो ब्राह्म-मतभावापन्न हैं, वे ठाकुर को घंटा बजाते देखकर दुखी और विस्मित होते हैं। हिन्दुओं में भी कुछ असंतुष्ट होते हैं। ब्राह्मगण कहते हैं-यह सब क्या है? गोसाईंजी के पास भी मूर्त्तिपूजा प्रारंभ हो

गई? वे इसे बढ़ावा क्यों दे रहे हैं? कट्टर हिन्दू कहते हैं-यह कैसी पूजा? गुरु के सामने शालग्राम की आरती। देखते ही बदन जल उठता है, अरे करना ही है, तो गुरु की आरती करो। गुरु के पास शालग्राम की आरती क्यों? साधारण जनों के इन विरोधों से मैं बड़े संकट में पड़ा। ब्राह्म, हिन्दू कोई भी मुझसे सहानुभूति नहीं रखते, बल्कि जिससे मेरी शालग्राम पर अश्रद्धा उत्पन्न हो, इस प्रकार की बातें करते हैं। इन विरोधों के बीच मेरी क्या दशा होगी नहीं जानता। गुरुदेव का ही भरोसा है। देखें बात कहाँ तक बढ़ती है।

सद्गुरु के संबंध में नाना प्रकार की बातें।

कुछ सज्जनों ने आकर ठाकुर से पूछा-दीक्षा ग्रहण के विषय में शास्त्रों में क्या व्यवस्था है? सद्गुरु के पास दीक्षा की जो व्यवस्था है वे सद्गुरु किस प्रकार हैं? अपने-अपने गुरु को तो सभी सद्गुरु कहा करते हैं। ठाकुर ने लिखा-**'दीक्षा के संबंध में दो प्रकार की व्यवस्था है। वैदिक नियम के अनुसार वेद-वेदान्तवेत्ता आश्रमी अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास-इन चार आश्रमों में से किसी एक का जो नियमित आचार प्रतिपालित करते हों, ऐसे वेदज्ञ, सदाचारी, आश्रमी ब्राह्मण सद्गुरु शब्द वाच्य हैं। वैदिक सद्गुरु के पास केवल ब्राह्मण ॐकार मंत्र ले सकते हैं, अन्य जातियों को यह अधिकार नहीं है। द्वितीय व्यवस्था तांत्रिक है। कलियुग में सब दुर्बल ब्राह्मण-जो वैदिक आश्रम व सदाचार का पालन नहीं कर सकते-उनके लिये दया करके महादेवजी ने तंत्र शास्त्र की व्यवस्था की है। तंत्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं वर्णसंकर-सभी मनुष्यों का अधिकार है। तंत्र साधना के तीन**

सोपान हैं--पशु, वीर एवं दिव्य। इन तीनों साधनाओं में कृतकृत्य होकर जिस व्यक्ति ने मंत्रार्थ सहित-मंत्र चैतन्य कर लिया हो, उनका मंत्र सिद्ध हो जाता है। इस सिद्ध मंत्र के साथ ॐकार युक्त रहता है। सिद्धमंत्र से जिन्होंने सिद्धि प्राप्त कर ली हो, वे ही सद्गुरु हैं। ये सद्गुरु महादेव की आज्ञा के अनुसार ॐकारयुक्त मंत्र सभी वर्णों को प्रदान करते हैं। उसकी साधना से नितांत श्रद्धाहीन व्यक्ति भी तीन जन्मों में मुक्ति लाभ करता है। यह सत्य है, सत्य है, सत्य है-शिववाक्य है।'

प्रश्न-हमारे देश में पंच देवोपासना प्रचलित है। हमें किस प्रकार उपासना करना चाहिए जिससे हमारा कल्याण हो।

ठाकुर-'**ब्रह्मवैवर्त पुराण में पंचदेवों की पूजा के विषय में मीमांसा है। उतना गहन अनुसंधान न करना चाहो तो प्रचलित प्रणाली के अनुसार से चलना भी ठीक है। उपासना दो नियमों में प्रचलित है-वैदिक तथा तांत्रिक। बंगाल में वैदिक प्रथा नहीं के बराबर है, केवल ब्राह्मण गायत्री संध्या करते हैं। उस पर तांत्रिक दीक्षा लेते हैं। शाक्त, शैव, वैष्णव, गाणपत्य, सौर इन पंचदेव के किसी एक देव मंत्र से दीक्षा ग्रहण करते हैं। प्रतिदिन पूजा के समय इन पंच देवताओं की पूजा करके, फिर इष्टदेव की पूजा करना होता है। इसमें निष्ठा हो तो सब कुछ लाभ हो सकता है। नारद पंच रात्र और अन्यान्य ग्रंथों में है-'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेनमैव केवलम्। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।' निरपराध होकर हरिनाम करने पर ही भवबंधन से मुक्ति मिल सकती है। मूल बात यही है कि शास्त्र व सदाचार का अनुसरण करते हुए धर्माचरण करने पर ही धर्म लाभ होता है।'**

प्रश्न-विश्वास, भक्ति नहीं है, लेकिन दीक्षा ग्रहण करके धर्मलाभ करने की आकांक्षा हो तो इस अवस्था में क्या करना कर्तव्य हैं?

ठाकुर-**'अपना विश्वास न हो तो मंत्र लेना केवल समाज का एक नियम पालन मात्र करना होगा। सभी धर्म संप्रदाय, धर्म शास्त्रों पर श्रद्धा रखकर, क्रमशः शास्त्रानुसार चलते-चलते किसी एक बात पर विश्वास किया जाता है। अन्यथा भगवान ने मानव आत्मा में जो धर्मभाव दिया है, उस पर स्वाभाविक विश्वास हो तो भी चलता है। शास्त्र या आत्मप्रत्यय में विश्वास न हो किंतु धर्मलाभ करने की व्याकुलता रहे तो, पूर्वपुरुषगण तथा देश के प्रसिद्ध धार्मिक गण जिस पथ का अनुसरण करके धर्म लाभ किए हों, महाजनों के दर्शित उसी पथ का अनुसरण करना कर्तव्य है।'**

भीषण स्वप्न: मातृहत्या।

आज सुबह से ही माँ को देखने के लिये मन बड़ा अस्थिर हो रहा है। किंतु माँ के पास जाकर माँ को किस प्रकार देख सकूँगा। स्वप्न में माँ पर जो विकट आचरण किया है, उसका स्मरण होते ही हृदय काँप उठता है। क्लेश से प्राण निकले जा रहे हैं। दोपहर भोजन के बाद ठाकुर आसन पर लौटे। मैंने ठाकुर से कहा-फैजाबाद से चण्डी पर्वत जाने के दिन, मैंने रात को एक स्वप्न देखा था, ऐसा भयंकर स्वप्न मैंने क्यों देखा, याद आते ही व्याकुल हो उठता हूँ।

मेरी बात समाप्त होने के पहले ही ठाकुर सब कुछ जानते हों, ऐसे भाव से मुस्कराते हुए सिर हिलाते हुए पूछने लगे-**'हाँ स्वप्न**

क्या था कहो तो? मैं भी सुनूँ।' मैं कहने लगा-कुतु, माता ठाकुरानी व योगजीवन के साथ आपके पास बैठा हूँ। अचानक थोड़ी दूरी पर मेरी माँ आड़ से मुझे झाँककर देखने लगी। आपने उन्हें देखकर कहा-'तुम्हारी इस माँ का वध कर सकोगे? लो यह खड्ग लो। मैं आपके कहने पर माँ का वध करने दौड़ा। मैंने सोचा अभी आपके आदेशानुसार माँ का वध कर दूँ। फिर आपके चरणों में रोकर माँ को पुनर्जीवित करवा लूँगा। मैंने माँ के पास पहुँचकर एक ही वार से माँ के दो टुकड़े कर डाले। तभी न जाने मुझे क्या हो गया, खड्ग लेकर नृत्य करने लगा। तभी आप आसन से उठकर आए और मेरे पास दौड़कर मुझे छाती से चिपका लिये। मैं भी तुरंत स्थिर हो गया। आपने कहा-'इसका चिन्ह भी नहीं रखना चाहिए, जमीन में गाड़ दो।' मैंने भी शीघ्र गड्ढा खोदा और माँ के शरीर को दफना दिया। तब आप मेरा हाथ पकड़कर बाहर आए और मेरी नींद खुल गई। ठाकुर ने स्वप्न वृत्तांत सुनकर संतुष्ट होकर कहा-**'सुंदर स्वप्न देखा है। वह माँ तुम्हारी गर्भधारिणी माता नहीं-माया पिशाचिनी, माँ के रूप की आड़ लेकर ही तुम्हें झाँक रही थी। तुमने उसका ही वध किया है।'**

ठाकुर की बातें सुनकर मन शीतल हो गया। क्लेश का कोई नामोनिशान न रहा। ठाकुर से मैंने पूछा-स्वप्न से क्या जीवन की यथार्थ उन्नति हो सकती है? ठाकुर-**'अवश्य हो सकती है। एक दीर्घ जीवन, जन्म से मृत्यु तक दो-चार मिनट के स्वप्न में कट जाता है। सभी स्वप्न अलीक नहीं होते।'** सुनकर गुरुभ्राता श्री मनोरंजन गुहठाकुरता की बातें याद आ गई। उन्होंने कहा था-तीन रात तक श्रृंखलाबद्ध रूप में एक ही स्वप्न देखा था। प्रथम रात को

जन्म से बाल्यावस्था, द्वितीय रात्रि को यौवन एवं तीसरी रात्रि को वृद्धावस्था व मृत्यु देखी। अर्थात् एक जन्म में शिशुकाल से साठ सत्तर वर्ष के बाद, मृत्यु तक एक-एक दिन के स्वप्न में कट गया।

ऐश्वर्य एवं माधुर्य भाव की उपासना क्या है?

आज अपराह्न के समय वैष्णव भाव वाले कुछ विद्वान व्यक्ति ठाकुर के पास आए। कुछ देर तक वैष्णव धर्म की आलोचना के बाद उन्होंने ठाकुर से जानना चाहा, 'राधा-कृष्ण' उपासना का अधिकार कब होता है? क्या पंचदेवताओं के उपासना के बाद राधा-कृष्ण की उपासना होती है? वैष्णवों के प्रश्न के उत्तर में ठाकुर ने लिखा-**'ब्रह्मवैवर्त पुराण में है कि अनेक जन्म लेते हुए जीव की धर्म में रुचि होती है। प्रथम गणेश उपासना, फिर सूर्य, फिर शैव, वैष्णव एवं शक्ति उपासना करने पर मुक्ति मिलती है। तब राधा कृष्ण की उपासना का अधिकार मिलता है। इस समय सद्गुरु की कृपा हो तो राधाकृष्ण तत्त्व सुधा का पान करके जीव कृतार्थ हो सकता है। ऐश्वर्य भाव के उपासक गाणपत्य, शाक्त एवं शैव होते हैं। माधुर्य भाव के उपासक-वैष्णव होते हैं। सीता-राम, लक्ष्मी-नारायण या राधा-कृष्ण के उपासक यदि ऐश्वर्य भाव रखकर उपासना करें तो शैव, शाक्त-एवं सौर्य ही कहलाएंगे। काली, दुर्गा, शिव, गणपति, सूर्य, नारायण के उपासक यदि मधुर भाव के उपासक हैं तो इन्हें यथार्थ वैष्णव कहा जाएगा। ब्रह्म संहिता में इसका प्रमाण है। शिव-पार्वती, सीता-राम, लक्ष्मी नारायण इनमें माधुर्य भाव हो तो पराधर्म ही होगा। किंतु ऐश्वर्य भाव के हो तो ईश्वर उपासना ही होगी। रामप्रसाद के**

समान परम वैष्णव कौन है? काली, दुर्गा ये नाम शाक्त नहीं होते, शाक्त ऐश्वर्य भाव है।'

सेवा, वंदना और अधीनता।

कुछ गुरुभाईयों ने पूछा-हम रोज गाते हैं-सेवा, वंदना और अधीनता सहज मिलावें गोसाईं। उसका अर्थ क्या है? ठाकुर ने उत्तर दिया-**'दीन-हीन, विनीत होने से बढ़कर भगवान को पाने का और कोई सहज उपाय नहीं है। सेवा, वंदना और अधीनता ये तीन-सभी प्रकार की साधनाओं से श्रेष्ठ और सहज है। कई महात्माओं से पूछा गया पर किसी ने इनसे बढ़कर कोई सहज भगवत् प्राप्ति का उपाय नहीं बताया। मेरा भी विश्वास है इससे बढ़कर कुछ नहीं। यही श्रेष्ठ व सहज साधन है। इसके द्वारा भगवान में महाभाव लाया जा सकता है। मन-वचन-कर्म से सभी मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्ष-लता आदि की साध्यानुसार सेवा करनी होगी। दया व सहानुभूति के बिना यथार्थ सेवा नहीं होती। जैसे अपने प्रयोजन की पूर्ति करने की इच्छा होती है, वैसे ही दूसरों के प्रयोजन को हृदयंगम करके, पूरा करने की व्याकुलता उत्पन्न होती है। माँ शिशु की सेवा इसी प्रकार करती है, शिशु के किसी अभाव को देखकर माँ अस्थिर हो उठती है। इसका नाम है सेवा। मन में अनुराग नहीं है, देखादेखी कुछ खाने को दिया या कोई सहायता कर दी-उसे यथार्थ सेवा नहीं कहते। वृक्ष सेवा, पतिसेवा, संतान सेवा, प्रभुसेवा, भृत्य सेवा, पत्नी सेवा-सभी में यदि यह भाव हो तो वह सेवा होगी अन्यथा उसे सेवा का नाम देना उचित नहीं होता**

है, इस तरह सेवा करने का कोई प्रयोजन नहीं। उससे हानि की संभावना है। वन्दना-सभी की वन्दना करना चाहिये। जहाँ जितनी मात्रा में सत्य की प्राप्ति हो, उतनी ही मात्रा में सत्य ग्रहण कर लो। जिनसे या जिस स्थान से जरा भी सत्य प्राप्त हो, उस स्थान या व्यक्ति की विशेष रूप से वंदना करनी चाहिये। ईश्वर से यही प्रार्थना करना चाहिए कि सत्य का पालन कर सको। व्याकुलता न आए तो व्याकुलता के लिये ही प्रार्थना करो। तभी सत्य हृदय में प्रकाशित होगा। अपनी शक्ति से किसी सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। जब अत्यन्त दीन भाव से इस सत्य प्राप्ति के लिये व्याकुल हो जाओ एवं आत्मा अत्यन्त दीन, विनीत भाव धारण कर ले, तब भगवान की असीम कृपा से सत्य का हृदय में प्रकट होना संभव होता है और जीवन धन्य हो जाता है। इस प्रकार न होने पर सत्यप्राप्ति या कोई यथार्थ परिवर्तन भी नहीं आता।'

'वन्दना तीन प्रकार की होती है-कायिक, वाचिक, मानसिक। कायिक वंदना-जैसे नत होकर प्रणाम, भूमि में प्रणाम, हाथ जोड़कर प्रणाम या नमस्कार आदि। वाचिक वन्दना में उनकी स्तुति करना होता है। मानसिक वन्दना में मन से वन्दना का भाव उमड़ता है। जिनके पास से सत्य की प्राप्ति हुई हो उनका अनादर व्यंग या हँसी उड़ाना, आदि नहीं करना चाहिए। गुरु-ज्ञान से उनके प्रति विनीत होओगे, तभी विशेष फल मिलेगा।'

'अधीनता-सभी गुरुजन हैं सभी के अधीन होना चाहिए। सबके प्रति विनीत और अधीन रहना होगा, सभी को प्रभु मानो।

उनके समक्ष भीति की याने लिहाज की भावना रखना। उनकी गुण-महिमा गान करना। तुम्हें सभी अपना मान सकें। ऐसा करने पर सफलता पाने में देर नहीं लगती। इन सब विषयों को किसी से कहना नहीं चाहिए, ये भाव गोपनीय रखने पर विशेष फल की प्राप्ति होती है।'

एक दिन ढाका ब्राह्म समाज की आलोचना सभा में डॉक्टर पी. के. राय के प्रश्न के उत्तर में ठाकुर ने कहा था-**'विश्वास पाना हो तो विश्वासी के चरणों में नतमस्तक होना होगा।'** उनकी बात स्मरण हो आई। ठाकुर ने कुछ देर रुककर लिखना प्रारंभ किया। **'(१) ऋषिमार्ग-पथ (२) शुद्धि-परम साधन (३) ज्ञान मिश्रित भक्ति-जीव के निस्तार का उपाय (४) विश्वास-धर्म की नींव (५) जीवन गठन-व्रत (६) सत्य पथ-अवलम्बनीय (७) प्रेम व प्रीति कथन-यथार्थ कथन (८) एक ही उपास्य है (९) एकाग्रता-स्वस्थ अवस्था (१०) संशय-पीड़ा (११) साधुसंग-औषधि।'**

ठाकुर ने सेवा, वंदना और अधीनता के बारे में कहते हुए प्रयोजनीय अनेक बातें कहीं, सुनकर गुरुभ्रातागण बड़े संतुष्ट हुए।

स्वप्न में आशीर्वाद।

कुछ दिनों से भीतर की दुरावस्था देखकर अत्यन्त उद्विग्न हो रहा हूँ। ठाकुर मुझे अत्यन्त स्नेह करते हैं, प्रेम से रखे हैं। चारों ओर की विद्वेषाग्नि के ताप से बचाकर अपने श्रीअंग की शीतल-शीतल छाया में मुझे शीतल करते हैं। किंतु मैं ठाकुर के लिये क्या कर रहा हूँ? ठाकुर की अविरल कृपाधारा मुझ पर बरस रही है, परन्तु मैं उसे समझने योग्य अवस्था नहीं पा रहा हूँ। बहुत दिनों से दो

अवस्थाओं की प्राप्ति के लिए मन ही मन प्रार्थना कर रहा हूँ। किंतु ठाकुर उन्हें पूर्ण कहाँ कर रहे हैं? ठाकुर की कृपा से उस असाधारण अवस्था को प्राप्त करके उसका सम्भोग करने की वृत्ति यदि मुझमें न उत्पन्न हो तो ठाकुर के रस का क्या प्रयोजन? आज खूब व्याकुल होकर ठाकुर के श्रीचरणों में प्रार्थना किया-गुरुदेव। इतनी कृपा कर रहे हो, लेकिन विश्वास-भक्ति के अभाव में उसका मैं भोग नहीं कर पा रहा हूँ। यदि वस्तुतः तुम मुझे सुखी और कृतार्थ करना चाहते हो तो तुम पर मेरा स्थिर, स्वाभाविक विश्वास एकान्त भक्ति, प्रेम देकर मुझे अपना बना लो, अन्यथा तुम्हारे संपर्क और स्मृति का चित्र सदा के अन्तःकरण से मिटा दो। अविश्वास एवं शुष्कता की यह जलन अब मैं और नहीं सह सकता। इस प्रकार नाम एवं प्रार्थना करते हुए ही मेरा सारा दिन बीत गया।

रात को यथासमय सोने पर नींद नहीं आई। बड़ा कष्ट होने लगा। काफी रात गए नींद आई। इसलिए अन्य दिनों की तरह नियत समय पर जाग नहीं पाया। ठाकुर बार-बार ताली बजाकर मुझे जगा रहे थे, क्योंकि उस समय नींद में एक स्वप्न देखकर रोता जा रहा था। ताली की आवाज सुनकर जाग पड़ा। ठाकुर ने पूछा- **'क्या देखा?'** मैंने कहा-स्वप्न में देखा, एक आकस्मिक संकट से रक्षा पाने के लिए आप्राण यत्न करके भी विफल हो रहा हूँ। तब निरुपाय होकर जयगुरु जयगुरु कहकर रोने लगा। इसी समय देखा आप सामने ही समाधिमग्न बैठे हैं। थोड़ी देर में आपकी समाधि भंग होने लगी। तब मेरी ओर देखकर चों-चों का शब्द होते ही तालु से जिह्वा खींचकर सामान्य अवस्था में आने लगे। मुझे पास देखकर नमस्कार करके आपने पदधूलि लेने के लिए हाथ बढ़ाया। मैंने

सोचा पदधूलि दूँ या नहीं? गुरु को पादस्पर्श करने देना तो महापाप है। फिर विचार आया कि मैं तो देना नहीं चाहता, पर वे लेना चाहते हैं। उनकी जिस कार्य में संतुष्टि हो उसमें मैं बाधा क्यों दूँ? गुरु द्वारा तो मेरे किसी अकल्याण या अनिष्ट की संभावना ही नहीं रह सकती। गुरु किस कार्य द्वारा कब किसका कल्याण साधित करते हैं, इसे मैं क्या जानूँ? अवश्य ही मेरे कल्याण के लिये ठाकुर ऐसा कर रहे हैं, यह सोचकर मैंने आपत्ति नहीं की। आपने अनायास ही मेरी पदधूलि ग्रहण की। आपने उसे मस्तक से लगाया, फिर मुझे गोद में लेने के लिए हाथ फैलाया। मैं भी तुरंत आपकी गोद में लपक कर गया और शिशु की भाँति सो गया। आप मेरे सिर से पाँव तक प्यार से हाथ फेरने लगे, मैं रोते-रोते आपसे कहने लगा-आप मुझे आशीर्वाद दें। इतने पर आपकी ताली सुनकर जाग उठा। ठाकुर ने **'हूँ'** शब्द उच्चारण किया, मानो सहमति जाहिर कर रहे हों। मैं मुँह हाथ धोकर आया और ठाकुर को पंखा झलने लगा। कुछ देर बाद देखता हूँ ठाकुर सिसक-सिसक कर रो रहे हैं और बीच-बीच में मुझे देखते भी जा रहे हैं। मैं ठाकुर के चरणों की ओर दृष्टि रखकर नाम करने लगा।

जीव के स्वाधीनता की सीमा।

आज शनिवार को कई लोग ठाकुर से मिलने आये। एक गुरुभ्राता ने ठाकुर से पूछा-मनुष्य की क्या कोई स्वाधीनता है? ठाकुर ने लिखा-**'हाँ कुछ स्वाधीनता है। जैसे गाय के गले में रस्सी बँधी हो, तो रस्सी जितनी लम्बी हो उतनी दूर तक गाय घूम-फिर पाती है, इससे आगे नहीं जा पाती। ठीक उसी प्रकार**

मनुष्य अपनी प्रवृत्ति के विषय मात्र में स्वाधीनता प्राप्त कर सकता है। आँखों की दृष्टि, कानों का श्रवण एवं नासिका की घ्राणशक्ति आदि से जितनी दूर दृश्य देख सकता या शब्द सुन सकता है, उसके आगे और ऊपर जाने की क्षमता उसकी नहीं रहती। अपने पुत्र को जैसा प्यार करते हैं, दूसरों के पुत्र को उस प्रकार प्यार नहीं कर पाते-कोशिश करके भी ठीक वैसा भाव नहीं ला पाते। अतएव मनुष्य बँधी हुई गाय के समान स्वाधीन है, मोह और अज्ञानता जब तक है, तब तक अपने को कर्ता मानकर मनुष्य सुख-दुःख का भोग करता है। प्रत्येक जीव के कुछ कार्य हैं। उस कार्य के सम्पादन के लिये जितनी मात्रा में स्वाधीनता की जरूरत है, उतनी स्वाधीनता उसे है। जैसी गाय उतनी लम्बी रस्सी गले में बांधी जा सकती है। सभी जीव उपाधि में आवृत्त हैं, अर्थात् अन्धे के समान है। जैसे-जैसे ये उपाधियाँ कटती हैं, वैसे-वैसे देवत्व की प्राप्ति होती जाती है। इसीलिये जीव को चित्कण कहा गया है, वह जीवन मुक्त-शिव है।'

धर्म के लिये संसार त्याग क्या दोषनीय है? धर्म के लक्षण।

एक सज्जन ने पूछा-संसार के संताप व यंत्रणा के बीच साधन-भजन कुछ नहीं होता, अतः धर्म प्राप्ति के लिये संसार का त्याग करने में क्या दोष है?

ठाकुर ने लिखा-**'मनुष्य कुछ दिन संसार में रहकर साधन करे, और ताप दग्ध होता हुआ, अग्नि परीक्षित हो जाय, तब**

उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता। वैराग्य आते ही-यदि चला जाय, तो कई बार पतन की संभावना रहती है। उस समय सावधान न रहे, तो सर्वनाश हो सकता है। धर्म पथ पर चलो। इससे संसार रहे तो रहे, न रहे तो जाय। असत्य का अवलम्बन करके कभी कोई अर्थोपार्जन मत करना। उससे अच्छा तो भीख माँगकर जीवन-यापन करना है। धर्म की रक्षा सती की भाँति, दाता की भाँति, भक्त की भाँति तथा वीर की भाँति करना चाहिए। जहाँ धर्म है, वहाँ जय है। मनुष्य कर ही क्या सकता है? स्वयं भगवान ही धर्म की रक्षा किया करते हैं।'

किसी ने कहा-शास्त्र पुराणों में धर्म के कितने ही लक्षण बताए गये हैं, वस्तुतः यह तो कुछ भी समझ नहीं आता।

ठाकुर-**'रुपया, शरीर, धर्म-इनका उपयुक्त व्यवहार ही धर्म है। सभी विषयों अपव्यवहार या अपव्यय ही पाप है। अब तो कोई कीर्तन में जरा नृत्य किया, जरा भाव आ गया इसे ही धर्म कहते हैं, यह भी धर्म है संदेह नहीं, लेकिन धर्म के प्रधान अंग हैं- सत्य, न्याय जीवों पर दया, पिता-माता व गुरुजनों पर भक्ति, सत्संग की स्पृहा, परस्त्री दर्शन में सतर्कता, परधन में निर्लोभ। हरिनाम का फल लगने लगे, तो ये लक्षण दिखने लगेंगे। यह सब न हुआ तो जीवन में धर्म का आरंभ ही नहीं हुआ जानो।'** एक दिन अन्नपूर्णा की माँ ने आकर गोसाईंजी से कहा-बाबा! मैं अकसर रुपए पैसे खो दिया करती हूँ-मेरा क्या होगा?

ठाकुर ने कहा-**'जो रुपये पैसे खो देता है, वह सब कुछ खोता है। वह धर्म भी खो देता है। रुपया खोने की वस्तु नहीं है, उसे दान करो। मैं रुपये लेकर जाता हूँ-खर्च हो जाने पर निश्चिन्त हो**

जाता हूँ।'

ऋषि वाक्य ही सार है।

आज ठाकुर के ब्राह्मसमाज के परम मित्र श्री प्रतापचन्द्र मजूमदार जी ठाकुर से मिलने आए। कुछ बातों के बाद, दुःख प्रकट करते हुए कहने लगे-गोसाईं, इन्सान का मुँह देखकर, लोकलाज को लेकर ही जीवन को नष्ट कर दिया। अब लोग बड़ा आदमी कहते हैं। इसी अभिमान में मर रहा हूँ। यथार्थ धर्म-लाभ न हो पाया। लोकलाज के पीछे धर्म खो दिया। लोगों का तो कुछ नहीं गया, हानि तो मेरी ही हुई। प्रताप बाबू की बातें सुनकर ठाकुर ने कहा-**'आप गीता एवं श्रीमद्भागवत् पाठ कीजिएगा। केवल अंग्रेजी भावापन्न होकर मत रहें। ऐसा करने पर लाभ मिलेगा।'** ब्राह्मसमाज के कुछ लोगों से आधुनिक ब्राह्मधर्म, ब्राह्मसमाज तथा शास्त्र सदाचार की बातों के बाद ठाकुर ने लिखा-**'धर्म की नई बात कहने की शक्ति उन ऋषियों में ही थी। उन्होंने कृपा करके जिन सब धर्म मतों की शास्त्र रूप में स्थापना की है, उन्हें समझ सकें, इतनी क्षमता भी हममें नहीं है। फिर भी उनके उपदेशों के पालन करने की इच्छा अवश्य होती है। अब शारीरिक, सामाजिक और अन्य कारणों से यथार्थतः शास्त्र व सदाचार का अनुगत होकर चलना कठिन जान पड़ता है। ऋषि वाक्य ही सार है, अब तो यही समझता हूँ।'**

एकाग्रता लाभ करने का उपाय।

कुछ दिन हुए देश के विख्यात बैरिस्टर श्री आनंदमोहन बसु महोदय, ठाकुर के पास आए थे। ठाकुर ने कुछ समय के लिए हम

सबको दूसरे कमरे में जाने को कहा एवं उनसे एकान्त में वार्तालाप किया था। ठाकुर ने बाद में लिखा-'जाते समय दुखी होकर उन्होंने मुझसे कहा-गोसाईं जीवन वृथा चला गया। सोचता था धर्म-लाभ हुआ, पर अब देखता हूँ कुछ भी नहीं हुआ। इस कष्ट के निवारण का क्या उपाय है?' ठाकुर ने क्या उत्तर दिया होगा यह तो वे ही जानें। बसुजी खूब संतुष्ट होकर लौटे।

अद्वितीय दार्शनिक, पण्डित श्री ब्रजेन्द्रनाथ शील महोदय भी ठाकुर के दर्शनार्थ आए। उन्होंने विविध विषयों पर वार्तालाप किया। वह सब मैं कुछ भी न समझ पाया। जाते समय राखाल बाबू आदि से ब्रजेन्द्र बाबू ने कहा-'सभी फिलॉसफी पर गोसाईं ने तो पानी फेर दिया। वे किस ऊँचाई पर खड़े होकर बातें करते हैं, कुछ भी न समझा। वे अगाध समुद्र की भाँति है, जिसमें मैं प्रवेश तक न कर पाया।' आज कुछ निष्ठावान गुरुभ्राताओं ने ठाकुर से पूछा-मन तो किसी प्रकार स्थिर नहीं होता। एकाग्रता किस प्रकार प्राप्त करें? ठाकुर ने लिखा-'**एकाग्रता का अभ्यास कई प्रकार से किया जाता है। जितने भी प्रकार हैं सभी सामयिक हैं। अर्थात् जब तक इन उपायों का अवलंबन करो मन जरा सा स्थिर होगा। बाहरी उपाय सामयिक ही होते हैं। जब तक संकल्प-विकल्प नष्ट न हों, चित्त की एकाग्रता भी नहीं आ पाती। भगवान हैं-यह सर्वदा स्मरण रखना होगा। स्मरण, मनन एवं निदिध्यासन-ये तीन एकाग्रता प्राप्ति के श्रेष्ठ उपाय हैं। पहले स्मरण-सभी स्थान में, सभी घटनाओं में उनका ही स्मरण करना। मनन-अस्तित्व बोध होने पर मन अपने आप उधर जाता है, जैसे सर्प आलोक दर्शन करके आँख नहीं फेर पाता। फिर निदिध्यासन-गाय जैसे**

जुगाली करती है-स्मरण, मनन से जो आनंद या स्वाद पाया बारंबार उसका ही भोग करना? ये तीन एकाग्रता प्राप्त करने के श्रेष्ठ उपाय हैं।'

प्रश्न-मन पर हमारा कर्तृत्व क्यों नहीं होता?

ठाकुर-**'मन में संकल्प-विकल्प सर्वदा हो रहा है। इसी से मन अस्थिर हो जाता है और मन पर कर्तृत्व नहीं हो पाता। इसके प्रधान दो कारण, दो प्रबल इन्द्रियाँ हैं-जिह्वा और उपस्थ। उपस्थ तो भी व्यक्ति अनायास ही दमन कर लेते हैं, किंतु जिह्वा को सहज ही वश में नहीं किया जा सकता। कोई निंदा करे, कटुवाक्य कहे तो जिह्वा तुरंत प्रतिवाद करती है। जिह्वा वशीभूत हो जाय तो निंदा-प्रशंसा हमें विचलित नहीं कर सकती।'**

ठाकुर ने लिखा-**'साधु संग, सदा नित्य-अनित्य का विचार अर्थात् संसार की असारता की चिंता और मन ही मन सदैव भगवन्नाम जप इन उपायों से क्रमशः चित्त की एकाग्रता मन पर कर्तृत्व या काबू रखना हो पाता है।'**

मणिबाबू की माँ एवं बहन की बातें।

मणिबाबू की माँ एवं बहन की बातें छोटे दादा की डायरी से संक्षेप में लिख रहा हूँ। मणिबाबू ने कहा-इस घर में गोसाईंजी के रहते समय हमारे इलाके के कई स्त्री, पुरुष उनके दर्शनार्थ आया करते थे। मेरी माता जी दर्शन न कर सकीं, क्योकि वे चलने में असमर्थ थीं। गोसाईंजी से यह कहने पर उन्होंने कहा-**'मैं बादुड़-बागान जाते समय तुम्हारे घर होकर जाऊँगा।'** मैं दफ्तर जाते

समय माँ से कहकर गया कि यदि गोसाईंजी आयें तो उन्हें पूजा के कमरे में बैठाना। एक रुपये का संदेश मँगाकर अपने हाथों से उन्हें खिलाना। ऑफिस से आते ही मैंने माँ से पूछा-माँ गोसाईंजी आए थे? उन्हें तुमने कैसा देखा? माँ ने कहा-तुम्हारे गोसाईं बड़े भले हैं। पूजा घर में आसन पर बैठते ही कमरा आलोकित हो उठा। ठाकुरजी भी सिंहासन से उतरकर गोसाईं के सामने खड़े हुए, फिर सिंहासन पर जा बैठे। मैंने माँ से कहा-ऐसा भी कभी हो सकता है? बाद में गोसाईंजी से पूछा तो उन्होंने बताया-**'माँ क्या कभी झूठ बोलती हैं।'** मणिबाबू की भगिनी श्रीमती योगमाया आज ठाकुर के बारे में बताने लगीं-मैं, डॉक्टर अमृत मजुमदार की पत्नी (ब्रह्मज्ञानी) और मेरी भाभी (गुरुबहन) सौरीन्द्र की माता, हम तीनों एक दिन दोपहर के दो बजे, बादुड़ बागान के तैंतीस नं. गोपाल मित्र के घर में गोसाईंजी के दर्शन करने गए। उस दिन वे एक गीत गा रहे थे-धर्म कर्म सभी गया, श्यामा माँ की पूजा न हुई, ऐसा उस गीत का भावार्थ था। उन्होंने मेरी माँ को एक गाना सुनाने को कहा, माँ ने गाया, जिसका अर्थ है-हे हरि तुम आप ही गाओ, आप ही नाचो, आप ही बजाओ ताल-ताल में, तुम्हारी महिमा तुम्हारे भक्त के सिवा और कौन जाने?

दूसरे दिन पुनः गोसाईं के दर्शन के लिए जाकर उनसे उस दिन के गीत का अर्थ जानना चाहा। उन्होंने बताया कि-**'राधारानी सखियों से कहती हैं कि (आयान घोष की इष्टदेवी काली हैं) मैं श्यामा की पूजा करना चाहती हूँ कि श्याम आकर दर्शन देते हैं। अब मैं क्या करूँ, मेरा धरम-करम सब गया और श्यामा पूजा भी न हो पाई।'** गोस्वामी महाराज ने और भी कहा-**'जब तुम अपने**

इष्टदेव या गुरु का ध्यान करो तब वे जिस रूप में भी दर्शन दें, उसे ही आदर देना। यदि कुत्ते बिल्ली के रूप में भी आएँ तो भी आदर करना, पर ध्यान भंग न करना।' अमृत बाबू की पत्नी ने कहा-जब एकं ब्रह्म द्वितीयं नास्ति, तो फिर दूसरी मूर्ति में क्यों आएंगे। गोस्वामी जी ने कहा-**'आप लोग जिसे एक ब्रह्म कहते हैं, वे ब्रह्म गुरु ही हैं। मस्तक पर ही गुरु विराजमान हैं। ब्रह्म तालु में गुरु का निवास है। आप निराकार का ध्यान करती हैं, वे भी गुरु ही हैं। जिन्हें पुकारती हैं, वे भी गुरु ही हैं। वे अनन्त हैं, उनका अन्त नहीं। ध्रुव जब वन में गया, तो वे ही पीछे रहकर उनकी रक्षा करते रहे। ध्रुव उन्हें पुकारने लगा। बाघ आया, ध्रुव ने कहा-तुम मेरे इष्टदेव ही आए हो? बाघ ने किसी प्रकार हिंसा नहीं की। फिर वे ही अनन्त नारद के रूप में आए एवं उन्होंने ध्रुव को दीक्षा दी। आप जो करती है वह भी ठीक है, परन्तु गुरु न रहने पर शीघ्र दर्शन नहीं मिलते।'** अमृत बाबू की पत्नी ने कहा-गुरु की मूर्ति किस प्रकार चिंता करें? गोसाईंजी ने कहा-**शिव की मूर्ति का ध्यान करना।** मैंने पूछा-अभी जो गुरु वर्तमान हैं, उनका ही ध्यान करें? इस पर उन्होंने कहा-**'मस्तक में शिवजी का ध्यान करना-जटाधारी शिव, जटा से कल-कल ध्वनि कर गंगा बह रही है, अंग में सर्प लिपटे हैं। यदि यह ध्यान कर सको तो और भी उत्तम, कि माता भगवती पास बैठी हैं।'** मैंने उस समय देखा, गोस्वामी प्रभु शिवजी के रूप में विराजमान हैं। उनके दोनों कंधों पर सर्प फन फैलाए, लिपटे हैं। सिर पर भी सर्प कुण्डली मारकर फन फैलाए हैं। वाम-जंघा पर माता ठाकुरानी अन्नपूर्णा के रूप में बैठी हैं, उनके अंग पर लाल साड़ी और हाथ तथा गले में

रुद्राक्ष की मालाएँ हैं। उनके चरण लाल हैं। हम तीनों ने यह रूप दर्शन किया।

देवी-देवताओं का आविर्भाव।

आज पाँच बजे भोजन पकाने गया तो देखा कुतु ने मेरे पकाने की सारी तैयारी कर रखी है। कुतु की इस प्रकार निःस्वार्थ सेवा को देखकर मन में बड़ा आनंद आया। उसके गुणों के कारण दिनोंदिन मैं उस पर आकृष्ट होता जा रहा हूँ। पर्वत से लौटने पर नानी माँ, शांति मेरा बड़ा आदर सत्कार कर रही हैं, यह मेरे लिये नई बात है। कल रात तीन बजे ठाकुर को पंखा झलते समय देखा ठाकुर स्वयं अपना पैर दबा रहे हैं। मैं तुरंत उनके पैर दबाने लगा। कुछ देर बाद वे कहने लगे-**'यह क्या, यह क्या तुम्हारे साथ तो तुम्हारे नारायण भी हैं। ऐसा क्यों? (नारायण से) तुम क्यों आ गये? आहा! क्या सुंदर सूर्यमण्डल, उनके बीच नारायण। ऐसा उत्कृष्ट चक्र देखा नहीं जाता। गोपाल भट्ट के जो चक्र थे, जो आज भी वृंदावन में राधारमण के नाम से पूजे जा रहे हैं-वे भी इसी प्रकार अष्टभुज महाविष्णु हैं।'** ठाकुर बहुत देर तक शालग्राम की महिमा बताने लगे। मैंने ठाकुर से कहा-चतुर्भुज, अष्टभुज मैं नहीं जानता। मैं जिनका ध्यान करता हूँ, वे इनमें हैं या नहीं? उनके भीतर रहकर मेरी पूजा ग्रहण करते हैं या नहीं? ठाकुर ने लिखा-**'हाँ अवश्य ही श्रद्धापूर्वक पूजा करते-करते सभी प्रकट होते हैं। इस संसार में चतुर्भुज तक ही प्रकट होते हैं। गृहस्थ लोग चतुर्भुज विष्णु की ही पूजा करते हैं, वे बैकुण्ठ तक जा सकते हैं। अष्टभुज किसी-किसी के भाग्य में ही मिल पाता है।'**

इस प्रकार की बातों के बाद एक विचित्र घटना घटी। ठाकुर भावावेश में अधीर होकर एक बार बायीं, एक बार दाहिनी ओर लुढ़कने लगे और कुछ बोलते रहे-**'क्या तुम कहाँ से आए? गुशकरा से. अच्छा। वहाँ गृहस्थ लोग तुम्हारी सेवा पूजा कैसे कर रहे हैं? अरे तुम कहाँ से आ गए? तुम्हारा सिंहासन कहाँ है? श्याम सुंदर, लोग तुम्हें श्रद्धा भक्ति करते हैं न?'** इस प्रकार ठाकुर अनेक देवताओं से वार्तालाप करने लगे। सुनकर कुछ समझ न पाया। उन्हें असुविधा हो रही हो, ऐसा सोचकर, चरण छोड़कर मैं आसन पर जा बैठा। थोड़ी देर बाद ठाकुर ने श्यामसुंदर, राधागोविंद, लक्ष्मीनारायण आदि से कथोपकथन में वे कहाँ से पधारे, पूछकर, प्रणाम करके उन्हें विदाई दी। मैं नशाग्रस्त सा होकर अवाक् देखता रहा। ठाकुर का यह भाव कुछ समझ नहीं आता।

अलौकिक दर्शन से क्या लाभ है?

ठाकुर मेरी ओर देखकर हूँ-हूँ कहकर सिर हिलाने लगे और छोटे से, प्यारे बच्चे की तरह पुनः पुनः कुछ खाने को माँगने लगे। मैंने ठाकुर की हथेली पर कुछ मिठाई दी और कमण्डल में जल देकर पूछा-इस बार क्या मुझे श्रद्धा-भक्ति की प्राप्ति होगी, विश्वास उत्पन्न होगा? ठाकुर ने कहा-**'हाँ अवश्य ही। तुम्हीं लोगों को क्यों, जो खूब दुःख कष्ट, दुरावस्था में है, उनको भी होगा। दो दिन आगे या दो दिन पीछे, यह तो होना ही है'** मैंने कहा एक बार भक्ति, विश्वास, प्रेम की आँखों से एक पल के लिए भी आपका दर्शन करके यदि मेरी मृत्यु भी हो जाय तो मैं अपना जीवन सार्थक

मानूँगा। ठाकुर ने कहा-**‘जिस तरह चल रहे हो, जैसे पूजा ध्यान कर रहे हो, उसी प्रकार करते चलो। इसी से क्रमशः सब होगा। विश्वास-भक्ति जन्म लेगी। विश्वास कभी कुछ देख-सुन लेने से नहीं हो जाता। कुछ लोग कहते हैं, अलौकिक कुछ देखने पर ही विश्वास हो जाएगा, पर वह एक भूल है। कई दिनों तक बहुत कुछ दिखाने पर भी लोगों को कुछ भी न हुआ, बल्कि हानि हुई। विश्वास एक ऐसी वस्तु है, जो कुछ देखने-सुनने से नहीं, बल्कि भगवान की कृपा से प्राप्त होती है। तुम कुछ अलौकिक देखना चाहते हो?’** मैंने कहा-अलौकिक या अद्भुत कुछ भी मैं नहीं देखना चाहता। यदि कुछ ऐसा देखें जो आपसे अधिक अच्छा लगे तो अपना सर्वनाश ही मानूँगा। मेरे मन में ऐसा कुछ देखने का कौतुहल ही न हो।

ठाकुर ने कहा-**तुम जैसा कर रहे हो करते चलो-इसी से सब होगा। अपने साधन-भजन की बात कहीं भी कह देने से अनिष्ट होता है। वह अवस्था नहीं रह जाती, अतः सावधान रहना। जिसका जैसा भजन है, वे निष्ठापूर्वक करते रहें। प्रत्येक साधक अपनी मर्यादा रक्षा करके चले। यही शिववाक्य है।’** इतना कहकर ठाकुर ने आँखे बंद कर ली। मैं उन्हें पंखा झलता रहा।

माँ काली एवं ठाकुर!

कुछ देर बाद ठाकुर भावावेश में कहने लगे-**‘माँ! बूढी माँ तुम ऐसी क्यों हो? तुम्हारी बुद्धि नहीं है क्या? सारा दिन रात बच्चों को छोड़कर कहाँ रहती हो? चौबीस घंटे तुम्हारे दर्शन की इच्छा से बैठा रहता हूँ। इतनी देर बैठे रहने पर भी तुम्हें एक बार भी**

बेटे की याद नहीं आती? लोग तुम्हें दयामयी कहते हैं। तुम्हारी कितनी दया है, देख लिया। चौबीस घंटे बच्चे को छोड़कर चली जाती हो। बच्चा दिन-रात बैठा रहता है। अब आकर भी बात नहीं करती, सिर्फ खाने को दे भूख लगी है, कहकर गोलमाल कर रही हो। यदि कभी कुछ न रहे, न दे सकूँ तो मेरा खून चूस लेती हो। मेरा खून न पीने से क्या तुम्हारी भूख नहीं मिटती। ऐसे ही क्या तुम्हें निर्बोध कह रहा हूँ। स्त्रियों की बुद्धि नहीं होती, तभी तो दस हाथ धोती पहन कर भी वे काछी नहीं लगाती। बुद्धि नहीं हैं, तभी तो पुत्र का कष्ट भी नहीं समझती।' रोज शेष रात्रि ठाकुर माँ काली की स्तुति गान करते हैं। कभी श्यामा-संगीत गाते हैं-

भवे शेई से परमानन्द, जे जन परमानन्दमयी के जाने शेजना जाय तीर्थ पर्यटने, श्यामा नाम बिना ना शोने श्रवणे। संध्या पूजा किछुई ना माने, सदाई रहे श्यामार चरण ध्याने, जे जन श्यामार चरण को रे छे स्थूल। सहजे हो ये छे विषये ते भूल, भवार्णवे शे पाबे कूल, बोलो तार मूल हारबे केमोने। राजा रामकृष्ण कौय तैमनि जने, लोके निन्दा शुनबे कैने। तार आँखि ढुलूढुलू रजनी दिने, श्यामा नामामृत पीयूष पाने।

कभी वे माँ काली से झगड़ा भी करते हैं। गेण्डारिया में भी शेष रात्रि में माँ काली के आविर्भाव से ठाकुर के नाना प्रकार के भावों को देखता था, भावावेश में वे मस्त रहते थे।

ठाकुर की दृष्टि।

गुरुभ्रातागण शालग्राम पर मेरी निष्ठा भंग करने के लिये नाना

प्रकार की बातें करने लगे। ठाकुर उतनी ही मुझ पर कृपा करने लगे। प्रतिदिन ठाकुर मुझे शांत रखने की विशेष कृपा कर रहे हैं। शालग्राम पूजा में सहानुभूति व उत्साह दिलाने के लिए कभी-कभी अपने हाथों से घी, आटे, शक्कर का प्रसाद चढ़ाते। कभी कच्चे नारियल के पानी का शरबत लाकर भोग लगाते। पूजा समाप्त होते ढाई-तीन बज जाते। उस समय मुझे भूख-प्यास लगती, शायद इसी कारण ठाकुर यह सब वस्तुएँ निवेदन करके मुझे प्रसाद लेने को कहते। कभी आल्मारी से मिठाई लाकर मेरे हाथ में देकर कहते- **'खालो। शालग्राम का प्रसाद हो गया है, खा लो।'** उसे यदि शालग्राम को निवेदन करें तो पाँच मिनट विलम्ब होगा, यह भी जैसे ठाकुर को सहन नहीं हो रहा है। वे स्वयं शालग्राम को निवेदन करके मुझे खाने के लिए दिया करते। ठाकुर की इस कृपादृष्टि से मैं आनंद, उत्साह से प्रफुल्लित हो जाता हैं, लेकिन गुरुभ्रातागण उतने ही मुझ पर खीज जाते और उदास हो जाते हैं। शालग्राम पूजा के समय ठाकुर मुझे नाना भावभंगिमा से देखते और मुग्ध कर देते हैं। सामने जटा बिखेरकर उसकी आड़ से नटखट बालक की तरह देखते। मेरी नजर पड़ते ही मुँह ढाँक लेते। उस समय ठाकुर की आँखों पर आँख पड़ते ही न जाने मैं कैसा हो जाता हूँ। सारे दिन उस दृष्टि को भुला नहीं पाता। ठाकुर किस आनंद में मुझे डुबाए रखते हैं, मैं व्यक्त नहीं कर सकता।

नित्य भजन में संबंध।

कुछ दिनों से ठाकुर से एक विषय में पूछने के लिए व्यग्र हूँ। नाम करने के साथ-साथ नामी या इष्ट मूर्ति जैसे ही सुस्पष्ट होती जाती

है, नित्य ही अन्तःकरण में उदित होती है, तब उनसे शीघ्र ही एक संबंध स्थापित करने की इच्छा होती है। संसार में जो सबसे मनोरम और आनंददायक है, इष्टदेव में उसी भाव का आरोप करके भजन करने की इच्छा होती है। इष्टदेव के प्रेम, स्नेह एवं ममत्व से जो भाव हृदय को स्पर्श करे, उसी के ध्यान-धारणा द्वारा इष्टदेव से एक स्थायी सम्पर्क बन जाता है। ठाकुर के प्रति कोई भी भाव आज तक मैं स्थिर नहीं रख पाता। वैष्णवों के शांत, दास्य एवं सख्य भाव के अलावा भी मनुष्य प्रकृति में दूसरा कोई भाव है, यह मैं नहीं जानता। ठाकुर की दया से जब जो भाव हृदय में उठता है, तब उसी को लेकर भजन में दिन व्यतीत करता हूँ। अब तक कोई एक निर्दिष्ट भाव स्थिर न हो सका है। मैं ऐसा ही रहूँ या कोई निर्दिष्ट भाव हृदय में रखकर उपासना किया करूँ, यह जानने के लिये ठाकुर से पूछा- किस भाव से साधन करूँ? जब जो भाव आए उसे ही लेकर साधन करूँ या किसी निश्चित भाव को अन्तस् में रखकर उस भाव से कहूँ? ठाकुर ने लिखा-**'जब जो भाव आया उसे लेकर साधन करने पर कोई अवस्था टिकती नहीं हैं। जो सबसे अच्छा लगे सदा ऐसा स्थिर भाव अन्तःकरण में पोषण करके, साधन करना चाहिये।'** समझ गया कि ठाकुर कोई एक भाव से संपर्क स्थापित करके मुझे अपना लेना चाहते हैं। बहुत दिनों से ठाकुर की भाव भंगिमा, आकार-इंगित और बात-चीत से मेरे अन्त में जो भाव उभरा है, उसी को लेकर संभवतः ठाकुर से मेरा संबंध है। मैं आज निश्चिन्त हुआ। दयालु ठाकुर कृपा करके मुझे विश्वास, भक्ति एवं प्रेम दो। दूर रहकर प्यार नहीं करना चाहता। यदि कभी संभव हो तो एक मन-प्राण होकर प्रेम कर सकूँ। जब तक लज्जा, भय व संकोच है,

तब तक प्रेम की ऐकान्तिकता कैसे उत्पन्न होगी। यह सब समाप्त होने पर ही वास्तविक प्रेम का जन्म होगा। यही प्रेम चाहता हूँ। जिन्हें प्रेम करता हूँ, उनसे ऐसे मिलूँ कि कभी उन्हें गोद में लूँ, कभी उनकी गोद में बैठ सकूँ, कभी उनके पैरों में लोटूँ, कभी उनके कंधे पर चढ़ूँ, फिर कभी उन्हें सिर पर धरूँ। ऐसा न हुआ तो प्रेम कहाँ? ठाकुर कब दया करके यह अवस्था दोगे?

साधन संकेत।

आज एक गुरुभ्राता ने पूछा-धर्मजीवन गठन की उत्तम प्रणाली क्या है? ठाकुर ने लिखा-**'चित्त की एकाग्रता लाभ करना ही धर्मार्थी का प्रधान एवं प्रथम कर्तव्य है। उपासना, आराधना, ध्यान-धारणा, जप-तप सभी इस स्थिरता पर निर्भर हैं। साधुओं ने स्थिरता पाने के नानाविध उपाय बताएँ हैं। इसीलिये साधकों को सुबह-शाम नाम संकीर्तन व उच्च स्वर में स्तवन स्तुति पाठ का उपदेश दिया जाता है। चंचल बालक को जोर से पढ़कर, रट कर अपना पाठ याद करना पड़ता है। उसी प्रकार चंचल साधक को सजन या निर्जन में जोर से स्तुति पाठ, गान द्वारा भगवान की पूजा करनी पड़ती है। नाम साधन, प्राणायाम, चित्त स्थिर करने के सर्वोत्तम उपाय हैं-ऐसा वर्णित है।'**

प्रतिदिन एक स्तवनपाठ, एक ही संकीर्तन व एक ही नाम जप विधेय है। कई लोग नित्य नए संकीर्तन एवं संगीत आदि करते हैं। जब जैसा भाव आया उस दिन उसी प्रकार के कीर्तन गान करते हैं। इसका फल यह होता है, साधक भाव के अधीन हो जाता है, भाव साधक के अधीन नहीं होता। भाव स्रोत बंद करना उचित नहीं है,

पर भाव के वशीभूत होना भी कर्तव्य नहीं है। इससे भाव विकास में असुविधा और चरित्र गठन में बाधा आती है। प्रबल भावावेश आने पर उसे निःसंकोच विकसित होने देना चाहिये। लेकिन सर्वदा अपने को ऐसे भावों के अधीन नहीं कर देना चाहिये। भाव आए तो पूजा अर्चना होगी, न आए तो नहीं होगी, ऐसा ठीक नहीं। जिस दिन जो भाव आया उसी के अनुरूप कीर्तन, पाठ करने पर साधक आत्मशक्तिहीन होकर, भाव के अधीन हो जाया करता है। अर्थात् रोज एक निर्दिष्ट समय में, निष्ठापूर्वक एक निर्दिष्ट पाठ तथा निर्दिष्ट कीर्तन गान करना कर्तव्य है। इस प्रकार करने पर चित्त की स्थिरता, भाव की प्रगाढ़ता एवं चरित्र बल वर्धित होता है।

जैसा संगीत व पाठ के विषय में है, वैसे ही आसन के बारे में भी स्थिरता रहना अच्छा है। प्रतिदिन साधन के समय, एक ही आसन पर ही, एक ही कक्ष में, एक ही दिशाभिमुख होकर बैठकर, एक ही समय साधन करना चाहिये। जैसे बिस्तर या शयन गृह परिवर्तन हो जाने पर पहले-पहल असुविधा होती है, अच्छी नींद नहीं आ पाती, उसी प्रकार आसन, स्थान, दिशा परिवर्तन होने से साधन में चित्त स्थिर होने में बाधा पड़ती है। प्राचीन काल के साधक धर्मजीवन के प्रांरभ से ही गुरु उपदेश से यह सब सीख लिया करते थे। आजकल के क्रांतिकारी भावों से उन शिक्षा प्रणालियों के विलुप्त हो जाने से बहुतों को मिलनेवाली ये सामान्य सहायता दुर्लभ हो गई है। विशेषतः जो स्वयं के प्रयास से धर्म साधन करने का प्रयत्न करते हैं, उन्हें ये साधन संकेत दें, ऐसे कोई व्यक्ति नहीं मिलते। इन संकेतों को न जानने से जो साधन तीन सप्ताह में होता हो, वह तीन वर्षों में

भी नहीं हो पाता। इन सामान्य उपदेशों के अभाव से सरल, धर्म पिपासु व्यक्ति-दीर्घ प्रयास करने के बाद अपने धर्म-जीवन में विशेष उन्नति नहीं कर पाते।

न्यास के संबंध में पूछना।

आज एकान्त पाकर ठाकुर से पूछा-आपने मुझे चौबीस तत्त्वों का न्यास करने को कहा था। किस तत्त्व का न्यास किस तरह करना होता है, यह पूछने का तो मौका ही नहीं मिल पाया। अतः श्रीमद् भागवत् देखकर अपनी बुद्धि से न्यासादि करता जा रहा हूँ-ठीक हो रहा है या नहीं, मैं नहीं जानता। मन में संदेह आ जाता है। ठाकुर ने लिखा-**'न्यास कैसे करते हो? क्या संदेह है बताओ।'** मैंने भी जिस प्रकार पंच कर्मेन्द्रिय, पंच ज्ञानेन्द्रिय तथा पंच महाभूत का न्यास करता हूँ-ठाकुर से स्पष्ट सविस्तार बताया। सुनकर ठाकुर ने कहा-**'सब तो ठीक ही हो रहा है-इसके बाद?'** मैंने पंचतन्मात्र का न्यास, शब्द का कर्ण में-स्पर्श का हृदय में-रूप का नाभि में-रस का जिह्वा में-गंध का पायु में-करता हूँ, बताया। ठाकुर ने कहा-**'नहीं ऐसा नहीं है। शब्द तन्मात्र का कृष्ण वर्ण में-स्पर्श का नीलवर्ण में-रूप का रक्तवर्ण में-रस का श्वेत वर्ण में-गंध तन्मात्र का पीत वर्ण में, रूप ध्यान करना होता है।'** मैंने पूछा-इन रूपों का ध्यान सभी अंग प्रत्यंगों में या किसी विशेष स्थान में करूँ?

ठाकुर-**'हृदय, ललाट या सहस्रार में करना।'** मैं-मनबुद्धि, चित्त, अहंकार का न्यास जिस विधि से जिन स्थानों में करता हूँ ठाकुर को कहने पर उन्होंने कहा-**'ठीक ही हो रहा है-परन्तु चित्त**

का सहस्रार में करना चाहिए।’ आज अनेक संदेहास्पद विषयों का निवारण हो गया। ठाकुर से पूछा-किस प्रकार ध्यान सर्वदा रखने की कोशिश करूँ? ठाकुर ने कहा-**‘यह सब खूब गोपनीयतापूर्वक करना चाहिये। कहीं प्रकट मत करना।’** जय दयालु ठाकुर! यह साधन तुम मुझे क्यों दे रहे हो नहीं जानता। तुम्हारा ध्यान करते-करते कब मैं तुम हो पाऊँगा।

गुरुब्रह्म का अर्थ क्या है: हमारे गुरु कौन हैं?

आज अपराह्न में कुछ गुरुभ्राता आकर ठाकुर से किस प्रकार श्वास-प्रश्वास में नाम करें एवं गुरु के संबंध में विविध प्रश्न पूछने लगे। ठाकुर लिखकर या कभी अस्पष्ट शब्द उच्चारण करके उनका उत्तर देते रहे। एक गुरुभ्राता ने पूछा-गुरु ब्रह्म का अर्थ क्या है?

ठाकुर ने लिखा-**‘श्वास-प्रश्वास में नाम करते-करते एक अवस्था ऐसी आती है जिसमें गुरु के दर्शन होते हैं। गुरु के मध्य से ही, नाम के चैतन्य रूप के दर्शन होते हैं। तभी गुरु, ब्रह्म एक हो जाते हैं। जिनको ऐसे दर्शन प्राप्त हों या ऐसी अवस्था प्राप्त हुई हो, उनके लिये गुरु ब्रह्म हैं।’** उनमें से किसी ने पूछा-हमारे गुरु कौन हैं। आप कभी-कभी परमहंसजी की बात करते हैं?

ठाकुर-**‘तुम सब गुरु के रूप में मुझे ही समझना। परमहंसजी मेरे गुरुदेव हैं, उन्होंने मुझे नाम दिया है। मैं तुम लोगों को नाम देता हूँ।’**

नाम साधन से क्या अवस्था आती है? अद्वैतवाद क्या है?

प्रश्न-श्वास-प्रश्वास में नाम करने पर कौन सी अवस्था प्राप्त होती

है? भगवान को पाकर क्या उनमें मिल जाते हैं? ठाकुर ने लिखा-**‘श्वास-प्रश्वास में यह नाम साधन ही यथार्थ साधन है। इससे कामादि सभी रिपुओं का विनाश हो जाता है। नाम करते हुए प्रेम-भक्ति, पवित्रता आएगी, विश्वास पाओगे। नाना प्रकार के दर्शन भी होते हैं। भगवान हमसे बहुत दूर हैं, ऐसी बात नहीं है। वे सर्वदा हमारे पास ही वर्तमान हैं। नाम करते-करते पाप राशि दग्ध हो जाने पर ही, उनके दर्शन होते हैं। श्वास-प्रश्वास में नाम करते-करते सामने एक दर्पण की भाँति प्रकट होने लगता है। ग्रह-उपग्रह आदि भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगते हैं। अन्तःकरण की मलिनता नष्ट होने के साथ-साथ ही सब कुछ समझा जा सकता है। मानव कितना भी उन्नत क्यों न हो एकदम भगवान से नहीं मिल सकता। यदि कोई समुद्र गर्भ में अहंकारपूर्वक समुद्र नापने जाय एवं उसका पृथक् अस्तित्व बोध रहे तब उसकी जो दशा होगी। चिदानंद सागर में डूबने पर मानव की भी वही दशा होगी, दूसरे सोचते हैं कि वह भगवान से मिल गया, लेकिन उसे अब भी पार्थक्य का बोध रहता है। जब जीवात्मा ब्रह्मज्ञान लाभ करता है, तब कभी तो मधुर सागर में, कभी चीनी के सागर में डूबा रहता है, यह एक कल्पना मात्र है, क्योंकि उस आनंद-अनुभूति की तुलना नहीं की जा सकती। तब जीवात्मा आनंद में विह्वल होकर यही सोचता है क्यों न इस आनंद में ही रहूँ? मधुरं, मधुरं, मधुरं।’**

ठाकुर ने पुनः लिखा-**‘अद्वैतवाद कोई मत नहीं है, आत्मा की एक प्रकार की अवस्था है। जीवात्मा और परमात्मा के मिलन होने पर, जीवात्मा अपने आप को भूल जाता है। जिधर देखो**

ब्रह्मसत्ता ही दिखती है। अनंत सागर में मानो एक जल का कण प्रविष्ट होकर, कभी डूबता तो कभी तैरता है। ऐसा न होता तो ऋषियों ने इतने परिश्रमपूर्वक साधन क्यों किया होगा? यही परम गति, परम धन है।'

पंचकोष भेद के लक्षण।

एक गुरुभ्राता ने ठाकुर से पूछा-सुना है जीवात्मा पंचकोषों के भीतर है। इनमें कौन से कोष का भेदन हुआ, किन लक्षणों को देखकर समझेंगे?

ठाकुर ने लिखा-**'अन्नमय कोष भेद होने पर पार्थिव वस्तुओं पर आकर्षण नहीं रह जाता। प्राणमय कोष भेद होने पर, शारीरिक उत्तेजना नहीं रहती मनोमय कोष भेद होने संकल्प-विकल्प चला जाता है। विज्ञानमय कोष भेद होने पर, संशय बुद्धि नहीं रह जाती। आनंद कोष भेद होने पर पार्थिव आनंद मुग्ध नहीं कर सकते।'**

जो चक्र हमारे शरीर में हैं, उनके साथ आत्मा का कोई संबंध है या नहीं? पूछने पर ठाकुर ने लिखा-**'शरीर में छः चक्र हैं। उनके साथ बाहरी शक्ति का योग है। स्थूल शरीर में, सूक्ष्म शरीर में तथा कारण शरीर में और फिर आत्मा में। ग्रंथ पढ़कर या उपदेश सुनकर इनके यथार्थ तत्त्व नहीं समझे जा सकते।'**

अति निद्रा में ठाकुर का अनुशासन।

१ आश्विन ४१ नं. सुकिया स्ट्रीट। कलकत्ता आकर बड़े आनंद से दिन बीत रहे हैं। दिन-रात ठाकुर का अविच्छेद संग लाभ कर निरंतर साधन-भजन में क्या ही आनंद प्राप्त कर रहा हूँ, वह व्यक्त नहीं कर

सकता। कुछ दिनों से एक असुविधा भोग रहा हूँ। रोज कुछ गुरुभ्राता ऑफिस या कचहरी से सीधे काम खत्म होते ही, सुकिया स्ट्रीट आ पहुँचते हैं। संध्या कीर्तन के बाद वे अपने अपने घर चले जाते हैं। कुछ गुरुभाई काम से घर लौटते और फिर सात आठ बजे आकर सुकिया स्ट्रीट पहुँचते हैं। वे रात ग्यारह बजे तक विभिन्न विषयों पर वार्तालाप करके रात को ठाकुर के ही कमरे में सो जाया करते हैं। ठाकुर हॉल के एक कोने में आसन लगाए हुए हैं। सारे हॉल में मैटिंग किया हुआ है, अतः जिसकी जहाँ इच्छा पड़े रहते हैं। आजकल आठ दस व्यक्ति हॉल में सो रहे हैं। मैं जब साढ़े ग्यारह बजे उठता हूँ तो महेन्द्र बाबू, मणि बाबू व अचिन्त्य बाबू आदि कभी-कभी जागते रहते हैं, बाकी सभी सोये रहते हैं। इन आठ-दस गुरुभाईयों के विभिन्न स्वरों में खर्राटे की आवाज से मेरा माथा गरम हो उठता है। ठाकुर की तो बाह्य संज्ञा लुप्त रहती है, इन आवाजों का उन पर कोई असर नहीं पड़ता। सारा दुर्भाग्य मुझे ही भोगना पड़ता है। इतनी जोर की आवाजें होती हैं कि नाम में मन नहीं लगता। ठाकुर समाधि अवस्था में कुछ अस्पष्ट सा बोलते हैं- वह सब नहीं सुन पाता, बड़ी कठिनाई होती है। ठाकुर को पंखा झलते समय कभी कोई चित्त लेटा हो तो करवट करवा देता, किसी की बाँह पकड़कर करवट करवाता, किसी तरह भी खर्राटे बंद न हो तो चादर, कपड़ा डालकर, मुँह ढक कर भाग जाता हूँ। रात को पाँच-सात बार आसन से उठकर यह सब करना पड़ता है, जिससे एक साथ स्थिर होकर आधे घंटे भी नाम नहीं कर पाता। ठाकुर तीन बजे तक कुछ सामान्य स्थिति में लौट आने पर, जरा सा मीठा व जल ग्रहण करते हैं। तब ये खर्राटे सुनकर असंतुष्ट होते

और अतिनिद्रा के दोषों के बारे में कहते हैं। कुछ गुरुभाईयों ने यह सुनकर, कुछ मेरी खींचातानी से तंग आकर, बाजू के बैठक में सुखपूर्वक निद्रा लेने की व्यवस्था कर ली है। अब असुविधा और बढ़ गयी। अब मैं जब-तब उन्हें धक्का देकर उनके घड़-घड़ शब्द बंद करने का अवसर नहीं पाता।

ठाकुर ने सभी को तीन बजे उठकर साधन-भजन करने को कई बार कहा है। पर कोई इसकी परवाह नहीं करता। संदेश, रसगुल्ले का लोभ दिखाकर भी काम नहीं बन पाता। रोज आधा सेर तीन पाव रसगुल्ले या संदेश मँगाकर रखे जाते हैं। ठाकुर थोड़ा ग्रहण करके मुझसे कहते 'बाकी सबको दे दो।' मैं सबके पास जाकर रसगुल्ला चिल्लाकर कहता तो कुछ हड़बड़ाकर उठ बैठते और रसगुल्ला खाकर हाथ मुँह धोने बाहर जाते। कुछ आँखें बंद किए ही रसगुल्ला खाकर हाथ सिर में पोंछकर फिर सो जाते। कुछ तो सिर तक नहीं उठाते, केवल रसगुल्ला पाने के लिये हाथ बढ़ाते, मुँह में डालकर फिर खर्राटे लेने लगते। कुछ सिर्फ मुँह फाड़ लेते, मैं अन्त में उनके नाक में रसगुल्ले का रस निचोड़ कर मुँह में रसगुल्ला ठूँस देता हूँ। वे साँस रुकने से हड़बड़ाकर उठते, मुझे जो मन में आये गाली बकते हुये बाहर चले जाते। मैं ठाकुर के पास रहने से बच जाता हूँ। ठाकुर के अभिप्राय से ही यह सब कर पाता हूँ, सोचकर संतुष्ट हूँ। कुछ दिनों तक इनका आचरण देखकर ठाकुर ने निद्रित व्यक्तियों को उठाकर प्रसाद देने को मना किया। जागे हुए गुरुभाईयों को प्रसाद दे, बाकी मैं स्वयं खा लेता हूँ। इस बात पर सुबह उठकर कुछ गुरुभाई मुझसे लड़ते-झगड़ते। गत रात्रि उन्हें अनुशासित करते हुए ठाकुर ने कहा-**'मनुष्य की निद्रा देखकर ही**

जाना जा सकता है कि किसमें कौन-सा गुण प्रबल है। निद्रा जबरदस्ती त्यागनी पड़ती है। जबरदस्ती न त्यागने पर सहज ही नहीं जाती। मनुष्य का जीवन कितने दिनों का है? पचास-साठ वर्ष का जीवन है। आधा तो नौकरी-चाकरी में निकल जाता है। शेष का अधिकांश भोजनादि की व्यवस्था में। अवशिष्ट समय अगर सोकर काट दोगे तो साधन-भजन कब करोगे? दिन भर पेट की चिंता, रात को नींद, ऐसे तो समय बीता जा रहा है-कब भगवान का नाम लोगे? जिन्हें दिन में आहार की चिंता नहीं करनी पड़ती वे भी सारा दिन सिर्फ गला फाड़ते और रात को पड़े-पड़े सोते हैं। बाबू लोगों को प्राणायाम, साधन करने बोलो तो कहते हैं-महाशय प्राणायाम करने से हाँफ जाते हैं, दम घुटता है, कष्ट होता है। नाम स्मरण नहीं होता, खीज छूटती है। यदि कहूँ कि चुपचाप आसन पर बैठे रहो तो कहेंगे-महाशय झपकी आती है। ऐसा है तो साधन लेने का क्या प्रयोजन? साधन भजन करोगे नहीं, केवल परनिन्दा, आलोचना करोगे, फिर कहोगे मेरा काम, क्रोध क्यों नहीं जाता। कैसे जाएगा? काम-क्रोध दूर हो सके, ऐसा कुछ किया है तुमने? एक घंटा भी स्थिर बैठकर नाम करने पर क्या कोई ऐसा कह सकता है? नाम करने पर ही साधन की उपयोगिता मालूम पड़ने लगती है। वह करते कहाँ हो? नींद-नींद में ही दिन बीते जा रहे हैं। जिनका जितना मोह, उन्हें उतनी नींद आती है। निद्रा त्याग के साथ-साथ मोह नष्ट होता जाता है।’ इस प्रकार दस पंद्रह मिनट कहकर मानों ठाकुर ने सोए व्यक्तियों को जगाने के उद्देश्य से ही जोर से एक गीत गाना आरंभ किया। जल्दी में पूरा लिख न पाया, बीच का

भाग इस प्रकार है-***अलसे घुमाबे जॉतो अज्ञाने तॉतो। जीबने सत्य ज्योति नयने आर हेरिबे ना। हांशिछे शमन देखो.. एखोनो शमय आछे उसे श्यामा गुन।*** अर्थात् आलस्य में जितनी निद्रा लोगे, उतना ही अज्ञान घेर लेगा। जीवन में सत्य-ज्योति आँखों से न देख पाओगे, देखो काल हँस रहा है। अभी भी समय है, जागो! श्यामा माँ के गुणगान करो। प्रतिदिन ठाकुर निद्रा त्याग के बारे में कुछ न कुछ उपदेश देते हैं। परन्तु तब अधिकांश व्यक्ति निद्रावस्था में रहते हैं।

दिवानिद्रा से अहित: योगतंद्रा के लक्षण।

कुछ दिन हुए एक गुरुभ्राता ने आकर ठाकुर से कहा-एकाग्र होकर नाम करते हुए मुझे तंद्रा सी आती है-भीतर स्पष्ट ज्ञान रहता है। नाम कर रहा हूँ यह भी समझता हूँ। यह कैसी अवस्था है। ऐसा क्यों होता है। ठाकुर ने लिखा-**'ऐसी अवस्था हो तो तुम भाग्यवान हो। इसे योगतंद्रा कहते हैं। यह साधारण निद्रा नहीं है। योगनिद्रा होने पर क्रमशः समाधि अवस्था प्राप्त होती है।'**

गुरुभाई संतुष्ट हो गए। आहार के बाद वे रोज राखाल बाबू के बैठक की आराम कुर्सी पर लेटे नाम करते-करते सो जाते हैं। दो तीन घंटे तक खर्राटे लेकर मस्त सोते हैं। कोई खर्राटे बंद करने के लिए जगा दे तो, नाराज होकर कहते है-मुझे क्यों जगाया? मेरी निद्रा क्या तुम लोगों की निद्रा के समान है। गोसाईं ने कहा है, यह साधारण निद्रा नहीं, यह योगनिद्रा है। कुछ काल ऐसा होने पर मुझे समाधि भी लगने लगेगी। सावधान! मुझे योगतंद्रा की अवस्था में कोई तंग मत करना। दिन में ठाकुर के कमरे में जरा भी नाम करने

की इच्छा से जो कोई गुरुभ्राता बैठे, उन्हें इनके खर्राटों से भारी असुविधा होती। आज महेन्द्र बाबू ने इसका उल्लेख करके ठाकुर से पूछा-उस व्यक्ति की खर्राटों की आवाज से तो हम जरा भी स्थिर होकर नाम जप नहीं कर सकते। उन्हें जगा दो तो खूब धमकाकर कहते हैं-गोसाईं ने कहा है, यह योगनिद्रा है, शीघ्र ही समाधि लगेगी। यह तो बड़ा उत्पात है।

ठाकुर ने लिखा-**'यह उनकी योगनिद्रा नहीं है, रोग है, चिकित्सा करवाएँ। उनसे कह दीजिए दिन में यूँ बैठे-बैठे न सोएँ। दिवानिद्रा बड़ा अपराध है। उपनयन के समय ब्राह्मण बालकों को प्रतिज्ञा करनी पड़ती है 'मा दिवा स्वापसी', अर्थात् मैं दिन को नहीं सोऊँगा। दिवानिद्रा से आयुक्षय, बुद्धि नष्ट, प्राण नष्ट और वंश लोप होता है। सभी उत्कट पीड़ाओं का मूल कारण दिवानिद्रा है। इतने दोष व हानियाँ है, परन्तु कितने लोग हैं जो दिन में नहीं सोते।'**

प्रश्न-योगनिद्रा के क्या लक्षण हैं?

ठाकुर ने लिखा-**'पहले-नाम करते-करते सभी इन्द्रियाँ क्रियारहित होकर, निद्रा की भाँति अवस्था होगी। दूसरे-तो निद्रा भाव आने पर भी बीच-बीच में एक प्रकार की भाषा में कुछ बातें सुनाई पड़ेगी। तृतीय-भविष्य की अवस्था का स्वप्न की भाँति दर्शन होगा। शरीर का ज्ञान न रहने पर भी भीतर पूरा ज्ञान रहेगा।'** थोड़ी देर बाद ठाकुर ने लिखा-**'प्रयोजन हो तो निद्रा के अभाव में पीड़ा होती है, यह सत्य है। किंतु सारी रात न सोकर, यदि कोई चार बजे के बाद आधे घंटे के लिए सोया करे, तो जीवन की अनेक घटनाओं की जानकारी पा सकता है।'**

तपस्या एवं पुरुषार्थ।।

एक गुरुभ्राता ने ठाकुर से पूछा-भगवत् कृपा से ही यदि सब कुछ हो रहा है तो फिर तपस्या या पुरुषार्थ का क्या प्रयोजन है? ठाकुर ने लिखा-**‘पुरुषार्थ यदि कार्य न करे तो वस्तुतः आत्मपरिचय नहीं होता। रामायण में विश्वामित्र की तपस्या का पाठ करने पर इस विषय में अच्छी तरह जाना जा सकता है। पुरुषार्थ या पुरुषाकार कृषक के कृषि कार्य की भाँति हैं। कृषक भूमि तैयार करके बीजारोपण करता है, यहाँ तक उसका कार्य है। उसके बाद और उसकी क्षमता नहीं रह जाती। बादल जल न बरसाये तो कई बार पानी सींचकर भी वह कुछ नहीं कर पाता। आंतरिक उद्यम ही तपस्या है, यह ठीक प्रयुक्त हो तो मेघ से जल बरसने की भाँति कृपावृष्टि होती है।’**

ठाकुर कुछ देर रुककर पुनः लिखने लगे-**‘तपस्या द्वारा आत्मा जितनी निर्मल होगी उतना ही अपने आप को निकृष्ट मान पाओगे। शरीर से अपने को पृथक् देख पाओगे, आत्म-दृष्टि प्रबल होगी। अपने को तपस्या द्वारा निष्कृष्ट समझने के बाद भी, शरीर मन का शासन करने के लिये एक प्रकार का अहंकार उत्पन्न होता है। तब लगता है, मैं स्वाधीन हूँ, मुक्त हूँ, मनुष्य हूँ। यह भाव सबके भीतर रहता है, तपस्या द्वारा प्रबल हो उठता है। उस समय आत्मसमर्पण करने की इच्छा होते हुए भी नहीं कर पाते, कोई भीतर से रोकता है। सोचकर गए कि आज अपना सब कुछ अर्पण कर देंगे, पर जाने पर रोना आया, कोई अंदर ही अंदर निषेध करता हुआ लगा। अभी यदि कहा जाय मरो, तो**

क्या करोगे? यदि कहे स्त्री-पुत्र का त्याग करके, कौपीन धारण करके वन को चले जाओ, तब क्या करोगे? यह मानसिक-संग्राम प्रत्येक साधक के अन्तःकरण को झकझोरता है। इसलिये संपूर्ण रूप से अपने आपको बारीकी से जाँच करो और विचार करो। डॉक्टर जैसे सड़े घाव को काटते हुए अस्थि एवं मज़ा के भीतर के भीषण रोग को ढूँढकर, काट फेंकता है, वैसे ही। सुनी हुई बातों से, ग्रंथ पढ़कर, उपदेश लेकर, कोई एकाएक निश्चयकर डालना ठीक नहीं। अपना विचार स्वयं करके जो अपनी यथार्थ अवस्था है, उसपर दृष्टि रखो। यदि आत्मा में भाव आता है, कोई अवस्था है, तो चुपचाप उसकी गतिविधियाँ देखने में परमानंद लाभ करोगे। धर्मभाव ने पापों से मुक्ति दिलाकर मुझे देवतुल्य बना दिया। मैं वही पतित, इस प्रकार कैसे बन पाया-आश्चर्य की बात है। यदि पाप चोर की भाँति भीतर छुपा रहा तो, सारा दिन साधन-भजन करके भी मुझे नरक की आग में क्यों जलाया-यह देखकर भी आश्चर्य होगा। मनुष्य के अभ्यन्तर में श्रेय व प्रेय दोनों क्रिया करते हैं। तपस्या द्वारा, सत्संग द्वारा आत्मा का धर्मबल प्रबल होता है, पापभाव निस्तेज होते हैं। इस अवस्था में भगवत्-आश्रय लाभ होता है।'

चंदन घिसना व उपासना।

दूसरे दिनों की तरह रात बारह बजे उठकर आसन पर बैठा। सुबह तक लगातार नाम नियमित रूप से न हो पाया। कभी नाम, कभी तंद्रा, कभी ठाकुर की बातें सुनकर, समय व्यतीत हुआ। शेषरात्रि को आरती के समय रोज की भाँति ठाकुर ने घंटा बजाया।

मुझसे दो रसगुल्ले देकर शालग्राम को भोग लगाने को ठाकुर ने कहा। भोग लगाकर मैंने वह रख दिया। बड़े सबेरे स्नान, संध्या-तर्पण करके फूल संग्रह किया। आज बहुत से फूल मिले। घर लौटकर पूजा की तैयारी करने लगा। चंदन घिसते समय ठाकुर ने कल जो कहा था, वह बात स्मरण हो आई। ठाकुर ने कहा था- **'दसमास की गर्भवती की तरह धैर्यपूर्वक धीरे-धीरे चंदन घिसना चाहिए और उसमें अपने आपको मिला देना चाहिए।'** आज चंदन घिसते समय ठाकुर की कृपा से एक अच्छा भाव आने लगा। मन में आया-यह चंदन धन्य है, जो ठाकुर के श्री अंगों में लगा रहता है। बारबार चंदन से प्रार्थना किया ताकि चंदन के साथ मिलकर मैं भी ठाकुर के चरणों में लगा रह सकूँ। मैंने सोचा यह चंदन घिसना ही तो सारी पूजा अर्चना है, और पूजा का क्या प्रयोजन है? यह अधिकार पाने पर ही मैं ठाकुर की मुझ पर विशेष कृपा है, समझूँगा। चंदन घिसना समाप्त होने पर मैंने वह ठाकुर के समक्ष रखा। उन्होंने अँगुली से थोड़ा चंदन लिया, शेष शालग्राम पूजा के लिये रखा। उसी समय चाय आई। ठाकुर ने चाय सेवन के पूर्व ही मेरे लिये चाय रखा। मैंने वह शालग्राम को निवेदन कर प्रसाद पाया। रात्रि के रसगुल्ले का प्रसाद भी ग्रहण किया। रसगुल्ले खाने में संकोच होने लगा। ठाकुर की दी गई वस्तु किसी को न देकर, पूरा खाने में कैसा अजीब सा लग रहा है। परन्तु कितने ही लोग थे, किसे देता, सो खुद ही खा गया। स्वल्पाहार करके न्यास करने बैठा, बड़ा आनंद आया। उसी समय एक बाउल आकर गाने लगा। उसका गाना बड़ा ही जम गया, सभी भाव विभोर हो उठे। कल शाम, गुरुभ्राता परेश बाबू ने ठाकुर के लिये एक अच्छी चादर ला कर दी। ठाकुर ने वह

मनोहरदास बाबाजी को देकर साष्टांग प्रणाम किया। बाबाजी संतुष्ट होकर चले गये। एक बार भी प्रयोग में न लाकर चादर दे देने पर सबको अच्छा नहीं लगा।

यथार्थ दान एवं दान का पात्र।

कीर्तन के अंत में मनोहरदास बाबाजी को ठाकुर ने नई चादर दे दी, यह देख कई लोगों को दुःख हुआ। अपराह्न चार बजे एक गुरुभ्राता ने एक बढ़िया फलालेन की चादर लाकर ठाकुर को दी। ठाकुर ने उसे आग्रहपूर्वक ग्रहण किया और ओढ़कर बैठे। कुछ गुरुभाईयों ने ठाकुर से कहा-इसे भी आप कितने दिन अपने पास रखेंगे। हो सकता है कल ही शायद मनोहरदास बाबा के आने पर दे देंगे। आप उपयोग में न लाकर ही दूसरों को दे देते हैं, इससे हमें कष्ट होता है। ठाकुर ने यह सुनते ही चादर फेंक दिया और लिखा- **'सम्पूर्ण स्वत्व का त्याग ही दान है। जिसे दोगे, वह यदि उस वस्तु को आग में जला दे, तो भी दाता कुछ नहीं कह सकता, क्योंकि तब वस्तु उसकी नहीं रही। दाता का यदि जरा भी ऐसा विचार हो कि उसके अभिप्राय के अनुसार ही दान हो, तो उसे दान नहीं कहा जाता। इसे तो धरोहर कहा जा सकता है। शास्त्र में इसे न्यस्त वस्तु कहते हैं। न्यस्त वस्तु का दान करना तथा ग्रहण करना-दोनों पाप हैं। तुम लोगों के मन में भी यही भाव है।'**

'मैं याचना नहीं करता। यदि मेरे आचरण में किसी प्रकार याचना का भाव प्रकट हुआ हो तो वह निःसंदेह मेरा अपराध है। मैं तुच्छ मनुष्य हूँ, मुझसे त्रुटि होना असंभव नहीं है। जब भी मुझमें त्रुटि दिखे बंधुभाव से कह देना। मन में न रखना। जो मेरा

दोष दिखाते हैं, वे मेरे परम बांधव है। मैं उन्हें चाहता हूँ। हजार कपड़े, रसगुल्ले दो, मैं भुलावे में नहीं आता, मेरा दोष दिखा दिया करो, तब जानूँगा। भगवत् कृपा से तुम सबका मंगल हो।'

एक गुरुभ्राता ने पूछा-सभी क्या दान के पात्र होते हैं। जो भी जो कुछ माँगे, वह देना चाहिये या नहीं। हम तो दान के पात्र-अपात्र नहीं समझते। ठाकुर-**'जो सर्वदा याचना करे, वह दान का पात्र नहीं-जो खुशामद करे वह दान का पात्र नहीं। भय, स्नेह, मान, लज्जा, वंश मर्यादा, प्रत्युपकार, प्रत्याशा-इन भावों से दान करना ही अपात्र में दान करना है। वह वास्तविक दान नहीं होता। स्वर्ग-कामना, पाप मोचन, परलोक के लिये दान करना भी दान के अन्तर्गत नहीं आता। दान करके अगर अनुताप हो तो वह दान भी दान नहीं। जैसे प्यास लगने पर शीघ्र पानी पीकर प्यास बुझाते हैं, वैसे ही यथार्थ दाता दान के पात्र को देखकर, दान देने के लिए तत्पर हो उठते हैं। अपना सब कुछ देकर भी उनका दुःख दूर करने में पीछे नहीं हटते। दान करने पर उनके आनंद की सीमा नहीं रह जाती। महाभारत में एक ब्राह्मण का वर्णन है-जिसे सबसे श्रेष्ठ दाता कहा गया है।'**

कुछ रुककर ठाकुर ने पुनः लिखा-**'मेरे पास जो भी आयें, उन्हें कोई कुछ न कहना। कई बार उनकी अपेक्षा तुम लोगों द्वारा अधिक अनिष्ट होता है। मेरे यहाँ तुम लोगों का विशेष अधिकार नहीं है। जैसे तुम सबका अधिकार है, वैसे सभी नर-नारियों का है। मेरी सेवा सुश्रुषा करते हो, इसलिये तुम अपने हो, बाकी पराए हैं ऐसा कभी मत सोचना। मेरे यहाँ जो आयेंगे उनका सारा भार उन्हीं पर होगा। गोसाईं के पास गया, कोई**

खाने को भी न पूछा, यहाँ ऐसी औपचारिकता नहीं, आँखों का लिहाज भी नहीं। मैं इस प्रकार हूँ, कि जो जिस दिन, जैसी भी भिक्षा रूप में दे, ग्रहण करता हूँ। यहाँ मेरा कुछ नहीं है। जब जैसा होता है, परामर्श देता हूँ। कई बार मुझे स्वपाक भोजन करने की इच्छा होती है, असुविधा है, इसलिये नहीं करता। जो रुपये पैसे देकर तुष्ट करना चाहते हैं, वे सदा धर्मराज्य में निंदित रहते हैं। भगवान उनके दोष उन्हीं के अन्तःकरण में लिप्त रखकर, अहंकार की सृष्टि करते हैं। इससे ऐहिक और पारत्रिक दोनों से ही भ्रष्ट होते हैं। इससे बढ़कर और क्या सजा होगी। जो भगवत्-भक्त हैं, वे जरा भी जान पायें, तो उनके घर पदार्पण तक न करेंगे। यह भी क्या कम दण्ड है?'

अविश्वास व ध्यान में जलन।

बाबाजी के जाने के बाद ठाकुर स्नान-आहार करने भीतर गए। मैंने भी शालग्राम पूजा आरंभ की। ठाकुर से सुना है, गोपाल भट्ट ने जिस चक्र से पूजा व ध्यान के प्रभाव से राधारमण विग्रह प्रकट किया था, मेरे पास वही चक्र है। मैंने भी संकल्प किया इस चक्र में ठाकुर की पूजा करके, ठाकुर का श्रीरूप प्रकट करूँगा। एकाग्र भाव से यही सोचकर उसी भाव से शालग्राम को तुलसी गंगाजल अर्पण करने लगा। उसी समय भोजन से निपटकर ठाकुर आ गए और एकटक शालग्राम की ओर देखने लगे। अखिल ब्रह्माण्डपति सर्वशक्तिमान, परमेश्वर-ठाकुर सम्मुख रहकर, मुझ जैसे तुच्छ की पूजा आनंदपूर्वक ग्रहण कर रहे हैं, यह भाव मन में आते ही मैं विभोर हो गया। ठाकुर के पास विश्वास भक्ति पाने के लिए व्याकुल

होकर प्रार्थना करने लगा। अविश्वास विषवत् जान पड़ा। जितने भी क्लेश है, अविश्वास उन सबसे अधिक कष्टदायी लगने लगा। मैंने कितनी ही देर ऐसी प्रार्थना की। ठाकुर एक एक बार मेरी ओर देखने लगे। अचानक मेरे मन में ठाकुर के प्रति क्षोभ सा आने लगा। उसमें न जाने ठाकुर को क्या-क्या मन ही मन कहने लगा। अंत में यही निश्चय किया, इस अपराधी जीवन के रहने से क्या लाभ? आत्महत्या करना ही अच्छा है। अविश्वासजनित कष्ट अब अधिक सहा नहीं जाता। कुछ विष लाकर रखूँगा। ठाकुर की कृपा से उन पर यदि बिंदुमात्र भी विश्वास उत्पन्न हो तो, उसी समय उस भाव को लेकर मैं ठाकुर को देखते-देखते-विषपान करके देह त्याग दूँगा। मन के क्लेश से कई प्रकार से आत्म हत्या के विचार आए, दृढ़ता आई, जब भी हो आत्महत्या मुझे करनी ही पड़ेगी। अविश्वास लेकर लाखों वर्ष जीना कुछ अर्थ नहीं रखता। उससे तो अच्छा विश्वास लेकर एक मिनट जीवित रहने पर भी जीवन धन्य होता है। आज सर्वदा यही प्रार्थना करता रहा। ठाकुर एक मिनट के लिये एक बार मुझे विश्वास दो। विश्वास-भक्ति सहित एक मिनट भी तुम्हारे श्रीचरणों का दर्शन करके जीवन धन्य होगा। फिर देह पात हो, या हजार वर्ष नरक में जाना हो, प्रस्तुत हूँ। अब मुझे अपराधी मत बनाओ, अविश्वास दूर करो। और कुछ मुझे नहीं माँगना। इस प्रकार रो-रोकर प्रार्थना करते हुए मेरा शरीर थककर अवसन्न हो गया। शरीर ठंडे पसीने से भीग गया। थोड़ी देर बाद मणिपुर में ठाकुर की श्रीमूर्ति का ध्यान करते हुए, वहाँ ताप का बोध होने लगा। मानो कोई रह-रहकर आग की सेंक दे रहा हो। निःशब्द प्राणायाम के साथ वह ताप बढ़ने लगा। क्रमशः अत्यन्त बढ़कर जलन, आग में

जलने की तरह लगने लगा। साधन छोड़ देना चाहा-पर छोड़ नहीं पाया। वह ज्वाला तीव्र होती गई, पर साथ ही एक आनंद भी आने लगा। जैसे मिर्च खाने या खुजलाने पर एक सुख भी मिलता है, कष्ट होने पर भी छोड़ा नहीं जा सकता। आज सहस्त्रार में ध्यान के समय गाड़ी के चक्के की तरह श्वेत-ज्योतिर्मय विद्युत चक्र, पल-पल के लिये दर्शन होने लगा।

कुछ देर मुझे इस अवस्था में देखकर ठाकुर ने राखाल बाबू को मेरे लिए घी मिला हुआ गरम दूध लाने को कहा। वह पीकर मैं कुछ स्वस्थ हुआ। ठाकुर आज मुझ पर तरह-तरह के भाव से समय-समय पर दृष्टि डालने लगे। इस दृष्टि में कितना स्नेह, कितनी दया है, बता नहीं सकता। मैं प्रार्थना करने लगा-हे ठाकुर! तुम मेरी ओर इस प्रकार मत देखो। मेरे प्रति तुम्हारी ऐसी दृष्टि क्यों? उस दृष्टि को भोगने, उस स्नेह ममता को धारण करने में, मैं सम्पूर्ण अनुपयुक्त हूँ। तुम अपने प्रति यदि यथार्थ विश्वास एवं एकान्त भक्ति न दो तो जीवन में मुझ पर ऐसी दृष्टि भी मत डालना। न तो मैं ही तुम्हें और देखूँ। मेरी आँखें अंधी हो जायँ। इस प्रकार प्रार्थना करते नाम करते हुए सारा दिन सुखपूर्वक बीता।

योग क्या है? योग के अवश्य पालनीय उपदेश।

आहार के बाद शाम को आसन पर आकर देखता हूँ हॉल लोगों से भरा हुआ है। धर्म-संबंधी विभिन्न प्रश्न पूछे जा रहे हैं। ठाकुर उनका उत्तर दे रहे हैं। एक व्यक्ति ने पूछा-योग किसे कहते हैं? योग एवं भक्तियोग-सब योग क्या एक ही हैं?

ठाकुर-**'जिसके द्वारा भगवत् लाभ हो वह सभी योग है। 'संयोगः योगमित्युक्तः जीवात्मा परमात्मनः।' जीवात्मा व परमात्मा का संयोग ही योग कहलाता है। इसे छोड़कर जो योग है, वह हठयोग है। केवल नामजप, श्रवण, कीर्तन, मनन, स्मरण भक्ति योग के अंग हैं। केवल श्रीहरि नामजप भी योग है। प्राणायाम योग का बहिरंग है, यह करने से भी चलता है, न करने से भी चलता है। वैष्णव स्मृति-हरिभक्तिविलास ग्रंथ में, गोस्वामीगण के संबंध में जो लिखा है, वह देखिए। गुरुदेव के श्रीहरिनाम की दीक्षा ग्रहण करोगे तभी वह फलदायक होगा-- यह शास्त्र की विधि है। शास्त्र सदाचार न मानने पर ऋषियों का पथ अनुसरण करना भी नहीं हो पाता।'**

एक गुरुभ्राता ने पूछा-जो योग साधन करते हैं, कौन से अनिष्ट भाव उनके साधन में बाधक हैं? ठाकुर-**'(१) लज्जा (२) घृणा (३) भय (४) शोक (५) जुगुप्सा (६) कुल (७) शील (८) जाति, ये अष्टपाश योग साधन के विशेष बाधक हैं। हमारे साधन में जो विशेष बाधक तत्त्व हैं, ठाकुर उन्हें सविस्तार समझाने लगे।'**

प्रश्न-आपने जो कहा समझ नहीं पाया। लज्जा भी क्या बाधक है?

ठाकुर ने कहा-**'लज्जा का अतिक्रमण करना ही होगा। लज्जा रहते तक किसी का कुछ न होगा। लज्जा के अंत होने पर ही, मेरे मनुष्यत्व का लोप हुआ है। मेरा पाप-पुण्य कुछ नहीं है। मेरा बेटा, मेरा फलाना, इस प्रकार का संस्कार भी चला गया है।'**

'परसेवा ही धर्म है। यहाँ जो रहेंगे, परस्पर दूसरो की

सहायता करेंगे। एक से ही काम लेने पर अपराध होता है। अभिमान सहज ही नहीं जाता। काम-क्रोध छोडूँगा, लोग साधु कहेंगे, यह अभिमान सबसे बड़ा शत्रु है। परसेवा एवं परोपकार द्वारा अभिमान पर विजय प्राप्त करना चाहिये। संसार में जिन्हें अपने से छोटा समझते हो, उनकी सेवा करो। मेरी सेवा करके कोई लाभ नहीं, भस्म में घी डालने जैसा है। सेवा करने में यदि असंतोष या खीज की भावना आए तो ऐसी सेवा से कोई फल नहीं मिलने का।'

"किसी के प्रति हिंसा-द्वेष की भावना न रखना। 'अहिंसा परमो धर्मः।' हिंसा का अर्थ है हनन करने की इच्छा, हन् शब्द का अर्थ है, आघात करना। बातें ऐसी करनी चाहिये कि किसी के मन को आघात न पहुँचे। मारने पर ही हिंसा होती है, ऐसी बात नहीं है। हिंसा भाव यदि अन्तःकरण में है, क्रोधपूर्वक या अपनी तृप्ति के लिये मारना हिंसा होगी। अन्तःकरण में हिंसा रहने पर लीला दर्शन करना संभव नहीं। यदि थोड़ी देर के लिये भी मन हिंसाशून्य हो सके, तो भी उस समय लीला-दर्शन हो सकते हैं। बाहर पूजा, अर्चना, जप-तप करके भी यदि हिंसा रह जाय, तो वह धर्म नहीं हुआ। अहिंसा न होने पर धर्म नहीं होता। काम क्रोधादि भी उतना अहित नहीं करते। कभी दूसरों का दोष मत देखना। केवल अपना दोष देखना। आत्मीय जनों के दोष, संशोधनार्थ उन्हें दिखा सकते हो, पर उनसे घृणा नहीं करोगे। अपने को अत्यन्त नीचा मानो। कभी भी अहंकार की भावना मन में न आ पाये। परस्त्री देखकर प्रणाम करना। सदा पैर के अंगूठे की तरफ दृष्टि रख कर चलना चाहिये। प्रति श्वास-प्रश्वास

या दो बार श्वास-प्रश्वास में एक बार नाम अवश्य ही करो। सदा सत्य बोलना होगा, अतः खूब विवेचनापूर्वक कथोपकथन करना होगा। बिना जाने सुने कुछ कह देना ठीक नहीं।"

नाम करके फल क्यों नहीं मिलता: शुष्कता में कर्तव्य।

एक गुरुभ्राता ने कहा-प्रतिदिन आपके मुख से नाम की कितनी ही महिमा सुनता हूँ। शास्त्रकारों ने भी नाम की बड़ी महिमा बताई है। फिर भी नाम करके कुछ भी तो फल नहीं पा रहा हूँ, हमारी यह दुर्दशा क्यों है?

ठाकुर ने लिखा-**'शास्त्रकारों ने नाम की असीम महिमा बताई है। वैसे ही नाम करके जो पाप करते हैं, उन्हें भयानक अपराधी भी बताया है। नाम अपराध जैसा और कोई पाप नहीं। तृण की भाँति नीचा, वृक्ष की भाँति सहिष्णु, मान्य व्यक्ति को मान देकर स्वयं अभिमान का त्याग कर, नाम करने पर ही नाम का फल प्राप्त होता है। यह अवस्था सत्संग, धर्म ग्रन्थ पाठ, गुरु आज्ञा पालन, माता-पिता एवं गुरुजनों तथा भगवत् भक्तों की सेवा द्वारा प्राप्त होती है।'**

मैंने पूछा-नाम करते करते शुष्कता आए, खिन्नता का बोध हो तो भी क्या नाम करें या छोड़ दें।

ठाकुर ने कहा-**'प्रतिदिन नियमित रूप से थोड़े समय के लिये भी साधन करना कर्तव्य है। अच्छा न लगे तो भी दवा पीने के समान करते जाने से क्रमशः नाम में रुचि होती है। नाम में अरुचि की औषधि भी नाम ही है। जैसे पित्त रोग में मुँह कड़वा**

हो तो मिश्री भी कड़वी लगती है, किंतु उस रोग की औषधि भी मिश्री ही है। खाते-खाते मिश्री मीठी लगने लगती है। आनंद न आए तो नाम नहीं करेंगे, जब अच्छा लगे तभी करेंगे-ऐसा भाव रखना तो व्यवसाय बुद्धि है। मुझे अच्छा लगे न लगे, आदेश अनुसार नाम करना ही होगा। नाम द्वारा क्रॉस बिद्ध होना होगा। तब जाकर पुनरुत्थान होता है।'

गुणातीत होने पर भी ताप रहता है।

प्रश्न पूछा गया-क्या जितने दिनों तक गुण हैं, उतने दिनों तक ही ताप रहता है। ठाकुर-**'त्रिगुण नष्ट हो जाने पर भी ताप रहता है। भगवत-दर्शन का अभाव ही ताप है।'**

प्रश्न-त्रिताप कब जाता है? ठाकुर-**'कर्तृत्व जितने दिनों तक है, तब तक ताप नहीं जाता। त्रिताप न जाने तक मनुष्य मुक्त नहीं होता। मुक्त व्यक्ति कर्म त्याग नहीं करते। अनासक्त होकर, बालक की क्रीड़ा के समान उन्माद की तरह, कार्य करते जाते हैं, क्यों करते हैं, यह भी वे नहीं जानते। भीतर से अकर्ता और बाहर कार्य--यह महापुरुषों का लक्षण हैं। कर्तृत्व अभिमान न रहने पर, कोई ताप स्पर्श नहीं कर पाता। युक्तभक्त होने पर ताप नहीं रह जाता।'**

अब कुलगुरु प्रदत्त साधन करें या नहीं।

वर्धमान जिले के कुछ संभ्रात, मान्य व्यक्तियों एवं सामन्त वंश के लोगों ने उसी मकान में, ठाकुर के पास दीक्षा ग्रहण की। उनमें से कुछ गुरुभ्राताओं ने पूछा-हमारे कुलगुरु हैं, उनसे हमने दीक्षा ली है। अब हम उस दीक्षा के अनुसार साधन कर सकते हैं या नहीं?

ठाकुर ने कहा-**'नहीं, ऐसा न होगा। या तो यह साधन करो, या कुलगुरु प्रदत्त साधन करो। एक समय में दो नहीं चलेगा--कोई एक लो।'** उन्होंने फिर कहा-वे हमारे कुलगुरु हैं, उनकी दीक्षा के अनुसार न चलना कैसे संभव है? ठाकुर ने कहा-**'यदि ऐसी बात है, तो यहाँ फिर दीक्षा क्यों लिया? दीक्षा लेना ही अनुचित हुआ। कुलगुरु का साधन लेकर ही रहना था। खैर कुलगुरु का साधन करो, यह साधन मत करना।'** इस बारे में ठाकुर ने अनेक बातें कही।

सामन्त कुल-तिलक श्री देवेन्द्रनाथ सामन्त महाशय के वृद्ध पिता ठाकुर के पास आकर दीक्षा-प्रार्थी हुये। ठाकुर ने कहा-'कुछ दिन और प्रतीक्षा करना अच्छा है।' वे बड़े विचारशील और बुद्धिमान व्यक्ति हैं, सो ठाकुर की बात का विरोध न करके उन्होंने कहा-ठीक है, ऐसा ही हो, किंतु आप मुझे यह अभयदान दें, कि आपके पास दीक्षा पाने से पहले मेरी मृत्यु न हो जाय। ठाकुर ने उन्हें इसी दिन, अट्ठाईस भाद्रपद रात साढ़े तीन बजे दीक्षा प्रदान किया। वर्धमान जिले के और भी कई लोगों ने ठाकुर के पास दीक्षा ग्रहण किया। उन्हें विदा करते समय ठाकुर ने कहा-**'वर्धमान में मेरे एक मित्र हैं।-देवेन सामन्त। आप उनसे मिलें, आप का हित होगा। देवेन दैत्य-कुल में प्रह्लाद की भाँति हैं-ऐसा देखा नहीं जाता।'**

आज भोजन पकाने के लिए जाने में देर हो गई। भीतर जाकर देखा कुतु एवं हरिनारायण बाबू की पत्नी ने मेरे भोजन पकाने की सारी तैयारी कर, चूल्हा जलाकर रखा है। शीघ्र भोजन पकाकर होम के अंत में मैंने प्रसाद ग्रहण किया। यथा समय ठाकुर के पास

आ गया। शाम को शालग्राम की आरती करके बरामदे में सोया रहा। गुरुभ्राताओं ने संकीर्तन आरंभ किया।

प्रार्थना में ठाकुर की सहानुभूति।

सुबह स्नान, संध्या, तर्पण के बाद फूल लेकर घर लौटा। शालग्राम को प्रणाम करके आसन पर बैठते ही ठाकुर ने स्निग्ध, स्नेह दृष्टि द्वारा मुझ पर कृपा की। खूब भाव सहित न्यास, पूजा आरंभ किया। आज गुरुदेव की कृपा से अविरल अश्रुधारा रुकती ही नहीं। नाम के साथ निरंतर प्रार्थना करने लगा। मन ही मन ठाकुर से कहा-ठाकुर अब और क्लेश मत दो, तुम दयालु हो, दयालु होकर निर्दय क्यों बनते हो। मुझे विश्वास-भक्ति देकर, फिर जो कष्ट देना चाहो दो-मैं विरोध नहीं करूँगा। तुम पर विश्वास, भक्ति-प्रेम भावना न आने से, तुम्हारी कृपा धारण नहीं कर पा रहा हूँ। रोज रात को संदेश, रसगुल्ला देकर क्यों मुझे उठाते हो। रसगुल्ले, संदेश दे सकते हो, प्रेम, विश्वास, भक्ति देने में इतनी कृपणता क्यों? तुम्हारे भण्डार में किसी भी वस्तु का अभाव नहीं है। जिस वस्तु का अभाव हो, उसे देने में आपत्ति हो सकती है। तुम्हें किस वस्तु का अभाव है? मेरे लिये रसगुल्ले और विश्वास दोनों में अंतर रह सकता है, पर तुम्हारे पास तो दोनों ही समान व तुच्छ हैं, फिर देने में क्यों इतनी आनाकानी करते हो। काफी देर प्रार्थना करते हुए नाम चलने लगा। इस समय ठाकुर मेरी ओर तिरछी दृष्टि से ताकते जाते। आज इतनी अच्छी, सुंदर प्रार्थनाएँ मन में आने लगी कि अब उन्हें लिख नहीं सकूँगा। वे प्रार्थनाएँ विफल नहीं गई। ठाकुर ने लगभग चार बजे मेरी ओर देखकर आँखें बंद कर ली एवं सिर

हिलाते हुए मेरे भावों के प्रति सहानुभूति दर्शाया। मैं भी आँसू पोंछकर, भीतर भोजन बनाने चला गया। शीघ्र ही भात पकाकर, शालग्राम को निवेदन कर, प्रसाद पाकर ठाकुर के पास लौट आया।

ब्राह्म समाज त्याग का कारण: महाप्रभु का धर्म आधुनिक या पुरातन।

बहुत से गुरुभ्राता और बाहरी लोग ठाकुर के पास आये। वे ठाकुर से नाना प्रकार के प्रश्न पूछ। रहे थे। ठाकुर ने लिखकर बताया-**'शास्त्र व सदाचार के अनुसार रहो तो धोखा नहीं खाना पड़ता। प्राचीन पथ लिये रहने पर लाभ ही होता है। मैं ब्राह्म समाज से अपनी इच्छा से ही नहीं लौटा। एक दिन सीतानाथ, महाप्रभु के साथ आए एवं उन्होंने कहा-अरे, ब्राह्म समाज का काम पूरा हो गया। अब महाप्रभु की शरण में आ जाओ। अब देखता हूँ, निर्भरता में ही एकमात्र शांति है। किंतु मनुष्य का ऐसा दुर्भाग्य कि वह निर्भर नहीं हो पाता। घूम फिर कर, कई प्रकार कष्ट पाकर भी नहीं। चारों ओर के लोग निर्भर होने भी नहीं देते। अपने प्रयत्न से कुछ नहीं होता, यह विश्वास पक्का होने पर ही यथार्थ कल्याण होता है।'**

एक गुरुभ्राता ने पूछा-महाप्रभु द्वारा प्रचारित वैष्णव धर्म क्या नया है या शास्त्रों में इसका उल्लेख है? ठाकुर ने लिखा-**'श्री चैतन्य महाप्रभु ने जिस प्रकार प्रचार किया है, उसका उल्लेख शास्त्रों में हैं। बहुत पहले सनक, सनातन, सनत्कुमार व सनन्दन--ये चारों ब्रह्मा के मानस पुत्र, एकत्र सर्वदा भगवान का नाम-गान करते थे। अहिंसा ही धर्म, सर्व जीवों पर प्रीति, तृण के**

समान नीचे, वृक्ष के समान सहिष्णु, अमानी को मानदान, सर्वदा हरिनाम स्मरण, मनन, कीर्तन इत्यादि भाव इन चारों ने प्रचारित किया। इसलिये उन्हें वैष्णव कहा गया। सनत् कुमार संहिता के अनुसरण से वैष्णव उपासना आज भी प्रचलित है। काल क्रम से यह वैष्णव धर्म मलिन होता गया और याग-यज्ञ क काण्ड प्रचारित हुए। क्रमशः धर्म इतना म्लान हुआ कि मनसा पूजा, विषहरि गान तथा दो एक स्त्रोत मंत्र पाठ, मात्र यहीं धर्म बनकर रह गया। इस समय विशुद्ध वैष्णव धर्म-प्रचार करने पर वह नवीन जान पड़ा। इसके लिये उन्हें जन समाज में बहुत कष्ट और यातनाएँ सहनी पड़ी थी। महाप्रभु ने जिस वैष्णव धर्म का प्रचार किया था, वर्तमान वैष्णवों में वह दुर्लभ हो गया है। जो पाँच सात हैं भी तो वे अधिकांश समय एकान्त में ध्यान-धारणा में मग्न रहते हैं। समय-समय पर एक साथ हरि संकीर्तन करके कृतार्थ होते हैं।' ठाकुर ने फिर लिखा--'पहले वटतला में जो चैतन्य भागवत् छापा जाता था उसमें लिखा है कि एक दिन चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानंद प्रभु को बुलाकर कहा--तुम्हें विवाह करना होगा। नित्यानंद प्रभु ने कहा--तुम देश-विदेश में इस तरह घूमते फिरोगे और मैं विवाह करके घर बसाऊँगा। महाप्रभु ने कहा--इसका कारण है। तुम जितनी भी प्रेम भक्ति वितरित क्यों न करो, हम लोगों के अन्तर्धान हो जाने पर इसकी महिमा नहीं रह जायगी। किंतु यदि तुम्हारे वंशज रहें तो वे अपने पूर्वजों का धर्म मानकर इसका विशेष आदर करते जाएंगे। तभी सब ठीक चलेगा। मैं संन्यासी हूँ, गृहस्थ नहीं बन सकता। तुम्हें एवं अद्वैत प्रभु को संतान उत्पत्ति करना होगा। इसीलिए नित्यानंद प्रभु ने

विवाह किया। यह आज कल छपे चैतन्य भागवत में नहीं मिलता। संक्षेप करने के लिए कई वृत्तांत छोड़कर, आजकल पुस्तकें छाप रहे हैं। नित्यानंद प्रभु ने संन्यास नहीं लिया था। वे इस वेश में घूमते फिरते थे।'

गेरुआ ग्रहण करने पर किसी गुरुभगिनी को निषेध एवं उपदेश।

भरत मिलन, कुरुक्षेत्र मिलन आदि नाटक के प्रणेता श्री कृष्ण कमल गोस्वामी अपनी विधवा कन्या को लेकर ठाकुर के दर्शन के लिये आए। वह कम उम्र में विधवा हुई हैं, हमारी गुरुभगिनी हैं। विशुद्ध भाव से सदाचार-सम्मत जीवन-यापन के लिए वे ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करती हैं। गेरुआ वस्त्र पहनती हैं। संध्या कीर्तन के समय वह नानी माँ एवं शांति आदि के साथ चिक की आड़ से ठाकुर का दर्शन करने लगी। कीर्तन के बाद सबको हॉल से हटाकर ठाकुर ने उस लड़की को बुलवाया-उसके पिता के पास बिठाया। ठाकुर ने कहा-**'देखो माँ-गेरुआ योग-वस्त्र है, यह गृही को नहीं पहनना चाहिये। तुम यह गेरुआ वस्त्र मत पहना करो। किसी साधु-महात्मा के पास शिक्षा लेने मत जाना। स्वयं गीता-पाठ मत करना, गीता अन्य किसी मुख से सुनना चाहिये। बहुत से शास्त्र मत पढ़ना। चैतन्य-चरितामृत बार-बार पढ़ना। मैंने बत्तीस बार पढ़ा है। चैतन्यचरितामृत ही तुम्हारा साथी है। साधन-भजन संबंधी कुछ किसी से मत पूछना। कुछ जानने की खूब उत्कण्ठा हुई, तो खुद ही जान पाओगी।'** लड़की ने कहा-जहाँ मैं रहती हूँ, साधन प्राप्त कोई साथी नहीं है। ठाकुर ने कहा-**'माँ चैतन्य**

चरितामृत तुम्हारा एकमात्र साथी है। और किसी साथी का प्रयोजन ही नहीं है। अच्छी तरह नाम करो, सभी जान सकोगी।'

वीर्यधारण के बिना योगसाधन नहीं होता: उर्ध्वरेताओं की भिन्न-भिन्न अवस्था।

संकीर्तन के अंत में आज ठाकुर ने स्वयं प्रवृत्त होकर गुरुभ्राताओं को कुछ उपदेश दिया। संक्षेप में उन्हें लिखता हूँ। ठाकुर ने कहा-**'आजकल योग करना कठिन हो गया है। योग करना है तो वीर्यधारण करना ही पड़ेगा। वीर्यधारण बिना योग साधन सहज साध्य नहीं होता। इसलिये प्राचीन काल में ऋषि-मुनिगण योगाभ्यास करने के लिये निर्जन वन, पर्वत पर जहाँ स्त्रियों का उत्पात न हो, जाकर पहले वीर्यधारण का अच्छी तरह अभ्यास कर लेते थे। योग करना चाहो तो पहले वीर्यधारण करो, नहीं तो कुछ न होगा। वीर्य स्थिर होने पर, चित्त स्थिर होगा। वीर्य चंचल रहे, तो मन कैसे स्थिर होगा। मन स्थिर होने पर क्रमशः सब होने लगता है। प्रेम-भक्ति वीर्यधारण पर निर्भर नहीं, यह ठीक है--पर प्रेम भक्ति एक स्वतंत्र वस्तु है। वह भगवान की कृपा से ही लाभ हो सकती है। योग के लिए वीर्यधारण करने से सहायता मिलती है। वीर्यधारण करना सहज नहीं। यह हो जाय तो शरीर में कोई रोग न रहे। यदि पूर्व कोई रोग रहा, तो वह एकदम दूर नहीं हो पाता।'**

कुछ देर रुककर ठाकुर ने फिर कहा-**'वीर्यधारण करना उनके लिये अत्यन्त आवश्यक है, जो गेरुआ वस्त्र धारण करते और जटा रखते हैं। वीर्यधारण न करके, यह सब धारण करना**

अपराध है। यह सब धारण करके यदि वीर्यपात हुआ तो चौदह पीढ़ी नरक जाती है ऋषियों ने ऐसा अभिशाप दिया है। केवल इतना ही नहीं, गेरुआ धारण करने वाले अपराधी को भी पशु-पक्षी की योनि में जन्म लेना होता है।'

मैंने पूछा-जो उर्ध्वरेता होते हैं उन सबकी क्या एक जैसी ही अवस्था होती है। ठाकुर ने कहा-**'जो वीर्यधारण करते हैं-उनकी सभी की एक सी अवस्था नहीं होती। जो भक्तिमार्ग पर चल रहा है, उर्ध्वरेता होने पर उसकी अवस्था एक प्रकार की, जो ज्ञान मार्ग पर चल रहे हैं-उर्ध्वरेता होने पर एक अन्य अवस्था होगी। हठ योग से उर्ध्वरेता होने पर, दूसरी तरह की अवस्था होगी।'** आज संकीर्तन के बाद अधिक रात को सोया। गुरुभ्रातागण काफी रात तक धर्म संबंधी बातें करते रहे।

ठाकुर के गेण्डारिया आश्रम त्याग का पूर्वाभास: रहस्यपूर्ण आसनत्याग: महाशंख माला।

ठाकुर अब गेण्डारिया जाएंगे या नहीं? जाकर वहाँ फिर रहेंगे या नहीं? इस बात पर गुरुभ्राताओं के बीच कई प्रकार की बातचीत चल रही है। मेरी भी धारणा है कि ठाकुर गेण्डारिया जाकर भी, अधिक दिन वहाँ निवास नहीं करेंगे। गेण्डारिया निवास की बाध्यता अब ठाकुर की समाप्त हो गई है। ठाकुर के परम मनोहर भजन कुटीर के गुफाघर में जो रहस्यमय अद्भुत् आसन था, ठाकुर जब उस आसन पर बैठेंगे ही नहीं, तो गेण्डारिया में उनके रहने का प्रयोजन नहीं जान पड़ता। ठाकुर ने बड़े विस्मयकारी कारण से

अचानक उस आसन का त्याग कर दिया। ठाकुर के इस आसन त्याग की घटना से मेरा लेशमात्र संबंध है, इसलिए वह घटना डायरी में लिख रहा हूँ।

चण्डी पर्वत यात्रा के दो चार दिन पूर्व ठाकुर ने मुझे मेरी माताजी के चरण स्पर्श और आशीर्वाद लेने के लिये घर भेजा था। माँ का आशीर्वाद लेकर गेण्डारिया आते समय माँ ने मुझे सरकारी बाड़ी के शालग्राम का दर्शन एवं प्रणाम करवाया। फिर घर के भीतरी कमरे के संदूक से एक माला निकालकर लाई। मेरे हाथों में वह माला देते हुए माँ ने कहा-अपने ठाकुर को पिता के जप की यह माला देना, वे रोज इसी माला से आह्निक के समय जप किया करते थे। बहुत दिनों से इसे संभालकर रखी थी, इसकी खबर कोई नहीं जानता। कुछ दिनों से ही इसे तेरे ठाकुर को देने की बात सोच रही थी। मैंने कहा-माँ यह तो हड्डी की माला है। मेरे ठाकुर यह लेकर क्या करेंगे। माँ ने कहा-तू नहीं समझेगा, यह साधारण माला नहीं है, महाशंख की माला है। शनि या मंगलवार को अमावस्या पड़े, चण्डाल की मृत्यु उसी दिन हो तो उसकी अस्थि से यह बनायी जाती है। यह बड़ी दुर्लभ वस्तु है। यह क्या है, वह तेरे ठाकुर ही समझेंगे। मैं माला लेकर गेण्डारिया पहुँचा। एकान्त पाकर ठाकुर से कहा-यह मेरे पिता के जप की माला है, माँ ने आपके लिये दिया है। ठाकुर माला हाथ में लिए बड़े ही आनंदित हुए, उन्होंने कहा-**'कई दिनों से इस प्रकार की एक माला पाने की इच्छा थी, ईश्वर की कृपा से जुट गई। यह उत्कृष्ट महाशंख की माला है।'** ठाकुर माला हाथ में रखे, कभी-कभी बाँह पर बाजूबंद की तरह धारण करते रहे। रोज आसन पर, गुफा घर में कुछ देर ठाकुर बैठते थे। तीन दिन यह

माला लेकर बैठे, फिर आसन पर रख आए। दूसरे दिन सुबह श्रीकुंज घोष ने रोज की तरह आसन के सामने धूनी जलाने एवं आसन के भयानक विषधर कृष्ण सर्प को दूध केला देने, गुफा घर में प्रवेश किया। उन्होंने देखा, आसन पर लगभग दो फुट ऊँची दीमक की ढेर बनी हुई है। महाशंख की माला उसी के भीतर दबी है। कुंज बाबू ने तुंरत जाकर ठाकुर से कहा। ठाकुर ने कहा-**'अच्छा ही हुआ, उसे साफ मत करो, जैसा है वैसा ही। रहने दो।'** बस इसदिन से ठाकुर का गुफा घर में आसन पर बैठना बंद हो गया।

ठाकुर को वह माला देकर मैंने पूछा था-महाशंख माला धारण करने का अधिकार कब होता है? ठाकुर ने कहा था-**'जब सर्वत्र समबुद्धि हो, तब यह माला धारण का अधिकार होता है।'** आज मैंने सुना कि दीमक का वह स्तूप जितना कल था, उतना ही है, एक इंच भी वृद्धि नहीं हुई। वह पत्थर के समान कठोर है। न जाने इतने दिनों का आसन, महाशंख की माला रखने से तो ऐसा नहीं हुआ होगा, मुझे तो यह माला ही ठाकुर के आसन त्याग का कारण लगती है।

तांत्रिक साधना की उपादेयता।

मैंने ठाकुर से पूछा-वेदमत से कई वर्षों तक साधन करके जो प्राप्त होता है, तंत्र मत से कुछ काल साधन करने पर ही क्या वही फल मिलता है। ठाकुर ने कहा-**'शिववाक्य क्या मिथ्या हो सकता है। अवश्य ऐसा होता है। जीवों पर दया करके महादेव ने तंत्र-संकलन किया है।'** मैंने कहा-तंत्र में क्या मार-काट और व्यभिचार लेकर ही साधन है। संयत होकर, गुणातीत होने का तंत्र में कोई

उपदेश है। या नहीं? तंत्र क्या पूरा शाक्त मत का है? ठाकुर--**'तंत्र केवल शक्ति विषयक ही क्यों होगा? पंच देवों का तंत्र भिन्न-भिन्न है। वैष्णव तंत्र, शैव तंत्र आदि सभी उपासनाओं का तंत्र है। संयम आदि विषय पर भी तंत्र में यथेष्ट उपदेश हैं। ज्ञान संकलनी तंत्र एक बार पढ़कर देखना। तंत्र का उद्देश्य एवं अर्थ कोई नहीं समझता, न समझकर ही साधन करने जाते और मरते हैं।'**

शास्त्र समझना कठिन है।

कुछ संभ्रान्त शिक्षित सज्जनों ने ठाकुर से पूछा-शास्त्रों को छोड़कर हमारे पास कोई उपाय नहीं, लेकिन शास्त्र तो कुछ भी नहीं समझ पाते। किसी विषय पर स्पष्ट मीमांसा किसी भी एक शास्त्र या पुराण में नहीं है।

ठाकुर ने लिखा-**'वेद, उपनिषद् का विशेष ज्ञान न रहने पर हिंदू शास्त्र समझ पाना बहुत कठिन है। अष्टादश पुराण, रामायण, महाभारत को खूब छानबीन कर बारीकी से न देखने पर जटिल प्रश्नों की मीमांसा नहीं हो पाती। आदि पर्व में एक विषय पर लिखा है, तो उसकी मीमांसा शांतिपर्व में है। ब्रह्माण्ड पुराण में एक विषय का उल्लेख है तो उसके समस्त अंश मार्कण्डेय-पुराण में है। मनुसंहिता में एक विषय की व्याख्या है, तो उसकी व्यवस्था वृद्ध गौतम संहिता में हैं। निर्वाण तंत्र में एक विषय है, बाकी सारा भाग रुद्रयामल में है। यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता में एक आख्यायिका है, तो बाकी विष्णु पुराण एवं श्रीमद्भागवत् में है। सभी शास्त्र ठीक तरह से न पढ़ने पर**

शास्त्रमत कहना विडम्बना व अज्ञानता मात्र है।’

भजनानन्द संभोग से अभिमान का विकट आक्रमण: अविश्वास की आग में सबभस्मीभूत, ठाकुर के अयाचित प्रसाद से शांति।

रात बारह बजे हाथ पैर धोकर आसन पर बैठा। ठाकुर को पंखा झलने लगा। बारह से तीन बजे तक ठाकुर एक जैसे भाव से समाधिमग्न बैठे रहते हैं। देवी-देवता, ऋषि-मुनि आदि आकर उपस्थित होते हैं। कभी आत्माएँ, कभी प्रेतात्माएँ भी आकर उपस्थित होती हैं। वे आकर क्या कहते हैं, ठाकुर उनसे क्या वार्तालाप या आचरण करते हैं, यह मैं समझ नहीं पाता। ठाकुर कभी तो स्तुति करते हैं। कभी धमकाते, डाँटते है। किसके प्रति क्या व्यवहार करते हैं, कुछ समझ नहीं पाता। उनके भावावेश में कही बातें लिखना बड़ा कठिन जान पड़ता है। जो बातें स्पष्ट न सुन पाऊँ, उन्हें नहीं लिखूँगा--मैंने ऐसा निश्चय किया है।

साढ़े चार बजे आसन से उठकर स्नान तर्पण के बाद पुष्प-चयन करके घर लौटा। चाय पीने के बाद दस बजे तक न्यास आदि में समय बीता। ग्यारह बजे ठाकुर भीतर चले गए। मैंने शालग्राम पूजा प्रारंभ की। आज शालग्राम पूजा के समय कई प्रकार की भावनाएँ अन्तःकरण में उदित होने से, खूब प्रसन्नचित्त होकर ठाकुर को गंगाजल एवं तुलसीपत्र अर्पण किया। ठाकुर बारह बजे आसन पर लौटे। मेरे मन में विचार आया--बहुत जन्मों के साधन-भजन के बाद भी, जो दुर्लभ वस्तु योगीजनों के अगोचर है, तैंतीस करोड़ देवी-देवता जिस नरलीला के दर्शन की आकाक्षा से हाथ

जोड़े अनुमति-भिक्षा करते हैं, मैं अनायास ही उनकी कृपा से उनका संग सदा सर्वदा कर पा रहा हूँ। मुझसे अधिक सौभाग्यशाली और कौन होगा। मैं गद्गद् होकर ठाकुर की ओर देख रहा था। ठाकुर मेरी ओर देखते हुए वार्तालाप शुरु कर दिये। मैं सोचने लगा, मैं महाअपराधी, फिर भी ठाकुर कृपा करके मौन अवस्था में मुँह हिलाकर बातें कर रहे हैं। मैं विभोर हो गया। मैं ठाकुर की बातें न तो ठीक सुन पाया न ही समझ पा रहा हूँ। कानों में बातें प्रवेश नहीं कर रही थी, केवल ठाकुर के मुँह हिलाने की भाव भंगिमा की अपूर्व शोभा देखकर मुग्ध हुआ जा रहा था। उस समय मेरे दोनों होंठ काँपने लगे, आँखों से अविरल अश्रुधारा बह निकली। श्वेद, कम्प, अश्रु, पुलक आदि भावों से शरीर अवसन्न सा होने लगा। चार-पाँच मिनट तक ठाकुर मेरी ओर देखते रहे, पर मैं और उनकी ओर न देख सका, मैंने आँखें बंद कर लीं। उस समय ठाकुर के अनुपम रूप के ध्यान से बाह्य ज्ञान विलुप्त हो गया। कब तक इस भाव में मुझे ठाकुर ने रखा, यह नहीं जानता। ठाकुर की स्मृति युक्त, तरंग शून्य, निर्मल अन्तस् से कब तक निमग्न होकर नाम में लीन रहा, यह तो ठाकुर ही जानें। इसी समय मेरे अनजाने ही अभिमान असुर ने शारीरिक विकार की ओर अदृष्ट सूत्र के द्वारा ही दृष्टि डाला, समझ नहीं पाया। मैंने सोचा बड़े भाग्य से, भगवत कृपा होने पर अश्रु, पुलक, कम्प आदि सात्त्विक भाव होते हैं, सो आज मुझे हुआ। यह अवश्य उन्नति का लक्षण है। निश्चय ही ठाकुर भी इन्हें देखकर खूब संतुष्ट हुए होंगे। ये भाव और वृद्धि पायें--इस संकल्प से और तेजी से नाम करने लगा। किन्तु किसी प्रकार ठाकुर की तरफ मन न लगा सका। तेज प्रवाहवाले अथाह जल राशि में पड़ने से जैसी दशा

होती है, वैसी ही मेरी दशा रही। प्रबल स्रोत के प्रतिकूल खड़े रहने की जगह ही न मिली। क्षीण सा अभिमान, सात्त्विक विकारों की ओर नजर डालने, खून चूस लेने से पुष्ट होने लगा। पहले का सरस भाव न रहा। समय बीतने के साथ-साथ शुष्कता भी खूब बढ़ने लगी। अकस्मात् छोटी सी घटना को हेतु बनाकर ठाकुर पर मुझे क्षोभ व अविश्वास आने लगा। पास ही कमरे में श्रीधर ज्वर से छटपटा रहे थे, ठाकुर का नाम लेकर चीख रहे थे। ठाकुर परम दयालु, सर्वसमर्थ हैं, तो भी अपने एकनिष्ठ भक्त श्रीधर के इस अवस्था को देख उदासीन कैसे हैं? यह बात भीतर ही अन्तःकरण को झकझोरने लगी, ठाकुर पर संदेह और अविश्वास आ गया। एक के बाद दूसरा, ऐसे कई कारणों की कल्पना ठाकुर पर संदेह का हेतु बनने लगी। देखते ही देखते नशेबाज की तरह अपनी धुन में चलता हुआ मैं दिशा खो बैठा, अविश्वास और संदेह के घर्षण से भीतर आग जल उठी। तभी समझा कहाँ से कहाँ आ गिरा हूँ। भीतर झाँककर देखा, अविश्वास की ज्वाला धू-धूकर बढ़ती चली जा रही है। इसी ने ठाकुर के स्मृति व ध्यान को भस्म कर दिया है। नाम कभी-कभी चल तो रहा है, पर अनुभव नहीं होता। असार शुष्क वायु के धोंकने की तरह प्रतीत हो रहा है। थोड़ी देर में जलन ऐसी बढ़ी कि नाम भी छोड़ देने की इच्छा हुई। असह्य यंत्रणा से छटपटाता हुआ मैं अस्थिर हो उठा, अपनी ही दाढी बाल नोचने, हाथ काट खाने और अपने शरीर पर आघात करने लगा। मैं पागल सा हो गया। किसी गुरुभाई ने मुझे देखकर बाहर चले जाने का संकेत किया। मुझसे दो चार हाथ की दूरी पर ठाकुर समाधिमग्न हैं, यह मैं यंत्रणा के मारे भूल ही गया। शालग्राम पर बड़ा क्रोध आया,

शालग्राम पूजा नहीं करूँगा सोचकर, पूजा के उपकरण फूल तुलसी उन पर जोर-जोर से फेकने लगा। पाँच-सात मिनट के लिये नाम भी बंद रहा। ठाकुर की कृपा से पुनः अतिद्रुत गति से नाम चलने तो लगा पर न संदेह, अविश्वास दूर हुआ और न जलन शांत हुई। अब ठाकुर को विचलित करने के प्रयत्न से, भीतर का आवेग न संभाल सका और क्रुद्ध दृष्टि से उन्हें देखने लगा। ठाकुर तो शांत, स्थिर अपने भाव में मग्न थे, यह देख मेरी आसुरिक वृत्ति तेजी से बढ़ी। क्रोध व अभिमान से चूर हो गया। अविश्वास की ज्वाला क्या भयानक है, समझ रहा हूँ। केवल ज्वाला नहीं, एक प्रकार का ताप हृदय से उठकर क्षण-क्षण आघात करने लगा। हृदय मानो फटने सा लगा। इसके बाद ठाकुर की ओर तीव्र दृष्टि से देखने लगा, मैंने सोचा था, ठाकुर को मेरी सारी जलन देकर, जलाकर मारूँगा। ऐसा करने में मैं और भी संकट में पड़ा। दयालु ठाकुर ने मेरी बेअदबी की सजा सुंदर तरीके से दी। एकटक ठाकुर की तरफ देखने से पाँच सात मिनटों में मेरी आँखों में खूब दर्द होने लगा। वेदना इतनी बढ़ी कि मैं उनकी तरफ देख न सका। ऐसा लगता है, खूब सा रक्त आ जमने से आँखों का पर्दा फट जाएगा। निरुपाय, होकर ठाकुर के श्रीचरणों का स्मरण करने लगा। ठीक उसी समय ठाकुर-**'हरिबोल! हरिबोल!'** उच्चारण करते हुए बोले-**'ब्रह्मचारी भूख लगी है? यह संदेश लो, शालग्राम को भोग लगाकर प्रसाट पाओ।'**

ठाकुर के स्नेहमयी दृष्टि और निजहस्त से दिए गए संदेश प्रसाद पाकर, मेरा हृदय पूर्णतः शीतल हो गया। संदेश खाकर मैं भोजन पकाने गया। एक घंटे में रसोई, होम, आहार सम्पन्न करके ठाकुर के पास लौट आया।

प्रेत का आक्रोश, शुभ कार्य में विघ्न: पिण्डदान की व्यवस्था।

आज मध्याह्न के समय श्री अश्विनी कुमार गुहठाकुरता के बड़े भाई ने आकर ठाकुर से कहा-कई दिनों से अश्विनी काम-काज के लिये प्रयत्न कर रहा है परन्तु कोई काम नहीं बन रहा है। बड़े-बड़े लोग उसकी नौकरी के लिये प्रयत्न कर रहे हैं, काम बनकर भी कोई छोटे से कारण से बाधा आ पड़ती है।? ऐसा क्यों हो रहा है?

ठाकुर ने कहा-**'प्रेत का आक्रोश रहने से उसका काम नहीं हो रहा है। प्रेत की शांति न होते तक काम-काज की सुविधा नहीं होगी।'** अश्विनी के दादा ने कहा-मेरी माता को तो गया में पिण्डदान दिया गया है। फिर उन्हें आक्रोश क्यों है? और फिर आक्रोश अश्विनी पर ही क्यों हैं?

ठाकुर-**'जो पिण्ड दिया गया था, वह उन्हें नहीं मिला। इस विषय में स्वप्न में अश्विनी से कहा गया था, परन्तु उसे स्मरण रख, अश्विनी ने कोई प्रतिविधान का यत्न ही नहीं किया। इसीलिये अश्विनी पर ही आक्रोश है।'** अश्विनी के दादा ने कहा-नहीं अश्विनी ने ऐसा कोई स्वप्न नहीं देखा।

ठाकुर-**'अच्छा अश्विनी से जाकर पूछिये।'**

अश्विनी के दादा ने अश्विनी को बुलाकर पूछा। अश्विनी ने कहा-एक दिन माता की क्लेशसूचक चीख स्वप्न में सुना, किंतु वे क्या बोल गई समझ नहीं पाया, बाद में भूल गया। ठाकुर ने प्रेत की शांति के लिये पुनः पिण्डदान करने को कहा था। मैंने पूछा-गया में पिण्ड देने पर ही प्रेतात्मा का उद्धार हो जाता है, ऐसा सुना था। परन्तु

पिण्ड देने पर पिण्ड नहीं पाते-क्या ऐसा भी होता है?

ठाकुर-**'किसी को पिण्ड पुत्र देता है, तो भी पौत्र आदि द्वारा पिण्ड देने की व्यवस्था है। यदि किसी का पिण्डदान प्रेतात्मा को न मिले तो वंश के जो भी गया जाय, उसे अपने पूर्वजों व जाति-स्वजनों को पिण्ड देने का नियम है।'**

मैंने पूछा-पिण्ड दूँगा पर वह प्रेतात्मा को मिलेगा या नहीं ऐसा संदेह लेकर पिण्ड देने का उत्साह कैसे आएगा? ठाकुर ने कहा-**'विधिवत् पिण्ड देने पर उससे अवश्य ही प्रेतात्मा का उद्धार होता है। किंतु विधि से दिया नहीं जाता। जो पिण्ड दें, वे यान-आरोहण न कर पैदल यात्रा करें। फिर शुद्ध चित्त होकर एकाहार या हविष्यान्न खाकर एक माह साधन-भजन करते हुए गया में वास करें। जमीन पर, हाथ को सिरहाना बनाकर सोएँ। फिर शास्त्र-अनुसार प्रेतात्मा का पिण्डदान करें। तब वह पिण्ड अवश्य प्रेतात्मा को प्राप्त होता और उसका उद्धार हो जाता है। इसमें कोई अन्यमत नहीं हो सकता-यह ऋषिवाक्य है। इस विधि से पिण्ड दिया ही नहीं जाता। तो भी गदाधर इतने दयालु हैं, कि किसी भी प्रकार दिया हुआ पिण्ड ग्रहण करके प्रेत का उद्धार करते हैं। किसी विशेष अनियम या अनाचार के कारण यदि गदाधर पिण्ड न ग्रहण करें, तो इसीलिये बार-बार पिण्डदान की व्यवस्था है।-देते-देते कभी न कभी लग ही जायगा।'** आज मेरे एक संशय का निवारण हुआ। कोई दुराचारी व्यक्ति अवज्ञापूर्वक, 'येनकेन प्रकारेण' गया जाकर, पिण्ड दे आए और पूर्वजों का उद्धार हो जाय, तब तो मुक्ति लाभ अनायास व बड़ा सहज हो जायगा। मुक्ति सदाव्रत भारत में हर जगह है, परन्तु

ऋषियों ने उसे असंख्य कंटक से आवरण करके, उसका भेदन करना उतना ही दुरुह बना रखा है।

नरक है या नहीं? परलोक में पितृपुरुषों का कार्य: वासना रूप जन्म।

एक व्यक्ति ने पूछा-शास्त्र, पुराणों में जो नरक का वर्णन है, वह वस्तुतः है या नहीं। यमदूत क्या हैं?

ठाकुर ने लिखा-**'शास्त्रों में नरक का वर्णन जैसा है, वस्तुतः नरक वैसा ही है। यमदूत, विष्णु दूत सभी सत्य हैं। मृत्यु के बाद इनके साथ विचार होता है। पितृपुरुष भी मृत्यु के समय उपस्थित रहते हैं। जिनकी आत्मा नरक जाती है, पितृपुरुष उन्हें सान्त्वना देते हैं। पितृपुरुष भी माया के अतीत नहीं होते, त्रिगुण के अधीन होते हैं। पूर्वजों में जो केवल मुक्त हैं, वे ही उपस्थित होकर, मृत आत्मा को पितृलोक ले जाते हैं। जिनके कर्म कम होते हैं, वे शिशुकाल में ही देह त्याग देते हैं। जो नरहंता, मानव द्रोही, पातकी जन होते हैं, वे बार-बार जन्म लेते, मरते और गर्भ यातना की सजा भोगते हैं। जैसी यह पृथ्वी है, वैसे ही ऐसे ग्रह उपग्रह हैं, जहाँ स्वर्ग, नरक का भोग है।'**

प्रश्न-मृत्यु के बाद पुनः कब जन्म होता है?

उत्तर-**'मृत्यु के बाद सभी पितृलोक गमन करते हैं। वहाँ क्रमशः उनकी वासना वृद्धि होती है। पितृ लोक में प्रत्येक वंश का एक पितृपुरुष रहता है। लोगों की मृत्यु के बाद उससे वे उसकी अवस्था बता देते हैं। वासना वृद्धि के साथ-साथ जन्म लेने की इच्छा होती है। जन्म केवल पृथ्वी पर ही लेना होता है,**

ऐसी बात नहीं है। हम जो सौर जगत जानते हैं, ऐसे असंख्य सौर जगत हैं। विष्णुलोक, चन्द्रलोक आदि स्थान भी हैं। उसके अधिष्ठातृ देवता भी है। वासना के अनुसार लेने की तीव्र इच्छा होने पर कहाँ जन्म होगा, उसे पितृपुरुषगण ही बताते हैं। उसी के अनुसार वह प्रार्थना करता है। प्रार्थना पूर्ण होने पर अवस्थानुसार विभिन्न ग्रहों में उसका जन्म होता है। इस पृथ्वी पर जन्म न लेने पर मुक्त हो गया, ऐसी बात नहीं है। इस तरह के अन्य ग्रह-उपग्रहों में भी वासस्थान हैं। वहाँ स्त्री पुरुषों का संबंध इस प्रकार नहीं होता। पर वे भी मोह के अधीन हैं। वहाँ भी वासना है। ऐसे ग्रह-ग्रहान्तर में जन्म हो सकता है। अवस्था अनुरूप जन्म लेने पर भी सबकी वासना एक सी नहीं होती। वासना के भेद के अनुसार नानाविध ग्रहों में जन्म होता है। सबका जन्म एक ही ग्रह में नहीं हुआ करता।'

स्त्री पुरुषों के मिलने-जुलने पर अनुशासन।

पूजा की छुट्टियाँ आरंभ हो गई। कई स्थानों से गुरुभ्रातागण ठाकुर के दर्शनार्थ कलकत्ता आए। श्री देवेन्द्रनाथ सामन्त, पगला सतीश, विधु मजूमदार, ललित गुप्त, छोटे दादा, कुंज गुह ठाकुरता आदि कई गुरुभ्राता ठाकुर के साथ सुकिया स्ट्रीट के मकान में ही रहते हैं। इनमें कई यहीं भोजन करते हैं। जो बारह महीने कलकत्ते में ही रहते हैं, वे एक बार भोजन करने के लिये घर जाते हैं। ठाकुर का कमरा सुबह से ग्यारह बजे तक लोगों से भरा रहता है। दोपहर को दल बाँधकर स्त्रियाँ भी आती हैं। बारह बजे भोजन करके आसन पर बैठते ही ठाकुर से मिलने स्त्रियाँ हाल में आने लगती हैं। हॉल के

दक्षिण पूर्वी कोने में ठाकुर का आसन है। उत्तर पूर्व कोने के दरवाजे से भीतरबाड़ी प्रवेश करना पड़ता है। स्त्रियों के लिए हॉल का छः-सात फुट का स्थान चिक से आड़ किया हुआ है। दोपहर तीन बजे तक ठाकुर के पास कोई पुरुष नहीं रहा करते। वे बाजू के बैठकवाले कमरे में विश्राम करते हैं। पुरुषों के न रहने पर एवं स्त्रियों की संख्या बढ़ने पर, चिक हटा दिया जाता है। तब स्त्रियाँ स्वच्छन्द होकर ठाकुर के पास दर्शनार्थ जाती हैं। कोई चरण धूलि लेती, कोई आसन के समीप बैठती, तो गोसाईंजी असंतुष्ट होते हैं। ठाकुर को समाधिमग्न अवस्था में स्पर्श करने पर कभी-कभी उनका मुझसे झगड़ा भी हो जाता। मेरी भाषा कर्कश व अपमानजनक समझकर वे नानीमाँ से शिकायत करतीं। वह ठाकुर के कानों तक भी पहुँचती। बाबू लोगों के आ जाने पर औरतें चिक की आड़ में या भीतर चली जातीं। संध्या आरती के बाद, संकीर्तन के समय हॉल लोगों से खचाखच भर जाता। स्त्रियों को चिक के भीतर अत्यन्त कठिनाई होती। कीर्तन जमने पर ठाकुर कभी-कभी उद्दाम नृत्य शुरू कर देते। पुरुष भी भावावेश में बेहोश से हो पड़ते। तब स्त्रियाँ ठाकुर के दर्शन के लिए चिक उठा देतीं। इस समय स्त्री-पुरुष का भेद नहीं रह जाता। ठाकुर ने बारंबार इस विषय पर सावधानी रखने को गुरुभ्राताओं से कहा है, पर कोई वह मानकर नहीं चल पा रहा है। आज ठाकुर सबके सामने अत्यन्त गंभीरतापूर्वक कहने लगे-**'स्त्री-पुरुष सर्वदा अत्यन्त सावधान होकर चलें, ऐसे नहीं चलेगा। अभी जैसा मेलजोल स्त्री-पुरुषों में बढ़ रहा है, ऐसा-' कुछ समय चलने पर, हमारे यहाँ भी बाउल लोगों के समान व्यभिचार आरंभ हो जाने की आशंका है। अभी से सबका सावधान हो**

जाना अत्यन्त आवश्यक है। इस विषय में शिथिलता का फल अनर्थ होता है। स्त्री-पुरुष कभी एक आसन पर न बैठे, यहाँ तक बहन व कन्या के साथ भी नहीं। वयस्का कन्या से व्यभिचार की घटनाएँ घट चुकी हैं। तुम्हारे चरित्र अच्छे हैं, सो तुमसे भूल नहीं होगी, ऐसा कभी मत सोचो। भले ही बहुत अच्छे हो, पर इस विषय में नियंत्रण नहीं हो पाता। स्वयं ब्रह्मा, अपनी कन्या के पीछे कामोन्मत्त हो दौड़ पड़े थे। योगीश्वर महादेव भी इस चक्र में घूमे। यह केवल एक कल्पना मात्र नहीं है। सचमुच इस विषय में कोई अभिमान नहीं कर सकता। लोहा व चुम्बक जैसे एक दूसरे को आकर्षित करते हैं, वैसे ही कितने भी अच्छे पुरुष व स्त्री क्यों न हों, एक साथ हों तो एक दूसरे के देह को आकर्षित करते हैं, तुम न चाहो तो भी देह का स्वाभाविक गुण धर्म, दूसरे देह को आकर्षित करे, तो तुम कैसे बाधा दोगे। स्त्री-पुरुष का देह ऐसे उपादानों से बना है कि एक का देह दूसरे को चाहेगा, आकर्षित करेगा। किसी स्त्री के पास, किसी भी पुरुष का रहना उचित नहीं। स्त्रियों का भी पुरुषों से मेलजोल ठीक नहीं। मैं यहाँ बैठा हूँ, स्त्रियों को पैर छूकर नमस्कार करने को कितनी बार मना करता हूँ, पर कोई मानता ही नहीं। क्या मैं जितकाम हूँ, मुझमें काम नहीं रह सकता? मुझ पर ही क्या विश्वास है? दूर से प्रणाम किया करो। स्त्रियाँ चिक की आड़ में बैठेंगी। सर्वदा यहाँ बैठने का भी क्या प्रयोजन है? संकीर्तन के समय भाव स्थिर रख नहीं पाते, सब स्त्री-पुरुष एकत्र हो जाते हैं। जो संकीर्तन में हैं, वे सभी अच्छे साधु हैं, ऐसी बात नहीं है। बाहर के कई बुरे लोग भी आते हैं। अतः इस विषय में पहले से ही सतर्क रहना

नहीं हुआ, तो गोलमाल होने में क्या देर लगती है? कई जगह देखा गया है कि पहले भाव के समय स्त्री-पुरुष एक दूसरे को पकड़ते हैं, फिर भाव छूट जाने पर, नकली भाव लाकर व्यभिचार आरंभ करते हैं। सावधान! सब खूब सतर्क हो जाओ, नहीं तो धर्म के नाम पर, अधर्म, व्यभिचार होने से धर्म-कर्म सब नष्ट होगा। इस विषय में कड़ाई बरतनी चाहिये। यदि पाप भाव न भी रहा, तो भी मेलजोल का साहस नहीं करना चाहिये। कई लोग सामाजिक सम्मान एवं सुनाम नष्ट होने का भय न हो तो सहज ही व्यभिचार कर सकते हैं। जहाँ धर्मभय है, वहाँ आशंका कम है, आजकल धर्मभय नहीं के बराबर है।'

पाप एवं परित्राण के उपाय।।

किसी ने कहा-पाप क्या है? इस विषय में स्पष्ट संस्कार हममें नहीं है। किस प्रकार बचाव किया जा सकता है?

ठाकुर ने कहा-**'स्वभाव के विपरीत कार्य ही पाप है। आध्यात्मिक पाप, शारीरिक पाप, मानसिक पाप, सामाजिक पाप, प्रेमरहित निष्ठुरता, नीचता आदि पाप हैं। सामाजिक पाप व्यभिचार आदि है। सामाजिक पाप के निवारण के लिये राज्य शासन व समाज शासन है। आध्यात्मिक, मानसिक, शारीरिक ये तीनों पाप, लोग देख नहीं पाते। इनसे रक्षा पाने के लिये ही परमेश्वर ने लज्जा, घृणा, भय, निन्दा एवं प्रशंसा-ये सब भाव आत्मा में दिये हैं। डाकू, लुटेरे भी दूसरों को अन्याय कर्म करते देखकर, तभी उसका विरोध कर देते हैं। यह व्यवस्था है, तभी तो हम बच सकते हैं।'**

भोग से भोग क्षय: दैहिक-आत्मिक संबंध: स्त्री जाति के प्रति सम्मान।

कोई एक उच्चपदस्थ, शिक्षित गुरुभ्राता स्त्री-वियोग से संतप्त होकर, ठाकुर के पास आये। उन्होंने अपनी दुरावस्था, जाति बंधुओं का आचरण एवं दुर्व्यवहार आदि कहकर पूछा कि उनका पुनः विवाह करना संगत है या नहीं। विवाह करने पर साधन में विघ्न पड़ेगा या नहीं। परलोक गई पत्नी से पुनर्मिलन की संभावना है या नहीं, जानने के लिये वे उतावले हो उठे।

ठाकुर ने उनसे सहानुभूतिपूर्वक कहा-**'अभी एकदम स्थिर होना कठिन है। विवाह करने पर साधन की हानि होगी, ऐसी बात नहीं है, बल्कि कई बार अवस्था अनुसार विवाह कर लेने पर लाभ ही होता है। अपना जो विषय भोग है, वह पूरा न हो तो भी विषय बार-बार आकर्षित करता है। अभी शोक है, जब वह चला जायगा, तब वृद्धावस्था में अपनी प्रवृत्ति के साथ युद्ध करना भी दुःसाध्य है। इसलिये कई संन्यासी वर्षों वन में, पर्वत की गुफा में, अनाहार में रहकर तपस्या करके भी पुनः संसारी होने को बाध्य हो जाते हैं। अपना चित्त समझना कठिन है। शास्त्रकारों ने कहा है-गृहस्थाश्रम साधक का दुर्ग है। स्त्री-पुरुष का संसार करना पाप नहीं है। संसार वासना का क्षय करने के लिये, संसार करने में ही भलाई है। लाभ कुछ नहीं, पर अपने-अपने भोग काटने के लिये प्रयोजन है। भोग करके ही भोग-क्षय करना सहज है। कृपा के पथ में, जरा भी आसक्ति रहे, तो वह आसक्ति कटते समय बड़ा ही कष्ट दायी होता है।'**

‘एक ने प्रार्थना की-प्रभो तुम ही मेरे सर्वस्व हो। मेरा जो कुछ भी है, सब तुम्हारा ही है, मेरा अपना कुछ भी नहीं। परमेश्वर सुनकर कहते हैं-मानव ऐसा मत कह, मुझे थोड़ा दे, बाकी तू ही अपने पास रख। तू नहीं जानता, तू क्या कह रहा है। मानव फिर कहता है-प्रभो, ऐसा नहीं हो सकता, मेरा क्या है, सब कुछ तुम्हारा ही है। तब भगवान उसके घर बार, आत्मीय, बंधु एक-एक कर सब कुछ नाश करके, जब उसके पुत्र को भी ले जाते हैं, तब वह मानव रोकर कहता है-प्रभो यह क्या करते हो? अब और नहीं सहा जाता। प्रभु उसे सब लौटाकर कहते हैं-यह लो, मैंने तो पहले ही कहा था, यह तुम्हारा काम नहीं है। इसलिये कृपा-प्रार्थी होना, बड़ी परीक्षा का पथ है, यदि आसक्ति बद्ध न हुआ तो कष्ट नहीं होता। तुम्हारी उम्र कम है, अभी बहुत दिन संग्राम करना पड़ेगा।

‘अभी हमारा देश ठीक नियम से नहीं चल रहा। वैद्यकशास्त्र में लिखा है-नारी चौदह से सोलह वर्ष एवं पुरुष पच्चीस से तीस वर्ष की उम्र में विवाह करें तो मंगलकारी होता है। जरा समय बीतने दो, विवाह करने की क्या अच्छाईयाँ हैं, समझ जाओगे। अभी शोक का समय है। शोक, मोह दैहिक संबंध-जनित होते हैं। संबंध दो प्रकार के होते हैं-दैहिक व आत्मिक। आत्मिक संबंध सहज ही नहीं बनते। एक बार बने तो नष्ट नहीं होते, ये संबंध विरल हैं। जिन दो आत्माओं का एक ही लक्ष्य है, उनमें आत्मिक संबंध स्थापित हो जाता है। दैहिक संबंधजन्य शोक, मोह अस्थायी और अनित्य होते हैं। इसीलिये अशौच काल कहा गया है। अशौच काल न बीत जाने तक दोनों पक्ष से

स्थिरता नहीं आ पाती। अशौच काल बीतने पर क्रमशः संबंध का अनुभव होने लगता है। आत्मीय संबंध में शोक नहीं होता, विरह होता है, जो आशाजनक एवं नित्यकाल तक स्थायी होता है। इस प्रकार का आत्मिक संबंध हो तो मिलन होता है। दूर रहने पर भी दोनों के बीच एक सूत्र-बंधन सा रहता है, उससे सदा ही मिलने का बोध होता है। यह सब देखने से भी भलाई होती है। संसार वस्तुतः असार है। भाई-बहन, सहोदर होकर भी अपने न हुए, तो इस संसार का आकर्षण क्या रहा? वन्य पशु एवं मानव में अंतर ही क्या रहा? पशु तो अपने पड़ोसी की सेवा, सहायता करना नहीं जानता पर मनुष्य तो पड़ोसी के दुःख में दुःखी, व सुख में सुखी हो सकता है। जो निराश्रित की सेवा नहीं करे, वह मनुष्य कहलाने के योग्य नहीं।'

थोड़ी देर बाद, ठाकुर ने पुनः कहा-**'स्त्री जाति को जितना सम्मान दोगे, उतना ही अपने को पवित्र रख सकोगे। जिन्हें सम्मान करते हैं, उन पर कुत्सित् दृष्टि या दूषित दृष्टि नहीं डाली जा सकती। बंगदेश में स्त्री जाति का सम्मान उपहास का विषय बनता जा रहा है। बंबई, महाराष्ट्र, उत्तर पश्चिम में स्त्री जाति का सम्मान अधिक है। इसीसे ऐसे देशों में, वीर उत्पन्न हुए हैं। अंग्रेज स्त्री जाति के सम्मान के कारण, विश्व के बीच एक प्रधान जाति बन बैठे। जहाँ नारी का सम्मान होता है, लक्ष्मीनारायण वहाँ निवास करते हैं, ऐसा पुराणों में लिखा है। अंग्रेजों के बीच लक्ष्मी-नारायण का निवास हो रहा है। अब यदि बाबू लोगों को कहें कि नारियों का सम्मान करो, खिल्ली उड़ाकर हँसेंगे। बृहदारण्यक उपनिषद में वर्णन है, कि जनक की सभा में गार्गी**

के आते ही ऋषियों ने खड़े होकर, उनका सम्मानपूर्वक स्वागत किया। गार्गी को पूर्ण ब्रह्मज्ञान था, वे वस्त्र परिधान रहित-नग्न थी।

'तपस्विनी शाण्डिल्या को देखकर गरुड़ ने सोचा, रात बीतते ही इसे पीठ पर बैठाकर बैकुण्ठ ले जाऊँगा। उसका अभिप्राय शाण्डिल्या जान गई और तुरंत गरुड़ के दोनों पंख गिर गए। इन कथाओं के द्वारा नारी के सम्मान की शिक्षा व उपदेश दिए गए हैं। स्कूल, कॉलेज में आज केवल नौकरी के लिये शिक्षा देते हैं। चरित्र गठन के लिये कौन शिक्षा ग्रहण करता है।'

कल्पनातीत सहानुभूति-ऐसा क्या कोई मनुष्य कर सकता है?

ठाकुर के मुख से सुना था-**'मायातीत न होने तक कोई सुख शांति स्थायी नहीं होती। लक्ष्मी बड़ी ही चंचला है।'** ठाकुर के पास आकर तो सोचा था, जब तक ठाकुर के पास रहूँगा, किसी उत्पात में नहीं पड़ना पड़ेगा, किंतु ठाकुर ने मेरी शांति की अवस्था अधिक दिनों तक नहीं रखी। हाय! आज मैं कहाँ से कहाँ आ पड़ा हूँ। पर्वत से लौटने पर ठाकुर ने मुझे अपने तीन-चार हाथ दूरी में ही आसन लगाने को कहा था। तब से अब तक ठाकुर का अविच्छेद संग प्राप्त कर रहा हूँ। परमपवित्र आनंदमय गुरुदेव के सामने रहकर उनकी पूजा अर्चना में जो आनंद आता है, उसे प्रकट नहीं कर सकता। नित्य नए भाव और अनुभूति में मग्न दिन-रात अभिभूत था। आज कुछ दिन हुए, कर्मदोष से मैंने वह अवस्था खो दी है। मेरा

हृदय श्मशान सा हो गया है। रात-दिन चिंता में जलकर हाय-हाय करके समय व्यतीत कर रहा हूँ। भोर को ठाकुर से दूर रहना पड़ता है, तब डेढ़ घंटे में गंगा स्नान, संध्या, तर्पण, पूजा के लिए पुष्प चयन करता हूँ। दोपहर को ठाकुर स्नान-आहार के लिये जाते और मैं पूजा में व्यस्त रहता हूँ। अपराह्न को मुझे भोजन पकाने, आहारादि के लिये ठाकुर डेढ़ घंटे की छुट्टी देते हैं। इसी के भीतर चूल्हा जलाना, भोजन बनाना, होम, आहार, बर्तन व कमरे की सफाई इतना सब करके ठाकुर के पास यथा समय लौट जाना पड़ता है। चौबीस घंटे में किसी भी समय मैं धर्मानुष्ठान के बीच समय नहीं पाता, भोजन बनाने के पूर्व जरा समय रहता भी है, तो ठाकुर के दर्शनार्थी महिलाओं व गुरुभगिनिओं से घर भर जाता है। मैं नीचे मस्तक हो शालग्राम पर दृष्टि रखने का यत्न करता हूँ। इतना सब होते हुए भी केवल एक दिन सिर्फ दो-तीन मिनट के लिये कुतु पर दृष्टि डालते ही मेरे अस्थिपंजर मानो चूर-चूर हो गये। उसकी छवि अन्तःकरण से नहीं हटा पा रहा हूँ। नियमित साधन-भजन भी करता जा रहा हूँ। ज्वलंत पावकस्वरूप गुरुदेव के श्रीअंग का प्रभाव भी अनुभव कर रहा हूँ-तो भी मेरी यह दशा। भीतर की उत्तेजना का दमन किसी भी प्रकार नहीं कर पा रहा हूँ। खूब तेज सहित प्राणायाम, कुंभक करता रहा, परंतु स्थिर न हो सका। आज शालग्राम पूजा में मन न लगा, बारह बजे के बाद नियम रक्षार्थ किसी तरह पूजा किया। बड़ी उत्तेजना देख, खूब नाम करने लगा, परन्तु उत्तेजना का प्रबल स्रोत नाम, ध्यान, साधन-भजन बहाकर ले गया। क्रमशः उत्तेजना इतनी बढ़ी कि मैं ठाकुर के पास बैठ नहीं पाया। बार बार भीतर-बाहर आने-जाने लगा। अन्त में स्थिर न रह

सका और ठाकुर से बोल पड़ा-कुछ दिन हुए कुतु पर मेरा बड़ा आकर्षण बढ़ गया है। खूब यत्न करके भी अब स्थिर नहीं रह पा रहा हूँ। कब क्या कर बैठूँ, कोई ठिकाना नहीं, अतः आपको बता रहा हूँ। सुनकर ठाकुर मेरी तरफ स्नेहपूर्वक देखकर बोले-**'अभी तुम्हारी जो उम्र है, उसमें ऐसा हो ही सकता है। यह तो कुछ अस्वाभाविक नहीं है।'** कुछ देर रुककर बोले-**'जरा दूर नहीं रह सकते?'**

मैंने कहा-नहीं अब ऐसा नहीं कर सकता। मेरा तो अभिप्राय और पास जाने का रहता है, दूर कैसे रहूँ? मैं तो मौका ढूँढ़ता रहता हूँ। न संभल पाया तो स्वजन-निर्जन की प्रतीक्षा भी न करूँगा। फिर जो होना हो होगा। ठाकुर ने कहा-**'कर्ता भगवान हैं, उनकी इच्छा ही सब है। देखो क्या करते हैं।'** कहकर ठाकुर ने आँखें बंद कर ली। थोड़ी देर बाद ठाकुर ने कहा-'**काम का उत्पात तुम्हारी अपेक्षा मैंने अधिक भोगा है। ब्राह्म धर्म प्रचार करने एक बार पंजाब गया था। मैं धर्मोपदेश दे रहा था। स्थान जनपूर्ण था। पास एक आठ-नौ वर्ष की बालिका बैठी थी। उस समय उसे देखकर मैं ऐसा मोहित हुआ कि इतने लोगों के बीच ही उसे पाने के लिए अस्थिर हो उठा। किसी प्रकार चित्त स्थिर न हुआ। संक्षेप में भाषण समाप्त किया। अंत में बालिका घर चली तो मैं उसके पीछे-पीछे उसके घर के द्वार तक गया। तब इस विषय पर विचार करके मन में इतना पश्चात्ताप हुआ कि रात को रावी नदी के तट पर आत्महत्या करने पहुँचा। सद्गुरु लाभ न हुआ, जीवन क्या इन उत्पातों को भोगने में व्यर्थ जायेगा? ऐसे जीवन का क्या प्रयोजन? यह सोचकर, दो मन वजन का एक पत्थर कमर**

में बांधा, नदी में कूदने ही वाला था कि एक फकीर ने पीछे से मुझे जकड़ लिया एवं उसने कहा-बच्चा घबराओ मत, तुम्हारे गुरु हैं, जो वक्त पर तुम्हें मिल जाएंगे। ऐसा मत करो। इतना कहकर वृद्ध फकीर साहब अन्तर्ध्यान हो गए। उन्हें फिर मैं कहीं न देख पाया। इस घटना के बाद ही मैंने एक गीत लिखा था।'

मलिन पंकिल मने, केमोने डाकिबो तोमाय!
पारे की तृण पोशिते, ज्वलंत-पावक जेथाय!
तुमि पुण्यरे आधार, ज्वलंत अनल सम,
आमी पापी तृण सम, केमोने पूजीबो तोमाय!
शुनि तोमार नामरे गुने, तरे महा पापी जने,
लइते पवित्र नाम, काँपे हे मम हृदय!
अभ्यस्त पापेर शेबाय, जीवन चलिया जाय,
केमोने करिबो आमी, पवित्र पथ आश्रय।
ए पातकी नराधमे तारो यदि दयाल नामे,
बल कोरे केशे धोरे, देओ चरण आश्रय ॥

ठाकुर की बातें सुनकर, मैं अवाक् रह गया। मैंने सोचा-अपने जीवन का दृष्टान्त दिखाकर हमें धैर्य दिलाने के लिये ही ठाकुर इन सब चक्रों में पड़े और घूमते फिरे। अपने भीतर की दुरावस्था बताते हुए मैंने अत्यन्त क्षोभ प्रकट करते हुए कहा--मेरे भीतर की जो दुरावस्था और कुअभ्यास है, उसे देखकर जीवन में कुछ भी हो पायेगा, ऐसी आशा नहीं है। इतने दिन साधन भजन करके मेरा कुछ हुआ है या नहीं यह भी नहीं समझ पाता। ठाकुर मेरी बातें सुनकर धमकाते हुए बोले-**"क्या कहा? कुछ भी नहीं हुआ कहते हो-इतने अकृतज्ञ हो। एक बार सोचकर तो देखो विष्णुलोक, ब्रह्मलोक,**

चन्द्रलोक की सारी सुख-संपदा मिल भी गई तो उसे पाकर कितने दिन रह सकोगे? जो दुर्लभ वस्तु मिली है, वह जब प्रत्यक्ष होगी, तभी समझोगे क्या हुआ-कुछ अभाव नहीं रह गया। यह स्वयं प्रत्यक्ष न देखकर कहना ठीक नहीं। एकदम निर्भय हो गए हो। केवल तुम ही क्यों, जिन्होंने भी सद्गुरु का आश्रय पाया है, वे सभी निर्भय हो गए हैं। अब यह जान लो, यदि नरक भी जाओ, तो वहाँ भी सीने से लगाए रखने के लिये कोई है। मैं अपनी सारी शक्ति से तुम सबको रोक रखा हूँ। यदि जरा भी ढील दूँ, तो सब नर-नारी, पलभर में 'जयराम जयराम' कहकर राह में निकल पड़ेंगे।"

ठाकुर की बातें सुनकर मेरा मन शीतल हो गया। सदा उनकी बाते मन में उठने लगी। आहार के बाद रात को नींद नहीं आई। ठाकुर की असाधारण सहानुभूति के विषय में सोचकर स्तब्ध रह गया। ठाकुर की चौदह वर्षीया नवयुवती कन्या, सभी ओर से विवाह की बातें चल रही हैं, ऐसे में मैं उनके परिवार में रहकर, उस पर पाशविक अत्याचार करने को सचेष्ट हूँ, जानकर भी ठाकुर जरा भी उद्विग्न या विचलित नहीं हुए। वे मुझे अनायास ही यहाँ से हटा दे सकते थे। नानी माँ से यह भी कह सकते थे कि ब्रह्मचारी के चाल-चलन पर जरा नजर रखना। उन्होंने यह सब कुछ भी नहीं किया। किसी को इस बारे में बिंदुमात्र जानकारी न होने दिया, उल्टे साधारण रीति के विपरीत, अपने जीवन की घटनाएँ बताकर, मुझे शांत कर दिया। ऐसा आज तक कोई ऋषि-मुनि, देवी-देवता भी क्या कर पाये हैं? ऐसा सोचते-सोचते सारी रात बीत गई। काम भावना या साधन भजन की दुरावस्था मैं एकदम भूल गया। बार-

बार केवल यही सोचता रहा ठाकुर ने यह क्या कर दिया! आज तक जो किसी ने न किया हो, आज ठाकुर ने वह कर दिया। धन्य हो दयालु ठाकुर! तुम्हारी इस असीम कृपा, सहानुभूति, हमदर्दी को मैं किसी भी अवस्था में न भूलूँ-यही आशीर्वाद दो। इस दिन के बाद कुतु के प्रति कुभाव बिल्कुल अन्तर्हित हो गया।

ठाकुर की प्रार्थना: तुम ही सब हो।

आज मध्याह्न के समय ठाकुर की कापी में उन्हीं के हाथों से लिखी एक सुंदर प्रार्थना और दो एक उपदेश लिखा हुआ देखा। ठाकुर ने लिखा है-**'हे प्रभो! तुम्हारी कितनी करुणा है-इस जीवन में न भूल सकूँगा। हे ठाकुर! तुम ही सब हो। सारा ब्रह्माण्ड तुम्हारी ही रचना है। तुम ही पिता-माता, भाई-बहन, तुम ही प्रभु, तुम ही दास, तुम ही पति-पत्नी, राजा-प्रजा सब कुछ हो। चोर, डाकू, साधु, बदमाश सभी तुम हो। सारी प्रशंसा, स्तुति, प्रेम सब कुछ तुम्हारा है। तुम तो बाजीगर हो, जादू के खेल दिखाते हो। तुम ही सार हो। तुम ही वस्तु, तुम्ही प्रयोजन भी हो। इहलोक, परलोक, स्वर्गलोक, यमलोक, सत्यलोक, जनलोक, तपलोक, ब्रह्मलोक, पितृलोक, बैकुण्ठ और गोलोक सभी कुछ तुम हो-मैं कुछ भी नहीं जानता-असार हूँ, कुछ नहीं हूँ। तुम ही मेरे घरबार हो, तुम ही मेरे दर्पण। तुम मधुर हो, तुम मधुर हो, तुम मधुर हो। मधुरं। मधुरं। मधुरं। मधुरं।।'**

इसके बाद ठाकुर ने लिखा है-**'भगवान ने मुझसे कहा-मेरी वस्तु, मैं जहाँ मेरी मर्जी रखूँगा, चाहे नरक में, चाहे स्वर्ग में। इस पर तू कुछ नहीं कह सकेगा।'**

‘स्वयं कुछ भी निश्चित नहीं करना चाहिये। भगवत् इच्छा पर निर्भर होकर ही रहना चाहिये। अपने ऊपर भार ग्रहण करने में ही कष्ट है। जो भी घटना भगवत् इच्छा से घट जाए, उसका विशेष प्रयोजन हुआ करता है।’

‘किसी एक मनुष्य को विशेष रूप से प्रेम करना धर्म साधन का प्रधान अंग है जब तक भीतर रोग है, उसके निवारण का यत्न करना पड़ेगा। अपनी कोशिश से निवारण न हो पाया, तो अपना कोई दायित्व नहीं रह जाता। जरा चिंतन करके देखने पर ही देखा जा सकता है कि जगदीश्वर स्वयं ही सारी सृष्टि के खेलनहार है। पंचभूत, ग्रह-उपग्रह, सागर, नदी, पर्वत, वन, उपवन, मरुस्थल, वृक्षलता, कीट-पतंग, पशुपक्षी, सब कुछ बनकर स्वयं आनंद ले रहे हैं। पिता-माता, भाई-बहन, स्त्री-स्वामी, पुत्र-कन्या, वेश्या, बदमाश, चोर, डाकू, पण्डित, साधु, राजा-प्रजा, उपास्य-उपासक और मुक्तिदाता सब कुछ वे ही हैं।’

साधन का क्रम एवं उसकी उपादेयता।

आज ठाकुर से मैंने पूछा-ब्रह्मचर्य के जो नए-नए नियम आप प्रतिवर्ष देते हैं, उनके साथ-साथ पहले के नियमों का भी पालन करके चलना होगा? साधन का क्या क्रम है?

ठाकुर ने लिखकर बताया-**“‘क ख’ का अभ्यास करके पढ़ना सीखा, बाद में जो पुस्तक पढ़ता हूँ तो उन सबमें तो ‘क ख’ वर्ण हैं ही। इनका त्याग करके तो पढ़ नहीं पाते। धर्म के सम्बन्ध में भी उसी प्रकार है। एक प्रणाली लेकर चलना पड़ता है। पहले तो यह देह ही मैं हूँ, इस ज्ञान का भेद करके शरीर तत्त्व जानने के**

लिए प्राणायाम, न्यास, मुद्रा आदि करना पड़ता है। जो नहीं करते वे देह व आत्मा क्या है, इसका प्रत्यक्ष ज्ञान लाभ नहीं कर पाते। उसके बाद सृष्टि-तत्त्व जानने के लिए, देवताओं के ज्ञान लाभ करने हेतु, देवोपासना करनी होती है। सृष्टि तत्त्व जानने पर ब्रह्मज्ञान आता है। तब-'यह सब कुछ भी नहीं' ऐसा बोध आता है। मैं और ब्रह्म एक ही हैं या भिन्न यह जानने के लिये योग है। योग का अर्थ प्राणायाम आदि नहीं है। योग है-आत्मा में परमात्मा का दर्शन। यथार्थ योग साधित होने पर भगवान किस तरह जगत् में विराजमान हैं, यह प्रत्यक्ष दर्शन होता है। तब इहलोक-परलोक एक हो जाता है। पूर्वकाल के ऋषियों ने कठिन परिश्रम करके इस प्रकार के क्रम से साधन प्रणाली प्राप्त किया था। क्रम से न कर सकने पर जितना साधन करोगे, मात्र उतने का ही फल पाओगे। उसके आगे की अवस्था नहीं जान पाओगे, अब तो सब कुछ विश्रृंखलतापूर्ण हो गया है। कुछ भी स्वाभाविक रूप से नहीं होता। मिट्टी में बीज रोपने से अंकुरण होता है, यह कृषक का गुण नहीं है, सृष्टि कर्ता के नियम का गुण है। साधन क्रम भी उसी प्रकार है। मनुष्य की प्रकृति के भीतर जो भी धर्मभाव हैं, उन सबका पोषण इस साधन से होता है। इसलिये ईश्वरोपासना, पराधर्म सभी इसके अन्तर्गत हैं-इसी में सब कुछ है।"

राखाल बाबू का होम करने का आग्रह: देवताओं की आकृति का दर्शन करना।

आज इस मकान के मालिक, लाखुटिया के जमींदार, ठाकुर के

पुराने भक्त, मित्र एवं शिष्य श्रीराखालचन्द्र रायचौधरीजी ने ठाकुर से कहा-ब्रह्मचारी जैसा होम करते हैं, बड़ा सुंदर लगता है, मेरी भी इच्छा उसी प्रकार होम करने की होती है, क्या मैं होम कर सकता हूँ?

ठाकुर-**'क्यों नहीं जरूर कर सकते हो, परन्तु पहले प्रायश्चित करके उपवीत ग्रहण करना पड़ेगा। वैसे ही धारण कर लेने से काम नहीं चलेगा। त्रिसंध्या न करने पर होम करने का अधिकार नहीं होता।'** ठाकुर की बातें सुनकर राखाल बाबू और कुछ नहीं बोले? ठाकुर के पदचिन्हों पर चलकर एक समय राखाल बाबू ने ब्राह्मधर्म लिया था। अब ठाकुर की कृपा से ही वे दूसरी ही तरह के हो गए हैं। प्रतिदिन वे ब्राह्मणोचित गायत्री जप, पितृपुरुषों का तर्पण आदि नियमित रूप से, श्रद्धा सहित करते हैं। मेरे नित्यक्रियादि, शालग्राम पूजन देखकर वे परम संतुष्ट होते हैं एवं मुझ पर विशेष सहानुभूति रखते हैं। उनकी असाधारण सहानुभूति और स्नेह-ममता से, इस दुर्दिन में भी मेरे मन में आराम है। राखाल बाबू ने अपने घर के चारों ओर, अन्तरिक्ष में एक ज्योतिर्मय, गोलाकार चक्र दर्शन किया है और इसके बारे में ठाकुर से आकर उन्होंने कहा।

वह सुनकर ठाकुर ने लिखा-**'वह देवताओं की आकृति है। स्थिर दृष्टि से, विशेष रूप से देखने पर इसके भीतर उस देवी-देवता की मूर्ति भी दिखाई पड़ती है। खूब स्थिरता, एकाग्रता जरुरी है।' साधन करते समय राखाल बाबू धूप, गुग्गुल, राल जलने की सुंगध भी पाते हैं। ठाकुर से कहने पर उन्होंने कहा-'कोई महापुरुष आने पर ऐसी सुंगध आती है। यह महात्माओं**

की परीक्षा है, इसे प्रकट करना उचित नहीं। प्रकट कह देने पर कुछ दिनों के लिये बंद हो जाता है। फिर बाद में वैसा होता है। महात्माओं के अंग के सुगंध से मन प्रफुल्लित हो उठता है। क्रमशः वे मन पर आधिपत्य विस्तार करते हैं, अंत में उपकार करते हैं। जब घटना हो, तभी प्रकाश न करके, बाद में किया जाय तो हानि नहीं होती।'

राखाल बाबू की महत्ता: उद्वेग में आराम: देवकुमार।

अन्य दिनों की तरह ग्यारह बजे ठाकुर स्नान आहार के लिये भीतर गए। तब महेन्द्र बाबू ने ठाकुर का कमरा साफ करना शुरु किया। ठाकुर के आसन के तीन ओर ढेरों फूलमालाएँ, पत्ते थे। महेन्द्र बाबू ने वह सब उठाकर फेंका। बाद में आसन का कुछ भाग उठाकर झाड़ू से सफाई करने लगे। उस समय राखाल बाबू यह देख रहे थे। उन्होंने कहा-यह क्या कर रहे हैं, झाड़ू ठाकुर के आसन से स्पर्श हो रहा है। इतना सुनते ही महेन्द्र बाबू कूदकर झाड़ू हाथ में लिए आए और राखाल बाबू को चटाचट जोर-जोर से कई बार मारकर, फिर अपना कार्य करने लगे। राखाल बाबू को बड़े जोर से लगा पर वे कुछ न बोलकर, आँसू पोंछते हुए ऊपर चले गए। आहार के बाद ठाकुर आसन पर लौटे। यह बात उनके सामने भी कही गई, ठाकुर ने सुनकर महेन्द्र बाबू के इस आचरण पर अत्यन्त मार्मिक क्लेश प्रकट करते हुए कहा-**'महेन्द्र बाबू का इस प्रकार का आचरण करना अत्यन्त ही अनुचित है। राखाल बाबू चाहते तो दरबान को आज्ञा देकर उनसे अच्छा प्रतिशोध ले सकते थे।**

पर उन्होंने ऐसा नहीं किया, इसी से राखाल बाबू के असीम धैर्य और स्वभाव की महत्ता स्पष्ट होती है।' राखाल बाबू पर इस तरह के व्यवहार से सभी गुरुभाई बड़े दुखी हुए। महेन्द्र बाबू वैसे बुद्धिमान और विज्ञ पुरुष हैं, फिर जिसके घर रहना उसे ही झाड़ू से मार देना, इस विचित्र साहस का कोई कारण मेरी समझ में नहीं आया।

सुकियास्ट्रीट आकर गुरुभ्राताओं का संग करने का मुझे अवसर ही नहीं मिलता। सारे दिन-रात में ठाकुर से दो-चार बातें ही करता हूँ, बाकी समय मौन ही रहता हूँ। एक भी व्यक्ति से बात नहीं कर पाता। भगवान गुरुदेव की कृपा से कुछ दिन हुए मुझे बातें करने के लिए एक उत्तम साथी मिल गया है। राखाल बाबू के पुत्र श्री देवकुमार यद्यपि अत्यन्त बालक अवस्था के हैं, तो भी उसका साथ मुझे दिनोंदिन मुग्ध कर रहा है।

दोपहर को ठाकुर के भीतर जाने पर देवकुमार मेरे पास आ जाता है। शालग्राम को प्रणाम करके मेरे सामने बैठकर ऐसे स्नेहपूर्वक देखता है, कि मैं उसे खींचकर अपने पास बिठाए बिना नहीं रह पाता। अधिक बातें नहीं करता, पर जब तक रहता है, शरीर, माथे या पैरों पर हाथ फेरता रहता है। मुझसे सटकर बैठने में उसे बड़ा आराम मिलता। मैं भी शालग्राम पूजा छोड़, उसे लिपटकर खूब प्यार करने में बड़ा आनंद पाता हूँ। उसके निर्मल, कोमल अंग के सुखद स्पर्श से मेरा देह-मन शीतल और चित्त प्रफुल्लित हो उठता है। जिस दिन देवकुमार के आने में कुछ विलम्ब होता है, मेरा मन छटपटाने लगता है। भाग्यवान देव कुमार का जन्म ग्यारह माघ, माघोत्सव के शुभदिन में हुआ। उसके

अन्नप्राशन में ठाकुर ने अपने हाथों से उसके मुख में अन्न खिलाया और प्रेम से उसका नाम देवकुमार रखा था। देवकुमार का चेहरा जैसा सुंदर, सुश्री और लावण्ययुक्त है, स्वभाव भी अत्यन्त कोमल और ममतापूर्ण है। उसकी आयु सात वर्ष की है, पर मुझे उसके संग से बड़ा ही आनंद मिलता है।

हरिनाम से प्रेम लाभ का क्रम।

आज कुछ गुरुभ्राताओं के प्रश्न के उत्तर में ठाकुर ने हरिनाम से प्रेम लाभ के क्रम के बारे में लिखा-**'(१) पाप बोध (२) पाप कर्म में पश्चात्ताप (३) पाप में अरुचि (४) कुसंग से घृणा (५) साधुसंग में अनुराग (६) नाम में रुचि, ग्राम्य कथनों में अरुचि (७) भावोदय (८) प्रेम।'** ठाकुर ने इस विषय में और भी बहुत कुछ कहा। वह सब लिख न सका। उनके मौन अवस्था की कापी से जो मिला उतार कर रख रहा हूँ।

अद्वैतवादी फकीर: जातिभेद किसे कहते है।

आज ठाकुर कुछ गुरुभ्राता-श्री महेन्द्र मित्र, श्रीधर घोष, श्री रेवती मोहन सेन आदि को साथ लेकर बाहर निकले। मिर्जापुर स्ट्रीट जहाँ सर्कुलर रोड से जा मिलता है, उसके कुछ पूर्व की ओर एक मस्जिद के ऊपरी दुमंजिले में जा पहुँचे। वहाँ एक मुसलमान फकीर निर्जन में अपने भजन में तल्लीन थे। ठाकुर सशिष्य उन्हें प्रणाम कर उनके पास बैठे। कुछ देर बाद फकीर साहब ने कहा-इस मस्जिद में जैसे बातों की प्रतिध्वनि होती है, विश्व ब्रह्माण्ड भी वैसे ही ईश्वर की एक प्रतिध्वनि है। ठाकुर कुछ न कहकर केवल चुपचाप फकीर साहब का दर्शन करने लगे। फिर रास्ते पर निकलकर

फकीर साहब की प्रशंसा करने लगे एवं गुरुभ्राताओं से ठाकुर ने कहा-**‘फकीर साहब अद्वैतवादी हैं। जगत् एवं ईश्वर एक है, यह ज्ञान दृढ़ होना, कोई मामूली बात नहीं। ऐसी उपासना कलियुग के मनुष्यों के लिए कठिन है। इसलिए केवल नाम का अवलम्बन प्रत्येक उपासना की व्यवस्था है।’**

घर लौटकर महेन्द्रबाबू के वर्तमान जातिभेद के संबंध में पूछने पर ठाकुर ने लिखा-**‘ब्राह्मण वंश में जन्म लेकर कोई शूद्र प्रकृति एवं शूद्र कुल में जन्म लेकर भी कोई ब्राह्मणोचित प्रकृति का होता है। किंतु यह भेद समझने की शक्ति सर्वदर्शी महापुरुषों को छोड़, दूसरों में नहीं रहती। इसलिए जीव के लिये समाजगत भेदभाव मानकर चलना ही कर्तव्य है। ब्राह्मण वंश में तीस प्रतिशत शूद्र जन्म ग्रहण कर सकते हैं, किंतु शूद्र वंश में ब्राह्मण बीस प्रतिशत भी नहीं हो पाते। अतएव धर्म रक्षार्थ, विशुद्धता रक्षार्थ-जन्मगत प्रकृति को ही मान लेना निरापद है। संपूर्ण निरापद होना चाहो तो स्वपाक आहार उत्तम है।’**

कुछ रुककर ठाकुर ने लिखा-**‘जाति केवल ब्राह्मण, शूद्र ही नहीं। स्त्री, पुरुष, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, क्षिति, अप, तेज, मरुत, व्योम ये सब भी जातियाँ हैं। यह जातिभेद जब चला जाएगा, तभी जाति भेद न रहा समझो। शुकदेवजी को जातिभेद न था पर वेद व्यास को जातिभेद बोध था। मात्र ब्राह्मसमाज जाने एवं उपवीत त्याग कर देने से यथार्थतः ब्राह्म समाज जाना नहीं होता। वस्तुतः धर्मार्थी होकर जाना चाहिये। जिसके-तिसके पास खा लेने से ही जातिभेद चला गया ऐसी बात नहीं है-समबुद्धि होना चाहिये, यही जातिभेद न रहने का अर्थ है।’**

विभिन्न शास्त्रों में गंगास्नान से जीव की गति।

एक विख्यात शास्त्रज्ञ पण्डित ने ठाकुर से पूछा-शरीर-मन एवं आत्मा के कल्याणकारी आहार-विहार संबंधी उपदेश हमें कहाँ मिलेंगे?

ठाकुर ने लिखा-**'सांख्ययोग में कपिल मुनि ने पंचतत्त्वों को विभाजित किया है। उनका समस्त मन, शरीर, इन्द्रियों को चौबीस तत्त्वों का निरुपण करके-शरीर, मन के साथ क्या संबंध है यह बताया है। आत्मा से शरीर, मन का क्या संबंध है, बताकर आहार-विहार सब ठीक-ठीक रूप से बताया है। श्रीमद् भागवत् के तृतीय स्कंध में इस संबंध में कई बातें हैं। विष्णु पुराण, मार्कण्डेय पुराण, योगवाशिष्ट, महाभारत शांतिपर्व, पातर्जल दर्शन, मैत्रेय उपनिषद्, श्रीमद् भगवत् गीता, तंत्र, रुद्रयामल इत्यादि ग्रंथों में इस विषय में कई बातें लिखी हैं। वह सब देखकर आहार आदि का अभ्यास करना कर्तव्य है।'**

आजकल हम कई गुरुभ्राता एक साथ अत्यन्त प्रातःकाल गंगास्नान के लिए जाते हैं। जगन्नाथ घाट में एक साथ नहाने में क्या आनंद आता है वह कहा नहीं सकता। आज घर आकर गुरुभ्रातागण ठाकुर से पूछे-गंगा स्नान से क्या वस्तुतः जीव उद्धार होता है?

ठाकुर ने लिखकर उत्तर दिया-**"यदि शास्त्र मानो तो, 'गंगा गंगेति यो ब्रूयात् योजनानां शतेरपि। मुच्यते-सर्व पापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति।।' गंगा से चार सौ कोस के बीच जो 'गंगा।**

गंगा' उच्चारण करके स्नान करता है, वहाँ से उद्धार होकर विष्णुलोक गमन करता है। जिसको ऐसा दृढ़ विश्वास है, उसे अवश्य ही ऐसी प्राप्ति होगी। गंगा हिमालय के अति उच्चशिखर से उतरती है। इसके जल में अनेक औषधियाँ मिली हुई हैं। गंगा की असीम महिमा है। गंगा की मिट्टी सारे बदन में मलकर, गंगाजल से स्नान करना चाहिये।"

शिष्य के अपराध के लिये क्षमा-भिक्षा: दोषदृष्टि दोषनीय है।

आज एक गरीब ब्राह्मण के आकर कुछ भिक्षा माँगने पर एक गुरुभ्राता ने उसे गाली देकर भगाने की कोशिश की। ठाकुर ऊपर थे, कुछ बातें सुनकर वे बड़े विचलित हो उठे, ठाकुर ने ब्राह्मण को ऊपर बुलवाकर उनके पैरों में पड़कर शिष्य के अपराध के लिये क्षमा माँगी। ब्राह्मण को भिक्षा देकर, संतुष्ट करके विदा किया।

हमारे एक विशिष्ट गुरुभ्राता के किसी अपराध किये जाने की कोई बात ठाकुर के कानों तक पहुँची। ठाकुर ने सुनकर लिखा-**'इन सब उत्कट दोषों के भार से ही तो वे उठ नहीं पा रहे हैं। उनके भीतर कुछ असामान्य गुण भी हैं। तुम सबके भीतर कुछ न कुछ उत्तम गुण हैं। केवल ये गुण रहते तो, तुम सब इतने दिनों में न जाने कहाँ से कहाँ चले जाते-जगत् तुम्हें पकड़ ही नहीं पाता। किन्तु भगवान की ऐसी चतुराई है, कि कुछ दोषों का बोझ सिर पर डालकर, उन्होंने तुम्हें रोक रखा है, तुम्हें उड़ जाने नहीं दे रहे हैं। किसी के दोषों की ओर दृष्टि न रखकर, उनके गुणों की ओर ध्यान देना अच्छा है।'**

जातिस्मर बालक

हमारे भवानीपुर के गुरुभ्राता श्री सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय एम.ए.बी.एल. कालीघाट के श्री सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त नामक एक छः-सात वर्षीय लड़के को लेकर ठाकुर के पास आए। लड़का आयु में छोटा, अतः चंचल होते हुए भी ठाकुर के पास आकर स्थिर बैठ गया और ठाकुर के दर्शन करता रहा। ठाकुर उसे स्नेहपूर्वक सामने बिठाकर नाना प्रकार की बातें पूछने लगे। उसी समय थियोसोफिस्ट श्री योगेन्द्रनाथ घोष, सब जज एवं श्री चण्डीचरण सेन, मुन्सेफ आदि कुछ प्रसिद्ध व्यक्ति ठाकुर के दर्शनार्थ आए। उस समय वे ठाकुर से कई प्रश्न पूछने लगे। ठाकुर ने उनसे कहा-**'आपको जो भी पूछना है। पूछिये, यह बालक आपके प्रश्नों का उत्तर देगा।'** पहले तो वे सज्जन कुछ दुखी हुए, परन्तु कुछ जटिल प्रश्नों की मीमांसा उस बच्चे के मुख से सुनकर हैरान रह गए। उन प्रश्नोत्तरों को सुनकर मैं तो कुछ भी समझ न पाया। एक सज्जन ने पूछा-भगवान अब अवतीर्ण होने पर किस प्रकार कार्य करेंगे? बालक सुरेन्द्रनाथ ने कहा-अब जो अवतार होंगे, उनका केवल ज्ञान या केवल भक्ति से काम नहीं चलेगा। अब बुद्धदेव का ज्ञान और महाप्रभु की भक्ति दोनों को लेकर कार्य करना होगा, अन्यथा उनकी बातें मान्य नहीं होंगी।

एक वैष्णव ने पूछा-बाबा भक्त बड़े हैं या भगवान? बालक ने कहा-बड़ा, छोटा कहना हो तो भक्त ही बड़ा है। वैष्णव ने कहा-भगवान असीम, अनन्त हैं, उनसे बड़ा कोई कैसे होगा? बालक ने कहा-जिन्हें आप असीम-अनन्त कह रहे हैं, उन्हें भी ससीम करके

हृदय में आबद्ध करके रखने वाला छोटा कैसे होगा?

बच्चे की इस प्रकार की उत्तम बातें सुनकर सभी अवाक् रह गये। ठाकुर ने कहा-**'बालक जातिस्मर है अर्थात् इसे पूर्व जन्मों का स्मरण है। भविष्य में देश का विख्यात व्यक्ति बनेगा, किंतु इस प्रकार जातिस्मर अधिक दिनों तक नहीं रहेगा।'**

गुरुवाक्य उल्लघंन से सत्य-पालन: समस्या।

हमारे गुरुभ्राता पोस्ट ऑफिस के डिप्टी कन्ट्रोलर जनरल श्री उमाचरण दास महाशय ने ठाकुर से आकर कहा-आपने एक बार मेरे घर पदार्पण करने को कहा था। मेरी हार्दिक इच्छा है एकदिन आपको घर ले चलूँ। आप कब चलेंगे? उनकी बात सुनकर ठाकुर कुछ देर चुप रहे। फिर उन्होंने कहा-अच्छा, आप जिस दिन कहेंगे, उसी दिन चलूँगा। उमाचरणजी ने एक दिन तय करके ठाकुर को बताया और चले गए। घर जाकर अच्छे खासे उत्सव का आयोजन करके वे यथासमय ठाकुर को लेने आए। ठाकुर अपराह्न को निकलकर, पहले कालीघाट माँ काली के दर्शनार्थ गए, फिर मनोरंजन बाबू के अनुरोध पर उनके घर गए। मनोरंजन बाबू का पुत्र चार-पाँच डिग्री ज्वर से पीड़ित था, विकार की सी अवस्था थी। ठाकुर उसके माथे व शरीर पर हाथ फेरकर चले आए और उमाचरणजी के घर पहुँचे। श्री मुकुन्ददास का कीर्तन आरंभ हुआ। ठाकुर अधिक देर न रह सके। उन्हें प्रबल ज्वर आ गया, वे लौट आने को व्यग्र हो उठे। उमाचरणजी कुछ जलपान कराना चाहते थे, ठाकुर मात्र एक गिलास शरबत लेकर चले गए। उन्हें एक सौ पाँच डिग्री ज्वर चढ़ आया, वे अवसन्न से हुए रहे। तीन दिन तीन रात

तक ज्वर चढ़ा रहा, ठाकुर ज्वर में बेहोश रहे, फिर धीरे-धीरे अपने आप स्वस्थ हो उठे। इस ज्वर से ठाकुर को इतना कष्ट हुआ था कि कोई साधारण व्यक्ति होता तो उसकी मृत्यु हो जाती। रोगमुक्त होकर ठाकुर ने कहा-**'कहाड़ी में घी डालकर खौलाया जाय तो जैसा लगे वैसा शरीर जल रहा था। अत्यन्त असह्य क्लेश होने पर, शरीर से निकल गया। परन्तु मुझे लगा देह का भोग, भोग कर लेना ही ठीक है। देह से अलग रहना ठीक नहीं। इस प्रकार करने पर तीन बार भोगना पड़ा। पहले शरीर की पीड़ा से मन दुखी होता था। अब तो देखता हूँ शरीर और आत्मा दो पृथक् वस्तुएँ हैं। जैसे हिमालय के पास जाने से शीतलता का अनुभव होता है वैसे ही शरीर की पीड़ा का आभास मात्र ही होता है, भोग नहीं भोग तो शरीर का होता है।'** इस प्रकार अचानक विकट भोग का हेतु पूछने पर ठाकुर ने कहा-**'इस समय परमहंसजी ने एक निश्चित तिथि तक आसन त्याग करने को मना किया था, संभवतः यह भोग कटा देने के लिए ही कहा हो। उमाचरण के आकर कहने पर, मैंने सोचा अब क्या करूँ? परमहंसजी के आदेश का पालन करूँ या वचन के पालन से सत्य रक्षा करूँ। सत्य पालन करने का निश्चय करके मैं उमाचरण के घर गया। किंतु गुरुवाक्य का उल्लघंन करके, सत्यपालन करना भी अपराध है-अब मुझे गुरुदेव ने यही समझाया।'**

मुहर्रम में भिस्ती द्वारा ठाकुर का जलदान: अहिंसा ब्राह्मण का धर्म।

मुसलमानों के मुहर्रम पर्व की घटना बड़ी हृदयविदारक है। इसे

सुनकर कोई भी आँसू नहीं रोक पाता। हजरत मुहम्मद महान् के नाती हसन और हुसैन सपरिवार सेना सहित करबला प्रांत में विपक्षी सेना के षड्यंत्र में फँसकर बिना पानी के प्यासे रहकर मृत्यु मुख में पड़े। निष्ठावान मुसलमान आज भी उनकी याद में रो-रोकर छाती पीटते और हसन हुसैन-हसन हुसैन चिल्लाते हुए राह पर चलते हैं। उनकी प्यास की शांति के लिए रास्ते पर पानी डालते हुए आगे बढ़ते हैं। ठाकुर बरामदे से यह सब देखकर हसन-हुसैन की तृप्ति के लिये पानी मँगाकर, भिस्ती से पानी रास्ते पर डाले। हसन-हुसैन की मृत्यु का वर्णन सुनकर मन की क्या दशा हुई, नहीं बता सकता। एक गुरुभ्राता ने ठाकुर से पूछा-क्या हर जाति का धर्म अलग तरह का होता है?

ठाकुर ने लिखा-**'अहिंसा ब्राह्मणों का धर्म है। जो ब्राह्मण भगवत् भक्त हैं, अहिंसा उनका धर्म है। क्षत्रियों का धर्म राज्य शासन है। मारकाट करते हुए, कई जन्म घूमकर, जब ब्राह्मण होगा, तब उसकी वैसी अवस्था होगी। मनुष्यत्व जितना उन्नत होगा, उसी अनुरूप उसका कार्य भी साधारण मनुष्यों से भिन्न होगा। धर्मसाधन भी दो प्रकार के हैं। जो प्रवृत्ति के अधीन है, उनके लिए प्रवृत्ति धर्म, जिसे शाक्त धर्म नाम दिया गया है। श्रीमद्भागवत् में निवृत्ति धर्म को ही वैष्णव धर्म कहा है।'**

बलि के अभिमान से वामन अवतार।

आज बातों ही बातों में ठाकुर ने वामन-अवतार की बात कापी में लिखी-**'भगवान वामन अवतार लेकर मानव आत्मा रूप बलि नामक असुर के यज्ञ में गये। मनुष्य संसार में धर्म करते हुए**

अत्यन्त अभिमान प्रकट करता है। मैं दाता हूँ, मैं ज्ञानी हूँ, मैं भक्त हूँ, मैं सभी इन्द्रियरूपी देवताओं का राजा हूँ। मानव के इस अहंकार को देखकर परमात्मा, आत्मा के आत्मा-वामन बनकर त्रिपाद भूमि की याचना करते हैं। त्रिपाद भूमि सुनने में तो साधारण है, किंतु यह जीवों का सर्वस्व है। सत्त्व, रज, तम इन तीन पदों पर अधिकार होते ही भगवान विराट् मूर्ति धारण करके जीवों का सर्वस्व अधिकार कर लेते हैं तथा सदा उसके साथ-साथ रहते हैं। वामन देव बलि राजा के द्वार के द्वारपाल बनकर पाताल में रहे। जो इस प्रकार भगवान को आत्मसमर्पण करे, भगवान उसके लिये सदैव व्यग्र रहते हैं। जीव को चिंता नहीं करनी पड़ती।'

मनोहरदास बाबाजी के अखाड़े में संकीर्तन: सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक नृत्य।

श्री मनोहरदास बाबाजी ने आकर हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए ठाकुर से कहा-प्रभु कृपा करके इस कंगाल के जीर्ण अखाड़े में एक बार पदधूलि देनी पड़ेगी। बाबाजी बड़े विनयी तथा महाप्रभु के अनन्य भक्त हैं। ब्राह्मधर्म के भूतपूर्व आचार्य श्री केशवचन्द्र सेन ने जब ब्राह्मसमाज में मृदंग करताल बजाकर संकीर्तन का प्रवर्तन किया, तो वे इन्हें ही ले गये थे। तभी से ये ठाकुर से परिचित हैं। ठाकुर बाबाजी के अनुरोध पर, सहमत हो गए। यथा समय वहाँ जाने के लिए तैयार हुए। कई गुरुभ्राता पहले से ही निमंत्रित हो जा पहुँचे। राखालबाबू अपने लैण्ड्रो गाड़ी में ठाकुर को ले चले। अखाड़े से कुछ दूर कई वैष्णव दस मृदंग लेकर संकीर्तन की इच्छा से रास्ते

पर ही ठाकुर की प्रतीक्षा कर रहे थे। ठाकुर के पहुँचते ही कीर्तन वाद्य शुरु हो गये। ठाकुर गाड़ी से उतरकर साष्टांग प्रणाम करके **'जय शचीनंदन,जय शचीनंदन!'** कहते हुए कीर्तन स्थल पर जा पहुँचे। सभी ने अपनी-अपनी शाल, चादरें आदि उत्तम परिधान ठाकुर के चलने के पथ में बिछा दिया। ठाकुर का दर्शन करके बाबाजी ने भावाविष्ट होकर गाना आरंभ किया।

बुझी प्रेमदाता निताई एशेछे, नोइले प्राण जुड़ावे किशे.......।

गीत के दो पद गाने पर ही सब भावविभोर हो उठे। विह्वल होकर सब नृत्य करते हुए बाबाजी के अखाड़े में प्रवेश करने लगे। ठाकुर, बाबाजी के विग्रह दर्शन व साष्टांग प्रणाम करके भूमि पर लोटने लगे। बड़ी देर तक दस मृदंग बजाते हुए संकीर्तन होता रहा। भावावेश में कई लोग संज्ञा-शून्य हो गए। संकीर्तन के अंत में हरिलूट का बताशा प्रदान करके, ठाकुर शिष्यों सहित घर लौट आए।

एक गुरुभ्राता ने ठाकुर से कहा-संकीर्तन में भावोच्छ्वास से कई लोग नृत्य करते हैं। कभी कभी वह बड़ा अप्रिय लगता है। ठाकुर ने लिखा-**'कीर्तन में तीन प्रकार के भाव होते हैं-सात्त्विक भाव आये तो उपस्थित लोगों का भी उपकार होता है। राजसिक भाव से कभी तो उपकार, तो कभी हानि हो। सकती है। तामसिक भाव आने पर उपस्थित लोगों को भी उत्पात सा बोध होता है। नृत्य करने वाले के पैर लगने से कई गिरकर लंगड़े हो जाते, घर की वस्तुएँ नष्ट होती, बच्चे डरकर चिल्लाने लगते हैं। कोई-कोई भक्तिभाव प्रकट करने के लिए शरीर संकुचित करते हैं। ऐसा भाव अभी वैष्णव समाज में प्रबल है। शरीर संकुचित करना, नृत्य करना, वाक्य संकोच करना आदि।**

भक्तिभाव से जो भी होता है, वह सुंदर होता है। जो दिखावटी है, दृष्टिकटु हो जाता है। शांत, दास्य आदि भावों को छोड़ संकीर्तन में जो भाव होता है, वह नामोन्मत्तता है। मत्त न होकर नाचने में दोष है, जैसे मद्यपान न करके मतवाला होना।'

परमेश्वर साकार या निराकार?

एक सज्जन ने विशेष आग्रहपूर्वक ठाकुर से पूछा-परमेश्वर साकार हैं या निराकार?

ठाकुर-**'शास्त्र में है--वे साकार हैं एवं वे ही निराकार भी हैं। यह विश्व ब्रह्माण्ड कुछ भी न था। परमेश्वर ने अखिल ब्रह्माण्ड की सृष्टि अपनी शक्ति द्वारा की। सृष्टि के पदार्थ जड़ एवं चेतन हैं। क्षिति, अप, तेज, मरुत, व्योम तथा उनसे बने सभी पदार्थ जड़ हैं। कीट-पतंग, पशु-पक्षी, मनुष्य ये चेतन हैं। सृष्टिकर्ता इन दो प्रकार के पदार्थों से स्वतंत्र हैं। उनकी तुलना किसी से नहीं होती, इसीलिये वे निराकार हैं। निराकार का अर्थ शून्य नहीं। वे सच्चिदानंद हैं, उनका रूप है, वह रूप नित्य रूप है--सच्चिदानन्दमय रूप है। ज्ञान नेत्र, भक्ति नेत्र प्रस्फुटित होने पर परमेश्वर के नित्य रूप का दर्शन किया जा सकता है। जब तक उनके नित्य रूप का दर्शन न कर लो, तब तक साकार या निराकार कुछ भी कहो, तुम्हारी कल्पना या सुनी हुई बातें होगी। चिरकाल से भक्त साधक भगवान का दर्शन करके अपार आनंद भोग करते आ रहे हैं। उस मधुर रूप को जिसने एक बार भी देखा हो, वह भूल नहीं पाता। बगीचे का माली बगीचे के स्वामी के आने पर जैसे दूर खड़ा रहता है, उसी प्रकार हृदय**

उद्यान में दीनबंधु प्रभु के उपस्थित होने पर, अहंरूपी माली दूर जाकर हाथ जोड़े खड़ा रहता है। उसके मुख से निकलता है- प्रभो मैं दास हूँ। प्रभु के आगमन से माली वंदना करता है, तो उसके रोम-रोम भक्तिभाव से रोमांचित हो प्रभु की स्तुति करते हैं, नयन उनके चरण धुलाते हैं।'

दीक्षाप्रार्थी ब्राह्म व्यक्ति के प्रति उपदेश।

ब्राह्मसमाज के एक सज्जन ने आकर ठाकुर से दीक्षा प्रार्थना की। ठाकुर ने लिखा--**'ब्राह्म समाज की प्रणाली से उपासना करके अब तक यदि तृप्ति न मिली हो तो, जिन्होंने इस प्रणाली से तृप्ति लाभ किया है, उनसे पूछना चाहिए। अचानक अन्य साधन प्रणाली ग्रहण करना उचित नहीं। महर्षिजी से पूछिये। धर्म साधन किसी प्रकार की चतुराई या कौशल नहीं कि उसके अनुसार कार्य करते ही हाथोंहाथ फल पा सकें। धर्म साधन करने के लिये जगत् में नाना प्रकार की प्रणालियाँ है, उनमें से किसी एक प्रणाली से कोई शीघ्र, कोई देर से फल पाता है। अत्यन्त विलम्ब देखकर कोई कोई हताश होकर अन्य प्रणाली का अनुसरण कर, इसे छोड़ देते हैं। भगवत् कृपा बिना किसी प्रणाली द्वारा सहज ही कुछ नहीं हो पाता। जब आपने एक पथ का अनुसरण किया है तब अचानक दूसरा कुछ करना उचित नहीं। हमारे क्रिया-कलाप की भलीभाँति आलोचना व परीक्षण करके देखिये किसी के मुख से सुनकर एकाएक उसमें प्रवेश करना उचित नहीं।'**

कुछ देर रुककर ठाकुर ने पुनः कहा-**"हम जो साधन करते हैं,**

वह स्वप्न नहीं प्रत्यक्ष घटना है। किंतु 'समय' न हो तो कोई इसे नहीं पा सकता? यदि आपकी भूमि तैयार है, आपका समय हो जाय, तो आप जहाँ भी रहें, घर बैठे पा सकते हैं। कुछ होने मात्र से ही भूमि तैयार हो जाने का तात्पर्य नहीं है। इसका अर्थ पृथक् है। साधन पाने पर वह समझा जा सकता है, अन्यथा नहीं समझा जा सकता।"

उस सज्जन के दीक्षा के लिये अत्यन्त व्याकुलता प्रकट करने पर ठाकुर ने समय का निर्देश देकर कहा-**'बाद में आइएगा, अभी मेरा शरीर स्वस्थ नहीं है। शरीर, मन, आत्मा स्वस्थ रहे--तभी शक्तिसंचार भी विशुद्ध रूप से हो पाता है। दीप प्रज्वलित रहे, तो उससे ही हजारों दिए जलाये जा सकते हैं। किंतु तेल, बाती, तेल पात्र सभी कुछ है, परन्तु दीप ही न जल रहा हो तो, एक भी दिया नहीं जल पायेगा। अग्नि सर्वत्र है, ऐसा कहने पर तो दिया नहीं जलेगा। जिस उपाय से दीप जले वह जब तक न करो, दीप नहीं जल पाता। मानवीय शक्ति भी ऐसी ही है।'**

इस साधन में ब्राह्म समाज के लोग अधिक क्यों है? शक्ति संचार।

एक गुरुभ्राता ने ठाकुर से कहा-हमारा यह साधन तो ऋषिमार्ग, सनातन मार्ग है। ब्राह्मसमाज के लोगों का इस साधन के प्रति आकर्षण अधिक क्यों हो रहा है। लगता है, ब्राह्मसमाज के लोग ही इस साधन में अधिकांशतः हैं।

ठाकुर ने कहा--**'जिन्होंने पूर्वजन्म में साधन द्वारा ब्रह्मज्ञान का आभास पाया था, वे ही ब्राह्मसमाज से होकर आए हैं। ब्राह्म**

समाज के बारे में मुझे लगता है, कि कुछ अच्छे वृक्ष के बीज एकत्र हुए हैं। उनके मध्य कुछ अनुपम वृक्ष हैं, जिन्हें अंकुरित करके, बीज से वृक्ष निकालने की जो प्रक्रिया है, वह नहीं हो रही है।'

गुरुभ्राताओं ने पूछा--छोटे बच्चे जो धर्म का कुछ नहीं जानते, जिन्हें अक्षर ज्ञान तक न हुआ हो, ऐसे बालकों को साधन देना--यह बात कुछ समझ में नहीं आती।

ठाकुर ने लिखा-**'शक्ति सभी के भीतर है, किसी भी समय उसे जागृत कर दिया जा सकता। है? नारदजी ने शुकदेव को गर्भावस्था में रहते ही शक्ति संचार किया था। आँखों की पीड़ा होने पर, आँखों पर ही दवा प्रभाव डालेगी। उसी प्रकार जिस पर शक्ति संचार किया जाय, नाम उसी पर क्रिया करता है। गुरु को स्मरण रख सकें, ऐसी अवस्था में साधन देना ही उचित है।'**

प्रश्न-शक्ति संचार क्या है?

ठाकुर ने लिखा-**'ईश्वर की शक्ति सभी के बीच है। एक महापुरुष की शक्ति द्वारा उस शक्ति को, जिसे परमात्मा या कुलकुण्डलिनी शक्ति कहा जाता है, जागृत कर देना ही शक्तिसंचार कहलाता है। यह शक्ति सामान्यतः निद्रित होने का यत्न करती है। जो सदा श्वास-प्रश्वास में नाम जप करके उन्हें पुनः सोने नहीं देते, उनमें यह शक्ति अच्छी तरह खेलती है।'**

ठाकुर ने बातचीत के बीच फिर लिखा--**'अबकी बार कुछ लोगों को कई प्रकार से कार्य करना होगा। किंतु कोई स्थिर नहीं हो रहा है। अब महापुरुषगण स्वयं कुछ नहीं करेंगे--उपयुक्त शिष्यों द्वारा करवाएंगे।'** ठाकुर ने इस संबंध में और भी बहुत सारी

बातें कही कि महापुरुषों ने अभी से कई प्रकार से कार्य करना आरंभ कर दिया है।

महाप्रभु क्या पुनः अवतीर्ण होंगे? महाप्रभु के शिष्य आदि के संबंध में कथोपकथन।

एक गुरुभ्राता ने ठाकुर से पूछा-क्या इस युग में महाप्रभु और भी दो बार अवतीर्ण होंगे? ठाकुर ने लिखा-**'चैतन्य भागवत् में वृन्दावन दासजी ने लिखा है, महाप्रभु और दो बार शचीमाता के गर्भ में जन्म ग्रहण करेंगे। इस समय के वैष्णव इसका यह अर्थ लगाते थे कि और दो कलियुगों में वे शचीमाता की कोख से जन्म ग्रहण करेंगे। इसलिये जब श्रीनिवास आचार्य, रामचन्द्र कविराज एवं नरोत्तम ठाकुर ने हरिनाम से सारे देश को प्लावित कर दिया था तो**

उन्हें तीन प्रभुओं का आवेश अवतार कहा गया। आवेश,आविर्भाव व प्रकाश-इसी कलियुग में हो रहे हैं, और भी होंगे। श्री वृन्दावन में गौर शिरोमणि महाशय ने एक दिन मुझे बुलाकर कहा-अब महाप्रभु के अवतार बताकर बहुत सी अफवाहें फैलेंगी, इन सबसे सावधान रहिएगा। कुछ दिन पूर्व पाबना जिले में इस प्रकार सुना गया। कोई तो कहते हैं-यदा यदा हि धर्मस्य .... इत्यादि। जितने भी अवतार हुए हैं, वे उस युग में एक ही बार हुए हैं। सत्य युग में मत्स्य, कूर्म, नृसिंह अवतार आदि द्वापर में कृष्ण, त्रेता में श्री रामचन्द्र केवल एक एक बार ही अवतीर्ण हुए। इसी प्रकार कलियुग में महाप्रभु श्री कृष्ण चैतन्य एक ही बार अवतीर्ण हुए हैं। यह कलियुग जितने

दिन वर्तमान रहेगा, उतने दिनों तक वे जीवों का उद्धार करते रहेंगे। उनकी क्या मृत्यु हुई है, जो फिर से जन्म ग्रहण करेंगे। जब भी जहाँ वे कृपा करेंगे-कहीं आवेश, आविर्भाव या प्रकाश-इन तीनों भावों से कार्य करेंगे एवं कर भी रहे हैं।'

प्रश्न पूछा गया-महाप्रभु के क्या कोई शिष्य थे?

ठाकुर ने लिखा-**'हाँ उनके कुछ शिष्य थे। साढ़े तीन लोगों की बात कही जाती है। वे केवल उनके शिष्य ही नहीं थे, उन्हें महाप्रभु ने अन्तरंग साधन एवं सामान्य साधन से कुछ अलग साधन प्रणाली सिखाई थी।'**

अमियनिमाईचरित ग्रंथ में शिशिर कुमार घोषजी ने महाप्रभु को पूर्णब्रह्म भगवान के रूप में स्वीकार नहीं किया है। किंतु चैतन्य चरितामृत ग्रंथ जिसका अवलम्बन करके शिशिर बाबू ने लिखा है-महाप्रभु में समय-समय पर भगवान का आवेश होता था, यह पुस्तक शिक्षित समाज में काफी प्रचारित हुई। इसके पाठ से सभी अब महाप्रभु से संबंधित ग्रंथ पाठ एवं अनुसंधान कर रहे हैं। ठाकुर ने सुनकर खेद प्रकट करते हुए लिखा-**'जो महाप्रभु की उपासना करते हैं, वे इनका स्पर्श भी नहीं करेंगे। जगत् के सब एकस्वर में आवेश-आविर्भाव कहते रहने पर भी, महाप्रभु के उपासक भक्त इस बात पर ध्यान न देंगे, और न ही सुनेंगे। जो चैतन्य मंत्र से साधना करते हैं, उन सब वैष्णवों के ध्यान में एक भावमूर्ति मुद्रित होती है। जैसे हृदय में भाव मूर्ति मुद्रित होती है, वैसे ही बाहर की कुछ उद्दीपन की अवस्थाएँ है, जैसे नवद्वीप धाम। अब यदि उनकी मूर्ति से मेल न खाए या धाम नवद्वीप न हो तो ये वैष्णव नया कुछ ग्रहण नहीं करेंगे। जो ऐसी बातें उड़ा रहे हैं, वे**

श्री चैतन्य महाप्रभु के यथार्थ उपासक नहीं है।'

कुछ देर रुककर ठाकुर ने पुनः लिखा-**'कोई तो महाप्रभु की एक दो किताबें लिखकर ऐसा कहते हैं-कि हमने ही श्री गौरांग का उद्धार करके जगत् में प्रचारित किया है। इससे अधिक धृष्टता और क्या होगी? ओस की बूँद पर सूर्य का प्रकाश पड़ा और कहा जाय कि सूर्य अंधकार में था, ओस की बूँद ने उस सूर्य को जगत् के सामने प्रकट किया। पहले सार्वभौम भट्टाचार्य महाप्रभु की निंदा करते थे। महाप्रभु के एक संगी ने कहा-भट्टाचार्य, अभी मैं महाप्रभु के बारे में जो कह रहा हूँ, कुछ दिनों बाद तुम भी वही कहोगे। वस्तुतः ऐसा ही हुआ।'**

आज महाप्रभु और उनके भक्तों के बारे में तरह-तरह की बातें होने लगीं। मुकुन्द व दामोदर को अनुशासित करने के बारे में ठाकुर ने लिखा-**'मुकुन्द को वास्तव में दण्डित नहीं किया गया था। दूसरे लोग मुकुन्द को नहीं समझ पाते थे, उनकी निंदा किया करते थे कि मुकुन्द में किसी भी बात की दृढ़ता नहीं है। यह लोगों का भ्रम था। यही दर्शाने के लिये महाप्रभु ने मुकुन्द से कहा-कि लाख जन्म बाद तुम्हें प्राप्ति होगी-यह सुनकर मुकुन्द 'पा गया, पा गया', कहकर ताली बजाकर नाचने लगा। तब महाप्रभु ने सबको समझाया कि मुकुन्द के समान दृढ़ता किसी में नहीं है। कई बार दामोदर वैष्णवों का अपमान कर देता एवं रस में विघ्न डाल देता, इसीलिये उसे नवद्वीप भेज दिया था। जब श्रीनिवास पुरुषोत्तम धाम गए, महाप्रभु के अन्तर्धान से स्वरूप दामोदर आदि को मृतप्राय देखा।'**

शालग्राम पूजा में बाधा की सृष्टि: लोगों की विषदृष्टि।

पूजा की छुट्टी लगभग समाप्त हो गई। ढाका, बरिशाल, फरीदपुर आदि स्थानों से जो सब गुरुभाई ठाकुर के संगलाभ की इच्छा से आए थे, सभी अपने-अपने स्थानों को चले जाएंगे। इतने दिन सबके साथ आनंदपूर्वक बिताए। मेरा भी संभवतः यहाँ अधिक दिनों तक रहना न हो पायेगा। शालग्राम पूजा में अब तक बड़ा आनंद पाता था, पर ग्रहदोष से अब धीरे-धीरे कुछ उत्पात आकर उस आनंद एवं शांति को नष्ट कर रहे हैं। कई लोगों की विषमय दृष्टि ने मुझे उत्तप्त कर दिया है। अब मैं शालग्राम पूजा करता हूँ, कुसंस्कार संपन्न हो गया हूँ, अतः ब्राह्म मित्र-गण अब मुझे पहले जैसा नहीं देखते, पास भी नहीं फटकते, किंतु मुझे सुना-सुनाकर आपस में मेरे कुसंस्कार के प्रति खेद प्रकट करते रहते हैं। जो कट्टर हिंदू एवं ठाकुर से दीक्षा प्राप्त किए हैं-वे तो और भी भयंकर हैं। ठाकुर के सामने शालग्राम की आरती करता हूँ, अतः मैं ठाकुर से भी शालग्राम को बड़ा मानता हूँ, ऐसा सोचकर मुझ पर वक्र दृष्टि डालते हैं। यह सब देख-सुनकर ठाकुर ने दो तीन दिन मुझसे कहा- **'ब्रह्मचारी तुम काशी, गया या अयोध्या जाकर एकान्त में साधन करो। इससे ठीक साधन चलेगा, लाभ भी बहुत होगा। इस स्थान में भीड़भाड़ और लोगों की दृष्टि के बीच तुम्हारे साधन-भजन की वैसी सुविधा न होगी।'**

इस समय मेरे साधन की अवस्था सुंदर चल रही थी। ठाकुर की कृपा से सदा ही सरस भाव हृदय में रहता था। अतः ठाकुर की बातें

सुनकर भी, विशेष कोई हानि होगी-ऐसा नहीं सोचा। ठाकुर से मैंने कहा-जब तक आपके साथ रहकर ठीक-ठीक साधन कर सकूँ और किसी जगह जाने की इच्छा नहीं है। विशेष विघ्न उपस्थित होने पर अन्यत्र चला जाऊँगा।

ठाकुर मुझे बार-बार सावधान करते हुए कह चुके थे-**'जिस भाव से पूजा करते हो किसी और के पास प्रकट मत करना। भजन सदा गोपनीय रखना चाहिए। प्रकट कर देने पर हानि होती है।'** अतः शालग्राम पूजा में इष्टदेव की ही पूजा करता हूँ, यह कोई जान न पावे। अपने साधन-भजन की बात यहाँ-वहाँ न कहने का अभिमत सर्वत्र प्रचलित है।

अब सुनने में आ रहा है गोस्वामीजी के पास उन्हीं का एक शिष्य शालग्राम पूजा करता चला आ रहा है-इस पर बाधा देना तो दूर, गोस्वामीजी उसे प्रश्रय देकर, मूर्त्तिपूजा को बढ़ावा दे रहे हैं-इस बात को लेकर साधारण ब्राह्म लोगों ने एक कमेटी बुलाई है। जो गुरुभ्राता ब्राह्मसमाज के अन्तर्गत रहे हैं, वे भी इस कमेटी में योगदान देने को बाध्य हैं। वे कमेटी में ठाकुर के विरुद्ध कई बातें सुनकर भी किसी प्रकार का विरोध न कर सके। कारण उन्होंने अपनी आँखों से ठाकुर को शालग्राम की आरती में घंटा बजाते देखा है। अतः वे गुरुभाई बहुत क्लेश पा रहे हैं। उनकी इस अशांति का मूल मैं हूँ। अतः दिन-प्रतिदिन वे मुझ पर खिन्न हो रहे हैं। जब मेरी निष्ठा भंग करने के उद्देश्य से वे कई तरह की बातें करते हैं, तो एक ही जवाब से उनका मुँह बंद कर देता हूँ। मैं कहता हूँ-तुम्हारे गुरुदेव की आज्ञा से ही शालग्राम पूजा करता हूँ, अपने मन से कुछ नहीं करता। यह सुनकर उन्हें मार्मिक दुःख होता है, पर मुझे कुछ

कह नहीं पाते। जैसे-जैसे ब्राह्म एवं कट्टर हिंदुओं की कोपदृष्टि मुझ पर पड़ती वैसे-वैसे ठाकुर मुझे शालग्राम पूजा करने पर सहानुभूति तथा शालग्राम की महिमा दर्शाते हुए निष्ठापूर्वक पूजा करते रहने में उत्साह दिलाते हैं। एक दिन एकांत में उन्होंने मुझसे कहा-**'किसी बात पर ध्यान मत दो। किसी की बात का जवाब न देकर निष्ठापूर्वक शालग्राम की पूजा अपने मन से करते रहो। लोगों की बात की गणना ही मत करो।'**

जन साधारण की खिन्नतापूर्ण दृष्टि मुझे भले ही कितनी भी उत्तेजित करती रहे, ठाकुर के पलभर के स्निग्ध दृष्टि से मैं शीतल हो जाता। ठाकुर के सस्नेह दृष्टि का स्मरण करके सारा दिन परमानंदपूर्वक अश्रुपात करते हुए समय व्यतीत होता जा रहा है।

योग संकट।

ठाकुर की कृपा से इस समय मुझे नाना प्रकार की अवस्थाओं का अनुभव होने लगा। कभी-कभी नाम करते हुए नाभिस्थल में ताप का बोध होता है। फिर वह ताप बढ़कर नाभि के भीतर जलन आरंभ हुआ। कभी यह जलन नाभि से मेरुदण्ड पर जाकर लगता-तब वहाँ एक प्रकार का दाह अनुभव होता जो बड़ा ही क्लेशदायक है। जिस दिन ऐसा होता है, उस दिन सारा शरीर मानो जलता रहता है। मैं किसी प्रकार स्थिर नहीं रह पाता। शरीर मन बड़ा चंचल हो उठता है। भीतर की जलन से अपने ही हाथ-पाँव काट खाने को जी करता है। कभी तो अपने आप पर आघात करता हूँ। कभी बाहर जाकर ताप निवारण के लिये पंखा झलता हूँ। पर किसी भी उपाय से इस यंत्रणा के निवारण में समर्थ नहीं हो पाता।

शारीरिक जलन के साथ मानसिक उद्वेग भी बढ़ता है। बड़े ही कष्ट की अवस्था है। किसी दिन नाम की गति खूब-द्रुत होती। नाम के साथ कंधे से आँखों तक दोनों ओर की शिराएँ खिंच जाती हैं। कभी माथा खूब गरम होता और आँखों में दर्द होता है।

आज्ञाचक्र में ध्यान रखकर गायत्री जप के समय उस स्थान पर सुरसुरी का अनुभव होता है। फिर उस स्थान में जलन शुरु हो जाती। वह बढ़कर ऐसा प्रतीत होता मानो आग लगा दी गई हो। जप न करने पर जलन धीरे-धीरे कम होता। ठाकुर ने एक बार पहले ही कहा था-**'नाम करते-करते एक समय ऐसा आता है कि शरीर व मन में नाना प्रकार की जलन होती है। यह साधन की ही एक अवस्था है। इस समय शरीर आग में जलने की भाँति जलने लगता है। कभी-कभी मुँह, कान, आँख, हाथ, पैर व नाड़ियाँ खिंचने लगती है। यह क्लेश सहज नहीं। यंत्रणा के मारे लोग साधन-भजन छोड़ देते हैं। इसे योग-संकट कहा जाता है। सावधानीपूर्वक यह समय अच्छी तरह बिता दिया जा सके, तो ठीक है। इस समय मिश्री का शरबत, कच्चे नारियल का पानी इस तरह के ठंडे पदार्थ लेने से राहत मिल सकती है। कभी शरीर ठंडा पड़े या अवसन्न हो जाय तो घी गर्म करके, सेंधा नमक सहित पान करना चाहिये। इस प्रकार यंत्रणा की शांति होती है। योग संकट की अवस्था एक बार कट जाने पर और कोई भय नहीं रह जाता। साधन करने पर यह एक बार सबको भोगना पड़ता है। पहले ऋषि-मुनिगण शिष्यों के देह, मन की शुद्धि के लिये तुषानल की व्यवस्था करते थे। अब वह संभव नहीं, इसलिए नामाग्नि से ही दग्ध करके वह कार्य संपन्न करना**

पड़ता है।'

मेरी भी जलन की दशा प्रारंभ होने पर ठाकुर एक-एक दिन घी गर्म करके, तो कभी मिश्री का शरबत पिलाने की व्यवस्था करते थे। कभी-कभी नाम छोड़कर सो जाने को बाध्य करते थे। ये सब कष्ट उपस्थित होने पर ठाकुर जैसा आदेश करते, ठीक वैसा करने पर उस कष्ट का निस्तार हो जाता। जब मेरी जलन की यह अवस्था शुरु हुई तो मन में यह अभिमान जाग उठा, कि शायद मेरी भी योग संकट की अवस्था आई है। अतः योग आरंभ होने के बाद की अवस्था है, अब मैं योगी बन गया। भीतर ही भीतर ऐसा अभिमान उत्पन्न होने लगा।

दूसरी ओर, शालग्राम पूजा देखकर कुछ गुरुभ्राता सोचते थे कि दिनोंदिन मेरी अवनति होती जा रही है। उनके अनुसार अभी मुझे राजमार्ग को ग्रहण करने में काफी देर है, अभी मेरी वैसी अवस्था नहीं हुई है। विधिवत् शालग्राम पूजा करते हुए राग उत्पन्न होने पर, यह सब पूजा छूट जायगी। उन सबने विधिगत कार्य पूर्व जन्म में ही संपन्न कर लिया है, अतः वे अब बाहरी पूजा की अपेक्षा नहीं करते। यह सब कहकर कुछ लोग मुझे खूब तंग करते थे। शालग्राम पूजा के समय जब अश्रु बहने लगते, तो मुझे लगता कि वे यह देखें कि मैं नीरस लकड़ी नहीं चबाता, शालग्राम पूजा में रस भी पाता हूँ। ये शालग्राम पूजा के विद्वेषीगण निकट आते ही मैं और अधिक भाव लाने और आँसू बहाने का प्रयत्न करता, पर भाव बढ़ना तो दूर रहा और भी शुष्क हो जाता हूँ। गद्गद् मुखमंडल में खिन्नता की छाप पड़ने लगती। इस प्रकार मेरी प्रतिष्ठा पर उन्होंने मूसलाघात किया। ठाकुर ने एक दिन मुझसे कहा-**'प्रशंसा पाने की इच्छा से तुम्हारे**

भीतर के भाव सूख जा रहे हैं। सावधान रहना।' मेरी वर्तमान, दुरावस्था का यह भी एक कारण है।

तृतीयतः ठाकुर ने मेरे शालग्राम पूजा के वास्तविक रहस्य या गुरुपूजा का तत्त्व गोपनीय रखकर यथाविधि पूजा करने को कहा था, पर मैं ऐसा कर न सका। जब कई लोग मुझे कई प्रकार की गंदी बातें पूजा के विरुद्ध कहते रहते और मुझे अत्यन्त क्लेश होता तब उनका मुँह बंद करने के लिये मैं भी अपने पूजा का रहस्य बता देता। एक दिन तो एक गुरुभ्राता ने कह दिया-तुम जिस शालग्राम की पूजा करते हो उस पर मैं पेशाब कर देता हूँ। मैंने कहा-तुम्हारी जो इच्छा है करो, मेरी तो इच्छा पूजा करने की होती है, सो वही करता हूँ। मेरे ठाकुर को न पहचानकर, यह सब कहने पर तुम्हारा अपराध ही हो रहा है। तुम जिनकी पूजा करते हो, गुरु कहते हो, उन्हीं की आज्ञा से शालग्राम शिला में उन्हीं की पूजा किया करता हूँ। एक ने कहा-तुम जिसकी पूजा करते हो वह रास्ते में पैरों तले कुचला जाने वाला एक पत्थर मात्र है। ऐसी पूजा मैं तुच्छ मानता हूँ। अत्यन्त अज्ञानी के लिये ऐसी बहिरंग पूजा-साधन है। इस पर मैंने कहा-इस शिला को मैं भी पत्थर के अलावा कुछ नहीं मानता, पर उसके अणु-परमाणु में जो चैतन्य शक्ति ओत-प्रोत है-गुरुदेव पूर्ण अवयवों से इनमें विराजमान हैं, जिनकी तुम पूजा करते हो, मैं भी उन्हीं की पूजा करता हूँ। अतरंग और बहिरंग समझने में तुम्हें अभी देर है। नाम साधन भी एक बहिरंग साधन है। ठाकुर के मुख से सुना है, एक दिन आम वृक्ष के नीचे गेण्डारिया आश्रम में उन्होंने कहा था, **'ऐसी अवस्था आती है, कि नाम भी छूट जाता है।'** अन्तरंग एकमात्र भगवान हैं साधन-भजन आदि भगवान को लाभ करने के

उपाय-सभी बहिरंग हैं। जिसका जिससे कल्याण होगा, गुरुदेव के आदेश में भला बुरा कुछ नहीं होता।

कोई-कोई गुरुभाई उत्तेजित होकर कहते हैं-'गुरोर्सन्निहिते यस्तु पूजयेदन्य देवतां, स याति नरके घोरे सा पूजा विफला भवेत्' आपकी ऐसी कुमति क्यों हुई? गुरु के पास पत्थर की पूजा क्यों? इससे आपका अपराध हो रहा है। यह सब देखकर हम भी अपराधी हो रहे हैं। रात बीतते ही घंटे-घड़ियाल बजाकर गोसाईंजी को उद्विग्न करते हो-हमें यह सहन नहीं होता। आप सावधान हो जाये। हम गुरु छोड़ और कुछ नहीं जानते। मैंने बाध्य होकर कहा-मैं घंटे आदि स्वेच्छा से नहीं बजाता। ठाकुर ही मुझे ऐसा करने को विवश करते हैं। शालग्राम को मैं गुरु छोड़ कुछ और नहीं समझता। शालग्राम में मैं अपने गुरुदेव की ही पूजा आरती किया करता हूँ। ठाकुर ने मुझसे स्पष्ट कहा है-**'शेष रात्रि शालग्राम की आरती करना होगा, शेष रात्रि चार बजे। यदि मैं अस्वस्थ होकर उस समय कभी सो भी जाऊँ तो भी-आरती बन्द न करना। घंटे की ध्वनि से मुझे कोई परेशानी नहीं होती।'** ठाकुर की यह बात मानकर ही मैं नियमपूर्वक शालग्राम की आरती कर रहा हूँ। आप लोग असंतुष्ट होते हो तो भी ठाकुर का आदेश मैं नहीं टाल सकता। इस प्रकार प्रतिदिन गुरुभ्रातागण अप्रिय, कटु वाक्य कहकर अपना रोष व्यक्त करने लगे। यह सुनकर कि मैं तो शालग्राम में गुरुदेव की ही पूजा करता हूँ वे लज्जित और निरुत्तर हो गये। मैं यह महाअपराध कर रहा हूँ, तब यह सोच भी न पाया। ठाकुर ने यह पूजा और भाव खूब गोपनीय रखने को कहा था। वह न करके मैंने यह अपराध किया। सारे अपराधों की अग्नि एक साथ जल उठी।

साधन-भजन नियमित रूप से करने पर भी उस ज्वलन से मैं बच न पाया। गुरुभाईयों की तीक्ष्ण दृष्टि से जलन दिनोंदिन बढ़ने लगी। मैं संकट में पड़ गया। साधन-भजन की अवधि और भी बढ़ा दिया किंतु जो आग जल उठी थी, वह लपटें फैलाती हुई मेरे सारे शरीर को दग्ध करने लगी। जब तक आशा थी, धीरज भी रहा। धीरे-धीरे निराश और असह्य हो उठा। भीतर हाहाकार, पीड़ा, यंत्रणा से विक्षिप्त हो उठा। अब किसी प्रकार नित्य क्रियादि संपन्न हो पाते हैं। पाँच सात मिनटों के लिए भी मुझे शांति नहीं मिलती। भीतर की ज्वाला जैसे-जैसे बढ़ने लगी, नित्य क्रियादि उतने ही संक्षिप्त होने लगे। आसन में बैठने की इच्छा नहीं होती थी। नीरसतापूर्वक ठाकुर की ओर देखने में आनंद नहीं आता, बल्कि खीज सी लगती। एक दिन रात को तीन बजे ठाकुर से मैंने कहा-भीतर की यंत्रणा मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ। मेरा साधन, भजन, ध्यान, नाम सब छूट गया है। दिन-रात जला जा रहा हूँ। अब शायद नास्तिक हो जाऊँगा। मैं अब क्या करूँ। ठाकुर ने कहा-**'नास्तिक नहीं होवोगे, लेकिन ऐसे समय में अन्यत्र चले जाना ही श्रेयस्कर है। यहाँ लोगों की दृष्टि तुम्हें शुष्क कर दे रही है। यहाँ जब तक रहोगे और भी शुष्कता बढ़ेगी। लोगों की दृष्टि बड़ी ही भयानक होती है। देखा नहीं है, हरे-भरे जीवित वृक्ष भी लोगों की दृष्टि से सूख जाते हैं।'**

मैंने कहा-मैं यह सब कुछ नहीं समझता। हजारों लोगों की रोष दृष्टि भी मुझे क्यों शुष्क करेगी? मैं तो आपकी दृष्टि में सर्वदा हूँ। गुरुभ्रातागण भी अब शालग्राम में इष्टदेव की ही पूजा करता हूँ, यह सुनकर निरुत्तर हो गए हैं। अब मेरी पूजा में श्रद्धा भक्ति नहीं रह गई है। नाम में भी शुष्कता है, ध्यान छूट गया है।

ठाकुर-**'शालग्राम में चतुर्भुज विष्णु का ध्यान करो। शालग्राम का ध्यान शास्त्र में जिस प्रकार करने की विधि है-वैसा तुम नहीं करते?'** मैं-नहीं मैं तो और किसी का ध्यान नहीं करता। अपने इष्टदेव का ही ध्यान करता हूँ और कुछ करने की मेरी प्रवृत्ति ही नहीं होती। ठाकुर-**'तब तो तुम मनुष्य की पूजा करते हो। शालग्राम में मनुष्य की पूजा करना यह तो अपराध है। शालग्राम में यथा शास्त्र चतुर्भुज विष्णु का ध्यान करना चाहिये। तुम्हें पहले ही स्थान बदलने को कहा था, पर तब तुमने मेरी बात नहीं मानी। अब जितने दिन यहाँ रहोगे और भी हानि होती रहेगी। कल से यथाशास्त्र शालग्राम की पूजा व ध्यान करना।'**

पूजा का भेद प्रकट करने पर कठोर अनुशासन: शालग्राम का त्याग।

ठाकुर की बात सुनकर मानो मुझ पर वज्रपात हुआ। मैंने सोचा यह क्या हुआ-पलक झपकते ही ठाकुर ने तो मानो युगप्रलय कर डाला। तभी समझ गया कि शालग्राम में अपने ठाकुर की पूजा करने की बात यत्र-तत्र कहने के कारण ही ठाकुर ने ऐसा किया। हाय! मैंने ठाकुर की पूजा का विशेष अधिकार पाया था। लोक-निंदा से अपने को बचाने के लिये, ठाकुर की पूजा का रहस्य सबसे बताकर, भविष्य की अशांति की सृष्टि कर रहा था। ठाकुर ने सहज ही सब ओर संभाल लिया। पर मैं तो मारा गया, यह स्पष्ट समझ गया। ठाकुर ने आज बड़े तेजपूर्वक मुझसे अन्यत्र जाने को कहा है। मैं तो ठाकुर की बात सुनकर अत्यन्त ही अस्थिर हो उठा। कल ही यहाँ से चले जाने का निश्चय कर लिया। हाय! यदि दो चार दिन पहले ही

यहाँ से चला जाता तो इन सब संकटों में न पड़ता और ऐसे धक्का खाकर, हटना न पड़ता। जिस दिन ठाकुर ने मुझे इस तरह डाँटा, उसके दूसरे दिन प्रातः ही नित्य कर्मादि संपन्न करके तैयार हुआ और अपना अभिप्राय राखाल बाबू से कह सुनाया। उन्होंने मेरी आड़ में ठाकुर से कहा-ब्रह्मचारी बड़ा क्लेश पा रहे हैं, संभवतः वे यहाँ नहीं रहेंगे। यदि आप कहें तो उनके निर्जन में रहने की व्यवस्था तिमंजिले में कर सकता हूँ। आप इस विषय में क्या कहते हैं। ठाकुर ने कहा-**'उसका एकांत में रहना ही ठीक है। मनुष्य की दृष्टि अच्छी नहीं होती। लोगों की दृष्टि पड़कर लड़का सूख गया है। ऐसी शुष्क अवस्था में और कुछ दिन रहे तो अनायास ही वह आत्महत्या कर बैठेगा। सर्वदा एक ही पर अनेकों की दृष्टि तीव्रता से पड़ती रहे, तो किसी की क्या क्षमता कि ठीक रह सके। मानव की ऐसी भयानक दृष्टि है कि हरे वृक्षलता भी सूख जाते हैं। मैंने इसीलिये इसे पहले ही अन्यत्र चले जाने को कहा था। नादान है, तब समझा नहीं, अब संकट में पड़ गया है। तिमंजिले में उसकी इच्छा हो तो रह सकता है, मुझे आपत्ति नहीं है।'**

ठाकुर जब राखाल बाबू से यह सब कह रहे थे-मैं तब बरामदे में खड़ा सब सुन रहा था। ठाकुर से शालग्राम में चतुर्भुज विष्णु के ध्यान करने की बात सुनकर मेरा मन धू-धूकर जलता जा रहा था। स्वजन या निर्जन से मेरा क्या होनेवाला है, ठाकुर के पास मैं चतुर्भुज विष्णु का ध्यान करूँ, मुझसे यह नहीं होगा। यद्यपि मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष-लता, स्थावर-जंगम, विष्णु-महेश, चतुर्भुज, द्विभुज, षड्भुज सभी मेरे भगवान गुरुदेव की चैतन्य शक्ति

के ही आलोड़न से विभिन्न भाव लिए हुए हैं,उनके ही स्थूलत्व का विकास है। आकार अलग होने पर भी मूल सबका एक ही है, तथापि ठाकुर के जिस रूप से मेरे चित्त के आनंद, आराम एवं शांति का विशेष संबंध है, उसे छोड़कर अन्य ग्रहण करना मेरे लिये कष्टदायक है। मन को प्रबोध दिलाने के लिये मन ही मन कहने लगा-किसी भी वस्तु की पूजा से भगवान गुरुदेव की ही पूजा होती है, शायद यही बताने के लिये ही ठाकुर ने मुझे विष्णुमूर्ति ध्यान करने को कहा होगा। ऐसा करने पर ठाकुर की उपासना छूट गई, ऐसा नहीं। ऐसा नहीं लगता कि मुझे ठाकुर ने कोई सजा दी हो, परन्तु क्या करूँ वह मेरे रुचि व साध्य के परे है।

दोपहर ग्यारह बजे ठाकुर के स्नानाहार के लिए जाने पर, अपना सामान आसनादि लेकर झामापुकुर, भांजे के घर गया। आते वक्त पूज्य राखाल बाबू ने तिमंजिले के एकांत कमरे में मेरे रहने का खूब आग्रह किया, परन्तु सुकिया स्ट्रीट का वह मकान ही मुझे अग्निवत् लग रहा था। ठाकुर पर भी क्षोभ आने लगा। इसीलिये किसी की बात न सुनकर सीधे झामापुकुर जा पहुँचा। कुछ देर बाद मछुआ बाजार स्ट्रीट अभय बाबू के घर गया। वहाँ महेन्द्र बाबू मिले। उन्होंने मुझसे गोसाईंजी का संग छोड़ने का कारण पूछा। मैंने अवसर पाकर महेन्द्र बाबू से सारी बात बताई। शास्त्रीय प्रणाली से ठाकुर शालग्राम में विष्णुमूर्ति ध्यान करने को कह रहे हैं। वह मैं न कर पाऊँगा। अतएव निश्चय किया हूँ कि शालग्राम किसी को दे दूँगा। महेन्द्र बाबू ने कहा-तुम्हारे शालग्राम पूजा के संबंध में गोसाईंजी से मैंने पूछा था, उन्होंने कहा-**'जिस प्रकार पूजा कर रहा है, वैसे ही करता चले तो विशेष उपकार पाएगा।'** फिर तुम शालग्राम पूजा

क्यों छोड़ दोगे?

मैंने कहा-शालग्राम में मनुष्य की पूजा अपराध है। परन्तु मैं तो मनुष्य की पूजा नहीं करता। मुझे तो लगता है मैं शास्त्रसम्मत पूजा ही करता हूँ। गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुदेव परम ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः-यह तो शिव-वाक्य है-मिथ्या कैसे हो सकता है। चतुर्भुज विष्णु हों या द्विभुज मुरलीधर सभी तो गुरु के अंगीभूत एवं उनसे अभिन्न हैं। एकमात्र गुरु की पूजा से तैंतीस करोड़ देवी-देवता, साक्षात् भगवान एवं समस्त ब्रह्माण्ड की पूजा हो जाती है, तो फिर शालग्राम में गुरु की पूजा हो तो विष्णु कैसे छूट जायेंगे। यह अशास्त्रीय भी कैसे हो सकता है? ठाकुर ने कहा है-**'शालग्राम में चतुर्भुज विष्णु का ध्यान व पूजा किया करो अन्यथा शालग्राम पूजा छोड़ दो।'** अब मैं वह न तो छोड़ पा रहा हूँ और न ही रख पा रहा हूँ, बड़ी विकट समस्या में पड़ गया हूँ। मेरी सारी बातें ठाकुर से कहने महेन्द्र बाबू सुकिया स्ट्रीट ठाकुर के पास चल पड़े। मैं अभय बाबू के घर भिक्षा लेकर भोजन बनाया, प्रसाद पाकर झामापुकुर आया।

दूसरे दिन नित्यक्रियादि किसी प्रकार सम्पन्न किया। नौ बजते ही ठाकुर के लिये मन अधीर होकर रो उठा। सोचा तो था अब ठाकुर के पास न जाऊँगा-पर ऐसा कर न सका। नौ बजे सुकियास्ट्रीट ठाकुर के पास जा पहुँचा। सभी गुरुभाई मेरे लिए दुखी हो रहे थे। ठाकुर भी मेरे प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए, दुःख प्रकट कर रहे थे। मेरे पहुँचते ही ठाकुर ने हँसकर पूछा-'कहाँ आसन लगाये हो?' मैंने कहा-झामापुकुर में। ठाकुर मुझसे कुछ कह रहे थे, पर अभिमान व क्षोभ के कारण मैंने उनकी तरफ देखा तक

नहीं। ठाकुर चुप रहे। ठाकुर शौच स्नान के लिये गए। कुछ गुरुभ्राता मुझ पर सहानुभूति दर्शाने लगे। आज ही शालग्राम को ठिकाने लगानेवाला हूँ, सुनकर कुछ गुरुभ्राता मुझसे वह शिला आग्रहपूर्वक माँगने लगे। मैं तो अवाक् रह गया, क्योंकि ये ही शालग्राम के प्रधान विरोधी थे। आहार के बाद ठाकुर आसन पर आकर बैठे। कमरा एकान्त पाकर ठाकुर से कहा-मुझे कुछ कहना है। ठाकुर ने कहा-**'हाँ अवश्य बोलो।'** मैंने कहा-मैंने शालग्राम पूजा स्वेच्छा से शुरु नहीं की थी। गेण्डारिया में न्यास की व्यवस्था करते समय ही आपने कहा था। इतना कहते ही ठाकुर बोल उठे-**'हाँ वह सब मैं जानता हूँ, उसके बाद मूल बात क्या है, वह कहो।'** मैंने कहा-देवी-देवता मैं कुछ नहीं जानता, इतने दिनों तक शालग्राम की पूजा भी मैं नहीं करना चाहता था। अब शालग्राम चक्र को जैसा करने को कहें, वैसा करूँगा।

ठाकुर-**'तब तुम शालग्राम पूजा छोड़ दो। पहले जो कार्य करते थे, वही करो। शालग्राम ऐसे किसी को दे देना, जिसे देने पर शालग्राम की सेवा पूजा होती रहे। हमारे इस मार्ग में एकमात्र नाम से ही सब हो जाता है। शालग्राम-पूजा से तुम्हारा जो प्रयोजन था, वह पूरा हो गया है, अब यह सब न भी करो तो कोई हानि नहीं होगी। पूजा करने की इच्छा हो तो शास्त्रोक्त विधि से करना।'**

संध्या, गायत्री, होमादि की आवश्यकता का उपदेश।

मैंने कहा-तो मैं शालग्राम पूजा छोड़ दूँ? दूसरे विषयों में भी

साधारण लोगों से भिन्न कुछ रखना नहीं चाहता। और भी दस लोगों को जिस प्रकार आपने रखा है, उसी प्रकार मुझे भी रखिए। संध्या-पूजा कुछ की मुझे इच्छा नहीं है। औरों की भाँति केवल नाम करूँगा और आपके पास पड़ा रहूँगा। ठाकुर ने कहा-**‘ठीक है और दस जनों की तरह ही चलो। किन्तु गायत्री जप और संध्या मत छोड़ना। संध्या करने में तुम्हें कोई आघात नहीं कर सकेगा। हजारों लोगों के बीच जहाँ-तहाँ खड़े होकर भी मंत्र पढ़कर संध्या कर सकते हो। इससे किसी के मन में भी नहीं खटकेगा। संध्या, तर्पण, गायत्री जप तो ब्राह्मणों का नित्यकर्म है। यह सब ठीक करो, विशेष लाभ मिलेगा।’**

ठाकुर ने पुनः कहा-**“एक दिन परमहंसजी से मैंने पूछा था कि इतने दिनों नाना प्रकार स्वेच्छाचारिता से चला-मैंने सब कुछ उड़ा ही दिया था, फिर ऐसा मैंने क्या कर लिया कि सद्गुरु की कृपा प्राप्त हुई? तब परमहंसजी ने कहा-‘एकमात्र गायत्री का तुमने त्याग नहीं किया, इसी से तुम इस शक्ति के अधिकारी बन सके।’ वस्तुतः मैं ब्राह्म समाज में प्रवेश करने पर भी एक भी दिन मैंने गायत्री जप करना नहीं छोड़ा था।”** मैंने कहा-ठीक है संध्या, तर्पण, गायत्री, जप आप कहते हैं तो सब करूँगा, पर होम न करूँ तो? होम करने के बड़े झंझट हैं।

ठाकुर-**‘होम भी करना। होम तुम्हारे लिये आवश्यक है। अधिक कुछ न करो तो एक लकड़ी जलाकर कुछ एक बार आहुति व थोड़ा घी डालना-इतने में मुश्किल क्या है? होम मत छोड़ना।’** मैं-भिक्षा करने में काफी समय नष्ट होता है और उद्वेग भी बढ़ता है आहार के नियमादि भी ठीक नहीं रह पाते। यदि भिक्षा न

करूँ तो नहीं चलेगा? ठाकुर-**'भिक्षा का प्रयोजन नहीं है, जब जहाँ रहोगे, वहाँ भोजन ग्रहण करना। भिक्षा की आवश्यकता नहीं है।'** मैं-आहार सबके साथ कर सकता हूँ?

ठाकुर-**'आहार स्वपाक करके ही करना। इससे स्वस्थ रहोगे और भी कई प्रकार से उपकारिता पाओगे। दूसरों का पकाया खाना मत खाना। आहार का परिमाण और समय ठीक रखना। स्वयं ही पकाकर खाना, भले भिक्षा न करो।'** मैंने कहा-शालग्राम पूजा ही जब नहीं कर रहा हूँ, तब क्या आपके साथ नहीं रह सकता? ठाकुर-**'क्यों नहीं रह सकोगे? शालग्राम पूजा लेकर साथ रहना असंभव है। गेण्डारिया में होता तो संभव था, परन्तु यहाँ कई तरह के भाव के लोग हैं। उनकी दृष्टि से अपने को बचाकर नहीं चल पाओगे।'** यह सब कह कर ठाकुर ने मुझे पुनः यहीं आसन लाने को कहा। ठाकुर के कहने के अनुरूप झामापुकुर से अपना झोला, सामान एवं आसन लेकर सुकिया स्ट्रीट आ पहुँचा। आने के पहले अपने भतीजे सजनीकांत बंद्योपाध्याय को शालग्राम पूजा के विधि-निषेध का विवरण समझाकर, शालग्राम उसे ही देकर आया। सजनी ने आग्रहपूर्वक उसे ग्रहण किया एवं कहा कि वह नित्यपूजा करेगा। कल मेरे सुकिया स्ट्रीट छोड़ते ही मेरे स्थान पर एक गुरुभाई ने आसन लगाया था। मेरे पहुँचते ही ठाकुर ने कहा-**'वह आसन उठाकर रखो। तुम यहाँ आसन लगाओ।'**

शालग्राम पूजा से इष्ट-अनिष्ट विचार।

मैंने ठाकुर ने जैसा कहा, वैसा ही किया। मेरे अवशिष्ट नित्यकर्म

एवं ठाकुर की पूजा, जैसा कि शालग्राम में किया करता था, वैसा ही मन ही मन अब भी करने लगा, सामने शिलाचक्र मात्र नहीं रहता है। इससे मुझे कोई अभाव या असुविधा का बोध नहीं होता। शिलाचक्र रहने पर सदैव उसी पर दृष्टि स्थिर रखना पड़ता, कभी-कभी ही ठाकुर को देख पाता था। अब वह न रहने से सर्वदा ठाकुर पर दृष्टि रखने का सुअवसर मिला। शालग्राम पूजा छुड़ाकर ठाकुर ने मेरा कल्याण ही किया। मन में विचार करने लगा कि शालग्राम पूजा छोड़कर मेरा क्या कल्याण हुआ। यदि पूजा करता रहता तो क्या अनिष्ट होने की संभावना थी। शालग्राम पूजा के साथ-साथ मुझमें एक अभिमान की भावना जन्म ले रही थी। मैं सोचता था, ठाकुर कितनों को दीक्षा देते हैं, उनकी अवस्था मुझसे उत्तम होगी संदेह नहीं, परन्तु अब तक शालग्राम में अपनी पूजा का अधिकार किसी को नहीं दिया। मुझ पर ठाकुर की विशेष कृपा न होती तो इस प्रकार पूजा की व्यवस्था ही क्यों करते। कुछ दिन में श्रीराम, श्रीकृष्ण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवों की भाँति मेरे ठाकुर की भी घर-घर पूजा होगी। मैंने वर्तमान समय में उनकी प्रतिष्ठा शालग्राम में की है। एक समय श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी ने शालग्राम पूजा करके उसमें से ठाकुरजी का विग्रह प्रकट किया था। ठाकुर के रहते ही, मैं भी शालग्राम से ठाकुर को प्रकट कर लूँगा। इस थोड़े से समय में शालग्राम में ठाकुर के ध्यान-धारणा के फलस्वरूप जो परिणाम प्रत्यक्ष देख रहा हूँ-उससे मेरा संकल्प व्यर्थ न जायगा, ऐसा लगता है। गुरुदेव की कृपा से गहरे कृष्ण वर्ण शालग्राम में ठाकुर के ताम्रवर्ण की आभा का विकास देख चुका हूँ। क्रमशः उसका विकास ठाकुर की आकृति में ही होगा। अब यह मुझसे न हो पायेगा सोच

कर, दुःख भी होता है। शालग्राम पूजा करते हुए मैं कुछ कुअभ्यासों से अभ्यस्त होता जा रहा था। दो-तीन बार भोग लगाकर प्रसाद पाते हुए मेरे आहार का परिमाण ठीक नहीं रख पाता था। ठाकुर ने जिन वस्तुओं के खाने को मना किया था उन्हें भी भोग लगाकर खाए जा रहा था। आहार के इस अनियम से शरीर अस्वस्थ हो चला। शरीर के गुण से ही मन विक्षिप्त, उत्तेजित और बुझा हुआ सा प्रतीत होता। पूजा करते हुए, कई राजसिक भाव लाने में भी विवश हो जाता था। खूब सजाकर धूमधाम से पूजा-आरती करूँगा ताकि सबकी भक्ति भावना बढ़े, ऐसे आडम्बर से रजोगुण में आबद्ध हो पड़ा था। नाना प्रकार के ऐसे राजसिक भाव जो पहले कभी मेरे मन में उदित न होते थे-शालग्राम पूजा के दौरान आकर अन्तःकरण में छा जाते थे। शालग्राम पूजा करता ही जाता तो कुछ दिनों में राजसिक काण्ड में लिप्त होता जाता, इसमें संदेह नहीं। ठाकुर ने इस बीच घंटे, घड़ियाल, चँवर आदि पूजा की सामग्री खरीदकर दिया था। उन्होंने यह भी कहा था कि चँदोवा की तरह आवरण होता तो अच्छा होता। यह सब सुनकर कभी-कभी मन में भय भी आता, पर कोई बाधा न दे पाता था। डरता इसलिए था कि पूजा के उपकरणों के पीछे कहीं विकट समस्या में न पड़ जाऊँ। गुरुदेव ने बाह्य पूजा बंद करवाकर इन सभी आशंकाओं से मुझे मुक्ति दिलाई। जय गुरुदेव! तुम्हारी ही जय हो!

कलियुग में धार्मिक को दुःख-अधार्मिक को सुख: दुर्भिक्ष आदि अनर्थ का मूल: कलि में ब्रह्मनाम।

आज सुबह बहुत से लोग ठाकुर के पास आए। श्री श्री चैतन्य चरितामृत पाठ के बाद उन्होंने ठाकुर से कहा-जो लोग साधन-भजन करते, भगवान का नाम लेते, सत्पथ पर चलते, धार्मिक एवं सदाचारी हैं-संसार में सबसे अधिक कष्ट तो उन्हें ही है। जो जालसाजी करते, दूसरों का सर्वनाश करते, क्रूर प्रकृति के, धर्म का लेशमात्र भी नहीं जानते-देखा जाता है वे बड़े सुखी है? इसका कारण क्या है?

ठाकुर ने लिखकर दिया-**'अभी के राजा कलि हैं। धर्म करने पर पुरस्कार नहीं देते हैं। राजा को अमान्य करने पर सजा मिलती है। अधर्म करो तो राजाज्ञा पालन होगी। तुम सत्य, त्रेता, द्वापर का अनुसरण कर रहे हो, कलि का आश्रय कहाँ ग्रहण कर रहे हो? जो भी कलि के मतानुसार चलेगा वह पुरस्कार पाएगा। कलि राजा है-सत्पथ पर चलने से मेल कैसे होगा? जो दिन को रात और रात को दिन कर सके, उसे ही इस युग में लाभ है। ऐसे कितने ही दृष्टांत हैं। परन्तु क्या इससे भगवान का राज्य समाप्त हो गया? महाभारत की एक आख्यायिका में है कि कलि का राज्य प्रारंभ होने पर धर्मात्मा क्लेश पाने लगे, अधार्मिक सुखी रहे। कलि को माननेवाले सुखी रहेंगे। किंतु कलि की प्रजा अत्यन्त पापाचार करे तो भगवान पहले तो सावधान करते हैं। उस पर न मानें तो नाना प्रकार के दण्ड-दुर्भिक्ष, महामारी लाते हैं। उस पर भी न मानें तब दुष्टों के संहार के लिए अवतीर्ण होगें। अतिवृष्टि-अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, महामारी, जलप्लावन, भूकम्प आदि से कलि की प्रजा नष्ट होगी। अंग्रेजी शिक्षा पानेवाले इस बात को सुनकर हँसेंगे इसमें**

आश्चर्य नहीं, परन्तु ब्राह्मण, पण्डित, अध्यापक भी कलि के ही पक्ष में होकर, शास्त्र वाक्य का उपहास करेंगे।'

कुछ रुककर ठाकुर ने लिखा-**'पहले इस देश में बहुधा अकाल नहीं पड़ा करता था। अकाल या दुर्भिक्ष की रूपरेखा पिशाच के समान होती है-देखने पर लगता है भूत-प्रेत, पिशाच देश में व्याप्त है। महाभारत में है, एक बार दुर्भिक्ष पड़ने पर महात्माओं ने पानी की काई खाकर जीवन धारण किया था। विश्वामित्र भूख-प्यास से व्याकुल होकर चाण्डाल का सड़ा मांस चुराकर, खाने के पूर्व निवेदन करने लगे, तब इन्द्र आदि देवताओं ने आकर निषेध किया और वर्षा हुई। तब मांसाहार का प्रचलन था। गेहूँ धान, फल-मूल आदि कई प्रकार के खाद्य पदार्थ थे। एक ही प्रकार के खाद्य के अभ्यास से शीघ्र अकाल पड़ता है। कलि में यही होगा। भूमि की उत्पादकता कम होगी, गाएँ दूध कम देंगी। इसी से बार-बार अकाल पड़ेगा। इससे व्याकुल होकर भी यदि भगवान को पुकारो तो मंगल होगा।'**

प्रश्न-वर्तमान में अकाल के क्या कारण हैं?

उत्तर-**'अब दुर्भिक्ष सहज ही होते रहते हैं। कारण यह है कि अब पहले की तरह वस्तु-विनिमय नहीं होता। पहले-व्यवसाय निश्चित हुआ करते थे, अब ऐसा नहीं होता। अधिकांश लोग शिल्पकार्य न करके नौकरी ही करते हैं। कलकत्ते की तरफ कई कल-कारखाने खुल जाने से कृषिकार्य न करके रुपए से चावल खरीद लाते हैं। कृषक-रेलवे, कोयले की खान आदि कई स्थानों से रुपए कमाकर, कृषि का पुराना कार्य भूल रहा है। वह सोचता है, रुपए देकर चावल खरीद लूँ। केवल वर्धमान, वीरभूमि,**

नोआखाली, बरिशाल, रंगपुर, मैमनसिंग, त्रिपुरा, चट्टग्राम आदि कुछ ही स्थानों में कृषिकार्य हो रहा है। उसे ही सारे बंगाल में बाँटा जा रहा है अतः चावल का मूल्य कम कैसे हो सकता है? इस पर अब तो विलायत भी चावल भेजा जा रहा है।'

प्रश्न-कलियुग में जीव के उद्धार के लिये किस प्रकार दीक्षा मंत्र की व्यवस्था की गई है?

ठाकुर-**"कलियुग में ब्रह्मनाम की दीक्षा का प्रयोजन है, इसके अलावा कलि के जीवों के उद्धार की कोई और गति नहीं है। यह महादेव ने पार्वती से कहा है। किंतु उनके उपदेश अनुसार दीक्षाप्राप्ति के लिए हृदय प्रस्तुत है या नहीं देखना पड़ता है। महानिर्वाणतंत्र पर जिन्हें 'देव-वाक्य है' यह विश्वास हो, केवल वे ही उनके उपदेशों का अनुसरण कर सकते हैं।"**

भूमैव सुखम: सत्य ही आदर्श।

एक व्यक्ति ने पूछा-संसार में सुख किससे प्राप्त हो सकता है? ठाकुर ने लिखकर बताया-**'भूमैव सुखम् नाल्पे सुखमस्ति-भूमा अर्थात् जिसका जन्म मृत्यु न हो, उसी में सुख है। अंत होनेवाले वस्तु में सुख नहीं है। जिसका अंत होगा अंततः एक दिन वह नहीं रहेगा, उस पर आसक्त होने से निश्चय ही दुःख पाना पड़ेगा। भगवान स्वयं अवतीर्ण होकर धर्म का दृष्टान्त बन गए हैं। श्री रामचन्द्रजी सत्य निष्ठा के आदर्श बने। पितृवचन पालन हेतु चौदह वर्ष वनवास में रहे। राजधर्म-प्रजाजन के लिए सीता का परित्याग किया। सत्यरक्षा के लिए लक्ष्मण का भी परित्याग किया। यह सब क्या मानव के लिए संभव है। सीता पर उनका**

संपूर्ण अनुराग था। तब तो राजा सहस्रों विवाह कर सकता था, किंतु रामचन्द्रजी ने एक पत्नीव्रत लिया था, अतः यज्ञस्थल पर स्वर्ण सीता रखी गई। सीताजी सती हैं, इस पर रामचन्द्रजी को पूर्ण विश्वास था। सारे देवता उसके साक्षी थे। सत्य जब जातीय धर्म हो-तभी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष घर-घर में विराजमान होते हैं।'

चित्र में चन्दन प्रदान: अद्भुत रहस्य।

प्रातः शौचादि सम्पन्न करके ठाकुर आसन पर बैठे किसी गुरुभ्राता ने अच्छे पुष्प, चंदन ठाकुर के पास रखे। ठाकुर ने उन्हें नित्य पाठ्य ग्रंथों पर बिखेर दिया, फिर चंदन की कटोरी में अँगुली डुबाकर घर की दीवाल पर टँगे राधाकृष्ण, सीताराम, शिवपार्वती, काली, दुर्गा आदि देवी-देवताओं के चित्रों पर चंदन छींटने लगे। थोड़ी देर बाद देखता हूँ, राम-सीता, राधा-कृष्ण सभी चित्रों के चरण में चंदन जा पड़ा है। पंद्रह-बीस फुट दूर एवं आठ-नौ फुट ऊँचे टंगे हुए, चित्रों में चंदन के छीटें ठीक चरण पर ही जा पड़े, यह बात कुछ समझ न पाया। आश्चर्य और भी बढ़ा जब मैंने देखा कि लक्ष्मणजी के चरण या बदन पर एक भी बूँद चंदन नहीं पड़ा। ठाकुर को इसका कारण पूछने पर उन्होंने बताया-**'लक्ष्मणजी को चंदन कैसे पड़ सकता है-लक्ष्मण ब्रह्मचारी जो हैं।'** उस विषय में सोचकर मैं बड़ा ही हैरान रह गया।

ठाकुर का उपदेश: जीवन की बातें: संसार में कोई सुखी नहीं।

बातों ही बातों में ठाकुर ने लिखा-**'जो लोग साधुसंतों के पास**

उपदेश सुनते हैं, परन्तु उपदेश के अनुसार कार्य नहीं करते, वे चकमक पत्थर की भाँति हैं। इस पत्थर को जल के भीतर रखो या हजार घड़े जल डालो-परन्तु जब भी रगड़ोगे, तो आग निकलेगी ही। जब तक मन की क्रिया रहती है, तब तक स्त्री-पुरुष या विषय में आकर्षण रहता है। मन लय हो जाने पर कर्मेन्द्रिय व ज्ञानेन्द्रिय रहें भी, तो उनका कार्य दूसरी तरह का होता है। स्त्री पर आकर्षण नहीं रह जाता। मैं इस विषय पर शास्त्र की बात नहीं करता। पहले मैं भी कामी, क्रोधी था। ये दो रिपु बड़े ही प्रबल थे। ब्राह्म समाज में कितना यत्न किया, पर समाप्त न हो सका। साधन ग्रहण के बाद भी बहुत कष्ट पाया। उस बार जब सारी रात जागना शुरु किया-तब क्यों जागता था यह नहीं जानता, पर सोने की इच्छा ही नहीं होती थी। एक दिन वृन्दावन में भोर के समय सोया था, उठने पर देखा मेरे पूरे शरीर में हजारों की संख्या में खटमल थे, पर मुझे कुछ बोध नहीं हो रहा था, तभी देखा मुझे काम, क्रोध आदि का भी बोध न रह गया। एक ही बेड़ा था, जिसके इस पार मैं और दूसरी ओर श्रीधर थे। श्रीधर की ओर एक भी खटमल नहीं था। उसी समय शरीर के सारे परमाणु बदल रहे थे। पहले सुना था उर्ध्वरेता होने पर बड़ा ही लाभ होता है। यत्न करते हुए जब उसकी क्रिया प्रारंभ हुई, तब देखता हूँ, बड़ा कष्ट है। मेरुदण्ड की अस्थि मानो आरे से काट रहा है, जब तक मार्ग प्रशस्त न हो जाय।’

‘माया-वस्तुतः माया है क्या? यदि कहो संसार में बड़े सुख से हूँ, इसे छोड़कर कहाँ जाऊँ। पर जरा विचार करके देखो,

संसार में कौन तुम्हें चाहता है। अधिकांश स्थल में भीषण प्रतारणा एवं धोखा है। कहीं स्त्री पति से कृत्रिम प्रेम दिखाकर, दूसरे से प्रेम कर रही है। कहीं पति स्त्री को धोखा देकर, परस्त्री पर आसक्त है। कहीं पुत्र पिता की हत्या करके, सम्पति हड़पता है, तो कहीं पिता ही पुत्र को इससे वंचित करके सुखी होते हैं। मध्यम परिवार के लोगों व कृषकों में तो भी कुछ प्रेम व भक्ति की भावना दिखाई पड़ती है। जहाँ धन का संबंध है, वहाँ वास्तविक प्रेम दुर्लभ है। वस्तुतः धनी व्यक्ति बंधुहीन होता है-सभी उसके धन के कारण उसे चाहते, हँसते और मुँह ताकते हैं। रोग में सेवा भी धन पाने के लिए करते हैं। इस प्रकार संसार में यदि घूमकर देखें तो कौन यहाँ वस्तुतः सुखी है, ढूँढ निकालना कठिन है। जिनके प्रेम में स्वार्थ लेशमात्र नहीं यदि ऐसे व्यक्ति संसार में हैं, तो वे ही वस्तुतः सुखी है। उनका संसार फिर संसार नहीं रह जाता, वह स्वर्ग है। और बाकी सब कुछ असार है, असार है। एकमात्र हरिनाम को छोड़, दूसरी सुखकारी वस्तु संसार में हैं ही नहीं। यथार्थ प्रेम हो तो माया होती है। पर वैसा प्रेम है कहाँ? विचार करने पर संसार असार ही प्रतीत होता है। वस्तुतः माया हरिनाम में हो। संसार में ऐसा कौन सा सुख है जिसपर माया होगी।’

गुरु परिवार के दीक्षा की बातें।

१८ कार्तिक। आज दोपहर को भोजन बनाते समय नानी माँ और माता ठाकुरानी के दीक्षा की बातें नानी माँ से पूछा। नानी माँ ने कहा--ढाका ब्राह्म समाज के प्रचारक निवास में रहते समय एक

दिन माता ठाकुरानी ने ठाकुर से पूछा--महिलाएँ तो साधन ले रही हैं-क्या मुझे साधन मिल सकता है? ठाकुर-**‘क्यों नहीं मिलेगा? माँगते ही मिल सकता है।’** नानी माँ-गुरु बनाने पर उन्हें प्रणाम करना व प्रसाद ग्रहण करना चाहिये। ठाकुर-**‘ऐसा क्यों? पंचरस के एक का भी यदि प्रस्फुटन हो तो बाकी सब भावों का स्वाद मिलने लगता है। बुद्धदेव ने भी तो ऐसा ही प्रदान किया था।’** उनकी साधन प्राप्ति माघोत्सव के बाद किसी एक दिन हुई। उपदेश दिया गया-**‘मांस, उच्छिष्ट और मादक वस्तु ग्रहण करने का निषेध है। याज्ञवल्क्य ऋषि ने जिस नाम से सिद्धि लाभ किया था,आप उसी नाम को ग्रहण करें। सदा सर्वदा नाम जप कीजिए।’** माता ठाकुरानी नाम सुनते ही-दर्शन पाकर संज्ञा-शून्य हो गई। प्राणायाम देखने का मौका ही न मिला। शाम को ठाकुर प्राणायाम दिखाने माता ठाकुरानी व नानी माँ को ऊपर कमरे में ले जाकर बैठे, तब माता ठाकुरानी ने ठाकुर से कहा-शांतिपुर में सीढ़ियों पर जिन्हें देखकर भयभीत हो गई थी, आज भी उन्हें ही देखा है-सफेद दाढ़ी, लाल चेहरा।।

ठाकुर ने कहा-**‘तुम भाग्यवती हो। ये सफेद दाढ़ी और लाल चेहरे वाले, अद्वैत प्रभु हैं, उस समय भी उन्होंने तुममें शक्ति संचार किया था। तब मैं यह सब नहीं मानता था, पाखंडी सा था।’** कुछ दिन बाद शांति, कुतु, फणी, सुरो आदि सभी की दीक्षा हुई। सुना है, श्री योगजीवन की भी दीक्षा फाल्गुन माह में वर्धमान के राजा के नन्दनकानन के शिव मंदिर में हुई थी। ठाकुर वहाँ ब्राह्मसमाज के उत्सव के उपलक्ष में गए थे। दीक्षा काल में योगजीवन की अद्भुत् अवस्था प्रकट हुई थी।

सत्य-मिथ्या, पाप-पुण्य सबके लिये एक जैसा नहीं।

एक गुरुभ्राता ने ठाकुर से कहा--सत्य-मिथ्या क्या है? पाप पुण्य क्या है? अनेक स्थलों पर समझा नहीं जा सकता।

ठाकुर ने लिखकर दिया-**'मिथ्या वह है, जिसका लक्ष्य असत् है। सत्य वह है जिसका लक्ष्य सत् हो। कर्म छोड़कर कई बार नाम नहीं किया जा सकता। नाम न करके बैठे रहने पर या परनिन्दा या परचिन्ता अथवा वृथा चिंता एवं विवाद में ही दिन बीतेगा। फिर ताश, चौपड़, शतरंज, परनिन्दा में समय कटेगा। संन्यासियों के आश्रम में जाकर देखा है कहीं ताश, कहीं विवाद, कहीं गपशप, तो कहीं-कहीं एक-दो लोग ध्यान-जप में मग्न हैं। पाप की बातें सीखी हुई बातें है। पाप बोध हुआ या नहीं देखो। पाप चिंता जरा भी आने पर पश्चात्ताप से छटपटाना पड़ता है? यह काम पाप है, यह काम पुण्य है--यह सबके लिए एक सा नहीं होता। जिस कार्य से मेरे धर्म भाव की स्फूर्ति बढ़े, वह पुण्य का है। जिस कार्य से मेरे धर्म भाव की स्फूर्ति नष्ट हो, वह पाप है। बाल्यावस्था से सुनते-सुनते, ग्रंथादि पढ़कर यह पाप है, यह पुण्य है--ऐसा संस्कार जन्म लेता है। वस्तुतः पाप और पुण्य क्या हैं? नरहत्या करने पर पाप होता है--किंतु चट्टग्राम में एक लड़की ने नरहत्या कर दी, तब सभी लोगों ने कहा--अच्छा किया, उत्तम कार्य हुआ। यहाँ नरहत्या की गणना पाप में नहीं की गई। चोरी करना पाप है--पर कहीं वह पुण्य भी बन सकता है। बाहर के कार्य मनुष्य देखा करते हैं। भगवान अन्तःकरण का**

उद्देश्य देखते हैं। चोरी को लोग पाप कहते हैं, परंतु भगवान की आँखों में वह पुण्य भी हो सकता है। यदि चोरी, डाका, बदमाशी बुरा जानकर भी कोई करे तो लोग उसकी निन्दा करेंगे। इसी निन्दा के द्वारा उपयुक्त समय आने पर उसकी आत्मदृष्टि खुलेगी। यही भगवान की व्यवस्था है।'

स्त्री बुद्धि प्रलयकांरी: शीतला षष्ठी की कथा। पति की अमर्यादा से उत्कट रोग।

आज गुरुभ्राताओं ने ठाकुर के साथ विविध विषयों पर वार्तालाप के समय कुछ औरतों के पढ़-लिख लेने पर, पति से दुर्व्यवहार करने संबंधी बातें कहकर, दुःख प्रकट किया। एक गुरुभ्राता ने स्त्री के विकट रोग के निवारण का उपाय पूछा। ठाकुर ने सुनकर एक कहानी बताई--(शीतला षष्ठी की कथा) **"एक बार ब्रह्माजी से झगड़ा होने पर सरस्वतीजी कहीं चली गई। उन्हें ढूँढते हुए ब्रह्माजी एक मैदान में जा पहुँचे। वहाँ देखा, आम के बगीचे में आम के बौर लगे हुए हैं। सामने जौ की फसल में भी बालियाँ लगी हैं। षष्ठी देवी वहाँ बैठी हैं। ब्रह्मा ने पूछा-हे षष्ठी देवी! उन्हें कहीं देखा है? षष्ठी ने पूछा--क्यों वे कहाँ चली गई हैं? ब्रह्मा-अब दुःख की बात क्या बताऊँ, तुमने कहीं देखा है क्या? षष्ठी-उसे दिखा दूँ तो मुझे क्या दोगे? ब्रह्मा-मुझे तुम शीतल कर दो, तो मैं 'शीतलाषष्ठी' के नाम से व्रत आरंभ करवाऊँगा। षष्ठी-वह देखो, वे आम के पेड़ पर बैठी हैं। मैंने तो पहले ही कहा था, स्त्रियों को अधिक पढ़ाना-लिखाना ठीक नहीं। यही थी शीतला षष्ठी। थोड़ी विद्या पाकर स्त्री बुद्धि**

प्रलयंकारी हो जाती है।"

फिर ठाकुर ने लिखा--**"पति के प्रति अनुचित व्यवहार करने एवं कटु वाक्य बोलने से नारी को यंत्रणादायक रोग भोगना पड़ता है। यह शास्त्रकारों ने बारंबार लिखा है। इस रोग की एकमात्र औषधि है--पति के चरणों में शरण लेकर, किए गए अपराध के लिये क्षमा याचना करना। पतिदेव अत्यन्त दुःख, दरिद्रता में पड़े हों, तो भी नारी के लिये पूजनीय होंगे। पति भी नारी को भगवत् शक्ति मानकर श्रद्धा सहित आचरण करे। आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र में भी प्रायश्चित का विधान इसी प्रकार है। किंतु आधुनिक वैद्य उसे नहीं जानते। सुश्रुत, चरक, वाग्भट्ट ने भी ऐसी व्यवस्था दी है। स्त्री व पुरुष का लक्ष्य भगवान हो तो वे सती व सत होते हैं। यथार्थ सती अत्यन्त दुर्लभ है। सती होने के बाद पतिव्रता। स्त्री यदि पति को निःस्वार्थ रूप से प्रेम करे, तो स्वामी की मृत्यु के बाद अपने आप उसका शरीर भी मृत हो जाता है। साधुओं के बीच शांत, सेवक-सेव्य में दास्य, बंधु-बंधु में सख्य, पिता-माता में वात्सल्य, स्त्री-पुरुष में मधुर भाव होता है। अपना कर्म सभी कर रहे हैं। संबंध बोध 'मेरा है।-मेरा है', यही मोह है।"**

श्रीधर के क्रिया-कलाप।

(१) आज श्रीधर दोपहर को भोजन न करके कड़ी धूप में रास्ते पर निकल पड़े। दिमाग ठीक नहीं है। रास्तों पर घूमते हुए पसीने से लथपथ, करीब दो बजे भवानीपुर के शिवनाथ शास्त्रीजी के घर जा पहुँचे। आचार्य महोदय श्रीधर को देखकर व्यग्र होकर द्वार पर आए।

श्रीधर ने उनके पैरों पर पड़कर नमस्कार किया एवं उनसे पूछा-महाशय क्या आपका काम निवृत्त हो गया है? शिवनाथ ने कहा-करीब हो गया समझें। परन्तु इतने व्यग्र क्यों हो रहे हैं? आइए विश्राम कीजिए। इतनी कड़ी धूप में कैसे आना हुआ? श्रीधर ने कहा-बस यही बात पूछने आपके पास आया था। अब मैं चलता हूँ, मुझे बहुत से काम करने हैं। इतना कहकर शास्त्रीजी को प्रणाम करके एक पल भी न रुककर श्रीधर चले गए। शास्त्रीजी हैरान रह गए।

(२) ठाकुर जब अभयबाबू के घर रहते थे, श्रीधर एक दिन उनके कमरे में जा पहुँचे। किसी काम से अभय बाबू ने पेटी खोली, तो श्रीधर उनके पास जाकर हाथ पसार कर कहने लगे-दो रुपए दे दो। अभय बाबू ने कुछ न कहकर पाँच रुपए श्रीधर के हाथ में दे दिया। श्रीधर घूम-फिरकर लौटे और सीधे ठाकुर के कमरे में गए। महेन्द्र बाबू ने श्रीधर से पूछा-क्यों श्रीधर रुपए लेकर क्या किए? ठाकुर ने पूछा-**'कैसा रुपया?'** महेन्द्र बाबू ने अभय बाबू द्वारा श्रीधर को रुपए दिए जाने की बात बताई। ठाकुर ने कहा-**'बिना कुछ पूछे माँगते ही श्रीधर को रुपए दे देना ठीक नहीं। सभी की एक मर्यादा है। प्रयोजन हो तभी रूपए खर्च करना चाहिए, अन्यथा उसकी मर्यादा नष्ट करना होता है। अभय बाबू यदि रुपए का इस प्रकार अपव्यय करें तो रुपए का अभाव भी भोगना पड़ेगा।'** ठाकुर की बातें सुनकर श्रीधर खिलखिलाकर हँस पड़े और अंटी में से पाँच रुपए निकालकर अभय बाबू के हाथ में देते हुए बोले-लीजिए महाशय रुपये लीजिए। अभयबाबू ने पूछा-फिर रुपए लिए ही क्यों थे? श्रीधर ने कहा-रुपया साथ हो, तो

कैसा विद्युत की तरह खेलता है, उससे शरीर तथा मन की कैसी दशा होती है, यही देखने के लिए रुपया लिया था। अब आपका रुपया आप लें और मैं भी बचूँ।

(३) एक दिन श्यामाकांत पण्डित महोदय एक बढ़िया पका हुआ कटहल लाकर खाने के लिए उसे छीलकर एक पत्थर की थाल पर उसके कोए रखने लगे। श्रीधर तब कहीं और थे, अचानक श्रीधर आकर उनके कमरे के द्वार पर पहुँचे और त्रस्त भाव से कहने लगे-हाय! पण्डित महाशय आप तो ठगे गए। उधर ठाकुर अपने हाथों से बढ़िया खीर सबको दे रहे हैं। पूछ रहे हैं 'पण्डित महाशय कहाँ हैं?' और आप यहाँ बैठे कटहल छील रहे हैं। पण्डितजी सुनते ही उचककर उठे और ठाकुर के पास चल पड़े। ठाकुर ध्यान मग्न थे, इनके कमरे में जाते ही एकबार सिर उठाकर, हँसते हुए उन्हें देखा और पुनः ध्यानमग्न हो गए। पण्डित महाशय लज्जित होकर अपने कक्ष में लौट आए। आकर देखते हैं, कि श्रीधर कटहल के कोए गपागप खाए जा रहा है। उसके कारनामे देख पण्डित महाशय ने चौंकते हुए कहा-यह क्या कर रहे हो? सारा कटहल अकेले खा गए? श्रीधर बचे हुए तीन-चार कोए उनकी ओर खिसकाते हुए बोले-लो, अब नहीं खाता। खाने पर नजर डालते हो। वह तुरंत उठ पड़ा। पण्डित महाशय ने कहा-ओह! तुम तो विचित्र व्यक्ति हो। झूठ बोलने के पहले जरा विचार भी नहीं किया? श्रीधर ने कहा-क्या कहा पण्डित? मिथ्या, अरे, कोई बात सत्य होती ही कहाँ है। बात भी माया का कार्य है। माया ही मिथ्या है, तो बातें सत्य होंगी कैसे? गुरुनाम ही एकमात्र सत्य है, बाकी सब मिथ्या। जाओ अब बैठकर नाम करो और कटहल खाओ।

स्त्री वियोग से शोकार्त व्यक्ति को जन्म मृत्यु संबंधी उपदेश: अपनी इच्छा से कुछ नहीं होता। ठाकुर के आत्मजीवन की बातें।

आज एक गुरुभाई स्त्री वियोग से शोकाकुल होकर ठाकुर के पास आए एवं शोक प्रकट करने लगे। ठाकुर ने लिखा-**'विपत्ति में अधीर हो जाने पर विपत्ति और भी दबोच लेती है। अधीर होने से कोई लाभ नहीं, बल्कि इससे उपाय ढूँढने में बाधाएँ ही आती हैं। विवाह करने की इच्छा होने पर ही विवाह करना होगा, ऐसी कोई बात नहीं है। जब अपने आप को किसी भी तरह संयत न रख पाओ, तभी विवाह करना उचित है। लोगों की सलाह पर विवाह कर लेना उचित नहीं। कुछ दिन अपने को जाँचकर देखो, फिर कुछ तय करना ठीक होगा। स्त्री युवती हो ओर पुरुष की आयु अधिक हो तो स्त्री कभी संतुष्ट नहीं रहती। अधिकतर स्थानों में व्यभिचार हो जाता है। कहीं-कहीं अच्छे परिणाम भी घटते हैं।'**

कुछ देर रुककर ठाकुर ने पुनः लिखा-**'जन्म लेने पर मृत्यु अवश्य होगी। राजा पृथु, जनक, मान्धाता, हरिश्चन्द्र, दशरथ, दुर्योधन, रावण, कंस आदि कितने ही दिग्विजयी हुए, परन्तु ये सभी श्मशान की राख बन गए। जितने भी अवतार हुए--श्री राम, कृष्ण, बुद्ध, बलराम सभी ने देह-त्याग दिया। जन्म-मृत्यु का रहस्य जान लेने पर भी निस्तार नहीं है। यह मृत्यु भी कितना मंगलकारी है, इसकी कोई चिन्ता नहीं करता। एक दीर्घकाल का रोगी असह्य यंत्रणा पा रहा है, मृत्यु न रहे तो उसका क्या**

उपाय होगा? कितने जीव-जन्तु मर रहे हैं, किसे खबर है? कितने ही स्थानों पर नर-नारी मर रहे हैं, कौन जान पाता है? मेरे घर घटना घटे, तभी मुझे चिंता होती है। रोज एक लाख लोग जन्म लेते एवं एक लाख मरते हैं। दीपक का तेल समाप्त हो जाय तो वह बुझ जाता है। मृत्यु भी ठीक उसी तरह का है। संसार में जिनकी आसक्ति है, मृत्यु-भय भी उन्हीं को है।'

'यह पंखा यदि संभालकर रखें, तो सौ वर्ष रह सकता है, पर मनुष्य नहीं रहेगा-यह बात याद नहीं रह पाती। मेरी आयु बारह वर्ष की थी, तब मेरा एक मित्र मर गया। हमारे पास एक मिट्टी का दीपदान था। उस पर दिया रखकर हम पढ़ते व खेलते थे। उस मित्र की मृत्यु के बाद, उस दीपदान को देखकर मैं सोचता था, कि यह दीपदान भी जैसे का तैसा रखा है, पर वह नहीं रहा, ऐसा कैसे हो सकता है? जिस कटहल के वृक्ष के नीचे खेलते थे, वह भी ज्यों का त्यों है, पर वह कहाँ खो गया, वह अवश्य है। ऐसी भावना सभी मनुष्यों में रहती है। बाद की अवस्था प्रत्यक्ष न होते तक यह नहीं जाती।'

'मृत्यु दिन-रात होने की तरह एक स्वाभाविक क्रिया है। जन्म-मृत्यु एक मोह ही है। जब जन्म व मृत्यु वृक्ष के पत्ते निकलने और गिरने की भाँति प्रतीत होगा, तभी यथार्थतः 'मैं कौन हूँ।' समझ सकोगे। अपनी इच्छा से कुछ नहीं होता। कई बार अपनी इच्छा देखकर लगता है, यह तो कुछ भी नहीं है मन में कोई शुभ इच्छा आए, तो भगवान की सेवा के उद्देश्य से करने पर, बंधन कट जाते हैं। तब जो भी प्रयोजन होगा वह भगवान की इच्छा से सम्पन्न हो जाया करेगा। वस्तुतः यदि हम शिशु

की भाँति पड़े रह सकें, तो माता अवश्य ध्यान रखेंगी।'

अपनी इच्छा से कुछ नहीं हुआ करता, भगवान की इच्छा से ही सब कुछ होता है, यह बात समझाने के लिये ठाकुर ने अपने जीवन की कुछ बातें लिखकर बताई-**'जब चिकित्सा किया करता था, अमुक औषधि देने पर ही यह रोग ठीक होगा-ऐसा विचार करके औषधि देता था, परन्तु क्रमशः समझ पाया, कि ऐसा नहीं होता। यह सब देखकर समझ गया कि औषधि कुछ नहीं है, ईश्वर की कृपा चाहिए। प्रचार-काल में जहाँ जाता, लोग एकाग्र होकर सुनते और सहायता करते। क्रमशः देखा लोगों में यह भाव, मेरी बातों से कुछ भी नहीं होता है, सभी भगवान की कृपा है। इस प्रकार पुरुषाकार में आघात पाते-पाते अब समझ गया हूँ, मैं कुछ नहीं हैं, असार में भी असार हूँ। भगवान ही सर्वकर्ता, इहलोक-परलोक के विधाता हैं। मैं अपने जीवन की ओर देखकर सोचता हूँ, मैंने इच्छापूर्वक सोच समझकर कुछ भी नहीं किया। पाठशाला में पढ़ता था, कट्टर हिंदु था। अचानक संस्कृत कॉलेज गया। अवश ही वैदान्तिक बन गया। फिर ब्राह्म समाज गया। प्रचार कार्य किया, चिकित्सा भी की। फिर घूम-फिरकर वर्तमान अवस्था में आ पड़ा हूँ। अपनी इच्छा कुछ भी नहीं है। जिसका जब समय आता है, मर जाता है। मृत्यु के बाद पुनः जन्म लेने पर, पहले का कुछ भी याद नहीं रहता। फिर दुःख किसलिये? जब तक जन्म न हो, तब तक पहले की बातें याद रहती हैं। सभी घटनाएँ मंगल के लिये होती हैं-इसमें संदेह नहीं।'** थोड़ा रुककर ठाकुर ने स्वयं होकर लिखा-**'अभी जो मैं हूँ, यह देह तो पड़ा रहेगा। भगवत् भाव या स्वरूप, यथार्थ 'मैं' गुरुशक्ति**

लेकर उठ जाएंगे। स्वरूप का अर्थ है शांत, दास्य। शास्त्रों में ही है, जिस प्रकार की चिन्ता व कार्य सारा जीवन करो, मृत्यु-काल में वही चिन्ता आ जाती है। दृष्टांतस्वरूप भरत हैं। मृत्यु के समय हरि-स्मरण सबके भाग्य में नहीं हो पाता। जीवन भर जो चिंता की हो, स्वप्न में भी वही चिंता और मृत्यु काल में भी वही चिंता आती है। कोई बड़ा पाप करे, जीव जन्तुओं पर या किसी वस्तु पर विशेष आकर्षण हो, तो अधोगति हो सकती है। भरत हिरण से पुनः ब्राह्मण जन्म प्राप्त किए। फिर सब संग त्याग करके जड़वत् पड़े रहे, तब उनकी मुक्ति हुई। आत्मा निर्मल हो, निर्मल होते हुए भी उसमें भी वासना हो, तो उसी क्षण जन्म ले सकती है।'

क्या सभी वासनाएँ अनिष्टकारी होती है?

ठाकुर की बातें सुन कर हम अवाक् रह गए। एक गुरुभ्राता ने धीरे से पूछा-वासना किसे कहते हैं? सभी वासनाएँ क्या आत्मा की उन्नति के पथ में अनिष्टकारी होती है?

ठाकुर ने लिखा-**'तुम्हें धर्म-प्राप्ति हो, लोग मान दें, स्वर्ग-प्राप्ति हो, धर्म प्रचार करके मैं जगत का उद्धार करूँ। धन दो, यश दो, पुत्र दो, कन्या दो--इत्यादि वासनाएँ हैं। प्रभु तुम्हारा दास बना लो, सखा बना लो भक्त बना लो, सभी वासनाओं से मुक्त कर दो। अपने सुख की इच्छा ही भोग है। जब तक अपने सुख की इच्छा है, वह दास या सखा कैसे हो सकता है? 'अहं'-बोध का नाश एकदम नहीं हो पाता। जो कुछ अपने लिये हो, वह सब वासना है। मुझे मुक्त करो, यह वासना है, पर ऐसी वासना शुभ**

है।’

असामान्य शक्ति लाभ का उपाय: महापुरुष के बत्तीस लक्षण।

मैंने सोचा था, शालग्राम पूजा छोड़कर मेरे साधन-भजन में असुविधा या हानि होगी। किंतु ठाकुर की कृपा से देख रहा हूँ, मेरी कोई हानि नहीं हुई, बल्कि वह पूजादि छोड़ने पर मैं पहले से अच्छा ही हूँ। प्रतिदिन पूर्ववत् नियमित संध्या, तर्पण, न्यासादि क्रियाएँ करता हूँ। शालग्राम नहीं हैं, तो भी फूल-चंदन आदि पूजा उपकरण संग्रह करके मन ही मन ठाकुर की यथारीति पूजा किया करता हूँ। बाह्य पूजा की अपेक्षा मानस पूजा में और भी अधिक आनंद पा रहा हूँ। अब कोई गुरुभाई मेरा विरोध भी नहीं करते। बड़े आराम से रहता हूँ। साधन-भजन, नाम-ध्यान छूटकर जिस विषम परिस्थिति में पड़ गया था-रिपुओं की उत्तेजना और अत्याचार से संतप्त हो उठा था, ठाकुर की कृपा से, बिना प्रयास अपने आप ही सब शांत हो गए हैं। ठाकुर कितने दिन इस अवस्था में रखेंगे, यह नहीं जानता। अन्य दिनों की तरह दोपहर में गुरुभ्रातागण ठाकुर के पास आ पहुँचे। उनमें से एक ने पूछा-योग साधना करने पर नाना प्रकार की अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, ऐसा सुना जाता है। इतने दिनों हुए हमने साधन ग्रहण किया है, पर कुछ भी तो समझ नहीं पाते। आपने जैसा कहा है, वैसा यथासंभव करने का प्रयत्न भी करते हैं, लेकिन ब्रह्म क्या है, भगवान क्या हैं? कुछ भी समझ नहीं पाए। ठाकुर ने लिखकर उत्तर दिया-**‘पहले आचार्यगण साधक का अंतिम लक्ष्य क्या है नहीं बताते थे। केवल पथ का**

उपदेश मात्र देते थे। इसीलिए वे ऐसे द्रवित नहीं हुआ करते थे। अभी हमने कुछ ही विषयों की जानकारी पाई है, परन्तु वास्तविक ज्ञान अभी नहीं हुआ है। पथ चलते-चलते क्रमशः मालूम पड़ता है, कि गन्तव्य स्थल के निकट ही जा रहे हैं। पहले यह विश्वास नहीं होता, मुँह से कह देने मात्र से लाभ नहीं होता। ठीक समय में जो होना चाहिए, वह तब न होकर असमय होने लगे तो विश्रृंखला होगी। कर्म निष्काम हो, तो कुछ उपार्जन करना कठिन होता है। भगवान की इच्छा ही सब कुछ है, प्रारब्ध तो कहने मात्र के लिये है।'

ठाकुर ने पुनः लिखा-**'उपनिषद् में है, वरुण से उनके पुत्र ने पूछा-ब्रह्म क्या है? उत्तर मिला-तप करो। तप करके जान पाया, सो कहा-ब्रह्म अन्न है। उत्तर-तप करो। फिर तप करके कहा-ब्रह्म प्राण है। उत्तर-तप करो। तपस्या के बाद उसने कहा-ब्रह्म मन है। उत्तर-तप करो। करके कहा-ब्रह्म विज्ञान है। उत्तर-तप करो। तप करके कहा-ब्रह्म आनन्द है। तब ब्रह्मविद्या का अधिकार मिला एवं तब उसने उपदेश प्राप्त किया।'**

'लोग कार्य करना नहीं चाहते, केवल शक्ति चाहते हैं। तुम सब एक वर्ष वीर्यरक्षा करके चलो, मिथ्या कथन या मिथ्या कल्पना मत करो, मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ, तुम्हें वाक्-सिद्धि प्राप्त होगी। लोग शक्ति-शक्ति करते हैं, शक्ति लाभ तुच्छ बात है। जो ईश्वर प्राप्ति चाहते हैं, वे इनसे घृणा करते हैं। इनकी ओर देखते तक नहीं। जिस दिन चौबीस घंटे में एक भी श्वास-प्रश्वास वृथा न जाय, नाम चलता रहे, उस दिन सिद्धि लाभ हुआ जानो। मेरा कहना तो ठीक नहीं, फिर भी कहता हूँ, साधन प्राप्ति के

तीन वर्ष तक ठीक श्वास-प्रस्वास में नाम नहीं चलता था, एक दिन अचानक वह ठीक हो गया। हमारा साधन पथ सतयुग के ऋषियों का पथ है। इस पथ में धर्म संबंधी सभी संप्रदायों में हम मिलजुल सकते हैं। गृहस्थों को सामाजिक रीति-नीति मानकर चलना चाहिए। आत्म प्रशंसा न करना। किसी के स्थायी विश्वास को नष्ट न करना। धर्म का प्रदर्शन न करना-ये साधु के लक्षण हैं। साधु वेशधारी को यह सब ध्यान रखना होगा। जिनके निकट आते ही हृदय में धर्म भाव प्रस्फुटित हो, अपने आप भगवान का नाम रसना से उच्चारित हो, सभी पाप लज्जित होकर दूर भाग जायें-वे ही साधु हैं।' एक ने पूछा-बाहरी शरीर के लक्षणों द्वारा क्या महापुरुषों को पहचाना जा सकता है?

ठाकुर-**'शास्त्र में महापुरुषों के बत्तीस लक्षण दिए गए हैं-पंच दीर्घः पंच सूक्ष्मः सप्त रक्तम् षडुन्नतः। त्रिहस्व पृथु गंभीरो द्वात्रिंशत लक्षणो महान्।। नेत्र, पाद, करतल, अधर, ओष्ठ, जिह्वा, नख--ये सात रक्तिम। वक्ष, स्कन्ध, नख, नासिका, कोटी व मुख इन छः अंगों की तुंगता (उच्चता)-कोटी, वक्ष, ललाट ये तीन अंग विस्तृत। ग्रीवा, जंघा, शिश्न तीन अंगों की खर्वता--नाभि, स्वर, बुद्धि इन तीनों की प्रखरता। नासा, भुजा, नेत्र, हनु (जबड़े) एवं जानु इन पाँचों अंगों की दीर्घता। त्वचा, केश, लोम, दन्त, अँगुली के पर्व इन पाँचों की सूक्ष्मता-ये बत्तीस महापुरुषों के लक्षण हैं।'**

पालनीय उपदेश।

प्रश्न-हम उपदेश तो बहुत से सुन चुके हैं, किंतु हमारे विशेष

पालनीय उपदेश कौन से हैं,

समझ नहीं पाते। ठाकुर-'**(१) शारीरिक एवं मानसिक परिश्रम चाहिये (२) बल वृद्धि करना चाहिये (३) रेतः रक्षा करना चाहिये।**'

प्रश्न-शारीरिक परिश्रम क्या होगा? उत्तर-'**दोनों समय प्राणायाम।**'

प्रश्न-मानसिक श्रम क्या है? उत्तर-'**एक तो नाम जप, कीर्तन एवं सदालाप।**'

प्रश्न-बलवृद्धि किस प्रकार हो? उत्तर-'**शारारिक बल एवं मानसिक बल।**'

प्रश्न-रेतःरक्षा किस तरह करें?

उत्तर-'**आसन, मुद्रा, स्त्री दर्शन एवं स्पर्श या वार्तालाप न करना।**

(४) सभी गुरुभ्राताओं से प्रेम रखना, साधन का प्रधान अंग है। (५) गुण देखना ही अच्छा है। दोष देखो तो स्वयं दोषी बनना पड़ता है। (६) धैर्य चाहिये। (७) गुरु त्यागे भवेत् मृत्युः (८) संसार वृक्ष काटे बिना कृष्ण प्राप्ति नहीं होती। (९) ईसाईयों की तरह विश्वासी, वैष्णवों की तरह भक्त और मुसलमानों की तरह निष्ठावान होना पड़ेगा।'

अपवित्र हाथों से ठाकुर को खाद्य वस्तु देने का उपक्रम: उसके विनिमय में ठाकुर का वरदान।

कुछ दिन हुए भयानक अपराधपूर्ण कार्य से ठाकुर ने मेरी रक्षा की है। सोचकर भी शरीर सिहर (उठता है। एक दिन रात को तीन

बजे सो गया। नींद में स्वप्नदोष हो गया। जागने पर मन उद्विग्न और माथा गरम हो उठा। सोचने लगा-इतने दिन साधन-भजन करके मेरा क्या हुआ? एक वीर्य धारण के लिये ही कितना कुछ करता आया उससे भी मेरा कुछ न हुआ? ब्रह्मचर्य ग्रहण करके-एक ही परिमाण में भोजन करता आया, कभी भरपेट भोजन नहीं किया। कई दिन हुए एक चौथाई पेट पानी से भरकर, भूख मिटाता हूँ। सारा दिन साधन-भजन में ही कटता है। फालतू बातों या बेकार कामों में समय नष्ट नहीं करता। चौबीस घंटे नीचे सिर किए रहता हूँ, ठाकुर का संग कर रहा हूँ, उनके शरीर की आँच सर्वदा पाता हूँ। इतना सब होते हुए भी मेरी यह दशा है। मन का विकार नहीं गया, और न तो शरीर ही शुद्ध हुआ। देखता हूँ मेरा सारा प्रयत्न विफल रहा। ठाकुर पर उनकी दया के लिये निर्भर होकर भी क्या हुआ? वे मेरे प्रति पूर्णतः उदासीन हैं। अन्यथा उनके तीन-चार हाथ की दूरी पर रहकर मेरा वीर्यपात हो और वे तमाशा देखते रहें। वे चाहते तो क्या इस विपत्ति से मेरी रक्षा नहीं कर सकते थे। केवल इच्छा मात्र करने के सिवा, उन्हें तो कुछ परिश्रम भी नहीं करना पड़ता। यह सब सोचकर, ठाकुर पर बड़ा ही क्षोभ सा आने लगा। मुझे वे ही इस तरह भुगता रहे हैं, यह सोचकर क्रोध भी आया। इसी समय ठाकुर ने मुझे पुकार कर कहा-**'ब्रह्मचारी, मुझे कुछ मिश्री के टुकड़े दो, मैं पानी पीऊँगा।'** मैं खीज भरे मन से, अपवित्र हाथ होते हुए भी, ऐसा ही रहने दो, सोचकर मिश्री लाने आलमारी के पास पहुँचा। ठाकुर ने कहा-**'ब्रह्मचारी खाद्य सामग्री लेने के पहले हाथ धो लेना चाहिये। यह लो जल।'** ऐसा कहकर कमंडल से जल देने लगे। मैं जल लेकर, फर्श पर छींट दिया और मिश्री लाने चला गया।

हाथ जरा भी स्वच्छ न हुआ। इतने में उन्होंने कहा-**'हाथ जरा अच्छे से धो लेते तो ठीक होता।'** मैं लज्जित होकर बाहर गया और अच्छी तरह हाथ धोकर आया एवं ठाकुर को मिश्री दिया। ठाकुर ने मिश्री मुँह में डालकर जल ग्रहण किया। तीन-चार दिन हुए इस घटना के कारण मैं भीतर ही भीतर जला जा रहा हूँ। आज महेन्द्रबाबू व मोहिनी बाबू आदि कुछ गुरुभ्राताओं को बातों ही बातों में यह बात कह ही डाला। सुनते ही वे आगबबूला होकर, मुझे गालियाँ देने लगे। उन्होंने कहा-इस तरह तुम ठाकुर की सेवा करते हो, इसीलिये ठाकुर इतने अस्वस्थ हो जाते हैं। तुम अब ठाकुर के पास न रहो, हम आज ही इसकी व्यवस्था करते हैं। वे ठाकुर के पास पहुँचकर, मेरे इस दुष्कर्म के बारे में बताने लगे। उन्होंने यह भी कहा-ब्रह्मचारी जब इतना गंदा है, तब आप उसके हाथों से कुछ सेवा न लें, यह हमारी इच्छा है। ब्रह्मचारी की सेवा के कारण ही आपके रोग भी होते हैं। जो अनायास ही विष्ठा, मूत्र, शुक्र, रक्त गुरु को दे सकता है, उसे पल भर भी गुरु के पास नहीं रखना चाहिये। महेन्द्र बाबू की ये बातें मैं बरामदे से सुन रहा था। उनका कहना समाप्त होते ही मैंने कमरे में प्रवेश किया। ठाकुर ने मुझसे कहा-**'महेन्द्र बाबू जो कुछ कह रह हैं क्या वह सच है? तुमने वस्तुतः ऐसा किया था?'** मैंने कहा-महेन्द्र बाबू का कहना ठीक है, मैं सचमुच आपको गंदे हाथों से ही मिश्री देने गया था। मेरी बात सत्यतापूर्ण सुनकर, ठाकुर आनन्दित हुए और सजल, स्नेहपूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए उन्होंने कहा-**'अब से तुम्हारे इन हाथों से जो भी तुम दोगे, मैं परम-पवित्र मानकर उसे ग्रहण करूँगा। एक काम करना-जो स्वयं न खा सको, वह मुझे भी मत देना।'**

हाय! आज मैं क्या करूँ। सिर पटककर मर जाने को जी चाहता है। अब तो देखता हूँ, ऐसा कोई दुष्कर्म या पाप कर्म नहीं कर पाऊँगा, जिससे ठाकुर के स्नेह व ममता के पार जा सकूँ। धन्य हो ठाकुर! इस घृणित, पाखण्डी को भी तुमने अपना मानकर ग्रहण किया है। तुम्हारी यह करुणा भी मेरे लिये अभी असहनीय लग रही है। अब मैं क्या करूँ? कई जन्म साधन-भजन, तीव्र तपस्या से मनुष्य जिस अवस्था को प्राप्त नहीं कर पाता, मेरे इस जघन्य कार्य के फलस्वरूप तुमने वह मुझे दिया। तुम्हारे प्रति अत्याचार का दण्ड ऐसा है, कि अत्याचारी पर ही सस्नेह, दयापूर्ण व्यवहार करते हो, यह कितनी विचित्र बात है!

यथार्थ स्वभाव दुर्बोध्य है।

ठाकुर जब ब्राह्मधर्म के प्रचारक थे, तब हिजलीकाँथी नामक स्थान पर, विपत्ति में पड़कर एक डाकू के घर आश्रय ग्रहण करना पड़ा था। आज उन्होंने बातचीत के दौरान लिखा-**'मैं और दो लोग हिजलीकाँथी गए थे। जब हम वहाँ पहुँचे, तो रात हो गई। चारों ओर घना अंधेरा, बादल गरज रहे थे, वर्षा हो रही थी। हमें कोई उपाय न सूझा, अतः एक व्यक्ति के घर घुस गए। पैर से कुछ टकराया, देखा एक स्त्री सोई थी, उसने उठकर बत्ती जलाई और एक ओर खड़ी हो गई। इतने में एक पुरुष आया। वह भीमकाय था, उसने पूछा-तुम लोग कौन हो? हमने कहा-हम पथिक हैं, रास्ता भूल गए हैं, हमें मास्टरजी के घर जाना है। वह हमें साथ लेकर मास्टरजी के घर पहुँचा आया। जब तक हम वहाँ रहे, हमसे वह मिलता रहा। स्थानीय लोगों ने पूछा-इसे**

कैसे जानते हैं, यह तो डाकू है, रात में डकैती करता है, राहगीरों को लूटना, झगड़ना, यही इसका स्वभाव है।'

एक ने कहा-मनुष्य के साधारण कार्य को देखकर, भीतर की अवस्था को समझ पाना संभव नहीं है। मानव-स्वभाव अभी कुछ, तो थोड़ी देर बार दूसरा ही कुछ होता देखा जाता है। यथार्थ स्वभाव कैसा है, कार्य देखकर बताना कठिन है।

ठाकुर-**'जब तक शरीर, मन, आत्मा का ऐक्य न हो जाय, तब तक वह मेरे लिए स्वाभाविक नहीं होता। स्वभाव ही धर्म है। सभी मनुष्यों के स्वभाव में जहाँ एकता है, वहाँ स्वतंत्रता, विशिष्टता भी है। मैं कुछ विषयों में सबके जैसा हूँ, तो कुछ में सबसे अलग या भिन्न भी हूँ। इसलिये मनुष्यों की रुचि भी भिन्न-भिन्न है। मेरे शरीर, मन व आत्मा का जब ऐक्य होगा, तभी वह मेरा स्वभाव होगा, उसी से मेरा कल्याण होगा। सारे जगत में जो वस्तुएँ स्वभाव में है, वे ही आनंद मे भी हैं। चन्द्र, सूर्य, पर्वत, समुद्र, वृक्ष-लता, पशु-पक्षी, फल-फूल सब आनंदमय हैं। मनुष्य भी जितना स्वभाव में रहता है, उतना ही आनंद पाता है। उसका स्वभाव जितना विकसित होता है, आनंद भी उतना ही बढ़ता जाता है। जिन्होंने पाप कर्म, पाप चिंता द्वारा स्वभाव को विकृत किया है, वे निरानन्द ही भोगते हैं। पाप से शरीर रोगी व मन अपवित्र होता है। पुण्य लाभ करके स्वभाव लाभ न होते तक वह आनंद नहीं पाता। रोग व पाप की यातना में ही जीवन बीतता है।'**

'धर्म से भ्रष्ट हो जाना, यह भी एक प्रकार की उन्मत्तता है। वैद्यशास्त्र में वर्णित हैं, मस्तिष्क में विशेष भाग, मन के भावों को

प्रकट करने के लिए होते हैं। इनमें से जिस अंश में पीड़ा या रोग हो उसकी ही विकृत अवस्था होने लगती है। जैसे अन्धा देख नहीं पाता, परन्तु आत्मा में देखने की शक्ति होती है।'

पुनः ठाकुर ने लिखा-**"देवता और असुर दोनों एक ही पिता की सन्तान हैं। जो देवता हैं। वे भी असुर बन सकते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् में है-'देवासुरा प्रजापत्याः।' जो शास्त्र मान कर चलते हैं वे देवता-और जो स्वेच्छा व अपनी बुद्धि से चलते हैं वे असुर हैं।"**

तेईस कार्तिक, आज दीपावली है, सारा शहर आलोकित है। जिसकी जैसी क्षमता, अपनेअपने घरों को उसी अनुरूप विभिन्न प्रकार की दीपमालाओं से सुसज्जित कर माँ काली का आनंद बढ़ा रहे। हैं। आज सभी के मन में आनन्द उत्साह है। कलकत्ता शहर मानो आज सबके साथ आनंद से नृत्य कर रहा है। हमारे यहाँ भी आज संकीर्तन-उत्सव है। संध्या होते ही संकीर्तन प्रारंभ हुआ। ठाकुर भावावेश में लीन हो नृत्य करने लगे। श्रीधर और विधु घोष आदि गुरुभ्राता भी मग्न हो गए। काफी देर तक कीर्तन चलता रहा। संकीर्तन के बाद हरिलूट देकर ठाकुर आसन पर बैठे।

'नेदं यदिदमुपासते।' भगवत्-लाभ का सटीक उपाय।

एक व्यक्ति ने प्रश्न पूछा-देवी देवताओं की उपासना से क्या मुक्ति मिल सकती है? ईश्वर के प्रति प्रेम किन उपायों से उत्पन्न होता है? ईश्वर की उपासना कब करना चाहिये?

ठाकुर-**'चन्द्र, सूर्य, वरुण, अग्नि, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, शिव,**

इन देवताओं की जो पूजा करते हैं, वे सकाम उपासना करते हैं। उन्हें इन देवताओं के सिवा और कुछ प्राप्त नहीं होता। ब्रह्म को भी देवता मानकर पूजा करो, तो देवता ही प्राप्त होंगे। 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां स्तथैव भजाम्यहम्।' जो मुझे जिस रूप से भजन करे, मैं उसे उसी रूप में प्राप्त होता हूँ। उपनिषद् में है- 'नेदं यदिदमुपासते'-अर्थात् कर्मेन्द्रिय या मन द्वारा लोग जिन वस्तुओं की उपासना करते हैं अर्थात् इन्द्रिय व मन के जितने विषय है, वह मैं नहीं हूँ। मैं इन्द्रिय ग्राह्य या मन ग्राह्य अर्थात् सृष्ट पदार्थों से सम्पूर्ण भिन्न हूँ। वाक्य, मन, चक्षु, कर्ण, प्राण इन सबके द्वारा जो उपासना की जाय-वह भी मैं नहीं हूँ। अतः मैं सृष्ट वस्तु नहीं हूँ। उपनिषद का उपदेश-'नेदं यदिदमुपासते' उपदेश मात्र बोध होता है। जब तक आँख, कान, इन्द्रियगण बाहरी वस्तुओं से आकर्षित होती रहें, तब तक भीतर प्रवेश करना कठिन है। शरीर को छोड़कर भीतर प्रवेश करने के दो पथ एवं एक ही उपाय है। किसी प्रकार एक बार भगवत् दर्शन हो जाय, तो शरीर की ओर ध्यान नहीं रहता। सहज ही शरीर का बोध भी नहीं रहता, किंतु यह अवस्था सबको तो मिल नहीं पाती। अतएव किसी एक व्यक्ति के प्रति अन्तःकरण से प्रेम करना होगा। इसके लिए पहले अहिंसा का अभ्यास करना पड़ेगा। मन, वचन, कर्म से किसी को भी कष्ट नहीं पहुँचाऊँगा। कोई मुझे मारे, गाली दे, मेरा सर्वनाश भी कर दे, तो उसका अहित नहीं चाहूँगा। इस प्रकार द्वेष-हिंसा रहित होने पर हृदय में प्रेम का उदय हो सकेगा। वह प्रेम किसी को अर्पण करके केवल उसी का ध्यान, चिन्तन करते हुए-सबकुछ विस्मृत हो जायगा।

ऐसी अवस्था हो, तो सहज ही भगवान को प्राप्त किया जा सकता है।'

मग्नावस्था के कथन।

रात के अंत में माँ काली का आह्वान करने के बाद ठाकुर मग्न अवस्था में कहने लगे एवं विधु मजुमदार तथा कुंज ठाकुरता ने लिखा-**'नए-नए घटों की स्थापना की गई है। जीव को अब कोई भय न रह गया। मन्द-मृदुल पवन से पताका फहरा रही है। स्त्री, पुरुष सबकी चरण धूलि ग्रहण करो उज्ज्वल ध्वजा उड़ रही है, डंका बज रहा है। शिशुओं को अधूरी नींद में मत जगाओ, अन्यथा पुनः सो जाएंगे। जो पहले आए हैं-वे पीछे जाएंगे, जो पीछे आए हैं वे पहले जाएंगे। मंगलचण्डी की पूजा हो। आनन्दमयी का घट स्थापना करो। घर-घर मंगलचण्डी की पूजा करो। देह में घट स्थापना करो, पूजा करो, मान-मर्यादा करो, नहीं तो माँ चली जाती हैं, पूजा न करो तो नहीं रहती।'**

'सभी स्त्रियों को मातृवत् देखना होगा। माँ विश्वजननी एवं गर्भधारिणी माँ समान हैं। स्त्रियों में उसी माँ को देखकर प्रणाम करो। माँ आनन्दमयी को सब नारियों में देख सको-या एक भी नारी को यदि उस दृष्टि से प्रेम कर सको कि वह देवी है, तो उसे प्रणाम करने पर पाप दूर होते हैं। ऐसा करने पर एक ही दिन में सिद्धि लाभ कर सकते हो। चण्डी दास ने जैसा रजकिनी से किया था। लोग दोष देते हैं, वह असत्य है, ऐसा कुछ नहीं था। नारी पर कुदृष्टि डालनेवाले का मरण भला है।'

"धूल मिट्टी हो जाना पड़ेगा। जीवन्मृत होना पड़ेगा। जब

तक भीतर अहंकार की भावना है, तब तक सिर पर पहाड़ पर्वत हैं। भगवान दर्पहारी है-जरा भी अहंकार आने पर दोनों गालों पर थप्पड़ जड़ देते हैं। नाक-कान रगड़ना पड़ता है। 'माँ रे, बाप रे' बोलने तक का मौका नहीं देते। इससे यदि कुछ सुधार हुआ तो ठीक, नहीं तो गर्दन पकड़कर कहाँ फेकेंगे कोई ठिकाना नहीं।"

'साधन-भजन करके मेरी यह उन्नत अवस्था प्राप्त हुई, ऐसा यदि मन में विचार आया, तो खैर नहीं समझो। भगवान का विचार तराजू के काँटे के समान है। लक्ष्मणजी सीताजी के पैरों की ओर देखते थे, पर क्या वे और कुछ नहीं देख पाते थे। वे सभी के पैरों की ओर देखते थे। मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष-लता-सबके निकट अवनत होना पड़ेगा। ऐसा करने पर ही कृतकार्य हुआ जा सकता है। आसमान में हल्के, सफेद मेघ हों तो जैसे विद्युत दिखाई पड़ती है, वैसे ही देखा जा सकता है। तभी धनुर्धारी रामचन्द्रजी साथ रहते हैं।'

अज्ञात् अपराध से लीलादर्शन बंद होना: रूप गोस्वामी और लंगड़े वैष्णव की कथा।

यथार्थ धर्म-पथ तलवार की धार की तरह तीक्ष्ण है। भगवान का संग लाभ हो जाने पर, दीर्घकाल उसका भोग करना कितना कठिन है, ठाकुर यह समझाने के लिये कितनी ही कथाएँ सुनाया करते हैं। हिंसा, द्वेष, परनिन्दा जैसी भावनाएँ अन्तःकरण में रहने पर धर्म लाभ नहीं होता। अज्ञतापूर्वक भी यदि भगवत् भक्त का कोई कार्य या आचरण किसी और को अप्रिय या उद्वेगकारी प्रतीत हो, तो तुरंत वे भगवत्संग से वंचित हो जाते हैं। इसी बात को समझाने

के लिये ठाकुर ने श्री रूप गोस्वामी के जीवन की एक घटना कह सुनाई। श्री रूप गोस्वामी राधाकुण्ड के तट पर बैठे हुए, श्रीराधा-कृष्ण की जलक्रीड़ा का लीला-दर्शन कर रहे थे। गोपिकाएँ घेरकर कृष्ण को पानी छींटकर परेशान कर रहीं थीं। श्रीकृष्ण उनकी घेरेबंदी से किसी तरह निकल नहीं पा रहे थे। यह सब देख रूप गोस्वामी खिलखिलाकर हँस पड़े। एक वैष्णव बाबाजी थोड़ी ही दूरी पर खड़े थे, उन्हें हँसता देखकर सोचने लगे-शायद मेरे ही टेढ़े-मेढ़े आकृति व लंगड़ेपन को देखकर रूप गोस्वामीजी हँस रहे हैं, अब उनके पास जाकर क्या करूँगा? यह सोचकर बाबाजी दूर से ही साष्टांग प्रणाम करके, मथुरा की ओर चल पड़े। इधर रूप गोस्वामीजी का लीला-दर्शन बंद हो गया। अचानक यह क्या हुआ, सोचकर वे चौंक पड़े, कोई भी कारण समझ में न आया। तब उन्होंने अपने ज्येष्ठ भ्राता सनातन गोस्वामी के पास जाकर सारी बात कह सुनाई एवं इसका उपाय पूछा। सनातन गोस्वामी ने कहा-अवश्य कोई वैष्णव अपराध हो गया है, अन्यथा ऐसा नहीं हो सकता। रूप गोस्वामी ने कहा कि वे तो एकान्त में लीला दर्शन में तल्लीन थे, वहाँ कोई भी न था। सनातन गोस्वामी ने कहा-अनुसंधान करो। खोजबीन के बाद रूप गोस्वामीजी को पता चला एक वृद्ध, लंगड़े वैष्णव बाबाजी मथुरा से दर्शनार्थ आए थे एवं वे दर्शन न करके ही मथुरा चले गए। रूप गोस्वामी मथुरा पहुँचे, बाबाजी को ढूँढ़कर साष्टांग प्रणाम करके, बिना मिले लौट जाने का कारण पूछा। तब बाबाजी ने सब कुछ कह सुनाया। रूप गोस्वामीजी ने अपने हँसने का यथार्थ कारण बाबाजी से कह सुनाया, जिसे सुनकर बाबाजी लज्जित हुए। रूप गोस्वामीजी ने अपने अज्ञात् हुए

अपराध के लिये क्षमा याचना की, और लौट आए। उन्हें पुनः लीला दर्शन होने लगा। ठाकुर की बातें सुनकर मैं गीता के द्वादश अध्याय के-लोकान्नोद्विजते च यः स च मे प्रियः-का अर्थ समझ पाया।

शास्त्र-सदाचार का अनुसरण ही एकमात्र निरापद पथ है।

एक गुरुभ्राता ने पूछा-शास्त्र व सदाचार नहीं मानकर, महात्मा एवं महापुरुषों के अनुसार चलने पर क्या आत्मा की उन्नति नहीं होती?

ठाकुर-'**शास्त्र व सदाचार छोड़कर दूसरे पथ से यदि कोई ब्रह्मलोक भी ले जाये, तो कभी मत जाना, क्योंकि कभी-कभार कोई व्यक्ति पूर्वजन्म की सुकृति के फलस्वरूप अन्य पथ से भी सद्गति प्राप्त कर सकता है, किंतु जिनकी पहली शुरुआत है, वे घनघोर अंधकार में भटक जाएंगे। शास्त्र का अवलम्बन प्रयोजनीय है। शास्त्र पर विश्वास रहे, तो कोई डर नहीं रह जाता। ऋषिप्रणीत शास्त्र तथा उन्हीं के द्वारा प्रतिष्ठित सदाचार के अनुसरण से अवश्य लाभ मिलता है। शास्त्र पाठ से कई धोखाधड़ी से रक्षा पा सकते हो। शास्त्र न जानो, तो सभी बातों पर अविश्वास होगा। जानकारी रहे तो सत्य-असत्य की पहचान कर सकते हो। किसी को ज्वर में कुनैन से फायदा मिला, पर मुझे यदि ज्वर नहीं है, तो बड़े लोगों से सुनने पर मैं कुनैन क्यों खा लूँ? इसके लिये युक्ति और आत्मप्रत्यय से प्रत्येक बात मिलाकर देख लेना और फिर ग्रहण करना चाहिये। जो शास्त्र पर विश्वास रखते है, उन्हें युक्ति व आत्मप्रत्यय के साथ शास्त्र**

का मेल हो रहा है या नहीं, यह भी देखना होगा, यह शास्त्रों का ही उपदेश है। हम तो शास्त्र व सदाचार के दासानुदास हैं।'

बंधुहीन जीवन की दुर्गति।

गुरुभ्राताओं के प्रश्न के उत्तर में ठाकुर ने बंधुहीन जीवन में होने वाली दुर्दशा के बारे में लिखा-**"पुत्र से भी बंधु या मित्र श्रेष्ठ है। 'पुत्रं पिण्ड प्रयोजनात्'-किंतु मित्र तो चिरकाल का मित्र है। मित्र का स्वार्थ या प्रयोजन नहीं रहता। वह मित्र के सुख में सुखी, मित्र के दुःख से दु:खी और उसी की तृप्ति से तृप्त हुआ करता है। ऐसा मित्र जिसके पास नहीं हैं, वह बंधुहीन हैं। पहले सभी के ऐसे एक-दो मित्र हुआ करते थे, परन्तु आजकल ऐसे मित्र पाना असंभव सा हो गया है। मतों का मेल ही मात्र मित्रता नहीं। एक उद्देश्य, एक प्रयोजन या एक सा व्यवसाय यह भी मित्रता नहीं। यथार्थ मित्र-लाभ दुर्लभ है। मित्र तो दूर की बात, कभी जी हल्का करने के लिए मन खोलकर बात कर सकें, ऐसे विश्वस्त व्यक्ति भी आज नहीं मिल पाते। विश्वास करके किसी से कुछ गोपनीय बात कहोगे, तो सुन पाओगे-बीच बाजार उसी बात को लेकर उपहास किया जा रहा है। यही काल की गति है। अपने मन की सुख-दुःख की बातें यदि कोई व्यक्त न कर पाये, तो मन कुटिल हो जाता है। यह कुटिलता भी महापाप है। साधन-भजन न करके भी कोई यदि केवल सरल व सहज बना रहे तो इसी के प्रभाव से मुक्तिलाभ कर सकता है। सरल हृदयवाला ही सर्वदा सत्यवादी होता है। कपट हृदय से हजार यज्ञ, योग, साधनभजन करो, नरक गामी होना पड़ता है। कपट हृदय सदा**

असत्य चिंतन व असत्य भाषण करता है। बंधु विहीनता से यह दुर्गति हो सकती है।”

‘इन्हीं कारणों से समाज में संकोच का प्रवेश हुआ है, कि कोई यदि यथार्थ समवेदना न रखे, समव्यथी न हो, ऐसे परिचित, अपरिचित व्यक्ति किसी घटना को ठीक न समझकर, यहाँ-वहाँ निन्दा करता फिरेगा। मत-विरोध से विशेष मित्रों से भी विरोध हो जाता है। विरोधी मत को, लोगों के बीच घृणित सिद्ध करने के लिये कई दोषारोपण करते एवं चरित्र पर लांछन लगाने लगते हैं। इस कारण ईसाई समाज में कई हत्याएँ हुई। ब्राह्म समाज में भी हुई और हो भी रही हैं। सभी देश, सभी संप्रदायों में धर्म के बाह्य अंग अर्थात् कर्मकाण्ड आदि को लेकर विरोध है और दल भी बनते हैं। यह सब छोड़कर यथार्थ धर्म, जो कि जीवन-मरण, सब समय का साथी है, उस पर नजर डालें तो विवाद काफी कम हो जाय। इस धर्म-विवाद को विदा किए बिना, सत्यधर्म की शोभा का विस्तार नहीं हो पाता।”

थोड़ा रुककर ठाकुर ने पुनः लिखा-**‘मैं जिसे चाहता हूँ, उसके बारे में जितनी भी अच्छी बातें सुनी है, उन्हें बताने की इच्छा स्वाभाविक है। अपनी अवस्था कहकर बताने पर दोष होता है। किंतु उनकी प्रशंसा के रूप में बताने में दोष नहीं होता। जिसके प्रति जो आदर देना कर्तव्य है, वह न दिया जाय तो संसार में वह वस्तु नहीं रहेगी। वृक्षारोपण करो, पशु पालन करो, पर उन पर स्नेह व प्रीति न हों तो वे भी नहीं बच पाते।’**

कीर्तन में भावाविष्ट मुसलमान व्यक्ति के प्रति

आदर।

ठाकुर ने शांतिपुर की एक घटना के बारे में लिखा-**'नीलकण्ठ के गायन से बहुत लोगों की बड़ी भलाई हो रही है। नास्तिक भी विश्वासी बन गए। मैंने शांतिपुर में स्नान के लिए जाते हुए सुना कोई गायन चल रहा है, सोचा जरा सुनकर जाऊँ। ठाकुरबाड़ी में शाम चार बजे नाटमंदिर में गायन हो रहा था। एक मुसलमान व्यक्ति मग्न होकर सुन रहा था। उसके नेत्रों से आँसू बह रहे थे। एक गोस्वामी ने जाकर कहा-अरे उठो, तुम यहाँ क्या कर रहे हो? यह क्या बाजार है? वैसे ही नीलकण्ठ हाथ जोड़ते हुए कहने लगे-यह क्या प्रभु, कृष्ण नाम में जातिविचार कैसा? हरिदास तो यवन होकर भी जगतपूज्य हो गए। जिसे आप उठ कह रहे हैं, इस समय देवतागण भी उनकी चरण धूलि की प्रार्थना कर रहे हैं। उन्होंने तभी एक गीत और रचा एवं गाकर सुनाया।'**

समाज की उन्नति में आंग्ल शिक्षा तथा ब्राह्म धर्म।

आज ठाकुर ने समाज की उन्नति के मार्ग में ब्राह्मधर्म एवं अंग्रेजी शिक्षा के योगदान के बारे में लिखा-**'भारत स्वाधीन राज्य नहीं है। अंग्रेजों के राज्य में कुछ लाभ हुए हैं और हो रहे हैं। समय-समय पर जो अत्याचार हुआ करते हैं, वह राज्य का नहीं, राज-कर्मचारियों का दोष है। जब अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार नहीं हो पाया था, तब पाठशाला की शिक्षा की जो दुर्दशा मैं देख चुका हूँ, सोचने में भी डर लगता है। साधारण लोग तो गुरुजी**

की पाठशाला में ही पढ़ते थे। जमींदार के पास या रेशम व नील कोठी में काम करते थे। अधिकतर लोग घूस लेना, व्यभिचार, प्रजा उत्पीड़न, झूठी गवाही देना अपना गर्व समझते थे। एक बार मामाजी के यहाँ वेश्या बुलवायी गई। मामीजी के बुलाकर कहने पर, हम पांच-छः मौसेरे भाई लाठी लेकर 'मार-मार' कहकर भगाने गए-तो शर्म की बजाय वे हमें डराने, धमकाने लगे। अब वे सिर्फ उम्र में बड़े हैं, अतः अच्छे हो गए, ऐसी बात तो नहीं है। काल का शासन है, उससे कई लोगों का संशोधन हो जाता है। इसका एक कारण अंग्रेजी शिक्षा व ब्राह्मसमाज का प्रयत्न भी है। अनेकों अंग्रेज, शास्त्र व महात्माओं पर विश्वास रखते हैं। शास्त्र की चर्चा भी करते हैं। जब उनका विश्वास क्रियाशील होगा, तब अपूर्व घटना होगी। अभी तो बाबू लोग अंग्रेजों की ही बात सुनते हैं, इसलिये अंग्रेजों द्वारा ही कार्य करवाया जा रहा है।' प्रश्न-राम मोहन ने क्या एक नवीन धर्म का प्रचार किया है? ठाकुर ने लिखा-**'जिनका जैसा शास्त्र है, उसी का अवलम्बन करके राम मोहन राय ने धर्म का प्रचार किया। वे धर्म को दो भागों में बाँटकर विचार करते थे-व्यक्ति धर्म और सामाजिक धर्म। भारतवर्ष में हिन्दुओं का व्यक्ति धर्म एवं ईसाई, मुसलमानों का सामाजिक धर्म है। राम मोहन राय ऋषियों के पथ का अनुसरण करते हैं। अभी उस पथ को खो देने के कारण ही भिन्न-भिन्न दिशाओं की ओर भटकना पड़ रहा है।'**

ठाकुर के मुख सुना है, कि जब वे प्रचार-कार्य में रत थे, एक दिन शाम को चलते-चलते एक जनशून्य स्थान में जा पहुँचे। आसपास कोई न था। सामने विशाल मैदान, अंधेरी रात, जिसमें

राह भी नहीं दिखाई पड़ता था। आकाश में बादल छाए थे, बिजली कड़क रही थी। कुछ देर में जोरों की आँधी शुरु हो गई। दूर एक बत्ती जलती देख, जैसे-तैसे राह निकालकर ठाकुर वहाँ जा पहुँचे। वह एक जमींदार का घर था। जमींदार शराब पीकर धुत्त था। घर में कोई मेहमान आया है, सुनकर खीजता हुआ गालियाँ देने लगा। ठाकुर विशालकाय थे, उस पर कंबल ओढे, हाथ में लाठी, सिर पर पगड़ी बांधे थे। ठाकुर उनके पास पहुँचे तो उन्होंने पूछा-तुम कौन हो? यहाँ क्यों आए हो? ठाकुर ने कहा-**'देखते नहीं-मैं यमदूत हूँ।'** शराबी तो मारे डर के रोने लगा और बोला-क्षमा करो, मुझे मत ले जाओ, अब मैं शराब नहीं पीऊँगा। ठाकुर ने रात को विश्राम करके, सुबह गाँव के दस-बीस लोगों को बुलाकर जमींदार के घर इकट्ठा किया एवं उन सबको ब्राह्म धर्म का उपदेश दिया। जमींदार एवं और सभी बड़े संतुष्ट हुए। जमींदार ने बड़े आदर-सत्कार सहित ठाकुर को तीन-चार दिन घर पर रखा और रोज उपदेश ग्रहण करने लगा। ठाकुर के धर्म उपदेश से वह ऐसा मुग्ध हुआ कि जीवन भर शराब न पीने की प्रतिज्ञा करके ब्राह्मधर्म की दीक्षा ग्रहण किया। ठाकुर दीक्षा देकर चले गए। एक वर्ष बाद उसकी याद आते ही ठाकुर ने सोचा-दीक्षा दे आया, अब उसकी क्या अवस्था है, जरा देख आऊँ। ठाकुर बड़ी कठिनाईपूर्वक जाकर, जमींदार के घर पहुँच कर देखते हैं, जमीदार नशे में चूर, मत्त होकर नग्नावस्था में बैठा कुछ बड़बड़ा रहा है। ठाकुर पास गए और उनसे पूछा-**'यह क्या? ऐसी दशा क्यों हुई? मुझे पहचाना या नहीं?'** जमींदार ने कहा-आपको न पहचान सकूँगा? आपकी बात मानकर तैतीस करोड़ देवी-देवताओं को छोड़कर, एक ही को लिए पड़ा था। अब देखिए उसे भी भगाकर

परमहंस बना बैठा हूँ।

ठाकुर कुछ दिन उसके घर रहकर, फिर से उसकी बुरी लत छुड़वाकर वापस आए सुना है, जीवन के शेष दिन जमींदार ने सदाचारपूर्वक बिताये। ठाकुर के ब्राह्मधर्म के प्रचारकाल में शांतिपुर की दशा बड़ी शोचनीय थी। अफीम, गांजा, चण्डु, गोली, मद्यपान आदि को छोटे-बड़े सभी दोषनीय नहीं मानते थे। ब्राह्म लोगों ने देखा, यदि यह दशा शीघ्र न सुधारी गई तो देश उजड़ जायगा। कोई भगवान का नाम नहीं लेता, न धर्म की बात ही सुनता है, तो सुधार हो भी तो कैसे? सबने विचार करके तय किया कि नशेबाज शराबियों को दो-चार आने देकर, उपासना के लिए ले आया करेंगे। उनसे कहा गया कि एक घंटा स्थिर बैठकर उद्बोधन एवं प्रार्थना सुनना पड़ेगा। पैसे के लालच में वे भी उपासना में योगदान देने को राजी हो गए। उपासना कक्ष लोगों से भर गया। ब्राह्मगण बड़े खुश हुए कि उन्हें उपासना से बड़ा लाभ मिलेगा। दो चार दिन सभी स्थिर बैठकर उपासना में योगदान देते रहे। एक दिन उद्बोधन के बाद एक वृद्ध नशेबाज ने जम्हाई लेकर, चुटकी बजाते हुए कहा-क्या अच्छा ज्ञान सुना। दूसरे ने कहा-आपके समान ही मेरी भी राय है। वह अँगुलियाँ फोड़ने लगा। तीसरे ने हँसकर कहा-उपासना तो हो चुकी, चलो जाकर अब जरा आनंद ले। सभी नशेबाज निकल पड़े। कुछ दिन यह कारनामा देखकर ब्राह्मों ने पैसे देकर उन्हें बुलाना बंद कर दिया। बाद में बड़ी कठिनाईपूर्वक म्यूनिसीपॅलिटी की मदद से नशाबंदी तथा समाज की दुर्नीति के निवारण करने में कुछ मदद मिली।

वस्तुतः वेद विभिन्न नहीं: परा तथा अपराविद्या।

एक संस्कृत के ज्ञाता, पण्डित, गुरुभ्राता ने ठाकुर से पूछा कि-ऋषियों ने लिखा है-*'वेदा विभिन्ना, स्मृतियो विभिन्ना, नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्। धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां, महाजनो येन गतः स पन्थाः।।'* क्या वस्तुतः एक वेद से दूसरे वेद का संबंध नहीं है। वे परब्रह्म की प्राप्ति कैसे करते थे? पराविद्या क्या है?

ठाकुर ने लिखा-**'ऋक्, यजु, साम, अथर्व सभी वेद एक है। शिक्षा के लिए उन्हें चार भागों में बाँटा गया है। पूरे चारों वेदों की शिक्षा के लिए पूरे छत्तीस वर्ष का समय लगता है। इससे भी सभी संपूर्ण वेदों का अध्ययन नहीं हो पाता। एक या दो भाग ही ठीक से अध्ययन कर पाते हैं। जो जिस अंश का अध्ययन कर लें, वे उस अंश के आचार्य बन सकते हैं। इसीलिए कहा गया है-वेदा विभिन्ना। वस्तुतः भिन्न नहीं है, जैसे शरीर में हाथ-पाँव भिन्न रहकर भी शरीर के ही अंग है। जो सामवेद के आचार्य हैं, वे यजुर्वेद की शिक्षा नहीं देते। फिर यजुर्वेद में सामवेद के विषय नहीं है। यजुर्वेद की शिक्षा पाना चाहो तो, यजुर्वेदीय आचार्य के पास जाना पड़ेगा। सम्पूर्ण वेदवेत्ता यदि मिले, तो उनके पास 'वेदा विभिन्ना'-नहीं होगा। व्यास ने बक रूपी धर्म में लिखा है। धर्म का तत्त्व गुहा में निहित है। गुहा का तात्पर्य मनुष्य का हृदय है। यह उपनिषद के एक श्लोक की व्याख्या है। ऋक् वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष--ये अपराविद्या हैं। जिससे परब्रह्म को प्रत्यक्ष कर**

सकें, वह पराविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या है। वह मनुष्य के अन्तःकरण निहित है। एक-एक ऋषि एक-एक वेद की शिक्षा देंगे। विभिन्न स्थानों में शिक्षा लेनी पड़ेगी। जब कोई मानव आत्मा में प्रवेश कर ले, तो सभी ज्ञान लाभ प्राप्त हो जाता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि इन अष्टांग योग द्वारा आत्मा में परमात्मा को लाभ किया जा सकता है। वेद शब्द में-ब्रह्म, परमात्मा, परब्रह्म हैं।'

कुछ रुककर ठाकुर ने पुनः लिखा-**'जीव समष्टि के बीच जो ईश्वर है, उसे ही हिरण्यगर्भ कहते हैं। जड़ उपासना-पंचभूत की होती है। हिरण्यगर्भ उपासना-जीव समष्टि, वासुदेव की उपासना है। ईश्वरोपासना अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव की उपासना। परब्रह्म उपासना-निर्गुण की। इन चारों के अलावा और भी हैं, वे अवस्थाएँ मुक्ति के बाद की हैं। जड़, हिरण्यगर्भ, ईश्वर, निर्गुण आदि उपासना के करते हुए जन्मांतर बाद, पराधर्म का अधिकार आता है। पराधर्म लाभ होने पर भी पूर्व की चार उपासनाएँ नष्ट नहीं होतीं। प्रत्येक उपासना में वह पराधर्म देखता है। मुक्ति के बाद की अवस्था पराधर्म की है। यह सब ऋषियों के बीच था। इसी से उपनिषद्, ऋग्वेद, पुराण, तंत्र, धर्मसंहिता में पराधर्म का उल्लेख है। सब उसके अधिकारी नहीं होते, इसलिये साधारण भाव से इसका उल्लेख नहीं किया जाता। विशेष रूप से शास्त्रज्ञान हो, तभी पराधर्म क्या है, समझा जा सकता है।'**

एक ने पूछा-तांत्रिक साधना में तुलसी व्यवहार निषिद्ध क्यों है?

ठाकुर ने लिखा-**'वामाचार मत से जो महाशंख की माला में**

कारण का उपयोग करते हैं, तुलसी, गंगाजल से उसकी प्रेत शक्ति नष्ट हो जाती है। इससे उनकी साधना नहीं हो पाती। वीरभाव से क्रमशः जब दिव्यभाव आ जाय, तब कोई भेद नहीं रह जाता।'

सोलह आश्विन की आंधी: ठाकुर की सत्यनिष्ठा।

सोलह आश्विन की विख्यात आंधी से जो युग प्रलय सा घट गया था, उसके बारे में ठाकुर ने लिखा-**'सोलह आश्विन की आंधी बुधवार के दिन आई थी। आदिसमाज आंधी की चपेट में ध्वस्त हो गया था। शाम को छत पर जाते ही याद आया, आज बुधवार है। कमर कसकर बाहर निकला। हैलिडे स्ट्रीट में गले तक पानी चढ़ आया, मैं तैरने लग गया। रास्ते के जल में कई मृत देह बहे जा रहे थे। समाज पहुँचकर देखा सब टूट-फूटकर ढेर हो गया है। दूसरे दिन मेडिकल कॉलेज में ढेरों शव अलग-अलग रखे गए थे। गंगा तट पर नाव न मिली, मात्र नाव की लकड़ियाँ व कीलें पड़े मिले। जहाज रास्ते पर जा पड़ा था। दूसरे दिन नाव से शांतिपुर गया। मार्ग में असंख्य नौकाएँ डूबी हुई मिली। शव तैर रहे थे। गहनों से लदी औरतों के शव थे। कोट, पैंट, घड़ी, चेन, जेब में नोटों की गड्डी लिए किसी व्यक्ति का शव पड़ा था। गाय, बकरी, भेड़, सुअर, कुत्ते, सियार भी मरे पड़े थे, कुछ जीव रास्तों पर मरे पड़े थे। बड़ा भयानक दृश्य था।'** ठाकुर की बात सुनकर गुरुभ्राताओं ने पूछा-घर में लोग स्थिर नहीं रह पा रहे थे, ऐसी भयंकर आंधी, तूफान,वर्षा के बीच गंगा तैरकर आप क्यों ब्राह्मसमाज गए?

ठाकुर-'हम कुछ ब्राह्म लोगों ने देवेन्द्रनाथ ठाकुर के निकट यह स्वीकृति दी थी कि हम प्रति बुधवार एवं रविवार ब्राह्मसमाज की उपासना में अवश्य योगदान करेंगे।' प्रश्न-क्या उस दिन दूसरे ब्राह्म भी गए थे? ठाकुर-**'नहीं और कोई नहीं जा पाया। जब मैं लौट रहा था, तो देखा कि केशव बाबू पालकी में चढ़कर चले जा रहे हैं। फिर हम दोनों ने मिलकर उपासना की।'** ठाकुर की बात सुनकर हम सब हैरान रह गए। अचानक जीवन-मरण की समस्या की स्थिति में, मृत्यु को भी स्वीकार करके, वचनपालन के लिए इस प्रकार संकट के सागर में कूद पड़ना बड़ा विस्मयकारी लगा।

विवेक संस्कार गत: भगवत् आदेश अति दुर्लभ।

दोपहर को शहर के कई मान्य व्यक्ति ठाकुर के पास आ पहुँचे। धर्म संबंधी विभिन्न प्रश्नों के बाद नवविधान समाज के एक ब्राह्म ने ठाकुर से पूछा-विवेक क्या है, क्या यह ईश्वर का आदेश नहीं है? उत्तर में ठाकुर ने लिखा-**'व्यक्तिगत ज्ञान पर विवेक प्रतिष्ठित होता है। ब्राह्मण का विवेक उसे। चाण्डाल की छाया पर पैर रखने से रोकता है। किंतु उसी ब्राह्मण के ब्राह्मधर्म ग्रहण करने पर, उसका विवेक उल्टा ही कहेगा। देखा गया है कि, जो विवेक पहले उसे निषेध करता था, वही अब स्वीकृति देता है।'**

ब्राह्म ने पुनः ठाकुर से पूछा-आजकल कई लोग आदेश, प्रत्यादेश की दुहाई देते हैं। परमेश्वर का आदेश कैसे समझा जा सकता है?

ठाकुर ने लिखा-**'प्रत्यादेश कई प्रकार से हुआ करते हैं। परलोक से कोई आत्मा उपदेश दे, कोई महापुरुष सूक्ष्म देह में**

आकर उपदेश दें, तो उसे प्रत्यादेश कहते हैं। वस्तुतः यथार्थ प्रत्यादेश भगवत् आदेश होता है। विशेष रूप से चित्त-शुद्धि न हो गई हो तो प्रत्यादेश, भगवत् आदेश सुनाई नहीं देता। भगवत् आदेश विवेक या मन का भाव नहीं होता। यह आत्मा द्वारा श्रवण किया जाता है। वस्तुतः प्रत्यादेश जीवन भर में एक या दो बार ही हो पाते हैं। एक भी प्रत्यादेश हो, तो उसके साथ सारी शक्तियाँ निहित रहती हैं। 'अहिंसा परमोधर्मः'-यह सुनकर बुद्धदेव ने सारे संसार को जागृत किया। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने 'जीव पर दया, नाम में रुचि' यह सुनकर जगत को विभोर कर दिया। यीशु ने सुना-'जगत की सेवा से ही जीव का उद्धार हो सकता है, एक व्यक्ति दो प्रभु की सेवा नहीं कर सकता।' यदि कोई व्यक्ति प्रत्यादेश सुने, तो वह घर के कोने में छुपा नहीं रह सकता, सारे जगत में व्याप्त हो जाता है। ऋषियों ने जो भी प्रत्यादेश सुना था, वह सब उपनिषद् के रूप में है। प्रत्यादेश सदैव सत्य, पतित-पावनकारी, ज्वलन्त, उत्साहपूर्ण एवं मधुर होता है। उससे किसी से मतविरोध या संघर्ष नहीं होता।'

'बाल्यावस्था में किसी से मित्रता हुई हो, फिर बीस वर्ष तक मुलाकात न हुई हो, फिर एक दिन वह मित्र आकर नाम लेकर पुकारे, तो भी हम उसका स्वर कैसे पहचान लेते हैं--यह बात किसी से कहकर नहीं समझाई जा सकती। उसी प्रकार ईश्वरादेश कैसे जाना जा सकता है, यह कोई समझा नहीं सकता।' ठाकुर की कापी में एक सुंदर कविता देखकर अच्छा लगा, सो उसे उतारकर डायरी में लिख लिया। शायद किसी गुरुभाई-बहन ने ठाकुर के उद्देश्य से यह लिखा होगा, अच्छा लगा

सो उतार लिया। डूबूक तोमार प्रेमे जगत संसार, मातुक तोमार प्रेमे जीवन सबार .....।

ठाकुर की वन्य-महिष तथा व्याघ्र से रक्षा: मन के संयम से अहिंसा।

प्रचारक अवस्था में ठाकुर ने एक बार बाघ और जंगली भैंसे से किस प्रकार आश्चर्यजनक तरीके से रक्षा पाई थी, वह एक अद्भुत घटना है। उसे श्यामाकांत पण्डित महाशय ने लिखकर रखा था। वह इस प्रकार है-ठाकुर मैमनसिंह से सेरपुर, बगुड़ा की तरफ जा रहे थे। साथ एक मार्गदर्शक भी था। कुछ दूर चलकर राह भटककर वे कास के वन में जा पहुँचे। देखा कुछ ही दूरी पर एक जंगली भैंसा उन्हीं की ओर ताक लगाकर, कूदता हुआ आ रहा है। तब क्या करें, वे बड़ी चिंता में पड़ गए। तभी हवा के झोकों से कास के झाड़ियों के हिलते ही एक गढ़्ढा दिखाई पड़ा। ठाकुर ने साथ के व्यक्ति से कहा-**'चलो इस गड्ढे में घुस जाएँ।'** व्यक्ति ने कहा-यदि किसी हिंसक पशु का स्थान हो, तो जाकर क्या मरना है। ठाकुर ने कहा-**'ऊपर रहकर तो मरना ही है, वहाँ घुसने पर एक-दो बार भगवान् के नाम का स्मरण तो कर पाएंगे।'** उसे साथ लेकर ठाकुर गढ़े में घुस गए। भैंसा उन्हें देख न पाया। गुस्से से सींग मारकर खुर से जमीन खोदता रहा, फिर चला गया। थोड़ी देर बाद वे भैंसे को न देख पाए, देखा एक हिरण दौड़ा चला जा रहा था। व्यक्ति ने ठाकुर से कहा-जरुर इसके पीछे बाघ है। एक संकट से उबरे, तो दूसरा आ खड़ा हुआ। यह सुनते ही ठाकुर ताली बजाने लगे, जिसे सुनते ही हिरण-दूसरी ओर भाग चला। थोड़ी देर में एक

बाघ भी उसी ओर दौड़ता दिखाई पड़ा। वह हिरण के पीछे चला गया। इधर नहीं आया, इस प्रकार यह संकट भी टला। साथी को लेकर ठाकुर शाम तक एक उद्यान में पहुँचे। वहाँ उन्हें कुछ जलपान कराने के बाद कुछ लोगों ने कहा-यह स्थान निरापद नहीं है, हम भी यहाँ नहीं रहते। उन्होंने ठाकुर को निरापद स्थान में पहुँचा दिया। ठाकुर कहा करते हैं इस घटना को प्रतिदिन वे भगवान् की कृपा समझकर, स्मरण करते हैं।'

एक गुरुभ्राता ने कहा-प्रतिदिन यथासाध्य प्रयत्न तो करता हूँ, किंतु मन संयत क्यों नहीं हो पाता?

ठाकुर-**'जिसे अपना अहितकारी शत्रु मानते हो, उसकी भी निष्कपट भाव से सेवा करो। उसका जिसमें हित हो, ऐसा आचरण करो। हृदय के भीतर कहीं भी शत्रुता रहे, तो मनस्थिर नहीं होता। भीतर घाव सड़ता रहे, ऊपर मलहम लगा भी दो, तो भीतर शरीर सड़ता रहता है।'**

अर्थ समझकर नाम करने का फल: कर्म व निर्भरता।

एक ने प्रश्न किया-अन्य साधन-भजन न करके क्या केवल भगवान् का नाम करने पर कल्याण साधित नहीं होता। भगवान् का नाम लेने का अधिकार तो सभी को है?

ठाकुर-**'पाँच वर्ष के बालक को क्षेत्र तत्त्व, ज्योतिष की शिक्षा दी जाय, तो कोई फल न होगा। साधारण सत्य पर तो सभी का अधिकार है। जगत में एकमात्र नाम का उपदेश देना ही यथेष्ट है, किंतु किसका नाम ले रहे हैं--यह तो दृढ़ रूप से विश्वास करना**

ही पड़ेगा। एक नाम से अनेकों वस्तुओं का ज्ञान हो सकता है, जैसे हरि का अर्थ-सूर्य, चन्द्र, अश्व, सिंह, वानर सभी समझा जा सकता है, फिर पापहारी भगवान भी समझे जा सकते हैं। इसलिए नाम के साथ, उस नाम के वाच्य को भी सुंदर तरीके से समझना पड़ता है। ब्रह्म नाम में जगत, ब्रह्माण्ड, आत्मा, ज्ञान, वेद ऐसे अनेकों अर्थ हैं, इसलिये पहले वस्तु-ज्ञान का प्रयोजन है। इस जगत के एक स्वामी हैं, यह दृढ़ विश्वास जिन्हें है, उन्हें नाम का उपदेश दिया जा सकता है, अन्य उपदेश का प्रयोजन नहीं। मुँह से यह सभी कहते हैं, कि 'एक स्वामी हैं', पर यथार्थ यह विश्वास नहीं हैं। क्योंकि जरा भी संकट आने पर उस स्वामी पर विश्वास नहीं रख पाते। शिशु जैसे माता पर निर्भर होता है, उसी प्रकार स्वाभाविक निर्भरता आए तो सारे युक्ति, तर्क लुप्त हो जाते हैं। जो और कुछ नहीं जानता शिशु की भाँति रोता है, उसे मात्र नाम से ही नामी की प्राप्ति हो जाती है।'

थोड़ा रुककर ठाकुर ने स्वयं प्रवृत्त होकर लिखा-**'लक्ष्य ठीक रखकर निष्काम भाव से कर्म करने पर हानि नहीं, फायदा ही हुआ करता है। अपने विवेक के अनुसार न चलकर किसी के मत या व्यक्ति की आज्ञा अनुसार चलें या धर्म करें, तो हृदय स्फूर्तिहीन होगा, तब हानि हो सकती है। ईश्वर की आज्ञा जानकर, स्वविवेक के अनुसार चलने पर लाभ मिलता है। धर्म के लिये जब जो अच्छा लगे, तभी करो। मनुष्य की ओर मत देखो। मनुष्य जब अधर्म करता है, तब नारायण पहले तो निवारण करते हैं। फिर भी न माने तब नारायण पलायन करते हैं। उनके पीछे लक्ष्मीजी भी चली जाती हैं। रह जाता है केवल-**

पूर्व का गौरव। गौरव ढोते-ढोते सिर पर घाव पड़ जाता है, लोग पास नहीं आते, विवाद बढ़ता है। लोग भगा देते हैं। तब गृहिणी से मारपीट करता है। नलराजा ने भी काफी भोगा है। सुरापान, व्यभिचार, जुआ दुःखों का मूल है। जितना नाम करोगे, उतना लाभ पाओगे। जब तक मनुष्य की क्षमता है, उसे श्रम करना ही पड़ेगा। अभी निर्भरता जैसी बात नहीं हो सकती।'

दावानल से महापुरुष की कृपा से रक्षा पाना।

आज बातचीत के दौरान ठाकुर ने उनके जीवन की एक अद्भुत् घटना बताई। हम सभी सुनकर हैरान रह गए। घटना इस प्रकार है। दीक्षा प्राप्ति के पहले गुरु-अनुसंधान करते हुए ठाकुर चन्द्रनाथ की ओर गए। लोगों से सुना था कि पर्वत पर कभी-कभी प्राचीन महापुरुषों को देखा जाता है। पर्वत बाघ, भालू, हाथी, गेंडा जैसे हिंसक पशुओं से भरा है। विशेष सावधानी की व्यवस्था बिना पर्वत पर जाना संभव नहीं। ठाकुर महापुरुषों की दर्शनाभिलाषा से अधीर हो उठे। जो होगा भाग्य में होने दो, सोचकर ठाकुर अकेले ही पर्वत शिखर पर जा पहुँचे। चारों ओर असंख्य पर्वत श्रेणी एवं एक ओर नदी बह रही थी। पर्वत सीधा खड़ा था। मनोरम स्थल पर बैठते ही ठाकुर ध्यानमग्न हो गए। पर्वत पर आग लग गई एवं तीनों ओर से पर्वत को घेर लिया। ठाकुर उठ खड़े हुए। हवा चलने से आग और भभक उठी और पर्वत अग्निमय हो उठा। राह ढूँढने पर ठाकुर ने देखा असंख्य जीव जन्तु चुपचाप अग्नि की ओर देख रहे हैं। अग्नि के ताप से पहाड़ मानो असह्य हो उठा। तभी कोई ठाकुर को सीने से लगाकर, हजार फुट से अधिक ऊँचाई से कूद पड़े। शून्य पथ पर

ही ठाकुर अचेत हो गए। महात्मा नदी तट पर उन्हें सुलाकर,अदृश्य हो गए। चेतना लौटने पर ठाकुर नदी किनारे चलते हुए, लोकालय पहुँचे। ठाकुर उन महात्मा को भी नित्य स्मरण किया करते हैं।

गुरुनानक व कबीर जी का धर्ममत।

प्रश्न-कबीर व नानक के धर्ममत में क्या अंतर है? जितने सामान्य लोग हैं, वे कबीरपंथी,पर नानकशाही लोग सभ्रांत हैं, ऐसा क्यों?

ठाकुर ने उत्तर लिखकर दिया-**'कबीर व गुरु नानक के धर्म में कोई भेद नहीं है। कबीरजी जुलाहा थे। ब्राह्मण, क्षत्रियों के बीच उनके मत का उतना अधिक प्रचार न हो पाया। उत्तर पश्चिम के मेहतर, चमार, डोम आदि जातियाँ भी कबीरपंथी हैं। उनसे यदि मिलो तो उनकी चरणधूलि लिये बिना नहीं रह पाओगे। गुरु नानक क्षत्रिय थे, अतः सभी ने उनका मत निर्बाध रूप से ग्रहण किया। गुरुनानक ने वेद, पुराण, स्मृति की मान्यता देकर तदनुसार उपदेश दिया है। वे सदा मनोमुखी या शास्त्रविहीन पथ की हानि दर्शाते हैं।'**

प्रश्न-सुना है अमृतसर के मंदिर में दिन-रात चौबीस घंटे निर्बाध रूप से भजन चलता है। क्या पहले से ही ऐसा होता आ रहा है?

ठाकुर-**'गुरु नानक के बाद चौथे गुरु श्री रामदास थे। उन्होंने अमृतसर के मंदिर, गुरुदरबार व सरोवर की स्थापना करके चौबीस घंटे भजन चलने की व्यवस्था की। केवल चार दण्ड का अवकाश रहता है। उस समय कोई कोई मंदिर में ध्यानमग्न रहते हैं। सारे दिन-रात में पाठ, स्तुति, संगीत, आरती एक साथ**

मिल कर संकीर्तन, चार सौ वर्षों से समान उत्साहपूर्वक चला आ रहा है।'

देखते-देखते कार्तिक माह समाप्त हो चला। दूर-दूर से जो गुरुभ्रातागण आए थे, पूजा की छुट्टी में ठाकुर का दर्शन, संग लाभ के बाद, छुट्टी समाप्त होते ही अपने स्थानों को लौट जाएंगे। सुना है, ठाकुर अभी गेण्डारिया नहीं जाएंगे। गेण्डारिया का आश्रम अभी सूना है। श्री कुंज घोष आश्रम की देखरेख करते हैं। जब अस्वस्थ होकर ठाकुर गेण्डारिया से कलकत्ता आए, तो उनके साथ शांति, जगबंधु बाबू, कुतु, नानी माँ, योगजीवन, श्रीधर, विधुभूषण घोष महाशय आ गए थे। श्री नवकुमार विश्वास एवं श्यामाकांत पण्डित महाशय, गया आकाशगंगा पर्वत पर असुविधा होने से कलकत्ता पहले ही आ पहुँचे थे। ठाकुर के कलकत्ता आने पर अब वे उन्हीं के साथ रहते हैं। विश्वास महाशय अभय बाबू के घर रहते हैं। सामान्य वेतन का एक काम भी जुटा लिया है। पण्डित महाशय आहार आदि की व्यवस्था अन्यत्र रखकर, शेष समय ठाकुर के साथ बिताते हैं। विधु घोष ठाकुर की अस्वस्थता के समय सेवा के लिए आए थे, अब ठाकुर स्वस्थ हैं, सेवा का प्रयोजन नहीं। चाय बनाना ही उनका निर्दिष्ट कार्य रह गया है, सो सुबह यथासमय चाय बनाते हैं। उनका परिवार गेण्डारिया में है, सो शीघ्र ही वे गेण्डारिया जाने वाले हैं। मेरी माता भी मुझे देखने के लिए अधीर हो रही हैं। माँ की याद से मुझे भी बड़ी बेचैनी महसस हो रही है। मन में निश्चय किया, यदि ठाकुर की इच्छा रही, तो इस माह के अंत में एक बार घर जाऊँगा।

शंकराचार्य का परिवर्तन।

आज गुरुभ्राता श्री कुंजबिहारी गुहठाकुरता ने ठाकुर से कहा-शंकराचार्य तो अद्वैतवादी थे, किंतु उनके स्तोत्र की भाँति सरस, मधुर एवं सुललित स्तोत्र कहीं नहीं मिलते।

ठाकुर ने लिखा-**'पहले तो वे अद्वैतवादी थे। इसी का प्रचार भी किया। बाद में द्वैतभाव का आश्रय लेने पर उनके प्राण सरस हुए। मुझे ही लो, पहले कालापहाड़ जैसा था, सिर्फ तोड़-फोड़ करता था। देवी, देवता, अवतार तथा तीर्थ आदि कुछ नहीं-ऐसा कहता था। अब देखो, कैसी अवस्था में आ पड़ा हूँ। देख रहा हूँ, ये सभी सत्य हैं। शुष्क-मत पर कोई कब तक टिका रह सकता है?'**

साधन-भजन के उपयुक्त स्थान का निर्देश।

साधन-भजन का उपयुक्त स्थान कहाँ है, पूछने पर ठाकुर ने लिखा-**'साधन-भजन का यथार्थ उपयुक्त स्थान हिमालय है। फिर नर्मदा, गोदावरी, गंगा-यमुना के तट के पथरीले स्थान अच्छे हैं। पंजाब में रावी नदी का तट भी अच्छा है। बंगाल कई कारणों से भजन के लिए ठीक नहीं हैं। जलवायु, मिट्टी सभी साधन विरोधी हैं। पहले बंगदेश में अनार्य लोगों का वास था। श्रापग्रस्त होकर आर्यगण बंगदेश आए। ब्राह्मणों का निवास स्थल गंगा-यमुना का मध्यवर्ती प्रदेश है। तीस वर्ष पहले ढाका, बरिशाल आने पर जो नाला था, वही अब कीर्तिनाशा बनी है, जो पद्मा नदी की शाखा है, नदी का नाम हाउलिया है।'**

'त्रिपुरा की अस्थियाँ पत्थर बन गई। कुछ अस्थियाँ रहीं, कुछ पत्थर बनी। त्रिपुर असुर ने तीन पुरियाँ लौह पुरी, रौप्य

पुरी, स्वर्ण पुरी बनवाया, सो उसका नाम त्रिपुरा पड़ा। महादेव ने ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र आदि देवों से मिलकर उन्हें तोड़ डाला और उसके वध से शिवजी का त्रिपुरारि नाम पड़ा।' 'प्रत्येक ग्राम चार सौ वर्षों में बदल जाता है। शहर जंगल बन जाता है। जंगल शहर बनता है। जहाँ पर्वत थे, वहाँ नदी बहने लगती है। दार्जिलिंग में बैठे पर्वत देखते हुए ऐसा लगता है, जैसे पर्वत श्रेणियाँ समुद्र की लहरें हों। जब नीचे था तो घर, वृक्ष, लता, नदी सब कुछ अलग-अलग दिखाई पड़ता था। ऊँचाई पर चढ़ा तो सभी एकाकार हो गए जैसे आसमान से घिरे हों। इसी प्रकार धर्म सोपानों पर चढ़ते हुए उस अनंत, भूमा पुरुष के वस्तुतः निकटवर्ती होने पर, उसी की सत्ता से सब आवृत हैं, ऐसा ही बोध होगा। तब पृथक् कल्पना करना असाध्य हो जायगा।'

ठाकुर ने आज हिमालय के नीलकमल के बारे में लिखा- **'हिमालय के बर्फ के बीच नीलकमल का वन है। कमल खिलकर अपूर्व शोभा बढ़ाते हैं। हिमालय के छोटे-छोटे तालों में ही यह कमल वन है। बर्फ पड़ने पर भी उसे भेदकर कमल खिलते हैं। हिमालय में एक प्रकार के झिंगुर है-ऐसा शब्द निकालते हैं, मानो किसी देवालय में घंटी बज रही हो। इसलिए इसे देवघंटी कहते हैं। प्रातः, मध्याह्न एवं शाम ऐसे तीन बार ये आवाज निकालते हैं। ढाका गेण्डारिया में भी एक प्रकार का झिंगुर था, जिसकी आवाज से लगता था, मानो तानपुरा बज रहा हो।'**

नरोत्तमदास ठाकुर की बातें।

गौड़ीय वैष्णव नरोत्तमदास ठाकुर को चैतन्य महाप्रभु का आवेश अवतार कहा करते हैं। उनकी वैराग्यपूर्ण प्रार्थनावली एक अनमोल रत्न की भाँति है। वे सारा जीवन व्याकुल हो रुदन करते रहे। इसका कारण पूछने पर, ठाकुर ने नरोत्तम दासजी के बारे में कई बातें सुनाई। उनमें से जो मेरे हृदय को छू गई, उन्हें मैं लिखकर रखता हूँ।

नरोत्तम दास ठाकुर ने जब सुना, कि महाप्रभु सपार्षद अन्तर्ध्यान हो गए, तो सोचने लगे-हाय! यह क्या हुआ महाप्रभु और उनके पार्षदों का संग न पा सका। अब इस जीवन का क्या प्रयोजन है? इस दुःख से वे अधीर हो उठे। महाप्रभु के गणों में से उस समय केवल लोकनाथ गोस्वामी जीवित थे। नरोत्तम दास उनके दर्शनार्थ व्याकुल हो उठे। लोकनाथ प्रभु वृन्दावन में निर्जन कुटिया में दिनरात भजन में तल्लीन रहते थे। नरोत्तम दास ठाकुर राजकुमार थे। उस समय उनकी सम्पत्ति की आय चौदह लाख रुपए की थी। उसकी ओर न देखकर, सब कुछ त्यागकर वे पैदल श्रीवृन्दावन की ओर चल पड़े। वृन्दावन पहुँचकर उन्होंने सुना कि वयोवृद्ध लोकनाथ गोस्वामी ने जीवन में न किसी को दीक्षा दान किया है, और न ही करेंगे। नरोत्तम रो-धोकर भी उनका आश्रय न पा सके। अंत में उन्होंने तय किया, कि शेष जीवन गोस्वामीजी की आश्रम सेवा में ही व्यतीत करेंगे। पूरे आश्रम के जल की पूर्ति हेतु, दूर यमुना से स्वयं घड़े में जल भरकर लाते। सूर्योदय से सूर्यास्त तक सिर पर गीले कपड़े की बेड़ लगी रहती, जिसे खोलने का मौका भी नहीं मिलता। एक दिन लोकनाथ गोस्वामी ने देखा नरोत्तमदास के सिर पर घाव पड़ गया और उसमें कीड़े पड़ गए हैं, पर नरोत्तम दास

को इसका कोई भान नहीं। दयावान लोकनाथ प्रभु का हृदय रो उठा। उन्होंने नरोत्तमदास को बुलाकर दीक्षा प्रदान की, उन्होंने यह भी आदेश दिया कि 'एकमात्र भगवान की सेवा-पूजा, ध्यान-धारणा में ही जीवन व्यतीत करना।' नरोत्तम दास ने वैसा ही किया। एक दिन एक प्यासा व्यक्ति कुंज में आकर पानी के लिए चिल्लाने लगा। नरोत्तमदास ने पूजा से उठकर, उसे पानी पिलाकर तृप्त किया। यह देख लोकनाथ गोस्वामीजी ने उन्हें बुलाकर कहा-बाबा नरोत्तम, तुम घर लौट जाओ। वहाँ जाकर ठाकुरजी की प्रतिष्ठा करके सेवा, पूजा करना। अतिथिशाला खोलकर-दीनदुःखी, दरिद्र, अतिथि, ब्राह्मण, वैष्णवों की विधिवत् सेवा करो। इसी में तुम्हारा यथार्थ कल्याण होगा। एकनिष्ठ होकर भगवान की सेवा का अधिकार बाद में आता है। वह अधिकार जन्म लेवे, तो और कोई कर्तव्य नहीं रह जाता। भगवान की सेवा छोड़कर, लोक सेवा की प्रवृत्ति जिनमें हैं, उन्हें लोक सेवा ही करना चाहिए। वृक्ष की जड़ में पानी डालो तो शाखा-उपशाखा, फल-फूल सभी की पुष्टि होती है, यह ज्ञान आ जाय, तब वह दूसरी पूजा नहीं कर पाता। नरोत्तम दास ने गुरुआज्ञा शिरोधार्य कर,उनके आदेशानुसार जीवन बिताया। उनकी प्रार्थना सुनकर आँसू रोक पाना संभव नहीं होता।

विधिहीन भक्ति, उत्पात का कारण।

प्रश्न-साधारण बाउल, वैष्णव एवं जनसाधारण में भी कभी खूब भक्तिभाव देखा जाता है। पर हमें तो ऐसा कुछ नहीं होता। ऐसा क्यों?

ठाकुर ने लिखकर बताया-**'श्वास-प्रश्वास में नाम जप करना ही**

परम साधन है। गोस्वामियों ने लिखा है कि स्मृति, श्रुति, पंचरात्र विधि बिना ऐकान्तिकी हरिभक्ति भी उत्पात का कारण होती है। भक्तिरसामृत सिंधु (वैष्णवों के भक्ति दर्शनशास्त्र) में लिखा है, कि बाहर के नृत्य आदि देखकर भाव का अनुमान लगाना संभव नहीं। भाव का लक्षण-कर्म करते हुए समय होने पर विवेक, वैराग्य का उदय होता है। निष्कामभाव से कर्म करने की इच्छा होती है। ऐसा करने पर कर्म समाप्त होता है, तब विश्वास का राज्य आता है।'

थोड़ा रुककर ठाकुर ने वैष्णवों के साधन-भजन व वेशभूषा के संबंध में लिखा-**'हरिभक्तिविलास में जिस प्रणाली से साधन-भजन की विधि दर्शायी गई है, वह प्रणाली अब प्रचलित नहीं है। पहले पण्डितों के सिर के बीच में शिखा रखी जाती थी और सारा मस्तक मुण्डित हुआ करता था। महाप्रभु के समय भी सभी संभ्रांत पण्डित इसे ही वेश मानकर धारण करते थे। अब कुछ वैष्णव मात्र इस वेश को धारण करते है एवं मान्यता रखते हैं।'**

बौद्ध साधन प्रणाली शास्त्रानुमोदित है या नहीं?

एक गुरुभ्राता ने पूछा-बौद्ध साधन हिन्दुशास्त्रों द्वारा अनुमोदित है या नहीं। किसी वेद या पुराण में इसके विषय में उल्लेख है या नहीं?

ठाकुर-**'हिमालय में बौद्ध लामाओं का मठ है। मैं भी वहाँ कुछ दिन रहा। उनकी साधन प्रणाली देखकर आनन्दित हुआ। शाक्यसिंह ने साधना की प्रथम अवस्था में उन्हीं ज्वार**

भाटाओं, उतार चढ़ावों को भोगा था। इसीलिये उन्होंने पूर्व शिक्षा, जो कि आत्मा की अंगीभूत न हो सकी, भूलने का यत्न किया और पुनः तपस्या आरंभ की। तब एक-एक करके सत्य उद्घाटित होने लगे, वे सब आत्मा के अंगीभूत होने लगे, बुद्धत्व का आलिंगन हुआ। अब बौद्ध लामा भी इसी प्रणाली का अनुसरण करते हैं। बौद्ध ग्रंथ पढ़ना हो तो पाली भाषा की शिक्षा ग्रहण करके, हिमालय में जाकर बौद्ध मठों में अध्ययन करना पड़ेगा। अनुवाद में अनेक भूल, त्रुटियाँ हैं। लामा गुरुओं का आचरण, रहन-सहन, साधन प्रणाली न देखकर बौद्ध धर्म ठीक से नहीं समझा जा सकता।'

'सब बौद्ध शास्त्र योगमूलक हैं। अथर्ववेद में योग उपदेश अधिक है। जितने तंत्र हैं, वे सब तापनीश्रुति के अनुगत हैं। इन बौद्धों की उपासना तंत्रमूलक है। जब बौद्धों से ब्राह्मणों का विवाद हुआ, तब वे सब वचन पुराणों में प्रक्षिप्त हुए। शास्त्रों का तात्पर्य समझना हो तो सम्पूर्ण रूप से निरपेक्ष होना पड़ता है। स्वयं पढ़कर नहीं बल्कि आचार्य के पास पढ़कर, शास्त्रों का सामंजस्य समझा जा सकता है।'

अन्य जीवों की अपेक्षा मनुष्य श्रेष्ठ कैसे?

आज ठाकुर ने जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, कीट-पतंगों की कृतज्ञता तथा अद्भुत क्रियाकलापों के बारेमें गेण्डारिया की घटनाएँ बतलाते हुए कहा-**'पशु-पक्षियों में मनुष्य की अपेक्षा कृतज्ञता की भावना अधिक होती है। इसलिये जिस व्यक्ति से उन्हें जरा भी अन्न मिले, उसे याद रखते है। मृत व्यक्ति के लिए जब तक उन्हें दुःख**

हो, वे नीरव रहते हैं। यही उनका स्वाभाविक अशौच है। ये भी अशौच के बाद स्नान करते हैं। बड़े चूहे छोटे चूहों को खाद्यान्न लाकर देते हैं। मकड़ी खाद्य फँसाने के लिए जाल बुनती है, उसी में बच्चों के खेलने की भी जगह है, खाद्य संग्रह करने का भी अन्य भाग है। ढाका के कुटीर में कुछ भी खाद्य पदार्थ लाते ही चूहे, चींटे, मकोड़े तथा अन्य कीट जान जाते थे। जब तक उन्हें खाने को न दें बदन पर चढ़कर सताते थे। मकोड़ा जाल से झूलता, कुछ पाकर सन्तुष्ट होकर चला जाता था। मनुष्य व इनके बीच सद्भावना होती है। सर्प व बाघ से भी मनुष्य की सद्भावना होती है। सभी जीव-जन्तुओं की अपने-अपने कार्यों में अपनी श्रेष्ठता होती है। मुझे मकड़ी की तरह जाल बुनना नहीं आता, और न तो बया पक्षी की तरह घोंसला बनाना ही आता है और न ही मैं धूल व चीनी मिला देने पर उन्हें अलग कर सकता हूँ, पर चींटी ऐसा कर सकती है।'

ठाकुर ने मकड़ी के बारे में एक दिन गेण्डारिया में लिखा था- 'आम वृक्ष के नीचे तुलसी के पौधे पर बहुत दिनों से एक मकड़ी रहा करती थी। दो दिन पहले वह स्थान छोड़कर आम वृक्ष की आड़ में आ गयी। मैं समझा नहीं कि इसने अचानक स्थान परिवर्तन क्यों किया? दो दिन बाद जब तेज आँधी आयी, तब समझा कि पहले ही इसका अनुमान हो जाने पर, मकड़ी ने नया स्थान चुन लिया था, जहाँ आँधी से उसे हानि न पहुँचे। दो दिन पहले उसे आँधी का अनुमान हो गया, यह भी जानकारी मिल गई, कि आँधी किधर से आएगी। अब कहो, मकड़ी मनुष्य से तुच्छ है, यह कैसे कहा जाय? भगवान के राज्य में कोई छोटा-

बड़ा नहीं है। सभी एक ही शक्ति द्वारा परिचालित होते हैं। प्रत्येक जीव-जन्तु को अपने-अपने जीवन-यापन की उपयोगिता प्रदत्त है। मनुष्य वृथा अहंकार करता है।'

रेवतीजी का कीर्तन: अद्भुत् कंठस्वर।

ठाकुर जब ढाका ब्राह्मसमाज के प्रचारक निवास में रहते थे, तब से एक भी दिन के लिए संध्या कीर्तन में बाधा नहीं पड़ी। ठाकुर के सामने धूप, गुग्गुल, चन्दन से धूनी जलाकर रखा जाता है। ठाकुर उसे प्रणाम करके स्वयं करताल बजाकर गाते-**'हरि से लागी रहो रे भाई, तेरा बनत-बनत बनी जाई। .... प्रभुजी ऐसा ही नाम तुम्हारा, पतित पवित्र लिए कर अपना।'** ठाकुर के कीर्तन के बाद गुरुभ्रातागण मिलकर कीर्तन आरंभ करते। संकीर्तन में हर दिन एक नये तरह का भाव एवं आनंद दिखाई पड़ता। ठाकुर के प्रिय शिष्य श्री रेवतीमोहन सेन महाशय जब मृदंग पर थाप लगाकर कीर्तन प्रारंभ करते, तो घर के सभी चंचल व विक्षिप्त होकर, उत्कंठा भरी दृष्टि से ठाकुर की ओर ताकते रह जाते, श्रोता मंडली स्तब्ध हो जाती है। रेवती बाबू के कंठस्वर का ठाकुर के अन्तस् से क्या योग है, नहीं मालूम-उनके कीर्तन प्रारंभ करते ही ठाकुर का स्थिर शरीर चंचल होकर, दाहिने-बायें डोलने लगता। सारे अंग-प्रत्यंग यहाँ तक कि मांसपेशियाँ भी थरथर काँपने लगती। ठाकुर आसन पर स्थिर नहीं रह पाते, उछलकर उठ पड़ते और नृत्य करने लगते। विद्युतचालित खिलौनों के तार जोड़ देने पर, जैसे वे कई तरह के नृत्य व खेल दिखाने लगते, उसी प्रकार रेवती बाबू की भावोद्दीपक अद्भुत् कण्ठ ध्वनि, ठाकुर की चरण वन्दना से परिपुष्ट

हो उठती है। अनजाने ही ठाकुर के प्रति भक्तवृंद का चित्त आकृष्ट होकर मग्न हो जाता। गुरुभ्राता भावाविष्ट होकर नृत्य करने लगते। जब ठाकुर हरि ध्वनि देते हुए अपना दाहिना हाथ सामने फैलाकर नृत्य करते, तो आनन्दधारा और भी बढ़ती जाती एवं सबको अभिभूत कर देती है। गुरुभ्राता हुँकार व गर्जन के साथ भावोन्मत्त होकर ठाकुर की परिक्रमा करते हुए नृत्य करने लगते। नाना प्रकार के भावों के समावेश से ठाकुर का शरीर अवसन्न सा हो पड़ता। काँपते हुए वे संज्ञाशून्य हो जाते। संकीर्तन का आनन्द भी शान्त होने लगता, तब गुरुभ्राता कुछ सामान्य होने लगते।

आज छुट्टी का दिन है। सुबह से कई स्त्री-पुरुष ठाकुर के दर्शनार्थ सुकियास्ट्रीट आ पहुँचे। देखते ही देखते हॉल खचाखच भर गया। बरामदे में भी जगह न बची। रेवती बाबू के कीर्तन सुनने को सभी साग्रह रुके हुए हैं। ठाकुर के चाय पी लेने पर मृदंग बज उठे। ठाकुर ने एक बार ऊपर की ओर देखा, फिर आँखें बंद कर लीं। रेवती बाबू ने गाना आरंभ किया-

तव शुभ सम्मिलने प्राण जुड़ाबे हृदय स्वामी.....।

...... रसे मिशामिशी होए हॉबो आमी तुमी तुमी आमी।।

गीत के एक दो पद गाते ही ठाकुर का चेहरा कुछ अलग सा हो उठा। उनका प्रेम विह्वल, मुख मंडल आरक्तिम हो उठा, ओंठ बारबार काँपने लगे। उज्ज्वल ताम्रवर्ण देह, गौरवर्ण का हो गया। हर्ष से पुलकित देह सिहरने लगा। ठाकुर स्थिर न बैठ सके, उठ पड़े। दाहिना हाथ ललाट पर एवं बाँया हाथ कमर पर रखकर मधुर नृत्य करने लगे। चारों ओर से स्त्री-पुरुषों का क्रंदन सुनाई पड़ने लगा। बहिर्वास को घूँघट की तरह ओढ़कर, ठाकुर नृत्य करते रहे।

दीर्घकाय ठाकुर की आकृति छोटी होने लगी। वे नीचे बैठकर आँचल से मानो कुछ छींटते और बिखेरते जा रहे थे। इस अपूर्व दृश्य की व्याख्या नहीं की जा सकती। आज हुँकार व गर्जना या कूदना फाँदना कुछ भी न हुआ। विचित्र प्रकार का ठाकुर का नृत्य देखकर सभी अनिवर्चनीय आनंद से विभोर हो गये। ठाकुर भावावेश में धराशायी हो गए। ऐसा नृत्य पहले कभी नहीं देखा था। रेवतीजी धन्य हैं, जिनके कीर्तन से ठाकुर आनंदमग्न हो गए। ठाकुर ऐसा आशीर्वाद दें, कि उनकी यह छवि आजीवन हृदय में अंकित रख सकूँ।

मैंने सुना है, कि रेवती बाबू के मधुर कंठ और कीर्तन सुनकर, द्वार पर उपस्थित एक सौम्य, वृद्ध साधु ने कहा-अभी जो गायन कर रहे हैं, संगीत विद्या में पारंगत न होते हुए भी उनका कंठ नाद अपूर्व है। कोई भाग्यवान ही ईश्वर की असीम कृपा से, केवल भगवत् भजन के लिए ऐसा कंठस्वर पाते हैं-ऐसा संगीत शास्त्रों में लिखा है।

आज बातचीत के दौरान ठाकुर ने लिखा-**'भगवान् के कार्य देख कर मनुष्य इतना अभ्यस्त हो गया है, कि उनकी प्रशंसा करने की इच्छा नहीं होती। रवींद्रनाथ ठाकुर ने स्तुति गान किया तो लोगों ने खूब प्रशंसा की। भगवान् ने किस कुशलता से स्वर यंत्र की रचना की है। तुम्हारे मन के भाव जैसे होंगे, वाक्यंत्र से वैसा ही शब्द निकलेगा। अनुकूल भाव मन में आते ही कंठ से वैसी ही राग रागिनियाँ झंकृत होंगी। निराकार भाव साकार रूप लेकर राग-रागिनियों के रूप में परिणत होते हैं। इसकी प्रशंसा कोई नहीं करता। कंठ की कुछ शिराएँ इन सारे सुरों को प्रकट करती हैं। ऊँचे-नीचे, लघु-दीर्घ विविध प्रकार के**

शब्द इन्हीं शिराओं से बजते हैं।’

मेरी डायरी-ठाकुर का स्पर्श।

आज मध्याह्न के बाद ठाकुर आसन पर बैठे। वे बार-बार मेरी सुंदर जिल्दवाली डायरी की ओर देखने लगे। फिर ठाकुर ने मुझसे पूछा-**‘वह कौन सा ग्रंथ है?’** मैंने कहा-यह मेरी डायरी है। ठाकुर ने माँगते हुए कहा-**‘देखूँ।’** मैंने ठाकुर के हाथों में डायरी दी। शुरू में कुछ देखकर पन्ने पलटने लगे। कुछ क्षण बाद अंतिम भाग देखकर मुझे देते हुए कहा-**‘अच्छा है, रख दो।’** ठाकुर ने बिना पढ़े डायरी के पन्ने पलटकर क्या देखा, मैं नहीं समझ पाया। ठाकुर के कृपा स्पर्श से मेरी डायरी परम पवित्र हो गई इसमें संदेह नहीं। मेरा उत्साह बढाने के लिए ही ठाकुर ने ऐसा किया होगा। बहुत दिन पूर्व ठाकुर ने एक बार कहा था-**‘ब्रह्मचारी जो लिख रहे हैं, सौ वर्ष बाद वह देश का शास्त्र बनेगा।’** मैंने सोचा, बारोदी के ब्रह्मचारीजी शायद कोई ग्रंथ रचना कर रहे होंगे, यही ठाकुर ने कहा होगा। अब तक ऐसे किसी ग्रंथ की सूचना मुझे नहीं मिली। हँसी-मजाक में भी जिन्होंने कभी असत्य नहीं कहा, लोग उनकी बातों को आदरपूर्वक ग्रहण करेंगे, इसमें संदेह नहीं।

ठाकुर के कुंभ मेला गमन का कारण: गोसाईंजी के बिना ऐण्डारिया सूना।

अब प्रयाग में पूर्ण कुंभ होगा। सुना है ठाकुर भी कुंभ मेला जाएंगे। कुंभ मेला जाने का कारण पूछने पर ठाकुर ने बताया-**‘अति प्राचीन तीन-चार महापुरुष इस बार कुंभ मेले में आ रहे हैं, जो जन समुदाय में कभी नहीं आते। बद्रिकाश्रम से सैकड़ों कोस**

ऊपर हिमालय के अति दुर्गम स्थल में रहते हैं उन्होंने मुझे कृपापूर्वक कुंभ मेला जाने का आदेश दिया है, सो उनके दर्शन करने जाऊँगा।'

मैं-महापुरुषगण कुंभ क्यों आएंगे? क्या वे भी कुंभ स्नान करने आएंगे?

ठाकुर-**'वे स्नान करने नहीं आते। उनका उद्देश्य स्वतंत्र है। देश में सर्वत्र धर्म की दशा मलिन हो रही है। एक-एक महात्मा पर एक-एक देश का धर्म भार सौंपकर वे चले जाएंगे। काठिया बाबा पर चौरासी कोस ब्रजमण्डल का भार होगा, ऐसा तय किया गया है।'** मैंने पूछा-बंगाल देश का भार किन पर होगा? ठाकुर मेरी बात सुनकर मुस्कुराये फिर थोड़ी देर चुप रहकर बोले-**'अभी यह कैसे कहा जा सकता है?'** मैंने पूछा-कुंभ योग में स्नान की यदि असामान्य विशेषता न होती तो यह विशाल मेला एक माह तक क्यों लगता? क्या यह आधुनिक है? रामायण, महाभारत में इसका उल्लेख नहीं देख पाता।

ठाकुर-**'आधुनिक नहीं, यह तो अति प्राचीन है। रामायण में इसका उल्लेख है। ऋषि माघ के माह में प्रयाग में, भारद्वाज मुनि के आश्रम में समवेत हुआ करते थे। एक माह वहाँ रह प्रयाग त्रिवेणी संगम में स्नान करके, अपने-अपने आश्रम को लौट जाते थे। कुंभ मेला मानो साधु-संतों का कांग्रेस है। कुंभ योग उनके सम्मेलन का संकेत काल है। इस समय सारे भारतवर्ष के सभी संप्रदायों के साधु-संत एकत्र होकर साधन-भजन, तपस्या के संशय व संदेहों पर परस्पर वार्तालाप करके उनकी मीमांसा ढूँढ लेते हैं। इसका यही प्रधान उद्देश्य है। अब ऐसा नहीं रह**

गया। अभी तो स्नान को लेकर संप्रदायों में वादविवाद, तर्क झगड़े यहाँ तक मारपीट भी हो जाती है।' कुंभ मेले के बारे में ठाकुर ने बहुत सी बातें बताई। हमने समझ लिया, कि वे शीघ्र ही कुंभ मेला जाएंगे। गुरुभाईयों द्वारा उन्होंने प्रयाग के प्रसिद्ध डॉक्टर गोविंद बाबू को एक मकान किराये पर लेने के लिये, लिखवा भेजा है। इसके प्रयत्न भी होने लगे। इधर मेरी माता मुझे देखने के लिए अधीर हो रही हैं। उनसे मिलकर, उनकी पदधूलि व आशीर्वाद न ले आऊँ तब तक ठाकुर के पास स्थिर नहीं बैठ पाऊँगा। मैंने ठाकुर से माँ से मिल आने की अनुमति माँगी। ठाकुर ने संतुष्ट होकर अनुमति दे दी। मैं कार्तिक माह के अंतिम सप्ताह में ढाका रवाना हो गया। जाने के पहले श्री सजनीकांत से शालग्राम भी साथ ले लिया, ताकि माताजी के पास गोपालजी के साथ-साथ उनकी भी सेवा पूजा होती रहेगी। छोटे दादा के मित्र श्री कुंजबिहारी गुहठकुरता भी कुछ दिनों के लिए घर जा रहे थे, वे मुझे अपने घर बानरीपाड़ा ले जाने का अनुरोध करने लगे, मैं सहमत हुआ।

दोपहर ढलते दोलाईगंज स्टेशन पर उतरकर, गेण्डारिया आश्रम पहुँचा। आश्रम जनविहीन एकदम सुनसान था। मैंने भीतर प्रवेश करके देखा, श्रीकुंज घोष की पत्नी दक्षिण के कमरे में चुपचाप अकेली गाल पर हाथ धरे बैठी है। मुझे देखकर उन्होंने कहा-मैं इस कमरे में बच्चों के साथ रहती हूँ। आप पूर्व के कमरे में आसन लगाएँ। मैंने पूर्व के कमरे में ठाकुर का स्थान छोड़कर, आसन लगाया। मैं आकर बरामदे में बैठा। मेरे आने की खबर पाकर मुहल्ले की स्त्रियाँ दौड़कर आई, कोई रोती हुई, कोई तो अचेत सी होती हुई, सजल नेत्रों से पूछती-गोसाईजी क्या गेण्डारिया नहीं

आएंगे? आप तो आये, पर गोसाईं कहाँ रह गये? किसी ने पूछा वे स्वस्थ तो हैं? हम सबकी याद करते है या नहीं? उनके उदास चेहरे, निस्तेज भाव और मलिन वेश देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। गोसाईंजी के बिना कुछ ही महीनों में इनकी क्या दशा हो गई, देखकर मैं हैरान रह गया। उनके प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर देकर मैं शौच-स्नान को गया। आकर देखता हूँ, मेरे भोजन पकाने की सारी तैयारी हो गई है। यथा समय आहार आदि समापन कर आम के वृक्ष के नीचे जा बैठा। थोड़े समय बाद आसन पर लौटकर शयन किया।

ठाकुर के बिना किसी तरह चार-पाँच दिन आश्रम में रह पाया। अब यहाँ रहना कितना कष्टदायक है, बता नहीं सकता। कुछ माह पहले जिस आश्रम में संकीर्तन, महोत्सव, शास्त्रपाठ, सदालाप तथा भजनानन्दी गुरुभ्राताओं का दिन-रात उत्सव सा लगा रहता था, आज निस्तब्ध, नीरव तथा जनहीन है। श्रीकुंज घोष ठाकुर की कुटीर में धूप-धूनी जलाकर, एक अध्याय चैतन्यचरितामृत एवं ग्रंथ साहब का पाठ करके चले जाते हैं। फिर वे दिन भर आश्रम में नहीं आते। श्री फणीभूषण रोज सुबह माता ठाकुरानी के मंदिर में नित्य पूजा व संध्या आरती करते हैं। उस समय वहाँ कोई नहीं रहता। कभी कोई गुरुभाई आम वृक्ष के नीचे, तो कोई मंदिर के बरामदे, या तालाब के किनारे घास पर बैठते और चले जाते हैं। स्त्रियाँ आम वृक्ष की ओर ताकती हुई नीचे घास पर बैठी, ठंडी साँसे भरती और चली जाती थी। कुछ काल पहले जो स्त्रियाँ उत्साह और उमंग से भरी ब्रजमाई की तरह लगती थी, वे ही अब उदास, म्लान और विषादपूर्ण दिखाई पड़ रही है। ठाकुर जब यहाँ थे, आसन से उठ कर रोज पक्षियों को चावल देते थे, कितने ही तरह के पक्षी

आनन्दित होकर दाना चुगते थे। अब उसी स्थान पर चावल दो तो, न तो कोई पक्षी आता और न दाना चुगता है। जिस आम वृक्ष पर पक्षियों का कलरव सदा लगा रहता था, अब एक भी पक्षी वहाँ दिखाई नहीं पड़ता। शायद सभी अन्यत्र चले गये हैं। ठाकुर रोज वृक्षलताओं के पास जाते, उन्हें प्यार करते, हँसकर सिर हिलाकर उनसे बातें करते, वे सभी आज पत्रहीन और शुष्क से हो रहे हैं, मानो ठाकुर की स्मृति उन्हें अग्नि की तरह जला रही है। मुझे ठाकुर की बड़ी याद आई, मैं स्थिर न रह सका अतः घर को चल पड़ा।

अपराह्न चार बजे घर पहुँचा। माताजी को प्रणाम कर, चरणधूलि मस्तक पर लिया। माँ ने मेरे शरीर पर स्नेहपूर्वक हाथ फेरा, जिससे मेरे मन प्राण शीतल हो गये। अंतःकरण में तरंगहीन निर्मल आनन्दधारा बहने लगी। मैं निःशब्द बैठा रहा। स्नान के बाद भोजन पकाकर आहार संपन्न किया। काफी रात तक माँ से पर्वतवास काल की बातें करता रहा। माँ सुनकर बड़ी आनन्दित हुई। माँ की स्नेह-ममता का कोई पार नहीं पाया जा सकता।

घर में अवस्थान: माँ की दैनिक क्रियाएँ: ग्राम का धर्म।

घर में माँ के पास बड़े आराम से मेरे दिन बीत रहे हैं। प्रातः स्नान, तर्पण करके आसन पर बैठता हूँ। संध्या, होम संपन्न कर न्यासादि करते-करते नौ बज जाते हैं। माँ को दो घंटे गीता-चण्डी पाठ सुनाया करता हूँ। ग्यारह बजे स्नानादि करके आसन पर बैठकर नाम-जप करता हूँ। माँ रोज सूर्योदय के डेढ़ घंटे पूर्व ही

शैय्या से उठ जाती। गोबर जल से भीतर बाहर आंगन, रास्ते, शौचालय सभी ओर छड़ा डालती, सभी ओर झाड़ू लगाकर स्वच्छ करती। बरामदे, सीढ़ी गोबर से सुंदर लीप देती। तब तक और कोई नहीं जागता। सूर्योदय के साथ स्नान करके, घाट पर ही संध्या करके लौटती। एक लोटा जल ले, तुलसी को स्नान कराते हुए यह स्तुति करती-'हे तुलसी! हे तुलसी तुम वृंदावन और नारायण हो, तुम पर जल चढ़ाती हूँ, अंतकाल में उसका फल देना।' तुलसी को नमन करके, फूल, दूब आदि लेकर पूजा के कमरे में जाती। पूजा का आयोजन करके, गृहकार्य में जाती। चावल, दाल चुनना, लाई मुरमुरा भुनना, धान उबालना-धूप में उन्हें सुखाना, यह सब करते ग्यारह बज जाते। फिर रसोई में अपना हविष्यान्न पकाती, इसमें किसी की मदद नहीं लेती। सब स्वयं करती। छोटी लड़कियों को खेल-खेल में भोजन पकाने को कहती। उन्हें स्वयं तरकारियाँ काट कर देती। शुकता, झोल, कलौंजी में क्या-क्या सब्जी और कौन से मसाले डालना चाहिए, सब सिखातीं। गुड्डे-गुड़ियों को गोद में उठाना, नहलाना, सुलाना सब खेल-खेल में सिखातीं। माँ घर के काम में थक जाती तो मैं उनका भोजन बना देता। तब वे मुझे मेरे मन की इच्छानुसार पकाने को कहती। सामने बैठकर उन्हें कैसे पकाना है, बताती और जप करती रहती। माँ रोज सरकारी बाड़ी शालग्राम को प्रणाम करने जाती। यह रास्ता दो मिनट का है, पर माँ को घंटा भर लग जाता। भात ठंडा हो जाता इसलिये मैं नाराज होता था। माँ ने कहा-मैं ठाकुर जी को प्रणाम करने जाती हूँ तो तू इतना नाराज क्यों होता है? मैंने कहा-नमस्कार करने में इतनी देरी क्यों लगाती हो, हम क्या ठाकुर को नमस्कार नहीं करते? माँ-तुम

लोगों के एक ठाकुर, झट से पड़े और प्रणाम करके उठ गए। मेरे साथ वह नहीं होता।

मैंने आजतक जहाँ भी जो भी मूर्ति देखा है, सभी का स्मरण करके एक-एक बार प्रणाम करती हूँ, इसलिये देर होती है, घंटा भर से कम नहीं लगता।

मैंने कहा-अयोध्या, काशी, हरिद्वार जहाँ जो भी दर्शन किया है, सबको स्मरण करती हो, भूल नहीं जाती?

माँ-हाँ, यदि भूल भी गई, तो वे ही मुझे याद दिलाते हैं।

मैं-प्रतिदिन सायंकाल पश्चिम की ओर मुख करके कनिष्ठा अँगुली जमीन पर स्पर्श करके माथे में बारबार लगाती हो, इसका क्या तात्पर्य है?

माँ-गाजी पीर को इक्कीस बार सलाम करती हूँ।

मैं-माँ तुम इतने देवी-देवताओं, गाजी पीर सबको नमन करती हो, मेरे गोसाईं को एकबार स्मरण नहीं करती?

माँ-अरे गोसाईंजी को तो नींद से जागकर सबसे पहले नमस्कार करती हूँ।

मैं-क्यों? मेरे गोसाईं को तुम क्यों नमस्कार करती हो?

माँ-तुम लोग गोसाईंजी को भगवान मानते हो। ऐसा ही है, तो मैं क्यों रह जाऊँ? इसलिये नमस्कार करती हूँ।

माँ की बातें सुनकर मुझे रोना आ गया। आहार के समय मुझे जो कुछ पसंद है, माँ अपने हाथों से देतीं। इस प्रकार तीन-चार कौर माँ के हाथ प्रसाद पाता हूँ। भोजन के बाद माँ बच्चों को बुलाकर एक एक ग्रास अन्न दिया करती। भोजन के बाद विश्राम करके, माँ दो चार घरों में उनकी खोज खबर लेने जाती। तीन बजे महाभारत

पाठ करता तो माँ पड़ोसिनों के साथ बैठकर सुनती। अपराह्न को माँ तैयारी कर देती, मैं भोजन पकाता हूँ।

गाँव में निम्न वर्गों में उपधर्म के अनुष्ठानों की वृद्धि हुई है, पर साधारण गृहस्थों में सनातन धर्म का प्रभाव भी कम नहीं। दिनभर अथक परिश्रम करके कृषकादि लोग शाम को थककर घर लौटते फिर किसी के घर या बाउल वैष्णवों के अखाड़े में एकत्रित होकर हरिनाम कीर्तन करते हैं, एक भी दिन छूटता नहीं। प्रति शनिवार शाम के बाद कुछ घरों में शनिपूजा होती है। प्रति सप्ताह दो-चार घरों में सत्यनारायण पूजा भी होती है। आंगन के बीच शालग्राम स्थापित कर ग्रामवासी चारों ओर बैठकर एक साथ पोथी पढ़ते, तब ऐसा लगता कि ठाकुरजी का वस्तुतः आविर्भाव हुआ है। पोथी पाठ के बाद ब्राह्मण चावल चूर्ण, गुड़, दूध, केले के मिश्रण से सिन्नी प्रसाद ठाकुर को निवेदन करते व सभी प्रसाद पाते। मेरे घर आने के बाद से प्रतिदिन बाउल वैष्णव, योगी, कापालिक जैसे कितने लोग शाम को मृदंग व करताल लेकर घर आते और उत्साहपूर्वक गौर कीर्तन, हरि संकीर्तन करते थे। दो तीन घंटे में भी उनका उत्साह कम नहीं होता। किसी-किसी में आनंद से भाव का उच्छ्वास भी दिखाई पड़ता। इनमें स्वाभाविक रूप से नाम में भक्ति है। मुझे इनके साथ बड़ा आनंद आ रहा है। छोटी, निम्न जाति के बाउल वैरागियों के बीच एक नए देवता का उद्भव हुआ है-उनका नाम है त्रिनाथ। शाम को इस श्रेणी के लोग किसी के घर बुलाए जाते और गान करते-

दिन गेले त्रिनाथेर नाम लाइओ।
आरे दमे दमे लोइओ रे नाम, कामाई नाही दिओ।

यह गान करते हुए, वे गांजा पीते और मस्त होकर गाते। फिर मुरमुरे, नारियल, बताशा का भोग लगाकर प्रसाद पाते। ग्रामवासी गृहस्थों के घर प्रतिमाह निर्दिष्ट देवताओं की पूजा हुआ करती है। दुर्गापूजा तो सब नहीं कर पाते, परन्तु लक्ष्मी, सरस्वती, कार्तिक पूजा प्रायः हर घर में होती है। औरतें व्रत करती हैं। इन सबका आयोजन करने में ग्रामवासी बारहों महीने व्यस्त रहते हैं। औरतों के व्रत अच्छी खासी तपस्या करने के बराबर होते हैं, जो संभवतः मुझसे भी न हो पायेगा।

माँ जब सूर्य पूजा करती देखकर हैरान रह जाना पड़ता है। रात्रि समापन होते ही गोबर से आँगन लीपकर, स्नान करतीं। चावल के चूरे से सुंदर सूर्यनारायण की मूर्ति अंकित करतीं। पूजा सामग्री सामने रखकर सूर्योदय की प्रतीक्षा करती। सूर्योदय होते ही साष्टांग प्रणाम करती। सूर्य की ओर देखते हुए जप करती जाती। अस्त के समय पश्चिम की ओर मुख करके सूयार्घ्य प्रदान करके साष्टांग प्रणाम करती। सारा दिन एक ही स्थान पर, धूप में खड़ी रहकर यह व्रत करती, पुरोहित आकर समापन करके जाते। कड़ी धूप में एक ही जगह पर, बिना आहार के व्रत करने पर भी माँ अवसन्न नहीं होतीं। इसी प्रकार के दो-चार व्रत और भी हैं, जिनका अनुष्ठान सहज नहीं। गांव के अधिकांश गृहस्थों के घर पर उपवास, व्रत आदि धर्मानुष्ठान देखकर, मैं आनंद प्राप्त करता हूँ। रात को सोते समय माँ मुझे छोटे शिशु की भाँति सहलाती है, दुलारती हुई सिर पर हाथ फेरती हैं। कभी पेट पर अँगुली रखकर कुछ बुदबुदाती। पूछने पर कहती-'मैं रक्षा बाँध रही हूँ, इससे नींद में कोई विपदा नहीं होती। भूत-प्रेत, अपदेवता नहीं सताते, चींटे, चूहे,

बिल्ली नहीं काटते। अब और अधिक बातें न कर, आँखें बंद करके सो जा।' माँ की असीम ममता की बातें सोचकर मैं आँसू नहीं रोक पाता, तकिया भीग जाता है। ऐसी माता के गर्भ में जन्म लिया है, इसीलिए ठाकुर ने मुझे अपने देवदुर्लभ श्रीचरणों में आश्रय दिया है।

बरिशाल में अवस्थान: आत्मा की उन्नति के लक्षणों के संबंध में अश्विनीजी के प्रश्नों का उत्तर।

गुरुभ्राता श्री कुंजबिहारी गुहठाकुरता बार-बार पत्र देकर मुझे अपने घर, बानरीपाड़ा बुला रहें हैं। परसों मैंने एक स्वप्न देखा-- दिन ढलते भिक्षा के लिए कुंजबाबू के घर के द्वार पर पहुँचा। ठाकुर की असीम कृपा से कुंज की पत्नी कुसुमकुमारी ने अनेक अलौकिक अवस्थाएँ प्राप्त की हैं। उनके दर्शन एवं उनके हाथों से भिक्षा पाना ही मेरा उद्देश्य था। कुसुम मेरे लिए भिक्षा लाने गई तो अचानक देखा एक शुभ्र उज्ज्वल वर्ण के महापुरुष प्रकट होकर कुसुम को पकड़े और उसके शरीर में विलीन हो गए। उनकी दो बाँहें मिलकर कुसुम चतुर्भुजा बन गई। कुसुम चारों हाथों से मुझे भिक्षा देने लगी। भिक्षा पाकर मैं जाग पड़ा। स्वप्न देखने के बाद बानरीपाड़ा जाने की आकांक्षा और भी बढ़ गई। एक माह तक माँ के चरणों में परमानंदपूर्वक व्यतीत करके, मैं बानरीपाड़ा रवाना हो गया। अगहन माह के अंतिम सप्ताह में बरिशाल जा पहुँचा। मेरे जाने से पहले ही कुंजबाबू बरिशाल आकर मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं श्री गोराचाँद दासजी के घर गया। उनका स्नेह और आदर पाकर कुछ ही दिनों में मैं मुग्ध हो गया। वे शहर के सबसे बड़े वकील हैं, परन्तु

कोई भी आडम्बर नहीं है। उनका घर सदालाप तथा सदनुष्ठानों से मानो देवालय बन गया है। रोज प्रातः उठकर बारहों महीनें गौ सेवा करते हैं। स्वयं गौशाला स्वच्छ करते, गाय के शरीर व खुर साफ करते, उन्हें दाना पानी देते हैं। यह सब नौकरों के भरोसे कभी नहीं छोड़ते। इतनी सुचारू रूप से गौसेवा मैंने और कहीं नहीं देखी। कुछ गरीब लड़कों को घर पर रखकर पढ़ाने-लिखाने का सारा व्यय स्वयं वहन करते हैं। साधन-भजन में भी बड़ा ही अनुराग है, ठाकुर पर दृढ एवं असाधारण निष्ठा है।

स्वदेशप्रेमी, कर्मवीर श्री अश्विनीकुमार दत्तजी भी मुझे अपने घर ले गये। अभी उन्होंने भक्तियोग नामक एक पुस्तक लिखी है, जो मुझे उपहारस्वरूप प्रदान भी किया। पुस्तक खोलते ही एक श्लोक पर नजर पड़ी-'न जातु कामः कामानां उपभोगेन शम्यति।' इसकी व्याख्या में उन्होंने कहा है--कामियों का काम भोग के द्वारा शमित (निवारण) नहीं किया जा सकता। पढ़कर मैंने पूछा-'दादा, आपकी व्याख्या तो शास्त्र का विरोध करती है। शास्त्रों में तो है, कि विधिपूर्वक भोग से काम की निवृत्ति होती है।' अश्विनी बाबू ने कहा-यह श्लोक तो शास्त्रों में है, भोगनिवृत्ति होती तो-'हविषा कृष्णवर्त्तेर भूया एवाभिवर्धते' इस कथन का कोई तात्पर्य नहीं रह जाता। मैंने बारोदी के ब्रह्मचारी से इस श्लोक की जो व्याख्या सुनी थी, वह कह सुनाया-इस श्लोक में भोग की नहीं, उपभोग की बात कही गई है। शास्त्र विधि का उल्लंघन करके जो भोग स्वेच्छापूर्वक किया जाये, वह उपभोग है, इसका शमन नहीं होता। परन्तु विधिपूर्वक भोग से शमन होता है। अश्विनी बाबू सुनकर कुछ देर चुप रहे, फिर बोले-अगले संस्करण में इसका संशोधन कर दूँगा। मैंने गलत व्याख्या की

है।

अश्विनी बाबू-अच्छा भाई, आत्मा की उन्नति हो रही है, यह कैसे समझूँ?

मैं-आपने क्या समझा है, वह मैं जानना चाहता हूँ।

अश्विनी बाबू-सत्य, दया, विनय, सरलता, परोपकार, उत्साह, उद्यम, तेजस्विता आदि गुण जिनमें देखता हूँ, उनकी आत्मा की उन्नति हो रही है, मैं ऐसा मानता हूँ।

मैं-परन्तु मैं ऐसा नहीं सोचता। भय या प्रशंसा के लोभ से इन गुणों का विकास किया जा सकता है, किंतु उनकी प्रकृति भी इन्हीं गुणों से सम्पन्न है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

अश्विनी बाबू-तो फिर तुम किन लक्षणों को देखकर आत्मा की उन्नति हुई जानोगे?

मैं-मैं तो मानता हूँ, जिनका चित्त गुरु पर आकृष्ट हो, उसी की आत्मा की उन्नति हुई।

अश्विनी बाबू-तुम्हारी बातें समझ नहीं पा रहा हूँ। इसकी कोई युक्ति है?

मैं-युक्ति इस प्रकार है कि-गुरु पर ही हम सारे सद्गुणों को आरोपित करते हैं। गुरु को सर्वगुणमय मानते हैं। इस प्रकार गुरु पर आकर्षण हुआ, तो सारे सद्गुणों पर भी आकर्षण हुआ मानो। बाहरी अवस्था में पड़कर कोई व्यक्ति कुछ भी करे, यदि उसका चित्त सद्गुणों पर आकृष्ट है, तो उसका अन्तःकरण भी सदा सदोन्मुखी होगा। चित्त सदोन्मुखी हो, तो इसे आत्मा की उन्नति ही समझना चाहिए। अश्विनी बाबू मेरी बातें सुनकर संतुष्ट हुए और कहा-वाह भाई, अति सुन्दर कहा। इसके वे चुप रहे।

बिना अग्नि के अन्नपूर्णा द्वारा पकाया अन्न।

अश्विनी बाबू के घर हविष्यान्न ग्रहण करके, मैं गोराचाँद बाबू के घर आया। यहाँ कुछ दिन श्री हरकांत बाबू, शिवबाबू के साथ आनंदपूर्वक बिताया। श्री कुंज गुहठाकुरता के साथ, अनेकों गुरुभाईयों की जन्मभूमि पुनीत बानरीपाड़ा आ पहुँचा। कई गुरुभाई स्टीमर घाट पर उपस्थित थे, जिन्होंने आदरपूर्वक मुझे कुंजबाबू के घर पहुँचाया। दो मंजिले के एक निर्जन कक्ष में मैंने आसन लगाया। उनके जाने के बाद कुसुम ने आकर मुझे प्रणाम किया। कुसुम को इसके पहले कभी नहीं देखा था। उसकी सरल,पवित्र मूर्ति का दर्शन करके बड़ा आनंद आया। मैंने कहा-कुसुम आज तुम्हारे ही हाथों भिक्षा ग्रहण करूँगा। पर अभी थोड़ी चाय ले आओ। कुसुम ने कहा-'ठाकुर के कहने पर आपके लिए भिक्षान्न एवं चाय बनाकर रखा है। अब लीजिए, ठाकुर ने आपके लिए यह प्रसाद रखने को कहा था।' यह कहकर उसने कुछ सूखे अन्न प्रसाद के दाने और चाय मुझे दिया। मैं चाय पीते हुए पूछा-यह अन्न प्रसाद कहाँ से पाया? ठाकुर ने मुझे देने को क्यों कहा था? कुसुम-एक दिन भात की हाँडी चूल्हे में रखकर, गीली लकड़ियाँ जलाने के लिए पैरा डालकर फेंकने लगी। खूब धुआँ निकला पर आग न जला सकी। आँखों से खूब पानी निकलने से सिरदर्द होने लगा। उसी समय माँ अन्नपूर्णा प्रकट हुई और बोलीं-माँ, बड़ा कष्ट पा रही हो। चलो थोड़ी देर हटो, आज मैं भोजन पका देती हूँ। मैं वहाँ से हट गई। कुछ देर बाद आकर देखती हूँ, चूल्हे में आग तो नहीं पर भात पूरी तरह पककर तैयार है। मैंने तुरन्त अन्न परोसकर ठाकुर को निवेदन किया। तभी

ठाकुर प्रकट होकर बोले-**'ब्रह्मचारी आ रहा है, एक ग्रास उसके लिए भी रख देना।'** इसी लिए वह प्रसाद सुखाकर आपके लिए रखा था। अन्नपूर्णा का पकाया हुआ अन्न, आपको भिक्षा में दिया है। कुसुम की बातें सुनकर कुंज से भी जाकर पूछा। उन्होंने कहा-उस दिन की घटना कभी नहीं भूलूँगा। बिना अग्नि के भोजन पकाने की अद्भुत घटना हुई। कई गुरुभाई आये और खोजबीन करके देखे, चूल्हे में आग जरा भी नहीं। सिर्फ जलाने का प्रयत्न किया गया था। यह सब देख सभी हैरान रह गए। सारी घटना मेरे सामने ही हुई थी। उनकी बातें सुनकर मैं हैरान रह गया। प्रसाद लेने मैं स्थिर होकर बैठा, भीतर भाव का स्त्रोत बहने लगा। माँ अन्नपूर्णा का पकाया प्रसाद, कुसुम से माँगकर थोड़ा थैले में भी रख लिया।

महापुरुष साजाल के दर्शन: ठाकुर की कृपा से स्वादिष्ट खिचड़ी।

बानरीपाड़ा आकर मेरा नित्य कार्यक्रम यथारीति चल रहा है। सुबह से दोपहर दो बजे तक साधन-भजन, पाठ में बीत जाता है। तीन बजे गुरुभ्रातागण आते, उनके साथ बड़ा आनंद आता है। श्री रामकृष्ण ठाकुरता के अनुरोध पर एक दिन भिक्षा के लिए उनके घर गया। इसी दिन महात्मा साजाल के दर्शन मिले। महात्मा साजाल जाति के मुसलमान हैं। ठाकुर ने कहा था-**'साजाल पंचलक्षण युक्त महापुरुष हैं।'** उनकी आयु साठ-पैंसठ की होगी। शरीर कृश तथा स्वस्थ है। घर बार नहीं हैं, कभी वृक्ष के नीचे तो कभी नदी तट पर या खुले मैदान में रात काटते हैं। सारा दिन घूमते रहते हैं। कोई पूछे तो धर्म उपदेश में गुरुनिष्ठा एवं गुरुभक्ति का ही

उपदेश देते हैं। वे देवी-देवताओं के दर्शन करके स्तुति करते हैं। हिंदू-मुस्लिम सभी साजाल पर श्रद्धा-भक्ति रखते हैं। संकीर्तन सुनकर साजाल को महाभाव आता है। जब ठाकुर की बातें सुनते तो अश्रु, पुलक, हर्ष आदि भाव उपस्थित होकर वे अवसन्न से हो जाते हैं। गुरुभ्राताओं के साथ वे बड़े आनंदित होते हैं। मैंने साजाल को नमस्कार किया और चुपचाप बैठकर ठाकुर का स्मरण करने लगा। साजाल मुझे कई बार देखते रहे, फिर गुरुभाईयों से पूछा-ये स्त्री हैं या पुरुष? उनकी बात सुनकर सभी हँस पड़े और बोले-आपको क्या दिखाई पड़ता है? साजाल ने कहा-भाव से तो स्त्री जान पड़ते हैं। कुंज ने कहा-इसकी दाढ़ी, मूँछे नहीं देखते? साजाल-इसीलिए तो पूछा। साजाल की बातें कभी-कभी असंगत एवं अर्थहीन लगती, इसीलिए कुछ लोग उन्हें पागल समझते हैं। साजाल के पास बैठकर इतना अच्छा लगा जैसे देह-मन मधुमय हो उठा हो।

दोपहर को भोजन पकाने जानेवाला था कि कुछ गुरुभाईयों ने आकर कहा-भाई आज तुम ठाकुर को भोग लगाओ, हम भी प्रसाद पायेंगे। मैं उनका अनुरोध टाल न सका। उन्होंने सात सेर चावल, पाँच सेर दाल, ढेर सी सब्जियाँ लाकर दिया और मुझसे खिचड़ी पकाने को कहा। आज तक इतनी अधिक मात्रा में भोजन कभी नहीं पकाया था। फिर भी ठाकुर को स्मरण करके भोजन पकाने में जुटा गया। चावल-दाल पक जाने पर उसके ऊपर चार-पाँच इंच पानी बचा रहा। गुरुभ्राताओं ने कहा-आज तो शरबत ही मिलेगा। मैंने हंडी उतारी, ठाकुर का स्मरण किया। भोग लगाकर पंद्रह मिनट द्वार बंद रखा। द्वार खोलकर देखा, खिचड़ी में जरा भी पानी नहीं बचा। सभी

ने तृप्तिपूर्वक प्रसाद पाया। उन्होंने कहा-ठाकुर ने सच ही कहा था कि-**'ब्रह्मचारी के समान स्वादिष्ट अन्न और कोई नहीं खाता।'** आज ठाकुर की वह बात हम सबने प्रत्यक्ष देख ली। मैं समझ गया कि ठाकुर की ही कृपा से यह खिचड़ी इतनी सुस्वादु और सबके लिए तृप्तिकारी बनी। प्रसाद पाकर आसन पर लौट गया।

ठाकुर की कृपा से कुसुम का आहार त्याग। कुसुम के हाथों भोजन से अद्भुत् अवस्था।

वानरीपाड़ा आकर रोज कोई न कोई गुरुभ्राता मुझे अपने घर भिक्षा के लिए अनुरोधपूर्वक ले जाया करते हैं। मैं भी रोज किसी न किसी के घर भिक्षा लेता रहा। मुहल्ले के सभी गुरुभ्राता मेरे पकाये खिचडी प्रसाद का आनन्द लेते हुए सब मानो उत्सव मनाने लगे। एक दिन कुसुम ने आकर कहा--अच्छा रोज किसी न किसी के घर भिक्षा लेते जा रहे हैं। मेरे पास एक भी दिन भिक्षा न लेंगे तो मुझे दुःख होगा। मैंने कहा--ठीक है, आज तुम्हारे हाथों मेरी भिक्षा होगी, पर ऐसी उत्तम वस्तु खिलाना जैसी मैंने पहले कभी न खायी हो। कुसुम ने कहा--अच्छा ऐसा ही होगा। नित्य की भाँति दो बजे से गुरुभ्राताओं के साथ सदालाप में समय बीता। अपराह्न के समय कुसुम आकर बोली-चलिये, चलकर मेरे हाथों भिक्षा ग्रहण कीजिए। मैंने कुंज व कुसुम के साथ नीचे आकर, एक साफ सुथरे कमरे में जाकर देखा, भोजन पकाने की सारी तैयारी है। उत्कृष्ट वस्तुएँ रखी है। खाने के लिए दो ही आदमी पर खिचड़ी के लिए एक सेर चावल रखा है। शाम को खिचड़ी चढ़ाया। कुसुम व कुंज के पास ठाकुर की असीम कृपा की बातें सुनता रहा। सुनकर मन सरस हो उठा, सोचा

कब मैं भी कुसुम और कुंज की तरह ठाकुर का अनुगत हो सकूँगा।

मैंने कुसुम से पूछा-कुसुम तुम्हारा आहार त्याग किस प्रकार हुआ? दिन-रात में एक भी घूँट पानी न पीकर या एक ग्रास भी अन्न न खाकर भी तुम कैसे देह धारण किए हो। सारा दिन विश्राम भी नहीं करती। कभी सब्जी काटती, मसाला पीसती, बर्तन माँजती, भोजन बनाती हो। यह सब, कुछ बिना खाए पिए कैसे कर लेती हो। तुम्हें थकान नहीं आती? भूख-प्यास भी नहीं लगती? पुराणों में पढ़ा है, ऋषिमुनि लोग आहार त्यागकर, दीर्घ समाधि में रहते थे। पर आज के युग में कोई आहारत्यागी है, ऐसा मैंने नहीं सुना। पर्वतवासी साधु-संत आहार त्यागने का यत्न करते हैं, पर कोई सफल हुआ, ऐसा नहीं सुना जाता। मैं जानना चाहता हूँ, किस प्रकार बिना प्रयत्न किये, आहार त्यागने में तुम सफल हो गई?

कुसुम ने कहा-आप तो जानते ही हैं, गाँव की औरतों को कितना कष्ट सहना पड़ता है। बरसात में तो कष्ट की सीमा ही नहीं रह जाती। एक दिन भोजन बनाकर सबको खिलाने-पिलाने में खूब देर हो गई। फिर बर्तन माँजने घाट पर गई। देर से बर्तन माँजते-माँजते भूख के मारे रो पड़ी। भूख की जलन न सह पाने से ठाकुर का स्मरण किया। तभी अचानक कृपा करके, जल के ऊपर ही ठाकुर प्रकट हुए। बाबा से मैंने रोकर कहा-'बाबा, बड़ी भूख लगी है, मुझसे सहा नहीं जाता। मेरे पास अभी फूल, तुलसी कुछ भी तो नहीं है। कैसे तुम्हारी पूजा करूँ? अतः मेरी इस भूख को ही कमल मानकर तुम्हारे श्री चरणों में अर्पण करती हूँ। मुझे आशीर्वाद दो।' ठाकुर मंद-मंद हँसकर, करुणाभरी दृष्टि से मेरी ओर देखते रहे, फिर कुछ ही देर में अन्तर्धान हो गए। तब से लेकर आज तक मुझे

भूख-प्यास नहीं लगती। शरीर में कोई रोग भी नहीं है। दिनभर काम करके भी थकती नहीं, दिनोंदिन और स्वस्थ बोध होता है। यह अवस्था कोई साधन-भजन के कारण नहीं, एकमात्र ठाकुर की कृपा से हुई है। बहुत दिन हो गए और कितने दिन ठाकुर मुझे इस अवस्था में रखेंगे, वे ही जाने।

कुसुम की बातें सुनते-सुनते खिचड़ी बन गई। उतारकर ठाकुर को भोग लगाया। स्थिर बैठकर ठाकुर का स्मरण करने लगा। कुसुम और कुंज भी एकाग्रचित्त से ठाकुर का स्मरण करने लगे। पंद्रह मिनट बाद कुसुम से मैंने कहा-कुंज के लिए भी पत्तल लगा दो, हम दोनों आनन्दपूर्वक प्रसाद पायें, तुम देखो। कुसुम ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा-आप कृपा करके आज मेरी एक आकाक्षा पूर्ण करें। मैंने कहा-अच्छा कहो, यदि मेरी शक्ति हो तो अवश्य पूरा करूँगा। कुसुम-आप जब अपने घर पर थे, तब एक दिन देखा कि आप मेरे पास आकर कह रहे हैं, बड़ी भूख लगी है, कुछ खाने को दो। मेरे पास ठाकुर का प्रसाद था, लाकर आपको खिलाने लगी। आप भी आनन्दपूर्वक खाने लगे। मैं-पहले मुझे कभी तुमने देखा न था, उस समय क्या मुझे इसी रूप में देखा था? कुसुम-हाँ ठीक इसी प्रकार था, किन्तु तिलक इस प्रकार न था। विभूति के उर्ध्वपुण्ड्र की जगह लाल सिंदुर का उर्ध्वपुण्ड्र था।

कुसुम की बातें सुनकर मैं विस्मित हो गया, क्योंकि सच ही मैं घर में रहते समय ठाकुर की चरण रोली से लाल उर्ध्वपुण्ड्र किया करता था। ठाकुर की इच्छा मानकर मैं भी कुसुम के अनुरोध पर सहमत हुआ। मैंने कहा-तुम निःसंकोच मुझे अपने हाथों से खिलाओ, मुझे आनन्द मिलेगा। तुम्हारे हाथों से प्रसाद पाना

अहोभाग्य है। ठाकुर को प्रणाम कर, कुंज की अनुमति लेकर कुसुम मेरी बायीं ओर पैर फैलाकर बैठ गई, दोनों हाथों से मुझे गोद में लेकर स्नेह करने लगी। भावावेश से वह लुढ़कने लगी तो कुंज ने आकर भगवत् नाम सुनाया, तब सचेत हुई। उसने मेरे मुँह में प्रसाद दिया, मैं खाने लगा। उस समय मुझे स्पष्ट बोध हुआ, मैं ठाकुर की गोद में बैठा हूँ। ठाकुर के ही श्री अंग का पद्म गंध भी पाने लगा। ठाकुर के अनुपम अंग का स्पर्श पाकर मैं अभिभूत हो गया। उनकी गोद में, उन्हीं के श्री हस्त से प्रसाद पा रहा हूँ, जानकर परम आनन्द पाने लगा। मेरी बाह्यस्मृति लुप्त हो गई। केवल ठाकुर का स्पर्शसुख मात्र रहा। एक अव्यक्त आनन्द में मुग्ध हुआ रहा, जिसे प्रकट करने की भाषा नहीं हैं। यह अवस्था अधिक देर तक न रही। कुसुम के असाधारण ध्यान प्रभाव ने मुझे देह से अलग कर दिया। मैंने देखा ठाकुर ही कुसुम की गोद में अर्धशायी होकर प्रसाद पा रहे हैं। ठाकुर के श्रीमुख की शोभा देखकर मैं अश्रु से भीग गया। बाहरी संज्ञा बिलकुल न रही। एक घंटे से भी अधिक समय ऐसे ही बीता। कुंज के ‘जयगुरु जयगुरु’ कहकर चिल्लाने की आवाज से मेरी संज्ञा लौट आई। कुसुम मुझे छोड़कर समाधिस्थ रही। मैंने यह क्या देखा? कुंज रो रहा है, कुसुम समाधिस्थ है। खिचड़ी की ओर देखा, तो वह भी समाप्त हो गई है। केवल दो-चार ग्रास बचा है। विस्मय की बात यह है कि लगभग पाँच-सात लोगों के भरपेट भोजन के उपयुक्त खिचड़ी मैं अकेले कैसे खा गया? इतने अधिक भोजन से मुझे कोई कष्ट भी नहीं हो रहा है। मुझे केवल चार-पाँच कौर खाने की बात याद है, बाकी कुछ भी याद नहीं। कुसम की समाधि लगभग रात तीन बजे भंग हुई। जय दयालु गुरुदेव! तुम्हारे इस

असाधारण कृपा की बात सदा जीवन के अंतिम दिन तक याद रख सकूँ-यही प्रार्थना है।

गुरुभ्राता ब्रजमोहन।

कल जब चाय पीकर आसन पर बैठा, तो देखा कक्ष के द्वार पर एक व्यक्ति आकर हाथ जोड़े खड़े हैं। उनका शरीर शीर्ण, वस्त्र मलिन एवं जीर्ण, मुख तेजस्वी था, वे कंगाल की भाँति खड़े रहे। बार-बार कहने पर भी भीतर न आए। मैंने हाथ पकड़कर उन्हें कमरे में लाकर बिठाया। वे बैठकर नाम जप करने लगे। थोड़ी ही देर में उनमें अश्रु, पुलक, कंप आदि सात्त्विक भावों का प्रबल प्रकाश होने लगा। वे अपने आप को रोक न सके, 'जयगुरु जयगुरु' कहकर जमीन पर लोटने लगे। कुंज भी भावावेश में अचेत सा पड़ा था। थोड़ी देर बाद उसके सचेत होने पर पूछा, तब पता चला कि ये वे ही व्यक्ति हैं, जिन्हें ठाकुर ने गेण्डारिया में रहते, वानरीपाड़ा में मध्यरात्रि को प्रकट होकर दीक्षा दिया था। कौतुहलवश उस घटना के बारे में मैंने उनसे पूछा, उन्होंने बताया-'मैं पुरोहित का काम करता था। बड़ा ही दरिद्र था। रोज भरपेट भोजन भी नहीं मिलता था। ठाकुर की बातें सुनकर उनके चरणों में आश्रय पाने को व्याकुल था, किन्तु गेण्डारिया जाने की मुझमें क्षमता न थी। व्याकुल मन से गुरुदेव से मन की बात कह सुनाया। उन्होंने कृपा करके आकर दीक्षा दी। मैं जितना पापी, मेरे ठाकुर उतने ही दयालु। इसी तरह उनकी कृपा पाकर धन्य हो गया।' इनका नाम ब्रजमोहन चक्रवर्ती है। कुंज ने जैसा कहा था, वैसा ही इन्होंने भी बताया।

ठाकुर का योगैश्वर्य।

यह सब सुनकर ठाकुर के ऐश्वर्य के संबंध मे गत वर्ष की एक घटना याद आ गई। एक दिन गेण्डारिया में मैं नित्य होम समापन करके बैठा ही था कि श्यामाचरण बक्शीजी ने आकर कहा-ब्रह्मचारी अभी आपको वह सब बताने का अवसर है क्या? मैंने कहा-क्या बताना है? बक्शीजी ने कहा-कल जो ठाकुर ने आपसे कहा था। मैं-ठाकुर ने कब क्या कहा, मुझे तो कुछ याद नहीं आता। बक्शीजी-कल रात जब ठाकुर आपको लेकर मेरे यहाँ आये थे, तो ठाकुर ने आपको दिखाकर कहा था-'ब्रह्मचारी से कल जाकर संध्या विधि, गायत्री, न्यासादि लिख लेना और प्रतिदिन संध्या करना।' मैं सुनकर अवाक् रह गया, लेकिन अपना भाव छुपाते हुए कहा-चलिए ठाकुर से ही स्पष्ट पूछ लें। ऐसा कहकर हम दोनों ठाकुर के कमरे में पहुँचे। ठाकुर चाय पीकर, आसन पर नेत्र बंद किये बैठे थे। बक्शीजी के द्वार पर पहुँचते ही ठाकुर मेरी ओर देखकर कहने लगे-**'ब्रह्मचारी संध्या, गायत्री विधि तथा उनकी नियमावली बक्शीजी को बता दो।'**

मैं आगे कुछ न कहकर बक्शीजी को लेकर आ गया। उन्हें संध्यादि के बारे में सभी बातें बताई। मैं हैरान रह गया। इस घटना ने मुझे झकझोर दिया। एक ही व्यक्ति, एक ही समय में भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न कार्य करता हो, ऐसा किसी साधु महात्मा के योगैश्वर्य द्वारा संभव हुआ, इसका प्रमाण मुझे नहीं मिला है। एक मात्र भगवान ही ऐसी लीला करते हैं। ठाकुर से इसके बारे में पूछने की प्रवृत्ति भी नहीं हुई। जिन सब घटनाओं में ठाकुर की भगवत्ता प्रकट हो जाती है, उनके बारे में पूछने पर ठाकुर लज्जित हो जाते, कुछ कहने में झिझकते और असमंजस में पड़ जाते हैं। उनकी वह

निर्वाक् हो जाने की अवस्था मुझे अच्छी नहीं लगती। इसीलिए मैंने कुछ न पूछा। बक्शीजी के घर ठाकुर जब गए तो रात के दस बजे थे, ऐसा उन्होंने कहा। जबकि उस समय कीर्तन के बाद ठाकुर अपने आसन पर बैठे गुरुभ्राताओं के साथ हँसी-मजाक, बात-चीत कर रहे थे और मैं तब निद्रित था। ठाकुर देह को समाधिस्थ रख कर यत्र-तत्र विचरण करते हैं, इस बात के यथेष्ट प्रमाण कई जगह पा चुका हूँ। लेकिन स्वयं स्थूल देह में रहकर फिर एक साथ उन्होंने मेरा रूप भी धारण प्रकट किया यह कुछ समझ नहीं पाया। कहीं-कहीं भगवान की लीला की अपेक्षा भक्त की लीला अधिक अद्भुत लगती है। ऐसा सुना है, इस प्रकार की लीला एकमात्र भगवान ही करते हैं। हे ठाकुर! तुम्हारी लीलाएँ केवल श्रद्धासहित देखता रहूँ और कृतार्थ होता रहूँ। अनर्थक तत्त्व-अनुसंधान करने की प्रवृत्ति भी मुझमें न हो।

वानरीपाड़ा में अवस्थान।

वानरीपाड़ा आकर गुरुभ्राताओं के आदर-सत्कार और प्रेम से मेरा समय आनंदपूर्वक व्यतीत होने लगा। संध्या के समय सभी गुरुभ्राता मिलकर संकीर्तन करते, कई गुरुभाईयों को भावोच्छ्वास भी होने लगता। इस गाँव के अधिकांश लोग ठाकुर के पास दीक्षाग्रहण कर चुके हैं। इनमें परस्पर स्नेह, सहानुभूति देखकर बड़ा आनंद आता है। सुना है, गाँव के प्रबल प्रतापी जमींदार गुरुभ्राताओं से चिढ़ते हैं और उन्हें पछाड़ने की सदा कोशिश करते रहते हैं। वे गोसाईजी के शिष्यों के बड़े विरोधी हैं। सुनकर मैंने उनसे मिलना चाहा। अपराह्न के समय उनके घर भिक्षा के लिए गया। मुझे द्वार पर

देखकर उन्होंने बड़े आदर सहित भीतर ले जाकर, उच्चआसन पर बिठाया एवं पदधूलि लेना चाहा। उनके हाथ बढ़ाते ही मैंने पैर सिकोड़कर उठा लिए। वे संकोचवश दुःखी होते हुए बोले-'आप चरणधूलि देने में बाधा क्यों दे रहे हैं. यह तो मेरी पैतृक संपत्ति है। मेरे पूर्वजों ने जो पाया है, आप लोगों ने कभी बाधा नहीं दी फिर क्यों रोकते हैं।' यह सब कहकर उन्होंने पदधूलि ली। मेरे आगमन का उद्देश्य पूछने पर, मैंने भिक्षाग्रह करना चाहा। संतुष्ट होकर उन्होंने पूछा-क्या भिक्षा लेंगे बताइये। शायद उनकी धारणा थी कि रुपए-पैसे लूँगा, किंतु मैंने हविष्य के लिए भिक्षा माँगी। उन्होंने ढेर सा सामान, घी, दूध, दही चावल, सब्जियाँ आदि ला दिया। मैंने मात्र आज के लिए थोड़ा सा चावल, घी, नमक,आलू लेकर शेष लौटा दिया। इससे उनकी श्रद्धा और भी बढ़ गई। जमींदार श्री नारायण घोष ने कहा--देखिये, इस गाँव के कई लोग गोसाईं के शिष्य हैं, जो बड़े जिद्दी हैं। सामाजिक आचार-विचार, जाति भेद या किसी का अनुशासन नहीं मानते। जो करना चाहें, दलबद्ध होकर कर ही लेते हैं। वे मुझे नहीं मानते, अतः मेरी भी उन पर सद्भावना नहीं है। मैंने कहा-सुना है, आप इस गाँव के सबसे प्रभावशाली व्यक्ति हैं। प्रभावशाली व्यक्ति यदि अत्याचारी हो तो आसपास के लोग नहीं बच पाते। जिनकी शक्ति अधिक है, उनमें धैर्य भी अधिक होना चाहिए। कुछ दिन प्रतीक्षा कीजिए, इनका ही आचरण देखकर आप शीतल हो जायेंगे। गोसाईंजी किसी से आचार, कुलप्रथा, सामाजिक रीति को अमान्य करने कभी नहीं कहते। सुनकर संतुष्ट होते हुए उन्होंने कहा-'वे महापुरुष हैं, वे ऐसा कह भी नहीं सकते। देखिये, ये लोग ब्राह्म समाज के प्रचारक श्री मनोरंजन गुहठाकुरता

को पुनः समाज में लेना चाहते हैं। यदि सामाजिक रीति से प्रायश्चित्त कराके समाज में ग्रहण करें, तो किसी को आपत्ति नहीं होगी। किंतु ये बिना प्रायश्चित्त के उन्हें समाज में ग्रहण करने की जिद कर रहे हैं। गोसाईंजी ने तार भेजकर कहा है-'Do Prayaschitta as samaj asks. (समाज जैसा चाहे, उस प्रकार प्रायश्चित्त करो।) वे महापुरुष हैं, उनकी बात अनुचित नहीं हो सकती। पर गोसाईंजी के आदेश के बाद भी ये बिना प्रायश्चित्त के उन्हें समाज में ग्रहण करने की जिद पर अड़े हुए हैं। इस लिए समाज के अन्य लोगों से भी इनकी सद्भावना नहीं रही। एक दल में कई लोग हों तो क्या समाज की प्रथा का विरोध करते रहेंगे? यह कौन सहन करेगा?' उनकी बातें सुनकर अच्छा लगा। आते समय पुनः उन्होंने पदधूलि ली। गुरुभाईयों ने सोचा था, कि ये मेरा अपमान करेंगे, परंतु इनकी बातें सुनकर सब लोग विस्मित हो गए।

आज चौदह-पंद्रह दिन हो गए वानरीपाड़ा आया हूँ। कुसुम व कुंज के साथ बड़े आनंद से समय बीतता है। कुसुम की अवस्था असाधारण, अलौकिक है। मैं केवल देखता और विमुग्ध होता जाता हूँ। कितनी साधना, उपासना, ध्यान और प्रयत्न करके समाधि अवस्था प्राप्त हो पाती है। कुसुम को यह सब कुछ नहीं करना पड़ता है, ठाकुर को प्रणाम करके और उन्हें स्मरण करके आसन पर बैठते ही पल भर में समाधि-मग्न हो जाती हैं। स्थान-अस्थान, कालाकाल का विचार नहीं रहता। ऐसी सहज समाधि मैंने कहीं न देखी और न सुनी है। इन दो सप्ताह में कुंज व कुसुम की जो सुन्दर अवस्था देखा, उसे मैं भाषा द्वारा व्यक्त नहीं कर सकता। वह केवल स्मरण और ध्यान का विषय है। विशेष रूप से कुसुम की अवस्था

लिखकर भी मैं उसे जन साधारण के समक्ष प्रकट नहीं कर पाऊँगा। **'प्रत्यक्ष विषय या प्रमाण न दे सको तो ऐसे विषयों को साधारण लोगों के सामने प्रकट नहीं करोगे'** ठाकुर का मुझपर ऐसा निर्देश है। जय दयालु ठाकुर! भक्तों को लेकर तुम्हारी जो लीलाएँ प्रत्यक्ष देखा, वह जीवन के अन्त तक स्मरण रख सकूँ।

मैंने आज कुंज के मुख से सुना, कि ठाकुर कई गुरुभाई-बहनों को साथ लेकर प्रयाग चले गये हैं। सुनकर मन अधीर हो उठा। ठाकुर के पास जाने का निश्चय करके कुंज के साथ कलकत्ता रवाना हो गया। कलकत्ता आकर अभय बाबू के घर रुका। गुरुभ्राताओं से मैंने कुंभ जाने की इच्छा व्यक्त की। छोटे दादा भी कुंभ जाना चाहते थे। कुछ रुपए भिक्षा में मिल गये। गाड़ी का किराया जुट गया। मेरे साथ छोटे दादा, कुंज और अश्विनी भी चले। यथा समय हावड़ा पहुँचकर, हम प्रयाग के लिए रवाना हो गए।

प्रयाग पहुँचकर विपत्ति में गोसाईंजी की पुकार।

रात को नौ बजे हम इलाहाबाद स्टेशन पहुँचे। अपना-अपना सामान लेकर स्टेशन से बाहर आए। कुंज और अश्विनी ने एक गाड़ी किराये पर ले ली और हमें शीघ्र गाड़ी पर चढ़ने को कहा। गाड़ी चालक ने पूछा-बाबू कहाँ जाना है? धर्मशाला या और कहीं? कुंज ने अश्विनी से पूछा-बताओ न कहाँ जाना है. गोसाईंजी कहाँ ठहरे हैं? अश्विनी ने कहा-तुम बताओ। कुंज ने कहा-तुम बताओ। इनके झगड़े देखकर मैं तो सामान लेकर उतर गया। उन्होंने कहा-अरे उतरते क्यों हो? बताओ न गोसाईंजी कहाँ हैं? मैंने कहा-'वे सर्वत्र हैं। मैं एक पेड़ के नीचे बैठ गया। कोचवान ने बिगड़कर कहा-आप

तो अच्छे बाबू लोग है, मुझे ठंड में बैठाकर स्वयं झगड़ते जा रहे हैं। नीचे उतरकर झगड़ा कीजिये या फिर बताईये कहाँ चलना है। सभी नीचे उतर पड़े, अश्विनी ने कहा-ये मूर्ख गोसाईं के पास जाने के लिए आ तो गए, पर उनका पता ठिकाना तक नहीं लाए। कुंज ने कहा-तू भी तो आया है, तू क्यों नहीं लाया? अश्विनी-मैं तो तेरे साथ आया हूँ। तू जहाँ जाएगा मैं भी जाऊँगा। मुझे पता ठिकाना से क्या काम। कुंज-अब झगड़ने से फायदा नहीं, क्या करना है सोचो। वह शैतान तो 'गोसाईं सर्वत्र हैं' कहकर पेड़ के नीचे जा बैठा है। उसे भी पता नहीं मालूम, अब क्या उपाय करें? अश्विनी-अरे चिंता क्यों करते हो अपना-अपना सामान कंधे पर लेकर मेरे पीछे-पीछे चलो। मैं जैसा कहूँ वैसा करो। मैं ठीक तुम्हें गोसाईं के पास पहुँचा दूँगा। वे एक दिन जहाँ रहते हों, वहाँ उनकी चर्चा फैल जाया करती है। वे इतने दिनों से यहाँ हैं, और कोई जानेगा नहीं? शहर के किसी सज्जन से पूछने पर अवश्य गोसाईं का पता बता देंगे। कुंज-रात को दस बजे इतनी ठंड में सज्जन पता बताने के लिए रास्ते में घूम रहे हैं। तुम ही जाओ, उनसे पता पूछ आओ। फिर हम जाएँगे। अश्विनी-मैं अकेला नहीं जाता, तू भी साथ चल। कुंज-तुझे अधिक नहीं जाना पड़ेगा। थोड़ी ही दूर जाते तो कितने ही सज्जन घूमते दिखाई पड़ेंगे। वे सब को इसीलिए घूमते रहते हैं। अश्विनी-अब चुप भी रहेगा या घूँसे खाकर मरेगा।

अब अश्विनी वहाँ से मेरे पास आ गया। मैंने देखा हालत ठीक नहीं है, अब यह मेरी राशि पर सवार होनेवाला है। मैंने छोटे दादा से कहा-चलिए शहर चलें। ठाकुर को अधिक ढूँढ़ना नहीं पड़ेगा। क्योंकि वे भी तो हमें ढूँढ़ रहे होंगे। मुझे व छोटे दादा को चलता

देख अश्विनी और कुंज चुपचाप पीछे-पीछे चलने लगे। पौष की ठंड, अंधेरी रात, अनजान स्थान में थके-हारे हम कंधों पर सामान लादे चल पड़े। बड़े रास्तों, गलियों में घूमकर हम हैरान और थककर चूर हो गए। अश्विनी ने कहा-और कितना घुमाओगे? अब मैं नहीं चल सकता। मैंने कहा-बस और अधिक नहीं, मेरे पीछे-पीछे चलो। तुम तो सबमें अधिक शक्तिशाली हो, मुझ सा दुर्बल यहाँ कोई नहीं, बल्कि मेरा सामान उठाकर कुछ मदद करो। इस पर अश्विनी ने कहा-ठहर तेरी अच्छी तरह मदद कर दूँ, तू हाथ नहीं आ रहा है, इसीलिए बचा हुआ है। हम ऐसे झगड़ते जा रहे थे, पर हम वस्तुतः बड़ी विपत्ति में थे। बड़े रास्ते में कुछ दूर चलने पर मैंने आवाज सुनी-**'ब्रह्मचारी मैं यहाँ हूँ, चले आओ।'** आवाज तो ठाकुर की ही थी, हम सब ठिठककर रुक गये। मैं समझ गया, ठाकुर इस दाहिने ओर के मकान में ही है। तभी एक गुरुभ्राता ने द्वार खोला। हमने देखा भीतर गोसाईंजी बैठे हैं। उनके साथ अनेक गुरुभ्राता हैं। बरामदे में सामान रखकर हमने ठाकुर का दर्शन किया एवं साष्टांग प्रणाम किया। आहार आदि के बाद हम ठाकुर के ही कमरे में सुखपूर्वक सो गये। जय गुरु देव!

कुंभ मेले का स्थान दर्शन।

रात बीतते ही ठाकुर मंजीरा बजाकर प्रातः कीर्तन करने लगे। हम भी अपने-अपने आसन पर उठ बैठे। कीर्तन के बाद हम सब गंगा स्नान को गये। वहाँ से लौटकर सबके साथ चाय पीकर ठाकुर के पास आया। उन्होंने मुझे उनके ही पास आसन लगाने को कहा। अन्यत्र ठाकुर जैसे सारिणी बनाकर चौबीस घंटे उसी के अनुरूप

चलते हैं, यहाँ भी ठीक वैसे ही चल रहे हैं। वे स्वयं श्री चैतन्यचरितामृत, ग्रंथ साहब, भागवत् पाठ करते हैं। ग्यारह बजे शौच के लिए जाते हैं। तब सब गुरुभाई मिलकर हँसी-मजाक, बात-चीत करते हैं।

सुना है, ठाकुर दस-बारह दिन हुए नानी माँ, शांति, कुतु, योगजीवन, जगबन्धु बाबू, महेन्द्र बाबू, श्यामाकांत पण्डित, श्रीधर, विधुबाबू के साथ प्रयागधाम में हैं। राह में कुछ दिन हरिहर छत्र, सोनपुर मेला देखने रुके थे। इस मेले में गाय, बकरी, भेड़, घोड़े, ऊँट, गृह पालित पशु, और भी कई सामग्रियाँ बेची जाती हैं। बंगाल, बिहार, उड़ीसा में ऐसा बड़ा मेला और कहीं नहीं लगता। विक्रेताओं की आमदनी भी अच्छी होती है। मेला देखने के बाद ठाकुर इलाहाबाद आकर शाहगंज के इस मकान में ठहरे हैं। इसमें छः सात कमरे, एक बड़ा हॉल, भीतर चौक वाला आँगन है, जिसमें गुरुभाईयों के कमरे, ऊपर महिलाओं के लिए दो कमरे है। हम तीस चालीस गुरुभाई है, पर स्थानाभाव नहीं होता। ठाकुर ने रास्ते से लगे हॉल में आसन लगाया है। बरिशाल, ढाका, फरीदपुर, वर्धमान आदि स्थानों से गुरुभाईयों को कुंभ आने के लिए ठाकुर ने लिखा है, और वे आते जा रहे हैं।

अपराह्न तीन बजे आसन से उठकर ठाकुर बाहर निकले। मुझे कमण्डल लेकर साथ चलने को कहा। मैं ठाकुर के पीछे-पीछे कमण्डल लेकर चला। गुरुभाई भी ठाकुर के साथ हो लिये। काफी दूर चलकर हम गंगा तट पहुँचे। यहीं गंगा, यमुना, सरस्वती का मिलनस्थल--त्रिवेणी संगम है। प्रयाग में गंगा दक्षिण तथा यमुना पूर्व की ओर बहती है। शुभ्र गंगा एवं नील यमुना के जल का

मिलनस्थल एक रेखा के समान स्पष्ट दिखाई पड़ता है। सरस्वती अंतः सलिला है। यह स्थान बड़ा ही मनोरम है। इन दो महान नदियों के बीच प्रसिद्ध दुर्ग प्रयाग स्थित है। जिसमें हिन्दुओं के धर्म की अक्षय कीर्ति का अक्षयवट आज भी विद्यमान है। प्राचीन काल में यहीं ऋषि भरद्वाज का आश्रम था। वन गमन की राह में भी राम, सीता, लक्ष्मण इसी आश्रम में ठहरे थे। प्रति वर्ष माघ में अनेक ऋषिमुनि इस आश्रम में रहकर कल्पवास और त्रिवेणी स्नान करते थे। इसी असाधारण महत्व के कारण प्रयाग को ऋषियों का तीर्थराज कहा गया है।

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा, जिनहिं राम पद अति अनुरागा॥
तापस शम दम दया निधाना, परमारथ पथ परम सुजाना॥
माघ मकरगत रबि जब होई, तीरथ पतिहि आव सब कोई॥
देव दनुज किन्नर नर श्रेणी, सादर मजहिं सकल त्रिवेणी॥
पूजहिं माधव पद जलजाता, परसि अखयबट हरषित गाता॥
भरद्वाज आश्रम अति पावन, परम रम्य मुनिवर मन भावन॥
तहाँ होय मुनि ऋषय समाजा, जेहिं जे मज्जन तीरथ राजा॥
मज्जहिं प्रातः सहित उछाहा, कहहिं परस्पर हरि गुन गाहा॥
ब्रह्म निरुपन धर्म विधि वर्णहि तत्त्व विभाग।
कहहिं भक्ति भगवंत की संजुत ज्ञान विराग॥
एहि प्रकार भरि मकर नहाहीं, पुनि सबही निज आश्रम जाहीं॥
प्रतिसंवत अस होय अनंदा, मकर मज्ज गवनहि मुनि वृंदा॥

(श्रीमत् तुलसीदास कृत रामायण, बालकाण्ड।)

गंगा के उस पार विस्तृत भूखंड पर कुंभ मेला का स्थान व्यवस्था निर्दिष्ट हुआ है। सरकार ने नौका-सेतु बनाकर यातायात

की सुविधा एवं व्यवस्था की है। ठाकुर के साथ हम सेतु पार कर उस पार पहुँचे। गंगा के जल से उभरा भूखंड छः सात फुट ऊँचाई पर, विशाल जमी हुई रेत का समतल भूभाग है। भारत के प्रसिद्ध साधु, संन्यासी, उदासी, महंतों ने अपने-अपने संम्प्रदाय की आवश्यकतानुसार स्थान, बेड़े से घेर लिया है। किसी ने तो एक मील के करीब स्थान घेर लिया है। पहले संन्यासियों का, फिर नानकशाही, उदासी, फिर वैष्णवों का स्थान निर्दिष्ट है। इसके बाद भी काफी जगह बची है, जहाँ अन्य धर्मार्थी, साधु संत, छत्र, तम्बू लगाकर लाखों की संख्या में रहेंगे। कोई तो खुले आसमान के नीचे कड़ाके की ठंड में रातभर मात्र धूनी जलाकर व्यतीत करते हैं। हजारों हिंदू गृहस्थ भी कल्पवास के लिए हर वर्ष प्रयाग आते हैं। वे भी पूरे माघ माह गंगा तट पर रहकर प्रातः स्नान एवं दिन भर साधन-भजन में समय व्यतीत करते हैं। इस बार साधुसंतों की इतनी अधिक संख्या है कि शायद गृहस्थों के लिये स्थान मिलना कठिन है। कई साधुसंत प्रयाग के पास के मैदान, नदी के दूसरे तट पर झूसी में कुटीर निर्माण करने को बाध्य हो गए हैं। झूसी व इलाहाबाद से प्रयाग आने जाने के लिए गंगा पर दो बड़े पुल बनवाए गए हैं।

इस कुंभ मेले में वैष्णव सम्प्रदाय के प्रधान नेता ने वैष्णव संप्रदायों के लिए काफी स्थान घेर लिया है। हमने भी उसमें से एक बीघा जमीन लिया है--वही स्थान देखने ठाकुर चले। कुछ दूर चलकर वहाँ पहुँचकर देखा एक कुआँ खोदा जा रहा है। दस फुट खोदते ही स्वच्छ जल मिल गया। उसी स्थान पर कुछ देर ठहरकर, ठाकुर एक दृष्टि से एक व्यक्ति की तरफ ताक रहे थे। वे लोहे की

कड़ाही सर पर रखकर, जमीन पर लेटे ठाकुर को एकटक निहार रहे थे। उसकी ओर देखते हुए ठाकुर ने कहा-**‘अहा! क्या सुंदर, शुभ्र ज्योति मस्तक से निकलकर चारों ओर विकीर्ण हो रही है, ये असाधारण महापुरुष हैं।’** ठाकुर की बातें सुनकर उनकी तरफ देखा। लँगोट पहने, काले रंग के, मजबूत शरीरवाले व्यक्ति रेत पर लेटे, ठाकुर को देखे जा रहे थे। हमारा उन महापुरुष की ओर ध्यान नहीं गया। हम ठाकुर के पीछे चलते हुए लौट रहे थे। थोड़ी ही देर में वे महापुरुष दौड़कर ठाकुर के सामने आए और नृत्य करते हुए उल्टे ऐसे चलने लगे, ताकि ठाकुर को चलने में असुविधा न हो। कई तरह से अंग संचालन करते हुए वे दोनों हाथों से ठाकुर की आरती करते हुए आहा! आहा! ऐसा आनंदसूचक ध्वनि करते रहे। फिर एकाएक दौड़कर अदृश्य हो गए। ठाकुर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। हम सब ठाकुर के साथ गंगातट से पुल पर आ पहुँचे। ठाकुर ने कहा-**‘कल जब इस भूखंड पर घूम रहा था तभी ब्रह्मचारी और शारदा को साथ-साथ देखा। मैं तभी समझ गया, ये लोग आ रहे हैं।’** हम संध्या के पहले ही औट आए। आकर नौ बजे तक संकीर्तन का आनंद चला, उसके बाद भोजन कर, हम सबने विश्राम किया।

बेनीमाधव तथा अन्य विग्रह दर्शन: ठाकुर का दान।

आज चाय पीकर ग्रंथादि को प्रणाम कर, ठाकुर बेनीमाधव के दर्शन करने चले। मैं कमण्डल लेकर गुरुभाई-बहनों के साथ चला। लगभग डेढ़ कोस चलना पड़ा। रास्ते के दोनों ओर के भिखारी पैसे

माँगने लगे। ठाकुर दो-चार पैसे देते चले और हँसकर बोले-**'आज तो हम बड़े दाता बन गए। दो चार पैसे देने लगे।'** यह सुनते ही जिसके हाथ में जो कुछ था, ठाकुर को देने लगे, ठाकुर उन्हें दीन दरिद्रों को बाँटते रहे। थोड़ी देर बाद त्रिवेणी पहुँचकर सबने स्नान किया। वहाँ से ठाकुर बेनीमाधव के दर्शनार्थ चले। मंदिर पहुँचकर साष्टांग प्रणाम किया और एक रुपए का बताशा मँगाकर बेनीमाधव को भोग लगाया। ठाकुर ने कहा-**'इस स्थान में आकर महाप्रभु कुछ दिन ठहरे थे।'** मंदिर से बाहर आकर दशाश्वमेध घाट दिखाकर ठाकुर ने कहा-**'यहाँ महाप्रभु ने रूप गोस्वामी को दस दिन तक शिक्षा प्रदान किया था।'** ठाकुर के साथ काफी देर बाद हम लौटे। बातचीत के दौरान ठाकुर ने कहा-**'बहुत तो घूमा, पर वैसा एक भी साधु नहीं देखा। साधु के नाम पर बेनीमाधव ही केवल दिखे, इसलिए उन्हें ही कुछ दे आया।'** ठाकुर ने ऐसा क्यों कहा पूछने पर उन्होंने कहा-**'बेनीमाधव साधु का वेश लेकर मेरे पास भिक्षा माँग रहे थे।'**

ठाकुर का विभिन्न देवालय दर्शन।

आज ठाकुर तीन बजे आसन से उठकर बाहर निकले। गुरुभ्रातागण भी उनके पीछे चले। ठाकुर के पैरों में दर्द होता है, अधिक चल नहीं पाते, इसलिए श्री हरिदास बसु के कहने पर विधु घोष ने एक गाड़ी किराए पर बुलाया। ठाकुर उस पर चढ़कर बैठे, उनका कमंडल मेरे हाथ में था, अतः मुझे भी गाड़ी में बैठने को कहा। महेन्द्र मित्र भी गाड़ी में चढ़े और विधुबाबू कोचवान के पास बैठे, गाडी चल पड़ी। गुरुभ्राताओं ने देखा पैदल चलकर तो ठाकुर

का साथ पाना संभव नहीं अतः जो गाड़ी मिली भाड़ा तय किए बिना चढ़ गए। ऐसी पाँच गाड़ियाँ चल पड़ी। शाम तक कई देवालयों का दर्शनकर ठाकुर लौटे, तभी गुरुभ्राताओं की गाड़ियाँ भी आ गईं। उतरकर सब झटपट भीतर चल दिए। गाड़ी वाले डेढ़ गुना भाड़े की माँग करते हुए चिल्लाने लगे। बोलपुर के विख्यात वकील श्री हरिदास बसुजी ने, जो कमरे में विश्राम कर रहे थे, यह सब सुनकर, स्वयं प्रवृत्त होकर सबका भाड़ा चुका दिया। उनके लिए पूरे माह भर कुंभ मेले में रहना संभव न होगा, अतः ठाकुर के दर्शनार्थ आए हैं। संध्या कीर्तन के बाद सबने आहार समापन कर, विश्राम किया।

नंगाबाबा: गुरुभ्राताओं के कारनामे।

ठाकुर ने बातचीत करते हुए कहा-कि जब तक वे कुंभमेले के स्थल पर नहीं जाएंगे रोज गंगातट या मेले के स्थल पर जाकर साधु दर्शन कर आएंगे। आहार के बाद गुरुभ्रातागण तैयार रहते। ठाकुर रोज की भाँति आज भी तीन बजे निकल पड़े, गुरुभ्राता भी साथ चले। जिनके पास कुछ पैसे कौड़ी नहीं है, उनका उत्साह अधिक है। वे किसी तरह कुंभ मेला देखने ठाकुर के पास आए हैं। वे ठाकुर को पीछे छोड़ गाड़ी के अड्डे पर जाकर एक गाड़ी ठाकुर के लिए रख, दो तीन में स्वयं जा बैठे। ठाकुर आज मेले स्थल पर न जाकर गंगातट पर विशाल वट वृक्ष के नीचे, जीर्ण कुटिया में एक साधु के पास आए। ठाकुर को देखकर वे आनंद से मस्त हो गए और कितनी ही स्तुति करके, आदरपूर्वक ठाकुर को कुटीर के सामने बैठाया।

साधु अत्यन्त वृद्ध लगभग नब्बे वर्ष के होंगे। वे नग्नावस्था में

रहते थे, अतः उन्हें नंगाबाबा कहा जाता है। हरिचर्चा सुनते ही उनको अश्रु-पुलक आदि होता देख सभी हर्षित हुए। शाम को हम सब लौटे। हरिदास बाबू ठाकुर की गाड़ी का किराया चुकाकर बैठे थे। कल की भाँति अन्य गाड़ीवाले किराया न मिलने से चिल्ला रहे थे। गुरुभाईयों में से एक ने कहा-अरे गाड़ीवाले चिल्ला रहे हैं, कोई सुनता क्यों नहीं? किसी ने कहा-मुझे कुछ सुनाई नहीं देता। कोई शौच, तो कोई पेशाब के बहाने खिसक जाता। कोई तम्बाखू पीता द्वार की दरार से झाँककर देखता रहा। संपन्न एकमात्र हरिदास बाबू थे। उन्होंने सोचा चिल्लाने की आवाज सुनकर ठाकुर नाराज होंगे, अतः चाहकर या न चाहते हुए भी कल की तरह आज भी उन्होंने सारा किराए चुकाए। वे जिस दिन से आए हैं-सारे भंडार का पूरा खर्च भी वहन कर रहे हैं। फिर ऊपर से गुरुभ्राताओं का यह दबाव। वे खीजकर बोले, वे कल से किराया नहीं देंगे एवं इस आचरण के बारे में ठाकुर से कहकर इसका निदान करेंगे।

संध्या को ठाकुर के पास प्रतिदिन की तरह संकीर्तन हुआ। शहर से कुछ संभ्रात व्यक्ति भी आए थे। संकीर्तन में गुरुभ्राताओं के भावावेश को देखकर वे हैरान रह गए। श्रीराम यादव बागची महोदय तो ठाकुर को देखकर मुग्ध हो गए। ठाकुर के प्रयाग आने के बाद से वे घनिष्ठतापूर्वक मिलजुल रहे हैं। उनका घर नवद्वीप में है, यहाँ डॉक्टरी करते हैं।

ठाकुर नंगाबाबा की भावभक्ति, अश्रु, पुलकादि के बारे में प्रशंसा करते हुए बातचीत करते रहे। रात के स्वल्पाहार के बाद महेन्द्रबाबू आदि गुरुभ्राताओं से उन्होंने कहा-**'हरिदास बाबू पर बड़ा ही अत्याचार हो रहा है,उनसे अब गाड़ी का किराया मत लेना।'**

ठाकुर की बात सुनकर सभी उद्विग्न हो उठे। कल से इतना सारा किराया किससे वसूल करेंगे? स्वस्थ, सबल होने पर भी ठाकुर के साथ जाने की लालसा से कोई पैदल जाना नहीं चाहता।।

आज सुबह मन्मथनाथ मुखोपाध्याय हमारे परम प्रिय गुरुभ्राता कानपुर से आ पहुँचे। सबको बड़ा आनंद आया, ठाकुर भी बड़े संतुष्ट हुए। पर हमारे भाग्य से वे दो ही दिन रह पाएंगे। वे वकील हैं, कोई बड़ा मामला हाथ में लिए हैं अतः शीघ्र कानपुर लौटना पड़ेगा। मन्मथदादा दो-तीन दिन तक भंडार व्यय, सारी गाड़ियों का किराया संतुष्ट होकर देते रहे। उनके जाते ही हरिदास बाबू भी जाने के लिए व्यग्र हो उठे। अब इतने सारे लोगों का दैनिक खर्च कैसे चलेगा इस चिंता से सभी चिंतित हो उठे। गुरुभ्राताओं की संख्या दिनोंदिन बढ़ रही है, पर कोई भी संपन्न नहीं है। कुछ तो किसी तरह मात्र गाड़ी का किराया जुटाकर चले आए हैं। जो कुछ थोड़े संपन्न हैं, वे भी तो कितने दिन खर्च वहन कर पाएंगे?

आश्रम में कार्य-विभाजन: ठाकुर की भिक्षा एवं दान। ठाकुर की आकाशवृत्ति।

आज सुबह कुछ विशेष गुरुभ्राताओं ने श्री राम यादव बागची जैसे हितैषी जनों के साथ एक बैठक बुलाई। आलोचना होने लगी कि दैनिक खर्च कैसे चलेगा। उनके हाथ में जो था, वह समाप्त हो चुका है। अब क्या उपाय किया जाय। ठाकुर सबको लेकर एक माह कुंभमेले में रहेंगे। साधु-संतों को भडारा भी देंगे। गुरुभ्राताओं को स्वेच्छा से इस महान कार्य में योगदान देने के लिए पत्र भी डाला गया है, परन्तु अब तक किसी ने कुछ भी नहीं भेजा। अब माह भर

का दैनिक खर्च कैसे चलाया जाय? ठाकुर यदि नानी माँ, शांति, कुतु, जगबंधु बाबू और योगजीवन जो ठाकुर के नित्य साथ रहनेवाले हैं, मात्र उन्हें लेकर रहें तो कोई कष्ट न होगा, लेकिन रोज झुंड के झुंड जो गुरुभ्राता लोग आते जा रहे हैं, वे यदि अपना-अपना भी व्यय भार न उठाएँ तो हालत कठिन हो जायगी। खाद्य के अभाव में सभी को कष्ट भोगना पड़ेगा। इस विषय में उचित निर्णय के लिए वे ठाकुर के पास पहुँचे और उन्होंने ठाकुर से कहा हम आपसे एक काम की बात पूछने आए है? ठाकुर-**'क्या काम की बात है, बताइए?'** उन्होंने कहा-देखिए यहाँ पर स्त्री-पुरुष मिलाकर लगभग चालीस-पचास लोग हैं। अब तक तो जैसे-तैसे चल गया। अब दैनिक व्यय कैसे चलेगा-यही हमें चिंता है। आय का कोई साधन नहीं है। खर्च दिन पर दिन बढ़ रहा है। जो लोग हैं, उन्हें इसकी परवाह नहीं है। वे पत्तल लेकर भरपेट खाते हैं-बाकी समय हुक्का तम्बाखू पीते, फालतू बातें करते और झगड़ते हैं। साधन-भजन भी नहीं करते, ये बेकार के लोग, जवान मर्द, अकर्मण्य, आलसी हैं, आश्रम का भी कोई कार्य नहीं करते। बोलो तो लड़ पड़ेंगे। बड़ी मुश्किल है। ये लोग अपना-अपना व्यय भार खुद उठाएँ तो कोई असुविधा नहीं होगी। ठाकुर सुनकर दु:खी होकर कह उठे-**'अहा! इन्हें ऐसा मत कहो। ये सभी संभ्रात् घर के हैं। सभी के घर खाने, पहनने को है। दया करके मेरे पास आए हैं। ये ही तो मेरे सर्वश्रेष्ठ साधु हैं।'** ठाकुर का ऐसा कहना सुनकर गुरुभ्रातागण जोरों से रो उठे, कोई अचेत हो गया, किसी को अश्रु, पुलक, कम्पादि होने लगा, वे अपने भीतर का आवेग धारण न कर सके, कोई आँसू भरे नेत्रों से ठाकुर को अपलक देखता रहा। अभियोग

करनेवाले व्यक्ति भी यह सब देख-सुनकर हैरान रह गए। ठाकुर कुछ देर चुप रहकर फिर बोले-**‘आश्रम में जो भी रहते हैं, उन्हें प्रत्येक को कुछ न कुछ आश्रम सेवा का कार्य लेकर रहना चाहिये, अन्यथा अपराध होता है। आप सब मिलकर आश्रम का कार्य विभाजित कर लें, कोई अशान्ति नहीं रहेगी। मुझे भी कोई एक कार्य सौंपे।’** ठाकुर की बात सुनकर सभी ने लज्जित होकर सिर झुका लिए एवं चुप रहे। तब ठाकुर ने कहा-**‘अच्छा सबको भिक्षा करके खिलाने का भार मैं ग्रहण करता हूँ। अब तुम लोग जिसकी जो इच्छा मुझे भिक्षा दो।’** यह कहकर ठाकुर ने आँचल फैला दिया। गुरुभ्रातागण जिसके पास जो था, लाकर देने लगे। भिक्षा में एक सौ साठ रुपए मिले। पाँच छः दिन का खर्च चल जायगा सोचकर सब निश्चिन्त हुए। ठाकुर ने कहा-**‘मेरी एक बात सर्वदा याद रखना, मेरी आकाशवृत्ति है-एक दिन की वस्तु दूसरे दिन के लिये संचित करके भंडार में न रखना। जिस दिन जो आयगा, सभी खर्च कर डालना होगा।’** गुरुभ्रातागण यह सुनकर चले गए एवं आपस में काम बाँट लिया गया। राम यादव बाबू काफी दिनों से यहाँ रहते हैं, अतः देवेन्द्र चक्रवर्ती के साथ बाजार का कार्यभार उन्हें सौंपा गया। जगबंधु व श्यामाकांत पण्डित पर भोग पकाने की व्यवस्था देखरेख का भार रहा। महेन्द्रदादा लिपिक बने। गुरुभाईयों ने पानी भरने, बर्तन मांजने जैसे सभी कार्य जिसे जो जँचा आपस में सहर्ष बाँट लिया और अपने-अपने कार्य में उत्साहपूर्वक जुट गए। आलसी गुरुभ्राताओं में भी उत्साह का स्रोत बह चला।

माघ उत्सव में अब अधिक दिन बाकी नहीं रहे। मेले स्थल पर

लाखों साधु-संत छावनी बनाकर हैं। गंगातट पर अनावृत्त मैदान में भी कई साधुओं ने आसन लगाया है। कंगाल, दीन, दरिद्र भी बहुत हैं। शहर लोगों से भरा है। दिनभर भिक्षुकों की कमी नहीं। ठाकुर रुपए पाकर जब जो माँगता, देते जाते हैं। कुछ ही घंटों में चालीस-पचास रुपए उड़ गए। तीन बजे ठाकुर यथारीति निकले, बाकी रूपए भी साथ ले चले। गंगातट पर पहुँचते ही चार पाँच साधुओं ने आकर ठाकुर से कहा-स्वामीजी दो रोज से हम भूखे हैं, मेहरबानी कीजिए। कोई कहता-महाराज धूनी की लकड़ी नहीं है, भजन-साधन बंद हो गया, अब क्या करें? कोई पानी पीने का लोटा माँगता है, कोई कहता गांजा नहीं मिलता। एक दल ने कहा-जाड़े में मर रहे हैं, बाबा हमें एक-एक कंबल दे दीजिए। प्रार्थियों को जो जैसा माँगता-दस, पंद्रह बीस, पचीस देकर सारे रुपए समाप्त करके ठाकुर घर लौटे। ठाकुर के इस बिना सोचे-समझे व्यय कर देने से कुछ लोग चिंता में पड़ गये। कल कैसे खर्च चलेगा, इतने सारे लोगों को क्या खिलाएंगे? ठाकुर ने खिलाने का भार लिया है, देखें क्या करते हैं-इसी चिंता में रात में कुछ लोगों को नींद नहीं आई।

शेष रात्रि को भोर कीर्तन करके ठाकुर आसन पर बैठे। एक हिन्दी भाषी संभ्रात व्यक्ति ने ठाकुर के सम्मुख बरामदे में आकर प्रणाम किया और हाथ जोड़ते हुए कहा-स्वामीजी कृपा करके हुकुम कीजिए, सेवा के वास्ते हम कुछ थोड़ा भेज दें। ठाकुर ने सिर हिलाकर सम्मति प्रदान की। हम ठाकुर के साथ कितने लोग हैं, जानकर वह व्यक्ति चला गया। कुछ ही देर में दो काँवरवालों ने आटा, चावल, दाल, घी, शक्कर, तेल, मिश्री, सूजी, आलू, गोभी, भटा, सेम, नीबू, जाम, दूध, दही, रबड़ी, सन्देश, पापड़, कई तरह

के मसाले, तम्बाकू, टिकिया, माचिस, पान, सुपारी आदि कितनी ही चीजें ढेर सी लाकर दिया। आज कई तरह के व्यजंन बने। खा-पीकर सभी विश्राम करने लगे। ठाकुर ने भंडार के जिम्मेदार व्यक्तियों से कहा-**'आज के लिए जितना प्रयोजन है, केवल उतना रखकर, शेष सभी वस्तुएँ गरीबों में बाँट दें। कल के लिये कुछ भी बचाकर न रखें। यह मेरी आकाशवृत्ति का नियम हैं।'** ठाकुर के आदेशानुसार वैसा ही किया गया। कुछ गुरुभाईयों ने कहा-जितनी सामग्री बची थी, कल भी आराम से चल जाता, पर ठाकुर ने यह क्या किया, सब कुछ समाप्त करवा दिया।

अपराह्न को ठाकुर ने रामयादव बाबू आदि से कहा-**'आप लोग दो-चार दिनों के भीतर मेले के स्थान पर जाने की तैयारी कीजिए, यहाँ अब रहने की इच्छा नहीं होती।'** सुना है, हमें मिलनेवाले भूखंड को चारों ओर से टट्टे से घेरा गया है। उसमें रसोई व भंडार का भी कक्ष है। ठाकुर के लिए शौचालय भी बन रहा है। अब सिर्फ तम्बू मिल जाय, तो वहाँ जाने की कोई असुविधा न रह जायगी। स्थानीय सज्जन लोग हमारे लिए काफी प्रयत्न कर रहे हैं। और दिनों की भाँति संध्या कीर्तन आरंभ हुआ, गुरुभ्राताओं ने भावावेश में नृत्य किया। दर्शकों की भीड़ से रास्ता भी भर गया। देर तक कीर्तन के बाद हरिलूट देकर ठाकुर आसन पर बैठे। बड़े ही आनंद से सारा दिन बीता। रात को एक मारवाड़ी सज्जन के द्वारा भेजे गए मिष्ठान्न खाकर सब तृप्त हुए। कोई तो कल के लिए फिर चिंता करने लगे। कुछ ने कहा-जब ठाकुर ने आहार का भार लिया है, तो हमें व्यर्थ चिंता करने की क्या आवश्यकता है। मैं भंडार से चावल, दाल लेकर ही स्वपाक करता जा रहा हूँ।

ठाकुर भोर कीर्तन के बाद आसन पर बैठे। आज भी उस मारवाड़ी व्यक्ति ने ठाकुर को प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा- स्वामी जी आज्ञा दें, आज भी मुझसे जो कुछ बने, भंडारा भेज दूँ? ठाकुर ने कुछ देर उसकी ओर देखा फिर हँसकर सम्मति दी। आज भी कल की भाँति ढेर सी वस्तुएँ आई। ठाकुर के आदेशानुसार अवशिष्ट सामग्री गरीबों को बाँट दी गई। यहाँ के प्रसिद्ध डॉक्टर गोविन्द बाबू हमारे तम्बू के लिए बहुत प्रयास कर रहे हैं। रामयादव ने कहा-ग्वालियर महाराज के भूतपूर्व मंत्री सर दिनकर राव बहादुर दो-चार दिनों में एक विशाल तम्बू मँगवा देंगे। ठाकुर मेले में जाने के लिए व्यग्र हो उठे। रोज साधुओं की जमात आती जा रही है। निर्दिष्ट स्थान भर चुके हैं, कहीं जगह नहीं बची। कछ साधु गंगातट पर खुले मैदान पर ही धूनी रमाए, तो कोई छत्ता लगाए बैठे हैं। आज पुनः वही मारवाडी व्यक्ति आकर भिक्षा देने का आग्रह करने लगा। तब ठाकुर ने कहा-**'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, साधु लोगों की ऐसी रीति नहीं है। आज आपसे कुछ नहीं लेंगे।'** उसने कहा-घर में ढेर सी गाएँ है, खुब दूध होता है। कहें तो पाँच-सात सेर दूध ही भेज दूँ। ठाकुर ने उस पर भी सम्मति न दी। आठ बज गए, सभी को चिंता होने लगी। ठाकुर को कोई उद्वेग नहीं, वे निश्चिंत होकर आसन पर बैठे हैं। थोड़ी ही देर में एक व्यक्ति ने आकर किसी साधु-महात्मा की इच्छा प्रकट करते हुए कहा-प्रभु, वे आज साधु भंडारा दे रहे हैं। आपको सभी शिष्यों सहित आश्रम पधारकर प्रसाद पाने का निमंत्रण भेजा है। ठाकुर ने सहर्ष स्वीकार किया। दोपहर को सभी ने उनके आश्रम जाकर प्रसाद पाया। साधु महात्मा इस आश्रम को छोड़कर कहीं नहीं जाते। न मालूम इन्होंने ठाकुर का पता कैसे पा

लिया। आज बातचीत करते हुए ठाकुर ने कहा-**'तुम्हारे तम्बू का जुगाड़ हो या न हो, परसों आहार के बाद मैं मेले में जाकर रेत पर ही आसन लगाकर बैठूँगा।'** ठाकुर का निश्चय सुनकर गुरुभ्राता मेले स्थल में कहाँ तक काम बढ़ा देखने दौड़े। कुछ गोविन्द बाबू के पास दौड़े। तम्बू मिल गया, उसे लगाने मजदूर भेजे गए। छावनी में रहने की कोई असुविधा नहीं है, यह संवाद भी आ गया। औरतों के लिए व्यवस्था छावनी में न थी, अतः ठाकुर ने कहा, वे दिन में वहाँ रहकर, संध्या के पूर्व इस घर में लौट आएंगी।

आज गुरुभ्राताओं ने जाकर देखा-विशाल तम्बू लगाया गया है। रसोई घर, की पृथक् व्यवस्था हो गई है। ठाकुर का शौचालय भी बनकर तैयार हो गया है। गंगातट पर कठोर माघ की ठंड की रात काटना कष्ट साध्य है, जानकर कुछ गुरुभाईयों ने, जो जरा सुख के अभ्यस्त हैं, दिन में तम्बू में रहकर, रात को घर लौट आने का विचार किया। ठाकुर के साथ तीस-चालीस गुरुभ्राता रहेंगे। अभी हम पचास हैं, और भी बढ़ने की संभावना है। इस तम्बू में तीस-चालीस लोगों के सोने की जगह है। सभी सुबह की बड़ी उत्कंठा से प्रतीक्षा कर रहे हैं। संध्याकीर्तन के बाद जलपान करके सबने विश्राम किया।

कुंभमेले की यात्रा। राह में माधोदासजी का आश्रम दर्शन। परमहंसजी का आविर्भाव: ठाकुर की अभ्यर्थना: संकीर्तन में महाभाव का तूफान।

आज खूब सबेरे हम सब गंगा स्नान को गए। स्नान करके घर लौटे। ठाकुर चाय पीने के बाद, कब मेले के स्थल पर जाएंगे, पूछने

बहुत से लोग आए। आहार आदि बारह बजे समाप्त हुआ। सबके मन में उत्साह की सीमा नहीं है। कोई गाना-बजाना, कोई आनन्द ध्वनि कर रहा है। ठाकुर तीन बजे मेला जाने के लिये तैयार हुए। कुछ गुरुभ्राता पहले ही चल पड़े और पुल के पास हम सबकी प्रतीक्षा करने लगे। ठाकुर के पैरों का दर्द ठीक नहीं हुआ। जो चलकर न जाना चाहते थे, वे बिस्तर सामान के साथ गाड़ियों पर चले। मैं विधु घोष, महेन्द्र बाबू आदि ठाकुर की गाड़ी में चल पड़े। गाड़ी बड़े रास्ते से पुल की ओर चली। गंगातट पहुँचने से कुछ पहले ठाकुर ने गाड़ी रोकने को कहा। गाड़ी से उतरकर दक्षिण दिशा में एक मकान में ठाकुर ने प्रवेश किया। हम सब उनके पीछे-पीछे चले। जाकर देखा वह कोई गृहस्थ का मकान नहीं, बल्कि एक संत का आश्रम है। आश्रम दीवारों से घिरा है। दक्षिण की एक कोठरी में महाप्रभुजी प्रतिष्ठित हैं। बायीं ओर बड़ा बरामदा है, जिसमें काफी लोग बैठ सकते हैं। आँगन के दूसरी ओर फूल, तुलसी का बगीचा है। एक वृद्ध साधु ने मंदिर से निकलकर ठाकुर को देखकर आँसू भरे नेत्रों से साष्टांग प्रणाम किया। साधु ने ठाकुर को आदरसहित बरामदे में बिठाया और एकटक देखते रहे। भावावेश में उनके देह में सात्त्विक विकार होते दिखाई दिए। कुछ देर में ही उनकी संज्ञा लुप्त हो गई, ठाकुर भी समाधिमग्न हो गये। काफी देर बाद ठाकुर सचेत हुए, साधुजी की भी चेतना लौट आई। साधु ने कहा-'आप आज पधारेंगे, इसकी खबर मुझे पहले ही प्रभु ने सुबह दे दी। पूजा के समय उन्होंने कहा-आज विजय मुझे देखने आएंगे, उनके लिए प्रसाद रख देना। मैंने आपके लिये प्रसाद रखा है।' ठाकुर ने प्रसाद माँगा तो उन्होंने उत्कृष्ट लड्डू, मालपुआ लाकर ठाकुर के सामने रख दिया।

स्वयं थोड़ा सा प्रसाद लेकर ठाकुर ने प्रसाद गुरुभ्राताओं में बाँट दिया। प्रसाद का स्वाद व गंध अपूर्व था, जिसे पाकर सभी का मन प्रफुल्लित हो उठा। ठाकुर उठ पड़े और साधुजी से कहा-**'अब हम मेले जा रहे हैं। आप हमें आशीर्वाद दें।'** उन्होंने कहा-तुमने बीज बोया है, वृक्ष हों, फल फूल लगे, तुम वह भोग करो, हमें क्या आपत्ति हो सकती है।' ठाकुर धीरे-धीरे पुल के पास आ पहुँचे। पहले से गुरुभ्राता प्रतीक्षारत थे। गुरुभ्राता और अन्य लोग ठाकुर के पीछे-पीछे चलने लगे। ठाकुर पुल व भूखंड के संधि-स्थल पर जाकर रुक गए। गुरुभ्राता उन्हें घेरकर उनकी ओर अपलक निहार रहे थे। ठाकुर हाथ जोड़े चंचल दृष्टि से भूखंड की ओर कुछ देख रहे थे। ठाकुर के कहने पर मृदंग, मंजीरा, झाँझ, घंटे एक साथ बज उठे। ठाकुर का मुखमंडल आरक्तिम व गद्गद् हो उठा। उसी समय भीड़ में से तेजी से एक दीर्घकाय, कृष्णवर्ण, मुण्डित मस्तक महापुरुष, दौड़कर आए और दोनों बाहें फैलाकर-'आओ मेरे प्राण, आओ मेरे प्राण' कहकर ठाकुर को सीने से लगा लिया। फिर सभी गुरुभ्राताओं के सिर पर हाथ फेरने लगे। कोई-कोई भाग्यवान उनकी चरण-धूलि ले पाए। मेरे हाथ में ठाकुर का दण्ड-कमण्डल था, अतः मैं ऐसा नहीं कर पाया। उन्होंने मेरे मस्तक पर भी हाथ रखा, फिर कहाँ अदृश्य हो गए। उनके स्पर्श से सभी मत्त से हो उठे और गाने लगे-

नाम ब्रह्म नाम ब्रह्म नाम ब्रह्म बोलो भाई।
हरिनाम बिना जीवेर आर गति नाई।।

गुरुभ्राता गाते हुए नाचने लगे। ठाकुर का उद्दाम नृत्य आरंभ हुआ। इस तरह हम मेले में जा पहुँचे। संकीर्तन व वाद्य से चारों ओर

गूँज उठा। सभी उसमें मस्त हो गए, महाभाव का मानो तूफान सा उठा हो। विधु घोष कूदता हुआ सबसे आगे दौड़ा चला जा रहा था और ठाकुर को देखकर वाह! वाह! करता जा रहा था। गुरुभ्राता ठाकुर को घेरकर नृत्य करते हुए चले, साथ में दर्शकमंडली भी भावविभोर होकर चली। ठाकुर चारों ओर दौड़ते हुए दाहिना हाथ ऊपर करके, हरिध्वनि करते चल रहे थे। चारों ओर से आसन से उठकर साधु मण्डली भी कीर्तन में योगदान करने लगी। ठाकुर का मनमोहक रूप देखकर सभी मुग्ध हो गए और हरिध्वनि करने लगे। महाभाव के प्रबल स्रोत में सभी डूबते-उतरते रहे। कुछ दूर जाकर हमने देखा-एक गौरवर्ण, स्थूलकाय, उज्ज्वल मूर्ति महापुरुष सजल नेत्रों से ठाकुर की ओर देखते जा रहे हैं। उनका द्युतिमय, पुनीत देह थर-थर काँप रहा है। ठाकुर भी भँवर के जलस्रोत की तरह उनकी परिक्रमा करते रहे। सभी ओर आनंद कोलाहल होने लगा। हजारों संन्यासी यह देखकर छावनी में आ पहुँचे और संकीर्तन में योगदान देने लगे। तम्बू के सामने ठाकुर स्थिर होकर बैठ गए। साधु मंडली भी कीर्तन समाप्त होने पर अपने-अपने स्थानों को चली गई। गुरुभ्रातागण जो जहाँ थे, पड़े रहे। छावनी निःस्तब्ध हो गई।

कुछ देर बाद ठाकुर उठकर भंडार, रसोईघर देख आए, कुएँ और तम्बू के चारों ओर देखने के बाद तम्बू में प्रवेश किया, जिसका द्वार दक्षिण की ओर था। भीतर पुआल की मोटी तह और उस पर चटाई बिछाई गई। ठाकुर ने उत्तर दिशा से सटकर आसन लगाने का आदेश दिया। उनके आसन के सामने धूनी का कुंड रखा गया। ठाकुर आसन पर बैठे। सभी ने अपनी-अपनी इच्छानुसार आसन

लगा लिया। पगला सतीश, कुंज, अश्विनी, छोटे दादा और मैंने ठाकुर के दाहिने ओर आसन लगा लिया। धूनी जलाई गई। ठाकुर ने करताल बजाकर संध्या कीर्तन किया, गुरुभ्राताओं ने भी साथ-साथ कीर्तन किया। कीर्तन के अंत में हरिलूट दी गई। ठाकुर को तीन ओर से गुरुभ्राता ने घेरकर आसन लगाया था। महेन्द्र बाबू ने ठाकुर से पूछा-आते समय आप जिन साधु बाबा के आश्रम में गए थे, वे कौन हैं?

ठाकुर-**'वे एक महापुरुष हैं, नाम माधोदास है, मेरे गुरुभ्राता हैं। तीस वर्ष हुए एक ही स्थान पर रहकर साधन कर रहे हैं, कहीं नहीं जाते। शहर का कोई उन्हें जानता भी नहीं।'** महेन्द्र बाबू-तम्बू में आते समय आओ मेरे प्राण कहकर प्रेमपूर्वक आपसे कौन मिल रहे थे। कुछ ठहरकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से ठाकुर ने कहा-**'मेरे गुरुदेव परमहंसजी। उनके सिवाय मुझे ऐसा प्रेम और कौन करेगा? वे इसीलिए तो आए थे।'** इतना कहते हुए ठाकुर का कंठ रुद्ध हो आया और वे चुप रहे, वे बड़ी मुश्किल से भाव रोककर, संभल पाए। महेन्द्र बाबू ने पुनः पूछा-परमहंसजी तो गौर वर्ण के हैं, पर ये तो श्यामवर्ण के थे, तो क्या परमहंसजी ने दूसरा देह धारण किया था या अपने ही देह में आए थे?

ठाकुर-**'वे नया देह सृजन कर सकते हैं, किंतु अभी ऐसा नहीं किया था, न तो वे अपने देह में आए थे। एक परमहंसजी के देह में प्रवेश करके आए थे।'** काफी रात तक ठाकुर से सदालाप व सत्प्रसंग हुआ। फिर सबने विश्राम किया। ठाकुर एक ही जैसे स्थिर आसन पर सारी रात बैठे रहे।

कुंभ मेले की अपूर्व श्रृंखला।

रात बीतते ही ठाकुर भोर कीर्तन करने लगे। सभी अपने-अपने आसन से उठ पड़े। फिर शौच स्नानादि से निपटकर लौटे। विधु बाबू ढेर सी चाय बनाकर लाए। तम्बू में सभी ने ठाकुर के साथ चाय पी। ठाकुर साधुओं की परिक्रमा के लिये जाएंगे। अतः नित्य पाठ्य ग्रंथों को प्रणाम करके निकल पड़े। गंगा तट से होकर हम उत्तर दिशा की ओर चले। ठाकुर के पीछे हम लगभग चालीस लोग चल रहे थे। चारों ओर का अपूर्व दृश्य मनमुग्धकारी था। सुरसरि गंगा के पश्चिम तट पर मुनि-जन-वंदित प्रयाग धाम स्थित है। पूर्व तट पर परमरम्य साधुओं का भजन स्थल झूँसी है। इन दोनों के बीच, गंगा के वक्ष पर द्वीप की भाँति भूखंड ही कुंभमेला का स्थल है। यहाँ से शहर जाने के लिए सरकार ने नावों का पुल बनवाया है, दारागंज से झूँसी जाने का भी सुदृढ पुल बनवाया है। नगरवासी इससे सहज ही झूँसी या शहर आवागमन कर सकते हैं। प्रयाग के गंगातट पर कल्पवास के लिए हर साल जिस जगह लोग रहा करते हैं, वहाँ साधु-संतो के लिये हजारों की संख्या में घास-फूस की कुटिया बनाई गई है। यहाँ बाजार की तरह जमघट दिखाई पड़ता है। तम्बू लौटते समय पूर्व तट पर झूँसी में असंख्य तम्बू व कुटीर कतारों में दिखाई पड़े, मानो जनपूर्ण कोई बंदरगाह हो। इन दोनों स्थानों में कितने लोग हैं, कहा नहीं जा सकता। अनुमानतः आठ-नौ लाख होंगे। ऐसा सुना है, कुंभमेले में साधु-संतों की संख्या बारह लाख से भी अधिक हो गई है। सोचो तो अवाक् रहना पड़ता है। इतने लोगों के रहने का स्थान, यातायात, किसी बात की असुविधा नहीं होती।

किसी दर्शक को इतनी भीड़ में भी किसी संत-महात्मा को ढूँढ निकालने में कोई कठिनाई नहीं होती। यह सरकार की सुव्यवस्था, कुशलता और श्रृंखलाबद्ध कार्य का ही फल है।

जमी हुई रेत के इस भूभाग का विस्तार पाँच-छ: मील अवश्य होगा। चौड़ाई भी आधे मील से अधिक है। सरकार ने मेले के दो-तीन माह पूर्व ही उत्तर व दक्षिण सीमाओं पर कुछ बड़े रास्ते बनवा रखे हैं। ये रास्ते सीधे, समतल बीस फुट चौड़े हैं। पूर्व एवं पश्चिम में भी ऐसे दस-बीस रास्ते बने हुए हैं। बीच के कई चौकोर समतल पर साधुओं के तम्बुओं की श्रृंखलाएँ हैं। जिनके बीच से काफी खुली हवा आती रहती है। हर चौकोर में दो तीन कुँए हैं। रास्तों पर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर पुलिस पहरा दे रही है। संतो के निर्विघ्न साधन-भजन के लिए सरकार ने कितना कुछ किया है। एक कार्य की विशेष कुशल व तत्परता देखकर हैरान रहा। लाखों लोगों के मल, कचरे की सफाई का बड़ा सुप्रबंध है। दक्षिण पूर्व की असंख्य झोपड़ियों में कितने ही मेहतर, जमादार रहते हैं। उन्होंने दो-तीन मील लम्बा नाला काटकर रखा है। मलमूत्र त्यागने पर रेत से ढंक देते हैं, फिर नया नाला काट देते हैं। इस प्रकार गंदगी और दुर्गन्ध का नाम-निशान नहीं रहता। चौकोर भूभागों में हजारों साधु संत हैं, वे उच्छिष्ट या जूठन के प्रति अत्यन्त सतर्क रहते हैं। स्पर्श हो जाय तो स्नान कर लेते हैं। इस प्रकार के चालीस-पचास चौकोर में दस-बारह लाख साधुओं के जूठे पत्तल व कचरा साफ करने के लिए बहुत से सफाई कर्मचारी जुटे हुए हैं। कहीं भी एक पत्तल या दातौन तक पड़ा हुआ दिखाई नहीं देता। मेहतर लोग ही टोकरों में भरकर कचरा साफ करते रहते हैं। सुना है, सरकार ने अब तक चौदह

हजार सफाई कर्मचारी नियुक्त किया है। प्रयोजन पड़े तो और भी मँगवाए जा सकते हैं। इस प्रकार सफाई की यदि सुव्यवस्था सरकार न करती तो साधु लोग दो दिन भी मेले में न टिक पाते। सुना है पुल के दूसरी ओर समीप के राजपथ के दोनों ओर अनेकों दुकानें कतारों में लगाई गई हैं। मेले के यात्री अनायास ही प्रयोजन की वस्तुएँ खरीद ला सकते हैं। सरकार ने और भी बहुत कुछ किया है। ठाकुर ने कहा-**'मेले के साधुसंत, महापुरुषों ने सरकार की सुव्यवस्था देखकर संतोष प्राप्त किया है। उन्होंने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया है कि कुछ समय और ब्रिटिश सरकार यहाँ शासन चलाए।'** करीब बारह बजे हम छावनी लौटे। भोग पकने में तीन बज गए। ठाकुर कहीं नहीं गए, उन्होंने तम्बू व भंडार गृह के बीच एक छोटी वेदी बनाने को कहा। जिसके ऊपर श्री चैतन्य महाप्रभु व नित्यानंद महाप्रभु की मूर्ति प्रतिष्ठा करनी है। मूर्तियाँ बनकर तैयार हैं, इसके प्रधान उद्यमी श्री रामयादव बागची हैं। संभवतः कल ही मूर्तियाँ लाई जाएंगी।

ब्रज विदेही काठिया बाबा के दर्शन। महाप्रभु ओर नित्यानंद प्रभु की मूर्ति प्रतिष्ठा।

आज चाय पीकर ठाकुर वैष्णव मंडली की परिक्रमा के लिए निकले। मेरे नित्यकर्मादि संपन्न न होने पर भी ठाकुर के कमण्डल पकड़ने का भार मुझ पर है, अतः मैं उनके साथ-साथ चला। कुछ गुरुभाई भी ठाकुर के पीछे चलने लगे। पाँच-छ: चौकोर भाग वैष्णवों के लिए निर्धारित था। जिसका विस्तार एक मील के करीब होगा। ये वैष्णव श्री, माध्वी, रूद्र और सनक ऐसे चार श्रेणी में विभक्त हैं।

उनके प्रत्येक के अलग-अलग छत्र हैं। इसके अलावा आधुनिक कई वैष्णव-बाउल, बैरागी, गौड़ीय-वैष्णवों के भी छत्र हैं। वेशभूषा या आडम्बर इनमें नहीं है, ये दीनहीन कंगाल की भाँति अभिमानशून्य होकर रहते हैं। इनकी भावना की तुलना नहीं होती।

ठाकुर घूमते हुए वैष्णव शिरोमणी महात्मा रामदास काठिया बाबा के पास जा पहुँचे। बाबाजी को प्रणाम करते ही, संकोचपूर्वक प्रति नमस्कार करके, उन्होंने ठाकुर को आदरसहित आसन प्रदान किया। एक बड़े छत्र में धूनी जलाकर बाबाजी ने आसन लगाया है। वे एक कम्बल के आसन पर बैठे हैं। तपस्या से उज्ज्वल हुए देह में भस्म लगा रखे हैं। पीठ पर पीली लम्बी जटाएँ लटक रही हैं। परिधान के नाम पर काठ की बनी एक कौपीन मात्र है, इसी से इनका नाम काठियाबाबा पड़ा है। वृद्ध बाबाजी का तेजस्वी चेहरा बड़ा ही मनोरम है। उनकी स्नेह व ममतापूर्ण दृष्टि हम पर पड़ते ही मानो देह मन शीतल हो गया। अविच्छिन्न ध्यानमग्न बाबाजी को देखकर लगा मानो वे हमारे कितने अपने हैं। सुना है महात्माओं ने इन्हें ब्रज विदेही उपाधि देकर, ब्रजमंडल के धर्म प्रतिष्ठानों का भार इन पर दिया है। जब तक इनके साथ रहा, भीतर ही भीतर ‘नारद नारद’ की ध्वनि सुनता रहा। वहाँ से ठाकुर अन्य छत्रों का दर्शन करके ग्यारह बजे तम्बू लौट आए।

नवद्वीप वासी श्री राम यादव बागची ने पहले से महाप्रभु व नित्यानंद महाप्रभु की मूर्तियाँ लाकर रखी थीं। ठाकुर की परिक्रमा के समय इन्हें लाकर वेदी पर प्रतिष्ठित किया। तम्बू में लौटकर इनका दर्शन करके ठाकुर बड़े ही प्रसन्न हुए और उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। ठाकुर ने मुझे एक जनेऊ में ग्रंथि डालकर महाप्रभु के

गले में डालने को कहा। मैंने कहा-महाप्रभु का गोत्र नहीं जानता, तो ठाकुर ने कहा-**'शाण्डिल्य गोत्र।'** मैंने वैसा ही किया एवं जनेऊ महाप्रभु के गले में डालने के पूर्व ठाकुर के हाथों में दिया। ठाकुर ने स्पर्श करके कहा-**'महाप्रभु को पहना दो।'** मैंने गायत्री जपपूर्वक जनेऊ महाप्रभु को पहना दिया। चित्त प्रसन्न हो उठा। फूल चंदन, माला तुलसी से सजाने के बाद इनकी शोभा अपूर्व हो उठी। हमारे छः फुट ऊँचे द्वार के ऊपर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखकर टँगवाया गया।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्तयेव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

तीन बजे भोग बनकर तैयार हुआ। महाप्रभु को भोग लगाकर, आनंदपूर्वक सबने प्रसाद पाया। सारा दिन बड़े ही आनंद में बीता।

त्रिवेणी संगम में मकरस्नान: साधुओं की शोभा यात्रा अपूर्व दृश्य।

आज उत्तरायण संक्रान्ति है। त्रिवेणी संगम में मकर-स्नान है। आज साधु-संतों के आनंद की सीमा नहीं। वे रात बीतते ही शौचादि संपन्न कर आसन पर बैठे हैं। अपने-अपने संप्रदाय के अनुकूल तिलक, माला वेशभूषा धारणकर अपने इष्टदेव का स्मरण करते हुए स्नान-काल की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनका उत्साह देखकर बड़ा आनंद आया। मैं सोचने लगा। एक ही दिन, एक ही घाट पर, लाखों लोगों का स्नान कैसे सम्पन्न हो पाएगा? ठाकुर चाय पीकर पुल पर चले गए और स्नानार्थियों के दर्शनार्थ खड़े रहे। मैंने देखा मजिस्ट्रेट, उच्च शासनाधिकारी, पुलिस अफसर सामरिक वेश में

घोड़ों पर सवार हो इधर-उधर आने जाने लगे। बड़े रास्ते के दोनों ओर पुल पर पुलिस ने यायायात रोक दिया है। वे जगह-जगह पर घोड़ों पर सवार होकर साधुओं की प्रतीक्षा में हैं।

दस बजे संन्यासी, परमहंसों की मण्डली में विविध प्रकार के वाद्य, नगाड़े बज उठे। अनेकों सम्प्रदाय के साधु-संत भावोद्दीपक कंठ से इष्टदेव की जयध्वनि करने लगे। आनंद कलरव से सारा भूखंड मतवाला सा हो उठा। संन्यासियों की टोली को राजपुरुष-गण निहारते रहते एवं तेज प्रवाह नदी पर बने नाव की पुल पर भी नजर रखते जाते हैं। संन्यासियों की टोली कई ऊँची पताकाएँ फहराते हुए पुल के पास आ पहुँची। आज वृद्ध संन्यासी महात्मा भोलानन्द गिरि महाराज को अग्रणी बनाकर अश्व पर सुसज्जित करके पीछे-पीछे संन्यासीगण चले। उज्ज्वल गेरुआधारी, शांत संन्यासी कतारों में मंद गति से चलने लगे। उनके बाद मुण्डित मस्तक दाढ़ी मूँछ वर्जित, त्रिपुण्ड्रधारी-दण्डी साधु, दण्ड कमण्डल लेकर चले। फिर शुद्ध वस्त्रधारी, उपवीत वाले जटिल ब्रह्मचारीगण ध्यानमग्न सिर नीचे किए चले। उन्होंने स्नान संपन्न किया और दूसरी ओर के दारागंज पुल से अपने-अपने स्थान को चले गए। उनके जाते ही नागा संन्यासी भैरव नाद करते हुए चारों ओर कंपित करके, सबको चकित करते हुए चलने लगे। उनका झंडा फहराता रहा। वे सद्गुरु वाणी गुरुग्रंथ साहब को लेकर चलने लगे, साथ ही सुंदर ताल में वे ग्रंथ साहबजी को चँवर डुलाते सेवा करते चले। उनकी गहरे नीले रंग की पताका फहराती रही। नागा वीरगण, जटाजूटधारी, दिगंबर, भस्म रमाए श्रेणीबद्ध हो चलते हुए ऐसे लग रहे थे, जैसे रुद्रों सहित योगिराज महादेव चल रहे हों। इनके बाद

निर्मला, सिक्ख, अकाली ऐसे काले, नीले वस्त्रों में सजकर सारे नानकपंथी साधु जाने लगे। उनके पास खड्ग, कृपाण जैसे अस्त्र भी थे। हरि, वासुदेव, गोविन्द, राम इन चारों नामों का सूचक 'स्वगर' (वागर) कहकर वे बारंबार आनन्दध्वनि करते रहे। सारे विश्व में मानो आनंद कोलाहाल ही व्याप्त होने लगा, और किसी अस्तित्व का भान न रहा। इस प्रकार सबको प्रभावित करके नागा संन्यासी दल घाट पर पहुँचा।

अब वैष्णवों की दुन्दुभियाँ बज उठी। एक साथ झाँझ, मंजीरा, घंटे, शंख के तुमुल नाद से चारों ओर हलचल मच गई। सारे साधु संत मग्न हो गए। उन्होंने ऋषिवर श्रीमत् रामदास काठिया बाबा को अग्रणी बनाकर त्रिवेणी संगम की यात्रा की। उनके पीछे विविध श्रेणी के कौपीनधारी, जटिल, साधुगण पृथक्-पृथक् दलबद्ध होकर चले। वे अपने-अपने संप्रदायों के अनुरूप तिलक, माला, वेश, भस्म से सुसज्जित हो, मुक्त कंठ से इष्टदेव का आह्वान करते हुए पुल की ओर बढ़े। आज हजारों भक्तों की पुकार से भगवान का आसन हिल उठेगा। वे अखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी अपने भक्तों के हृदय में आविर्भूत होंगे। सभी भावमग्न हैं और गा रहे हैं-सीताराम सीताराम सीताराम। सियाराम बोल भइया जय जय राम् कोई जयराम, जयराम कोई राधेश्याम, राधेश्याम कहकर नृत्य करता रहता। भक्तों के हृदय में बाढ़ सी आ गई। पंक्तियों का बंधन टूट सा गया, एकाकार हो गया। जैसे भक्तों की भाव-नदी में तूफान उठा हो। संगम में साधुसंत, पाखंडी-दुर्जन, सभी साथ-साथ स्नान करने, डूबने, तैरने लगे, यह अपूर्व दृश्य है। हरिबोल! कहते हुए ठाकुर भी एक दल के पीछे हो लिए, और हम सब उत्तर की ओर स्थान पाकर

गंगा में उतर पड़े। हम महा आनंदपूर्वक त्रिवेणी संगम में स्नान करने लगे। पण्डों ने मंत्र पढ़कर संकल्प करवाने की जिद की तो ठाकुर ने कहा-'हमारा कोई संकल्प-विकल्प नहीं है। भगवान की प्रीति ही हमारे स्नान का उद्देश्य है।' संध्या के समय तम्बू में लौटकर आए। श्रीमन्महाप्रभु व नित्यानंद प्रभु की आरती, संध्याकीर्तन, भोग सम्पन्न करके सबने संतोषपूर्वक प्रसाद पाया। सारे दिन के परिश्रम के बाद सबने विश्राम किया।

प्रयाग कुंभ मेले की उत्पत्ति।

सुबह चाय के बाद नियमित पाठ हुआ करता है। गुरुभ्राताओं ने ठाकुर से मकर स्नान व कुंभ मेले के बारे में विविध प्रश्न पूछे। ठाकुर बड़ी देर तक उन सबके बारे में कहते रहे। मैंने सुना कि प्राचीन काल में, त्रिवेणी संगम प्रयाग में, भरद्वाज मुनि का आश्रम था। प्रतिवर्ष सारे भारत के ऋषि-मुनिगण इस आश्रम में आकर पूरे माघ में त्रिवेणी स्नान, कल्पवास, अक्षय वट के दर्शन, भगवान की पूजा ध्यान-धारणा में मग्न रहा करते थे। सारा समय ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य के संबंध में तत्त्वालोचना में काटते थे। उनका समय धर्मविधि का प्रवर्तन, भगवत् गुणकीर्तन में परमानंदपूर्वक बीतता। माघ में कल्पवास को हिन्दु शास्त्रों में बड़ा ही पुण्यजनक बताया है। यही कल्पवास, साधु संतों का महासम्मेलन ही कुंभमेला है। कुंभमेला हर तीन साल बाद हरिद्वार, प्रयाग, नासिक तथा उज्जैन में हुआ करता है। भारत के सभी धर्म संप्रदायों के धर्मार्थियों की कुंभमेले में उपस्थिति होती है। तीन वर्ष के अंतराल में चारों स्थानों में होते हुए प्रत्येक बारह वर्ष बाद पूर्ण कुंभ हुआ करता है। इन मेलों में साधु

संतों का विशाल मेला ऐसा अद्भुत है, कि बिना आँखो देखे कल्पना करना कठिन है। ठाकुर ने पहले ही कहा था, इस बार प्रयाग कुंभ में तीन-चार ऋषि तुल्य प्राचीन महापुरुष पधारेंगे। उन्हीं की कृपा से मेले का यह बृहद रूप हुआ होगा। युद्ध-विग्रहों को छोड़, एक स्थान पर इतने अधिक संख्या में लोगों का समागम होना कहीं सुनाई नहीं पड़ता। इसका मुख्य उद्देश्य साधुसंत दर्शन, धर्म उपदेश श्रवण, स्नान, तर्पण, साधन, भजन आदि है। कितने ही ध्यानी, ज्ञानी, सिद्ध, कर्मयोगी, सिद्ध महात्मा, योगी, महापुरुष आए हैं-कहा नहीं जा सकता। आज भारत में कितने ही आधुनिक धर्म, उपधर्म वर्तमान हैं। उनके भी अनुष्ठान व महात्माओं के दर्शन इस मेले में हो पाते हैं। कुछ लोग साथ रहे तो उनमें वादविवाद हो जाता है, परन्तु आश्चर्य की बात है-लाखों लोगों के रहने पर भी यहाँ मतभेद, वाद-विवाद, तर्क, कोलाहल, अभाव या किसी प्रकार का गोलमाल नहीं होता। सभी धर्म प्रसंग, साधन-भजन, भगवत् कथा में मग्न होकर परमानंद से समय व्यतीत करते हैं। गोलोक, बैकुण्ठ, कैलाश, वृंदावन क्या है, नहीं जानता, पर पृथ्वी पर ऐसी आनंद-भूमि का जीवन में परिचय नहीं मिला। जय गुरुदेव! तुम्हारे चरणरज मस्तक पर ले, तुम्हारे भक्तों के संग यह जीवन धन्य हो जाय।।

छोटे काठिया बाबा के दर्शन।

प्रयाग में ठाकुर एक माह तक रहे। उस दौरान कितने ही साधु संतों की कीर्ति सुनी, दर्शन किए। सब कुछ विस्तार से लिखने की मुझमें क्षमता नहीं है। जो असाधारण घटनाएँ चित्त में अंकित हो गई, केवल उन्हें ही याद रखने के लिये, संक्षेप में डायरी में लिखकर

रखता हूँ।

कुंभ मेले में संन्यासी, उदासी, वैष्णव संप्रदाय का प्रभाव सर्वाधिक है। इनकी संख्या भी अधिक है। प्रत्येक के अधीन चार-पांच छत्र स्थल हैं। जिनमें इन संप्रदायों के पाँच-सात हजार साधु एक ही श्रेणी में रहते हैं। इनके आचार-व्यवहार, तिलक, वेशभूषा, नियम-निष्ठा में भी समानता पाना कठिन है। कम से कम दस लाख साधु आए, उनमें कितनों के हम दर्शन कर पाए? और यदि किया भी, उनकी आन्तरिक अवस्था के बारे में समझने का हमें अधिकार ही कहाँ है? अतएव घूमते हुए ठाकुर जिनके पास रुके, बैठे, बातचीत किए या जिनकी ओर देखा, उन्हें ही हमने सिद्ध महात्मा मान लिया। उनके बारे में प्रश्न पूछ-पूछकर हम ठाकुर को हैरान करते हैं। माघ के शुरू से अंत तक मेले में ठाकुर दोनों पहर साधु मण्डली की परिक्रमा करते रहे। एक दिन ठाकुर के साथ वैष्णव मण्डली की छावनी में प्रवेश करके हजारों साधुओं के दर्शन किये। श्रेणीबद्ध साधुओं के सिर पर छत्र या वस्त्र का आच्छादन है। कोई खुले मैदान में आसन लगाये हैं। कोई भस्म रमाये, माला तिलक आदि धारण किए हुए हैं। किसी के पास सिर्फ एक कम्बल है, तो किसी के पास वह भी नहीं। वृथा हँसी या बातों में कोई भी समय नहीं गँवाते। सभी उपासनारत हैं। कोई रामायण पाठ करता, तो कोई तन्मय होकर सुनता, कोई भगवद्भजन में लीन है, कोई माला जप में, तो कोई ध्यान मग्न हैं। यह सब देखते-देखते हम गंगातट के रेत में एक साधु के पास जा पहुँचे। माला तिलक, वस्त्र, वेश, आडम्बर उनमें कुछ न था, शरीर पर केवल एक काठ की कौपीन थी। एक फटी सी चटाई पर खुले बैठे थे। शरीर बलिष्ठ और त्वचा

खुरदुरी हाथी के समान, जिस पर अनेकों चक्र हैं, और वे ठाकुर की तरफ एकटक देखते जा रहे, और आँसू की धार से भीगते जा रहे हैं। इनकी मुखाकृति बिल्कुल बच्चों के समान, बोलते तो लार टपक पड़ती एवं तुतलाते भी थे। उनकी दृष्टि उतनी ही सरल, मोहक और स्निग्ध थी, ऐसी दृष्टि पहले कभी नहीं देखी। साधु अल्पभाषी, श्यामवर्ण, तीस वर्ष की आयु के होंगे। ठाकुर से उनकी न जाने क्या बातचीत हुई, हम समझ भी न पाए।

तम्बू लौटते समय ठाकुर से पूछने पर उन्होंने कहा-'ये एक सिद्ध महात्मा हैं-रामचंद्रजी के उपासक। भरतजी का भाव लिए हुए हैं। पाँच सौ वर्ष पहले इन्होंने कायाकल्प की थी-अब उसी देह में हैं। इनका न क्षय है, न वृद्धि, एक जैसे हैं। एक भी बाल नहीं पके, एक भी दाँत नहीं गिरा। कोई आश्रय या अवलम्बन नहीं है। पर्वत पर भी ऐसे ही रहते हैं।'

वे हमारे तम्बू में दिन में दो-तीन बार पधारने लगे। ठाकुर के सामने धूनी के आगे घुटने टेककर बैठते, पाँच-सात मिनट ठाकुर की तरफ हाथ जोड़कर देखते रहते, फिर चले जाते। ये पहले कभी गांजा लेते थे, पर उससे समय नष्ट होता है, लाने के लिए जनसमुदाय जाना पड़ता है-अतः छोड़ दिया है। उनका रोज क्यों दो-तीन बार हमारे तम्बू में आना होता है, पूछने पर कहते-मेरे रामजी जो तम्बू में रहते हैं, जब भी आता हूँ, साक्षात् दर्शन मिलते हैं। साधुजी का नाम परिचय नहीं मालूम अतः हम उन्हें छोटे काठिया बाबा कहा करते हैं।

काशी के तैलंग स्वामी: विद्या अभिमानी

संन्यासी को फटकारना।

एक दिन चाय पीकर ठाकुर आसन पर ही रहे, कहीं बाहर नहीं गए। एक तेजस्वी संन्यासी आकर ठाकुर के पास बैठे, उन्हें अद्वैत ज्ञान का उपदेश देने लगे। ठाकुर चुपचाप सुनते रहे। संन्यासी महापण्डित थे। वेद-शास्त्र सब मानो उन्हें कण्ठस्थ हो। शायद उन्होंने सुन रखा था कि ठाकुर समाधिमग्न रहते हैं। वे शास्त्र प्रमाण से सिद्ध करना चाहते थे, कि ठाकुर की समाधि श्रेष्ठ नहीं, अतः वे कोशिश करने लगे, कई ज्ञान के उपदेश देने भी लगे। तभी एक पंद्रह-सोलह वर्षीय हिन्दी भाषी तेजस्वी, गेरुआवस्त्रधारी बालक आ बैठा और उन संन्यासी को धमकाकर बोला-ए जी! किसे शास्त्र समझा रहे हो। अब चुप रहो, आप शास्त्र कुछ भी नहीं जानते। सुनकर संन्यासी उत्तेजित होकर बोले-क्या कहा? मैं शास्त्र नहीं जानता? तुमने कभी शास्त्र पढ़ा भी है? बालक-देखते नहीं मैं ब्राह्मण हूँ, शास्त्र मुझे कण्ठस्थ है। संन्यासी ने अपनी बात की पुष्टि के लिए दो-चार चरण कहना शुरू किया, तो बालक ने अवज्ञापूर्वक रोककर कहा-बस अब रहने दो, हो गया। दूसरी बातें करो। शास्त्र मत कहो, उच्चारण नहीं जानते, छंद नहीं आता, शास्त्र बताते हो। संन्यासी अभिमान से भरकर बोल पड़ा-तुम क्या जानते हो? बालक-तो लो सुनो। संन्यासी ने जहाँ छोड़ा था, उसी के आगे के चरण छन्दयुक्त स्वर में कहने लगे। संन्यासी ने फिर कुछ शास्त्रों के पद कहकर अपनी बात प्रमाणित करनी चाही। प्रत्येक पद के साथ बालक धमकाकर बोलता जाता-ठीक नहीं हुआ, भूल हो रहा है। कहकर उन्हें फिर शुरू से अंत तक ठीक-ठीक कह देता। इतने पर

संन्यासी निस्तेज पड़ गया। तब बालक ने शास्त्रों में जितने भी प्रकार की समाधियों का वर्णन है, सब कह सुनाया। फिर ठाकुर की ओर दिखाकर बालक ने कहा-ये अभी जिस अवस्था में हैं, मानव शरीर में रहकर उससे आगे की अवस्था प्राप्त नहीं की जा सकती। जिस समाधि में, गाय के सींग पर सरसों का दाना जितनी देर टिके, मात्र उतनी देर रहने पर ही शरीर छूट जाता है, वह भी उन्होंने आयत्त कर ली है। देह छूट जाएगा इसलिए उस समाधि में सदा अवस्थान नहीं कर रहे हैं। बालक की तेजस्वी बातें सुनकर सभी स्तब्ध रह गए। संन्यासी निर्वाक् होकर चुपचाप चला गया। ठाकुर ने बालक को प्रणाम करके सामने बैठने का अनुरोध किया। बालक धूनी के सामने बैठा। ठाकुर ने उनसे क्या पूछा, मैं नहीं जानता, पर उन्होंने कहा-'और दो दफा होने से ये देह छूट जाएगा। फिर तो आनंद।' बालक का शरीर बलिष्ठ गौरवर्ण, तेजस्वी प्रफुल्लित चेहरा, लम्बे हाथ पैर, उज्ज्वल नेत्र, ललाट में त्रिपुण्ड्र, गेरुआ वस्त्र-दिखने में बड़े ही मधुर लग रहे थे। ठाकुर के पास आधे घंटे बैठकर न जाने कितनी ही बातें करते रहे, फिर चले गए। दोबारा उन्हें कभी छावनी में न देख पाया। बालक के जाने पर ठाकुर से उनका परिचय पूछा। ठाकुर ने कहा-**'ये काशी के तैलंग स्वामी हैं। एक मृत ब्राह्मण बालक के शरीर में प्रवेश करके, बाकी जरा सा कर्म काट रहे हैं। यह कर्म समाप्त होने पर और नहीं रहेंगे।'** पूछा गया-कौन सा कर्म बाकी है, जो काट रहे हैं। ठाकुर-**'गंगा की उत्पत्ति से सागर-संगम तक-गंगा की तीन बार परिक्रमा। एक बार परिक्रमा कर चुके हैं। और दो बार होने पर समाप्त होगा। फिर यह देह धारण का प्रयोजन समाप्त हो जायगा।'** मेरा दुर्भाग्य

कि असाधारण प्रतिभा वाले बालक को देखकर भी नमन करने की इच्छा न हुई।

नानक शाही छत्र पर साधु दर्शन।

कुछ दिन से ठाकुर वैष्णवों के अड्डों पर बहुत से साधु दर्शन करते रहे। उनमें रामानुज, माध्वाचार्य, श्री और निम्बार्क ऐसे चार प्रमुख संप्रदाय है। इनके अलावा गोरखपंथी, ब्रह्मचारी, तपस्वी आदि शाखाएँ भी हैं-वे इन्हीं के अन्तर्गत हैं। ठाकुर ने कितने साधुओं का दर्शन किया, कहा नहीं जा सकता। फिर ठाकुर नानक शाही अड्डों पर जाकर विशेष-विशेष महात्माओं के दर्शन करने लगे। लगता है, मेले के सभी साधु-संतों पर नानकशाही साधुओं का विशेष प्रभाव है। इनके दो भाग हैं-उदासी, निर्मला। नानक साहब के छोटे पुत्र श्रीचन्द्र के द्वारा प्रवर्तित पथ को उदासी और दसवें गुरुगोविन्द सिंह जी के अनुयायी निर्मला कहलाए। इनके अलावा नानकशाही विभिन्न पंथ-दादूपंथी, गरीबदास पंथी, बिहार वृंदावनी भी इनके अंतर्गत हैं। ये एक ओर तो शांत भजन निष्ठ हैं, दूसरी ओर वीर पुरुष। ये जटा, दाढ़ीवाले, भस्म रमाए रहते हैं, कोई कौपीन, बहिर्वास पहने तो कोई नग्न गात्र है। वहाँ देखा-कई साधु अपने आसन पर ध्यान मग्न हैं। कोई मग्न होकर साधु मंडली के साथ सुमधुर स्वर से ग्रंथसाहब का पाठ कर रहे हैं। कई साधु दल भजन में लीन है। कहीं तो ग्रंथ साहबजी की समारोहपूर्वक आरती पूजा चल रही है। एक स्थान पर खड्ग, तलवार, कृपाण, मुद्गर, मूसल आदि अस्त्र-शस्त्र सजाकर रखे गए हैं। मुद्गर ऐसे भारी हैं, कि साधारण व्यक्ति उठा भी न सकें, उसके सामने की छोर पर लोहे के

काँटे जड़े हुए हैं। ऐसा मुद्गर खूब सावधानी से न चलाया गया, तो संकट हो सकता है। साधु तलवार खेलते, मुद्गर चलाते, कुश्ती भी करते हैं।

ठाकुर ने कहा-**'नानकपंथी भजन का एक विशेष आश्चर्यजनक प्रभाव है कि यह इन सिंह तुल्य लोगों को एकदम मेष की तरह शांत बना रखा है।'** शाखाओं में कुछ मतभेद रहते हुए भी वेशभूषा, आचार-व्यवहार प्रायः सभी का एक सा है। महन्तों का चलन तथा साजसज्जा स्वतंत्र है, जिसे देखकर विस्मय भी होता है। देखने पर लगता है, राजा-महाराजा भी इनके सामने जाने पर लज्जित हो जाएंगे। आवश्यकता पड़े तो वे फिर साधारण से साधारण कार्य में भी तुंरत जुट जाया करते हैं, नानकपंथी साधुओं में महंत केशवानंदजी का प्रभाव अपूर्व जान पड़ा। उनके तम्बू में बहुत से साधु संतोषपूर्वक भोजन करते हैं। अन्य अड्डों पर भी इनका सदाव्रत नियमित व नियत ही चल रहा है। महंत करणदासजी भी साधारण एवं सादगीपूर्वक रहते हैं-महंत जैसे लगते ही नहीं, पर उनके पास से हजारों साधु धूनी के लिए लकड़ी तथा आहार ग्रहण करते हैं। नागा संन्यासियों के भी दस-बारह विशाल तम्बू लगे हैं। इन सभी अड्डों पर कुछ दिन घूमकर, अनेकों साधु दर्शन हुए। उन्होंने ठाकुर के प्रति बड़ी श्रद्धा-भक्ति व्यक्त की। उनके भगवत्-भजन, कठोर वैराग्य को देखकर स्वयं पर धिक्कार आने लगा। सद्गुरु की उपासना इन्हीं के लिये ठीक है। इनका अवलम्बन व साधन भजन है-नाम जप व ग्रंथ साहब की वाणी। ठाकुर ने कहा-**'इस संप्रदाय में धर्म जैसा जीवित है, वैसा और कहीं दिखाई नहीं पड़ता। विषय का गंधमात्र रहने पर वस्तुतः**

धर्म लाभ नहीं होता। भगवान जिस पर दया करते हैं, उसका सब कुछ छीन लेते हैं। संसार में उनकी किसी पर आसक्ति नहीं रहने देते। पथ का कंगाल बना देते हैं। ऐसी अवस्था जिनकी हो, वे ही भाग्यवान हैं।'

संन्यासियों के अड्डे पर साधु दर्शन: देवदासियों के नृत्य का तात्पर्य।

अब ठाकुर ने विशाल संन्यासियों के अड्डे व मंडली में प्रवेश किया। इनके अधीन तीन-चार चौकोर छत्र के भूभाग हैं। वे नागा या वैष्णवों से दीर्घता में अधिक है। कितने ही लाख साधु संन्यासी हैं, अनुमान लगाना कठिन है। ये संन्यासी संत श्रीशंकराचार्य प्रतिष्ठित-श्रृंगेरी, जोशी, गोवर्धन व शारदा इन चार मठों के अन्तर्गत-गिरि, पुरी, भारती, सरस्वती, वन, पर्वत आदि दशनामी संप्रदाय के अन्तर्गत हैं। सभी संप्रदायों में ये अधिक शिक्षित शास्त्रज्ञ, षड्दर्शन-पुराणों में पारंगत वेद-वेदांत के ज्ञाता, महाज्ञानी व अगाध पण्डित हैं। अशिक्षितों व मूर्खों का इनमें स्थान नहीं। दण्डी ब्रह्मचारी भी इनके अन्तर्गत आते हैं। जगह-जगह तांत्रिक, अवधूत, परमहंस, योगी, दरवेश, विरक्त, उदासी, संन्यासी भी विभिन्न अड्डों पर विराजमान हैं। इसके अलावा कई स्त्री संन्यासिनी छत्रों के भीतरी भाग में पृथक् तम्बुओं में हैं। इनकी रक्षा के लिए नागा संन्यासी नियुक्त हैं। ऐसे प्रत्येक छत्र में पाँच-सात विशाल तम्बू हैं। उनमें मठाधीश एवं संन्यासियों के नेता रहते हैं। संन्यासियों के लिए अग्निसेवा नहीं है, अतः इनके पास धूनी की व्यवस्था नहीं है। ठंड से रक्षा पाने के लिए ही कोई रखता है। संन्यासी बड़े सुवेशधारी हैं,

जैसे गेरुआ कौपीन, बहिर्वास, सिर पर शिरस्त्राण, मुण्डित मस्तक, ललाट में त्रिपुण्ड्र या उर्ध्वपुण्ड्र एवं विभूति, गले में अक्षमाला विराजित हैं। रक्ताबरधारी तांत्रिक अवधूत भी अनेक हैं। एक तम्बू में जाकर देखा-कक्ष कुर्सी, बहुमूल्य कोच, गद्दों से सजा हुआ है। इनके प्रयोजन के बारे में पूछने पर जान पाया कि साहब, मेम, उच्चपदाधिकारी, महन्त के दर्शनार्थ आते हैं तो उनके बैठने के लिए व्यवस्था है। एक तम्बू में देखा, ऐश्वर्य की वस्तुएँ, झाड़-फानूस, रंगीन, सुनहरे कारीगरी वाले गलीचे बिछे हैं। इतनी सजावट का कारण पूछने पर पता चला रात को यहाँ नृत्यादि होते हैं, मैं कुछ समझ न पाया। ठाकुर ने बताया-**'हरि संकीर्तन-भगवान के गुणगान से भक्त हृदय जैसा उद्वेलित होता है, उसी प्रकार भगवान के दरबार में ये देवदासियाँ नृत्य करती हैं। श्रीक्षेत्र में जगन्नाथजी के सम्मुख भी देर रात्रि के समय देवदासियाँ गीतगोविन्द गायन व नृत्य करती हैं। यह भी एक उत्तम भजन है। भगवान को देखकर भक्त भाव विभोर होकर आँख, कान, मुँह, हाथ-पैर, अंग-प्रत्यंग संचालन व विभिन्न मुद्राओं से उनकी आरती करते, आराधना करते हैं। यही नृत्य कहलाता है। श्रीक्षेत्र के छोटे-छोटे आखड़ापिला के नृत्य देखो तो यह बात समझ में आ जाती है, मुग्ध हो जाना पड़ता है। अब इस कार्य में विलासिता का समावेश हो गया है, अब वैसा भजन न रह गया, इसका क्या किया जाय?'**

साधुओं के सदाव्रत की अपूर्व श्रृंखला।

आज इस विषय पर सोचते हुए विस्मय हुआ कि लाखों साधुओं

का प्रतिदिन तृप्तिपूर्वक भोजन कैसे सुचारु रूप से संपन्न हो रहा है? कुछ हजार लोग भोजन करें तो उसका आयोजन पंद्रह दिन पहले से करना पड़ता है तो भी कितनी असुविधाएँ, त्रुटियाँ हो जाती है। यहाँ तो लाखों लोग पूड़ी, कचौड़ी, दाल, रायता, सब्जियाँ, हलुआ, मालपुआ, लड्डू आदि उत्तम वस्तुएँ भरपेट खा रहे हैं। विपुल मात्रा में ये सब वस्तुएँ पकाई जा रही हैं। निर्दिष्ट पंगतों में हजारों साधु बैठते, भोजन करके तृप्त होते और अपने आसन पर लौट जाते हैं। कहीं कोई हलचल गोलमाल, हल्ला कुछ भी नहीं। साधु लोग कल के लिए कुछ बचाते भी नहीं, रोज ताजी वस्तुएँ आती और पकाई जाती हैं, और लाखों लोग भोजन करते हैं। जिनपर उसका भार है, वे चुपचाप, निर्विघ्न सब कार्य करते जाते हैं। कारखानों की भाँति सब यंत्रवत् होता जाता है, किसी को पता तक नहीं चल पाता। इसकी जानकारी पाने की इच्छा हुई, पता लगा मेले के साधुओं के भोजन की सारी व्यवस्था धनकुबेर, सेठ, मारवाड़ी आदि धनी व्यक्ति करते हैं। वे ही इस कार्य के लिए सैकड़ों व्यक्ति भी नियुक्त करते हैं। ये लोग प्रत्येक छत्र व छावनी में जाकर मंहतों से उन्हें क्या प्रयोजन है, पूछते हैं और उसी के अनुसार सामग्री पहुँचा आया करते हैं। महंतों की जमात में भी सभी के कार्य बँटे हैं। सैकड़ों लोग अपना-अपना कार्य करते जा रहे हैं। कोई पानी ढो रहा है, कोई रसोई बना रहा है, कोई बर्तन मांज रहा है। सभी अपना कार्य दलबद्ध होकर करते और उत्साहपूर्वक सहर्ष साधु-सेवा करते हैं। इस प्रकार किसी भी मंडली को कोई कष्ट नहीं हो रहा है। दाता भी सुअवसर पाकर दिल खोलकर दान कर रहे हैं। दयावान श्री दयालदास बाबा के पास एक मारवाड़ी सेठ ने प्रार्थना

की कि स्वामीजी कृपा करके सदाव्रत के लिए साठ हजार रुपए ग्रहण करें। दयालदास स्वामीजी ने वह ग्रहण नहीं किया। उन्होंने कहा-मेरे यहाँ आते ही एक व्यक्ति ने विनती की है कि मैं जब तक यहाँ रहूँ, उसके पास से ही छत्र की समस्त आवश्यक वस्तुएँ लेता रहूँ, अब उसकी सेवा में कुछ कमी हो, तो दूसरे से कुछ ले सकेंगे। उन्होंने पहले ही यह आकांक्षा पूर्ण करने की प्रार्थना की है। अतः आप किसी और महंत को दे दीजिए। स्वामीजी की बात सुनकर वे दुःखी होकर चले गए। अपने छत्र के अलावा उनके पास दस-पंद्रह हजार लोग और भी भोजन किया करते हैं। दाता लाखों का दान करते हैं। फिर भी मानो उनकी तृप्ति नहीं होती। ऐसे महान दान की बात कभी सुनने में नहीं आई।

ठाकुर को मेले से हटाने का षडयंत्र। समवेत् सभा में महात्मा एवं महापुरुषों का ठाकुर के विषय में विचार।

जब से हम मेले में आए हैं, हमारे यहाँ रोज ही सदाव्रत आता जा रहा है। कहाँ से आता है, कौन भेजता है, यह हम कुछ भी नहीं जानते। ठाकुर ने कहा है-**'ईश्वर की कृपा से जिस दिन जो जुटे, सब खर्च कर डालना। कल के लिए एक भी वस्तु बचाकर मत रखना।'** अतएव हमारी आवश्यकता से भी दो-तीन सौ अधिक लोगों के लिए भोजन बनता है और रोज साधु-संतों को भोजन कराया जा रहा है। किसी वस्तु का न तो अभाव है, और न ही संचय। अचानक दो दिन हुए सदाव्रत का आना बंद हो गया है। फिर सुनने में आया कि कल से पुनः सदाव्रत आयेगा। इसका कारण

ढूँढने पर पता चला कि हमारे कारण वैष्णव साधुमंडली में जोरदार आंदोलन चला था, उसकी मीमांसा होने तक सदाव्रत बंद रखा गया था। ठाकुर का विशेष प्रभाव बढ़ता देखकर ठाकुर के ब्राह्म मित्र द्वेषान्वित हो रहे थे। रोज सदाव्रत आ रहा है, ठाकुर के गृहस्थ शिष्य भी भोजन कर रहे हैं। वैष्णवों के शीर्षस्थान में अड्डा गाड़ कर गोसाईं रह रहे हैं। यह सब उनसे सहन न हो सका। वे दयालदासजी के एक शिष्य को लेकर वैष्णवों की टोलियों में घूम-घूमकर कहते जा रहे हैं कि, गोसाईं का आचार-व्यवहार ठीक नहीं है, वेशभूषा भी वैष्णव-विरोधी है। इन्हें यहाँ रखने पर वैष्णवों की मर्यादा घटती है। अतः गोसाईं को मेले में नहीं रखना चाहिये। इस बात पर सबको विचार करना चाहिये। इस बात को लेकर यहाँ उदासी, वैष्णव सभी साधुओं की एक समवेत् सभा बुलाई गई। दयालदासजी के उस शिष्य ने विरोध करते हुए कहा-मैं बहुत बार मेले में आया पर किसी बंगाली ने कभी छावनी नहीं डाली। अभी जिस बंगाली ने छावनी डाली है, वह संन्यासी है या उदासी यह तो नहीं मालूम, पर वैष्णव तो वह नहीं है, यह उसकी वेशभूषा से स्पष्ट होता है। उनका जटा, दाढ़ी, गेरुआ वस्त्र, दण्ड, कमण्डल, गले में तुलसी के साथ रुद्राक्ष माला धारण करना-ये बातें क्या उन्हें वैष्णव सिद्ध करती हैं? क्या शास्त्रों में इसका प्रमाण है? फिर उन्होंने नए तरह की पूजा के लिए दो मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की हैं। राधा-कृष्ण या राम-सीता, वैष्णव उपास्य देवताओं की नहीं, उन्होंने निताई और गौरांग की पूजा आरंभ की है। यह क्या शास्त्र-अनुमोदित है? क्या ये विष्णु के अवतार हैं? इधर तो अपने को संन्यासी बताते हैं, उधर पुत्र कन्या, स्त्रियाँ व गृहस्थगण भी साथ हैं। ऐसा स्वेच्छापूर्वक

मनोमुखी वेश धारणकर वे वैष्णव मण्डली में कैसे रह सकते हैं?

महाशास्त्रज्ञ संन्यासियों के शिरोमणि वृद्ध परमानन्द स्वामी ने कहा - वैष्णवों के प्रामाणिक ग्रंथ पद्म पुराण के पाताल खण्ड में है कि-तुलसी, नलिनी व अक्ष धारण वैष्णवों की विशेष विधि है, यह न धारण करना ही वैष्णवों का अपराध है।

प्रसिद्ध संन्यासी अमरेशानन्दजी ने कहा-गेरुआ वस्त्र भगवत्-वस्त्र है। दण्ड, कमंडल एवं गेरुआ वस्त्र धारण करना वैष्णव अवधूतों का विशेष लक्षण है। ऐसा पुराणों में निर्देश है। मैं जब न्यायशास्त्र का अध्ययन करता हुआ नवद्वीप में था, तो वहाँ देखता था, सभी गौरांग प्रभु और नित्यानंद प्रभु को कृष्ण-बलराम का अवतार मानकर पूजा किया करते थे। वैसे भी बंगाल में नित्यानंद व गौरांग महाप्रभु की पूजा हर जगह होती है। प्राचीन वैष्णवों ने पुराणों के प्रमाण से गौरांग महाप्रभु को पूर्णअवतार सिद्ध किया है। श्रीवृंदावन में महाप्रभु के उपासकों का विशेष प्रभाव है।

सारे सन्यासी मंडल में श्रीभोलानंद गिरि महाराज की विशेष मान्यता है। उन्होंने कहा-'संन्यासियों के लिए स्त्री-पुत्र, परिवार त्याग तथा स्त्रीसंग वर्जित है, किंतु जीवनमुक्त पुरुषों के लिये यह सब विधि-निषेध नहीं रह जाता। वे इन सबसे परे हैं। मैंने इनका संग करके तो यही जाना है, कि ये साक्षात् सदाशिव, आशुतोष हैं।'

व्रजविदेही रामदास काठिया बाबा ने कहा-गोसाईंजी साक्षात् महादेव हैं, प्रेम के अवतार। उनके ललाट में सर्वदा धक-धक आग जल रही है। जो भी उसके आगे पड़ता भस्म हो जाता है। वे जैसे प्रेमिक, वैसे ही समर्थ भी हैं। वैष्णव लोगों के बीच छावनी करके रहते हैं, यह वैष्णवों का अहोभाग्य है, इससे तो वैष्णवों का मान बढ़

गया। महात्माओं ने जो मत व्यक्त किया, वह सुनकर विरोधी व्यक्ति लज्जित होकर अपने अपने स्थान को चले गए।

भगवान की लीला अद्भुत है। वे किस माध्यम से क्या करते हैं, यह यदि वे ही कृपा करके समझा न दें, तो विस्मय-मुग्ध होना पड़ता है। ब्राह्म-व्यक्ति के षड्यंत्र का परिणाम कुछ और ही हुआ। इतने बड़े कुंभ मेले में कौन किसे जान पाता? लाखों साधु संत हैं। एक चौथाई जनता किसी विशेष साधु के बारे में कैसे जान पाती? लोग अपने छत्र के साधुओं के ही दर्शन करते हैं। विरोधियों के कारण ही सब संप्रदायों के मंहतों, नेताओं का सभा में समावेश हुआ था। सबके सामने महान विभूतियों ने अपने मुख से ठाकुर के बारे में जो आदर व्यक्त किया-वे सब बातें थोडे ही समय में अनेक संप्रदायों के सभी लोगों के बीच प्रचारित हो गई। विद्युत गति से बात सर्वत्र फैल गई। सैकड़ों साधु, वैष्णव अब दौड़कर ठाकुर के दर्शनार्थ आने लगे। ठाकुर अग्निस्वरूप हैं, अपने आपको मानो अब तक राख में ढककर छुपाए रखे हुए थे। अब उनकी ज्योति सर्वत्र फैल गई। हमें बड़ा ही आनंद आया। ठाकुर साधु दर्शन व परिक्रमा के समय कितनों को ही दर्शन दे आते थे, किंतु अवज्ञा से दर्शन पा जाना और दौड़कर आग्रहपूर्वक दर्शन के लिए आने में अंतर अवश्य है। आज मेरे ठाकुर की महिमा सर्वत्र फैली। जय हो गुरुदेव! जय हो ठाकुर! तुम्हारी सर्वत्र जय हो! तुम सदा सुखी रहो, यही मेरे अन्तःकरण की आवाज है। मेरी वेशभूषा को देखकर भी साधुगण मेरा परिचय पूछते हैं, मैं क्या कहूँ समझ नहीं पाता। इसलिये चुप रह जाता हूँ। ठाकुर से पूछा-साधुगण मेरा परिचय पूछे तो क्या कहूँगा? ठाकुर ने कहा-**'नाम पूछे तो आनन्द लगाकर कुलदानंद**

नाम कहना। नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्रृंगेरीमठ, आश्रम बम्बई बताना। गुरु का नाम पूछे तो कहना-अच्युतानंद।' ठाकुर का संन्यास नाम अच्युतानंद है, इसके पहले मैंने नहीं सुना था।

दयालदासजी की छावनी में निमंत्रण। संकीर्तन में भावावेश।

आगामी कल दयालदास स्वामीजी की छावनी में हम सबका निमंत्रण है। अब तक मेले में हमारा कहीं निमंत्रण नहीं हुआ था। निमंत्रण का कारण जानना चाहा, तो पता चला की दयालदासजी के किसी शिष्य ने ठाकुर के विरुद्ध प्रचार की कोशिश की थी। यह जानकर दयालदासजी को बहुत ही क्लेश हुआ, इसी के प्रतिकार स्वरूप उन्होंने ठाकुर को विशेष सम्मान देने की इच्छा से यह निमंत्रण भेजा है। दयालदासजी का वही विख्यात शिष्य आज ठाकुर के सामने हाथ जोड़कर कहने लगा-'स्वामीजी ने हाथ जोड़कर आपसे यह प्रार्थना की है कि आप सशिष्य कल उनकी छावनी में पधारकर भिक्षा लें। उन्हें संकीर्तन बड़ा प्रिय है। आपके यहाँ की संकीर्तन की बात उन्होंने सुनी है। यदि आप थोड़ी देर संकीर्तन भी करें, तो बड़ा ही अच्छा हो, उन्हें बड़ा आनंद आयेगा।' ठाकुर ने आनंदपूर्वक निमंत्रण स्वीकार किया। आज ग्यारह बजे हम सबको साथ लेकर ठाकुर स्वामीजी की छावनी पहुँचे। स्वामीजी उत्सुकतापूर्वक हाथ जोड़े खड़े थे। ठाकुर के पास आकर प्रणाम करके, आदर-सत्कारसहित उनका स्वागत किया। ठाकुर को उन्होंने एक बड़े से तम्बू में बैठाया। स्वामीजी बड़े ही व्यस्त थे, अतः ठाकुर की अनुमति लेकर किसी जरूरी काम के लिये बाहर

गए एवं अपने उसी शिष्य पर हमारी सेवा का भार देकर गए। हम सब थोड़ी देर चुपचाप बैठे रहे। ठाकुर ने कहा-'ब्रह्मचारी एक अध्याय गीता पाठ करो।' मैंने पूछा कौन सा अध्याय पाठ करूँ? उन्होंने चतुर्थ अध्याय पाठ करने को कहा। वह मुझे कण्ठस्थ था, अतः उत्साहपूर्वक मैंने वह उच्च स्वर में पाठ किया। उसके बाद ही कीर्तन के लिये मृदंग और करताल बज उठे। उसकी ध्वनि मात्र से गुरुभ्राता मत्त से हो उठे। नाम संकीर्तन प्रारंभ हुआ। गुरुभ्राता कूदते, गर्जना व हुँकार करते जाते। ठाकुर भी भावोन्मत्त होकर नृत्य करने लगे। गुरुभ्रातागण ठाकुर को घेरकर उच्चस्वर में हरि ध्वनि करते जाते। चारों ओर से साधु-संतों ने आकर तम्बू को घेर लिया। तम्बू के भीतर उद्दाम नृत्य हो रहा था, बाहर दर्शक मण्डली इसे देखकर, भावस्रोत को परिलक्षित कर विस्मित हो रही थी। इसी समय एक बलिष्ठ, तिलकधारी साधु मृदंग लेकर भीड़ में से आया एवं तम्बू में प्रविष्ट हुआ। पगला सतीश उनके सामने कूदकर आया और उनके सामने अंगूठा दिखाकर नाचने लगा। जैसे-जैसे संकीर्तन का भाव बढ़ता चला सतीश भी नाना प्रकार की अंग-भंगिमा से उस साधु को हतोत्साहित करता जाता। धीरे-धीरे साधु द्वार पर मृदंग रखकर कहीं चला गया। सतीश के कारनामे किसी को समझ नहीं आये। सबने सोचा शायद कीर्तन के भावावेश में ऐसा करता होगा। संकीर्तन समाप्त हुआ। सतीश से हमने पूछा-भाई यह कैसा भाव दिखा रहे थे? सतीश ने कहा-भाव कहाँ दिखाया, वह तो जान बचाकर भागा। मैंने पूछा-क्यों उस साधु पर तुम्हारा आक्रोश क्यों? उसने कहा-अरे इसी ने भूत का बोझ, मेरे कंधों पर डाला था। मायाचक्र में घुमाया था। अब गोसाईं मेरे पास हैं, तभी तो उसे

ठेंगा दिखा रहा था। वह थोड़ा और रुकता तो उसे काट खाता। बाद में सतीश की ये बातें कहने पर ठाकुर ने हँसी-हँसी में कहा-**‘सतीश वह साधु आया था। मुझे दिखाया क्यों नहीं? एक बार देखता तो सही।’**

स्वामी दयाल दास की असाधारण दया।

तीन बजे दयालदासजी ने उत्तम पकवानों से हमें भोजन कराया। ग्यारह बजे से संध्या तक पंगतों में सहस्त्रों साधु भोजन करते गए। सुदक्ष शिष्यवृंद सर्वदा देख-रेख करते जा रहे हैं। एक भी भूखा, गरीब यदि तृप्त होकर न गया तो स्वामीजी को अत्यन्त क्लेश होता है, वे छटपटाते हैं। एक घटना ये उनकी दया का स्मरण बारंबार हो आता है। एक दिन स्वामीजी कंगालों के भोजन-काल में स्वयं विशेष कारणों से उपस्थित न रह सके। वे अपने प्रिय, प्रधान शिष्य पर यह भार देकर चले गए और आदेश दिया-‘दरिद्र भोजन समाप्त किये बिना कहीं भी मत जाना।’ शिष्य ने भी आदेश का पालन करते हए कार्यभार ग्रहण किया। खूब मन लगाकर वे सब आने वाले दरिद्रों को भोजन कराने लगे। दूसरी ओर दस बारह हजार संन्यासी भोजन कर रहे थे। उनका भोजन आधा ही हुआ होगा, अचानक रामदल आ पहुँचा। रामदल के साधु महावीर हनुमान का भाव लेकर उपास्य देवता की प्रीति के लिये कूदफाँद, लूटपाट करके भोजन किया करते हैं, पंगत में बैठकर भोजन नहीं करते। सभी जानते हैं, कि किसी सदाव्रत में रामदल आ पहुँचे, तो लूटपाट होगी ही। उनके आते ही सर्वत्र कोलाहल और हलचल मच जाती। संन्यासियों के भंडार पर इनकी नजर पड़ी। अब तो अधूरे

भोजन से संन्यासी उठ जाएंगे, इस दुश्चिंता में स्वामी दयालदासजी के सारे शिष्य पंगत की रक्षा के लिए दौड़े और ये दायित्व लिए हुए शिष्य भी स्थिर न रह सके और चल पड़े। उनके अनेक प्रयत्न करने पर सब शांत हुआ, पंगत भोजन फिर चलने लगा। संन्यासी-भोजन यथावत् चला परन्तु इधर गरीब लोग रामदल के डर से बिना भोजन किए चले गए। उन्हें पुनः ढूँढ लाना भी संभव न हो सका।

शाम को जब दयालदासजी ने सब कुछ सुना कि आश्रयहीन, भूखे, दरिद्रों ने भोजन नहीं किया तो वे सुनकर रो पड़े। उन्होंने उसी शिष्य को बुलाकर कहा-विपत्ति की आशंका से तुमने प्रत्यक्ष गुरु के आदेश का उल्लंघन किया है। यह अपराध साधारण नहीं है, अतएव मैं तुम्हारा त्याग करता हूँ। गुरुभक्त शिष्य इस अचानक वज्राघात से व्याकुल हो उठा और गुरु के चरणों में लोटने लगा। रोते हुए उसने गुरु से कहा-मुझ अपराधी के शरीर से आपकी सेवा न हो सकेगी। यह इसके योग्य भी नहीं, किंतु आप आशीर्वाद दें, कि देह के अंत होने पर आपका पुनः संग प्राप्त हो। स्वामीजी ने कहा-गंगा यमुना के संगम में ऐसा संकल्प करके, देह विसर्जन करो तो ऐसा हो सकता है। शिष्य दण्डवत् करके, चरण धूलि लेकर चला गया। उसके जाने पर धीर-गंभीर दयालदासजी अधीर हो उठे। शिष्य कहाँ गया होगा, इसी चिंता में वे यहाँ-वहाँ भटकने लगे। बार-बार खोज खबर लेने लगे। निर्जन तट पर, रेत पर बैठा शिष्य, रोते हुए गुरुजी का स्मरण करता रहा। ठंड की अंधेरी सुनसान रात में जब मेले के सभी लोग विश्राम कर रहे थे, शिष्य ने एक रस्सी के दोनों ओर बड़े-बड़े घड़े बांध लिये, उसे लेकर वह जयगुरु कहकर

तीव्र प्रवाहवाली गंगा के तट पर आ पहुँचा। व्याकुल होकर गुरुस्मरण करते हुए वे गंगा में उतरे। वह गले में रस्सी बांधकर गंगा-यमुना के प्रवाह में बहने ही वाला था कि दयालदासजी ने आकर उन्हें सीने से लगा लिया और खींचकर तट पर लाते हुए कहा-बस हो गया बच्चे, पूरा प्रायश्चित्त हो गया। इसके बाद गुरु, शिष्य छावनी लौट आए। आज मानो विश्व ब्रह्माण्ड धन्य हुआ! शिष्य की आज्ञाकारिता और गुरु के शिष्य प्रेम और स्नेह को देखकर चौदह भुवन नाच उठा। हे गुरुदेव! कब मैं इस प्रकार आज्ञाकारी और अनुगत हो सकूँगा? कब मैं तुम्हें वस्तुतः अपना समझ पाऊँगा?

तम्बू लौटते शाम हो गई। गौर-निताई की आरती सम्पन्न करके गुरुभ्रातागण ठाकुर से विविध प्रसंग पर बातचीत करके आनंद पाने लगे। दयालदासजी की भी बहुत सी बातें हुई। सुना है, एक व्यक्ति ने दयालदासजी से पूछा-स्वामीजी साधु संतों की अपेक्षा, संसार के अवांछित, कंगाल, दरिद्रों पर आपकी रुचि अधिक क्यों रहती है? स्वामीजी ने उत्तर दिया--एक-एक वस्तु पर एक-एक का अधिकार रहता है। जैसे राजा का प्राप्य सम्मान, स्वागत, मर्यादा-एवं साधुसंतों का प्राप्य श्रद्धा, भक्ति है--उसी प्रकार अन्न पर भूखे व्यक्ति मात्र का अधिकार है। उसमें साधु-असाधु का विचार कैसा? गेरुआधारी साधु को भोजन कराने पर यदि साधु भोजन का फल मिले तो नग्नगात्र कंगाल को भोजन कराने पर महादेव-भोजन का फल मिलेगा। महात्मा दयालदासजी के दान की भावना कितनी गहन है। ठाकुर यह सब सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। रात हो गई, सबने विश्राम किया।

ये ही तुम्हारे विलासी साधु हैं। गुरु शिष्य की अवस्था। असाधारण शक्तिशाली शाह साहब।

आज ठाकुर चाय पीने के बाद संन्यासियों की छावनी में जाने के लिए निकले। गंगा तट पर संन्यासियों के अड्डे से थोड़ी दूरी पर एक पुआल की ढेरी दिखाई पड़ी। वहाँ पहुँचकर ठाकुर कुछ ढूँढ़ने लगे। पुआल की ढेरियों के बीच एक परमहंसजी बैठे थे। ठाकुर उनको नमस्कार करके उनके सामने बैठ गए। स्मरण हो आया, आने के समय इन्हीं की तो ठाकुर परिक्रमा कर रहे थे। इनका देह भावावेश में थरथर काँप रहा था। इनके पास ठाकुर आधे घंटे तक बैठे रहे। हमने देखा इनके गौरवर्ण के वक्षस्थल पर काली छाया पड़ रही थी। छाया इतनी स्निग्ध थी कि देखते ही देह, मन शीतल और चित्त प्रफुल्लित हो उठा, भीतर तीव्रता से नाम होने लगा। ऐसा प्रतीत हुआ, मानो इन्होंने अनंत परब्रह्म में अपनी सत्ता विलीन कर दी हो और शांत समाहित मौन हुए पड़े हैं। हम सब इतनी देर रहे, इसका शायद उन्हें भान भी न हो पाया। वे मौन थे, अतः कोई बातचीत भी न हो पाई। ये कौन है, कहां रहते हैं, कोई परिचय भी नहीं जानता। इन्हें मौनी बाबा कहते हैं। अपने को गुप्त रखने के लिए ये एकान्त में पड़े हैं, अतः ठाकुर भी क्यों इनका परिचय देने लगे? ठाकुर ने कहा-**'मौन रहकर भी ये जो उपदेश दे रहे हैं, वह सर्वश्रेष्ठ है। ऐसा उपदेश और कोई नहीं देता।'**

यहाँ से ठाकुर ने संन्यासी मंडली में प्रवेश किया। प्रत्येक चौकोर छत्र में बड़े बड़े कई तम्बू लगे हैं। किसी तम्बू में कुछ भी नहीं केवल पुआल की बिछावन या दरी या कहीं गलीचा बिछाया गया है।

परन्तु कहीं तो इनका वैभव देखते ही बनता है। देखकर अचंभा होता है। वहाँ की बैठक का आडम्बर व साजसज्जा किसी राजमहल से कम न होगी। घूमते हुए ठाकुर के साथ संन्यासियों के प्रधान तम्बू में जा पहुँचा। देखा एक पलंग पर सोने की जरीदार मखमल की गद्दी लगी हुई है। उस पर एक संन्यासी विराजमान हैं। उनके पीछे मोटे-मोटे मखमल के उत्तम तकिए लगे हैं। उनका गेरुआ परिधान भी झिलमिला रहा है। स्वामीजी के गले में हीरा, पन्ना, मोती, मणियों की मालाएँ सुशोभित हैं। इन मालाओं से विभिन्न रंगों की किरणें निकल रही हैं। इसके मूल्य का अनुमान लगाना भी कठिन है। रेशमी पगड़ी बांधे स्वामीजी व्यासासन पर बैठे हैं। देखने में राजा महाराजाओं की तरह लग रहे हैं। उनका तेजस्वी, मुखमंडल उज्ज्वल एवं वर्ण गौर है। तम्बू के भीतर कई धनाढ्य सेठ, मारवाड़ी व्यक्ति बैठे हैं। स्वामीजी उत्साहपूर्वक मुस्कराते हुए उन्हें शास्त्र पुराणों का उपदेश सुना रहे हैं। स्वामीजी के दक्षिण में एक वृद्ध संन्यासी एक पुराने कंबल पर अकिंचन की भाँति बैठे हैं एवं वे स्वामीजी को उत्साह दिला रहे हैं। स्वामीजी पलभर उनकी ओर देखते, अश्रुपात करते और गद्गद् हो उठते हैं, जिससे उनका कंठरुद्ध हो जाता है। हमें देखकर उन्होंने इशारे से ठाकुर को बैठने को कहा। हम ठाकुर के साथ तम्बू में जा बैठे। उनके उपदेश मुझे आकर्षित न कर पाए। पहले ही उनका ऐश्वर्य और विलासिता देख मेरे मन में अश्रद्धा सी आ गई और उनका अश्रुपात आदि भी बनावटी सा लगा। थोड़ी देर बाद ठाकुर उठकर तम्बू की ओर लौटने लगे। राह में मैं मन के भाव न रोक सका और ठाकुर से पूछ बैठा-जो इतने विलासी साधु हैं, वे संन्यासियों के

नेता कैसे बने? उनका अश्रुपात और गद्गद् होना मुझे तो दिखावा जैसा लगा। मेरी बात सुनकर ठाकुर कुछ न बोले, मैंने भी समझा कि ठाकुर शायद मेरी बात सुनकर असंतुष्ट ही हुए होंगे, अतः और कुछ न बोलकर मैं भी चुपचाप चलकर तम्बू लौट आया।

शाम होते ही घने बादल छा गए, अंधेरा छा गया और आंधी व घनघोर वर्षा आरंभ हुई। सारे मेले में हाहाकार मच गया। साधुओं की धूनियाँ बुझ गई, छत्ते गिर पड़े। लाखों साधु सिर छुपाने की जगह न पा सके। कितने ही साधु इन दो दिनों तक कड़ाके की ठंड और वर्षा में खुले मैदान में पड़े रहे। जिनके सिर पर छाया है भी, तो भंडार शून्य है। ऐसे संकट में कौन किसकी खबर लेता है।

तीसरे दिन दस बजे हम सब तम्बू में ओढ़कर बैठे हैं, बाहर अच्छी वर्षा होती जा रही है, तब देखा एक बलिष्ठ, गौरवर्ण के साधु, मात्र कौपीन पहने कुछ साथियों को लेकर दौड़ते हुए हमारे तम्बू में आए। उनका सारा शरीर कीचड़ से सना, जगह-जगह लगी चोटों से रक्त की धारा बह रही है। घुटने टेककर वे हाथ जोड़े ठाकुर से बोले- महाराज भंडार में क्या क्या चीजें चाहिये। ठाकुर बाबू से पूछा, तो पता चला भंडार तो शून्य है। सुनते ही उन्होंने साथियों से तुरंत दो मन आटा, चावल, दाल, नमक, घी, लकड़ी आदि सभी समान लाने को कहा। सभी दौड़कर चले गये। सुना है ये लोग कल रात से ही अविराम पानी में भीगते हुए, प्रत्येक महंत से पूछकर, साथियों के साथ साधुओं को उन प्रयोजनीय वस्तुएँ अविलम्ब पहुँचाते जा रहे थे। आहार, निद्रा त्यागकर, मूसलाधार वर्षा, कडी ठंड खुले बदन दौड़-धूप कर रहे हैं। गिरते पड़ते जा रहे हैं, चोटें आ रही हैं पर इन्हें उसकी कोई परवाह नहीं। उन्हें देखकर मेरी आँखों में आँसू

आ गए। मैंने ठाकुर से पूछा-ऐसे साधु भी यहाँ विद्यमान हैं? ये कौन हैं? ठाकुर ने कहा-**'ये ही तुम्हारे विलासी साधु हैं।'** इतना कहकर ठाकुर भी सिसक-सिसककर रो पड़े। उनका वक्ष आँसुओं से भीग गया। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा-**'उस दिन तुमने जिसे महाराजा की तरह सुसज्जित वेशभूषा में गद्दी पर बैठा हुआ देखा था, आज देखो वे ही कैसे दौड-धूप कर रहे हैं। उनका नाम शंकरारण्य है। इनकी दाहिनी ओर कम्बल पर बैठे दीन वेश में वृद्ध संन्यासी इनके गुरुजी थे। माता-पिता अपनी संतान को सजाकर उसकी शोभा देखकर प्रसन्न होते हैं, वैसे ही प्रिय शिष्य को बहुमूल्य साज से सजाकर, महाराज की तरह गद्दे पर बैठाकर गुरुजी भी आनंद प्राप्त करते हैं। शिष्य भी अपना सब कुछ गुरुदेव की कृपा से ही प्राप्त हुआ जानकर गद्गद् हो रहे और उनकी ओर देख रहे थे। उन्हें प्रणामकर अश्रुपात कर रहे थे। उनका कंठ रुद्ध हुआ जा रहा था। उन्होंने कोई दिखावा नहीं किया।'**

रात ग्यारह बजे ठाकुर धूनी जलाकर सामने रखकर अपने आसन पर बैठे हैं। हममें से कोई बैठा है, तो कोई सो रहा है। तभी तम्बू की द्वार पर कोट, पैंट, टोप पहना कोई व्यक्ति आ खड़ा हुआ। ठाकुर ने उन्हें देखते ही सीने से लगा लिया। उन्हें लाकर आसन पर बिठाया। यह देख हम सब हैरान रह गए। कितने ही साधु-संत आते हैं, ठाकुर सादर उन्हें पृथक् आसन पर ही बिठाते हैं। अब तक किसी को अपने आसन पर लाकर बैठाया हो, ऐसा हमने नहीं देखा। हम विस्मयपूर्वक उन्हें देखने लगे। पंद्रह-बीस मिनट वे ठाकुर से बातचीत करते रहे, परन्तु वर्षा के कारण हमें कुछ सुनाई न पड़ा।

बाहर जाते समय हमने उन्हें छाता देना चाहा, पर ठाकुर ने ही मना किया। उनके जाने के बाद ठाकुर से हमने पूछा-ये कौन थे? ठाकुर ने कहा-**‘ये शाह साहब हैं, जाति के मुसलमान हैं, मेरे गुरुभ्राता हैं। अभी जाति बोध नहीं है, परमहंस की अवस्था है, ये ऐश्वर्य मार्ग पर चलकर सिद्ध हुए हैं। इनकी शक्ति असमान्य है। इस भारी वर्षा में आए थे, पर एक भी बूँद पानी शरीर पर नहीं लगा। इसी प्रकार चले भी जाएंगे। हम लोग किस प्रकार हैं, खोज-खबर लेने आए थे। इलाहाबाद में गुप्त रूप से वास करते हैं। वैसे भी कम ही लोग इन्हें जानते हैं।’**

साधु भीखनदास: भगवान के दान प्रवाह का स्पर्श कर कृतार्थ होना। महापुरुष गंभीरनाथजी के दर्शन।

आज आसमान स्वच्छ हुआ। साधुगण आनंद विभोर हो गए। साधुओं के रहने की पूर्ववत् सुव्यवस्था हो गई। हजारों धूनियाँ जल उठीं। भंडारा भी पहले जैसा ही आयोजित होने लगा। मानो प्रलय के बाद प्रकृति शांत हुई हो। साधु महात्मा यहाँ-वहाँ विचरण करते हुए एक-दूसरे की खोज-खबर लेने लगे। सबको मानो नवजीवन मिला हो। इन दिनों किसी के दर्शन भी न हो पाए। छोटे काठिया बाबा जैसे रोज ठाकुर के पास आते थे, वैसे ही इन दिनों भी आते रहे। हमारे तम्बू में रहने का बहुत अनुरोध करने पर भी वे न रुकते। बाबाजी ने कहा-जैसे स्त्री के लिए पति, वैसे ही आसन व धूनी साधु के लिये त्याज्य नहीं होता। अतः उसे छोड़कर कैसे अन्यत्र रहूँ। आज महात्मा भीखनदास बाबाजी, ठाकुर के पास आए। ठाकुर ने

उन्हें आदर-सत्कार सहित आसन के समीप बैठाया। इनका आश्रम पटना के पास है, जहाँ प्रतिदिन पाँच-सात सौ लोगों के आहार का आयोजन होता है। समय-समय पर असंख्य साधुओं की जमात भी आश्रम में आती है। आश्चर्य की बात यह है कि बाबाजी आकाशवृत्ति लेकर चलते हैं, एक दिन की वस्तु दूसरे दिन के लिये नहीं बचाते। भंडारा हो और किसी चीज की कमी हो तो, बाबाजी रघुनाथजी के द्वार पर धरना देते। उसी समय वह अभाव पूरा जाता है। वह सब कहाँ से आता है, किसी को पता नहीं चल पाता। यह भंडारा बहुत दिनों से चला आ रहा है। ठाकुर इनके भंडारा और आकाशवृत्ति की बड़ी प्रशंसा करने लगे। बाबाजी ने सुनकर कहा-माँ गंगा जैसे किसी की प्रतीक्षा किए बिना अपने ही प्रवाह में बहती हुई सागर में जा पहुँचती हैं, वैसे ही भगवान की इच्छा से यह दान प्रवाह चल रहा है। मैं तो केवल गंगा में हाथ धोकर पवित्र मात्र हो रहा हूँ। इसमें मेरी कोई बहादुरी नहीं है। बाबाजी की आयु चालीस के आसपास होगी। उनकी साधारण वेशभूषा, कौपीन बहिर्वास, गले में तुलसी माला एवं द्वादश अंग व ललाट पर गोपीचंदन का तिलक है। स्वस्थ, बलिष्ठ एवं प्रेमपूर्ण उनकी मूर्ति बड़ी ही भली लगी।

हम आज ठाकुर के साथ महात्मा गंभीरनाथजी के दर्शनार्थ चले। दूर से ही उनके दर्शन मात्र से, उनके असामान्य प्रभाव का अनुभव होने लगा। बिना प्रयास तीव्रता से भीतर नाम होने लगा। ठाकुर ने जाते ही उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। बाबाजी ने उन्हें एक जीर्ण, मलिन वस्त्र बैठने के लिए दिया। ठाकुर उस पर बैठे, चुपचाप बाबाजी की ओर देखते रहे। बाबाजी भी चुप रहे। बाबाजी का तपस्या से उद्दीप्त चेहरा, दीर्घ शरीर, उठी हुई नासिका, उन्नत

ललाट, परिधान में कौपीन व कमर पर लिपटा कम्बल का टुकड़ा था। उनके नेत्रों से अश्रु बह रहे थे, शरीर स्थिर, शांत एवं निष्पन्द था। आसन के नाम पर एक धूल व भस्म से भरी हुई, फटी चटाई। बाबाजी ने सेवकों से ठाकुर को चाय पिलाने की इच्छा प्रकट की। तुरंत ही मिट्टी के कुल्हड़ों में उत्तम चाय आई, जिसमें बादाम, पिस्ता, अखरोट पीसकर डाला गया था। चाय का जैसा सुंदर स्वाद, वैसा ही गर्म करने का गुण-पीते ही शरीर गर्म हो उठा। ठाकुर ने कहा-**'ऐसी बढ़िया चाय मैंने कभी नहीं पी।'**

काफी देर उनके पास बैठकर ठाकुर तम्बू की ओर लौट आए। राह में उनसे पूछा-ये कौन हैं? ठाकुर ने कहा-**'ये नाथ योगियों के महन्त हैं। चारों ओर जो भीषण आकृति वाले साधु थे, वे गोरख पंथी कानफटा योगी हैं, इनमें अघोरी भी हैं। गंभीरनाथजी ने ऐश्वर्य पथ पर कठोर तप करके सिद्धि प्राप्त की है। अब ये महासिद्धि लाभ कर चुके हैं। इनके जैसा शक्तिशाली योगी हिमालय के नीचे और कोई नहीं है। ये पलभर में ही सृष्टि, स्थिति, प्रलय कर सकते हैं। अभी किंतु ये मधुर-भाव में डूबे हुए हैं। इनके साथ मेरा विशेष संबंध है। पहले जिन चार महात्माओं के दर्शन पर्वत पर किया था, उनमें से ये एक हैं-गोरखपंथी योगीराज गंभीरनाथजी। आलेखी, कानफट्टा, अघोरी ये सब तांत्रिक योगी हैं। इनकी साधन प्रणाली भी बड़ी कठिन है।'** मेले में आकर जितने भी साधु महात्माओं के अब तक दर्शन मिले, गंभीरनाथजी जैसा कोई न मिला। देह में ठंड लगने की भाँति उनके प्रभाव का स्पष्ट अनुभव आकर देह-मन को स्पर्श करने लगता है।

भैरवी दर्शन: सत्यदासी के पूर्वजन्म के गुरु।

आज चाय पीकर ठाकुर ने वैष्णवों की मण्डली के भीतर से जाकर तांत्रिक, साधु-संन्यासी, अवधूतों की मण्डली में प्रवेश किया। अधिकांश तांत्रिक रक्ताम्बर पहने, जटिल, भस्म रमाए, त्रिपुण्ड्रधारी, सिर पर लाल रोली या सिंदूर का तिलक लगाए हैं, तेजस्वी चेहरा देखकर अत्यन्त शक्तिशाली प्रतीत होते हैं। ठाकुर घूमते हुए एक अवधूत के पास जा पहुँचे। वे ठाकुर को देखते ही जय गजानन! जय गजानन! कहने लगे। आधा घंटा वहाँ बैठकर ठाकुर उठे। कुछ दूर रेतीले मैदान में, धूनी रमाए एक तेजस्विनी भैरवी बैठी थी। ठाकुर के वहाँ पहुँचते ही वे भी 'आओ बाबा गणेश' कहकर आनंद प्रकट करने लगी। ठाकुर से उन्होंने आदरपूर्वक धूनी के सामने बैठने को कहा, सो ठाकुर वहाँ बैठ गए। भैरवी, ठाकुर को देखकर भावाविष्ट हो गई। साक्षात् गणेश कहकर बारंबार ठाकुर को प्रणाम करती जाती। उनका मुखमंडल और नेत्र मानो फटे जा रहे थे, आँसू से सारा वक्ष भीग रहा था। पूरे शरीर पर भस्म लगा हुआ था। लम्बी जटाओं से बदन ढका हुआ था। गले में बड़ी बड़ी रुद्राक्ष की मालाएँ, ललाट में सिंदूर, श्यामवर्ण, कद छोटा व स्थूल था, वे नग्नगात्र थीं। वे योगासन में बैठी थीं। उनकी दृष्टि ऐसी सुंदर एवं स्निग्ध थी, कि आँखें फेरने को मन नहीं करता। मैंने श्यामवर्णा इतनी सुंदर स्त्री कहीं नहीं देखी, मानो साक्षात् भगवती माँ तारा, श्यामा ही आविर्भूत हुई हों। हम उन्हें देखकर विभोर हो गए। ठाकुर ने उन्हें प्रणाम किया और वे उन्हें एकटक देखती रही। हम तम्बू की ओर लौटने लगे।

अब लौटते समय ठाकुर सीधे रास्ते से न चलकर गंगा तट से चलने लगे। सितार लिये दीर्घकाय, जटाधारी, शीर्ण देह एक साधु ठाकुर को देखकर उन्मत्तवत् हो गए। वे गान करते हुए ठाकुर के सामने नृत्य करने लगे एवं उनकी प्रदक्षिणा एवं स्तुति करने लगे। वे कातर होकर ठाकुर के चरणों में लोटने लगे। उनके अद्भुत् भावों को देखकर हमें आश्चर्य हुआ। वे रोते हुए हाथ जोड़े ठाकुर से कहने लगे-प्रभो आपके दर्शन पाने के लिए बहुत घूमा। बहुत दिनों से आपका ध्यान करता आ रहा हूँ। ठाकुर ने भी स्नेहपूर्ण एवं अश्रुपूर्ण दृष्टि से उन्हें देखते हुए कहा-**'मैं भी मन ही मन कुछ दिनों से आपका ही अनुसंधान कर रहा हूँ।'** कुछ देर गंगा तट पर रहने के बाद ठाकुर तम्बू की ओर लौटे। रोज की भाँति संध्या के समय महाप्रभु व नित्यानंद महाप्रभु की आरती एवं संकीर्तन प्रारंभ हुआ। संकीर्तन में गुरुभ्राताओं का महाभाव देख कर साधु-संतों को बड़ा आनन्द आया। संकीर्तन समाप्त होने पर ठाकुर तम्बू के भीतर गए।

लगभग सभी लोग ठाकुर के साथ तम्बू के भीतर गए। मैं और अश्विनी गौर निताई की प्रतिमाओं के पास खड़े रहे। द्वार की तरफ देखा एक संन्यासी ने गौर, निताई को साष्टांग प्रणाम किया। यह देख कुछ आश्चर्य हुआ, क्योंकि अधिकांश संन्यासी न तो गौर, निताई को जानते हैं, न मानते हैं। वे इन्हें गंगा-यमुना कहते हैं। हमने देखकर पहचाना कि कल ये ही धूनी के सामने आधे घंटे चुपचाप बैठे थे। जाते समय प्रणाम करके अपना लकड़ी का कमंडल रखकर ठाकुर का कमंडल लेकर चले गए। ठाकुर यह देखकर भी चुप रहे, कुछ न बोले। ठाकुर से इनका परिचय पूछने पर उन्होंने कहा-**'ये सत्यदासी के पूर्वजन्म के गुरुदेव हैं। बद्रिकाश्रम से भी काफी**

ऊपर हिमालय के बर्फीले उच्च शिखर पर गुफा में रहते हैं। इस स्थान को साधु लोग बरफान कहते हैं। वहाँ केवल कंदमूल ही इनका आहार है। ये बड़े प्राचीन महापुरुष हैं। ये जनसमुदाय का न कुछ जानते, न ही यहाँ आते हैं। अब बहुत काल बाद जनसमूह के बीच आए हैं।'

इन महात्मा को पुनः देख मैंने अश्विनी से कहा-देखो ये ही सत्यदासी के पूर्व जन्म के गुरुदेव हैं। अश्विनी कुंज व सतीश को बुलाने दौड़े। मौका पाकर महात्माजी चले गए। मैं द्वार पर रहकर ही उन पर दृष्टि जमाए रखा। गुरुभाई दौड़े और उनका पीछा करते हुए ठोकर खाकर गिरने लगे। तभी वे अचानक पीछे मुड़कर देखे और हमारी ओर आने लगे। सबने उनकी चरणधूलि ग्रहण की, उन्होंने सिर पर हाथ रखकर सबको आशीर्वाद दिया और पूर्व की ओर गंगा तट पर चले गए।

महापुरुष का कवचदान।

आज और दिनों की भाँति हम गंगातट पर शौचादि के लिये गए। वहाँ मेहतरों के एक घर के द्वार पर ठाकुर का कमंडल देखा। हमने सोचा यह यहाँ कैसे आया? खोज करने पर हमने देखा, मेहतर के घर के भीतर एक कोने में वे ही महात्मा चुपचाप पड़े हैं। हम बड़ा ही आग्रह व अनुरोध करके उन्हें अपने तम्बू में ले आए। स्नानादि के बाद उन्हें साथ लेकर लौटते देख तम्बू के सभी व्यक्ति बड़े आनंदित हुए। मुझ पर उनकी विशेष कृपा दृष्टि पड़ी। उन्होंने कहा- 'बच्चा जिस चीज के लिए तुम इतने दिन से साधन भजन कर रहे हो, वह चीज हम तुम्हें देंगे। उसे धारण करने पर तुम्हें सर्वसिद्धि

लाभ होगी।' मैंने कहा-वह सिद्धि मिलने से मुझे क्या होगा? महात्माजी-'महाबीरजी की शक्ति का तुममें संचार होगा। उर्ध्वरेता बन जाओगे, गुरुजी पर अनन्य भक्ति व एकान्त निष्ठा बनी रहेगी।' मैंने सोचा-इसी के लिये तो मेरी एकमात्र आकांक्षा है, किंतु यह तो एकमात्र ठाकुर के सिवा मुझे कोई और दे नहीं सकता। उस पर तो मेरे गुरुदेव का ही एकमात्र एकाधिकार है। मैं हैरान रह गया। यदि ये स्वयं होकर यह मुझे दे रहे हैं, तो यह मेरा सौभाग्य है। ग्यारह बजे ठाकुर शौच के लिये गए। तब उन्होंने धूनी में मंत्र पढ़ते हुए धूप, गुग्गुल, चंदन डाला और फिर भोजपत्र पर अंकित हनुमानजी की मूर्ति दिखाकर उसे होम के धुंए से ही आरती किया। फिर मेरे हाथों में देकर कहा-'लो इसे दक्षिण बाहु में धारण करो और पूजा करो।'

मैंने कहा-महात्माजी पूजा तो हम नहीं जानते हैं, सिर्फ धारण कर सकते हैं। महात्माजी-अच्छा उसी से होगा। सिर्फ मंगल के दिन धूनी जलाकर एक बार आरती करना।

मैंने पूछा-आपकी उम्र कितनी है?

महात्माजी-'मैं तो नहीं जानता, मेरे गुरुजी ने कहा था-तुम्हारे तीन सौ वर्ष पूरे हुए, चाहो तो एक बार जन्मभूमि दर्शन कर आओ। कई बरस बाद गुरुजी की बात स्मरण आते ही मैं नीचे की ओर जन्मभूमि दर्शन के लिये चला आया। आकर सुना, यवनों ने भारत भूमि में प्रवेश किया है तो फिर अपने आसन पर लौट गया। फिर नहीं उतरा। अब की कुंभ मेले में आया हूँ।' सुना है, वे रात ढाई प्रहर के समय मानसरोवर में स्नान करते, फिर बद्रिकाश्रम बद्रीनारायण के दर्शन करके, श्रीक्षेत्र जगन्नाथजी की मंगल आरती दर्शन करते, फिर द्वारकानाथ का दर्शन करके, होम करके त्रिवेणी संगम पर

स्नान करके अपने आसन पर लौट जाते हैं, यह उनका नित्य कर्म है। उनके मुख से सुना-'यह जो त्रिवेणी देख रहे हो, ऐसी तीन त्रिवेणी हिमालय के ऊपर भी है। मन्दाकिनी, अलकनंदा, भागीरथी गंगा की तीन धाराओं से सरस्वती का संगम है। हिमालय पर्वत पर पम्पा व मानस सरोवर जैसे चार सरोवर है। जिनकी देह पर अस्त्र आघात न कर सके, जिनकी देह अग्नि न जला सके, ऐसे शरीर से केवल मानस-सरोवर जाया जा सकता है और इन सरोवरों में स्नान किया जा सकता है। बाबा मैं उन चारों में नहाता हूँ।' इतना कहकर वे जाने किधर चले गए, पता ही न चला। शौच से लौटकर ठाकुर आसन पर बैठे। एकान्त पाकर उनसे सब कुछ कह सुनाया। ठाकुर ने पूछा-**'तुमने क्या कवच उनसे माँगा था?'** मैंने कहा-मैंने कुछ भी नहीं माँगा, उन्होंने खुद होकर ही कवच दिया है। ठाकुर-**'तुम्हारा सौभाग्य है, वे साधारण नहीं हैं, वाक्सिद्ध हैं। उन्होंने जैसा कहा है, धारण करने पर वे सब अवस्थाएँ लाभ करोगे। इच्छा हो तो आज ही धारण कर सकते हो।'** ठाकुर की बातें सुनकर कवच धारण की मुझमे स्पृहा न जागी। मैंने वह झोले में रख दिया।

रंगीला बाबा।

हम जब से आए हैं, एक साधु प्रायः ठाकुर के पास आया करता है। उनकी वेशभूषा देखकर वे किस सम्प्रदाय के हैं, अनुमान लगाना कठिन है। सिर पर जटा, ललाट में भस्म, रंग-बिरंगे कपड़े से बना अलखल्ला पहने, नाटा कद, काला रंग-ऐसा उनका स्वरूप है। कोई दूसरा परिचय न पाकर हमने उन्हें रंगीला बाबा कहना शुरु

किया है। ठाकुर के पास वे हठयोग की बातें करते हैं, शायद वैष्णवों पर वे प्रसन्न नहीं हैं। ठाकुर से कहते तुम जो तिलक लगाते हो, उस पर मेरे शिवजी मल त्यागते हैं। ठाकुर तब कहते-'तब तो हम धन्य हो गए।' वे ठाकुर की बातों पर ध्यान न देकर लगातार खुद ही बोलते जाते। हम ठाकुर से कुछ सुनना चाहते तो रोककर खुद ही कहते, हम कुछ सुन नहीं पाते। इस पर सतीश का माथा गर्म होने लगा। कब ये उठे, हम इसी की प्रतीक्षा करते रहे। तभी ठाकुर ने सतीश को शौच के लिए पानी भरने को कहा। सतीश के लौटने पर साधु जा चुके थे। सतीश आकर उनकी पूछताछ करने लगा। उसने कहा-जो मेरे ठाकुर की बातों में बाधा डाले, मैं उसके कान काट खाऊँगा। उसके कान रहने की जरुरत नहीं। ठाकुर ने सतीश का भाव जानकर ही शायद उसे काम के बहाने हटा दिया था, नहीं तो आज सतीश कुछ न कुछ कर ही बैठता।

छद्मवेश में महापुरुष।

आज दोपहर एक बजे एक पंजाबी सज्जन ठाकुर के पास आए। उन्हें देखते ही ठाकुर ने हाथ जोड़कर अभिवादन किया और धूनी के सामने बिठाया। सज्जन की वेशभूषा में कोई धर्मसूचक चिन्ह तक नहीं है। सादा, स्वच्छ, सफेद परिधान, सफेद पगड़ी और सफेद दाढ़ी मूँछे हैं। उनकी आकृति दीर्घ, स्वस्थ, सुडौल व रंग गौरा है। देखने से ही तेजस्वी मालूम पड़ते हैं। वे एक भी बात न करके, चुपचाप ठाकुर के पास बैठे रहते। वे हमें बड़े अपने से लगते हैं। वे बार-बार ठाकुर को देखते, ठाकुर भी निर्वाक् हो उन्हें देखते। आधे घंटे बैठकर ठाकुर को प्रणाम करके वे कहीं चले गए। तम्बू में

से किसी की बाहर जाने की इच्छा न हुई।

ठाकुर ने कहा-**'ये साधारण व्यक्ति नहीं है, छद्मवेश लेकर महापुरुष आए थे। इनका प्रभाव असाधारण है।'** मैंने कहा-इन्होंने तो एक भी बात नहीं की। ठाकुर-**'कहा कैसे नहीं? बहुत सी बातें कह गए। मुँह से नहीं कह रहे थे, पर दृष्टि से तो कहा ही है।'** मैं-इनका क्या परिचय है? ये कौन हैं? ठाकुर-**'परिचय है, पर ये दस लोगों के बीच अपना परिचय देना नहीं चाहते। ये कर्नल अल्कॉट के गुरुजी कौथुम ऋषि हैं।'** ठाकुर से यह सुनकर गुरुभाई उन्हें ढूँढने निकले पर वे कहीं न मिले। सुना है, ठाकुर के प्रयाग आने के बाद श्रीमती एनीबीसेट, श्री मनोरंजन गुहठाकुरता की पत्नी श्रीमती मनोरमा देवी से मुलाकात करने गई थी। उनकी अद्भुत् समाधि देखकर वे विस्मित हो गई। मनोरमा को उन्होंने ही कौथुम ऋषि की फोटो दिखाई, और ठाकुर के दर्शन की भी आकांक्षा व्यक्त की। सुना है, एनीबेसेंट ने साधुओं के साथ मेले में रहने एवं त्रिवेणी में स्नान की अनुमति माँगी थी, परन्तु साधुओं ने सम्मति नहीं दी। मकर-स्नान के समय उन्होंने भी भारतीय स्त्रियों की भाँति साड़ी पहनकर स्नान किया, यह सुनकर अच्छा लगा।

रासायनिक साधु।

आज संन्यासियों के क्षेत्र की परिक्रमा करके, नानकशाही खेमे पर आकर, खुले मैदान में रेत पर एक संन्यासी को देखा। उनके मस्तक पर बड़ी-बड़ी जटाएँ थी, तन पर बड़ा चोगा पहने थे। हमें देखकर वे खिलखिलाकर हँस पड़े। ठाकुर भी दूर से देखकर हँसे, पर पास जाकर नहीं बैठे। ठाकुर जिनमें कुछ विशेषता देखते हैं,

उन्हीं के पास बैठते हैं। इन्हें देखकर हँसे, पर बैठे क्यों नहीं पूछने के लिए ठाकुर से कहा-इनका ललाट तो अत्यन्त प्रशस्त है। ऐसा प्रायः देखा नहीं जाता, ये कौन हैं? ठाकुर-**'इतना बड़ा ललाट न हो तो क्या इतना बड़ा भाग्य होता? इनका गुप्त रहना ही कल्याणप्रद है, बाहर आने पर वह मधुरता नहीं रह जाती।'** ठाकुर की बात सुनकर हम सबने सोचा-ठाकुर जब इन्हें गोप्य रखना चाहते हैं, तो अवश्य ये मानससरोवर के परमहंसजी ही होंगे। यह सोचकर सभी उनके चरणों में जा पड़े। मेरे हाथ में ठाकुर का कमण्डल था, यह हाथ कैसे किसी के चरणों को स्पर्श करे, सोचकर मैं दूर ही खड़ा रहा। गुरुभ्राता उनके दर्शन करके विमुग्ध हो गये और विनती करके उन्हें अपने तम्बू में ले आए। ठाकुर तम्बू में न जाकर बाहर ही रहे। कुंज, सतीश, छोटे दादा उनकी सेवा में लग गये। कोई हाथ-पाँव दबाता रहा, जो सेवा न कर सके तो वे सटकर बैठने का ही प्रयत्न करने लगे।

संन्यासी इनकी श्रद्धा-भक्ति से प्रसन्न हुये। उन्होंने कहा-आज तुम्हें एक अच्छी चीज दिखाएंगे? यह कहकर उन्होंने एक गोली खा ली। सभी परमहंसजी की कृपा पाने के लिये उद्विग्न थे। संन्यासी ने कहा-कुछ ठंडी चीज, दही, मिठाई ले आओ। उनकी आज्ञा का पालन हुआ। ग्यारह बजे ठाकुर शौचादि के लिये गये। साधु भी पाँच मिनट के लिये बाहर गये। पुनः लौटकर उन्होंने कहा-आज नहीं होगा, चीज हजम नहीं हुई, वह तो गिर गई। कल वस्तु खाकर में पेशाब करूँगा, उसमें ताम्बा भिगोकर आग में तपाना, देखना पक्का सोना हो जायगा। अभी मुझे एक पैसा दो, मुँह में रखूँगा, आग में जलाते ही वह भी स्वर्ण बन जायगा। ऐसा स्वर्ण बनाकर मैं नित्य

देता रहूँगा, तुम बाजार में उसे बेचकर खूब भंडारा लगाओ। साधु ने पैसा मुख में रखा। ठाकुर शौच से लौटकर आसन पर बैठे, तो वह साधु भी धूनी में पैसा तपाने आ बैठा। ठाकुर ने पूछा वह यहाँ क्यों बैठा है, तो पैसे का सोना बनाने की पूरी बात उनसे बताई गई। ठाकुर ने उन्हें धमकाकर बाहर चले जाने को कहा। विधु ने उन्हें धकेलकर बाहर कर दिया। ठाकुर ने कहा-**'ये रासायनिक विद्या में पारंगत साधु हैं। ये संखिया खाकर उसे पित्त में मिलाने की प्रक्रिया जानते हैं। ऐसा कर पाने पर उस पित्त के गुण से, पेशाब में भिगोकर या थूक में मिलाकर ताम्बे को आग में तपाने पर सोना बन जाता है। उनकी इच्छा थी, तुमसे से किसी को लेकर यह विद्या सिखाए। यह बड़ी विपत्तिजनक है। इस ओर एकबार जाने पर धर्मलाभ नहीं होता।'** जो गुरुभ्राता उन्हें परमहंसजी समझ रहे थे, वे सब खूब लज्जित हुए। हम सब दिनभर उनका मजाक उड़ाते रहे।

असाधारण खैपाचाँद।

ठाकुर के साथ मेले में आने के दिन ही रेत पर पड़े एक महात्मा को देखकर ठाकुर ने कहा था-**'ये असाधारण महापुरुष हैं। मस्तक से शुभ्र-ज्योति सूर्य किरणों की भाँति चारों ओर बिखर रही है।'** देख रहा हूँ वे कभी एक दिन के लिये भी ठाकुर का संग नहीं छोड़ते। जब से ठाकुर के साथ हैं किसी। बाहर के व्यक्ति को ठाकुर के पास रात को रहते नहीं देखा। लेकिन यहाँ वे रोज रात को ठाकुर के पास ही रहते हैं, ठाकुर ने भी कोई आपत्ति नहीं की। ठाकुर जिस तरह इनका आदर-सत्कार करते हैं, उससे लगता है ये

ठाकुर के बड़े ही घनिष्ट हैं। काफी कोशिश करके भी हमें इनका कोई परिचय न मिल पाया। इनका कोई निर्दिष्ट आसन भी नहीं है। अन्दर की बात ईश्वर ही जाने, बाहर किसी प्रकार का धर्म चिन्ह, वेशभूषा या अनुष्ठान नहीं देख पाया। माला, तिलक, जटा, विभूति कुछ भी नहीं है। चेहरे पर भी कोई धर्म की छाप नहीं झलकती। नितान्त मजदूर श्रेणी के समान जान पड़ते हैं। पहलवानों की तरह मजबूत, दीर्घकाय, श्यामवर्ण का शरीर है। दाढ़ी मूँछे नहीं हैं, बाल काले हैं, मुखमंडल देखकर लगता है इनकी आयु चालीस-पचास के करीब है। जन समुदाय में संपूर्ण नग्न न रहकर एक फटे मफलर की कौपीन बनाकर पहने रहते हैं। उनके पास एक मात्र जंग लगी लोहे की कड़ाही है, उसी में जल पीते, भोजन करते और उसे ही स्नान-शौचादि के लिये भी काम में लाते है। उसे कभी मांज कर साफ नहीं करते। महात्मा, गृहत्यागी साधुओं में भी समाज की रीति-नीति, आचार-व्यवहार के संबंध में कुछ संस्कार रहते हैं, परन्तु इनमें वह बिल्कुल नहीं है। ठाकुर उनकी अवस्था के बारे में कहते हैं-**'जड़ोन्मत्त पिशाचवत् हैं।'** हम भी यही देख रहे हैं। आश्चर्य की बात यह है, कि हमें उनकी कोई भी बात अप्रिय नहीं लगती, अच्छा ही लगता है। ठाकुर ने इनके संबंध में कहा है-**'ये त्रिकालज्ञ, षडैश्वर्यशाली, देहमुक्त महापुरुष हैं। अपनी इच्छा मात्र से व्योम मार्ग से कहीं भी आ जा सकते हैं। केवल स्वयं ही नही, दो हाथों से और भी दो आदमियों को साथ ले जा सकते हैं। मुझे थोड़े समय में ही श्रीवृंदावन, पुरी, द्वारका, सेतुबंध रामेश्वर, काशी आदि स्थानों में घुमाकर ले आए। प्रेमभक्ति में भी इनकी अवस्था अतुलनीय है। पंचभावों में किसी भी एक को**

इच्छानुरूप वर्तमान रखकर, उसीका संभोग कर सकते हैं।' ये नाना प्रकार के भावों में रहते हैं, इसलिये ठाकुर इन्हें खैपाचाँद कहते हैं। ये प्रतिदिन रात बीतने पर गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिंधु, कावेरी इन सप्तनदियों में स्नान करते है। नेती, धौती इनका नित्यकर्म है। वे पेट की अंतड़ियों को धोकर, बाहर निकालकर साफ कर लेते हैं।

एक दिन देखा पुल के साथ बड़े रास्ते पर पुलिस के साहब घोड़े पर दौड़ रहे हैं। दूर से यह सब देखते ही खैपाचाँद कूदते हुए आए और घोड़ों के साथ दौड़ने लगे। पुलिस ने और जोरों से घोड़ों को तेज दौड़ाया, पर इन्हें पीछे न छोड़ सके। दो-तीन बार पूरे रास्ते के एक छोर से दूसरे छोर तक दौड़कर देख लिया। दौड़ते समय इनका दौड़ने का अन्दाज देखा। सामान्यतः दौड़ते समय व्यक्ति कुछ सामने झुक जाया करता है, पर ये सीधे दौड़ते रहे। इनके पैर कभी जमीन पर छूते, तो कभी नहीं छूते। अधिकांशतः मानो हवा में पैर उठते और उतरते जा रहे हों। अचानक साहब घोड़ा रोककर उतर पड़े। खैपाचाँद भी उनके सामने जाकर हाथ घुमाकर आरती करने लगे। साहब ने लोगों से पूछा ये क्या कर रहे हैं? लोगों ने बताया-आपके भीतर ईश्वर की शक्ति को देखकर उनका ही सम्मान कर रहे हैं। साहब ने उन्हें सलाम किया और कहा बहुत अच्छे महात्मा हैं, सच्चे साधु हैं। मैंने इनकी और भी अद्भुत् क्रियाएँ देखी हैं, पर समय न रहने से लिख न पाया।

दिनभर खैपाचांद कहीं भी रहें,संध्या होते ही ठाकुर के पास आकर, रात तीन बजे तक संग नहीं छोड़ते। जब सब गुरुभ्राता सो जाते, तब ये उठ बैठते और धूनी के सामने घुटने टेककर बैठते।

ठाकुर से न जाने संस्कृत, हिन्दी और कितनी अनजान भाषाओं में बातचीत करते। हाथों को ही पंचदीप की भाँति करके आहा! आहा! कहकर ठाकुर की आरती उतारते और कितनी स्तुति करते हैं। ग्यारह बजे से तीन बजे तक कभी नृत्य, कभी आरती, कभी स्तुति तो कभी क्रन्दन इसी प्रकार रात बीत जाती। कभी तो दिन में भी दौड़कर आते ठाकुर से कुछ कहकर रोने लगते, जमीन पर गिरकर ऐसे छटपटते, मानो बिच्छू ने काट लिया हो। हाथ-पाँव पटकते, जोरों से चिल्लाते, आँसू से उनका वक्ष भीग जाता, शरीर की सारी शिराएँ फूल जातीं। पर न जाने ठाकुर उनकी तरफ देखते भी नहीं। चुपचाप बैठे रहते हैं, कभी-कभी दाहिना हाथ ऊपर कर उसे स्थिर होने को कहते। तब वे उठकर स्थिर हो जाते व पुनः आरती करने लगते, दोहा पढ़ते, नाचते और ठाकुर को लीला-गान सुनाते-'ताता थैया, ताता थैया, वृंदावन में बंसी बाजे, नाचे किशन कन्हैया।' दोहों के अंत में वे 'कहे अर्जुना सुन भई साधो', कहकर ही समाप्त करते। ऐसा लगता कि ये दोहे ये स्वयं रचकर ही गाते हैं। कोई भी दोहा दोहराते नहीं। रोज नए-नए दोहे सुनाते हैं। 'कहे अर्जुना' सुनकर हम लोगों ने उनका नाम अर्जुनदास रखा है। शास्त्र पुराण, उपनिषद् में इनका असमान्य पाण्डित्य है। कोई किसी भी शास्त्र के एक चरण का पाठ करे, तो वे आगे बीस चरणों का पाठ बिना रुके कर जाते हैं। इनके बारे में जितना लिखें तृप्ति नहीं होती, लगता है, कुछ भी न लिख पाया। ये कौन हैं, किस काल के हैं? कुछ नहीं जाना जा सकता। लगता है, प्राचीन काल के कोई ऋषि-मुनि हैं। उन्होंने कहा है-'आजकल तुम लोग जो देख रहे हो, हमारे रामराज्य में वह सब कुछ हमने देखा था।'

रात दो बजे खैपाचाँद आर्तनाद करके रो पड़े। अचानक उनके मर्मभेदी रुदन की आवाज से मैं काँप उठा। रोते हुए वे कहते जा रहे हैं-‘अहा मेरे रामजी हो। तुम्हारे लिये हम त्रेता युग से पड़े हैं, तीन युग बीत गया, हमें अब साक्षात् दर्शन दिया। अब हमको कृपा करो। अब हमको तुम्हारा बना लो।’ मैं चौंक पड़ा, ये त्रेता युग से ठाकुर की कौन सी कृपा के लिये पड़े हैं। ये स्वयं षडैश्वर्यशाली है, इन्हें क्या अभाव है। क्या पाने के लिये ये ठाकुर के पास रोज रोते हैं, व्याकुल रहते हैं? लगता है जीव सृष्टि-स्थिति-प्रलय का अधिकारी हो जाय, तो भी उसे तृप्ति नहीं होती। भगवत्प्राप्ति के बिना उनका पुनरावर्तन होता रहता है। गीता में हैं:-

आब्रह्म भुवनाल्लोका पुनरावर्त्तिनोर्जुनः।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।

अतः लगता है, भगवान के नित्य संग लाभ के लिये खैपाचांद ठाकुर से कृपाभिक्षा कर रहे हैं। इसके बाद सीताराम घोष स्ट्रीट कलकत्ते में ठाकुर के पास खैपाचांद ने दीक्षा ग्रहण की और फिर वे कहाँ चले गए, अब तक पता नहीं चला।

काली कम्बली बाबा: छोटे दादा के लिये काठिया बाबा से ठाकुर की प्रार्थना: ठाकुर की असाधारण सहानुभूति।

सुबह चाय पीकर ठाकुर साधुओं के छत्र की परिक्रमा करके गंगातट के पास काली कमली बाबा के पास पहुँचे। उन्होंने आदरपूर्वक ठाकुर को आसन दिया। उनके बीच कोई बातचीत न हुई वे केवल ठाकुर की ओर चुपचाप देखते रहे। ये ब्रह्मचारी हैं। उम्र

पचीस-छब्बीस की लगती है। ऐसा सुना है वस्तुतः ये वृद्ध हैं, बारह सौ वर्ष व्यतीत कर चुके हैं। कायाकल्प करके उसी देह में हैं। हिमालय बरफान जनशून्य प्रदेश में इनका वास है। नीचे आने पर धनी व्यक्ति विपुल प्रणामी देते हैं, उस धन ये पर्वत प्रदेशों के दुर्गम स्थलों पर रास्ते बनवाते, धर्मशाला बनवाते एवं लोकहित में व्यय करते हैं। स्वयं का कोई आडम्बर नहीं है। उनके पास केवल एक कम्बल है। अधिकतर मौन रहते हैं। उन्हें देखकर हमें बड़ा आनंद आया।

तम्बू लौटते समय ठाकुर रामदास काठिया बाबा के पास कुछ देर बैठे। उनके पास जाकर छोटे दादा को दिखाते हुए ठाकुर ने कहा-**'इन्हें नौकरी मिली है, शीघ्र ही ये जमालपुर चले जाएंगे। आप इन्हें आशीर्वाद दें कि इनका उपार्जन साधुसेवा में व्यय हो।'** काठिया बाबा खूब प्रसन्न होकर छोटे दादा को देखकर आनन्दित होने लगे।

हम सब ग्यारह बजे तम्बू लौट आए। गुरुभ्रातागण कोई साधु दर्शन, कोई किसी काम से बाहर गए। ठाकुर ने मुझसे कहा-**'क्यों ब्रह्मचारी तुमने वह कवच धारण नहीं किया? महात्मा की दी हुई वस्तु अवहेलनापूर्वक यूँ ही रख दिया है। कितनी साधना से वैसी अवस्था मिलती है, वह मात्र धारण करते ही अपना प्रभाव आरंभ कर देगा। धारण क्यों नहीं करते?'** ठाकुर की बात सुनकर भी कुछ कह न पाया। थोड़ा सोच-विचारकर मैंने कहा-इसे ताम्बे के ताबीज में धारण करना पड़ेगा। वह जब शहर जाकर जुटा पाऊँगा, तब जो भी हो करूँगा। ठाकुर मेरी ओर देखकर चुप रहे। उनके मुख से कवच धारण की बात ने भीतर ही भीतर मुझे झकझोर दिया। मैं

ठाकुर के पास बैठ भी न पाया, बाहर चला गया। कल छोटे दादा जमालपुर जाने वाले हैं। अश्विनी और पण्डित महोदय भी कलकत्ता चले जायेंगे। मेला भंग होने के पहले ही अनेक गुरुभाई मेला छोड़कर लौट रहे हैं। सुना है, एक अमरीकी दल भारत के प्रधान साधु-संतों के फोटो लेने आया है। कई महात्माओं का फोटो खींचने के बाद वे हमारी तम्बू की ओर भी आ रहे हैं। यह सुनते ही ठाकुर शौच के लिये चले गए और उन्होंने विधु से कहा-**'यदि यहाँ कोई फोटो लेने के लिये साधु की खोज करें, तो ब्रह्मचारी को खड़ा कर देना।'** मैं बड़ा ही लज्जित हुआ।

आज सुबह से ही बादल छाये हुए हैं। बार-बार बिजली कड़कने से मेलावासी भयभीत हो रहे हैं। ठंड के मारे तम्बू से बाहर जाना संभव नहीं हो रहा है। ठाकुर फलालेन का चोगा पहनकर धूनी के सामने बैठे है, एक मोटा कंबल भी ओढ़े हुए हैं। इस पर भी उनकी ठंड नहीं जा रही है। वे मारे ठंड के काँपने और ठिठुरने लगे। यह देख मैंने पूछा-आप इस तरह काँप रहे हैं, कहीं आपको बुखार तो नहीं आ रहा है? ठाकुर बाहर रेत पर पड़े व्यक्ति की ओर इशारा करके रो पड़े और उन्होंने कहा-यह कम्बल उसे दे आओ। विधुघोष ने किसी गुरुभाई का कम्बल उसे ओढ़ा दिया। साधु खुली रेत पर ठंड में नग्नगात्र पड़ा, अवसन्न हो रहा था, कम्बल पाकर उसकी ठंड मिटी तो इधर ठाकुर का काँपना भी बंद हुआ। किसी भी व्यक्ति के कष्ट को पूरी तरह अपने शरीर पर अनुभव करना, किस असाधारण दया का निदर्शन है, यह कल्पनातीत है। ऐसे परम दयालु का संग हमने पाया है। हमसे भाग्यवान और संसार में कौन है? धन्य हो दयालु ठाकुर! तुम्हारी दया ही हमारा एकमात्र भरोसा

है।

कुंभमेले के आरंभ से ही धनी सेठ, मारवाड़ी लोग लाखों रुपए के कम्बल, रुई के जम्फर, शीत वस्त्र, जलपात्र आदि बड़े-बड़े महन्तों की छावनी में देते जा रहे हैं। अपने लोगों में बाँटकर अवशिष्ट वे दूसरों को बाँट दिया करते हैं। कुछ दिन हुए ठाकुर के पास भी ऐसी गठरियाँ आने लगी हैं। आते ही ठाकुर उन्हें रामदास काठिया बाबा या गंभीरनाथजी के पास और कुछ गरीब साधुओं को भेज देते हैं। अपने हाथ से दान करने के लिये कुछ भी नहीं बचाते। मेले में ठाकुर का नाम महादाता पड़ गया है। हमारी छावनी में प्रार्थियों की भीड़ लगी रहती है। जब तक भंडार में लकड़ी, खाद्य पदार्थ, जलपात्र हैं, तब तक सबको वितरण किया जाता है। न रहने पर भी प्रार्थीगण नहीं मानते।

वासनाहीन साधु: ठाकुर के हाथों दान पाने का आग्रह।

आज एक पवित्र मूर्ति संन्यासी ने आकर ठाकुर से कहा-स्वामीजी, मुझे कृपा करके आप बारह रुपए दें, मुझे जरुरत है। ठाकुर ने महेन्द्र बाबू से पूछा रुपए हैं या नहीं। महेन्द्र बाबू ने कहा कि एक भी पैसा नहीं है।

संन्यासी से ठाकुर ने कहा-**‘आज कुछ भी नहीं हैं।’** संन्यासी-आपके पास है या नहीं, यह जान कर तो मैंने नहीं माँगा। आपका भंडार अक्षय है, उसमें कभी अभाव नहीं होता, यह मैं जानता हूँ। आप चाहें तो दे सकते हैं।

ठाकुर-**‘आपके प्रारब्ध में न हो तो मैं कैसे दूँ?’** संन्यासी-मेरा

प्रारब्ध? आपका दर्शन पाया, उसके बाद भी मेरा प्रारब्ध है? अच्छा तो आप कह दीजिए, आपके दर्शन से भी मेरा प्रारब्ध नहीं कटा, तो मैं चला जाऊँगा।

तभी ठाकुर ने महेन्द्र बाबू से कहा-**'कहीं से उधार लेकर भी ये जो चाहते हैं, इन्हें दे दीजिए।'** संन्यासी को कहीं से लाकर रुपए दिए गए। वे संतुष्ट होकर चले गए। उनके जाने के बाद सतीश ने ठाकुर से कहा-ये संन्यासी हैं पर, अर्थ पर इतनी आसक्ति क्यों है?

ठाकुर-**'इनमें वासना का लेशमात्र भी नहीं है। ये कामना-वासना से काफी ऊपर हैं। उन्होंने जो रुपयों के लिए जिद की, तो साधु के पास साधु ऐसा हठ करते हैं।'** सतीश के संन्यासी की उम्र पूछने पर ठाकुर ने कहा-**'उनकी उम्र बहुत है।'** सतीश-चालीस के आसपास? ठाकुर ने कहा-**'और अधिक।'** सतीश ने कहा-फिर अस्सी-नब्बे के लगभग? ठाकुर ने कहा-**'और अधिक।'** सतीश-तो फिर वे इतने कम बीस-पचीस वर्ष के क्यों लगते हैं? ठाकुर-**'बीस-बाइस वर्ष की आयु में ये उर्ध्वरेता हुए थे, जिसके कारण इतने अल्पवयस्क दिखते हैं। साधक जिस आयु में उर्ध्वरेता हो जाय, उसी के अनुरूप हमेशा रह जाते हैं। इनमें क्षय या वृद्धि कुछ भी नहीं होती।'** ठाकुर की बातों से समझ गया, उन्हें रुपयों का प्रयोजन कुछ भी न था। ठाकुर के हाथों दान पाने की इच्छा से आग्रह कर रहे थे। हठ करके भी ठाकुर के हाथों भिक्षा लेकर मानो वे कृतार्थ हो गए।

महापुरुषों का विचरण काल: प्रकृति की पूजा।

आज ठाकुर के साथ तांत्रिकों के अड्डे पर जाकर बहुत से

भैरव-भैरवियों के दर्शन कर आया। रात को ठाकुर ने स्वयं प्रवृत्त होकर कई उपदेश दिए। रात को एक से तीन बजे के बीच उठकर नाम जप करने को तो ठाकुर रोज ही कहते हैं, परन्तु वह किसी दिन यत्न करके नहीं कर पा रहा हूँ। आज ठाकुर ने कहा-**'तुम लोग सारे दिन-रात नाम न करो, तो सिर्फ रात को एक बजे से तीन बजे तक नाम जप कर सको, तो जान पाओगे इस साधन प्रणाली के भीतर क्या क्या है।'** मैंने पूछा-रात को जैसे महापुरुषों का यह विचरण का काल है, वैसे महात्मा, ऋषियों का क्या दिन में विचरण काल नहीं होता? ठाकुर-**'दिन में भी है, एक दण्ड सूर्योदय के पहले, एक दण्ड एक पहर दिन निकलने के बाद, एक दण्ड ढाई प्रहर के बाद, एक दण्ड सूर्यास्त के पहले। ये सभी समय साधन-भजन के लिए शुभ क्षण है।'**

इसके बाद वे तांत्रिक भैरव-भैरवियों के बारे में भी कई बातें कहने लगे। ठाकुर ने कहा-**'युवती स्त्री को नग्न करके सामने स्थापित करके स्त्री चिह्न में भगवती या इष्टदेव की प्रतिष्ठा करके मातृज्ञान से पूजा करना होता है। पूजा करते समय काम भाव नहीं आना चाहिए, इससे अपराध होता है। इसलिये साधक स्त्री से विवाह कर लेते है, तब अपराध नहीं होता। जो इस स्थान में भगवती व मातृभाव से स्थिर मति होकर पूजा कर सकते हैं वे लोग साधारण नहीं। उनके इस विधिवत् पूजा करने में सफल होने पर ही वे कामजयी हो जाते हैं। स्त्री दर्शन से उनमें काम भावना नहीं जागती। इस योनि से माँ भगवती ने अखिल ब्रह्माण्ड की सृष्टि की है-यह भाव रखकर वे पूजा करते हैं।'**

मैंने पूछा-हमारे साधन-पथ में ऐसे स्त्री पूजा का विधान है क्या?

ठाकुर-**'हाँ, है। तुम लोग साधन-भजन नहीं करते। करो तो जान पाओगे, इसके भीतर क्या क्या है'** मैंने पूछा-हमारे साधन में कब स्त्री पूजा करना होता है?

ठाकुर-**"नाम करते-करते जब एक-एक चक्र भेदन होता है, तो उन चक्रों में पद्म प्रकट होते हैं। उन पद्मों में एक कुटीर होता है। कुटीर के द्वार पर एक रमणीय, रूपवती देवी खड़ी होती है। प्रवेश में बाधा देकर वे कहती हैं, 'पहले हमसे रमण करो, तब भीतर प्रवेश करने दूँगी।' यह कहकर वे विविध भाव-भंगिमा करके परीक्षा लेती हैं। यदि उनकी भाव भंगिमा में भूलकर रमण करने की सोचे, तो वहीं बद्ध हो जाना पड़ता है, और यदि इसमें न भूलकर देवी की स्तुति करके कहा जाय-'माँ मुझ पर दया करो ताकि मेरा यथार्थ कल्याण हो। आशीर्वाद दो कि मुझे प्रेम-भक्ति की प्राप्ति हो सके।' ऐसा कहने पर वे रास्ता छोड़ देती हैं। इस चक्र को भेदने पर, दूसरे चक्र में भी द्वार पर ऐसी ही सुंदरियाँ आकर रास्ता रोकती तथा और भी कठिन परीक्षा लेती हैं। सभी की मातृभाव से पूजा, स्तुति एवं नमस्कार करके, आशीर्वाद लेकर एक-एक चक्र भेदकर भीतर प्रवेश करते जाना पड़ता है। इन सब प्रलोभनों का अतिक्रमण सहज नहीं है। एकमात्र गुरुकृपा से संभव होता है।"** मैं-इस तरह देवियों का प्रलोभन कब तक चलता है? क्या सभी चक्रों के द्वार पर ऐसे प्रलोभन हैं?

ठाकुर-**'सभी चक्रों के द्वार पर प्रलोभन हैं। चक्र तो बहत्तर हजार हैं, उनमें से प्रमुख दस हैं। इन दस का भेद कर लेने पर जीवन का कार्य सफल हो जाता है। बहत्तर हजार चक्रों को एक**

जीवन में भेद पाना बहुत ही कम लोगों के भाग्य में हो पाता है।' मैं-इन चक्रों के भेद किए बिना क्या भगवान को नहीं पाया जा सकता? सभी को क्या ये चक्र भेद करने ही पड़ते हैं? ठाकुर-**'जो प्रणाली लेकर चलते हैं, उन्हें साधन पथ में यह सब कुछ करना ही पड़ता है। जो भगवान की कृपा पर ही निर्भर हैं, एकमात्र उन्हें ही पाना चाहते हैं, उन्हें प्रलोभन में नहीं पड़ना पड़ता। भगवान को पाकर, वे ये सब कुछ प्रत्यक्ष करते हैं। किंतु कृपा से जो पार होते हैं, भगवान उन्हें विभिन्न अवस्थाओं में डालकर पक्का कर लेते हैं।'**

ठाकुर का कमलकामिनी के दर्शन। मौनीबाबा का पत्र ठाकुर का उत्तर। मौनीबाबा की दीक्षा प्रार्थना व प्राप्ति।

आज प्रातः चाय पीने के बाद ठाकुर के पास एक दीर्घकाय, श्यामवर्ण, जटाधारी संन्यासी ने आकर ठाकुर को प्रणाम किया एवं धूनी के पास बैठकर ठाकुर के हाथों में एक पत्र देकर कहा-यह पत्र आपको मौनी बाबा ने दिया है। ठाकुर-**'मौनी बाबा कैसे हैं?'** पूछने पर उन्होंने कहा अस्वस्थ होने के कारण वे नहीं आ पाए। वे बड़े महात्मा हैं। मैंने ऐसा महात्मा कहीं नहीं देखा। उन्होंने आहार त्याग दिया है। निद्रा पर विजय प्राप्त कर ली है। एकासन में दिनरात बैठे रहते हैं। इशारे से भी किसी से कुछ नहीं कहते। सर्वदा ध्यानमग्न रहते हैं। अब शायद अधिक दिन जीवित न रहें। यह कहकर वे चले गए। ठाकुर ने पत्र पढ़ा, पढ़ने में काफी देर लगी, क्योकि पत्र तीन कागजों पर लिखा हुआ था। पत्र पढ़कर ठाकुर चुपचाप बैठे रहे।

फिर पत्र को मोड़कर मुझे देते हुए उन्होंने कहा-**'यह पत्र सावधानीपूर्वक रख दो, बाद में काम आएगा।'** मैंने वह झोले में रख दिया।

ठाकुर मौनीबाबा की बड़ी प्रशंसा करने लगे, जिसे सुनकर समझ गया कि मौनी बाबा साधारण व्यक्ति नहीं हैं। ठाकुर जब हिजलीकाँथी में ब्राह्म धर्म प्रचारार्थ गए थे, तो उनके साथ ब्राह्म धर्ममतावलम्बी, सत्यनिष्ठ, उत्साही युवक श्री प्यारीलाल घोष भी थे। ठाकुर भ्रमण करते हुए एक दिन एक बड़े तालाब के किनारे पहुँचे। तालाब में सर्वत्र लाल कमल खिले हुए थे। ठाकुर एकटक उस ओर देख रहे थे। उन्हें कमल के ऊपर, कामिनी रूप में कमला देवी के दर्शन हुए। विमुग्ध होकर वे कमल को पकड़ने तालाब में कूद पड़े। तैरकर कमल को पकड़ते ही उनकी संज्ञा लुप्त हो गई। प्यारीलाल यह सब देखकर, तालाब में कूद पड़े और ठाकुर को तट पर खींचकर ले आए। प्यारीलाल में भी ऐसी शक्ति संचारित हुई कि वे भी मूर्च्छित हो गए। काफी देर बाद दोनों सचेत हुए। ठाकुर की मुट्ठी में तब भी वही कमल था। उसे लेकर ठाकुर लौट आए।

उसके कुछ साल बाद से ही प्यारीलालजी भगवत् दर्शन के लिए व्याकुल और अधीर हो उठे। निर्जन पर्वत पर कठोर तप एवं भगवान की उपासना जी भरकर की जा सकती है, ऐसा सोचकर वे आज से सात-आठ वर्ष पहले लोकसंग त्यागकर कहीं चले गए थे। अनेकों पर्वत, निर्जन वनों में तीव्र तपस्या करते रहे। अभी वे नर्मदा तट के ओंकारेश्वर में है। गत फाल्गुन माह में उन्होंने ठाकुर को गेण्डारिया में पत्र दिया था, उसमें लिखा था-'निर्जन पर्वतों पर इतने दिन साधन-भजन एवं तपस्या करके बिताया। उससे काफी

लाभान्वित भी हुआ। मैं अब मौन रहता हूँ। आहार के नाम पर केवल आधा पाव दूध दिन भर में लेता हूँ। एकासन में चौबीस घंटे बैठा रहता हूँ। कभी-कभी कृपा करके शंकरजी दर्शन दे जाते हैं। व्यासदेव भी उपदेश दे जाते हैं। यह सब तो हुआ, पर जिनके लिये आया, वे कहाँ है? उनका तो कोई पता तक नहीं मिलता। सभी कहते हैं, सद्गुरु आश्रय के बिना एक कदम भी आगे न बढ़ पाओगे। कैसे मुझे परम पिता के दर्शन प्राप्त हों, कृपा करके आप ही उपदेश दें। मुझे अब तक ब्रह्मदर्शन नहीं हुआ है।

पत्र पढ़कर ठाकुर ने स्वयं उसका उत्तर लिखा, यथा-**'बाहर धर्मलाभ के लिये जो प्रयोजन है, वह सब हो गया है। साक्षात् सद्गुरु से दीक्षित न होने पर, परमपिता के दर्शन का अधिकार नहीं मिलता। ध्रुव पाँच वर्ष की उम्र में 'कहाँ हो पद्मपलाश लोचन' कहकर वन में रोता रहा, किंतु गुरुकरण के पहले दर्शन न मिल सके। ईसा ने जॉन द बैप्टिस्ट के पास, श्री चैतन्य महाप्रभु ने ईश्वर पुरी के पास दीक्षा ग्रहण की थी। मैं यह निश्चित जान गया हूँ कि गुरुकरण बिना ब्रह्म दर्शन नहीं होता। आहार छूट जायगा, निद्रा जायगी, मौन रहेंगे, लोग साधु जानकर भक्ति भी करेंगे, पर इससे यथार्थ वस्तु लाभ नहीं होगा। यदि ब्रह्म दर्शन चाहते हैं, तो पहले अन्तः करण के पूर्व संस्कार मिटा दीजिए।'**

'क्या सत्य है, क्या असत्य, यह आप नहीं जानते। पूर्व शिक्षा को सत्य मानते हैं, पर वह भी सत्य नहीं है। ब्रह्म दर्शन से जब यथार्थ ज्ञान उदित होगा, तभी एक-एक करके सत्य का ज्ञान होगा। गुरुकरण के बाद जब सभी वासनाओं का अंत

होगा, तभी दर्शन होंगे। अन्तःकरण में जो भी वासना हो, वह तो प्राप्त होगी, परब्रह्म की प्राप्ति नहीं होगी। धर्म प्रचार की वासना भी छोड़नी होगी। अपनी इच्छा से कोई भी कार्य न करें। जब तक अपनी इच्छा है, तब तक ब्रह्म का सहवास बहुत दूर है। आपका पत्र पाकर अच्छा लगा। मनुष्य अपने प्रयत्न से जो कुछ कर सकता है, वह सब आपने किया। अब आगे गुरुकरण के बिना अग्रसर नहीं हो पाएंगे। भगवान के सभी कार्यों का एक नियम है। बाहरी जगत का कोई कार्य जैसे बिना नियम से नहीं होता, वैसे ही अन्तर्जगत का भी कोई कार्य बिना नियम के नहीं हुआ करता। ब्रह्मदर्शन के लिये सद्गुरु का आश्रय अकाट्य नियम है। आपको बहुत स्नेह करता हूँ, इसीलिये यह सब लिख दिया है।' इस पत्रोत्तर के बाद ठाकुर मौनी बाबा का कोई संदेश न पा सके। अभी जो पत्र मौनी बाबा ने भेजा है, वह इस प्रकार है।

मौनी बाबा का पत्र। ब्रह्म कृपाहि केवलम्।

पूजनीय देव, मैं बाहर से आपका विधिवत् या आश्रित हुआ शिष्य तो नहीं, पर भीतर आपसे कैसा योग है, वह अन्तर्यामी एवं आप ही जानते हैं। मैं उन्हीं के प्रदत्त ज्ञान द्वारा स्पष्ट जान पाया हूँ, कि आप और वे एक ही हैं, अर्थात् वे ही आपकी अन्तरात्मा हैं। वे परात्पर परमात्मा ही, आपके व मेरे ज्ञान, प्रेम व शक्ति हैं। इसीलिये दयामय हरि ने कृपा करके, अत्यन्त कठिन आघात देकर, मुझे शिक्षा दी है-कोई कितना भी बड़ा क्यों न हो, परमात्मा के सिवा दूसरा कोई ज्ञान, प्रेम व शक्ति नहीं। मेरा विश्वास है, आप सब कुछ जानते हैं। मैं अज्ञान-अधंकार से आच्छन्न हूँ। अपने ही मन के

संतोष के लिये आपको लिख रहा हूँ। बाहर से आपका शिष्य न सही, पर भीतर का जो बंधन है, उसे न आप तोड़ सकते हैं और न ही मैं। इहलोक में न हो तो परलोक में आपको दर्शन देना ही पड़ेगा। अब मेरे विषय में सुनिये-घर से निकलकर मैं जब अनुसूया माँ के आश्रम में था, तब एक नहीं, कई दिन हृदय की शून्यता और कुत्सित आत्मा के आक्रमण से किसी वस्तु का स्वरूप ठीक नहीं देखता था। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट सभी को अश्लीलता पूर्ण देखता था। आँखे बंद कर उपासना में बैठता तो भी अश्लील चेहरे चारों ओर नाचते। उस समय दीनबंधु के अलावा मेरा और कोई न था। आज भी उनके तथा उन्हीं के भेजे गए व्यक्तियों को छोड़, मेरा इस निर्जन स्थान में कोई नहीं है। तब से आज तक रोते-रोते ही समय बीता है। परम पिता की कृपा से ही मैं जीवित हूँ। इस समय मेरी ऐसी भी अवस्था न रही, कि परम पिता के चरणों में पड़कर रो सकूँ। आश्रम में जब सब आनन्द मनाते, मैं नदी तट के पत्थर पर बैठकर रोता हुआ यही देखता हूँ, कि मैं तो अश्लील भावों से युक्त पंचभूत का शरीर मात्र हूँ, और कुछ भी नहीं। फिर एक दिन प्रार्थना कर पाया, प्रार्थना से उठते ही अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ा। परमात्मा ने कब तक मुझे इस हाल में रखा नहीं जानता। उस दिन से मैंने जाना-मैं कुछ भी नहीं, वे ही सब कुछ हैं। कभी ऐसा भी हुआ कि मैं अपने ही हृदय में प्रविष्ट होकर प्रभु का नाम करने गया तो अश्लील भाषा मुख से निकली, फिर उन्हीं के लिये रोने चला, तो मेरे हृदय में वे अट्टहास करने लगे। पाँच वर्षों तक उन्होंने इतनी कृपा की कि मैं वह कह नहीं सकता। चित्रकूट में जब पीड़ित था, कितने ही रूपों में उन्हें देखा। आपको क्या कहूँ, आप तो सभी कुछ

जानते हैं। अब मुझे इस अवस्था में वे ही ले आए हैं। मेरा अहंकार चूर्ण किया है। मैं उनके ज्ञान, प्रेम, शक्ति का एक प्रकाश मात्र हूँ। प्रतिदिन की कई घटनाओं से मुझे वे यही समझा रहे हैं, कि वे ही मेरे रक्षाकर्ता, पालनकर्ता, विधानकर्ता, शिक्षादाता, उपदेष्टा और मेरे सर्वस्व हैं। मेरा यह ज्ञान दृढ़तर होता जा रहा है। फलाकांक्षा उन्होंने चूर्ण कर दिया है। उन्होंने ही मेरे लिए सुरम्य तपस्या का स्थान बनाया है। मेरे हृदय की अपवित्रता दिनोंदिन उन्होंने ही मिटाई है, निद्रा का हरणं किया है, मेरे चंचल मन को ठीक करते जा रहे हैं। उन्होंने ही बद्ध पद्मासन में मेरा आसन निश्चित किया है। मेरे मन में उद्वेग नहीं रहा। केवल भगवान का नाम गान करने, भक्तों का संग करने, प्रेम तरंग में डूबने तथा धर्मप्रचार करने की प्रवृत्ति है। पाँच वर्षों में मैंने साक्षात् संबंध से जो अपूर्व करुणा प्राप्त की है, उसे बताने की प्रवृत्ति कभी-कभी मन को चंचल कर देती है। अभी मैं आपसे यही जानना चाहता हूँ कि मेरे प्रति पिता का क्या आदेश है? क्या करने पर मैं उनमें निमग्न रह सकूँगा? मैं यह सब जानना चाहता हूँ। आप ध्यान में मेरा सब हित-अहित जान सकते हैं। आपके सिवा और किसी पर मैं विश्वास भी नहीं कर पाता। आज तक ईश्वरेच्छा के अलावा गुरु रूप में किसी को स्वीकार नहीं कर पाया एवं स्वयं परमात्मा न दें, तो किसी का आश्रय ग्रहण करने की इच्छा भी नहीं हैं। इन पाँच वर्षों में कितने ही दिन मैं आपके लिये रोता रहा। पर कहाँ? आपने तो अपनी इस संतान को दर्शन तक नहीं दिया। (दूसरे पन्ने पर)

मूल बात यह है, कि देवाधिदेव भगवान को ज्ञान नेत्रों से उन्हीं की कृपा से अपनी अन्तरात्मा में इतना स्पष्ट देख रहा हूँ, अनुभव

करता हूँ। अब कैसे, उन्हें ध्यानगोचर कर उनका आदेश सुन पाऊँगा? परम पिता का आदेश सुनने का अधिकार कैसे पा सकूँगा? मैं सर्वस्व रूप से अपने पिता का हूँ, उन्होंने ही बड़े जतन से मुझे अपना बना लिया है। अभी आपके चरणों में रोकर यही विनती करता हूँ, कि कैसे उन्हें पाऊँगा बता दीजिए। ईसा, मूसा, श्री चैतन्य, नानकदेव जैसे महात्मा ज्ञानी पुरुषों के पास भी नित्य आँसू बहाता हूँ, पर वे भी कुछ नहीं कहते। आपके पास रोता हूँ, पर आप भी चुपचाप हैं। समझ गया हूँ, कि परमपिता की जब तक दया न हो, तब तक कोई दया नहीं करता। मूल स्त्रोत से जब तक दया का स्त्रोत न बहे, तब तक सभी स्त्रोत बंद रहते हैं। मेरे शरीर की जैसी दशा है, उससे देशविदेश गुरु ढूँढ़ते फिरना संभव नहीं। आज कल सद्गुरु पाना भी कठिन है। आपके अलावा और किसी पर विश्वास भी नहीं कर पाता। मूल बात यह है, कि आप ध्यान करके, सब जानकर, मेरा कर्तव्य निर्देशित न करें, तो यहीं देह त्याग कर ईश्वर के पास चला जाऊँगा। परम पिता व उनके भक्त एक ही है। यह सोचकर, आपको जो ठीक लगे कीजिए। मैं आपकी ही संतान हूँ। और अधिक लिखना व्यर्थ है। आपकी आज्ञाकारी संतान-प्यारी लाल (मौनीबाबा)

(अन्य एक कागज पर)

प्रायः ढाई वर्ष हुए मौनव्रत ग्रहण किया हूँ। गीताजी, ब्राह्मधर्म उपनिषद, बाइबिल पाठ करना-दिन में एक बार दुग्ध पान व शौचादि यही मेरे नित्य कर्म हैं, अन्य और कुछ कर्म नहीं। शयन करके निद्रा का परित्याग करने के यत्न में प्रायः सफल भी हो रहा हूँ। सब कुछ पिता ही करवा रहे हैं, परन्तु जिनके लिये यह सब

करना-वे कहाँ हैं? आपको ज्ञात है, इसी कारण लिखा। मौनी बाबा, भैरवगढ़ पो. मोइनीहाटा, ओंकार जी, निमाड़, खंडवा।

कोई हिन्दी भजन की एक पुस्तक दें, तो चिर कृतज्ञ रहूँगा।

ठाकुर मौनीबाबा का पत्र पढ़कर उनके बारे में बहुत सी बातें बताते रहे। मौनी बाबा अब ठाकुर के पास दीक्षाप्रार्थी हैं, पर वे बहुत बीमार हैं। ठाकुर के पास आने की शक्ति नहीं है। अतएव ठाकुर ने कहा-**'मुझे ओंकारनाथ जाना पड़ेगा।'** कुछ देर तक ठाकुर आँखें बंद करके एक ही अवस्था में बैठे रहे। दो दिन बाद मौका पाकर मैंने पूछा-आप ओंकारनाथ कब जा रहे हैं? ठाकुर जरा हँसकर बोले-**'उन्हें दीक्षा मिल गई है, अब जाने की जरुरत नहीं हैं।'**

महाविष्णुजी का संकीर्तन, भाव तरंग: नित्यानंद प्रभु का अकस्मात् आविर्भाव।

जब से हम मेले में आए हैं, कितने ही गुरुभ्राता आए, कई वापस भी चले गये। भागलपुर से महाविष्णु बाबू आ पहुँचे। ठाकुर को उनका गायन सुनना बहुत ही अच्छा लगता है। ठाकुर चाय पीकर स्थिर होकर आसन पर बैठे। गुरुभ्राता उन्हें तीन ओर से घेरकर बैठे हैं। कोई नाम जप में ध्यान मग्न है, तो कोई अपलक ठाकुर को ही निहारता जा रहा है। महाविष्णुजी ने स्वाभाविक सुमधुर कंठ में स्वरचित गायन प्रारंभ किया-साजो भाई सब मिले.......भाश हरिदास हरिनामे।। भावार्थ है-हरिनाम से सारे जग को मधुर भाव में डुबो दो। इस अमृत पान से जीवन धन्य हो जाये, इस पावन प्रयाग संगम में, श्री गुरु गोविंद के साथ ऐसा सौभाग्य फिर मिले न मिले। बाहें फैलाकर उस दीनबंधु पतितपावन को

पुकारो, जिस तरह ध्रुव-प्रहलाद ने पुकारा था। उन्हें नाम के गुण से जल और अग्नि मार न सके। विषय त्यागकर, मान-अभिमान छोड़, विनम्र होकर हरि का ही दिनरात भजन करो।

मृदंग करताल बज उठे। गुरुभ्राता कीर्तन में निमग्न हो उठे। वे उच्च स्वर में गाते, हरिध्वनि करते और नाचते रहे। कीर्तन की ध्वनि सुनकर आसपास के साधु-संन्यासी दौड़कर आये, वे छावनी के चारों ओर से देखने लगे। गुरुभ्राताओं का भाव तरंग देखकर सब विस्मयपूर्वक खड़े रहे। ठाकुर कुछ देर बैठे रहे, फिर कूदकर आसन से उठ पड़े। कंपित कलेवर ठाकुर दाहिना हाथ ऊपर उठाकर, ऊपर देखकर **'जय शचीनंदन! जय शची नंदन!'** कहते हुए भावाविष्ट होकर नृत्य करने लगे। उनका मुख आरक्तिम हो उठा। जटाएँ काँपती रही, शरीर का आयतन बढ़कर प्रकाण्ड हो गया, जिसमें न जाने कितने सात्त्विक भावों का प्रकाश सभी ने देखा। भक्त श्रीधर मधुर नृत्य करते हुए, उच्चस्वर से हरिध्वनि करके, संज्ञाशून्य हो गए। विधु बाबू व महेन्द्र बाबू भी आहा! वाह! कहते हुए गर्जन, हुँकार करते जाते। आज संकीर्तन के आनंद कोलाहल में सभी एकाकार हो उठे। ठाकुर सामने की ओर देखकर गद्गद् कंठ से **'अवधूत! अवधूत!'** कहकर चिल्लाते जाते। उस समय हमने देखा एक दीर्घकाय, मुण्डित मस्तक, श्यामवर्ण, नग्नगात्र संन्यासी ठाकुर के सामने धूनी के पास, बाहें फैलाए खड़े हैं। वे कुछ मिनटों बाद, बाहर नित्यानंद महाप्रभु की मूर्ति के गले की माला लेकर आए और ठाकुर के गले में पहनाकर कहीं अदृश्य हो गए। कीर्तन के समय, ठाकुर आसन से नीचे नहीं उतरे। संकीर्तन समाप्त हुआ। तम्बू में ठाकुर अपने आसन पर स्थिर होकर बैठे। योगजीवन ने पूछा-

कीर्तन में तुम्हारे अवधूत अवधूत कहने पर एक साधु धूनी के पास हाथ बढ़ाए खड़े थे, उन्होंने जाकर नित्यानंद महाप्रभु के गले की माला लाकर, तुम्हारे गले में डाली, कीर्तन के बीच से ही वे अदृश्य हो गए, वे कौन थे? ठाकुर-**'तुम सबने उन्हें देखा है क्या? तुम सब भाग्यवान हो। स्वयं नित्यानंद महाप्रभु स्थूल देह में आविर्भूत हुए थे। अपना सच्चिदानन्द रूप भी उन्होंने मुझे दिखाया।'** योगजीवन-वे दो-तीन मिनट से अधिक नहीं ठहरे। ठाकुर-**'इतना ही यथेष्ट है। इतनी देर भी क्या वे रुकते हैं?'**

कुंभमेले का अंतिम स्नान।

आज चौबीस माघ, कुंभ के अंतिम स्नान का दिन है। सभी संप्रदायों के साधु-संन्यासी, वैष्णव, उदासी, धर्मार्थीगण कुंभ के अंतिम स्नान के लिए अपने-अपने संप्रदाय के अनुकूल वेशभूषा, माला, तिलक से प्रातः से सजकर तैयार हुए। प्रसन्न चित्त, इष्टदेव का स्मरण करते हुए निशान, झंडे, पताका, अस्त्रादि लेकर स्नानार्थी उपस्थित हुए। हजारों साधु झाँझ, मंजीरा, मृदंग, ढोल नगाड़े, बिगुल, भेरी, शंखनाद करके चारों दिशाओं को कम्पित करने लगे। उनके मन में उत्साह उमंग भरा है। बारंबार भगवत् नाम की जय-जयकार करते हुए साधुओं की कतारें, सेतु की ओर बढ़ने लगी। क्रम से नागा, उदासी, वैष्णव, संन्यासीगण त्रिवेणी संगम पर स्नान संपन्न किए। पहले कुंभ स्नान कौन सा संप्रदाय करेगा, इस वाद-विवाद में विकट समस्या व मार-काट तक हो जाया करती थी। इस बार ऐसा कुछ नहीं हुआ। परम आनंदपूर्वक संन्यासी स्नान संपन्न कर अपने अपने आसनों को चले गए। साधु संत पूरे माघ

माह संगम में व्यतीत करने के लिये कुछ दिन और मेले में रुके। ठाकुर को परमहंसजी ने जाने को मना किया, इसलिये वे त्रिवेणी संगम स्नान के लिये नहीं गए।

आज तीस माघ, माघ संक्राति। प्रातः सूर्योदय होते ही साधु संत त्रिवेणी स्नान करके, अपने-अपने छत्र पर लौटे। दोपहर दो बजे तक स्नान संपन्न हो गया। आज मानो किसी में उत्साह प्रफुल्लता या तेज न रह गया हो। सबके मुख मलिन और विषादपूर्ण हैं। विभिन्न संप्रदायों ने सम्मिलित होकर जिस क्षेत्र को ध्यान, भजन, पूजन, उपासना एवं आराधना से बैकुण्ठ तुल्य बना दिया था, अब श्मशान सा शून्य हो जायगा। सारे विरोध भूलकर, आज सभी दल के साधु आपस में दण्डवत् करके, अश्रुपूर्ण नेत्रों से विदा ग्रहण करते गए।

आज सुबह सरकारी आदेश में भी कहा गया, कि तीन दिन के भीतर इस भूभाग को खाली कर दिया जाय। सभी साधु अपना सामान, तम्बू, छावनी समेटने लगे। खाद्य सामग्रियाँ बोरों में भरकर उत्तर की ओर चले। वहाँ माह भर से ऊँट, घोड़े, सामान ढोने के लिये तैयार हैं। कोई-कोई दल आज पैदल लौट गए। हम भी आज ठाकुर के साथ शहर जाने के लिये नौ बजे तैयार हुए।

तम्बू से निकलकर ठाकुर ने श्री महाप्रभु व नित्यानंद महाप्रभु के विग्रहों को साष्टांग प्रणाम किया और कहा-**'मिट्टी की प्रतिमाएँ हैं, अंग हानि होने का भय है, अतः सबसे पहले इनका त्रिवेणी संगम में विसर्जन कर आओ।'** ठाकुर के आदेशानुसार विग्रहों का विसर्जन किया गया। हम ठाकुर के साथ पुल की ओर बढ़े। ठाकुर पीछे मुड़े और इस स्थल पर कितने ही धर्मार्थियों का आवागमन

पूरे कुंभ मेले के काल में होता रहा, यह स्मरण कर वहाँ साष्टांग प्रणाम करके, रोते हुए धूल में लोटने लगे। हमने भी साष्टांग प्रणाम किया। दस बजे हम श्री राम यादव बागची के घर पहुँचे। मध्याह्न भोजन के बाद शाहगंज के मकान में ठाकुर के साथ जा पहुँचे।

खैपाचाँद का प्रस्थान: पहाड़ी बाबा।

शाहगंज का मकान छोटा पड़ता था, इसलिये हम दारागंज के एक बड़े, अच्छे मकान में ठाकुर को ले आए। अभी भी ठाकुर के साथ हम तीस-पैंतीस लोग हैं। मेले से लौटते समय खैपाचाँद घुटने टेक, हाथ जोड़कर रोते हुए ठाकुर की स्तुति करने लगे। ठाकुर ने कहा-**'खैपाचाँद, यदि तुम्हारी इच्छा हुई तो तुम भी हमारे साथ जा सकते हो। हम जो खाते हैं, वही खाना, हम जैसा रहते हैं-रहना।'** सुनकर वे बड़े संतुष्ट होकर बोले-वाह! आपने तो मेरे मन की बात कह दी। थोड़ी दूर साथ आकर, वे कहाँ अदृश्य हो गए, कोई न जान पाया। उनके बिना हम सबको बुरा लग रहा था, मानो उन्होंने सब सूना कर दिया हो।

बद्रिकाश्रम से भी काफी ऊपर बरफान प्रदेशवासी पहाड़ी बाबा, अत्यन्त प्राचीन महात्मा भी हमारे साथ हैं। वे इतने बड़े महात्मा, परन्तु उनसे मेलजोल करने में हमें कोई संकोच नहीं होता। बिल्कुल बालकवत् स्वभाव है। कुछ दिन से खीर, मिष्ठान्न खाकर बीमार पड़ गए हैं। ठाकुर ने इनके बारे में कहा-**'ये पर्वतवासी हैं, यह सब कभी नहीं खाते। फल, मूल, कंद ये ही उनका आहार है। जिनको जिस वस्तु का अभ्यास न हो, वह उन्हें नहीं देना चाहिये। इससे हानि करना ही होता है। पहाड़ी**

बाबा को खीर, मिष्ठान्न मत दिया करो।'

ठाकुर की अभयवाणी।

ठाकुर के चाय पीते समय कमरा निर्जन रहता है। दूसरे गुरुभ्राता पृथक् कमरे में चाय पीते हैं। चाय पीकर ठाकुर ने मुझसे कहा-**'ब्रह्मचारी, महापुरुष का दिया हुआ कवच तुमने धारण नहीं किया? यूँ ही रख दिया है?'**
ठाकुर की बातें मुझे चुभ सी गई। मैं तुंरत झोले से उस कवच को निकालकर ठाकुर के सामने ही रास्ते पर फेंक दिया। मैंने रोते-रोते ठाकुर से कहा-आपने कृपा करके मुझे ग्रहण किया है। मेरी कैसी दुर्मति हुई कि दूसरों की दी हुई वस्तु ग्रहण करके अपराधी हुआ। मैं क्या करूँ बताइए? मेरी बातें सुनकर ठाकुर का मुख लाल हो उठा, नेत्र छलकने लगे। स्नेह भरी दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए उन्होंने कहा-**'दूसरे किसी तरफ देखने की जरुरत नहीं, जो कुछ प्रयोजन होगा,वह यहीं से प्राप्त होगा।'** ठाकुर की बात सुनकर मेरा मन शीतल हो गया। स्थिर होकर नाम जप करने लगा। शरीर मन हल्का हो गया, मानो कोई बोझ उतर गया हो, अब जाकर मेरी रक्षा हुई।

इतने में गुरुभ्रातागण आ गए। ठाकुर उनसे कुंभमेले के साधुओं की साधना, तपस्या व नियम, निष्ठा के बारे में बातचीत करने लगे। ठाकुर से गुरुभ्राताओं ने व्याकुल होकर कहा-आपने हमें कृपा करके दुर्लभ साधन दिया है। किंतु साधन-भजन तो हम कुछ भी नहीं कर पाते। कर पाने का भरोसा भी नहीं है। हमारी क्या गति होगी? ठाकुर ने उनकी बात सुनकर स्नेहपूर्वक कहा-**'तुम लोग**

यदि अपनी गति स्वयं ही करोगे, तो फिर मैं चौबीस घंटे ऐसे बैठा क्यों हैं? तुम तो राजपुत्र हो। पेटभर खाया करो और वन में शौच कर आया करो, तुम्हें फिर किस बात की चिंता है?' ठाकुर की बातें सुनकर हमारी क्या दशा हुई, कहा नहीं जा सकता। ठाकुर की यही अभयवाणी हमारे अनंतकाल का एकमात्र अवलम्बन बनी रहे। जय गुरुदेव! आज चिरकाल के लिए हमें तुमने निश्चिन्त कर दिया। हम धन्य हुए। कृतार्थ हुए।

आज बरिशाल के प्रसिद्ध वकील गोराचाँद शील महोदय ने ठाकुर से कहा-कुंज के यहाँ तो एक बार बिना आग के भी खाना पका गया था। ठाकुर-**'हाँ यह कोई आश्चर्य की बात नहीं, पंचभूत में सभी है, जब जिससे जो कार्य हो।'** ठाकुर ने कुंज से कहा-**'तुम्हारे घर में बिना आग से पकने वाली घटना कैसी हुई, बताओ तो?'** कुंज ने वह घटना पूरी कह सुनाई। ठाकुर ने सब सुनकर कहा-**'यह अति सत्य है। इसे ही सत्य कहेंगे। ऐसी घटनाएँ विरल ही होती हैं। इस एक घटना के बाद कितने ही लोगों का उद्धार हो जाएगा, युग बीत जाएंगे, परन्तु पर्वत पर अंकित रेखा की भाँति यह घटना चिरस्थायी रहेगी। वर्तमान समय में कोई विश्वास नहीं कर पायगा, सोचेगा यह झूठ है, यह भी सोच सकता है कि प्रशंसा पाने के लिये चतुराईपूर्वक किसी ने ऐसा किया होगा। यदि तुम वस्तुतः भक्ति करो, मर्यादा और आदर दो तो और भी आश्चर्यजनक क्रियाकलाप देख पाओगे।'**

कुंज ने ठाकुर को उनके गाँव के गुरुभ्राता की बात कह सुनाई। वह गुरुभ्राता जमींदार का कर्मचारी था। जमींदार ने चिढ़कर उस पर कुछ दोषारोपण करके, अदालत में उसके विरुद्ध नालिश कर

दिया। उसे सबके सामने नीचा दिखाने और ठेस पहुँचाने के उद्देश्य से, विचार वाले दिन, सबकी उपस्थिति में जमींदार ने ठाकुर की निंदा करना आरम्भ किया। गुरुभ्राता ने जमींदार को रोकते हुए कहा-'आप क्यों निंदा किए जा रहे हैं। अब भी सावधान हो जाइए। जमींदार और बढ़-चढ़कर निंदा करता गया। तब गुरुभ्राता ने कहा-'मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ, मेरे सामने मेरे गुरुदेव की निंदा मत कीजिए।' पर जमींदार फिर भी न रुका, तो वह दौड़कर बगीचे से एक बांस तोड़ लाया और सबसे चिल्लाकर कहने लगा-सब सावधान रहें, मेरे कार्य में जो बाधा डालेगा, उसी का खून हो जायगा। उसने सबके सामने जमींदार को बाइस बार बाँस से ऐसा पीटा, कि जमींदार जमीन पर गिरकर छटपटाने लगा। फिर न्यायाधीश के पास बाँस रखकर कहा-'अब मुझे चाहे जो सजा दीजिए।' न्यायाधीश के पास मामला रहा। उत्तेजना के यथेष्ट कारण होने पर, गुरुभ्राता को मात्र पचीस रुपए जुर्माना हुआ। जमींदार को भी उसके अपराध के लिये पचीस रुपए दण्ड देने पड़े। ठाकुर ने सुनकर कहा-**'तुम लोग ऐसा करोगे, तो मुझे ही तुम लोगों के लिये विपत्ति में पड़ना पड़ेगा।'**

महाप्रभु के आविर्भाव की संभावना का संवाद नवद्वीप यात्रा।

नवद्वीपवासी श्री रामयादव बागची काफी दिनों से इलाहाबाद में रहकर डॉक्टरी कर रहे हैं। कुंभमेले में स्त्री सहित उन्होंने ठाकुर के पास दीक्षा ग्रहण की। उनके छोटे भाई श्री वाणीतोष के साथ ही, ठाकुर की छोटी कन्या प्रेमसखी (कुतु) का विवाह होना निश्चित

हुआ। विवाह का दिन पंद्रह फाल्गुन तय हुआ। विभिन्न स्थानों में निमंत्रण भेजे जा रहे हैं। ठाकुर ने मुझसे कहा-**'ब्रह्मचारी अब यहाँ भीड़-भाड़, लोगों का कोलाहल आरंभ होगा। तुम एकांतप्रिय हो, अतः यह सब तुम्हें अच्छा न लगेगा। तुम कुछ दिन दादा के पास जाकर रहो। मैं कलकत्ता जाऊँ तो फिर आकर मेरे साथ रहना।'**

मैं ठाकुर का आदेश पाकर, दादा के पास बस्ती के लिए रवाना हुआ। वहाँ आठ दिन रहकर भागलपुर जाने की बड़ी इच्छा हुई। अश्विनी व महाविष्णु बाबू पास पुलिनपुरी में ही रहते हैं, अतः शीघ्र ही मैं उनके पास जा पहुँचा। कुछ दिन बाद एक छपा हुआ कागज मिला, उसमें यह संवाद मिला कि महाप्रभु का जन्म फाल्गुनी पूर्णिमा में हुआ था। उस समय जो-जो ग्रह नक्षत्र, लग्न एवं चन्द्रग्रहण था, वह सब ठीक चार सौ साल बाद एक साथ उसी प्रकार दिखाई पड़ रहे हैं। सबकी धारणा है कि महाप्रभु पुनः अवतीर्ण होगें, अतः बड़े ही उत्सव का आयोजन चल रहा है। सभी संकीर्तन और महोत्सव में मत्त होकर महाप्रभु का आह्वान करेंगे। मुझे खबर मिली, कि ठाकुर कलकत्ते में विजयरत्न सेन कविराज के घर कुछ दिन रहकर, नवद्वीप चले गए हैं। सुनते ही ठाकुर के पास जाने को मन अधीर हो उठा। उसी समय ईसाइयों की छुट्टी, होली की छुट्टी जुड़कर कुछ दिनों की छुट्टी मिली, सो छोटे दादा, महाविष्णु बाबू, अश्विनी भी मेरे साथ नवद्वीप चले। पूर्णिमा के दिन शाम को हम नवद्वीप पहुँचे। श्री मथुरानाथ पदरत्न ने सादर ही अपने टोलबाड़ी में ठाकुर के रहने की अच्छी व्यवस्था की है। वहाँ अपना सामान रखकर हम ठाकुर के पास महाप्रभु घाट पहुँचे। वहाँ लोगों की भीड़ लगी थी। गंगा के घाट पर हमने अपूर्व दृश्य देखा।

ग्रहण के समय ठाकुर का अपूर्व नृत्य।

आज गंगातट लोगों से भर गया है। हजारों लोग दल बनाकर मृदंग-करताल बजाकर महा संकीर्तन कर रहे हैं। ठीक महाप्रभु के आविर्भाव का समय जानकर, वे व्याकुल होकर उन्हें पुकारते और अश्रुपात करते जाते हैं। लाखों लोगों के जय-जयकार, आर्तस्वर और हरिध्वनि से महाभाव की बाढ़ सी आ गयी है। सभी संकीर्तन में मग्न है। ठाकुर भी स्थिर न रह सके, गुरुभ्राताओं के बीच संकीर्तन करते हुए, वे नृत्य करने लगे। उनकी उच्च हरिध्वनि एवं हुँकार, गर्जना को सुनकर सभी व्याकुल हो उठे। ठाकुर गद्गद् कंठ से कहते जाते-**'जय शचीनंदन! जय शचीनंदन!'** सभी महाप्रभु का आविर्भाव हुआ जानकर भाव विभोर हो गए। सर्वत्र ही अनजाने एक महाशक्ति का संचार हुआ। सभी ठाकुर को हाथ जोड़े अपलक देखते जाते और रोते जाते। कोई जय महाप्रभु कहकर चिल्लाता, तो सभी भावाविष्ट हो जाते। ठाकुर कुछ देर बाद स्नान घाट आए। गंगातट पर ठाकुर राहूग्रस्त चन्द्रमा की ओर देखकर दाहिना हाथ उठाकर-**'वह देखो! वह देखो!'** कहकर संज्ञाशून्य हो गए। गुरुभ्राताओं ने पकड़कर ठाकुर को बैठाया। वे तीन घंटे तक समाधिमग्न रहे। चन्द्रमा राहू मुक्त होने पर, ठाकुर की बाह्य चेतना लौट आई। ठाकुर के साथ गंगा स्नान करके हम आनंद विभोर हो गए। तट पर आते ही एक अनजान लड़की आई और ठाकुर के लिए बढ़िया शरबत लाई। हमने भी शरबत का प्रसाद ग्रहण किया एवं बड़े तृप्त हुए। संकीर्तन करते हुए ठाकुर के साथ हम सब टोलबाड़ी आ पहुँचे।

बालक गौरांगदेव का नुपुर के लिये रोना।

नवद्वीप निवासी श्री महेन्द्र नाथ भट्टाचार्य के घर नव गौरांग की प्रतिष्ठा हुई है। वहाँ महोत्सव का आयोजन किया गया है। ठाकुर का वहाँ सशिष्य निमंत्रण है। सुबह आठ बजे ठाकुर चाय पी रहे थे, कि बाल रूप में गौरांग ठाकुर के पास प्रकट होकर कहने और रोने लगे- 'मेरी प्रतिष्ठा तो कर दी है, पर मुझे सोने के नुपुर और बाला कहाँ दिए?'

ठाकुर ने आश्वासन देकर कहा-**'अच्छा मैं जाकर कह रहा हूँ, सोने के नुपुर बनवा देंगे।'** चाय पीकर ठाकुर गुरुभ्राताओं के साथ हरिसभा गये। वहाँ काफी देर हरि संकीर्तन होता रहा। ठाकुर वहाँ से गर्म रेत पर चलकर, महेन्द्र बाबू के घर पहुँचे और नव गौरांग को देखकर कहने लगे-**'आहा! मेरे साथ इतनी गर्म रेत पर कूदते-फाँदते आना था? हाँफ रहे हो। मत हाँफो। चुप हो जाओ। रोओ मत। मैं कह दूँगा, सोने का नुपुर, बाला देंगे, जरूर देंगे।'**

इस समय अमरेन्द्र दत्त, स्वामीजी और कुछ गुरुभाईयों ने देखा विग्रह की आँखें छलक रही हैं, वे रो रहे हैं। गले का हार भी काँप रहा है। देखकर कोई-कोई तो मूर्च्छित भी हो गए। ठाकुर मंदिर के नाट मंदिर की साज-सजावट देख, झाड़ फानूस आडम्बर देखकर बोले-**'इन सब झाड़-फानूस की क्या आवश्कता है? जिन्हें जिस प्रकार सजाना चाहिये, वह न करके झाड़-फानूस टाँगने से क्या होगा? जिस बालक को यहाँ रखा है, उसे सोने का नुपुर व बाला (कंगन) न दोगे, तो वह घर की सारी हंडियाँ तोड़-फोड़कर रख देगा।'** ठाकुर ने और भी बहुत सी बातें की, फिर

गौरांग के आगे साष्टांग प्रणाम करके, लोटने लगे। बारह बजे हम पुनः फिर गर्म रेत पर से होकर टोलबाड़ी लौट आए।

सिद्धा ग्वालिन।

मैं बड़े सबेरे उठकर गंगा स्नान कर आया। चाय के बाद, ठाकुर को लेकर संकीर्तन आरंभ हुआ। हम संकीर्तन करते हुए पदरत्न महोदय की हरिसभा पहुँचे। वहाँ भी ठाकुर महाप्रभु की प्रतिमा देखकर कुछ देर ही में संज्ञाशून्य हो गए। कीर्तन जम उठा। स्वामी हरिमोहन भावोन्मत होकर नृत्य करने लगे, जिसे देख हमें बड़ा आनंद आया। संकीर्तन में सबने परम आनंद प्राप्त किया। दस बजे ठाकुर की बाहरी चेतना लौटने पर, हम सब टोलबाड़ी लौट आए।

उसी समय एक वृद्धा ग्वालिन ठाकुर के पास हाँफते हुए आई और कहने लगी-'अरे तुम सब यहाँ कैसे, तुम तो ब्रज के हो। तुम्हें देखने के लिए घूम-घूमकर हैरान हो गई। आज देखकर धन्य हुई। ऐसा कहकर वह हाँड़ी से दूध निकालकर ठाकुर को पिलाई और भी निकालती और गिलास में गुरुभ्राताओं को भी पिलाती गई। पंडित महाशय ने कहा-'पात्र जूठा है, दूध नहीं पीऊँगा।' ठाकुर ने कहा-**'जूठा नहीं प्रसाद है, पी लीजिए।'** एक गुरुभ्राता ने पूछा-पत्ते में मुड़ा वह क्या रखा है? ग्वालिन ने कहा-यह नहीं दूँगी, यह मेरे बच्चों के लिये है। बेचारे घूम-फिरकर थके-हारे आते हैं, सो उनके लिए खीर रखी हूँ। ग्वालिन ने ठाकुर से कहा-'बाबा दोनों लड़के तो तुमसे मिलने आते ही है न? उन्हें सुबह जल्दी भेज देना। मेरा बड़ा लड़का अच्छा और बड़ा ही भोला भाला है। भूख सह नहीं सकता।'

ठाकुर ने कहा-**'अच्छा कह दूँगा।'** मध्याह्न को पदरत्नजी के

घर हम सबका आहार संपन्न हुआ।

शाह साहब का अलौकिक ऐश्वर्य: शक्ति आकर्षण: रेल संघर्ष में ठाकुर के चरणों में आघात।

संध्या के कुछ बाद ठाकुर अपने आसन पर पाँव फैलाकर बैठे हैं। गुरुभाई श्री अश्विनी कुमार बसु उनकी चरण सेवा कर रहे हैं। दाहिना पैर दबाते ही ठाकुर **'ऊह'** कर उठे। उन्होंने पूछा-आपके पैर के पंजे में क्या चोट लगी हैं?

ठाकुर ने कहा-**'इलाहाबाद से कलकत्ता आते समय रास्ते में मगरा नामक स्टेशन पर हमारी गाड़ी की दूसरे गाड़ी से टक्कर हुई थी। उसी समय इस पैर के नीचे आघात लगा था।'** अश्विनी-सुना है आपके डिब्बे के आगे व पीछे के दोनों डब्बे टूट-फूटकर चूर-चूर हो गए। आप जिस डब्बे में थे उसे कुछ भी नहीं हुआ। क्या यह सच है?

ठाकुर-**'हाँ, प्रयाग छोड़कर स्टेशन आकर हम जैसे ही गाड़ी में चढ़ने लगे, शाह साहब आए, हमें बाजूवाले डब्बे में चढ़ाकर कहा-आप इसी में बैठे, दूसरे डब्बे में मत जाइएगा। मगरा के टक्कर के बाद देखा, आगे-पीछे के दोनों डब्बे चूर-चूर हो गए, एक आदमी मर भी गया, पर हमारे डब्बे को कुछ न हुआ, वैसा धक्का भी न लगा। शाह साहब की अद्भुत शक्ति है। मेरे पैर में थोड़ा लगा। कलकत्ता आकर ज्वर भी आया। अभी भी दर्द है, पूरा ठीक नहीं हुआ।'**

ठाकुर की बात सुनकर आश्चर्य हुआ। साथ के डब्बे चूर्ण हो गए

और भी कई डब्बे टूटे-फूटे पर ठाकुर का डब्बा ठीक रहा, किसी को आघात या झटका तक न लगा। ठाकुर अपने को छुपाने के लिए शाह साहब की कितनी ही प्रशंसा करें, मुझे लगता है, टक्कर के समय अदम्य शक्ति से रक्षार्थ, ठाकुर ने पैर के भार से गाड़ी को स्थिर रखा था। उसी से शक्ति का आकर्षण कर लिया होगा, जिससे डब्बे की रक्षा हुई। शक्ति का मान रखने के लिये पैर में आघात, दर्द ग्रहण करके भोग रहे हैं। महेन्द्र बाबू से सुनकर हैरान हुआ जा रहा हूँ कि जब शाह साहब ठाकुर को रेलगाड़ी के डब्बे में बैठाकर जा रहे थे, तो ठाकुर ने चरणधूलि लेकर उन्हें प्रणाम किया। सूक्ष्म दृष्टि संपन्न महेन्द्र बाबू ने कहा-यह आपने क्या किया? एकदम सब समाप्त कर दिया।

ठाकुर ने कहा-**'क्या करूँ? परमहंसजी ने कहा कि सारी शक्ति खींच लो, ये शक्ति का अपव्यय कर रहे हैं।'** शाह साहब ठाकुर की रक्षा करेंगे, यह अभिमान की बात हुई। गुरु एक परमहंस जी है। वे शिष्य का अभिमान कैसे सहे?

रसिकदास के पदावली गायन में ठाकुर की उपस्थिति।

महाप्रभु के मंदिर में आज तीन दिन हुए, रात-दिन अविराम पदावली गान चल रहा है। देश के प्रसिद्ध कीर्तन दल एक के बाद एक पदावली गान करते हुए मण्डप को जमाए रखे हैं। आज प्रसिद्ध गायक रसिकदासजी का पदावली गान होने वाला है। आज चाय पीकर ठाकुर के साथ मंदिर आ पहुँचा। ठाकुर के आते ही रसिकदासजी ने ठाकुर को प्रणाम करके हाथ जोड़कर आशीर्वाद

तथा अनुमति माँगी। ठाकुर ने उनके सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद देते हुए, उन्हें अनुमति प्रदान की। ठाकुर का स्पर्श पाकर परमानंदपूर्वक करताल मृदंग के साथ उन्होंने ऐसी गौर-चन्द्रिका प्रारंभ की कि उनका करुण स्वर सुनकर सभी श्रोतागण रो उठे। ठाकुर भी अधीर होकर, **'जय शचीनंदन! जय शचीनंदन!'** कहकर आसन से उठ पड़े। वे उद्दाम नृत्य करते हुए एक बार महाप्रभु के विग्रह की ओर जाते, फिर पीछे लौट आते और नृत्य करते। ठाकुर महाप्रभु की ओर अँगुली दिखाकर **'वे ही तो हैं। वे ही हैं।'** कहकर संज्ञाशून्य हो गए। महाभाव के प्रवाह में सभी निमग्न हो गए। रसिकदास सुंदर स्वर में अश्रुपूर्ण नेत्रों से गाते रहे। सारी सभा निस्तब्ध थी। ठाकुर ने धीरे से मुझसे कहा-**'कुछ रुपए ले आओ।'** मैंने तुंरत योगजीवन व नानी माँ के पास से सत्रह रुपए लाकर दिए। ठाकुर प्रत्येक पदावली के आरंभ व शेष में रुपए रुमाल में बाँधकर रसिकदास की ओर देते जाते। रसिकदास के भी आनंद की सीमा न रही। वे अद्वैत महाप्रभु की अपूर्व महिमा का गान करके, ठाकुर के वर्तमान जीवन की महिमागान गद्गद् कंठ और अश्रुधार से भीगते हुए करने लगे। ठाकुर भावाविष्ट हो नाना प्रकार के सात्त्विक विकार व भावों के उद्गार से शिथिल पड़े रहे। चारों ओर श्रोतामंडली ठाकुर को विस्मय-व्याकुल नेत्रों से ताकती रही। साक्षात् स्तुतिगान सुनकर मैं विमुग्ध हो गया। ग्यारह बजे कीर्तन समापन के बाद, बड़ी कठिनाई से भीड़ के बीच में से ठाकुर को निकालकर, टोलबाड़ी पहुँचे।

नवद्वीप में राईमाता।

चाय पीकर ठाकुर के साथ हम सब राईमाता के घर पहुँचे। इनका नाम पहले नहीं सुना था। ठाकुर को देखते ही राईमाता ने- ‘अरे मेरा अद्वैत मेरे यहाँ आया है, कहाँ हो सब, देखो आओ’ कहकर सबको पुकारा। ठाकुर किसी के कहने की प्रतीक्षा किए बिना ही बरामदे में जाकर बैठ गए। राईमाता ने आकर कहा-‘बाबा तुम्हें देखने गई थी, मैंने देखा तुम भक्तों से बातचीत कर रहे थे, तो पास जाने का साहस न हो पाया। दूर से ही चली आई। मन में बड़ी इच्छा थी कि तुम भक्तों को लेकर घर पधारो, सो आज वह साध पूरी हो गई। तुम जरा बैठो, मैं बच्चों को भोजन दे आऊँ, उन्हें खाने को नहीं दिया है। यह कहकर वे अंदर गई, थोड़ी देर में उत्तम खाद्य सामग्रियाँ थाल में भरकर लाई और ठाकुर के सामने रखा। ठाकुर ने थोड़ा ग्रहण किया, शेष गुरुभ्राताओं ने सानन्द ग्रहण किया। राईमाता ने कहा-‘बाबा जब मेरे घर आए हो, तो भोजन करके जाना पड़ेगा।’ ठाकुर ने भी प्रेमपूर्वक अनुमति दी, तो वे भोजन पकाने चली गई। अपने हाथों से विविध प्रकार के व्यंजनादि से भोग लगाई। बारह बजे हम सबने तृप्तिपूर्वक प्रसाद पाया। भुक्तावशिष्ट को एक साथ लड्डू बनाकर सबमें उन्होंने बाँट दिया। इनकी आँखें ऊपर उठी हुई, भाव में तन्मय हैं। शरीर काम कर रहा है, पर मन कहीं और निमग्न है। यह अवस्था दुर्लभ है।

अपूर्व तमाल वृक्ष: भावाविष्ट बालक।

आहार के बाद विश्राम करके, हम सब पदरत्न महाशय की हरिसभा जा पहुँचे। वे हमें भीतर बाडी, एक तमाल का वृक्ष दिखाने ले गये। यह सचमुच देखने योग्य वृक्ष है। बीच में मंदिर की तरह उठा

है, चारों ओर की शाखाएँ छत्राकृति भूमि पर लोट रही हैं। लताओं से घिरा भीतर मानो एक अंधेरा कमरा सा बना हुआ है। इस तरह प्राकृतिक रूप से वृक्ष का विस्तार मैंने पहले कहीं नहीं देखा। वृक्ष देखकर हम सब प्रसन्न हुए। तभी एक घटना घटी।

पदरत्न महाशय का तीन वर्षीय पौत्र सबको कौतुहलपूर्वक देखता हुआ, तमाल वृक्ष के नीचे खडा रहा। बालक बड़ा ही सुंदर और मोहक था। उस पर ठाकुर की दृष्टि पड़ते ही, उसने हाथों से अपना मुँह ढक लिया। पदरत्न महाशय की छोटी सी नातिन आकर, बालक के गले में बाहें डालकर उसे दुलारने लगी। बालक हाथ जोड़कर ठाकुर को निहारता रहा। उसके ओंठ काँप रहे थे और नेत्रों से आँसू बहे जा रहे थे। उसे स्वाभाविक प्राणायाम होने लगा। ठाकुर उसे दिखाकर बोले-**'तुम सब इसे अच्छी तरह देख लो। लोग जिनके लिये दौड़ते हैं, इधर-उधर घूमते हैं, ये कब, कहाँ, किस गली में, कैसी लीला करते हैं, स्वयं न बता दें, तो कोई नहीं जान पाता। इन्हें देखकर तुम सब धन्य हुए। पदरत्न महाशय पण्डित है, उनके सुलक्षण ताड़ गए हैं एवं इनका आदर कर रहे हैं।'** बालक भावाविष्ट होकर ठाकुर को साष्टांग प्रणाम करने लगा। ठाकुर उसे प्रेमपूर्वक उठाकर सिर पर हाथ फेरते हुए खूब प्यार किया और कहा-**'अब से तुम किसी को प्रणाम मत करना।'** बालक को देखकर सबको भाव उदित होता रहा। हम दिन ढलते टोलबाड़ी आए। संध्या-कीर्तन के बाद ठाकुर राईमाता और ग्वालिन की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

नवीन बाबू की प्रकृति।

आज प्रसिद्ध तांत्रिक नवीन बाबू ने ठाकुर को निमंत्रण दिया। ठाकुर राह भूलकर घूमघामकर गंगा तट जा पहुँचे। यह सुनते ही नवीन बाबू अपनी प्रकृति के साथ उत्तम खाद्य सामग्री लेकर गंगातट पहुँचे। ठाकुर को वह सब देने पर ठाकुर खाने वाले थे, तभी उनकी प्रकृति ने कहा-आपको अपने हाथों से खिलाने की बड़ी इच्छा है। ठाकुर ने सहमति दी तो ठाकुर को खिलाते हुए उन्होंने कहा-आप मुझ पर दया कीजिए। ठाकुर ने कहा-**'मेरी माँ जब बाघ के पीठ पर सिर रखे सोई थी, तब उन्हें आपने ही बाघ के पास से घर लाया था। आपने तो मुझ पर अत्यन्त उपकार किया है, मुझे खरीद ही लिया है, फिर मैं आप पर क्या दया करूँ?'** कुछ देर बाद हम टोल बाड़ी लौट आए।

ॐ कार साधन।

आज ठाकुर गुरुभ्राताओं को लेकर ब्राह्मसमाज के विख्यात गायक श्री राजकुमार बन्दोपाध्याय के घर में उपस्थित हुए। वे ठाकुर के पुराने मित्र हैं। अचानक ठाकुर को इतने शिष्यों के साथ देख कर आनंद विभोर हो उठे और जलपान का आयोजन करने लगे। तभी उनकी वृद्धा माता आकर प्रणाम करने लगी तो ठाकुर ने कहा-**'राजकुमार को मैं भाई मानता हूँ, आप मेरी भी माँ हुई, माँ क्या बेटे को प्रणाम करती हैं?'** तब इन्होंने कहा बाबा मैं तुम्हें महादेव की तरह देख रही हूँ। ठाकुर-**'तब आप महादेव को नमस्कार कीजिए। मैं माँ को प्रणाम करता हूँ।'**

सबके जलपान के बाद राजकुमारजी ने ठाकुर से कहा-आपका मुझ पर अगाध स्नेह है, इसका परिचय मुझे कई बार मिल चुका है।

अब मेरे जीवन की यह दुर्दशा देखकर भी आप चुपचाप बैठे हैं। कृपया आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिए, कि दो मिनट भी भगवान के ध्यान में निमग्न हो सकूँ। सहज उपदेश दीजिए, ताकि मैं ठीक-ठीक पालन कर सकूँ। मेरे उपयुक्त होने पर दीक्षा देकर कृतार्थ कीजिएगा। ठाकुर सब सुनकर बड़े प्रसन्न हुए, उन्होंने कहा-**'आपने जैसा कहा है, वैसा ही उपदेश दे रहा हूँ। यह सहज भी है और कठिन भी। सहज इसलिए कि कोई थोड़ा भी मन लगाए तो इसे कर सकता है। कठिन इसलिए कि सभी इसे जानते हैं, पर किसी को करने की प्रवृत्ति नहीं होती। आप ॐकार साधन कीजिए। ॐकार का अर्थ है अ, ऊ, म। सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय। पहले जो था, अब है, बाद में नहीं रहेगा। यह धारणा जब दृढ़ होगी तो संसार अनित्य, असार एवं मिथ्या प्रतीत होने लगेगा। किसी पर ममत्व नहीं रह जाएगा। मन शून्य हो जायगा। तब जो चिरस्थायी है एवं चिरकाल तक रहेगा, ऐसा कुछ पाने के लिए तीव्र व्याकुलता उत्पन्न होगी, उस समय दीक्षा लाभ करके कृतार्थ हो जाएंगे।'** हम इसके कुछ दिन बाद शांतिपुर जाकर रहे। फिर ठाकुर के साथ चैत्र माह के अंत में कलकत्ता चले आए।

-समाप्त-